



पं० रामप्रसाद वैद्योपाध्याय.

॥ श्रीः ॥

अथ चरकसंहिता- विषयाऽनुक्रमणिका ।



चिकित्सास्थान ।

१. अभयामलकीय प्रथमरसा- यनपाद ।

पिपेके नाम	८६६
प्रकारकी अभेयज	"
विध औषध	"
पायनके गुण	८६७
जीकरण गुण	"
विध प्रयोग	८६८
नौषधसेवननिषेध	"
विधरसायनविधि	"
टीनिर्माणविधि	८६९
टी प्रवेश विधि	"
सायनसे प्रथमशोधनका उपदेश	८७०
शोधनद्रव्य व क्रम	"
रीतिके गुण	"
सेवनका निषेध	८७१
भामलेके गुण	"
तेनो फलोंसे अमृत व चयन	"
शौषधयोग्यउत्तमभूमि	८७२
वायुरसायन	"
वायु रसायनका फल	८७४
द्वितीय वायु रसायन	"
व्ययनप्राप्त	८७६
व्ययनप्राप्तके गुण	८७७
आमलकीयरसायन	८७८
हरीतक्यादिरसायनप्रथम	८७९
हरीतरयादिरसायनद्वितीय	"
प्राणकामीयद्वितीयरसायनपाद ८८१			
आमलकीपुररसायन	८८३

विषय.	पृष्ठांक.
आमलकावलेह प्रथम	... ८८४
आमलकावलेह द्वितीय	... "
विडङ्गावलेह	... ८८५
आमलकावलेह तृतीय	... "
नागवला रसायन	... ८८६
बलादिकरसायन द्रव्य	... ८८७
भङ्गातरक्षोर	... "
महातकरसायन	... ८८८
भङ्गातकतेल	... ८८९
भङ्गातक त्रिधान	... "
शिलापत्रके गुण	... ८९०
रसायनरी उत्कृष्टता	... "

करप्रचितीयनामक तृतीय- रसायन पाद । ८९१

इसके गुण	... ८९२
केवलआमलकीयरसायन	... "
लोहुरसायन	... ८९३
ऐन्द्रियरसायन	... ८९४
मृ.क्षीआदिमेषरसायन द्रव्य	... ८९५
पिप्पलावरसायन	... ८९६
वर्द्धमान पिप्पली	... "
त्रिफला रसायन	... ८९७
अन्य त्रिफला रसायन	... "
अन्य त्रिफला रसायन	... ८९८
अन्य त्रिफला रसायन	... "
शिलाजीत प्रयोग	... "
शिलाजीतकी उत्पत्ति	... ८९९
सौ.र्णशिलाजीत	... "
शिलाजीतरीव्य	... "
ताम्रोद्धर शिल्पजीत	... ९००

विषय.	पृष्ठांक.
द्वय भेदसे प्रयोग ...	१००
शिलाजीतमें कुपय्य ...	"
शिलाजीतमें पथ्य ...	"
शिलाजीतके गुण ...	१०१
आयुर्वेदसमुत्थानीयनामकचतुर्थ-	
रसायनपाद ।	
ऋषियोंआदिमालयगमन ...	"
इन्द्रस रसायनउपदेस ...	१०२
एन्द्ररसायन ...	१०३
द्रोणीप्रावेशिक द्रव्य रसायन ...	१०४
इन दिव्यरसायनोंसे सेवन करवेनी योग्यता	१०६
साधारणजनोंके लिये अन्यरसायन	"
इसके गुण ...	१०८
कुटी प्रवेशयोग्य मनुष्य ...	"
कुटी प्रवेशके अयोग्य ...	"
कुपय्यसे उत्पन्न रोगोंमें चिकित्सा	१०९
रसायनके योग्य मनुष्य ...	"
रसायनके अयोग्य ...	११०
अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसा ...	"
प्राणाचार्यके लक्षण ...	१११
वैद्यको भिजातित्व ...	११२
वैद्यके लिये कर्तव्य ...	"
वैद्यको पुण्य ...	११३
पादका उपसंहार ...	"

२ वाजीकरण अध्याय ।

शरभूलीय प्रथम वाजीकरण पाद	११४
स्त्रीकी प्रशंसा ...	"
सतानार्थयोग्यश्रीसे गमन ...	११६
संतानके बिना पुत्रपत्नी निन्दा ...	"
संतानयुक्त पुत्रपत्नी प्रशंसा ...	११७
वृष्यगुटिका ...	"
वाजीकरण घृन ...	११८
वाजीकरणविण्डरस ...	११९
वृष्यरस ...	१२०
अन्यवृष्यरस ...	"
वृष्य मूत्र ...	"
कुटुमासरस ...	"
अण्डयोग ...	१२१

विषय.	पृष्ठांक.
आसिक्तक्षीरीयद्वितीयवाजीक-	
रणपाद.	
अपत्यकारी घटिका ...	"
घृचदूपालिका ...	१२३
अपत्यकारक पेया ...	"
वृष्यशीर ...	१२४
वृष्यघृत ...	"
वाजीकरणरमाला ...	"
वृष्यदुग्धौदन ...	१२५
राक्षसयोग ...	"
पादका उपसंहार ...	"
माषपर्णनामकतृतीयवाजीकर-	
णपाद.	
वीर्यद्वेक दूध ...	"
वृष्यलपनी ...	१२७
वृष्यशीर ...	"
सिद्धदूध ...	"
भिषगुयुक्तपारोक्ष्यदूध ...	१२८
वृष्यपायस (रार) ...	"
वाजीकरण पूपालिका ...	"
वृष्यघृत ...	१२९
मधूक योग ...	"
नित्यदूधघृतके सेवनका गुण ...	"
मिन्मण्डलीका निवास ...	"
कामोत्पादकरुचर्म ...	१३०
दर्मोत्पादक कामदेवके अह्न ...	"
प दना उपसंहार ...	१३१
पुमान् जातबलादिकचतुर्थ वाजी-	
करणपाद.	
वृष्यप्रयोगविधि ...	१३२
वृष्यमांसगुटिका ...	"
माक्षिकसयोग ...	१३३
मस्त्यमांसयोग ...	"
राक्षसी पूपालिका ...	"
वीर्यद्वेक परमोत्तम पूपालिका ...	१३४
परमवृष्ययोग ...	"
वृष्यघृत ...	१३५

विषयाऽनुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांश.
वियवर्द्धकरमोत्तम गुटिका ...	९३५	इनके बीपमें दृष्टान्त	
॥ नीकरण उत्कारिका ...	"	तृतीयकज्वरके तीन प्रकार	
धुरद्वयोंकी वृध्यत्व ...	९३६	चातुर्थिकके दो प्रकार	
इथ प्रशासकी अवस्था ...	"	चातुर्थिक विपर्यय...	"
अवस्थाभेदसे स्त्रीसंगका निषेध	"	विषम ज्वरोंको त्रिदोषत्व	"
शुक्रक्षयके कारण ...	९३७	रसगतज्वरके लक्षण	९५१
शामोपपत्ति न होनेके कारण ...	"	रक्तगतज्वरके लक्षण	"
शुक्रके स्थान और निरुलनेका क्रम	"	मांसगतज्वरके लक्षण	"
वीर्यनिरुलनेके कारण ...	"	भेदोगतज्वरके लक्षण	"
फणधान वीर्यके लक्षण ...	९३८	अस्थिगतज्वरके ल०	९५२
वाजीकरणके लक्षण ...	"	मन्नागज्वरके ल०	"
अध्याय ३ उपसंहार ...	"	शुक्रगतज्वरके ल०—	"
३ ज्वर चिकित्सित अध्याय ।		इनकी साध्याऽसाध्यता	"
ज्वरविषयमें अभिनेवेशका प्रश्न...	९३९	विशेषतासे ज्वरोंका वर्णन	"
आग्नेयजोना कथन ...	९४०	वातपित्तज्वरके ल०	९५३
ज्वरके पर्यायवाचक शब्द ...	"	वृत्तकज्वरके ल०	"
ज्वरकी प्रकृति और प्रवृत्ति ...	"	पित्तकज्वरके ल०	"
महादेयके बीपसे दक्षयज्ञप्रशसा वर्णन	९४१	वातपित्तोत्थन सन्निपातके ल०...	९५४
ज्वरके पूर्वरूप ...	९४२	पित्तकफोत्थन सन्निपातके ल०...	"
ज्वरका अधिष्ठान ...	९४३	वातोत्थन सन्निपातके ल०	"
ज्वरका रूप ...	"	पित्तोत्थन सन्निपातके ल०	"
ज्वरके दो भेद ...	"	कफोत्थन सन्निपातके ल०	९५५
ज्वरके ५ भेद ...	"	हीनवात, मध्यकफ पित्तोत्थन सन्निपातके ल०	"
रसत्रिध और अष्टविधज्वर ...	"	हीनवात, अध्यक्षकफ, पित्ताधिन्य सन्निपातके ल०	"
शारीर और मानसज्वरके लक्षण	९४४	हीनपित्त, मध्यकफ, वाताधिक सन्निपातके ल०	"
सौम्य और आभेयके लक्षण ...	"	हीनपित्त, मध्यवात, कफाधिक सन्निपातके ल०	"
अतरेणा ज्वरके लक्षण ...	"	कफहीन, वातसम्बन्धित्तधिक सन्निपातके ल०	"
वहिवर्गी ज्वरके लक्षण ...	९४५	सन्निपातके ल० ...	९५६
प्राकृत ज्वरके लक्षण और काल	"	इसकी असाध्यता ...	९५७
प्राकृत वैकृत भेद ...	९४६	निजज्वरोंका निर्देश	"
हेतु ...	"	आगन्तुक ज्वरोंके चार प्रकार ...	"
साध्यज्वर ...	"	अभिघ्न ज्वरके ल०	"
असाध्य लक्षण ...	"	अभिचार और अभिशापज्वरके ल०	९५८
संततज्वर ...	"	काम, शोक और भयज्वरके ल०	९५९
सततकज्वरका लक्षण	९४८	क्रोध, भूखावेश. तथा विपसे उत्पन्नहुए ज्वरके	
इन्तराज्वरका लक्षण	"	लक्षण ...	"
तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरलक्षण	९४९	इन ज्वरोंमें निशप वक्तव्य ...	"
एनद्या धातुभेदसे कथन ...	"	अ गन्तुजज्वरोंकी भेदता ...	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ज्वरोंकी संपत्ति ...	१६०	विषमज्वरनाशक पांच क्वाथ ...	१७
आमज्वरके ल० ...	"	वत्सकादि क्वाथ ...	"
निरामज्वरके लक्षण ...	१६१	शीतकृपाय ...	१७
नवज्वरमें धर्जित वस्तु ...	"	सन्निपातज्वर नाशकृपाय ...	"
लंघनका निर्देश ...	"	कफपित्तज्वर नाशक ...	"
लंघनके गुण ...	"	शठथादिर्वर्ग ...	"
अधिरु लंघनका दोष ...	१६२	वृहत्यादिगण ...	१७४
तरुणज्वरमें निर्देश ...	"	ज्वरनाशक अन्यक्रम ...	"
ज्वरमें जलके नियम ...	"	ज्वरनाशक अनेकसिद्धपृत्तोंका वर्णन ...	"
मुस्तत्रादिमे शृतजल ...	"	पिप्पल्यादिघृत ...	१७५
ज्वरमें घमनका योग ...	१६३	वासादिघृत ...	"
तरुणज्वरमें घमनके दोष ...	"	बलादिघृत ...	"
यवागूका निर्देश और गुण ...	"	ज्वरनाशकअन्यवमनादि निर्देश ...	१७६
यवागूका निषेध ...	१६४	वमनद्रव्य ...	"
ज्वरमें तर्पण ...	"	विरेचन द्रव्य ...	"
द्राक्षादि तर्पण ...	"	ज्वरनाशक दूध ...	१७७
तर्पणके अनन्तर दूध ...	१६५	वस्तिकर्मके द्रव्य ...	१७८
अन्नशालमें दूधधावन ...	"	अन्ययोग ...	१७९
अन्यनिर्देश ...	"	अन्यवर्तित ...	"
कैसे क्वाथ तरुणज्वरमें न देवे ...	१६६	अनुवासनवास्तियोग ...	"
ज्वरमें अन्न ...	"	अन्यअनुवासनयोग ...	१८०
घृत्तपानका समय ...	"	अन्य उपदेश ...	"
घृतका निषेध ...	"	नर्दनादि तैल ...	१८१
मांसरस ...	"	दाहनाशक अन्ययोग ...	"
ज्वरमें दूधका निर्देश ...	१६७	अत्यंतपित्तसे घटेहुए दाहज्वरका उपचार ...	१८२
ज्वरमें विरेचनादिका निर्देश ...	"	अगरादि तैल ...	१८३
वीरतकर्मका निर्देश ...	"	दीप्तत्पराशरु अन्य कर्म ...	१८४
शिशुविरेचनका निर्देश ...	१६८	शुष्ठज्वरोंमें लंघनका निषेध ...	१८६
अन्यगादिअन्यअनेक ज्वरनाशक चिक्रिमा ...	"	अन्य ज्वरोंमें लंघनकी आवश्यकता ...	"
ज्वरनाशक द्रव्य ...	"	अत्राभिमें भारीपदार्थभोजनकरनेके दोष ...	"
ज्वरमें अन्न ...	"	वातज्वरमें चिक्रिसाकम ...	१८७
ज्वरनाशक शय्याई ...	१६९	कफज्वरमें चिक्रिसाकम ...	"
ज्वरनाशक अनेक पेया ...	"	अन्यज्वरोंमें उपदेश ...	"
ज्वरमें दूध ...	१७०	द्वंद्व और शोभिपानज्वरोंमें चिक्रिसाकम ...	१८८
ज्वरनाशक दारु ...	१७१	षण्णगूलशोभमें उपचार ...	"
ज्वरमें मांस ...	"	शाराभिन्न ज्वरका उपचार ...	"
ज्वरमें अन्य उपदेश ...	"	जीर्णज्वरमें चिक्रिमा ...	१८९
ज्वरनाशक अनेक क्वाथ ...	१७२	विषमज्वरमें निर्देश ...	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
विषमज्वरनाशक अन्ययोग ...	९९०	रक्तपित्तमें घूप ...	१००३
विषमज्वरनाशक नस्य ...	९९१	रक्तपित्तमें शाक ...	"
धंजन ...	"	मांसरस ...	१००४
धूप ...	"	रक्तपित्तनाशक यवागुओंका वर्णन ...	"
अन्ययोग ...	"	रक्तपित्तमें रसोंकी विशेष कल्पना ...	१००५
दैर्वायल ...	९९२	रक्तपित्तमें तृपानाशक योग ...	"
पृथक् २ रसादिधातुगत ज्वरोंके यत्न ...	"	रक्तपित्तमें अन्य उपदेश ...	१००६
अभिधातसे उत्पन्न ज्वरकी चिकित्सा ...	९९३	वमन विरेचनका निर्देश ...	"
क्षतादिर्षेसि उत्पन्नहुए ज्वरमें चिकित्सा ...	"	रक्तपित्तमें विरेचकद्रव्य ...	१००७
काम, शोक, भय और क्रोधसे हुए ज्वरमें ...	"	वमनकारक द्रव्य ...	"
स्मृतिज्वरका यत्न ...	९९४	अन्य उपदेश ...	"
ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप ...	"	संशमनचिबित्सायोग्यरोगी ...	"
समयपर ज्वरमुक्तिके लक्षण ...	"	रक्तपित्तनाशक औषधीप्रयोग ...	१००८
ज्वरमुक्तिके त्याज्य विषय ...	९९५	घातासुयायी रक्तपित्त ...	१०११
ज्वरमुक्तके कुपथ्य सेवनके दोष ...	"	अधोगामीरक्तपित्तनाशक दूध... ..	"
ज्वरमुक्त होनेपर कर्तव्य ...	९९६	यासाघृत ...	१०१२
पुनरागतज्वरकी चिकित्सा ...	"	रक्तपित्तनाशक घृत ...	"
अन्ययोग ...	९९७	अन्ययोग ...	"
वैद्यको उपदेश ...	"	कफानुबंधीरक्तपित्तका यत्न ...	१०१३
अध्यायका उपसंहार ...	"	शतावरीआदिघृत... ..	"
४ रक्तपित्तचिकित्साध्याय ।		पचपंचमूलघृत... ..	"
अग्निवेशका प्रदत्त ...	९९८	दूधितरक्तकी रोकनेका दोष ...	१०१४
प्रनर्षसुजीका उत्तर... ..	"	नकसीरवदकरनेकी नस्य ...	"
रक्तपित्तकी संप्राप्ति और निरुक्ति ...	"	अन्ययोग ...	"
रक्तपित्तके अभिष्टान ...	९९९	रक्तपित्तपरलेप और सेवनप्रयोग ...	१०१५
दोषभेदसे रक्तपित्तके लक्षण ...	"	रक्तपित्तनाशकसेवनीयआचार तथा द्रव्य... ..	"
रक्तपित्तकी साध्यासाध्यता ...	१०००	अध्यायका उपसंहार ...	१०१६
मार्गभेदसे साध्यासाध्य ...	"	५ गुल्मचिकित्साध्याय ।	
याव्य साध्य ...	१००१	गुल्मोत्पत्तिके कारण ...	१०१७
साध्यरक्तपित्तके लक्षण ...	"	गुल्मके स्थानभेद ...	१०१८
उभयमार्ग गमनके कारण ...	"	वायुके गुल्मका हेतु ...	"
चिकित्साक्रम ...	"	वातज गुल्मके लक्षण ...	"
रक्तपित्तमें वेगोंको प्रथमही रोक देनेका उपाय ...	१००२	पित्तजगुल्मका हेतु ...	"
रक्तपित्तमें तृपाकी शक्तिके लिये जल ...	"	पित्तगुल्मके लक्षण... ..	"
तर्पण और पेयाका निर्देश ...	"	कफ गुल्मके हेतु ...	१०१९
तर्पण ...	१००३	कफगुल्मके लक्षण... ..	"
रक्तपित्तमें खटाई... ..	"	संभ्रिपातज गुल्मके लक्षण ...	"
रक्तपित्तमें अन्न ...	"		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
रक्तज गुल्मके हेतु ...	१०२०	पित्तगुल्मकी चिकित्सा ...	१०३३
चिकित्साका निर्देश ...	"	रोहिण्यादि घृत ...	"
वायुके गुल्ममें चिकित्साक्रम ...	"	प्रायमाणानुसृत ...	१०३४
दोपानुसृत चिकित्सा क्रमसे ...	१०२१	आमलनादि घृत ...	"
पित्तके गुल्ममें चिकित्सा क्रम ...	१०२२	द्राक्षादि घृत ...	"
गुल्ममें रक्तमोक्षण विधि ...	"	वासाघृत ...	१०३५
अपचन गुल्मके लक्षण ...	१०२३	अन्यनायमाणघृत ...	"
विद्यमान गुल्मके लक्षण ...	"	पित्तके गुल्ममें अनेक उपचार ...	"
सपचन गुल्मके लक्षण ...	"	कफ गुल्मकी चिकित्सा ...	१०३६
अतस्थ गुल्मके लक्षण और चिकित्साक्रम ...	१०२४	कफगुल्ममें स्वेदनविधि ...	१०३७
कफगुल्मकी चिकित्सा ...	"	दक्षमूली घृत ...	"
वमनके योग्य रोगी ...	"	महातमादि घृत ...	"
कफके गुल्ममें अन्य उपदेश ...	१०२५	पंचकोल घृत ...	१०३८
गुल्ममें क्षारविधि ...	"	मिश्ररुग्नेह ...	"
गुल्ममें अरिष्ट ...	१०२६	कफगुल्ममें विरेचन ...	"
गुल्ममें दाग देना ...	"	हरीतक्यादि गुड ...	१०३९
दाग देनेयोग्य वैद्य ...	"	कफगुल्ममें वस्ति ...	"
श्रृपणादिघृत ...	१०२७	कफगुल्ममें चूर्णादि प्रयोग ...	१०४०
अन्ययोग ...	"	गुल्ममें पथ्य ...	"
अन्य श्रृपणादि घृत ...	"	कफगुल्मपर अन्य उपचार ...	"
हिंवादिघृत ...	"	असाध्यगुल्मके लक्षण ...	१०४१
हृत्पादिघृत ...	"	रक्तगुल्मकी चिकित्साका निर्देश ...	"
पिप्पल्यादि घृत ...	१०२८	रक्तभेदनकर्ता वस्ति ...	१०४२
पेया ...	"	प्रवर्तमान स्थिरसे उपचार ...	"
हिंवादि चूर्ण ...	१०२९	अध्यायका उपसंहार ...	१०४३
गुल्ममें अन्ययोग ...	"	६ प्रमेहचिकित्साध्याय ।	
शुण्ठ्यादिघृत ...	"	प्रमेहका निदान ...	१०४४
अन्ययोग ...	१०३०	कफादि प्रमेहकी संप्राप्ति ...	"
कफ तथा पित्तानुसृष्टी गुल्मपर योग ...	"	प्रमेहोंकी सत्त्वा ...	"
लहसुनका दूध ...	"	प्रमेहमें दोषदूष्योंकी सत्त्वा ...	१०४५
अन्ययोग ...	१०३१	दोपानुसार प्रमेहके वर्णादि ...	१०४६
शिलाजीतका प्रयोग ...	"	वाताज प्रमेहका असाध्यत्व ...	"
अन्य प्रयोग ...	"	प्रमेहके पूर्वहप ...	"
गुल्ममें स्वेदन और वस्तिकर्मका निर्देश ...	"	स्थूल और दृश प्रमेहोंकी चिकित्सा ...	१०४७
गुल्मपर तैलोंका निर्देश ...	१०३२	प्रमेहोंके अन्य उपचार ...	"
गुल्मपर घृतपान ...	"	प्रमेहोर्गमें पथ्य ...	"
नीलिन्यादिघृत ...	"	कफप्रमेहमें अन्य उपचार ...	१०४८
वातगुल्ममें पथ्यादि ...	१०३३	प्रमेहोंपर सामान्य प्रयोग ...	१०४९

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वफप्रमेहपर दश वपाय ...	१०४९	कुष्ठना वगाध्यत्व ...	१०६१
चित्तप्रमेहपर दश वपाय ...	"	कुष्ठोंकी दोषानुसार चिकित्सा ...	"
वफपित्त प्रमेहपर प्रयोग ...	१०५०	कुष्ठनाशक प्रयोग ...	१०६२
अन्य प्रयोग ...	१०५१	कुष्ठमें स्थापन योग ...	१०६३
सब प्रकारके प्रमेहोंपर काथ ...	"	कुष्ठमें अनुपामनयोग ...	"
मन्थासव ...	"	कुष्ठमें नस्यप्रयोग ...	"
अन्य आम्र ...	१०५२	अन्यकम ...	"
प्रमेहपर अन्य चिकित्सा ...	"	रक्तमोक्षणविधि ...	"
प्रमेहमें निदान पारेखर्जन ...	१०५३	पित्तकुष्ठकी चिकित्सा ...	१०६४
रक्तपित्तका कोप ...	"	कुष्ठनाशक प्रयोग ...	१०६५
मधुमेह ...	१०५४	कुष्ठनाशक अन्य प्रयोग ...	"
प्रमेहका साध्यासाध्यत्व ...	"	कुष्ठनाशक अन्य योग ...	१०६६
प्रमेह पिडकाओंकी चिकित्सा ...	"	सुप्रकुष्ठनाशक प्रयोग ...	"
अध्याय ३ उपसंहार ...	"	मन्थासव ...	"
७ कुष्ठचिकित्साध्याय ।		वनरविन्दु अरिष्ट ...	१०६७
कुष्ठोत्पत्तिका हेतु ...	१०५५	धिन्नकुष्ठनाशक प्रयोग ...	"
कुष्ठके पूर्वरूप ...	१०५६	कुष्ठपर पथ्यपथ्य ...	१०६८
कुष्ठोंके नाम ...	"	कुष्ठपर लेप ...	"
कपाल कुष्ठके लक्षण ...	१०५७	दूसरा लेप ...	"
औदुम्बर कुष्ठके ल० ...	"	कुष्ठपर अन्य लेप ...	"
मण्डल कुष्ठके ल० ...	"	कुष्ठपर अन्य प्रयोग ...	१०६९
ऋष्यजिह्वुकुष्ठके ल० ...	"	वपायादि ८ योग ...	१०७०
पुण्डरीक कुष्ठके ल० ...	"	कुष्ठपर अन्य प्रयोग ...	"
सिम्ह कुष्ठके ल० ...	१०५८	अन्य प्रयोग ...	"
वाक्पणक कुष्ठके ल० ...	"	वनरसा तैल ...	१०७१
एककुष्ठ और चर्मकुष्ठके ल० ...	"	अन्य प्रयोग ...	"
किटिम कुष्ठके ल० ...	"	अन्य तैल ...	"
वैपादिकके ल० ...	१०५९	वनरकीर तैल ...	१०७२
अलसकके ल० ...	"	सिम्हपर लेप ...	"
चर्मदलके ल० ...	"	अन्य तैल ...	१०७३
पामाके ल० ...	"	विषादिनाका यत्न ...	"
विस्फोटकके ल० ...	"	मण्डल कुष्ठपर लेप ...	"
शतारके ल० ...	"	छ.लेप ...	"
विचर्चिकाके ल० ...	"	अन्य प्रयोग ...	१०७४
कुष्ठोंकी दोषपरत्व ...	१०६०	अभ्यस प्रयोग ...	"
कुष्ठोंमें चिकित्साक्रम ...	"	घृतप्रयोग ...	१०७५
कुष्ठोंमें हातव्य ...	"	अन्य प्रयोग ...	"
वातजादि कुष्ठोंके ल० ...	१०६१	घट्टवल घृत ...	१०७६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
महातिकृष्टत	१०७६	अन्यप्रयोग	१०९८
महाखरादिप्लूत	१०७७	वैरस्थानाशक प्रयोग	१०९९
ऋमिनाशक प्रयोग... ..	१०७८	मुखाधावन पांच प्रयोग	"
अन्य प्रयोग	"	यवानांपांड्य	"
ध्विन्द्रकुष्ठपर योग	"	तालीशपत्रादि गुट्टिकां	११००
कुष्ठपर अन्यलेप	१०७९	यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था	"
ध्विन्द्रकुष्ठके भेद	१०८०	दोषपरत्वमे यक्ष्मामें मांसविधान	११०२
ध्विन्द्रका असाध्यत्व	"	यक्ष्मामें मयके गुण... ..	११०३
किलासकी उत्पत्तिके कारण	"	अन्यप्रयोग	"
अध्यायका उपसंहार	१०८१	अवगाहनविधि	११०४
८ राजयक्ष्मचिकित्साध्याय ।		उद्वर्तन विधि	"
राजयक्ष्माके विषयमें प्राचीन इतिहास	"	पथ्यतम भोजन	११०५
यक्ष्माके पर्यायवाचक शब्द	१०८२	यक्ष्मामें अन्य पथ्य... ..	"
यक्ष्माका मनुष्य लोकमें आगमन	"	यक्ष्मामें अन्य उपचार	"
यक्ष्माके ४ कारण... ..	१०८३	अध्यायका उपसंहार	११०६
वेगसंधारणजन्य यक्ष्माका निदान लक्षण	१०८४	९ अर्शचिकित्साध्याय ।	
क्षयजन्ययक्ष्माका निदान, लक्षण	"	अर्शके भेद	११०७
धिपमाशनसे उत्पन्न यक्ष्माके निदान ल... ..	"	अर्शका अधिष्ठान	"
राजयक्ष्माके पूर्वरूप	१०८५	सहजाशंका वर्णन	११०८
राजयक्ष्मामें पुरीपरक्षा	१०८६	जन्मके अनन्तर अर्श प्रगट होनेका कारण	११०९
राजयक्ष्माकी संप्रप्ति	"	दोषभेदमें आकृति... ..	११११
यक्ष्माका साध्यासाध्यविचार	१०८७	वाताशंके लक्षण	"
प्रतिश्यायके लक्षण	"	वाताशंके कारण	१११२
राजयक्ष्माके विशेष लक्षण	१०८८	पित्ताशंके स्वरूप	"
राजयक्ष्मामें स्वरभग	"	पित्ताशंके हेतु	१११३
यक्ष्मामें अन्य उपद्रव	"	कफोत्पन्न अर्शोंका स्वरूप	"
प्रतिश्यायादि छः रोगोंकी चिकित्सा	१०९०	कफाशंके हेतु	१११४
अन्यप्रयोग	१०९१	अर्शके पूर्वरूप	"
संशमन क्रिया	१०९२	सब अर्शोंको त्रिवोषपरत्व	"
दोषधिनयमें सशोधन विधि	१०९३	अर्शोंकी वृच्छता	१११५
स्रववर्णन	१०९४	असाध्य अर्शोंके लक्षण	"
सितोपलादि अवलेह	१०९५	साध्याशं	१११६
दुरालभाद्यष्टत	"	शस्त्रादिकर्म	"
जीवनत्यादि प्लूत	१०९६	अर्शपर धूनी	१११८
बलाद्यष्टत	"	अर्शपर लेप	"
यक्ष्मामें अन्य उपचार	"	तकारिष्ट	११२१
मन्दमिममें प्लूत	१०९७	तरुप्रयोग	"
आतिशारनाशक योग	"	अर्शपर पेया	११२३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अशंहिर यवागू ...	११२३	गुदभ्रंशका चिकित्सा ...	११५४
अशमें पथ्य ...	११२४	चांगेरी घृत ...	"
अशनाशक घृत ...	११२५	चव्यादि घृत ...	११५५
चव्यादि घृत ...	"	अनुवासन प्रयोग ...	"
नागरादिघृत ...	११२६	पित्तातिसारकी चिकित्सा ...	"
पिप्पल्यादिघृत ...	"	पित्तातिसारपर योग ...	११५६
हरीतकी प्रयोग ...	११२७	पित्तातिसारमें अनुवासन ...	११५८
अन्यशाकादियोग ...	"	पिच्छावस्ति ...	"
अनुवासन योग रोगी ...	११२८	रक्तातिसारकी संप्राप्ति ...	११५९
अनुवासन तैल ...	"	रक्तातिसारकी चिकित्सा ...	"
निरूहणकर्म ...	११२९	शुत्तिसारनाशकयोग ...	११६०
निरूहणकर्म ...	"	कफतिसारकी चिकित्सा ...	११६३
हरीतकी आरिष्ट ...	"	अभ्यस्यका उपसंहार ...	११६६
दंत्यारिष्ट ...	११३०	११ विसर्प चिकित्साध्याय ।	
फलारिष्ट ...	"	विसर्पनी निरुक्ति ...	११६७
रक्ताशकी चिकित्सा ...	११३३	विसर्पके भेद ...	"
वातानुबंधी रक्ताश ...	"	विसर्पके धातु ...	११६८
कफानुबंधी रक्ताश ...	"	विसर्पका निदान ...	"
सप्राही योग ...	११३५	विसर्पकी साध्याऽसाध्यता ...	११६९
कुटजादि रसायन ...	"	विसर्पके लक्षण ...	"
रक्ताशपर अन्ययोग ...	११३६	वातज विसर्पका निदान, ल० ...	११७०
पिच्छावस्ति और सिद्धवस्ति ...	११४१	पित्तविसर्पके निदान ल० ...	"
अनुवासन वस्ति ...	"	कफ विसर्पके निदान ल० ...	११७१
हीवेरिदिघृत ...	"	वातपित्तज अग्निविसर्पके ल० ...	११७२
सुनिष्पाक चांगेरी घृत ...	११४२	कफपित्तज कर्म विसर्पके ल० ...	११७३
१० अतिसार चिकित्साध्याय ।		कफवातज ग्रन्थि विसर्पके ल० ...	११७४
अतिसारकी उत्पत्ति ...	११४५	रोग और उपद्रवोंके भेद ...	११७५
वातातिसारके हेतु ...	११४६	साम्प्रपातका विगर्प ...	"
वातिक वामातिसारके हेतु ...	"	इगकी साध्याऽसाध्यता ...	"
वातिक पक्वातिसारके लक्षण ...	"	विसर्पकी चिकित्सा ...	११७६
पित्तातिसारके हेतु और संप्राप्ति ...	११४७	विसर्पकी विशेष चिकित्सा ...	११७७
पित्तातिसारके लक्षण ...	"	वातपित्त ल्वण विसर्पपर लेप ...	११८०
कफातिसारके हेतु ...	"	वफोत्वण विसर्पपर लेप ...	११८२
कफातिसारके लक्षण ...	११४८	विसर्पपर अन्य उपचार ...	११८३
घनिष्पातातिसारके हेतु और संप्राप्ति ...	"	लेपका विधान ...	११८४
वृच्छसाध्य और असाध्य लक्षण ...	११४९	विसर्पमें अन्नपान विधि ...	११८५
अतिसारकी चिकित्सा ...	११५१	विसर्पमें कुपथ्य ...	११८६
प्रयाश्चिकाक यत्न ...	११५३	द्वंद्वजविसर्पकी चिकित्सा ...	११८७

विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक.
बहुत दिनकी मयीरी चिकित्सा	... ११८८	घ्नसके लक्षण १२१९.
गण्डमालाकी चिकित्सा	... ११९०	त्रिदूक्षयके लक्षण "
अध्यायरा उपसंहार	... "	इन दोनोंकी चिकित्सा	... "
१२ मदात्ययचिकित्साध्याय ।		मद्य न पीनेके गुण...	... "
प्रकृति भेदसे मद्यसेवन	... ११९३	अध्यायका उपसंहार	... १२२०
मद्यके गुणदोष	... ११९४	१३ द्विप्रणीय चिकित्साध्याय ।	
मद्यके दशगुण	... ११९५	द्विविध रोग	... १२२१
ओजके दशगुण	... "	आगंडुमणोंके हेतु	... "
मद्यके ओजके गुण नष्ट होकर मद्यकी उत्पत्ति	"	निःप्रणोंकी संप्राप्ति	... १२२२.
मद्यके भेद	... ११९६	वातमणके लक्षण	... "
मद्यके तीन भेद	... "	वातमणमें चिकित्सानिर्देश	... "
प्रथम मद्यके लक्षण...	... ११९७	पित्तमणके लक्षण	... "
मध्यम मद्यके	... "	पित्तमणमें चिकित्सानिर्देश	... "
अन्यमद्य	... "	कफमणके लक्षण	... १२२३
मद्यकी निंदा	... ११९८	कफमणमें चिकित्सानिर्देश	... "
युक्तियुक्त मद्यके गुण	... १२००	मणोंके भेदादि	... "
सात्त्विक मद्यपान	... १२०१	मणके वीतप्रकार	... "
राजसी मद्यपान	... १२०२	विविधपरीक्षा	... १२२४
तामस मद्यपान	... "	दुष्टमणोंके भेद	... "
मद्यपीने योग्य मनुष्य	... १२०३	मणके आठ स्थान	... "
मद्यके अयोग्य मनुष्य	... "	मणोंकी आठ प्रकारका गंध	... "
वात प्रधान मदात्यय	... १२०४	चौदह प्रकारके रस	... १२२५
पित्तप्रधान मदात्यय	... "	मणके सोल्ह उपद्रव	... "
कफप्रधान मदात्यय	... १२०५	मण सांत न होनेके कारण	... "
मदात्ययके लक्षण	... "	मणोंमें साध्यासाध्यता	... १२२६
मदात्ययका चिकित्साक्रम	... १२०६	चिकित्सानिर्देश	... "
मद्यके अनुसर और मद्यको अम्लरसोंमें श्रेष्ठ	१२०७	मणोंकी छत्तीस प्रकारकी चिकित्सा	... "
वातमदात्ययनाशक यत्न	... १२०८	शोथनाशक लेप	... १२२७
पित्तप्रधान मदात्ययकी चिकित्सा	... १२१०	दग्ध और पक्वशोथके लक्षण	... १२२८
कफपित्तप्रघ्न मदात्ययकी चिकित्सा	... १२११	छः प्रकारके दाहकर्म	... "
मदात्यययोध विरोध चिकित्सा...	... "	पाटनयोग्य सूजन	... १२२९
पित्तमदात्ययमें सेवनीय वस्तु	... १२१२	वेधनयोग्य रोग	... "
मदात्ययका दाहनाशक यत्न	... १२१३	छेदनीय रोग	... "
कफप्रघ्न मदात्ययकी चिकित्सा	... १२१४	रेखनीय रोग	... "
अष्टागवक्त्र	... १२१५	पीडनद्रव्य	... १२३०
साम्रपतज मदात्ययमें चिकित्सानिर्देश	... १२१७	एषणीय मण	... १२३२
मदात्ययनाशकयोग	... "	शोधनयोग्य मण	... "
क्षीर प्रयोग	... १२१८	शोधनयोग	... १२३३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
रोपणीय व्रण ...	१२३३	अन्यादिघृत ...	१२५१
रोपणकर्ता द्रव्य ...	"	पुराने घृतके गुण ...	"
व्रणमें पथ्यापथ्य ...	१२३५	उन्मादनाशक नस्य और अंजन ...	१२५२
अभिकर्माका निर्देश ...	"	सिद्धार्थकादि अगद ...	१२५३
अभिकर्मके अयोग्य मनुष्य ...	१२३६	फस्त, उन्मादनाशक अन्य प्रयोग ...	१२५४
सफेदत्वचाको सर्वदेहसमकारक लेप ...	१२३७	उन्मादमें देवीयत्न ...	१२५५
व्रणोंकी त्वचापर बालजमानेकी क्रिया ...	१२३८	उन्मादमुक्तके लक्षण ...	१२५७
१४ उन्मादचिकित्स्ताध्याय ।		अध्यायका उपसंहार ...	"
उन्मादके हेतु ...	१२३९	१५ अपस्मारचिकित्स्ताध्याय ।	
उन्मादकी संप्राप्ति ...	"	अपस्मारके कारण ...	१२५८
उन्मादके सामान्य लक्षण ...	"	अपस्मारके लक्षण ...	"
उन्मादकी निरुक्ति व भेद ...	१२४०	अपस्मारके चारभेद ...	"
वातज उन्मादके हेतु ...	"	वातापस्मारके लक्षण ...	१२५९
वातज उन्मादके लक्षण ...	"	पित्तापस्मारके लक्षण ...	"
पित्तोन्मादके हेतु ...	"	कफके अपस्मारके लक्षण ...	"
पित्तोन्मादके लक्षण ...	१२४१	सन्निपातके अपस्मारके लक्षण ...	"
कफोन्मादके हेतु ...	"	अपस्मारके वेगका समय ...	"
कफोन्मादके लक्षण ...	"	चिकित्साक्रम ...	१२६०
सन्निपातज उन्माद ...	"	पञ्चगव्यघृत ...	"
आंगतुजोन्माद ...	१२४२	महापञ्चगव्यघृत ...	"
भूतोन्माद ...	"	अन्यघृत ...	"
क्षरीरमें देवादिकोंका आवेश ...	"	महागदका वर्णन ...	१२६५
देवोन्मादके लक्षण ...	"	महागदकी चिकित्सा ...	१२६६
शापोन्मादके ल० ...	१२४३	अपस्माररोगीकी रक्षा ...	१२६७
पितृकृतोन्मादके ल० ...	"	अध्यायका उपसंहार ...	"
गधर्वाविधोन्मादके ल० ...	"	१६ क्षतक्षीणचिकित्स्ताध्याय ।	
यक्षोन्मादके ल० ...	"	क्षतरोगके कारण ...	१२६८
राक्षसोन्मादके ल० ...	१२४४	क्षीणके हेतु ...	१२६९
मन्मराक्षराजनितोन्मादके ल० ...	"	क्षतक्षीणके लक्षण ...	"
पैशाचिकउन्मादके ल० ...	"	क्षतक्षीणका पूर्वरूप ...	"
देवादिकावेशके समय ...	१२४५	क्षतक्षीणमें विशेषता ...	१२७०
उन्मादमें शोधनका निर्देश ...	१२४७	साध्यासाध्य ...	"
शोधनके गुण ...	"	क्षतकी चिकित्सा ...	"
उन्मादनाशक घृत ...	१२४८	एलादिगुटिका ...	१२७१
शूल्याण घृत ...	"	अमृतप्राप्त घृत ...	१२७३
महापैशाचिक ...	१२५०	सत्प्रयोग ...	१२७५
लघुनादिघृत ...	"	घात्रीआदिघृत ...	"
द्वितीयलघुनादिघृत ...	"	सर्पिर्गुंड ...	१२७६
		द्वितीयसर्पिर्गुंड ...	१२७७

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
तृतीय सर्पिर्गुंड	१२७७	तालुविद्रधिः उपजिह्व, अधिजिह्व	१२९७
चतुर्थ सर्पिर्गुंड	१२७८	उपकुश और दंतविद्रधि ...	१२९८
श्रीसंगसे वृषाहृणके यत्न ...	१२७९	गलगण्ड और गण्डमाला ...	"
विशेष ज्ञातव्य	१२८०	उपरोक्त सूजनोका चिकित्सा ...	"
सैधवादिचूर्ण	"	ग्रंथियोंका वर्णन ...	"
खांडवचूर्ण	१२८१	ग्रंथियोंकी चिकित्सा ...	१२९९
नागबलाप्रयोग	"	लाज्यग्रंथियों	"
क्षतक्षीणमें पथ्य	"	अर्बुदकी चिकित्सा	१३००
अध्यायका उपसंहार	१२८१	आलजीके लक्षण	"

१७ श्वयथुचिकित्साध्याय ।

निजशोथके कारण	१२८३	चिप्यक और विदारिका	"
आगतुज शोथ	"	विस्फोटक और कक्षा	"
शोथकी संप्राप्ति	"	मसूरिका	"
शोथके सामान्यलक्षण	१२८४	अण्डवृद्धि	१३०१
वातजशोथ	"	भगदरका वर्णन	१३०२
असाध्य शोथके लक्षण	१२८५	श्लीपदका निदान और चिकित्सा ...	"
साध्य सूजन	"	जालगर्दभका निदान और चिकित्सा ...	"
शोथकी चिकित्सा	"	आगन्तुशोथ	१३०३
शोथरोगमें त्याज्य वस्तु	१२-६	अध्यायका उपसंहार	"
कफजशोथकी चिकित्सा	"		
वातजशोथके यत्न	१२८७		
कण्ठीरादिभारिष्ट	१२८८		
पुनर्नवाचारिष्ट	१२८९		
त्रिफलाभारिष्ट	१२९०		
पिपलीवादिचूर्ण	"		
क्षारादिगुटिका	१२९१		
गुडार्द्रकयोग	१२९२		
शिलाजतुप्रयोग	"		
कंसहरातकी	१२९२		
फ्टोलमूलादिघृत	"		
धिनकादिघृत	"		
शोथहरयवामू	१२९४		
वातशोथनाशक क्षैलेयादिलैल ...	१२९५		
पित्तजशोथमें यत्न	१२९६		
कफशोथनाशक यत्न	"		
अंगायवभेदसे शोथोंका वर्णन ...	१२९७		
गल और शिरकी सूजन	"		
सुक्षोम और विहासिद्य	"		

१८ उदर चिकित्साध्याय ।

उदर रोगकी संप्राप्ति	१३०४
उदररोगके कारण	"
उदररोगके पूर्वलप	१३०५
उदररोगकी संप्राप्ति	१३०६
उदररोगके सामान्य लक्षण	"
उदररोगके ८ भेद... ..	"
वातोदरका निदान... ..	"
वातोदरके लक्षण	"
पित्तज उदररोगके निदान	१३०७
पित्तज उदररोगका लक्षण	"
कफज उदररोगका निदान	१३०८
कफके उदररोगका लक्षण	"
सन्निपातज उदररोगके लक्षण	"
श्लेहोदरका निदान	१३०९
श्लेहोदरके लक्षण	१३१०
उद्वोदरके निदान	१३११
वद्वगुदोदरके लक्षण	"
छिद्रोदर (क्षतोदर) का निदान ...	"
छिद्रोदरके ल०	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
जलोदरका निदान ...	१३१२	सुवाक्षीर घृत ...	"
जलोदरके ल० ...	"	संशमनयोग ...	१३२५
उदररोगमें शीघ्र चिकित्सा न करनेसे हानि ...	"	पित्तक्यादिहार ...	१३२९
जलोदरकी संप्राप्ति...	१३१३	विशेष निर्देश ...	१३३१
जलोदरके उपद्रव ...	"	सार्धविषप्रयोग ...	१३३२
उदररोगकी वृच्छता ...	"	उदररोगमें शस्त्रकर्म ...	"
मृत्युकारक उदररोगकी अवधि ...	१३१४	जलोदरमें नालिकायंत्रद्वारा जल निकालना...	१३३३
साध्यासाधयता ...	"	दूधकी प्रशंसा ...	१३३४
अजातजल उदररोगके ल० ...	"	अध्यायका उपसंहार ...	"
वातोदरकी चिकित्सा ...	१३१५	१९ ग्रहणीचिकित्सा ।	
अविरेच्य रोगी ...	१३१६	भुक्तामस तानों दोषोंकी उत्पत्ति ...	१३३५
पित्तज उदररोगकी चिकित्सा ...	"	आहारसे इन्द्रियोंकी पुष्टि ...	१३३६
पित्तोदरमें विरेचनयोग ...	"	अग्निवैशसा प्रद्वन ...	१३३७
कफजनित उदररोगकी चिकित्सा ...	१३१७	वात्रेयजीका उत्तर...	१३३८
सभिपातके उदररोगकी चिकित्सा ...	"	धुक्रनिकलेका क्रम ...	"
प्लोहोदरकी चिकित्सा ...	"	धातुओंके मल ...	११३९
उदररोगमें चिकित्साक्रम ...	१३१८	जठराग्निकी प्रधानता ...	"
प्लीहनाशक चूर्ण ...	"	जठराग्निके क्षुपित होनेका हेतु...	१३४०
रोहितक घृत ...	"	अजीर्णके ल० ...	"
उदररोगमें विशेषकर्तव्य ...	१३१९	दोषसंगुटअजीर्णसे रोग ...	१३४१
त्रिदोदरकी असाध्यता ...	"	अग्निभेदसे परिपाक ...	"
जलोदरकी चिकित्सा ...	१३२०	ग्रहणीसंप्राप्ति ...	१३४२
सर्व उदररोगोंमें कर्तव्य और पथ्य ...	"	ग्रहणोंके उपद्रव ...	"
उदररोगमें पथ्य ...	"	ग्रहणोंके पूर्वरूप ...	"
उदररोगोंमें तरुप्रयोग ...	१३२१	ग्रहणीकी निरुक्ति ...	"
दूध प्रयोग ...	"	ग्रहणोंके भेद ...	१३४३
उदरपर लेपनादियोग ...	१३२२	वातजग्रहणोंके हेतु...	"
मूत्राण्डप्रयोग ...	"	वातजग्रहणोंके लक्षण ...	"
अशफोलघृत ..	"	पित्तज ग्रहणीरोगके हेतु और लक्षण ...	१३४४
नागरादि घृत ...	१३२३	कफज ग्रहणोंके हेतु लक्षण ...	"
चित्रकघृत ...	"	ग्रहणीकी चिकित्सा ...	१३४५
यरादि घृत ...	"	वातजग्रहणीकी चिकित्सा ...	"
विरेचनका निर्देश ...	"	दशमूलादिघृत ...	१३४६
पटोलदि चूर्ण ...	१३२४	त्र्युषणीदिघृत ...	१३४७
गवाशुदि चूर्ण ...	"	पंचमूलादिघृत ...	"
नागवग चूर्ण ...	"	राम और निराम मलकी परीक्षा ...	१३४८
हृषसादि चूर्ण ...	१३२५	त्रिप्रसदिगुटिहा ...	"
मंठिन्यादि चूर्ण ...	१३२६	अन्य पाचनयोग ...	१३४९

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अभयादिचूर्ण १३४९	प्रातः और सायंकालके भोजनमें विशेषता	१३६९
विष्वत्यादिचूर्ण १३५०	अभ्यास उपसहार	१३७०
मरिचादिचूर्ण "	२० पाण्डुचिकित्साध्याय ।	
भोजनमें डालनेका चूर्ण "	पाण्डुरोगके भेद	१३७१
ऋष्यादि चूर्णयुक्त पंचविध चवागू २३५१	पाण्डुरोगकी संप्राप्ति	१३७२
भोजनार्थयूपादि "	पाण्डुरोगका निदान	"
तम्बके गुण "	पाण्डुके पूर्वरूप	१३७३
तक्रारिष्ट १३५२	पाण्डुरोगके सामान्य लक्षण	"
पित्तज ग्रहणीकी चिकित्सा "	वातजपाण्डुके हेतु, लक्षण	"
चंदनादिघृत "	पित्तजपाण्डुके हेतु, लक्षण	१३७४
नागरादिचूर्ण १३५३	कफजपाण्डुके हेतु, लक्षण	"
भूनिम्बादिचूर्ण "	सन्निपातज पाण्डुके लक्षण	१३७५
वचादिचूर्ण १३५४	शुक्तिनाभक्षणाजनित पाण्डुके लक्षण	"
किरातादिचूर्ण "	असाध्य पाण्डु	"
अपजानित ग्रहणीकी चिकित्सा १३५५	कामलाके लक्षण	१३७६
मध्वासव "	कुम्भकामला और उसकी असाध्यता	"
द्वितीय मध्वासव १३५६	पाण्डुरोगकी चिकित्सा	१३७७
दुरालभाद्यासव "	स्नेहनार्थ घृत	"
मूलासव २३५७	दाडिमादिघृत	१३७८
विण्डासव "	कटुरोहिण्यादिघृत	"
मन्धारिष्ट १३५८	पथ्यादिघृत	१३७९
विष्वलीमूलादिचूर्ण "	दन्तीघृत	"
घृत १३५९	द्राक्षाघृत	"
क्षारघृत "	हृत्प्रादिघृत	"
विष्वलीमूलादिक्षार "	स्नेहनघृत	"
भण्णतवादिक्षार १३६०	अन्यप्रयोग	१३८०
दुरालभादिक्षार "	हरीतकीप्रयोग	१३८१
भूनिम्बादिक्षार "	नवायसचूर्ण	१३८२
हरिद्रादिक्षार १३६१	गुडादिघटिका	"
क्षारगुटिका "	महूरघटक	"
कलमकादिक्षार "	ताप्यादिचूर्ण	१३८३
त्रिफलादिक्षार १३६२	योगराजघटक	"
त्रिदोषजग्रहणीकी चिकित्सा "	शिलाजतुगुटिका	१३८४
अग्निमेंदीपनीपथि १३६४	पुनर्नवामहूरगुटिका	१३८५
जठरातिथी समता और नियमाके गुणदोष	१३६६	अन्ययोग	"
भस्मकागि निदान "	पायीअचलेद	१३८६
भस्मकागिची चिकित्सा १३६७	महूरघटक	"
भस्मकागिनासाक विरंचन १३६८	गीकारिष्ट	१३८७
औन प्रहरके भोजनोंके व्यापिकोंकी धरणाता	१३६९		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
बीजकारिष्ट	१३८७	द्विचरी नाशक कर्म	१४१०
धात्र्यरिष्ट	"	निदान वर्जन	१४१३
पाण्डुरोगमें जल	१३८८	दशमूलादिप्राय	"
वैद्योंको उपदेश	"	तेजोवत्यादिघृत	"
गृहोपनाशक घृत	१३८९	मन शिलादि घृत	१४१४
पाण्डुमें देवेयोग्य मदी	"	त्रिशोपघातस्थ	"
शारदाश्रित पित्तके लक्षण	१३९०	अध्यायका उपसंहार	१४१५
शारदाश्रितमें मम	१३९१	२२ कास चिकित्साध्याय ।	
हृत्लीमकके लक्षण	"	तालीके भेद	"
हृत्लीमरुकी विरिस्ता	"	कासके पूर्वरूप	"
अध्यायका उपसंहार	१३९२	कासकी रामाप्ति	१४१६
२१ द्विक्वाचिकित्साध्याय ।		कासशब्दकी निक्षिप्ति	"
द्विक्वा और श्वातके हेतु	१३९४	यातजवासाके हेतु	"
द्विक्वाके पूर्वरूप	१३९५	यातजवासाके लक्षण	१४१७
श्वातके पूर्वरूप	"	पित्तजवासाके हेतु	"
महाद्विक्वाके लक्षण	"	पित्तजवासाके लक्षण	"
गभीराके लक्षण	१३९६	कफकासाके हेतु	"
व्यपेताके ल०	"	कफकासाके ल०	१४१८
क्षुद्रद्विक्वाके लक्षण	१३९७	क्षतजकासाके हेतु	"
क्षमजाद्विक्वाके लक्षण	"	क्षतजवासाके ल०	"
✓द्विक्वाकी साध्यासाध्यता	१३९८	क्षयजवासाके हेतु	१४१९
श्वातरोगकी रामाप्ति	१३९९	क्षयजवासाके ल०	"
महाश्वातके लक्षण	"	गोरीकी साध्यासाध्यता	"
उर्द्धश्वातके लक्षण	"	मानकासकी चिकित्सा	१४२०
छिन्नश्वातके ल०	"	पण्टकारीघृत	"
तमबन्धासके ल०	१४००	पिप्पलीघृत	१४२१
प्रतमक और रातमकश्वात	१४०१	द्र्युपणादिघृत	"
श्वातोंकी साध्यासाध्यता	१४०२	राम्नादिघृत	"
द्विक्वा और श्वातकी विरिस्ता	१४०३	विडगादिचूर्ण	१४२२
भूमप्रयोग	"	द्विशारादिचूर्ण	"
भूमपानके अयोग्य	१४०४	अन्य प्रयोग	"
स्वेदनके अयोग्य रोगी	"	त्रिप्रकादिअबन्ध	१४२३
द्विक्वाश्वातमें घृण और क्षण	१४०६	अगस्त्यहरीतरु	"
द्विक्वाश्वातमें चरगू	१४०७	अन्य योग	१४२४
घाट्यादिचूर्ण	१४१०	भूमप्रयोग	"
मुष्णादिचूर्ण	१४११	यातजवासाके पच्य	१४२६
अन्ययोग	"	कासनाशक पेया	"
द्विक्वाशानक गोः	"	यातजवासाके क्षयदि	१४२७

विषय.	पृष्ठांक.	विषय,	पृष्ठांक.
पित्तज क्लामरी चिकित्सा ...	१४२७	छर्दिकी चिकित्सा ...	१४४७
पित्तजरात्रीमें पथ्य ...	१४२९	वातजछर्दिकी चिकित्सा ...	१४४८
क्षौद्रगर्भा गुडिका ...	१४३०	पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा ...	१४४९
कफरुसचिकित्सा ...	१४३१	कफकी छर्दिका यज्ञ ...	१४५०
कफरुसनाशक अनेक योग ...	"	सक्षिपातकी छर्दिकी चिकित्सा...	१४५१
दशमूलादिघृत ...	१४३३	द्विष्टार्थज छर्दिका यज्ञ ...	"
कष्टकारीघृत ...	"	वमनमें विशेष ज्ञातव्य ...	१४५२
कुलरथादिअवलेह ...	"	अध्यायका उपसंहार ...	१४५३
कफनाशक धूम ...	"	२४ तृष्णाचिकित्साध्याय ।	
कफजरासमें अन्य अनुबंधोंके यत्न ...	"	प्यासके कारण और संप्राप्ति ...	१४५३
क्षतजकफसत्री चिकित्सा ...	१४३५	पूर्वरूप और रूप ...	१४५४
पिप्पल्यवलेह ...	"	तृष्णाके सामान्य लक्षण ...	"
धूमप्रयोग ...	१४३६	वातजतृष्णाकी संप्राप्ति ...	१४५५
क्षयजचिकित्सा ...	१४३७	वातजतृष्णाके लक्षण ...	"
नविनादिघृत ...	१४३९	पित्तजतृष्णाका ल० ...	"
गुडूच्यादिघृत ...	"	आमदोषज तृष्णाके ल० ...	"
कासमर्दादिघृत ...	"	तृष्णाका कारण ...	१४५६
अन्य योग ...	१४४०	कष्टसाध्य और असाध्य तृष्णा ...	"
हरातक्रीअवलेह ...	"	अध्वजतृष्णाके लक्षण ...	"
अन्य योग ...	"	मद्यजतृष्णा ...	"
पद्मराघनलेह ...	१४४१	अकाल्पानज तृष्णा... ..	१४५७
जांबल्याघनलेह ...	"	तृष्णाकी चिकित्सा ...	"
यवागूसर्पपादि ...	१४४२	आमज तृष्णाका यज्ञ ...	१४६१
अध्यायका उपसंहार ...	"	कफानुगत तृष्णाकी चिकित्सा ...	"
२३ छर्दिकीचिकित्साध्याय ।		क्षयकासज तृष्णाकी चिकित्सा ...	"
वमनके भेद ...	१४४४	मद्यपानजतृष्णाकी चिकित्सा ...	१४६२
वमनके पूर्वरूप ...	१४४५	क्षुधाजनित और गुर्वन्नजतृष्णाकी चिकित्सा...	"
छर्दिके हेतु, संप्राप्ति...	"	तृष्णामें ताडरोषका यज्ञ ...	"
वातछर्दिके ल० ...	"	अतिरूक्षकी तृष्णाका यज्ञ ...	१४६३
पित्तजवमनके हेतु ...	"	जलका निषेध ...	"
पित्तजछर्दिके ल० ...	१४४६	जलकी आशा ...	१४६४
कफजछर्दिके हेतु, संप्राप्ति ...	"	आध्यायका उपसंहार ...	"
कफजछर्दिके ल० ...	"	२५ विषचिकित्साध्याय ।	
साभिपातिव्यमनके हेतु ...	"	विषोत्पत्ति ...	१४६५
सभिपातकी छर्दिके ल० ...	"	विषकी द्विविध योनि ...	"
प्राणनाशक छर्दिके ल० ...	१४४७	विषके वेग गुण आदि ...	"
द्विष्टार्थयोगजघृत ...	"	जंगमविषकी योनि... ..	१४६६
छर्दिके साध्यासाध्यता ...	"	गर्भविष ...	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
जंगमविषयके कार्य १४६६	सापके चार दांतोंके वर्ण १४८८
स्थायविषयके कार्य १४६७	दांतोंमें विषकी प्रयत्नता "
विषयकी गति "	सापोंके मूलजनित कीटोंके ल० १४८९
विषके ८ वेग "	दूषीविषोंके काटनेके लक्षण "
जंगमविषके वेग १४६८	दूषीविषयुक्तके दंशका लक्षण "
विषके दश गुण "	लतादृष्ट मनुष्यके लक्षण "
वातादिस्थानमें विषके लक्षण १४६९	मूषकके काटेहुएके लक्षण १४९०
दूषीविषके वर्ण "	श्वकारके विषके लक्षण "
विषके मनुष्यकी मृत्युके लक्षण १४७०	विच्छूके वाटनेके ल० "
विषके २४ उपक्रम "	कणभक्षकके ल० १४९१
जंगमविषयकी सामान्य चिकित्सा "	उच्छिद्रिकके दंशके ल० "
पीयेहुए विषकी चिकित्सा १४७२	विशैले मेंडकफा वाटा "
संजीवन अगद १४७४	मउलीके दंशका ल० "
विषके अन्य उपचार १४७५	औंके विषके ल० "
संघनामक अगदहस्ती १४७६	छिपकलीके काटनेके लक्षण "
विषमें श्वासज्वरादिनाशक योग १४८०	वनराजूरके विषके लक्षण "
क्षारागद १४८१	मच्छरके काटनेके लक्षण १४९२
विषदेनेवाले पुरुषके लक्षण १४८२	सफिखयोंके दंशके लक्षण "
विषयुक्त भोजनकी परीक्षा "	सापके काटनेकी असाध्यता "
पात्रस्थ अन्नमें विषकी पद्विचान "	विषशुद्धिका समय "
जलादिपेयपदार्थमें विषकी परीक्षा १४८३	मंदविष साप १४९३
विषयुक्त अघपानके रोक्कनका विकार "	विषोंकी वातादि प्रवृत्ति "
दंतौन और शिरोऽन्धगमें विषके ल० १४८४	वातप्रधान विषके लक्षण "
अंजनमें विषके लक्षण "	पित्तप्रधान विषके लक्षण "
स्नान, अभ्यगादिकोंमें विषके ल० "	कफ प्रधान विषके लक्षण १४९४
सवारी, शय्या, भूमि, पादुका आदिमें विषके "	वातादिभेदसे विषोंमें चिचिस्ताक्रम "
लक्षण "	विच्छूके विषमें क्रिया "
विषयुक्त माला और धूमके लक्षण "	उपच्छिद्रके विषमें चिचिस्ताक्रम "
कूप आदिमें विषके ल० १४८५	राविष और निविष शरीरके लक्षण १४९५
इन विषोंमें सामान्य चिकित्साक्रम "	विषोंमें चिचिस्ता "
सापोंका और उनके विषोंका वर्णन "	स्थानादिभेदसे विषनाशक योग १४९६
दर्शाकरके काटेहुएके ल० १४८६	विषोंके क्षोषनाशक योग १४९७
मण्डली सापोंके दंशके ल० "	सर्वविषनाशक योग "
राजिमान सापके दंशके ल० "	सापके विषनाशक योग १४९८
सापोंके रती पुरुष जातिके दंशभेद "	दर्शाकर सापके काटे हुएकी चिकित्सा "
गोहके काटेहुएके ल० १४८७	मण्डली सापके काटेका चला "
भयानक दंश १४८८	राजिमानके काटेकी चिकित्सा "
सापोंमें आस्थाभेदसे विषकी प्रधानता "	कीटादिकोंके विषकी चिकित्सा १४९९

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
सदाविपनाशक योग १४९९	नयरी और शर्करानाशक योग...	... १५१९
पूद्रेके विपना यत्न...	... १५००	वातादि मूत्रभेदके मूत्रकृच्छ्री चिकित्सा १५२०
कीटादि विपनाशक भगद १५०१	मूत्रकृच्छ्रमें कुपथ्य...	... १५२२
कनखजूरेके विपना यत्न "	हृद्रोगके कारण "
टिपथनी विपनाशक योग "	हृद्रोगके उपद्रव "
पयशिरापक भगद १५०२	वातभेदक हृद्रोगके लक्षण "
चतुष्पदोंके विपना चिकित्सा "	पित्तक हृद्रोगके लक्षण १५२३
शंखजनिता क्षातविपना यत्न "	कफक हृद्रोगके लक्षण "
विपयोगमें पथ्य १५०३	सन्निपातक और हृमिज हृद्रोगके लक्षण "
विपयोगमें कुपथ्य "	वातक हृद्रोगकी चिकित्सा "
शौण्ये जांबोके विपके लक्षण...	... "	श्लेष्मणादि घृत १५२४
उनकी चिकित्सा १५०४	पित्तक हृद्रोगकी चिकित्सा १५२५
गरविपके हेतु लक्षण "	कफजनिता हृद्रोगकी चिकित्सा...	... १५२६
गरविपकी चिकित्सा १५०५	सन्निपातक हृद्रोगकी चिकित्सा...	... १५२७
नागदंती घृत "	अनस्थानविशेषमें हृद्रोगकी चिकित्सा "
घृत घृत "	हृमिजन्य हृद्रोगकी चिकित्सा "
रन्ध्रकी रक्षाके आचार १५०६	पीनगादिनासारोग निदान १५२८
०. घ्यायका उपसंहार १५०७	वातक प्रतिश्यायके लक्षण "
२६ त्रिमूर्तीय चिकित्सिताध्याय ।		पित्तक प्रतिश्यायके लक्षण "
उदावर्तकी संप्राप्ति, लक्षण और उपद्रव १५०८	कफक प्रतिश्यायके लक्षण "
उदावर्तकी चिकित्सा १५०९	सन्निपातक प्रतिश्यायके लक्षण...	... "
उदावर्तनाशक वातप्रयोग "	दुष्ट प्रतिश्यायके लक्षण "
उदावर्तनाशकूर्ण प्रथमतयायोग...	... १५१०	छोक और नामाशोष १५२९
उदावर्तनाशकूर्ण १५११	प्रतिनाह और परिस्त्राव "
उदावर्तनाशक घृत...	... १५१२	अपीनस और पूतिनासा १५३०
उदावर्तनाशक क्षार "	घ्राणपाक और नासाशोष "
धमनद्वारा जीतनेयोग्य रोग "	वातार्तुद और पुयस्क "
अथ मूत्रकृच्छ्र निदान ।		अक्षयिका और नासादीप्त "
मूत्रकृच्छ्रके हेतु १५१३	वातक प्रतिश्यायकी चिकित्सा...	... १५३१
मूत्रकृच्छ्रकी संप्राप्ति १५१४	अशुतैल "
अस्मरीका निदान "	पित्तजनिता प्रतिश्यायकी चिकित्सा १५३२
अस्मरीजनित मूत्रकृच्छ्र "	कफजनिता प्रतिश्यायकी चिकित्सा १५३३
शुक्राभिघातक मूत्रकृच्छ्र १५१५	शिरोरोगका निदान १५३५
क्षतक मूत्रकृच्छ्र १५१६	वातक शिरोरोगकी चिकित्सा "
वातक मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा "	बल्यदि तैल १५३६
पित्तकमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा १५१७	मासूरघृत "
कफक मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा १५१८	महामासूरघृत १५३७
सन्निपातक मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा "	पित्तजिशिरोरोगकी चिकित्सा १५३८
अस्मरीकी चिकित्सा १५१९		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
कफज शिरोरोगकी चिकित्सा ...	१५३९	रक्तपित्तजनित नेत्ररोगपर सेचन ...	१५५१
अन्य शिरोरोगमें क्रिया ...	"	कफज और सभिपातज नेत्ररोगपर सेचन...	"
वातज मुखरोगके लक्षण ...	१५४०	वातजननेत्ररोगहरवार्ति ...	"
पित्तज मुखरोगके लक्षण ...	"	पित्तज नेत्ररोगहरवार्ति ...	"
कफज मुखरोगके लक्षण ...	"	कफज नेत्ररोगहर वार्ति ...	१५५२
सभिपातज मुखरोगके लक्षण ...	१५४१	दृष्टिसादनी वार्ति ...	"
मुखरोगचिकित्सा ...	"	शंखनाभ्यादिवर्ति ...	१५५३
विषल्पदि कवल ...	"	सूर्य अंजन ...	"
तेजोमत्यादि सूर्य ...	"	एलांजन ...	"
पंचकोलादि गुटिका ...	१५४२	संधवादि अंजन ...	"
बालकचूर्ण ...	"	चक्षुयअंजन ...	"
पीतकचूर्ण ...	"	सुखावती वार्ति ...	१५५४
मृद्रीकादिवर्ण ...	१५४३	दृष्टीप्रदावार्ति ...	"
मुखपाकका वन ...	१५४४	तिमिररोगनाशक अंजन ...	"
सादिरादिगुटिका तथा तैल ...	"	रसायन अंजन ...	१५५५
अष्टचिके ५ भेद ...	१५४५	रसक्रिया ...	"
वातज अष्टचिके लक्षण ...	"	खात्स्विय रोगका निदान ...	"
पित्तज अष्टचिके ...	"	खात्स्वियकी चिकित्सा ...	१५५६
कफज अष्टचिके लक्षण ...	"	अथ स्वरभेद चिकित्सा ।	
मनोविकारजन्य त्रिदोषज अष्टचिके	"	वातज स्वरभंगकी चिकित्सा ...	१५५८
अष्टचिके चिकित्सा ...	१५४६	पित्तज स्वरभंगकी चिकित्सा ...	१५५९
अष्टचिनाशक योग ...	"	कफज स्वरभंगकी चिकित्सा ...	"
वातजकर्णरोगके लक्षण ...	१५४७	रक्तज स्वरभंगकी चिकित्सा ...	"
पित्तजकर्णरोगके लक्षण ...	"	सभिपातके स्वरभेदका यत्न ...	१६६०
कफजकर्णरोगके लक्षण ...	"	अध्यायका उपसंहार ...	१५६१
सभिपातज कर्णरोग... ..	"	२७. ऊरुस्तम्भचिकित्साध्याय ।	
कर्णरोगकी चिकित्सा ...	"	ऊरुस्तम्भके हेतु और संप्राप्ति ...	१५६२
क्षारतैल ...	१५४८	ऊरुस्तम्भके पूर्वरूप ...	१५६३
नेत्ररोगनिदान ...	१५४९	ऊरुस्तम्भके ल० ...	"
पित्तजनेत्ररोगके लक्षण ...	"	ऊरुस्तम्भमें साप्यासाप्य ...	"
कफजनेत्ररोगके लक्षण ...	"	ऊरुस्तम्भमें स्नेह विरेचनादिद्य निषेध ...	१५६४
सभिपातज नेत्ररोग... ..	"	ऊरुस्तम्भकी चिकित्साका निर्देश ...	१५६५
नेत्ररोगचिकित्सा ...	"	ऊरुस्तम्भमें पथ्य ...	"
वातजनेत्ररोगकी चिकित्सा ...	१५५०	ऊरुस्तम्भनाशक योग ...	"
पित्तजनेत्ररोगकी चिकित्सा ...	"	सैन्धव दि तैल ...	१५६७
कफजनित्र नेत्ररोगकी चिकित्सा ...	"	अष्टद्वन्द्वतैल ...	१५६८
सभिपातजनित नेत्ररोगकी चिकित्सा ...	"	अध्यायका उपसंहार ...	१५७०
वातजनेत्ररोगमें आथेतन ...	१५५१		

२८. वातव्याधिचिकित्साध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वायुकी उत्पत्ति ...	१५७०	रक्षात वात ...	१५८१
वायुके पांचभेद ...	१५७१	मांसायन वात ...	"
प्राणवायुके स्थान और कर्म ...	"	मदायतवातके ल० ...	"
उदानवायुके स्थान व कर्म ...	"	अस्थियन आयन वात ...	"
गमानवायुके स्थान व कर्म ...	"	मन्दायत वात ...	१५८२
व्यानवायुका स्थान व कर्म ...	"	शुक्रायत वात ...	"
अपानवायुके स्थान व कर्म ...	१५७२	अप्रायन वात ...	"
विहतवायुके कर्म ...	"	मूत्रायत वात ...	"
वातव्याधियोंके हेतु ...	"	मलायत वात ...	"
पूर्वरूप धार उपाय ...	१५७३	इन रोगोंके साध्याऽसाध्यता ...	"
कुपितवायुके कर्म ...	"	वातव्याधिमें सामान्य चिकित्सा ...	१५८३
कोष्ठाश्रित कुपित वायुके कर्म ...	१५७४	स्नेहस्वेदनके गुण ...	"
सर्वांगगत कुपित वायु व लक्षणा ...	"	वातव्याधिमें विरेचनकर्म ...	१५८४
गुदस्थ कुपित वातके लक्षण ...	"	वातव्याधियोंकी विशेष चिकित्सा ...	१५८५
आमाशयस्थ कुपित वातके कर्म ...	"	वातव्याधिनाशक अनेक योग ...	१५८६
पक्वाशयस्थ कुपित वायुके ल० ...	१५७५	वातव्याधिनाशक घृत ...	१५९०
धोत्रादिद्रव्ययुक्त कुपित वातके कर्म ...	"	चिन्कादिघृत ...	"
त्वचागत कुपित वातके ल० ...	"	उद्धृग्न वातनाशक घृत ...	"
मांसमेदगत कुपित वातके ल० ...	"	वातनाशकस्नेह ...	१५९३
मांस मेदगतके लक्षण ...	"	महास्नेह ...	"
मज्जागत कुपितवातके ल० ...	"	निर्गुणडी तैल ...	१५९२
स्नायुगत वातके ल० ...	१५७६	मूलकादितैल ...	"
शिरागत कुपित वातके ल० ...	"	पंचमूलादि तैल ...	१५९३
संधिगत वातके लक्षण ...	"	शरीरकी शीततानाशक तैल ...	"
अर्द्धांगगत वातके ल० ...	"	सहचरादि तैल ...	१५९४
मन्यास्तम्भ ...	१५७७	अदंशुादितैल ...	"
अन्तरायाम और बहिरायामकलक्षण ...	"	बलातैल ...	"
धनुस्तम्भके लक्षण ...	१५७८	अमृतादि तैल ...	१५९५
हनुस्तम्भ ...	"	रस्नादि तैल ...	१५९६
आक्षेपकके ल० ...	"	बलादि चार प्रकारके तैल ...	१५९७
दण्डापनानके ल० ...	"	मूलकादि तैल ...	"
इसके असाध्यता ...	१५७९	बृथमूलादि तैल ...	"
पक्षाघात, एकांग और सर्वांग वातव्याधिके ल० ...	"	रस्नादि तैल ...	१५९८
शुभ्रभीरोगके ल० ...	"	यवकादि तैल ...	"
खलीरोगके ल० ...	१५८०	संज्ञानोत्पादक तैल ...	"
पित्तप्रदवातके ल० ...	"	अन्य तैलोंका निर्देश ...	१५९९
कंकायत वातके ल० ...	"	वातरोगमें तैलोंके प्रधानता ...	"
		पित्तायन वातकी चिकित्सा ...	१६००

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
कफाहत वातकी चिकित्सा ...	१६००	वातरक्तकी संप्राप्ति...	१६१२
उरस्थवातमें किया...	१६०१	वातरक्तके पूर्वरूप ...	१६१३
रक्तादिधातुओंसे आवृत वातकी चिकित्सा ...	१६०२	उत्तान और गंभीर वातरक्तके भेद ...	"
पाँचों वायुओंके परस्पर आवरण वायुओंके परस्पर आवरणके २० भेद ...	"	उत्तान वातरक्तके लक्षण ...	"
प्राणाहतव्यानवायुके लक्षण और चिकित्सा ...	१६०३	गंभीरवातरक्तके लक्षण ...	१६१४
व्यानाहत प्राणवात ...	"	वातरक्तके वातादिभेद ...	"
प्राणाहत समानके लक्षण ...	"	वाताधिक वातरक्तके ल० ...	"
समानाहत प्राणके लक्षण, चिकित्सा ...	"	रक्ताधिक वातरक्त... ..	१६१५
प्राणाहत उदान वायुके लक्षण चिकित्सा ...	"	पित्ताधिकवातरक्त ...	"
उदानाहत प्राणवायु ...	१६०४	कफाधिक, द्रवज, सन्निपातज, वातरक्तके ल० ...	"
प्राणावृत अपान ...	"	वातरक्तकी साध्याऽसाध्यता ...	"
अपानावृत प्राणवायु ...	"	वातरक्तके चिकित्साका क्रम ...	१६१६
व्यानावृत अपान ...	"	रक्तज्ञावके अयोग्य वातरक्त ...	१६१७
आपानावृत वायु ...	"	वातरक्तकी विशेष चिकित्सा ...	"
समानाहत व्यान ...	१६०५	वाताधिक वातरक्तकी चिकित्सा ...	१६१८
उदानाहत व्यान ...	"	रक्तपित्तोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा ...	"
इतर आवरणोंका उपसंहार ...	"	कफाधिक वातरक्तकी चिकित्सा ...	"
अन्य १२ आवरणोंका निर्देश ...	"	वातरक्तमें त्याज्य वस्तु ...	"
पित्तावृत प्राणवायु ...	१६०६	वातरक्तमें पथ्य ...	१६१९
कफावृत प्राणवायुके लक्षण ...	"	श्रायण्यादि घृत ...	"
पित्तावृत उदानके ल० ...	"	यलादि घृत ...	"
कफावृत उदानके ल० ...	१६०७	मूत्र्यामलकी घृत ...	१६२०
पित्तावृत समानके ल० ...	"	पारपकघृत ...	"
कफावृत समानके ल० ...	"	द्विपचमूलीघृत ...	"
पित्तावृत व्यानके ल० ...	"	दाशाघृत ...	१६२१
कफावृत व्यानके ल० ...	"	गुडुची घृत ...	"
पित्तावृत अपानके ल० ...	"	भीवकादि जेह ...	१६२२
कफावृत अपानके ल० ...	१६०८	स्थिरादि जेह ...	"
पित्तकफ मिश्रितावरण ...	"	वातरक्तनाशक दूध... ..	"
प्राण और उदानकी गुहता ...	"	पित्ताधिक वातरक्तकी चिकित्सा ...	१६२३
सर्वस्थानगत आवृत वायुओंकी चिकित्सा ...	१६०९	कफाधिक वातरक्तकी चिकित्सा ...	१६२४
अध्यायका उपसंहार ...	१६१०	मलावृत वातरक्तकी चिकित्सा...	"
२९. वातशोणितचिकित्साध्याय।		मधुयथी तैल ...	"
वातरक्तके हेतु ...	१६११	सुडुमार तैल ...	१६२५
वातरक्तके स्थान ...	१६१२	अमृतादि तैल ...	१६२६
		महापद्म तैल ...	"
		महाखुणक तैल ...	१६२७
		मधुयथि तैल ...	"

विषय.	पृष्ठां.	विषय.	पृष्ठां.
शतपाक मधुपर्णी तैल ...	१६२८	पिप्पल्यादि कल्क ...	१६४४
सहस्रपाकी तैल ...	"	शृपमादि योग ...	"
अन्य तैल ...	"	पित्तज योनिरोगोंकी चिकित्सा...	१६४५
भारनाल तैल ...	१६२९	बृहत् शतावरी घृत...	१६४६
पिण्डतैल ...	"	कफजनित योनिरोगकी चिकित्सा	"
पित्ताधिक वातरक्तके यत्न ...	"	तीनों दोषोंमें क्रियाक्रम ...	१६४८
दाहनाशक यज्ञ ...	"	प्रदरकी चिकित्सा ...	१६४९
लाली, दाह, शूल नाशक अन्य यज्ञ ...	१६३०	वातप्रदरका यत्न ...	"
वाताधिक वातरक्तके यज्ञ ...	१६३१	पित्तजनित प्रदरकी चिकित्सा ...	"
कफाधिक वातरक्तमें चिकित्सा ...	१६३२	पुष्यानुग चूर्ण ...	१६५०
वातकफाधिक वातरक्तका यज्ञ...	१६३३	कफजनित प्रदरकी चिकित्सा ...	"
त्रिदोषज वातरक्तमें यज्ञ ...	"	पित्तज प्रदरपर योग ...	१६५१
अध्यायका उपसंहार ...	१६३५	योनिरोगमें अन्य कर्म ...	"
३० योनिव्याप्त चिकित्साध्याय		पुष्प चिकित्साया निर्देश ...	१६५५
वृत्तदूषित योनिके लक्षण ...	१६३६	योनिरोगोंका उपसंहार ...	"
पित्त दूषितयोनिके लक्षण ...	१६३७	अग्निवेशके वीर्यदोषमें प्रश्न ...	१६५६
कफदूषित योनिके लक्षण ...	"	दूषित वीर्यको गर्भमें असमर्थता	"
त्रिदोषदूषित योनिके लक्षण ...	"	वीर्य दूषित होनेका कारण ...	"
रक्तपित्त दूषित योनि ...	"	दूषित शुक्रके आठ भेद ...	१६५७
अरजत्का योनि ...	१६३८	वातदूषित शुक्रके लक्षण ...	"
शचरणा योनि ...	"	पित्तदूषित शुक्रके ल० ...	"
अस्तिचरणा योनि ...	"	कफदूषित शुक्रके ल० ...	१६५८
प्राक्चरणा योनि ..	"	अन्यधातूपसंसृष्ट ...	"
उपप्लुतायोनि ...	"	अवसादि शुक्रके ल० ...	"
परिप्लुतायोनि ...	१६३९	शुद्धशुक्रके ल० ...	"
उदावृता योनि ...	"	दूषित वीर्यकी सामान्य चिकित्सा	"
वर्णनी योनि ..	"	वातदूषित वीर्यकी चिकित्सा ...	१६५९
पुन्रग्नी योनि ...	१६४०	पित्तदूषित वीर्यकी चिकित्सा ...	"
अंतर्मुखी योनि ..	"	कफदूषित वीर्यमें चिकित्सा ...	"
सूचीमुखी योनि ..	"	अन्यधातूपसंसृष्ट वीर्यकी चिकित्सा	"
शुष्कायोनि ...	"	क्लेशरोग वर्णन ...	"
यामिनी ...	१६४१	प्रकारसे नपुंसकताकी प्राप्ति...	१६६०
बण्डाके लक्षण ...	"	नपुंसकताके सामान्य लक्षण ...	"
महायोनिके लक्षण...	"	बीजोपघात विलयके हेतु, लक्षण ...	"
वातजयोनिरोगोंकी चिकित्सा ...	१६४२	ध्वजभग नपुंसकताके हेतु, लक्षण ...	१६६१
यलादि तैल या घृत ...	१६४३	ध्वजभगके लक्षण ...	१६६२
आशमय्यादि घृत ...	१६४४	जरासंग नपुंसकताके कारण और ल०	१६६३
		क्षयक यक्षीयताके हेतु, लक्षण ...	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मातृपितृदोषज नपुंसकता ...	१६६४	औषध रक्षण विधि ...	१६९४
कलैब्य (नपुंसकता) रोगीकी चिकित्सा ...	१६६५	वातरोगोंमें धनुषान ...	"
बीजोपघात कलैब्यकी चिकित्सा ...	"	पित्तज रोगोंमें धनुषान ...	१६९५
घ्वजभगनी चिकित्सा ...	१६६६	वफजरोगोंमें चिकित्सा ...	"
जरासंभव और क्षयज कलैब्यकी चिकित्सा ...	"	वमनकरानेका क्रम ...	१६९६
प्रदररोगके सामान्य हेतु और संप्राप्ति ...	"	वामक योग ...	"
प्रदररोगके चार भेद ...	१६६७	मत्र ...	१६९७
वातजप्रदरके हेतु, लक्षण ...	"	हृत्नवेगमें क्रिया ...	"
पित्तज प्रदरके हेतु, लक्षण ...	१६६८	वमनमें उष्ण द्रव्योंमें मधु देनेकी भाशा ...	"
कफज प्रदरके हेतु, लक्षण ...	"	आठ वामक योग ...	१६९८
त्रिदोषज प्रदरके हेतु, लक्षण ...	"	चार वामकयोग ...	१६९९
शुद्धरजके लक्षण ...	१६६९	एक वामकयोग ...	"
प्रदररोगकी चिकित्साका निर्देश ...	१६७०	एक वामकयोग ...	"
अथ स्तन्यदोष चिकित्सा ।		एक वामकयोग ...	१७००
स्तन्यदोषोंके हेतु ...	"	एक वामकयोग ...	"
यातादि भेदसे उनके लक्षण ...	१६७१	छः वामकयोग ...	"
वातदूषित स्तन्यके दोष ...	१६७२	बीस वामकयोग ...	"
पित्तदूषित स्तन्यके लक्षण ...	"	बीस २ मोदक और उत्कारिना वामकयोग ...	१७०१
कफदूषित स्तन्यके लक्षण ...	"	एक २ शक्कुली अरूपयोग ...	"
त्रिदोष दूषित स्तन्य ...	१६७३	पंद्रह २ अपूप दाशकुलीयोग ...	"
दूषित स्तन्यकी चिकित्सा ...	"	वमनके दश योग ...	१७०२
स्तन्य दोषोंकी विशेषचिकित्सा ...	१६७५	हैनपलके प्रयोग ...	"
शीरदोषज बालरोगोंकी चिकित्सा ...	१६७८	शप्यायका उपग्रहार ...	"
स्थानका उपग्रहार ...	१६७९	२. जीमूत कल्प ।	
शप्यायका उपग्रहार ...	१६८०	जीमूतके नाम ...	१७०३
इति चिकित्सास्थानकी विषयाऽनुक्रमणिका ।		पांचयोग ...	"
अथ कल्पस्थान ।		एकयोग ...	१७०४
१ मदन कल्प ।		एक सुरामण्ड योग ...	"
वमन, विरेचनकी निरुक्ति ...	१६८९	वारदयोग ...	"
वामक, रेचक द्रव्योंका क्रम ...	"	शातयोग ...	"
वामक और विरेचक द्रव्य ...	१६९०	शाठयोग ...	१७०५
जागतदेशके ल० ...	१६९१	चाथयोग ...	"
धनुष देशके ल० ...	१६९२	शप्यायका उपग्रहार ...	"
शापरण देश ...	"	३. इक्ष्वाकु कल्प ।	
शीतधि घट्टनरोग्य उत्तम भूमि ...	१६९३	इक्ष्वाकु तुंडके नाम और गुण ...	१७०६
शीतध मदन प्रारर ...	"	दूध अदि आठ योग ...	"
		नरुका एकयोग, दृष्टा ॥ एकयोग ...	१७०७

११. सप्तल, शंखिनी कल्प ।

विषय.	पृष्ठांक.
सप्तला शंखिनीके नाम ...	१७३९
सप्तला, शंखिनीके गुण ...	"
सप्तला शारिणीके प्रयोग ...	१७४०
अध्यायका उपसंहार ...	१७४२

१२. दंतीद्रवन्ती कल्प ।

दती, द्रवन्तीके नाम ...	१७४३
इनके ग्रहण और शोधनक्रम ...	"
दती और द्रवन्तीके गुण ...	"
दती, द्रवन्तीके प्रयोग ...	"
दती द्रवन्तीके योगोंका उपसंहार ...	१७४९
योगोंमें द्रव्यकी प्रधानता ...	१७५०
विरुद्धवीर्य द्रव्योंके मिलानेका हेतु ...	"
भावना देनेका गुण... ..	१७५१
इनके सस्त्रादि विषयमें ज्ञातव्य योगोंके ३ भेद ...	"
तीक्ष्णयोगोंके लक्षण ...	"
द्रव्यमें तीक्ष्णताका कारण ...	१७५२
मध्यमयोगके लक्षण ...	"
हीनयोगके ल० ...	"
तीन प्रकारकी व्याधि आदि विचार ...	१७५३
वमनमें विशेष कर्त्तव्य ...	"
विरेचनमें कर्त्तव्य ...	१७५४
लघनयोग्य मनुष्य ...	१७५७
वस्तियोग्य रोगी ...	"
शोधनके अयोग्य मनुष्य ...	"
मानपरिभाषा ...	१७५८
अने रविधि विचार ...	१७६०
तीनप्रकारके स्नेहपाक ...	"
उनके प्रयोग ...	१७६१
अध्यायका उपसंहार ...	"

इति कल्पस्थानकी विषयाऽनुक्रमणिका ।

अथ सिद्धिस्थान ।

१ कल्पनासाद्ध ।

स्नेहनकी अवधि ...	१७६३
-------------------	------

विषय.

विषय.	पृष्ठांक.
स्नेहन, स्वेदनके गुण ...	१७६४
शोधनके पूर्व सेवनीयद्रव्य ...	"
शोधनान्तमें सेवनीय द्रव्य ...	१७६५
शोधनके हीन, मध्य और उत्तमवेग ...	"
उत्तम शोधनकी परीक्षा ...	१७६६
उत्तम चान्तेके ल० ...	"
वमनके अयोग और अतियोगके ल० ...	"
सम्यक्विरिक्तके ल० ...	"
दुर्विरिक्तके ल० ...	१७६७
अतिविरिक्तके ल० ...	"
शोधनके अंतमें कर्त्तव्य ...	"
निरुहणका समय ...	"
ऋतुभेदसे अनुवासनका समय ...	१७६८
अनुवासनमें अन्यकर्म ...	"
निरुहणका अवकाल... ..	"
निरुहणवस्तिके गुण ...	१७६९
अनुवासनके गुण ...	"
शोधनीय रोगोंमें वृद्धका निषेध ...	१७७०
संशोधनके अयोग्य रोगी ...	१७७१
घातज रोगोंमें वस्तिकर्मकी श्रेष्ठता ...	"
उत्तम वस्तियोग ...	"
निरुहणके असम्यक् योगके ल० ...	१७७२
अनुवासनके सुयोगके ल० ...	"
अनुवासनके अयोगके ल० ...	"
अनुवासनके अतियोगका ल० ...	१७७३
अनुवासनके ठहरनेका समय ...	"
वस्तियोगी सहाय्य और उनके प्रयोग ...	"
शिरोविरेचनक्रम ...	१७७४
शिरोविरेचनके योग, अयोग, अतियोग ...	"
पंचकर्मके गुण और परहेजका समय ...	१७७५
पंचकर्मके अनन्तर टाज्य ...	"
वस्तिके सुखपूर्वक प्रवेश न होनेके कारण ...	"
वस्तिके द्रव्यके लीडआनेका कारण ...	"
अपनी २ औषधोंसे भी रोगोंके शान्त न होनेका कारण ...	१७७६
अध्यायका उपसंहार ...	"

२ पंचकर्मय सिद्धि ।

पंचकर्मके अयोग्य मनुष्य ...	१७७७
-----------------------------	------

विषय.	पृष्ठांक	४ स्नेहव्यापादिका सिद्धि ।	पृष्ठांक.
वमनके अयोग्य मनुष्य १७७७	विषय.	...
इनको वमन करानेके दोष "	वातघ्न अनुवामन योग १८०५
इनमें भी वमनकरनी आज्ञा १७७९	जीवत्यादि युग्मस्नेह ✓ १८०६
वमन करानेके योग्य रोगी १७८०	पित्तनाशक अनुवामनयोग "
विरेचनके अयोग्य मनुष्य "	वात कफ जनित रोगनाशक अनुवासन "
इनके विरेचन करानेके दोष १७८१	वफनाशक तैलयोग १८०७
विरेचन योग्य मनुष्य १७८२	स्नेहवस्तिके गुण १८०८
आर्यापनके अयोग्य १७८३	इन छः आपदोंके कारण "
इनमें आस्थापनके दोष "	वाताहत वस्तिका ल० १८०९
आस्थापनके योग्य मनुष्य १७८४	वाताहत वस्तिकी चिकित्सा "
अनुवासनके अयोग्य १८८५	पित्ताहतस्नेहके ल० चिकित्सा "
इनमें अनुवासनके दोष "	कफाहत स्नेहके ल० चिकित्सा १८१०
अनुवासनयोग्य मनुष्य १७८६	अनाहत स्नेहके ल० और चिकित्सा "
शिरोविरेचनके अयोग्य मनुष्य "	मलाहत स्नेहके लक्षण और चिकित्सा "
इनमें नस्यक्रमके दुर्गुण १७८७	उद्भूत स्नेहवस्तिके ल० और चिकित्सा १८११
शिरोविरेचनयोग्य मनुष्य १७८८	उपेक्षणीय स्नेह "
अध्यायका उपसंहार १७८९	स्नेहमुक्त होनेपर कर्म "
३ वस्तिसूत्रीय सिद्धि ।		वस्तिकर्ममें जल १८१३
वस्तितेजसा प्रमाण १७९१	गर्मजलके गुण "
वस्तिकर्म परिधि "	स्नेहभावनासा काल "
वस्तिकर्मविधि व वस्तिसूत्रक १७९२	अनुवासीय छेद विधान "
वस्तिकर्मविधि "	उभयछेदप्रयोगसा निषेध १८१३
वस्तिके विधानमें असात्वधानके दोष १७९४	वेचल एक प्रकारकी वस्तिके निरंतर रोपनका निषेध "
वस्तिके लेटनेका विधान १७९५	मात्रानस्तिका प्रयोग "
वस्तिके अनन्तर कर्म १७९६	अध्यायका उपसंहार १८१४
अनुवासनविधि "	५ नेत्रवस्तिव्यापादिका सिद्धि ।	
निरुद्धमे स्नेहकी मात्रा "	त्याज्य वस्तिसूत्र १८१५
निरुद्धकी मात्रा १७९७	त्याज्यपरिण "
शयनक्रम "	विषयके वस्तियोंके विचार "
भोजनादि पत्र "	वस्तिसूत्रके दोष १८१६
वातनाशक वस्तियोंके योग १७९८	इनके ल० और उपाय "
एरुजलेतले वस्तिके गुण १७९९	अध्यायका उपसंहार १८१७
विशानाशक वस्तिके १८००	६ वमन विरेचन, व्यापत्तिसिद्धि ।	
कफरोगनाशकवस्तिके १८०१	शोषादा सम्य १८१९
वातादि वेदने निरुद्धनर्मा १८०४	शोषनस्नेहादि कर्म "
वातादि वेदने निरुद्धनके अनन्तर पथ्य "	शोषाद इत्यादि सम्य १८२०
अध्यायका उपसंहार "		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय,	पृष्ठांक.
हस्ति आदिके विषयमें प्रशोत्तर	... १८८७	अहित भोजनके दोष	... १८९५
हाथी आदिकी वस्तिका परिणाम	... १८८८	दिनमें सोनेके दोष ”
हस्ति आदिकी निरूहणयोग	... ”	मैथुनके दोष	... १८९६
भूमिवेशका प्रश्न	... १८८९	उनकी चिकित्सा	... १८९७
इनकी वि०	... १८९०	यापनवस्तिके योग...	... १८९८
बालकोंको अनुपसन निरूहण	... १८९१	अतिरुध्य स्नेहयोग	... १९०६
अध्यायका उपसंहार	... ”	घलादि रुध्यस्नेह	... १९०७
१२ उत्तरवस्ति सिद्धि ।		सहचरादि रसायन ज्ञेह	... १९०८
		इन ज्ञेहवस्तिवोंके विशेषगुण	... १९०९
		इनमें त्याज्य कर्म	... १९१०
		वस्तियोगोंका उपसंहार	... ”
		इनमें अन्य क्रम	... १९११
		निरंतर यापन वस्तिके दोष	... ”
		सिद्धिस्थानकी निरुक्ति	... १९१२
		इस ग्रन्थके पढनेका फल	... ”
		पैतृग युक्तियोंका संग्रह	... १९१३
		ग्रन्थका फल	... १९१४
		अध्यायका उपसंहार	... १९१५
		शोधनोत्तर क्रिया...	... १८९२
अग्निसंदीपनादि क्रम	... ”		
वर्जनीय ८ व्यापार...	... १८९३		
इनके दोष	... ”		
उच्चभाषणजनित रोग	... १८९४		
क्षोभजनित रोग	... ”		
अतिभ्रमणजनित रोग	... १८९५		
अतिवैठनेसे रोग	... ”		
अजीर्णमें भोजनसे रोग	... ”		

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।



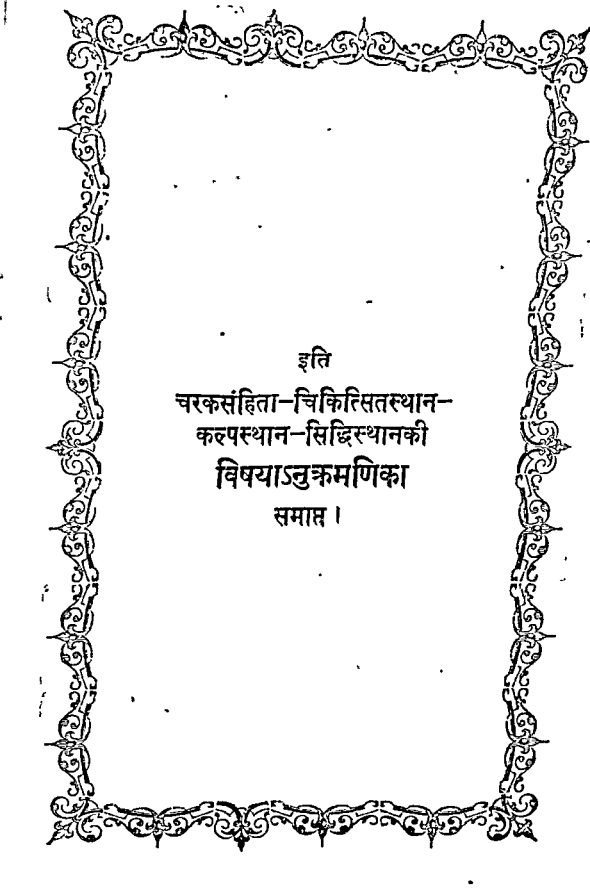
वर्तमान समयके तौलसे वैद्यकीय तौलका मिलान ।



३ राजिका	१ सरसों
३ सरसों	१ यव
३ यव	१ गुंजा (रत्ती)
८ रत्ती	१ मापा
३ मापा	१ डक (शाण)
२ शाण	१ बोल (६ मापा)
१ फोल	१ कर्प (१ तोला)
२ कर्प	अर्धपल
४ कर्प	१ पल (४ तोला), विश्व, मुष्टि
२ पल	१ प्रस्थ
२ प्रस्थ	१ अंजली (१६ तोला) कुडव
२ अजली	१ मानिका (३२ तोला)
२ मानिकम	१ प्रस्थ (६४ तोला)
४ प्रस्थ	१ आडक (४ सेर)
१ तुला	भस्ती तोलाके सेरसे ५ सेर
४ आडक	१ द्रोण (१६ सेर)
२ द्रोण	१ सूर्य (३२ सेर)
२ सूर्य	१ द्रोणी (६४ सेर)
४ द्रोणी	१ खारी (२५६ सेर)
१ भार	२००० पल

कोई पांच तोलाका १ पल मानकर २० तोलाका कुडव (१ पाव पक्का) ४ कुडवोंका १ प्रस्थ (८० तोलाका सेर) लेतेहैं । इसी प्रकार ४ सेर पकेका १ आडक, १६ सेर पकेका द्रोण मानतेहैं । पुराने जमानेके कच्चे तौलसे पल ८ तोलाका लेतेहैं ।





इति
चरकसंहिता-चिकित्सितस्थान-
कल्पस्थान-सिद्धिस्थानकी
विषयाऽनुक्रमणिका
समाप्त ।

॥ श्रीः ॥

चरकसंहिता ।

श्रीमन्महर्षिप्रवरचरकप्रणीता ।

पण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित-
प्रसादनी-

भाषाटीकासहित्ता ।



तत्र

चिकित्सितस्थान-कल्पस्थान-
सिद्धिस्थानानि ।

तान्येतानि

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना
मुम्बय्यां

(खेतवाडी ७ धीं गली खम्बाटा लेन)

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितानि ।

संवत् १९६८, शके १८३३.

अस्य ग्रन्थस्य सर्वेऽधिकारा राजकीयनियन्त्रालयेण "श्रीवेङ्कटेश्वर"
यन्त्रालयाधिपतिना स्वायत्तीकृतान्ति ।

अथ चिकित्सितस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोऽभयामलकीयरसायनपादंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अभयामलकीय रसायनपादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

औषधके नाम ।

चिकित्सितंव्याधिहरंपथ्यंसाधनमौषधम् ॥ प्रायश्चित्तंप्रशमनंप्रकृतिस्थापनंहितम् ॥ १ ॥ विद्याद्भेजनामानिभेषजंद्विविधञ्चतत् । स्वस्थस्यौजस्करंकिञ्चित्किञ्चिदार्त्तस्यरोगनुत् ॥ २ ॥

भेषज, चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृतिस्थापन, हित यह सब औषधके ही नाम हैं । वह औषध दो प्रकारके होतेहैं । जैसे १ स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढ़ानेवाले । २ रोगी मनुष्योंके रोगोंको दूर करनेवाले ॥ १ ॥ २ ॥

दोप्रकारकी अभेषज ।

अभेषजञ्चद्विविधंवाधनंसानुवाधनम् ॥ ३ ॥

अभेषज भी दो प्रकारके होतेहैं १ वाधन अर्थात् शीघ्र प्राणनाश करनेवाले । २ सानुवाधन जो कालान्तरमें अपने विकार आदिकोंको प्रगट करें ॥ ३ ॥

द्विविध औषध ।

स्वस्थस्यौजस्करंयत्तुतद्दृष्यंतद्रसायनम् ॥ ४ ॥

उनमें जो स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढ़ानेवाले औषध हैं उनको वृष्य और रसायन कहतेहैं ॥ ४ ॥

प्रायःप्रायेणरोगाणांद्वितीयंप्रशमेमतम् ।

प्रायःशब्दोविशेषार्थोह्यभयंह्यभयार्थकृत् ॥ ५ ॥

१ जो द्रव्य वीर्यको प्रगट करनेवाला हो उसको वृष्य कहतेहैं अथवा सर्पर्षा धातुओंको पुष्ट करनेवाला हो उसको वृष्य कहतेहैं । २ जो द्रव्य वृद्धावस्थाको न आने देवे और रोगोंको उत्पन्न न होने देवे तथा आयुको बढ़ावे उसको रसायन कहतेहैं ।

और दूसरी औषध जो रोगी मनुष्योंके रोगोंको दूर करनेवाली होतीहैं वे प्रायः रोगोंकी शान्तिके लिये उपयोग कीजातीहैं । इस जगह प्रायः शब्द विशेष अर्थका बोधक है । इससे यह तात्पर्य निकलताहै कि रोगनाशक औषधियां भी स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढ़ानेवाली होसकतीहैं तथा रसायन और बलवर्द्धक औषधियां रोगनाशक भी होतीहैं । इसलिये यह दोनों प्रकारकी औषधियां दोनों प्रकारके गुण करतीहैं । अथवा रसायन और वृष्य यह दोनोंही उभयगुणकर्ता होतीहैं । अर्थात् वृष्य औषध रसायनके गुणको भी कर सकतीहै और रसायन औषध वृष्य गुणवाली भी होतीहै ॥ ५ ॥

रसायनके गुण ।

दीर्घमायुःस्मृतिमेधामारोग्यंतरुणंवयः । प्रभावर्णस्वरौदाच्यर्षदेहेन्द्रियबलंपरम् ॥ वाक्सिद्धिप्रणतिकान्तिलभतेनारसायनात् ।
लाभोपायोहिंशस्तानारसादीनारसायनम् ॥ ६ ॥

रसायनके सेवनसे मनुष्यको-दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्यता, यौवन, प्रभा-वर्ण, स्वर इन सबकी प्राप्ति तथा देह और इन्द्रियोंके बलकी प्राप्ति होतीहै एवं वाक्सिद्धि, योग्यता और कान्तिका लाभ होताहै । रसायनके सेवनसे रसादि धातुओंकी प्राप्ति होतीहै अथवा यों कहिये कि रस आदिक संपूर्ण धातुओंको लाभ कर-नेवालोंमें परमोत्तम होनेसे इसको रसायन कहतेहैं ॥ ६ ॥

वाजीकारण गुण ।

अपत्यसन्तानकरंयत्सद्यःसंप्रहर्षणम् । वाजीवातिबलोयेनयात्यप्रति-
हतःस्त्रियः ॥ ७ ॥ भवत्यतिप्रियःस्त्रीणांयेनयेनोपचीयते । जीर्च्य-
तोऽप्यक्षयंशुक्रंफलवद्येनदृश्यते ॥ ८ ॥ प्रभूतशाखःशाखीवयेन
चैत्योयथामहान् । भवत्यर्च्योवहुमतःप्रजानांस्तुवहुप्रजः ॥ ९ ॥
सन्तानमूलंयेनेहप्रेत्यचानन्त्यमश्नुते । यशःश्रियंवलंपुष्टिवाजीक-
रणमेवतत् ॥ १० ॥

जित द्रव्यके सेवनसे अधिक संतान उत्पन्न हों, शरीरमें तत्काल हर्ष उत्पन्न हो, घोड़ेके समान स्त्रियोंमें रमणकरनेका अप्रतिहत बल उत्पन्न हो तथा स्त्रियोंका अत्यंत प्रिय हो एवं जितके सेवनसे वीर्य अधिक बढ़े, वृद्धानस्यामें भी वीर्यशेष न हो और स्त्रीगमनकी शक्ति बनीरहे जैसे देवताके मंदिरमें लगाइया पीपल अपनी अनेक शाखाओंसे शोभायमान होताहै उसीप्रकार यह मनुष्य भी जितके द्वारा

बहुतसी संतानों करके युक्त हो और अनेक बेटे, पोते-आदिकोंसे सेवा किया जावे एवं इस लोकमें संतानके सुखको भोगकर परलोकमें भी संतानके दियेहुए अनंत सुखको भोगे तथा यज्ञ, शरीर, लक्ष्मी, तेज, बल और पुष्टिको प्राप्त हो उस द्रव्यको वाजीकरण कहतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

द्विविध प्रयोग ।

स्वस्थस्योजस्करन्त्वेतद्विविधंप्रोक्तमौषधम् ।

यद्यथाधिनिर्घातकरं वक्ष्यते तच्चिकित्सिते ॥ ११ ॥

इसप्रकार स्वस्थ मनुष्योंके सेवन करनेयोग्य और उनके ओज, बल, कांति आदिको बढ़ानेवाले दोनों प्रकारके औषधोंका वर्णन करचुके और जो व्याधिनाशक औषध हैं उनको चिकित्सास्थानमें क्रमसे कथन करेंगे ॥ ११ ॥

चिकित्सितार्थएतावान्विकाराणांयदौषधम् ।

रसायनविधिश्चाग्नेवाजीकरणमेवच ॥ १२ ॥

उन रोगनाशक औषधियोंका वर्णन यथाक्रमसे चिकित्सास्थानमें ही कथन करेंगे । अब रसायन और वाजीकरणविधिको भागे कथन करतेहैं ॥ १२ ॥

अनौषधसेवननिषेधः ।

अभेषजमिलिज्ञेयं विपरीतं यदौषधात् ।

तदसेव्यं निषेव्यन्तु प्रवक्ष्यामि यदौषधम् ॥ १३ ॥

जो द्रव्य औषधसे विपरीत गुणको करनेवाला हो उसको अभेषज कहतेहैं । वह अभेषज सेवन करने योग्य नहीं है । अर्थात् अभेषजको कभी नहीं खाना चाहिये । जो सेवन करने योग्य औषध हैं उनको वर्णन करतेहैं ॥ १३ ॥

द्विविधरसायनविधि ।

रसायनानां द्विविधंप्रयोगमृषयोविदुः ।

कुटीप्रावेशिकश्चैव वातातपिकमेवच ॥ १४ ॥

ऋषिलोग रसायन विधिका प्रयोग दो प्रकारका कहतेहैं । १ कुटीप्रवेशविधि अर्थात् वायु, धूप आदिसे बचकर कुटी (मकान) में प्रवेशकरके रसायनका सेवन करना । २ वातातपिक अर्थात् जिसमें पत्र- और धूप आदिका कोई बचाव नहीं कियाजाता ॥ १४ ॥

कुटीनिर्माणविधि ।

कुटीप्रावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते । नृपवैद्यद्विजातीनां साधू-

नांपुण्यकर्मणाम् ॥ १५ ॥ निवासेनिर्भयेशस्तेप्राप्योपकरणपुरे ।
दिशिपूर्वोत्तरस्यान्तुसुभूमौकारयेत्कुटीम् ॥ १६ ॥ विस्तारोत्सेध-
सम्पन्नांत्रिगर्भासूक्ष्मलोचनाम् । घनभित्तिमृत्तुमुखांसुस्पष्टांमनसः
प्रियाम् ॥ १७ ॥ शब्दादीनामशस्तानामगम्यांस्त्रीविवर्जिताम् ।
इष्टोपकरणोपेतांसज्जवैद्यौपधद्विजाम् ॥ १८ ॥

अब प्रथम कुटीप्रवेशिक रसायन प्रयोगकी विधिको कथन करतेहै । राजा, वैद्य, द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) साधु, पुण्यात्मा इनके आश्रयमें जो निर्भय स्थान हो और उत्तम हो जहां सब प्रकारके रसायन संबंधी द्रव्य प्राप्त होसकतेहैं ऐसे स्थानमें पूर्व या उत्तरकी दिशाको देखकर कुटी बनावे । उस कुटीमें सब प्रकार रसायनके उपयोगके लिये यथावत् सामग्री होनी चाहिये । वह कुटी उत्तम रीतिसे लम्बी, चौड़ी और ऊंची तथा क्रमपूर्वक एकके भीतर दूसरा और दूसरेके भीतर तीसरा इसप्रकार तीन कमरोंवाली होनी चाहिये तथा जिसमें युक्तिपूर्वक छोटे २ झरोखे हों उसकी दीवार उत्तम मजबूत होनी चाहिये और जिस ऋतुमें जिस प्रकारके गुणोंकी आवश्यकता हो वह ऋतुक्रमसे सुखदायक गुणोंवाली हो एवं स्वच्छ और मनोहर होनी चाहिये । उसमें निन्दित शब्द आदिक तथा स्त्रियें आदि न जा सकतीहैं तथा इच्छित योग्य रसायनोपकारी संपूर्ण सामग्रीसे युक्त हो । जिसमें श्रेष्ठ वैद्य, और योग्य ब्राह्मण उपस्थित हों ऐसी कुटी बनाना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

कुटीप्रवेशविधि ।

अथोदगयनेशुकृतिथिनक्षत्रपूजिते । सुहूर्तकरणोपेतेप्रशस्तेकृत-
वापनः ॥ १९ ॥ धृतिस्मृतिवलंकृत्वाश्रद्धानःसमाहितः । विधू-
यमानसान्दोपान्मैत्रीभूतेषुचिन्तयन् ॥ २० ॥ देवताःपूजयित्वा-
ग्नेद्विजातींश्चप्रदक्षिणम् । देवगोब्राह्मणान्कृत्वाततस्तांप्रविशेत्कु-
टीम् ॥ २१ ॥

इसके अनंतर उत्तरायण, शुक्लपक्ष और उत्तम तिथि तथा शुभ नक्षत्रमें उत्तम शुभ करण सुहूर्त आदिको देखकर, क्षीर और म्नानादिसे निवृत्त होकर श्रद्धावान् मनुष्य धृति और स्मृतिके बलको धारणकर सावधानीक साथ काम प्रोधादि मनके दोषोंको त्यागकर संपूर्ण जीवोंको मैत्रीभावसे देखताहूआ देवता आदिकोंका और तत्पश्चात् ब्राह्मणोंका पूजनकर, देव, गौ, ब्राह्मण आदिकोंकी प्रदक्षिणाकरके कुटीमें प्रवेश-
करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

रसायनसे प्रथम शोधनका उपदेश ।
 तस्यांसंशोधनैःशुद्धःसुखीजातवलःपुनः ।
 रसायनंप्रयुञ्जीततत्प्रवक्ष्यामिशोधनम् ॥ २२ ॥

फिर प्रथम शोधनों द्वारा शुद्ध होकर सुखपूर्वक शरीरमें बल प्राप्त होनेपर रसायनका सेवन करे । अब प्रथम शोधनका कथन करतेहैं ॥ २२ ॥

शोधनद्रव्य व क्रम ।

हरीतकीनांचूर्णानिसैन्धवामलकेगुडम् । वचांविडङ्गरजनींपिप्प-
 लींविश्वभेषजम् । पिवेदुष्णाम्बुनाजन्तुःस्नेहस्वेदोपपादितः ॥ २३ ॥

प्रथम स्नेहन और स्वेदनसे उपपन्न शरीर मनुष्य हरड, सेधानमक, आमले, गुड, वच, विडंग, हल्दी, पीपल, सोंठ इन सबको मिलाकर इनका चूर्ण बनावे । फिर यह चूर्ण उचित मात्रासे खाकर ऊपरसे गरमपानी पीवे ॥ २३ ॥

तेनशुद्धशरीरायकृतसंसर्जनाय च । त्रिरात्रंयावकंदद्यात्पञ्चाहं
 वापिसर्पिषा । सप्ताहंवापुराणस्ययावच्छुद्धेस्तुवर्चसः ॥ २४ ॥

इसप्रकार जब मनुष्य शुद्ध शरीर होजाय तो इसको क्रमपूर्वक मलशुद्धिके लिये तीन दिन पर्यन्त यवका पानी (यवागू) पिलावे । अथवा पांच दिन तक वीके संयोगसे या सात दिन तक पुराने यवादिकोका यूप देवे । जबतक मल शुद्ध न होजाय तबतक यही यूप दिया करे ॥ २४ ॥

• शुद्धकोष्ठन्तुतंज्ञात्वारसायनमुपाचरेत् ।

वयःप्रकृतिसात्म्यज्ञोयौगिकंस्ययद्भवेत् ॥ २५ ॥

इसप्रकार जब देखे कि, उस मनुष्यका कोष्ठ शुद्ध होगयाहै तो जवस्था, प्रकृति और सात्म्यको विचारकर जिसको जिस प्रकारका रसायन प्रयोग हितकारक हो उसको उसप्रकारका रसायन प्रयोग करावे ॥ २५ ॥

हरीतकीके गुण ।

हरीतकींपञ्चरसामुष्णामलवणांशिवाम् । दोषानुलोमिर्नीलध्वींवि-
 द्यादीपनपाचनीम् ॥ २६ ॥ आयुष्यांपौष्टिकींधन्यांवयसःस्थापनी
 पराम् । सर्वरोगप्रशमनींबुद्धीन्द्रियबलप्रदाम् ॥ २७ ॥ कुष्ठंगुल्म-
 मुदावर्त्तेशोपंपाण्ड्यामयंमदम् । अर्शांसिग्रहणीदोषंपुराणंविषमज्व-
 रम् ॥ २८ ॥ हृद्रोगंसशिरोरोगमतीसारमरोचकम् । कासंप्रमेह-

मानाहंलीहानमुदरेनवम् ॥ २९ ॥ कफप्रसेकं वैस्वर्यं वैषण्यं कामं-
लांक्रिमीन् । श्वयथुंतमकंछर्दिंशैव्यमङ्गावसादनम् ॥ ३० ॥ स्तो-
तोविधन्धान्विविधान्प्रलेपं हृदयोरसोः । स्मृतिबुद्धिप्रमोहशजये-
च्छीघ्रं हरीतकी ॥ ३१ ॥

अथ हरीतकी (हरड) के गुणोंको कहते हैं । ह्रडमें लघणरसके सिवाय पांच रस हैं । यह उष्ण, कल्याणकारक, दोषोंको अनुलोमन करनेवाली, हल्की, क्षीपण और पाचन होती है तथा आयुवर्द्धक, पुष्टिकारक, धन्य, परम अवस्थास्थापक, सर्वरोगनाशक, बुद्धिवर्द्धक, इन्द्रियमगद, बलदायक एवं कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त्त, क्षौप, पाण्डुरोग, मद्‌रोग, पथारीर, ग्रहणी, जीर्णज्वर, विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरोचक, खांसी, प्रमेह, आनाह, प्लीह्रोग, नवीन उदररोग, कफका गिरना, स्वरभंग, विवर्णता, कामला, कृमिरोग, सृजन, तमकश्वास, छर्दि, नर्भुतकता, अंगोंका रहजाना, अनेक प्रकारके स्रोतोंका विषंध हृदय और छातीका मलेप, स्मृति और बुद्धिका मोह इन सब रोगोंको नष्ट करनेवाली है ॥ २९-३१ ॥

हरिके सेवनका निषेध ।

अंजीर्णिनोरुक्षभुजःस्त्रीमथविषकर्षिताः ।

सेवेरन्नाभयामेतेक्षुत्तृष्णोष्णादिताक्षये ॥ ३२ ॥

जिस मनुष्यको विल्कुल भी अन्न न पचता हो तथा रूक्ष भोजन करनेवाला स्त्री संग और मद्य तथा विषसे व्याकुल मनुष्य एवं जो क्षुधा, तृषा तथा उष्णतासे पीडित हो उसको हरडका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

आमलेके गुण ।

तान्गुणांस्तानिकर्माणि विद्यादामलकीष्वपि ।

यान्युक्तानि हरीतक्याधीर्यम्यतु विपट्ययः ॥ ३३ ॥

जो गुण हरडमें हैं और जितने प्रकारके हरडके फर्म हैं यह आमलेमें भी हरडकेही समान हैं केवल विशेषता इतनीही है कि हरड उष्णवीर्य होती है और आमले क्षीतवीर्य होते हैं ॥ ३३ ॥

दोनों फलोंको अमृतकल्पत्य ।

अतश्चामृतकल्पानिविद्यात्कर्मभिरीदृशैः ।

हरीतकीनांशस्यानिभिषगामलकस्य च ॥ ३४ ॥

इसीलिये हरड और आमलेके गुणकर्मोंको अमृतके तुल्य देखते हुए वैद्यलोग इन दोनों फलोंको अमृतकल्प कहते हैं ॥ ३४ ॥

औषधयोग्य-उत्तम भूमि ।

औषधीनांपराभूमिर्हिमवाञ्छैलसत्तमः । तस्मात्फलानितज्जानि
ग्राहयेत्कालजानिच ॥ ३५ ॥ आपूर्णरसवीर्याणिकालेकालेयथा-
विधि । आदित्यसलिलच्छायापवनप्रीणितानिच ॥ ३६ ॥ यान्यद-
ग्धान्यपूतीनिनिर्वणान्यगदानिच । तेषांप्रयोगंवक्ष्यामिफलानां
कर्म चोत्तमम् ॥ ३७ ॥

संपूर्ण औषधीयोंके ग्रहण करनेकी अथवा उनके उत्पन्न होनेकी सबसे उत्तम भूमि
हिमवान् पर्वत है । इसलिये उस हिमवान् पर्वतमें उत्पन्नहुए फल और अन्य वनस्पति
जब अपने २ ठीक समय पर पूर्णरस और वीर्यसे संपन्न हों और धूप, जल, छाया,
पवन आदिसे यथोचित परिपुष्ट होगई हों एवं उन फलादिकोंमें किसी प्रकारका दुर्गंध,
दाग, कीट आदि न लगाहुआ हो एवं अन्य किसी प्रकारके दोषसे दूषित न हों
ऐसे फल तथा वृष्टियोंको विधिके अनुसार ग्रहण करना चाहिये । उन हिमवान्के
उत्तम फलोंका कर्म और जिस प्रकार उत्तम विधिसे प्रयोग करना चाहिये उसका
वर्णन करतेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

ब्राह्मरसायन ।

पञ्चानांपञ्चमूलानांभागान्दशपलोन्मितान् । हरीतकीसहस्रत्रि-
गुणामलकंनवम् ॥ ३८ ॥ विदारिगन्धांवृहतीपृश्निपर्णीनिदिग्धि-
काम् । विद्याद्विदारिगन्धाद्यंश्वदंद्रापञ्चमंगणम् ॥ ३९ ॥ विल्व-
ग्निमंथश्रयोनाकंकाशमर्यमथपाटलीम् । पुनर्नवामूर्पपण्यैवलामै-
रण्डमेवच ॥ ४० ॥ जीवकर्षभकौमेदांजीवन्तीसशतावरीम् ।
शरेक्षुदर्भकाशानांशालीनांमूलमेवच ॥ ४१ ॥ इत्येषांपञ्चमूलानां
पञ्चानामुपकल्पयेत् । भागान्यथोक्तास्तत्सर्वसाध्यंदशगुणेऽम्भसि
॥ ४२ ॥ दशभागावशेषन्तुपूतं तद्ग्राहयेद्रसम् । हरीतकीश्च
ताःसर्वाःसर्वाण्यामलकानिच ॥ ४३ ॥ तानिसर्वाण्यनस्थी-
निफलान्यापोथ्यकूर्चनैः । विनीयतस्मिन्निर्य्यूहेचूर्णानीमानिदाप-
येत् ॥ ४४ ॥ मण्डूकपर्ण्याःपिप्पल्याःशंखपुष्प्याःप्लवस्यच ।
मुस्तानांसविडङ्गानांचन्दनागुरुणोस्तथा ॥ ४५ ॥ मधुकस्यहरि-

द्रायावचायाः कनकस्यच । भागांश्चतुष्पलान्कृत्वासूक्ष्मैलायास्त्व-
चस्तथा ॥ ४६ ॥ सितोपलासहस्रञ्चूर्णितंतुलयाधिकम् । तैल-
स्यद्वयाढकंतत्रदद्यात्रीणिचसर्पिषः ॥ ४७ ॥ साध्यमौदुम्बरेपात्रे
तत्सर्वमृदुनाग्निनाज्ञात्वालेह्यमदग्धञ्चशीतंक्षौद्रेणसंसृजेत् ॥ ४८ ॥
क्षौद्रप्रमाणंलेहार्द्धतत्सर्वधृतभाजने । तिष्ठेत्संमूर्च्छितंतस्यमात्रां
कालेप्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥ यानोपरुन्ध्यादाहारमेवंमात्रांजरांप्रति ।
पष्टिकःपयसाचात्रजीर्णेभोजनमिष्यते ॥ ५० ॥

पञ्चमूल पांच प्रकारके हैं । जैसे शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेली और गोखरू
यह लघुपंचमूल है । बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, कुम्भेर और पाढला यह
बृहत् पंचमूल है । पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, बला, एरंडकी जड, यह पुनर्नवादि
पंचमूल है । जीबक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती और गतावर यह जीवकादि पंचमूल है।
सरपतकी जड तथा, ईख, दर्भ, काश और शालिधानकी जड यह लघुपंचमूल कहा
जाताहै । इन सबको मिलानेसे पच्चीस औषधियें हुईं । इनमेंसे प्रत्येक औषधको २ पल
(८ तोला) लेवे । और उत्तम हरड १००० तथा उत्तम परिपक्व आमले ३०००
लेने चाहिये । प्रथम उन सब औषधियोंको दशगुने जलमें डालकर पकावे । जब
पानी नौ भाग जलकर एक भाग शेष रहे तो उसको शुद्ध बख्खमें छान लेवे फिर
आमले और हरडोंकी गुठलियें दूरकर उनका धारीक चूर्ण कूटलेवे । यह चूर्ण उन
औषधियोंके काथमें मिटा देवे । फिर उसीमें ब्राह्मी, पीपल, शंखपुष्पी, केवटी मोथा,
नागरमोथा, वापविडंग, लालचन्दन, अगर, मुलहटी, हल्दी, वच, कनकबीज और
छोटी इलायची इन सबको चारचार पल लेकर चूर्ण करे । और ११०० पल
(१ मन १५ सेर) मिसरी लेवे । तेल २ आढक (८ सेर) घी ३ आढक इन
सबको मिलाकर उत्तम तांबेके पात्रमें मंदमंद अग्निसे पकावे । जब गाढा होजाय तब
इसको नीचे उतारकर छण्डा होनेपर इसमें २॥ आढक उत्तम शहद मिलावे । फिर
सबको विधिवत् एकमेलकर किसी धृतके चिकने पात्रमें भरकर रख देवे । इसको
पंद्रह दिनतक ऐसेही धरा रहने दे । फिर इसमेंसे समयपर उचित मात्रानुसार खाना
चाहिये । जितनी मात्रा खानेसे भूख बंद न होजाय उतनी मात्रासे नित्य विधिवत्
खाना चाहिये । जब मात्रा जीर्ण होजाय अर्थात् प्रातःकालकी खायीहुई औषध
पचकर भूख लगजाय तब साठीचावलोंका भात और दूधका भोजन करना
चाहिये ॥ ३८-५० ॥

१ मात्रा छ' मासासे ४ तोडा अथवा ६ तोला है । शुद्धशरीर मनुष्य प्रातःकाठ इसको
खाकर ऊपरसे ताजा दूध गौ या बकरीका गरमकर पीवे अथवा गरमजलसे खावे ।

ब्राह्मरसायनका फल ।

वैखानसावालखिल्यास्तथाचान्येतपोधनाः । रसायनमिदंप्राप्य
वभूवुरमितायुषः ॥ ५१ ॥ मुक्ताजीर्णवपुश्चाध्यमवापुस्तरुणंवयः ।
वीततन्द्राक्लमश्वासानिरातङ्काःसमाहिताः ॥ ५२ ॥ मेधास्मृतिव-
लोपेताश्चिररात्रंतपोधनाः । ब्राह्मांतपोब्रह्मचर्य्यचेरुश्चात्यन्तनि-
ष्ठया ॥ ५३ ॥ रसायनमिदंब्राह्मयमायुष्कामःप्रयोजयेत् । दीर्घ-
मायुर्वयश्चाध्यंकामांश्चेष्टान्समश्नुते ॥ ५४ ॥

इतिब्राह्मयरसायनम् ।

इस ब्राह्मयरसायनके सेवनसे वैखानस और वालखिल्य तथा अन्यान्य तपोधन
महर्षि अमित आयुको प्राप्त हुए और उनके शरीरकी जीर्णता र होकर तरुणावस्था
प्राप्त हुई एवं तन्द्रा, क्लान्ति, श्वास आदिसे रहित होकर निरातंक (निरोग)
शुद्धकाय हुए । तथा सावधानी, मेधा, स्मृति और बलसे संपन्न होकर चिरकालतक
तप और ब्रह्मचर्यको पालन करते रहे । एवं इसी रसायनके प्रभावसे ब्राह्मयतपका
आराधन करते रहे । इस ब्राह्मयरसायनको आयुकी कामनाके लिये प्रयोग करना
चाहिये । इसके प्रभावसे मनुष्य दीर्घायु नवीन अवस्थावाला होकर अपनी इच्छानु-
सार इष्टकामनाओंके फलको भोगताहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

द्वितीयब्राह्म रसायन ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रंपिष्ट्वास्वेदनविधिनापयसऊष्म-
णासुस्विन्नमनातपशुष्कमनस्थिचूर्णयेत् । तदामलकसहस्रस्वरस-
परिपीतंस्थिरापुनर्नवाजीवन्तीनागवलावह्नसुवर्चलामण्डूकपर्णी-
शतावरीशंखपुष्पीपिप्पलीवचाविडङ्गस्वयंगुष्तामृताचन्दनागुरुम-
धुकमधुकपुष्पोत्पलपद्ममालतीशुवतीयूथिकाचूर्णाष्टभागसंयुक्तम् ।
पुनर्नागवलासहस्रपलस्वरसपरिपीतमनातपशुष्कंद्विगुणितसर्पि-
षाक्षौद्रसर्पिषावाक्षुद्रगुडाकृत्तिकृत्वाशुचौदृढेघृतभावितेकुम्भेभस्म-
राशेरधःस्थापयेत्अन्तर्भूमेःपक्षंकृतरक्षाविधानमथर्ववेदाधित्पक्षा-
त्ययेचोद्धृत्यकनकरजतताम्रप्रवालकालायसचूर्णाष्टभागसंयुक्तम-
र्द्धकर्वृद्धयायथोक्तेनविधिनाप्रातःप्रातःप्रयुज्जानोऽग्निबलमभिस-

मीक्ष्यजीर्णेचषष्टिकंपयसाससर्पिष्कमुपसेवमानोयथोक्तान्गुणान्स-
मश्नुतेइति ॥ ५५ ॥

उत्तम रस और वीर्यसे संपन्न पकेहुए १००० आमले लेकर उनको एक स्वच्छ वारीक मलमलके वस्त्रमें ढीला बाँधकर दूधमें औटावे । जब आमले पकजाय तब वस्त्रसे निकालकर उनकी गुठलियें दूर कर देवे और छायामें सुखाडाले । फिर उनका वारीक चूर्णकरके उस चूर्णमें १००० उत्तम पकेहुए आमलोंका स्वरस खपादेवे । उसमें मिलानेकी यह विधि है कि इस आमलेके चूर्णमें आमलेका रस डालता जाय और उसको घोटकर छायामें सुखाता जाय फिर शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवन्ती, नागवला, सुवर्चला, ब्राह्मी, शतावर, शंखपुष्पी, पीपल, वच, वायविडंग, कौंचके बीजोंकी गिरी, गिलोय, लालचंदन, अगर, मुलहठी, मौहुवेके फूल, नीलोफर, कमल, मालतीफूल, प्रियंगु, जुही इन सबका चूर्ण उस आमलोंके चूर्णसे आठवां भाग लेकर उसी आमलोंके चूर्णमें मिलादेवे । फिर इस संपूर्ण चूर्णको नागवला (गंगेरन) के १००० पल (सवामन) स्वरसमें घोट २ कर छायामें सुखाताजाय । जब संपूर्ण रस सूखजाय तब उसमें दोभाग घृत और १ भाग शहद मिलाकर अथवा घृतही मिलाकर नरम होजानेपर गुडमें लड्डूसे बनाकर घृतके चिकने पात्रमें रखदे और उस पात्रको बंदकर पवित्र भूमिमें रखके ढेरके नीचे दवा दे । अथवा जमीनमें गढा खोदकर उसमें ऊपर नीचे राख रख बीचमें घडेको दवा देवे । फिर इस घडेको पंद्रह दिनके बाद अथर्ववेदका जाननेवाला योग्य ब्राह्मण या वैद्य निकाले । फिर उसमें शुद्ध सोना और चांदीके बर्क, ताम्रभस्म, प्रवालभस्म, लोहभस्म, इन सबको मिलाकर आमलोंके चूर्णसे अठवां भाग मिला देवे । एकजीव होनेपर इसमेंसे शुद्धकाय मनुष्य प्रातःकाल छः मासा खाया करे और अपने अग्निबलके अनुसार इसकी मात्राको इसप्रकार बढ़ाता चलाजाय जिससे भूख बन्द न होजाय । जब यह औषध जीर्ण होकर दोपहर समय भूख लगे तो शाठीचावल, घृत और दूधका भोजन किया करे । इसके सेवनसे मनुष्य यथोक्त गुणोंको प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥

भवन्ति चात्र ।

इंदरसायनंब्राह्म्यंमहर्षिगणसेवितम् । भवत्यरोगोदीर्घायुःप्रयुञ्जा-
नोमहाबलः ॥ ५६ ॥ कान्तःप्रजानांसिद्धार्थश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः ।
श्रुतंधारयतेसत्त्वमार्यश्चास्यप्रवर्त्तते ॥ ५७ ॥ धरणीधरसारश्चवायु-

नासमविक्रमः । सभवत्यविपश्चास्यगात्रेसंपद्यतेविपम् ॥ ५८ ॥

इतिद्वितीयब्राह्मरसायनयोगः ।

यहांपर कहा है कि महर्षिगणोंका सेवित यह ब्राह्मरसायन जो मनुष्य सेवन करताहै वह रोगरहित दीर्घायु और महाबलवान् होताहै । तथा सबका प्यारा सुन्दर सिद्ध मनोरथ, सूर्य और चंद्रमाके समान कांतिवाला और वेदोंका जाननेवाला अथवा श्रवणमात्रसे धारण करनेवाला होजाताहै । इसका मन ऋषियोंके समान होजाताहै । इसका शरीर पर्वतके समान साग्युक्त और वायुके समान पराक्रमवाला होजाताहै । इसके शरीरमें विप भी निर्विप होजाताहै ॥ ५६ ॥५७॥ ५८ ॥

च्यवनप्राश ।

विल्वाग्निमन्थौश्योनाकःकाश्मर्य्यपाटलिर्वला । पपर्यश्चतस्रःपि-
प्यल्यःश्वदंष्ट्रावृहतीद्वयम् ॥ ५९ ॥ शृङ्गीतामलकीद्राक्षाजीवन्ती-
पुष्करागुरुः । अभयाचामुताऋद्धिर्जीवकर्पभकौशठी ॥ ६० ॥ मुस्तं
पुनर्नवामेदाएलाचन्दनमुत्पलम् । विदारीवृषमूलानिकाकोली
काकनासिका ॥ ६१ ॥ एषांपलोन्मितान्भागाञ्छतान्यामलकस्य
च । पञ्चदद्यात्तदैकत्रजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ६२ ॥ ज्ञात्वागतर-
सान्येतान्यौषधान्यथतरंसम् । तच्चामलकमुद्भृत्यनिष्कुलंतैलसर्पि-
पोः॥६३॥ पलद्वादशकेभृष्ट्वादन्वाचार्ष्णतुलांभिषक् । मत्स्याण्डिका-
याःपूतायालेहवत्साधुसाधयेत् ॥ ६४॥ पट्पलंमधुनश्चात्रसिद्धशी-
तेसमावपेत् । चतुष्पलंतुगाक्षीर्याःपिप्पलीद्विपलंतथा ॥ ६५ ॥
पलमेकंनिदध्याच्चत्वगेलापत्रकेशरात् । इत्ययंच्यवनप्राशःपरमुक्तो
रसायनः ॥ ६६ ॥

बेल, अग्निमंथ, शिवनाक, कुंभेर, पाटला, वला, मापपर्णी, मुद्गपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, पीपल, गोखरू, बडी कटेली, छोटी कटेली, काकडाईसिंगी, भूमिआमला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, हरड, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कजूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, (या सोंठ) मेदा, इलायची, चंदन, कमलगट्टे, विदारीकंद, अट्टसेकी जड, काकोली, काकनासा इन सब औषधियोंको एक २ पल लेंवे और शुद्ध पकेहुए उत्तम आमले ५०० लेंवे । इन सबको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें

१ कोई आमले ५०० पल (२० सेर पके) लेते हैं ।

पकावे । इस पानीमें सब दवाइयें जौकूट कर डालदेना चाहिये और आमले वारीक थैलीमें ढीले बांधकर उसी जलमें डाल देने चाहिये । जब वारह सेर पानी जलकर ४ सेर पानी रहजाय तो उस पानीको छानकर अलग पात्रमें रख लेवे और थैलीमेंसे आंवले निकालकर उनकी गुठलियें निकालकर फेंक देवे । फिर इन आमलोंको सिल-पर पीसकर या हाथसे मथकर १२ पल घृत और तेलमें भूनलेवे । फिर पूर्वोक्त औष-धियोंके काथमें ५० पल मिसरी मिला चासनी बनावे । उस चासनीमें यह भुने-हुए आमले मिला देवे । विधिवत् अवलेह सिद्ध होनेपर उसको नीचे उतार लेवे । जब वह ठण्डा होजाय तो उसमें २४ तोला गहद मिला देवे और १६ तोला वंश-लोचन, ८ तोला पीपल, ४ तोला दालचीनी, ४ तोला इलायचीके बीज, ४ तोला तेजपत्र, ४ तोला नागकेशर, इन सबका वारीक चूर्णकर इसमें मिला देवे । इस अवलेहको च्यवनप्राश कहतेहैं । यह परम उत्तम रसायन है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

च्यवनप्राशके गुण ।

कासश्वासहरश्चैपविशेषेणोपदिश्यते । क्षीणक्षतानां वृद्धानां बाला-
नाश्चांगवर्द्धनः ॥ ६७ ॥ स्वरक्षयसुरोरो गंहद्रोगं वातशोणितम् । पिपा-
सांमूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चाप्यपकर्षति ॥ ६८ ॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जीतयो-
ऽवरुन्ध्यान्नभोजनम् । अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा
॥ ६९ ॥ मेधांस्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुः प्रकर्षवल्मिन्द्रि-
याणाम् । स्त्रीपुप्रहर्षपरमशिवृद्धिर्वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ ७० ॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपिकुटीप्रवेशात् ॥ जराकृ-
तरूपमपास्य सर्वविभक्तिरूपं नवयौवनस्य ॥ ७१ ॥

इति च्यवनप्राशः ।

इस च्यवनप्राशके सेवनसे खांसी और श्वास दूर होतेहैं । विशेषकरके च्यवनप्राशके सेवनसे क्षत, क्षीण, वृद्ध और बालकोंके अंगोंकी पुष्टि होती है । तथा हृदयके रोग, छातीके रोग, वातरक्त, प्यास, मूत्रके दोष, वीर्यदोष और स्वरकी क्षीणता यह सब नष्ट होतेहैं । इसकी इतनी मात्रा सेवन करना चाहिये जिससे अजीर्ण न होजाय । जब इसकी मात्रा पचजाय तो धुंधा लगनेपर दूध, चावल और घृतका भोजन करना चाहिये । च्यवनप्राशकी प्रायः दूधके अनुपानसे खाना चाहिये । इसके प्रयोगसेही च्यवनऋषि वृद्ध अवस्थावाले होने हुए भी फिर युवावस्थाको प्राप्त हांगये । इसके

सेवनसे मेधा, स्मृति, कांति, आरोग्यता, आयु यह सब वृद्धिको प्राप्त होतेहैं । तथा इन्द्रियोंका बल बढ़ताहै । स्त्रीगमनकी शक्ति होतीहै । जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । शरीरके वर्णका प्रकाश होताहै । वायु अनुलोम होताहै । इस च्यवन प्राश रसायनको यदि वृद्ध मनुष्य भी शुद्ध शरीर होकर कुटी प्रवेश विधिसे सेवन करे तो वृद्धावस्थाके रूपको त्यागकर संपूर्ण युवावस्थाके रूपसे संपन्न होजाताहै । पहिले यह रसायन अश्विनीकुमारोंने च्यवनऋषिको सेवन कराया था इसलिये इसको च्यवनप्राश कहतेहैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

चतुर्थआमलकीरसायन ।

अथामलकहरीतकीनामामलकविभीतकानामामलकहरीतकीवि-
भीतकानांवापलाशत्वगवनद्धानांमृदावलिप्तानांकुकूनस्विन्नानाम-
कुलकानांपलसहस्रमुल्लखलेसंपोथ्यदधिघृतमधुपललतैलशर्करा-
संप्रयुक्तंभक्षयेदनन्नभुग्यथोक्तेनविधिना । तस्यान्तेयवाग्वादिभिः
प्रकृत्यवस्थापनमभ्यङ्गोत्सादनसर्पिपायवचूर्णेश्चायञ्चरसायनप्रयो-
गप्रकषोद्विस्तावदग्निचलमभिसमीक्ष्यप्रतिभोजनयूपेणपयसावाप-
ष्टिकःससर्पिण्कोऽतःपरंयथासुखविहारः कामभक्ष्यःस्यात् । अनेन
प्रयोगेणऋषयःपुनर्युवत्वमवापुर्वभूवुश्चानेकवर्षशतजीविनोनिर्वि-
काराःपरंशरीरवृद्धीन्द्रियबलसमुदिताश्चेरुश्चात्यन्तनिष्ठंतपइति७२॥

इतिचतुर्थांमलकरसायनम् ।

आमले और हरड अथवा आमले और वहेडे या हरड, वहेडे, आमले इन तीनोंको पलाशकी छालसे लपेटकर ऊपर कपडामिट्टी करके गोलासा बनालेवे । फिर इस गोलको किसी बड़े मुखके बड़े पात्रमें रखदेवे । उस पात्रके नीचे बहुतने छेदकर उसको पानीसे पकते हुए बड़े पात्रके मुखपर रखदेवे । जब यह उम नीचेकी भागसे पक जायें तो उनको निकालकर गुठली आदि निकाल डाले और ऊपरके छिलकेको धारीक पीस लेवे या ऊखलमें कूट लेवे । इसप्रकार शुद्ध, स्वेदित कियाइआ यह हरड वहेडे आमलोंका छिलका १००० पल लेना चाहिये । फिर इसको घृत, दही, शर्करा, तिलोंका कल्क, तैल, मिसरी आदिसे विधिवत् सिद्धकरके विधिपूर्वक प्रातःकाल योग्य मात्रासे रसाया करे । और इसके सेवनमें अन्नका त्याग कर देवे । भूय लगे तो दूध पीवे । इसके अनन्तर जब शरीर शुद्ध होजावे तब यवागू और भिलेयी आदिसे शारीरिक स्वभावको ठीक करे अर्थात् क्रमसे स्वामाविक भोजन करनेलगे । जितने

दिन इस रसायनका सेवन कियाजाय, यवका आटा और घृत मिला शरीरपर उबटन लगाता रहे । इस रसायन सेवनके पश्चात् क्षुधाके समय अग्निबलके अनुसार यूप, घृत अथवा दूध-घृत या दूध और साठी चावल तथा घृत मिलाकर क्रमपूर्वक सेवन करे । और हितकारक आहार विहारका सेवन करे । इसके अनन्तर इच्छापूर्वक सुखकारी आहार विहार सेवन करे । इसके प्रयोगसे अनेक ऋषि वृद्धावस्थाको त्याग युवावस्थाको प्राप्त हुए । और निर्विकार रहकर पूर्णायुको भोगते रहे । तथा इसके सेवनसे शरीर बुद्धि और इन्द्रियोंके बलसे संपन्न होकर परमतप तपते थे ॥ ७२ ॥

५ हरीतक्यादि रसायन ।

हरीतक्यामलकविभीतकपञ्चपञ्चमूलनिर्व्यूहेणपिप्पलीमधुमधूक-
काकोलीक्षीरकाकोलीआत्मगुप्ताजीवकर्पभकक्षीरशुक्लाकल्कसंप्र-
युक्तेनविदारीस्वरसेनक्षीराष्टगुणसंप्रयुक्तेनचसर्पिपःकुम्भंसाधयि-
त्वाप्रयुंजानोऽग्निबलंसमवेक्ष्यैव । जीर्णेचक्षीरसर्पिभ्यांशालिपष्टि-
कमुष्णोदकानुपानमश्रञ्जराव्याधिपापाभिचारभ । व्यपगतशरीरः
चुद्धीन्द्रियबलमतुलमुपलभ्याप्रतिहतसर्वारम्भः । रसायुरवाप्नुया-
दिति ॥ ७३ ॥

इतिपञ्चमहरीतकी ।

हरड, आमले, बहेडे और पूर्वोक्त पांचों पंचमूलका काय बनावे । तथा पिंपली, मुलहठी, काकोली, क्षीरकाकोली, कौंचके वीजांकी गिरी, जीवक, ऋपभक, क्षीरविंदारी इन सबका कल्क बनावे । फिर कल्कसे आठगुना विदारीकंदका रस और आठगुना गौका दूध और कल्कसे ४ गुना घृत डालकर घृतपाकविधिसे घृतको सिद्धकरे । इस घृतको शुद्धकाय मनुष्य अग्निबल विचारकर सेवन करे । जब घृत जीर्ण होजाय तब दूध शाली अथवा साठीके चावल घृत और दूध मिलाकर खावे । परन्तु जल भोजनके समय भी गर्म ही पीवे । शीतल न पीवे । इस घृतके सेवनसे बुढापा, रोग, पाप किसीका क्रिया मंत्र, तंत्र आदि यह कोई शरीर पर अपना असर नहीं करसकने तथा शरीर, बुद्धि और इन्द्रियोंका बल अत्यन्त बढ़जाता है । संपूर्ण कामोंमें अप्रतिहत सिद्धि प्राप्त होती है । एवं आयुकी वृद्धि होताहै ॥ ७३ ॥

६ हरीतक्यादि रसायन ।

हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिरावचाविडङ्गामृतबल्लीविश्वभे-

पञ्चमधूकपिप्पलीसोमवंत्कसिद्धेनक्षीरसर्पिषामधुशर्कराभ्यामपि
चसन्नियामलकस्वरसशतपलपीतमामलकचूर्णमयश्चूर्णचतुर्भा-
गसम्प्रयुक्तं पाणितलमात्रं प्रातः प्रातः प्राश्य यथोक्तेन विधिना सायं
मुद्गयूपेण पयसा वा ससर्पिष्कंशालिषट्पिकमश्नीयात् । त्रिवर्षप्रयो-
गादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति श्रुतमेव तिष्ठते सर्वामयाः प्रशाम्य-
न्ति विषमविषं भवति गात्रे गात्रमश्मवत्स्थिरीभति अदृश्यो भूतानां
भवतीति ॥ ७४ ॥

हरड, आँवला, बहेडा, हल्दी, शालिपर्णी, वच, वायविडंग, गिलोय, सोंठ, मुलहठी,
पीपल और कथ इन सबके ककलसे और इनसे आठगुना दूध डालकर घृतको सिद्ध-
करे । जब वह शीतल होजाय तब शहद और मिसरी मिलावे फिर १००पल आमलेके
चूर्णको आमलेके स्वरसकी भावना दे वह चूर्ण भी इस घृतमें मिलावे और आमलेके
चूर्णसे चौथाभाग शुद्ध लोहभस्म, मिलावे । फिर इसमेंसे ६ मासासे आरंभकर दो
तोला तक कुटीप्रवेशविधिसे - नित्य प्रातःकाल खायाकरे । सायंकालमें मूंगके यूप
अथवा दूधके साथ घृतयुक्त शाली अथवा शाठी चावल भोजन करे । इस रसायनको
३ वर्ष पर्यन्त सेवन करना चाहिये । इससे १०० वर्ष पर्यन्त सफेद बाल या सलवट
बगैरह कोई वृद्धावस्थाका चिह्न नहीं होगा रोगरहित पूर्णआयुको भोगेगा । जिस
बातको एकवार सुने उसको कभी नहीं भूले, शरीरमें कोई रोग न हो, इस मनुष्यके
शरीरमें विष भी निर्विष होजाय, देह पत्यरके समान दृढ हो, भूत आदि इसको देख
न सकें और मनुष्योंका प्यारा हो ॥ ७४ ॥

भवन्ति चात्र ।

यथामराणाममृतं यथाभोगं वतां सुधा । तथा भवन्महर्षीणां रसायन-
विधिः पुरा ॥ ७५ ॥ नजरां च दौर्बल्यं नातुर्ष्यं निधनं न च । जग्मु-
र्वर्षसहस्राणिरसायनपराः पुरा ॥ ७६ ॥ न केवलं दीर्घमिहायुरश्नु-
ते रसायनं यो विधिवन्निपेवते । गतिं स देवर्षिनिपेवितां शुभां प्रपद्यते
ब्रह्मतथेति चाक्षरम् ॥ ७७ ॥

यहांपर कहते हैं कि जैसे देवताओंको अमृत, भोगी (वासुकी आदि नागों) को
सुधा होती है उसीप्रकार पूर्वसमयमें महर्षिलोगोंके लिये रसायन प्रयोग होता था
रसायन सेवन करनेवाले ऋषियोंको हजार वर्ष पर्यन्त भी बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, दुर्बलता

कोई नहीं होसकताया । रसायन सेवन करनेसे केवल आयुकी वृद्धि होतीहै इतना ही नहीं किन्तु विधिवत् रसायन सेवनसे देवता और ऋषियोंकरके सेवित हुआ अक्षय सुखको प्राप्त होताहै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

तत्रश्लोकः ।

अभयामलकीयेऽस्मिन्पद्मयोगाःपरिकीर्त्तिताः ।

रसायनानांसिद्धानामायुर्यैरनुवर्त्तते ॥

इति चरक० चिकित्सिते अभयामलकीयेरसायनपादः प्रथमः १.

यहां एक श्लोक है कि इस अभयामलकीय नामक अध्यायके प्रथम पादमें इन छः रसायनके योगोका वर्णन किया गयाहै । जो मनुष्य इन सिद्ध रसायनोंको सेवन करताहै उसकी वृद्धावस्था दूर होकर फिर युवावस्था प्राप्त होजातीहै और दीर्घायु होताहै ॥ ७८ ॥

इत्यभयामलकीये रसायनपादः प्रथमः ॥ १ ॥

अथातःप्राणकामीयंरसायनपादं व्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवान्नात्रेयः ॥ ७९ ॥

अब हम प्राणकामीय रसायनपादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ७९ ॥

प्राणकामाःशुश्रूषध्वमिदमुच्यमानममृतमिवापरमदितिसुतहितकरमचिन्त्याद्भुतप्रभावमायुष्यमारोग्यकरंवयसःस्थापनंनिद्रातन्द्राश्रमकुमालस्यदौर्बल्यापहरमनिलकफपित्तसाम्यकरंस्थैर्यकरमवच्छमांसंहरमन्तराग्निस्न्धुक्षणंप्रभावर्णस्वरोत्तमकरंरसायनविधानम् । अनेनच्यवनादयोमहर्षयःपुनर्युवत्वमापुः । नारीणांचेष्टतमावभूवुः । स्थिरसमसुविभक्तमांसाःसुसंहतस्थिरशरीराःसुप्रसन्नवलवर्णान्द्रियाःसर्वत्राप्रातिहतपराक्रमाःसर्वक्लेशसहाश्च ॥ ८० ॥

हे धायुके वढानेकी इच्छावाले मनुष्यो ! अब जिस प्रकारके रसायनका वर्णन करतेहैं यह भी दूसरे अमृतके समान है । यह रसायन अचिन्त्य, अद्भुतप्रभाववाला, आयुष्य, आरोग्यकारक, अवस्थास्थापक, निद्रा, तन्द्रा, श्रम, तृम और दुर्बलताको हृण करनेवाला वातादिदोषोंको दूरकर शरीरको दृढ तथा आलस्यग्रहित पनाताहै । तथा मांसकी शिथिलता दूरकर अग्निा दीपन करताहै एवं, प्रभाव, वर्ण

और स्वरको उत्तम करताहै । यह रसायन देवताओंको भी हितकारी है और इसीके द्वारा च्यवनादि ऋषियोंने फिर वृद्धावस्थासे युवावस्था प्राप्त की थी । इसके सेवनसे शरीरका मांस दृढ, सम और सुविभक्त रहताहै तथा बल, वर्ण और इन्द्रिये सब प्रसन्न रहतीहैं, पुरुषका पराक्रम कभी घटता नहीं एवं क्लेशोंको सहन करनेकी शक्ति रहतीहै ८०

सर्वेशरीरदोषाभवन्तिग्राम्यायाहारादम्ल-लवण-कटक-क्षारशु-
ष्कशाकमाषतिलपल्लपिष्टान्नभोजिनां विरूढनवशूकशमीधान्य-
विरूद्धासात्म्यरूक्षक्षाराभिष्यन्दिभोजिनां क्लिन्नगुरुपूतिपर्युषित-
भोजिनां विपमाशनाध्यशनाप्रियाणां दिवास्वप्नस्त्रीमद्यनित्यानां वि-
पमातिमात्रव्यायामसंक्षोभितशरीराणां भयक्रोधशोकलोभमोहा-
यासबहुलानामतो निमित्ताद्धिशिथिली भवन्ति मांसा निविमुच्य-
न्ते सन्धयो विदह्यते रक्तं विष्यन्दते चानल्पं मेदोनसन्धीयतेऽस्थिपुम-
ज्जाशुक्रं न प्रवर्त्तते क्षयमुपैत्योजः स एव भूतो ग्लायति सीदति निद्रा त-
न्द्रालस्य समन्वितो निरुत्साहः श्वासितिः । असमर्थश्चेष्टानां शारीर-
मानसानां नष्टस्मृतिवृद्धिच्छायोरोगाणामधिष्ठानभूतो न सर्वमायु-
रवाप्नोति । तस्मादेतान्दोषानवेक्षमाणः सर्वान्यथोक्तानहितान-
पास्याहारविहारानुरसायनानि प्रयोक्तुमर्हति ॥ ८१ ॥

असात्म्य आहारोके सेवनसे अथवा खट्टे, नमकीन, चरपरे, क्षार, रूक्ष तद्
शुष्क शाक, उडद, तिल अनूपसंचारी जीवोंका मांस विरूढ या नवीन शूक आ
शमीधान्य या अभिष्यन्दी, क्लिन्न, भागी, दुर्गंधयुक्त, वासी अन्न, विपमन्न आदिये
सेवनसे अथवा अध्यशन, दिनमें सोना, स्त्रीसंग, मद्य, विपम वा अत्यंत ल्प्यायाम,
एवं भय, शोक, क्रोध, लोभ, मोह और अत्यंत परिश्रम इनके अधिक सेवनसे ही
शरीरमें सब प्रकारके दोष उत्पन्न होकर देहके मांसको शिथिल करदेंतै, संधिमें
ढीली होजाती हैं, रक्त विदाही तथा क्लेद्युक्त हो निगडजाताहै मेद अत्यंत निष्यंदित
होजाताहै और मज्जा अस्थियोंमें संपन्न नहीं होती एवं शुक प्रवृत्त नहीं होता तथा ओजका
क्षय होजाताहै । इसप्रकार ग्लानि, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, निरुत्साह और श्वासकी
वृद्धि होतीहै । शारीरिक और मानसिक चेष्टायें निर्यल होजातीहैं । स्मृति, बुद्धि
और कान्तिका नाश हो शरीर रोगोंका घर बनजाता तथा मनुष्य अल्पायु होजाता
है । इसलिये मनुष्यको उचित है कि उपरोक्त दोषोंको देसनाहुआ असात्म्य आहार
विहारोंका त्याग कर रसायनका सेवन करे ॥ ८१ ॥

आमलक घृत रसायन ।

इत्युक्त्वा भगवान्पुनर्वसुरात्रेय उवाच । आमलकानां सुभूमिजानां
कालजानामनुपहतगन्धवर्णरसानामापूर्णरसप्रमाणवीर्याणां स्वर-
सेनपुनर्नवाकल्कपादसंप्रयुक्तेन सर्पिषासाधयेदाढकमतः परं विदारी-
स्वरसेनजीवन्तीकल्कसंप्रयुक्तेन । अतः परंचतुर्गुणेन पयसा वा वला-
तिवलाकपायेण शतावरीकल्कसंप्रयुक्तेन । अनेन क्रमैर्गैकैकं शत-
पाकं सहस्रपाकं वा शर्कराक्षौद्रचतुर्भागसंयुक्तं सौवर्णे राजते मार्त्तिके-
वाशुचौदृढे घृतभावि ते कुम्भे स्थापयेत् । तद्यथोक्तेन विधिना यथा-
ग्निप्रातःप्रातःप्रयोजयेत् । जीर्णैश्चक्षीरसर्पिर्भ्यां शालिषट्ठिकम-
श्रीयात् । अस्य प्रयोगाद्द्वर्षशतं वयोऽजरं तिष्ठति श्रुतमवतिष्ठते सर्वा-
मयाः प्रशाम्यन्ति अप्रतिहतगतिः स्त्रीष्वपत्यवान् भवति ॥ ८२ ॥

इस प्रकार कहकर भगवान् आत्रेयजी कहने लगे कि उत्तम समयमें उत्तम पृथ्वीमें
उत्पन्न हुए संपूर्ण गंध, वर्ण, रस, संपन्न, पूर्ण प्रमाण, वीर्य संपन्न आमलोंका स्वरस
और उस स्वरससे चौथा भाग पुनर्नवाका कल्क लेवे । १६ सेर दूध, १६ सेर बला
और अतिबलाका क्वाथ, १ सेर शतावरीका कल्क इन सबको मिलाकर ४ सेर पक्का
घृत सिद्ध करे तथा विदारीकंदके स्वरससे और जीवन्तीके कल्कसे चारगुना
दूध मिला इस १ आढ़क घृतको सिद्ध करे । इस प्रकार क्रमसे १०० बार अथवा १०००
बार उपरोक्त औषधियोंके स्वरसक्वाथ द्वारा घृतपाक विधिसे घृतको सिद्ध करे । फिर
चौथा भाग मिसरी और मिलावे । फिर इन सब औषधियोंको सोना, चांदी
अथवा घृतसे चिकने मट्टीके पात्रमें भरकर रख देवे । इस रसायनको यथोक्त विधिके
अनुसार जठराग्निका बलावल विचारकर प्रातःकाल सेवन करे । जीर्ण होनेपर साठी
अथवा शाली चावलोंका भात दूध घृतके संयोगसे भोजन करे । इसके प्रभावसे मनुष्य
१०० वर्षतक वृद्धावस्था रहित रहता है । सुनी हुई वातको धारणकर लेता है अर्थात्
सुनने मात्रसे ही शास्त्रोंको यादकर लेता है । सब रोग शान्त होते हैं । संपूर्ण इच्छाओंको
निर्विघ्नतासे पूर्णकरसके अथवा कोई आरंभ निष्फल न हो स्त्रियोंमें संतान उत्पन्न
करनेकी शक्ति उत्पन्न हो ॥ ८२ ॥

भवति चात्र ।

बृहच्छरीरंगिरिसारसारंस्थिरेन्द्रियञ्चातिबलेन्द्रियञ्च । अधृष्यम-
न्यैरतिकान्तरूपं प्रशस्तपूजासुखचित्तभाक्च ॥ ८३ ॥ बलं महद्व-

र्णविशुद्धिरग्न्याखरोधनौघस्तनितानुकारी । भवत्यपत्यंविपुलंस्थि-
रञ्चसमंजनतोयोगमिमंनरस्य ॥ ८४ ॥

इसके गुणोंके विषयमें यहांपर कहतेहैं कि जो मनुष्य इस आमलक घृत रसा-
यनको सेवन करताहै वह बृहत्काय पर्वतके समान सारयुक्त, दृढ इन्द्रियोंवाला तथा
इन्द्रियोंके बलसे सम्पन्न होताहै । कोई मनुष्य भी इसको जीत न सके, अत्यंत सुन्दर
स्वरूपवाला योग्य पुरुषोंसे पूजित, सुखी और शुद्ध चिंतवाला होताहै तथा महाबल-
वान्, सुन्दर शुद्ध वर्णवाला, मेघके समान गंभीर स्ववाला, बिजलीके समान गरज-
नेवाला बहुत और दृढ संतानके सुखको भोगताहै ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

आमलकावलेह ।

आमलकसहस्रं पिप्पलीसहस्रसंप्रयुक्तं पलाशतरुभस्मनःक्षारोदको-
त्तरं तिष्ठेत् । तदनुगतक्षारोदकमनातपशुष्कमनस्थिचूर्णीकृतं च-
तुर्गुणाभ्यांमधुसर्पिभ्यांसनीयशर्कराचूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तं घृतभा-
जनस्थं पणमासान्स्थापयेदन्तर्भूमेस्तस्योत्तरकालमग्निबलसमांसा-
त्रांखादेत्पौर्वाहिकः प्रयोगः । सात्त्व्यपथ्यश्चाहारविधिर्नापराहिकः ।
अस्य प्रयोगाद्द्वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति समानं पूर्वेण ॥ ८५ ॥

१००० उत्तम पकेहुए आमले और १००० पीपल इन दोनोंको ढाक (पलाश) के
छिलकोंकी क्षार और पानी मिलाकर उसमें भिंगो देवे और छायामें रखे । जब
वह क्षार इन पीपल और आमलोंमें सूखजाय तो इन आमलोंकी गुठलियों दूरकर
खुब सुखाकर पीपल और आमलेका चारीक चूर्ण करलेवे । फिर इसमें चौगुना घृत
और शहद मिलावे और चौथा भाग मिसरी मिलाकर घीके चिकने बरतनमें घंदकर
पृथ्वीमें गाड देवे और छः महीने पर्यन्त गडा रहनेदेवे । फिर इसको निकालकर
अग्निबलके समान उचित मात्रासे प्रातःकाल खायाकरे । औषधिके जीर्ण होनेपर
सात्त्व्य और पथ्य भोजन किया करे । फिर रात्रिके समय कुछ न खाय, इसके
सेवनसे १०० वर्षतक मनुष्य अजर अर्थात् बृद्धावस्थारहित रहताहै ॥ ८५ ॥

दूसरा आमलकावलेह ।

आमलकचूर्णाढकमेकविंशतिरात्रमामलकसहस्रस्वरसपरिपीतम-
धुघृताढकाभ्यांद्वाभ्यामेकीकृतमष्टभागपिप्पलीकंशर्कराचूर्णचतु-
र्भागसम्प्रयुक्तं घृतभाजनस्थं प्राग्घृपिभस्मराशौनिदध्यात्तद्वर्षान्तेसा-

त्स्यपथ्याशीप्रयोजयेत् । अस्यप्रयोगाद्द्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठती-
तिसमानंपूर्वेण ॥ ८६ ॥

४ सेर आमलोंके चूर्णको १००० आमलोंके स्वरसमें २१ दिन भावना देवे । फिर इस चूर्णको शहद और घृत २ आढक लेकर उसमें आठवाँ भाग पीपलका चूर्ण और चतुर्थ भाग मिसरी इन सबको मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें भर देवे । और वर्सातमें इस औषधीसे भरे पात्रको भस्ममें गाड देवे । वर्सातके पीछे अर्थात् आश्विनके महीनेमें इसको निकालकर विधिपूर्वक सेवन करे और पथ्य भोजन करे । इसके प्रभावे मनुष्य पहिली अवस्थाके समान वृद्धावस्थारहित १०० वर्षतक नीरोग रहताहै ॥ ८६ ॥

विडङ्गावलेह ।

विडङ्गतण्डुलचूर्णानामाढकंपिप्पलीतण्डुलानामध्यर्द्धाढकंसितो-
पलासर्पिस्तैलमध्वर्द्धाढकैःपड्भिरेकीकृतघृतभाजनस्थंप्रावृषिभ-
स्मराशावितिसर्वसमानंपूर्वेणयावदाशी ॥ ८७ ॥

वायविडंगके चावलों (तुपरहित वायविडंग) का चूर्ण १ आढक, पीपलके स्वच्छ कणकोंका चूर्ण आधा आढक, मिसरी आधा आढक, घृतआधा आढक, तैल आधा आढक, शहद आधा आढक इन छः द्रव्योंको एककर धीके चिकने पात्रमें बन्दकर श्रावणके महीनेमें भस्मके ढेरके नीचे दवा दे । और आश्विनके महीनेमें निकालकर विधिवत् प्रयोग करनेसे पूर्वोक्त संपूर्ण गुणोंको करताहै ॥ ८७ ॥

तीसरा आमलकावलेह ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रमार्द्रपलाशद्रोण्यांसपिधानायां
वाष्पमनुद्रमन्त्यामारण्यगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत् । तानि
सुखिन्नशीतानिउद्धृतकुलकान्यापोथ्याढकेनपिप्पलीचूर्णानामाढ-
केनचविडङ्गतण्डुलचूर्णानामध्यर्द्धेनचाढकेनशर्कराचूर्णानांद्राभ्यां
द्राभ्यामाढकाभ्यांतैलस्यमधुनःसर्पिपश्चसंयोज्यशुचौदृढेघृतभा-
वितेकुम्भेस्थापयेदेकविंशतिरात्रमतऊर्द्ध्वंप्रयोगः । अस्यप्रयोगा-
द्द्वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठतीतिसमंपूर्वेण ॥ ८८ ॥

उत्तम सर्वगुणसम्पन्न १००० आँवलोंको गीली ढाककी लकडी या छिलकोंमें लपेटकर कपडामिट्टीकर जंगली उपलोंकी अग्नि द्वारा पकावे परन्तु इतने उपले लगावे

जिसमें वह आँवले जलने न पावें केवल अग्निकी गर्मांसि पकजाने चाहिये । फिर इनको निकालकर ठण्डे होनेपर इनकी गुठलियं दूरकर इनमें १ आढक पीपलका चूर्ण और १ आढक तुपराहित विडंगका चूर्ण, १॥ डेढ आढक मिसरी, दो आढक तैल, २आढक शरद और २ आढक घृत इन सबको मिलाकर एक घनजानेपर घी के चिकने पात्रमें भरके २१ दिन धरा रहने देवे । फिर विधिवत् प्रयोग करनेसे मनुष्य पूर्वावस्थाके समान, बल, वीर्य संपन्न, वृद्धावस्थाराहित १०० वर्ष पर्यन्त आयुके सुखको भोगताहै ॥ ८८ ॥

नागबला रसायन ।

धन्वनिकुशास्तीर्णेस्त्रिगन्धकृष्णमधुरमृत्तिकेसुवर्णवर्णमृत्तिकेवाव्यप-
गतविपश्वापदपवनसलिलाभिदोपैकर्पवल्मीकश्मशानचैत्योपररस-
वर्जितेदेशेयथर्तुसुखपवनसलिलादित्यसेवितेजातान्यनुपहतान्यन-
ध्यारूढान्यवालान्यजीर्णान्यविगतवीर्याणिशीर्णपुराणपर्णान्य-
सजातफलानितपसितपस्येवामासेशुचिःप्रयतःकृतदेवार्चनःस्व-
स्तिवाचयित्वाद्विजातीनसुमुहूर्त्तेनागबलामूलान्युद्धरेत् । तेषांसु-
प्रक्षालितानांत्वकूपिण्डमात्रमात्रमक्षमात्रंवाश्लक्ष्णापिष्टमालोड्ये
पयसाप्रातःप्रयोजयेच्चूर्णीकृतानिवापिवेत् । पयसामधुसर्पिभ्यां
वासंयोज्यभक्षयेत् । जीर्णेचक्षीरसर्पिभ्यांशालिपाष्टिकमश्नीयात् ।
धवखदिरशिशपासनसारणाश्वासंवत्सरप्रयोगादस्यवर्षशतमजर-
मायुस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥ ८९ ॥

उत्तम जांगल भूमिमें जिस जगह कुशा उत्पन्न होरहीहो और काली, या सुवर्णके समान पीली एवं मधुर और चिकनी मिट्टी हो, जिस स्थानमें किसी प्रकारका विप या विपधर जानवर अथवा कुत्ते आदि न फिरते हों और किसी पवन, जल या अग्निसे दग्ध आदि उपद्रवयुक्त न हो, जिस स्थानमें खेती, सांपकी बँवई, श्मशान, किसी देवताका स्थान अथवा ऊपर मिट्टीका संसर्ग न हो तथा ऋतुकालके अनुकूल पवन, जल, धूप आदिका यथोचित संसर्ग होताहो ऐसी भूमिमें सर्वगुणसंपन्न योग्य रीतिपर नागबला उत्पन्न होरही हो वह नागबला किसी वृक्षकी छाया अथवा बेल आदिसे ढकीहुई न हो एवं कच्ची, पुरानी, सूखी, हीनवीर्य, सूखे सडे पत्रोंवाली किसी कीटआदिकी खापीहुई न हो, जिसमें अभी फल न आयेहों । ऐसी नागब-
लाको माघ अथवा फाल्गुनके महीनेमें विधिपूर्वक प्रातःकाल पवित्र हो, देवता आदि-

कौंका पूजन कर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करा उत्तम मुहूर्तमें नागवला (गोंगरन)की जड़ोंको उखाडकर लावे । उन जड़ोंको सुन्दर जलसे धोकर उन जड़ोंकी छाल १ तोला अथवा दो तोला या चार तोला मात्र लेकर बारीक पीसलेवे । उसको दूधमें घोलकर अथवा उसका चूर्ण दूधमें घोलकर प्रातःकाल पीजावे । अथवा शहद घृत और दूधमें मिलाकर पीवे । मात्रा जीर्ण होनेपर दूध, घृत और साठके चावलोंका भोजन करे । इसी प्रकार धव, खदिर, शीशम, विजेसार, अम्बाडाकी जडका प्रयोग भी किया जाताहै । इसका १ वर्ष प्रयोग करनेसे मनुष्य बलवर्णादि संपन्न पूर्व अवस्थाके समान वृद्धावस्थारहित १०० वर्ष आयुके सुखको भोगताहै ॥ ८९ ॥

बलादिक रसायनद्रव्य ।

बलातिबलाचन्दनागुरुधवतिनिशखदिरशिशपासनस्वरसाःपुनर्न-
वान्ताश्रौषधयोदशयेवयःस्थापनाव्याख्यातास्तेषांस्वरसानागवला-
वस्वरसानामलाभेत्वयंस्वरसविधिश्चूर्णानामाढकमुदकस्याहोरात्र-
स्थितंमृदितपूतंस्वरसवत्प्रयोज्यम् ॥ ९० ॥

बला, अतिबला, चंदन, अगर, धव, तिनिश, खैर, शीशम, विजेसार इन सब वृक्षोंका स्वरस और लघु पंचमूल, बृहत् पंचमूल तथा पुनर्नवा इन ग्यारह औषधि-
योंका स्वरस इन सबको मिलाकर नागवला रसायनके समान सेवन करे । इनके सेवन करनेसे नागवला रसायनके समान गुण होताहै । यदि इनका स्वरस न मिल सके तो औषधोंका चूर्ण १ आढक लेकर, १ आढक जलमें भिंगो रक्खे, १ दिन रात्रिके बाद मलकर छान लेवे । इस रसका स्वरसके समान प्रयोग करे ॥ ९० ॥

भल्लातकक्षीर ।

भल्लातकानिअनुपहतानिअनामयानिआपूर्णरसप्रमाणवीर्याणिप-
क्कजाम्बवप्रकाशानिशुचौशुक्रेवामासेसंगृह्ययवपल्वेमापपल्वेवानि
धापयेत् । तानिचतुर्मासस्थितानिसहस्येवामासेप्रयोक्तुमारभेत ।
शीतस्निग्धमधुरोपस्कृतशरीरःपूर्वदशभल्लातकान्यापोथ्याष्टगुणेना-
म्भसासाधुसाधयेत् । तेषारसमष्टभागावशिष्टंपूतंसपयस्कंपिवित्स-
र्षिषान्तर्मुखमभ्यज्यतानिएकैकभल्लातकोत्कर्षापकर्षेणदशभल्लात-
कानिआत्रिंशतःप्रयोज्यानि । नातःपरसुत्कर्षःप्रयोगविधानेना-
सहस्रपरएवभल्लातकप्रयोगः । जीर्णेचसर्षिषापयसाशालिपट्टिका-

शनमुपचारःप्रयोगान्तेचद्विस्तावत्पयसैवोपचारस्तत्प्रयोगाद्वर्षश-
तमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥ ९१ ॥

ज्येष्ठ अथवा आषाढके महीनेमें उत्तम शुद्ध रस, वीर्यसे पूरित काले जामुनके समान पके हुए पूर्ण प्रमाणके भिलावेको ला, पहिले यव अथवा उडदकी राशिमें चार महीने पर्यंत गाडकर रख देवे। फिर चार महीनेके उपरांत मार्गशीर्ष या पौष महीनेमें उनको निकालकर इस प्रकार सेवन करना आरंभ करे। पहिले दिन दश भिलावोंको कूटकर उससे आठगुने जलमें डालकर अग्निपर चढा दे जब पानी १ भाग रहजाय तो उसे उतारकर छान ले फिर दूधमें डाल इसका सेवन करे। भिलावा सेवन करनेसे शीत त्रिगुण मधुरकाय मनुष्य प्रथमको सुख और तालुमें अच्छी रीतिसे घृत चुपड लेना चाहिये। दूसरे दिन ११, तीसरे दिन १२ इसी प्रकार क्रमसे प्रतिदिन एकएक भिलावेको अधिक करता हुआ तीस पर्यन्त बढ़ावे फिर क्रमशः घटाते हुए दशपर ले आवे। इस प्रकारसे एकमहीना ३० तक बढ़ावे और एकमें घटानेमें १००० भिलावे पर्यन्त सेवन होजाताहै इससे अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। जब औषधी भले प्रकार जीर्ण होजाय तब शालिचावल दूध और घृतके साथ भोजन करे। तथा भिलावेका सेवन करना छोड देनेपर भी शालिचावलका भात दूध और घृतके साथ सेवन करना उचित है। इस प्रकार कहीहुई इस भल्लातेक रसायनसेवनसे १०० वर्ष पर्यन्त मनुष्य नीरोग होकर अजर अर्थात् वृद्धावस्थासे रहित हो सुख भोगताहै ॥ ९१ ॥

द्वितीय भल्लातक रसायन ।

भल्लातकानांजर्जरीकृतानांपिष्टस्वेदनंपूरयित्वाभूमौआकण्ठनि-
खातस्यस्नेहभावितस्यदृढस्योपरिकुम्भस्यारोप्योदुपेनापिधाय
कृष्णमृत्तिकावलिसंगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत्तेपांयःस्वरसःकुम्भंप्र-
पद्येतततोऽष्टभागमधुसम्प्रयुक्तंद्विगुणघृतमद्यात् । तत्प्रयोगाद्वर्ष-
शतमक्षरंवयस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥ ९२ ॥

१ भिलावा अनुचित रीतिसे सेवन कियाहुआ विपत्ते भी अधिक हानिकारक है इसका छीटा लगनेसे या हवा लगने मात्रसे ही शरीरमें सूजन खाज कभी जरम तक होजातेहैं इसके खानेका क्रम पहलें दिन एक, दूसरे दिन २, तिसरे दिन तीन, इस क्रमसे ३० बढ़ावे फिर घटाते २ एक पर लाकर छोडदे इसका साथ उपरोक्त रीतिमे दूधमें मिलाकर पीवे कोई भिलावेकी मींगीको ही इस क्रमसे सेवन करना कहतेहैं किसी घेयके बिना स्वयं ही भिलावा कभी नहीं खाना चाहिये ।

ऊपरकी टोपी वगैरह दूरकर शुद्ध भिलावेको बारीक पीसकर पीठी बना एक ऐसी हाँडीमें जिसके नीचे छेद हों भरकर ऊपरसे ढक देवे। और काली मिट्टीसे उसके मुखको बंद करदेवे। फिर १ घृतकी चिकनी हाँडीको मुखपर्यन्त जमीनमें गाडदेवे। उसके ऊपर इस भिलावोंसे भरीहुई हाँडीको रख देवे और विधिवत् संविध्य जोडकर इसके चारों ओर गोधरी लगाकर आग लगा देवे। फिर शीतल होनेपर नीचेके गढ़में आगकी गर्मीसे जो भिलावेका रस या तेल टपकाहुआ हो उसको निकालकर उसमेंसे उचित मात्रा लेकर उसमें आठ भाग शहद और दोगुना घृत मिलाकर पहिले दूसरे घृतसे मुख चिकनाकर फिर इस घृतशहदयुक्त भिलावेके तेलको पीजावे। इसके विधिवत् सेवनसे मनुष्य बल, वर्ण संपन्न, दृढइन्द्रिय, पूर्वअवस्थाके समान, वृद्धावस्थारहित १०० वर्ष आयुके मुखको भोगताहै ॥ ९२ ॥

भल्लातकतेल ।

भल्लातकतैलपात्रंसपयस्कमधुकेनकल्केनाक्षमात्रेणशतपाकंकुर्यात्समानपूर्वेण ॥ ९३ ॥

भिलावेके चार सेर तैलको दूध और सुलहठीके कल्कसे १०० बार पकावे फिर इसमेंसे १ तोला नित्य दूधमें मिलाकर पीया करे तो पूर्व अवस्थाके समान, बल, वर्ण, इन्द्रिय संपन्न रोगरहित और वृद्धावस्थारहित होकर १०० वर्षकी आयुके मुखको भोगताहै ॥ ९३ ॥

भल्लातकविधान ।

भल्लातकक्षीरंभल्लातकक्षौरंभल्लातकतैलमेवंगुडभल्लातकयूषोभल्लातकभल्लातकसर्पिर्भल्लातकपललंभल्लातकसक्तवोभल्लातकलवणंभल्लातकतर्पणमितिभल्लातकविधानमुक्तम् ॥ ९४ ॥

इसप्रकार भिलावेका दूध, भिलावेकाशहद, भिलावेका तैल, भिलावेका गुड, भिलावेका यूष, भिलावेका घृत, भिलावेकी पीठी, भिलावेकी सजू, भिलावेका नमक, भिलावेका तर्पण यह सब भिलावेकी पृथक् २ क्रियाये होतीहैं। बुद्धिमान् वैद्य युक्तिपूर्वक जहां जो जिसप्रकार होसकताहो उस प्रकार प्रयोग करे। इसप्रकार भिलावोकी विधि कहीगई है ॥ ९४ ॥

१ भिलावेकी हरएक क्रिया पहिले हाथोंको घृत या तैल चुपडकर करना चाहिये। चिकनाई न लगानेसे भिलावेका तेउ जिस जगह लगजायगा उसी जगह सृजन और खाज उत्पन्न होजातीहै भिलावेके सेवन समय जितना घी पचसके सेवन करे।

भिलावेके गुण ।

भवन्ति चात्र ।

भल्लातकानितीक्ष्णानिपाकीन्यांसिसमानिच । भवन्त्यमृतकल्पानिप्रयुक्तानियथाविधि ॥ ९५ ॥ एतेदशविधास्त्वेषांप्रयोगाःपारिकीर्त्तिताः । रोगप्रकृतिसात्त्व्यज्ञस्तान्प्रयोगान्प्रकल्पयेत् ॥ ९६ ॥ कफजोनसरोगोस्तिनविवन्धोऽस्तिकश्चन । यंनभल्लातकंहन्याच्छीघ्रमेधाशिवर्द्धनम् ॥ ९७ ॥

यहांपर कहाहै कि भिलावे अत्यंत तीक्ष्ण और अग्निके समान पाचक होतेहैं । इनको विधिपूर्वक प्रयोग कियाहुआ अमृतके समान गुण करताहै । इनका दश प्रकारसे प्रयोग करनेकी विधि कही जाचुकीहै । उनमें रोग, प्रकृति और सात्त्व्यको जाननेवाला वैद्य जिस मनुष्यके लिये जिस प्रकार प्रयोग करना उचित समझे उस प्रकार सेवन करावे । कफसे उत्पन्न हुआ कोई रोग अथवा किसीप्रकारका विबंध ऐसा नहीं है जिसको भिलावेका सेवन नष्टन करे । यह भिलावेका सेवन मेधा और अग्निको अत्यन्त बढ़ानेवाला है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

रसायनकी उत्कृष्टता ।

प्राणकामाःपुराजीर्णाश्च्यवनाद्यामहर्षयः । रसायनैःशिवैरेतैर्वभूवुरमितायुयः ॥९८॥ ज्ञानंतपोब्रह्मचर्य्यमध्यात्मंध्यानमेवच । दीर्घायुपोयथाकामंसंभुज्यत्रिदिवंगताः ॥९९॥ तस्मादायुःप्रकर्षार्थंप्राणकामैःसुखार्थिभिः । रसायनविधिःसेव्योविधिवत्सुसमाहितैः॥१००॥

इसप्रकार कल्याणप्रद इन रसायनोंके प्रयोगसे आयुकी कामनावाले च्यवनादिक वृद्ध महर्षि भी अमित आयुको प्राप्तहुए । तथा इन रसायनोंके प्रभावसे ही वह दीर्घायु ऋषि ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य, अध्यात्मज्ञान और ध्यान (योग समाधि) को प्राप्त होकर अपनी इच्छानुसार स्वर्गको प्राप्त हुए । इसलिये दीर्घायु होनेकी इच्छावाले और सुखकी इच्छावाले मनुष्योंको आयुको उत्तम बनानेके लिये सावधान होकर विधिपूर्वक रसायन सेवन करना चाहिये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

तत्रश्लोकः ।

रसायनानांसंयोगाःसिद्धाभूतहितैपिणा ।
निर्दिष्टाःप्राणकामीयेसतचैवंदशर्षिणा ॥ १०१ ॥
इति प्राणकामीयेरसायनपादोद्वितीयः ॥ २ ॥

यहांपर पादके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस प्राणकामीय रसायन पादमें सत्रह प्रकारकी सिद्ध रसायनोंको संपूर्ण मनुष्योंके हितके लिये भगवान् आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ १०१ ॥

इति प्राणकामीयो नाम रसायनपादो द्वितीयः ॥

अथातः करप्रचितीयं रसायनपादं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवान्
नात्रेयः ॥ १०२ ॥

अब हम करप्रचितीय नामक रसायनपादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ १०२ ॥

आमलकायसकीय रसायन ।

करप्रचितानां यथोक्तगुणानामामलकानामुद्धृतास्थनां शुष्कचूर्णितानां पुनर्माषिफाल्गुने वामासेत्रिःसप्तकृत्वःस्वरसपरिपीतानां पुनःशुष्कचूर्णीकृतानामाढकमेकं ग्राहयेत् । अथ जीवनीयानां वृंहणीयानां स्तन्यजननानां शुक्रवर्द्धनानां वयःस्थापनानां षड्विरेचनशताश्रित्योक्तानामौषधगणानां चन्दनागुरुधवखदिरशिशपासनसारणाश्चाणुशदिछन्नानां क्षितानामभयाविभीतकपिप्पलीवचाचव्यचित्रकविडङ्गानाञ्च समस्तानामाढकमेकं दशगुणेनाम्भसासाधयेत् । तस्मिन् आढकावशेषे सुपूते तानि आमलकचूर्णानि दत्त्वा गोमयाग्निभिर्विशविदलशरतेजनाग्निभिर्वासाधयेत् । यावदपनयाद्रसस्य तमनुपदग्धमुपहृत्यायसीपुपात्रीष्वास्तीर्य्यशोपयेत् । सुशुष्कतं कृष्णाजिनस्योपरि दृषदिश्लक्ष्णपिष्टमयःस्थाल्यानि धापयेत् । सम्यक् तच्चूर्णमयश्चूर्णाष्टभागसम्प्रयुक्तं मधुसर्पिर्भ्यामग्निबलमभिसमीक्ष्य प्रयोजयेदिति ॥ १०३ ॥

समयपर उत्तम पकेहुए सर्वगुणसंपन्न आमलोंको माघ या फाल्गुनके महीनेमें वृक्षके ऊपरसे हाथसे छांट २ कर तोड़े । फिर इनकी गुठलियें निकालकर फेंक दें और इन गुठलीरहित आमलोंको सुखाकर धारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको गीले आवलोंके रसकी इक्षीत भावना देकर धारीक पीस लेवे । यह चूर्ण पीसाहुआ सुखा ४ सेर (१ आढक) लेवे । फिर षड्विरेचन शताश्रित्य अध्यायमें कहीहुई

जीवनीय, बृंहणीय, स्तन्यवर्द्धक, शुरुजनक और ध्वस्थास्थापक ये सब औषधियें तथा लालचंदन, अगर, धव, खदिर, शीशम, विजयसार इन सब औषधियोंको १ आढक लेकर जौकूट करके दशगुने जलमें काथ बनावे । जब नौभाग जलकर १ आढक जल शेषरहजाय तो उसको छानलेवे । फिर इस काथमें पूर्वोक्त आवलोंका चूर्ण मिलाकर, जंगली उपले अथवा बंसपत्री या नरसलकी मंदमंद आंचसे इसको पकावे । जब पानी सूखनेपर आवे तब इसको उतारकर लोहेके पात्रमें बिछाकर सुखावे । जब अच्छीप्रकार सूखजाय तो इसको पहिले काले मृगका चर्म नीचे बिछाकर उसके ऊपर सिल रख उस सिलपर खूब वारीक पीसे । फिर इस पीसेहुए चूर्णको उत्तम पात्रमें भरकर रख देवे । इस चूर्णमें आठवां भाग लोहमसम भिलाकर शहद और घृतके संयोगसे अग्निबल विचार, सेवन करे ॥ १०३ ॥

इसके गुण ।

तत्रश्लोकाः ।

एतद्रसायनंपूर्ववशिष्टःकश्यपोऽंगिराः । जमदग्निर्भरद्वाजोभृगुरन्ये-
चतद्विधाः ॥ १०४ ॥ प्रयुज्यप्रयत्तामुक्ताःश्रमव्याधिजराभयात् ।
थावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महावलाः ॥ १०५ ॥ तपसाब्रह्मच-
र्येणध्यानेनप्रशमेनच । रसायनविधानेनकालयुक्तेनचायुषा ॥
॥ १०६ ॥ स्थितामहर्षयःपूर्वनहिकिञ्चिद्रसायनम् । ग्राम्याणाम-
न्यकार्याणांसिद्धिश्चाप्रयत्तात्मनाम् ॥ १०७ ॥ इदंरसायनंचक्रे
ब्रह्मावार्पसहस्रिकम् । जराव्याधिप्रशमनंबुद्धीन्द्रियबलप्रदम् १०८ ॥

पूर्व समयमें इस रसायनके प्रभावसे वशिष्ठ, कश्यप, अंगिरा, जमदग्नि, भरद्वाज, भृगु तथा इसीप्रकार अन्य ऋषि श्रम, व्याधि, वृद्धावस्था तथा अन्य सब प्रकारके भयसे विमुक्त हो महाबलसंपन्न होकर अपनी इच्छानुरूप तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य, ध्यान और ज्ञान्तिको प्राप्तहुए । रसायनके प्रयोगसे आयुकी जो वृद्धि होतीहै उसमें कोई आयुके समयका प्रमाण नहीं है । क्योंकि रसायन सेवन करनेवाले महर्षियोंकी पूर्वकालमें सहस्रों वर्षकी आयु हुई है । अजितात्मा, विषयोंमें आसक्त, ग्रामीण, अजितेन्द्रिय मनुष्योंको रसायनकी सिद्धि नहीं होसकती । इस वर्षसहस्रक रसायनका ब्रह्माने निर्माण और सेवन कियाहै । यह आयुको करनेवाली बुढापा और व्याधि-योंको नष्ट करनेवाली बुद्धि और बलको देनेवाली है ॥ १०४-१०८ ॥

केवल आमलकीय रसायन ।

संवत्सरंपयोवृत्तिर्गवांमध्येवसेत्सदा । सावित्रीमनसाध्यायन्ब्रह्म-

चारीजितेन्द्रियः ॥ १०९ ॥ संवत्सरान्तेपौषीवामार्घीवाफाल्गुनीं
तिथिम् । अथहोपवासीशुद्धश्रप्रविश्यामलकीवनम् ॥ ११० ॥ बृह-
त्फलाढ्यमारुह्यद्रुमंशाखागतंफलम् । गृहीत्वापाणिनातिष्ठेज्जप-
न्ब्रह्मामृतागमात् ॥ १११ ॥ तदाह्यवश्यममृतं वसत्यामलकेक्षणम् ।
शर्करामधुकल्पानिस्नेहवन्तिमृदूनिच ॥ ११२ ॥ भवन्त्यमृतसंयोगा-
त्तानियावन्तिभक्षयेत् । जीवेद्वर्षसहस्राणितावन्त्यागतयौवनः ॥
॥ ११३ ॥ सौहित्यमेषांगत्वातुभवत्यमरसन्निभः । स्वयञ्चास्योप-
तिष्ठन्तेश्रीर्वेदावाक्चरूपिणी ॥ ११४ ॥

पहिले १ वर्ष पर्यन्त केवल दूध ही पीकर रहे । अन्न आदि और कुछ न खावे
तथा निरन्तर गौओंके बीचमें ही वास कियाकरे और मनसे हरसमय गायत्रीका
ध्यान करतेहुए ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय रहे । फिर इस वर्षके व्यतीत होनेपर तीन
दिनरात्रि बिल्कुल निराहार उपवास करे पौष अथवा मार्गशीर्ष या फाल्गुनकी पूर्णि-
माको यह तीन दिन व्यतीत होने चाहिये । अर्थात् इस प्रकारसे इस व्रतको धारम्भ
करना चाहिये जो पौष या मार्ग अथवा फाल्गुनकी एकादशीको वर्ष पूरा हो ।
फिर द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशीको उपवास करके पूर्णिमाको प्रातःकाल ऐसे पवित्र
आमलोंके वनमें प्रवेश करे जिसमें वृक्षोंमें सर्वगुणसंपन्न पकेहुए बड़े २ आँवले लगरहे
हों फिर वृक्षपर चढकर आँवलेको तोडकर हाथमें ले लेवे फिर ब्रह्मामृत वेदोक्त मंत्रका
जपकरे उससे उस आँवलेमें अमृतका संचार होजाताहै । फिर इस आँवलेको खालेवे ।
इसी विधिसे उस वृक्षकी टहनियोंमेंसे आँवले तोड २ कर खाताजाय । उस समय
अवश्य ही क्षणमात्रके लिये आँवलेमें अमृतका संचार होजाताहै । उसमें खांड और
शहदके समान मीठापन और चिकनाई तथा मृदुता होतीहै । जितने कालतक उस
आमलक वृक्षके ऊपर आमलोंको रताय उतने समय तक उनमें अमृतका संचार
रहताहै । इसलिये इस विधिसे खानेसे १००० वर्षकी आयु तथा निरन्तर यौवनाव-
स्याको प्राप्त होताहै । इसप्रकार अच्छी तरह भरपेट आँवलोंको खानेसे यह मनुष्य
देवताओंके समान होजाताहै । और कांति, लक्ष्मी, वेद और सरस्वती यह सब
स्वयं आकर इसके शरीरमें वास करने लगती हैं ॥ १०९-११४ ॥

लोह रसायन ।

त्रिफलायारसेमूत्रेगवांक्षारेचलावणे । क्रमेणचेंगुदीक्षारेकिंशुक-
क्षारएवच ॥ ११५ ॥ तीक्ष्णायसस्यपत्राणिवहिवर्णानिवापयेत् ।

चतुरङ्गुलदीर्घाणितिलोत्सेधसमानिच ॥ ११६ ॥ ज्ञात्वातान्य-
 ज्ञनाभानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् । तानिचूर्णानिमधुनारसेनाम-
 लकस्यच ॥ ११७ ॥ युक्तानिलेहवत्कुम्भेस्थितानिघृतभाविते । सं-
 वत्सरनिधेयानियवपल्लेतदेवच ॥ ११८ ॥ दद्यादालोडनंमासेसर्व-
 त्रालोडयन्बुधः । संवत्सरात्ययेतस्यप्रयोगोमधुसर्षिपा ॥ ११९ ॥
 प्रातःप्रातर्वलापेक्षीसात्म्यंजीर्णेचभोजनम् । एषएवचलोहानां
 प्रयोगः संप्रकीर्तितः ॥ १२० ॥ अनेनैवविधानेनहेम्नश्चरजतस्य
 च । आयुःप्रकर्षकृत्सिद्धःप्रयोगःसर्वरोगनुत् ॥ १२१ ॥ नाभिघातै-
 र्नचातङ्कैर्जरयानचमृत्युना । अधृष्यःस्याद्भ्रजप्राणः सदाचातिवले-
 न्द्रियः ॥ १२२ ॥ धीमान्यशस्त्रीवाक्सिद्धःश्रुतधारीमहाबलः । भ-
 वेत्समांप्रयुञ्जानोनरोलौहरसायनम् ॥ १२३ ॥

उत्तम तीक्ष्णलोह (फौलाद) के चार अंगुल लंबे और तिलके समान मोटे पत्र बनालवे । उन पत्रोंको आगमें तपाकर लाल बनजानेपर क्रमसे त्रिफलाके कायमें, गोमूत्रमें एवं लवणक्षार, गोंदनीका क्षार, ढाकका क्षार इन प्रत्येकमें अनेकवार बुझावे । जब वह इसप्रकार तपातपाकर बुझातेहुए अन्ननके समान काला होजाय और भुरभुरा होजाय तब उसका बारीक चूर्ण बनावे । फिर इसे आँवलेके रस और शहदके साथ मिलाकर घीके चिकने पात्रमें भरकर जौकी राशिमें दवाकर रखदेवे । और इसे बराबर महीने २ खोलकर किसी चीजसे खूब चलादिया करे इसप्रकार १ वर्ष व्यतीत होजानेपर फिर इसे निकाल लेवे इसमेंसे उचित मात्रा लेकर घृत और शहद मिलाकर जठराग्निका बलावल विचारकर नित्य प्रातःकाल सेवन करे । जब औषध जीर्ण होजाय तब सात्म्य भोजनका सेवन करे । इसी विधिके अनुसार सोना, चाँदी आदिका भी प्रयोग होताहै । यह सिद्ध प्रयोग आयुको बढानेवाला और सब रोगोंको नाश करनेवाला है । इस रसायनके सेवनसे मनुष्य अप्रतिहतबल और हाथीके समान दृढ तथा सब इन्द्रियें बलिष्ठ होकर अजर, अर्थात् बुढापारहित नीरोग होकर सुख भोगताहै एवं बुद्धि, यश और श्रुतको धारणकरनेवाला महाबली होताहै यह लोह रसायन १ वर्ष पर्यन्त मनुष्य सेवन करे तो उपरोक्त गुणसंपन्न होताहै ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

ऐन्द्रिय रसायन ।

ऐन्द्रीमत्स्याक्षिकोवाह्मीवचात्रह्यसुवर्चला । पिप्पल्योलवणहे-

मशंखपुष्पीविषंघृतम् ॥ १२४ ॥ एपांत्रियवकान्भागान्हेमसर्पि-
र्विषैर्विना । द्वौयवौ तत्रहेम्नस्तुतिलंदद्याद्विषस्य च ॥ १२५ ॥
सर्पिषश्चपलंदद्यान्तदैकध्यंप्रयोजयेत् । घृतप्रभूतंसक्षौद्रंजीर्णे-
चान्नंप्रशस्यते ॥ १२६ ॥ जराब्ज्याधिप्रशमनंस्मृतिमेधाकरं
परम् । आयुष्यंपौष्टिकंवल्यंस्वरवर्णप्रसादनम् ॥ १२७ ॥ पर-
मोजस्करश्चैतस्तिद्धमेतद्रसायनम् । नैनंप्रसहतेकृत्यानालक्ष्मीर्न
विषंनरुक् ॥ १२८ ॥ श्वित्रंसकुष्ठंजठराणिगुल्माःप्लीहापुराणोविष-
मज्वरश्च । मेधास्मृतिज्ञानहराश्चरोगाःशाम्यन्त्यनेनातिवलाश्च
वाताः ॥ १२९ ॥

इन्द्रायण, मत्स्याक्षी, ब्राह्मी, वच, ब्रह्म, सोंचली, पीपल, निमक, शंखपुष्पी यह
प्रत्येक वस्तु तीन २ यव प्रमाण लेवे और सोनेके बर्क, दो यव, शुद्ध सिंगिया विप १
तिल इन सबको ४ तोला घृतमें बारीक पीसकर मिलाडाले । इसको शुद्धकाय मनुष्य
प्रातःकाल खालेवे । जब यह जीर्ण होजाय तब घृत और मीठेके संग शाली अथवा
साठी चावलोंका भात भोजन करे । इसके सेवनसे बुडापा और संपूर्ण रोग नष्ट
होकर स्मृति और मेधा तथा आयुकी परम वृद्धि होतीहै । और यह पुष्टिदायक
बलवर्द्धक, स्वर, वर्णको प्रसन्न करनेवाली है । जो मनुष्य इसका सेवन करताहै ।
उसके ओजकी वृद्धि होतीहै । इस सिद्ध रसायनके सेवनसे अलक्ष्मी, विप और रोग
मनुष्यके शरीरकी स्पर्शतक नहीं करते तथा श्वेतकुष्ठ, कुष्ठ, जठररोग, गुल्मरोग,
प्लीहरोग, जीर्णज्वर, विषमज्वर तथा जो मेधा, स्मृति और ज्ञानके नष्टकर देनेवाले
रोग हैं वह और अल्पन्त बलवान् वातविकार यह सब शान्त होजाते हैं ॥ १२४ ॥
॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

ब्राह्मी आदि मेध्यरसायन द्रव्य ।

मण्डूकपर्ण्याःस्वसरःप्रयोज्यःक्षीरेणयष्टीमधुकस्यचूर्णम् । रसोगुह-
च्यास्तुसमूलपुष्पाःकल्कः प्रयोज्यःखलुशंखपुष्पाः ॥ १३० ॥
आयुःप्रदान्यामयनाशनानिवलान्निवर्णस्वरवर्द्धनानि । मेध्यानि
चैतानिरसायनानिमेध्याविशेषेणचशंखपुष्पी ॥ १३१ ॥

ब्राह्मीका स्वरस अथवा मुलहठीका चूर्ण या गिलोयका रस अथवा फूल और
जड़सहित शंखपुष्पीका कल्क इनमेंसे कित्ती एकको दूधके संयोगसे सेवन करना

चाहिये । यह सब द्रव्य उत्तम रसायन आयुवर्द्धक, रोगनाशक तथा बल, अग्नि, वर्ण और स्वरके बढ़ानेवाले हैं । एवं मेधाजनक हैं । इनमें शंखपुष्पी विशेषकर मेधाकी बढ़ानेवाली है ॥ १३० ॥ १३१ ॥

पिप्पली रसायन ।

पञ्चपट्टसप्तदशवापिप्पलीर्मधुसर्पिपा । रसायनगुणान्वेषीसमामेकां प्रयोजयेत् ॥ १३२ ॥ तिस्रस्त्रिस्तुपूर्वाह्निभुक्त्वाग्नेभोजनस्यच । पिप्पल्यःकिंशुकक्षारभाविताघृतभर्जिताः ॥ १३३ ॥ प्रयोज्यामधुसर्पिर्भ्यारसायनगुणौषिणा । जेतुंकासंक्षयंशोषंश्वासांहिक्रांगलामयान् ॥ १३४ ॥ अर्शांसिग्रहणीदोषपाण्डुतांविषमज्वरम् । वैस्वर्यपीनसंशोफंगुल्मंवातबलासकम् ॥ १३५ ॥

रसायनके गुणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको ६ या ७ अथवा १० पीपल लेकर घृत और शहदके साथ क्रमपूर्वक १ वर्ष पर्यन्त सेवन करनी चाहिये । वह पिप्पली भोजन करनेसे पहिले दोनों समय तीनतीन खाना चाहिये । अथवा पीपलीको लेकर पलाशके क्षारकी भावना देकर घमिं भून लेवे । फिर रसायनके गुणकी इच्छावाला मनुष्य शहद और घृतके साथ इनका सेवन करे । इनके सेवनसे खांसी, क्षय, शोषरोग श्वास, हिचकी, गलेके रोग, बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, विषमज्वर, स्वरभंग, पीनस, सूजन गुल्म और वात तथा कफके रोग अथवा वातबलासक ज्वर, यह सब नष्ट होते हैं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

वर्द्धमानपिप्पली ।

क्रमवृद्ध्यादशाहानिदशपैप्पलिकंदिनम् । वर्द्धयेत्पयसासार्द्धतथा चापनयेत्पुनः ॥ १३६ ॥ जीर्णेजीर्णेचभुञ्जीतपष्टिकक्षीरसर्पिपा । पिप्पलीनांसहस्रस्यप्रयोगोऽयंरसायनम् ॥ १३७ ॥ पिशास्तावलिभिःसेव्याः शृतामध्यवलैर्नरैः । शीतीकृताहस्ववलैर्योज्यादोषामयान्प्रति ॥ १३८ ॥ दशपैप्पलिकःश्रेष्ठोमध्यमःपट्टप्रकीर्तितः । प्रयोगोयस्त्रिपर्यन्तःसकनीयान्सचावलैः ॥ १३९ ॥ वृंहणंस्वर्य्यमायुष्यंस्त्रीहोदरविनाशनम् । वयसःस्थापनंमेध्यंपिप्पलीनारसायनम् ॥ १४० ॥

पहिले दिन १० पीपल, दूसरे दिन २० इसप्रकार क्रमसे दश दश पीपल दश दिनों तक बढ़ाता चलाजाय । फिर दश दश घटाता चलाआवे । इन पीपलोंको दूधके साथ खाना चाहिये । जब भूख लगे तो शाठीके चावल, दूध और घृतके साथ खाना चाहिये । यह हजार पीपलका रसायन प्रयोग है । इनके सेवनका यह प्रकार है कि दीर्घकाय बलवान् मनुष्य इनको पीत दूधमें मिला पीवे और मध्यबल मनुष्य दूधमें उवालकर ठण्डाकर वह दूध पीयाकरे । और लघुबल मनुष्य बलके अनुसार दौप, रोगादि विचारकर उचित रीतिसे प्रयोग करे । यह दश पीपलोंका प्रयोग उत्तम मात्रा कहाजाताहै सो बलवान् मनुष्योंको सेवन करना चाहिये ६ पीपलोंसे ६ दिनतक छः छः पीपल बढ़ाना और उसी क्रमसे घटाना यह मध्यम मात्रा है । सो मध्यबल मनुष्योंको सेवन करना चाहिये । एवं तीन पीपलकी सबसे कनिष्ठ मात्रा है सो निर्बल मनुष्योंके लिये प्रयुक्त करनी चाहिये । इस पिप्पली रसायनके सेवनसे वीर्य और स्वरकी वृद्धि होतीहै तथा प्लीहरोग और उदररोग नष्ट होतेहैं अवस्था स्थिर होतीहै तथा मेधाकी वृद्धि होतीहै ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

त्रिफलारसायन ।

जरणान्तेऽभयामेकांप्राग्भुक्तेद्वेविभीतके । भुक्तातुमधुसर्पिभ्यांच-
त्वार्यामलकानिच ॥ १४१ ॥ प्रयोजयेत्समामेकांत्रिफलायारसा-
यनम् । जीवेद्वर्षशतंपूर्णमजरोऽऽयाधिरेवच ॥ १४२ ॥

प्रातःकाल १ हरड सेवन करे । भोजनसे प्रथम दो बहेडे । भोजन करनेके अनन्तर चार आँवले घृत और शहदके साथ मिलाकर खाय । इसप्रकार इस त्रिफला रसायनको १ वर्ष पर्यन्त सेवन करे । इसके सेवनसे मनुष्य जरा और व्याधिसे रहित हो पूर्ण १०० वर्षकी आयुके सुखको भोगताहै ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अन्य त्रिफलारसायन ।

त्रैफलेनायसींपार्त्रीकल्केनालेपयेन्नवाम् । तमहोरात्रिकंलेपंपिवे-
त्क्षौद्रोदकाप्लुतम् ॥ १४३ ॥ प्रभूतस्नेहमशनंजीर्णेतत्रप्रशस्यते ।
अजरोरुक्समाभ्यासाज्जीवेच्चैवसमाशतम् ॥ १४४ ॥

त्रिफलाको पीतकर कल्क बना ले उस कल्कको किसी १ नवीन लोहेके पात्रमें लेपकर दिनरात्रि रहनेदे । फिर शहद और पानीमें मिला मात्रानुसार पीवे । फिर भूखके समय घी, चावलका भोजन करे । इसके १ वर्ष सेवनसे जरा और व्याधिरहित होकर १०० वर्ष तक जीता रहताहै ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

अन्य त्रिफलारसायन ।

मधुकेनतुगाक्षीर्यापिप्पल्याक्षौद्रसर्पिपा । त्रिफलासितयाचापियु-
क्तासिद्धरसायनम् ॥ १४५ ॥

शुलहठीके चूर्णके अथवा वंशलोचनके संग या शहदके संग अथवा पीपलके संग या घृत और शहदके संग अथवा मिसरीके संग त्रिफलाका १ वर्षपर्यन्त सेवन करना परम सिद्ध रसायन है ॥ १४५ ॥

अन्य त्रिफलारसायन ।

सर्वलोहैःसुवर्णेनवचयामधुसर्पिपा । विडङ्गपिप्पलीभ्याश्चत्रिफला-
लवणेनच ॥ १४६ ॥ संवत्सरप्रयोगेणमेधास्मृतिवलप्रदा । भव-
त्यायुप्रदाधन्याजरारोगनिवर्हणी ॥ १४७ ॥

त्रिफला सर्वलोह भस्मके संग, अथवा केवल सुवर्णके संग या वच, शहद, घृत, विडंग, पिप्पली, लवण इनमेंसे किसी एकके संग अथवा सबके संग १ वर्ष पर्यन्त प्रयोग करनेसे मेधा, स्मृति, बल और आयुकी वृद्धि होती है । यह रसायन कांतिजनक तथा जरा (बुढापा) और व्याधिके नष्ट करनेवाली है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

शिलाजीत प्रयोग ।

अनम्लश्चकपायश्चकटुपाकेशिलाजतु । नात्युष्णशीतंधातुभ्यश्चतु-
र्भ्यस्तस्यसम्भवः ॥ १४८ ॥ हेम्नश्चरजतात्ताम्राद्वरंक्वण्णायसाद-
पि । रसायनंतद्विधिभिस्तद्बृष्यंतश्चरोगनुत् ॥ १४९ ॥ वातपित्त-
कफघ्नैस्तुनिर्व्यूहैस्तत्सुभावितम् । वीर्योत्कर्षपरंयाति सर्वैरैकैकं-
शोऽपिवा ॥ १५० ॥ प्रक्षिप्योद्धृतमप्येनंपुनस्तत्प्रक्षिपेद्रसे ।
कोष्णेसप्ताहमेतेनविधिनातस्यभावना ॥ १५१ ॥ पूर्वोक्तेनविधा-
नेनलोहैश्चूर्णीकृतैःसह । तत्पीतंपयसादद्यादीर्घमायुःसुखान्वि-
तम् ॥ १५२ ॥ जराव्याधिप्रशमनंदेहदाढ्यकरंपरम् । मेधास्मृ-
तिकरंवलयंक्षीराशीतत्प्रयोजयेत् ॥ १५३ ॥ प्रयोगःसप्तसप्ताहाह्न-
यश्चैकश्चसप्तकः । निर्दिष्टद्विविधस्तस्यपरोमध्योऽवरस्तथा । पल-
मर्द्धपलंकर्षोमात्रातस्यत्रिधामता ॥ १५४ ॥

शिलाजीत, अम्लरस रहित है और कसैला, कटुपाकी, न अधिक गरम न अधिक तिल होता है । यह चार धातुओंसे उत्पन्न होता है । जैसे सोना, चाँदी, ताँबा और

लोहा, इन सबमें लोहेसे उत्पन्न हुई शिलाजीत सर्वोत्तम है । शिलाजीतका विधिपूर्वक सेवन आयुको बढ़ाता है, वीर्यको उत्पन्न करता है तथा संपूर्ण रोगोंको नष्ट करता है शिलाजीत-वातनाशक, कफनाशक और पित्तनाशक औषधियोंके कार्योंसे भावना दी जानेपर परम उत्तम वीर्यवाली होजाती है । कार्योंमें भावना देनेका यह क्रम है, कि इन तीनों प्राकरके कार्योंको इकट्ठाकर अथवा पृथक् २ लेकर जब वह काय किंचित् गरमरहे तो उनकी शिलाजीतमें भावना देवे । शिलाजीतकी भावना इसप्रकार देनी चाहिये । शिलाजीतको उन क्वाथोंमें डाले और उनमेंसे विधिवत् निकाल लेवे । इसीप्रकार सातबार करनेसे शिलाजीत परम उत्तम बनजाती है । इस शिलाजीतको पूर्वोक्त विधिसे लोहभस्मोंके साथ अथवा दूधके साथ मनुष्यको पीनेको दे । इसके सेवनसे सुखयुक्त, दीर्घायु होती है तथा बुढ़ापा और रोग शान्त होते हैं । देह परम दृढ होती है । मेघा और स्मृति तथा बल बढ़ता है । इसके सेवन करनेवालेको केवल दूध मात्र पीनेको देना चाहिये । इसका सेवन ४९ दिन अथवा २१ दिन या ७ दिन करना चाहिये । ४९ दिन उत्तम, २१ दिन मध्यम और ७ दिन कनिष्ठ मात्रा कही है ४ तोला उत्तम, २ तोला मध्यम और १ तोला कनिष्ठ इसी विधिसे तीन प्रकारकी मात्रा कही है ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

शिलाजीतकी उत्पत्ति ।

जातेर्विशेषंसविधितस्यवक्ष्याम्यतःपरम् । हेमाद्र्याःसूर्य्यसन्तताः

स्त्रवन्तिगिरिधातवः । जत्वाभंमृदुमृत्स्लाभंयन्मलंतच्छिलाजतु१५५

अब हम शिलाजीतके अलग २ जातिभेदको कथन करते हैं । सूर्यके संतापसे तपेहुए पर्वतोंमेंसे सुवर्ण आदि धातुएँ तपकर जो स्राव करती हैं । उनमें जो स्राव लाखके समान वर्णवाला तथा नरम और मिट्टीकीसी कांतिवाला मल निकलता है उसीको शिलाजीत कहते हैं ॥ १५५ ॥

सौवर्णशिलाजीत ।

मधुरश्चसत्तिकश्चजपापुष्पनिभश्चयः ।

कटुर्विपाकेशीतश्चससुवर्णस्थनिस्रवः ॥ १५६ ॥

सुवर्ण प्रधान पहाड़ोंसे उत्पन्न हुई शिलाजीत-मीठी, किंचित् कडवी, जपाके फूलके समान वर्णवाली कटु विपाकी और शीतल होती है ॥ १५६ ॥

शिलाजीत रौप्य ।

रूप्यस्यकटुकःश्वेतःशीतःस्वादुत्रिपच्यते ॥ १५७ ॥

चांदीवाले पहाड़से उत्पन्न हुई शिलाजीत कटु, श्वेत, शीतल और स्वादुपाकी होती है १५७

ताम्रोद्भवशिलाजीत ।

ताम्रस्यवर्हिकण्ठाभस्तिकोष्णकटुपच्यते ॥ १५८ ॥

। ताम्र प्रधान पहाडसे उत्पन्न हुई शिलाजीत मोरके गर्दनकी समान चमकीली, कड़ई गरम और कटुपाकी होतीहै ॥ १५८ ॥

यस्तुगुरगुलुकाभासस्तिककोलवणान्वितः ।

कटुर्विपाकेशीतश्चसर्वश्रेष्ठःसचायसः ।

गोमूत्रगन्धयःसर्वेसर्वकर्मसुयौगिकाः ॥ १५९ ॥

लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीत गूगलके समान वर्णवाली, कड़ई, लवणरसयुक्त, कटु-विपाकी, शीतल होतीहै । यह शिलाजीत सर्वमें उत्तम है । सब प्रकारकी शिलाजीत गोमूत्रके समान गंधवाली और सब कर्मोंमें प्रयोग करने योग्य होतीहै ॥ १५९ ॥

दोषभेदसे प्रयोग ।

रसायनप्रयोगेषुपश्चिमस्तुविशिष्यते । यथाक्रमंवातपित्तेश्लेष्मपि-
त्तेकफेत्रिषु । विशेषतःप्रशस्यन्तेमलाहेमादिधातुजाः ॥ १६० ॥

रसायन प्रयोगमें विशेषकर लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीत उत्तम होतीहै । और वातपित्तमें सुवर्णसे उत्पन्न हुई शिलाजीत, कफपित्तमें चादीकी और केवल कफमे तांबेसे उत्पन्न हुई एवं तीनों दोषोंमें लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीतका प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकार सुवर्ण आदि धातुओंसे उत्पन्न हुई शिलाजीतके प्रयोगकी प्रशंसा की जातीहै ॥ १६० ॥

शिलाजीतमें कुपथ्य ।

शिलाजतुप्रयोगेषुविदाहीनिगुरूणिच । वर्जयेत्सर्वकालंतुकुलत्था-
न्परिवर्जयेत् ॥ १६१ ॥ तेह्यत्यन्तविरुद्धत्वाद्दश्मनोभेदनाःपरम् ।

लोकेदृष्टास्ततस्तेषांप्रयोगःप्रतिपिध्यते ॥ १६२ ॥

शिलाजीत सेवनके समय विदाही और भारी पदार्थोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये । और स्वासकर कुल्थी तो बिलकुलही नहीं खानी चाहिये । क्योंकि कुल्थी शिलाजीतसे अत्यंत विरोधी है और यह शिलाजीतको भेदन करनेवाली लोकमें भी प्रसिद्ध है । इसलिये इसका सेवन करना अत्यंत ही निषिद्ध है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

शिलाजीतमें पथ्य ।

पथांसिशुक्तानिरसाःस्यूपास्तोयंसमूत्रंविविधाःकपायाः । आलो-
डनार्थंङ्गिरिजस्यशस्तास्तेतेप्रयोज्याःप्रसमीक्ष्यकार्यम् ॥ १६३ ॥

शिलाजीतको दूधमें घोलकर अथवा सिरका, मांसरस, यूप, जल, गोमूत्र और अनेक प्रकारके क्वाथ अथवा अन्य जिस रोगमें जिस प्रकारके अनुपानकी आवश्यकता हो ऐसे अनुपानोंसे शिलाजीतका सेवन करना चाहिये और घृत दूध आदि इसके चिकने पदार्थ सेवन करना चाहिये ॥ १६३ ॥

शिलाजीतके गुण ।

नसोऽस्तिरोगोभुविसाध्यरूपःशिलाह्वयंयनजयेत् प्रसह्य । तत्काल-
योगैर्विधिभिःप्रयुक्तंस्वस्थस्यचोर्जाविपुलांददाति ॥ १६४ ॥

पृथ्वीमें ऐसा साध्यरोग कोई नहीं है जिस रोगको शिलाजीतका प्रयोग बलात्कारसे नष्ट न कर देता हो । शिलाजीत समयानुसार विविध उचित द्रव्योंके अनुपानसे प्रयोग कियाहुआ स्वस्थ मनुष्यको अत्यंत बल और बोजको देनेवाला है ॥ १६४ ॥

तत्रश्लोकः ।

करप्रचित्तिकेपादेदशषट्चमहर्षिणा ।

रसायनानांसिद्धानांसंयोगाःसमुदाहृताः ॥ १६५ ॥

इति करप्रचितीयेरसायनपादस्तृतीयः ॥ ३ ॥

यहांपर पादकी पूर्तिमें एक श्लोक है कि इस करप्रचित्तिकपादमें महर्षि आत्रेयजीने सोलह प्रकारके सिद्ध रसायन प्रयोगोंका वर्णन कियाहै ॥ १६५ ॥

इति करप्रचितीये रसायनपादस्तृतीयः ।

अथातआयुर्वेदसमुत्थानीयंचतुर्थरसायनपादंव्याख्यास्यामइतिह-
स्माहभगवानात्रेयः ॥ १६६ ॥

अब हम आयुर्वेद समुत्थानीय नामक चौथे रसायनपादकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ १६६ ॥

ऋषियोंका हिमालय गमन ।

ऋषयःखलुकदाचिच्छालीनायायावराश्चग्राम्यौषध्याहाराःसन्तः
सास्पन्निकामन्दचेष्टानातिकल्याणाश्चप्रायेणवभूवुः । तेसर्वासा-
मितिकर्तव्यतानामसमर्थाःसन्तोग्राम्यवासकृतंदोषमत्वापूर्वनिवा-
समपगतग्राम्यदोषमत्वाशिवंपुण्यमुदारंमेध्यमगम्यमसुकृतिभिर्ग-
द्वाप्रभवममर—गन्धर्वयक्षकिन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचि-
न्त्याञ्जुतप्रभावंब्रह्मर्षिसिद्धच

तिशरण्यंहिमवन्तममराधिपतिगुप्तंजग्मुःभृग्वङ्गिरोऽत्रिवशिष्ठक-
श्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासितगौतमप्रभृतयोमहर्षयः ॥ १६७ ॥

एक समय ऋषिलोग समयके स्वभावसे शालीन और यायावर आदि ग्राम्य औषध और आहारकी सेवन करनेसे आलस्यग्रस्त, संचयशील, कल्याणरहित होगये । उस समय उन्होंने यह सोचा कि हमें क्या करना चाहिये । फिर ग्रामवाससे उत्पन्न हुए यह दोष जानकर आदिस्थान, ग्राम्य दोषरहित, पवित्र, पुण्य, मंगलमय, उदार, पुण्यरहित मनुष्य जिसको न प्राप्त होसके । जिसमेंसे गंगाका प्रवाह निकलताहै तथा देवता, गंधर्व यक्ष और किन्नरोंसे सेवित तथा आर्चित्य अद्भुतप्रभाव, ब्रह्मर्षि और सिद्ध, तथा चारणगणोंसे सेवित दिव्य तीर्थ, औषधोंके तेजसे प्रकाशमान, अत्यंत शरण्य, और देवताओंके पतिसे रक्षित जो हिमालय पर्वत है उसंपर भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित और गौतम आदि महर्षि प्राप्तहुए ॥ १६७ ॥

इन्द्र रसायनका उपदेश ।

तानिन्द्रःसहस्रदृक्अमरगुरुवरोऽब्रवीत्स्वागतंब्रह्मविदांज्ञानतपोध-
नानांब्रह्मर्षीणामस्तिननुवोग्लानिरप्रभावत्ववैस्वर्य्यवैवर्ष्यञ्चग्रा-
म्यवासकृतमसुखानुबन्धञ्च । ग्राम्योहिवासोमूलमशस्तानांतकृ-
तंपुण्यकृद्भिरनुग्रहःप्रजानांस्वशरीरमरक्षिभिःकालश्चायमायुर्वेदो-
पदेशस्यब्रह्मर्षीणामात्मनःप्रजानाञ्चानुग्रहार्थमायुर्वेदमश्विनौमह्यं
प्रयच्छताम् । प्रजापतिरश्विन्याम् । प्रजापतयेब्रह्माप्रजानामल्प-
मायुर्जराव्याधिवहुलमसुखमसुखानुबन्धमल्पत्वादल्पतपोदमनि-
यमदानाध्ययनसञ्चयंमत्वापुण्यतममायुःप्रकर्षकरंजराव्याधिप्रश-
मनमूर्जस्करममृतंशिवंशरण्यमुदात्तंभवन्तोमत्तःश्रोतुमर्हन्तिउप-
धारयितुंप्रकाशयितुञ्चप्रजानुग्रहार्थमार्षब्रह्मचर्मैत्रीकारुण्यमात्मन-
श्चानुत्तमंपुण्यमुदारंब्राह्ममक्षयंकर्मेति ॥ १६८ ॥

उन ऋषियोंको उस पवित्र स्थलमें उपस्थित हुए देख देवताओंके पति सहस्रनेः इन्द्रभगवान् कहनेलगे कि हे ब्रह्मके जाननेवाले ज्ञान और तपोधन ब्रह्मर्षियो ! ऋषि योंमें कुशल तो है ? क्योंकि आपलोगोंके शरीरोंमें ग्रामवाससे उत्पन्न हुई मलिनता कांति, स्वर और वर्णोंकी हीनता, असुखसे उत्पन्न हुए अशुभ लक्षण प्रतीत होतेहैं

इन अशुभ लक्षणोंका कारण आपलोगोंका ग्रामनिवास ही है। सो उन सब ऋषियोंके तथा प्रजाके जनोपर अनुग्रह करनेकी इच्छावाले, पुण्यात्मा, परहितके लिये अपने शरीरको कष्ट देनेवाले जो आपलोग यहांपर पधारे हैं। सो आपलोगोंको आयुर्वेदके उपदेश करनेका यही समय है। जो आयुर्वेद ब्रह्मापि और प्रजागणोंके हितके लिये अश्विनीकुमारोंने मुझे प्रदान किया है और अश्विनीकुमारोंको दक्ष प्रजापतिने प्रदान किया। और ब्रह्माने प्रजाको जरा, व्याधिकी अधिकता तथा असुख और अशुभ कर्मोंके फलसे अल्पायु, अल्पतपस्या, इन्द्रियोंका दमन, नियम, दान, अध्ययन इनकी हीनता देखकर प्रजाके कल्याणके लिये दक्ष प्रजापतिको जिस आयुर्वेदका उपदेश किया है। जो आयुर्वेद कल्याणकारी, पुण्य, आयुको बढ़ानेवाला जरा और व्याधियोंको नष्ट करनेवाला, ओजवर्द्धक, अमृतरूप, मंगलमय, शरणागतकी रक्षा करनेवाला और निर्मल है। उस आयुर्वेदको प्रजाके हितके लिये आप मुझसे श्रवण करो। और इस आयुर्वेदका जगत्में प्रचार करो। क्योंकि ऋषियोंका संपूर्ण आत्माओंके हितके लिये संपूर्ण प्राणियोंपर क्रिया करना उनकी आत्माओंके हितके लिये उत्तम ज्ञानका उपदेश करना ही अक्षय पुण्य कर्म है। अथवा ब्रह्म या वेदका ज्ञान ऋषियोंका मुख्य कर्म है। उससे संपूर्ण आत्माओंमें मैत्री, दया, उदारता रखतेहुए जो उन सबका हित साधन है वही अक्षय, ब्रह्मकर्म होता है तात्पर्य यह हुआ कि आपलोग मुझसे आयुर्वेद ग्रहणकर जगत्का हितसाधन करो यही तुम्हारा पुण्य-कर्तव्य है ॥ १६८ ॥

तच्छत्वाविवुधयतिवचनमृषयःसर्वेण्वामरवरमृग्भिस्तुष्टुःप्रहृष्टा-
स्तद्वचनमभिननन्दुश्चेति । अथेन्द्रस्तदायुर्वेदामृतंऋषिभ्यःसंक्र-
म्योवाचैतत्सर्वमनुष्ठेयञ्च । अयञ्चशिवःकालोरसायनानांदिव्या-
श्रौषधयोहिमवतःप्रभवाःप्राप्तवीर्याः ॥ १६९ ॥

इन्द्रके इस वाक्यको सुनकर ऋषिलोग उस देवताओंके पतिकी ऋचाओं द्वारा स्तुति करनेलगे और प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रके कोहेहुए वाक्योंका अभिनन्दन करनेलगे। उसके उपरान्त इन ऋषियोंके प्रति संपूर्ण आयुर्वेदरूपी अमृत और रसायन क्रियाका उपदेश किया। तथा यह कहा कि हे ऋषियों ! आपलोगोंको संपूर्ण रसायन क्रियाका अनुष्ठान करना चाहिये। यह रसायनक्रियाही कल्याणदायक है। और इसके करनेका उत्तम यही समय है क्योंकि इस हिमालयमेंही रसायन गुणकारी रसवीर्यसंपन्न दिव्य औषधियें प्राप्त होसकतीहैं ॥ १६९ ॥

ऐन्द्री रसायन ।

तद्यथा—ऐन्द्रीब्राह्मीपयस्याक्षीरपुष्पीश्रावणीमहाश्रावणीशताव-

रीविदारीजीवन्तीपुनर्नवानागवलास्थिरावचाच्छत्रातिच्छत्रामेदा-
महामेदाजीवनीयाश्चान्याःपयसाप्रयुक्ताः । पण्मासात्परममायुर्व-
यश्चतरुणमनामयत्वंस्वरवर्णसंपदनुपचयंमेधांसंमृतिमुत्तमवलामि-
ष्टांश्चापरान्भावानावहन्तिसिद्धाः ॥ १७० ॥

वह रसायन प्रयोग इसप्रकार है । जैसे इन्द्रायण, ब्राह्मी, क्षीरकाकोली, गोरख-
मुण्डी, महाश्रावणी (महामुण्डी), शतावर, विदारीकंद, जीवन्ती, पुनर्नवा, गंगेरन,
शालपर्णी, वच, छत्रे, अतिच्छत्रा (भवाकपुष्पी) मेदा, महामेदा और जीवनीय-
गणकी औषधियें इन सबको दूधके संयोगसे ६ महीनेतक सेवन करनेसे परम आयु,
युवावस्था, नीरोगिता और स्वर, वर्णमें उत्तमताकी प्राप्ति होतीहै तथा पुष्टि, मेधा,
स्मृति, उत्तम बल, एवं अन्य भी अभीष्ट सिद्धियोंको प्राप्त होताहै ॥ १७० ॥

द्रोणीप्रावेशिकद्रव्यरसायन ।

ब्रह्मसुवर्चलानामौषधिर्याहिरण्यक्षीरापुष्करसदृशपत्राआदित्यप-
र्णानामौषधिर्यासूर्यकान्तेतिविज्ञायतेसुवर्णवर्णक्षीरासूर्यमण्डला-
कारपुष्पाच । नारीनामौषधिरश्वबलेतिविज्ञायतेयापुनरजसदृश-
पत्राकाष्ठगोधानामौषधिर्गोधकारा । सर्पानामौषधिःसर्पाकारा ।
सोमोनामौषधिराजःपञ्चदशपर्णःससोमइवहीयतेवर्द्धतेच । पद्मान-
नामौषधिःपद्माकारापद्मरक्तापद्मगन्धा । अजानामौषधिरजशृङ्गी-
तिविज्ञायते । नीलानामौषधिस्तुनीलक्षीरानीलपुष्पालताप्रतान-
बहुला । इत्यासामष्टानामौषधीनांयांयामेवौषधिलभेततस्यास्त-
स्याःस्वरसस्यसौहित्यंगत्वात्लेहभावितायामार्द्रपलाशद्रोण्यांसपि-
धानायांशयीत । तत्रप्रलीयतेषण्मासेनपुनःपुनः सम्भवति । तं-
स्याजंपयःप्रत्यवस्थापनम् । पण्मासेनदेवतानुकारीभवतियोवर्ण-
स्वराकृतिबलप्रभाभिः । स्वयञ्चास्यसर्ववाचोगतानिप्रादुर्भवन्ति ।
दिव्यञ्चास्यचक्षुःश्रोत्रंभवतियोजनसहस्रगतिर्दशवर्षसहस्राण्या-
युरनुपद्रवञ्चेति । इतिद्रोणीप्रावेशिकरसायनम् ॥ १७१ ॥

१ बर्फानी पहाडोंमें इसके ऊपर छतरीके आकारका पत्र निकलता है । जो वसंतमें छतरीके
आकारका मलिन भूमिमें सब जगह उत्पन्न होताहै वह नहीं है ।

ब्रह्मसुवर्चला नामकी १ औपधी है इसका पीले रंगका दूध और कमलके समान पत्र होतेहैं । आदित्यपर्णी नामक जो औपधी है इसको सूर्यकान्ता भी कहतेहैं । इसमेंसे भी सुवर्णके समान पीला, दूध निकलताहै और सूर्यमण्डलके आकारवाले फूल होतेहैं । नारीनामकी जो औपधी है उसको अश्ववला भी कहतेहैं और स्त्रियोंके रजके वर्णके उसमें पत्र लगतेहैं । काष्ठगोधा नामक औपधी गोहके आकारवाली होतीहै । सर्पा औपधी सांपके आकारवाली होतीहै । सोमनामक औपधीराजमें पंद्रह पत्ते लगतेहैं वह चन्द्रमाके समान कृष्णपक्षमें घटते और शुक्ल पक्षमें बढ़ते रहतेहैं । पद्मा नामक औपधी पद्मके आकारवाली और कमलके समान गंध और वर्ण (रंग) वाली होतीहै । अंजा नामक औपधीका नाम 'अंजासिंगी भी है । नीलो नामक औपधीके फूल और दूध नीले रंगके होतेहैं और इसकी बेल प्रतानयुक्त फैलीहुई होतीहै । इन आठ औपधियोंमेंसे जो २ मिलसके उस उसका स्वरस निकाल शुद्धकाय मनुष्य कुटीप्रवेशविधिसे पीजावे । और मकानके अन्दर १ ढाककी गीली लकड़ीसे जिसमें मनुष्य लेटसके उस प्रकारकी द्रोणी (सन्दूकसा) बनाईहुई पहले तैयार रहनीचाहिये । उस द्रोणीमें घृत लगाकर औपधी पियाहुआ मनुष्य लेटजाय । इस मनुष्यको ६ महीनेतक इसमें पड़े रहने देना चाहिये । और वार २ इसके मुखमें वकरीका थोड़ा २ दूध देता रहे । और सावधानीसे इसकी रक्षा रखे । इसप्रकार छः महीने करनेसे यह मनुष्य देवताओंके समान आयु, वर्ण, स्वर, स्वरूप, आकृति, बल और कांतिवाला होजाताहै । संपूर्ण विद्यायें अपने आप इसमें प्रगट होजातीहैं । इसके नेत्र और कान दिव्य होजातेहैं । एक हजार योजन तक इसकी गति होजाती है । एवं दशहजार वर्षकी आयुवाला तथा संपूर्ण रोगरहित होताहै ॥ १७१ ॥

१ इसको ब्रह्मसोचली भी कहतेहैं यद्यपि ब्रह्मसोचली डुलडुलका नाम है परन्तु यह ब्रह्मसोचली नामकी एक लता है । इसमें कमलके पत्तोंके समान गोलपत्ते लगते हैं । तोडनेसे पीले रंगका दूध निकलताहै । सूर्यकीसी कान्तिवाले गोल फूल होतेहैं वह फूल सूर्य उदय होनेपर खिलतेहैं । फूल नीले, पीले, सफेद इन तीन जातियोंके होते हैं । २ आदित्यपर्णी, ब्रह्मसोचलीका ही भेद है । इसलिये मूलमें इन दोनोंको एकही मानकर आठ प्रकारकी औपधियें कही गई हैं । कोई २ वैध ब्रह्मसोचली और आदित्यपर्णी इन दोनोंको ही दो जातिका डुलडुल मानतेहैं । परन्तु जो डुलडुल सब जगह देखनेमें आताहै उसमें और इसमें बड़ा भारी अन्तर है । इसकी लता सजल, शीतल स्थानोंमें होतीहै । ३ नारी नामकी लाल पत्रोंवाली बूटी । ४ बर्फानी पहाडोंमें गोहके आकारकी बूटी । ५ सर्पाकार बूटी बर्फानी पहाडोंमें । ६ सोमलता, सोमकद आदि नामोंसे प्रसिद्ध है बर्फानी स्थानोंमें, मानसरोवरके किनारे अमरनाथके पहाडमें प्रायः मिलतीहै । इसकी यथोचित सेवनकी विधि सुश्रुतमें लिखी है । ७, ८ इन दोनोंको मैं नहीं जानता । ९. यह भी सजल, शीतल पहाडोंपर होतीहै ।

इन दिव्यरसायनोंको सेवन करनेकी योग्यता ।

भवन्तिचात्र ।

दिव्यानामोषधीनांयःप्रभावःसभवद्विधैः । शक्यः सोढुमशक्य-
स्तुनसोढुमकृतात्मभिः ॥ १७२ ॥ ओषधीनांप्रभावेणतिष्ठतां
स्वेचकर्मणि । भवतांनिखिलंश्रेयःसर्वमेवोपपत्स्यते ॥ १७३ ॥

इसप्रकारकी दिव्य औषधियोंको हे ब्रह्मर्षियो ! आपके समान योग्य महात्माही
सेवन और सहन करसकतेहैं । अजितेन्द्रिय अजितात्मा मनुष्य इन दिव्य रसायनोंको
सहन नहीं करसकते । इन औषधियोंके प्रभावसे आपलोग सहस्रों वर्ष अपने र-
योगादि मार्गोंमें प्रवृत्त रहतेहुए संपूर्ण कल्याणको प्राप्त होंगे ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्चप्रयतैर्नियतात्मभिः । शक्याओषधयोहेताः
सेवितुंविषयाभिजाः ॥ १७४ ॥ तास्तुक्षेत्रगुणैस्तेषामध्यमेनचक-
र्मणा । मृदुवीर्य्यतयातासांविधिज्ञेयःसएवतु ॥ १७५ ॥

यदि वानप्रस्थ या गृहस्थ मनुष्य जितेन्द्रिय हो, जिसके मन और शरीर अपने
वशमें हों वह इन औषधियोंको सेवन करना चाहे तो उनको क्षेत्र, गुण, विशेषसे मृदु-
वीर्य मध्यम कर्मद्वारा औषधी सेवन कराना चाहिये । परन्तु सेवनविधिमें कोई
भेद नहीं है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

साधारणजनोंके लिये अन्य रसायन ।

पर्य्येष्टुंताःप्रयोक्तुंवायेऽसमर्थाःसुखार्थिनः ।

रसायनविधिस्तेषामयमन्यःप्रशस्यते ॥ १७६ ॥

जो मनुष्य इन उपरोक्त दिव्य रसायनोंको ढूँढ नहीं सकते और प्रयोग करनेमें
असमर्थ हैं परन्तु रसायनके सुखकी इच्छा करतेहैं उनके लिये यह आगे कही रसायन-
विधि श्रेष्ठ होतीहै ॥ १७६ ॥

बल्यानांजीवनीयानांबृंहणीयाश्चयादश । वयसःस्थापनानाञ्चख-
दिरस्यासनस्यच ॥ १७७ ॥ खर्जुराणांमधूकानांमुस्तानामुत्पल-
स्य च । मृद्वीकानांविडङ्गानांवाचायाश्चित्रकस्य च ॥ १७८ ॥ श-
तावर्याःपयस्यायाःपिप्पल्याजोङ्गकस्य च । ऋद्धयानागवलाया-
श्चहरिद्रायाधवस्य च ॥ १७९ ॥ त्रिफलाकण्टकाय्योश्च विदार्या-
श्चन्दनस्यतु । इधूणांशरमूलानांश्रीपर्ण्यास्तिनिशस्य च ॥ १८० ॥

रसाःपृथक्पृथक्प्राह्याःपलाशक्षार एवच । एषांपलोन्मितान्भा-
गान्पयोगव्यंचतुर्गुणम् ॥ १८१ ॥ द्वे पात्रेतिलतैलस्यद्वेचगव्यस्य
सर्पिषः । तत्साध्यंसर्वमेकत्रसुसिद्धंस्नेहमुद्धरेत् ॥ १८२ ॥ तत्रा-
मलकचूर्णानामाढकंशतभाविताम् । स्वरसेनैवदातव्यंक्षौद्रस्याभि-
नवस्य च ॥ १८३ ॥ शर्कराचूर्णपात्रश्चप्रस्थमेकं प्रदापयेत् । तुगा-
क्षीर्याःसपिप्पल्याःस्थाप्यंसमूर्च्छितञ्चतत् ॥ १८४ ॥ शुचौ क्षेमा-
त्तिकेकुम्भेमासाद्धृतभाविते । मात्रामग्निसमांतस्यततऊर्द्ध्वप्रयो-
जयेत् ॥ १८५ ॥ हेमताम्रप्रवालानामयसःस्फटिकस्यच । मुक्ता-
वैदूर्यशंखानांचूर्णानारजतस्यंच ॥ १८६ ॥ प्राक्षिप्यपोडशींमात्रां
विहायायासमैथुनम् । जीर्णेजीर्णेचभुजीतपष्टिकंक्षीरसर्पिषा ॥ १८७ ॥

पट्टिरेचन शताश्रित्यथ अध्यायमें जो सूत्रस्थानमें कहभायेहैं उसमें कहीहुई बल-
वर्द्धक दश औषधियें एवं जीवनीयदशक, वृंहणीयदशक, वयःस्थापनदशक इन चार
दशकोंकी चालीस औषधियें और खैरसार, विजेशार, पिण्डखजूर, महुए, नागरमोथा,
नीलकमल, मुनक्का, बायविडंग, वच, चीता, शतांबर, क्षीरकाकोली, पीपल, काक-
नासा, ऋद्धि, नागबला, हल्दी, धव, त्रिफला, कटेली, विदारीकंद, चंदन, ईखकी
जड, सरपतकी जड, क्रम्भारी, तिनिश इन प्रत्येक औषधीका स्वरस तथा पलाशका
क्षार एकएक पले लेवे । और इन सबको एकत्रकर इनसे चौगुना दूध लेवे । तिलोंका
तेल और गोघृत दोदो आढक लेवे । इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे पकावे ।
जब औषधियोंका रस और दूध जलकर स्नेह मात्र शेष रहे तो उसको स्वच्छ बस्त्रमें
छानलेवे । फिर इसमें १०० बार आँवलेके स्वरसकी भावना दियाहुआ आँवलेका
चूर्ण १ आढक, नवीन उत्तम शहद १ आढक, पिसीहुई मिसरी १ आढक, वंशलो-
चन और पीपलका चूर्ण १ प्रस्थ इन सबको उसमें मिलादेवे और किसी घीके चिकने
मिट्टीके पात्रमें भरकर पंद्रहदिनतक घूरा रहने देवे । फिर जठराग्निका बलाबल विचार
कर उचित मात्रासे सेवन करे । और सेवन करते समय मात्रा (खुराक) से
सोलहवां भाग सोना, तांबा, मूंगा, लोहा, स्फटिक, मोती, वैदूर्य, शंख और चांदी इन
सबकी बहुत उत्तम भस्म मिलाकर खाना चाहिये । इसके सेवनके समय सब
प्रकारका परिश्रम और स्त्रीसंगकी विच्छुल त्याग देवे तथा किसीप्रकारका कुपथ्य

सेवन न करे । जब मात्रा जीर्ण होकर भूख लगे तब शाठीके चावलोंका भात, दूध और घृत मिला भोजन कियाकरे ॥ १७७-१८७ ॥

इसके गुण ।

सर्वरोगप्रशमनं वृष्यमायुष्यमुत्तमम् । सत्त्वस्मृतिशरीराग्निबुद्धी-
न्द्रियबलप्रदम् ॥ १८८ ॥ परमूर्जस्करश्चैव वर्णस्वरकरंतथा । विषा-
लक्ष्मीप्रशमनंसर्ववाचोगतिप्रदम् ॥ १८९ ॥ सिद्धार्थताश्चाभिनवं
वयश्चप्रजाप्रियत्वश्चयशश्चलोके । प्रयोज्यमिच्छद्भिरिदंयथावद्रसा-
यनंब्राह्ममुदारवीर्यम् ॥ १९० ॥

यह रसायन सर्वरोगनाशक, बलवर्द्धक, परमआयुंकारक और सत्त्व, स्मृति, शरीर अग्नि, बुद्धि तथा इन्द्रियोंके बलको देनेवाली है । एवं भोजको बढ़ानेवाली, स्वर और वर्णको उत्तम करनेवाली, विषविकार तथा शरीरकी अलक्ष्मीको दूर करनेवाली और वाक्सिद्धिको देनेवाली है । इसके सेवनसे मनोरथ सिद्धि, नवीन अवस्था और प्रजाका प्रियपात्र एवं लोकमें यशकी प्राप्ति होती है । जो मनुष्य इन सब गुणोंकी इच्छा रखता हो वह इस उदारवीर्य ब्राह्मरसायनका सेवन करे ॥ १८८ ॥ ॥ १८९ ॥ १९० ॥

कुटीप्रवेशयोग्य मनुष्य ।

समर्थानामरोगाणांधीमतानिनियतात्मनाम् ।

कुटीप्रवेशःक्षमिणांपरिच्छदवतांहितः ॥ १९१ ॥

जो मनुष्य सब प्रकार समर्थ हैं तथा आरोग्य (तन्दुरुस्त) बुद्धिमान, जितात्मा क्षमायुक्त तथा संपूर्ण सामग्रीयुक्त हों उनको कुटीप्रवेशविधिसे रसायन सेवन करना हितकारक होता है ॥ १९१ ॥

कुटीप्रवेशके अयोग्य ।

अतोऽन्यथातुयेतेपांसौर्यमारुतकोविधिः ।

ताभ्यांश्रेष्ठतरःपूर्वोविधिःसुसुदुष्करः ॥ १९२ ॥

जो मनुष्य चंचल प्रकृतिवाले, रोगी, बुद्धिरहित, असमर्थ और असहनशील हैं तथा जिनके पास सब प्रकारकी सामग्री नहीं है उनको सौर्यमारुतिक अर्थात् जिसमें पवन, धूपका कोई विचार न हो, इस प्रकारकी साधारण रसायन सेवन करना चाहिये । यद्यपि कुटीप्रावेशिक रसायन सब प्रकार गुणोंमें परमोत्तम होती है परन्तु उसको साधारण मनुष्य कर नहीं सकते ॥ १९२ ॥

कुपथ्यसे उत्पन्न रागोंमें चिकित्सा ।
रसायनविधिभ्रंशज्जायेरन्वयाधयोयदि ।

यथास्वमौषधंतेपांकार्यमुक्त्वारसायनम् ॥ १९३ ॥

रसायन सेवन करते समय किसी प्रकारका कुपथ्य होनेसे जो रोग उत्पन्न होय तो उनकी उन रोगोंके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये और रसायनका त्याग करने चाहिये ॥ १९३ ॥

रसायनके योग्य मनुष्य ।

सत्यवादिनमक्रोधंनिवृत्तमद्यमैथुनात् । अहिंसकमनायासंप्रशान्तंप्रियवादिनम् ॥ १९४ ॥

जपशौचपरंधीरंदाननित्यंतपस्विनम् । देवगोब्राह्मणाचार्य्यगुरुवृद्धान्चर्चनेरतम् ॥ १९५ ॥

आनृशंस्यपरंनित्यंनित्यंकारुण्यवेदिनम् । समजागरणस्वप्ननित्यंक्षीरघृताशिनम् ॥ १९६ ॥

देशकालप्रमाणज्ञंयुक्तिज्ञमनहंकृतम् । शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ॥ १९७ ॥

उपासितारंवृद्धानामास्तिकानांजितात्मनाम् । धर्मशास्त्रपरंविद्यान्नरंनित्यरसायनम् ॥ १९८ ॥

गुणैरैतैःसमुदितैःप्रयुङ्क्तेयोरसायनम् । रसायनगुणान्सर्वान्यथोक्तान्ससमश्नुते ॥ १९९ ॥

जो जन सत्यवादी, क्रोधरहित, मद्य, मैथुनसे रहित, अहिंसक, श्रम न करने वाला, प्रियवादी, जप, शौचाचार, धीरता इनको धारण करनेवाला तथा नित्य दानको देनेवाला, तपस्वी, देवता, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु और वृद्धजनोंकी पूजामें रत हो, निर्लज्ज कामोंको न करनेवाला, दयाशील, ज्ञानी, उचित रीतिपर ठीक समय जागने और सोनेवाला हो दूध, घृतको भोजन करनेवाला हो एवं देश, काल प्रमाण और युक्तिको जाननेवाला हो, अहंकाररहित हो, प्रशंसनीय आचारको धारण करनेवाला हो, एक धर्मपर दृढ हो अध्यात्मको जाननेवाला हो, समस्त इन्द्रियोंको जीतकर ज्ञानमें लगानेवाला हो तथा वृद्ध, आस्तिक, जितात्मा, इनकी उपासना करनेवाला हो, धर्मशास्त्रकी आज्ञा पालन करनेवाला हो । इस प्रकारके मनुष्यको रसायनके बिना भी रसायनके गुण प्राप्त होतेहैं । जिन लोगोंमें इस प्रकारके गुण वर्तमान हैं यदि उनको रसायनका प्रयोग कियाजाय तो उनको रसायनके संपूर्ण गुण प्राप्त होतेहैं ॥ १९४-१९९ ॥

यथास्थूलमनिर्वाह्यदोषाञ्छरीरमानसान् । रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यते

न कदाचन ॥ २०० ॥ योगाह्यायुःप्रकर्षार्थाजरारोगनिवर्हणाः ।

मनःशरीरशुद्धानांसिध्यन्तिप्रयतात्मनाम् ॥ २०१ ॥

जवतक शरीर और मनके दोषोंके समुदायसे मनुष्य शुद्ध नहीं होता तबतक वह कभी भी रसायनके गुणोंको प्राप्त नहीं करसकता । क्योंकि जिन लोगोंके मन और शरीर शुद्ध हैं तथा जो पुरुष जितात्मा हैं । उन्हींको यह आयुवर्द्धक, जराव्याधिनाशक रसायनके संपूर्ण योग सिद्ध होसकतेहैं ॥ २०० ॥ २०१ ॥

रसायनके अयोग्य ।

तदेतन्नभवेद्वाच्यंसर्वमेवहतात्मसु ।

अरुजेभ्योद्विजातिभ्यःशुश्रूपायेपुंनास्तिच ॥ २०२ ॥

जो मनुष्य अजितेन्द्रिय हैं, जिनका चित्त अपने वशमें नहीं है, जिनको आरोग्यतामें और ब्राह्मणोंमें श्रद्धा नहीं है । ऐसे मनुष्योंको रसायनका कथन मात्र भी नहीं करना चाहिये ॥ २०२ ॥

वैद्यकी सेवाका उपदेश ।

येरसायनसंयोगावृष्यायोगाश्चयेमताः । यच्चौषधविकाराणांसर्व

तद्वैद्यसंश्रयम् ॥ २०३ ॥ प्राणाचार्य्यबुधस्तस्माद्धीमन्तंवेदपार-

गम् । अश्विनाविवदेवेन्द्रःपूजयेदतिशक्तितः ॥ २०४ ॥

यह संपूर्ण रसायनयोग और वाजीकरणयोग एवं व्याधियोंको नष्ट करनेवाले औषध चिकित्सा यह सब वैद्यके आश्रय हैं । इसलिये जिस प्रकार इन्द्र अश्विनी कुमारोंका पूजन करताहै उसीप्रकार आयुर्वेदके जाननेवाले बुद्धिमान् प्राणाचार्य्य वैद्यकी सेवा यथाशक्ति मनुष्योंको करनी चाहिये ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसा ।

अश्विनौदेवभिषजौयज्ञवाहावितिस्मृतौ । दक्षस्यहिशिरश्छिन्नंपुन-

स्ताभ्यांसमाहितम् ॥ २०५ ॥ प्रशीर्णादशनाःपूष्णोनेत्रेनष्टेभग-

स्यच । वज्रिणश्चभुजस्तम्भस्ताभ्यामेवचिकित्सितः ॥ २०६ ॥

चिकित्सितस्तुशीतांशुर्घृहीतो राजयक्ष्मणा । सोमान्निपतितश्च-

न्द्रःकृतस्ताभ्यांपुनःसुखी ॥ २०७ ॥ भार्गवश्च्यवनःकामीवृद्धःसन्वि-

कृतिंगतः । वीतवर्णस्वरोपेतःकृतस्ताभ्यांपुनर्युवा ॥ २०८ ॥ एतै-

श्रान्यैश्चवहुभिःकर्मभिर्भिषगुत्तमौ । बभूवतुर्भृशंपूज्याविन्द्रादीनां

महात्मनाम् ॥ २०९ ॥ ग्रहाःस्तोत्राणिमन्त्राणितथान्यानिहवी-
षिच । धूम्राश्वपशवस्ताभ्यांप्रकल्प्यन्तेद्विजातिभिः ॥ २१० ॥

अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं । इनको यज्ञमें भाग भी दिया जाता है । इन्होंने दक्षके कटेहुए सिरको जोड़ दिया था । पूषादेवके गिरेहुए दांतोंको और भगदेवके नष्ट नेत्रोंको फिर उत्तम बना दिया था । इन्द्रकी स्तंभित भुजाओंकी चिकित्सा की थी, राजयक्ष्मासे व्याकुलहुए चंद्रमाको अश्विनीकुमारोंने ही अच्छा किया । सोम-भावसे नष्टहुए चन्द्रमाको इन्होंने सुखी किया और भृगुके पुत्र च्यवन ऋषि कामवश होनेसे वृद्धावस्थामें विकृत होगयेथे उनको भी इन्होंनेही वर्ण, स्वरयुक्त फिरसे युवा बना दिया । इसप्रकारके बहुतसे योग्य और उत्तम चिकित्सा कर्म किये । उन कर्मोंके प्रभावसे यह अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवता और महात्माओंके विशेष पूजनीय हुए । इसीलिये द्विजाती भी उनके अर्पण मन्दिर, स्तोत्र, मंत्र, घृतकी आहुति, धूप और यज्ञभाग करते हैं ॥ २०९-२१० ॥

प्रातश्चसवनेसोमंशक्रोऽश्विभ्यांसहाश्नुते । सौत्रामण्याश्चभगवान-
श्विभ्यांसहसोदते ॥ २११ ॥ इन्द्राग्नीचाश्विनौचैवस्तूयन्तेप्रा-
यशोद्विजैः । स्तूयन्तेवेदवाक्येषुनतथान्याहिदेवताः ॥ २१२ ॥
अमरैरजरैस्तावद्विबुधैःसाधिपैर्ध्रुवैः । पूज्येतेप्रयतैरेवमश्विनौभिष-
जाविति ॥ २१३ ॥

प्रातःकाल इन्द्रभगवान् अश्विनीकुमारोंके साथ सोमको पान करतेहैं और सौत्राम-
णी यज्ञसे अश्विनीकुमारों सहित प्रसन्न होतेहैं । ब्राह्मण प्रायः इन्द्र, अग्नि और
अश्विनीकुमारोंकी ही स्तुति करतेहैं । वेदवाक्योंमें भी जिसप्रकार अश्विनीकुमा-
रोंकी स्तुति है वैसी अन्य देवताओंकी नहीं है । जरारहित, अमर, ज्ञानी, देवता,
अपने अधिपति इन्द्रके साथ यत्नपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी पूजा करतेहैं ॥ २११-२१३ ॥

मृत्युव्याधिजरावश्यैर्दुःखप्रायैःसुखार्थिभिः ।

किंपुनर्भिषजोमर्त्यैःपूज्याःस्यर्नातिशक्तितः ॥ २१४ ॥

मनुष्य प्रायः मृत्यु, व्याधि, बुढ़ापा आदि दुःखोंसे दुःखित हुए रहतेहैं उनको
अपने सुखकी इच्छा करतेहुए यथाशक्ति वैद्योंका पूजन करना चाहिये ॥ २१४ ॥

प्राणाचार्यके लक्षण ।

- शीलवान्मतिमान्युक्तोद्विजातिःशास्त्रपारगः ।

प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्यःप्राणाचार्य्यःसहिस्मृतः ॥ २१५ ॥

शीलवान्, मतिमान्, चिकित्साकी संपूर्ण युक्ति जाननेवाला, द्विजाति, आयुर्वेद शास्त्रमें पारंगत वैद्य प्राणाचार्य कहाजाताहै । वह संपूर्ण प्राणियोंको प्राणोंके समान पूजन करनेयोग्य है ॥ २१५ ॥

वैद्यको त्रिजातित्व ।

विद्यासमाप्तौभिपजस्तृतीयाजातिरुच्यते। अश्नुतेवैद्यशब्दाहिनवैद्यः
पूर्वजन्मना ॥ २१६ ॥ विद्यासमाप्तौब्राह्मणासत्त्वमार्यमथापिवा ।

ध्रुवमाविशतिज्ञानात्तस्माद्वैद्यस्त्रिजस्मृतः ॥ २१७ ॥

वैद्य विद्याको समाप्त करनेपर त्रिजाति कहाजाताहै क्योंकि पूर्वजन्मसे कोई वैद्य नहीं कहाजासकता । ब्राह्मण बालकका जन्म संस्कार होनेके अनन्तर जब यज्ञोपवीत संस्कार होताहै तो वह द्विज कहाजाताहै फिर वैद्यविद्याकी समाप्ति होनेपर जब उसमें आयुर्वेदशास्त्रका प्रभव होजाताहै तो उस समय उसमें ब्राह्मणसत्त्व अथवा आर्यसत्त्व आकर प्रवेश कर लेताहै । उस समयसे वैद्य त्रिजाति कहाजाताहै ॥ २१६ ॥ २१७ ॥

नाभिध्यायेन्नचाक्रोशोदहितंनसमाचरेत् । प्राणाचार्य्यबुधःकश्चिदि-
च्छन्नायुरनिस्वरम् ॥ २१८ ॥ चिकित्सितस्तुसंश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमा-
नवः । नोपाकरोतिवैद्यायनास्तितस्येहनिष्कृतिः ॥ २१९ ॥

दीर्घायुकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको वैद्यका कभी भी खोटा चिंतन नहीं करना चाहिये । और निंदा अहित तथा अपशब्द यह प्राणाचार्यको कभी न कहे । जब मनुष्य रोगावस्थामें ऐसी प्रतिज्ञा करे कि मैं अच्छा होजानेपर वैद्यकी सेवा करूंगा अथवा बिना प्रतिज्ञा किये भी जो मनुष्य रोगमुक्त होनेपर वैद्यकी सेवा नहीं करता तो उस पापीके इसप्रकार पापका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

वैद्यके लिये कर्तव्य ।

भिपगप्यातुरान्सर्वान्स्वसुतानिवयत्नवान् ।

आवाधेभ्योहिसंरक्षेदिच्छन्धर्ममनुत्तमम् ॥ २२० ॥

वैद्यको भी चाहिये कि वह सर्वोत्तम धर्मकी इच्छा करताहुआ अपने पुत्रोंके समान रोगियोंकी संपूर्णरूपसे व्याधियोंसे रक्षा करे ॥ २२० ॥

धर्मार्थश्चार्थकामार्थमायुर्वेदोमहर्षिभिः । प्रकाशितोधर्मपरैरिच्छ-
द्भिःस्थानमक्षरम् ॥ २२१ ॥ नात्मार्थनापिकामार्थमथभूतदयांप्र-
ति । वर्त्ततेयश्चिकित्सायांससर्वमतिवर्त्तते ॥ २२२ ॥ कुर्वतेयेतु

वृत्त्यर्थचिकित्सापण्यं विक्रयम् । तेहित्वाकाञ्चनं राशिपांशुराशि-
मुपासते ॥ २२३ ॥

धर्मपरायण महर्षियोंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा करते हुए आयुर्वेदका उपदेश किया है केवल अपने स्वार्थ अथवा कामनाके साधनकी इच्छासे धैर्यवेदका उपदेश किया है उनका प्रयोजन प्राणी मात्रपर दया करनाही है । इसलिये उनकी आज्ञानुसार चिकित्सा करनेवाला वैद्य सबसे उत्तम या ऊंचे दर्जेका माना जाता है । जो वैद्य केवल आजीविकाके लिये चिकित्साकी दूकानदारी करता है वह मूर्ख सुवर्णके ढेरको छोड़कर धूलके ढेरकी उपासना करता है ॥ २२१ ॥ २२२ ॥ २२३ ॥

वैद्यको पुण्य ।

दारुणैः कृष्यमाणानां गदैर्वैवस्वतक्षयम् । छित्त्वा वैवस्वतान्पाशा-
जीवितञ्च प्रयच्छति ॥ २२४ ॥ धर्मार्थसदृशस्तस्युदात्तानेहोपल-
भ्यते । नहि जीवितदानाद्धिदानमन्यद्विशिष्यते ॥ २२५ ॥

रोगरूपी दारुण प्राणिमियोंसे यमलोककी ओर खींचे हुए प्राणिमियोंको यमप्रांससे छुड़ाकर जो जीवनका दान देता है उससे बड़ेकर धर्मात्मा और दानी कौन होसकता है अर्थात् कोई नहीं होसकता । क्योंकि जीवनदानसे बड़ेकर दुनियामें और कोई दान नहीं है ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

परोभूतदयाधर्म इति मत्वा चिकित्सया ।

वर्त्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ २२६ ॥

जीवमात्रपर दया करनाही परमधर्म है यह मानकर जो वैद्य चिकित्सा करता है वह वैद्य सिद्ध अर्थको अथवा अपने पर्यतनकी सिद्धिको प्राप्त होकर इस लोकके और परलोकके अत्यन्त सुखकी प्राप्त होता है ॥ २२६ ॥

पादका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ ।

आयुर्वेदसमुत्थानं दिव्यौषधिविधिः शुभः । अमृताल्पान्तरगुणं सि-
द्धं रत्नरसायनम् ॥ २२७ ॥ सिद्धेभ्यो ब्रह्मचारिभ्यो यदुवाचामरेश्वरः ।
आयुर्वेदसमुत्थाने तत्सर्वसम्प्रकाशितम् ॥ २२८ ॥

इति चरकसं० चिकित्सिते आयुर्वेदसमुत्थानीयो रसायनपादश्चतुर्थः २
समाप्तश्च रसायनोऽध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

यहाँपर अध्यापके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस आयुर्वेद समुत्थानीय रसायन पादमें-आयुर्वेदकी उत्पत्ति, दिव्य और शुभ तथा अमृततुल्य गुणवाली सिद्ध रसायनोंका ब्रह्मचारी सिद्ध ऋषियोंके प्रति इन्द्रका कथन करना यह सब वर्णन किया गया है ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

इति धीमहापंचरक प्रणीतायुर्वेदसंहितायां चिकित्सास्थाने टकसालनिवासि पं० रामप्रसादवेद्ये-
पाठ्यायविरचितप्रसादन्यास्यमापाटीकायामायुर्वेदसमुत्थानीयो नाम चतुर्थःपादः ।

समाप्तश्चायं रसायनाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।



वाजीकरणम् ।

अथातः सम्प्रयोगशरमूलीयंवाजीकरणपादं व्याख्यास्याम इति
हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम सम्प्रयोग शरमूलीय वाजीकरण पादकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार
भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषो नित्यमात्मवान् । तदायत्तोहि धर्मार्थौ
प्रीतिश्च यश एव च ॥ १ ॥ पुत्रस्यायतनं ह्येतद्गुणाश्चैते सुताश्रयाः ।

वाजीकरणमध्यश्चक्षेत्रस्त्रीयाप्रहर्षिणी ॥ २ ॥

आत्मवान् मनुष्यको नित्यम्प्रति वाजीकरण पदार्थोंका सेवन करना चाहिये ।
क्योंकि धर्म, अर्थ, प्रीति और यश यह सब वाजीकरणके ही आधीन हैं । और
पुत्रोत्पत्तिका परमस्थान वाजीकरण ही है । और पुत्रके आश्रय ही धर्म, अर्थ,
प्रीति और यश-यह गुण रहते हैं । तथा, सबसे मुख्यक्षेत्र वाजीकरणका प्रहर्षको
उत्तम करनेवाली स्त्रियें हैं ॥ १ ॥ २ ॥

स्त्रीकी प्रशंसा ।

इष्टाह्येकैकशोऽप्यर्थाः परंप्रीतिकराः स्मृताः । किंपुनः स्त्रीशरीरे ये सं-
घातेन व्यवस्थिताः ॥ ३ ॥ संघातो हीन्द्रियार्थानां स्त्रीपुनान्यत्र वि-
द्यते । रुयाश्रयो हीन्द्रियार्थो यः स प्रीतिजननोऽधिकः ॥ ४ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह पांचों इन्द्रियोंके विषय हैं । इनमेंसे एककी
प्राप्ति होना भी परम प्रीतिके आनन्दको देनेवाला होता है । स्त्रीके शरीरमें यह पांचों
ही संघातरूपसे विराजमान रहते हैं । इसलिये स्त्रीसे बढ़कर इन्द्रियोंकी प्यारी वस्तु

औग क्या होसकतीहै । सर्व इन्द्रियोंके विषय संघातरूपसे स्त्रीके सिवाय और किसी जगह नहीं गृहसकते । स्त्रीके आश्रित जो इन्द्रियोंके विषय है वह ही अत्यंत प्रीतिको उत्पन्न करनेवाले है ॥ ३ ॥ ४ ॥

स्त्रीपुप्रीतिर्विशेषेणस्त्रीष्वपत्यंप्रतिष्ठितम् ।

धर्मार्थोस्त्रीपुलक्ष्मीश्चस्त्रीपुलोकाःप्रतिष्ठिताः ॥ ५ ॥

स्त्रियोम ही विशेषरूपसे प्रीति निवास करतीहै । स्त्रियोंमें ही संतान प्रतिष्ठित है । धर्म, अर्थ और लक्ष्मी यह सब स्त्रियोंमेंही विद्यमान है । स्त्रियोंमेंही यह संसार प्रतिष्ठित है ॥ ५ ॥

सुरूपायौवनस्थायालक्षणैर्याविभूषिता ।

यावश्याशिक्षितायाचसास्त्रीवृष्यतमामता ॥ ६ ॥

सुन्दर, रूपवती, युवावस्थावाली, संपूर्ण योग्य लक्षणोंसे शोभायमान अपने वश तथा गुणवान् जो स्त्री है वह सबसे उत्तम वाजीकण अर्थात् प्रहर्षोत्पादक है ॥ ६ ॥

नानाभुक्त्यातुलोकस्यदैवयोगाच्चयोपिताम् । तंतंप्राप्यविवर्तन्ते

नररूपादयोगुणाः ॥ ७ ॥ वयोरूपवचोहावैर्यायस्यपरमाङ्गना ।

प्रविशत्याशुहृदयदैवाद्वाकर्मणोऽपिवा ॥ ८ ॥ हृदयोत्सवरूपाया

यासमानमनोरमा । समानसत्त्वायावश्यायायस्यप्रीतयेप्रियैः ॥ ९ ॥

संसारमें अनेक प्रकारकी स्त्रिये होती है और दैवयोगसे उन्ही अनेक प्रकारके रूपादि गुणोंको देखकर अनेक प्रकारके मनुष्योंको प्रीति उत्पन्न होतीहै । उनमें भाग्याधीन वा कर्मवशसे जिस पुरुषको जैसी अवस्थारूपवाली स्त्रीका हृदयमें प्रेम उत्पन्न होताहै उसके लिये वही रूपवती और वही मनको प्रसन्न करनेवाली मनोरमा होतीहै । जो जिसके सत्त्वके अनुरूप सत्त्ववाली होतीहै और जो जिसके वश होतीहै वही स्त्री उसके अनुकूल प्यारे गुणोंके योगसे अपने प्यारे पुरुषमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली होतीहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

यापाशभूतासर्वेषामिन्द्रियाणांपरैर्गुणैः । ययावियुक्तोनिस्त्रीकमर-

तिर्मन्यतेजगत् ॥ १० ॥ यस्याऋतेशरीरंनाधत्तेशून्यमिवेन्द्रियैः ।

शोकोद्वेगारतिभयैर्यादृष्ट्वानाभिभूयते ॥ ११ ॥ यातियांप्राप्यविम्बम्भ

दृष्ट्वाहृष्यत्यतीत्रयाम् । अपूर्वामिवयांयातिनित्यहर्षातिवेगतः ॥ १२ ॥

गत्वागत्वापिवहृशोयांतृप्तिनैवगच्छति ॥ सास्त्रीवृष्यतमातस्थना-

नाभावाहिमानयाः ॥ १३ ॥

जो स्त्री संपूर्ण इन्द्रियोंको अपने गुणरूपी फांसीसे आकर्षण करती है, जिस स्त्रीके विना, पुरुषका चित्त अस्थिर होजाता है । जिसके विना मनुष्य अपने शरीरको इन्द्रियोंसे शून्य मानकर शरीरकी इच्छा नहीं रखता, जिसके देखने मात्रसे मनुष्य के शोक, उद्वेग, अस्थिरता (अरति) भय, यह सब दूर भागजाते हैं । जिसको देखते ही विश्वासको प्राप्त हो मनुष्य अपने संपूर्ण भावोंको प्रगट करने लगजाता है । जिसको देखकर अत्यंत हर्षको प्राप्त होता है । जिसको नित्य देखतेहुए भी अपूर्वके समान नित्य नयानया हर्षका वेग उत्पन्न होता है । जिस स्त्रीसे नित्य सहवास करते हुए भी मनुष्य ललितको प्राप्त नहीं होता वह स्त्री अपने अपने भावोंके समान पुरुषोंको अत्यंत वाजीकरण अर्थात् कामोत्पादक होती है क्योंकि संपूर्ण प्राणियोंकी प्रकृति एकसी नहीं होती ॥ १०-१३ ॥

संतानार्थं योग्यस्त्रीगमनम् ।

अतुल्यगोत्रांबृष्याश्चप्रहृष्टानिरुपद्रवाम् ।

शुद्धस्नातांब्रजेन्नारीमपत्यार्थीनिरामयः ॥ १४ ॥

जो स्त्री अपने स्वभावके अनुरूप हो तथा अपने गोत्रकी न हो, जिसमें प्रीति हो, जो रोगरहित हो, प्रसन्नमन हो उपद्रवरहित हो और ऋतुसे शुद्ध स्नान कर चुकी हो, संतानकी इच्छावाला पुरुष ऐसी स्त्रीसे संसर्ग करे ॥ १४ ॥

संतानके विना पुरुषकी निन्दा ।

अच्छायश्चैकशाखश्चनिष्फलश्चयथाद्रुमः । अनिष्टगन्धश्चैकश्च
निरपत्यस्तथानरः ॥ १५ ॥ चित्रदीपःसरःशुष्कमधातुर्धातुसन्नि-
भः । निष्प्रजस्तृणपूलीतिज्ञातव्यःपुरुषाकृतिः ॥ १६ ॥

जैसे छायारहित एक शाखावाला निष्फल और अनिष्ट गंधवाला वृक्ष निन्दनीय होता है उसी प्रकार संतानके विना पुरुष भी निन्दनीय होता है । संतानके विना मनुष्य जैसा चित्रमें लिखा दीपक, नाममात्रका ही होता है परन्तु प्रकाशयुक्त नहीं होता उसी प्रकार संतानहीन मनुष्य भी निरर्थक होता है । जैसे जलके विना सरोवर और विना धातुसे धातुके समान दीखनेवाला पदार्थ और घास या लकड़ीसे बना हुआ पुरुषके आकारका पुतला केवल देखनेमात्रका ही होता है । उसी प्रकार संतानके विना पुरुष होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

अप्रतिष्ठश्चनम्रश्चशून्यश्चैकेन्द्रियश्चना ।

मन्तव्यो निष्क्रियश्चैवयस्यापत्यंनविद्यते ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यको संतान नहीं है वह प्रतिष्ठाग्रहित नष्टके समान शून्य, एकेन्द्रिय और क्रियारहित होता है ॥ १७ ॥

संतानयुक्त पुरुषकी प्रशंसा ।

बहुमूर्तिर्वहुमुखोबहुव्यूहोबहुक्रियः ।

बहुचक्षुर्वहुज्ञानोबह्वात्माचबहुप्रजः ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यकी बहुतसी संतान हैं उसको बहुतसी मूर्तियोंवाला, बहुतसे मुखवाला, बहुत चक्षु और बहुत क्रियावाला तथा बहुनेत्र, बहुज्ञान और बहुआत्मा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

मङ्गल्योऽयं प्रशस्तोऽयं धन्योऽयं वीर्यवानयम् । बहुशाखोऽयमिति

चस्तूयतेनावहुप्रजः ॥ १९ ॥ प्रीतिर्वलंसुखंवृत्तिर्विस्तारोविभवः

कुलम् । यशोलोकाः सुखोदर्कास्तुष्टिश्चापत्यसंश्रिता ॥ २० ॥

जिस मनुष्यकी बहुतसी संतान हैं वह संसारमें यह मंगलमय, प्रशंसाके योग्य, पवित्र, धन्य और वीर्यवान् तथा, बहुतसी शाखाओंवाला है । इसप्रकार कहकर स्तुति क्रिया जाता है । संसारमें प्रीति, बल, सुख, वृत्ति, विस्तार, विभव, कुल, यश, यह सब लोकसुखके समूह है । यह सब तथातुष्टि संतानके ही आश्रित है ॥ १९ ॥ २० ॥

तस्मादपत्यमन्विच्छन्गुणांश्चापत्यसंश्रितान् ।

वाजीकरणनित्यः स्यादिच्छेत्कामसुखानि च ॥ २१ ॥

इसलिये संतानकी इच्छावाला मनुष्य तथा संतानके गुणोंकी इच्छा एवं काम-सुखकी इच्छा करता हुआ, नित्य वाजीकरण पदार्थोंका सेवन करे ॥ २१ ॥

उपभोगसुखान् सिद्धान् वीर्यापत्यविवर्द्धनान् ।

वाजीकरणसंयोगान् प्रवक्ष्याम्यत उत्तरम् ॥ २२ ॥

अब उपभोगके सुखको करनेवाले तथा वीर्य और संतानके बढ़ानेवाले सिद्ध वाजीकरण प्रयोगोंका वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥

वृष्यगुटिका ।

शरमूलेक्षुमूलानिकाण्डेक्षुंसेक्षुवालिकम् । शतावरीपयस्यांचविदारीकण्टकारिकाम् ॥ २३ ॥ जीवन्ती जीवकंमेदांवीराश्चर्षभकंवलाम् । ऋद्धिं गौशुरकरास्त्रामात्मगुप्तां पुनर्नवाम् ॥ २४ ॥ पृथक्

त्रिपलिकान् कृत्वा मापाणामाटकं नवम् । दिपाचये जलद्रोणे च तु-

र्भागश्चशोषयेत् ॥ २५ ॥ तत्रपेष्याणिमधुकंद्राक्षांफल्गूनिपिप्प-
लीम् । आत्मगुप्तांमधूकानिखर्जूराणिशतावरीम् ॥ २६ ॥ विदा-
र्यामिलकेशूणारसस्यचपृथक्पृथक् । सर्पिषश्चाढकंदद्यात्क्षीरद्रो-
णश्चतद्भिषक् ॥ २७ ॥ साधयेद्दृतशेषश्चसपूतंयोजयेत्पुनः । शर्क-
रायास्तुगाक्षीर्याश्चूर्णेःप्रस्थोन्मितैर्भिषक् ॥ २८ ॥ पलैश्चतुर्भिर्मा-
गध्याःपलेनमरिचस्यच । त्वगेलकेशराणाश्चूर्णैरर्द्धपलोन्मितैः
॥ २९ ॥ मधुनःकुडवाभ्याश्चद्वाभ्यांतत्कारयेद्भिषक् । पलिकागु-
टिकाःकृत्वातायथाग्निप्रयोजयेत् ॥ ३० ॥ एषवृष्यःपरोयोगोवृंह-
णोवलवर्द्धनः । अनेनाश्वइवोदीर्णोलिङ्गमर्पयतेस्त्रियाम् ॥ ३१ ॥

सरकंडेकी जड, ईपकी जड, काण्डेशु, इधुवालिका, शतावरी, क्षीरकाकोली,
विदारी कंद, कटेली, जीवन्ती, जीवक, मेदा, काकोली, ऋपभक, बला (खरेटी)
ऋद्धि, गोखरू, रासना, कौंचकी बीजांकी गिरू, पुनर्नवा इन प्रत्येकको तीनतीन
पल लेवे, उडद ? आढक (४ सेर) इन सबको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें
डालकर पकावे । जव चौथा हिस्सा बाकी रहे तब उतार लेवे । फिर इसमें सुलहठी,
मुनका, गृलर, पीपल, कौंचके बीजांकी गिरू, महुए, छोहाडे और शतावर इन सबका
कल्क बना उसी कायमें मिला देवे । फिर विदारीकंदका रस, आमलोंका रस,
ईखका रस यह सब एक एक आढक मिलावे (और घृत १ आढक मिलावे) तथा दूध
१ द्रोण मिलाकर सबको घृत पाक विधिसे पकावे । जव घृतमात्र शेष रहे तो घृतको
छानकर किमी उत्तम पात्रमें डाल लेवे । और उस घृतमें मिमरी और वंशलोचन १
प्रस्थ मिलावे तथा पीपल ४ पल मिर्च १ पल, दालचीनी, इलायची, नागकेजग यह
प्रत्येक २ तोला । शहद २ कुडव (आधा सेर पका) इन सबको उस घृतमें
मिलाकर चाग चार तोलेकी गोलियें बना लेवे । फिर इनको अग्निबल विचारकर सेवन
करे । यह गुटिका (लड्डू) पगम धीर्यवर्द्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाली और बलके
वढानेवाली है । इसके प्रयोगसे मनुष्य घोंडेके समान भैथुनकर सकताहै ॥२३-३१॥

बाजीकरण घृत ।

माषाणामात्मगुप्तायावीजानामाढकंनवम् । जीवकपर्पभकौवीरामे-
दामृद्धिशतावरीम् ॥ ३२ ॥ मधूकश्चाश्वगन्धाश्चसाधयेत्कुडवो-

न्मिताम् । रसेतस्मिन्घृतप्रस्थंगव्यं दशगुणंपयः ॥ ३३ ॥ विदारी-
णां रसप्रस्थं प्रस्थमिक्षुरसस्य च । दत्त्वा मृद्वग्निना साध्यं सिद्धं सर्पिर्नि-
धापयेत् ॥ ३४ ॥ शर्करायास्तु गाक्षीर्याः शौद्रस्य च पृथक्पृथक् ।
भागांश्चतुष्पलांस्तत्र पिप्पल्याश्चावपेत्पलम् ॥ ३५ ॥ पलं पूर्वमतो
लीढ्वा ततोऽन्नमुपयोजयेत् । यद्दृच्छेदक्षयं शुक्रं शोफसश्चोत्तमं वलम् ३६

नए उडद और कौंचके बीज यह दोनों एक एक आठक लेवे । जीवक, ऋषभक
काकोली, मेदा, ऋद्धि, शतावरी, मुलहठी और असगंध यह प्रत्येक एक एक कुडव
इन सब औषधियोंको लेकर दशगुने जलमें पकावे । जब नौभाग जलकर एक भाग
बाकी रहे तब उस रसको छान लेवे । फिर उस रसमें १ प्रस्थ घी दश प्रस्थ दूध १
प्रस्थ विदारीकंदका रस, १ प्रस्थ इक्षुरस । इन सबको मिलाकर मंदमंद आंचसे
पकावे । जब घृतमात्र शेषरहे उसको उतार लेवे । उस घृतमें चार पल वंशलोचन,
४ पल शहद, १ पल पीपलका चूर्ण यह सब मिला देवे । इसमेंसे १ पल चाटलिया-
कोर फिर घृत, दूध युक्त पथ्य भोजन किया करे । इसके सेवनसे वीर्यकी वृद्धि होती है
तथा वीर्यक्षय नहीं होता एवं इन्द्रिय अत्यंत बलवान् होती है ॥ ३२-३६ ॥

वाजीकरण पिण्डरस ।

शर्करामापविदलास्तु गाक्षीरीपयोघृतम् । गोधूमचूर्णषष्ठीनिसर्पि-
प्युत्कारिकांपचेत् ॥ ३७ ॥ तां नातिपकां मृदितां कौक्कुटे मधुरे
रसे । सुगन्धे प्रक्षिपेदुष्णे यथा सान्द्रीभवेद्रसः ॥ ३८ ॥ एष
पिण्डरसो वृष्यः पौष्टिको बलवर्द्धनः । अनेनाश्व इवोदीर्णो वली
लिङ्गं समर्पयेत् । शिखितित्तिरिहं सानामेवं पिण्डरसो मतः ॥ ३९ ॥

उडदकी बारीक पिसी पिट्टी अथवा उडदके दालका चूर्ण और गेहूँका मैदा इनमें
मिसरी और दूध मिलाकर पूडियें बनालेवे और उन पूडियोंको घृतमें पकाकर कुक्कुट
(मुर्गा) के त्रिसुगंधयुक्त गर्भ २ मांसरसमें भिगो देवे । जब वह उस गर्भ मांसर-
समें मिलकर गाढा होजाय तो इसको पिण्डरस कहते हैं । यह पिण्डरस वीर्यवर्द्धक
पुष्टिकारक और बलको बढानेवाला है । इसके सेवनसे घोडेके समान लिंगेन्द्रिय तीक्ष्ण
और बलवान् होती है । इसीप्रकार मोर, तीतर और हंसके मांसरसमें भी यह पिण्ड-
रस बनता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वृष्य रस ।

घृतं मापान् सवस्ताण्डान् साधयेन्माहिपेरसे । भर्जयेत्तरसंपूतं फ-
लाम्लं नवसर्पिषि ॥ ४० ॥ ईपत्सलवणं युक्तं धान्यजीरकनागरैः ।
एपवृष्यश्च वल्यश्च बृंहणश्च रसोत्तमः ॥ ४१ ॥

घृत, उडद, बकरेके अण्डकोश इनको भैसेके मांसरसमें पकाकर छान लेवे । फिर उसको नवीन घृतमें सिद्धकरके अनार और आंवलेका रस थोडा, नमक, धनिया, जीरा और सांठ मिलाकर उसका सेवन करे । यह रस वीर्यवर्द्धक, बलकारक, पुष्टि-जनक है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अन्य वृष्य रस ।

चटकांस्तित्तिररसेत्तिन्तिरीन्कौकुटेरसे । कुकुटान्वाहिणरसेहांसे-
वहिणमेव च ॥ ४२ ॥ नवसर्पिषिसन्तप्तान् फलाम्लान् कारये-
द्रसान् । मधुरान्वायथासात्म्यंगन्धाढधान्वलवर्द्धनान् ॥ ४३ ॥

चिडेका मांस तीतरके मांसरसमें, तीतरका मांस मुर्गेके मांसरसमें पकावे । एवं मुर्गेका मांस मोरके मांसरसमें, मोरका मांस हंसके मांसरसमें पकाकर नवीन घृतमें सिद्धकरे । और उपरोक्त विधिसे खट्टे फलोंका रस अथवा भीठा रस वा जैसे सात्म्य द्यो वैसे गंध द्रव्य आदि मिलाकर सेवन करनेसे बल वीर्यकी वृद्धि होती है ४२-४३ ॥

अन्य वृष्य रस ।

तृप्तिचटकमांसानांगत्वायोऽनुपिवेत्पयः ।

नतस्थलिङ्गशैथिल्यं स्यान्नशुक्रक्षयोनिशि ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य तृप्तिपूर्वक चिडेका मांस खाकर ऊपरसे दूध पीता है उसकी लिंगेन्द्रियमें कभी शिथिलता उत्पन्न नहीं होती और रात्रिमें वीर्यक्षय नहीं होता ॥ ४४ ॥

वृष्य माप ।

मापयूपेणयोभुक्त्वाघृताढयंपष्टिकौदनम् ।

पयःपिवतिरात्रिसकृत्क्लांजागर्ति वेगवान् ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य उडदोंके दूधमें घृत मिलाकर उसके साथ साठीचावलोंके भातका भोजन करता है और ऊपरसे दूध पीता है वह कामके वेगसे व्याकुल हुआ सो नहीं सकता ॥ ४५ ॥

कुकुटमांस रस ।

ननास्वपितिरात्रीपुनिस्तब्धेनचशेफसा ।

तृप्तः कुकुटमांसानांभृष्टानांनकरेतसि ॥ ४६ ॥

मगरके शुक्रमें मुर्गेके मांसको भूनकर वृत्तिपूर्वक भोजन करनेसे मनुष्यकी इन्द्रिय क्षुभित रहनेसे वह रात्रिभर सो नहीं सकता ॥ ४६ ॥

अंडयोग ।

निःस्त्राव्यमत्स्याण्डरसंभृष्टंसर्पिषिभक्षयेत् ।

हंसवर्हिणदक्षाणिचैवमण्डानिभक्षयेत् ॥ ४७ ॥

मछलीके, अण्डोंके रसको घृतमें भूनकर अथवा हंस मोर और मुर्गीके अण्डोंको घीमें भूनकर खाना वीर्यको उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ४७ ॥

वृष्यसेवन क्रम ।

स्रोतःसुशुद्धेष्वमलेशरीरेवृष्यंयदानामितमत्तिकाले । वृषायतेतेन परंमनुष्यस्तद्वृंहणश्चैववलप्रदश्च ॥ ४८ ॥ तस्मात्पुराशोधनमेव कार्यवलानुरूपंनहिसिद्धियोगाः । सिध्यन्तिदेहेमलिनेप्रयुक्ताः क्लिष्टेयथावाससिरागयोगाः ॥ ४९ ॥

शरीर और शरीरके संपूर्ण छिद्र शुद्ध होनेपर ही वृष्यपदार्थोंका सेवन करना चाहिये । इसप्रकार सेवन करनेसे मनुष्य वैल समान वीर्यवान् होताहै और इसी प्रकार सेवनसे संपूर्ण वृष्य योग मनुष्योंको पुष्टि और बलकारक होतेहैं । इसलिये चमन विगचन द्वाग पहिले शरीरको शोधनकर फिर अपने बलके अनुरूप सिद्ध वृष्य योगोंको सेवनकरना चाहिये यदि बिना शोधनकिये मलिन देहवाला मनुष्य वृष्ययोगोंका सेवन करे तो वह जैसे मैले कपड़ोंमें अच्छा रंग नहीं चढता उसी प्रकार वृष्ययोग भी सिद्धिदायक नहीं होते ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

पादका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ ।

वाजीकरणसामर्थ्यक्षेत्रंस्त्रीयस्यचैवया । येदोपानिरपत्यानांगुणाः पुत्रवताश्चये ॥ ५० ॥ उक्तास्तेशरमूलीयेपादेपुष्टिबलप्रदाः । दशपञ्चसंयोगावीर्यापत्यविवर्द्धनाः ॥ ५१ ॥

इति च० सं० शरमूलीयेवाजीकरणपादःप्रथमः ।

अब पादके उपसंहारमें दो श्लोक कहतेहैं कि इस शरमूलीय वाजीकरण पादमें स्त्री योग्यता और वाजीकरणका क्षेत्र, संतानका कारण कदागर्थाहै । एवं संतानहै मनुष्यके दोष संतानवाले मनुष्योंके गुण और पंद्रह प्रकारके वीर्यवर्द्धक संतानदायक, पुष्टिकारक और बलके देनेवाले योगोंका कथन कियागयाहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

इति वाजीकरणाध्याये शरमूलीयवाजीकरणपादो नाम प्रथमपादः ॥

१ यद्यपि शुक वीर्यको ही फलतेहै परंतु कोई दमका प्रयोग अडा गानतेहै ।

अथातआसिक्तक्षीरीयद्वितीयवाजीकरणपादंव्याख्यास्याम इति
हस्माहभगवानात्रेयः ॥ ५२ ॥

अत्र हम आसिक्तक्षीरीय नामक दूसरे वाजीकरणपादकी व्याख्या करतेहैं इस-
प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ५२ ॥

अपत्यकारी गुटिका ।

आसिक्तक्षीरमापूर्णमशुष्कंशुद्धपट्टिकम् । उलूखले समापोथ्यपी-
डयेत्क्षीरमदितम् ॥ ५३ ॥ क्षुण्णंविमदितंक्षीरेपीडयेत्सुसमाहितः।
ग्रहीत्वांतरसंपूतंगव्येनपयसासह ॥ ५४ ॥ वीजानामात्मगुप्तार्यो-
धान्यमापरसेनच । बलायाःशूर्पपण्योश्चजीवन्त्याजीवकस्यच ।
ऋद्ध्यार्थभककाकोलीश्वदंष्ट्रामधुकस्यच ॥ ५५ ॥ शतावर्यावि-
दार्याश्चद्राक्षाखर्जूरयोरपि । संयुक्तमात्रयावैद्यः साधयेत्त्रचाव-
पेत् ॥ ५६ ॥ तुगाक्षीर्याःसमापाणांशालीनांपट्टिकस्यच । गोधू-
मानाश्चचूर्णानियेःससान्द्रीभवेद्रसः ॥ ५७ ॥ सान्द्रीभूतश्चतंकु-
र्यात्प्रभूतमधुशर्करम् । गुटिकावदरैस्तुल्यास्ताश्चसर्पिपिभर्जयेत्
॥ ५८ ॥ तायथाग्निप्रयुञ्जानःक्षीरमांसरसाशनः । पश्यत्यपत्यंवि-
पुलंवृद्धोप्यात्मजमक्षयम् ॥ ५९ ॥

सुन्दर, शुद्ध, शाठीके चावलोंको दूधमें भिगोकर गीले गीलोंकोही दूध डालकर
किसी बड़े कूंडमें बोटडाले । जब वह खूब बारीक होजायें तो उनको छानलेवे । उस
छनेहुए गाढे रसमें और गौका दूध मिलादेवे । फिर उसमें कौंचके बीजोंकी गिरू धनिया
और उडद इनका काथ तथा बला (खरटी) मुग्धपर्णा, मापपर्णा, जीवन्ती, जविक,
ऋद्धि, ऋपभक, काकोली, गोखरू, मुलहटी, शतावर, विदारीकंद, मुनका, पिण्डस्रजूर
इन सबका अलग २ काथ अथवा रस लेकर उस चावलोंके रसवाले दूधमें मिलाकर
पकावे । जब तीन भाग जलकर १भाग शेष रहे तो उसको उतार लेवे । उसमें वंशलो-
चन और घीमें मुनाहुआ उडदोंका शालिचावलोंका और साठीचावलोंका तथा गेहूँका
आटा मिलावे । परन्तु इस प्रमाणसे मिलाना चाहिये जिसमें वह खूब गाढा होजाया
फिर इन सबमें शहद और मिसरी मिला इसकी बेरके समान गोली बना लेवे ।
उनको घीमें पकालेवे । फिर इनको जठराग्निका बलाबल विचारकर खावे । ऊपरसे दूध

अथवा मांमरस पीया करे । इसका सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य भी बहुतसी संतान उत्पन्न करे और अपन संतानके अक्षय सुखको देखे ॥ ५३-५९ ॥

वृष्यपूपालिका ।

चटकानांसहंसानांदक्षाणांशिखिनांतथा । शिशुमारस्यनक्रस्य
भिषक्शुक्राणिसंहरेत् ॥ ६० ॥ गव्यंसर्पिवरोहस्यकुलिङ्गस्यवसा-
मपि । पष्टिकानाश्चूर्णानिचूर्णगोधूममेवच ॥ ६१ ॥ एभिःपूप-
लिकाःकार्याःशष्कुल्योवर्तिकास्तथा । पूपाधानाश्चिविधाभक्ष्या-
श्चान्येपृथग्विधाः ॥६२॥ एषांप्रयोगान्द्रक्ष्याणांस्तब्धेनापूर्णरेतसा ।
शेफसावाजिवद्यातियावदिच्छस्त्रियोनरः ॥ ६३ ॥

वेद्य-चिडा, हंस, मुर्गा, मोर, शिशुमार, (सौंस) नक्र (मगरमच्छ) इन सबके शुक्रको इकट्ठा करावे । फिर इन सब वीर्योंको सूअर तथा चिडेकी चर्बीमें मिलाकर उनमें ज़ाठीके चाबलोंका आटा और गेहूँका आटा मिलाकर पूडियें बनावे । उन पूडियोंको गौके घृत अथवा सूअरकी चर्बीमें पकालेवे । इसप्रकार पूडियों अथवा सोहालियें या खुरमें अथवा अनेक प्रकारके पूडे आदि बनाकर सेवन करनेसे लिंगेन्द्रिय पूर्णवीर्य और उद्वृण्ड रहे । और पुरुष घोडेके समान स्त्रियोंमें गमनकर सके ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अपत्यकारक पेया ।

आत्मगुप्ताफलंमापःखर्जूराणिशतावरीम् । शृङ्गाटकानिमृद्धीकां
साधयेत्प्रस्थसम्मिताम् ॥६४॥ क्षीरप्रस्थंजलप्रस्थंएतत्प्रस्थावशे-
पितम् । शुद्धेनवाससापृतंयोजयेत्प्रसृतैस्त्रिभिः ॥ ६५ ॥
शर्करायास्तुगाक्षीर्याःसर्पिपोऽभिनवस्यच । तत्पाययेत्सक्षौद्रंप-
ष्टिकान्नञ्चभोजयेत् ॥६६॥ जरापरीतोऽप्यवलोयोगेनानेनविन्दन्ति।
नरोऽपत्यंसुविपुलंयुवैवचसहृष्यति ॥ ६७ ॥

दौंचके बीज, उडद, पिण्डसज्ज, गतावग, सिंघाडा, मुनका, यह सब दोदी पल लेवे । दूध ? प्रस्थ, पानी ? प्रस्थ मिलाकर उसमें फिर उपरोक्त औषधियोंको मिलाकर पकावे जब पानी जलकर दूध मात्र शेष रहजाय तब इसको शुद्ध वस्त्र-द्राग छान लेवे । फिर इसमें ६ पल भिसरी, बंगलीचन और नर्पान घृत मिलावे ।

१ कोई कहतै कि शुक्रता अर्थ क्षण्टा है अर्थात् शुक्रकी जगह अडा देना चाहिये ।

फिर इसमें शहद मिलाकर पीजावे । और साठीचावलोंके भातका भोजन करे । इस योगके सेवन करनेसे वृद्ध और निर्वल मनुष्य भी बहुतसी संतानोंको पैदाकर सकता है और हृष्ट पुष्टांग होजाताहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

वृष्यक्षीर ।

खर्जूरीमस्तकंमापान्पयस्यांसशतावरीम् । खर्जूराणिमधूकानिमृ-
द्दीकामजडाफलम् ॥ ६८ ॥ पलोन्मितानिमतिमान्साधयेत्सलि-
लाढके । तेनपादावशेषेणक्षीरप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ६९ ॥ क्षीरशेषे-
णतेनाद्याद्घृताढ्यंषष्टिकौदनम् । सशर्करेणसंयोगएववृष्यःपरं
स्मृतः ॥ ७० ॥

खर्जूरकी गोभ (नर्मकोपल) उडद, क्षीरकाकोली, शतावरी, छोहाडा, महुए, मुनका और कौचके वीज प्रत्येक एकएक पल लेकर बुद्धिमान् मनुष्य एक आढक जलमें डालकर पकावे जब तीनभाग पानी जलजावे और १ भाग शेषरहे उसको छान लेवे । इस काथमें १ प्रस्थ दूध मिलाकर फिर पकावे । जब केवल दूधमात्र शेष रहे उस दूधमें घृत और मिसरी मिलाकर साठीचावलोंके भातके साथ खावे । यह प्रयोग परम वृष्य अर्थात् वीर्यवर्द्धक कहा है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

वृष्यघृत ।

जीवकर्मभकौमेदांजीवन्तींश्रावणीद्वयम् । खर्जूरंमधुकंद्राक्षांपिप्प-
लींविश्वभेषजम् ॥ ७१ ॥ शृङ्गाटकींविदारीञ्चनवंसर्पिःपयोजलम् ।
सिद्धंघृतावशेषंतच्छर्कराक्षौद्रपादिकम् ॥ ७२ ॥ षष्टिकान्नेन
संयुक्तमुपयोज्यंयथावलम् । वृष्यंवल्यञ्चवर्णञ्चकण्ठचंघृंहणमु-
त्तमम् ॥ ७३ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, दोनों श्रावणी (छोटी और बड़ी गोरखमुण्डी) छुहाडा, मुलहठी, मुनका, पीपल, सांठ, सिंघाडा, विदारीकंद यह प्रत्येक चार चार तोला और घृत २ सेर दूध ८ सेर, पानी ८ सेर इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे घृतको सिद्धकर लेवे फिर उस सिद्धघृतमें घृतसे चौथा भाग शहद और मिसरी मिलावे । इसको साठीचावलोंके साथ अग्निबल विचार सेवन करे । यह योग, वीर्य-वर्द्धक, बलकारक वर्ण और कण्ठको उत्तम बनानेवालाहै ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

वाजीकरण रसाला ।

दध्नःसरंशरञ्चन्द्रसन्निभंदोषवर्जितम् । शर्करांक्षौद्रमरिचैस्तुगाक्षी-

र्याश्वबुद्धिमान् ॥ ७४ ॥ युत्तयायुक्तंसुसूक्ष्मैलनवेकुम्भेशुचोपटे ।
मार्जितंप्रक्षिपेच्छ्रितेघृताढ्येषष्टिकौदने ॥ ७५ ॥ पिवेन्मात्रार-
सालायास्तंभुक्त्वापष्टिकौदनम् । वर्णस्वरवलोपेतः पुमांस्तेनवृषा-
यते ॥ ७६ ॥

शरदऋतुके चंद्रमाके समान निर्दोष और स्वच्छ मलाईयुक्त दही लेकर उसमें मिसरी, शहद, मिर्च, बंशलोचन, छोटी इलायची इनको युक्तिपूर्वक मिलाकर और शुद्ध स्वच्छ बारीक बखमें छानकर नये मट्टीके पात्रमें डालकर रस देवे । फिर इसको घृतयुक्त शाठीके भातके साथ सेवन करे । और भोजन करनेके अनन्तर भी इस रसालाको उचितमात्रासे पीजावे । इसके सेवनसे मनुष्य वर्ण, स्वर, बल और वीर्ययुक्त होजाताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

वृष्यदुग्धौदन ।

चन्द्रांशुकल्पंपयसाघृताढ्यंषष्टिकौदनम् ।

शर्करामधुसंयुक्तंप्रयुञ्जानो वृषायते ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य चंद्रमाके समान उज्ज्वल कढाहुआ दूध घृत मिश्री और सार्ठीके भातमें मिलाकर खाताहै वह मनुष्य सांडके समान वीर्यसंपन्न होजाताहै ॥ ७७ ॥

राक्षसयोग ।

तसेसर्पिपिनक्राण्डंताम्रचूडाण्डमिश्रितम् । युक्तंपष्टिकचूर्णेनसर्पि-
पाभिन्वेनच ॥ ७८ ॥ पक्त्वापूपलिकाःखादेद्वारुणीमण्डपोनरः ।

यद्गच्छेदश्ववदन्तंप्रसेक्तुंगजवच्चयः ॥ ७९ ॥

जिस मनुष्यको अश्वके समान स्त्रीगमन करनेकी शक्ति बढ़ानेकी इच्छा हो और हाथीके समान वीर्यप्रवाह प्रगट करना चाहता हो वह मगरके अण्डे, और मुरगके अण्डे और शाठीचाबलोंके आंटेको घृत और दूधमें उसनकर पृडियें बना उनको घृतमे पकालेवे । फिर इनको खाकर ऊपरसे वारुणी मद्यके मण्डकों पीवे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

पादका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

आसिक्तक्षीरिकेपादेयेयोगाःपरिकीर्त्तिताः ।

अष्टावपत्यकामैस्तेप्रयोज्याःपौरुपार्थिभिः ॥ ८० ॥

यहांपर पादके उपसंहारमें तीन श्लोक हैं । कि इस आसिक्त क्षीरिक वाजीकरण पादमें जो आठ प्रकारके योग कहे हैं । संतानकी इच्छा करनेवाले पुरुषार्थी मनुष्योंको इन सबका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८० ॥

एतैःप्रयोगैर्विविधैर्वपुष्मान्त्वेहोपपन्नोवलवर्णयुक्तः । हर्षान्वितो
वाजिवदष्टवर्षोभवेत्समर्थश्चवराङ्गनासु ॥ ८१ ॥

इन प्रयोगोंके सेवन करनेसे मनुष्य सुन्दर पुष्ट देहवाला, स्निग्धवर्णवाला और वलयुक्त होजाताहै तथा हर्षयुक्त घोडेके समान आठवर्षका भी योग्य स्त्रियोंमें मैथुन करनेकी सामर्थ्यवाला रहताहै ॥ ८१ ॥

यद्यच्चकिञ्चिन्मनसःप्रियंस्याद्रम्यावनान्ताःपुलिनानिशैलाः । इ-
ष्टाःस्त्रियोभूषणगन्धमाल्यंप्रियावयस्याश्चतदन्नयोगम् ॥ ८२ ॥

इति च० सं० आसिक्तक्षीरिके वाजीकरणपादो द्वितीयः ।

इनके सिवाय जो मनकी प्यारी लगनेवाली अन्य वस्तुएँ हैं तथा सुन्दर मनोहर वन सजल नदियोंके किनारे, सजल और सुगंधित लता, वृक्षजालयुक्त पर्वत और वगीचे, सुन्दर स्त्रियें, आभूषण, सुगंधित फूलमाला अपनी अवस्थावालीप्यारी मण्डली-यह सब वाजीकरणके अर्थोत् कामदेवके उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ८२ ॥

इति च० सं० चि० स्थाने आसिक्तक्षीरीये द्वितीयो वाजीकरणपायः ॥

अथातोमापपर्णतृतीयंवाजीकरणपादंव्याख्यास्यामश्तिहंस्माहभ-
गवानत्रेयः ॥ ८३ ॥

अब हम मापपर्ण नामक तीसरे वाजीकरण पादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ८३ ॥

वीर्यवर्द्धक दूध ।

मापपर्णभृतांधेनुंष्टिंपुष्टांचतुःस्तनीम् । समानवर्णवत्साश्चजीव-
वत्सांचबुद्धिमान् ॥ ८४ ॥ रोहिणीमथवाकृष्णामूर्द्धशृङ्गीमदारुणा-
म् । इक्ष्वादामर्जुनादांवासान्द्रक्षीराश्चधारयेत् ॥ ८५ ॥ केवलन्तु
पयस्तस्याःशृतंवाशृतमेववा । शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तंतद्वृष्यमुत्त-
मम् ॥ ८६ ॥

जो गौ उडदके पत्ते चरतीहो, जो खूब मोटी ताजी बडे २ चार थनोंवाली हो जो गौ और उसका बछडा एकही रंगके लाल अथवा काले हों, और जिस गौके सब बछडे जीतेहों । जो गौ ईख और अर्जुन वृक्षके पत्ते चरतीहो

एवं जिसके सुंदर सुडौल सींग हों जो मारनेवाली नैं हो तथा दूध गाढा हो तो ऐसी गौका दूध कच्चा या गर्मकरके मिश्री, घृत और गहत मिलाकर, पीनेसे अत्यंत वृष्य होताहै । अर्थात् यह दूध बल, वीर्यकी अत्यंत वृद्धि करनेवाला होताहै ८४-८६ वृष्यलप्सी ।

शुक्रलैर्जीवनीयैश्चंद्रहणैर्वलवर्द्धनैः । क्षीरसज्जननैश्चैवपयःसिद्धं
पृथक् पृथक् ॥८७॥ युक्तंगोधूमचूर्णेनसघृतक्षौद्रशर्करम् । पर्य्या-
येणप्रयोक्तव्यमिच्छताशुक्रमक्षयम् ॥ ८८ ॥

शुक्रवर्द्धकगण, जीवनीयगण, चंद्रहणीयगण, बल्यगण तथा स्तन्यवर्द्धकगण इन सब गणोंकी औषधियोंसे अलग २ सिद्धक्रिया दूध और घृतमें भूना गेहूंका चूर्ण इनमें घृत शहद और मिसरी मिलाकर अक्षयवीर्यकी इच्छाकरनेवाला मनुष्य सेवन करे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

वृष्यक्षीर ।

मेदांपयस्यांजीवन्तीविदारीकण्टकारिकाम् । श्वदंप्रांक्षीरिकांमाषा-
नूगोधूमाञ्छालिपट्टिकान् ॥८९॥ पयस्यर्द्धोदकेपक्त्वाकार्पिकानाढ-
कोन्मिते । विवर्जयेत्पयःशेषंतत्पूतंक्षौद्रसर्पिषा ॥ ९० ॥ युक्तंसश-
र्करंपीत्त्वावृद्धःसाप्ततिकोऽपिवा । विपुलंलभतेऽपत्यंयुवेवचसहृष्य-
ति ॥ ९१ ॥

मेदा, क्षीरकाकोली, विदारीकंद, कटेली, गोखरू, वंशलोचन, उडद, गेहूं, शाली और पपी चावल, इनको एकएक तोला ले ४ सेर दूध और ४ सेर पानी मिलाकर सबको पकनेको रख देवे । जत्र संपूर्ण पानी जलकर दूधमात्र शेष रहे तो उसको छानकर उसमें, मिसरी, शहद, घृत, मिलाकर पीया करे । इस दूधको ७० वर्षका बुद्ध भी पीवे तो बहुतसी संतानको उत्पन्न करे । और युवापुरुषके समान हर्षको प्राप्तहो ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

सिद्धदूध ।

मण्डलैर्जातिरूपस्यतस्याएवपयःशृतम् ।

अपत्यजननंसिद्धंसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ ९२ ॥

शुद्ध सुवर्णके बर्क मिलाकर उपरोक्त विधिसे सिद्ध क्रिया दूध घृत मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे अवश्य संतान होनीहै । यह मिद्धयोग है ॥ ९२ ॥

१ यह सब प्रकारके औषधियोंके गण सूत्रस्थानमें बट्भाये हैं ।

पिप्पलीयुक्तधारोष्णं दूध ।

त्रिंशत्सुपिष्टाःपिप्पल्यःप्रकुञ्चैतैलसर्पिपोः^१ । भृष्टासशर्कराःक्षौद्राः
क्षीरधारावदोहिताः ॥ ९३ ॥ पीत्वायथावलञ्चोर्ध्वपष्टिकंक्षीरसर्पि-
पा । भुक्तानरात्रिमस्तब्धलिङ्गंपश्यतिनाक्षरम् ॥ ९४ ॥

तीस पीपलोंको अच्छी तरह बारीक पीसकर १ पल तेल और घृतमें भूनकर उसमें मिसरी और शहत मिला लेवे । और एक बहुत बारीक स्वच्छ मलमलके कपडेको जिस पात्रमें दूध दूहाजाय उसके मुखपरं बांधकर इस कपडेपर वह शहत घृतयुक्त पीपलका चूर्ण रखकर ऊपरसे दूधकी धारें निकाले । इसप्रकार दूधते २ इस पीपल, शहत, मिश्रीका सब सार दूधमें आजाताहै वह दूध बिना जमीनपर रखवे ताजा धारोष्ण ही नित्य पीलिया करे । भूख लगनेपर साठीके चावलोंका भात घृत और दूध मिला खाया करे । इसप्रकार इस धारोष्ण दूधके सेवनसे संपूर्ण रात्रि लिंगेन्द्रिय शिथिल नहीं होती । और वीर्य शीघ्र स्वखलित नहीं होता ९३-९४

वृष्यपायस (खीर) ।

श्वदंष्ट्रायाविदार्याश्वरसेक्षीरचतुर्गुणे ।

घृताढ्यःसाधितोवृष्योमापपष्टिकपायसः ॥ ९५ ॥

गोखरू और विदारीकंदका स्वरस मिलाकर सिद्धकिये चौगुने दूधमें उंडद और साठीके चावलोंकी घृत मिलाकर खीर पकावे । इस खीरके खानेसे, अत्यंत वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ९५ ॥

वाजीकरणपूपालिका ।

फलानांजीवनीयानांस्निग्धानांरुचिकारिणाम् । कुडवश्चूर्णितानां
स्यात्स्वयंगुप्ताफलस्यच ॥ ९६ ॥ कुडवश्चैवमापाणांद्वौद्वौचतिलमु-
द्गयोः । गोधूमशालिचूर्णानांकुडवःकुडवोभवेत् ॥ ९७ ॥ सर्पि-
पःकुडवश्चैकस्तत्सर्वक्षीरसंयुतम् । पक्त्वापूपालिकाःखादेद्ब्रह्म्यः
स्युर्यदियोपितः ॥ ९८ ॥

वादाम आदि, जीवनवर्द्धक, रुचिकारक और स्निग्ध फलोंका १ कुडव चूर्ण, कौंचके बीजोंका चूर्ण १ कुडव, उडदोंका चूर्ण २ कुडव, तिलोंका चूर्ण २ कुडव, मूंगका चूर्ण १ कुडव, गेहूं और शाली चावलोंका चूर्ण एकएक कुडव इन सबको १ कुडव घीमें मसलकर दूधमें मिलाकर पृडियें बनावे । उन पृडियोंको घृतमें पकाकर जिसके घरमें बहुतसी स्त्रियें हों वह मनुष्य खावे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

वृष्यघृत ।

घृतंशतावरीगर्भक्षीरेदशगुणेपचेत् ।

शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तंतद्वृष्यमुत्तमम् ॥ ९९ ॥

शतावरके कल्कको मिलाकर दशगुने दूध द्वारा घृतको सिद्धकरे । उस घृतम मिसरी, पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर चाटनेसे अत्यंत वीर्यकी वृद्धि होती है । यह परम उत्तम योग है ॥ ९९ ॥

मधुकयोग ।

कर्पमधुकचूर्णस्यघृतक्षौद्रसमांशिकम् ।

प्रयुङ्क्तेयःपयश्चानुनित्यवेगःसनाभवेत् ॥ १०० ॥

एक कर्प मुलहठीके चूर्णको घृत और शहद मिलाकर चाटे ऊपरसे मिसरी मिला दूध पीवे तो वह मनुष्य नित्य कामके वेगसे युक्त रहता है ॥ १०० ॥

नित्यदूध घृतके सेवनका गुण ।

घृतक्षीराशनोनिर्भीर्निर्व्याधिर्नित्यगोयुवा ।

संकल्पप्रवणो नित्यंनरःस्त्रीपुवृपायते ॥ १०१ ॥

जो मनुष्य नित्य भय और व्याधिसे रहितहुए घृत और दूधका सेवन करते हैं वह युवा पुरुष सदा कामान्व हुए स्त्रियोंमें वृषके समान मैथुन करते हैं ॥ १०१ ॥

मित्रमंडलीका निचास ।

कृतैककृत्याःसिद्धार्थायेचान्योन्यानुवर्त्तिनः । कलासुवाहायैतुल्याः

सत्त्वेनवयसाचये ॥ १०२ ॥ कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशीलशौचसम-

न्विताः । येकामनित्यायेहृष्टायेविशोकागतव्यथाः ॥ १०३ ॥ येतु-

ल्यशीलायेभुक्त्वायेप्रियायेप्रियंवदाः । तेनरःसहविश्रब्धःसुवयस्यै-

वृपायते ॥ १०४ ॥

एकवरावरके एकमे कर्मोंके करनेवाले सिद्धमनोरथ आपसमें परस्पर प्रेम रखनेवाले सवंधी एक दूसरेकी आज्ञा पालन करनेवाले नृत्य, गीत आदि फलामें समान तथा सत्त्व और अवस्थामें तुल्य, उत्तम कुलमें उत्पन्नहुए, चतुर, अच्छे स्वभाववाले, पवित्र, नित्य स्त्रीसंगकी इच्छा रखनेवाले, दृष्टपुष्ट, शोक और व्याधिसे रहित एकसे स्वभाववाले, एक दूसरेके हित चाहनेवाले, सत्र आपसमें प्यार करनेवाले और प्यारे बोलनेवाले मित्रोंकी मण्डलीमें आनन्दसे रहना भी परम वाञ्छीकरण है ॥ १०२-१०४ ॥

कामोत्पादकं कर्म ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्यविभूषणैः । गृहशय्यासनसुखैर्वा-
सोभिरहतैःप्रियैः ॥ १०५ ॥ विहङ्गानांरुतैरिष्टैःस्त्रीणाञ्चाभरण-
स्वनैः । संवाहनैर्वरस्त्रीणामिष्टानाञ्चवृषायते ॥ १०६ ॥

तैल आदिकी मालिश करना, उबटन लगाना, स्नान करना, सुगंधित द्रव्योंका धारण करना, फूलोंका हार पहिनना उत्तम, आभूषणोंको पहिनना एवं सुन्दर घर, सुन्दर शय्या, सुन्दर आसन आदिका सुख उत्तम नये वस्त्रोंका धारण करना, बगीचे आदिकोंमें मनको हरण करनेवाले पक्षियोंके शब्द, सुन्दर स्त्रियोंका झनकार खूबसूरत स्त्रियोंसे हाथ पांव दबवाना यह सब कामदेवकी चेष्टाको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

हर्षोत्पादक कामदेवके अस्त्र ।

मत्तद्विरेफाचरिताःसपद्माःसलिलाशयाः । जात्युत्पलसुगन्धीनि
शीतगर्भगृहाणिच ॥ १०७ ॥ नद्यःफेनोत्तरीयाश्चगिरयोनीलसा-
नवः । उन्नतिर्नीलमेघानांरम्यचन्द्रोदयानिशाः ॥ १०८ ॥ वाय-
वःसुखसंस्पर्शाःकुमुदाकारगन्धिनः । रतिभोगक्षमारात्र्यःसङ्को-
चागुरुवह्मभाः ॥ १०९ ॥ सुखाःसहायाःपरपुष्टजुष्टाःफुल्लवनान्ता-
विशदान्नपानाः । गान्धर्वशब्दाश्चसुगन्धमाल्याःसत्त्वंविशालंनिरु-
पद्रवञ्च ॥ ११० ॥ सिद्धार्थताचाभिनवश्चकामैःस्त्रीचायुधंसर्वमि-
हात्मजस्य । वयोनवंजातमदश्चकालोहर्षस्ययोनिःपरमानरा-
णाम् ॥ १११ ॥

एवं मतवाले भ्रमरोंके गुंजारयुक्त कमलोंसे शोभायमान जलाशय, चमेली अथवा सब प्रकारके कमलोंकी जाति और उत्तम सुगंधी खस आदिसे शीतल और सुगंधित घर श्यायुक्त तरंगोंसे शोभायमान नदियें, सजल, नीलवर्ण, शिखरोंसे युक्त पहाड, जिन पहाडोंके ऊपर नील बादलोंकी घटा छायीहुई हो तथा चंद्रमासे शोभायमान रात्रि सुगंधित फूलोंकी गंधयुक्त सुशीतल मंदमंद पवनका स्पर्श, रतिके उपभोग योग्य रात्रि, जिन स्थानामें किसी गुरुजन आदिका निवास न हो ऐसा संकोचरहित एकांत स्थान, सुन्दर, सुखदायक, कामके सहायक कोकिल आदिके मनोहर शब्द-युक्त प्रफुल्लित वाग, उत्तम मधुर चिकने अन्नपान, मधुर गायन और बाजे. आदिके

शब्द सुगंधित फूलोंकी माला, शोकादि उपद्रवरहित हृष्ट और विशाल चित्त, सिद्धार्थता, सुन्दर नवयौवना स्त्री यह सब कामदेवके अस्त्र हैं । अर्थात् कामके उत्पन्न करनेवाले हैं । एव युवावस्था, वसंतऋतु अथवा संजातमदका समय यह सब मनुष्योंके शरीरमें कामदेवके हर्ष उत्पन्न करनेवाले होतेहैं ॥ १०७-१११ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवतिचात्र ।

प्रहर्षयोनयोयोगाव्याख्यातादशपञ्चच ।

मापपर्णतृतीयेऽस्मिन् पादेशुक्रवलप्रदाः ॥ ११२ ॥

इति च० सं० माषपर्णनामतृतीयोवाजीकरणपादः ।

यहां पादके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस मापपर्णनामक तृतीय वाजीकरण पादमें वीर्य और बलके देनेवाले कामदेवका हर्ष उत्पन्न करनेवाले पंद्रह प्रयोगाकों वर्णन किया गयाहै ॥ ११२ ॥

॥ इति मापपर्ण नाम तृतीयो वाजीकरणपादः ॥

अथातःपुमाञ्जातबलादिकंचतुर्थवाजीकरणपादंव्याख्यास्यामइति
हस्माहभगवानात्रेयः ॥ ११३ ॥

अब हम पुमान्जातबलादिक चौथे वाजीकरण पादका वर्णन करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ११३ ॥

पुमान्यथाजातवलोयावदिच्छंस्त्रियोत्रजेत् ।

यथाचापत्यवान् सद्योभवेत्तदुपदेक्ष्यते ॥ ११४ ॥

जिस प्रकार पुरुष बलवान् होकर अपनी इच्छानुसार स्त्रियोंमें गमनकरसके और जीघ्न संतानवाला होसके वह वर्णन करतेहैं ॥ ११४ ॥

नहिजातबलाःसर्वेनराश्चापत्यभागिनः । बृहच्छरीरावलिनःसन्ति
नारीपुदुर्वलाः ॥ ११५ ॥ सन्तिचाल्पायुषःस्त्रीपुत्रलवन्तोबहुप्रजाः ।
प्रकृत्याचाबलाःसन्तिसन्तिसामयदुर्वलाः ॥ ११६ ॥ नराश्चटक्-
वत्केचिद्भ्रजन्तिबहुशःस्त्रियम् । गजवच्चप्रसिञ्चन्तिकेचिन्नबहुगो-
मिनः ॥ ११७ ॥ कामयोगबलाःकेचित्केचिदभ्यसनधुवाः । केचि-
त्प्रयत्नैर्वाद्यन्तेवृषाःकेचित्स्वभावतः ॥ ११८ ॥ तस्मात्प्रयोगान्व-

क्ष्यामोर्दुर्बलानां वलप्रदान् । सुखोपभोगान्वलिनां भूयश्च वलवर्द्ध-
नान् ॥ ११९ ॥

संपूर्ण मनुष्य बल, वीर्य, सम्पन्न न होनेसे ही संतानके भागी नहीं होसकते । बहुतसे मनुष्य ऐसे भी हैं जो शरीरसे दृष्टपुष्ट और बलवान् दिखाई देतेहैं परन्तु काम-शक्तिमें हीन होनेसे स्त्रीगमनमें दुर्बल होतेहैं । बहुतसे ऐसेहैं जो शरीरमें कृश और थोड़ी आयुवाले होतेहुए भी स्त्रीसंगमें बलवान् और बहुतसी संतानवाले होतेहैं । बहुतसे मनुष्य स्वभावसे ही दुर्बल होतेहैं और कोई मनुष्य व्याधिग्रस्त होनेसे दुर्बल होजातेहैं । कोई मनुष्य चिडेकी समान स्त्रियोंसे बारवार गमन करतेहैं । कोई मनुष्य ऐसे हैं जिनके वीर्यका प्रवाह हाथीके समान है । कोई ऐसे हैं जो स्त्रियोंसे बारवार संसर्ग नहीं करसकते । कोई मनुष्य कामयोगसे बलवान् हैं और बहुतसे अभ्याससे ही कामी बनेहुए हैं । कोई मनुष्य प्रयत्न करनेसे अर्यात् औषधी आदि प्रयोगसे कामके बलयुक्त होतेहैं कोई स्वभावसे ही होतेहैं । इसलिये अब दुर्बल मनुष्योंको बलके देनेवाले और बलवान् मनुष्योंको उपभोगके सुखको उत्पन्न करनेवाले और बलको बढ़ानेवाले प्रयोगोंका वर्णन करतेहैं ॥ ११९-११९ ॥

वृध्यप्रयोगविधि ।

पूर्वशुद्धशरीराणां निरूहान्सानुवासनान् । वलापेक्षीप्रयुञ्जीतशु-
क्रापत्यादिवर्द्धनान् ॥ १२० ॥ घृततैलरसक्षीरशर्करामधुसंयुताः ।

वस्तयः संविधातव्याः क्षीरमांसरसाशिनाम् ॥ १२१ ॥

प्रथम बल, वीर्य और संतानादिकोंकी वृद्धि चाहनेवाला मनुष्य वमन, विरेचन द्वारा शुद्ध शरीर होकर वीर्य, वलादि वर्द्धक निरूहण और अनुवासन वस्ति कर्मको करावे । इन मनुष्योंके लिये घृत, तैल, दूध, मिसरी, शहत आदिके संयोगसे युक्त कीहुई वस्तियें करना चाहिये । तथा दूध और मांसरस खानेको देना चाहिये १२०-२१

वृष्यमांस गुटिका ।

पिष्ट्वा वराहमांसानि दत्त्वा मरिचसैन्धवे । कोलवद्गुटिकाः कृत्वा तसे
सर्पिषि भर्जयेत् ॥ १२२ ॥ भर्जनस्तम्भितास्ताश्च प्रक्षेप्याः कौकटे
रसे । घृताढ्ये गन्धपिशुने दधिदाडिमसाधिते ॥ १२३ ॥ यथान-
भिन्ध्याद्गुटिकास्तथा तं साधयेद्रसम् । तं पिवन् भक्षयंस्ताश्च ल-
भते शुक्रमक्षयम् ॥ १२४ ॥ मांसानामेव मन्येषामेध्यानां कारयेद्भि-
षक् । गुटिकाः सुरसास्तासां प्रयोगः शुक्रवर्द्धनः ॥ १२५ ॥

बराहके मांसको बारीक पीसकर उसमें कालीभिर्च और संधानमक मिला घैरेके समान गोलियें बना लेवे । उन गोलियोंको घृतमें पकाकर सरुत होजानेपर सुर्गेके मांसरसमें भिगो देवे । वह मांसरस घृतयुक्त इलायची आदिसे सुगंधित किया हुआ दही और अनारदाना मिलाकर बनायाहुआ होना चाहिये । उन गोलियोंको खाकर ऊपरसे यह मांसरस पीनेसे अक्षयवीर्यकी प्राप्ति होतीहै । इसीप्रकार अन्य जानवरोंके मांसोंकी भी गोलियें बनाकर ऐसे ही मांसरसयुक्त कर्कसेवन करना अत्यंत वीर्यको बढ़ाताहै ॥ १२२-१२५ ॥

माहिपरसयोग ।

सापानंकुरिताञ्जुद्धान्निस्तुपान् साजडाफलान् । घृताढयेमाहिपरसेदधिदाडिमसाधिते ॥ १२६ ॥ प्रक्षिपेन्मात्रयायुक्तोधान्यजीरकनागरैः । पीतोभुक्तश्चसरसःकुरुतेशुक्रमक्षयम् ॥ १२७ ॥

छिलके रहित नये उडदोंकी उत्तम दाल और कौंचके बीजोंकी गिरू इनको पीसकर घृत और दूध मिला इनकी टिकिया घृतमें पकालेवे । फिर उनको धनियां, जीरा, सोंठ, अनारदाना, दही और घृत इनसे सिद्धकिये भैसेके मांसरसमें डुवा देवे । फिर इनको खाकर ऊपरसे रस पीवे तो अक्षय वीर्यकी वृद्धि होतीहै १२६-१२७

मत्स्यमांसयोग ।

आर्द्राणिमत्स्यमांसानिभृष्टाश्चशफरीश्चना । तत्तेसर्पिपियःखादेत्सगच्छेत्स्त्रीपुनक्षयम् ॥ १२८ ॥ घृतभृष्टान्रसेछागेरोहितान्फलसाधिते । अनुपीतरसान्तिस्त्रानपत्यार्थीप्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

तत्काल मारीहुई मठली अथवा शफरी मठलीके मांसको घृतमें भूनकर खानेसे स्त्रीगमन करतेहुए भी वीर्य नष्ट नहीं होता । इसीप्रकार रोहित मठलीको घृतमें भूनकर अनारदानायुक्त बकरेके मांसरसमें पकाकर पीये तो संतान उत्पन्नकरनेकी सामर्थ्य होजातीहै ॥ १२८॥१२९ ॥

राक्षसीपूपालिका ।

कुट्टकंमत्स्यमांसानांहिङ्गुसैन्धवधान्यकैः । युक्तंगोधूमचूर्णेनघृतेपूपालिकाःपचेत् ॥ १३० ॥ माहिपेचरसेमत्स्यान्निग्धाम्ललवणान्पचेत् । रसेचानुगतेमांसंपोधयेत्तत्रचावपेत् ॥ १३१ ॥ मारिचंजीरकंधान्यमल्पंहिङ्गुनवघृतम् । मापपूपालिकानांतद्भार्थमुपकल्प-

येत् ॥ १३२ ॥ एतौपूपलिकायोगौवृंहणौवलवर्द्धनौ । हर्षसौभाग्य-
जननौपरंशुक्राभिवर्द्धनौ ॥ १३३ ॥ (मांसादीनांप्रयोगांस्तुमांसादे-
पुप्रयोजयेत् । द्विजेषुघृतदुग्धादीनेवंसर्वत्रनिश्चयः)

मछली और सुगंके मांसको कूटकर उसमें सेंधा निमक धानियां और गेंदुका चूर्ण मिला घृतमें पूडियें पकावे । अथवा मछली, घृत, सेंधानमक, खटाई इन सबके साथ माहिप मांसरसको पकावे । जब मांस रस सूखजाये तो उस मांसको कूटकर उसमें मिर्च, जीरा, धनियां थोडा हींग, नवीन घृत यह सब मिलाकर उडदोंकी पूरियोंके भीतर भरे । उन पूडियोंको घृतमें पकालेवे । यह दोनों प्रकारकी पूडियें वीर्य और बलको बढानेवाली तथा कामोत्पादक कही हैं ॥ १३० ॥ १३१ ॥ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ (यह मांसादिकोंका प्रयोग राक्षस प्रकृति या राक्षसगुण प्रधान जातियोंमें ही करना चाहिये । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये दूध घृत आदिकों का प्रयोग ही निश्चितहै यह सबे जगह जानना) ।

वीर्यवर्द्धक परमोत्तम पूपलिका ।

माषात्मगुप्तागोधूमशालिपष्टिकपैष्टिकम् ! शर्करायाविदार्याश्चचूर्णा-
मिक्षुरकस्यच ॥ १३४ ॥ संयोज्यमसृणेक्षीरेघृतेपूपलिकाः पचेत् ।

पयोऽनुपानास्ताःशीघ्रं कुर्वन्तिघृततांपरम् ॥ १३५ ॥

उडद, कौंचके बीज, गेहूं, शालिचावल, शाठीचावल, विदारी कंद, तालमखाने इन सबके वारीक चूर्णमें मिसरी और दूध मिलाकर पूडियें बनावे । उन पूडियोंको घृतमें पका दूधके साथ खावे तो अत्यंत वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

परमवृष्ययोग ।

शर्करायास्तुलेकास्यादेकागव्यस्यसर्पिषः । प्रस्थोविदार्याश्चूर्ण-
स्यपिप्पल्याःप्रस्थएवच ॥ १३६ ॥ अर्द्धाढकंतुगाक्षीर्याःक्षौद्रस्या-
भिनवस्यच । तत्सर्वमूर्च्छितंतिष्ठेन्मात्तिकेघृतभाजने ॥ १३७ ॥
मात्रामग्निसमांतस्यप्रातःप्रातःप्रयोजयेत् । एषवृष्यः परंयोगोव-
ल्योवृंहणएवच ॥ १३८ ॥

मिसरी १ तोला, गौका घृत १ तोला, विदारीकंदका चूर्ण १ प्रस्थ पीपलका चूर्ण १ प्रस्थ, बंशलोचनका चूर्ण २ प्रस्थ, नवीन शहद २ प्रस्थ, इन सबको मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें रख देवे । जठराग्निका बलाबल विचार प्रातःकाल उचित मात्रासे खावे । यह योग अत्यंत वीर्यवर्द्धक बलकारक, और शरीरको पुष्ट करनेवाला है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

घृतघृत ।

शतावर्याविदार्याश्चतथामाषात्मगुप्तयोः । श्वदंप्रायाश्चनिष्का-
थानञ्चलेषुपृथक्पृथक् ॥ १३९ ॥ साधयित्वाघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणे
पुनः । शर्करामधुसंयुक्तमपत्यार्थीप्रयोजयेत् ॥ १४० ॥

शतावर, विदारीकंद, उडद, कौंचके बीज और गोखरू इन सबके अलग २ काय
सब मिलाकर १६ सेर होने चाहिये । दूध आठसेर, घृत १ सेर इन सबको मिलाकर
घृतपाक विधिसे घृतको सिद्ध करे । संतानकी इच्छावाला मनुष्य मिसरी और शहद
मिलाकर इसको खावे ॥ १३९ ॥ १४० ॥

वीर्यवर्द्धक परमोत्तम गुटिका ।

घृतपात्रंशतगुणेविदारीस्वरसेपचेत् । सिद्धंपुनःशतगुणेगव्येपयसि
साधयेत् ॥ १४१ ॥ शर्करायास्तुगाक्षीर्याःक्षौद्रस्येशुरसस्यैच ।
पिप्पल्याःसजडायाश्चभागैःपादांशिकैर्युतम् ॥ १४२ ॥ गुटिकाः
कारयेद्वैद्योयथास्थूलमुदुम्बरम् । तासांप्रयोगात्पुरुषःकुलिङ्गइव
हृष्यति ॥ १४३ ॥

एकपात्र (आठक या ४ सेर) घृतलेकर उसको सौगुने विदारीकंदके रसमें
पकावे । जब रस जलकर घृतमात्र शेष रहे उसमें १०० गुना दूध मिलाकर पकावे ।
फिर घृत सिद्ध होनेपर इसमें घीसे चौथा भाग मिसरी, वंशलोचन, शहद और
तालमखाने, पीपलका चूर्ण, कौंचके बीजोंकी गिरी । इन सबको बारीक पीसकर
मिलावे और गूलर के फलके समान इसकी गोलियों बनालेवे । अग्रिका बलाबल
विचार नित्य इन गोलियोंको खाया करे ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

वाजीकरण उत्कारिका ।

सितोपलापलशतंतदूर्ध्वनवसर्पिपः । क्षौद्रपादेनसंयुक्तंसाधयेज्ज-
लपादिकम् ॥ १४४ ॥ सान्द्रंगोधूमचूर्णानांपादंस्तीर्णेशिला-
तले । शुचौश्लक्षणे समुत्कीर्यमर्दनेनोपपादयेत् ॥ १४५ ॥ शुद्धा
उत्कारिकाःकार्य्याश्चन्द्रमण्डलसन्निभाः । तासांप्रयोगाद्भजवन्ना-
रीःसन्तर्पयेन्नरः ॥ १४६ ॥

१०० पल मिसरी, ५० पल नवीन घी, २५ पल जल इसका पाक करे । जब पाक
होनाय तो इस घीमें भुनाइया. २५ पल मेड़का चूर्ण, २५ पल शहत मिला देवे ।

फिर इन सबको किसी बड़े स्वच्छ साफ पत्थरके ऊपर मर्दन करें । जब मर्दन करते २ इसमें सफेदी आजाय तो, चंद्रमाके समान टिकिया बना लेवे । इन टिकियाओंके सेवनसे स्त्रीको गजके समान वृषकारसकताहै ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

मधुर द्रव्योंको वृष्यत्व ।

यत्किञ्चिन्मधुरंस्निग्धंजीवनंवंहृणंगुरु ।-हर्षणंमनसश्चैवसर्वतद्बृ-
ष्यमुच्यते ॥ १४७ ॥ द्रव्यैरेवंविधैस्तस्मान्नावितःप्रमदांत्रजेत् ।
आत्मवेगेनचोदीर्णःस्त्रीगुणैश्चप्रहर्षितः ॥ १४८ ॥ गत्वास्नात्वाप-
यःपीत्वारसञ्चानुशयीतना । तथास्याप्यायतेभूयःशुक्रञ्चवलमे-
वच ॥ १४९ ॥

जितने द्रव्य मीठे, चिकने, जीवनवर्द्धक, वृंहण, गुरु और मनमें हर्षके उत्पन्न करनेवालेहैं । उन द्रव्योंसे पुष्टवीर्य हुआ मनुष्य स्त्रीसंग करे । कामदेवके वेगसे उत्तेजित हुआ और स्त्रियोंके गुणोंसे हर्षको प्राप्त हुआ मनुष्य स्त्रीसंग करके स्नानकरे और दूध पीवे अथवा मांसरस पीवे एवं फिर सोजावे । इसप्रकार करनेसे मनुष्यका वीर्य और बल फिर शरीरमें यथोचित सम्पन्न हो जाताहै ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥
वीर्यप्रकाशकी अवस्था ।

यथामुकुलपुष्पस्यसुगन्धोनोपलभ्यते ।

लभ्यतेतद्विकाशात्तथाशुक्रंहिदेहिनाम् ॥ १५० ॥

जैसे-बहुत छोटी विना खिली फूलकी कली भीतर सुगंधी रहनेपर भी सुगंधि नहीं देती और फूल खिल जानेपर उसमेंसे सुगंधि आनेलगती है वैसे ही बाल अवस्थामें वीर्य रहनेपर भी युवावस्थामें जाकर विकाशको प्राप्त होताहै ॥ १५० ॥

अवस्थाभेदसे स्त्रीसंगका निषेध ।

नर्त्तवैपोडशाद्वर्पात्सप्तत्याःपरतो नच । आयुष्कामोनरः स्त्रीभिः
संयोगंकर्तुमर्हति ॥ १५१ ॥ अतिबालोह्यसम्पूर्णसर्वधातुः स्त्रियो-
त्रजन् । उपतप्येतसहसातडागमिवकाजलम् ॥ १५२ ॥ शुष्करूक्षं
यथाकाष्ठंजन्तुजग्धंविजर्जरम् । स्पृष्टमाशुविशीर्येततथावृद्धः
स्त्रियोत्रजन् ॥ १५३ ॥

सोलहवर्षकी अवस्थासे पहिले, सत्तरवर्षकी अवस्थासे पीछे मनुष्य अपनी आयुको इच्छा करताहृथा स्त्रीसंसर्ग कभी न करे । क्योंकि अति बालअवस्थामें धातुओंकेद

बल संपूर्ण बलवान् न होनेसे यह इस प्रकार शोषको प्राप्त होता है जैसे थोड़े जलवाला तालाव तीक्ष्ण गर्मीके पडनेसे सूख जाता है। जैसे सूखाहुआ, रूक्ष, कीड़ेका खायाहुआ, अत्यंत जीर्ण, काष्ठ मामूली स्पर्शकरनेसे टूट जाता है उसीप्रकार वृद्ध मनुष्य भी स्त्रीगमनकरनेसे नाशको प्राप्त होता है ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

शुक्रक्षयके कारण ।

जरयाचिन्तयाशुक्रं व्याधिभिः कर्म कर्षणात् ।

क्षयंगच्छत्यनशनात्स्त्रीणाश्चातिनिषेवणात् ॥ १५४ ॥

बुढापेके कारण चिंताके होनेसे, व्याधिसे, शरीरके अपकर्षण होनेसे, उपवास आदिकोंसे क्षीण होजानेसे, स्त्रियोंको अधिक सेवनकरनेसे मनुष्यका वीर्य क्षय होजाता है ॥ १५४ ॥

कामोत्पत्ति न होनेके कारण ।

क्षयाद्भयादविश्रम्भाच्छोकात्स्त्रीदोषदर्शनात् । नारीणामरसज्ञत्वा-

दभिचारादसेवनात् ॥ १५५ ॥ तृप्तस्यापिस्त्रियोगन्तुंनशक्तिरुप-

जायते । देहसत्त्वबलापेक्षीहर्षः शक्तिश्चहर्षजा ॥ १५६ ॥

वीर्यके क्षयमें भयसे, विश्वास न होनेसे स्त्रियोंका कोई दोष दिखाई देनेसे स्त्री संसर्गजन्य रसज्ञान न होनेसे, अथवा रसिकता न होनेसे किसीप्रकारके अभिचारसे, स्त्रीसंग विलकुल न करनेसे, मैथुनद्वारा अत्यंत तृप्त होनेसे मनुष्योंकी कामेच्छा उत्पन्न नहीं होती । क्योंकि कामका वेग मन और देहके बलकी अपेक्षा करता है । और उस वेगसे ही कामेच्छा या कामशक्ति उत्पन्न होती है ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

शुक्रके स्थान और निकलनेका क्रम ।

रसइक्षौयथादग्निसर्पिस्तैलंतिलेयथा । सर्वत्रानुगतं देहेशुक्रं संस्प-

र्शनेतथा ॥ १५७ ॥ तत्स्त्रीपरुपसंयोगेचेष्टासंकल्पपीडनात् ।

शुक्रंप्रच्यवतेस्थानाज्जलमार्द्रात्पटादिव ॥ १५८ ॥

जैसे ईश्वरमें रस, दहीमें घृत और तिलोंमें तेल व्यापक रहता है उसीप्रकार वीर्य भी मनुष्यके संपूर्ण शरीरमें व्यापक रहता है । तथा स्पर्शनेन्द्रियसे विशेषकरके संबंध रखता है । वह वीर्य स्त्री, पुरुषके संयोगमें चेष्टा और संकल्पसे पीडितहुआ इसप्रकार मुचड जाता है जैसे भिगेहुए कपड़ेको मडिनेसे उसमेंसे जल निकल जाता है १५७-१५८

वीर्यनिकलनेके कारण ।

हर्षान्तर्पात्सरत्वाच्चपैच्छिल्याद्गौरवादपि । अनुप्लवत्वात्सौक्ष्म्या-

चद्रुतत्वान्मारुतस्यच ॥ १५९ ॥ अष्टाभ्येभ्योहेतुभ्यःशुक्रं देहा-
त्प्रसिच्यते । चरतोविश्वरूपस्यरूपद्रव्यंयदुच्यते ॥ १६० ॥

कामका हर्ष होनेसे, स्त्रीकी अत्यंत इच्छा होनेसे, वीर्यका सरस्व स्वभाव होनेसे, तथा पिच्छलता, गुरुता, अनुप्लवता और सूक्ष्मता होनेसे एवं वायुके द्रुतताके कारण वीर्य देहसे निकलताहै । अर्थात् इन आठ हेतुओंसे वीर्य शरीरमेंसे चलायमान होजाता है । वह वीर्य विश्वरूपकी चलनशील मूर्तिरूपी द्रव्य कहाजाता है ॥ १५९ ॥ १६० ॥

फलवान् वीर्यके लक्षण ।

वहलंमधुरंस्निग्धमविस्रंगुरुपिच्छिलम् ।

शुक्लं बहुचयच्छुक्रं फलवत्तदसंशयम् ॥ १६१ ॥

जो वीर्य सघन, मधुर, स्निग्ध दुर्गंध, रहित, भारी, गाढा और अधिक होताहै वह अवश्य ही संतानरूपी फलको देनेवाला होताहै ॥ १६१ ॥

वाजीकरणके लक्षण ।

येननारीपुसामर्थ्यवाजिवल्लभतेनरः ।

ब्रजेच्चाभ्यधिकंयेनवाजीकरणमेवतत् ॥ १६२ ॥

जिस द्रव्यका सेवन करनेसे मनुष्य घोड़ेके समान मैथुन करनेकी सामर्थ्यवाला हो और अधिक मैथुनकर सके उसको वाजीकरण कहतेहैं ॥ १६२ ॥

तत्रश्लोकौ ।

हेतुर्योगोपदेशस्ययोगाद्वादशचोत्तमाः । यत्पूर्वं मैथुनात्सेव्यंसेव्यं

यन्मैथुनादनु ॥ १६३ ॥ यदानसेव्याः प्रमदाः कृत्स्नः शुक्रविनिश्चयः ।

निरुक्तश्चेहनिर्दिष्टं पुमाञ्जातवलादिके ॥ १६४ ॥

इति चरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने वाजीकरणाध्यायो

द्वितीयः समाप्तः ।

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं । इस पुमान् जातवलादि नामक वाजीकरण चतुर्थपादमें वाजीकरण द्रव्योंके समूह वर्णन करनेका कारण और वारह उत्तम वाजीकरण प्रयोग, मैथुनसे प्रथम सेवनकरने योग्य पदार्थ, मैथुनके अन्तमें सेवन करनेयोग्य द्रव्य, स्त्रियोंको न सेवन करनेका समय, संपूर्ण वीर्यकी विधि और उसकी निरुक्ति यह सब कथन किया गयाहै ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

इति श्रीमहाचरक० चिकित्सितस्थाने प्र० भा० टी० वाजीकरणं नामद्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयोऽध्यायः ।



अथातो ज्वरचिकित्सितमध्यायं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम ज्वर चिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

ज्वरविषयमें अग्निवेशका प्रश्न ।

विज्वरंज्वरसन्देहंपर्य्यपृच्छत्पुनर्वसुम् ।

विविक्तेशान्तमासीनमग्निवेशःकृताञ्जलिः ॥ १ ॥

काम क्रोधादि ज्वररहित, शान्तस्वभाव, एकांतमें बैठेहुए भगवान् पुनर्वसुजीसे हाथ जोडकर अग्निवेश ज्वरके विषयमें पूछनेलगे ॥ १ ॥

देहेन्द्रियमनस्तापीसर्वरोगाग्रजोवली ।

ज्वरःप्रधानंरोगाणामुक्तोभगवतापुरा ॥ २ ॥

हे प्रभो ! देह, इन्द्रिय और मनके तपानेवाला संपूर्ण रोगोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ सब रोगोंमें बलवान् ज्वर ही संपूर्ण व्याधियोंमें आपने पहिले प्रधान कहाहै ॥ २ ॥

तस्यप्राणिसपत्नस्यध्रुवस्यप्रलयोदये । प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावंकारणानिच ॥ ३ ॥

पूर्वरूपमधिष्ठानंवलकालात्मलक्षणम् । व्यासतोविधिभेदश्चपृथग्भिन्नस्यचाकृतिम् ॥ ४ ॥

लिङ्गमामस्यजीर्णस्यचौषधंसक्रियाक्रमम् । विमुञ्चतःप्रशान्तस्यचिह्नंयच्चपृथक्पृथक् ॥ ५ ॥

सो हे भगवन् ! उस प्राणिमात्रके शत्रु और जन्म मरणके समय अवश्य होनेवाले ज्वरकी प्रकृति, प्रवृत्ति, प्रभाव, कारण, पूर्वरूप, अधिष्ठान, बल, काल, लक्षण, विधिभेद, भिन्न २ ज्वरोंकी पृथक् पृथक् आकृति, आमज्वरके लक्षण, जीर्णज्वरके लक्षण, उसको शान्त करनेवाली औषधी, चिकित्साका क्रम, ज्वरके विमुक्त होनेके लक्षण और ज्वररहित मनुष्यके लक्षणोंको कृपाकर विस्तारपूर्वक अलग २ वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

ज्वरावशिष्टोरक्ष्यश्चयावत्कालंयतोयतः । प्रशान्तःकारणैर्यैश्चपुन-

रावर्त्ततेज्वरः ॥ ६ ॥ याश्चापिपुनरावृत्तिक्रियाःप्रशमयन्तितम् ।
जगद्धितार्थतत्सर्वभगवन् ! वक्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

एवं ज्वर दूर होजानेपर मनुष्यको कितने कालतक किन २ वस्तुओंसे परहेज रखना चाहिये और ज्वर एकवार शान्त हो फिर किन कारणोंसे लौटकर आजाताहै । फिर उत्तको किस क्रियाद्वारा शान्तकरना चाहिये । हे भगवन् ! जगतके हितके लिये यह संपूर्ण विषय कृपाकर मुझसे कहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

आत्रेयजीका कथन ।

तदग्निवेशस्यवचोनिशम्यगुरुरब्रवीत् ।

ज्वराधिकारेयद्वाच्यंतत्सौम्य ! निखिलंशृणु ॥ ८ ॥

इसप्रकार अग्निवेशके कथनको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! ज्वराधिकारमें ज्वरके विषयमें जो कुछ कहना योग्य है वह तुम सावधान होकर श्रवण करो ॥ ८ ॥

ज्वरके पर्यायवाचक नाम ।

ज्वरोविकारो रोगश्च व्याधिरातङ्क एव च ।

एकार्थनामपर्य्यायैर्विविधैरभिधीयते ॥ ९ ॥

ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और आतंक यह सब एक ही अर्थके वाचक शब्द हैं । इन विविध पर्यायवाचक शब्दोंसे ज्वर ही कहाजाताहै ॥ ९ ॥

ज्वरकी प्रकृति और प्रवृत्ति ।

तस्यप्रकृतिरुदिष्टादोषाःशारीरमानसाः । देहिनंनहिनिर्दोषंज्वरः

समुपसेवते ॥ १० ॥ क्षयस्तमोज्वरंःपाप्मासृत्युश्रोक्तोऽयमात्मजः ।

कर्मभिःक्लिश्यमानानांपञ्चत्वप्रत्ययानृणाम् ॥ ११ ॥ इत्यस्यप्रकृ-

तिःप्रोक्ताप्रवृत्तिस्तुपरिग्रहः । निदानेपूर्वमुदिष्टारुद्रकोपाच्चदारु-

णात् ॥ १२ ॥

शरीर और मनके दोष ही ज्वरकी प्रकृति (कारण) माने जातेहैं । निर्दोष शरीरमें ज्वर उत्पन्न नहीं होता । और न निवास करताहै मनुष्योंके अपनेही कर्मोंसे क्लेशित होनेपर ज्वर, क्षय, तम, पाप और मृत्यु प्राप्त होतीहै और अपने कियेद्वए ही कर्मोंके अधीन इस शरीरको त्याग जाताहै । इसप्रकार ज्वरकी प्रकृति (कारण) कही गयी । तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्योंके अपने ही कर्म क्लेशसे ज्वरकी उत्पत्ति होतीहै । प्रवृत्ति-उत्पत्तिक्रा नाम है सो पहिले निदान स्थानमें कहाआयेहैं किं महादेवके ऋगु कोपसे ज्वरकी उत्पत्तिहै ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

महादेवके कोपसे दक्षयज्ञभ्रंशका वर्णन ।

द्वितीयेहियुगेशर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् । दिव्यंसहस्रवर्षाणामसुराभिदुद्रुवुः ॥ १३ ॥ तपोविघ्नंशमीकर्तुं तपोविघ्नं महात्मनाम् । पश्यन्समर्थश्चोपेक्षाश्चक्रे रुद्रः प्रजापतिः ॥ १४ ॥ पुनर्माहेश्वरं भागं ध्रुवं दक्षः प्रजापतिः । प्रायोन कल्पयामास प्रोच्यमानः सुरैरपि ॥ १५ ॥ पाशुपत्य ऋचोयाश्च शैव्यश्चाहुतयश्चयाः । यज्ञसिद्धिकृतास्ताभिर्हीनश्चैव सङ्गृह्णान् ॥ १६ ॥

यह कथा ऐसी है कि त्रेतायुगमें महादेवजीने देवताओंके १ सहस्रवर्ष क्रोधादिकोंको छोड़कर शान्तव्रत किया ऐसा समय पाकर दैत्य अनेक उपद्रव करनेलगे जिससे विचारे ऋषियोंके यज्ञ तप आदिकोंमें विघ्न होनेलगा परन्तु महादेवने राक्षसोंके उपद्रवोंको शान्त करनेकी सामर्थ्य रखतेहुए भी अपने शान्ति व्रतको भंग नहीं करना चाहा जब दक्षप्रजापतिने देखा कि महादेव सब सामर्थ्य रखते हुए और देवताओंके समझानेपरभी ऋषियोंके तपोविघ्नोंको दूर नहीं करते तो उसने यज्ञमें महादेवका भाग देना बन्द करदिया । और पाशुपत्य नामक वेदकी ऋचाओं और यज्ञको पूर्ण करनेवाली ऋचा महादेवके नामकी आहुतियोंके बिनाही वह यज्ञकरनेलगा ॥ १३-१६ ॥

अथोत्तीर्णव्रतो देवो बुद्ध्वा दक्षव्यतिक्रमम् । रुद्रोरौद्रं पुरस्कृत्य भावमात्मविदात्मनः ॥ १७ ॥ सृष्ट्वाललाटे च क्षुर्वेदं ग्ध्वातानसुरान् प्रभुः । वाणं क्रोधाग्नि सन्तप्तमसृजच्छत्रुनाशनम् ॥ १८ ॥ ततो यज्ञः स विध्वस्तो व्यथिताश्च दिवोकसः । दाहव्यथापरीताश्च भ्रान्ता भूतगणादिशः ॥ १९ ॥

इसके पछि जब महादेव अपने अक्रोधन व्रत करचुके तब उन्होंने दक्षके कियेहुए इस अपराधको जानकर अपने रौद्रभावसे मस्तकमें अग्निमय नेत्रको प्रकट किया फिर इन आत्मवित् महादेवने उस अग्निमय नेत्रद्वारा पहिले तो संपूर्ण राक्षसोंको भस्मीभूत किया । फिर क्रोधरूपी अग्निसे संतप्त होकर शत्रुओंको नष्ट करनेवाला यज्ञनाशन वाण छोडा उस क्रोधाग्निरूपी वाणसे दक्षके यज्ञका विध्वंस हुआ और देवतालोग भी व्याकुल हुए एवं संपूर्ण भूतगण दाह और व्यथासे पीडित हुए । एवं संपूर्ण दिशाओंको भागनेलगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथेश्वरदेवगणाःसहससर्पिभिर्विभुम् । तमृग्भिरस्तुवन्यावच्छिवे
भावेशिवःस्थितः ॥ २० ॥ शिवंशिवायभूतानांस्थितंज्ञात्वाकृता-
ञ्जलिः । क्रोधाग्निरुक्तवान्देवमहंकिंकरवाणिते ॥ २१ ॥

फिर तो संपूर्ण देवता और सप्तऋषि विभु महादेवकी अनेक प्रकारसे स्तुति करने-
लगे । फिर नम्र वचनों द्वारा स्तुति करनेपर जगत्के कल्याणके लिये जब महादेव
अपने शैवभावको प्राप्त हुए यह जानकर वह महादेवसे उत्पन्नहुआ क्रोधाग्निरूपी वाण
हाथ जोडकर महादेवके आगे खडाहुआ और कहनेलगा कि हे देव ! मुझे क्या आज्ञा
है और मैं आपके किस कार्यको करूं ॥ २० ॥ २१ ॥

तमुवाचेश्वरःक्रोधंज्वरोलोकेभविष्यासि । जन्मादौनिधनेचत्वम-
पिचावान्तरेपुच ॥ २२ ॥ सन्तापःसारुचिस्तृष्णाचाङ्गमर्दोहृदि
व्यथा । ज्वरप्रभावोजन्मादौनिधनेचमहत्तमः ॥ २३ ॥

उसको महादेव भगवान् बोले कि हे क्रोध ! तूं संसारमें ज्वररूपसे प्रसिद्ध होगा ।
सब मनुष्योंके जन्म और मरणके समय तथा जीवन समयमें भी प्रगटहुआ करेगा ।
और संताप, अरुचि, अंगमर्द, हृदयमें व्यथा यह सब तुम्हारे प्रभाव होंगे । इस
ज्वरके प्रभावसेही मनुष्यके जन्म और मरणके समय महाअज्ञान उपस्थित
होजाताहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावश्चप्रदर्शितः ।

निदानेकारणान्यष्टौपूर्वोक्तानिविभागशः ॥ २४ ॥

इसप्रकार ज्वरकी प्रकृति, प्रवृत्ति और प्रभाव दिखाये गयें हैं । इसके पहिले निदान-
स्थानमें विभागपूर्वक आठ कारण कह आये हैं ॥ २४ ॥

ज्वरके पूर्वरूप ।

आलस्यंनयनेसास्त्रेजृम्भणंगौरवंकुमः । ज्वलनात्पवाय्वम्बुर्भाकि-
द्वेषावनिश्चितौ ॥ २५ ॥ अविपाकास्यवैरस्यंहानिश्चवलवर्णयोः ।
शीलवैकृतमल्पश्चज्वरलक्षणमग्रजम् ॥ २६ ॥

अब ज्वरके पूर्वरूप कहते हैं । आलस्य, नेत्रोंसे आंसुओंका बहना, जंभाई आना,
शीर भारी होना, कुम (कायली) अग्नि, घूप, छाया तथा जल इनकी इच्छा होना
एवं द्वेष होना अर्थात् इच्छा और द्वेष यह दोनों अनिच्छित भावसे होना । अन्नका
विपाक न होना मुखमें विरसता बल और वर्णकी हानि, स्वभासका किंचित् विकृत-
सा प्रतीत होना, यह ज्वरके पूर्वरूप हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

ज्वरका अधिष्ठान ।

केवलंसमनस्कञ्चज्वराधिष्ठानमुच्यते ।

शरीरबलकालस्तुनिदानेसम्प्रदर्शितः ॥ २७ ॥

ज्वरका अधिष्ठान अर्थात् आश्रयस्थान केवल शरीर और मनही है । ज्वरके समय शरीरकी अवस्था, बल और काल यह सब निदानस्थानमें कथन करचुकेहैं ॥ २७ ॥

ज्वरका रूप ।

ज्वरप्रत्यात्मिकंलिङ्गंसन्तापोदेहमानसः ।

ज्वरेणाविशाताभूतंनहिकिञ्चिन्नतप्यते ॥ २८ ॥

शरीरका और मनका तपायमान होनाही सामान्यरूपसे प्रति मनुष्यमें ज्वरका लक्षण जानना । ज्वरके होनेसे ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसका मन और शरीर तपायमान न होताहो इसलिये देह इन्द्रिय और मनका तपायमान होनाही ज्वरका रूप है ॥ २८ ॥

ज्वरके दो भेद ।

द्विविधोविधिभेदेनज्वरःशारीरमानसः । पुनश्चद्विविधोदृष्टःसौम्य-

श्चाग्नेयएवच ॥ २९ ॥ अन्तर्वेगोवहिवेगोद्विविधःपुनरुच्यते । प्रा-

कृतोवैकृतश्चैवसाध्यश्चासाध्यएवच ॥ ३० ॥

शारीर और मानसिक भेदसे ज्वर दो प्रकारका है । सौम्य और आग्नेय भेदसे दो प्रकारका है । अन्तर्वेगी और वहिवेगी यह दो भेद हैं । एवं प्राकृत और वैकृत तथा साध्य और असाध्य इसप्रकार ज्वर विधिभेदसे दो दो प्रकारका होताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

ज्वरके ५ भेद ।

पुनःपञ्चविधोदृष्टोदोषकालबलावलात् ।

सन्ततःसततोऽन्येषुस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ३१ ॥

फिर वह ज्वर दोष, काल, बल और अवल भेदसे पांच प्रकारका देखनेमें आताहै जैसे-संतत, सतत, अन्येषु (इकतरा) तृतीयक और चतुर्थिक ॥ ३१ ॥

सप्तविध और अष्टविध ज्वर ।

पुनराश्रयभेदेनधातूनांसप्तधामतः ।

भिन्नःकारणभेदेनपुनरष्टविधोज्वरः ॥ ३२ ॥

आश्रय भेदसे ज्वर सात प्रकारका है । क्योंकि रसादि सात धातुगत होनेसे सात प्रकारका होजाताहै । और कारण भेदसे ज्वर आठ प्रकारका होताहै । जैसे वातसे,

पित्तसे, कफसे, वातपित्तसे, वातकफसे, पित्तकफसे, सन्निपातसे और आर्गन्तुज कार-
णोंसे आठ प्रकारका होताहै ॥ ३२ ॥

शारीर और मानसिक ज्वरके लक्षण ।

शारीरोजायतेपूर्वदेहेमनसिमानसः । वैचित्यमरतिग्लानिर्मनस-
स्तापलक्षणम् । इन्द्रियाणाञ्चवैकृत्यदेहसन्तापलक्षणम् ॥ ३३ ॥

शारीरिक ज्वर पहिले शरीरमें प्रगट होकर और मानसज्वर पहिले मनमें प्रगट हो
फिर संपूर्ण देहमें व्यापक होजाताहै । तब चित्तकी विकृति, किसी वस्तुकी इच्छा न
होना, ग्लानि, मनका संताप यह सब लक्षण मानस ज्वरके होतेहैं । एवं इन्द्रियोंमें
व्याकुलता, देहका अत्यंत संतापित होना यह शारीरिक ज्वरके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

सौम्य और अग्नेयके लक्षण ।

वातपित्तात्मकःशीतमुष्णवातकफात्मकः ।

इच्छत्युभयमेतत्तुज्वरोव्यामिश्रलक्षणः ॥ ३४ ॥

इसीप्रकार वातपित्तात्मक ज्वर-सौम्य अर्थात् शीतल पदार्थकी इच्छा करनेवाला
और शीतल द्रव्यों द्वारा शान्त होनेवाला होताहै । एवं वातकफात्मक-आग्नेय
अर्थात् उष्णताकी इच्छा करनेवाला और उष्ण द्रव्यों द्वारा शान्त होनेवाला होताहै
दोनोंके मिलेहुए लक्षणोंवाला दोनों प्रकारकी इच्छाको करता है ॥ ३४ ॥

योगवाहःपरंवायुःसंयोगादुभयार्थकृत ।

दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥ ३५ ॥

वायु परमयोगवाही है । इसलिये संयोगसे दोनों प्रकारके लक्षणोंको करताहै । जब
वह तेजके साथमें मिलजाताहै तो दाहको करनेवाला होजाताहै और सोमके साथ
मिलजानेसे शीतताको करनेवाला होजाताहै ॥ ३५ ॥

अन्तर्वेगी ज्वरके लक्षण ।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णाप्रलापः श्वसनभ्रमः । सन्ध्यास्थिशूलम-
स्वेदोदोपवर्चोविनिग्रहः । अन्तर्वेगस्यलिङ्गानिज्वरस्यैतानिलक्ष-
येत् ॥ ३६ ॥

शरीरके भीतर अत्यंत दाह होना, प्यास अधिक लगना, प्रलाप (बकनाद)
श्वास, भ्रम, संधियों और अस्थियोंमें पीडा होना, पसीनका न आना, मलका रुक-
जाना, यह सब अन्तर्वेगी ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ३६ ॥

बहिर्वेगी ज्वरके लक्षण ।

सन्तापोऽभ्यधिकोवाह्यस्तृष्णादीनाश्चमार्दवम् ।

बहिर्वेगस्यलिङ्गानिसुखसाध्यत्वमेवच ॥ ३७ ॥

शरीरके बाहर संताप अधिक होना, प्यास, आदिका कम होना यह बहिर्वेगी ज्वरके लक्षण हैं । बहिर्वेगीज्वर सुखसाध्य होताहै ॥ ३७ ॥

प्राकृतज्वरके लक्षण और काल ।

प्राकृतःसुखसाध्यस्तुवसन्तशरदुद्भवः ।

कालप्रकृतिमुद्दिश्यप्रोच्यतेप्राकृतोज्वरः ॥ ३८ ॥

प्राकृतज्वर समय और स्वभावके उद्देश्यसे कथन किया जाताहै । जैसे वसन्त-ऋतुका और शरदऋतुका ज्वर प्राकृत होनेसे सुखसाध्य होताहै ॥ ३८ ॥

उष्णमुष्णेनसंवृद्धंपित्तंशरदिकुप्यति ।

चितःशीतिकफश्चैवंवसन्तेसमुदीर्यते ॥ ३९ ॥

क्योंकि उष्णतासे बढाहुआ पित्त उष्ण स्वभाववाला होनेसे उष्णस्वभाववाले शरदऋतुमें कुपित होताहै और शीतकालका संचितहुआ कफ वसन्तऋतुमें कुपित होताहै ॥ ३९ ॥

वर्षास्वम्लविपाकाभिरोषधीभिःसवारिभिः ।

सञ्चितंपित्तमुद्रिक्तंशरद्यादित्यतेजसा ॥ ४० ॥

ज्वरंसञ्जनयत्याशुतस्थचानुबलःकफः ।

प्रकृत्यैवविसर्गाच्चतत्रनानशानाद्भयम् ॥ ४१ ॥

वर्षाकालमें संपूर्ण औषधियें और जलोंका विपाक अम्ल होताहै । अम्ल विपाकसे पित्तका कोष होताहै । परन्तु वर्षाकालमें शीतल पवन और जलकी आर्द्रता आदि होनेसे पित्त कोषको प्राप्त न होकर संचित होता रहताहै । फिर शरदऋतुमें सूर्यके संतापकी सहायतासे कोषको प्राप्त होकर पित्तप्रधान ज्वरको उत्पन्न करताहै । और कफ उसका सहायक होजाताहै । क्योंकि उस समय स्वभावसेही विसर्गकाल होताहै । इसलिए उस समय लंघन न करनेसे रोगकी वृद्धि होतीहै ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अग्निरोषधिभिश्चैवमधुराभिश्चितःकफः । हेमन्तेसूर्य्यसन्तसःनव-
रन्तेप्रकुप्यति ॥ ४२ ॥ वसन्तेभ्लेष्मणातस्माज्ज्वरःसमुपजायते ।

आदानमध्येतस्यापिवातंपित्तंभवेदनु ॥ ४३ ॥ आदावन्तेचमध्ये

चज्ञात्वादोषवलावलम् । शरद्वसन्तयोर्विद्वाञ्ज्वरस्यप्रतिकार-
येत् ॥ ४४ ॥

इसीप्रकार शीतकालमें औषधी और जल आदि सब मधुर विपाकी होतेहैं उस मधुर विपाकसे हेमन्त कालका संचितहुआ कफ वसन्तकालमें सूर्यके संतापसे पिघलकर कोषको प्राप्त हो' कफके ज्वरको उत्पन्न करताहै । इस समय सूर्यके आदान-कालका समय होनेसे वात पित्त इस कफके अनुयायी होजातेहैं । इसलिये शरद और वसन्त ऋतुके आदि अन्त और मध्यमें दोषोंका बलावल विचारकर विद्वान वैद्य विधिवत् चिकित्सा करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्राकृतवैकृतभेद ।

कालप्रकृतिमुद्दिश्यनिर्दिष्टःप्राकृतोज्वरः ।

प्रायेणानिलजोदुःखःकालेष्वन्येषुवैकृतः ॥ ४५ ॥

काल प्रकृतिके उद्देश्यसे अर्थात् दोषोंके स्वाभाविक कोष होनेके कालका निर्देश करके प्राकृत ज्वरका कथन किया गयाहै सो वसन्तऋतुमें कफके और शरदऋतुमें पित्तके यह प्राकृतज्वर कहेजातेहैं । इनमें लंघन आदि विरोधी न होनेसे अर्थात् लंघन कियाजाना हितकारक होनेसे यह प्रायः सुखसाध्य होतेहैं । परन्तु वातज्वर प्राकृत होते हुए भी दुःसाध्य होतेहैं । क्योंकि उनमें लंघन करना प्रायः हितकारक नहीं होता । और अन्यकालमें प्रगटहुए ज्वर भी वैकृत होतेहैं । एवं प्रायः दुःसाध्य होतेहैं ॥ ४५ ॥

हेतु ।

हेतवोविधिधास्तस्यनिदानेसम्प्रदाशीताः ॥ ४६ ॥

ज्वरके अनेक प्रकारके हेतुओंको निदानस्यानमें कह आयेहै ॥ ४६ ॥

साध्यज्वर ।

बलवत्स्वल्पदोषेषुज्वरःसाध्योऽनुपद्रवः ।

बलवान् मनुष्यका अल्प दोषोंवाला और उपद्रवरहित ज्वर साध्य होताहै ॥

१ प्रायःवर्षोऋतुमें वायुका स्वाभाविक कोषकाळ होताहै । शरदऋतुमें पित्तका स्वाभाविक कोषकाळ होताहै और वसन्त ऋतुमें स्वाभाविक कफका कोषकाळ होताहै । इसप्रकार अग्ने समपपर कुपित होना इनका प्राकृतधर्म है और इससे विररीत वैद्यन धर्म है । शरद और वसन्त ऋतुमें आमदोषकी अधिकता होनेसे लंघन करना अस्वास्थ्यकर है । परन्तु वातज्वरमें लंघनकी आवश्यकता नहीं है ।

असाध्य लक्षण ।

हेतुभिर्वहुभिर्जातोवलिभिर्वहुलक्षणः ।

ज्वरःप्राणान्तकृद्यश्चशीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ४७ ॥

बहुतसे बलवान् हेतुओंसे उत्पन्न हुआ और बहुतसे लक्षणोंसे युक्त तथा जो ज्वर शीघ्र इन्द्रियोंको नष्ट कर देवे वह मनुष्योंके प्राणोंको नष्ट करनेवाला अर्थात् असाध्य होताहै ॥ ४७ ॥

सप्ताहोद्वादशाहाद्वादशाहात्तथैव च ।

सप्रलापभ्रमश्वासःतीक्ष्णोहन्याज्ज्वरोनरम् ॥ ४८ ॥

जो ज्वर प्रलाप, भ्रम, श्वास तथा तीक्ष्ण वेगवाला हो वह सातदिनमें अथवा दश दिनमें या बारह दिनमें मनुष्यको मारडालताहै ॥ ४८ ॥

ज्वरःक्षीणस्यशूनस्यगम्भीरोदैर्घ्यरात्रिकः ।

असाध्योवलवान्यश्चकेशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य क्षीण होगयाहो, शरीरमें सृजन उत्पन्न होआईहो, गंभीर ज्वर रहे और संपूर्ण रात्रि उसको बड़े कष्टसे व्यतीत होतीहो तो वह ज्वर असाध्य जानना । एवं जिस मनुष्यके मस्तकपर केशोंमें बहुतसी सीमन्तरचनासी होजाय अर्थात् भीरियेंसी और बूँटके समान रचनासी होजाय वह ज्वरवाला मनुष्य यदि बलवान् भी हो तब भी असाध्य जानना ॥ ४९ ॥

संततज्वर ।

स्रोतोभिर्विसृतादोपागुरवोरसवाहिभिः । सर्वगात्रानुगास्तब्धा

ज्वरंकुर्वन्तिसन्ततम् ॥ ५० ॥ द्वादशाहंदशाहंवासप्ताहंवासुदुःसहः ।

सशीघ्रंशीघ्रकारित्वात्प्रशमंयातिहन्तिवा ॥ ५१ ॥ कालदूष्यप्रकृ-

त्तिभिर्दोषस्तुल्योहिसन्ततम् । निष्प्रत्यनीकंकुरुतेतस्माज्ज्ञेयः चु-

दुःसहः ॥ ५२ ॥ यथाधातुंतथामूत्रंपुरीषञ्चानिलादयः । अनुवध्नन्ति

युगपदवश्यंसन्ततेज्वरे ॥ ५३ ॥

वातादि दोष रसवाही स्रोतोंके बीचमें व्याप्त होकर संपूर्ण देहमें पहुंच जातेहैं । फिर देहको स्तंभितकर संततज्वरको उत्पन्न कर देतेहैं । वह संततज्वर बारह दिनमें अथवा दश दिनमें या सात दिनमें बराबर चढ़ा रहकर या तो शान्त होजाताहै अथवा मनुष्यको मारडालताहै । यह शीघ्रकारी ज्वर दुःसाध्य होताहै । क्योंकि दोष, काल, दूष्य और प्रकृति यह जन एक स्वभाववाले मिल जातेहैं तब अपने बलको

चज्ञात्वादोषबलावलम् । शरदसन्तयोर्विद्वाञ्ज्वरस्यप्रतिकार-
येत् ॥ ४४ ॥

इसीप्रकार शीतकालमें औषधी और जल आदि सब मधुर विपाकी होतेहैं उस मधुर विपाकसे हेमन्त कालका संचितहुआ कफ वसन्तकालमें सूर्यके संतापसे पिघलकर कोपको प्राप्त हो कफके ज्वरको उत्पन्न करताहै । इस समय सूर्यके आदान-कालका समय होनेसे वात पित्त इस कफके अनुयायी होजातेहैं । इसलिये शरद और वसन्त ऋतुके आदि अन्त और मध्यमें दोषोंका बलावल विचारकर विद्वान वैद्य विधिवत् चिकित्सा करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्राकृतवैकृतभेद ।

कालप्रकृतिमुद्दिश्यनिर्दिष्टःप्राकृतोज्वरः ।

प्रायेणानिलजोदुःखःकालेष्वन्येषुवैकृतः ॥ ४५ ॥

काल प्रकृतिके उद्देश्यसे अर्थात् दोषोंके स्वभाविक कोप होनेके कालका निर्देश करके प्राकृत ज्वरका कथन किया गयाहै सो वसन्तऋतुमें कफके और शरदऋतुमें पित्तके यह प्राकृतज्वर कहेजातेहैं । इनमें लंघन आदि विरोधी न होनेसे अर्थात् लंघन कियाजाना हितकारक होनेसे यह प्रायः सुखसाध्य होतेहैं । परन्तु वातज्वर प्राकृत होते हुए भी दुःसाध्य होतेहैं । क्योंकि उनमें लंघन करना प्रायः हितकारक नहीं होता । और अन्यकालमें प्रगटहुए ज्वर भी वैकृत होतेहैं । एवं प्रायः दुःसाध्य होतेहैं ॥ ४५ ॥

हेतु ।

हेतवोविविधास्तस्यनिदानेसम्प्रदर्शिताः ॥ ४६ ॥

ज्वरके अनेक प्रकारके हेतुओंको निदानस्थानमें कह आयेहैं ॥ ४६ ॥

साध्यज्वर ।

बलवत्स्वल्पदोषेषुज्वरःसाध्योऽनुपद्रवः ।

बलवान् मनुष्यका अल्प दोषोंवाला और उपद्रवरहित ज्वर साध्य होताहै ॥

१ प्रायःवर्षाऋतुमें वायुका स्वभाविक कोपकाठ होताहै । शरदऋतुमें पित्तका स्वभाविक कोपकाठ होताहै और वसन्त ऋतुमें स्वभाविक कफका कोपकाठ होताहै । इसप्रकार अनेक समयपर कुण्ठित होना इनका प्राकृतधर्म है और इससे विररीत वैकृत धर्म है । शरद और वसन्त ऋतुमें आणुदोषकी अधिकता होनेसे लंघन करना अत्यावश्यक है । परन्तु वातभ्रममें लंघनकी आनन्दपता नहीं है ।

असाध्य लक्षण ।

हेतुभिर्बहुभिर्जातोवलिभिर्बहुलक्षणः ।

ज्वरःप्राणान्तकृद्यश्चशीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ४७ ॥

बहुतसे बलवान् हेतुओंसे उत्पन्न हुआ और बहुतसे लक्षणोंसे युक्त तथा जो ज्वर शीघ्र इन्द्रियोंको नष्ट कर देवे वह मनुष्योंके प्राणोंको नष्ट करनेवाला अर्थात् असाध्य होताहै ॥ ४७ ॥

सप्ताहोद्वादशाहाद्वादशाहात्तथैवच ।

सप्रलापभ्रमश्वासःतीक्ष्णोहन्याज्ज्वरोनरम् ॥ ४८ ॥

जो ज्वर प्रलाप, भ्रम, श्वास तथा तीक्ष्ण वेगवाला हो वह सातदिनमें अथवा दश दिनमें या बारह दिनमें मनुष्यको मारडालताहै ॥ ४८ ॥

ज्वरःक्षीणस्यशूनस्यगम्भीरोदैर्घ्यरात्रिकः ।

असाध्योवलवान्यश्चकेशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ४९ ॥

जो मनुष्ये क्षीण होगयाहो, शरीरमें सूजन उत्पन्न होआईहो, गंभीर ज्वर रहे और संपूर्ण रात्रि उसको बड़े कष्टसे व्यतीत होतीहो तो वह ज्वर असाध्य जानना । एवं जिस मनुष्यके मस्तकपर केशोंमें बहुतसी सीमन्तरचनासी होजाय अर्थात् भौरियेंसी और घूँटके समान रचनासी होजाय वह ज्वरवाला मनुष्य यदि बलवान् भी हो तब भी असाध्य जानना ॥ ४९ ॥

संततज्वर ।

स्रोतोभिर्विसृतादोपागुरवोरसवाहिभिः । सर्वगात्रानुगास्तब्धा

ज्वरंकुर्वन्तिसन्ततम् ॥ ५० ॥ द्वादशार्हदशार्हवासप्ताहवासुदुःसहः ।

सशीघ्रंशीघ्रकारित्वात्प्रशमंयातिहन्तिवा ॥ ५१ ॥ कालदृष्यप्रकृ-

तिभिर्दोषस्तुल्योहिसन्ततम् । निष्प्रत्यनीकंकुरुतेतस्माज्ज्ञेयः सु-

दुःसहः ॥ ५२ ॥ यथाधानुंतथामूत्रंपुरीषश्चानिलादयः । अनुब्रध्नन्ति

युगपदवश्यंसन्ततेज्वरे ॥ ५३ ॥

वातादि दोष रसवाही स्रोतोंके बीचमें व्याप्त होकर संपूर्ण देहमें पहुंच जातेहैं । फिर देहको स्तंभितकर संततज्वरको उत्पन्न कर देतेहैं । वह संततज्वर बारह दिनमें अथवा दश दिनमें या सात दिनमें बराबर चढ़ा रहकर या तो शान्त होजाताहै अथवा मनुष्यको मारडालताहै । यह शीघ्रकारी ज्वर दुःसाध्य होताहै । क्योंकि दोष, काल, दृष्य और प्रकृति यह जब एक स्वभाववाले मिल जातेहैं तब अपने बलकी

प्राप्त हुए दोष दुःसाध्य संततज्वरको उत्पन्न करतेहैं । क्योंकि इसकी चिकित्सामें अत्यंत कठिनाई पडतीहै इसलिये यह दुःसाध्य है । सातों धातु, तीनों दोष, मल, मूत्र यह सब संततज्वरमें एककालमेंही अनुबंधको प्राप्त होजातेहैं ॥ ५०-५३ ॥

सशुद्ध्यावाप्यशुद्धथावारसादीनामशेषतः । सप्ताहादिपुकालेषु प्रशमंयातिहन्तिवा ॥ ५४ ॥ यदातुनातिशुध्यन्तिनवाशुध्यन्ति सर्वशः । द्वादशैतेसमुद्दिष्टाःसन्ततस्याश्रयास्तदा ॥ ५५ ॥ विसर्गं द्वादशेकृत्वादिवसेव्यक्तलक्षणः । दुर्लभोपशमःकालंदीर्घमप्यनुवर्त्तते ॥ ५६ ॥ इति बुद्धाज्वरंवैद्यउपक्रमेत्सन्ततम् । क्रियाक्रमविधौयुक्तःप्रायःप्रागपतर्पणैः ॥ ५७ ॥

रसादिक सातों धातुओं और तीनों दोष तथा मल मूत्र इन वारह द्रव्योंके संपूर्ण रूपसे अशुद्ध अथवा सर्वथा शुद्ध न रहनेसेही संततज्वर सात अथवा दश या वारह दिनोंमें शान्त होजाताहै या मनुष्यको मारडालताहै । इन वारह द्रव्योंके शुद्ध न होनेसे अथवा सर्वथा दोषयुक्त होनेसे ही संततज्वर इन रसादिक वारह द्रव्योंके आश्रित होताहै-। कोई २ संततज्वर १२ दिन प्रगटरूपसे रहकर फिर गुप्तरूपसे शरीरमें रहने लगताहै और कुछ काल पाकर फिर प्रगट होजाताहै । इसकी चिकित्सा कष्टसाध्य होतीहै । इसप्रकार बुद्धिमान् वैद्य संततज्वरके क्रिया क्रम आदि विधिमें प्रवृत्तहुआ प्रायः लंघनद्वारा दोष शान्तकर चिकित्सा करे ॥ ५४-५७ ॥

सततकज्वर लक्षण ।

रक्तधात्वाश्रयःप्रायोदोषः सततकंज्वरम् । सप्रत्यनीकंकुरुतेकाल-
बुद्धिक्षयात्मकः ॥ ५८ ॥ अहोरात्रेसततकोद्वौकालावनुवर्त्तते ।
कालप्रकृतिदूष्याणांप्राप्यैवान्यतमाइलम् ॥ ५९ ॥

वातादि दोष रक्तधातुमें आश्रित होकर सततकज्वरको उत्पन्न करतेहैं । यह ज्वर जिस दोषसे जिस कालमें उत्पन्न होताहै उसीकी वृद्धिसे वृद्धिको और क्षयसे क्षयको प्राप्त होताहै । सततकज्वर एक दिनरात्रिमें दोवार कोप और शान्तीको प्राप्त होताहै । यह काल, प्रकृति और दूष्यके बलसेही वेग और शान्तिको धारण करताहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

इकतराज्वर लक्षण ।

दोषामेदोवहारुद्धानाडीरन्येयुकंज्वरम् ।

सप्रत्यनीकःकुरुतेएककालमहर्निशम् ॥ ६० ॥

वातादि दोष भेदके वहन करनेवाली नाडियोंको रोककर अन्येद्यु (इकतरा) वरको उत्पन्न करतेहैं । यह ज्वर अपने दोष, काल आदि बलका आश्रय लेकर १ दिनरात्रमें १ बार आताहै ॥ ६० ॥

तृतीयक चातुर्थिक ज्वरलक्षण ।

दोषोऽस्थिमज्जगः कुर्यात्तृतीयकचतुर्थकौ ।

गतिद्वयेकान्तरान्येद्युदोषस्योक्तान्यथापरैः ॥ ६१ ॥

दोष मज्जामें प्राप्त होकर दोष, काल, प्रकृति आदिके बलको क्रमपूर्वक प्राप्त होकर तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करतेहैं । तृतीयकज्वर तीसरे दिन और चातुर्थिक चौथे दिन आताहै । इसप्रकार एकाहिक, द्वाहाहिक, त्र्याहिक और चातुर्थिक ज्वरकी गतिको कहा ॥ ६१ ॥

इनका धातुभेदसे कथन ।

रक्तमेवाभिसंसृज्यकुर्यादन्येद्युकंज्वरम् । मांसस्रोतांस्यनुसृतोजनयेत्तृतीयकम् ॥ ६२ ॥

ज्वरंदोषःसंसृतोहिमेदोमार्गचतुर्थकम् । अन्येद्युष्कःप्रतिदिनंदिनंक्षिप्त्वातृतीयकः । दिनद्वयंयोविश्राम्यप्रत्येतिसचतुर्थकः ॥ ६३ ॥

दोष-रक्तमें मिलकर अन्येद्यु ज्वरको उत्पन्न करतेहैं । मांसके स्रोतोंमें प्रवेश कर तृतीयक ज्वरको उत्पन्न करतेहैं । इसीप्रकार भेदवाही स्रोतोंमें प्रवेशकर चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करतेहैं । अन्येद्युज्वर दिनरात्रमें १ बार कोपको करताहै तृतीयकज्वर १ दिन बीचमें छोडकर दूसरेदिन कोपको धारण करताहै । चातुर्थिकज्वर दो दिन भेद, मज्जा आदि धातुओंमें ठिपा रहकर चौथे दिन अपने वेगको धारण करताहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

इनके कोपमें दृष्टांत ।

अधिशेतेयथाभूमिंवीजंकालेचरोहति । अधिशेतेतथाधातुंदोषः कालेचकुप्यति ॥ ६४ ॥

तेवृद्धिबलकालञ्चप्राप्यदोषास्तृतीयकम् । चतुर्थकञ्चकुर्वन्तिप्रत्यनीकंबलक्षयात् ॥ ६५ ॥

कृत्वावेगंगतबलाःश्लेष्मस्थानेव्यवस्थिताः । पुनर्विवृद्धाःस्वेकालेज्वरयन्तिनरं मलाः ॥ ६६ ॥

जैसे अनेक प्रकारके बीज पृथ्वीमें रहतेहुए अथवा पृथ्वीमें गिरकर अपने समयके रूप काल पाकर प्रगट होजातेहैं उसीप्रकार दोष धातुओंमें शयन करतेहुए प्रकृति

और काल आदिका बल पाकर कोषको प्राप्त होतेहैं । जब उनका समय आताहै तो वातादि तीनों दोष तृतीयक या चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करतेहैं । तात्पर्य यह हुआ कि दोष धातु आदिकोंमें शयन करतेहुए एक अथवा दो दिन अपना बल न पाकर क्षीणताको प्राप्तहुए रहतेहैं । फिर बल, कालको प्राप्त होकर अपने वेगको धारण करतेहैं फिर वेगके क्षय होनेसे कफके स्थानमें गतबल होकर स्थित रहतेहैं फिर वृद्धिको प्राप्त होकर अपने समयपर ज्वरके वेगको उत्पन्न करतेहैं ॥ ६४-६६ ॥

तृतीयक ज्वरके तीन प्रकार ।

कफपित्तात्रिकग्राहीपृष्ठाद्वातकफात्मकः ।

वातपित्ताच्छिरोग्राहीत्रिविधःस्यात्तृतीयकः ॥ ६७ ॥

यदि तृतीयक ज्वर कफ, पित्त प्रधान हो तो प्रथम कमरके तिहड्डेमें अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करताहै । यदि वातकफ प्रधान हो तो पहिले पीठको जकड देताहै । और वातपित्त प्रधान होनेसे प्रथम शिरमें पीडाको प्रगट करताहै । इसप्रकार तृतीयक ज्वर तीन प्रकारका होताहै ॥ ६७ ॥

चातुर्थिकके दो प्रकार ।

चतुर्थकोदर्शयतिप्रभावंद्विविधज्वरः ।

जङ्घाभ्यांश्लैष्मिकःपूर्वाशिरस्तोऽनिलसम्भवः ॥ ६८ ॥

चातुर्थिकज्वर भी अपने दो प्रकारके प्रभावोंको दिखाताहै । यदि वह कफप्रधान हो तो प्रथम जांघोंसे प्रवृत्त होताहै । और वातप्रधान होनेसे पहिले शिरसे प्रवृत्त होताहै ॥ ६८ ॥

चातुर्थिक विपर्यय ।

विषमज्वरएवान्यश्चातुर्थकविपर्ययः । त्रिविधोधातुरेकैकोद्विधातु-
स्थःकरोत्ययम् ॥ ६९ ॥

एक चातुर्थिकज्वरसे विपरीत प्रकारका और विषमज्वर है । यह बीचमें दो दिन ज्वरके वेगको धारणकरके आदि और अन्तके दिनोंमें अपने वेगको नहीं करता यह चातुर्थिक और तृतीयक ज्वरके विपर्ययसेही होताहै । दोष एकएक धातु अथवा दो २ धातुमें स्थित होकर विषमज्वरको प्रगट करतेहैं ॥ ६९ ॥

विषम ज्वरोंको त्रिदोषत्व ।

प्रायशःसन्निपातेनदृष्टःपञ्चविधोज्वरः ।

सन्निपातेतुयोभयान्सदोषःपरिकीर्तितः ॥ ७० ॥

प्रायः यह पांच प्रकारकेही विषमज्वर वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंके सन्निपात सेही होतेहैं । इन तीनों दोषोंमें जो दोष प्रधान होताहै वही दोष मुख्य मानाजाताहै ७०

ऋत्वहोरात्रदोषाणांमनसश्चबलाबलात् ।

कालमर्थवशाच्चैवज्वरस्तंतंप्रपद्यते ॥ ७१ ॥

सब मनुष्योंको ऋतु, दिन, रात्रि, दोष और मनके बल तथा समय और कर्मके आधीन होकर मनुष्योंको अनेक प्रकारके ज्वर उत्पन्न होतेहैं । जिस समय जिस ज्वरके जिसप्रकार काल, कारण आदि उपस्थित होतेहैं उस समय उसीप्रकारका ज्वर उत्पन्न होजाताहै ॥ ७१ ॥

रसगतज्वरके लक्षण ।

गुरुत्वंशीतमुद्देगःसदनंछर्द्यरोचकौ ।

रसस्थितेचहिस्तापःसाङ्गमदोविजृम्भणम् ॥ ७२ ॥

शरीरमें गौरव, शीत लगना मनमें उद्देग होना, अंगोंका रहजाना, छर्दिहोना, एवं अरुचि शरीरके बाहर संताप होना, अंगमर्द और जँभाई आना यह रसगत ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ७२ ॥

रक्तगतज्वरके लक्षण ।

रक्तोत्थापिडकास्तृष्णासरक्तंघीवनंमुहुः ।

दाहरागभ्रममदाः प्रलापोरक्तसंस्थिते ॥ ७३ ॥

शरीरपर रक्त विकारकी फुंसियेंसी होना, प्यास लगना बारबार थूकमें रक्तका आना दाह होना एवं राग, भ्रम, मद और प्रलापका होना यह लक्षण रक्तमें प्राप्तहुए ज्वरके होतेहैं ॥ ७३ ॥

मांसगतज्वरके लक्षण ।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णाग्लानिःसंसृष्टविट्कता ।

दौर्गन्ध्यगात्रविक्षेपोज्वरेमांसस्थितेभवेत् ॥ ७४ ॥

भीतर बहुत दाह होना, प्यास, ग्लानि, मलका पतला होकर निकलना, अथवा अधिक आना शरीरमें दुर्गंधका होना, यह मांसमें प्राप्त ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ७४ ॥

मेदगतज्वरके लक्षण ।

स्वेदस्तीव्रापिपासाचप्रलापारत्यभीक्षणशः ।

स्वगन्धास्यासहत्वञ्चमेदःस्थेग्लान्यरोचकौ ॥ ७५ ॥

पसीना आना, तीव्र प्यास, बकवाद, निरंतर अरति अपने शरीरकी गंध सहन न कर सकना, ग्लानि, और अरुचि यह सब मेदगत ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ७५ ॥

अस्थिगत ज्वरके लक्षण ।

विरेकवमनेचोभेसास्थिभेदंप्रकूजनम् ।

विक्षेपणञ्चगात्राणांश्वासश्चास्थिगतेज्वरे ॥ ७६ ॥

वमन विरचनेका होना, अस्थियोंमें भेदनकीसी पीडा कण्ठ अथवा आंतोंका कूजना हाथ पांव आदि शरीरके अंगोंका इधर उधर फेंकना और श्वास यह सब अस्थिगत ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ७६ ॥

मज्जागत ज्वरके लक्षण ।

हिकाश्वासस्तथाकासस्तमसश्चातिदर्शनम् ।

मर्मच्छेदोवहिःशैत्यंदाहोऽन्तश्चैवमज्जगे ॥ ७७ ॥

हिचकी, श्वास, खांसी, अंधकार दिखाई देना, बारवार आंखोंके आगे अंधेरा होना, मर्मस्थानोंमें पीडा होना, शरीरके बाहर शीतलता और भीतर अत्यंत दाह यह सब मज्जागत ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ७७ ॥

शुक्रगतज्वरके लक्षण ।

शुक्रस्थानगतेशुक्रमोक्षंकृत्वाविनाश्यच ।

प्राणवाय्वग्निसोमैश्चसार्द्धगच्छत्यसौविभुः ॥ ७८ ॥

शुक्रस्थानमें प्राप्त हुआ ज्वर वीर्यको बारवार निकालताहै फिर वीर्यको नष्ट करके यह विभुज्वर प्राणवायु और अग्नि तथा सोमके साथ चलाजाताहै अर्थात् मनुष्यको मारडालताहै ॥ ७८ ॥

इनकी साध्याऽसाध्यता ।

रसरक्ताश्रितःसाध्योमेदोमांसगतश्चयः ।

अस्थिमज्जगतःकृच्छ्रःशुक्रस्थोनैवसिध्यति ॥ ७९ ॥

रसगत और रक्तगत यह ज्वर साध्य होतेहैं । एवं मेद और मांसगत ज्वर भी साध्य हो सकतेहैं । अस्थिगत और मज्जागत ज्वर कृच्छ्रसाध्य होतेहैं । परन्तु शुक्रगत ज्वर सर्वथा असाध्य ही होताहै ॥ ७९ ॥

विशेषतासे ज्वरोंका वर्णन ।

हेतुभिर्लक्षणैश्चोक्तःपूर्वमष्टविधोज्वरः ।

समासेनोपदिष्टस्यव्यासतःशृणुलक्षणम् ॥ ८० ॥

पहिले हेतु और लक्षणोंसे संक्षेपसे आठ प्रकारका ज्वर कहचुकेहैं । अब विस्तार-पूर्वक उनके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ ८० ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

शिरोरुकूपर्वणांभेदोदाहोरोम्णांप्रहर्षणम् । कण्ठास्यशोषोवमथु-
स्तृष्णामूर्च्छाभ्रमोऽरुचिः ॥ ८१ ॥ स्वप्ननाशोऽतिवाग्जृम्भावात-
पित्तज्वराकृतिः ॥ ८२ ॥

शिरमें पीडा होना, संपूर्ण गांठोंमें भेदनेकीसी पीडा, दाह, रोमोंका खडा होना,
कण्ठ और मुखका सूखना, वमनका आना, प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, अरुचि, नांदका न
आना, बकवाद, जंभाई यह सब वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

वातकफज्वरके लक्षण ।

शीतकोगौरवंतन्द्रास्तैमित्यंपर्वणाश्चरुक् । शिरोग्रहःप्रतिश्यायःका-
सःस्वेदाप्रवर्त्तनम् । सन्तापोमध्यवेगश्चवातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ८३ ॥

शीतका लगना, गौरव, तंद्रा, स्तैमित्य (शरीर मीले कपडेसे लिपटाहुआसा
प्रतीत होना) संधियोंमें पीडा होना, शिरका भारी और पीडायुक्त होना, प्रतिश्याय
(जुकाम) खांसी, पसीनेका न आना, संताप और ज्वरका वेग मध्यम होना यह
वातकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ८३ ॥

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

मुहुर्दाहोमुहुःशीतंस्वेदस्तम्भौमुहुर्मुहुः । मोहःकासोऽरुचिस्तृष्णा-
श्लेष्मपित्तप्रवर्त्तनम् । लिप्ततिकास्यतातन्द्राश्लेष्मपित्तज्वरा-
कृतिः ॥ ८४ ॥

बारंबार गर्मीकी दाह होना, वात्वार शीत लगना, बारंबार पसीना आना बारबार
शरीरका स्तंभ होना, एवं मोह (बेहोशी) खांसी, अरुचि, प्यास, और मुख कंफ
तथा पित्तसे लिपायमान होना, तथा मुखसे कफ और पित्तका गिरना, मुख कडुआ
रहना, और तंद्रा यह कफ और पित्तज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ८४ ॥

इत्येतद्द्वन्द्वजाःप्रोक्ताःसन्निपातजउच्यते । सन्निपातज्वरस्योद्ध्वंत्र-
योदशविधस्यहि ॥ ८५ ॥ प्राक्सूत्रितस्यवक्ष्यामिलक्षणंवैपृथक्पृ-
थक् ॥ ८६ ॥

१ यद्यपि वातज्वरमें और कफज्वरमें पसीना नहीं आता, परन्तु वात और कफ दोनोंकी
निश्चयतासे मिळकर प्रवृत्ति होनेसे पसीनेका आगमन होजाताहै । इसलिये "स्वेदाप्रवर्त्तनम्"
का अर्थ इस जगह स्वेदकी आसम्भवात् प्रवृत्ति जानना ।

इसप्रकार द्वंद्वज (द्विदोषज) ज्वरोंका कथन किया गयाहै । अब सन्निपात (त्रिदोष) से उत्पन्न हुए ज्वरका कथन करतेहैं । पहिले तेरह प्रकारके सन्निपातोंका सूत्ररूपसे कथन कर आयेहैं । अब उन तेरह सन्निपातोंके लक्षणोंको पृथक् पृथक् वर्णन करतेहैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

वातपित्तोत्वण सन्निपातके लक्षण ।

वातपित्तोत्वणोविद्याल्लिङ्गमन्दकफेज्वरे ।

भ्रमःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोऽतिरुक् ॥ ८७ ॥

जिस सन्निपातमें वात और पित्त यह दो दोष बहुत बढेहुए हों तथा कफ हीन लक्षणवाली हो उस सान्निपातिक ज्वरके यह लक्षण होतेहैं । जैसे भ्रम, प्यास, दाह, गुरुता, शिरमें अत्यंत पीडा ॥ ८७ ॥

वातकफोत्वणसन्निपातके लक्षण ।

शैत्यंकासोऽरुचिस्तन्द्रापिपासादाहरुग्वयथा ।

वातश्लेष्मोत्वणोव्याधौलिङ्गपित्तावरोविदुः ॥ ८८ ॥

शीत लगना, खांसी, अरुचि, तंद्रा, प्यास, दाह, पीडा, और व्याकुलता यह लक्षण वात कफोत्वण और हीनपित्त सन्निपातके होतेहैं ॥ ८८ ॥

पित्तकफोत्वणसन्निपातके लक्षण ।

छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोऽस्थिवेदना ।

मन्दवातेव्यवस्यन्तेलिङ्गपित्तकफोत्वणे ॥ ८९ ॥

छर्दि होना, बारबार शीत लगना और दाह होना, प्यास, मोह हृद्धियोंमें पीडा, यह पित्तकफोत्वण और हीनवात सन्निपातज्वरके लक्षण हैं ॥ ८९ ॥

वातोत्वणस० ।

सन्ध्यस्थिशिरसःशूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः ।

वातोत्वणोस्याह्वयनुगेतृष्णाकण्ठस्यशोपता ॥ ९० ॥

संधियोंमें, अस्थियोंमें तथा शिरमें पीडा होना, बकवाद, गौरव, प्यास, कण्ठ और मुखका सूखना, यह वातोत्वण और हीन पित्तकफ सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९० ॥

पित्तोत्वणस० ।

रक्तविण्मूत्रतादाहःस्वेदस्तृड्वलसंक्षयः ।

मूर्च्छाचात्तित्रिदोषस्याल्लिङ्गपित्तेगरीयसि ॥ ९१ ॥

मलमूत्रका रक्तके समान होना दाह, स्वेद, प्यास, बलकी हानि, अत्यंतमूर्च्छा यह पित्तोत्थण हीनवातकफ सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९१ ॥

कफोत्थणसं० ।

आलस्यारुचिहृत्सासदाहस्तृष्णावमिभ्रमैः ।

कफोत्थणंसन्निपातंतन्द्राकासेनचादिशेत् ॥ ९२ ॥

आलस्य, अरुचि हृत्सा (जीमचलाना) दाह, वमन, तृषा, भ्रम, तंद्र और खांसी यह कफोत्थण हीनवातपित्त सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९२ ॥

हीनवातमध्यकफपित्तोत्थणसं० ।

प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यंतन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् ।

हीनवातेपित्तमध्येचिह्नंश्लेष्माधिकेमतम् ॥ ९३ ॥

प्रतिश्याय, वमन, आलस्य, तंद्रा, अरुचि और अग्निका मंद होना यह हीनवात, मध्यपित्त कफोत्थण सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९३ ॥

हीनवातमध्यकफपित्ताधिकसं० ।

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वंदाहस्तृष्णाभ्रमोऽरुचिः ।

हीनवातेमध्यकफेलिङ्गंपित्ताधिकेमतम् ॥ ९४ ॥

मूत्र और नेत्र हल्दीके समान होना, दाह, भ्रम और अरुचि यह हीनवात, मध्यकफ, पित्तोत्थण सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९४ ॥

हीनपित्त मध्यकफ वाताधिक सं० ।

शिरोरुग्वेपथुःश्वासःप्रलापश्छर्द्यरोचकाः ।

हीनपित्तेमध्यकफेलिङ्गंवाताधिकेमतम् ॥ ९५ ॥

शिरमें पीडा, कंप, श्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि यह हीनपित्त, मध्यकफ वाताधिक्य सन्निपातके लक्षण होते हैं ॥ ९५ ॥

हीनपित्त मध्यवात कफाधिक सं० ।

शीतकंगौरवंतन्द्राप्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक् ।

हीनपित्तेवातमध्येलिङ्गंश्लेष्माधिकेविदुः ॥ ९६ ॥

शीतका लगना, गुरुता, तंद्रा, बकवाद, हृदियोंमें पीडा, शिरमें पीडा यह हीनपित्त मध्यवात, कफाधिक्य सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९६ ॥

कफहीन वातमध्य पित्ताधिक सं० ।

पर्वभेदोऽग्निमान्द्यंचतृष्णादाहोऽरुचिर्भ्रमः ।

कफहीनेवातमध्येलिङ्गपित्ताधिकेविदुः ॥ ९७ ॥

संधियोंमें पीडा, मंदाग्नि, प्यास, दाह, अरुचि और भ्रम यह हीनकफ, मध्यवात और पित्ताधिक्य सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९७ ॥

श्वासकासप्रतिश्यायामुखशोपोऽतिपाद्वरूक् ।

कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गवाताधिकेमतम् ॥ ९८ ॥

श्वास, सांसी, प्रतिश्याय, मुखका सूखना, पसलीमें अत्यंत पीडा होना, यह हीनकफ, मध्यपित्त, वाताधिक्य सन्निपातके लक्षण होतेहैं ॥ ९८ ॥

सन्निपातके लक्षण ।

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वमतोवक्ष्यामिलक्षणम् । क्षणेदाहःक्षणेशीतम-
स्थिसन्धिशिरोरुजः । सास्त्रावेकलुपेरक्तेनिर्भुत्रेचापिदर्शने ॥ ९९ ॥
सखनौसरुजौकर्णौकण्ठःशूकैरिवावृतः । तन्द्रामोहःप्रलापश्चका-
सःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १०० ॥ परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वास्वस्ताङ्ग-
तापरम् । घृीवनंरक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रितस्यच ॥ १०१ ॥ शिर-
सोलोठनंतृणानिद्रानाशोहृदिव्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिराद-
र्शनमल्पशः ॥ १०२ ॥ कृशत्वंनातिगात्राणांप्रततंकण्ठकूजनम् ।
कोठानांश्यावरक्तानांमण्डलानांश्वदर्शनम् ॥ १०३ ॥ मूकत्वंस्रोत-
सांपाकोगुरुत्वमुदरस्यच । चिरात्पाकश्चदोषाणांसन्निपातज्वरा-
कृतिः ॥ १०४ ॥

इसके उपरान्त अब सन्निपात ज्वरके लक्षणोंको कथन करतेहैं । जैसे क्षणमें दाह और क्षणमें शीतलगने लगे, हृदियोंमें संधियोंमें तथा शिरमें अत्यन्त पीडा हो, नेत्रोंसे जलका स्राव हो, नेत्र क्लृपित लालवर्णके और देहसे होजाय एवम् भ्रमितसी दृष्टि होजाय । कानोंमें पीडा होना, और शब्दोंका सुनाई देना, कांटोंसे रुकासा प्रतीत होना, तन्द्रा, बेहोशी, वकवाद, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम, जीभका खरदरा होना, और नलीहुईसी प्रतीत होना संपूर्ण अंगोंका ढीला पडजाना, कफसे मिलेहुए रक्तपित्तका मुखसे निकलना शिरका इधर उधर पटकना प्यास नांदका न आना हृदयमें पीडा होना, पसीना, मूत्र और पुरीष इनका बहुत देरमें और बहुत थोडा निकलना, शरीरका नशमें घुटसा प्रतीत होना, कण्ठका निरन्तर गूंजना, शरीरमें काले अथवा लालवर्णके चकत्ते और मण्डलसे दिखाई देना, बोलना बंद होजाना, स्रोतोंका परिपाक होना, पेटका भारी होना, दोषोंका बहुत देरमें पकना यह सन्निपातज्वरमें लक्षण होतेहैं ॥ ९९-१०४ ॥

इसकी असाध्यता ।

दोषेविवृद्धेनष्टेऽग्नौसर्वसम्पूर्णलक्षणः ।

सन्निपातज्वरोऽसाध्यःकृच्छ्रसाध्यस्त्वतोऽन्यथा ॥ १०५ ॥

जित सन्निपातमें जठराग्नि नष्ट होजाय और दोष बलवान् हो एवं संपूर्ण लक्षण प्रगट हों वह सन्निपात असाध्य होताहै । इससे विपरीत अर्थात् दोष बलवान् न हों, जठराग्नि नष्ट न हुई हो संपूर्ण लक्षण न हो तो सन्निपातज्वर कष्टसाध्य होताहै ॥ १०५ ॥

निजज्वरोका, निर्देश ।

निदानेत्रिविधाप्रोक्तायापृथक्त्वज्वराकृतिः ।

संसर्गसन्निपातानांतथाचोक्तंस्वलक्षणम् ॥ १०६ ॥

वातज्वरके और पित्तज्वरके तथा कफज्वरके लक्षणोंको निदानस्थानमें कह आयेहैं और द्वन्द्वज तथा सन्निपातोंके लक्षणोंको यहांपर कह दियाहै ॥ १०६ ॥

आगंतुकज्वरोंके ४ प्रकार ।

आगन्तुरष्टमोयस्तुसनिर्दिष्टश्चतुर्विधः ।

अभिघाताभिपङ्गाभ्यामभिचाराभिशापतः ॥ १०७ ॥

आगन्तु जो आठवां ज्वर है वह चार प्रकारका कहाहै । जैसे-अभिघातनिमित्तक, अभिपङ्गनिमित्तक, अभिचारनिमित्तक और अभिशाप निमित्तक ॥ १०७ ॥

अभिघातज्वरके ल० ।

शस्त्रलोष्टकशाकाष्टमुष्टयरत्नितलद्विजैः । तद्विधेश्चहतेगात्रेज्वरः

स्यादभिघातजः ॥ १०८ ॥ तत्राभिघातजोवायुःप्रायोरक्तंप्रदूषयन् ।

सव्यथाशोफवैवर्ण्यं करोतिसरुजंज्वरम् ॥ १०९ ॥

शस्त्र, पत्थर, पीरडा, लकड़ी, मुक्ता, थप्पड, दांत आदिके लगनेसे तथा इसी प्रकारके अन्य किसी चोट आदिके लगजानेसे शरीरमें जो ज्वर उत्पन्न होताहै उसको अभिघात निमित्तक कहते हैं । उस चोट आदिके लगनेसे शरीरमें वायु कुपित होकर प्रायः रक्तको दूषित करताहुआ पीडा, व्याकुलता, सूजन, विवर्णता आदि वेदनायुक्त ज्वरको उत्पन्न करताहै । इस ज्वरको अभिघात ज्वर कहते है ॥ १०८ ॥ १०९

कामशोकभयक्रोधैरभिपक्तस्ययोज्वरः । सोऽभिपङ्गज्वरोज्ञेयोय-

श्चभूताभिपङ्गजः ॥ ११० ॥ कामशोकभयाद्वायुःक्रोधात्पित्तत्रयो-

मलाः । भूताभिपङ्गात्कुप्यन्तिभूतसामान्यलक्षणः ॥ १११ ॥ भूता-

धिकारेव्यार्यातंतदष्टविधलक्षणम् ॥ ११२ ॥

काम, क्रोध, शोक, भय आदिसे व्याकुल होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको अभिपंगज्वर कहते हैं । और भूतादिकोंके आवेश होनेसे भी अभिपंगज्वर उत्पन्न होता है । काम, क्रोध और भयसे वायु, क्रोधसे पित्त और भूतोंके आवेशसे तीनों दोष कुपित होते हैं । उन भूतोंके आवेशसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमें जिन २ भूतादिकोंसे वह उत्पन्न होते हैं उन्हींके समान उनमें लक्षण होते हैं । इन आठ प्रकारके भूतादिकोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको भूताधिकारमें प्रथम कहचुके हैं ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

विषवृक्षानिलस्पर्शात्तथान्यैर्विषसम्भवैः । अभिपक्तस्यचाप्याहुर्ज्वर-
रमेकेऽभिपङ्गजम् । चिकित्सयाविषघ्न्यैवप्रशमंलभतेनरः ॥ ११३ ॥

विषैले वृक्षांकी वायुका स्पर्श होनेसे अन्य विषैली वायु लगनेसे ज्वर उत्पन्न होता है । या किसी विषके संसर्गसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको भी अभिपंगज्वर कहते हैं । ऐसे ज्वरोंमें विषनाशक चिकित्सा करनेमें ही मनुष्यको शान्ति प्राप्त होती है ॥ ११३ ॥

अभिचार और अभिशापज्वरके ल० ।

अभिचाराभिशापाभ्यांसिद्धानांयःप्रवर्तते ।

सन्निपातज्वरोघोरःसविज्ञेयःसुदुःसहः ॥ ११४ ॥

अभिचार अर्थात् किसी मंत्र आदि प्रयोगसे अथवा देवता, सिद्ध, आदिकोंके अभिशापसे जो ज्वर उत्पन्न होता है वह सन्निपातके लक्षणवाला घोरज्वर दुःसह और दुश्चिकित्स्य होता है ॥ ११४ ॥

सन्निपातज्वरस्योक्तलिङ्गंयत्तस्यतत्समृतम् ।

चित्तेन्द्रियशरीराणामर्त्तयोऽन्याश्चनैकशः ॥ ११५ ॥

सन्निपातज्वरके जो लक्षण कहचुके हैं वही लक्षण अभिशाप और अभिचारसे उत्पन्न हुए ज्वरमें भी होते हैं तथा मन, इन्द्रिय और शरीरमें अनेक प्रकारकी विचित्र पीड़ाएँ होती हैं ॥ ११५ ॥

प्रयोगस्त्वभिचारस्यदृष्ट्वाशापस्यचैवहि ।

स्वयंश्रुत्वानुमानेनलक्ष्यतेप्रशमेनवा ॥ ११६ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको देखकर, सुनकर, अनुमान, और युक्ति द्वारा विचारकर निश्चय करे । अथवा मंत्र तंत्र आदिसे वा अन्य बलिदानादि कर्म करनेसे यदि वह शान्त हो तब भी उसको अभिचारादिमें उत्पन्न हुआ जाने ॥ ११६ ॥

वैविध्यादभिचारस्यशापस्यचतदात्मके ।

यथाकर्मप्रयोगेणलक्षणंस्यात्पृथग्विधम् ॥ ११७ ॥

अभिचार और अभिशाप अनेक प्रकारके होते हैं इसलिये उनके लक्षण और कर्म भी जो २ जिसप्रकार उत्पन्न हुए हैं उस उस प्रकारके अलग अलग होते हैं । उनको वैद्य अनुमान और बुद्धिद्वारा निश्चय करे ॥ ११७ ॥

काम शोक और भय ज्वरके लक्षण ।

ध्याननिःश्वासबहुलंलिंगंकामज्वरेस्मृतम् ।

शोकजेवाष्पबहुलंत्रासप्रायंभयज्वरे ॥ ११८ ॥

एकओर ध्यान लगा रहना, श्वास अधिक चलना, यह कामज्वरमें लक्षण होते हैं । शोकज्वरमें-अत्यंत चाष्प (मुखसे आहंसेती फुंकार) निकलती है । भयज्वरमें डर अधिक लगा करता है ॥ ११८ ॥

क्रोध, भूतावेश तथा विपसे उत्पन्नहुएज्वरके ल० ।

क्रोधजेवहुसंरम्भंभूतावेशेत्वमानुपम् ।

मूर्च्छामोहमदग्लानिभूयिष्टंविपसम्भवे ॥ ११९ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें संरम्भ (अत्यंत क्रोध और कंप) उत्पन्न होता है । भूता-वेशसे उत्पन्न हुए ज्वरमें अमानुषीय लक्षण प्रगट होते हैं । विपसे उत्पन्न हुए ज्वरमें बेहोशी, मद, और ग्लानिकी अधिकना होती है ॥ ११९ ॥

इनज्वरोंमें विशेष वक्तव्य ।

केपाश्विदेपांलिंगानांसन्तापोजायतेपुरः । पश्चात्तुल्यन्तुकेपाश्विदे-

पुकामज्वरादिषु ॥ १२० ॥ कामादिजानामुद्दिष्टंज्वराणांयद्विशेष-

णम् । कामादिजानारोगाणामन्येषामपितस्मृतम् ॥ १२१ ॥

इन कामज्वर अदिकोंमें किसी २ मनुष्यको तो ज्वरके प्रथम ही संताप और इन लक्षणोंका आविर्भाव होजाता है और किसी २ मनुष्यको ज्वरके पछि या किसीको साथ ही ये लक्षण प्रगट होते हैं । कामादिकोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमें जो उनके लक्षण कहेगये हैं वह कामादिकोंसे उत्पन्न हुए अन्य रोगोंमें भी जानने ॥ १२० ॥ १२१ ॥

आगंतुजज्वरोंकी भेदता ।

तेपूर्वकेवलःपश्चान्निजैर्व्यामिश्रलक्षणाः ।

हेत्वापधिविशिष्टाश्च भवन्त्यागन्तवोज्वराः ॥ १२२ ॥

मनस्यभिद्रुतेपूर्वकामायैर्नतथाबलम् ।

ज्वरःप्राप्तोतिकामायैर्मनोयावन्नदूष्यति ॥ १२३ ॥

आगन्तुज्वर पहिले तो केवल आगन्तुज लक्षणोंसे संयुक्त होते हैं और आगन्तुज कहेजाते हैं फिर वह वातादिकोंसे संयुक्त होनेपर निज रोगोंके लक्षणोंसे भी सम्मिलित होजातेहैं । आगन्तुक ज्वरोंके हेतु अर्थात् कारण और चिकित्सा निज ज्वरोंके समान नहीं होती । आगन्तुक ज्वरोंमें पहिले मनमें कामादि व्यथा उत्पन्न होकर पीछे ज्वर उत्पन्न होताहै । निज ज्वरोंके समान वह ज्वर शरीरमें पहिले बल नहीं पाता । जयतक मन दूषित नहीं होता तबतक कामादि ज्वर बलको प्राप्त नहीं होते ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

ज्वरोंकी संपत्ति ।

संसृष्टाःसन्निपतिताःपृथग्वाकुपितामलाः । रसाख्यंघातुमन्वेत्यप-
क्तिस्थानान्निरस्य च ॥ १२४ ॥ स्वेनतेनोष्मणाचैवकृत्वादेहोष्म-

णेवलम् । स्रोतांसिरुद्धासम्प्राप्ताःकेवलं देहमुल्बणाः ॥ १२५ ॥
सन्तापमधिकं देहेजनयन्ति नरस्तदा । भवत्यत्युष्णसर्वाङ्गोज्वरित-
स्तेनचोच्यते ॥ १२६ ॥

संपूर्ण वातादि दोष अलग २ अथवा दो दो मिलकर या तीनों जब अपने कार-
णोंसे कुपित होतेहैं तो आमाशयमें स्थित होकर रसनामक घातुके साथ मिलजातेहैं
फिर पाचकअग्निको उसके स्थानसे बाहर निकालकर उसकी गर्मीसे संपूर्ण देहको गर्म
कर देतेहैं । और स्वयं वृद्धिको प्राप्त हुए स्रोतोंकी रोक देतेहैं तब स्रोतोंके रुकजानेसे,
वह अपने स्थानसे निकलीहुई अग्नि मनुष्योंके शरीरमें अत्यंत संतापको उत्पन्नकर
देतीहै । उससे मनुष्यका संपूर्ण शरीर तपाहुआ होनेपर इस मनुष्यको ज्वर चक्ष-
येसा कहाजाताहै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

आमज्वरके लक्षण ।

स्रोतसांसंनिरुद्धत्वात्स्वेदंनानाधिगच्छति ।

स्वस्थानात्प्रत्युच्यते चाग्नौप्रायशस्तरुणेज्वरे ॥ १२७ ॥

स्रोतोंके रुकनेसे और जठराग्निके अपने स्थानसे अलग होजानेसे तरुणज्वरमें
प्रायः मनुष्यको पसीना नहीं आता ॥ १२७ ॥

अरुचिश्चाविपाकश्चगुरुत्वमुदरस्यच । हृदयस्याविशुद्धिश्चतन्द्रा-
चालस्यमेवच ॥ १२८ ॥ ज्वरोऽविसर्गी बलवान्दोषाणामप्रवर्त्त-

नम् । लालाप्रसेकोह्लासोक्षुब्धाशोऽविशदंमुखम् ॥१२९॥ स्तब्ध-
सुप्तगुरुत्वञ्चगात्राणां बहुमूत्रता । नविड्जीर्णानिचग्लानिर्ज्वरस्या-
मस्यलक्षणम् ॥ १३० ॥

अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, पेटका भारीपन, हृदयकी अशुद्धि, तंद्रा,
आलस्य, ज्वरका वेग रहना और बलवान् होना, दोषोंका न निकलना, मुखसे लार
गिरना, जी मचलाना, भूख न लगना, मुख लगावसे लिपासा रहना, शरीर जकडा
हुआसा होना, अंगोंका सोना, शरीरमें भारीपन, पेशाव अधिक आना, मलका न
पकना यह आमज्वरके लक्षण हैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥

निरामज्वरलक्षण ।

क्षुत्क्षामतालघृत्वञ्चगात्राणांज्वरमार्दवम् ।

दोषप्रवृत्तिरुत्साहोनिरामज्वरलक्षणम् ॥ १३१ ॥

क्षुधा लगना, शरीरका हल्का होना, ज्वरका नरम पडजाना एवं शरीर और अंगोंका
नरम होना और पसीनायुक्त होना, दोषोंका निकलना, शरीरमें उत्साह होना यह निराम
(पकेहुए) ज्वरके लक्षण हैं ॥ १३१ ॥

नवज्वरमें वर्जित वस्तु ।

नवज्वरेदिवास्वप्नलानाभ्यङ्गान्मैथुनम् ।

क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्चविवर्जयेत् ॥ १३२ ॥

नवीन ज्वरमें दिनमें सोना, स्नानकरना, तेल आदि मलना, अन्न, मैथुन, क्रोध,
अधिक वायुका सेवन, परिश्रम और ज्वरनाशक उत्कट द्रव्योंका पीना इन सबको
त्यागदेना चाहिये ॥ १३२ ॥

लंघनका निर्देश ।

ज्वरेलंघनमेवादावुपदिष्टमृतेज्वरात् ।

क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ १३३ ॥

ज्वरके आदिमें लंघन करना ही हितकर कहाहै । परन्तु क्षयज्वर, घातज्वर,
क्रोधज्वर, कामज्वर और शोकज्वरमें लंघन नहीं करना चाहिये ॥ १३३ ॥

लंघनके गुण ।

लंघनेनक्षयंतीतेदोषेसन्धुक्षितेऽनले ।

विज्वरत्वंलघुत्वञ्चक्षुच्चैवास्योपजायते ॥ १३४ ॥

लंघनके करनेसे दोष क्षय होकर चैतन्य होजाताहै । फिर मनुष्यका ज्वर दूर होजाताहै । शरीर हल्का होजाताहै और भूख लगने लगतीहै ॥ १३४ ॥

अधिक लंघन करनेका दोष ।

प्राणाविरोधिनाचैनंलंघनेनोपपादयेत् ।

वलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ १३५ ॥

: ज्वरवाले मनुष्यको लंघन इतना कराना चाहिये जिससे उसके प्राणोंको बाधा न हो क्योंकि मनुष्यकी आरोग्यता प्राणवल्के ही आश्रय है और उस आरोग्यताके लिये ही चिकित्साका प्रयोजन है ॥ १३५ ॥

तरुणज्वरमें निर्देश ।

लंघनंस्वेदनंकालोयवाग्ब्रुस्तिककौरसः ।

पाचनान्यधिपक्वानां दोषाणांतरुणेज्वरे ॥ १३६ ॥

तरुणज्वरमें लंघन (उपवास), पसीनादेना (बालुकास्वेद आदि), समय, यवागु, निक्तास तथा अन्य पाचन द्रव्य यह सब विना पके दोषोंको पाचन करनेवाले हैं ॥ १३६ ॥

ज्वरमें जलके नियम ।

तृप्यतेसलिलञ्चोष्णंदद्याद्वातकफज्वरे । मद्योत्थेपैत्तिकेवाथशीत-
लंतिककैःशृतम् ॥ १३७ ॥ दीपनंपाचनञ्चैवज्वरघ्नमुभयंहितम् ।
स्रोतसांशोधनंवलयंरुचिस्वेदकरंशिवम् ॥ १३८ ॥

वायु और कफके ज्वरमें प्यास लगनेपर गरम जल पीनेको देना चाहिये, मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वर और पित्तके ज्वरमें तिक्तद्रव्योंसे सिद्धक्रिया जल शीतलकर पीनेको देना चाहिये । यह दोनों प्रकारके जल, दीपन, पाचन और ज्वरको नष्ट करनेवाले हैं तथा स्रोतोंको शुद्ध करनेवाले बलकारक, रुचिकारक, पपीनेके लानेवाले और कल्याणकारी होतेहैं ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

मुस्तकादिसे शृत जल ।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदाच्यनागरेः ।

शृतशीतंजलंदद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥ १३९ ॥

नागरमोथा, पापडा, खस, चंदन, नेत्रवाला और साँठ इनसे उबाले जलको शीतल कर ज्वरवाले मनुष्यको प्यासकी शान्तिके लिये देना चाहिये ॥ १३९ ॥

ज्वरमें वमनका योग ।

कफप्रधानानुक्लिष्टान्दोषानामाशयस्थितान् ।

बुद्धाज्वरकरान्कालेवम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ १४० ॥

जिस ज्वरमें कफ प्रधान हो और दोष उत्केशित होकर वमन द्वारा निकलना चाहते हैं तथा वह दोष उखडकर आमाशयमें स्थित हैं ऐसे समय यदि वैद्य रोगी-को वमन कराने योग्य देखे और वसन्तऋतु आदि वमनका काल उपस्थित हो तो विचारपूर्वक उन ज्वरकारक दोषोंको वमन द्वारा निकाल डाले ॥ १४० ॥

तरुणज्वरमें वमनके दोष ।

अनुपस्थितदोषाणां वमनंतरुणे ज्वरे ।

हृद्रोगंश्चासमानाहंमोहश्चजनयेदभृशम् ॥ १४१ ॥

जिस मनुष्यके दोष निकलनेके लिये उत्केशित होकर उपस्थित न हो और ज्वर कच्चा हो, ऐसे समय यदि वमन करायाजाय तो हृद्रोग, अफारा, बेहोशी इनको प्रगटकर देता है इसलिये तरुणज्वरमें वमन नहीं कराना चाहिये ॥ १४१ ॥

सर्वदेहानुगाः सामाधातुस्थादुःखनिर्हराः ।

दोषाः फलेभ्यः आमेभ्यः स्वरसाइवसात्ययाः ॥ १४२ ॥

जैसे कच्चे फलमेंसे रस निकालने लगें तो वह फल सर्वथा नष्ट होजाता है उसी-प्रकार कच्चे ज्वरमें दोष कच्चे होनेसे संपूर्ण देह और धातुओंमें व्यापक होते हैं । उस समय निकाले जानेसे शरीरमें अनेक प्रकारके दुःख उत्पन्न करते हैं ॥ १४२ ॥

यवागूका निर्देश और गुण ।

वमितं लंपितं काले यवागूभिरुपाचरेत् । यथास्वौषधसिद्ध्याभिर्मण्ड-

पूर्वाभिरदितः ॥ १४३ ॥ यावज्ज्वरमृदूभावात्पडहंवाविचक्षणः ।

तस्याग्निर्दीप्यते ताभिः समिद्धिरिव पावकः ॥ १४४ ॥ ताश्च भेषज-

संयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनाः । वातमूत्रपुरीषाणां दोषाणाञ्चानुलो-

मनाः ॥ १४५ ॥

वमन करायेहुए अथवा लंघन किये मनुष्यको उचित समयपर चतुर वैद्य यवागू पिलावे । वह यवागू दोषानुसार औषधियों द्वारा सिद्ध की हुई होनी चाहिये और इसीप्रकार औषधियोंसे सिद्धकिया समयपर चावलोंका अथवा मूंगका मण्ड (पीठ) पिलावे । जबतक ज्वर नरमी न पकड़े अथवा छः दिनपर्यन्त बुद्धिमान् वैद्य उचित

द्रव्योंसे सिद्ध किया यवागू पान करावे । क्योंकि यवागूके पान करनेसे मनुष्यकी अग्नि इसप्रकार चैतन्य होजातीहै जैसे लकड़ियोंके लगानेसे अग्नि चैतन्य होजातीहै यवागू औषधियोंके संयोगसे और हल्की होनेसे अग्निको दीपन करनेवाली होतीहै और अधोवात मूत्र, पुरीष तथा दोषोंको अनुलोमन करतीहै ॥ १४३-१४५ ॥

स्वेदनायद्रवौष्णत्वाद्द्रवत्वात्तृप्प्रशान्तये ।

आहारभावात्प्राणायसरत्वाच्छाघवायच ॥ १४६ ॥

द्रव और उष्ण होनेसे स्वेदन करतीहै । पतला होनेसे प्यासको शान्त करतीहै । आहारभाव होनेसे प्राणोंकी रक्षा करतीहै । सर होनेसे शरीरमें लघुताको उत्पन्न करतीहै ॥ १४६ ॥

ज्वरघ्न्योज्वरसात्म्यत्वात्तस्मात्पेयाभिरादितः ।

ज्वरानुपचरेद्धीमानृतमद्यसमुत्थितात् ॥ १४७ ॥

पेया (यवागू) ज्वरको नष्ट करनेवाली है और सब प्रकार सात्म्य होतीहै इसलिये ज्वरके उपचारमें लंघनके अनन्तर यवागू पान कराना चाहिये । परन्तु मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वरमें यवागू न पिलावे ॥ १४७ ॥

यवागूका निषेध ।

मदात्ययेमद्यनित्येऽग्निपित्तकफाधिके ।

ऊर्द्ध्वगेरक्तपित्तेचयवागूरहिताज्वरे ॥ १४८ ॥

मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वरमें, नित्य मद्यसेवन करनेवालेको, अग्निप्रकृतुमें, पित्त, कफ प्रधान ज्वरमें और ऊर्द्ध्वगत रक्तपित्तवाले ज्वरमें यवागू पिलाना हित नहीं है १४८ ज्वरमें तर्पण ।

तत्रतर्पणमेवाग्नेप्रयोज्यंलाजसक्तुभिः ।

ज्वरापहैःफलरसैर्युक्तंसमधुशर्करम् ॥ १४९ ॥

ऐसे ज्वरोंमें धानोंकी खिलोंके सत्तुओंसे अथवा ज्वरनाशक फलोंके रससे बनाये हुए तर्पणोंको शहत और मिसरी मिला पिलाना चाहिये ॥ १४९ ॥

द्राक्षादि तर्पण ।

द्राक्षादाडिमखर्जूरपियालैःसपरूपकैः ।

तर्पणाहैपुकर्त्तव्यंतर्पणंज्वरशान्तये ॥ १५० ॥

सुनका, अनार, खजूर, चिरौंजी, फालसा, इन सबसे बनायाहुआ तर्पण (शरवत) तर्पणयोग्य ज्वरोंमें ज्वरकी शान्तिके लिये पिलाना चाहिये ॥ १५० ॥

तर्पणके अनन्तर यूप ।
ततःसात्म्यवलापेक्षीभोजयेर्जीर्णतर्पणम् ।

तनुनामुद्गयूपेणजाङ्गलानारसेनवा ॥ १५१ ॥

तर्पणके अनन्तर जब तर्पण पचजाय तो उसके सात्म्य और बल विचागकर थोड़ेसे मूंगोंका यूप अथवा जांगल जीवोंका मांसरस पीनेको देवे ॥ १५१ ॥

अन्नकालमें दंतधावन ।

अन्नकालेषुचाप्यस्मैविधेयंदन्तधावनम् । योऽस्यवक्ररसस्तस्माद्वि-
परीतंप्रियञ्चयत् ॥१५२॥ तदस्यमुखवैशद्यंप्रकांक्षाञ्चान्नपानयोः ।
धत्तेरसविशोपाणामभिज्ञत्वंकरोतियत् ॥ १५३ ॥ विशोध्यद्दुमशा-
खाग्रैरास्यंप्रक्षाल्यचासकृत् । मस्तिवक्षुरसमद्याथैर्यथाहारमवाप्नु-
यात् ॥ १५४ ॥

फिर भोजनके समय इस मनुष्यको ऐसी औषधीकी शाखा लेकर दांतन करावे जो रोगीके मुखके रससे विपरीत रसवाली हो और रोगीको अप्रिय न हो, ऐसी दांतन करानेसे रोगीका मुख स्वच्छ होजाताहै और अन्नपानकी रुचि उत्पन्न होतीहै । इसप्रकार दांतनके करनेवाले मनुष्यको यथोचित रीतिपर रसोंका स्वाद आने लगजाताहै इसलिये उचित वृक्षकी शाखाके अग्रभागकी उत्तम नरम कूचीबनाकर मुखके मैलको शोधन करे और बारबार जलसे कुल्ले करडाले । जब मुख स्वच्छ होजाय फिर इसको मस्तु (मण्ड, पीछ अथवा दहीका जल), यवागू, इक्षुरस अथवा मद्य आदिक जो जिससमय उचित हो बैसा आहार देवे ॥ १५२-१५४ ॥

अन्य निर्देश ।

पाचनीयंशमनीयंकपायंपाययेततम् ।

ज्वरितंपडहेऽतीतेलध्वन्नंप्रतिभोजयेत् ॥ १५५ ॥

छः दिन व्यतीतहोनेके अनन्तर ज्वरवाले मनुष्यको पाचन और शमनकारक कपायोंको पिलावे । एवं हल्का और थोडा भोजन करावे ॥ १५५ ॥

स्तभ्यन्तेनविपच्यन्तेकुर्वन्तिविषमज्वरम् ।

दोषावच्छाःकपायेणस्तम्भित्वातरुणेज्वरे ॥ १५६ ॥

तरुणज्वरमें दोष बंधेहुए और स्तम्भित होतेहैं । उस समय शमनीय कपाय देनेमें विपाकको प्राप्त न होकर ज्वरको निपमगतिवाला बना देतेहैं इसलिये छः दिननक शमनीय कपाय देना उचित नहीं ॥ १५६ ॥

कैसे कषाय तरुणज्वरमें न देवे ।

नतुकल्पनमुद्दिश्यकषायःप्रतिषिध्यते ।

यःकषायःकषायःस्यात्सवर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥ १५७ ॥

तरुणज्वरमें कसैले काथके देनेका निषेध है । मधुर आदि दोषोंको पारिपाक करनेवाले काथोंका निषेध नहीं है ॥ १५७ ॥

ज्वरमें अन्न ।

यूपैरम्लैरनम्लैर्वाजाङ्गलैर्वारसैर्हितैः ।

दशाहंतावदश्रीयाल्लघ्वन्नंज्वरशान्तये ॥ १५८ ॥

छः दिनसे उपरान्त दश दिनतक मूंग आदिका यूप खटाईके बिना अथवा इमली आदि उचित खटाईके साथ अथवा हितकारक जांगल मांसरसोंके साथ ज्वरकी शान्तिके लिये हितकारक हल्के अन्नका भोजन करावे ॥ १५८ ॥

घृतपानका समय ।

अतऊर्द्ध्वकफेमन्देवातपित्तोत्तरेज्वरे ।

परिपक्वेषुदोषेषुसर्पिष्पानंयथामृतम् ॥ १५९ ॥

दश दिनके अनन्तर जब कफ क्षीण होजाय और वात पित्तकी अधिकता हो एवं सब दोष पकचुके हों ऐसे समय औषधियोंसे सिद्धकिया घृत देना ज्वरवाले मनुष्यको अमृतके समान गुण करताहै ॥ १५९ ॥

घृतका निषेध ।

निर्दशाहमपिङ्गत्वाकफोत्तरमलङ्घितम् ।

नसर्पिःपाययेद्वैद्यःकषायैस्तमुपाचरेत् ॥ १६० ॥

यदि ज्वरमें दश दिन व्यतीत न हुए हों अथवा इसके उपरांत भी कफकी अधिकता हो और लघन द्वारा दोष क्षीण न किये गये हों ऐसे समय वैद्य घृत न पिलावे किन्तु कषायों द्वारा रोगकी शान्ति करे ॥ १६० ॥

मांसरस ।

यावल्लघुत्वादशानंदद्यान्मांसरसेनच ।

परं ह्यलंदोपहरंपरंतच्चवलप्रदम् ॥ १६१ ॥

मांसाहारी मनुष्यको जबतक दोष क्षीण होकर शरीरमें हल्कापन न हो तबतक ज्वरमें हितमांसरसोंका पान करावे । ऐसा करनेसे मांसरस दोषोंको नष्टकर बलको देताहै । परन्तु यह मांसरस ज्वरनाशक औषधियों द्वारा सिद्ध होना चाहिये ॥ १६१ ॥

ज्वरमें दूधका निर्देश ।

दाहतृष्णापरीतस्यवातपित्तोत्तरंज्वरम् ।

वद्धप्रच्युतदोषवानिरामंपयसाजयेत् ॥ १६२ ॥

जिस ज्वरमें वातपित्तकी अधिकता हो, दाह तथा प्यासकी अधिकता हो, दोष वद्ध हों अथवा दोष पककर निकल गयेहों ऐसे ज्वरको ज्वरनाशक दूधोंसे जीतना चाहिये ॥ १६२ ॥

ज्वरोंमें विरेचनीदिका निर्देश ।

क्रियाभिराभिःप्रशमंगप्रयातियदाज्वरः ।

अक्षीणबलमांसस्यशमयेत्तंविरेचनैः ॥ १६३ ॥

यदि इन उपरोक्त क्रियाओंद्वारा भी ज्वर शान्तिको प्राप्त न हो तो जिस मनुष्यका बल और मांस क्षीण न हुआ हो ऐसे मनुष्यके ज्वरको ज्वरनाशक विरेचनों द्वारा शान्त करे ॥ १६३ ॥

वस्तिकर्मका निर्देश ।

ज्वरक्षीणस्यनहितं वमनं न विरेचनम् । कामन्तुपयसात्स्यनिरूहै-

र्वाहरेन्मलान् ॥ १६४ ॥ निरूहोवलमग्निश्चविज्वरत्वंमुदंरुचिम् ।

परिपक्वेषुदोषेषुप्रयुक्तः शीघ्रमावहेत् ॥ १६५ ॥

जो मनुष्य क्षीण होगया हो ऐसे मनुष्यके ज्वरमें वमन, विरेचन कराना हित नहीं है । ज्वरसे क्षीण मनुष्यके दोषोंको औषधियोंसे सिद्धकिये दूधके साथ निरूहण-वास्ति द्वारा दोषोंको हरण करे क्योंकि निरूहणवास्ति बलको देनेवाली है, अग्निको बढ़ाती है, ज्वरको नष्ट करतीहै, शरीरमें आनन्द और रुचिको उत्पन्न करतीहै एवं पकेहुए दोषोंको शीघ्र निकाल डालतीहै ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

पित्तंवाकफपित्तंवापित्ताशयगतं हरेत् ।

संसनं त्रीन्मलान्वास्तिर्हरेत्पक्वाशयस्थितान् ॥ १६६ ॥

पित्ताशयमें प्राप्त हुए पित्तको अथवा पित्तकफको या पक्वाशयमें प्राप्त हुए तीनों दोषोंको संसनवास्ति शीघ्र निकाल डालती है ॥ १६६ ॥

ज्वरेपुराणेसंक्षीणेकफपित्तेट्टाग्नये ।

रूक्षवद्धपुरीषाणांप्रदद्यादनुवासनम् ॥ १६७ ॥

पुराने ज्वरमें तथा कफ पित्तके क्षीण होनेपर रूक्ष अथवा वद्धमलवाले मनुष्यको अग्निके बलवान् करनेके लिये अनुवामन वास्तिकका प्रयोग करना चाहिये ॥ १६७ ॥

शिरोविरेचनका निर्देश ।

गौरवेशिरसःशूलेविवद्धेष्विन्द्रियेषुच ।

जीर्णज्वररुचिकरंकुर्यान्मूर्च्छविरेचनम् ॥ १६८ ॥

इसीप्रकार इन्द्रियोंके बद्ध होनेपर शिर भारी तथा शूलयुक्त होनेपर जीर्णज्वरमें रुचिकारक नस्यद्वारा शिरको विरेचन करना चाहिये ॥ १६८ ॥

अभ्यंगादि अन्य अनेकज्वरनाशक चिकित्सा ।

अभ्यङ्गांश्चप्रदेहांश्चसस्त्रेहान्सावगाहनान् । विभज्यशीतोष्णकृतान्कुर्याज्जीर्णज्वरेभिषक् ॥ १६९ ॥ तैराशुहिशमंयातिवंहिर्मारगगतोज्वरः । लभन्तेसुखमङ्गानिवलंवर्णश्चवर्द्धते ॥ १७० ॥

वैद्यको उचित है कि, जीर्णज्वरमें शीतल अथवा उष्ण जैसे उचित समझे उस प्रकारके अभ्यंग, (तैल आदि मालिश) प्रदेह (लेपन) इनका औषधियोंसे सिद्ध किये हुए चिकने द्रव्यों (लाक्षादि तैल, आदि) से उपयोग करे । इसीप्रकार शीत अथवा उष्ण अवगाहन (औषधियोंसे सिद्ध किये जलसे स्नान) करावें । इनके करनेसे वहिर्मारगगत ज्वर शीघ्र शान्त होजाताहै और अंगोंको सुख प्राप्त होताहै एवं बलवर्णकी वृद्धि होती है ॥ १६९ ॥ १७० ॥

धूपनाञ्जनयोगैश्चयान्तिजीर्णज्वराःशमम् । त्वङ्मात्रशेषोयेपाञ्च भवत्यागन्तुरन्वयः ॥ १७१ ॥ इतिक्रियाक्रमःसिद्धोज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः ॥ १७२ ॥

जिन जीर्णज्वरोंमें केवल त्वचामात्र शेष रहगई हो वह ज्वर औषध सिद्ध तैलादिकोंकी मालिशसे और धूपन तथा अंजन आदिकोंके योगसे शान्तिको प्राप्त होते हैं । तथा आगन्तुक ज्वर भी धूपन और अंजनोंसे शान्त हो सकतेहैं । इस प्रकार ज्वरनाशक सिद्ध क्रियाके क्रमका उपदेश किया गयाहै ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

ज्वरनाशक द्रव्य ।

येपान्त्वेपक्रमस्तानिद्रव्याण्यूर्ध्वमतःशृणु ॥ १७३ ॥

जिन द्रव्योंसे उपरोक्त चिकित्साक्रमका निर्देश कियाहै अर्थात् जिन द्रव्योंकाग चिकित्सा की जाती है अब उनको श्रवण करो ॥ १७३ ॥

ज्वरमें अन्न ।

रक्तशाल्यादयःशस्ताःपुराणाःपष्टिकैःसह ।

यवाग्वोदनलाजार्थेज्वरितानांज्वरापहाः ॥ १७४ ॥

ज्वरवालोंके लिये लाल शालि आदिक शुद्ध और पुराने चावल तथा साठी चावल, यवागू, भात और खीलोंके लिये हित तथा ज्वरनाशक है ॥ १७४ ॥

ज्वरनाशक खटाई ।

अम्लामिलापीतामेवदाडिमाम्लांसनागराम् ।

सृष्टविट्पैत्तिकोवाथशीतामधुयुतांपिवेत् ॥ १७५ ॥

खटाई खानेकी इच्छावाले ज्वररोगीको अनारकी खटाई सोठयुक्त कर देनी चाहिये । जिस रोगीको पित्तका ज्वर हो और मल पतला होकर निकलता हो उसको सृष्टे अन्गरके रसमे जल और शहद मिला पिलाना चाहिये ॥ १७५ ॥

ज्वरनाशक अनेक पेया ।

लाजपेयांसुखजरांपिप्पलीनागरैःश्रुताम् ।

पिवेज्ज्वरीज्वरहरांशुद्धानल्पाग्निरादितः ॥ १७६ ॥

थोडी अग्निवाले क्षुधायुक्त ज्वर रोगीको धानोंकी खीलोंकी पेया पीपल और सोंठका चूर्ण बुरकाकर पिलानेसे ज्वरको नष्ट करतीहै और सुप्तपूर्वक पच जातीहै ॥ १७६ ॥

पेयांवारक्तशालीनांपार्श्ववस्तिशिरोरुजि ।

श्वदंष्ट्राकण्टकारिभ्यांसिद्धांज्वरहरांपिवेत् ॥ १७७ ॥

जिस मनुष्यके शिरमें वस्तिमं अथवा पसलीमें पीडा हो उसको गोसूरु कटेलीक साथ सिद्ध की हुई लाल चावलोंकी पेया देनी चाहिये ॥ १७७ ॥

ज्वरातिसारीपेयांवापिवेत्साम्लांश्रुतांनरः ।

पृश्निपर्णावलाविल्वनागरोत्पलधान्यकैः ॥ १७८ ॥

ज्वरातिसारवाले रोगीको पृश्निपर्णी, खैरटी, बेलगिर, सोंठ, नीलोफर और धनियेसे सिद्ध की हुई पेया किंचित् अनारकी खटाईसे भावित की हुई पिलानी चाहिये ॥ १७८ ॥

श्रुतांविदारीगन्धाद्यैर्दीपनींस्वेदनींनरः ।

कासीश्वासीचहिक्कीचयवागुंज्वरितःपिवेत् ॥ १७९ ॥

खांसी, हिचकी, श्वास, तथा ज्वरेक उपद्रव युक्त ज्वरमें विदारी गंधादि गणमे सिद्ध की हुई दीपनकर्ता और स्वेदकारक पेया पीनेको देनी चाहिये ॥ १७९ ॥

विवद्धवर्चाःसयवाःपिप्पल्यामलकैःश्रुताम् ।

सर्पिण्मतींपिवेत्पेयांज्वरीद्रोषान्लोमनीम् ॥ १८० ॥

जिस ज्वरवाले मनुष्यका दस्त साफ न उतरता हो उसको पीपल और आँवलोंके साथ सिद्ध की हुई यवाँकी पेयाको घृतयुक्त कर पिलावे ॥ १८० ॥

कोष्ठेविवद्धेसरुजिपिवेत्पेयांश्रुतांज्वरी ।

मृद्धीकापिप्पलीमूलचव्यामलकनागरैः ॥ १८१ ॥

जिस ज्वरवालेका कोष्ठ बद्ध हो तथा पीडायुक्त हो उसको मुनक्का, पीपलामूल, चव्य, आँवले और साँठके साथ सिद्ध की हुई शाली चावलोंकी पेया पिलाना चाहिये ॥ १८१ ॥

पिवेत्सवित्वांपेयांवाज्वरेसपरिकर्त्तिके ।

बलावृक्षाम्लकोलाम्लकलशीधावनीश्रुताम् ॥ १८२ ॥

जिस मनुष्यको पेचिस अथवा पेटमें कतरनेकीसी पीडायुक्त ज्वर हो उसको बेलगिर, बला, तंतडीक, बेरका चूर्ण, पृथ्रिपर्णी और शालपर्णीसे सिद्ध की हुई पेया पिलावे ॥ १८२ ॥

अस्त्रेदनिद्रस्तृष्णार्त्तःपिवेत्पेयांसशर्कराम् ।

नागरामलकैःसिद्धांघृतभृष्टांज्वरापहाम् ॥ १८३ ॥

जिस ज्वरवाले रोगीको पसीना न आता हो और निद्रा नाश होगई हो तथा प्यास अधिक लगती हो उसको साँठ और आमलोंके योगसे सिद्ध की हुई पेयाको घृतमें छौंक तथा मिसरी मिलाकर पिलावे । यह पेया ज्वर और प्यास आदि नष्ट करतीहै ॥ १८३ ॥

ज्वरमें यूष ।

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान् ।

यूषार्थेयूषसात्म्यानांज्वरितानांप्रकल्पयेत् ॥ १८४ ॥

ज्वरवाले रोगीको जब भोजनकी इच्छा हो तो उसको मूंग, महर, चना, सुल्यी और मोठ आदि द्रव्योंमें जो जिसके लिये सात्म्य हो उसका यूष बनाकर देवे ॥ १८४ ॥

ज्वरनाशक शाक ।

पटोलपत्रंसफलंकुलकंपापचेलिकाम् ।

कर्कोटकंकटिल्लश्चविद्याच्छाकंज्वरेहितम् ॥ १८५ ॥

ज्वरमें पटोलपत्र, पंडोल, परवल, पाट, कर्कोटक, (कर्कोडा, कोट, कौला) कौला यह शाक ज्वरवाले रोगीको हितकारक है ॥ १८५ ॥

ज्वरमें मांस ।

लावान्कापिञ्जलानेणांश्चकोरानुपचक्रकान् । कुरंगान्कालपुच्छांश्च
हरिणान्पृषताञ्जलान् ॥ १८६ ॥ प्रदद्यान्मांसस्रात्म्यायज्वरिता-
यज्वरापहान् । ईषदम्लाननम्लान्वारसान्कालेविचक्षणः ॥१८७॥
कुक्कुटांश्चमयूरांश्चित्तिरिक्तौश्ववर्त्तकान् । गुरूष्णत्वान्नशंसन्तिज्व-
रेकेचिच्चिकित्सकाः ॥ १८८ ॥

मांसाहारी ज्वररोगियोंको लवा, कपिंजल, एण, चकोर, उपचक्र (चकवा),
कुरंग, कालपुच्छ, हरिण, पृषत् और खरगोश यह सब मांस खानेवाले मनुष्योंको
किंचित अम्लरस युक्तकरके देवे । कोई २ चिकित्सक, मुर्गा, मोर, तीतर,
बगुला, चक्रक इनको भारी और गर्म होनेके कारण ज्वरमे देना बहुत बुरा
मानते हैं ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

लंघनेनानिलवलंज्वरेयद्यधिकंभवेत् ।

भिषङ्मात्राविकल्पज्ञोदद्यात्तानपिकालवित् ॥ १८९ ॥

लंघन करनेसे यदि ज्वरमे वायुका बल अधिक होजाय तो उनको मात्रा, विकल्प
और कालके जाननेवाला वैद्य औषधियोंसे सिद्ध किया मांसरस पान करावे । अथवा
अन्य उचित पेयाका पान करावे ॥ १८९ ॥

ज्वरमें अम्य उपदेश ।

घर्मांश्चानुपानार्थतृपितायप्रदापयेत् ।

मद्यंवामद्यसात्म्यायथादोषंयथावलम् ॥ १९० ॥

ज्वररोगी आहारके अनन्तर यदि जल पीना चाहे तो उसको गर्म जठ पिलाना
चाहिये । एवं मद्य पीनेवालेको थोडासा विचारपूर्वक मद्य पिलावे ॥ १९० ॥

गुरूष्णस्निग्धमधुरकपायांश्चनवज्वरे । आहारान्दोषपक्षयर्थंप्राय-
शःपरिवर्जयेत् ॥१९१॥ अनुपानक्रमःसिद्धोज्वरेयःसम्प्रकाशितः ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यन्तेकपायाज्वरनाशनाः ॥ १९२ ॥

नवीन ज्वरमें-भारी, चिकने, मधुर, कपाय आहारोंको दोषके परिपाक होनेके
लिये प्रायः त्यागदेना चाहिये अर्थात् नवज्वरमें इन रसोंवाले आहारका भोजन नहीं
करना चाहिये इसप्रकार ज्वरनाशक सिद्ध अनुपान क्रमका वर्णन कियागयाहै ।
अब ज्वरनाशक दवाओंका वर्णन करतेहैं ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

ज्वरनाशक अनेक काथ ।

पाक्यंशीतकपायंवासुस्तर्पटकंपिवेत् । सनागरंपर्पटकंपिवेद्वासदु-
रालभम् ॥ १९३ ॥ किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् । पा-
ठासुशीरंसोदीच्यंपिवेद्वाज्वरशान्तये ॥ १९४ ॥ ज्वरघ्नादीपनाश्रै-
तेकपायादोषपाचनाः । तृष्णारुचिप्रशमनामुखवैरस्यनाशनाः १९५
पित्तपापडा और नागरमोथेके काथको अथवा सोंठ, पित्तपापडा और यवासाके
काथको पकाकर या शीतकपाय करके पीवे । अथवा चिरायता, नागरमोथा,
गिलोय, सोंठ, पाठा, खस और मुग्धवालाका काथ बनाकर पीवे । यह ३ काथ
ज्वरको नाश करनेवाले तथा दीपन, दोषोंको पाचन करनेवाले, तृपानाशक, अरुचि-
नाशक एवं मुखकी विगसताको दूर करनेवालेहैं ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

विषमज्वरनाशक पांच काथ ।

कलिंगकाःपटोलस्यपत्रंकटुकरोहिणी । पटोलः शारिवां सुस्तं
पाठा कटुकरोहिणी । निम्बःपटोलस्त्रिफलासृद्धीकामुस्तवत्सकाः॥
॥ १९६ ॥ किराततिक्तममृताचन्दनंविश्वभेषजम् । गुडूच्यामल
कंमुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ १९७ ॥ कपायाःशमयन्त्याशुपञ्च-
पञ्चविधाञ्ज्वरान् । सन्ततंसततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥१९८॥

इन्द्रयव, पटोलपत्र और कुटकीका क्वाथ संततज्वरको नष्ट करताहै । पटोलपत्र,
शारिवा, नागरमोथा, पाठ और कुटकीका क्वाथ, सततज्वरको नष्ट करता है ।
नीमका छिलका, पटोलपत्र, हरड, बहेडे, आमले, सुनका, नागरमोथा और इन्द्रयव
इनका क्वाथ अन्येद्यु अर्थात् इकतरा ज्वरको नष्ट करताहै । चिरायता, गिलोय,
लाल चंदन और सोंठका क्वाथ तृतीयक ज्वरको नष्ट करताहै । गिलोय, आमले,
नागरमोथा इनका क्वाथ चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करताहै इसप्रकार यह आवे २
श्लोकमें कहे ५ क्वाथ पांच प्रकारके विषमज्वरको शीघ्र शान्त करनेवाले कहे
हैं ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

कसकादि काथ ।

वत्सकारग्वधंपाठांपडूग्रन्थांकटुरोहिणीम् । सूर्वासातिविषानिस्वं
पटोलंधन्वयासकम् ॥ १९९ ॥ वचामुस्तमुशीराणिमधुकंत्रिफलां
चलाम् । पाक्यंशीतकपायंवापिवेज्ज्वरहरंनरः ॥ २०० ॥

इन्द्रयव, अमलतास, पाठा, पीपलामूल, कुटकी, मूर्वा, अतीस, नीम, पटोलपत्र, जवासा, वच, नागरमोथा, खस, मुलहठी, त्रिफला, बला इनका पकाया हुआ क्वाथ अथवा शीतल क्वाथ यदि मनुष्य पीवे तो ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ १९९ ॥ २०० ॥

शीतकषाय ।

सधूकमुस्तमृद्धीकाकाशमर्याणिपरूपकम् । त्रायमाणामुशीराणि
त्रिफलांकटुरोहिणीम् ॥ २०१ ॥ पीत्वानिशिस्थितंजन्तुर्ज्वराच्छी-
घ्रंविमुच्यते ॥ २०२ ॥

मुलहठी, नागरमोथा, मुनक्का, कुंभेर, फालसा, त्रायमाण, खस, त्रिफला और कुटकीका शीतकषाय (रातको भिगोकर प्रातःकाल मल छानकर) पीनेसे मनुष्योंका ज्वर शीघ्र दूर होजाताहै ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

सन्निपातज्वरनाशक गण ।

वृहत्सौवर्षकंमुस्तंदेवदारुमहौषधम् । कोलवल्लीचयोगोऽयंसन्निपा-
तज्वरापहः । जाल्यामलकमुस्तानितद्वद्धन्वयवासकम् ॥ २०३ ॥

दोनों कटेली, इन्द्रयव, नागरमोथा, देवदारु, सोंठ और चव्यका क्वाथ वनाकर पीनेसे सन्निपातज्वर दूर होताहै । तथा जायफल, आमले और नागरमोथेका क्वाथ पीनेसे सन्निपातज्वरको नष्ट करताहै ॥ २०३ ॥

कफ पित्तज्वर नाशक ।

विवद्धदोषोज्वरितःकषायंसगुडंपिवेत् । त्रिफलांत्रायमाणामृद्धी-
कांकटुरोहिणीम् ॥ २०४ ॥ पित्तश्लेष्महरस्त्रेपकषायोद्धानुलो-
मिकः । त्रिवृताशर्करायुक्तःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ २०५ ॥

जिस ज्वरमें दोष बंधाहुआ हो और मल न निकलता हो उसमें त्रिफला, त्रायमाण, मुनक्का और कुटकीका क्वाथ गुड मिला पिलावे । यह क्वाथ पित्त और कफके ज्वरको नष्ट करताहै और मलको अनुलोमनकर निकालता है । इसीप्रकार निशोथका क्वाथ खांड मिलाकर पीनेसे पित्त और कफके ज्वरको नष्ट करताहै ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

शटचादिवर्ग ।

शटीपुष्करमूलश्चाव्याघ्रीशृङ्गीदुरालभा । गुडूचीनागरंपाठाकिरातं
कटुरोहिणी ॥ २०६ ॥ एषशब्दादिकोवर्गःसन्निपातज्वरापहः ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासतन्द्रासुशस्यते ॥ २०७ ॥

कचूर, पोहरकमूल, कटेली, काकडासिंगी, जवासा, गिलोय, सांठ, पाढ, चिरायता, कुटकी, यह शटी आदि वर्ग सन्निपातज्वरको नष्ट करताहै तथा खांसी हृदय और पसुलीकी पीडा, श्वास, और तंद्राको दूर करताहै ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

बृहत्यादिगण ।

बृहत्पुष्करं भार्गीशटीशृंगीदुरालभा । वत्सकस्य च बीजानि पेटो-
लंकटुरोहिणी ॥ २०८ ॥ बृहत्यादिर्गणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः ।

कासादिपुचसर्वेषु दद्यात्सोपद्रवेषु च ॥ २०९ ॥

दोनों कटेली, पोहरकमूल, भार्गी, कचूर, काकडासिंगी, जवासा, इन्द्रयव, पटोल पत्र और कुटकी यह बृहत्यादिगण सन्निपात ज्वरको नष्ट करताहै तथा सब प्रकारके खांसी आदि उपद्रवोंको दूर करताहै ॥ २०८ ॥ २०९ ॥

कपायाश्च यवाग्बश्च पिपासाज्वरनाशनाः ।

निर्दिष्टाभेषजाध्यायेभिपक्तानपियोजयेत् ॥ २१० ॥

प्यास और ज्वरनाशक, काढे और यवागू जो सूत्रस्थानमें कहेहैं ज्वरके नाश करनेके लिये बुद्धिमान् वैद्य उनका भी उपयोग करे ॥ २१० ॥

ज्वरनाशक अन्यक्रम ।

ज्वराः कपायैर्वमनैर्लघ्वनैर्लघुभोजनैः । रूक्षस्य येन शाम्यन्ति सर्पि-
स्तेषां भिपग्जितम् ॥ २११ ॥ रूक्षं तेजो ज्वरकरं तेजसा रूक्षितस्य
च । यः स्यादनुबलो धातुः स्नेहसाध्यः स चानिलः ॥ २१२ ॥

जिन रूक्ष मनुष्योंका ज्वर ववाय, वमन, लघ्वन और हल्के आहार द्वारा शान्त न हो वैद्यजन उस ज्वरको औषधियोंसे सिद्ध किये घृतद्वारा शान्त करें क्योंकि ज्वरको करनेवाली गर्मी आप्रेय होनेके कारण अपने तेजद्वारा शरीरको रूक्ष बना देती है उसके अनुगत जो रूक्षकर्ता वायु है वह स्नेहनद्वारा ही साध्य होती है ॥ २११ ॥ २१२ ॥

ज्वरनाशक अनेक सिद्धघृतोंका वर्णन ।

कपायाः सर्वेष्वैते सर्पिपासहयोजिताः ।

प्रयोज्या ज्वरशान्त्यर्थं मन्नि सन्धुक्षणाः शिवाः ॥ २१३ ॥

इन नीचे लिखे हुए औषधियोंके ववायोंमें या कल्कोंमें डालकर सिद्ध किये घृत ज्वरोंकी शान्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये । यह घृत-अग्निवर्द्धक और कल्पाणशायक होतेहैं ॥ २१३ ॥

पिप्पल्यादिघृत ।

पिप्पल्यश्चन्दनंमुस्तमुशीरंकटुरोहिणी।कलिङ्गमस्त्वामलकीशारि-
वातिविपास्थिरा ॥ २१४ ॥ द्राक्षामलकविल्वानित्रायमाणानि-
दिग्धिका । सिद्धमेतैर्घृतंसद्योजीर्णज्वरमपोहति ॥ २१५ ॥ क्ष-
यंकासंशिरःशूलपार्श्वशूलंहलीमकम् । अंसाभितापमग्निश्चविषमं
सन्नियच्छति ॥ २१६ ॥

पीपल, चन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी, इन्द्रयव, भूमिआमलकी, शारिवा,
अतीश, शालिपर्णी, मुनक्का, आँवला, वेलगिर, त्रायमाण, और कटेलीसे सिद्धकिया
घृत शीघ्र जीर्णज्वरको नष्ट करताहै और क्षय, खांसी, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल, हली-
मक, दोनों अंशोंका तपना, विषमग्नि इन सबको शान्त करताहै ॥ २१४-२१६ ॥

वासादिघृत ।

वासांगुडूर्वात्रिफलांत्रायमाणांयवासकम् । पक्त्वातेनकपायेणपय-
साद्विगुणेनच ॥ २१७ ॥ पिप्पलीमुस्तमृद्धीकाचन्दनोत्पलनागरैः ।
कल्कीकृतैश्चविषचेद्धृतंजीर्णज्वरापहम् ॥ २१८ ॥

अहृसा (वांसा) गिलोय, त्रिफला, त्रायमाण, जवासा, इनके क्वाथमें दोगुना
दूध मिला उस दूध और क्वाथको घृतमें डालदे और उसी घृतमें पीपल, मुनक्का,
नागरमोथा, चंदन, कमल, सोंठ इन सबका कल्क डालकर पकावे । घृतमात्र शेष
रहनेपर छानकर किसी पात्रमें रख देवे । इस घृतका प्रयोग जीर्णज्वरको नष्टकर
डालताहै ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

बलादिघृत ।

बलांश्चदंष्ट्रांबृहतीकलसींधावनींस्थिराम् । निम्बंपर्पटकंमुस्तंत्राय-
माणांदुरालभाम् ॥ २१९ ॥ कृत्वाकपायंपेप्यार्थेदद्यात्तामलकींश-
टीम् । द्राक्षांपुष्करमूलश्चमेदामामलकानिच ॥ २२० ॥ घृतंपय-
श्चतत्सिद्धंसर्पिज्वरहरंपरम् । शयकासशिरःशूलपार्श्वशूलांसताप-
नुत् ॥ २२१ ॥

बला (खैंटी) गोखरू वडी, कटेली, घृष्टपर्णी, छोटी कटेली, शालपर्णी, नीमका
छिलका, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण, जवासा इन सब औषधियोंका क्वाथ
पकावे और भूमिआमला, कदूर, मुनका, पोहकरशूल, मेदा, और आँवलोंको पानी

मिलाकर पीसे फिर यह पिसाहुआ कल्क और उपरोक्त औषधियोंका काथ और दूध यह सब मिलाकर घृतमें डाल पकावे सिद्ध होनेपर घृतका सेवन करे । यह घृत जीर्णज्वरको अवश्य नष्ट करताहै । तथा राजयक्ष्मा, खांसी, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल और दोनो अंशोंकी तपनको दूर करताहै ॥ २१९ ॥ २२० ॥ २२१ ॥

ज्वरनाशक अन्यवमनादि निर्देश ।

ज्वरिभ्योवहुदोषेभ्यऊर्ध्वश्चाधश्चबुद्धिमान् ।

दद्यात्संशोधनकालेकल्पेयदुपदेक्ष्यते ॥ २२२ ॥

बहुतदूषोपयुक्त ज्वरवाले मनुष्यको बुद्धिमान् वैद्य संशोधनका समय विचार उचित कालमें क०स्थानोक्त वमन और विरेचन द्वारा ऊपर, नीचेका शोधन करावे ॥ २२२ ॥

वमनद्रव्य ।

मदनंपिप्पलीभिर्वाकलिङ्गैर्मधुकेनवा ।

युक्तमुष्णास्त्रुनापेयंवमनंज्वरशान्तये ॥ २२३ ॥

पीपल अथवा इन्द्रयव या मुलहठीके साथ मैनफलके चूर्णको गर्मजलके अनुपानसे पीवे । इससे वमन होकर ज्वर शान्त होजाताहै ॥ २२३ ॥

क्षौद्रास्त्रुनारसेनेक्षोरथ वा लवणाम्बुना ।

ज्वरेप्रच्छर्दनंशस्तंमधैर्वार्तर्पणेनवा ॥ २२४ ॥

शहत और जल मिला अथवा ईखके रससे या नमक और जलसे अथवा मयको पीकर या अन्य तर्पण द्रव्योंको पीकर विधिवत् छर्दकर देना ज्वरको नष्ट करताहै ॥ २२४ ॥

मृद्धीकामलकानांवारसंप्रच्छर्दनंपिवेत् ।

रसमामलकानांवाघृतभृष्टंज्वरापहम् ॥ २२५ ॥

मुनका और आँवलोंका रस पीकर छर्द करे अथवा आँवलोंके रसको घीमें छींककर उसमें नमक और गर्मजल मिला पीवे और छर्दकर डाले यह भी ज्वरके नष्ट करनेवाला छर्दन है ॥ २२५ ॥

विरेचनद्रव्य ।

लिह्याद्वात्रैवृतंचूर्णसंयुक्तंमधुसर्पिषा ।

पिवेद्वाक्षौद्रमासाद्यसघृतंत्रिफलारसम् ॥ २२६ ॥

निशोयके चूर्णको शहत और घृतमें मिला चाटनेसे अथवा घी और शहत मिलाकर त्रिफलेका रस पीनेसे विरेचन होकर ज्वर शान्त होताहै ॥ २२६ ॥

आरग्वधंवापयसामृद्धीकानारसेनवा ।

त्रिवृतांत्रायमाणांवापयसाज्वरितःपिवेत् ॥ २२७ ॥

अमलतासको दूधमें मिलाकर अथवा मुनक्काके रसमें घोलकर पीवे या निशोयका चूर्ण मुनक्काके रसमें घोलकर पीवे अथवा त्रायमाणको दूधमें मिलाकर पीवे तो इनसे विरेचन होकर ज्वर शान्त होजाताहै ॥ २२७ ॥

ज्वराद्विमुच्यतेपीत्वामृद्धीकाभिःसहाभयाम् । पयोऽनुपानमुष्णं
वापीत्वाद्राक्षारसंनरः ॥ २२८ ॥ कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पाद्वर्ध
शूलाच्चिरज्वरात् ॥ २२९ ॥

इसीप्रकार मुनक्काके रसके साथ हरडका चूर्ण खावे अथवा द्राक्षाके रसको पीकर ऊपरसे गर्म दूध पीवे तो इन उपरोक्त संपूर्ण विरेचन योगोंसे सांसी, श्वास, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल और ज्वर यह सब नष्ट होजातेहैं ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

ज्वरानाशक दूध ।

मुच्यतेज्वरितःपीत्वापञ्चमूलशृतंपयः । एरण्डमूलोत्कथितंज्व-

रात्सपरिकर्त्तिकात् । पयोविमुच्यतेपीत्वातद्वद्विल्वशलाटुभिः २३० ॥

पंचमूलसे सिद्धकिया दूध पीनेसे मनुष्य ज्वरसे छूटजाता है । अथवा एरण्डकी जड़के कायसे सिद्धकिया दूध या कच्चे बेलकी गिर मिलाकर सिद्धकिया दूध पारिक-
र्त्तिका (कतरनी पेचिश) युक्त ज्वरको दूर करताहै ॥ २३० ॥

त्रिकण्टकवलाढ्याग्नीगुडनागरंसाधितम् ।

वर्द्धोमूत्रविबन्धघ्नंशोफज्वहरंपयः ॥ २३१ ॥

गोरेखरू, बला, कटली, गुड और सोंठसे सिद्धकियाहुआ दूध मलमूत्रके विबन्ध और सूजनवाले ज्वरको शान्त करताहै ॥ २३१ ॥

सनागरंसमृद्धीकंसघृतक्षौद्रशर्करम् ।

शृतंपयःसखर्जूरंपिपासाज्वरनाशनम् ॥ २३२ ॥

सोंठ, मुनक्का, घृत, सोंठ, शर्करा और छोशरांसे सिद्धकिया दूध पुराने ज्वर और प्यासको शान्त करताहै । परन्तु इस दूधको शहतके सिवाय अन्य द्रव्य मिलाकर खीटालेना चाहिये । फिर छानकर पीने योग्य ठण्डा होजानेपर शहत मिलाकर पीवे ॥ २३२ ॥

चतुर्गुणेनाम्भसावाश्रुतंज्वरहरंपयः ।

धारोष्णंवापयःसद्योवातपित्तज्वरंजयेत् ॥ २३३ ॥

चारगुणे जलसे युक्तकर दूधको पकावे जब पानी जलकर दूध रहे उसको पीनेसे ज्वर शान्त होताहै । धारोष्ण दूधके पीनेसे भी पुराना वातपित्तज्वर शीघ्र शान्त होजाताहै ॥ २३३ ॥

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयःप्रशमनं परम् ।

पेयंतदुष्णंशीतंवायथास्वभेषजैःशृतम् ॥ २३४ ॥

सब प्रकारके जीर्णज्वरको दूधका पीना परम शान्तिकारक है । वह दूध गर्म अथवा ठण्डा या दोपानुसार औषधियोंसे मिद्धकिया हुआ उचित रीतिसे सेवन करना चाहिये ॥ २३४ ॥

ज्वरनाशकअनेक वस्तिकर्मका निर्देशः ।

प्रयोजयेज्ज्वरहरान्निरूहान्सानुवासनान् ।

पक्काशयगतेदोषैवक्ष्यन्तेयैचसिद्धिपु ॥ २३५ ॥

जब देखे कि दोष पक्काशयमें पहुंचे हुए हैं तो उनको ज्वरनाशक निरूहण और अनुवासन वस्तिका प्रयोग करावे । वस्तिकर्म करनेकी विधि आगे सिद्धिस्थानमें कही जावेगी ॥ २३५ ॥

वस्तिकर्मके द्रव्य ।

पटोलारिष्टपत्राणिसोशीरश्चतुरंगुलः । ह्रीविररौहिणांतिकाश्वदंप्रा-

सदनानिच ॥ २३६ ॥ स्थिरावलाचतत्सर्वंपयस्यर्द्धोदकेशृतम् ।

क्षीरावशेषनिर्गृहंसंयुक्तंमधुसर्पिषा ॥ २३७ ॥ कल्कैर्मदनमुस्तानां

पिप्पल्यामधुकस्यच । वत्सकस्यचसंयुक्तं वस्तिदद्याज्ज्वरापहम् ॥

॥ २३८ ॥ शुद्धे मार्गे हृते दोषे विप्रसन्नेषु धातुषु गतांगशूलोलघ्व-

गःसद्योभवतिविज्वरः ॥ २३९ ॥

पटोलपत्र, नीम अथवा रीठके पत्र, रसत, अमलतास, नेत्रवाला, लालचंदन, कुटकी, गोखर, भैरवफल, शालपर्णी, खरैटी इन सबको आधा दूध भावा जल मिलाकर पकावे । जब पानी जलकर दूधमात्र शेष रहजाय उसमें शहत और घृत मिलादेवे । और भैरवफल, नागरमोया, पीपल, मुलद्दी, इन्द्रयव इन सबका कल्क बनाकर उसी दूधमें घोलदेवे । फिर इस दूध द्वारा वस्तिकर्म (अधोमार्गमें पिचकागी)

करे । इसके करनेसे मलभाग शुद्ध होकर दोष निकल जाते हैं और संपूर्ण धातुयें प्रसन्न होती हैं । संपूर्ण अंगोंकी पीडा आदि दूर होकर शरीरमें हलकापन आजाता है और ज्वर नष्ट होजाता है ॥ २३६-२३९ ॥

अन्ययोग ।

आरग्वधमुशीराणिमदनस्यफलानिच । चतस्रःपर्णिनीश्वेवनिर्यू-
हमुपकल्पयेत् ॥ २४० ॥ प्रियंगुर्मदनमुस्तंशताह्वामधुयष्टिका ।

कल्कःसर्पिर्गुडःक्षौद्रंज्वरघ्नोवस्तिरुत्तमः ॥ २४१ ॥

अमलतास, खस, मेनफल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मापपर्णी, मुग्धपर्णी इनका क्वाथ बनाकर अथवा दूध और जल मिलाकर उपरोक्त औषधियोंका क्वाथ बनावे । इस क्वाथमें प्रियंगु, मेनफल, नागरमोथा, सौंफ, गुलाबके फूल और मुलहठीका कल्क बनाकर उपरोक्त क्वाथमें घोलदेवे और उसमें घी, गुड, शहत भी मिलावे । फिर इससे वस्तिकर्म करे । यह वस्ती ज्वर नाश करनेको परम उत्तम कही है २४०॥२४१

अन्यवस्ति ।

गुडुर्चीत्रायमाणश्चन्दनमधुकंवृषम् । स्थिरां वलां पृश्निपर्णीमदन-
श्चेति साधयेत् ॥ २४२ ॥ रसंजांगलमांसस्यरसेन सहितं भिषक् ।

पिप्पलीफलमुस्तानांकल्केन मधुकस्य च ॥ २४३ ॥ ईपत्सलवणं यु-
क्त्या निरूहं मधुसर्पिणा । ज्वरप्रशमनं दद्याद्द्वयस्वेदरुचिप्रदम् २४४ ॥

गिलोय, त्रापमाण, चंदन, मुलहठी, चांमा, शालपर्णी, वला, पृष्ठपर्णी, मेनफल इनमे सिद्धिक्रिये दूध अथवा क्वाथको लेकर उसमें जांगलजीवोंका मांसरस मिलाकर और उसीमें पीपल, मेनफल, नागरमोथा और मुलहठीका कल्क बना घोलदेवे । फिर उसको घी, शहत, तथा किंचित् संधानमक मिला निरूहण वस्ति कर्म करे । यह वस्ति ज्वरको नष्ट करनेवाली, वलको बढ़ानेवाली, स्वेदन और रुचिका-
रक है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ २४४ ॥

अनुवासनवरिनयोग ।

जीवन्तीमधुकंमेदांपिप्पलींमरिचं वचाम् । ऋद्धिरालां वलां विड्वं
शतपुष्पांशतावरीम् ॥ २४५ ॥ पिष्ट्वाक्षीरंजलं सर्पिस्तैलञ्च विपचे-
द्भिषक् । आनुवासनिकं स्नेहमेतद्विद्याज्ज्वरापहम् ॥ २४६ ॥

१ मधुकमधुगणिक । ६० पा० । २ सब प्रकारकी वस्तिवर्णकी विधि सिद्धिग्यानेमें वर्णन की है उस देखो ।

जीवन्ती, मुलहठी, मेदा, पीपल, कालीमिर्च, वच, ऋद्धि, रासना, बला, सोंठ, सौंफ और शतावरका वारीक चूर्णकर उसमें दूध, जल घृत और तेल मिलाकर पकावे । फिर सिद्ध होनेपर इस स्नेहसे अनुवासनं वस्ति करे । यह ज्वरको शान्त करनेवाली है ॥ २४५ ॥ २४६ ॥

अन्य अनुवासन ।

पटोलपिचुमंदाभ्यांगुडूच्यामधुकेनच ।

मदनैश्चशृतः स्नेहोज्वरघ्नमनुवासनम् ॥ २४७ ॥

पटोल नीमकी छाल, गिलोय, मुलहठी, भैरफल इनके क्वाथसे, अथवा कल्कसे सिद्धकिये हुए घृतद्वारा कियाहुआ अनुवासन कर्म ज्वरको शान्त करताहै ॥ २४७ ॥

चन्दनागुरुकाश्मर्य्यपटोलमधुकोत्पलैः ।

सिद्धःस्नेहोज्वरहरःस्नेहवस्तिःप्रयुज्यते ॥ २४८ ॥

चंदन, अगर, कंभारी, पटोल, मुलहठी और कमलसे सिद्धकिया घृत अनुवासन द्वारा स्नेहन करनेसे ज्वरको शान्त करताहै ॥ २४८ ॥

अन्य उपदेश ।

यदुक्तंभेषजाध्यायेविमानेरोगभेषजे ।

शिरोविरेचनंकुट्य्याद्युक्तिज्ञस्तज्ज्वरापहम् ॥ २४९ ॥

सूत्रस्थानके भेषजाध्यायमें और विमान स्थानके रोगभिषिग्जनीय अध्यायमें जो शिरोविरेचनीय कर्म कहा गया है उसका युक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे पुराना ज्वर नष्ट होताहै ॥ २४९ ॥

यच्चनावनिकंतैलंयाश्चप्राग्धूमवर्त्तयः ।

मात्राशिलीयेनिर्दिष्टाःप्रयोज्यास्ताज्वरेष्वपि ॥ २५० ॥

सूत्रस्थानके मात्राशिलीय अध्यायमें जो नस्यके लिये अणुतेल आदि तथा घूमवर्तियोंका कथन किया गयाहै उनका प्रयोग करना भी पुराने ज्वरोंको नष्ट करताहै ॥ २५० ॥

अभ्यंगंश्चप्रदेहांश्चपरिपेकांश्चकारयेत् ।

यथाभिलापंशीतोष्णंविभज्यद्विविधंज्वरम् ॥ २५१ ॥

और इसी प्रकार अभ्यंग (मालिश) प्रदेह (उबटन या लेप), परिपेक (सिंचन करना) भी युक्तिपूर्वक शीतल अथवा उष्ण या जिस प्रकार जैसे ज्वरमें उचित दो विचारपूर्वक प्रयोग करे । इनसे भी ज्वर शान्त होजातहै ॥ २५१ ॥

सहस्रधौतंसर्पिर्वातैलवाचन्दनादिकम् ।

दाहज्वरप्रशमनंदद्यादभ्यञ्जनंभिषक् ॥ २५२ ॥

सहस्रवार घोषाहुआ गोघृतका लेप अथवा चंदनादि तैलकी मालिश करना दाहयुक्त ज्वरको शान्त करताहै ॥ २५२ ॥

चंदनादि तैल ।

अथचन्दनाद्यंतैलमुपदेक्ष्यामः । चन्दनशैलेयभद्राश्रयकालानु-
सार्यकालीयकपद्मापन्नकोशीरशारिवामधुकप्रपौण्डरीकनागपु-
ष्पोदीच्यचव्यपद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्र-
विसमृणालशालूकशैवालकशेरुकानन्ताकुशकाशेक्षुदर्भशरनलशा-
लिमूलजम्बुवेत्रवेतसवाणीरगुन्द्राककुभाशनाश्वकर्णस्यन्दनवात-
पोथशालतालधवातिनिशखदिरकदरकदम्बकाश्मर्यफलसर्जम्भक्ष-
वटकपीतनोदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधघातकीदूर्वोत्कण्टकशृङ्गाटकम-
ञ्जिष्ठाज्योतिष्मतीपुष्करवीजक्रौञ्चादनवदरीकोविदारकदलीसंव-
र्त्तकारिष्टशतपर्वाशीतकुम्भिकाशतावरीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्राव-
णीरोहिणीशीतपाक्योदनपाकीकालावलापयस्याविदारीजीवकर्प-
भमेदामहामेदामधुरऋष्यप्रोक्तातृणशून्यमोचरसारूटरूपकवकु-
लकुटजपटोलनिम्बगाल्मलीनारिकेलखर्जूरमृद्धीकापियालप्रियं-
गुधन्वनात्मगुप्तामधुकानामन्येपाञ्चशीतवीर्य्याणांयथालाभमौष-
धानांकपायंकारयेत् । तेनकपायेणद्विगुणितपयसातेपामेवचक-
ल्केनकपायार्द्धमात्रंमृद्वाग्निनासाधयेत्तैलम् । एतत्तैलंसद्योदाहज्व-
रमपनयत्येतैरेवचौपधैःसुश्लक्ष्णपिष्टैःसुशीतैःप्रदेहंकारयेदेतैरेवच-
शृतशीतंसलिलमवगाहपरिपेकार्थंप्रयुञ्जीत ॥ २५३ ॥

लालचदन, छाखधीला, सफेद चंदन, अगार, पीतचंदन, कुमुम्भा, पन्नारा, रस, शागिवा, मुलद्दही, प्रपौण्डरीक (पण्ड्याग), नागकेशर, मुग्धवाला, चव्य, लालकमल, नीलकमल, सहस्रदल, कमल, कुमोदनी, सौगन्धिक, सफेद कमल, शतदल कमल, विग, कमलकी डण्डी, कमलका कंद, जलके ऊपरकी कापी. (तिवाल), कसेरू,

कृष्णशारिवा, कुशा, कांक्ष, ईखकी जड़, दर्भ, सर्कण्डकी जड़, नरसलकी जड़, शालिधान्योंकी जड़, जामुन, वेतकी कोंपल, वेतसमजनु, व्यंम, गुन्द्रपटेर, कोह, विजयसार, अश्वकर्ण, (छोटी जातिका शालवृक्ष) स्पंदन, पलाश, बडा शाल, ताडवृक्ष, धन, तिनिवा, रैर, कदर, कदंब, काश्मरीफल, मैनफल, सर्ज, (रौल) पाखर (पिलरसन), अम्बाडा, गूलर, पीपल, बड, धवेके फूल, दून, काण्टदूष, सिंघाडे, मंजीठ, मालकांगुनी, पुष्करवीज, कमलगट्टे, वेर, लाल कचनार, केलामंद, नागमोथा, रीठावृक्षकी छाल, शतपर्वा (बरू) शीत कुम्बिका (पानीमें होनेवाला नारीचाम) शतावर, अर्णी, छोटी और बडी गोरखमुण्डी, कुटकी, कासोली, कंधी, कठसरैया, कुडा, बला, क्षीरकासोली, विदारीकंद, जीवक, रूपभर, मेदा, महामेदा, लाल सोहांजना, अतिबला, मल्लिका, मोंचरस, अट्टसा, मौलमर्ग, कुडा, पटोलपत्र, नीमकी छाल, सेंमरके फूल, नारियल, सजूर, दास, चिर्गंजी, फल भियंगु, धन्वनवृक्ष, कौंचके बीज, महुएकी छाल इन सबको लेकर तथा अन्य भी इस प्रकारकी शीतवीर्य औषधियों जो मिलसकें उन सब औषधियोंको दो दो तोला लेकर सोलहगुने जलमें पकावे । चतुर्थ भाग शेष रहनेपर छान लेये । इस क्वाथसे आवा धुली, तिलका तेल और दुग्धना दूध तथा तैलसे चौथाभाग इन औषधियोंका कल्क मिश्रकर मंद-मंद आचसे पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उताकर छान लेये । इस तैलकी मालिश करनेसे दाह और ज्वर दोनों निवृत्त होतेहैं । और इन्ही ऊपर कही औषधियोंके सुन्दर पीमकर शीतल लेप करनेमें भी दाह और ज्वर शान्त होतेहैं । एवं इन सब औषधियोंके क्वाथको शीतल करके उसमें छान करनेमें भी दाह और ज्वर शान्त होतेहैं । इति चंद्रनादितैल ॥ २५३ ॥

दाहनाशक अन्य योग ।

सध्वारनालक्षीरदधिघृतसलिलमेकाग्रगाहाश्वसयोदाहंजरसपन-
यन्तिशीतस्पर्शत्वादिति ॥ २५४ ॥

शहत, सांजी, दूध, दही, घृत और जड़ यह भी शीतल रोगों होनेके योग्य ।
अग्नादन आदि रोगोंके दाहज्वरको शीघ्र शान्त करने, ॥ २५४ ॥

अग्निपिनसे बड़ेदुःखे दाहज्वरके उपचार ।

भवन्तिचात्र । पौष्करपुमुशीनेपुपश्रोत्पलदलेपुच । कणाराणाश्च
पत्रेषुक्षौमेपुत्रिमलेपुच ॥ २५५ ॥ चन्दनोदकशीनेपुमुप्यादाहा-
दितःसुगम । हिमाम्बुसिक्तेमदनेशीनेधारागृहेऽपि ॥ २५६ ॥
हेमशंखप्रशालानामर्णानामौजिकम्बुच । चन्दन

स्थानांमं-

स्पर्शानुरसान्स्पृशेत् ॥ २५७ ॥ स्वग्भिर्नीलोत्पलैःपद्मैर्व्यजनैर्वि-
विधैरपि । शीतवातापहैर्व्यज्येच्चन्दनोदकवर्षिभिः ॥ २५८ ॥ न-
द्यस्तडागाःपद्मिन्योहृदाश्चविमलोदकाः । अवगाहेहितादाहृ-
ष्णाग्लानिज्वरापहाः ॥ २५९ ॥

दाहज्वरमें शीतल जलसे छिडकेहुए पुष्कर, उत्पल, आदि कमलोंके पत्रोंपर अथवा इनके फूलोंकी पंखडियोंपर वा कद्दारके जलसे छिडकेहुए पत्रोंपर अथवा जिस स्थानमें शीतल जलकी धारा, फुहारे आदि चलतेहैं ऐसे शीतल स्थानमें उपरोक्त कमलोंके शीतल क्रिये पत्रादि बिछाकर उनके ऊपर सोना, नरम रेशमी वस्त्रोंपर सोना, शीतल चंदन, जल आदिकी शरीरपर छिडकना, सुवर्ण, शंख, मृगा, मणि, मोती आदिकोंकी माला, चंदन और शीतल जलसे शीतलकर शरीरपर धारण करना अथवा अन्य शीतल पदार्थोंका स्पर्श करना, कमल, नीलकमल आदिक फूलोंकी माला धारण करना, अथवा कमलादिकोंको शीतल जलमें भिंगो बदनपर छींटा देना । शीतल पंखोंपर चंदन, जल, छिडककर शीतल वायु करना । निर्मल जलसे भरीहुई नदी, तालाव और जिनमें कमल, कुशुद खिलरहे हैं इसप्रकारके तालाव आदिकोंमें अवगाहन करना । पित्तके दाह, प्यास, ग्लानि और ज्वरको शान्त करतेहैं ॥ २५९-२५९ ॥

प्रियाःप्रदक्षिणाचाराःप्रमदाश्चन्दनोक्षिताः । सान्त्वयेयुःपरैःकामै-
र्मणिमौक्तिकभूषणाः ॥ २६० ॥ शीतानिचान्नपानानिशीतान्युप-
वनानिच । वायवश्चन्द्रपादाश्चशीतदाहज्वरापहाः ॥ २६१ ॥

इसीप्रकार चंदनसे और मणि, मुक्तादि आभूषणोंसे शोभायमान, प्यारी, चतुर, सुन्दर, नवयौवनाका आलिंगन करना भी दाहज्वरको शान्त करताहै । तथा शीतल अन्नपान, शीतल बगीचे, शीतल चन्द्रमाकी किरणें यह सब दाहज्वरके शान्त करने-
वाले हैं । इस प्रकार अत्यंत पित्तके बढनेसे उत्पन्न हुए दाहज्वरकी शान्तिका उपचार कथन किया गया ॥ २६० ॥ २६१ ॥

अथोष्णाभिप्रायिणांज्वरितानामभ्यङ्गादीनुपक्रमानुपदेक्ष्यामः ।

अब जिन ज्वरोंमें उष्ण उपचार करना चाहिये उनके अभ्यङ्गादि क्रमोंको कहतेहैं ।
अगरादितैल ।

अगुरुकुष्ठतगरपत्रनलदशैलेयकध्यामकहरेणुकास्थौणेयकक्षेमिकै-
लावरावराङ्गदपूरतमालपत्रभूतीकरोहिपः सरलशल्लकीदेवदार्वाग्नि-

मन्थविल्वश्रयोणाककाशमर्यपाटलापुनर्नवावृश्चीरकण्टकारिवृह-
 तीशालिपर्णीपृश्निपर्णीमाषपर्णीमुद्गपर्णीगोक्षुरकैरण्डशोभाअन-
 कवरुणार्कचिरिविल्वतिल्वकशटीपुष्करमूलभाण्डीरोरुवुकपत्तुरा-
 क्षीवाशमान्तकशिग्रुमातुलुङ्गमूलकमूलपर्णीपीलुपर्णीतिलपर्णीमे-
 पशृङ्गीहिंस्रादन्तशठैरावतकभल्लातकास्फोटकण्डीरात्मजकेपीका-
 करअधान्यकाजमोदपृथ्वीकासुमुखसुरसकुठेरककण्डीरकालमा-
 लकपर्णासक्षवकफणिज्झकभूस्तृणशृङ्गवेरपिप्पलीसर्पपाश्वगन्धा-
 रास्त्रारुहारोहावचावलातिवलागुडूचीशतपुष्पाशीतवल्लीनाकुली-
 गन्धनाकुलीश्वेताज्योतिष्मतीचित्रकाध्यण्डाम्लचाङ्गेरीवदरकुल-
 त्थमापाणामेवंविधानामन्येषांचोष्णवीर्याणांयथालाभमौषधानां
 कपायंकारयेत्तेनकपायेणतेषामेवचकल्केनसुरासौवीरकतुपोदकमै-
 रेयमेदकदधिमण्डारनालकट्टरप्रतिविनीतेनतैलपात्रंविपाचयेत् ।
 तेनसुखोष्णेनतैलेनोष्णाभिप्रायिणंज्वरितमभ्याज्यात् । तथाशी-
 तज्वरःप्रशाम्यतितैरेवचोषधैःश्लक्ष्णपिष्टैःसुखोष्णेःप्रदेहंकारयेत् ।
 एतेषामेवचसुखोष्णमुत्काथमवगाहनपरिपेकार्थंप्रयुञ्जीतज्वरप्रश-
 मार्थमिति ॥ २६२ ॥

अगर, कूठ, तगर, तेजपान, नरसल, शिलापुष्प, गंधवृण, रेणुका, गडोना, हलदी,
 छोटी इलायची, त्रिफला, मियंगुका पत्र, धूप, अगर, तमालपत्र, अजवायन, रोहि-
 पट्टण, सरलकाष्ठ, शिलारस, देवदारु, अरनी, बेलकी छाल, श्योनाक, खंभागी,
 पादर, पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माष-
 पर्णी, मुद्गपर्णी, गोखरु, एरंडकी जड, संहाजना, वरना, आरु, करंज, लोध, कचूर,
 पोहकर मूल, बडकी जटा, लाल एरंड, पन्नूर (शालिच शाक), अक्षीषं (सांज-
 नेका भेद), अशमन्तरु, सिधू (सांजना), मिर्जीरा नींबू, सलजम, मूलपर्णी, पीलू-
 पर्णी, तिलपर्णी, मंडारिगी, हिंस्रा (हीस) जंभीरी नींबू, पैरावतफल, भेलाये आस्फो-
 तरु तथा कण्डीर, आत्मजरु, एषिका, लनाकरंज, धनिया, अजमोद, जीग और
 मुमुष, गुग्गु, कुठेरक, कण्डीर, काठमालरु, क्षवक, फणिज्झरु यह सब तुल्यमार्के
 भेद, भृत्तण, गोंड, पापट, सगतां, अमगंध, गमना, दून, वच, रंगेटी, गट्टेई, गिडोप

सौंफ, शीतवल्ली, नाकुलीकंद, गंधनाकुली, श्वेता, ज्योतिष्मती, चित्रक, कौंचके बीज, अम्ल चांगेरी, बेर, कुल्थी और उडद । इन सब औषधियोंको लेकर तथा इनके सिवाय अन्य भी जो उष्णवीर्य औषधी हैं उन सबको मिलाकर क्वाथ और कल्क बनावे । यह क्वाथ और कल्क तथा सुरा, सौवीर, तुपोदक, भैरेय, मेदक, दहीका तोड, कांजी और घोल यह सब मिलाकर इनमें चारसेर पका तिलका तेल सिद्ध करे । इस तेलको किंचित् उष्ण रहते शरीरपर मालिश करे । यदि यह शीतल हो जाय तो इसको धूपमें गरमकर फिर शरीरपर मालिश करे । इस तैलका मालिश करना ज्वरको शान्त करता है और शरीरकी अकडनं दूरकर हलका बनाताहै । तथा इन्ही औषधोके कल्कको गरमकर मुहाता २ लेप करना और इन्हीके क्वाथसे स्नान तथा सिचन करना भी शीतज्वरको शान्त करताहै ॥ २६२ ॥

शीतज्वरनाशक अन्य कर्म ।

भवन्तिचात्र । त्रयोदशविधःस्वेदःस्वेदाध्यायेनिदर्शितः । मात्रा कालविदायुक्तःसचशीतज्वरापहः ॥ २६३ ॥ साकुटी तच्च शयनं तच्चावच्छादनं ज्वरम् । शीतं प्रशमयन्त्याशु धूपाश्चागुरुजा घनाः ॥ २६४ ॥

शीतज्वरके अन्य उपचारोको कथन करतेहैं । जो तेरह प्रकारके स्वेद (पसीना देना) स्वेदाध्यायमें कहेगये हैं बुद्धिमान् वैद्य मात्रा, काल आदि विचारकर उनका प्रयोग करे तो भी शीतज्वर नष्ट होजाताहै तथा उसी अध्याय (सूत्रस्थानका १४ वां अध्याय) में जो कुटीप्रवेशका विधान लिखा है तथा शयन, आच्छादन आदिका जो विधान है उनका उपयोग करना शीतज्वरको नष्ट करताहै । अगरकी अत्यंत गाढी धुनी देना भी शीतज्वरको शान्त करताहै ॥ २६३ ॥ २६४ ॥

पवित्रचारुगात्राश्च तरुण्यो यौवनोष्मणा ।

आश्लेषाच्छमयन्त्याशुप्रमदाःशिशिरज्वरम् ॥ २६५ ॥

सुन्दर पवित्र अंगोंवाली युवा स्त्री भी शीतज्वरवालेको गाढ आलिंगन करके जवानीकी गर्मां द्वारा शीतज्वरको शान्त करसकतीहैं ॥ २६५ ॥

स्वेदनान्यन्नपानानि वातश्लेष्महराणि च ।

शीतज्वरं जयन्त्याशु संसर्गवल्योजनात् ॥ २६६ ॥

अन्य भी वात-कफज्वरके हरनेवाले जितने प्रकारके स्वेदन कर्म हैं उनके उपयोगसे तथा अन्य किसी प्रकारके औषधादिकोंके संसर्गसे शीतज्वर शान्त होजाताहै ॥ २६६ ॥

कुछ ज्वरोंमें लंघनका निषेध ।

वातजे श्रमजे चैव पुराणे क्षतजे ज्वरे ।

लंघनं न हितं विद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत् ॥ २६७ ॥

वायुके ज्वरमें, श्रमसे उत्पन्न हुए ज्वरमें, पुराने ज्वरमें तथा क्षतज ज्वरमें लंघन कराना हितकारक नहीं होता । इसलिये ऐसे ज्वरोंको शमन औषधियों द्वारा शान्त करे ॥ २६७ ॥

अन्य ज्वरोंमें लंघनकी आवश्यकता ।

विक्षिप्यामाशयोष्माणं यस्माद्भ्रत्वा रसं नृणाम् । ज्वरं कुर्वन्ति
दोषास्तुहीयतेऽग्निबलंततः ॥२६८॥ यथा प्रज्वलितो वह्निः स्थाल्या-

मिन्धनवानपि । न पचस्योदनं सम्यगनिलप्रेरितो वह्निः ॥२६९॥

पक्तिस्थानात्तदा दोषैरूष्मा क्षितो वहिर्नृणाम् । न पचत्यभ्य-

वहृतं कृच्छ्रात्पचतिवालघु ॥ २७० ॥ अतोऽग्निबलरक्षार्थं लंघना-

दिक्रमोहितः ॥ सप्ताहेन हि पच्यन्ते सर्वधातुगतामलाः ॥ २७१ ॥

निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ २७२ ॥

दोष रससे मिलकर आमाशयकी अग्निको उसके स्थानसे निकालकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं । इस कारणसे अग्निका बल नष्ट होजाता है । जैसे हवाके वेगसे जलती-हुई अग्नि इन्धन युक्त होते हुए भी अपने स्थानसे बाहरकी ओर चलीजानेपर चूल्हेपर रखे पात्रके अन्नको नहीं पका सकती उसी प्रकार दोषोंके वेग द्वारा अपने स्थानसे निकलीहुई जठराग्नि भी भोजनको पका नहीं सकती । अथवा अत्यंत हलके भोजनको भी कठिनतासे पंचाती है । इसलिये अग्निके बलकी रक्षाके वास्ते लंघन आदि क्रम अर्थात् प्रथम लंघन कराना ही हितकर है । सातदिन लंघन करानेसे सब धातुओंमें गये हुए दोष पकजाते हैं । फिर यह ज्वर प्रायः आठवें दिन निराम कहाजाता है ॥ २६८-२७२ ॥

अल्पाग्निमें भारी पदार्थ भोजन करनेके दोष ।

उदीर्णदोषस्त्वल्पाग्निरश्नन्गुरुविशेषतः ॥ मुच्यतेसहस्राप्राणैश्चिरं

क्लिश्यतिवानरः ॥ २७३ ॥

जितके वातादि दोष प्रकट होगये हों ऐसा अल्पाग्नि मनुष्य यदि भारी पदार्थोंका भोजन करे तो शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है अथवा वह मनुष्य बहुत कालतक कष्टको पाना है ॥ २७३ ॥

वातज्वरमें चिकित्साक्रम ।

एतस्मात्कारणाद्विद्वान्वातिकेऽप्यादितोज्वरे नातिगुर्वतिवास्निग्धं
भोजयेत्सहसानरम् । ज्वरेभारुतजेत्वादावनपेक्ष्यापिहिक्रमम् ॥
॥ २७४ ॥ कुट्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गादीनुपक्रमान् । पाययित्वा
कपायश्चभोजयेद्रसभोजनम् ॥ २७५ ॥ जीर्णज्वरहरंकुट्यात्सर्व-
शश्चाप्युपक्रमम् ॥ २७६ ॥

इसलिये विद्वान् वैद्य वातिक ज्वरमें भी प्रथम ही सहसा (झटपट) भारी और
अत्यंत स्निग्ध पदार्थोंका सेवन न करावे । किंतु क्रमपूर्वक जैसा जिससमय उचित हो
उस प्रकार प्रथम अल्प और हलका फिर क्रमपूर्वक किंचित् भारी स्निग्ध भोजन पर
पहुंचावे । यदि वातसे उत्पन्नहुए ज्वरमें पित्त और कफका अनुबन्ध न होवे तो
लंघन न कराकर प्रथम तो वातज्वरनाशक तैलादिकका शरीरपर मालिश करावे और
वातज्वरनाशक काथ पिलावे तथा मांसरसका भोजन करावे । एवं जीर्णज्वरके शांत
करनेको जो चिकित्साक्रम कहाहै उस विधिसे ही वातज्वरकी भी चिकित्सा
करे ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

कफज्वरमें चिकित्साक्रम ।

श्लेष्मलानामवातानांज्वरोऽनुष्णोऽकफाधिकः । परिपाकं न सप्ताहे
नापि याति मृदूष्मणाम् । तं क्रमेण यथोक्तेन लंघनाल्पाशना-
दिना ॥ २७७ ॥ आदशाहमपक्रम्य कपायाथैरुपाचरेत् ॥ २७८ ॥

वातरहित कफप्रधान मनुष्यके कफज्वरमें शरीर अग्निकी उष्णतासे रहित
होताहै इसलिये कफज्वरमें दोप सात दिनमें भी परिपाकको प्राप्त नहीं होते क्योंकि
कफज्वरवाले मनुष्योंकी जठराग्नि अत्यंत मंद होतीहै इसलिये उनको दशदिन पर्यंत
लंघन और अल्प तथा हलके आहार आदि क्रमसे दोषोंको क्षीणकर फिर काथ
आदिकोंसे चिकित्सा करे ॥ २७७ ॥ २७८ ॥

अन्य ज्वरोंमें उपदेश ।

सामा ये ये च कफजाः कफपित्तज्वराश्च ये । लंघनं लंघनीयोक्तं
तेषु कार्यं प्रति प्रति । वमनैश्च विरेकैश्चवस्तिभिश्चयथाक्रमम्
॥ २७९ ॥ ज्वरानुपचरेद्धीमान् कफपित्तानिलोद्भवान् ॥ २८० ॥

संपूर्ण सामज्वरोंमें, कफज्वरमें, कफपित्तज्वरमें लंघनकी विधिसे दोपानुसार लंघन कराना चाहिये । तथा कफज्वरको वमन द्वारा, पित्तज्वरको विरेचन द्वारा, वातज्वरको स्नेह्वस्ति द्वारा जीतना चाहिये (परंतु जबतक दोष अत्यंत नवीन कच्चे और बद्ध हों तबतक वमनादि क्रिया उचित नहीं । दोषोंके चलायमान होनेपर ही वमनादि द्वारा दोष निकाल देने चाहिये ॥ २७९ ॥ २८० ॥

द्वंद्वज और सन्निपातज ज्वरोंमें चिकित्साक्रम ।

संसृष्टान् सन्निपातितान् बुद्ध्वा तरतमैःसमैः । ज्वरान् दोषक्रमा-
पेक्षी यथोक्तैरौषधैर्जयेत् । वर्द्धनेनैकदोषस्यक्षपणेनोच्छ्रितस्य वा
॥ २८१ ॥ कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरं जयेत् ॥ २८२ ॥

और दोषो दोषोंके तथा तीनों दोषोंके मिलेहुए होनेपर उनकी न्यूनता अधिकता विचारकर (उनमें कौन दोष अधिक कौन कम और कौन सम है ऐसा देखकर) दोषोंके क्रमानुसार जो औषधियें उनको जीतनेवाली हों उनके द्वारा चिकित्सा करे । अर्थात् द्वंद्वज और सन्निपातज ज्वरोंमें क्षीणदोषको बढ़ावे और बढेहुए दोषको शांत करे । एवं दोषोंको बराबर जाने तो प्रथम कफको, फिर पित्तको, तदनंतर वातको जीतनेकी क्रिया करे ॥ २८१ ॥ २८२ ॥

कर्णमूलशोथमें उपचार ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन
कश्चिदेव प्रमुच्यते । रक्तावसेचनैः शीघ्रं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत्
॥ २८३ ॥ प्रदेहैःकफपित्तघ्नैर्नावनैःकवलग्रहैः ॥ २८४ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जड़में एक दारुण स्रजन उत्पन्न होजातीहै उस स्रजनवाले सन्निपातज्वरवाला मनुष्य स्रजडोंमें कोई एकाध ही वचताहै । इस दारुणस्रजनमें जाँक अथवा सींगी द्वाग शीघ्र रक्त निकलवा देना चाहिये और कफ, पित्त तथा रुधिरके जीतनेवाले घृतोका उपयोग (पिलाना) करना चाहिये । एवं कफपित्तनाशक लेप, सेक, नसवार आदिका उपयोग, कफ-पित्तनाशक कायोंके कण्ड (कुह्ले) कगना इत्यादि क्रमसे उस कर्णशोथको शीघ्र शांत करे २८३-२८४

शाखाश्रित ज्वरका उपचार ।

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरोयस्यनशाभ्यति ।

शाखानुसारीरक्तस्यसोऽवसेकात्प्रशाभ्यति ॥ २८५ ॥

जिस ज्वरकी शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष आदिं क्रिया करनेपर भी शांति न होय उस ज्वरको केवल दोषाश्रितही न समझे, वह शाखाओं (रक्तोदि) के आश्रित होताहै इसलिये ऐसे ज्वरोंमें रक्तमोक्षण (फस्तखोलना) तथा औषधियोंके कार्योंसे स्नान कराना हित होताहै ॥ २८५ ॥

विसर्पादिकोंसे उत्पन्न हुए ज्वरमें चिकित्साक्रम ।

वीसर्पेणाभिघातेनयश्चविस्फोटकैर्ज्वरः ।

तत्रादौसर्पिपःपानंकफपित्तोत्तरोनचेत् ॥ २८६ ॥

विसर्परोगसे तथा चोट लगनेसे व्यवा विस्फोटक (फोडे शीतला) आदिसे उत्पन्नहुए ज्वरोंमें यदि कफपित्तका अनुबंध न हो तो घृतांका पिलानाही हितकर होताहै ॥ २८६ ॥

जीर्णज्वरमें चिकित्सा ।

दौर्वल्याद्देहधातूनांज्वरोजीर्णोऽनुवर्त्तते ।

वल्यैःसवृंहणैस्तस्मादाहारैस्तमुपाचरेत् ॥ २८७ ॥

देहके धातुओंके दुर्बल होनेसेही जीर्णज्वर प्रगट होताहै इसलिये बलकारक वृंहण घृतादिकों द्वारा जीर्णज्वरोंको शांत करना चाहिये ॥ २८७ ॥

विषम ज्वरमें निर्देश ।

कर्मसाधारणंकुर्यात्तृतीयकचतुर्थके । आगन्तुरनुबन्धोहिप्रायशो

विषमज्वरे । वातप्रधानंसर्पिर्भिर्वस्तिभिःसानुवासनैः ॥ २८८ ॥

स्निग्धोष्णैरनुपानैश्चशमयेद्विषमज्वरम् । विरेचनेनपयसासर्पिपा

संस्कृतेनच ॥ २८९ ॥ विषमंतिक्तशीतैश्चज्वरंपित्तोत्तरं

जयेत् । वमनंपाचनंरूक्षमनुपानंविलंघनम् ॥ २९० ॥

कपायोष्णश्चविषमेज्वरेशस्तंकफोत्तरे ॥ २९१ ॥

तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें वस्ति आदिक तथा औषधादिकों द्वारा साधार चिकित्सा करे । क्योंकि प्रायः विषमज्वरोंमें आगंतुरक हेतुओंका भी अनुबंध होताहै यदि यह विषमज्वर वातप्रधान हो तो घृतां द्वारा तथा स्नेहन और अनुवात वरितयों द्वारा एवं गर्म और चिकने अनुपानों द्वारा शांत करना चाहिये । यदि विषमज्वर पित्तप्रधान होय तो विरेचन द्वारा तथा तिक्त और शीतल द्रव्योंके क्ल अथवा उनसे तिलकिये घृत दूधों द्वारा चिकित्सा करे । एवं कफप्रधान विषमज्वर

वमनकराना, पाचन और रूक्ष द्रव्योंके तथा कपैले और उष्ण द्रव्योंके काय पिलाना एवं लंघन कराना हितकर होताहै ॥ २८८-२९१ ॥

विषमज्वरनाशक अन्य योग ।

योगाःपराःप्रवक्ष्यन्तेविषमज्वरनाशनाः । प्रयोक्तव्यामतिमतादो-
पादीन्प्रविभज्यये । सुरासमण्डपानार्थेभक्ष्यार्थेचरणायुधाः ॥ २९२ ॥
तिर्त्तिरिश्चमयूरश्चप्रयोज्योविषमज्वरे । पिवेद्वापट्पलंसर्पिरभयांवा-
प्रयोजयेत् ॥ २९३ ॥ त्रिफलायाःकपायंवागुडूच्यारसमेववा ।
नीलिनीमजगन्धाञ्चत्रिवृतांकटुरोहिणीम् ॥ २९४ ॥ पिवेज्ज्वरा-
गमेयुत्तयास्त्रेहस्वेदोपपादितः । सर्पिपोमहर्तीमात्रांपीत्वावाच्छर्द्द-
येत्पुनः २९५ ॥ उपयुज्यान्नपानंवाप्रभूतंपुनरुल्लिखेत् । सान्नंमध-
प्रभूतंवापीत्वास्वप्याज्ज्वरागमे ॥ २९६ ॥ आस्थापनंयापनंवाका-
रयेद्विषमज्वरे । पयसावृषदंशस्यशकृद्वातदहःपिवेत् ॥ २९७ ॥
वृषस्यदधिमण्डेनसुरयावाससैन्धवम् । पिप्पल्यान्निफलायाश्चद-
ध्नस्तक्रस्यसर्पिपः ॥ २९८ ॥ पञ्चगव्यस्यपयसःप्रयोगोविषमज्वरे ।
लशुनस्यस्तैलस्यप्राग्भक्तमुपसेवनम् ॥ २९९ ॥ मेघानामुष्णवी-
र्याणामामिषाणाञ्चभक्षणम् ॥ ३०० ॥

अब विषमज्वरनाशक अन्य उत्तम २ योगोंका कथन करतेहैं । जिन उत्तम योगों का प्रयोग दोषोंको अलग २ विचागकर बुद्धिमान् वैद्यको करना चाहिये । विषमज्वरमें पीनेके लिये सुरामण्ड देना चाहिये । भोजनके लिये-मुर्गा, तीतर और मोरका मांसरस देवे । अथवा सिद्ध पट्फल, घृत, हरडे, त्रिफलेका काय, या गिलो-यका रस, पिलावे । अथवा ज्वर आनेके समय रोगीको स्नेहन स्वेदन करके फिर नीलिनी, अजगंधा, निशोय, कुटकी इनका क्वाथ करके पिलावे । अथवा पहले स्नेहन स्वेदन करके फिर अधिकमात्रासे घृत पिलाकर वमन करावे । अथवा अधिक मात्रासे अन्नपान खिलापिलाकर फिर वमन करावे । अथवा ज्वरके आगमनके समय अन्न और मद्यका भोजन करके विषमज्वरवाला मनुष्य सोजाय । अथवा उचित द्रव्योंसे मिद्ध की हुई दूध आदि औषधी द्वारा आस्थापन अथवा यापन वस्तिकर्म करे । अथवा जिसदिन ज्वरकी बारी हो उस दिन दूधके साथ चिड़ीकी विष्टाको पीवे । अथवा बेलके गोबरका रस सेंधानमक मिलाके पीवे या दहीका मंड सेंधे नमक

युक्त करके अथवा सेंधानमकयुक्तसुरा पीवे । अथवा पीपल, त्रिफला, दही, छाछ इनसे सिद्धकिया घृत अथवा पंचगव्य और चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत या दूधका पीना, विषमज्वरको शांत करताहै । अथवा भोजनके प्रथम लहसुनयुक्त तैलका सेवनकरे अथवा उष्णवीर्य पवित्र मांसीका सेवन भी विषम ज्वरोंको शांत करता है ॥ २९२-३०० ॥

विषमज्वरनाशक नस्य ।

हिंशुतुल्यानुवैयाघ्रीवसानस्यंससैन्धवा ।

पुराणसर्पिःसिंहस्थवसातद्वत्ससैन्धवा ॥ ३०१ ॥

अथवा हींग व्याघ्र की चरबी और सेंधानमक इन तीनोंको बराबर लेकर इनकी नस्य लेना भी विषमज्वरको शांत करताहै । एवं पुराना घृत शेर की चरबी, सेंधानमक मिलाकर नस्य (हुलास) लेना भी विषमज्वरको शांत करताहै ॥ ३०१ ॥

अंजन ।

सैन्धवंपिप्पलीनाञ्चतण्डुलाःसमनःशिलाः ।

नेत्राञ्जनंतैलपिष्टंशस्यतेविषमज्वरे ॥ ३०२ ॥

सेंधानमक, मधु, पीपलके कणकें, मनशिल, इनको तेलमें पीसकर अंजन अंजना विषमज्वरको नाश करताहै ॥ ३०२ ॥

धूप ।

पलङ्कपानिम्बपत्रं वचाकुष्ठं हरीतकी ।

सर्षपाःसंयवाःसर्षिधूपनज्वरनाशनम् ॥ ३०३ ॥

गूंगल, नीमके पत्र, वच, कूठ, हरडेका छिलका, ससों, जौ और घृत की धूप देना, विषमज्वरको नाश करताहै ॥ ३०३ ॥

अन्ययोग ।

शेधूमाधूपनयच्चनावनञ्चाञ्जनञ्चयत् । मनोविकारेव्याख्यातंकार्यं तद्विषमज्वरे । मर्णाणामौषधीनाञ्चमङ्गल्यानांविषस्यच ॥ ३०४ ॥

धारणादगदानाञ्चसेवनान्नभवेज्ज्वरः ॥ ३०५ ॥

जो उन्माद तथा मृगीरोगके अधिकारमें कहेहुए धूम, धूपन, नस्य, अंजन आदि कर्म हैं वह सब कर्म विषमज्वरको शांत करते हैं । एवं मणिपोंका धारण करना, मंगल औषधियोंका धारण करना, वच्छनग आदि विष अथवा विषनाशक अंगदोंको धारण करना एवं विषनाशक अंगदोंको सेवन करना भी विषमज्वरको शांत करताहै ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥

गुरुजनादिकोंके शापसे तथा अभिचार (टोने मंत्रादिक) से अथवा भूतादिकोंके आवेशसे उत्पन्न हुए संपूर्ण ज्वरोंमें देव व्यापाश्रय (देवीयत्न) तथा देवी औपधियोंको प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१३ ॥

अभिघातसे उत्पन्न ज्वरकी चिकित्सा ।

अभिघातज्वरोन्मथ्येत्पानाभ्यंगेनसर्पिषः। रक्तावसेकैर्मथैश्चसात्म्यै-
मांसरसोदनैः । सानाहोमद्यसात्म्यानांमदिरारसभोजनैः ॥३१४॥

चोट आदि लगनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें घृतांकापीना, और अभ्यंग करना, रक्तमो-
क्षण कराना, सात्म्य, मांसरस युक्त भोजन तथा मद्यका सेवन करना हितकारक
होताहै । मद्य, सात्म्य मनुष्योंको यदि अफारायुक्त ज्वर हो तो मांसरस और मद्यके
संग भोजन देना हितकारी होताहै ॥ ३१४ ॥

क्षतादिकोंसे उत्पन्नहुए ज्वरमें चिकित्सा ।

क्षतानां व्रणितानाञ्चक्षतव्रणचिकित्सया ॥ ३१५ ॥

उरक्षत और व्रणजन्य ज्वरमें क्षतरोग और व्रणरोगके समान चिकित्सा करना
चाहिये ॥ ३१५ ॥

काम शोक भय क्रोधसे हुए ज्वरमें ।

आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेनच । हर्षणैश्च शमं यान्ति
कामशोकभयज्वराः । काम्यैरर्थैर्मनोज्ञैश्चपित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः ।

सद्वाक्यैःशाम्यति ह्याशु ज्वरः क्रोधसमुत्थितः ॥ ३१६ ॥

काम, शोक और भयसे उत्पन्नहुए ज्वरोंमें आश्वासन (दिलासा) देना, इष्टव-
स्तुको प्राप्त करना, वायुको शांत करनेवाले यत्न करना, और हर्ष (आनंद) दायक
वातोंका सुनाना हितकारक होताहै । क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें इच्छित प्रदार्थोंकी
प्राप्ति, मनोज्ञ तथा पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये तथा शान्तदायक सद्वा-
क्यों द्वारा शान्ति करना भी क्रोधज्वरको शांत करताहै ॥ ३१६ ॥

कामात् क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात् कामसमुद्भवः । याति ताभ्या-
मुभाभ्याञ्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ३१७ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर-कामके उत्पन्न होनेसे शान्त होजाताहै । कामसे
उत्पन्न हुआ ज्वर क्रोधके होनेसे शांत होजाताहै । इसीप्रकार भयसे उत्पन्न
हुआ ज्वर और शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर यह दोनों क्रोध और कामके उत्पन्न
होनेसे शांत होजातेहैं ॥ ३१७ ॥

स्मृतिज्वरका यत्न ।

ज्वरकालश्च वेगश्च चिन्तयञ्ज्वर्यते तु यः ।

तस्यैष्टस्तु विचित्रैश्च विषयैर्नाशयेत् स्मृतिम् ॥ ३१८ ॥

जिस मनुष्यको ज्वरका समय चिंतन करनेसे कि मुझे दुपहरको ज्वर आवेगा इत्यादि शोच करते २ समयपर ज्वर आजाय तो उस मनुष्यको इच्छित वस्तुओंका देना, सुन्दर कथा कहानी सुनाकर वक्त टालदेना, और खेल आदिकमें भुला रखना हितकारक होताहै ॥ ३१८ ॥

ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप ।

ज्वरप्रमोक्षे पुरुषः कूजन् वमति चेष्टते । श्वसन् विवर्णः खिन्ना-

ङ्गो वेपते लीयते मुहुः ॥ ३१९ ॥ प्रलपत्युष्णसर्वाङ्गः शीताङ्गश्च

भवत्यपि । विसंज्ञो ज्वरवेगार्त्तः सक्रोध इव वीक्षते ॥ ३२० ॥

सदोपशब्दश्च शकृद्भवं स्रवति वेगवत् । लिंगान्येतानि जानीया-

ज्वरमोक्षे विचक्षणः ॥ ३२१ ॥

जब रोगीका ज्वर वेसमय मुक्त होने लगताहै उससे प्रथम रोगीके यह लक्षण होतेहैं जैसे आतोंका कूजना, वमन, अंगोंका इधर उधर हिलाना, स्वास, विवर्णता, सब अंगोंमें स्वेदआना, कंप, धार २ जडता प्राप्तहोना, वक्त्राद, सब अंगोंका अत्यंत गर्म अथवा शीत होना, बेहोशी, ज्वरके वेगसे व्याकुलता, क्रोधयुक्तके समान देखना, दुर्गंधयुक्त और शब्दके साथ वेगपूर्वक पतला दस्त आना यह लक्षण ज्वरमोक्षके समय होतेहैं । सो बुद्धिमान् वेद्यको जानना चाहिये ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥ ३२१ ॥

बहुदोषस्यवलवान्प्रायेणाभिनवोज्वरः ।

सत्क्रियादोषपक्त्वाचेद्विमुञ्चतिसुदारुणम् ॥ ३२२ ॥

प्रायः उपरोक्त लक्षण तब होतेहैं जब बहुत दोषयुक्त बलवान् तथा नवीन ज्वरको दोषोंके बिना पकाए औषधों द्वारा शांत कियाजाय तब यह दारुण लक्षण होतेहैं ॥ ३२२ ॥

समयपर ज्वरमुक्तिकें लक्षण ।

कृत्वादोषवशाद्वेगंक्रमादुपरमन्ति ये । तेषामदारुणोमोक्षोज्वराणां

चिरकारिणाम् ॥ ३२३ ॥ विगतक्लमसन्तापमव्यथंविमले

न्द्रियम् । युक्तंप्रकृतिसत्त्वेनविद्यात्पुरुषमज्वरम् ॥ ३२४ ॥

परंतु दोषोंका परिष्कार होकर लंघनादि क्रमद्वारा समयपर मोक्ष होता है तो ज्वर मुक्तिके समय उपरोक्त दारुण लक्षण नहीं होते किंतु यह लक्षण होते हैं जैसे क्वांति दूर होजाना, संताप न रहना, शरीरमें व्यथा न रहना, सब इन्द्रियोंका निर्मल होना, मन प्रसन्न होना, संपूर्ण भाव प्रकृतिस्थ होना यह विगतज्वर मनुष्यके अर्थात् ज्वर छूटजानेके लक्षण होते हैं ॥ ३२३ ॥ ३२४ ॥

ज्वरमुक्तके त्याज्य विषय ।

सज्वरोज्वरमुक्तश्चविदाहीनिगुरूणिच । असात्म्यान्यन्नपानानि
विरुद्धानिविवर्जयेत् ॥ ३२५ ॥ व्यवायमतिचेष्टाश्चस्नानमत्यशना-
निच । तथाज्वरःशमंयातिप्रशान्तोजायतेनच ॥ ३२६ ॥

ज्वरयुक्त मनुष्यको अथवा ज्वरमुक्त होनेपर भी विदाही, भारी और असात्म्य तथा विरुद्ध अन्नपानोंको त्यागदेना चाहिये । एवं मैथुन, अधिक चेष्टा (चलना फिरना), एकसाय अधिक बैठा रहना, अथवा अधिक देरतक स्नानकरना और अधिक भोजन करना त्याग देना चाहिये । तथा ऐसे उपाय करने चाहिये जिनसे ज्वर चढा हो तो शांत होजाय और ज्वर उतर गया हो तो फिर न आवे ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥

व्यायामश्चव्यवायश्चस्नानंचक्रमणानिच ।

ज्वरमुक्तो न सेवेतयावन्नवलवान्भवेत् ॥ ३२७ ॥

ज्वरमुक्त मनुष्य जबतक बलवान् न होजाय तबतक व्यायाम (दंड कसरत), मैथुन, स्नान और अधिक घूमना त्याग देवे ॥ ३२७ ॥

ज्वरमुक्तके कुपथ्यसेवनके दोष ।

असञ्जातवलयस्तुज्वरमुक्तो निषेवते । वर्ज्यमेतन्नवस्तस्यपुनराव-
र्त्ततेज्वरः ॥ ३२८ ॥ दुर्हृत्तेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्त्तते ।
स्वल्पेनाप्यपचारेण तस्यव्यावर्त्तते पुनः ॥ ३२९ ॥ चिरकालप-
रिक्लिष्टं दुर्वलं दीनचेतसम् । अचिरेणैव कालेन स हन्ति
पुनरागतः ॥ ३३० ॥

यदि ज्वरसे मुक्त होनेपर मनुष्य बिना बल प्राप्तहुए व्यायामादि कुपथ्य सेवन-
करता है तो उस मनुष्यको ज्वर फिर उत्पन्न होजाता है। जो ज्वर अनुचित रीतिसे हरण
कियाजानेपर शांत होजाता है वह अत्यंत अल्प अपथ्य होनेसे भी फिर प्रगट होजाता है।

यह फिर आयाहुआ ज्वर मनुष्यको बहुत कालतक क्लेशित करके दुर्बल आर दीनचित्त बनाकर शीघ्र ही नष्ट कर डालताहै ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥

अथवापि परीपाकं धातुष्वेव क्रमान्मलाः । यान्ति ज्वरमकुर्वन्त-
स्ते तथाप्यपकुर्वते ॥ ३३१ ॥ दीनतां श्वयथुं ग्लानिं पाण्डुतां ना-
न्नकामताम् । कण्डूरुत्कोष्ठपिडकाः कुर्वन्त्यग्निश्च ते मृदुम् ॥
॥ ३३२ ॥ एवमन्येऽपि च गदा व्यावर्तन्तेपुनर्गताः । अनिर्घाते-
न दोषाणामल्पैरप्यहितैर्नृणाम् ॥ ३३३ ॥

अथवा ज्वरमुक्त मनुष्यके कुपथ्य सेवनसे दोष-ज्वरको उत्पन्न किये बिना भी रसादिक धातुओंमें प्राप्त होकर उन धातुओंका परिपाक करते हैं । फिर रसादिक धातुओंके परिपाक होनेसे-दीनता, सूजन, ग्लानि, पाण्डुता, अन्नमें अरुचिं, स्वाज, उत्कोष्ठ, पिडका और मंदाग्नि यह रोग उत्पन्न होजातेहैं तथा इसीप्रकार अन्य रोगभी फिर आकर प्रवृत्त होजातेहैं । यह सब ज्वरमुक्त मनुष्योंके थोड़ेसे कुपथ्य करनेसे भी फिर आकर प्रकट होजातेहैं ॥ ३३१ ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥

ज्वरमुक्तहोनेपर कर्तव्य ।

निवृत्तेऽपि ज्वरे तस्माद्यथावस्थंयथाबलम् । यथाप्राणं हरेदोषं
प्रयोगैर्वा शमं नयेत् ॥ ३३४ ॥ मृदुभिःशोधनैःशुद्धिर्यापनावस्त-
योहिताः । हिताश्चलघवोयूपजाङ्गलामिपजारसाः ॥ ३३५ ॥

इसलिये ज्वर छूटजानेपर भी अवस्था, बल और प्राणोंकी शक्तिके अनुसार दोषादि विचारकर प्रमाणानुसार क्रमसे दोषोंका हरण करे अथवा योग्य औषधियों द्वारा दोषोंको इसप्रकार शमन करे जिससे वह फिर कुपित न होने पावे, अथवा मृदु शोधनो द्वारा शरीरको शोधन करे और यापन, वस्तिकर्म करना भी हितकारक है तथा हलके यूपोंको पीना और जांगलजीवोंका मांसरस भोजन करना हितकारक है ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥

पुनरागत ज्वरकी चिकित्सा ।

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनखानधूपनाभ्यञ्जनानिच । हितानिपुनरावृत्तेज्वरेति-
क्तघृतानिच ॥ ३३६ ॥ गुर्व्याभिष्यन्दसात्स्यानांभोजनात्पुनराग-
ते । लंघनोष्णोपचारादिः क्रमःकार्यश्चपूर्ववत् ॥ ३३७ ॥

पुनरागतज्वरमें योग्य औषधोंसे सिद्ध किये हुए तलोंकी मालिग, उबटना, औष-

घोंसे स्नान, धूपन, अंजन और पंच तिक्तक घृतादिकोंका प्रयोग करना हितकारक होतहै यदि भारी, अभिष्यंदी और असात्म्य भोजन करनेसे फिरः ज्वर होगयाहो तो पहलेकी समान लंघन और उष्ण उपचारादि कर्म करे ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥

अन्य योग ।

किराततिक्तक्रंतिकामुस्तंपर्पटकोऽमृता ।

मन्तिपीतानिचाभ्यासात्पुनरावर्त्तकंज्वरम् ॥ ३३८ ॥

चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, पापडा और गिलोय इनका क्वाथ अथवा इनसे सिद्ध घृत नित्य पीनेसे पुनरागत ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ ३३८ ॥

वैद्यको उपदेश ।

तस्यांतस्यामवस्थायांज्वरितानांविचक्षणः ।

ज्वरक्रियाक्रमापेक्षीकुर्व्यात्त्रचिकित्सितम् ॥ ३३९ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि फिरसे आयेहुए ज्वरमें तथा अन्यान्य ज्वरोंमें भी ज्वरकी जैसी २ अवस्था हो उसकी उसी २ अवस्थाको विचारकर क्रमपूर्वक चिकित्सा करे ॥ ३३९ ॥

रोगराट्सर्वभूतानामन्तकृदारुणोज्वरः ।

तस्माद्विशेषतस्तस्ययतेतप्रशमंभिपगिति ॥ ३४० ॥

ज्वर संपूर्ण रोगोंका राजा है यह दारुण ज्वर ही संपूर्ण मनुष्योंको नष्ट करनेवालाहै इसलिये वैद्यको ज्वरकी शांतिके लिये विशेषतासे यत्न करना चाहिये ॥ ३४० ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवतिचात्र । यथाक्रमंयथाप्रश्नमुक्तंज्वरचिकित्सितम् । अत्रिजे-
नाग्निवेशायभूतानांहितमिच्छता ॥ ३४१ ॥

इति म०च०चिकित्सितस्थाने ज्वरचिकित्सितं नाम तृतीयोऽध्यायः ३

अध्यायकी पूर्तिमें एक श्लोक है कि इसप्रकार भगवान् आत्रेयजीने अग्निवेशके प्रश्नानुसार क्रमपूर्वक संपूर्ण मनुष्योंके हितके लिये ज्वरोंकी चिकित्साका वर्णन कियाहै ॥ ३४१ ॥

इति श्रीमहर्षि चरक०चिकित्सितस्थाने भाषाटीकाया ज्वरचिकित्सितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।



रक्तपित्तचिकित्सितम् ।

अथातो रक्तपित्तचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम रक्तपित्तचिकित्साका कथन करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

अग्निवेशका प्रश्न ।

विहरन्तंजितात्मानंपञ्चगंगेपुनर्वसुम् । प्रणस्योवाचनिर्मोहमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥ १ ॥ भगवन्नरक्तपित्तस्यहेतुरुक्तःसलक्षणः ।

वक्तव्यंयत्परंतस्यवक्तुमर्हसितद्वरो ॥ २ ॥

एक समय पंचगंग (पंजाब) के पहाड़ोंपर विचरतेहुए अग्निके समान तेजस्वी मोहरहित भगवान् पुनर्वसुजीको प्रणामपूर्वक अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! आपने रक्तपित्तके हेतु और लक्षणोंको तो कथन करदियाहै परंतु हे गुणे ! इस (रक्तपित्त) के विषयमें अन्य भी जो कुछ कहना योग्य हो सो भी कथन कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥

पुनर्वसुजीका उत्तर ।

गुरुवाच ।

महागदंमहावीर्यमग्निवच्छीघ्रकारिच ।

हेतुलक्षणविच्छीघ्रंरक्तपित्तमुपाचरेत् ॥ ३ ॥

हेतु और लक्षणोंके जाननेवाले वैद्यको उचित है कि इस महाभयंकर बलवाम् तथा अग्निके समान शीघ्र शरीरको नष्ट करनेवाले रक्तपित्तरोगकी शीघ्र चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

रक्तपित्तकी संप्राप्ति और निरुक्ति ।

तस्योष्णंतीक्ष्णमम्लञ्चकटूनिलवणानिच । घर्मश्चान्नाविदाहश्चहेतुः

पूर्वनिदर्शितः ॥ ४ ॥ तैर्हेतुभिःसमुद्दिष्टंपित्तरक्तंप्रपद्यते । तद्योनि-

त्वात्प्रपन्नञ्चवर्द्धतेतत्प्रदूषयेत् ॥ ५ ॥

गरम, तीक्ष्ण, अम्ल, कटु और नमकीन पदार्थोंका अधिक सेवन करना तथा घृण, गर्मी, विदाही द्रव्योंका सेवन करना यह रक्तपित्तरोगको उत्पन्न करनेवाले

कारण हैं यह तो पहले कथन कर चुके हैं इन कारणोंसे कुपित और उत्तेजित हुआ पित्त रक्तको दूषित कर रक्तमें ही मिलजाता है फिर वह रक्तयुक्त वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ ९ ॥

तस्योष्मणां द्रवो धातुर्धातोर्धातोः प्रसिच्यते । स्वियतस्तेन संवृद्धिं भूयस्तदधिगच्छति ॥ ६ ॥ संयोगाघट्टणात्तत्सामान्याद्गन्धवर्णयोः । रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तमनीषिभिः ॥ ७ ॥

पित्तकी गर्मीसे संपूर्ण धातुएँ स्वेदित होकर उनका द्रवीभूत अंश उस पित्तमें मिलजाता है उससे वह पित्ततुल्य स्वभाववाला होनेसे और भी वृद्धिको प्राप्त होता है । वह पित्तके संयोगसे और रक्तके गंध तथा वर्णके तुल्य होनेसे एवं रक्त और पित्तकी तुल्यता होनेसे उस दूषित रक्तपित्तके संयोगसे उत्पन्न हुए रोगको बुद्धिमान् रक्तपित्त कहते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

रक्तपित्तके अधिष्ठान ।

श्लिहानश्च यकृच्चैव तदधिष्ठा यवर्त्तते ।

स्रोतांसिरक्तवाहीनि तन्मूलानि हि देहिनाम् ॥ ८ ॥

उस रक्तपित्तके ग्रीहा (तिल्ली) और यकृत् (जिगर) अधिष्ठान हैं क्योंकि, देहधारियोंके रक्तवाही स्रोतोंके मूल ग्रीहा और यकृत् ही हैं ॥ ८ ॥

दोषभेदसे रक्तपित्तके लक्षण ।

सान्द्रं सपाण्डुसस्त्रेहं पिच्छिलञ्च कफान्वितम् । श्यावारुणं सफेनञ्च

तनुरूक्षञ्च वातिकम् ॥ ९ ॥ रक्तपित्तं कपायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्नि-

भम् । मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्च पैत्तिकम् ॥ १० ॥ संसृष्टलिङ्गं-

संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ ११ ॥

यदि वह रक्तपित्त सान्द्र, पाण्डुवर्ण, चिकना और गाढा हो तो कफप्रधान रक्तपित्त जानना और नीला, लाल, सागदार, थोडा और रूक्ष हो तो वातप्रधान जानना । एवं कपायवर्ण, काला, गोमूत्रके समान चमकदार, धूँवेके वर्णका, अथवा अंजनके समान वर्णवाला हो तो पित्तप्रधान होता है । कफप्रधान रक्तपित्त मुख, नाक आदि ऊपरके भागोंसे प्रवृत्त होता है । और वायुकी प्रधानतासे अधोभाग (मुदा, लिङ्ग) द्वारा निकलता है । पित्तप्रधान रक्तपित्त सत्र भागोंसे प्रवृत्त होता है । यदि दो, दोषोंके लक्षणोंवाला हो तो द्विदोषज जानना । तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला सन्निपातसे हुआ रक्तपित्त होता है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

रक्तपित्तकी साध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगंसाध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते । यत्त्रिदोषमसाध्यं तन्मन्दा-
श्रेरतिवेगवत् । व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्थानश्नतश्च यत् ॥ १२ ॥

एकदोषयुक्त रक्तपित्त साध्य होता है । दो दोषोंवाला कष्टसाध्य होता है और त्रिदोषयुक्त रक्तपित्त असाध्य होता है । तथा रोगोंसे दुबले पतले मनुष्यका और मंदाग्निवालेका तथा वृद्धका, एवं जिसकी आहारशक्ति नष्ट होगई हो उसका वेगयुक्त रक्तपित्त असाध्य होता है ॥ १२ ॥

मार्गभेदसे साध्यासाध्य ।

गतिरूर्ध्वमधश्चैव रक्तपित्तस्य दर्शिता । उर्ध्वाः सप्तविधाद्वारा द्विद्वारा-
त्त्वधरा गतिः ॥ १३ ॥ सप्तच्छिद्राणि शिरसि द्वे चाधः साध्यमूर्ध्व-
गम् । याप्यन्त्वधोगमं मार्गोद्वावसाध्यं प्रपद्यते ॥ १४ ॥

रक्तपित्तकी ऊर्ध्वगति और अधोगति इन भेदोंसे दो प्रकारकी गति कही हैं । उनमें दो नासिका, दोनों नेत्र, दोनों कान, एक मुख यह सात मार्ग ऊर्ध्वभागके हैं और गुदा, लिंग यह दो मार्ग अधोभागके हैं । उर्ध्वभागके मार्गोंसे गमन करनेवाला रक्त-पित्त साध्य है । अधोगामी कष्टसाध्य होता है और दोनों भागोंसे गमन करनेवाला असाध्य होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

यदांतु सप्तच्छिद्रेभ्यो रोमकूपेभ्य एव च ।

वर्त्तते तामसंख्येयां गतितस्याहुरन्तिकीम् ॥ १५ ॥

जिस रक्तपित्तकी संपूर्ण छिद्रों और रोममार्गसे प्रवृत्ति हो उस असंख्येय गति-वाले रक्तपित्तको रोगीका अंत करनेवाला जानना ॥ १५ ॥

यच्चोभयाभ्यां मार्गाभ्यां मतिमात्रं प्रवर्त्तते । तुल्यं कुणपगन्धेन रक्तं

कृष्णमतीव च ॥ १६ ॥ संसृष्टं कफवाताभ्यां कण्ठे सज्जति चापिय-

त् । यच्चाप्युपद्रवैः सर्वैर्व्यथोक्तैः समाभिद्रुतम् ॥ १७ ॥ हारिद्रनी-

लहरितताम्रैर्वर्णैरुपद्रुतम् । क्षीणस्थकासमानस्थयच्च तच्च न सि-

द्ध्यति ॥ १८ ॥

जो रक्तपित्त अधोमार्ग और ऊर्ध्वमार्ग इन दोनों ओर अधिक वेगसे प्रवृत्त हो, रक्तमें सुर्दकीमी गंध आवे, रक्त अत्यंत काला हो, कफ वायुमें युक्त हो, फंठमें अत्यंत रुकावटमी होकर रुधिरकी प्रवृत्ति हो, जिसमें संपूर्ण उपद्रव होगये हों तथा

वह रक्तपित्त हलदीके वर्णवाला, नीला, हरा, ताम्रवर्णका उपद्रवयुक्त हो, उससे मनुष्य क्षीण होगयाहो तथा खांसीसे युक्त हो वह रोगी किसी प्रकारके यत्नसे भी नहीं बचसकता ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

याप्य साध्य ।

यद्विदोपानुगंयद्वाशान्तंशान्तंप्रकुप्यति ।

मार्गान्मार्गचरेद्यद्वायाप्यंपित्तमसृक्चतत् ॥ १९ ॥

जो रक्तपित्त दो दोषोंसे युक्त हो, और शांत होहोकर फिर कुपित होताहो पहले एक मार्गसे फिर दूसरे मार्गसे प्रवृत्त हो वह रक्तपित्त याप्य साध्य होताहै ॥ १९ ॥

साध्य रक्तपित्तके लक्षण ।

एकमार्गवलवतोनातिवेगंनवोत्थितम् ।

रक्तपित्तंसुखेकालेसाध्यस्यान्निरुपद्रवम् ॥ २० ॥

जो रक्तपित्त एकमार्गगामी हो और बलवान् मनुष्यका हो, थोडे दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो, और उपद्रवरहित हो तथा अच्छे समयमें प्रकटहुआ हो तो साध्य होताहै ॥ २० ॥

उभयमार्गगमनके कारण ।

स्निग्धोष्णमुष्णरूक्षञ्चरक्तपित्तस्यकारणम् ।

अधोगस्योत्तरंप्रायःपूर्वस्यादूर्ध्वगस्यतु ॥ २१ ॥

उर्ध्वगामी रक्तपित्तके उष्ण स्निग्ध कारण होतेहैं और अधोगामी रक्तपित्तके उष्ण रूक्ष कारण होतेहैं ॥ २१ ॥

उर्ध्वगंकफसंसृष्टमधोगंमारुतानुगम् ।

द्विमार्गकफवाताभ्यामुभाभ्यामनुबध्यते ॥ २२ ॥

कफसे संमिलित रक्तपित्त ऊपरके मार्गोंसे गमन करताहै । वायुसे संमिलित रक्तपित्त अधोमार्गोंसे गमन करताहै । यदि कफ और वायु इन दोनोंसे संमिलित हो तो दोनों ओरके मार्गोंसे प्रवृत्त होताहै ॥ २२ ॥

चिकित्साक्रम ।

अक्षीणवलमांसस्थरक्तपित्तंयदश्रुतः ।

तदोषदुष्टमुक्लिष्टंनादौस्तंभनमर्हति ॥ २३ ॥

जिस रोगीका मांस और बल क्षीण न हुआ हो और जठराग्नि बलवान् हो ऐसे रोगीके बड़ेहुए दोषयुक्त उदीर्ण (निकलेहुए) रक्तपित्तको गेकना नहीं चाहिये ॥ २३ ॥

रक्तपित्तके वेगको प्रथमही रोकदेनेके दोष ।

गलग्रहंपूतिनस्यंमूर्च्छायमरुचिज्वरम् । गुल्मंघ्नीहानमानाहंकिला-
संकृच्छमत्रना ॥ २४ ॥ कुष्ठान्यर्शांसिवीसर्पवर्णनाशंभगन्दरम् ।

बुद्धीन्द्रियोपरोधश्चकुर्व्यास्तम्भितमादितः ॥ २५ ॥

यदि रक्तपित्तके वेगको प्रगट होते ही रोकदेवे तो उससे गलग्रह, नाकसे दुर्गंध आना, मूर्च्छा, अरुचि, ज्वर, गुल्म, घ्नीहा (तिल्ली), अफारा, किलास, मूत्रका कष्टसे उतरना, कुष्ठ, बवासीर, विसर्प, वर्णका विगडना, भगंदर, बुद्धि और इन्द्रियोंका उपरोध, यह उपद्रव प्रथम ही रक्तपित्तके रोकदेनेसे प्रकट होजातेहैं ॥२४॥२५॥

तस्मादुपेक्ष्यंवलिनोवलदोषविचारिणा । रक्तपित्तंप्रथमतःप्रवृ-
द्धंसिद्धिमिच्छता ॥ २६ ॥ प्रायेणहिसमुत्क्लिष्टमामदोपाच्छरीरि-

णाम् । वृद्धिंप्रयातिपित्तासृक्तस्माल्लङ्घनमादितः ॥ २७ ॥ मार्ग-

दोपानुबन्धश्चनिदानंप्रसमीक्ष्यच । लंघनंरक्तपित्तादौतर्पणंवाप्र-
योजयेत् ॥ २८ ॥

इसलिये सिद्धकार्यकी इच्छा करताहुआ बुद्धिमानवैद्य दोष वल विचारकर वल-
वान् मनुष्यके रक्तपित्तको प्रथम ही रोक देनेका यत्न न करे । क्योंकि मनुष्योंके
शरीरमें चलाहुआ रक्तपित्त प्रायः आमदोषसे ही वृद्धिको प्राप्त होताहै इस कारण
प्रथम रक्तपित्तमें लंघन करना चाहिये । तथा रक्तपित्तके मार्ग और दोषोंको
विचार कर एवं उसके निदानको विचारकर प्रथम लंघन अथवा तर्पण करना
चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

रक्तपित्तमें तृपाकी शांतिके लिये जल ।

ह्रीवेरंचन्दनोशीरमुस्तर्पणैःशृतम् ।

केवलशृतशीतंवाद्यात्तोयंपिपासवे ॥ २९ ॥

सुगंधवाला, लालचंदन, खस, नागरमोथे, और पापडा इन सबको मिलाकर
पकायाहुआ जल ठंडा करके अथवा केवल जल पकाकर ठंडा होनेपर रक्तपित्तवाले
रोगीको प्यासकी शांतिके लिये पिलावे ॥ २९ ॥

तर्पण और पेयाका निर्देश ।

ऊर्द्ध्रगेतर्पणंपूर्वं पेयांपूर्वमधोगते ।

कालसात्म्यानुबन्धज्ञोदयात्प्रकृतिकल्पचित् ॥ ३० ॥

काल, सात्म्य, दोषोंका अनुबंध और प्रकृतिके विभागको जाननेवाला वैद्य उर्ध्व-
गत रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण देवे और अधोगत रक्तपित्तमें पहले पेया पिलावे ॥ ३० ॥
तर्पण ।

जलंखज्जूरमृद्धीकामधूकैःसपरूपकैः । शृतशीतंप्रयोक्तव्यंतर्पणा-
र्थसशर्करम् ॥ ३१ ॥ तर्पणंसघृतक्षौद्रंलाजाचूर्णैःप्रयोजयेत् । ऊ-
र्ध्वंगरक्तपित्तंतत्पीतंकालेव्यपोहति ॥ ३२ ॥

खजूर, मुनक्का, महुवेके फूल और फालसे डालकर पकाएहुए जलको ठंडा करके
उसमें मिसरी मिलाकर तर्पणके लिये रक्तपित्तवालेको पिलावे ॥ ३१ ॥ अथवा
धानकी खीलोंके चूर्णसे बनाया हुआ तर्पण घृत और शहद मिलाकर पिलावे । यह
दोनों प्रकारके तर्पण समय पर प्रयोग कियेजायें तो ऊर्ध्वगत रक्तपित्तको जडसे नष्ट
कर देतेहैं ॥ ३२ ॥

रक्तपित्तमें खटाई ।

मन्दाग्नेरम्लसात्म्यायतत्साम्लमपिकल्पयेत् ।

दाडिमामलकैर्विद्यादम्लार्थञ्चानुदापयेत् ॥ ३३ ॥

जो रोगी मंदाग्निवाला हो और उसको खटाई सात्म्य (अनुकूल) हो तो इन
उपरोक्त तर्पणोंमें खटाई मिलादेना चाहिये । रक्तपित्तमें खटाईके लिये अनार अथवा-
आँवलेका रस प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ३३ ॥

रक्तपित्तमें अन्न ।

शालिषष्टिकनीवारकोरदूपप्रशांतिकाः ।

श्यामाकश्चप्रियंगुश्चभोजनंरक्तपित्तिनाम् ॥ ३४ ॥

शालीचावल, साठीचावल, नीवार, कोदो, प्रशांतिक चावल, कांगुनीके चावल
और शौकके चावलका भात भोजनके लिये रक्तपित्तमें देना चाहिये ॥ ३४ ॥

रक्तपित्तमें यूप ।

मुद्गामसूराश्चणकाःसमकुष्ठाढकीफलाः ।

प्रशस्ताःसूपयूपार्थैकल्पितारक्तपित्तिनाम् ॥ ३५ ॥

मूंग, मसूर, चना, मोठ और अरहरकी दाल बनाकर रक्तपित्तके रोगमें देना
चाहिये ॥ ३५ ॥

रक्तपित्तमें शाक ।

पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः । किरात्रतिककंशाकंगण्डीरः

सकटिल्लकः ॥ ३६ ॥ कोविदारस्यपुष्पाणिकाश्मर्यस्याथशा-
लमलेः । अन्नपानविधौशाकंयच्चान्यद्रक्तपित्तनुत् ॥ ३७ ॥ शाका-
र्थंशाकसात्स्थानांतच्छस्तरक्तपित्तिनाम् । खिन्नंवासर्पिषामृष्टंयू-
पवद्वाविपाचितम् ॥ ३८ ॥

पटोलपत्र, नीमके पत्ते, (मधुनिम्ब), वेतकी कोंपल, पिलखनके पत्र, व्यूंसके पत्र और चिरायतेके पत्रोंका शाक तथा-करेला, गंडीर, लालकचनारकी कली, कुम्भेरके फूल और सेमलकी कलियोंका शाक देना चाहिये एवं अन्य भी अन्नपान विधिमें कहेहुए जो जो अन्न पान रक्तपित्तनाशक हो सो देने चाहिये । जिनको शाक प्रिय हो ऐसे रक्तपित्तके रोगीको रक्तपित्तनाशक शाक स्वेदितकर घृतमें भूनकर अथवा दालके समान पकाकर देना चाहिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मांसरस ।

पारावतान्कपोतांश्चलावात्रक्ताक्षवर्त्तकान् । शशान्कपिञ्जलाने-
णान्हरिणान्कालपुच्छकान् ॥ ३९ ॥ रक्तपित्तहितान्विद्याद्र-
सांस्तेषांप्रयोजयेत् । ईषदम्लान्म्लान्वाघृतभृष्टान्सशर्करान् ॥ ४० ॥

रक्तपित्तमें पारावत, कवूतर, लवा, चकोर, बटेर, खगोंश, तीतर, एणहिरन, हिरन और कालपुच्छ हिरन, इनका मांसरस हित है । यह मांसरस अनारकी खटाईसे किंचित् खटा करके अथवा बिना खटाई घृतमें भूनकर मिसरीयुक्त करके देवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

कफानुगेयूपशाकंदद्याद्वातानुगेरसम् ।

रक्तपित्तेयवागूनामतःकल्पः प्रवक्ष्यते ॥ ४१ ॥

यदि रक्तपित्तमें कफ भी निकलताहो तो उसमें रक्तपित्तके हरनेवाले यूप (दाल) और शाक भोजनमें देवे । और वातानुगामी रक्तपित्तमें मांसरस देवे । जो जो यवागू रक्तपित्तमें हितकारक हैं अब उनकी कल्पनाको कहतेहैं ॥ ४१ ॥

रक्तपित्त नाशक यवागुर्वोंका वर्णन ।

पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कःपृश्निपर्णीप्रियंगुकाः । जलेसाभ्यरसेतस्मि-
न्पेयास्याद्रक्तपित्तिनाम् ॥ ४२ ॥ चन्दनोशीरलोध्राणारसेतद्द-
त्सनागरे । किराततिकोशीरमुस्तानांतद्देवच ॥ ४३ ॥

लालकमलकी केशर, नीलकमलकी केशर, पृष्ठपर्णी और प्रियंगुमे सिद्धकिये जलमें बनाई हुई पेया रक्तपित्तवाले रोगीको हितकारक है अथवा चंदन, खग

लोध और नागरमोयेके जलमें बनाई हुई पेया, अथवा चिरायता, खस और नागर मोयेसे सिद्ध किये जलमें बनाई हुई पेया रक्तपित्तमें हितकारक है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

धातकीधन्वयासाम्बुविल्वानांवारसेशृताः । मसूरपृश्निपण्योर्वा
स्थिरा मुद्गरसेनवा ॥ ४४ ॥ रसेहरेणुकानांवासघृतेसवलारसे ।
सिद्धाःपारावतादीनारसेवास्युः पृथक् पृथक् ॥ ४५ ॥ इत्युक्ता
रक्तपित्तघ्न्यःशीताःसमधुशर्कराः । यवाग्वःकल्पनाचैषांकार्य्या
मांसरसेष्वपि ॥ ४६ ॥

इसीप्रकार धावेके फूल, जवासा, नेत्रवाला और बेलगिरीसे सिद्ध किये जलमें बनाई हुई पेया भी रक्तपित्तरोगमें हितकारक है एवम् मसूर और पृष्ठपर्णीसे सिद्ध जलमें, या शालपर्णी और मृंगसे सिद्ध जलमें बनाई हुई पेया, अथवा हरेणुसे सिद्ध जलमें या घृतयुक्त बला (खैरटी) के जलमें सिद्ध की हुई पेया रक्तपित्त रोगमें देना चाहिये । अथवा पारावत आदिक पहले कहे हुए मांसरसोंमें सिद्ध की हुई अलग-२ पेया-देना चाहिये । यह सब प्रकारकी पेया शीतल करके मिसरी अथवा शहद मिलाकर रक्तपित्तकी शांतिके लिये देना चाहिये । इसप्रकार यवागुओंकी कल्पना कही गई है यह कल्पना इसी प्रकार मांसरसोंकी भी करनी चाहिये ४४-४६

रक्तपित्तमें रसोंकी विशेष कल्पना ।

शशःसवास्तुकःशस्तोविवन्धेरक्तपित्तिनाम् । वातोत्वणेतित्तिरिः
स्यादुदुम्ब्वरसेशृतः ॥ ४७ ॥ मयूरःप्लक्षनिर्ग्रहेन्यग्रोधस्यचक्रुः
क्षुटः । रसेविल्वोत्पलादीनांवर्त्तकक्रकरोहितौ ॥ ४८ ॥

यदि रक्तपित्तरोगमें मलका विबंध होजाय तो बथुवेके शाकसे सिद्ध किये जलमें बनाहुआ खर्गोजका मांसरस पिलावे वा वातप्रधान रक्तपित्तमें गूलरसे सिद्ध जलमें बनाया हुआ तीतरका मांसरस देवे अथवा पिलखनके सिद्धजलमें बनायाहुआ मोगका मांस या बडके छिलकोंसे सिद्ध किये जलमें बनायाहुआ मुरगेका मांसरस, अथवा धेलके कायमें और नीलकमलादिकोंके कायमें बनायाहुआ बटेर और क्रकरका मांसरस वातप्रधान रक्तपित्तमें हितकारक है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

रक्तपित्तमें नृपानाशक योग ।

तृप्यतेतित्तकैःसिद्धंतृष्णाघ्नंवाफलोदकम् । सिद्धंविदारिगन्धाद्यै-
रथवाशृतशीतलम् ॥ ४९ ॥ ज्ञात्वादोपावनुबलौवलमाहारमे-
वच । जलंपिपासवेदद्याद्विसर्गादल्पशोषिवा ॥ ५० ॥

रक्तपित्तके रोगीकी टूपा शांत करनेके लिये तिक्तगणसे सिद्धकियाहुआ जल अथवा अनार आँवला या फालसेका शर्वत या अंगूरकी शर्वत या इनसे सिद्ध किया हुआ जल अथवा शालपर्णी आदि गणसे सिद्ध कियाहुआ जल ठंडा करके देना चाहिये । रक्तपित्तरोगीके दोष, बल और आहार शक्तिको विचारकर प्यासकी शांति के लिये थोडा २ अथवा अधिक या जिससे जितना उचित हो पीनेको उक्त जल देवे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

रक्तपित्तमें अन्य उपदेश ।

निदानंरक्तपित्तस्ययत्किञ्चित्संप्रकाशितम् । जीवितारोग्यकामै-
स्तन्नसेव्यंरक्तपित्तिभिः ॥ ५१ ॥ इत्यन्नपानंनिर्दिष्टं क्रमशो रक्त-
पित्तिषु । वक्ष्यतेबहुदोषाणांकार्य्यवलवताश्च यत् ॥ ५२ ॥

जिन द्रव्योंके सेवनसे रक्तपित्त रोगकी उत्पत्ति होतीहे जो रक्तपित्तके निदानस्थानमें कारण कहें जीवन और आरोग्यता (तंदुरुस्ती) की इच्छावाले रक्तपित्तरोगीको उन सबका त्याग करदेना चाहिये इस प्रकार जो अन्नपान रक्तपित्तरोगमें हित कारकहैं उनका वर्णन किया गयाहै अब बहुत दोषयुक्त बलवान् रक्तपित्तरोगियोंके लिये चिकित्साके क्रमको कहतेहैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

वमनविरेचनका निर्देश ।

अक्षीणबलमांसस्ययस्यसन्तर्पणोत्थितम् । बहुदोषंवलवतोरक्त-
पित्तंशरीरिणः ॥ ५३ ॥ कालेसंशोधनार्हस्यतद्धरेन्निरुपद्रवम् ।
विरेचनेनोद्ध्वभागमधोगंवमनेनच ॥ ५४ ॥

जिम रक्तपित्तवाले रोगीका बल और मांस क्षीण न हुआहो तथा संतर्पणजनित (दिनमें अधिक सोने आदिसे स्थूल शरीरवाले मनुष्यका), रक्तपित्त एवं जिस मनुष्यका शरीर बलवान् हो, जिसके शरीरमें दोष बडेहुए हों तथा जो मनुष्य संशोधनके योग्य हो ऐसे रक्तपित्तरोगीका रक्तपित्त यदि उपद्रवयुक्त न हो तो उसको उचित समयमें संशोधन करावे । यदि ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त हो तो विरेचनद्वारा नरम सा शोधन करे और अधोगामी रक्तपित्तमें वमन करावे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

१ यद्यपि ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें विरेचन कराना छिटाहै अगोगामी रक्तपित्तमें वमन कराना कहाहै परंतु यह निर्देश केवल रक्तपित्तके वेगोंको शांत करनेके लिये है । यदि अधोगामी रक्तपित्तमें मलाशय दोषयुक्त हो तो मृदुविरेचन द्वारा दोष निकालडालना चाहिये । और आमाशय दूषित होय तो ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें भी वमन कराना हितकर है, परंतु यह सब क्रिया समय और युक्तिके विचारपर निर्भर है ॥

रक्तपित्तमें विरेचकद्रव्य ।

त्रिवृतामभयांप्राज्ञःफलान्यारग्वधस्यवा । त्रायमाणागवाक्ष्योर्वा-
मूलमामलकानिवा ॥ ५५ ॥ विरेचनंप्रयुञ्जीतप्रभूतमधुशर्करम्
रसःप्रशस्यतेतेपारक्तपित्तेविशेषतः ॥ ५६ ॥

निशोथ और हरडका चूर्ण या काथ, अथवा अमलतासकी फलीका गूदा शीतल-
जलमेंही घोलकर, या त्रायमाण और इंद्रायणकी जड़का काथ अथवा आँवलेका
बहुतसा स्वरस लेकर उसमें शहद और खांड मिलाकर पेट भरकर पीजावे । यह चार
प्रकारके विरेचन ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तकी शांतिके लिये कहें । इनमें आँवलेके रसका
प्रयोग विशेष गुणकारी है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

वमनकारकद्रव्य ।

वमनंमदनोन्मिश्रोमन्थःसक्षौद्रशर्करः । सशर्करंवासलिलमिक्षू-
णांरसएववा ॥ ५७ ॥ वत्सकस्यफलंमुस्तंमदनंमधुकंमधु ।
अधोवहेरक्तपित्तेवमनंपरमुच्यते ॥ ५८ ॥

मैनफलके चूर्णयुक्त शहत और खांड मिलाहुआ मंथ (जलमें बोलेहुए पतलेसे
घृतयुक्त सत्तू) अथवा मैनफलका कल्क मिलाकर खांडमिला जल, या मैनफलके
चूर्णयुक्त ईखका रस; अथवा इंद्रजौ, नागरमोथा, मैनफल, मुलैठी, सहद इनको जलमें
घोलकर वमन करानेके लिये पिलावे । यह चार वामकयोग अधोगत रक्तपित्तकी
शांतिके लिये कहें ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अन्य उपदेश ।

ऊर्ध्वगेशुद्धकोष्ठस्यतर्पणादिक्रमोहितः ।

अधोवहेयवाग्वादिर्नचेत्स्यान्मारुतोवली ॥ ५९ ॥

शुद्धकोष्ठमनुष्यके ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें तर्पण (गर्भतादिपिलाना) आदि क्रम
हितकारी होताहै । और अधोगत रक्तपित्तमें यदि वायु प्रबल न हो तो यवासु आदि
क्रमहितकारक होताहै । यदि वायु प्रबलहो तो स्निग्ध मांसरसादि प्रयोग करे ।
अथवा अधोगत रक्तपित्तमें यवागू पान करावे इससे विपरीत कियाजाय तो वायुकी
उग्रता होतीहै यह अर्थभी होसکتाहै ॥ ५९ ॥

संशमनचिकित्सायोग्य रोगी ।

बलमांसपरिक्षीणंशोकभाराध्वकर्पितम् । ज्वलनादित्यसन्तप्तमन्यै-
र्वाक्षीणमामयैः ॥ ६० ॥ गर्भिणीस्थविरंवालंरूक्षाल्पप्रमिताश-

नम् । अवम्यमविरेच्यंवायंपश्येद्रक्तपित्तनम् ॥ ६१ ॥ शोषेणसानुबन्धंवायस्यसंशमनीक्रिया । शस्यतेरक्तपित्तस्यपुरोयातुप्रवक्ष्यते ॥ ६२ ॥

जिन रोगियोंका बल और मांस क्षीण होगयाहो । अथवा शोक और भारसे व्याकुलहो । या मार्ग चलनेसे थकाहुआहो । या तेजधूपसे संतप्तहो । अथवा अन्य रोगोंसे क्षीणहो । एवं गर्भवती, बालक, रुक्ष शरीर अथवा मंदाग्निवाला रक्तपित्त रोगीहो या जो रोगी वमन विरेचन के अयोग्य हो अथवा जिसको रक्तपित्तके साथ शोषरोगकाभी संसर्ग हो उसके रोगको संशमनीय चिकित्साद्वारा शांत करना चाहिये अब उस संशमनीय चिकित्साके योगोंको कहतेहैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

रक्तपित्तनाशक औषधी प्रयोग ।

आटरूपकमृद्रीकापथ्याकाथः सशर्करः । मधुमिश्रःश्वासकांसरक्तपित्तनिवर्हणः ॥ ६३ ॥ आटरूपकनिर्यूहेप्रियंगुमृत्तिकाज्जने ।

विनीयलोध्रंक्षौद्रश्चरक्तपित्तनुदंपिवेत् ॥ ६४ ॥

अड़सा, मुनक्का, और हरडका काथ खांड और शहत मिलाकर पीनेसे श्वास खांसी और रक्तपित्त शांत होताहै । अड़से (वसुटे) के काथमें प्रियंगु, गेरु, रसात, लोध, और शहदमिलाकर पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होतीहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पद्मकंपद्मकिञ्जल्कंदूर्वावास्तूकमुत्पलम् । नागपुष्पश्चलोध्रश्चतेनैवविधिनापिवेत् ॥ ६५ ॥ प्रपौण्डरीकंमधुकंमधुचाश्वशकृद्रसे ।

यवासभृङ्गरजसोर्मूलंवागोशकृद्रसे ॥ ६६ ॥ विनीयरक्तपित्तघ्नं
पेयंस्यात्तण्डुलाम्बुना । युक्तंवामधुसर्पिर्भ्यालिह्याद्दोऽश्वशकृद्रसम् ॥ ६७ ॥

पद्माक, कमलकी केसर, दूब, बथुआके पत्ते, नागकेसर, और लोधका कल्क मिलाकर शहत युक्त अड़सेके काथको पीवे तो रक्तपित्त शांत होताहै ॥ ६५ ॥ प्रपौण्डरीक, मुलैठी, और शहदको घोडेकी लीदके रसमें मिलाकर पीनेसे; अथवा जवासेकी जड और भांगरेकी जडका चूर्ण गोबरके रसमें मिलाकर पीनेसे, इन औषधियोंको चावलके धोवनके साथ पीनेसे रक्तपित्त नष्ट होताहै । एवम् घोडेकी लीदका रस और गोबरका रस शहद और घृत मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त शांत होताहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

खदिरस्यप्रियंगूणांकोविदारस्यशाल्मलेः । पुष्पचूर्णानिमधुनालि-
ह्यान्नारक्तपित्तिकः ॥ ६८ ॥ शृंगाटकानांलाजानांमुस्तखजूरयोर-
पि । लिह्याच्चूर्णानिमधुनापद्मानकेशरस्यच ॥ ६९ ॥ धन्वजा-
नामसृगिलिह्यान्मधुनामृगपक्षिणाम् । सक्षौद्रंग्रथितेरकेलिह्यात्पा-
रावतंशकृत् ॥ ७० ॥

कत्या, फूलप्रियंगु, लालकचनारके फूल और सेमलके फूलोंको पीसकर शहदमें
मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त रोग शांत होताहै ॥ ६८ ॥ सिंघाडे, धानकी खीले, नाग-
रमोये, खजूर और कमलकी केशरके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त-
शांत होताहै ॥ ६९ ॥ यदि रक्तपित्त रोगमें रक्तकी गांठेंसी निकलें तो जांगलदेशके
मृग पक्षियोंका रक्त अथवा कबूतरकी बीट शहदमें मिलाकर चाटे ॥ ७० ॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मकप्रियंगुकाकटूफलशंखगैरिकाः । पृथक्-
पृथक्चन्दनतुल्यभागिकाःसशर्करास्तण्डुलधावनाप्नुताः ॥ ७१ ॥

रक्तंसपित्तंतमकंपिपासांदाहेंश्वंपीताःशमयन्तिसद्यः ॥ ७२ ॥

खस, दारुहलदी, लोध, पद्माक, फूलप्रियंगु, कायफल, शंखका चूर्ण, गेरू और
लालचंदनमेंसे किसी एकके बारीक चूर्णको बराबरकी मिसरी मिलाकर फांकी लेवे
ऊपरसे चावलोंका धोवन पीवे अथवा चावलोके धोवनमें घोटकर पीवे या लालचंदन,
मिसरी युक्त करके चावलोंके धोवनसे पीवे तो यह योग रक्तपित्त, तमकाश्वम,
प्यास और दाहको शीघ्र शांत करते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

किराततिकंक्रमुकंसमुस्तंप्रपुण्डरीकंकमलोत्पलेच । हीवैरमूला-
निपटोलपत्रंदुरालभापर्पटकामृणालम् । धनञ्जयोदुस्वरवेतसत्वं-
ङ्गन्यग्रोधशालेययवासकत्वक् ॥ ७३ ॥ तुगालतावेतसतण्डुली-
यंसशारिवंमोचरसःसमङ्गा ॥ पृथक्पृथक्चन्दनयोजितानितेनै-
वकल्पेनाहितानितत्र ॥ ७४ ॥ निशिस्थितावासरसीकृतावाकल्की-
कृतावामृदिताशृतावा । एतेसमस्तागणशःपृथग्वारक्तंसपित्तंश-
मयन्तियोगाः ॥ ७५ ॥

चिरायता, क्रमुक (सुपारी या पठानी लोध) नागर मोया, प्रपौण्डरीक, कमल,
नीलकमल, नेत्रवाला, तृणपंचमूल, पटोलपत्र, जवासा, पित्तपापडा, बिस (कमलकी

डंडी) अर्जुनवृक्ष, गूलर, व्यूसकी छाल, वडकी छाल, गालवृक्षकी छाल, जवासेकी छाल, वंशलोचन, दूब, वेतस, चौलाई, शारिवा, मोचरस, वाराहकांता, इनमेंसे किसी एकके चूर्णमें बराबरका लालचंदन मिलाकर उसमें समभाग मिसरी मिला चावलोंके धोवनके साथ पीवे तो रक्तपित्तको शांत करतेहैं । यही द्रव्य रातको भिगोकर प्रातःकाल मल छानकर पीनेसे अथवा इनका स्वरस, या कल्क, अथवा ठंडाईके समान घोटकर पीनेसे या काथ करके पीनेसे रक्तपित्त शांत होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

मुद्गाःसलाजाःसवयाःसकृष्णाःसोशीरमुस्ताःसहचन्दनेन । वला-
जलेपर्युषितःऋषायोरक्तंसपित्तंशमयत्युदीर्णम् ॥ ७६ ॥

मूंग, धानोंकी खीलें, जौं, पीपल, खस, नागरमोथा, लालचंदन इनको खरटीके काथमें रातको भिगोदेवे प्रातःकाल मल छानकर पीवे तो यह शीत कषाय वेगयुक्त रक्तपित्तको शांत करताहै ॥ ७६ ॥

वैदूर्यमुक्तामणिगैरिकाणामृच्छंखहेमामलकोदकानाम् । सधूद-
कस्येक्षुरसस्यचैवपानाच्छमंगच्छतिरक्तपित्तम् ॥ ७७ ॥

वैदूर्य, मोती, मणी, और गेरू । अथवा पीलीमिठी, शंख और सुवर्णको आंवलोंके जलमें धोकर उस जल अथवा शहदका जल या ईखका रस पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होतीहै ॥ ७७ ॥

उशीरपद्मोत्पलचन्दनानांपङ्कस्यलोध्रस्यंचयःप्रसादः । सशंकरः
क्षौद्रयुतःसुशीतोरक्तातियोगप्रशमायदेयः ॥ ७८ ॥

खस, कमल, नीलोफर, लाल चंदन, इनका कल्क और पठानीलोध्र, मिलाकर काथ करे उस काथको ठंडा करके अथवा इनका हिम बनाकर उसमें खांड और शहद मिलाकर रक्तपित्तके अतियोगकी शांतिके लिये पिलावे ॥ ७८ ॥

प्रियङ्गुकाचन्दनलोध्रशारिवामधूकमुस्ताभयधातकीजलम् । स
मृत्प्रसादंसहपाटिकाभ्रुनासशंकरंरक्तनिवर्हणंपरम् ॥ ७९ ॥

फूट प्रियंगु, लालचंदन, पठानी लोध्र, शारिवा, महुवेके फूल, नागरमांथे, आंवले और धावके फलोंका जल और चिकनीमट्टीकी पापडी, तथा साठीके चावलोंका धोवन इन सबको मिलाकर खाँडयुक्त करके पीवे तो रक्तपित्तकी शांति होतीहै । यह उत्तम योग है ॥ ७९ ॥

वानानुयायीरक्तपित्त ।

कपाययोगैर्विविधैर्यथोक्तैर्दीप्तेऽनलेऽश्लेष्मणिनिर्जिते च । यद्रक्तपित्तं
प्रशमनयातितत्रानिलः स्यादनुत्तत्रकार्यम् ॥ ८० ॥

उपरोक्त कपायोंके विधिवत् प्रयोग किये जानेपर, जठराग्निके बलवान् होनेपर और कफके क्षीण होजानेपर भी रक्तपित्त शांत न होय तो उसमें वायुका अनुबंध जानना चाहिये ॥ ८० ॥

अधोगामी रक्तपित्तनाशक दूध ।

छागंपयः स्यात्प्रथमंप्रयोगे गव्यं शृतं पञ्चगुणे जले वा । सशर्करं माक्षिक-
कसंप्रयुक्तं विदारिगन्धादिगणैः शृतं वा ॥ ८१ ॥ द्राक्षाशृतं नागरकैः
शृतं वा वलाशृतं गोक्षुरकैः शृतं वा । सजीरकंसर्पभकंसर्पिःपयः
प्रयोज्यंसितयाशृतं वा ॥ ८२ ॥ शतावरीगोक्षुरकैः शृतं वा शृतं पयो
वाप्यथपर्णिनीभिः ॥ रक्तं हिनस्त्वाशुविशेषतस्तु यन्मूत्रमार्गात्सरुजं
प्रयाति ॥ ८३ ॥

उसमें प्रथम बकरी अथवा गौका दूध पाचगुने जलमें सिद्ध करके खांड और शहद मिलाकर पिलावे । अथवा विदारिगंधा (जालपर्णी) आदि गणमें सिद्ध किया हुआ दूध, अथवा मुनका और नागरमोयेसे सिद्ध किया दूध, अथवा खरैटीसे सिद्ध किया दूध, या गोरखरुओंसे सिद्ध किया दूध, अथवा जीरा, ऋषभक और घृतसे सिद्ध किया दूध, अथवा मिसरीसे सिद्ध किया दूध पिलावे । एवं शतावर और गोरखरुसे सिद्ध किया दूध, या चारों पर्णियोंसे सिद्ध किया दूध रक्तपित्तको शांत करता है और मूत्रमार्गसे जानेवाले पीडायुक्त रक्तको विशेषकरके नष्ट करता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

विशेषतो विट्प्रथमंप्रवृत्ते पयोमतं मोचरसेन सिद्धम् ।

वटावरोहैर्वटशुक्लकैर्वाहीवेरनीलोत्पलनागरैर्वा ॥ ८४ ॥

यदि विशेषरूपसे रक्त गुदा द्वारा निकलता हो मोचरसेसे सिद्ध किया हुआ दूध, अथवा वड (बरौटे) की डाठी और कलियंसे सिद्ध किया हुआ दूध, अथवा नेत्रवाला, नीलोफर और नागमोथा (या नोंठ) से सिद्ध किया हुआ दूध पिलावे ॥ ८४ ॥

कषाययोगान्पयसापुरावापीत्वानुदद्यात्पयसानुशालीन् ।

कषाययोगैरथवाविपकमेतैःपिवेत्सर्पिरपिस्रवेच्च ॥ ८५ ॥

इन औषधियोंका क्वाथ, अथवा क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीकर, अथवा इनकी फँकी लेकर ऊपरसे दूध पीवे और दूध चावल भोजन करे । अथवा इन औषधियोंके क्वाथ, या कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीवे तो रक्तकी अधिक प्रवृत्ति दूर होय ॥ ८५ ॥

वासाघृत ।

वासांसशाखांसपलाशमूलांकृत्वाकषायंकुसुमानिचास्य ।

प्रदायकल्कंविपचेद्घृतंतत्सक्षौद्रमाश्वेवांनिहन्तिरक्तम् ॥ ८६ ॥

वासे (वसूटे) की शाखा, पत्र, छिलके और टहनियोंका क्वाथ करके तथा इसके फूलोंका कल्क करके उस क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत विषमभाग शहद मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होताहै ॥ ८६ ॥

रक्तपित्तनाशक घृत ।

पलाशघृन्तस्यरसेनसिद्धंतस्यैवकल्केनमधुद्रवेण ।

लिह्याद्घृतंत्वत्सककल्कसिद्धंतद्वत्समंगोत्पललोधासिद्धम् ॥ ८७ ॥

स्यात्त्रायमाणान्निविधरेपएवसोदुन्वरेचैवपटोलपत्रे । सर्पिंपिपित्तज्वरनाशनानिसर्वाणिशस्तानिचरक्तपित्ते ॥ ८८ ॥

ढाकके घृन्तां (डंडियों) का क्वाथ और कल्क करके उनसे घृतको सिद्ध करे उस घृतको शहद मिलाकर चाटे । अथवा इसी प्रकार कुडाके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत, अथवा समंगा (लाजवंती) नीलकमल और पठानी लोधके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया घृत, एवं त्रायमाणसे सिद्ध किया घृत, अथवा गूलर और पटोलपत्रके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया घृत शहद मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्त नष्ट होताहै । यह उपरोक्त सब घृत रक्तपित्तको नाश करनेमें परम उत्तम हैं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अन्ययोग ।

अभ्यंगयोगाःपरिपेचनानिसेकावगाहाःशयनानिवेशम् । शीतोवि-

धिर्वास्तिविधानमभ्यंगपित्तज्वरेयत्प्रशमायदृष्टम् ॥ ८९ ॥ तद्रक्त-

पित्तेनिखिलेनकार्यकालश्चमात्राश्चपुरासमीक्ष्य । सर्पिर्गुंडायेच

हिताःक्षतेभ्यस्तेरक्तपित्तंशमयन्तिसद्यः ॥ ९० ॥

रक्तपित्त रोगमें पित्तज्वर (दाहज्वर) में कहेहुए व्यभंग, परिपेचन, अवगाहन, शयन, शीतलघर, शीतल क्रिया और पित्तको शान्त करनेवाला वस्तिकर्म तथा अन्य उपाय भी समय और मात्राको विचार कर करना हितकारक होतेहैं। एवं क्षतरोगमें कहेहुए घृत और गुड भी रक्तपित्तको नष्ट करतेहैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

कफानुबंधीरक्तपित्तका यत्न ।

कफानुबन्धेरुधिरसपित्तेकण्ठागमेस्याद्ग्रथितेप्रयोगः । युक्तस्य युक्त्यामधुसर्पिपोश्चक्षारस्यचैवोत्पलनालजस्य ॥ ९१ ॥ मृणाल-
पद्मोत्पलकेशराणां तथापलाशस्य तथाप्रियंगोः । तथामधुकस्यत-
थासनस्यक्षाराः प्रयोज्याविधिर्नैवतेन ॥ ९२ ॥

रक्तपित्तकफके संबन्धसे कठमें आकर गांठदार होजाताहै, उसमें रक्तपित्तनाशक घृत और शहद मिलाकर चाटना, अथवा नीलोफरका खार घृत और शुद्धमिलाकर चाटना। या मृणाल(विस)तथा लाल कमल और नीलोफरकी केशरकी भस्म बनाकर घृत और शहदके साथ चाटना, अथवा ढाकका खार फूलभियंगुकी भस्म, महुवेकी भस्म, विजेसारकी भस्म, इनमेंसे किसी एकको शहद और घृत मिलाकर चाटना (मुखसे आनेवाले) गांठदार रक्तको शान्त करताहै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

शतावरीआदिवृत ।

शतावरीदाडिमतिन्तिडीकंकाकोलिमेदोमधुकंविदारीम् । पिष्ट्वाच
मूलंफलपूरकस्यघृतंपचेत्क्षीरचतुर्गुणेन । कासज्वरानाहविवन्धशू-
लंतद्रक्तपित्तञ्चघृतंनिहन्यात् ॥ ९३ ॥

शतावरी, अनार, तंतडीक, काकोली, मेदा, सुलैठी, विदारीकंद और विजैरेकी जड़का कसक आधसेर इन्हीं औषधियोंका काय ४ सेर घृत २ सेर दूध ८ सेर इन सबको विधिवत् मिलाकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्धकरे। इस घृतके मेवनमे सांसी, ज्वर, अफारा, विबंध और शूलयुक्त रक्तपित्त शान्त होताहै ॥ ९३ ॥

पंचपंचमूल घृत ।

यत्पञ्चमूलैरथपञ्चभिर्वासिद्धंघृतंतच्चतदर्थकारि ॥ ९४ ॥

इसी प्रकार पांचों पंचमूल (लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, तृणपंचमूल, बलादिपंचमूल (मध्यम पंचमूल) और जीवनीय पंचमूल से सिद्धक्रिया घृतभी उपरोक्त गुणोंको करताहै ॥ ९४ ॥

नासिकाद्वारा रक्तगिरनेकी चिकित्सा ।

कषाययोगायङ्गोपदिष्टास्तेचात्रपीडैभिषजाप्रयोज्याः ।

घ्राणात्प्रवृत्तरुधिरंसपित्तंयदाभवोन्निःसृतदुष्टदोषम् ॥ ९५ ॥

रक्तपित्तको नष्ट करनेवाले जो इस अध्यायमें कषाय योग कहें उनका कल्क कर उसके सरकी नस्य लेनेसे नासिकाद्वारा बहनेवाला रक्त (नकसीर) दूर होजाताहै ॥ ९५ ॥

दूषितरक्तको रोक देनेके दोष ।

रक्तेप्रदुष्टेह्यवपीडवन्धेदुष्टप्रतिश्यायशिरोविकाराः । रक्तंसपूयंकु-
णपश्चगन्धःस्याद्घ्राणनाशःक्रिमयश्चदुष्टाः ॥ ९६ ॥

यदि नासिका द्वारा गिरता हुआ दूषित रक्त प्रथम ही रोक दियाजाय तो उसके दुष्ट प्रतिश्याय, शिरके विकार, पीव (राध) युक्त दुर्गन्धित रक्त नाकद्वारा गिरना, घ्राणनाश होना और मस्तकमें कृमि पडजाना यह उपद्रव होतेहैं ॥ ९६ ॥

नकसीरबंद करनेकी नस्य ।

नीलोत्पलंगैरिकशंखयुक्तंसचन्दनस्यात्तुसिताजलेन । नस्यंतथा-
म्रास्थिरसःसमंगासधातकीमोचरसःसलोध्रः ॥ ९७ ॥ ब्राक्षारस-
स्येश्वरसस्यनस्यंक्षीरस्यदूर्वास्वरसस्यचैत्र । यवासमूलानिपला-
ण्डुमूलनस्यंतथादाडिमपुष्पतोयम् ॥ ९८ ॥

नीलोफर, गेरू, शंख, लालचंदन इन सबको मिसरीयुक्त जलमें घोटकर नस्य लेने (संघने) से नासिका द्वारा रक्त बहना बंद होजाताहै । एवं आमकी गुठलीका रस, लाजवती, धाबेके फूल, मोचरस, पठानीलोवे इनके कल्कका रस सूंघनेसे रक्तका गिरना (नकसीर) बंद होजाताहै । अथवा मुनकाका रस या ईखका रस सूंघनेसेभी नकसीर बंद होजाताहै । इसी प्रकार गौ या बकरीका दूध या दूर्वाका रस, अथवा जवासेकी जडका रस या प्याजका रस या अनारके फूलका रस सूंघनेसे नासिका-द्वारा रक्त गिरना बंद होजाताहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

अन्ययोग ।

प्रियालतैलंमधुकंपयश्चसिद्धृतंमाहिषमाजकंवा । आम्रास्थिपूर्वैः
पयसाचनस्यंसशारिवैःस्यात्कमलोत्पलैश्च ॥ ९९ ॥

१ शब अथवा नख नामक सुर्गघट्टय । २ औषधीकी गीलीही पीसकर अथवा पानीडालकर पीसनेमें जो गीली चटनीसी होजातीहै उसको कल्क कहतेहैं ।

चिरौंजीका तेल, मुलैठी और दूध इनको मिलाकर पकावे फिर उसकी नस्य लेंवे । अथवा आमकी गुठली, लाजवंती, धावेके फूल, मोचरस, पठानीलोध, गारिवा, कमल, नीलकमल और दूध इनसे सिद्ध कियाहुआ भैंसका घृत अथवा बरूरीका घृत सूंघनेसे नासिकाद्वारा रक्तगिरना बंद होजाताहै ॥ ९९ ॥

रक्तपित्तपर लेप और सेचनप्रयोग ।

भद्रश्रियंलोहितचन्दनश्चप्रपोण्डरीकंकमलोत्पलश्च ॥ उशीरवानी-
रजलंमृणालंसहस्रवीर्यमधुकंपयस्या ॥ १०० ॥ शालीक्षुमूला-
नियवासगुन्द्रामूलंनलानांकुशकाशयोश्च । कुचन्दनंशैवलमप्यन-
न्ताकालानुसार्यातृणमूलमृद्धिः ॥ १०१ ॥ मूलानिपुष्पाणिचव्वा-
रिजानांप्रलेपनंपुष्करिणीमृदश्च । उदुम्बराश्वत्थमधूकलोधाःकषा-
यवृक्षाःशिशिराश्चसर्वे ॥ १०२ ॥ प्रदेहकल्पेपरिषेचनेचतथावगाहे
घृततेलसिद्धौ । रक्तस्यपित्तस्यचशान्तिमिच्छन्भद्रश्रियादीनिभिं-
पक्प्रयुञ्ज्यात् ॥ १०३ ॥

सफेद और लालचंदन, प्रपोण्डरीक, लालकमल, नीलकमल, खस, वानीर (व्यूस वृक्ष) नेत्रवाला, मृणाल (भित) दूर्वा, मुलैठी, क्षीरकाकोली, शालीधानकी नड, ईरकी जड, जवासेकी जड, गुंद्रपटेरकी जड, नरसलकी जड, कुशा और काशकी जड, पतंग (चंदनका भेद), शिवाल (काई), शारिवा, जगर, पंचतृणमूल, ऋद्धी, कमलोंके कंद (जड) और फूट पुष्करिणी (कमलोंवाले जलाशय) की मट्टी, इन सबको गीतल जलके संयोगसे घोटकर लेप करनेसे रक्तका स्राव बंद होजाताहै । तथा गूलर, अश्वत्थ (पीपल) महुआ, लोध, एवं अन्यभी जो कर्पले और गीतवीर्य वृक्ष हैं उन सबके कल्कका लेप, परिसेचन (तरडा देना) भवगाहन, (न्हाना छपके देना आदि) करनेसे रक्तपित्त शांत होताहै । तथा इन्ही उपरोक्त चंद्रनादि द्रव्योंके कल्कोंसे सिद्ध किये घृत और तेलका प्रयोग करना भी रक्तपित्तको शांत करता है ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

रक्तपित्तनाशक सेवनीय आचार तथा द्रव्य ।

धारायहंभूमिगृहश्चशीतंवनश्चरम्यंजलवातगीतम्रवैदूर्यमुक्ताम-
णिभाजनानांस्पर्शाश्चदाहेशिशिराम्बुशीताः ॥१०४॥ पत्राणिपुष्पा-
णिचवारिजानांक्षौमश्चशीतंकडलीदलाश्च । प्रच्छादनार्थशयनास-
नानांपद्मोत्पलानाश्चदलाःप्रशस्ताः ॥१०५॥ प्रियङ्गुकाचन्दनरूपि-

तानांस्पर्शाःप्रियाणाश्चवराङ्गनानाम् । दाहेप्रशस्ताःसजलाःसुशी-
ताःपद्मोत्पलानाञ्चकलापवाताः ॥ १०६ ॥ सरिद्धदानांहिमवद्ग्री-
णांचन्द्रोदयानांकमलाकराणाम् । मनोऽनुकूलाःशिशिराश्चसर्वाः
कथाःसरक्तंशमयन्तिपित्तम् ॥ १०७ ॥

जहां जलकी धारा बहतीहो फुवारे चलते हैं ऐसे नीचेकी मंजलके शीतलघर, जल युक्त सरसब्ज वागवगीचे वन, जलयुक्त शीतल पवन, शीतलजल, वैडूर्य, मोतीमणी युक्त पात्रोंका स्पर्श, शीतल जलसे भीगे हुए शीतलकमलोंके पत्रोंको शरीरपर लगाना रेशमके वस्त्र और केलेके पत्र विछी शय्या आसन आदिपर लेटना बैठना, कमल और नीलकमलोंको शीतल जलमें भिगोकर उनका स्पर्श चंदन, प्रियंगु, आदि शीतल पदार्थोंसे सुशोभित अंगोंवाली प्यारी स्त्रियोंका स्पर्श, कमल, नीलकमल, तथा शीतल पंखोंको शीतल जलमें भिगोकर पवन करना यह सब रक्तपित्तकी दाहको शांत करनेवालेहैं । एवं नदी, तालाव, हिमालयकी गुफा, चंद्रमाकी चांदनी, कमलोंसे शोभायमान जलाशय, तथा मनके अनुकूल शीतलद्रव्य और मनके हरनेवाली कहानियां यह सब रक्तपित्तकी दाहको शांत करतेहैं ॥ १०४-१०७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवतिचात्र । हेतुवृद्धिसंज्ञांस्थानंलिङ्गपृथक्प्रदुष्टस्य । मार्गो
साध्यमसाध्यंयाप्यंकार्यक्रमश्चैव ॥ १०८ ॥ पानान्नमिष्टमेवच
वर्ज्यसंशोधनश्चशमनञ्च । गुरुरुक्तवान्यथावच्चिकित्सितेरक्तपि-
त्तस्य ॥ १०९ ॥

इति च० सं० चिकित्सास्थाने ज्वरचिकित्सितं नाम चतुर्थोऽध्यायः ४

यहां अध्यायपूर्तिमें दो श्लोक हैं कि इस रक्तपित्त चिकित्साध्यायमें रक्तपित्तके हेतु, वृद्धि, संज्ञा, स्थान और दोषभेदसे अलग २ लक्षण, प्रदुष्ट रक्तपित्तके मार्ग तथा साध्य, असाध्य, याप्यसाध्य, इसकी चिकित्सा, सेवनकरने और त्यागने योग्य द्रव्य, संशोधन, और संशमन औषधियां, इन सबको भगवान् आत्रियजीने वर्णन किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहिताया चिकित्सास्थाने टकसालनिर्वासि-
पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्यायभाषाटीकाया रक्तपित्तचिकि-
त्सितं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति ह स्माह भगवान्-
नात्रेयः ।

अब हम गुल्मचिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान्
आत्रेयजी कहने लगे ।

सर्वप्रजानांपितृवच्छरण्यः पुनर्वसुर्भूतभविष्यदीशः । चिकित्सि-
तंगुल्मनिवर्हणार्थं प्रोवाचसिद्धं वदतांवरिष्ठः ॥ १ ॥

पिताकी समान प्रजामात्रको शरण देनेवाले, भूत, भविष्यत् वर्तमानके जानने-
वालोंमें श्रेष्ठ, पुनर्वसुजी गुल्मरोगकी निवृत्तिके लिये सिद्ध चिकित्साका कथन
करने लगे ॥ १ ॥

गुल्मोत्पत्तिके कारण ।

विद्व्लेष्मपित्तादिपरिक्षयाद्वातैरेववृद्धैः परिपीडितोवा । वेगैरुदीर्णै-
र्विहितैरधोवावाह्याभिघातैरतिपूरणैर्वा ॥ २ ॥ रुक्षान्नपानैरति-
सेवनैर्वाशोकैन्मिथ्याप्रतिकर्मणावा । विचेष्टितैर्वाविषमातिमात्रैः
कोष्ठेप्रकोपं समुपैतिवायुः ॥ ३ ॥ कफश्चपित्तञ्चसदूपयित्वा प्रोद्धू-
यमार्गान्निनिवृद्धयताभ्याम् । हृत्प्लीहपादर्वोदरवस्तिशूलंकरोत्य-
धोयातिनवृद्धमार्गः ॥ ४ ॥ पक्वाशयेपित्तकफाशयेवा स्थितः
स्वतंत्रः परसंश्रयोवा । स्पर्शोपलभ्यःपरिपिण्डितत्वाद्गुल्मोयथा-
दोषमुपैतिनाम ॥ ५ ॥

मल (विष्टा) कफ और पित्तकी अत्यंत क्षीणता अथवा वृद्धिसे वायुके अत्यंत
पीडित होनेसे, आयेहुप वेगोंको रोकनेसे, बाहरी चोट आदि लगनेसे, अत्यंत संतर्ष-
णसे, रुखे अन्नपानोंके अधिक सेवनसे, शोकसे एवं चिकित्साके मिथ्यायोग, अयोग
या अतियोगसे, शरीरकी विषम तथा अनिमात्र चेष्टाओंसे वायु कोष्ठमें अत्यंत
कुपित होजातीहै । फिर वह कफ और पित्तको दूषित करके उनसे मार्गोंको रोक-
देतीहै । फिर उत्तेजित होकर हृदय, प्लीहा, पार्श्व, उदर और वस्तिमें शूल प्रगट करती
है, और मार्गोंके बन्द होजानेके कारण नीचेको गमन नहीं करसकतीहै । फिर वह
पक्वाशय अथवा पित्त कफाशयमें धकेली अथवा कफपित्तके साथ मिलकर स्थित
होजातीहै । वह हाय लगानेसे गोलासा दिखाई देने लगताहै वही दोषानुसार नाम

गुल्मक होजाताहै । जैसे-वातिक, पित्तिक और श्लैमिक । सब प्रकारके गुल्मोंमें वायु ही प्रधान होतीहै और यही गुल्मका कारण होतीहै । इसलिये इसको वायुगुल्म कहतेहैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

गुल्मके स्थानभेद ।

वस्तौ हि नाभ्यां हृदि पार्श्वयोर्वा स्थानानि गुल्मस्य भवन्ति पञ्च । पञ्चात्मकस्य प्रभवन्तु तस्य वक्ष्यामि लिंगानि चिकित्सितञ्च ॥ ६ ॥

वास्ति, नाभि, हृदय और दोनों पार्श्व यह पांच स्थान गुल्मके हैं इसकी पांच ही प्रकारसे उत्पत्ति है । अब हम इसके लक्षणों और चिकित्साका वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥

वायुके गुल्मका हेतु ।

रूक्षान्नपानंविषमातिमात्रं विचेष्टितंवेगविनिग्रहश्च । शोकोऽभिघातोऽतिवलक्ष्यश्चनिरन्नताचानिलगुल्महेतुः ॥ ७ ॥

रूक्ष अन्न पानका सेवन, शरीरकी विषम और अधिक चेष्टा, मलमूत्रादिवेगोंका रोकना, शोक, अभिघात, वलकी अत्यंत क्षीणता, भोजन न करना यह सब वायुके गुल्मकी उत्पत्तिके हेतु हैं ॥ ७ ॥

वातज गुल्मके लक्षण ।

यःस्थानसंस्थानरुजाविकल्पंविद्वातसंगंगलवक्रशोपम् । श्यावारुणत्वंशिशिरज्वरश्चहृत्कुक्षिपार्श्वसशिरोरुजश्च ॥ ८ ॥ करोतिजीर्णोऽभ्यधिकंप्रकोपंभुंक्तेमृदुत्वंसमुपेतियश्च । वातात्सगुल्मो नचतत्ररूक्षकपायतित्तंकटुचोपशेते ॥ ९ ॥

थोटी २ देगमें जिस गुल्मके स्थान, स्वरूप और वेदनामें अन्तर (फरक) पडजाय, जिसमें मल और अधोवायुका अवरोध हो तथा जिसके होनेसे गले और मुखमें शोष हो, जिसका वर्ण कुछ काला कुछ लाल हो, जिसमें शीतयुक्त ज्वरका वेग हो, जिसके होनेसे हृदय, कुक्षि तथा पार्श्व और शिरमें पीडा हो, जिसका अन्नके परिपाक होनेपर अत्यन्त कोप हो, जो भोजन करनेसे नरमसा पडजाय उसको वातज गुल्म जानना । इसमें रूक्ष, कटु, तिक्त और कपाय द्रव्योंका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

पित्तज गुल्मका हेतु ।

कद्रुवस्लतीक्ष्णोष्णविरोधिरूक्षकोधार्तिमद्यार्कहुताशसेवा । आमाभिघातोरुधिरश्चदुष्टंपेतस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥ १० ॥

कडवे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विरोधी और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे, क्रोध, पीडा, मद्य, घृष और अग्निके तापसे अविदग्ध अन्नके सेवनसे और रुधिरके दूषित होनेसे पित्तका गुल्म उत्पन्न होताहै ॥ १० ॥

पित्तगुल्मके लक्षण ।

ज्वरःपिपासावदत्ताङ्गरागः शूलमहज्जीर्यतिभोजनेच ।

स्वेदोविदाहोत्रणवच्चगुल्मः स्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ ११ ॥

ज्वर, प्यास, मुख और देहमें अरुणता, अन्नके पचनेपर अत्यंत शूलका होना, पसीना विदाह, तथा गुल्ममें हाथका लगाना जखमके समान बुरा मालूम होना यह सब पित्तज गुल्मके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

कफगुल्मके हेतु ।

शीतंगुरुस्निग्धमचेष्टनञ्चसम्पूर्णप्रस्वपनंदिवाच ।

गुल्मस्यहेतुःकफसम्भवस्य सर्वस्तुष्टोनिचयात्मकस्य ॥ १२ ॥

शीतल, भारी और चिकने पदार्थोंके सेवनसे, आंलस्यसे, संतर्पणसे, दिनमें सोनेसे कफका गुल्म उत्पन्न होताहै और सान्निपातिक गुल्ममें तीनों दोषोंके मिलेहुए कारण होतेहैं ॥ १२ ॥

क्रफगुल्मके लक्षण ।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि ।

शैल्यरुगल्पाकठिनोन्नतत्वंगुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥ १३ ॥

शरीरका गीले बन्वसे वेष्टितता होना, शीतज्वर, अंगग्लानि, हृल्लास, खांसी, अरुचि, भारीपन, शैत्य, थोडी २ पीडा, कठिनता, उंचापन, यह सब कफजनित गुल्मके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

द्वन्द्वज गुल्मके लक्षण ।

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मेद्विद्वोपजेदोपवलावलञ्च । व्यामिश्रदो-
पानपरांस्तुगुल्मांस्त्रीनादिशेदोपधकल्पनार्थम् ॥ १४ ॥

हेतु, लक्षण और दोषोंका बलावल दो २ दोषोंके लक्षणांयुक्त होनेसे द्विद्वोपज गुल्म तीन प्रकारके होतेहैं । औषधोंके प्रयोगकी कल्पनाके लिये इनके तीन भेद दिखायेहैं ॥ १४ ॥

सन्निपातज गुल्मके लक्षण ।

महारुजंदाहपरीतमद्मवद् घनोन्नतंशीघ्रविदाहिदारुणम् । मनः-

शरीरान्निवलापहारिणंत्रिदोपजंगुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १५ ॥

सन्निपातसे प्रकटहुए गुल्ममें अत्यंत घोर पीडा, दाह, पत्यरके समान कठोरपन और ऊंचापन होता है । यह शीघ्र घोर दाह उत्पन्न करता है तथा मन, शरीर और अग्निके बलको हरलेता है । यह गुल्म असाध्य है ॥ १५ ॥

रक्तज गुल्मके हेतु ।

ऋतावनाहारतयाभयेन विरूक्षणेर्वैगविनिग्रहैश्च । संस्तम्भनोल्ले-
खनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रियंरक्तभवोऽभ्युपैति ॥ १६ ॥ यःस्पन्दते
पिण्डितएवनाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः । सरौधिरःस्त्रीभव-
एवगुल्मोमासेव्यतीतेदशमेचिकित्स्यः ॥ १७ ॥

मासिक ऋतु होनेके समय भोजन न करना, भय, रूक्ष पदार्थोंका सेवन, अपान-
वायु आदि वेगोंका रोकना, स्तम्भनक्रिया, वमन और योनिदोषसे स्त्रियोंको रक्त-
गुल्म होता है । जब यह रक्तगुल्म पेटमें फडकने लगता है तब इसमें अत्यन्त पीडा
होने लगती है और इसमें लक्षण गर्भकेसे होते हैं क्योंकि यह गुल्म मासिकऋतुके
रक्तमें ही उत्पन्न होता है, इसलिये केवल स्त्रियोंको ही होता है । इस रक्तगुल्मकी दृश
महीने व्यतीत होनेपर चिकित्सा करनी उचित है ॥ १६ ॥ १७ ॥

चिकित्साका निर्देश ।

क्रियाक्रममतःसिद्धंगुल्मिनांगुल्मनाशनम् ।

प्रवक्ष्याम्यत ऊर्ध्वञ्चयोगान्गुल्मनिवर्हणान् ॥ १८ ॥

अब हम गुल्मरोगियोंके गुल्मको दूर करनेके लिये गुल्मनाशक सिद्धप्रयोगोंका
वर्णन करते हैं ॥ १८ ॥

वायुके गुल्ममें चिकित्साक्रम ।

रूक्षव्यायामजंगुल्मंवातिकंतीव्रवेदनम् । वद्धविड्मारुतंस्नेहैरा-
दितःसमुपाचरेत् ॥ १९ ॥ भोजनाभ्यञ्जनैःपानैर्निरूहैःसानुवासनैः ।
स्निग्धस्यभिपजास्वेदः कर्त्तव्योगुल्मशान्तये ॥ २० ॥ स्रोतसां
मार्दवंकृत्वाजित्वामारुतमुल्लवणम् । भित्त्वाविवन्धं स्निग्धस्यस्ने-
दोगुल्ममपोहति ॥ २१ ॥ स्नेहपानंमतं गुल्मेविशेषेणोर्ध्वनाभिजे ।
पक्काशर्यगतेवस्तिरुभयंजठराश्रये ॥ २२ ॥

रूक्ष भोजन तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुए वातिकगुल्ममें तीव्र वेदनायुक्त जिभमें अघो-
वायु और विष्टाका विबंध हो उसमें प्रथम स्नेहनक्रिया करे । रोगीको भोजन,

अभ्यक्षन, पान, निरूहण और अनुवासन वस्तिद्वारा स्निग्ध करके गुल्मरोगकी शान्तिके लिये स्वेदनकर्म करे । इस प्रकार स्निग्ध करके स्वेदन करनेसे शरीरके स्रोत नरम होजातेहैं, वायुकी प्रबलता क्षीण होजातीहै, विबंध खुलजाताहै फिर वह गुल्म भी शान्त होजाताहै । नाभिसे ऊपर होनेवाले गुल्ममें विशेषकर स्नेहपान कराना श्रेष्ठ है । पकाशयगत गुल्ममें वस्तिकर्म करना चाहिये । एवं उदरस्थ गुल्ममें स्नेहपान और वस्तिकर्म दोनोंका कर्ना हितकारक है ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

दोषानुबंध चिकित्साक्रमसे ।

दीप्ताग्नीवातिकेगुल्मेविवंधेऽनिलवर्चसोः । वृंहणान्यन्नपानानिः
स्निग्धोष्णानिप्रयोजयेत् ॥ २३ ॥ पुनः पुनः स्नेहपानंनिरूहाःसा-
नुवासनाः । प्रयोज्यावातगुल्मेपुकफपित्तानुरक्षिणा ॥ २४ ॥ कफे
वातेजितप्रायेपित्तंशोणितमेववा । यदिकुप्यतिवातस्यक्रियमा-
णैश्चिकित्सितैः ॥ २५ ॥ यथोल्बणस्यदोषस्यतत्रकार्यमिपग्जि-
तम् । आदावन्तेचमध्येचमारुतंपारिरक्षता ॥ २६ ॥ वातगुल्मेक-
फोवृद्धोहत्वाग्निमरुचियदि । हृद्भासगौरवंतन्द्रांजनयेदुल्लिखेतु
तम् ॥ २७ ॥

वातिक गुल्ममें यदि अग्नि दीप्त (बलवान्) हो तथा अर्धोवायु और विप्राका विबंध हो तो वृंहणकरनेवाला स्निग्ध और उष्ण अन्न पानका प्रयोग करना चाहिये और बारबार स्नेहपान करावे । तथा कफपित्तानुबंधी वायुके गुल्ममें निरूहण और अनुवासन वस्ति करे । प्रायः कफ और वातके दूर होनेपर अथवा वातगुल्मकी चिकित्सा करनेके समय यदि पित्त और रक्त कुपित होजाय तो उस समय जिस दोषकी अधिकता हो उसीकी शान्तिका उपाय करना चाहिये । चिकित्साके आदि, मध्य और अन्तमें वायुकी सब प्रकार रक्षा करते रहना चाहिये । वातगुल्ममें यदि कफकी वृद्धि होकर जठराग्निको मन्द करके अरुचि, हृद्भास, भारापन और तन्द्रा उत्पन्न करे तो उस रोगीको वमन कराना हित है ॥ २३-२७ ॥

शूलानाहविवंधेषु गुल्मे वातकफोल्बणे । वर्तयो गुटिकाश्चूर्ण
कफवातहरम्मत्तम् ॥ २८ ॥ पित्तंवायदिसंवृद्धंसन्तापंवातगु-
ल्मिनः । कुर्याद्विरेच्यः सभवेत्स्नेहैरानुलोमकैः ॥ २९ ॥ गुल्मं
यद्यनिलादीनांकृतेसम्यगभिपग्जिते । नप्रशाम्यतिरक्तेनसन्तुते-
नोपशाम्याति ॥ ३० ॥

वातकफाधिक गुल्मरोगमें यदि शूल, अफारा और विबंध हो तो कफवातनाशक वर्त्ती, गुटिका और चूर्णका प्रयोग करना चाहिये । वातगुल्मरोगीको यदि पित्त बढ़कर संताप उत्पन्न होजाय तो वायुके अनुलोमन करनेवाले स्नेहनद्रव्योंसे विरेचन करावे । यदि वातादिकांको शमन करनेवाले औषधोंका प्रयोग कियाजानेपर भी गुल्म शांत न हो तो "रक्तमोक्षण" (गुल्मसंबंधी, नससे रक्त निकालना) द्वारा "गुल्म" शान्त करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

पित्तके गुल्ममें चिकित्साक्रम ।

स्निग्धाण्णेनोदितेगुल्मपैत्तिकेखंसनंमतम् । रूक्षोण्णेनतुसम्भूते
सर्पिःप्रशमनंपरम् ॥ ३१ ॥ पित्तंवापित्तगुल्मंवाज्ञात्वापकाशय-
यस्थितम् । कालविन्निर्हरेत्सद्यःसतिकैःक्षीरवस्तिभिः ॥ ३२ ॥
पयसावासुखोण्णेनसतिकेनविरेचयेत् । भिषगग्निवंलापेक्षीसर्पि-
पातैलकेनवा ॥ ३३ ॥

स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे जो पैत्तिक गुल्म उत्पन्न हुआहो उसमें खंसन (देस्तावर) औषध हित है । यदि रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे हुआहो तो उसमें घृतपान कराना परम उत्तम है । समयको जाननेवाला वैद्य पित्त अथवा पित्तज गुल्म जो पकाशयमें स्थित हो उसको उचित समयमें तिक्त औषधियोंसे संस्कारकीहुई क्षीरवस्ति द्वारा शीघ्र हरण करे । अथवा तिक्त औषधियोंसे पकायेहुए सुखोष्ण दुग्धको मिलाकर विरेचन करादेवे अथवा रोगीके अग्निबलको विचारकर औषधोंसे मिद्ध तेल अथवा घृत पिलाकर विरेचन देवे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

गुल्ममें रक्तमोक्षणाविधि ।

तृष्णाज्वरपरीदाहशूलस्वेदाग्निमार्दवे । गुल्मिनामरूचौचापिरक्त-
मेवावसेचयेत् ॥३४॥ छिन्नमूलाविदह्यन्तेनगुल्मायान्तिचक्षयम् ।
रंक्तंहिव्यम्लतांयातितच्चनास्तिनचास्तिरूक् ॥३५॥ हृतदोषम्परि-
म्लानंजाङ्गलैस्तर्पितंरसैः । समाश्वस्तंचशोपार्तिसर्पिपापुनराचरेत्
॥३६॥ रंक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियामनुपलभ्यवा । यदिगुल्मोविदह्ये
तश्छान्तत्रभिषगुजितम् ॥ ३७ ॥

यदि तृष्णा, ज्वर, दाह, शूल, पसीना, मन्दाग्नि और अरुचियुक्त पित्तगुल्म हो तो रक्तमोक्षण कराना चाहिये । रक्तमोक्षण द्वारा गुल्म जड़से ही नष्ट होजाताहै । इस

प्रकार गुल्मकी जड़ कटजानेसे वह पृष्ठ नहीं होसकता । और रक्तकी अम्लता जाती रहतीहै और रक्तके न रहनेसे पीडा भी नहीं रहती । रुधिर निकालनेसे दोषोंके दूर होजानेपर रोगी अत्यन्त कमजोर होजाताहै । उस समय उसको जांगलजीवोंके मांसरससे तर्पित करना चाहिये । जब वह बलसम्पन्न होजाय तब वाकी रही पीडाको घृतपान कराके दूर करे रक्तपित्तके अत्यंत बढजानेसे वा चिकित्साके ठीक न होसकनेसे जो गुल्म पकजाय उसमे शत्रुक्रिया ही उत्तम चिकित्सा है ॥ ३४-३७ ॥

अपक्व गुल्मके लक्षण ।

गुरुः कठिनसंस्थानो गूढमांसोत्तराश्रयः ।

अविवर्णः स्थिरश्चैव ह्यपक्वो गुल्म उच्यते ॥ ३८ ॥

भारी, कठोराकृति, गूढमांसमें स्थित, जिसका वर्ण न विगडा हो और अचल हो वह अपक्व गुल्म होताहै ॥ ३८ ॥

विदह्यमान गुल्मके लक्षण ।

दाहशूलाग्निसंक्षोभस्वप्ननाशारतिर्ज्वरैः ।

विदह्यमानं जानीयाद्गुल्मंतमुपनाहयेत् ॥ ३९ ॥

जो गुल्म (गोला) पकनेवाला हो उसमें दाह, शूल, अग्निसंक्षोभ, निद्रानाश, प्रलाप और ज्वर यह लक्षण होतेहैं । इसपर गुल्मनाशक लेप आदि करना चाहिये ॥ ३९ ॥

संपक्व गुल्मके लक्षण ।

विदाहलक्षणेगुल्मेवहिस्तुङ्गेसमुन्नते ।

वस्तिसन्निभे । निपीडितोन्नतेस्तब्धेसुप्ततृषार्धपीडनात् ॥

॥ ४० ॥ तत्रैवपिण्डितेशूलेसंपक्वंगुल्ममादिशेत् । तत्रधान्वन्त-

रीयाणामधिकारःक्रियाविधौ ॥ ४१ ॥ वैद्यानांकृतयोग्यानांव्यध-

शोधनरोपणैः । अन्तर्भागस्यचाप्येतत्पच्यमानस्यलक्षणम् ॥ ४२ ॥

इस प्रकार पाकलक्षणोंके होनेपर गुल्म बाहरको और ऊंचा होकर उठनाहै, कालावर्ण होजाताहै और इसके किनारे लाल होजातेहैं, स्पर्श करनेसे बस्तिकेसे आकाशका प्रतीत हो, हाथसे दबाकर छोडनेपर फिर ऊंचा होजाय, किनारेसे दाबने पर स्तब्ध और सुप्त प्रतीत हो, एक ही स्थानमें गोलासा रहाकरे और पीडायुक्त हो तब इसे संपक्व (पकाहुआ) गुल्म समझना चाहिये । ऐसे गुल्मरोगमें सिद्धहस्त, धन्वन्तरीजीके कहेहुए शल्यशलाक्यतंत्रके जाननेवाले योग्य वैद्य (जराहों) को

व्यधन, शोधन और रोपण द्वारा चिकित्सा करनेका अधिकार है । भीतरकी ओरको पकनेवाले गुल्मके भी ऊपरोक्त ही लक्षण होंतें ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अंतस्थ गुल्मके लक्षण और चिकित्साक्रम ।

हृत्क्रोडशूनतान्तःस्थेवहिःस्थेपार्श्वनिर्गतिः। पत्रवःस्रोतांसिसंक्लि-
द्यत्रजस्यूध्वमधोपिवा ॥ ४३ ॥ स्वयंप्रवृत्तन्तंदोषमुपेक्षेतहिताशनैः।

दशाहंद्वादशाहंवारक्षन्भिपगुपद्रवान् ॥ ४४ ॥ अत ऊर्ध्वमंतपा-
नंसर्पिपःसविशोथनम् । शुद्धंसतिक्तंसक्षौद्रंप्रयोगेसर्पिरिप्यते ॥ ४५ ॥

अन्तःस्थगुल्ममें हृदय और क्रोड (उस गुल्मके शीर्षभाग) में सूजन होतीहै और वहिस्य गुल्म पसवाडोंमें प्रकट होताहै । गुल्म पककर स्रोतोंको क्लेदित (गीला) कर ऊपरकी ओर वा नीचेकी ओर गमन करताहै । यदि दोष अपने आप निकलने लगे तो हितकारी पथ्य सेवन करावे फिर वैद्य उपद्रवोंकी रक्षा करताहुआ इसकी दश वारह दिवसतक उपेक्षा करे । इसके अनन्तर संशोधन घृतका सेवन करावे । इसप्रकार जब रोगी शुद्ध होजाय तो तिक्त औषधियोंके साथ सिद्ध क्वाहाहुआ घृत ग्रहण मिलाकर पिलावे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

कफगुल्मकी चिकित्सा ।

शीतलैर्गुरुभिःस्निग्धैर्गुल्मेजातेकफात्मके ।

अचम्यस्याल्पकायाग्नेः कुर्याल्लंघनमादितः ॥ ४६ ॥

शीतल, भारी और चिकने पदार्थोंके अधिक सेवनसे जो कफात्मक गुल्म उत्पन्न होताहै उसमें वमनके योग्य और मन्दाग्नियुक्त रोगीको प्रथम लंघन कराना-
चाहिये ॥ ४६ ॥

वमनके योग्य रोगी ।

मन्दोऽग्निर्वेदनामन्दोगुरुस्तिमितकोष्ठता ।

सोत्केशाचारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः ॥ ४७ ॥

जिस गुल्मरोगीकी जठराग्नि मन्द होगई हो, पीडा मन्द होतीहो तथा कोष्ठमें भारीपन और गीलापनसा प्रतीत हो एवं जिसको उत्कलस (जी मचलाना) और अरुचि हो वह रोगी वमन करानेके योग्य होताहै ॥ ४७ ॥

उष्णैरेवोपचार्यस्य कृते वमनलंघने । योज्याचाहारसंसर्गीभेपजेः

१ कोई यहां गुल्मशब्दसे अंतर विद्रधि मानतेहैं । इससे पहिले आमाशयस्थ गुल्म (वाप-
गोडा) का वर्णन है । (२) अंतर्विद्रधिका निर्देश है ।

कटुतिक्तकैः ॥ ४७ ॥ सानाहंसविबंधं च गुल्मं कठिनमुन्नतम् । दृष्ट्वा-
दौस्वेदयेद्युक्त्यास्विन्नञ्चविनमेद्भिषक् ॥ ४८ ॥ लंघनोल्लेखनेस्वे-
देकृतेऽग्नौसंप्रधुक्षिते । कफगुल्मेपिवेत्कालेसक्षारकटुकंघृतम् ॥
॥ ४९ ॥ स्थानादपसृतंज्ञात्वाकफगुल्मं विरेचनैः । सस्नेहैर्वस्तिभि-
र्वाथशोधयेद्दशमूलकैः ॥ ५० ॥

फिर वमन और लंघन करनेके अनन्तर उष्ण कटु और तिक्त औषधियोंको आहारमें मिलाकर देना चाहिये । अकारा और विबंधयुक्त गुल्म यदि कठोर और उन्नत हो तो उसमें युक्तिपूर्वकं स्वेदन करना चाहिये क्योंकि स्वेदन कर्मद्वारा यह नीचा होजाताहै । इस प्रकार लंघन वमन और स्वेदनके करनेके अनन्तर जब अग्नि प्रदीप्त होजाय तब कफजनित गुल्ममें क्षार और कटु द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ घृत पिष्टाना चाहिये । उपरोक्त लंघनादि उपचारों द्वारा जो कफगुल्म अपने स्थानसे चलायमान होजाय, तो दशमूलके औषधियोंसे सिद्ध किया स्निग्ध विरेचन अथवा स्नेहनवस्ति द्वारा उसका संशोधन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कफके गुल्ममें अन्य उपदेश ।

मन्दाग्नावनिलेमूढेज्ञात्वासस्नेहमाशयम् । गुलिकाश्चूर्णनिर्यूहाः
प्रयोज्याःकफगुल्मिनाम् ॥ ५१ ॥ कृतमूलं महावास्तुं कठिनं स्ति-
मितं गुरुम् । जयेत्कफकृतं गुल्मं क्षारारिष्टाग्निर्कर्मभिः ॥ ५२ ॥

कफगुल्मवाले मनुष्यकी यदि अग्नि मन्द पडगई हो और अधोवायु रुकगईहो तथा क्षामाशय स्निग्ध हो तो उसको अग्निवर्द्धक, गुल्मनाशक और वायुके निकाल-
नेवाली गुटिका, चूर्ण और क्वाथादिक सेवन करावे । जो कफगुल्म जड पकड गयाहो और बहुत फैलगयाहो, कडा, गीला और फेनयुक्त भारी हो उसको क्षार, अरिष्ट, और अग्निर्कर्म द्वारा शान्त करना चाहिये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

गुल्ममें क्षारविधि ।

दोषप्रकृतिगुल्मन्तुयोगं बुद्ध्वा कफोत्वणे । बलदोषप्रमाणज्ञः क्षारं
गुल्मेप्रयोजयेत् ॥ ५३ ॥ एकान्तरं द्वयन्तरं वाऽग्रहं विश्रम्यवापुनः ।
शरीरबलदोषाणां वृद्धिक्षपणकोविदः ॥ ५४ ॥ श्लेष्माणं मधुरं त्रि-
बंधं मांसक्षीरघृताशिनः । भित्त्वा भित्त्वाशयान्क्षारः क्षरत्वात्
क्षारयत्यधः ॥ ५५ ॥

कफप्रधान गुल्मरोगमें दोष, प्रकृति, गुल्म और योगको विचारकर क्षारका प्रयोग करे । फिर एक दिन, दो दिन अथवा तीन दिन ठहरकर शरीर, बल और दोषोंमें न्यूनधिकता विचारकर उसीके अनुसार फिर क्षारका प्रयोग करे । क्षार-अपनी क्षरणशक्तिके बलसे मांस दूध और घी खानेवाले मनुष्यके आशयको भेदन करके मधुर स्निग्ध कफको अधोमार्गद्वारा निकाल देताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

गुल्ममें अरिष्ट ।

मन्देऽन्नावरुचौसारम्येमध्येसखेहमश्रताम् ।

प्रयोज्यामार्गशुद्धयर्थमरिष्टाः कफगुल्मिनाम् ॥ ५६ ॥

चिकना भोजन करनेवाले कफ गुल्म रोगीकी यदि जठराग्निमन्द पडगईहो और अरुचि हो एवं मद्य सारम्य हो तो मार्गकी शुद्धिके लिये उनको अरिष्ट पिलाना हितकारी है ॥ ५६ ॥

गुल्मदागदेना ।

लंघनोल्लेखनैःस्वेदैः सर्पिष्पानैर्विरेचनैः । वस्तिभिर्गुलिकाचूर्णक्षारारिष्टगणैरपि ॥ ५७ ॥ श्लैष्मिकः कृतमूलत्वाद्यस्यगुल्मोनशाम्यति । तस्यदाहोद्वृतेरक्तेशरलोहादिभिर्मतः ॥ ५८ ॥ औष्ण्यात्क्षप्याच्चशमयेदग्निर्गुल्मेकफानिलौ । तयोः शमाच्चसंघातोगुल्मस्यविनिवर्तते ॥ ५९ ॥

लंघन, वमन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, वस्तिकर्म, गोली, चूर्ण, क्षार और अरिष्ट इन सबका प्रयोग करनेसे भी जो कफजनितगुल्म शान्त न हो और बद्धमूल (जड पकड) हो गया हो तो पहिले रक्तमोक्षण कराके फिर शर (वाण) अथवा लोहसे दग्धकरना (दागदेना) उचित है अग्नि अपनी उष्णता और तीक्ष्णतासे गुल्मरोगमें कफ और वायुको शान्त कर देतीहै । इन दोनोंके शान्त होनेसे गुल्म (गोला) भी नष्ट होजाताहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

दागदेनेयोग्यवैद्य ।

दाहेधान्वन्तरीयाणामत्रापिभिषजांबलम् । क्षारप्रयोगेभिषजां क्षारतंत्रविदांबलम् ॥ ६० ॥ व्यामिश्रदोषैर्व्यामिश्रएषएवक्रिया क्रमः । सिद्धान्तःप्रवक्ष्यामियोगान् गुल्मनिवर्हणान् ॥ ६१ ॥

जो वैद्य धन्वन्तरीके मतानुसार क्षार और अग्निकर्मादि कर्म जानतेहैं वे ही दाहकर्म (दागदेना) कर सकतेहैं । और क्षारकर्मको जाननेवाले क्षारका प्रयोग (तेजावसे

दग्धकरना) कर सकते हैं । जो दो दो दोपोंसे उत्पन्नहुए गुल्म हैं उनमें मिलीहुई चिकित्सा करना चाहिये । अब हम गुल्मनाशक सिद्ध प्रयोगोंको कहतेहैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

त्र्यूपणादिघृत ।

त्र्यूपणांत्रिफलाधान्यंविडंगाचव्यचित्रकैः ।

कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ॥ ६२ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, घनियां वायाविडंग, चव्य और चित्रकका कल्क बनाकर यह कल्क और चार गुना दूध मिलाकर घृतसिद्धकरे । यह घृत वातगुल्मको दूर करताहै ॥ ६२ ॥

अन्य त्र्यूपणादिघृत ।

एतएवचकल्काःस्युःकपायःपंचमूलिकः ।

द्विप्रश्चमूलिकोवाथतद्घृतं गुल्मनुत्परम् ॥ ६३ ॥

इन्हीं ऊपर कहीहुई त्रिकुटा आदि औषधियोंका कल्क और पंचमूल अथवा दशमूलके कायमें घृतको सिद्ध करे यह घृत भी गुल्मरोगको नष्ट करताहै ॥ ६३ ॥

अन्ययोग ।

पट्टपलंवापिवेत्सर्पिर्दुक्तं राजयक्ष्मणि । प्रसन्नयावाक्षीरार्थः सुरयादाडिमेनवा ।
दध्नःशरेणवाकार्यं घृतं मारुतगुल्मिनाम् ॥ ६४ ॥

जो पट्टपल घृत राजयक्ष्मारोगमें कहाहै उसे दूधके बदलेमें प्रसन्ना, सुरा, दाडिमका रस अथवा दहीके पानीके साथ पकाकर देवे तो वातगुल्म शान्त होताहै ॥ ६४ ॥

हिंङ्वादि घृत ।

हिंङ्गुसौवर्चलाजाजीविडदाडिमदीप्यकौ । पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ ६५ ॥
शठीवचाजगन्धैलासुरसैश्चविपाचितम् । शूलानाहहरं सर्पिर्दग्नाचानिलगुल्मिनाम् ॥ ६६ ॥

हिंङ्ग, संचरनमक, जीरा, विडलवण, अनारदाना, अजवायन, कूठ, त्रिकुटा, घनियां, अमलवेत, जवाखार, चीता, कचूर, वच, अजमोद, इलायची, सुरसा, तुलसी इनके कल्क और दहीसे घृतको सिद्ध करे । ये घृत वातरोगियोंके शूल और अनाहको दूर करताहै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

हवुपादिघृत ।

हवुपाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः । साजाजीपिप्पलीमूलदी-

प्यकैर्विपचेद्घृतम् ॥ ६७ ॥ मातुलुङ्गदधिकीरकोलमूलकदाडिमैः ।
रसैस्तद्वातगुल्मघ्नशूलानाहविमोक्षणम् ॥ ६८ ॥ योन्यशोग्रहणी-
दोषश्वासकासारुचिज्वरान् । वातहृत्पाश्वशूलश्चघृतमेतद्व्यपो
हति ॥ ६९ ॥

हाडवेर, त्रिकुटा, कलौंजी, चव्य, चीता, संधानमूक, कालाजीरा, पीपलामूल,
अजवापन इन सबका कल्क, और विजौरेका रस, दही, दूध, वेरका रस, मूलीकारस,
अनारका रस, इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । यह घृत वातगुल्म, शूल,
आनाह, योन्यर्श, ग्रहणीदोष, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, वातरोग, और पाश्वशू-
लको नष्ट करदेताहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पल्याःपिचुरध्यधोदाडिमाद्विपलंपलम् । धान्यात्पञ्चघृताच्छु-
ण्ठ्याकर्षक्षीरंचतुर्गुणम् ॥ ७० ॥ सिद्धमेतैर्घृतंसद्योवातगुल्मंवि-
कित्सिति । योनिशूलंशिरःशूलमर्शासिविपमज्वरम् ॥ ७१ ॥

पीपल तीन तोला, अनारदाना आठ तोला, धनियां चार तोला, घृत बीस तोला
सोठ दो तोला और दूध अस्सी तोला इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । यह
घृत वातगुल्मको तत्काल नष्ट कर देताहै । इस घृतके सेवन करनेसे योनिशूल,
शिरका शूल, ववासीर और विपमज्वर यह सब दूर होजातेहैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

घृतानामौषधगुणाय एतेपारिकीर्तिताः ।

तेचूर्णयोगावर्त्यस्ताःकपायास्तेचगुल्मिनाम् ॥ ७२ ॥

जो द्रव्य ऊपरोक्त घृतोंके सिद्ध करनेके लिये कहेंहैं, उन्हीं औषधियोंके चूर्ण,
चूर्णों और कायोंका प्रयोग करनेसे गुल्मरोग शान्त होताहै ॥ ७२ ॥

पेया ।

कोलदाडिमघर्मांश्चसुरामण्डाम्लकाञ्जिकैः । शूलानाहनुदःपेया
बीजपूरसेनवा ॥ ७३ ॥ चूर्णानिमातुलुंगस्यभावितस्थरसेनवा ।
कुर्याद्वर्त्तीःसगुडिकागुल्मानाहातिंशान्तये ॥ ७४ ॥

वेरका रस, अनारका रस, इनको गरमजल, सुरामण्ड, खट्टी कांजी, अथवा विजौरेके
रसमें बनाई पेया पान करनेसे शूल और आनाह दूर होताहै अथवा विजौरेके
चूर्णमें विजौरेके रगड़ी भावना देकर, चूर्णों या गोड़ी बनाकर सेवन करे तो गुल्म,
अफारा, पीटा ये सब शान्त होजातेहैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

हिङ्गवादिचूर्ण ।

हिङ्गुत्रिकुटकांपाठांहवुषामभयांशठीम् । अजमोदाजगन्धेचति-
न्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ७५ ॥ दाडिमंपुष्करंधान्यमजाजींचित्रकं
वचाम् । द्रौक्षारौलवणेद्वेचचव्यंचैकत्रयोजयेत् ॥ ७६ ॥ चूर्णमेत-
त्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम् । प्राग्भक्तमथवापेयंमध्येनोष्णोदके-
नवा ॥ ७७ ॥ पार्श्वहृद्दस्तिशूलेपुगुल्मेवातकफात्मके । आनाहे
मूत्रकृच्छ्रेवाशूलेत्रगुदयोनिजे ॥ ७८ ॥ ग्रहर्ण्यशोविकारेपुप्लीहि
पाण्डुरामयेऽरुचौ । उरोविद्वन्धेकासेचहिक्काश्वासगलग्रहे ॥ ७९ ॥
भाषितंमातुलुंगस्यचूर्णमेतद्रसेनवा ॥ बहुशोगुलिकाःकार्याःकार्मु-
काःस्युस्ततोऽधिकम् ॥ ८० ॥

* हींग, त्रिकुटा, पाठा, हाऊवेग, हरडे, अजमोद, कचूर, अजगंध, इमली, जमल-
वेत, अनारदाना, कूठ, धनियां, कालाजीरा, चीता, वच, सजीखार, जवा, क्षार
संधानमक, संचरनमक, और चव्य इन सबका बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको
अनुपानके साथ सेवन करै अथवा भोजन करनेसे पहिले मद्यके साथ या उष्ण जलके
साथ लेवे । इस चूर्णके सेवन करनेसे पार्श्वशूल, हृत्शूल, वस्तिशूल, वातकफका गुल्म,
आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदशूल, योनिशूल, ग्रहणीविकार, अर्शविकार, छीहा, पाण्डुरोग,
अरुचि, छातीकी रुकावट, खांसी, हिचकी, श्वास और गलग्रह दूर होतेहैं । इसी
चूर्णको विजौरेके रसमें खरलकर-गोलियां बनावे । ये गोलियां चूर्णसे भी अधिक
गुणकारी हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

गुल्ममें अन्वययोग ।

मातुलुङ्गरसोहिङ्गुदाडिमंविडसैन्धवे ।

सुरामण्डेनपातव्यंवातगुल्मरुजापहम् ॥ ८१ ॥

विजौरेका रस, हींग, अनारदाना, विडनमक, संधानमक, इनको सुरामण्डके
साथ पीनेसे वायुका गुल्म नष्ट होजाताहै ॥ ८१ ॥

शटचादि चूर्ण ।

शटीपुष्करहिङ्गवम्लवेतसक्षारचित्रकान् । धान्यकंश्चयमानीश्चवि-
डङ्गसैधवंवचाम् ॥ ८२ ॥ सचव्यपिप्लीमूलमजगन्धं सदाडिम-

म् । अजाजीञ्चाजमोदाञ्जचूर्णकृत्वाप्रयोजयेत् ॥ ८३ ॥ रसेनमा-
तुलुङ्गस्यमधुयुक्तेनवायुनः । भावितंगुडिकांकृत्वासुपिष्टांकोलस-
म्मिताम् ॥ ८४ ॥ गुल्मंप्लीहानमानाहंश्वासंकासमरोचकम् ।
हिकांहृद्रोगमर्शांसिविविधाञ्छिरसोरुजान् ॥ ८५ ॥ पांड्वामयं-
कफोत्कलेशंसर्वजाञ्चप्रवाहिकाम् । पार्श्वहृद्रस्तिशूलञ्चगुडिकैपा-
व्यपोहति ॥ ८६ ॥ २

कचूर, पोहकरमूल, हींग, अमलवत, जवाखार, चीता, धनियां अजवायन. विडंग,
सैंधानमक, वच, चव्य, पीपलामूल, अजगंध, अनार, काला जीरा, और अजमोदका
चूर्ण वनाकर सेवन करनेसे अथवा विजौरके रसकी भावना देकर शहत मिलाके
जंगली बेरके बराबर गोलियां वनाकर सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा, आनाह, श्वास,
खांसी, अरुचि, हिचकी, हृद्रोग, अर्शरोग, शिरोवेदना, पाण्डुरोग, कफका उत्केश,
सब प्रकारकी प्रवाहिका, पार्श्वशूल, हृच्छूल, और वस्तिशूल यह सब रोग दूर होते
हैं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

अन्ययोग ।

नागरार्द्धपलंपिष्टाद्वेपलेलुञ्चितस्यच । तिलस्यैकंगुडपलंक्षीरेणो-
प्णेनवापिवेत् ॥ वातगुल्ममुदावर्तयोनिशूलञ्चनाशयेत् ॥ ८७ ॥

दो तोले सांठ छिलके रहित, तिल आठ तोले, गुड चार तोले इन सबको गर्म
दूधके साथ पीवे तो वातगुल्म. उदावर्त और योनिशूल नष्ट होजातेहैं ॥ ८७ ॥

कफ तथा पित्तानुबन्धी गुल्मपर योग ।

पिवेदैरण्डकंतैलंवारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेवतैलंपयसावातगु-
ल्मीपिवेन्नरः । श्लेष्मण्यनुवलेपूर्वमतंपित्तानुगेपरम् ॥ ८८ ॥

कफके अनुबंधवाले वातगुल्ममें वारुणीमण्ड मिलाकर एंडैतल पीवे । और
पित्तके अनुबंधवाले वातगुल्ममें दूधमें मिलाकर एंडैतल पीना हित कर्वाहै ॥ ८८ ॥

लहसनका दूध ।

साधयेत्सिद्धशुष्कस्यलशुनस्यचतुष्पलम् । क्षीरेजलाष्टगुणिते-
क्षीरशेषञ्चनापिवेत् ॥ ८९ ॥ वातगुल्ममुदावर्तगृध्रसीविषमज्वर-
म् । हृद्रोगंविद्रधींशोपंत्ताधयत्याशुतत्पयः ॥ ९० ॥

साफ करके सुखायेहुए लहसुनको चार पल लेकर दूध वह लहसुन और अठगुना जल मिलाकर पकावे । जब पानी जलकर दूध शेष रहजाय तब उस दूधको छानकर पीवे तो वातगुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसी, विपमज्वर, हृद्रोग, विद्रधी, शोष यह सब रोग नष्ट होतेहैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अन्ययोग ।

तैलंप्रसन्नागोमूत्रमारनालयवाग्रजः ।

गुल्मंजठरमानाहंपीतमेकत्रसाधयेत् ॥ ९१ ॥

तिलोंका तैल, वारुणीमण्ड, गोमूत्र, कांजी और जवाखारको एकत्र पकाकर पीवे तो गुल्मरोग, जठररोग, और अफारा दूर होजातेहैं ॥ ९१ ॥

शिलाजीतका प्रयोग ।

पञ्चमूलकपायेणसक्षीरेणशिलाजतु ।

पिवेत्तस्यप्रयोगेणवातगुल्मात्प्रमुच्यते ॥ ९२ ॥

पञ्चमूलके काथ और दूधके साथ शिलाजीतका सेवन करनेसे वातगुल्मसे छूट जाताहै ॥ ९२ ॥

अन्यप्रयोग ।

वाट्यंयूपेणपिप्पल्यामूलकानारसेनवा ।

भुक्त्वास्त्रिगुणमुदावर्त्ताद्वातगुल्माद्विमुच्यते ॥ ९३ ॥

पीपलके काथ अथवा मूलीके रसके साथ भुने जवाका मण्ड सेवन करे तो उदावर्त्त और वातगुल्म दूर होताहै ॥ ९३ ॥

गुल्ममें स्वेदन और वस्तिकर्मका निर्देश ।

शूलानाहविवन्धार्त्तस्वेदयेद्वातगुल्मिनम् । स्वेदैःस्वेदविधावुक्तैर्ना-

डीप्रस्तरशङ्करैः ॥ ९४ ॥ वस्तिकर्मपरंविद्यात्गुल्मघ्नंतद्धिमारुतम् ।

स्वेस्थानेप्रथमञ्जित्वासद्योगुल्ममपोहति ॥ ९५ ॥ तस्मादभीक्षण-

शोगुल्मानिरूहैःसानुवासनैः । प्रयुज्यमानैःशाम्यन्तिवातपित्तक-

फात्मकाः ॥९६॥ गुल्मघ्नाविविधाट्टाःसिद्धाःसिद्धिपुवस्तयः॥९७॥

यदि वातगुल्मवाला रोगी शूल, आनाह और विबंधसे पीडित हो तो उसको स्वेदाध्यायमें कहेहुए नाडीस्वेद, प्रस्तरस्वेद और शंकरस्वेद द्वारा स्वेदन करना चाहिये । वातजगुल्ममें वस्तिकर्म बहुत श्रेष्ठ है । क्योंकि यह वायुको उसके स्थानमें

ही जीतकर गुल्मको दूर करदेताहै । इसलिये निरूहण और अनुवासन वस्त्रियोंका चारंवार क्रमपूर्वक प्रयोग करनेसे, वातके, पित्तके और कफके गुल्म शान्त होजातेहैं । सिद्धिस्थानमें गुल्मनाशक अनेक प्रकारके सिद्ध वस्त्रिप्रयोग वर्णन किये गयेहैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

गुल्मपर तैलोंका निर्देश ।

गुल्मघ्नानिचतैलानिवक्ष्यन्तेवातरोगिके । तानिमारुतगुल्मेपुपानाभ्यङ्गानुवासनैः । प्रयुक्तान्याशुसिद्ध्यन्तितैलं ह्यनिलजित्वरम् ९८

सब प्रकारके गुल्मनाशक तैल वातरोगाध्यागमें वर्णन कियेहैं इन तैलोंको वात गुल्ममें पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा प्रयुक्त करनेसे वातगुल्म बहुत शीघ्र नष्ट होजाताहै । वह तेल विशेषकरके वायुको नष्ट करतेहैं ॥ ९८ ॥

गुल्मपर घृतपान ।

नीलिनीचूर्णसंयुक्तपूर्वोक्तघृतमेववा । समलायप्रदेयस्याच्छोधिं
वातगुल्मिके ॥९९॥ नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकाम्पित्यकैःसह ।
शोधनार्थघृतंदेयंसविडक्षारनागरम् ॥ १०० ॥

मलयुक्त वातगुल्मरोगीको नीलिनीका चूर्ण मिला हुआ घृत अथवा पूर्वोक्त रेचक घृत शोधनके लिये देना चाहिये । अथवा नीलिनी, निसोथ, दन्ती, हरड, कवीला, विडनमक, जवाखार, और मांठ इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृत संशोधनके लिये पिलावे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

नीलिन्यादिघृत ।

नीलिनीत्रिवृतांरास्नां वलांकटुकरोहिणीम् । पचेद्विडङ्गव्याधीश्वपालिकानिजलाढके ॥ १०१ ॥ तेनपादावशेषेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् । दध्नःप्रस्थेनसंयोज्यसुधाक्षीरपलेनच ॥ १०२ ॥ ततोघृतपलंदद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम् । जीर्णसम्यग्विवरिक्तञ्चभोजयेद्रसभोजनम् ॥ १०३ ॥ गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपाण्डूवामयज्वरान् । श्वित्रं प्लीहानमुन्मादंघृतमेतद्व्यपोहति ॥ १०४ ॥

नीलिनी, निशोथ, गस्ना, खगेटी, कुटकी, वापविडंग, कटेगी इन सबको एक एक पल लेकर एक आढक जलमें पकावे जब चौथाई जल रहजाय तब इसमें एक प्रस्थ दही और एक पल शोहरका दूध मिलाकर एक प्रस्थ घी पकावे । इसमेंसे एक

पल घृत यवागूमण्डमें मिलाकर रोगीको पिलावे । जब औषध जीर्ण होकर रोगीको अच्छी तरह विरेचन होलेवे तब मांसरसके साथ साठीका भात भोजन करावे । यह घृत गुल्मकाढे, उदररोग, व्यंग, शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर, श्वित्रकुष्ठ, घृहा, और उन्माद रोगको शान्त करताहै ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

वातगुल्ममें पथ्यादि ।

कुक्कुटाश्रमयूराश्रतित्तिरिक्वाश्ववर्तकाः । शालयोमदिरासर्पिर्वात-
गुल्मभिपग्जितम् ॥ १०५ ॥ हितमुष्णद्रवस्निग्धभोजनंवातगु-
ल्मिनाम् । समण्डवारुणीपानंपक्ववाधान्यकैर्जलम् ॥ १०६ ॥ मन्दे-
शौवर्द्धतेगुल्मोदीतेचाशौप्रशाम्यति । तस्मादन्नातिसौहित्यंकुर्या-
न्नातिविलंघितम् ॥ १०७ ॥ सर्वत्रगुल्मेप्रथमेस्नेहस्वेदोपपादिते ।
याक्रियाक्रियतेसिद्धिसायातिनिविरुक्षिते ॥ १०८ ॥

मुर्गा, मोर, तीतर, कौंच, बटेर, शालीचांवल, मद्य और घृत यह सब वातगुल्ममें हितकारक हैं । तथा उष्ण, पतला और म्लिग्ध भोजन हित है । मण्डयुक्त वारुणी मद्य वा धनियां डालकर औटायानुआ जल भी हितकारी है । अग्निके मन्द होजानेसे गुल्म बढ़ताहै और प्रदीप्त होनेसे शान्त होजाताहै । इसलिये न तो अधिक पेटभर खाना चाहिये और न लंघन ही करना चाहिये । गुल्मरोगमें प्रथम स्नेहन, स्वेदन कर्म करके जो क्रियाकीजातीहै उससे रोग शान्त होजाताहै और रुक्षशरीर मनुष्यकी चिकित्सा कीजातीहै वह निष्फल होतीहै ॥ १०५-१०८ ॥

पित्तगुल्मकी चिकित्सा ।

भिपगाल्यधिकम्बुद्धापित्तगुल्ममुपाचरेत् ।

वैरेचनिकसिद्धेनपयसासर्पिषापिवा ॥ १०९ ॥

पित्तगुल्मको सांघातिक जानकर उसकी चिकित्सा करना चाहिये इसमें विरेचन-कारक द्रव्योंके साथ सिद्ध किये हुए घृत अथवा दूधों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०९ ॥

रोहिण्यादिघृत ।

रोहिणीकटुकानिम्बंमधुकंत्रिफलात्वचः । कार्षिकात्रायमाणाचप-
टोलात्रिवृतापले ॥ ११० ॥ द्विपलश्चमसूराणांसाध्यमष्टगुणेभसि ।
घृताच्छेपंघृतसमंसर्पिषश्चतुष्पलम् ॥ १११ ॥ पित्तेत्समृच्छिततेन

गुल्मः शाम्यतिपैत्तिकः । ज्वरस्तृष्णाचशूलञ्चभ्रमंमृच्छीरुचि-
स्तथा ॥ ११२ ॥

कुटकी, नीमकी छाल, महुआ, त्रिफलेकी छाल और त्रायमाणा यह सब एक एक तोला लें। और पटोलकी जड़ और निशोथ चार चार तोला लें, दो पल मसूर इन सबको आठगुने जलमें औंटावे, जब घृतके समान शेष रहजाय तब छानकर इसमें चार पल घृतको पकावे अथवा उन्हीं औषधोंसे सिद्ध किये घृतको इस १६ तोले काथमें ४ तोला मिलाकर सेवन करनेसे पैत्तिक गुल्म, ज्वर, तृष्णा, शूल, भ्रम, मृच्छा और अरुचिः ये सब शान्त होजातेहैं ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

त्रायमाणाद्यघृत ।

जलेदशगुणेसाध्यन्त्रायमाणाचतुष्पलम् । पञ्चभागस्थितंपूतंक-
ल्कैःसंयोज्यकार्पिकैः ॥ ११३ ॥ रोहिणीकटुकामुस्तेत्रायमाणादु-
रालभा । कल्कैस्तामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ ११४ ॥
रसस्यामलकानाञ्चक्षीरस्यचघृतस्यच । पलानिपृथगष्टाष्टौदत्त्वा-
सम्यग्विपाचयेत् ॥ ११५ ॥ पित्तरक्तभवंगुल्मंवीसर्पपैत्तिकंज्वरम् ।
हृद्रोगंकामलांकुष्ठंहन्यादेतद्घृतोत्तमम् ॥ ११६ ॥

चार पल त्रायमाणको दशगुने जलमें पकावे जब पांचवां भाग रहजाय तब उसको उतारकर छानले । फिर इसमें कुटकी, नागमोथा त्रायमाणा, जवासा भूमिआंवला क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन. उत्पल इनको एक एक तोला लें पीस कूटकर उसमें डालदे और आंवलेका रस आठ पल, दूध आठ पल, घृत आठ पल यह सब मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे । सिद्ध होजानेपर इस घृतके सेवनकरनेसे पैत्तिकगुल्म, रक्तजगुल्म, विसर्प, पित्तका ज्वर, हृद्रोग, कामला, कोठ यह सब रोग दूर होजातेहैं ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

आमलकादिघृत ।

रसेनामलकेक्षूणांघृतपादंविपाचयेत् ।

पथ्यापादम्पिबेत्सर्पिस्तात्सिद्धिपित्तगुल्मनुत् ॥ ११७ ॥

आंवले और इखके गमेम चौथाई घी और घीसे चौथाई हरडका चूर्ण मिलाकर पकावे । सिद्ध होजानेपर इस घृतके सेवन करनेसे पैत्तिकगुल्म नष्ट होजाताहै ॥ ११७ ॥

द्राक्षादिघृत ।

द्राक्षामधुकंखर्जूरविदारीसशतावरीम् । परुपकाणित्रिफलांसाध-

घृतपलसंमिताम् ॥ ११८ ॥ जलाढकेपादशोषेरसमामलकस्यच ।

घृतमिक्षुरसंक्षीरमभयाकल्कपादितम् ॥ ११९ ॥ साधयेत्तं-

घृतंसिद्धंशर्कराक्षौद्रपादिकम् । प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तवि-

कारनुत् ॥ १२० ॥

मुनका, महुआ, खजूर, विदारीकंद, शतावर, फालसे और त्रिफला यह सब एक-
एक पल लें और एक आढक जलमें डालकर, अग्निपर पकावे जब चौथाई शेष
रहजाय, तब उतारकर छानलेवे फिर इसमें आंवलेका रस, घी, ईखका रस, दूध
और घृत तथा घृतसे चौथाई हट्टेका कल्क डालकर सबका पाक करले । जब घृत
सिद्ध होजाय तब उसमें चौथाई मिसरी और गहत डालकर सेवनकरे तो पित्तगुल्म
तथा पित्तघ्ने उत्पन्न होनेवाले संपूर्ण विकार नष्ट होजातेहैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

वासाघृत ।

वृषंसमूलमापोथ्यपचेदष्टगुणेजले । शोषेऽष्टभागेतस्यैवपुष्पकल्कं-

प्रदापयेत् ॥ १२१ ॥ तेनसिद्धंघृतंशीतंसक्षौद्रंपित्तगुल्मनुत् ।

रक्तपित्तज्वरज्वासकासहृद्रोगनाशनम् ॥ १२२ ॥

अड़साको जड़ समते कूटकर आठगुने जलमें पकावे जब आठवां भाग जल रहजाय
तब उसमें उर्साके फूलका कल्क और घी डालकर पकावे । घृतमात्र शेष रहे तो
उतागले, तथा ठंडा होनेपर गहत मिलाकर उसका सेवन करे तो पित्तगुल्म, रक्तपित्त
ज्वर, श्वास, खासी और हृदयरोग नष्ट होजातेहैं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अन्य त्रायमाणघृत ।

द्विपलन्त्रायमाणायाजलद्विप्रस्थसाधितम् । अष्टभागस्थितं पूतं-

कोष्णंक्षीरसमंपिबेत् ॥ १२३ ॥ पिबेदुपरितस्योष्णंक्षीरमेवयथा-

वलम् । तेननिर्घृतदोषस्यगुल्मःशाम्यतिपैत्तिकः ॥ १२४ ॥

दो पल त्रायमाणको दो प्रस्थ जलमें डालकर पकावे जब आठवां भाग शेष
रहजाय तब छानकर बगवरका दूध मिलाकर मन्दोष्ण पीवे, ऊपरसे यथाशक्ति
गरम दूध पीवे । इसका सेवन करनेसे दोष दूर होकर पित्तगुल्म शान्त होना-
ताहै ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

पित्तके गुल्ममें अनेक उपचार ।

द्राक्षाभयारसंगुल्मेपैत्तिकेसगुडंपिबेत् । लिह्यात्कम्पिलकवापिवि-

रेकार्थमधुद्रवम् ॥ १२५ ॥ शूलप्रशमनोऽभ्यंगः सर्पिंपापित्तगु-

लिनाम् । चन्दनाद्येनतैलेनतैलेनमधुकस्यवा ॥ १२६ ॥ येचपि-
 त्तज्वरार्तानांसतिक्ताःक्षीरवस्तयः । हितास्तेपित्तगुल्मिभ्योवक्ष्य-
 न्तेयेचसिद्धिषु ॥ १२७ ॥ शालयोजाङ्गलंमांसङ्गव्याज्यपयसी-
 घृतम् । खर्जूरामलकंद्राक्षादाडिमंसपरूपकम् ॥ १२८ ॥ आहारा-
 र्थंप्रयोक्तव्यंपानार्थंसलिलंशृतम् । वलाविदारीगन्धाद्यैःपित्तगु-
 ल्मचिकित्सितम् ॥ १२९ ॥ आमाम्बयेपित्तगुल्मेसामेवाकफवा-
 तिके । यवागूभिःखडैर्यूषैःसन्धुक्ष्योऽग्निविलङ्घिते ॥ १३० ॥ शम-
 प्रकोपौदोषाणांसर्वेषामग्निसंश्रितौ । तस्मादग्निसदारक्षेत्रिदाना-
 निचवर्जयेत् ॥ १३१ ॥

पित्तके गुल्मरोगमें विरेचनके लिये मुनक्का, हरडे और गुडका काथ पीवे । अथवा गहतमें कवीला मिलाकर चाटे । पित्तगुल्मवाले रोगियोंके शूलनाश करनेको घृतकी मालिश तथा चन्दनादितैल या मुलहठीके तैलकी मालिश करे । पित्तज्वरसे पीडित रोगियोंके लिये तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध क्षीरसे वस्तिकरना तथा आगे सिद्धिस्थानमें वर्णन की हुई वस्तियें पित्तगुल्ममें हितकारी होतीहैं । एवं शाहीचावल, जांगल पशुआंका मांस, गौ और बकरीका दूध, घी, खजूर, आँवला, मुनक्का, अनार, और फालसा, आहारकेलिये हित हैं और पीनेके लिये औटायामुआ जल देवे । खरैटी और शालिपर्णी आदि गणकी औषधियों द्वारा पित्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये । आमयुक्त पित्तगुल्ममें लघन कराके यवागू अथवा खड यूप का सेवन कराके अग्निको प्रदीप्त करे । सम्पूर्ण दोषोंकी शान्ति और प्रकोप जठराग्निके आश्रित हैं इसलिये, अग्निकी साम्यावस्थाके लिये सदा प्रयत्नवान् रहना चाहिये तथा जिन कागणोंसे रोग उत्पन्न हुआहो उनको त्याग देना चाहिये ॥ १२९-१३१ ॥

कफगुल्मकी चिकित्सा ।

वमनार्हायवमनं प्रदद्यात्कफगुल्मिने । स्निग्धस्विन्नशरीरायगु-
 ल्मेशैथिल्यमागते ॥ १३२ ॥ परिवेष्ट्यप्रदीप्तास्तुवल्बजानथवा-
 कुशान् । भिषक्कुम्भेसमावाप्यगुल्मेघटमुखह्विपेत् ॥ १३३ ॥
 संगृहीतोयदागुल्मस्तदाघटमथोद्धरेत् । वस्त्रान्तरंततःकृत्वाभिन्ध्या-
 द्गुल्मप्रमाणवित् ॥ १३४ ॥ विमार्गाजपदादर्शैर्थालाभंप्रपीडनैः ।
 मृद्धीयाद्गुल्ममेवैकंनत्वन्त्रहृदयंसृष्टेत् ॥ १३५ ॥

कफके गुल्मवाला रोगी यदि वमनके योग्य हो तो उसको वमन कराना चाहिये । प्रथम स्नेहन और स्वेदन करनेसे जब गुल्म नम्र होकर शिथिल होजाय तब गुल्म-स्थान पर प्रतलासा वस्त्र विछादेवे । फिर एक घडेमें वल्जतृण वा कुशार्की आग जलाकर गुल्मस्थानमें उस घडेका मुख लगादेवे, घडेकी भाफ गुल्मको आकर्षण करलेतीहै । जब गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडेको उठा ले और वस्त्रको हटाकर गुल्मका विस्तार देखलेवे और उसको विमर्ग, अजपद, और आदर्श इनमेसे किसी एक शस्त्रद्वारा भेदन करे । परन्तु केवल गुल्महीको प्रपीडन करे और आंतों वा हृदयपर किसी प्रकारका आघात होनेका बचाव रखे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

कफगुल्ममें स्वेदनविधि ।

तिलैरण्डातसीवीजसर्पपैःपरिलिप्यच ।

श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेद्भिषक् ॥ १३६ ॥

वैद्यको चाहिये कि कफगुल्मको तिल, एरण्ड, अलसी और सरसोंका लेप करके ऊपरसे सहतासहता गरम लोहेके पात्रसे स्वेदन करे ॥ १३६ ॥

दशमूलीघृत ।

सव्योपक्षारलवणंदशमूलीशृतंघृतम् ।

कफगुल्मञ्जयत्याशुसहिंशुविडदाडिमम् ॥ १३७ ॥

त्रिकुटा, जवाखार, संधानमक और दशमूलके काथ तथा कल्कमें घृतको पकावै फिर इस घृतको हींग, विडनमक और थनारके रसके साथ मिलाकर सेवनकरे तो कफगुल्म शीघ्र ही नष्ट होजाताहै ॥ १३७ ॥

भल्लातकादिघृत ।

भल्लातकानां द्विपलंपञ्चमूलपलोन्मितम् ।

साध्यं विदारीगन्धाद्य-

भापोथ्यसलिलाढकैः ॥ १३८ ॥

पादशेपेरसेतस्मिन्पिप्पलीनाग-

रंवचाम् । विडङ्गसैन्धवंहिंशुयावशूकंविडंशटीम् ॥ १३९ ॥

चित्रकंमधुकंराम्पिप्लवकंरुच्यंमंभिषक् ।

प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतं-

प्रस्थंविपाचयेत् ॥ १४० ॥ एतद्भल्लातकघृतंकफगुल्महरंपरम् ।

प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीरोगकासनुत् ॥ १४१ ॥

१ घडे (कुत्ते) की भाफने गुन्म बाहर आजाताहै फिर उसको युक्तिपूर्वक जानकार ही चीर सकताहै । इसमें प्राणजानेका भी भय है ।

शुद्धं मिलावे दो.पल, पंचमूलकी प्रत्येक गणकी औषधियां एक एक पल, और विद्रागीगन्ध आदि औषधोंको कूटकर एक आढक जलमें औटावे। जब चौथाई भाग शेष रहे तब उसमें पीपल, साँठ, वच, वायविडंग, संधानमक, हींग, जवाखार, विडनमक, कचूर, चीता, मुलैठी, रास्ना, प्रत्येक एक एक कर्प, दूध १ प्रस्य, घी १ प्रस्य इन सबको मिलाकर पकावे। सिद्ध होनेपर सेवन करनेसे यह भ्रष्टातक घृत कफगुल्मको दूर करनेमें परम उत्तम है। तथा प्लीहा, पाण्डुरोग, श्वास और ग्रहणीको दूर करताहै ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥

पञ्चकोल घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । पालिकैःसयवक्षारैर्घृत-
प्रस्थंविपाचयेत् ॥ १४२ ॥ क्षीरप्रस्थञ्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मंकफात्म-
कम् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नप्लीहकासज्वरापहम् ॥ १४३ ॥

पीपल, पिप्पलामूल, व्यच, चीता,साँठ और जवाखार यह एक २ पल लेवे, इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घृत डालकर सिद्ध करे। इस घृतका सेवन करनेसे कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, खांसी और ज्वर दूर होतेहैं ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतांत्रिफलांदन्तीदशमूलंपलोन्मितम् । जलचतुर्गुणेषुक्वाच-
तुर्भागस्थितंरसम् ॥१४४॥ सर्पिरेरण्डजंतैलंक्षीरञ्चैकत्रसाधयेत् ।
ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ १४५ ॥ कफवात-
विवन्धेषुकुष्ठप्लीहोदरेषु च । प्रयोज्योमिश्रकः स्नेहोयोनिशूलेषु
चाधिकम् ॥ १४६ ॥

निसोथ, त्रिफला, दन्ती और दशमूल यह सब एक २ पल लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब चौथाई भाग शेष रहे तब इसको छानकर इसमें घी, एरण्डतैल और दूध मिलाकर पकावे। इस प्रकार यह मिश्रक स्नेह तैयार होताहै। इसको शहत मिलाकर सेवन करे तो कफगुल्म, कफ, वात, विवन्ध, कुष्ठ प्लीहा और उदररोग नष्ट होतेहैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

कफगुल्ममें विरेचन ।

चटुक्तंवातगुल्मघ्नंस्नन्नीलिनीघृतम् । द्विगुणंतद्विरेकार्थंप्रयो-
ज्यंकफगुल्मिनाम् ॥ १४७ ॥ सुधाक्षीरद्रवचूर्णत्रिवृतायाःसुभा-
वितम् । कार्पिकंमधुसर्पिर्भ्यालीङ्गुसाधुविरिच्यते ॥ १४८ ॥

वातगुल्ममें जो रेचक नीलिनीवृत कहागयाहै । उसकी दूनी मात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवे । अथवा त्रिवृताके चूर्णमें थोहरके दूधकी भावना देकर उसमें घी और शहत मिलाकर एक तोला चाँटे तो उत्तम रीतिसे विरेचन होताहै। १४७॥१४८॥

हरीतक्यादि गुड ।

जलद्रोणेविपक्तव्याविंशतिःपञ्चचाभयाः । दन्त्याः पलानिताव-

न्तिचित्रकस्यतथैवच ॥ १४९ ॥ अष्टभागस्थितंतश्चरसंपूतमधि-

क्षिपेत् । दन्तीसमंगुडंपूतंक्षिपेत्त्राभयाश्चताः ॥ १५० ॥ तैलार्ध-

कुडवश्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम् । चूर्णितंपलमेकंश्चपिप्पलीवि-

श्वभेषजम् ॥ १५१ ॥ तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु ।

क्षिपेच्चूर्णपलश्चैकन्त्वगेलापत्रकेशरान् ॥ १५२ ॥ ततोलेहपलंली

द्वाजग्ध्वाचैकांहरितकीम् । सुखंविरिच्यतेस्निग्धोदोपप्रस्थमना-

मयः ॥ १५३ ॥ गुल्मंश्वयथुमर्शासिपाण्डुरोगमरोचकम् । हृद्रो-

गंग्रहणीदोषंकामलांविपमज्वरम् ॥ १५४ ॥ कुष्ठंप्लीहानमाना-

हमेतान्घ्नन्त्युपसेवितः । निरत्ययःक्रमश्चास्याद्रवोमांसरसो-

दनः ॥ १५५ ॥

वडी २ पच्चीस हरडें, दन्ती (पहाडी जमालगोटेकी जड) पच्चीस पल, चित्रक पच्चीस पल इन सबको एक द्रोण जलमें पकावे, जब आठवां भाग शेष रहे तो उसको छानलेवे । फिर गुड पच्चीस पल और वह हरडे उसमें डालदे और आधा कुडव तेल (चाकूते चीरकर) उसमें मिलादेवे तथा निशोय चार पल, पीपल और साँठ एक एक पल कूटकर धीरे २ पकावे । जब पककर गाढा होजाय तब उतारले ठंढा होनेपर आधा कुडव शहत, एक पल दालचीनी, एक पल इलायची, एक पल तेजपात, और केसर एक पल उसीमें मिलादेवे । इसमेंसे फिर नित्य एक एक पल चाटकर ऊपरसे एक हरड खाले तो सुखपूर्वक एक प्रस्थ मल निकलताई । और इसके सेवनसे गुल्म, शोथ, अर्श, पाण्डु रोग, अरुचि, हृद्रोग, ग्रहणीदोष, कामला, विपमज्वर, कुष्ठ, प्लीहा, अकारा यह सब रोग दूर होजातेहैं । इसमें मांस रस और भातका भोजन करना चाहिये ॥ १४९-१५५ ॥

कफ गुल्ममें बस्ति ।

सिद्धाः सिद्धिपु वक्ष्यन्ते निरूहाः कफगुल्मिनाम् ॥ १५६ ॥

कफगुल्मवाले गोगियोंके लिये सिद्धिस्थानमें सिद्ध निरूहणवस्त्रियां लिखी गई हैं ॥ १५६ ॥

कफगुल्ममें चूर्णादिप्रयोग ।

अरिष्टयोगाःसिद्धाश्चग्रहण्यर्शाश्चिकित्सिते । यच्चूर्णगुटिकायाश्च-
विहितावातगुल्मिनाम् । द्विगुणक्षारहिंश्वस्त्ववेतसास्ताःकफेमताः
॥ १५७ ॥ य एव ग्रहणीदोषेक्षारास्तेकफगुल्मिनाम् । सिद्धा
निरत्ययाः शस्तादाहस्त्वन्तेप्रशस्यते ॥ १५८ ॥

ग्रहणी और अर्श चिकित्सित अध्यायमें जो सिद्ध अरिष्ट तथा वातगुल्मनाशक जो चूर्ण और गोलियां वर्णन कीं हैं वह सब कफगुल्ममें हितकारी हैं । परन्तु उन चूर्णादिमें जितना क्षार, हींग और अमलवेत डालाजाता है कफगुल्ममें उससे दूना डालना चाहिये । जो क्षार ग्रहणीदोषमें वर्णन किये हैं वहभी कफगुल्ममें हित हैं । कफगुल्मको अन्तमें दग्ध करना भी हित है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

गुल्ममें पथ्य ।

प्रपुराणानिधान्यानिजाङ्गलामृगपक्षिणः । कौलस्थोमुद्गयूपश्चपि-
प्पल्यानागरस्यच ॥ १५९ ॥ शुष्कमूलकयूपश्चविल्वस्यवरुणस्य
च । चिरिविल्वांकुराणाञ्चयवान्याश्चित्रकस्यच ॥ १६० ॥ वीजपू-
रकहिंश्वस्त्ववेतसक्षारदाडिमैः । तत्रेणतैलसर्पिर्भ्याव्यञ्जनान्युप-
कल्पयेत् ॥ १६१ ॥

गुल्मरोगमें पुराने बहुत उत्तम धान्य, जांगल पशुपक्षियोंका मांस कुल्थीका यूप, मृगाका यूप, पीपल, साँठ और मूसी मूलीका यूप, बिल्व, वरना, कंजा, अजवायन, चीता इनको डालकर बनायाहुआ यूप भयवा घिजौग, हींग, अमलवेत, जयारार, अनार, तरु, तेल घी इनके साथ अनेक प्रकारके पदार्थ बनाकर सेवन करना चाहिये ॥ १५९ ॥ १६० ॥ १६१ ॥

कफगुल्मपर अन्य उपचार ।

पञ्चमूलीश्रितंतोयंपुराणंवारुणीरसम् । कफगुल्मीपिवेत्कालेजीर्ण-
माध्वीकमेववा ॥ १६२ ॥ यवानीचूर्णितन्तक्रंविडेनलवणीकृतम् ।
पिवेत्सन्दीपनंवातकफमृत्रानुलोननम् ॥ १६३ ॥

पंचमूलका ववाय, पुरानी वारुणी अथवा माध्वीक मयका कफगुल्ममें पान करना चाहिये । अजवायन और नमककी पीसकर तक्र (मट्टे) में मिलाकर पीनेसे अग्नि संदीपन होतीहै तथा वात, कफ और मूत्रका अनुलोमन होताहै ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

असाध्य गुल्मके लक्षण ।

संचितः क्रमशोगुल्मोमहावास्तुपरिग्रहः । कृतमूलःशिरोनद्धोय-
दाकूर्मइवोन्नतः ॥ १६४ ॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्व-
रैः । तृष्णातन्द्राप्रतिश्याथैर्युज्यतेनससिद्धयति ॥ १६५ ॥ गृही-
त्वासज्वरश्वासंवम्यतीसारपीडितम् । हृन्नाभिहस्तपादेषुशोफः
कर्षतिगुल्मिनम् ॥ १६६ ॥

जो गुल्म क्रमपूर्वक धीरे धीरे बढ़कर बहुत बीचमें फैलजाय और जब पकडकर नसोंमें स्थित हो कछुएकी पीठकी समान ऊंचा होजाय तथा जिसमें दुर्बलता, अरुचि, हृल्लास, खांसी, छर्द, अरति, ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और प्रतिश्याय यह उपद्रव होतेहैं वह असाध्य होताहै । जिस गुल्मरोगीके ज्वर, श्वास, वमन और अतिसारके होनेसे हृदय, नाभि, हाथ और पांवमें सूजन प्रगट होजातीहै वह रोगी असाध्य जानना ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

रक्तगुल्मकी चिकित्साका निर्देश ।

रौधिरस्यतुगुल्मस्यगर्भकालव्यतिक्रमे । स्निग्धस्विन्नशरीरायद-
व्यास्नेहविरेचनम् ॥ १६७ ॥ पलाशक्षारपात्रेद्वेपात्रेतैलसर्पिपोः ।
गुल्मशैथिल्यजननीपक्त्वामात्रांप्रयोजयेत् ॥ १६८ ॥ प्रभिद्येतन
यथेवंदद्याद्योनिविरेचनम् । क्षारेणयुक्तंपललंसुधाक्षीरेणवापुनः
॥ १६९ ॥ ताभ्यांवाभावितान्दद्याद्योनौकटुकमत्स्यकान् । वरा-
हमत्स्यपित्ताभ्यांनक्रकान्वासुभावितान् ॥ १७० ॥ अधोह्रैश्चो-
र्ध्वह्रैर्भावितान्वासमाक्षिकान् । किण्वंवासगुडक्षारंदद्याद्योनिवि-
शोधनम् ॥ १७१ ॥

रक्तगुल्ममें जब गर्भका समय (दसवां महीना) व्यतीत होजाय तब छेदन, स्वेदनकर्म करनेके अनन्तर स्निग्ध विरेचन करावे दाकका खार दो आठक, धी और तेल एक एक आठक इन सबको मिलाकर पाक करे फिर- गुल्मको शिथिल करनेके लिये योग्य मात्रासे रोगीको देवे । यदि इस प्रयोगमेंभी गुल्मभेदन न हो तो योनि

विरेचनकर्ता द्रव्योंका प्रयोग योनिके मार्गसे करै । क्षार और तिलकल्क अथवा थोहरके दूधकी भावना दियाहुआ तिलकल्क योनिमार्गमें रखवे । अथवा क्षार और थोहरके दूधकी भावना दियाहुआ कटुरसयुक्त मछलीका मांस योनिमें रखवे । अथवा सूअरके और मछलीके पित्तकी भावना मगरके मांसको देकर अथवा विरेचन कारक और वमन कारक द्रव्योंकी भावना दियाहुआ मगरका मांस शहत मिलाकर अथवा किष्प (सुरावीज) गुड और क्षार मिलाकर योनिमार्गमें रखवे । इनसे स्त्राव होकर योनिद्वाराही गुल्म खरजाताहै ॥ १६७-१७१ ॥

रक्तपित्तहरंक्षारंलेहयेन्मधुसर्पिषा ।

लशुनंमदिरांतीक्ष्णंमत्स्यांश्चास्यैप्रदापयेत् ॥ १७२ ॥

अथवा शहत और घीके साथ रक्तपित्त नाश करनेवाले क्षारको चटावै । अथवा लहसन, तीक्ष्ण मद्य, और मछली यह खानेको देवे । इससे भी योनिस्त्राव होकर रक्त गुल्म खरजाताहै ॥ १७२ ॥

रक्तभेदनकर्ता वस्ति ।

वस्तिं सक्षारगोमूत्रं सक्षारब्दाशमूलिकम् ।

अदृश्यमानेरुधिरदद्याद्गुल्मप्रभेदनम् ॥ १७३ ॥

यदि रक्त न निकलता हो तो उसके भेदनकरनेके लिये क्षार और गोमूत्रकी अथवा क्षार और दशमूलके कायकी वस्तिका प्रयोग करे ॥ १७३ ॥

प्रवर्त्तमान रुधिरमें उपचार ।

प्रवर्त्तमानेरुधिरदद्यान्मांसरसौदनम् । घृततैलेन चाभ्यङ्गपानार्थं

तरुणीसुराम् ॥ १७४ ॥ रुधिरंतिप्रवृत्तेचुरक्तपित्तहराः क्रियाः ।

कार्यावातरुगार्तायाः सर्वावातराः पुनः ॥ १७५ ॥ घृततैलाव-

सेकाश्चत्तिरिश्चरणायुधः । सुरासमण्डापूर्वश्चपानमम्लस्यस-

र्षिषः । प्रयोजयेदुत्तरंवाजीवनीयससर्पिषा ॥ १७६ ॥

यदि रक्तस्त्राव होताहो तो मांसरस और भात खानेको देवे, घी और तेलकी मालिश करावे तथा नवीन मद्य पीनेको देवे । यदि रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्तिहो तो रक्तपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । एवं वातिक वेदना उत्पन्न हो तो वातनाशिनी क्रिया करै । इनमें घृत और तैलप्रयोग, रक्त निकालना, तीतर और मुर्गका मांस, मण्डयुक्त सुरा, अम्लरसयुक्त घृतपान करना हितकारी है। तथा जीवनीयगणोक्त द्रव्योंके साथ सिद्धकियेहुए घृतकी उत्तरवस्ति देना हितकारक है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्तिचात्र ।

सर्पिःसारिक्तसिद्धंक्षीरंप्रस्रंसनन्निरूहांश्च ॥ रक्तस्यचावसेचनमा-
 श्वासनसंशमनयोगाः । उपनाहनंसशस्त्रंपकास्याभ्यन्तरप्रभि-
 न्नस्य ॥ १७७ ॥ संशोधनसंशमनेपित्तप्रभवस्यगुल्मस्य । स्नेहः
 स्वेदोभेदोलंघनमुल्लेखनंविरेकाश्च ॥ १७८ ॥ सर्पिर्वस्तिर्गुडिकाश्चू-
 र्णमरिष्टाश्चसक्षाराः । गुल्मस्यान्तेदाहःकफजस्याग्नेऽपनीतरक्त-
 स्य ॥ १७९ ॥ गुल्मस्यरौधिरस्यक्रियाक्रमःस्त्रीभवस्योक्तः । प-
 थ्यान्नपानसेवाहेतूनांवर्जनंयथास्वञ्च ॥ १८० ॥ नित्यश्चाग्निसमाधिः
 स्निग्धस्यचसर्वकर्माणि । हेतुर्लिङ्गंसिद्धिःक्रियाक्रमःसाध्यतानुयो-
 गश्च ॥ गुल्मचिकित्सितसंग्रहएतावानग्निवेशस्य ॥ १८१ ॥

इति चरक० चिकित्सि०गुल्मचिकित्सितंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भगवान् आत्रेयजीने अग्निवेशके संग्रहार्थे इत्त गुल्मचिकित्सिताध्यायमे गुल्मरो-
 गनाशक घृत और दूध, विरेचन, निरूहण, रक्तावसेचन, आश्वासन, संशमनयोग,
 तथा पित्तगुल्ममें उपनाहन, पक्कगुल्मका शस्त्रद्वारा भेदन, आभ्यन्तर भिन्नकी चिकित्सा
 संशोधन और संशमनप्रयोग, कफगुल्ममें स्नेहन, स्वेदन, लंघन, वमन, विरेचन, घृत,
 वस्ति, गुटिका, चूर्ण, अरिष्ट, क्षार, तथा रक्त निकालकर फिर दाहकर्म यह वर्णन
 कियेहैं । एवं स्त्रियोंको हीनेवाले रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम, पथ्य, अन्नपानविधि,
 गुल्मोत्पादक कारणोंका त्याग, रोगीको स्निग्ध करनेपर जठराग्निकी रक्षा, सब
 प्रकारकी चिकित्सा, हेतु, लक्षण, सिद्धि, चिकित्साक्रम, साध्यता और अनुयोग,
 यह सब वर्णन किया गयाहै ॥ १७७-१८१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० चिकित्सितस्थाने प्र०भाषाटीकायां गुल्मचिकित्सितं

नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पष्ठोऽध्यायः ।

अथातःप्रमेहचिकित्सितंव्याख्यास्यामः इति ह स्माह भग-
 वानात्रेयः ।

अब हम प्रमेहरोगकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

निर्मोहमानानुशयोनिराशःपुनर्वसुर्ज्ञानतपोविशालः ।

कालेऽग्निवेशायसहेतुर्लिंगानुवाचमेहाञ्छमनश्चतेषाम् ॥ १ ॥

मोह, मान, राग द्वेष और इच्छासे रहित, ज्ञान और मेहातपशाली भगवान् पुनर्वसुजी प्रमेहका निदान, लक्षण और उसकी शान्तिके उपाय यथाममय अग्निवेशने कहने लगे ॥ १ ॥

प्रमेहका निदान ।

आस्यासुखंस्वप्नसुखन्दधीनिग्राम्योदकानूपरसाःपयांसि ।

नवान्नपानंगुडवैकृतश्चप्रमेहहेतुःकफकृच्चसर्वम् ॥ २ ॥

बहुत बैठे रहनेसे, बहुत सोनेसे, दही तथा ग्राम्य, आनूप तथा औदक पशुपक्षियोंका मांस अधिक खानेसे और अधिक दूध वं नये अन्न पानका सेवन करनेसे, मिठाई आदिके सेवनसे, तथा और भी सब प्रकारके कफकारी पदार्थोंके अधिक सेवन करनेसे प्रमेहरोग उत्पन्न होताहै ॥ २ ॥

कफादिप्रमेहकी सम्प्राप्ति ।

मेदश्चमांसश्चशरीरजश्चक्लेदंकफोवस्तिगतंप्रदूष्य । करोतिमेहं
समुदीर्णमुष्णैस्तान्येवपित्तंपरिदूष्यभूयः ॥ ३ ॥ क्षीणेषुदोषेष्वव-
कृष्यवस्तौधातून्प्रमेहानगिलःकरोति । दोषोहिवस्तौसमुपेत्यमूर्त्रं
सन्दूष्यमेहाजनयेद्यथास्वम् ॥ ४ ॥

मेद, मांस और शरीरके ह्येदको दूषित करके मूत्रस्थानमें प्राप्तकर कफ, प्रमेहको उत्पन्न करताहै । इसीप्रकार ऊष्ण पदार्थोंके सेवनसे कुपितहुआ पित्त मेद, मांसादि दूषित करके जब वस्तिस्थानमें प्राप्त होताहै तब पित्तके प्रमेहोंको प्रगट करताहै । एवं लंबनादि द्वारा कफपित्त और मलमूत्रादिके क्षीण होनेपर वायु कुपित होकर रस, मज्जा वसा और ओज धातुको वस्तिस्थानमें आकर्षणकर वातजप्रमेह उत्पन्न करताहै दोषही वस्तिमें प्राप्त हो मूत्रको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

प्रमेहोंकी संख्या ।

साध्याःकफोत्थादशपित्तजाःपञ्चाप्यानसाध्याः पवनाश्चतुष्काः ।

समाक्रियत्वाद्विपमाक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्चयथाक्रमन्ते ॥ ५ ॥

चिकित्सामं समक्रियत्व होनेसे दश प्रकारके कफजनित प्रमेह साध्य होतेहैं । चिकित्सामं विपमक्रियत्व होनेसे छः प्रकारके पित्तजनित प्रमेह याप्य होतेहैं । इसी प्रकारसे क्रियामें विरोध पडनेसे चार प्रकारके वातजनित प्रमेह असाध्य होतेहैं । समक्रियत्वका यह तात्पर्य है कि दोष और मेदा आदि द्रव्य यह समानगुण हैं इससे कफनाशक क्रिया करनेसे ही प्रमेह शान्त होजातेहैं, इसलिये साध्य हैं । तथा पित्तनाशक मधुग शीतादि द्रव्य भेदको बढ़ातेहैं और मेदाके नाश करनेवाले उष्ण कटुकादि द्रव्य पित्तको बढ़ातेहैं इसलिये यहां क्रियाकी विपमता होनेसे पित्तज प्रमेह याप्य हैं । जिन द्रव्यों और क्रिया द्वारा प्रमेहकी शांति होतीहै उन्हींसे वायुका कोप होताहै और इसमें सब प्रकारकी क्रिया विरोधी पडतीहैं इसलिये वायुके प्रमेह असाध्य होतेहैं ॥ ५ ॥

प्रमेहमें दोषद्रव्योंकी संख्या ।

कफःसपित्तःपवनश्चदोषामेदोऽस्त्रशुक्राम्बुवसालसीकाः ।

मज्जारसौजःपिशितश्चद्रूप्यंप्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ६ ॥

वात, कफ, पित्त यह तीन दोष हैं, तथा मेदा, रुधिर, शुक्र, जल, चर्बी, लसीका, मज्जा, रस, ओज और मांस यह सब द्रव्य हैं, इन दोष द्रव्योंके संयोगसे बीस प्रकारके प्रमेह उत्पन्न होतेहैं ॥ ६ ॥

जलोपमंवेक्षुरसोपमंवाघनंधनंचोपरिविप्रसन्नम् । शुक्रंसशुक्रंशि-
शिरंशनैर्वालालेववावालुकयायुतंवा ॥ ७ ॥ विद्यात्प्रमेहान्कफ-
जान्द्रशैतान्क्षारोपमङ्कालमथापिनीलम् । हारिद्रमाक्षिष्ठमथापिर-
क्तमेतान्प्रमेहान्पडुपन्तिपित्तात् ॥ ८ ॥ मज्जौजसावावसयान्वि-
तंवालसीकयावासततंविबद्धम् । चतुर्विधंसूत्रयतीववाताच्छेषेषु
धातुष्वपकर्षितेषु ॥ ९ ॥

कफसे दशप्रकारके प्रमेह होतेहैं । जैसे १ जलके समान वर्णवाला "उदकमेह" होताहै । २ ईखके रसके समान "इक्षुप्रमेह" होताहै । ३ कुछ मिलाहुआसा गाढा मूत्र अथवा रात्रिको पात्रमें रखनेसे गाढा होजाय वह "सान्द्रमेह" होताहै । ४ जो मूत्रपात्रमें रखनेसे नीचे गाढा और ऊपर मधके समान हो उसे "सुरामेह" कहते हैं । ५ जो वीर्यमिला मूत्र होताहै उसे "शुक्रमेह" कहतेहैं । ६ पित्तद्रव्य चावलके समान सफेद मूत्र हो तो "पिष्टमेह" जानना । कोई इसीको शुक्रमेह भी कहतेहैं । ७ जिसमें धीरे धीरे मूत्रके बिन्दू टपकतेहैं उसको "अनेमेह" कहतेहैं । ८ जिसमें

मुखकी लारके समान तार सा निकलताहै उसको "लालामेह" कहतेहैं । ९ जिसमें वालूके समान कणपदार्थ निकलें वह "सिकतामेह" होताहै । १० जिसमें शीतल और बहुत मूत्र उतरताहै वह "शीतमेह" होताहै । इस प्रकार कफसे होनेवाले दश प्रकारके प्रमेह होतेहैं ॥ पित्तसे छः प्रकारके प्रमेह होतेहैं । जैसे १ क्षारके समान मूत्र "क्षारमेह" में । २ काले रंगका मूत्र "कालमेह" में, ३ नीले रंगका मूत्र "नीलमेह" में । ४ हल्दीके समान रंगवाला "हारिद्रमेह" में । ५ आमकी सी दुर्गंधयुक्त और मजीठके समान "माजिष्ठमेह" में । ६ एवं रुधिरके समान लाल वर्णवाला मूत्र "रक्तमेह" में होताहै । यह छः प्रकारके पित्तप्रमेह होतेहैं ॥ चार प्रकारके वातजप्रमेह होतेहैं । जैसे १ मज्जाके समान वर्णवाला मूत्र "मज्जामेह" में । वसाके समान वर्णवाला मूत्र "वसामेह" में । ३ ओजमिश्रित मूत्र "ओजःप्रमेह" में । और ४ लसीकायुक्त मूत्र "लसीकामेह" में होताहै । जब सब धातुएँ क्षीण होजातीहैं तब वातके कोपसे यह चार प्रकारकी धातुएँ ही मूत्रमें निकलने लगतीहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

दोषानुसार प्रमेहके वर्णादि ।

वर्णरसस्पर्शमथापिगन्धयथास्वदोषम्भजतेप्रमेहः ॥ १० ॥

जिस दोषसे प्रमेह उत्पन्न होताहै उसका वर्ण, रस, स्पर्श और गंध उसी दोषके अनुसार होजाताहै ॥ १० ॥

वातज प्रमेहका असाध्यत्व ।

श्यावारुणोवातकृतःसशूलोमज्जादिपाङ्गुण्यमुपैत्यसाध्यः ॥ ११ ॥

जो वायुका प्रमेह श्यामवर्ण और लालवर्ण तथा शूलयुक्त हो और उसमें मज्जा, वसा, ओज, लसीका, रस, शुक्र इन छः धातुओंके गुण हों तो उसे असाध्य जानना ॥ ११ ॥

प्रमेहके पूर्वरूप ।

स्वेदोऽङ्गगन्धःशिथिलाङ्गताच शय्यासनस्वप्नसुखेरतिश्च । हन्ने-
त्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गताकेशनखातिवृद्धिः ॥ १२ ॥ शीत-
प्रियत्वङ्गलतालुशोषो माधुर्यमास्येकरपाददाहः । भविष्यतोमेह-
गदस्यरूपं मूत्रेऽभिधावन्तिपिपीलिकाश्च ॥ १३ ॥

पसीनेका आना, अंगोंसे दुर्गंध आना, देहका शिथिलता होजाना, शय्यापर पड़े रहने, मुरतपूर्वक आसनपर बैठे रहने और सोनेकी इच्छा बनी रहना । हृदय, नेत्र, जिह्वा और कानामें भ्रूल लिपीसी रहना । देहका कटोर होना, केश और नखोंका अत्यंत घटना, ठण्डी वस्तु पर प्रेम होना, गल और तावमें खुटकी होना, मुरतमें

मीठापन, हाय और पांशुमें दाह होना, और मूत्रपर चीटियोंका लगना यह सब प्रमेहके पूर्वरूप होतेहैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

स्थूल और कृश प्रमेहीकी चिकित्सा ।

स्थूलःप्रमेहीवलवानिहैकः कृशस्तथैकःपरिदुर्बलश्च ।

संबृंहणतत्रकृशस्यकार्यसंशोधनदोषवलाधिकस्य ॥ १४ ॥

कोई प्रमेहरोगवाला मनुष्य स्थूलशरीर और बलवान् होताहै तथा कोई कृश शरीर और दुर्बल होताहै । इनमें कृशरोगीको बृंहण करना चाहिये और बलवान्को संशोधन देकर उसके दोषोंको निकाल देना चाहिये ॥ १४ ॥

प्रमेहीके अन्य उपचार ।

स्निग्धस्ययोगाविविधाः प्रयोज्याः कल्पोपदिष्टामलशोधनाय ।

ऊर्ध्वतथाधश्चमलेऽपनीतेमेहेषुसन्तर्पणमेव कार्यम् ॥ १५ ॥

गुल्मःक्षयोमेहनवस्तिशूलं मूत्रग्रहश्चाप्यपतर्पणेन । प्रमेहिणःस्युः

परितर्पणानिकार्याणितस्मात्प्रसमीक्ष्य वह्निम् ॥ १६ ॥ संशोधनं

नार्हतिःप्रमेही तस्यक्रियासंशमनीप्रयोज्या ॥ १७ ॥

प्रथम रोगीको स्निग्ध करके कल्पस्थानमें कहेहुए प्रयोगसे दोषोंका शोधन करे । जब वमन विरेचन द्वारा दोष निकलजाय फिर उसको सन्तर्पण करना चाहिये । क्योंकि अपतर्पण करनेसे प्रमेहरोगीके गुल्म, क्षय और लिंग तथा वस्तिस्थानमें पीडा और मूत्रकी रुकावट उत्पन्न होतेहैं इसलिये संतर्पण क्रिया करे । जो प्रमेहरोगी संशोधनके योग्य न हो उसकी संशमनचिकित्सा करने योग्य है ॥ १५॥१६॥१७ ॥

प्रमेह रोगमें पथ्य ।

मन्थाःकपायायवचूर्णलेहाः प्रमेहशान्त्यैलघवश्चभक्ष्याः । येवि-

ष्किरायेप्रतुदाविहंगास्तेपारसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः ॥ १८ ॥ यवौदनं

रूक्षमथापिवाद्यान्मद्यान्ससक्तून्पिचाप्यपूपान् ॥ मुद्गादियूपैरथ

तिक्तशकैः पुराणशाल्योदनमाददीत ॥ १९ ॥ दन्तीगुदीतैलयुतं

प्रमेहीतथातसीसर्पपतैलयुक्तम् । सपष्टिकंस्यात्तृणधान्यमन्नंयव-

प्रधानस्तुभवेत्प्रमेही ॥ २० ॥

प्रमेहरोगकी शान्तके लिये मन्थकपाय, जौओके आटेका लेह तथा हलका भोजन खानेको देवे । एवं विष्किर और प्रतुदसंज्ञक जंगली पक्षियोंके मांसके रसके साथ

रूखा यवान्न अथवा यवोंके सत्तुओंके साथ मद्य वा अपूप भक्षण करै । मूंग आदिके यूपके साथ अथवा तिक्त शाकोंके साथ पुराने शालीचावलोंका भात खावे । दंती और गोंदनीका तेल मिलाकर अथवा अलसी और सरसोंका तेल मिलाकर साठी चावल तृणधान्यके अन्नका सेवन करै । प्रमेहरोगीको विशेषतासे जौके पदार्थका सेवन करना हित है ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

कफप्रमेहमें अन्य उपचार ।

यवस्यभक्ष्यान्त्रिविधांस्तथाद्यात्कफप्रमेहीमधुसम्प्रयुक्तान् । नि-
शिस्थितानांत्रिफलाकपायैःस्युस्तर्पणाक्षौद्रयुतायवानाम् ॥ २१ ॥
ताञ्शीधुयुक्तान्प्रपिवेत्प्रमेहीप्रायोगिकान्मेहवधार्थमेव ॥ २२ ॥

कफप्रमेहवाला मनुष्य जौओंके सत्तु आदि और अनेक भोजनके पदार्थ बना शहदके साथ सेवन करतारहे । रात्रिकालमें जौओंको त्रिफलेके क्वाथमें भिगोदेवे दूसरे दिन इनका भात बनाकर शहदके साथ अथवा इनका यूप बनाकर ठंडा होनेपर सहद मिलाकर पीवे तो तर्पण होवे । इन्हीं जौओंको शीधुके साथ पानकरै तो प्रमेह नष्ट होताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

येश्लेष्ममेहेविहिताःकपायास्तैर्भावितानाञ्चपृथग्यवानाम् । शकू-
नपूपान्सगुडान्सधानान्भक्ष्यांस्तथान्यान्त्रिविधांश्चखादेत् ॥ २३ ॥
खराश्वगोधेनुकसम्भृतानां तथायवानांविधिषाश्चभक्ष्याः । देया-
स्तथावेणुयवायवानां कल्पेन गोधूममयाश्च भक्ष्याः ॥ २४ ॥
संशोधनोल्लेखनलंघनानिकालेप्रयुक्तानिकफप्रमेहान् । जयन्ति
पित्तप्रभवान्विरेकाः संतर्पणः संशमनोविधिश्च ॥ २५ ॥

जो कफप्रमेहनाशक कपाय हैं उनकी जौओंको अलग २ भावना देकर उनके सत्तु, अपूप, गुडमिश्रित धनियां तथा और अनेक प्रकारके पदार्थ बनाकर सेवन करना हित है ॥ २३ ॥ गधा, घोडा, बैल वा गौकी गुदामें होकर जो विना, टूटे जौ निकलजातेहैं या इनके लीद गोबरके रसकी अनेक भावना देकर उनके एवं वेणुयव (वांसके यव) और गेहूँके अनेक प्रकारके पदार्थ बनाकर सेवन करे ॥ २४ ॥ ठीक समयपर कराये हुए संशोधन, वमन, लंघन करानेसे भी कफप्रमेह दूर होताहै । एवं ठीक समयपर वमन, विरेचन, लंघन संतर्पण और संशमन द्वारा पित्तज प्रमेह भी शान्त होजातेहैं ॥ २५ ॥

प्रमेहोंपर सामान्य प्रयोग ।

दार्वीसुराह्वात्रिफलासमुस्तां कपायमुत्क्वाध्यपिवेत्प्रमेही ।

क्षौद्रेणयुक्तामथवाहरिद्रांपिवेद्रसेनामलकीफलानाम् ॥ २६ ॥

दारुहल्दी, देवदारु, त्रिफला और मोथाके काथको गहत मिलाकर पीनेसे अथवा आंवलेके रसके साथ कच्ची हल्दीका पान करनेसे प्रमेह नष्ट होजातेहैं ॥ २६ ॥

कफप्रमेहपर दश कषाय ।

हरीतकीकट्फलमुस्तरोध्रं पाठाविडङ्गार्जुनधन्वनश्च । उभेहरिद्रे-

तगरंविडङ्गकदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ २७ ॥ दार्वीविडङ्ग-

खदिरोधवश्च सुराह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि । चव्याशिमन्थीत्रिफ-

लासपाठा पाठाश्वदंष्ट्रेसहसूर्वयाच ॥ २८ ॥ यवान्युशीराण्य-

भयागुडूची जंघाभयाचित्रकसप्तपर्णाः । पादैःकषायाः कफमेहि-

नान्ते दशोपदिष्टामधुसम्प्रयुक्ताः ॥ २९ ॥

१. हरड, कायफल, मोथा, लोथ । २. पाठ, वायविडंग, अर्जुन और डामण (धन्वन) । ३. दोनो हल्दी, तगर और वायविडंग । ४. कदम्ब, शाल, अर्जुन और अजवायन । ५. दारुहल्दी, वायविडंग, खैर और धव । ६. देवदारु, कुठ, अगग और चंदन । ७. चव्यभरनी, त्रिफला और पाठ । ८. पाठ, गोखरू और मूर्वा । ९. अजवायन, खस, हरड और गिलोय । १०. काकजंघा, हरड चित्रक और सप्तपर्ण । यह प्रत्येक श्लोकके एक एक पादमें कहेहुए दशप्रकारके काथ शहत मिलाकर पीनेसे कफप्रमेह दूर होतेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

पित्तप्रमेहपर दश कषाय ।

उशीरलोध्राञ्जनचन्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम् । पटोल-

निम्बामलकामृतानांमुस्ताभयापद्मकवृक्षकाणाम् ॥ ३० ॥ रोध्रा-

म्बुकालीयकधातकीनांनिम्बार्जुनानान्तिनिशोत्पलानाम् । शिरी-

पसर्जार्जुनकेसराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम् ॥ ३१ ॥ अश्व-

त्थपाठासनवेतसानांकटङ्कटैर्युत्पलमुस्तकानाम् । पैत्तेपुमेहेषुदशै-

वृहष्टाःपादैः कषायामधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ३२ ॥

१. खस, लोथ, रसौत, और चंदन । २. तप्त, आमला, मोथा और हरड । ३. पटोलपत्र, नीम, आमला और गिलोय । ४. नागरमोथा, हर्गड, पद्माख, और

इन्द्रजौ । ९. लोध, नेत्रवाला, दारुहल्दी, और धावेका फूल । ६. नीमकी छाल, अर्जुन, तिनिश और नीलकमल । ७. सिरसकी छाल, शल, अर्जुन और नागकेशर । ८. मियंगु, लालकमल, नीलकमल, और ढाकके फूल (केसू) । ९. पीपल, पाद, असन (विजेशर) और वेतस । १०. दारुहल्दी, उत्पल (नीलकमल) और नागर-मोथा । यह एक २ पादमें प्रत्येक श्लोकके कहेहुए दश काथ शहत मिलाकर पित्त-प्रमेहोंकी शान्तिके लिये देना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सर्वेषुमेहेषुमत्तैतुपूर्वाकापाययोगौविहितास्तुसर्वे । मन्थस्यपाने-
यवभावनायां स्युर्भोजनेपानविधौपृथक्च ॥३३॥ सिद्धानितैलानि
घृतानिचैवदेयानिमेहेष्वनिलान्मकेषु । मेदःकफश्चैवकपाययोगैः
स्नेहैश्चवायुःशममेतितेषाम् ॥ ३४ ॥

दारुहल्दी और आँवलेके रसवाले सबसे प्रथम जो दो कपायके प्रयोग वर्णन किये गयेहैं । वह सब प्रकारके प्रमेहोंमें उपयोगी हैं । इन सब कपायोंका मन्थपान, जौओंकी भावना देना अथवा सब प्रकारके भोजन पानमें पृथक् २ प्रयोग करना चाहिये । वायुके प्रमेहोंमें औषधोंसे सिद्ध कियाहुआ तैल घृतका प्रयोगकरना चाहिये । कपायोंके प्रयोगसे, मेद और कफ तथा स्नेहन योगोंसे वायु शान्त होतीहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कफपित्तप्रमेहपर प्रयोग ।

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानिवैभीतरौहीतककोटिजानि । कपित्थ-
पुष्पाणिचचूर्णितानिक्षौद्रेणलिह्यात्कफपित्तमेही ॥ ३५ ॥ पिवेद्र-
सेनामलकस्यवापिकल्कीकृतान्यक्षसमानिकाले । जीर्णंचभुञ्जीत
पुराणमन्नमेहीरसैर्जागलजैर्मनोज्ञैः ॥ ३६ ॥ दृष्टानुबन्धंपवनंकफ-
स्यपित्तस्यवास्नेहविधिर्विकल्पः । तैलंकफेस्यत्सकपायसिद्धंपित्ते-
घतंपित्तहरैःकपायैः ॥ ३७ ॥

कमीला, सप्तपर्ण, राल, बहेडा, रोहीतक, इन्द्रजौ और कैयके फूलोंका वारीक चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटनेसे कफपित्त प्रमेह शान्त होजाताहै । अथवा इसी कमीला आदि चूर्णका एक तोला कल्क आँवलेके रसके साथ पीना चाहिये । और औषध पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ पुराने शालीचावलोंका भात सेवन कर । प्रमेह रोगमें वायुका अनुबंध होनेपर स्नेहविधिकी कल्पना करनी चाहिये । यदि कफका अनुबंध हो वे कफनाशक द्रव्योंके काथमें सिद्ध कियेहुए तेलका प्रयोग

करना चाहिये । यदि पित्तका अनुबंध हो तो पित्तनाशक द्रव्योंके क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अन्यप्रयोग ।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवलकैर्भल्लातकैःसातिविषैःसरोध्रैः । वचा-
पटोलार्जुननिम्बमुस्तैर्हरिद्रयापद्मकदीप्यकैश्च ॥ ३८ ॥ मञ्जिष्ठ-
यावागुरुचन्दनैश्चसर्वैःसमस्तैःकफवातजेषु । मेहेपुतैलंविपचेद्धृतं-
तुपैत्तेषुमिश्रंत्रिपुलक्षणेपु ॥ ३९ ॥

गोखरू, कचनार, खैर, भिलावा, अतीस, पठानीलोध, वच, पटोलपत्र, कोहवृ-
क्षकी छाल, नीमकी छाल, नागरमोथा, हल्दी, पद्माख, अजवायन, मजीठ, अगर,
और चन्दनके क्वाथ द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल सेवन करनेसे कफवातसे हुए प्रमेह
दूर होतेहैं । तथा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत, वातपित्तसे हुए प्रमेहको एवं
तीनों दोष नाशकरनेवाले द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृत और तेल दोनो त्रिदोषजन्य
प्रमेहोंको दूर करतेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

सब प्रकारके प्रमेहोंपर काथ ।

फलत्रिकंदारुनिशाविशालामुस्ताचनिःकाथनिशासकल्का ।

पिवेत्कषायंमधुसम्प्रयुक्तंसर्वप्रमेहेषुसमुद्धतेषु ॥ ४० ॥

त्रिफला, देवदारू, हल्दी, इन्द्रायणकी जड़ और नागरमोथेका क्वाथ कर्कके
उसमें हल्दीका कल्क और शहत मिलाकर पीनेसे सब प्रकारके बड़ेहुए प्रमेह दूर
होतेहैं ॥ ४० ॥

मध्वासव ।

लोधंशठींपुष्करमूलमेलं सूर्वाविडंगत्रिफलांयवानीम् । चव्यंप्रि-
यंगुंक्रमुकंविशालां किराततिकंकटुरोहिणीञ्च ॥ ४१ ॥ भार्गानितं-
चित्रकपिप्पलीनां मूलंसकुष्ठातिविपंसपाठम् । कलिंगकान्केशर
मिन्द्रसाहांनखंसपत्रंभरिचंप्लवञ्च ॥ ४२ ॥ द्रोणेऽम्भसःकर्पसमा-
निपक्कापूतेचतुर्भागजलावशेषे । रसेऽर्धभागंमधुनःप्रदायपक्षान्निधे-
योघृतभाजनस्थः ॥ ४३ ॥ मध्वासवोऽयंकफपित्तमेहान्क्षिप्रंविह-
न्याद्द्विपलप्रयोगात् । पाण्ड्यामयार्शास्यरुचिप्रहण्यादोषं किलासं-
विविधञ्चकुष्ठम् ॥ ४४ ॥

पटानी लोध, कचूर, पोहकरमूल, इलायची, मूर्वा, भिंयंगु, वायविडंग, त्रिफला अजवायन, चव्य, सुपारी, इन्द्रायणकी जड, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रक, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजो, नागकेशर नखीद्रव्य, तेजपात, कालीमिर्च, केवटीमोथा । इन सबको एक एक तोला लेकर सोलह सेर जलमें पकावे । जब चौथाई शेष रहे तो छानले, फिर इस रससे आधा शहत मिलाकर बीके चिकने पात्रमें भरकर पंद्रह दिन तक रक्खा रहनेदे । यह मध्वासव हुआ । इसमेंसे नित्यप्रति दो पलका सेवन करनेसे कफपित्तसे हुए प्रमेह, पाण्डुरोग, अर्शरोग, अरुचि, ग्रहणीदोष, किलास और सब प्रकारके कुछ दूर होतेहैं ॥ ४१-४४ ॥

अन्य आसव ।

क्वाथःसएवाष्टपलेचदन्त्याभ्रह्लातकानाञ्चतुष्पलेस्यात् । सितोप-
लात्वष्टपलाविशेषःशौद्रञ्चतावत्पृथगासवौतौ ॥ ४५ ॥

पूर्वाक्त लोघ्रादि क्वाथसे दो आसव और बनतेहैं । जैसे इसी लोघ्रादि क्वाथमें देती आठ पल, शहत और मिश्री आठ आठ पल मिलावे । अथवा उसी पूर्वाक्त क्वाथमें भिलावे चार पल, मिश्री आठ पल और शहत आठ पल मिलावे । यह दोनों आमव गुणमें मध्वासवके समान हैं ॥ ४५ ॥

प्रमेहपर अन्य चिकित्सा ।

सारोदकञ्चाथकुशीदकं वामधूदकं वा त्रिफलारसं वा । शीधुंपिवेद्वा-
निगदंप्रमेहीमांघ्रीकमध्यञ्चिरसंस्थितं वा ॥ ४६ ॥ मांसानिशूल्या-
निमृगद्विजानांखादेयवानां विविधांश्च भक्षयान् । संशोधनारिष्टकपा-
यलेहैः संतर्पणज्ञः शमयेत्प्रमेहान् ॥ ४७ ॥ भृष्टान्यवान्भक्षयतः
प्रयोगाच्छुष्कांश्च सक्नुन्भवन्ति मेहाः । श्वित्रश्चकुष्ठश्चकफश्चकृ-
च्छ्रंतथैवमुद्गामलकप्रयोगात् ॥ ४८ ॥

नागेदक अथवा कुशोदक या मधूदक, मृग और पक्षियोंका अथवा त्रिफलेका क्वाथ एवं शीधु या पुराना मांघ्रीक सेवन करनेसे प्रमेह दूर होताहै । एवं पशुपक्षि-
योंका शूल प्रोत भुना हुआ मांस तथा जीओंके वनेट्टए नाना पदार्थोंका सेवन करे । प्रमेहको संशोधन, अरिष्ट, कपाय, लेह और संतर्पण द्वारा शमन करे । भुनेट्टए जी और उनके मसू तथा मृग और आँवला इनके प्रयोगसे श्वित्रकुष्ठ कुष्ठ, कफ और मूत्र-
कृच्छ्र दूर होतेहैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सन्तर्पणोत्थेषुगदेपुयोगामेदस्विनायेचमयोपदिष्टाः । विरूक्षणा-

र्थकफपित्तजेषु सिद्धाः प्रमेहेष्वपितेप्रयोज्याः ॥ ४९ ॥ व्यायाम-
योगैर्विविधैः प्रगाढैरुद्धर्तनैः स्नानजलावसेकैः । सेव्यत्वगेलागुरुच-
न्दनाद्यैर्विलेपनैश्चाशुनसन्तिमेहाः ॥ ५० ॥ क्लेदश्चमेदश्चकफश्च-
वृद्धोनाशंप्रयातिप्रसमीक्ष्यतस्मात् । वैद्येनपूर्वकफपित्तजेषु मेहेषु
कार्याण्यपतर्पणानि ॥ ५१ ॥

संतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंमें तथा जिनका मेदधातु बढ़गयाहै उनके लिये जो
रूक्षणकरनेवाले प्रयोग कहेंहैं उनका कफपित्तसे उत्पन्न हुए प्रमेहमें प्रयोग करना
चाहिये । दण्ड कसरत, अनेक प्रकारके उबटने, स्नान, जलावसेक, तथा खस,
दालचीनी, अगर और चंदनका लेप करनेसे प्रमेहरोग शीघ्र नष्ट होताहै । अपतर्पण
करनेसे क्लेद, मेद और कफ यह नष्ट होतेहैं इसलिये वैद्यको कफपित्तके प्रमेहोंमें प्रथम
अपतर्पण करना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

वावातमेहान्प्रतिपूर्वमुक्ता वातोल्बणानांविहिताक्रियासा ।

वायुर्हिमेहेष्वतिकर्षितानांकुप्यत्यसाध्यान्प्रतिनास्तिचिन्ता ॥ ५२ ॥

यदि तीनों दोषोंके प्रमेहोंमें वातकी अधिकता हो तो प्रथम वातजप्रमेहके अनु-
सार उपाय करें, क्योंकि वातप्रमेह मनुष्यको बहुत जल्दी कृश करके रोगको असाध्य
बनादेताहै । फिर सब चिकित्सा निष्फल होतीहै ॥ ५२ ॥

प्रमेहमें निदान परिवर्जन ।

येहेतुभिर्येप्रभवन्तिमेहास्तेषुप्रमेहेषुनतेनिषेध्याः ।

हेतोरसेवाविहितायथैवजातस्यरोगस्यभवेच्चिकित्सा ॥ ५३ ॥

जिन कारणोंसे जो २ प्रमेह उत्पन्न हुएहैं उनमें उन्हीं २ कारणोंका त्याग
करदेना चाहिये । क्योंकि हेतुका परित्याग करना ही एक प्रकारकी रोगकी
चिकित्सा है ॥ ५३ ॥

रक्तपित्तका कोष ।

हारिद्रवर्णरुधिरंसफेनं विनाप्रमेहस्यहिपूर्वरूपैः ।

यन्मूत्रयेत्तन्नवदेत्प्रमेहं रक्तस्यपित्तस्यहिसप्रकोषः ॥ ५४ ॥

यदि मूत्रका वर्ण हल्दीके समान वर्णवाला और रुधिरके समान वर्णवाला हो
तथा झागदार हो और उसमें प्रमेहका कोई पूर्वरूप न हो तो उस रोगीको प्रमेह नहीं
होताहै उसको रक्तपित्तका कोष जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

मधुप्रमेह ।

दृष्ट्वाप्रमेहंमधुरंसपिच्छंमधूपमंस्याद्विविधोपचारः ॥ ५५ ॥

यदि प्रमेहमें मीठापन हो और शहतके समान पिच्छिल हो तो उसको "मधुमेह" कहतेहैं, उसमें अनेक प्रकारकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ ५५ ॥

प्रमेहका साध्यासाध्यत्व ।

क्षीणेपुदोपेष्वनिलात्मकःस्यात्संतर्पणाद्वाकफसम्भवःस्यात् ।

सपूर्वरूपाःकफपित्तमेहाः क्रमेणतेवातकृताश्चमेहाः ॥ ५६ ॥

साध्यानतेपित्तकृतास्तुयाप्याःसाध्यास्तुमेदोयदिनप्रदुष्टम् । जात-

प्रमेहोमधुमेहिनावा न साध्यरोगः सहिवीजदोषात् ॥ ५७ ॥

येचापिकेचित्कुलजाविकाराभवन्तितांश्चप्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ ५८ ॥

मल और कफपित्तके क्षीण होनेसे वातात्मक प्रमेह होताहै । और संतर्पणसे कफका प्रमेह उत्पन्न होताहै । कफज तथा पित्तज प्रमेह जो उपद्रवयुक्त पूर्वरूपसे उत्पन्न हुएहों अथवा जो वातजनित प्रमेह हों वह सब असाध्य होतेहैं । पित्तजप्रमेह याप्य है और कफजनित प्रमेह जिनमें भेद दूषित नहीं होता वह साध्य होतेहैं । मधुमेहकी संतानके जो बीजदोषके कारण प्रमेह ही वह असाध्य होताहै । एवं जो रोग कुलपरम्परासे चले आतेहैं वह भी असाध्य होतेहैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

प्रमेहपिडकाओंकी चिकित्सा ।

प्रमेहिणांयाःपिडकामयोक्ता रोगाधिकारेपृथगेवसप्त । ताःशल्यह-

द्भिःकुशलैश्चिकित्साः शस्त्रेणसंशोधनरोपणैश्चेति ॥ ५९ ॥

रोगाधिकारमें जो प्रमेहरोगकी सात पिडका पृथक् वर्णन कीगईहैं उनकी चिकित्सा धन्वन्तरिजीके कहेहुए शल्यतंत्रको जाननेवाला कुशल यैद्य शस्त्रद्वारा तथा क्रियाद्वारा करे ॥ ५९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

हेतुर्दोषादृष्यंमेहानांसाध्यतानुरूपश्च । मेहीत्रिविधत्रिविधंभिप-
ग्जितंलक्षणंतस्य । आद्यायवान्नविकृतिर्मन्थामेहापहाः कपायाश्च
॥ ६० ॥ तैलघृतलेहयोगाभक्ष्याःप्रवरासवासिद्धाः । व्यायामवि-

धिर्विधिः स्नानान्युद्वर्तनानिगन्धाश्च । मेहानांप्रशामार्थंचिकित्सि-
तेदृष्टमेतावदिति ॥ ६१ ॥

इति श्रीचरक० चिकित्सितस्थाने प्रमेहचिकित्सितं नामषष्ठोऽध्यायः ६

प्रमेहोंके हेतु, दोष, दूष्य, साध्यता, अनुरूप, तीन प्रकारके रोग, उनकी तीन प्रकारकी चिकित्सा, लक्षण, भक्षणकरनेके लिये जोके पदार्थ, मन्थ, प्रमेहनाशक कपाय, तैल, घृत, लेह, भक्ष्ययोग, अनुभव कियेहुए आसव, व्यायामविधि, अनेक प्रकारके स्नान, उद्वर्तन, गंधद्रव्यादि, प्रमेहनीतिक विधि इस प्रमेहं चिकित्सितनामके अध्यायमें कही गई हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० चि० स्था० प्र० भा० टी० प्रमेहचिकित्सितं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम कुष्ठचिकित्सितनामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

कुष्ठोत्पत्तिका हेतु ।

हेतुंलिङ्गंविधिं कुष्ठानामाश्रयंप्रशमनञ्च । शृण्वन्निवेश ! सम्यग्वि-
शेषतःस्पर्शनघ्नानाम् ॥ १ ॥ विरोधीन्यन्नपानानिद्रवस्निग्धगुरू-
णिच । भजतामागतांछर्दिर्वेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ २ ॥ व्या-
याममतिसंतापमतिभुक्त्वानिपेविणाम् । शीतोष्णलंघनाहारान्-
क्रमंसुक्त्वानिपेविणाम् ॥ ३ ॥ धर्मश्रमभयार्तानांद्रुतंशीताम्बुसे-
विनाम् । अजीर्णाध्याशिनाञ्चैवपञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ ४ ॥ न-
वाश्रदधिमत्स्यातिलवणास्लानिपेविणाम् । मापमूलकपिष्टान्नगुड-
क्षीरतिलाशिनाम् ॥ ५ ॥ व्यवायंवाविजीर्णेऽन्नेनिद्रांवाभजतांदिवा ।
विप्रान्गुरून्धर्षयतांपापंवाकर्मकुर्वताम् ॥ ६ ॥ वातादयन्त्रयोदुष्टा-
स्त्वग्रक्तंमासमभ्युच । दूपयन्तिसकुष्ठानांससकौद्रव्यसंग्रहः ॥ ७ ॥

अतः कुष्ठाविजायन्तेसप्तचैकादशैवच । नचैकदोषजंकिञ्चित्कुष्ठंसमुपलभ्यते ॥ ८ ॥

अब हम स्पर्शशक्ति और त्वचाके नष्ट करनेवाले कुष्ठ (कोढ़) के अनेक हेतु, लक्षण और उनके शान्तिके उपायोंका वर्णन करतेहैं । हे अग्निवेश ! तुम सावधान होकर सुनो विरुद्ध अन्नपान और चिकने, भारी पदार्थोंका अत्यंत सेवन, उपस्थित वमनके वेगको रोकना तथा मलमूत्रादिवेगोंका रोकना, अधिक भोजन करके अधिक परिश्रम और अत्यन्त संतापका सेवन, क्रमको छोड़कर शीत, उष्ण, लंघन और आहारका सेवन, धूप, परिश्रम आदिसे अथवा भयसे घबराये हुए व्यथित समय शीघ्र शीतल जलका सेवन करना, अजीर्णमें भोजन करना, वमन, विरेचनादि पांचकर्मोंमें अपचारका, होना, नया अन्न दही, मछली, नमक और खटाईका अधिक सेवन उडद, मूली, पिष्टान्न, गुड, दूध, और तिलोंका अधिक सेवन अन्नके पचे बिना मैथुन करना, दिनमें सोना, पापकर्मका करना ब्राह्मण और गुरुजनादिकोंका तिरस्कार करना, इन सब कारणोंसे कुपितहुए वातादिक तीनों दोष तथा इनसे दूषित हुए त्वचा, रक्त, मांस और लसीका यह सातों सब प्रकारके कुष्ठोंके कारण हैं । इनसे ७ महाकुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ सब मिलाकर १८ प्रकारके कुष्ठ उत्पन्न होतेहैं । एक दोषसे कोई कुष्ठ नहीं होता किन्तु इनमें सब दोषोंका संबंध होताहै ॥ १-८ ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

स्पर्शान्यथात्वंस्वेदोतिनवावैवर्ण्यमुन्नतिः । कोठानांलोमहर्षश्चकण्डूस्तोदःश्रमःक्लमः ॥ ९ ॥ त्रणानामधिकंशूलंशीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः । दाहःसुप्ताङ्गताचेतिकुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १० ॥

त्वचाका विगडजाना, पसीनोंका अधिक आना, अथवा विल्कुल न आना, शरीरकी विवर्णता, त्वचामें चकत्तेसे प्रगट होना, रोमांच होना तथा खाज, तोद, श्रम, क्लान्ति होना, शरीरमें घाव (जलम) होनेपर उनमें अधिक पीडा होना, घावोंका शीघ्र प्रगट होजाना और बहुत दिनोंतक बनेरहना एवं अंगोंका सोजाना यह सब कुष्ठके पूर्वरूपमें होतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥

कुष्ठोंके नाम ।

अत ऊर्ध्वमष्टादशानांकुष्ठानांकपालोदुस्वरमण्डलप्यजिह्वपुण्डरीकसिध्मकाकणकैककुष्ठचर्मकिटिभविपादिकालसकदट्टुचर्मदलपाभाविस्फोटकशतारुर्विकारिकानांलक्षणान्युपदेक्ष्यामः ॥ ११ ॥

इसके उपरांत कपाल औदुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म, काकणक, एककुष्ठ, चर्म, किटिभ, विपादिका, अलसक, दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक, शतारू, और विचर्चिका इन १८ प्रकारके कुष्ठोंके लक्षणोंका वर्णन करतेहैं ॥ ११ ॥

१-कपाल कुष्ठके लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभयद्रूक्षंपरुषन्तनु ।

कापालन्तोदबहुलंतत्कुष्ठंविषमंस्मृतम् ॥ १२ ॥

जो कुष्ठ काला लालवर्णयुक्त, कपालके समान रुक्ष, खुर्दरा, पतली त्वचावाला और जिसमें सूई चुभानेकीसी अत्यंत पीडा होतीहो उसको कपालकुष्ठ कहतेहैं । यह कुष्ठ विषम अर्थात् कष्टसाध्य होताहै ॥ १२ ॥

२-औदुम्बर कुष्ठके लक्षण ।

कण्डूविदाहरुग्रागपरीतंलोमपिञ्जरम् ।

उदुम्बरंफलाभासंकुष्ठमौदुम्बरंविदुः ॥ १३ ॥

जिस कुष्ठमें खुजली, दाह, पीडा, और लाल वर्ण हो तथा रोमोंमें पीलापन हो और जिसका आकार गूलरके फलके समान हो उसको औदुम्बर कुष्ठ कहतेहैं ॥ १३ ॥

३-मंडल कुष्ठके लक्षण ।

श्वेतंरक्तंस्थिरंस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् ।

कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तंकुष्ठमण्डलमुच्यते ॥ १४ ॥

जो कुष्ठ श्वेत तथा लालवर्णयुक्त हो और कठोर गिलगिला, चिकना, ऊपरको जंचा, उठाहुआ, और मण्डलाकार हो, जिसके चकते आपसमें मिलेदुप हीं उनको मण्डलकुष्ठ कहतेहैं । यह कुष्ठ कष्टसाध्यहै ॥ १४ ॥

४-ऋष्यजिह्व कुष्ठके लक्षण ।

कर्कशंरक्तपर्यन्तमन्तःश्यावसवेदनम् ।

यदृष्यजिह्वासंस्थानेऋष्यजिह्वंतदुच्यते ॥ १५ ॥

जो कुष्ठ स्पर्शमें रस हो और जिसके किनारे लालवर्णके हैं, बीचमें काला और पीडायुक्त हो, आकारमें रीछकी जिह्वके समान हो उसको ऋष्यजिह्वा कहतेहैं ॥ १५ ॥

५-पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ।

सश्वेतंरक्तपर्यन्तंपुण्डरीकदलोपमम् ।

सोत्सेधश्चसदाहश्चपुण्डरीकंतदुच्यते ॥ १६ ॥

जिस कुष्ठका वर्ण श्वेत हो और किनारे लाल हों, जो कमलके फूलकी पंखड़के (पत्रके) समान हो तथा उंचाईयुक्त और दाहवाला हो उसको पुण्डरीक कुष्ठ कहतेहैं ॥ १६ ॥

६-सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतंताम्रतनुचयद्रजोघृष्टंविमुञ्चति ।

अलाबुपुष्पवर्णतत्सिध्मंप्रायेणचोरसि ॥ १७ ॥

जो कुष्ठ श्वेत तथा ताम्रवर्णवाला हो और त्वचा पतली हो, जिसके खुजलानेसे भूसीसी उडतीहो, जिसका आकार घीयाके फूलके समान हो उसको सिध्मकुष्ठ कहतेहैं । यह प्रायः छातीपर अधिक होताहै ॥ १७ ॥

७-काकणक कुष्ठके लक्षण ।

यत्काकणन्तिकावर्णसपाकंतीत्रवेदनम् ।

त्रिदोषलिङ्गतत्कुष्ठंकाकणनैवसिद्ध्यति ॥ १८ ॥

जिस कुष्ठका आकार रक्तक (घुंघुची) के समान बीचमें काला और किनारोंपर लाल अथवा बीचमें लाल और किनारोंपर कालेवर्णका हो तथा किञ्चित् पाकयुक्त और तीव्रपीडायुक्त हो उसको काकणककुष्ठ कहतेहैं, यह तीनों दोषोंकी प्रधानतायुक्त होनेसे असाध्य होताहै । यह सात महाकुष्ठ कहातेहैं ॥ १८ ॥

८-९-१-एककुष्ठ और २-चर्मकुष्ठके लक्षण ।

अस्वेदनंमहावास्तुयन्मत्स्यशकलोपमम् ।

तदेककुष्ठंचर्मख्यंवहलंहस्तिचर्मवत् ॥ १९ ॥

जिसमें पसीनेन आते हों, जो बहुतजगहमें व्याप्त हो, जो मछलीके कत्कके समान चमकयुक्त हो उसको एककुष्ठ कहतेहैं । (जिसमें शरीर काला अथवा लाल पड़जाता है उसको एककुष्ठ कहतेहैं और यह असाध्य होताहै) जिसमें त्वचा हाथीके चमड़ेके समान मोटी होजाय उसको चर्मकुष्ठ (गजचर्म) कहतेहैं ॥ १९ ॥

१०-किटिभ कुष्ठके लक्षण ।

श्यावंकिणखरस्पर्शंपरुपंकिटिभंस्मृतम् ॥ २० ॥

जो श्यामवर्ण कणके समान खरस्पर्श (खरदंरा) और रूखासा होताहै उसको किटिभकुष्ठ कहतेहैं ॥ २० ॥

१ कोई श्वेतकुष्ठ (फुटवहरी) को ही सिध्मकुष्ठ कहतेहैं । परन्तु श्वेतकुष्ठ और है तथा सिध्म (टिग्म) में बड़ा भारी अंतर है ।

११-वैपादिकके लक्षण ।

वैपादिकंकरेपादेस्फोटनंतीव्रवेदनम् ॥ २१ ॥

हाथ पावोंके फटजानेपर जो तीव्र वेदनायुक्त विवाई होजातीहै उसको विपादिका (विवाई) कहतेहैं ॥ २१ ॥

१२-अलसकके लक्षण ।

सकण्डूकैःसरागैश्चगण्डैरलसकंस्मृतम् ॥ २२ ॥

जिसमें खुजलीयुक्त लालरंगकी गांठेंसी हों उसको अलसककुष्ठ कहतेहैं ॥ २२ ॥

१३-ददुमण्डलके लक्षण ।

सकण्डूरागपिडकंददुमण्डलमुद्गतम् ॥ २३ ॥

जो अत्यंत खाजयुक्त लाल २ छोटी २ फुन्सियों सहित चकतेसे हों उसको ददुमण्डल कहतेहैं ॥ २३ ॥

१४-चर्मदलके लक्षण ।

रक्तंसकण्डूसस्फोटंसरुग्दलतिचापियत् ।

तच्चर्मदलमाख्यातंसंस्पर्शासहमुच्यते ॥ २४ ॥

जिसका लाल वर्ण हो और खुजली होतीहो जो फोडे और पीडासे युक्त हो तथा फटाहुआ सा हो,जिसमें हाथका स्पर्श न सहाजाय उसको चर्मदल कुष्ठ कहतेहैं ॥ २४ ॥

१५-पामाके लक्षण ।

पामाःश्वेतारुणाःश्यावाःपिडका कण्डुलाभृशम् ॥ २५ ॥

हाथों आदि सब शरीरमें सफेद, लाल, काली बहुतती खुजलीयुक्त फुन्सियोंको पामा (खुजली खाजी) कहतेहैं ॥ २५ ॥

१६-विस्फोटकके लक्षण ।

श्वेताःश्यावारुणाभासाविस्फोटाःस्युस्तनुत्वचः ॥ २६ ॥

जिन फोडोंमें सफेद, काले और लालवर्णकी झलक मारतीहो और त्वचा पतली हो उन फोडोंको विस्फोटक कहतेहैं ॥ २६ ॥

१७-शतारुके लक्षण ।

रक्तंश्यावंसदाहार्त्तिशतारुःस्याद्दुव्रणम् ॥ २७ ॥

जिसमें लाल तथा श्यामवर्ण और दाहयुक्त बहुतसे व्रण (घाव) हैं उसको शतारु कहतेहैं ॥ २७ ॥

१८-विचर्चिकाके लक्षण ।

सकण्डूःपिडकाःश्यावावहृस्त्रावाविचर्चिकाः ॥ २८ ॥

बहुत स्राव और खुजलीयुक्त श्यामवर्णकी फुन्तियोंको विचर्चिका कहतेहैं । यह ११ क्षुद्र कुष्ठ होतेहैं ॥ २८ ॥

कुष्ठोंको दोषपरत्व ।

वातेऽधिकतरेकुष्ठंकापालंमण्डलंकफे । पित्तत्वौदुम्बरंविद्यात्काक-
णन्तुत्रिदोषजम् ॥ २९ ॥ वातपित्तेश्लेष्मपित्तेवातश्लेष्माणिचा-
धिके । ऋष्यजिह्वंपुण्डरीकंसिध्मकुष्ठंचजायते ॥ ३० ॥ चर्माख्यमे-
कंकुष्ठञ्चकिटिभंसविपादिकम् । कुष्ठश्चालसकंज्ञेयंप्रायोवातकफा-
दिकम् ॥ ३१ ॥ दद्रूश्चर्मदलंपामाविस्फोटाश्चशतारुषः । पित्तश्ले-
ष्माधिकाःप्रायःकफप्रायाविचर्चिका ॥ ३२ ॥

कपालकुष्ठमें वायु प्रधान होतीहै । मण्डलकुष्ठमें कफकी प्रधानता होतीहै । उदु-
म्बरकुष्ठमें पित्तकी प्रधानता होतीहै । और काकणक कुष्ठमें तीनों दोषोंकी प्रधानता
होतीहै । ऋष्यजिह्वमें वात पित्तकी प्रधानता है । पुण्डरीककुष्ठमें कफपित्तकी प्रधा-
नता होतीहै । और सिध्मकुष्ठमें वातकफकी प्रधानता होतीहै । गजचर्म, एककुष्ठ,
किटिभ, विपादिका और अलसकमें प्रायः वातकफकी प्रधानता होतीहै । दद्रु, चर्मदल,
पामा, विस्फोटक, और शतारुकुष्ठमें प्रायः कफपित्तकी प्रधानता होतीहै । एवं विच-
र्चिकामें कफकी प्रधानता होतीहै । संपूर्ण कुष्ठ तीनों दोषोंसे युक्त होतेहुए भी उनमें
इस प्रकार एक २ अथवा दो २ दोषोंकी अधिकता होतीहै ॥ २९-३२ ॥

कुष्ठोंमेंचिकित्साक्रम ।

सर्वत्रिदोषजंकुष्ठंदोषाणाञ्चबलाबलम् । यथास्वैर्लक्षणैर्बुद्ध्वाकु-
ष्ठानांक्रियतेक्रिया ॥ ३३ ॥ दोषस्ययस्यपश्येत्कुष्ठेषुविशेषलिङ्ग-
मुद्रिक्तम् । तस्यैवशमंकुर्यात्ततःपरञ्चानुबन्धस्य ॥ ३४ ॥

संपूर्ण कुष्ठही त्रिदोषाश्रित होतेहैं । इनमें उनके अपने २ लक्षणों द्वारा दोषोंका
बलाबल विचारकर चिकित्सा करना चाहिये । जिस कुष्ठमें जिस दोषके अधिक
चिह्न दिखाईपडें पहिले उसीकी चिकित्सा करना चाहिये । उसके करनेपर अनुबंधी
दोषोंकी चिकित्सा करना उचित है ॥ ३३ । ३४ ॥

कुष्ठोंमें जातव्य ।

कुष्ठविशेषैर्दोषादोषविशेषैःपुनस्तुकुष्ठानि ।

ज्ञायन्तेतैर्हेतुहेतुस्तांश्चप्रकाशयति ॥ ३५ ॥

कुष्ठोंके भेदोंसे दोष और दोषोंके लक्षणोंसे कुष्ठ पहिचाने जातेहैं । एवं कुष्ठविशेषसे हेतु और हेतुओंसे कुष्ठ जाने जातेहैं जैसे उदुंबरकुष्ठसे पित्तकी आधिकता और पित्तके लक्षणोंसे उदुंबरकुष्ठ जाना जाताहै । सो आगे दिखातेहैं ॥ ३५ ॥

वातजादिकुष्ठोंके लक्षण ।

रौक्ष्यंशोपस्तोदःशूलंसङ्कोचनंतथायासः । पारुष्यंखरभावोहर्षः

श्यावारुणत्वंच ॥ ३६ ॥ कुष्ठेषुवातलिङ्गंदाहोरागःपरिस्रवःपाकः ।

विस्त्रोगन्धःक्लेदःतथांगपतनश्चपित्तकृतम् ॥ ३७ ॥ श्वैत्यंशैत्यं-

कण्डूः स्थैर्यसोत्सेधगौरवंस्नेहाः । कुष्ठेषुतुकफलिङ्गंजन्तुभिरभि-

भक्षणंक्लेदः ॥ सर्वैरेतैर्लिङ्गैर्युक्तंमतिमान् विवर्जयेदवलम् ॥ ३८ ॥

जिस कुष्ठमें रुखापन, शोष, तोद, शूल, संकोच, आयास, कठोरता, खरदरापन, रोमोंका खडाहोना और श्याम तथा लालवर्ण यह वायुके लक्षण हों उसको वातप्रधान जानना । जिसमें दाद, लालवर्ण, स्राव, पाक, विम्वगंध, क्लेद, और किसी अवयवका गिरजाना यह पित्तकृत लक्षण हों उसको पित्तप्रधान जानना । जिस कुष्ठमें शीतलता, खुजली, स्थिरता, ऊंचापन, गुरुता, चिकनापन एवं श्वेतवर्ण हो तो यह कफप्रधान कुष्ठके लक्षण समझना । जिस कुष्ठमें कीड़े पडगयेहों क्लेद हो तथा वातादि तीनों दोषोंके लक्षण हों और रोगी दुर्बल हो तो बुद्धिमान् वैद्य ऐसे रोगीको असाध्य जानकर त्याग देवे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कुष्ठका असाध्यत्व ।

तृष्णादाहपरीतंशान्ताग्निजन्तुभिर्जग्धम् ॥ वातकफप्रवृत्तयद्यदेक-

दोषोत्वणंनतत्कृच्छ्रम् । कफपित्तवातपित्तप्रवलानितुकृच्छ्रकु-

ष्ठानि ॥ ३९ ॥

जिस कुष्ठरोगीको प्यास, दाह और मंदाग्नि हो तथा कीड़े पडगयेहों वह असाध्य जानना । वातकफाधिक अथवा एकदोषाधिक हो वह कुष्ठ साध्य होताहै । और जिन कुष्ठोंमें कफपित्त अथवा वातपित्त प्रवल होतेहैं वह कष्टसाध्य होतेहैं ॥ ३९ ॥

कुष्ठोंकी दोषानुसार चिकित्सा ।

वातोत्तरेपुसर्पिर्वमनंश्लेष्मोत्तरेपुकुष्ठेषु ।

पित्तोत्तरेपुसोक्षोरक्तस्यविरेचनंचाग्रे ॥ ४० ॥

वातप्रधान कुष्ठमें प्रयम ही घृतपान करना चाहिये । कफप्रधानमें वमन करावे और पित्तप्रधानमें गन्तमोक्षण तथा विरेचन करना चाहिये ॥ ४० ॥

वमनविरेचनयोगाःकल्पोक्ताःकुष्ठिनांप्रयोक्तव्याः ।

प्रच्छनमल्पेकुष्ठेमतंशिरावेधनंमहतिचशस्तम् ॥ ४१ ॥

: कल्पस्थानमें कहेहुए वमन विरेचन कुष्ठरोगियोंके लिये प्रयुक्तकरे । अल्पकुष्ठमें पछने लगा, उनमेंसे किंचित् रक्तनिकालकर औषध लगाना और महाकुष्ठमें शिरावेधन (फस्तखोलना) हित है ॥ ४१ ॥

बहुदोषःसंशोध्यःकुष्ठीबहुशोनुरक्षताप्राणान् ।

दोषेह्यतिमात्रहृतेवायुर्हन्यादवलमाशु ॥ ४२ ॥

बहुत दोषोंसे युक्त कौष्ठमें संशोधन करे परन्तु इस प्रकार प्राणोंकी रक्षा करता रहे कि जिससे संशोधन करते रोगीकी मृत्यु न होजाय । क्योंकि दोषोंके अत्यन्त हरण किये जानेसे निर्बल रोगीको वायु शीघ्र मारडालतीहै ॥ ४२ ॥

स्नेहस्यपानमिष्टंशुद्धेकोष्ठेप्रवाहितेरुधिरे ।

वायुर्हिंशुद्धकोष्ठंकुष्ठिनमवलंविशतिशीघ्रम् ॥ ४३ ॥

संशोधन द्वारा अनेकवार शुद्ध कोष्ठ होनेके अनन्तर और रक्तमोक्षण -(फस्तखोलने) के अनन्तर रोगीको स्नेहपान कराना चाहिये क्योंकि स्नेहपान न करनेसे शुद्ध कोष्ठ रोगीके कोष्ठमें अति शीघ्र वायु प्रवेश करलेतीहै ॥ ४३ ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग ।

दोषोत्तिलष्टेहृदयेवम्यःकुष्ठेषुचोर्द्धभागेषु । कुटजफलमदनमधुकैः

सपटोलैर्निम्बरसयुक्तैः ॥ ४४ ॥ शीतरसःपक्षरसोमधूनिमधुक-

ञ्चवमनानि । कुष्ठेषुत्रिवृतादन्तीत्रिफलाचविरेचनेशस्ताः ॥ ४५ ॥

हृदयके दोषोंसे उत्कलेशित होने और शरीरके ऊपरी भागमें कुष्ठरोगके होनेपर इन्द्रजौ, मैनफल, मुलैठी पटोलपत्र और नीमके रस या कायको पिलाकर करावे ४४ कुष्ठरोगमें वमन करानेके लिये मैनफल आदिका शीतकपाय अथवा कायमें ग्रहत और मुलैठीका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये । एवं कुष्ठमें विरेचन करानेके लिये निशोथ, दन्ती और त्रिफला यह द्रव्य उत्तम हैं ॥ ४५ ॥

सौवीरकंतुषोदकमालोडनमासवांस्तुशीध्वादीन् । शंसन्त्यधोहरा-

णायथाविरेकःक्रमश्चेष्टः ॥ ४६ ॥

विरेचनकर्ता द्रव्य घोलनेके लिये या अनुपानके लिये सौवीरक, तुषोदक, आसव अथवा शीघ्र लेना चाहिये । तदनन्तर विरेचन विधिमें जो पेपादिक्रम वर्णन कियाहै उसका सेवन करना चाहिये ॥ ४६ ॥

कुष्ठमें स्थापन योग ।

दार्वावृहतीसेव्यैःपटोलपिचुमर्दमदनकृतमालैः ।

सस्नेहैरास्थाप्यःकुष्ठीसकलिङ्गवमुस्तैः ॥ ४७ ॥

कुष्ठ रोगीको दारुहल्दी, बडी कटेरी खस पटोलपत्र, नीमकी छाल, मैनफल, करंजुआ, इन्द्रजौ और मोया इनके काथमें सिद्ध कियेहुए स्रेहसे आस्थापनवास्ति करावे ॥ ४७ ॥

कुष्ठमें अनुवासन योग ।

वातोत्वणविरिक्तनिरूढमनुवासनार्हमालक्ष्य ।

फलमधूकनिम्बकुटजैःसपटोलैःसाधयेत्स्नेहम् ॥ ४८ ॥

विरेचन और निरूहण करनेके अनन्तर वायुकी अधिकता होनेपर यदि अनुवासन करना उचित समझे तो मैनफल, मुलेठी नीमकी छाल, कुडाकी छाल और पटोल-पत्रोंसे सिद्ध किये हुए स्रेहकी अनुवासनवास्ति देवे ॥ ४८ ॥

कुष्ठमें नस्यप्रयोग ।

दन्तीमधूकसैन्धवफणिज्झकाःपिप्पलीकरञ्जफलम् ।

नस्यंस्यात्सविडङ्गंक्रिमिकुष्ठकफप्रदोषघ्नम् ॥ ४९ ॥

दन्ती, मुलेठी, संधानमक, फणिज्झक, तुलसी, पीपल, करंजुवा और वायविडंगकी, नस्य (नएवार) ले तो क्रिमिकुष्ठ (मस्तकके कृषि) और कफविकार नष्ट होतेहैं ॥ ४९ ॥

अन्य क्रम ।

वैरोचनिकैर्धूमैःश्लोकस्थानेतितैश्चशाम्यन्ति । क्रिमयःकुष्ठकिला-

सप्रयोजितैरुत्तमाङ्गस्थाः ॥ ५० ॥ स्थिरकठिनमण्डलानांखिन्ना-

नांप्रस्तरप्रणालीभिः । कूर्चैर्विघटितानारक्तोत्केशोपनेतव्यः ॥ ५१ ॥

सूत्रस्थानमें विरेचनकरनेवाले धूमप्रयोग कहे हैं उनके प्रयोगसे शिरके कृमि कुष्ठ और किलास शीघ्र नष्ट होजातेहैं । स्थिर और कठोर चकत्तोंको प्रस्तरस्वेदसे स्वेदित करके उन चकत्तोंको कूर्च (कूची) से साफ करके उनके उत्कलेशित रक्तको निकाल देना चाहिये ॥ ५० ॥ ५१ ॥

रक्तमोक्षणविधि ।

आनूपवारिजानांमांसानांपटोलैःसुखोष्णैश्च । खिन्नोत्खिन्नंवि-

लिखेत्कुष्ठंतीक्ष्णनशस्त्रेण ॥ ५२ ॥ रुधिरागमार्थमथवाशुह्वाला-

वृभिराहरेद्रक्तम् । प्रच्छित्तमल्पकुष्ठंविरेचयेद्वाजलौकाभिः ॥ ५३ ॥
 येलेपाःकुष्ठानांयुज्यन्तेनिर्हृतास्त्रदोषाणाम् । संशोधिताशयानां
 सद्यःसिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥ ५४ ॥

आनूप और औदक पशुपक्षियोंका सुखोष्ण मांस और पंडोलको उबालकर उनसे कुष्ठको स्वेदन करे फिर साफ करके पोछ लेवे पीछे तीक्ष्ण शस्त्रसे रुधिर निकालनेके लिये लेखन करे अथवा सींगी या तुंबीद्वारा रक्तको निकाले और क्षुद्रकुष्ठमें पछने लगाकर जोकांसे रुधिरको निकालना चाहिये । कोष्ठके शुद्ध होनेपर और रुधिर तथा दोषोंके निकालनेसे घाव शुद्ध होनेपर जो लेप किये जातेहैं वह शीघ्र लाभदायक होतेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

येपुनश्शस्त्रंक्रमतेस्पर्शेन्द्रियनाशनानियानिस्युः । तेषुनिपात्यक्षारं
 रक्तदोषंचनिःस्त्राव्य ॥ ५५ ॥ पापाणकठिनपरुषेसुसेकुष्ठेस्थिरे
 पुराणेच । पीतामदस्यकार्योविषैः प्रदेहोऽगदैश्वानु ॥ ५६ ॥

जिन कुष्ठोंमें शस्त्रका प्रयोग कार्य नहीं कर सकता और जिनमें स्पर्शशक्तिका नाश होजाताहै उनमें क्षारके प्रयोगसे रक्त और दोषोंको निकाल देना चाहिये ॥ ५५ ॥ पत्थरके समान कठोर, परुष, सुप्त स्थिर और पुराने कुष्ठमें रोगीको विपनाशक औषध पिलाकर कुष्ठपर विषैली औषधियोंका लेप करना चाहिये । फिर थोड़ी देर पीछे उस विषैली औषधको उतारकर विपनाशक लेप करे ॥ ५६ ॥

स्तब्धानिसुप्तसुप्तान्यस्वेदनकण्डूलानिकुष्ठानि । कूर्चेर्दन्तीत्रिफ-
 लाकरवीरकरञ्जनिम्बकुटजानाम् ॥ ५७ ॥ जात्यर्कनिम्बकुटजैः
 पत्रैःशस्तैःसमुद्रफेनैर्वा । घृष्टानिगोमयैर्वाततःप्रलेपैःप्रदेह्यानि ॥ ५८ ॥

स्तब्ध, अत्यन्तशून्यतायुक्त फैलेहुए स्वेदरहित और खुजलीयुक्त कुष्ठको प्रथम दन्ती, त्रिफला, कनेर, करंजुआ नीमकी छाल, कुडाकी छाल इनकी कूर्चीसे अथवा चमेली, आक, नीम और कुडाके पत्तोंसे अथवा शम्भूसे अथवा समुद्रफेनसे अथवा सूखे गोहेसे घिसकर खुजलावे फिर रोगनाशक लेप करना चाहिये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पित्तकुष्ठकी चिकित्सा ।

मारुतकफकुष्ठं कर्मोक्तं पित्तकुष्ठानाम् । कफपित्तरक्तहरणां तिक-
 पायैः प्रशमनञ्चलपीषि ॥ ५९ ॥ तिक्तकानिचयञ्चान्यद्यद्रक्त-
 पित्तनुत्कर्म । बाह्याभ्यन्तरमध्यन्तरकार्यपित्तकुष्ठघ्नम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार वातप्रधान कुष्ठ और कफप्रधान कुष्ठकी चिकित्साका क्रम कहागयाहै पित्तप्रधान कुष्ठमें कफ पित्त रुधिरको हरनेवाला कर्म करना चाहिये । तिक्तकपाय, तिक्तघृत, तथा अन्य रक्तपित्तनाशक कर्म एवं पित्तकुष्ठको नाश करनेवाली उत्तम २ बाह्य और आभ्यंतर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥

दोषाधिव्यविभागादित्येतत्कर्मकुष्ठनुत्प्रोक्तम् ।

वक्ष्यामिकुष्ठशमनंप्रायस्त्वग्दोषसामान्यात् ॥ ६१ ॥

वातादि दोषोंकी प्रधानताके अनुसार कुष्ठनाशक क्रिया कही गयीहै । सब कुष्ठ त्वचाको ही दूषित करतेहैं इसलिये प्रायः त्वचाके दोषकी सब कुष्ठोंमें समानता है । सो अब त्वग्दोषकी समानतासे कुष्ठनाशक प्रयोग वर्णन करतेहैं ॥ ६१ ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग ।

दार्वीरसाञ्जनंवागोमूलेणप्रवाधतेकुष्ठम् ।

अभयाप्रयोजितावामांसव्योपगुडतैलाः ॥ ६२ ॥

दारूहल्दी अथवा रसौत या हरडोंको गोमूत्रके साथ पीने और लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाताहै । इसमें मांस, सोंठ, मिर्च, पीपल गुड और तेलको त्यागदेना चाहिये ॥ ६२ ॥

कुष्ठनाशक अन्य प्रयोग ।

मूलंपटोलस्यतथागवाक्ष्याःपृथक्पलांशत्रिफलात्वचश्च । स्यात्-
त्रायमाणाकटुरोहिणीच भागार्द्धिकानागरपादयुक्ता ॥ ६३ ॥ प-
लंत्वथैकंसहचूर्णितानांजलेशृतंदोषहरंपिवेन्ना । जीर्णैरसेधन्वमृ-
गव्रजानां पुराणशाल्योदनमाददीत ॥ ६४ ॥ कुष्ठानिशोफंग्रह-
णीप्रदोषं अर्शांसिकृच्छ्राणिहलीमकश्च । पद्मालयोगेननिहन्तिचैव
हृत्स्तिशूलंविषमञ्जरश्च ॥ ६५ ॥

पटोलकी जड ४ तोला, इन्द्रायणकी जड ४ तोला, हरड २ तोला, बहेडा २ तोला, आँकले २ तोला, त्रायमाण २ तोला, कुटकी २ तोला, सोंठ १ तोला, इन सबका बारीक चूर्णकर उसमेंसे प्रतिदिन एक एक पल लेकर जलमें औटाकर पीवे । औषधके पचनेपर धन्वदेशज मृगोंके मांससके साथ पुगने शालीचाबलोंका भात जवाँके सजू साथे । इस प्रयोगको छः दिन पर्यंत सेवन करनेसे शोक, कोढ़, ग्रहणी दोष, कृच्छसाध्य अर्श, हलीमक, हृदयशूल, वस्तिशूल, और विषमञ्जर यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

कुष्ठनाशक अन्ययोग ।

मुस्तंब्योपंत्रिफलामञ्जिष्ठादारुपञ्चमूलेद्वे । सप्तच्छदनिम्बत्वक्स-
विशालश्चित्रकोमूर्वा ॥ ६६ ॥ चूर्णतर्पणेभोगैर्नवभिःसंयोजितं स-
मध्वाज्यम् । श्रेष्ठकुष्ठनिवर्हणमेतत्प्रायोगिकं मध्यम् ॥ ६७ ॥
इवयथुंसपाण्डुरोगंश्चिलंग्रहणीप्रदोषमर्शांसि । ब्रध्नभगन्दरपि-
डकाःसकण्डुकोटांश्चविनिहन्ति ॥ ६८ ॥

मोया, त्रिकुटा, त्रिफला, मजीठ, दारुहल्दी, लघुपंचमूल वृहत्पंचमूल, सप्तपर्ण,
नीमकी छाल, इन्द्रायणकी जड, चीता और मूर्वा इन सबका चूर्ण समान भाग लेकर
नौ भाग शहत और घृत मिलाकर सेवन करे इसके प्रयोगसे कुष्ठ नष्ट होजाताहै तथा
शोथ, पाण्डुरोग, श्चित्रकुष्ठ, ग्रहणीदोष, अर्प, ब्रध्न, भगन्दर, पिडका खुजली और
कोडरोग यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

सुप्रकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलातिविपाकटुकानिम्बकलिंगकावचापटोलानाम् । माग-
धिकारजनीद्वयपद्मकमूर्वाविशालानाम् ॥ ६९ ॥ भूनिम्बपलाशा
नांदद्याद्विपलंततस्त्रिवृद्धित्रिगुणा । तस्याश्चपुनर्ब्राह्मीतच्चूर्णसु-
सिनुत्परमम् ॥ ७० ॥

त्रिफला, अतीस, कुटकी, नीमकी छाल, इन्द्रजौ, वच, पटोलपत्र, पीपल, हल्दी,
दारुहल्दी, पद्माक, मूर्वा, इन्द्रायणकी जड, चिरायता, और ढाककी छाल यह दो दो
पल लेवे, निशोथ चारपल और ब्राह्मी वारह पल लेवे । इन सबका चूर्ण करके सेवन
करनेसे सुप्रकण्ठ (त्वचाकी शून्यता) नष्ट होताहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

मध्वासव ।

खदिरसुरदारुसारंश्रपायित्वातद्रसेनतोयार्थः । क्षौद्रप्रस्थकार्यः
कार्येतेचाष्टपालिकेच ॥ ७१ ॥ ततश्चायश्चूर्णानामष्टपलंप्रक्षिपे-
त्तथामूनि । त्रिफलात्वङ्मरिचंचपत्रङ्कनकञ्जकर्पाशम् ॥ ७२ ॥
सत्स्यण्डिकामधुसमा तन्मांसमायसेभाण्डे । मध्वासवमाचरतः
कुष्ठकिलासेशमंयाताः ॥ ७३ ॥

खैर और देवदारुका सार लेकर इन्हींके रस या काथमें पकाकर उसमें दो प्रस्थ
शहत तथा कत्या आठ पल, देवदारु आठ पल, लोहचूर्ण आठ पल, त्रिफलाकी त्वचा,

काली मिर्च, तेजपात और धतूरा एक २ कर्प और मिसरी शहतके बराबर लेवे । इन सबको मिलाकर एक महीना लोहेके पात्रमें भरकर रखदे इस प्रकार मध्वासव तैयार होताहै । इसके सेवनसे कुष्ठ और किलास रोग नष्ट होतेहैं ॥ ७१ ॥ ७२ ७३ ॥

कनकविन्दुअरिष्ट ।

खदिरकपायद्रोणं कुम्भेघृतभावितेसमारोप्य । द्रव्याणिचूर्णिता-
नित्वष्टपलिकान्यत्र देयानि ॥ ७४ ॥ त्रिफलाव्योषविडंगरजनी
मुस्ताटरूपकेन्द्रयवा । सौवर्णत्वक्छिन्नामासंनिदधीत धान्यमध्ये
च ॥ ७५ ॥ प्रातः प्रातः पिवतो युक्त्या मासेनकुष्ठहृद्भवति ।
पक्षेणार्शःश्वासभगंदरं कासकिलडुष्टम् । पांडुंसवातरकं हन्या-
त्सप्रमेहशोपांश्च । नाभवतिकनकवर्णः पीत्वारिष्टंकनकविन्दुम् ७६

एक द्रोण खैरका काथ लेकर घृतके चिकने घडेमें भरदे फिर उसमें नीचे लिखी व्योषधियोंका आठ २ पल चूर्ण मिलावे । यथा हरडे, बहेडे, आँमले, सोंठ, मिर्च पीपल, वायविडंग, हलदी, नागरमोथा, अड्डसा, इंद्रजौ, चोख, गिलोय और धतूरेकी जड़का छिलका मिलाकर उस घडेका मुख बंद करके घडेको धान्यकी राशीमें गाडदेवे । फिर एक महीनेके अनंतर निकालकर छानलेवे उसमेंसे मात्रानुसार नित्य प्रातःकाल एक महीना पर्यंत पीवे तो महाकुष्ठ दूर हो । एक पक्ष पीनेसे छुद्र कुष्ठ दूरहों । और इसके सेवनसे बवासीर, श्वास, भगंदर, खांसी, किलासकुष्ठ, प्रमेह, और शोषरोग दूर होते हैं । तथा इस कनकविन्दु अरिष्टके पीनेसे मनुष्यका वर्ण सुवर्णके समान होजाताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

कुष्ठेष्वनिलकफकृतेष्वेवंपयोस्तथैवपित्तेषु ।

कृतमूत्रकाथश्चाप्येषविशेषात्कफकृतेषु ॥ ७७ ॥

वातप्रधानकुष्ठमें कफप्रधानकुष्ठमें, और पित्तप्रधानकुष्ठमें इस प्रकारके आतव और धरिष्टोंका प्रयोग करना चाहिये । और कफप्रधान कुष्ठमें तो विशेषकर औषधियोंके काथमें गोघृत मिलाकर पीना चाहिये ॥ ७७ ॥

श्वित्रकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलासवञ्चगौडःसचित्रकःश्वित्ररोगकुष्ठन्नः ।

क्रमुकदशमूलदन्तीवराङ्गमधुयोगसंयुक्तः ॥ ७८ ॥

त्रिफलेका आसव और गौडी मद्यको चीतेके साथ पीनेसे श्वित्रकुष्ठनष्ट होताहै

अथवा सुपारी, दशमूल, दन्ती, दालचीनी इनके स्वायमें गहत मिलाकर गौडी मद्यके साथ पीनेसे श्वित्रकुष्ठ दूर होताहै ॥ ७८ ॥

कुष्ठपर पथ्यापथ्य ।

लघूनिचान्नानिहितानिविद्यात् कुष्ठेषुशाकानिचितिककानि । भक्ष्य-
तकैश्चत्रिफलैःसनिम्वैर्युक्तानिचान्नानिघृतानिचैव ॥ ७९ ॥ पुरा-
णधान्यान्यथजाङ्गलानिमांसानिमुद्गाश्चपटोलयुक्ताः । शस्तानगु-
र्वम्लपगोदधीनि नानूपमत्स्यानगुडास्तिलाश्च ॥ ८० ॥

हलका अन्न, तिक्तशाक, भिलावे, त्रिफला, और नीमके साथ सिद्ध किये हुए अन्न और घृत, पुराने चावल यह सब कुष्ठरोगमें हितकारी हैं । भारी, खट्टा अन्न, दूध, दही, आनूपजीवांका मांस, मछली, गुड और तिल यह सब अहित हैं अर्थात् क्षानिकारक होतेहैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

कुष्ठपर लेप ।

एलाकुष्ठन्दावींशतपुष्पाचित्रकंविडङ्गञ्च ।

कुष्ठेलेपनमिष्टंरसाञ्जनञ्चाभयाचैव ॥ ८१ ॥

इलायची, कूठ, दारुहलदी, सौंफ, चीता, वायविडंग, रसौत, और हरड इन सबको गोमूत्रमें रगडकर लेप करनेसे कुष्ठ दूर होताहै ॥ ८१ ॥

दूसरा लेप ।

चित्रकमेलाविम्वीवृषकत्रिवृदर्कनागरकम् । चूर्णीकृतमष्टाहंभाब्र-
यितव्यम्पलाशस्य ॥ ८२ ॥ क्षारेणगवांसूत्रस्रुतेनतेनास्यमण्ड-
लान्याशु । भिद्यन्तेचविशान्तिचलिसान्यर्काभितप्तानि ॥ ८३ ॥

चित्रक, इलायची, कंदूरी, अडूसा, निशोथ, आक और साँठ इनके चूर्णको आठ दिन तक भावना देकर लेपके योग्य बनालेवे इस लेपको लगाकर सूर्यकी धूपमें बैठ-
जावे । इस लेपमे मण्डलकुष्ठ ग्रीष्म विलीन होकर नष्ट होजाताहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

कुष्ठपर अन्य लेप ।

मांसीमारिचंलवणंरजनीतगरंसुधागृहोद्भूमः । सूत्रंपित्तंक्षारः
पालाशःकुष्ठनुह्येपः ॥ ८४ ॥ त्रपुसीसमयश्चूर्णमण्डलनुच्चित्रकंबृ-
हती । गोधारंसःसलवणंदारुचमूत्रश्चमण्डलनुत् ॥ ८५ ॥ कद-
लीपलाशपाटलिनिचुलक्षाराम्भसाप्रसत्रेन । मासेपुतोयकार्यं

कार्यम्पिष्टेचकिण्वेच ॥ ८६ ॥ तैर्मोदकःसुजातःकिण्वैर्जनितप्रले-
पनंशस्तम् । मण्डलकुष्ठविनाशनमातपसंस्थेकिमिधञ्च ॥ ८७ ॥

जटाभांसी, भिरच, संधानमक, हलदी, तगर, थोहर, गृहधूम, गोमूत्र, पित्त, और
ढाकका खार इनका लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाताहै । अथवा रांग, सीसा, लोहचूर्ण,
चीता और बडी कटेरी इनका लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ रोग दूर होताहै । अथवा
गोधारसे, संधानमक, दारुहलदी और गोमूत्र इनका लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ नष्ट
होजाताहै । अथवा केला, ढाक, पाठ और निचुल (हिंजल) इनके क्षारके शुद्ध
जलमें मांसको पकावे फिर उसी जलमें चावलको पीसकर उसमें सुराकिण्वको
“घोलले” । यह सब मिलकर मोदकके समान गोलासा बनजायगा । और इसमेंसे
जो वह सुराका घोलसा नीचे ही उसको निकालकर लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ दूर
होजाताहै । और लेपकरके धूपमें तपानेसे किमिरोग नष्ट होजाताहै ॥ ८४-८७ ॥

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

मुस्तंमदनंत्रिफलाःकरञ्जआरग्वधःकलिङ्गयवाः । दार्वीससप्तप-
र्णात्नानंसिद्धार्थकंनाम ॥ ८८ ॥ एषकषायोवमनंविरेचनंवर्ण-
कस्तथोद्धर्षः । त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रवाहनः पाण्डुरोगघ्नः ॥ ८९ ॥

नागरमोथा, भैरफल, त्रिफला, लताकरंजका फल, अमलतास, इन्द्रजौ, दारुहलदी
सप्तपर्ण, और सफेदसरसों यह कूटकर जलमें उवाले फिर उस जलसे स्नान करनेसे
तथा इसी कषायके पीनेसे वमन और विरेचन होकर कुष्ठ नष्ट होजाताहै । एवं इन्हीं
औषधियोंके कल्कसे उबटन करनेसे त्वचाके दोष, कुष्ठ, सूजन, जखमोंका वहना
और पाण्डुरोग दूर होजातेहैं ॥ ८८ । ८९ ॥

कुष्ठंकरञ्जवीजान्येडगजःकुष्ठसूदनोलेपः । प्रपुञ्जाडवीजसैन्धवर-
स्ताञ्जनकफित्थरोश्नाश्च ॥ ९० ॥ करवीरमूलकल्कःकुष्ठञ्जकरञ्जयोः
फलन्त्वचन्द्राव्याः । सुमनःप्रवाल्युक्तोलेपःकुष्ठापहः सिद्धः रोध-
स्यधातकीनांवत्सकवीजस्यनक्तमालस्य ॥९१॥ कल्कश्चमालतीनां
कुष्ठेसूद्वर्तनालेपौ शैरीपीत्वकूपुष्पंकार्पास्याराजवृक्षपत्राणि । पि-
ट्टाचकाचमाचीचतुर्विधःकुष्ठनुल्लेपः ॥ ९२ ॥

१ पाण्डुगोधा (मोहके आकारकी बूटी) अथवा “हसपदी” बूटी । २. शारवके “घोड”
(रमीर) को सुराकिण्व कहतेहैं ।

अथवा कूठ लताकरंजके बीज, पनवाड (चक्रमर्द) के बीज इन सबका लेप करनेसे कुष्ठ रोग दूर होता है । अथवा पनवाडके बीज, सेंधानमक, और रसौत, कैथका जिलका, लोघ, कनेरकी जड, कुडाकी छाल, लताकरंजके बीज, दारुहल्दीकी छाल और फल, चमेलीकी कोंपल इनका लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होता है । लोघ, धायके फूल, इन्द्रजौ, करंजुआ और मालतीकी कोंपल इनको पीसकर देहपर मर्दन और लेपकरे तो कुष्ठ दूर होता है । एवं सिरसकी छाल, कपासके फूल, अमलतासके पत्ते और मकोह इनका लेप करनेसे कुष्ठरोग दूर होजाता है । यह चार प्रकारके लेप कुष्ठको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

कषायादि ८ योग ।

दाढ्यारसाञ्जनस्यचनिम्बपटोलस्यखदिरसारस्य । आरग्वधवृक्ष-
कयोस्त्रिफलायाःसप्तपर्णस्य ॥ ९३ ॥ इतिषट्कषाययोगानिर्दिष्टाः
सप्तमश्चतिनिशस्य । स्नानेपानेचमतास्तथाष्टमश्चास्यसारस्य ॥
॥ ९४ ॥ आलेपनंप्रघर्षणमवचूर्णनमेतएवचकषायाः । तैलघृत-
पाकयोगेचेष्यन्तेकुष्ठशान्त्यर्थम् ॥ ९५ ॥

दारुहल्दी और रसौतका काय, नीमकी छाल, और पटोलकी जडका काय, खैरसारका काय, अमलतास और इन्द्रजौका काय, सप्तपर्णका काय; इन कायोसे स्नान करनेसे और इन्हीं सबको पीनेसे कुष्ठ दूर होजाता है । तथा आठवां तिनिशका सार भी उपरोक्त गुण करता है । इन आठों योगोंका काय, लेप, उबटन, और इनके चूर्णका घावोंपर घुसकाना, (छिडकना) कुष्ठोंको नाश करता है । इन्हीं कषायोंमें सिद्ध तेल और घृत भी कुष्ठको दूर करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

त्रिफलानिम्बपटोलमाञ्जिठारोहिणीविचारजनी । एषकषायोऽभ्य-
स्तेहिनिस्तिकफपित्तजंकुष्ठम् ॥ ९६ ॥ एतैरेवचसर्पिःसिद्धंवातो-
ल्वणंजयतिकुष्ठम् । एषचकल्पोद्वेष्टःखदिरासनदारुनिम्बानाम् ९७ ॥

त्रिफला, नीम, पटोलकी जड, मजीठ, कुटकी, वच और हल्दीका काय - पीनेका अभ्यास करनेसे कफपित्तसे उत्पन्न हुआ कुष्ठ दूर होजाता है । इसी कायमें सिद्ध, किया घृत वातप्रधान कुष्ठको जीतता है । और इसी प्रकार खैर, विजैसार, दारुहल्दी और नीमका काय भी उपरोक्त प्रकारके गुण करता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अन्यप्रयोग ।

कुष्ठार्कतुरथकद्रुफलमूलकबीजानिरोहिणीकटुका । कुटजफलोत्प-

लमुस्तंबृहतीकरवीरकाशीशम् ॥ ९८ ॥ एडगजनिम्बपाटादुरा-
लभाचित्रकोविडंगश्च । तिक्तेक्ष्वाकुवीजंकम्पिल्यकसर्पपवचादा-
वी ॥ ९९ ॥ एतैस्तैलंसिद्धकुष्ठघ्नयोगएषवालेपः । तन्मर्दनंप्रघर्ष-
णमवचूर्णनमेपएवेष्टः ॥ १०० ॥

कूठ, आककी जड़, नीलाथोथा, कायफल, मूलीके बीज, कुटकी, इन्द्रजौ, नील,
कमल, नागरमोथा, बडीकटेरी, केनेर, कतीस, पनवाड, नीमकी छाल, पाठा, जवासा,
चित्रक, वायविडंग, कडवी तुंबीके बीज, कवीला, सरसों, वच, इनके कायमें
सिद्ध किया हुआ तेल कुष्ठको दूर करता है । तथा इन्हीं औषधियोंके कल्कका लेप,
मालिश, उवटन, और इन्हींके चूर्णोंको घावपर छिडकना भी कुष्ठको नाश करता
है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

कनेरका तैल ।

श्वेतकरवीररसोगोमूत्रंचित्रकोविडंगश्च ।

कुष्ठेषुतैलयोगाःसिद्धोयंसम्मतोभिपजाम् ॥ १०१ ॥

सफेद कनेरका रस, गोमूत्र, चीता और वायविडंगमें सिद्ध किया तेल कुष्ठको
दूर करता है । यह सब वैद्योंका सम्मत योग है ॥ १०१ ॥

अन्यप्रयोग ।

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वग्बत्सकूविडंगश्च । कुष्ठार्कमूलसर्पपशिषु-
त्वग्रोहिणीकटुका । एतैस्तैलंसाध्यंकल्कैःपादांशिकैर्गोमूत्रम् ।

दत्त्वातैलचतुर्गुणमभ्यंगःकुष्ठकण्डूघ्नः ॥ १०२ ॥

सफेद कनेरके पत्ते और जड़की छाल, इन्द्रजौ, वायविडंग, कूठ, आककी जड़,
सरसों सुहांजनेकी छाल और कुटकी इनके कल्कमें चौगुना तेल और तेलमें चौगुना
गोमूत्र मिलाकर तेल सिद्ध करे । फिर इस तैलकी मालिश करनेसे कोढ़ और खुजली
दूर होजाती है ॥ १०२ ॥

अन्यतैल ।

तिक्तेक्ष्वाकुवीजद्वेतुत्थेरोचनाहरिद्रेद्वे । बृहतीफलमेरुण्डःसविशा-
लश्चित्रकोमूर्वा ॥ १०३ ॥ काशीशहिंशुशिशूयूपणसुरदारुतुम्बुरुवि-
डङ्गम् । लांगलकीकटजत्वकटुकारुव्यारोहिणीचैव ॥ १०४ ॥ सर्पप-
कल्कैरेतैर्मूत्रेचतुर्गुणंसाध्यम् । कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गान्मारुत-
कफघ्नतैलम् ॥ १०५ ॥

कडवी तुंबीके बीज, दोनों प्रकारका तुत्य (तृतिया) गोरोचन, दोनों हलदी, कटेरीके फल, एरंडकी जड़, चीता, मरोडफली, कसीस, इन्द्रायणकी जड़, हॉग, सुहांजना त्रिकुटा, देवदारू, धनियां, वायविडंग, लांगलीकंद, कुडाकी छाल, कुटकी और सरसोंके कल्कसे ४ गुना कडुवा तेल और तेलसे ४ गुना, गोमूत्र डालकर तेलको सिद्धकरले । इस तेलकी मालिश करनेसे खुजली, कोढ़ वात और कफ नष्ट होतेहैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

कनकक्षीर तैल ।

कनकक्षीरीशैलाभाङ्गीदन्तीफलानिमूलञ्च । जातीफलानिप्रवालस-
र्षपलशुनविडङ्गकरञ्जत्वक् ॥१०६॥ सप्तच्छदार्कपल्लवमूलत्वङ्नि-
म्बचित्रकास्फोताः । गुञ्जैरण्डवृहतीमूलकसुरसार्जकफलानि ॥७॥
कुष्ठपाठामुस्तंतुम्बुरुंमूर्वावचासषड्ग्रन्था ॥ एडगजकटुजशिशुद्रूप-
णभल्लातकक्षवकाः ॥१०८॥ हरितालमवाक्पुष्पीतुत्यं कम्पिहकोमृ-
तासंगः । सौराष्ट्रीकासीसंदावींत्वक्सार्जिकालवणम् ॥१०९॥ कल्कै-
रेतैस्तैलंकरवीरकमूलकपल्लवकपायो । सार्षपमथवातैलंगोमूत्रचतुर्गु-
णंसाध्यम् ॥ ११० ॥ स्थाप्यंकटुकालावुनितत्सिद्धंतेनास्यमण्डला-
न्याशु । भिन्द्यान्निषगभ्यंगात्किमीश्वकण्डूविनिहन्यात् ॥१११॥

सत्यानाशी, मनसिल, भारंगी, बुलबुले (पहाडी जमालगोटे) दन्तीकी जड़, जायफल, चमेलीके पत्ते, सफेद सरसों, लहसुन, वायविडंग, करंजकी छाल, सतवन, आकके पत्ते, जड़ और छाल, नीमकी छाल, चीता, कोयल, रत्तक, एरंडकी जड़, बडी कटेरी, मूली, सुरसातुलसी, अर्जकतुलसी, मैनफल, कूठ, पाद नागरमोथा, तुंबुरु, मूर्वा, कचूर, वच, पनवाड कुडा, सुहांजना, त्रिकुटा, भिलाषा, क्षवक तुलसी, हरताल, सौंफ, नीलमोथा, कमीला, मुर्दासिंग, सोरठमिदी, सीसा, दारूहलदीकी छाल, सज्जीखार, संधानमक, इनके कल्क और करनेकी जड़ तथा पत्तोंके क्वाथमें सर-
सोंका तैल और उससे चौगुना गोमूत्र मिलाकर तैल सिद्धकरे । इस तैलको कौड़े तुंबमें भरकर रखदेवे । इस तैलके लगानेसे मण्डलकुष्ठ, किमिरोग, खुजली, तथा सब प्रकारके कुष्ठ शान्त होजातेहैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥ १११ ॥

सिध्मपर लेप ।

कुष्ठंतमालपत्रं मरिचंसमनःशिलंसकाशीशम् । तैलेनयुक्तमुचि-
तंससाहं भाजनेताम्रे ॥ तेनालिसंसिध्मंससाहाद्वयेतितिष्ठतोधर्मे ।
भासाक्षरं किलासंस्नानंमुक्त्वा विशुद्धतनोः ॥ ११२ ॥

कूठ, तमालपत्र, कालीभिचं, मनसिल, कसीस इन सबका चूर्ण बनाकर कड़ुवे तेलमें मिलाकर सात दिन तक ताँबेके पात्रमें रखदेवे, फिर इसको लगाकर धूपमें बैठे इस प्रकार ७ दिन करनेसे सिध्मकुष्ठ दूर होजाताहै । तथा शुद्ध देहवाला मनुष्य इसको १ महीने तक लगावे तो किलास, कुष्ठ नष्ट होजाताहै । परन्तु इसके सेवनमें स्नान नहीं करना चाहिये ॥ ११२ ॥

अन्य तैल ।

सर्षपकरञ्जकोशातकानितैलान्यथेगुदीनाञ्च ।

कुष्ठेपुहितान्याहुस्तैलयच्चापिखादिरस्यतैलानि ॥ ११३ ॥

सरसों, करंजुआ, कडवी तोरी, गोंदनी और खैर इन सबको अलग २ सिद्धकिये तैल कुष्ठको दूर करतेहैं ॥ ११३ ॥

विपादिकाका यत्न ।

जीवन्तीमञ्जिष्ठादार्वाकाम्पिल्लकस्तथातुत्थम् । एषघृततैलपाकः

सिद्धःसिद्धेचसर्जरसःक्षेप्यः ॥ ११४ ॥ समधूच्छिष्टोविपादिका

नश्यतिव्यासाचर्मैककुष्ठम् । किटिभंकुष्ठंशाम्यत्यलसकञ्चविपादि-

कायाम् ॥ ११५ ॥

जीवन्ती, मंजीठ, दारुहल्दी, कमीला, नीला, मोया, इनमें घृत और तेलको एक साथ पाककरे पकते समय इसमें राल और मोम मिलादे इसको विपादिका (विवाई) में भरदेनेसे विवाई नष्ट होजातीहै एवं एककुष्ठ, किटिभ, कुष्ठ और अलसक सब दूर होजाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

मण्डल कुष्ठपर लेप ।

किण्वं वराहरुधिरंपृथ्वीकासैन्धवश्चलेपः स्यात् । लेपोयोज्यः कुस्तु-

म्बुरुणिकुष्ठञ्चमण्डलनुत् ॥ ११६ ॥ पूतीकादारुजटिलापकसुराक्षौ-

द्रमुद्गपण्यौच । लेपःसकाकनासोमण्डलकुष्ठापहःसिद्धः ॥ ११७ ॥

किण्व (सुराका समीर) सूकरका रक्त, काला जीरा, संधानमक, इनका लेप

करनेसे तथा ह्मीमें धनियां और कूठ मिलाकर लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ नष्ट होजाताहै ।

अथवा करंजुआ, देवदारु, जटामांती, मुरा, शहत, मुद्गपर्णी और कारुनासा इनका

लेप भी मण्डलकुष्ठको नष्ट करतहै । यह सिद्धयोग है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

द्वैः लेप ।

चित्रकशोभाञ्जनकौगुहृच्यपामार्गदेवदारुणि । खदिरोधवश्चलेपः

श्यामादन्तीद्रवन्तीच ॥ ११८ ॥ लाक्षारसाञ्जनैलापुनर्नवाचेति
कुष्ठिनोलेपाः । दधिमण्डयुताःसर्वेदेयाःपणमारुतकफघ्नाः ॥ ११९ ॥

चित्रक और सुहांजना, गिलोय, अपामार्ग, देवदारू, खैर, धव, वावची, दन्ती
और द्रवन्ती, लाख, रसौत और इलायची तथा पुनर्नवा; इन छः योगोंमेंसे किसी
एकको दधिमण्डमें रगडकर लेपकरनेसे कुष्ठ तथा वात कफ नष्ट होंतेहैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्षपैःक्रिमिघ्नैश्च । क्रिमिकुष्ठमण्डला-
ख्यंदद्रुकुष्ठश्चशममुपैति ॥ १२० ॥ एडगजःसर्जरसोमूलकबीजश्च
सिध्मकुष्ठानाम् । काञ्जिकयुक्तन्तुपृथङ्मतमिदमुद्धर्त्तनंक्रमशो-
लेपाः ॥ १२१ ॥

पनवाडके बीज, कूठ सेंधानमक, सौवीरक (कांजी) सरसों और वायविडंग
इनका लेप करनेसे क्रिमि, कुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दद्रुकुष्ठ नष्ट होतेहैं । अथवा पनवाडके
बीज, राल, मूलीके बीज इनको कांजीमें घोटकर किसीके मतमें उबटना तथा किसीके
मतमें क्रमपूर्वक लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ दूर होजाताहै ॥ १२० ॥ १२१ ॥

अन्य प्रयोग ।

वासात्रिफलापानेस्नानेचोद्धर्त्तनेप्रलेपेच । बृहतीसेव्यपटोलाःसशा-
रिवारोहिणीचैव ॥ १२२ ॥ खदिरावघातककुभारोहीतककुटज-
धवनिम्बाः । सप्तच्छदकरवीराःशस्यन्तेस्नानपानेषु ॥ १२३ ॥

वांसा (अट्टसा) और त्रिफलाको पीने, स्नानकरने, उबटने और लेपमें प्रयोग
करनेसे कुष्ठ दूर होताहै । अथवा बड़ी कटेरी, खस, पटोलपत्र, सारिवां, कुटकी,
खैरसार, अर्जुन, रोहितवण, कुडा, धव, नीम, सप्तपर्ण, कर्नेर, इनका स्नान तथा पीनेमें
प्रयोग करनेसे कुष्ठ शान्त होतेहैं ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

अभ्यंग प्रयोग ।

जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवचन्दनंमृणालानि । भागोत्तराणिसिद्धं
प्रलेपनंपित्तकफकुष्ठे ॥ १२४ ॥ यष्ट्याहरोध्रपद्मकपटोलपिचुमर्दच-
न्दनरसाश्च । स्नानेपानेचहिताःसुशीतलाःपित्तकुष्ठेभ्यः ॥ १२५ ॥
आलेपनंप्रियंगुर्हरेणुकावत्सकस्यचफलानि । सातिविपाचसे-
व्यासचन्दनारोहिणीकटुका ॥ १२६ ॥ तिकघृतैर्घृतघृतेरभ्यं-

गोदह्यमानकुष्ठेषु । तैलैश्चन्दनमधुकप्रपुण्डरीकोत्पलयुतैश्चा-
भ्यंगः ॥ १२७ ॥

नेत्रवाला, कुडा, लोहचूर्ण, नागकेसर, तेजपत्र, केवटी मोथा, लालचंदन, भिस्
इनको क्रमसे उत्तरोत्तर एक एक भाग अधिक लेवे फिर लेप करे तो पित्तकफ कुष्ठ
दूर होताहै । अथवा मुलैठी, लोध, पद्मास, पटोलपत्र, नीमकी छाल और रक्तचंदन
इनका यथाश शीतल करके स्नान और पीनेमें देनेसे पित्तप्रधान कुष्ठ दूर होताहै ।
अथवा मिथंगु, हरेणु, इन्द्रजौ, अतीस, खस, लालचंदन और कुटकी इनका लेप
अथवा तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किया अथवा सौवार वा सहस्रवार धोया घृतका लेप
करनेसे दाहयुक्त पित्तप्रधान कुष्ठ दूर होताहै । इसीप्रकार रक्तचंदन, मुलहठी, प्रपोण्ड-
रीक और नील कमल इनसे सिद्धकिये हुए तैलके लगानेसे भी दाहयुक्त कुष्ठ शान्त
होताहै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

घृतप्रयोग ।

क्लेदप्रपततिचांगेदाहेविस्फोटकेसर्चर्मदले । शीताःप्रदेहसेकाव्य-
धनविरेचकौघृतंतित्तम् ॥ १२८ ॥ खदिरघृतंनिम्बघृतंदावींघृतमु-
त्तमंपटोलघृतम् । कुष्ठपुरक्तपित्तप्रवलेषुभिषगित्तंसिद्धम् ॥ १२९ ॥

कुष्ठमें स्राव अथवा किसी अंगके गिरनेसे, विस्फोटक वा चर्मदलमें शीतल लेप,
सेक, रक्त निकालना, विरेचन और तिक्तघृत, खदिरघृत, निम्बघृत, दावींघृत और
पटोलघृतका प्रयोग यह सब हितकारी होतेहैं । जिनमें रक्तपित्त प्रबलहैं वेही प्रयोग
उन कुष्ठोंमें भी हितकारक हैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अन्य प्रयोग ।

त्रिफलात्वचोऽर्द्धपलिकाःपटोलपत्रश्चकार्षिकाःशेषाः । कटुरोहि-
णीसनिम्बायष्टयाह्वात्रायमाणाच ॥ १३० ॥ एषकपायःसाध्योद-
त्त्वादिपलमसूराणाम् । सलिलाढकेष्टभागेशेषेपूतोरसोग्राह्यः । तेच-
कपायाष्टपलेचतुष्पलंसर्पिषश्चपक्तव्यम् ॥ १३१ ॥ यावत्स्यादष्टप-
लंशेषेपेयंततःकोष्णम् । तद्वातपित्तकुष्ठंवीसर्पवातशोणितंप्रबल-
म् ॥ १३२ ॥ ज्वरदाहगुल्मविद्रधिविभ्रमविस्फोटकान्हन्ति ॥ १३३ ॥

त्रिकलेका डिलका दो तोला, पटोलपत्र २ तोला, कुटकी, नीमकी छाल, मुल-
हठी, प्रायमाण यह प्रत्येक एकएक तोला त्रयदिन ममर ८ तोला इनसबको

चार सेरं पक्के पानीमें पकावे । जब आधसेर वाकी रहे तो छान ले । इस काथमें चार पल घृत मिलाकर पकावे जब आठपल शेष रहे तब शीत गरम पीवे इसके पीनेसे वातपित्तप्रधान, कुष्ठ, विसर्प, प्रवल वातरक्त, ज्वर, दाह, गुल्म, विद्रधि, विभ्रम-विस्फोटक यह सब दूर होतेहैं ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

षट्पलघृत ।

निम्बपटोलेदार्वीन्दुरालभांतिकरोहिणीत्रिफलम् । कुर्यादूर्ध्वपलां-
शंपर्पटकंत्रायमाणाश्च ॥१३४ ॥ सलिलाढकसिद्धानारसेऽष्टभाग-
स्थितेक्षिपेत्पूते । चन्दनकिराततिककमागधिकांत्रायमाणाश्च
॥१३५ ॥ मुस्तंवत्सकवीजंकल्कीकृत्वार्द्धकार्पिकान्भागान् । नव-
सर्पिषश्चषट्पलमेतत्सिद्धंघृतंपेयम् ॥ १३६ ॥ कुष्ठज्वरगुल्माशोत्र-
हणीपाण्डुवामयश्रयथुहारि । वीसर्पपिडकपामाकण्डूमदगण्ड-
नुत्तिकम् ॥ १३७ ॥

नीम, पटोलपत्र, दारुहलदी, जवासा, कुटकी, त्रिफला, पित्तपापडा और त्राय-
माणा यह दोर तोला लेकर १ आढक पानीमें पकावे । जब अठवां भाग शेष रहे तब
उतारकर छान ले । इसमें लालचंदन, चिरायता, पीपल, त्रायमाणा, मोथा, इनको
छः छः मासा लेकर कूट छानकर मिलावे और इसमें २४ तोला घृत मिलाकर सिद्ध
करके इस घृतको योग्यमात्रासे पीवे तो कुष्ठज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पाण्डुरोग,
सूजन, विसर्प, पिडिका, पामा, कण्डू, मद् तथा गलगण्ड यह सब नष्ट होजाते
हैं ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

महातिकघृत ।

सप्तच्छदंप्रतिविपंशम्पाकंतिकरोहिणीपाटाम् । मुस्तमुशीरंत्रि-
फलांपटोलपिचुमर्दंपर्पटकम् ॥ १३८ ॥ धन्वयवातंचन्दनमुपकुल्यां
पद्मकरजन्यौच । पङ्ग्रन्थांसविशालांशतावरींशारिवेचोभे ॥१३९ ॥
वत्सकवीजंवासांमूर्वाममृतंकिराततिकश्च । कल्कान्कुर्यान्स-
त्तिमान्यष्ट्याह्वांत्रायमाणाश्च ॥ १४० ॥ कल्कस्यचतुर्भागेजल-
मष्टगुणंरसोऽमृतफलानाम् ॥ द्विगुणोघृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिःपायये-
त्सिद्धम् ॥ १४१ ॥ कुष्ठानिरक्तपित्तप्रवलान्यर्शांसिरक्तवाहीनि ।
वीसर्परक्तपित्तवातासृक्पाण्डुरोगश्च ॥१४२ ॥ विस्फोटकान्सपा-

भामुन्मादंकामलाज्वरकण्डूम् । हृद्रोगंगुल्मपिडकाअसृग्दरगण्ड-
मालाञ्च ॥ १४३ ॥ हन्यादेतत्सर्पिःपीतकालेयथावलंसद्यः । योग-
शतेरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ १४४ ॥

सप्तपर्ण (सतीना), अतीस, अमलतास, कुटकी, पाद, मोथा, त्रिफला, पटोलपत्र,
नीम, पित्तपापडा, जवासा, लाल चंदन, पीपल, पन्नाख, हलदी, दारुहलदी, षच,
इन्द्रायण्फकी जड, शतावर, दोनों शारिषा, इन्द्रजौ, अडूसा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता,
मुलेठी और त्रायमाण इनका कल्क करे और कल्कसे चौगुना घृत घृतसे अठगुना
जल घृतसे दूना आंवलेका रस, इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । इस घृतके पान
करनेसे प्रयल कुष्ठ, रक्तपित्त, खूनी ववासीर, विसर्प, रक्तपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग,
विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, खाज, हृद्रोग, गुल्म, पिडका, रक्तप्रदग्,
और गण्डमाला यह सब रोग शीघ्र दूर होजातेहैं । यह घृत बल और कालके अनुसार
पान कियाजाय तो जो रोग अनेक प्रयोगोंसे भी शांत नहीं हुएहों वे इस महातिक्त
घृतसे शीघ्र नष्ट होजातेहैं ॥ १३८-१४४ ॥

दोषेहतेपनीतेरकेवाह्यांतरेकृतेशमने ।

स्नेहेचकालयुक्तेनकुष्ठमनुवर्ततेसाध्यम् ॥ १४५ ॥

दोषोंके दूर होनेसे, विगडेडुए रक्तके शिरावेधन (फस्त) द्वारा निकाल देनेसे
चाह्य और आभ्यंतर दोष शमन होनेसे तथा उचितकालमें स्नेह प्रयोगसे जो साध्य
कुष्ठ शान्त होजाताहै वह फिर प्रगट नहीं होताहै ॥ १४५ ॥

महाखदिरघृत ।

खदिरस्यतुलाःपञ्चशिशपाशणयोस्तुले । तुलाद्धासर्वएवैतेकरआ-
रिष्टवेतसाः । पर्पटःकुटजश्चैववृषःकृमिहरस्तथा ॥ १४६ ॥ हारि-
द्रोकृतमालश्चगुहूचीत्रिफलात्रिवृत् । सप्तपर्णश्चसक्षुण्णादशद्रो-
णेषुवारिणः ॥ १४७ ॥ धात्रीरसंचतुल्यांशंसर्पिषश्चाढकंपचेत् ।
अष्टभागावशेषन्तुकपायमवतारयेत् ॥ १४८ ॥ महातिक्तककः-
ल्केस्तुयथोक्तेःपलसम्मितैः । निहन्ति सर्वकुष्ठानिपानाभ्यङ्गानि
सेवनात् । महाखदिरमित्येतत्परंकुष्ठविकारनुत् ॥ १४९ ॥

गैरकी लकड़ी २०० पत्र, शीगम और विजैगाय एक एक गी पत्र, करंजुआ,
नीमकी छाय, वेतग, पित्तपापडा, कुटा, अट्टना, यापरिदंग, दोनों हलदी, अमलनाम,

गिलोय, त्रिफला, निशोथ, सप्तपर्ण, यह सब ५० पल इन सबको दश द्रोण जलमें पकावे जब अष्टमांश शेष रहे उतारकर छानलोफिर इसमें इसके बराबर आंवलेका रस और १ आढक घृत तथा महातिक्त घृतमें कहेहुए सब द्रव्य एकएक पल लेकर उसमें मिलाकर घृत सिद्धकरे । इस घृतको पीने और अभ्यंगमें सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ दूर होतेहैं । यह महाखदिर घृत कुष्ठनाशक परम उत्तम योग है १४६।१४७।१४८।१४९॥

क्रिमिनाशक प्रयोग ।

प्रपतत्सुलसीकाप्रसृतेपुगोत्रपुेजन्तुदग्धेषु । सूत्रनिम्बविडङ्गैस्नानं
पानंप्रदेहश्च ॥ १५० ॥ वृषकुटजसप्तपर्णाःकरवीरकरजनिम्बाश्च ।
स्नानेपानेलेपेक्रिमिकुष्ठनुदःसगोमूत्राः ॥ १५१ ॥ पानाहारविधाने
प्रसेचनेधूपनेप्रदेहेच । क्रिमिनाशनंविडंगंविशिष्यतेकुष्ठहृत्ख-
दिरः ॥ १५२ ॥

यदि कोई अंगावयव गलकर गिरजाय या शरीरमेंसे लसीका निकलतीहो अथवा कीड़े पडगये हों तो गोमूत्र, वायविडंग और नीम इनमेंसे किसी एकको या सबको मिलाकर काथ करके पीने और स्नान करनेमें प्रयोग अथवा लेप करे । या अट्टसा, कुडा, सप्तपर्ण, कनेर, कंजा, नीम इनको गोमूत्रमें पकाकर स्नान, पान और लेप करनेसे क्रिमिकुष्ठ नष्ट होजाताहै । वायविडंग और खैरकी, खाने पीने, प्रसेक, धूपन और प्रदेहमें प्रयोग करना विशेषतासे कुष्ठ नाश करताहै ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

अन्य प्रयोग ।

एडगजसविडंगोमूलान्यारग्वधस्यकुष्ठानाम् । उद्धूलनंश्वदन्तागो-
श्ववराहोष्ट्रदन्ताश्च ॥ १५३ ॥ एडगजःसविडंगोरजनीद्वियराज-
वृक्षमूलश्च । कुष्ठोद्दालनमग्र्यंसपिप्पलीपाकलयोज्यम् ॥ १५४ ॥

पनवाडके बीज, वायविडंग, अमलतासकी जड तथा कुत्ता, गौ, घांड़ा, सूअर, और जंठ इनके दांतोंका चूर्ण कर कुष्ठपर घुरकाना अथवा पनवाडके बीज, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, अमलतासकी जड, पीपल और पाटला इनको पीसकर कुष्ठोंपर घुरकाना या लेप अथवा उबटन करना कुष्ठोंको दूर करताहै ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

शिवत्रकुष्ठपर योग ।

शिवत्राणांसविशेषंप्रयोक्तव्यंसर्वतोविशुद्धानाम् । शिवत्रेस्त्रंसनम-
ग्र्यमलपूरसङ्घृत्यतेसगुडः ॥ १५५ ॥ तंपीत्वासुस्निग्धोयथावलंसू-
र्यपादसन्तापम् । सेवतविरिक्तश्चत्र्यहंपिपासुःपिवेत्पेयाम् ॥ १५६ ॥

श्वित्रेङ्गेस्फोटाजायन्तेकण्टकेनतान्भिन्व्यात् । स्फोटेपुविस्तु-
तेषुप्रातःप्रातःपिवेत्पक्रम ॥ १५७॥ मलपुमशनंप्रियङ्गुशतपुष्पां
चारुभसासमुत्काथ्यापालाशंवाक्षारंयथावलंफणितोपेतम् ॥ १५८॥
यच्चान्यत्कुष्ठंश्वित्राणांसर्वमेवतच्छस्तम् । खदिरोदकसंयुक्तं
खदिरोदकपानमभ्यमहि ॥ १५९॥ समनःशिलंविडंगंकासीसरोचनां
कनकपुष्पीम् । श्वित्राणांप्रशमार्थंससैन्धवंलेपनंदद्यात् ॥ १६० ॥

श्वित्रकुष्ठियोको सब प्रकार संशोधनादिसे शुद्ध करके फिर औषध प्रयोग करे ।
श्वित्रकुष्ठमें कटूमरका रस और गुड, मिलाकर विरेचन कराना विशेष हितकारी
होताहै इस रसको पीकर देहपर कुष्ठनाशक तैलको मलकर फिर जितनी देर सहस्रके
उतनी देर धूपमें बैठना चाहिये । विरेचनके अनन्तर तीन दिन तक पेयाका पान
करना चाहिये । श्वित्रकुष्ठमे जो फुन्सियां होजायें उनको कांटोसे वेधनकरके और
उनमेसे पीव निकाल डाले और प्रतिदिन प्रातःकाल कटूमर, विजैसार, प्रियंगु और
सौंफका काथ करके पीवे । अथवा ढाकके क्षारको बलके अनुसार गुडकी रावमें
मिलाकर पीवे । अथवा जो और भी कुष्ठनाशक प्रयोग कथन किये हैं वह सब श्वित्र-
कुष्ठमें उपयोगी है । विशेष करके खैरके क्वाथके साथ लेप वा खैरके क्वाथादि
पीना श्वित्रकुष्ठमें विशेष हितकारी होताहै । और मनसिल, धायविडंग, कसीस,
गोरोचन, अमलतास और संधानमक इनका लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होजाता-
है ॥ १५५ । १५६ । १५७ । १५८ । १५९ । १६० ॥

कुष्ठपर अन्य लेप ।

कदलीक्षारयुतंवाखदिरास्थिदग्धंगवांसूत्रेणयुक्तम् । हस्तिमदाद्यु-
पितंवामालत्याक्षारकक्षारम् ॥ १६१॥ नीलोत्पलंसकुष्ठंससैन्धवंहस्ति-
मूत्रपिष्टंवा । मूलकर्वाजावल्गुजलेपःपिष्टांगवांसूत्रे ॥ १६२॥ काकौ-
दुम्बरिकावासवल्लुगुजचित्रकौगवांसूत्रे । पिष्टामनःशिलावासंयु-
क्तावर्हिपित्तेन ॥ १६३ ॥ लेपःकिलासहन्तामूलान्यावल्लुगुलानि
लाक्षाच । गोमूत्रमज्जनेद्वेपिप्पल्यःकाललोहरजः ॥ १६४ ॥

केलेका खार, वा खैरकी लकडीका खार, गौके मक्खनमें मिलाकर कुष्ठपर लेप
लगावे अथवा मालतीके खारको हाथीके मूत्रके जलमें मिलाकर लेप करे अथवा
नील कमल, कूठ, संधानमक इनको हाथीके मूत्रमें पीसकर लेप करे अथवा मूलीक

बीज और वावचीबीजका गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होताहै । अथवा कठूमर, अड्डसा, वावची, चीता इनको गौके मूत्रमें रगडकर लेप करे । अथवा मनसिलको मोरके पित्तमें रगड लेप करै तो कुष्ठ दूर होताहै । वावचीकी जड, लाख, गोमूत्र, मूर्वा, रसौत, पीपल और कान्तिसार लोहका चूर्ण इनका लेप करे तो किलासकुष्ठ नष्ट होताहै ॥ १६१ । १६२ । १६३ । १६४ ॥

शुद्धयाशोणितमोक्षैर्विरुक्षणैर्भक्षणैश्चसक्त्तनाम् ।

श्वित्रं कस्यचिदेवप्रशाम्यतिक्षीणपापस्य ॥ १६५ ॥

जिस मनुष्यके पाप क्षीण होजातेहैं उसका श्वित्रकुष्ठ संशोधन, रक्तमोक्षण, विरु-
क्षण तथा सजुओंके सेवन करनेसे ही दूर होजाताहै ॥ १६५ ॥

श्वित्रकुष्ठके भेद ।

दारुणं वारुणं श्वित्रं किलासं नाम भिस्त्रिभिः । विज्ञेयं त्रिविधं तच्च-
त्रिदोषे प्रायशश्च तत् ॥ १६६ ॥ दोषेरक्ताश्रिते रक्तं ताम्रं माससमा-
श्रिते । श्वैत्यभेदः श्रितं श्वित्रं गुरुतश्चोत्तरोत्तरम् ॥ १६७ ॥

श्वित्रकुष्ठ दारुण वरुण और किलास इन भेदोंसे तीन प्रकारका होताहै । और यह कुष्ठ त्रिदोषाश्रित है । दोष रक्ताश्रित होनेपर श्वित्रका वर्ण लाल होताहै । मांसा-
श्रित होनेपर ताम्रवर्ण और मेदाश्रित होनेपर श्वेतवर्ण होजाताहै । इन तीनोंमें लालसे ताम्रवर्ण और ताम्रवर्णसे श्वेतवर्ण गुरु होताहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

श्वित्रका असाध्यत्व ।

यत्परस्परतोभिन्नं बहुयद्रक्तलोमवत् ।

यच्च वर्षगणोत्पन्नं तत् श्वित्रं नैव सिद्धयति ॥ १६८ ॥

जो श्वित्र परस्पर भिन्न २ हों और जिसका वर्ण अधिक लाल हो, जिसमें बहुत रोम हों और जो बहुत दिनोंका पुराना हो वह श्वेतकुष्ठ असाध्य होताहै ॥ १६८ ॥

किलासकी उत्पत्तिके कारण ।

वचांस्यतथ्यानिकृतघ्नभावो निंदासुराणां गुरुधर्षणञ्च ।

पापक्रियापूर्वकृतञ्च कर्म हेतुः किलासस्य त्रिरोधिचान्नम् ॥ १६९ ॥

झूठ बोलनेसे, कृतघ्नतासे, देवताओंकी निन्दा करनेसे, गुरुजनोंका अपमान करनेसे इस जन्मके अथवा पूर्वजन्मके पापकर्मसे और विरुद्ध भोजन करनेसे किलास कष्ट उत्पन्न होताहै ॥ १६९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

हेतुद्रव्योलिङ्गसमासतोदोषनिर्देशात् । साध्यासाध्यंकृच्छ्रंकुष्ठा-
पहाश्रयेयोगाः ॥१७०॥ सिद्धाः किलासहेतुर्लिंगगुरुलाघवंशातिः ।
इतिसंग्रहः प्रणीतो महर्षिणा कुष्ठनाशनेऽध्याये । स्मृतिबुद्धिवर्द्धना-
र्थशिष्याय हुताश्वेशाय ॥ १७१ ॥

इति चरक० चिकित्सि० गुल्मचिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भगवान् पुनर्वसुजीने इस कुष्ठचिकित्सित अध्यायमें कुष्ठोंके हेतु, द्रव्य, लक्षण,
दोष निर्देशका संक्षेपसे वर्णन, साध्य, असाध्य और कष्टसाध्यके लक्षण, कुष्ठनाशक,
सिद्ध प्रयोग, किलासके हेतु, लक्षण, गुरुता, लाघवता, चिकित्सा अपने शिष्य अग्नि-
वेशकी स्मृति और बुद्धि बढ़ानेके लिये कहे हैं ॥ १७० । १७१ ॥

इति श्री च० आ० सं० चिकित्सास्थाने प्र० भाषाटीकायां कुष्ठचिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः ।



अथातो राजयक्ष्मचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवाना-
त्रेयः ।

अब हम राजयक्ष्मचिकित्सितनामक अध्यायका वर्णन करते हैं इसप्रकार भगवान्
अत्रेयजी कहने लगे ।

राजयक्ष्माके विषयमें प्राचीन इतिहास ।

दिवोकसांकथयतामृषिभिर्विश्रुताकथा । कामव्यसनसंयुक्तापौ-
राणीशशिनं प्रति ॥ १ ॥ रोहिण्यामति सक्तस्य शरीरं नानुरक्षतः ।
आजगामाल्पतामिन्द्रोर्देहः स्नेहपरिक्षयात् ॥ २ ॥ दुहितृणा-
मसम्भोगाच्छेषाणाञ्च प्रजापतेः । क्रोधोनिःश्वासरूपेण मूर्तिमा-
न्निःसृतो मुखात् ॥ ३ ॥ प्रजापतेर्हि दुहितुरष्टाविंशतिरंशुमान् ।
भार्यार्थं प्रतिजग्राहन च सर्वस्ववर्तत ॥ ४ ॥ गुरुणात्मवध्यातं भार्या-
स्वसमवर्तिनम् । रजोऽन्धमवलं दीनं यक्ष्माशशिनमाविशत् ॥ ५ ॥

ऋषियोंने देवताओंको इस प्रकार चंद्रमाके विषयमें पीगाणिक कामकथा कहते

हुए सुना कि एक समय चंद्रमा रोहिणीपर अत्यंत आसक्त होगयेथे और अपने शरीर तथा आरोग्यतापर कोई ध्यान न देकर उर्ध्वीं गत रहतेथे इसलिये शरीरका स्नेह क्षीण होनेसे चंद्रमाका शरीर बहुत कृश होगया । केवल रोहिणीमें ही चंद्रमा आसक्त था इसलिये दक्षप्रजापतिकी शेष कन्याओंको संभोगसे वंचित रहना पडता था यह वृत्तांत सुनकर दक्षके मुखसे निश्वास रूपसे मूर्तिमान् क्रोध प्रगट हुआ, क्योंकि, दक्षकी २८ कन्यां चंद्रमाने स्त्रीभावके लिये ग्रहण की थीं परंतु सिवाय रोहिणीसे वह और किसीसे स्त्रीभाव नहीं रखताथा । इसलिये रजोगुणसे अंध हुए सब भार्याओंसे समव्यवहार न करनेवाले निर्वल कृश शरीर चन्द्रमाके शरीरमें दक्षके शापसे यक्षमारोगका प्रवेश हुआ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

सोऽभिभूतोऽतिगुरुणागुरुक्रोधेननिष्प्रभः। देवदेवर्षिसहितोजगाम
शरणंगुरुम् ॥ ६ ॥ अथचन्द्रमसःशुद्धामतिवुद्धाप्रजापतिः ।
प्रसादंकृतवान्सोमस्ततोऽश्विभ्यांचिकित्सितः ॥ ७ ॥ सविमु-
क्तग्रहश्चन्द्रोविरराजविशेषतः । तेजसावर्द्धितोऽश्विभ्यांशुद्धंसत्व-
मवापच ॥ ८ ॥

फिर इस प्रकार दक्ष (अपने श्वशुर) के क्रोधसे कांतिहीन हुआ चंद्रमा देव और देवर्षियोंको साथ लेकर दक्षप्रजापतिकी शरण गया । दक्षप्रजापतिने शरण आएहुए चंद्रमाको शुद्धचित्त देखकर प्रसन्नतासे कृपा की फिर दक्षके शिष्य अश्विनीकुमारोंने चंद्रमाकी चिकित्सा की । उनकी चिकित्सासे चन्द्रमा यक्षमारूप ग्रहसे छूटकर विशेष प्रकाशयुक्त होगया और अश्विनीकुमारोंकी चिकित्सा द्वारा अत्यंत तेजयुक्त होनेसे शुद्ध सत्वको प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

यक्षमाके पर्यायवाचक शब्द ।

क्रोधोयक्षमाज्वरारोगएकोऽर्थोदुःखसंज्ञितः ।

यस्मात्सराज्ञःप्रागासीद्राजयक्ष्माततोमतः ॥ ९ ॥

क्रोध, यक्षमा, ज्वर, रोग और दुःख यह सब एकार्थवाची शब्द हैं । यह रोग प्रथम हीं राजा (चंद्रमा) को हुआ था इसलिये इसको राजयक्ष्मा कहतेहैं ॥ ९ ॥

यक्षमाका मनुष्यलोकमें आगमन ।

सयक्ष्माहुंकृतोऽश्विभ्यांमानुपलोकमागतः ।

लब्ध्वाचतुर्विधंहेतुंसमाविशतिमानवान् ॥ १० ॥

वही यक्षमारोग, अश्विनीकुमारोंकी हुंकारसे स्वर्गको छोडकर मनुष्यलोकमें आगया । और चार प्रकारके कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें प्रविष्ट होनेलगा ॥ १० ॥

यक्ष्माके ४ कारण ।

अथथावलमारम्भवेगसन्धारणक्षयम् ।

यक्ष्मणःकारणंविद्याच्चतुर्थविषमाशनम् ॥ ११ ॥

१ अथथावल आरंभ (अपनी शक्तिसे बढकर कार्यमें प्रवृत्त होना) २ मलमूत्रा-
दिवेगोंका रोकना । ३ क्षय और ४ विषमाशन । यह यक्ष्माके चार हेतु हैं ॥ ११ ॥

१ अथथावलपराक्रमजन्ययक्ष्माका निदान ।

युद्धाध्ययनभाराध्वलंधनप्लवनादिभिः । पतनैरभिघातैर्वासाहसै-

र्वातथापरैः ॥ १२ ॥ अथथावलमारब्धैर्जन्तोरुरसिविक्षते ।

वायुः प्रकुपितोदोषावुदीर्योभौविधावति ॥ १३ ॥ सशिरःस्थः

शिरःशूलं करोति गलमाश्रितः । कण्ठोद्धंसञ्चकासञ्चस्वरभेदम-

रोचकम् ॥ १४ ॥ पार्श्वशूलञ्चपार्श्वस्थोवर्चोभेदंगुदेस्थितः ।

जृम्भाञ्ज्वरंचसन्धिस्थउरस्थश्चोरसोरुजम् । क्षणनाच्चोरसोरक्त-

कासमानःकथानुगम् ॥ १५ ॥ जर्जरेणोरसाक्षिप्रमुरःशूलीनि-

रस्यति इतिसाहसिकंयक्ष्मारूपैरतैःप्रपद्यते । एकादशभिरात्मज्ञो-

भजेत्तस्मान्नसाहसम् ॥ १६ ॥

अथथावल पराक्रमजन्य यक्ष्माका निदान, अपनी शक्तिसे बढकर युद्ध करना पढना, भार उठाना, मार्ग चलना, लंघन करना, अथवा नदी आदिके वेगको बलपूर्वक लंघन, छलांगमारना, गिरना, चोटलगना अथवा अन्य साहस करना । इस प्रकार अथथाशक्ति काम करनेसे वक्षःस्थल (छाती) में क्षत (घाव) होजाताहै और वायु कुपित होकर कफ और पित्तको उदीर्णकर प्रबल वेग धारण करताहै । यदि वह वायु शिरमें प्रवेश करे तो शिरमें शूल उत्पन्न करताहै । जन गलेमें प्रवेश करताहै तो कण्ठका उद्धंस, खांसी, स्वरभंग और अरुचि प्रगट करताहै । पार्श्वमें प्रवेश करे तो पार्श्वशूल, गुदामें प्रवेश करे तो मलभेद, संधियोंमें प्रवेश करे तो जंभाई और ज्वर, वक्षःस्थलमें प्रवेश करे तो छातीमें पीडा प्रगट करताहै । छातीमें क्षत (घाव) होनेसे खांसीमें कफके साथ रुधिर आताहै । छातीमें घाव होनेसे खांसीके साथ छातीमें पीडा होताहै इस प्रकार अधिक साहससे यक्ष्मा इन ग्यारह लक्षणोंसे प्रगट होताहै । इसलिये बुद्धिमानको उचित है कि इन साहसिक कर्मोंको न करे ॥ १२॥१३॥१४॥१५॥१६ ॥

२ वेगसंधारणजन्ययक्ष्माका निदान, लक्षण ।

ह्रीमत्त्वाद्वाघृणित्वाद्वाभयाद्वावेगमागतम् । वातमूत्रपुरीषाणांनिगृ-
ह्णातियदानरः ॥ १७ ॥ तदावेगप्रतीघातात्कफपित्तसमीरय-
न् । ऊर्ध्वतिर्यग्धः कुर्याद्विकारान्कुपितोऽनिलः ॥ १८ ॥ प्रति-
श्यायश्चकासश्चस्वरभेदमरोचकम् । पाद्वर्षशूलंशिरःशूलंज्वरमंसा-
वमर्दनम् ॥ १९ ॥ अंगमर्दमुहुश्छर्दिर्वर्चोभेदत्रिलक्षणम् । रूपा-
प्येकादशैतानियक्ष्मायैरुच्यतेमहान् ॥ २० ॥

जत्र मनुष्य लजा, घृणा अथवा भयसे वात, मूत्र और पुरीषके वेगको रोकलेतोहै
तत्र वेगोंके प्रतिघातसे कुपित हुआ वायु कफ और पित्तको उत्तेजित कर ऊपर, नीचे
या तिरछे स्थानोंमें गमनकर रोगको उत्पन्न करताहै । जैसे प्रतिश्याय, खांसी,
स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वशूल, शिरःशूल, ज्वर, अंसोंमें पीडा, अंगमर्द, बारवार वमन
और मलभेद यह वेग संधारणजन्य यक्ष्मा इन ग्यारह लक्षणोंवाला होताहै । इस
त्रिदोषयुक्त उपद्रवोंवाले यक्ष्माको महायक्ष्मा कहतेहैं ॥ १७ । १८ । १९ । २० ॥

३ क्षयजन्ययक्ष्माका निदान, लक्षण ।

ईर्ष्योत्क्रण्ठाभयत्रासक्रोधशोकातिकर्षणात् । व्यवायानशनाभ्या-
श्चशुक्रमोजश्चहीयते ॥ २१ ॥ ततः स्नेहक्षयाद्वायुर्वृद्धोदोपानुदी-
रयन् । प्रतिश्यायंज्वरंकासमंगमर्दंशिरोरुजम् ॥ २२ ॥ द्वासांवि-
द्भेदमरुचिंपाद्वर्षशूलंस्वरक्षयम् । करोतिचांससन्तापमेकादश-
मिहाङ्गहत् ॥ २३ ॥ लिंगान्यावेदयन्त्येतानेकादशमहागदम् ।
संप्राप्तराजयक्ष्माणंक्षयात्प्राणक्षयप्रदम् ॥ २४ ॥

ईर्ष्या, उत्क्रण्ठा, भय, त्रास, क्रोध, शोक, अतिकर्षण और मैथुनसे अथवा आहार
न करनेसे, शुरु और ओज क्षीण होजातेहैं । शुरु और ओजका क्षय होनेसे शरी-
रका स्नेह भी नष्ट होजाताहै । फिर वायु कुपित होकर दोषोंको उत्तेजित करके
प्रतिश्याय, ज्वर, खांसी, अंगमर्द, शिरका शूल, श्वास, मलभेद, अरुचि, पार्श्वशूल,
स्वरभंग और दोनों अंशोंमें संताप, शरीरको क्षीण करनेवाले इन ग्यारह लक्षणोंसे
युक्त यह क्षयजन्य राजयक्ष्मा नामका महारोग शीघ्र ही प्राणोंका नाश करनेवाला
होताहै ॥ २१ । २२ । २३ । २४ ॥

४ विषमाशनसे उत्पन्न यक्ष्माके निदान, लक्षण ।

विविधान्यन्नपानानिवैषम्येणसमश्नतः । जनयन्त्यामयान्घोरान्

विषमामारुतादयः ॥ २५ ॥ स्रोतांसिरुधिरादीनावैषम्याद्विषमंग-
गताः । रुद्धारोगायकल्पन्तेपुष्यन्तिचनधातवः ॥ २६ ॥ प्रति-
श्यायंप्रसेकञ्चकासंछर्दिमरोचकम् । ज्वरमंसाभितापञ्चच्छर्दनंरु-
धिरस्यच ॥ २७ ॥ पार्श्वशूलंशिरःशूलंस्वरभेदमथापिवा ।
कफपित्तानिलकृतंलिङ्गंविद्याद्यथाक्रमम् ॥ २८ ॥ इतिव्या-
धिसमूहस्यरोगराजस्यहेतुजम् । रूपमेकादशविधंहेतुश्रोक्तश्चतु-
र्विधः ॥ २९ ॥

नाना प्रकारके अन्नपानोंको विषमरीतिसे सेवन करनेसे विषमभावको प्राप्त हुए वातादिक दोष घोर रोगोंको उत्पन्न करतेहैं, तथा विषमभावको प्राप्तहुए तीनों दोष रक्तादिकोंके स्रोतोंको रोककर धातुओंको पुष्ट नहीं होने देते और इन रोगोंको उत्पन्न करतेहैं । जैसे प्रतिश्याय प्रसेक (कफपडना) खांसी, छर्दी, अरुचि, ज्वर, स्कंधका पारिताप, रुधिरका वमन, पार्श्वशूल, शिरः शूल, स्वरभेद इस प्रकार विष-
माशनसे उत्पन्न हुए यक्ष्मामें क्रममे कफ, पित्त वायु इन तीनों दोषोंके लक्षण होतेहैं । व्याधियोंके समूहरूप रोगोंके राजा राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेके इस प्रकार, चार-
हेतु कहेगयेंहैं और प्रत्येक हेतुके ग्यारह ग्यारह उपद्रव कहे गयेहैं २५।२६।२७।२८।२९

राजयक्ष्माके पूर्वरूप ।

पूर्वरूपंप्रतिश्यायोदौर्वल्यंदोषदर्शनम् । अदोषेष्वपिभावेपुकाये
वीभत्सदर्शनम् ॥ ३० ॥ घृणित्वमइनतश्चापिबलमांसपरिक्षयः ।
स्त्रीमद्यमांसप्रियताप्रियताचावगुण्ठने ॥ ३१ ॥ सक्षिकाघुणके-
शानांतृणानांपतनानिच । प्रायोन्नपानेकेशानानंखानांश्चाभिवर्द्ध-
नम् ॥ ३२ ॥ पतत्रिभिःपतंगैश्चश्वापदैश्चाभिधर्षणम् । स्वमेकेशा-
स्थिराशीनांभस्मनश्चाधिरोहणम् ॥ ३३ ॥ जलाशयानांशैलानां
वनानांज्योतिषामपि । शुष्यतांक्षीयमाणानांपततायच्चदर्शनम् ॥
॥ ३४ ॥ प्राग्रूपंवहुरूपस्यतजूज्ञेयंराजयक्ष्मणः । रूपत्वस्ययथोद्देशं
परशृणुसभेषजम् ॥ ३५ ॥

राजयक्ष्मा रोगके प्रकट होजानेसे प्रथम तो प्रतिश्याय (जुकाम) उत्पन्न होताहै,
फिर क्रमसे दुर्बलता, अदोषभावोंमें दोषदर्शन, शरीरमें भयानकपन, सब दस्तुओंमें

घृणा होना, भोजन करते २ भी बल और मांसका क्षय होना, स्त्रियोंका प्रिय लगना, मद्यमांसकी इच्छा, एकान्तवासकी इच्छा, प्रायः अन्नपानमें मक्खी, घुन, बाल और तृण आदि गिरना, केश और नखोंका अधिक बढ़ना, स्वप्नमें पक्षी, पतंग, कुत्ते, व्याघ्र आदिका डराना, तथा स्वप्नमें केश, हड्डी और भस्मके ढेरपर चढ़ना, सूखे जलाशयोंको और क्षय होतेहुए पर्वतोंको और वनोंको एवं गिरतेहुए तारागणोंको देखना यह सब इस अनेक रूपवाले राजयक्ष्माके पूर्वरूप होतेहैं अब यथाक्रम राजयक्ष्माके लक्षण और औषधियोंका श्रवण करो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

राजयक्ष्मामें पुरीषरक्षां ।

यथास्वेनोष्मणापाकंशरीरायान्तिधातवः । स्रोतसाचयथास्वेन
धातुःपुष्यतिधातुना ॥ ३६ ॥ स्रोतसांसन्निरोधाच्चरक्तादीनाञ्चसं-
क्षयात् । धातूष्मणांचापचयाद्राजयक्ष्माप्रवर्तते ॥ ३७ ॥ तस्मि-
न्कालेपचत्यग्निर्यदन्नकोष्ठमाश्रितम् । मलीभंवतितत्प्रायःकल्पते
किञ्चिदोजसे ॥ ३८ ॥ तस्मात्पुरीषंसंरक्ष्यंविशेषाद्राजयक्ष्मिणः ।
सर्वधातुक्षयार्तस्थवलंतस्यहिविड्बलम् ॥ ३९ ॥

शरीरकी संपूर्ण धातुयें अपनी २ गर्मांसे पाकको प्राप्त होतीहैं और अपने २ स्रोतोंके योगसे धातुओंद्वारा सब धातु पुष्ट होते हैं । जब दोषोंद्वारा स्रोत रुक-जातेहैं तो स्रोतोंके बन्द होनेसे और रक्तादि धातुओंके क्षीण होनेसे एवं धातुओंकी गर्मां नष्ट होजानेसे राजयक्ष्माकी प्रवृत्ति होतीहै । तब कोष्ठाश्रित अग्नि जिस अन्नको परिपाक करतीहै उसका रस रक्तादि न बनकर प्रायः मलही बनजाताहै और उसमेंसे बहुत थोडा अंश ओजमें परिणत होताहै । इसलिये राजयक्ष्मावाले रोगीके मलकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये क्योंकि संपूर्ण धातुओंके क्षीण होनेसे रोगी अत्यंत दुर्बल होजाताहै । इस अवस्थामें केवल मलके बलसेही उसमें बल रहताहै । इसलिये जहां तक होसके ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे मलकी रक्षा रहे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

राजयक्ष्माकी संप्राप्ति ।

रसःस्रोतःसुरुद्धेषुस्वस्थानस्थो विदह्यते । स ऊर्द्धकासवेगे-
नवहुरूपः प्रवर्तते । जायन्ते व्याधयश्चातः पडेकादशधा-
पुनः ॥ येषां संघातयोगेनराजयक्ष्मेति कल्प्यते ॥ ४० ॥

कासोऽसतापोवैस्वर्यज्वरः पार्श्वशिरोरुजौ । शोणितश्लेष्मणोऽछ-
र्दिःश्वासःकोष्ठामयोऽरुचिः ॥ ४१ ॥ रूपाण्येकादशैतानियक्षिंणः
पडिमानिवा । कासोऽज्वरःपार्श्वशूलंस्वरवर्चोगदोऽरुचिः ॥ ४२ ॥

स्रोतोंके रुकजानेसे आहरका रस संपूर्ण शरीरमें परिवर्तित न होकर केवल
आमाशयमेंही स्थित रहकर विदग्ध होजाताहै । तब वह रस खांसीके साथ ऊपरकी
गमनकर अनेक रूपसे निकालताहै । उससे छः अथवा ग्यारह प्रकारकी व्याधियें
उत्पन्न होतीहैं । इन संपूर्ण व्याधियोंके समुदायको ही राजयक्ष्मा कहतेहैं वह व्याधियें
यह हैं । जैसे—खांसी, स्कंधोंका तपना, स्वरभंग, ज्वर, पार्श्वपीडा, शिरमें पीडा,
घमनमें रक्तका आना, कफकी छर्द, श्वास, कोष्ठरोग (मलभेद या कोष्ठपीडा), अरुचि
यह यक्ष्मारोगके एकादश उपद्रव (रूप) हैं । और खांसी, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभंग,
मलभेद अरुचि यह छः उपद्रव (रूप) हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

यक्ष्माका साध्यासाध्य विचार ।

सर्वैरंगैस्त्रिभिर्वापिलिंगैर्मांसवलक्षये ।

युक्तोवर्ज्याश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ ४३ ॥

* जो गोगी उपरोक्त सब लक्षणोंसे युक्त हो अथवा आगे कहेहुए तीन लक्षणोंवाला
हो और उसका मांस तथा बल क्षीण होगयाहो उसको असाध्य जानना । यदि
उपरोक्त सब लक्षणोंसे युक्त भी हो परन्तु बल और मांस क्षीण न हुए हों तो वह
यक्ष्मारोगी साध्य होताहै ॥ ४३ ॥

प्रतिश्याय के लक्षण ।

घ्राणमूलेस्थितःश्लेष्मारुधिरंपित्तमेववा । मारुताध्मातशिरसोमा-
रुतंश्यायतेप्रति ॥ ४४ ॥ प्रतिश्यायस्ततोघोरोजायतेदेहकर्शनः ।

तस्यरूपंशिरःशूलंगौरवंघ्राणविप्लवः ॥ ४५ ॥ ज्वरःकासःकफोत्-
क्लेशःस्वरभेदोऽरुचिःक्लमः । इन्द्रियाणामसामर्थ्ययक्ष्माचातःप्रव-
र्तते ॥ ४६ ॥ पिच्छिलं बहुलं विस्त्रं हरितं श्वेतपीतकम् ॥ कासमानो
रसंयक्ष्मीनिष्ठीवत्तिकफानुगम् ॥ ४७ ॥

जब मनुष्यकी नासिकाके मूलमें स्थित कफ अथवा रुधिर या पित्त मस्तकगत
वायु द्वारा टपर रवाकर उत्क्षेपितहुए वायुसे मिलकर मस्तककी ओर जातेहैं तब वह
प्रतिमागी वायु देहको कर्ण कानेवाला, घोर प्रतिश्याय (जुकाम) को प्रकट

करताहै । इसके होनेसे शिरमें पीडा, भारीपन, नासिकास्राव, ज्वर, खांसी, कफका प्रसेक, स्वरभंग, अरुचि, क्लान्ति, इन्द्रियोंमें दुर्बलता यह उपद्रव होतेहैं । इस प्रतिश्यायसे ही राजयक्ष्मा रोगकी उत्पत्ति होतीहै । राजयक्ष्मावाले रोगीकी खांसीमें पिच्छिल, गाढा, दुर्गन्धयुक्त, हरा, सफेद या पीले रंगका रस कफके साथ निकलने लगताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

राजयक्ष्माके विशेष लक्षण ।

अंसपाश्र्वाभितापश्चतापःपादकरस्यच ।

ज्वरःसर्वांगगश्चेतिलक्षणंराजयक्ष्मणः ॥ ४८ ॥

अंस (कंधे) और पसलियोंमें संताप (या पीडा) हाथ और पांशोंका तपना, सर्वांगमें निरन्तर ज्वर रहना, यह राजयक्ष्माके तीन मुख्य लक्षण हैं ॥ ४८ ॥

राजयक्ष्मामें स्वरभंग ।

वांतात्पित्तात्कफात्त्रकात्कासवेगात्सपीनसात् । स्वरभेदोभवे-
द्वाताद्द्रुक्षःक्षामश्चलःस्वरः ॥ ४९ ॥ तालुकण्ठपरिप्लोपःपित्ताद्र-
क्तमसूयते । कफान्मन्दोविवद्धश्चस्वरःखुरुखुरायते ॥ ५० ॥ स-
ञ्चोरक्तविवन्धत्वात्स्वरःकृच्छ्रात्प्रवर्तते । कासातिवेगात्कपणः
पीनसात्कफवातिकः ॥ ५१ ॥

यक्ष्मारोगमें वातसे, पित्तसे, कफसे, खांसीके वेगसे और प्रतिश्यायसे स्वरका भंग होताहै । वायुके कोपसे जो स्वरभंग होताहै उसमें स्वर रुखा, क्षीण और चल होताहै पित्तसे कण्ठ और तालुमें दाह तथा रुधिरकी प्रवृत्ति होतीहै । कफके स्वरभंगमें स्वर मंद और बद्ध तथा खांखों शब्द होताहै । रक्तके विबंधसे स्वर सन्न सन्न होताहै तथा कष्टसे शब्द निकलताहै । खांसीके वेगसे रोगी कर्पण होताहै । और प्रतिश्यायसे कफ तथा वातके लक्षण होतेहैं । (जैसे-रुक्ष, क्षीण, मंद, खरखराहट और बद्ध स्वर होताहै) ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

यक्ष्मामें अन्य उपद्रव ।

पाश्र्वशूलंत्वनियतंसंकोचायामलक्षणम् । शिरःशूलंससन्तापय-
क्ष्मणःस्यात्सर्गौरवम् ॥ ५२ ॥ अतिस्विन्नेशरीरेतुयक्ष्मणोविप-
माशनात् । कण्ठात्प्रवर्ततेरक्तंश्लेष्माचोत्कृष्टसञ्चितः ॥ ५३ ॥

राजयक्ष्मामें पार्श्वशूल अनियत तथा संकोच और आयामके लक्षणोंवाला होताहै एवं मस्तकपीडा संताप और भारीपनयुक्त होतीहै । विपमाशनसे प्रकट हुए यक्ष्मामें

रोगीका शरीर अत्यंत खिन्न होताहै । इसलिये संचितहुई कफके साथ रक्त भी उत्कलित होकर निकलने लगताहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

रक्तंविचन्द्रमार्गत्वान्मांसादीन्नानुपद्यते ।

आमाशयस्थमुत्क्लिष्टवहुत्वात्कंठमेतिवा ॥ ५४ ॥

क्योंकि रक्तवाही स्रोतोंके बंद होजानेसे रक्त मांसादिधातुओंको पुष्ट नहीं कर सकता, मार्ग रुकजानेसे आमाशयमें आकर स्थित होजाताहै और बहुत इकट्ठा होनेसे उत्केशित होकर कंठमें आजाताहै । अधिक और टक्केशित न होनेसे नहीं भी आता ॥ ५४ ॥

वातश्लेष्मविवंधत्वादुरसःश्वासमृच्छति ।

दोषैरुपहतेचाग्नौसपिच्छमभिसार्यते ॥ ५५ ॥

वात कफ द्वारा श्वासके आने जानेवाली नलीके रुकनेसे श्वास छातीमें रुककर बड़ी कठिनतासे आने लगताहै और दोषों द्वारा जठराग्निके उपहत होजानेसे मल पिच्छल (लहेसदार भाटा) उतरने लगताहै क्योंकि अग्नि यथोचित रीतिसे अन्नका सार नहीं निकाल सकती ॥ ५५ ॥

पृथग्दोषैःसमस्तैर्वाजिह्वाहृदयसंश्रिते ।

जायतेऽरुचिराहारैर्दुष्टैरथैश्चमानसैः ॥ ५६ ॥

जब वातादि दोष सब मिलकर अथवा अलग २ जीभ और हृदयके आश्रित होतेहैं तो अरुचिको प्रकट करतेहै । एवं दूषित आहार (जो देखने और खानेमें बुरा हो) से तथा मानसिक कारणोंसे भी अरुचि उत्पन्न होजातीहै ॥ ५६ ॥

कपायतिक्तमेधुरैर्विद्यान्मुखरसैःक्रमात् । वाताद्यैररुचिंजातांमान-

सींदोषदर्शनात् ॥ ५७ ॥ अरोचकात्सामवेगाद्दोषोत्केशाद्भयाद-

पि । छर्दिर्यासाविकाराणामन्येषामप्युपद्रवः ॥ ५८ ॥

मुखका रस कसैला हो तो वातजनित अरुचि जानना । तिक्त हो तो पित्तजनित और मीठा हो तो कफजनित अरुचि होतीहै । इसी प्रकार मानसिक अरुचि दोषोंके देखनेसे जानी जातीहै । अरुचि, आमवेग, दोषोंका उत्केश और भय इनसे राजयक्ष्मा तथा अन्य विकारोंमें भी वमन उत्पन्न होतीहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

सर्वस्त्रिदोषजोयक्ष्मादोषाणान्तुबलावलम् - 1

परीक्ष्यावस्थितवैद्यःशोषिणंसमुपाचरेत् ॥ ५९ ॥

सब प्रकारके प्रक्षमा त्रिदोषसे ही होतेहैं; इसलिये यक्ष्मामें दोषोंको बलाबल विचारकर वेद्यको शोषरोग (यक्ष्मा) बालेकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५९ ॥

प्रतिश्यायेशिरःशूलेकासेद्वासेस्वरक्षये ।

पाइर्वशूलेचविविधाःक्रियाःसाधारणीःशृणु ॥ ६० ॥

अब प्रतिश्याय, मस्तकपीडा, खांसी, श्वास, स्वरभंग और पार्श्वशूलकी अनेक प्रकार साधारण चिकित्साका श्रवण करो ॥ ६० ॥

प्रतिश्यायादि छः रोगोंकी चिकित्सा ।

पीनसेस्वेदमभ्यङ्गधूममालेपनानिच । परिपेकावगाहांश्रयावकं

वाद्यमेवच ॥ ६१ ॥ लवणाम्लकटूष्णांश्चरसान्स्त्रेहोपसंहितान् ।

लावतित्तिरिदक्षाणांवर्तकानाञ्चकल्पयेत् ॥ ६२ ॥ सपिप्पलीकं

सयवंसकुलत्थंसनागरम् । दाडिमामलकोपेतांस्त्रिगधमाजंरसंपिवे-

त् ॥ ६३ ॥ तेनषड्विनिवर्तन्तेविकाराःपीनसाद्यः । मूलकानां

कुलस्थानांयूपैर्वासूपकल्पितैः ॥ ६४ ॥ चवगोधूमशाल्यत्रैर्यथासा-

त्स्यमुपाचरेत् ॥ ६५ ॥

प्रतिश्याय (जुकाम) में अभ्यंग, घृत्रपान, आलेपन, परिशेष और अक्वाहन कराना हित है तथा, भुने जवोंका मण्ड, नमक, अम्ल, कटु और उष्ण रसोंका पान कराना एवं घृतमें संस्कार कियेहुए लवा, तीतर, मुर्गा और वनकके मांसरसका प्रयोग करना हित है । तथा पीपल, यव, कुल्यी, सोंठ, अनार और आमलोंसे युक्तकर घीमें संस्कार कियेहुआ वकरेका मांसरस प्रयोग करावे । इससे प्रतिश्याय आदि छः उपद्रव दूर होतेहैं । अथवा सलजम और कुल्यीके घृतमें मिद्व करके यव, गेहूं या शालीचावलोंका भात यथासात्म्य सेवन करावे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

पिवेत्प्रसादंवारूपयाजलंवापाञ्चमूलिम् । धान्यनागरसिद्धंवाताम-

लत्रयाथवाशृतम् ॥ ६६ ॥ पर्णिनीभिश्चतृसृभिस्तेनचाद्धानिक-

ल्पयेत् । कृसरोत्कारिकामापकुलत्थयवपायसैः ॥ ६७ ॥ सङ्कर-

स्वेदविधिनाकण्ठपार्श्वमुरःशिरः । स्वेदयेत्पत्रभङ्गेनशिरश्चपरिपे-

चयेत् ॥ ६८ ॥ बलागुडूचीमधुकशूतेर्वावारिभिःसुखैः । यस्तम-

त्स्यशिरोभिर्वानाडीस्वेदेःप्रयोजयेत् । कण्ठेशिरसिपार्श्वेषुचपयोभि-

र्वासवातिकैः ॥ ६९ ॥ औदकानूपमांसानिसालिलं पाञ्चमूलिकम् ।
सस्नेहं सारनालं वानाडीस्वेदं प्रयोजयेत् ॥ ७० ॥

वारुणीमण्ड, अथवा पंचमूलसे सिद्ध किया जल या धनियाँ और सोंठ मिलाकर पकाया जल अथवा भूमिआंवलासे सिद्ध किया जल या शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मृगपर्णी, मुग्धपर्णी इनसे सिद्ध किया जल पानेको देना चाहिये । अथवा इन्हीं जलोंमें सिद्ध किये हुए अन्नका भोजन करावे । कृशरा (खिचड़ी), उत्कारिकों (रोटी आदि), उडद, कुल्थी, यव, खीर इनसे संकरस्वेदविधि द्वारा कण्ठ, पसली, हृदय और शिरको, स्वेदन करना चाहिये । या वातनाशक पत्रों (असगन्ध, एरण्ड) द्वारा स्वेदन करे । अथवा बला, गिलोप और मुलहठीसे सिद्ध किये हुए सुतोष्ण जलसे परिपेचन करे । अथवा वकरे या मछलीका मस्तक डालकर पकाये हुए जलसे या वातनाशक द्रव्योंके क्वाथसे नाडीस्वेदविधि द्वारा कण्ठ, शिर और पसलियोंको स्वेदन करे । अथवा जलसंचारी या अनूपसंचारी जीवोंके मांससे सिद्ध किये-जल-द्वारा या पंचमूलसे सिद्ध किये जल द्वारा अथवा स्नेहयुक्त कांजी द्वारा नाडीस्वेदविधिसे स्वेदन करे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

जीवन्त्याः शतपुष्पायावलायामधुकस्य च । वचायावेशवारस्य

विदार्यामलकस्य च ॥ ७१ ॥ औदकानूपमांसानामुपनाहाश्च सं-

स्कृताः । शस्यन्ते च चतुःस्नेहाः शिरःपाद्वासशूलिनाम् ॥ ७२ ॥

जीवन्ती, सौंफ, खैरेटी, मुलैठी, वच, वेशवार, विदारीकंद, आंवला, जलजीवों और अनूपसंचारी जीवोंका मांस चतुःस्नेह मिलाकर सिद्ध किया हुआ लेप शिर, पसली और कंधोंकी पीडाको दूर करताहै अथवा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए चतुःस्नेह (घृत, तैल, वसा, मज्जा) का मर्दन करना भी उपरोक्त गुण करताहै ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

शतपुष्पासमधुककुष्ठं तगरचन्दनम् ।

आलेपनं स्यात्सघृतं शिरःपाद्वासशूलनुत् ॥ ७३ ॥

सौंफ, मुलैठी, कूड़, तगर और चंदनको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे शिर, पसली और कंधोंकी पीडा दूर होतीहै ॥ ७३ ॥

अन्य प्रयोगे ।

चलारास्तातिलाः सर्पिर्मधुकं नीलमुत्पलम् । पलंकपादेवदारुचन्द-

नकेशरघृतम् ॥ ७४ ॥ वीराबलाविदारीचकृष्णगन्धापुनर्नवा ।

शतावरीपयस्याचकचृणमधुकंघृतम् ॥ ७५ ॥ चत्वारएते
श्लोकाधैःप्रदेहाःपरिकीर्तिताः । शस्ताःसंसृष्टदोषाणांशिरःपाश्वा-
सशूलिनाम् ॥ ७६ ॥

१-बला, रासना, तिल, वी, मुलैठी और नीलकमल; २-गुग्गुल, देवदारु, चंदन,
केशर और वी; ३-क्षीरकाकोली, बला, विदारीकंद, मुहांजना और पुनर्नवा; ४-
शतावर, क्षीरकाकोली, शालपर्णी, मुलैठी और वी; यह आधे आधे श्लोकमें कहे
हुए चार प्रकारके लेप शिर, पसली और कंधोंकी पीडाको दूर करनेमें उत्तम
कहेहैं ॥ ७४ । ७५ । ७६ ॥

संशमनक्रिया ।

नावनंधूमदानानिस्नेहाश्रोत्तरभक्तिकाः । तैलान्यभ्यङ्गयोगानिव-
स्तिकर्मतथापरम् ॥ ७७ ॥ जलौकालाबुशृङ्गैर्वाप्रदुष्टंघ्ननेनवा ।
शिरःपाश्वासशूलेषु रुधिरंतस्यनिर्हरेत् ॥ ७८ ॥

शिरशूल, अंस (कंधे) शूल और पार्श्व (पसली) शूलमें नस्य, धूमपान, भोज-
नोत्तर घृतपान, नारायणतेल आदि योग्य तैलोंकी मालिश और वस्तिकर्म यह परम
हितकारकहैं । और जांक, तुंबी, सिंगी और शिरावेधन द्वारा रक्तनिकालनेसे भी
शिर; पसली और कंधोंकी पीडा दूर होजातीहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

प्रदेहःसघृतश्चेष्टःपद्मकोशीरचन्दनैः । दूर्वामधुकमज्जिष्ठाकेशैर्वा
घृताप्लुतैः ॥ ७९ ॥ प्रपुण्डरीकनिर्गुण्डीपद्मकेशरसुत्पलम् । कशे-
रुकापयस्याचससर्पिष्कंप्रलेपनम् ॥ ८० ॥ चन्दनाद्येनतैलेनशत-
धौतेनसर्पिषा । अभ्यङ्गःसर्पिषासेकःशस्तश्चमधुकाम्बुना ॥ ८१ ॥
माहेन्द्रेणसुशीतेनचन्दनादिशृतेनवा । परिपेकःप्रयोक्तव्यइतिसं-
शमनीक्रिया ॥ ८२ ॥

पद्मास्र, चंदन और खस, घृतमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दूब, मुलैठी
मजीठ और केशरको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे या पंडयारेका छिलका, संभा-
लका छिलका, कमलकी केशर, नील कमल, कसेरु और क्षीरकाकोलीको घृतमें
मिलाकर लेप करनेसे मस्तक, पार्श्व और अंसोंकी पीडा दूर होतीहै । एवं चंदनादि-
तैल अथवा सौ बार धोयेहुए घृतका अभ्यंग अथवा घृत या मुलैठीके जलका परि-
पेक या माहेन्द्र जीतल जल अथवा चंदनादिक्वायका परिपेक करनेसे दादयुक्त
मस्तरुपीडा शान्त होतीहै । इस प्रकार संशमनी क्रिया कही गई ॥ ७९ । ८० । ८१ । ८२ ॥

दोषाधिक्य में संशोधनविधि ।

दोषाधिकानां वमनं शस्यते स विरेचनम् ।

स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यत्नकर्षणम् ॥ ८३ ॥

जिस यक्ष्मागोमीका मांस और बल क्षीण न हुआ हो उसको दोषोंकी प्रबलतामें स्नेह और स्वेदन कराके म्लिग्ध, वमन, विरेचन कराना चाहिये । परन्तु वह कृश न होने पावे ॥ ८३ ॥

शोषीमुञ्चति गात्राणि पुरीषसंसनादपि । अवलापेक्षिणीमात्रां किंपु-
नर्यो विरिच्यते ॥ योगान्संशुद्धकोष्ठानां कासेश्वासेस्वरक्षये ।

शिरःपाश्र्वासशूलेषु सिद्धानेतान्प्रयोजयेत् ॥ ८४ ॥ बलाविदा-
रिगन्धार्थैर्विदार्यामधुकेनवा । सिद्धंसल्लवणंसर्पिर्नस्यस्यास्वर्य-

सुत्तमम् ॥ ८५ ॥ प्रपुण्डरीकमधुकंपिप्पल्योवृहतीबला । क्षीरं
सर्पिश्च तत्सिद्धं स्वर्यस्यान्नावनंपरम् ॥ ८६ ॥ शिरःपाश्र्वासशूलघ्नं

कासश्वासनिवर्हणम् । प्रयुज्यमानं बहुशोघृतंचोत्तरभक्तिकम् ॥
॥ ८७ ॥ दशमूलेनपयसासिद्धं मांसरसेन च । बलागर्भघृतंसद्यो

रोगानेतान्प्रवाधते ॥ ८८ ॥ भक्तस्योपरिमध्येवायथाग्निप्रविचा-
रितम् । रासनाघृतं वासक्षीरंसक्षीरं वा बलाघृतम् ॥ ८९ ॥

शोपरोगीका मल निकलजानेसे उसका शरीर ही नष्ट होजाताहै इसलिये उसके बलके अनुसार ही विचारपूर्वक मृदु शोधन कराना चाहिये । कोष्ठ, शुद्ध होजानेपर रोगीको यदि खांसी श्वास, स्वरभेद, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल और अंसशूल वाकी रहजाय तो नीचे लिखी औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये । जैसे बला, शालपर्ण्यादिगण, विदारीकंद, मुलैठी इनसे सिद्ध कियेहुए संधानमकयुक्त घृतकी नस्य देना स्वरभंगको दूर करनेमें उत्तम है । पुण्ड्यारा, मुलैठी, पीपल, बडी कटेरी, बला और दूध इनके साथ सिद्ध कियेहुए घृतकी नस्य देना स्वरको उत्तम करताहै । अनेक योग्य द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत भोजनके अनन्तर विधिवत् पानकरनेसे मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, अंसशूल, खांसी और श्वास सब दूर होतेहैं । एवं दशमूल, दूध, मांसरस और बलके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत उपरोक्त रोगोंको शीघ्र दूर करताहै । तथा भोजन करनेके अनन्तर अथवा भोजनके मध्यमें जठराग्निके बलानुसार दूध और रासनाघृत अथवा दूध और बलाघृत पान करनेसे उपरोक्त सब उपद्रव दूर होजातेहैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

स्नेहवर्णन ।

लेहान्कासापहान्स्वर्याज्ज्वासाहिकानिवर्हणान् ।

शिरःपाद्वर्वासशूलघ्नान्स्नेहांश्चातःपरंशृणु ॥ ९० ॥

जब हम खांसीका दूर करनेवाले, स्वरको बढानेवाले तथा श्वास, हिचकी, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल और अंसशूलको दूर करनेवाले . जेहोंका वर्णन करतेहैं सो सुनो ॥ ९० ॥

घृतंखर्जूरमृद्धीकाशर्कराक्षौद्रसंनुतम् ।

सपिप्पलीकं वैस्वर्यकासश्वासनिवर्हणम् ॥ ९१ ॥

धी, खजूर, मुनक्का, मिसरी, शहद और पीपल इन सबको मिलाकर सेवन करनेसे स्वरभंग, खांसी और श्वासरोग नष्ट होताहै ॥ ९१ ॥

दशमूलशृताक्षीरात्सर्पिर्द्युदियान्नवम् । सपिप्पलीकंसक्षौद्रन्तत्प-

रंस्वरघोधनम् ॥ ९२ ॥ शिरःपाद्वर्वासशूलघ्नकासश्वासज्वरापहम् ।

पञ्चभिःपञ्चमूलैर्वाशृताद्यदुदियाद्घृतम् ॥ ९३ ॥ पञ्चानांपञ्चमू-

लानारंसेक्षीरचतुर्गुणे । सिद्धं सर्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मणः सप्तकं वलम् ९४

पांचों पंचमूल मिलाकर पकायेहुए दूधके मक्खनमें पीपल और शहद मिलाकर चांटेनेसे स्वरभंग, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, अंसशूल, खांसी, श्वास और ज्वर यह सब दूर होतेहैं । एवं पांचों पंचमूलोंके क्वाय और कल्कं तथा चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत राजयक्ष्माके उपरोक्त सात उपद्रवोंको जीतलेताहै ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

खर्जूरं पिप्पलीद्राक्षापथ्याशृङ्गीदुरालभा । त्रिफलापिप्पलीमुस्तं

शृंगाटीगुडशर्करा ॥ ९५ ॥ वीराशठीपुष्कराख्यंसुरसःशर्करा-

गुडः । नागरंचित्रकोलाजाःपिप्पल्यामलकंगुडः ॥ ९६ ॥ श्लोका-

र्द्धविहितानेतांल्लिह्यान्नामधुसर्पिषा । कासश्वासापहान्स्वर्यान्पा-

द्वर्शूलापहांस्तथा ॥ ९७ ॥

१ खजूर (छुहारा) पीपल, मुनक्का, हरड, काकडासिगी और जवासा । २ त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, सिधाडा, और गुडशर्करा । ३ क्षीरकाकोली, कचूर, पोहकरमूल, तुलसी और गुडशर्करा । ४ सोंठ, चित्रक, धानकी खील, पीपल, आंवला, और गुड । इन आधे आधे श्लोकमें कहेहुए चार योगोंको घृत और शहद मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, स्वरभंग, पार्श्वशूल यह सब दूर होतेहैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

- सितोपलादि अवलेह ।

सितोपलांतुगाक्षीरीपिप्पलीविहुलांत्वचम् । अन्यादूर्द्ध्राद्विगुणितं
लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ ९८ ॥ चूर्णितंप्राशयेद्वाततृश्वासकासकफा-
तुरम् । सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्निपार्श्वशूलिनम् ॥ ९९ ॥

मिसरी आठ भाग, वंशलोचन चार भाग, पीपल दो भाग, इलायचीके बीज
एक भाग, दालचीनी आधा भाग इन सबका चूर्ण करके शहद और घृतमें
मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, कफ, जीभकी जडता, अरुचि, मंदाग्नि और पार्श्व-
शूल यह सब दूर होतेहैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

हस्तपादांगदाहेपुञ्ज्वरेरक्तेतथोर्द्ध्वगे ।

वासासर्पिःशतावर्याःसिद्धंवापरमंहितम् ॥ १०० ॥

हाथ पांज, और शरीरकी दाह निवृत्तिके लिये तथा ज्वरमें और ऊर्द्धगामी रक्त-
पित्तमें वासाघृत अथवा शतावरीघृतका सेवन करना परम हितकारी है ॥ १०० ॥

दुरालभाद्यघृत ।

दुरालभांश्वदंष्ट्राश्चतस्रःपर्णिनीर्वलाम् । भागान्पलोन्मितान्कृत्वा

पलंपर्पटकस्यच ॥ १०१ ॥ पचेद्दशगुणेतोयेदशभागावशेषिते ।

रसेसुपूतेद्रव्याणामेषांकल्कान्समावपेत् ॥ १०२ ॥ शक्याःपुष्कर-

मूलस्यपिप्पलीत्रायमाणयोः । तामलक्याःकिरातानांतिकस्यकुट-

जस्यच ॥ १०३ ॥ फलानांशारिवायाश्चसुपिष्टान्कर्षसम्मितान् ।

ततस्तेनघृतप्रस्थंक्षीरद्विगुणितंपचेत् ॥ १०४ ॥ ज्वरंदाहंभ्रमं

कासमंसपार्श्वशिरोरुजम् । तृष्णाञ्छर्दिरीसारमेतान्सर्पिरपो-

हति ॥ १०५ ॥

जवासा, गोखरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मापपर्णी, मुद्गपर्णी, बला और पापडा यह
एक एक पल लेकर दशगुने जलमें औटावे । दशवां भाग शेष रहनेपर नीचे उतारकर
छान ले फिर इसमें पोहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, भूमिआवला, चिरायता, कुटकी,
इन्द्रजौ और सारिवा इनको एक एक कर्ष लेकर कूट छानकर मिलावे । फिर इसमें
१ प्रस्थ घी २ प्रस्थ दूध मिलाकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे । इस घृतके
सेवनसे ज्वर, दाह, भ्रम, खांसी, अंसशूल, पार्श्वशूल, मस्तकपीडा, प्यास, वमन और
अतिसार यह सब दूर होतेहैं ॥ १०१-१०५ ॥

जीवन्त्यादि घृत ।

जीवन्तीमधुकंद्राक्षाफलानिकुटजस्य च । शर्ठीपुष्करमूलञ्चव्याघ्रीं
गोक्षुरकम्बलाम् ॥१०६॥ नीलोत्पलंतामलकींलायमाणांदुरालभा-
म् । पिप्पलीञ्चसमंपिष्ट्वाघृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ १०७ ॥ एतद्
व्याधिसमूहस्य समुत्थं राजयक्ष्मणः । रूपमेकादशविधं सर्पिरेकं व्य-
पोहति ॥ १०८ ॥

जीवन्ती, मुलैठी, मुनका, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, कंठरी, गोखरू, बला,
भूमिआंवला, नीलोफर, त्रायमाण, जवासा और पीपल, इन सबको समान भाग ले
कलक बनावे । इस कलक और चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत सेवन करनेसे व्याधि-
समूहरूप राजयक्ष्माके ग्याह उपद्रव नष्ट होजातेहैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

बलाद्यघृत ।

बलांस्थिरांपृश्निपर्णीवृहतींसनिदिग्धिकाम् । साध्यित्वारसेत-
स्मिन्पयोगव्यंसनागरम् ॥ १०९ ॥ द्राक्षाखजूरसर्पिर्भिःपिप्पल्या-
चशृतंसह । सक्षौद्रंज्वरकासघ्नंस्वर्यञ्चैतत्प्रयोजयेत् ॥ ११० ॥

बला, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और दोनों कटेली इनका काय, घृतसे चौगुना दूध,
मुनका, खजूर, सोंठ, पीपल इनका कलक बनाकर घृतपाक विधिसे घृतको सिद्ध करे ।
इस घृतको शहत मिलाकर सेवन करनेसे ज्वर, खाँसी और स्वरभंग यह सब दूर
होजातेहैं ॥ १०९ ॥ ११० ॥

यक्ष्मामे अन्य उपचार ।

आजस्यपयसंश्चैवप्रयोगोजांगलारसाः । यूपार्थेचणकामुद्गामकु-
ष्ठाश्चोपकल्पिताः ॥१११॥ ज्वराणांशमनेयोगःपूर्वमुक्तःक्रियाविधिः ।
याक्ष्मिणांज्वरदाहेपुससर्पिष्कः प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

यक्ष्मारोगमें बकरीका दूध और जंगली जीवोंका मांसरस हितकारी होताहै ।
तथा चना, मूंग और मोठ यह यूपके लिये हित हैं । एवं जो ज्वरनाशक प्रयोग
चिकित्सा तथा घृत आदि पहले कहचुके हैं, वह सब भी यक्ष्मारोगियोंके ज्वर और
दाहकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करने चाहिये ॥ १११ ॥ ११२ ॥

कफप्रसेकेवलवान्छौष्मिकःछर्दयेन्नरः । पयसाफलयुक्तेनमधुरेणर
सेनवा ॥११३॥ सर्पिण्मत्यायवाग्वावावमनीर्योपसिद्धया । वमितो-

द्याश्चलम्बन्नमन्नकालेसदीपनम् ॥ ११४ ॥ यवगोधूममाध्वीकशीध्वरि-
ष्टसुरासवान् । जांगलानिचशूल्यानिसेवमानःकफञ्जयेत् ॥ ११५ ॥

कफयुक्त बलवान् रोगीको कफके प्रसेकमें मैनफलका चूर्ण मिलाकर दूध अथवा
मेमफलयुक्त मधुररस या वमनकारक द्रव्योंसे सिद्ध की हुई घृतयुक्त यवागू पिलाकर
वमन कराना चाहिये । फिर वमनके अनंतर क्षुधा लगनेपर हलके अन्नका भोजन
करावे । तथा जव, गेहूं, माध्वीक, सीधु, अरिष्ट, सुरा, आसव, शूलपर भुनाहुआ
जंगली जीवोंका मांस सेवन करावे तो कफ शान्त होताहै ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेतुवायुःश्लेष्माणमस्यति । कफप्रसेकन्तंविद्रा-
न्निग्धोष्णेनैवनिर्जयेत् ॥ ११६ ॥ क्रियाकफप्रसेकेयावम्यांसैवप्र-
शस्यते । हृद्यानिचान्नपानानिवातन्नानिलघूनिच ॥ ११७ ॥

राज्यक्ष्मा रोगीको जब कफ अधिक निकलने लगताहै तब वायुःही उस कफको
उदीर्णकर निकालताहै इसलिये उस समय निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफको
जीतना चाहिये । जो चिकित्सा कफके प्रसेक (गिरने) की कीजातीहै वही
चिकित्सा वमनकी शान्तिके लिये भी हितकारी है । तथा वमनकी निवृत्तिके लिये
हृद्य, वातनाशक और हलके अन्नपानका प्रयोग करना हित होताहै ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

मन्दाग्निमें कर्त्तव्य ।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्संपिच्छमति सार्यते । प्राप्नोत्यास्यस्यवैरस्यं
नचान्नमभिनन्दति ॥ ११८ ॥ तस्याग्निदीपनाद्योगानतीसारनि-
चर्हणान् । वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्यादरुचिप्रतिवाधकान् ॥ ११९ ॥

जठराग्निके उपहत होनेसेही प्रायः पिच्छिल (ल्हेसदाग, गाढा, गिलगिला) दस्त
आताहै तथा मुखका स्वाद विगडजाताहै और अन्नमें अरुचि होतीहै इसलिये उसको
अग्निदीपनकर्त्ता, अतिसारनाशक, मुखशोधक और रुचिकारक योगोंका सेवन कराना
चाहिये ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

अतिसार नाशक योग ।

सनागरानिन्द्रियवान्पित्रेद्रातण्डुलाम्बुना । सिद्धायवागूजीर्णेच
चांगेरीतक्रदाडिमैः ॥ १२० ॥ पाठाम्बिल्वयवानीचपातव्यंतक्र-
संयुंतम् । दुरालभांशुंगवेरंपाठाश्चसुरयासह ॥ १२१ ॥ जाम्बवात्र-
विल्वमध्यश्चसकपित्थंसनागरम् । पेयामण्डेनपातव्यमतीसार-

निवृत्तये ॥ १२२ ॥ एतानेवचयोगांस्त्रीन्पाठादीन्कारयेत्खडान् ।
ससूपधान्यान्सखेहान्साम्लान्संग्रहणान्परान् ॥ १२३ ॥

राजयक्ष्मामें अतिसार हो तो सोंठ और इन्द्रजवोंके चूर्णको खतलोंके धोवनके साथ पान करावे । अथवा पचनेपर चांगेरी (अम्ललोनिया) तक्र और अनारके रसके साथ सिद्ध की हुई यवागृ पिलाना चाहिये । अथवा पाठा, वेलगिरि, अजवायन इनके क्वाथको तक्रमें मिलाकर पिलावे । या जवासा, सोंठ, पाठा इनके क्वाथको मद्यके साथ पिलावे । अथवा जामुन और आमकी गुठली, वेलगिरि, केंच, सोंठ इनके क्वाथको पेयाके साथ अथवा मण्डके साथ पिलावे । अथवा इन तीनों अतिसारनाशक योगोंका सूपधान्यके साथ पड़्यूप बनाकर घी और अनारकी खटाई मिला सेवन करावे तो यह अत्यंत संग्राही है ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥
अन्यप्रयोग ।

वेतसार्जुनजम्बूनामृणालीकृष्णगन्धयोः ।

श्रीपर्ण्यामदयन्त्याश्रयूथिकायाश्चपल्लवान् ॥ १२४ ॥

चांगेर्याश्चुक्रकायाश्च दुग्धिकायाश्चकारयेत् ।

खडान्दधिसरोपेतान् ससर्पिष्कान्सदाडिमान् ॥ १२५ ॥

वेतस, अर्जुन, जामुनकी गुठली, कमल, सुहांजना, कुम्भेर, मल्लिका (मालती) और जूहीके पत्र, अम्ललोनिया, चूका, अनारका रस, दूधी, दही और घृत डालकर यूप बना सेवन करे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

मांसानांलघुपाकानारसाःसांग्राहिकैर्युताः । व्यंजनार्थेप्रशस्यन्ते
भोज्यार्थैरक्तशालयः ॥ १२६ ॥ स्थिरादिपंचमूलेनपानेशस्तंशृतञ्ज-
लम् ॥ १२७ ॥ तक्रंसुरांसचूक्रीकादाडिमस्याथवारसः । दीपनंग्रा-
हिनिर्दिष्टंभेषजंभिन्नवर्चसे ॥ १२८ ॥

यक्ष्मारोगियोंके अतिसारमें व्यंजनके लिये संग्राहक द्रव्योंके साथ सिद्ध किया हुआ लघुपाकी मांसरस और लाल शालीचावलोंका भोजन प्रयुक्त करे । तथा शालपर्णी आदि पंचमूलसे सिद्ध किया जल पीनेके लिये देवे । अतिसारमें तक्र, मद्य, चूका और अनारका रस संदीपनकर्त्ता तथा संग्राही होता है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

१-सूपधान्य, का अर्थ सूपधान्य " मूा, मोठ, मसूर " आदि जानना, गगाभने चरककी संस्कृतटीकामें 'चुक्रवाच्यं' ऐसा पाठलिखकर खडा चूक, और धनिया, यह अर्थ किया है यहाँ ठीक है ।

वैरस्यनाशक प्रयोग ।

परंमुखस्यवैरस्यनाशनंरोचनंशृणु । द्वौकालौदन्तपवनंभक्षयेन्मुखधावनैः ॥ १२९ ॥ तद्वत्प्रक्षालयेदास्यंधारयेत्कवलग्रहान् । पिबेद्दूधमन्ततोभृष्टमद्यादीपनरोचनम् । भेषजंपानमन्नञ्चाहितमिष्टोपकल्पितम् ॥ १३० ॥

अब मुखकी विरसताको दूर करनेवाले प्रयोगोंको सुनो प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय मुखशोधक दाँतन करना, मुखमें जलभर कुल्ले करना और मुखशोधक द्रव्योंको पानीमें घोलकर मुखमें रखना चाहिये । फिर धूम्रपान, दीपन और रुचिकारक द्रव्योंका सेवन करना हित है । एवं जिसको चित्त चाहताहो वह अन्नपान भी मुखकी विरसताको दूर करताहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥

मुखधावनपांचप्रयोग ।

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानिमुस्तेसामलकन्वचम् । त्वचोदाव्यायवानीचपिप्पल्यस्तेजवत्यपि ॥ १३१ ॥ यवानीतिन्तिडीकञ्चपञ्चैतेमुखधावनाः ॥ श्लोकपादेपुविदिताःशोधनामुखरोचनाः ॥ १३२ ॥ गुलिकांधारयेदास्येचूर्णैर्वाशोधयेन्मुखम् । एषामालोडितानांवाधारयेत्कवलग्रहान् ॥ १३३ ॥

१ दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां, अथवा २ नागरमोथा, केवटी, मोथा, आँबला, दालचीनी । अथवा ३ दालचीनी, दारुहलदी और अजवायन; ४ या पीपल और तेजवती । ५ अथवा अजवायन और तितिडीकका चूर्ण । यह चौथाई २ श्लोकमें कहे हुए चूर्णको दाँत और मुखमें मलना, मुखको शुद्ध करताहै । और रुचिवर्द्धक है अथवा इनकी गोली बना मुखमें रखनी चाहिये । अथवा इनका चूर्ण बनाकर मुखका शोधन करे अथवा जलमें मिला थोड़ी २ देर मुखमें रख कुल्ले करे ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

सुरामार्ध्वीकशीधूनांतैलस्यमधुसर्पिपोः ।

कवलान्धारयेदिष्टान्क्षीरस्येश्वरसस्यच ॥ १३४ ॥

सुरा, मार्ध्वीक, शीधु, तैल, मधु, घृत, दूध और ईखके रसको मुखमें धारण करनेसे मुखकी विरसता दूर होताहै ॥ १३४ ॥

यवानीपांडव ।

यवानीतिन्तिडीकञ्चनागरंसाम्लवेतसम् । दाडिमन्वदरंचाम्लं

कार्पिकानुपकल्पयेत् ॥ १३५ ॥ धान्यसौवर्चलाजाजीवराह्णश्चार्द्ध-
कार्पिकम् । पिप्पलीनाशतश्चैकंद्वेशतेमरिचस्यच ॥ १३६ ॥ शर्करा-
याश्चत्वारिपलान्येकलचूर्णयेत् । जिह्वाविशोधनंहृद्यंतच्चूर्णं
भक्तरोचनम् ॥ १३७ ॥ हृत्प्लीहपात्र्वशूलघ्नविवन्धानाहनाशनम् ।
कासश्वासहरं ग्राहिग्रहण्यशोविकारनुत् ॥ १३८ ॥

धजवायन, तित्तिडीक, सोंठ, अम्लवेत, अनार, वेर, यह प्रत्येक एक-एक कर्ष ।
धनियां, संचरनमक, जीरा, दालचीनी यह आधा २ कर्ष, पीपल १०० काली
मिरच २०० और शर्करा चार पल इन मक्का चूर्ण बनालेवे । यह चूर्ण जिह्वाको
शुद्ध करनेवाला, हृदयप्रिय, भोजनमें रुचिकारक, हृद्रोग, प्लीहा, और पार्श्वशूलको
दूर करनेवाला तथा विवन्ध और अफरेको दूर करनेवाला है । तथा खांसी,
श्वाम, ग्रहणी और ववासीरके विकारोंको दूर करनेवाला है तथा संग्राही
है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

तालीशपत्रादि गुटिका ।

तालीशपलमरिचं नागरं पिप्पलीशुभा । यथोत्तरं भागवृद्ध्यात्वगे-
लेचार्धभागिके ॥ १३९ ॥ पिप्पल्यष्टगुणां चात्र प्रदेयासितशर्करा ।
कासश्वासरुचिहरंतच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ १४० ॥ हृत्पाण्डुग्रहणी-
दोषशोपप्लीहञ्चरापहम् । वम्यतीसारशूलघ्नमूर्च्छवातानुलोमनम्
॥ १४१ ॥ कल्पयेद्गुटिकाञ्चैव चूर्णपत्रत्वासितोपलैः । गुटिकाद्याग्निसं-
योगाच्चूर्णाल्लघुतराः स्मृताः ॥ १४२ ॥

एक भाग तालीशपत्र, दो भाग काली मिरच, तीन भाग सोंठ, चार भाग पीपल
और पांच भाग वंशलोचन; दालचीनी और इलायची आधा आधा भाग लेवे और
पीपलसे अठगुनी मिसरी डालकर चूर्ण बनावे । यह चूर्ण खांसी, श्वास और अरु-
चिको हरता है । अत्यंत अग्निसंदीपन है, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, शोष,
प्लीहा और ज्वरको दूर करता है । वमन, अतिसार और शूलको नष्ट करता है । तथा
ऊर्ध्ववातको अनुलोमन करता है । अग्निके संस्कारसे मिश्रीकी चासनीमें पूर्वोक्त
चूर्णकी बनाई हुई गोळियां चूर्णकी अपेक्षा हलकी होती हैं १३९।१४०।१४१।१४२॥

यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था ।

शुष्यतेक्षीणमांसायकल्पितानिविधानवत् । दद्यान्मांसादमांसानि

वृंहणानिविशेषतः ॥ १४३ ॥ शोषिणेवार्हिणंद्व्याद्दृहिंशब्देनचा-
 परान् । गृध्रानुलूकान्चापांश्चविधिवत्सूपकल्पितान् ॥ १४४ ॥
 कांकोस्तित्तिरिशब्देनमत्स्यशब्देनचौरगान् । मृष्टान्मत्स्यान्त्र-
 शब्देनदद्याद्गण्डूपदानपि ॥ १४५ ॥ लोमशान्स्थूलनकुलान्
 विडालांश्रोपकल्पितान् । शृगालशावांश्चभिषक्शशशब्देनदाप-
 येत् ॥ १४६ ॥ सिंहानृक्षांस्तरक्षूंश्चव्याघ्रानेवांविधांस्तथा । मांसा-
 दान्मृगशब्देनदद्यान्मांसाभिवृद्धये ॥ १४७ ॥ गजखड्गितुरङ्गा-
 णांवेशवारकृतान्भिषक् । दद्यान्माहिपशब्देनमांसमांसाभिवृ-
 द्धये ॥ १४८ ॥

जिस यक्ष्मरोगीका मांस क्षीण होगयाहो उसको मांसाहारी जीवांका मांस अनेक-
 प्रकार कल्पना कर देना चाहिये । क्योंकि यह अत्यंत वृंहण होताहै । इस रोगीको
 मोरका मांस अथवा मोरसे अन्य गिद्ध, घुग्घू और चापपक्षीका मांस अनेक तरहसे
 बनाकर सेवन करावे । तीतरके नामसे कौएका मांस, बर्मीके नामसे सिर और
 पूंछके बिना सर्पका मांस, मछलीके अंत्रके नामसे गिडोये, खर्गोशके मांसके नामसे
 रोमयुक्त मोटे नकुलका मांस, बिल्ली वा शृगालके बच्चेका मांस अनेक रीतिसे
 कल्पनाकरके देवे । हिरनमांसके नामसे सिंह, रीछ, रीक्ष, बर्वे तथा ऐसे ही अन्य
 मांसाहारी पशुओंका मांस, मांसकी वृद्धिके लिये देवे । भैंसके मांसके नामसे
 हाथी, घोडे वा गंडेके मांसका शोरुआ बनाकर देवे । यह सब मांस मांसके
 बढानेवाले हैं ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

द्विजानामोपधीसिद्धघृतमांसविवृद्धये ।

सितायुक्तंप्रदातव्यंगव्येनपयसाभृशम् ॥ १४९ ॥

द्विजातियोंको मांसके बदले वृंहण औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत मिसरी मिलाकर
 गौदुग्धके साथ पिलावे ॥ १४९ ॥

मांसोपाचिताङ्गानामांसंमांसकरंपरम् । तीक्ष्णोष्णोलघुवाच्छस्तं
 विशेषान्मृगपक्षिणाम् ॥ १५० ॥ मांसानियान्यनभ्यासादनिष्ठा-
 निप्रयोजयेत् । तेपूषधासुखंभोक्तुंतथाशक्यानितानिहि ॥ १५१ ॥
 जानञ्जुगुप्सन्नैवाद्याज्जग्धवापुनरुल्लिखेत् । तस्माच्छन्नोपसि-
 द्धानिमांसान्येतानिदापयेत् ॥ १५२ ॥

मांससे पुष्टहुए मांसाहारी जीवोंका मांस मांसको अत्यंत-वडांताहै । यक्ष्मारोगमें-
मृग और पक्षियोंका मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होनेसे अत्यंत हितकारी होताहै ।
अनभ्यासके कारण जो सर्प आदि अनिष्ट मांसोंका प्रयोग कियाजाताहै उनमें युक्ति
पूर्वक प्रशंसा आदिकर रुचिको उत्पन्न करके प्रयोग करे । रोगी जानकर घृणा प्रगट
करताहुआ यदि खाँसी लेताहै तो वमन कर देताहै । इसलिये इन मांसोंको छलसे
सिद्धकर मांस सात्म्य मनुष्यको शोषके निवृत्तिके लिये देवे ॥ १५०-१५२ ॥

दोषपरत्वसे यक्ष्मामें मांसविधान ।

वर्हित्तिरिदक्षाणांहंसानांशूकरोष्ट्रयोः । खरगोमाहिषाणाञ्चमां-
सेमांसकरंपरम् ॥ १५३ ॥ योनिरष्टविधाचोक्तामांसानामान्नपांनि-
के । तान्परीक्ष्यभिषग्विद्वान्दद्यान्मांसानिशोषिणे ॥ १५४ ॥
प्रसहाभूशयानूपवारिजावारिचारिणः । आहारार्थेप्रदातव्यामा-
त्रयावातशोषिणे ॥ १५५ ॥ प्रतुदाविष्किराश्चैवधन्विजाश्चमृग-
द्विजाः ॥ कफपित्तपरीतानांप्रयोज्याःशोपरोगिणाम् ॥ १५६ ॥
विधिवत्सूपसिद्धानिमनोज्ञानिमृदूनिच । रसवन्तिसुगन्धीनिमां-
सान्येतानिभक्षयेत् ॥ १५७ ॥

मोर, तीतर, मुर्गा, हंस, सूअर, ऊँट, गधा, खगोश और भैंसा इनका मांस
अत्यंत मांसवर्द्धक है । जो अन्नपानाध्यायमें आठ प्रकारके मांस कथन कियेहैं
उन मांसोंको भी यक्ष्मारोगीको दोषवलानुसार सेवन करना चाहिये । यथा वात
शोषी रोगीको प्रसह, भूशय, आनूप, देशज, जलज और जलचर पशुपक्षियोंका मांस
आहारार्थ देना चाहिये । कफपित्त, शोपरोगियोंको प्रतुद, विष्किर और धन्वज
पशुपक्षियोंका मांस देना हित है । इन संपूर्ण मांसोंको विधिवत् सूप (शोहवा)
सिद्ध कराके मनोज्ञ, मृदु, रसीले और सुगंधित द्रव्य डालकर देवे ॥ १५३-१५७ ॥
मांसमेवाश्नतःशोपेमाध्वीकंपिवतोऽपिच । नियतस्याल्पचित्तस्य
चिरंकायेनतिष्ठति ॥ १५८ ॥ वारुणमिण्डभक्तस्यवाहिर्माजर्जसे-
विनः । अविधारितवेगस्ययक्ष्मानलभतेऽन्तरम् ॥ १५९ ॥ प्रसन्ना-
वारुणीशीधुमारिष्टानास्त्वान्मधु । यथेष्टमनुपानार्थंपिवेन्मांसानि
भक्षयेत् ॥ १६० ॥

विधिवत् मांस मद्यके सेवन करनेवाले जितात्मा मनुष्यके शरीरमें यह रोग बहुत

दिन नहीं रहसकता है । जो वारुणीमण्डको पीता है और सूत्रस्थानोक्त स्नानादि बहिर्मांजन करता है तथा मलमूनादिके उपस्थित वेगोंको नहीं रोकता उस मनुष्यके शरीरमें यक्ष्मा प्रवेश नहीं कर सकता । यक्ष्मारोगमें प्रसन्न, वारुणी, शीधु, अरिष्ट, आसव और मधु इनका यथेष्ट पान करना और यथेष्ट मांसभक्षण करना हितकारक है । (जो मांस नहीं खाते उनको मक्खन, घृत, आसव, दूध आदि पदार्थ सेवन करना चाहिये) ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

यक्ष्मामें मद्यके गुण ।

मद्यन्तीक्ष्णोष्णवैशद्यसूक्ष्मत्त्वात्स्त्रोतसांसुखम् । प्रमथ्यत्रिवृणो-
त्याशु तन्मोक्षात्सप्तधातवः । पुष्यन्तिधातुयोगाच्चशीघ्रंशोषः
प्रशाम्भ्यति ॥ १६१ ॥

मद्य-तीक्ष्ण, उष्ण, विशद और सूक्ष्म होनेसे स्त्रोतोंके मुखको बलसे मथनकर रोलेती है । और उनके खुलनेसे सातों धातुएं पुष्ट होने लगती हैं और धातुओंके पुष्ट होनेसे शोषरोग शीघ्र शान्त होजाता है ॥ १६१ ॥

अन्य प्रयोग ।

मांसादमांसस्वरसेसिद्धंसर्पिःप्रयोजयेत् । सक्षौद्रंपयसासिद्धंस-
र्पिर्दशगुणेनवा ॥ १६२ ॥ सिद्धंमधुकरैर्द्रव्यैर्दशमूलकपायिकैः ।
क्षीरमांसरसोपेतंघृतंशोपहरंपरम् ॥ १६३ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलच-
व्यचित्रकनागरैः । सयावशूकैःसक्षीरैःस्त्रोतसांशोधनंघृतम् ॥ १६४ ॥
रास्त्रावालागोक्षुरकंस्थिरावर्षान्तसाधितम् । जीवन्तीपिप्पलीभां-
र्गीसक्षीरंशोपनुद्घृतम् ॥ १६५ ॥ यवाग्वावापिवेन्मात्रांलिह्या-
द्दामधुनासह । सिद्धानांसर्पिपामेषामद्यादन्नेनवासह ॥ १६६ ॥ शु-
ष्यतामेपनिर्दिष्टोविधिराभ्यवहारिकः । वहिःस्पर्शनमाश्रित्यव-
क्ष्यतेऽतःपरंविधिः ॥ १६७ ॥

शोषरोगीको मांस खानेवाले जीवांके मांसरसमें सिद्ध किया हुआ घृत पिलाने । अथवा दशगुने दूधमें घृत मिद्ध करके गहतके साथ सेवन कराने । अथवा मधुरग-
णोंकी औषधियों और दशमूलके कायमें दूध और मांसरस मिलाकर उसमें घृतको सिद्ध करे । यह घृत शोषनाशक परम उत्तम प्रयोग है । अथवा पीपल, पीपलामूल, चन्प, चीता, सोंठ, जवालार और दूध इनसे मिद्ध किये हुए घृतका सेवन करानेसे

स्रोतोंका मुख शुद्ध होजाताहै । अथवा रास्ना, खरैटी, गोखर, शालिपर्णी और पुनर्नवाके काथमें जीवन्ती, पीपल, भारंगी, ओर दूध मिला घृतको सिद्धकरे । यह घृत शोपरोगको नष्ट करनेवाला है । ऊपर कहेहुए घृतोंको यवागृमं मिलाकर पीना अथवा शहतमें मिलाकर चाटना अथवा भोजनमें सेवन करना शोपरोगको दूर करताहै । शोपरोगीके लिये यह आहार विधि कहीहै । अव वहिःस्पर्शन संबंधी विधिका कथन करतेहैं ॥ १६२-१६७ ॥

अवगाहनविधि ।

स्नेहक्षीरोऽम्बुकोष्ठतंस्वभ्यक्तमवगाहयेत् । स्रोतोविवन्धमोक्षार्थं
बलपुष्ट्यर्थमेववा ॥१६८॥ उत्तीर्णमिश्रकैःस्नेहैःपुनरुक्तैःसुखाकरैः ।
मृद्रीयात्सुखमासीनंसुखंचाच्छादयेन्नरम् ॥१६९॥

रोगीके शरीरपर तैलमर्दन करके स्नेहकोठी अथवा दूध या जलकी कोठीमें विठा
ऐसा करनेसे स्रोतोंके मुख खुलजातेहैं तथा बल पुष्टि होतीहै । कोठीमें अवगाहनसे
अनन्तर रोगीको आरामसे विठाकर पूर्वोक्त मिश्रस्नेहका रोगीकी देहपर धीरे
मर्दनकर मनुष्यको उत्तम बखसे ढक देवे ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

उद्धर्त्तनविधि ।

जीवन्तीशतवीर्याश्चविकसांसपुनर्नवाम् । अश्वगन्धामपामार्गत-
कार्शीमधुकंबलाम् ॥ १७०॥ विदारिसर्षपंकुष्ठतण्डुलानतसीफल-
म् । मांषांस्तिलांश्चकिण्वश्चसर्वमेकत्रचूर्णयेत् ॥ १७१ ॥ त्रिगु-
णंयवचूर्णेनदध्नायुक्तंसमाक्षिकम् । एतदुत्सादनंकार्य्यपुष्टिवर्ण-
वलप्रदम् ॥ १७२ ॥

जीवन्ती, शतवीर्या, शतावर या सफेद दूर्वा, मजीठ, सोंठ, असगंध, अपामार्ग,
जैतवृक्षकी छाल, मुलैठी, खरैटी, विदारिकंद, सरसों, कूठ, चावल, अलसी, उडद,
तिल और सुरावीज इन सबको पीसकर इसमें तीनगुना जीका चूर्ण तथा दही
और शहत मिलाकर उबटन करे । इस उद्धर्त्तनसे बल, वर्ण और पुष्टि बढ़ती
है ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

गौरसर्षपकल्केनगन्धैश्चापिसुगन्धिभिः । स्नायादृतुसुखैस्तोयैर्जी-
वनीयौषधैःशृतैः ॥ १७३ ॥ गन्धैःसमाल्यैर्वासोमिर्भूपणैश्चविभू-
षितः । स्पृश्यान्संस्पृश्यसंपूज्यदेवताःसभिषग्द्विजान् ॥ १७४ ॥

इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धवत्पानभोजनम् । इष्टमिष्टैरुपहितंसुखमद्या-
त्सुखप्रदम् ॥ १७५ ॥

सफेद सरसोंके कल्क, और सुगंधित द्रव्योंको मलकर जीवनीय गणोक्त औष-
धियोंके क्वाथसे ऋतुके अनुसार सुखदायक स्नान करना चाहिये । फिर सुगंध लगाकर
फूलमाला और स्वच्छ वस्त्र और आभूषण धारण करे । तथा मंगलद्रव्योंका स्पर्श कर
देवता, वैद्य और ब्राह्मणोंका पूजन करे फिर अपने इष्टमित्रोंके साथ प्रिय, रस, वर्ण
और स्पर्श और गंधसे युक्त सुखपूर्वक अन्नपानका सेवन करना चाहिये ॥ १७३-१७५ ॥

पथ्यतम भोजन ।

समातीतानिधान्यानिकल्पनीयानिशुष्यताम् ।

लघूनिहीनवीर्याणितानिपथ्यतमानिहि ॥ १७६ ॥

शोपरीगियोंके लिये एक वरसके पुराने चावलोंका सेवन कराना हलका और हीन-
वीर्य होनेके कारण परम पथ्य होताहै ॥ १७६ ॥

यक्ष्मामें अन्य पथ्य ।

यच्चोपदेक्ष्यतेपथ्यंक्षतक्षीणचिकित्सिते ।

यक्ष्मणस्तत्प्रयोक्तव्यंवलमांसाभिवृद्धये ॥ १७७ ॥

तथा क्षतक्षीण चिकित्सामें जो पथ्य कहेंगे वह सब बल और मांस बढ़ानेके लिये
यक्ष्मा रोगीको देने चाहिये ॥ १७७ ॥

यक्ष्मामें अन्य उपचार ।

अभ्यङ्गोत्सादनैःस्नानैरवगाहैर्विमार्जनैः । वस्तिभिःक्षीरसार्पिभि-

र्मासैर्मांसरसोदनैः ॥ १७८ ॥ इष्टैर्मद्यैर्मनोज्ञानांगन्धानामुपसेव-

नैः । ययर्तुविहितैःस्नानैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ॥ १७९ ॥ सुहृदारम-

णीयानांप्रमदानांचदर्शनैः । गीतवादित्रशब्दैश्चप्रियश्रुतिभिरेव-

च ॥ १८० ॥ हर्षणाश्वासनैर्नित्यंगुरूणांसमुपासनैः । ब्रह्मचर्येण

दानेनतपसादेवतार्चनैः ॥ १८१ ॥ सत्येनाचारयोगेनमङ्गलैरवि-

हित्या । वैद्यविप्रार्चनाच्चैवरोगराजोनिवर्त्तते ॥ १८२ ॥

योग्य तैलकी मालिश करना, उपवन मरना, स्नान, धवगाहन, मार्जन, वस्ति-
कर्म, घृत, दुग्ध, और मांससेवन, मांसके अन्न खाना । इष्ट मद्य पीना, मनोहर
गयोंको सुंघना, ऋतु ऋतुके अनुसार जलोंसे स्नान करना, नवीन और प्यारे

वस्त्रोंको धारण करना, इष्टमित्रोंसे मिलना और सुंदर स्त्रियोंका देखना, गीत वाजोंके शब्दों तथा प्यारी बातोंका सुनना, हर्ष और आश्वासनदायक बातोंका सुनना गुरुजनोंकी नित्यसेवा करना, ब्रह्मचर्य, दान, तप और देवतार्चन नियमोंका पालन करना, सत्यव्रत पालन, मंगलाचरण और अहिंसा, वैद्य और विप्रोंका पूजन इनके सेवनसे रोगराज यक्ष्मा दूर होजाताहै ॥ १७८॥१७९॥१८०॥१८१॥१८२ ॥

प्रयुक्तयाययाचेष्टधाराजयक्ष्मापुराजितः ।

तांवेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थीप्रयोजयेत् ॥ १८३ ॥

प्राचीन कालमें जिसपन्नके करनेसे यह रोग दूर किया गया था उस वेदोक्त यज्ञको आरोग्य प्राप्तिके लिये करना चाहिये ॥ १८३ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानिप्राग्रूपरूपसंग्रहः । समासव्यासतश्चोक्तंभे-
पजंराजयक्ष्मणः ॥ १८४ ॥ नामहेतुरसाध्यंचसाध्यत्वंकृच्छ्र-
साध्यता । इत्यर्थसंग्रहःप्रोक्तोराजयक्ष्मचिकित्सिते ॥ १८५ ॥

इति चरक० चि०राजयक्ष्मचिकित्सितंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस राजयक्ष्म चिकित्सित अध्यायमें राजयक्ष्माकी प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप और औषधियां संक्षेप तथा विस्तारसे वर्णन की गई हैं । तथा यक्ष्माके पर्यायवाचक शब्द, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और कृच्छ्रसाध्यताका कथन किया गया है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

इति श्री च० स० चिकित्सितस्थाने प्र० भाषाटीकायां राजयक्ष्मचिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शांचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अर्श चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥

आसीनंमुनिमव्यग्रं कृतजप्यंकृतक्षणम् । पृष्टवानर्शांयुक्तिमग्नि-
वेशःपुनर्वसुम् ॥ १ ॥ प्रकोपहेतुःसंस्थानंस्थानंलिंगाचिकित्सि-
तम् । साध्यासाध्यविभागश्चतस्मैतन्मुनिरब्रवीदिति ॥ २ ॥

एक समय आत्रेय भगवान् जपादिनित्य क्रियासे निवृत्त हो प्रसन्नचित्त निश्चित बैठेहुए थे । उस समय अग्निवेशने अर्श (बवासीर) रोगकी युक्ति, प्रकोपका कारण, आकृति, अधिष्ठान, रूप, चिकित्सा और साध्यता तथा असाध्यताके विषयमें जाननेकी इच्छा प्रकट की । भगवान् पुनर्वसुजीने अग्निवेशके प्रति अर्शरोगके विषयमें इस प्रकार वर्णन करना आरंभ किया ॥ १ ॥ २ ॥

अर्शके भेद ।

इह खल्वग्निवेश ! द्विविधान्यर्शांसिसहजानिकानिचित्कानिचिज्जा-
तस्योत्तरकालजानि । तत्रबीजंगुदवलिबीजोपतसमायतनूमर्श-
सांसहजानाम् । तत्रद्विविधौबीजौउपतसौ, हेतुःमातापित्रोरपचारः
पूर्वकृतञ्चकर्मतथाअन्येषामपिसहजानांविकाराणांतत्रसहजानिस-
हजात्तानिशरीरेणअर्शांसित्यधिमांसविकाराः ॥ ३ ॥

हे अग्निवेश ! अर्श (बवासीर) रोग दो प्रकारका होताहै । एक सहज (जो जन्मसे ही होताहै) दूसरा जन्मके अनंतर अपने कारणोंसे प्रकट होनेवाला । इनमें सहज अर्शके कारण एक तो माता पिता के रज वीर्यका विकार होताहै, दूसरा इसके पूर्वजन्मका किया कर्म है । सो संपूर्ण सहज रोगोंके यह दो ही कारण होतेहैं । सहज अर्श एकप्रकारका अधिमांस रोगही जानना चाहिये ॥ ३ ॥

अर्शका अधिष्ठान ।

सर्वेषाञ्चार्शांक्षेत्रंगुदस्यार्द्धपञ्चमाङ्गुलेऽवकाशेत्रिभागान्तरा-
स्तिस्रोऽंगुदवलयःक्षेत्रमितिदेशः ॥ ४ ॥

संपूर्ण अर्शोंके प्रकट होनेका स्थान गुदाद्वारसे अंदर साठे पांच अंगुलके बीचमें जो प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी नामकी तीन वलियों हैं यही अर्शरोगके उत्पन्न होनेका क्षेत्र है ॥ ४ ॥

केचित्तुभूयांसमेवदेशमुपदिशन्तिअर्शांशिक्षमपत्यपथंगलमुखना-
सिकाकर्णाक्षिवर्तमानित्वक्च । तदस्त्यधिकमांसदेशएपगुदवलि-
जानान्त्वर्शांसीतिसंज्ञातत्रअस्मिन्सर्वेषाञ्चअर्शासामधिष्ठानंमेदोमां-
संत्वक्च ॥ ५ ॥

कोई ऐसा मानतेहैं, कि अर्शरोगके प्रकट होनेका स्थान केवल गुदा ही नहीं किंतु और भी बहुतसे स्थान हैं जैसे लिंगेन्द्रिय, योनिद्वार, गला, मुख, नासिका, फात,

वस्त्रोंको धारण करना, इष्टमित्रोंसे मिलना और सुंदर स्त्रियोंका देखना, गीत वाजोंके शब्दों तथा प्यारी बातोंका सुनना, हर्ष और आश्वासनदायक बातोंका सुनना गुरुजनोंकी नित्यसेवा करना, ब्रह्मचर्य, दान, तप और देवतार्चन नियमोंका पालन करना, सत्यव्रत पालन, मंगलाचरण और अहिंसा, वैद्य और विप्रोंका पूजन इनके सेवनसे रोगराज यक्ष्मा दूर होजाताहै ॥ १७८॥१७९॥१८०॥१८१॥१८२ ॥

प्रयुक्तयाययाचेष्टधाराजयक्ष्मापुराजितः ।

तांवेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थीप्रयोजयेत् ॥ १८३ ॥

प्राचीन कालमें जिसयज्ञके करनेसे यह रोग दूर किया गया था उस वेदोक्त यज्ञको ध्मारोग्य प्राप्तिके लिये करना चाहिये ॥ १८३ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानिप्राग्रूपरूपसंग्रहः । समासव्यासतश्चोक्तंभेषजंराजयक्ष्मणः ॥ १८४ ॥ नामहेतुरसाध्यंचसाध्यत्वंकृच्छ्रसाध्यता । इत्यर्थसंग्रहःप्रोक्तोराजयक्ष्मचिकित्सिते ॥ १८५ ॥

इति चरक० चि०राजयक्ष्मचिकित्सितंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस राजयक्ष्म चिकित्सित अध्यायमें राजयक्ष्माकी प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप और औषधियां संक्षेप तथा विस्तारसे वर्णनं कीगई हैं । तथा यक्ष्माके पर्यायवाचक शब्द, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और कृच्छ्रसाध्यताका कथन किया गया है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

इति श्री च० सं० चिकित्सितस्थाने प्र० भापाटीकायां राजयक्ष्मचिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसांचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अर्श चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥

आसीनंमुनिमव्यग्रंकृतजप्यंकृतक्षणम् । पृष्टवानर्शसांयुक्तिमग्निवेशःपुनर्वसुम् ॥ १ ॥ प्रकोपहेतुःसंस्थानंस्थानंलिंगाचिकित्सितम् । साध्यासाध्यविभागश्चतस्मैतन्मुनिरब्रवीदिति ॥ २ ॥

एक समय अत्रेय भगवान् जपादिनित्य क्रियासे निवृत्त हो प्रसन्नचित्त निश्चित बैठेहुए थे । उस समय अग्निवेशने अर्श (वयासीर) रोगकी युक्ति, प्रकोपका कारण, आकृति, अधिष्ठान, रूप, चिकित्सा और साध्यता तथा असाध्यताके विषयमें जाननेकी इच्छा प्रकट की । भगवान् पुनर्वसुजीने अग्निवेशके प्रति अर्शरोगके विषयमें इस प्रकार वर्णन करना आरंभ किया ॥ १ ॥ २ ॥

अर्शके भेद ।

इह खल्वग्निवेश ! द्विविधान्यर्शांसिसहजानिकानिचित्कानिचिज्जातस्योत्तरकालजानि । तत्रवीजंगुदवलिबीजोपतप्तमायतनमर्शासांसहजानाम् । तत्रद्विविधौबीजोपतप्तौ, हेतुःमातापित्रोरपचारः पूर्वकृतञ्चकर्मतथाअन्येषामपिसहजानांविकाराणांतत्रसहजानिसहजातानिशरीरेणअर्शांसित्यधिमांसविकाराः ॥ ३ ॥

हे अग्निवेश ! अर्श (वयासीर) रोग दो प्रकारका होताहै । एक सहज (जो जन्मसे ही होताहै) दूसरा जन्मके अनंतर अपने कारणोंसे प्रकट होनेवाला । इनमें सहज अर्शके कारण एक तो माता पिता के रज वीर्यका विकार होताहै, दूसरा इसके पूर्वजन्मका किया कर्म है । सो संपूर्ण सहज रोगोंके यह दो ही कारण होतेहैं । सहज अर्श एकप्रकारका अधिमांस रोगही जानना चाहिये ॥ ३ ॥

अर्शका अधिष्ठान ।

सर्वेषाञ्चार्शासांक्षेत्रंगुदस्यार्द्धपञ्चमाङ्गुलेऽवकाशेऽत्रिभागान्तरा-
स्तिस्रोऽंगुदवलयःक्षेत्रमितिदेशः ॥ ४ ॥

संपूर्ण अर्शोंके प्रकट होनेका स्थान गुदाद्वारसे अंदर साढे पांच अंगुलके बीचमें जो प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी नामकी तीन बलियों हैं यही अर्शरोगके उत्पन्न होनेका क्षेत्र है ॥ ४ ॥

केचित्तुभूयांसमेवदेशमुपदिशन्तिअर्शासांशिश्वमपत्यपथंगलमुखना-
सिकाकर्णाक्षिवर्तमानित्वकच । तदस्त्वधिकमांसदेशएगुदवलि-
जानान्त्वर्शांसीतिसंज्ञातत्रअस्मिन्सर्वेषाञ्चअर्शासामधिष्ठानमेदोमां-
संत्वकच ॥ ५ ॥

कोई ऐसा मानतेहैं कि अर्शरोगके प्रकट होनेका स्थान केवल गुदा ही नहीं किंतु और भी बहुतसे स्थान हैं जैसे लिंगेन्द्रिय, योनिद्वार, गला, मुख, नासिका, फात,

नेत्रोंकी पलकें और त्वचा । परंतु इन स्थानोंमें होनेवाले अर्शाकारं रोगको अर्श नहीं कहते वह अधिमांस कहाजाताहै । और गुदाकी तीन वलियोंमें होनेवाले मस्सोंको ही अर्श (ववासीर) कहतेहैं । सब प्रकारके अर्शोंका अधिष्ठान भेद, मांस, और त्वचा ही होतेहैं ॥ ५ ॥

सहजाशका वर्णन ।

तत्रसहजानिअर्शासिकानिचिदणूनिनिकानिचिन्महान्तिकानिचिं-
द्वीर्घाणिकानिचिद्भ्रस्वानिकानिचिद्वृत्तानिकानिचिद्विपमविसृ-
तानिकानिचिदन्तःकुटिलानिकानिचिद्वहिःकुटिलानिकानिचिज्ज-
टिलानिकानिचिदन्तर्मुखानियथास्वंदोषानुबन्धवर्णानि ॥ ६ ॥

सहज अर्शमें जो मस्से होतेहैं वह कोई बहुत छोटे, कोई बड़े, कोई लंबे, कोई गोल, कोई टेढेसे फैलेहुए, कोई भीतरको मुडेहुएसे, कोई बाहरको निकलेहुए, कोई जटिल (खिडेहुएसे) कोई पतले मुखवाले, होतेहैं । इनमें जिस दोषका अनुबंध हो उनके उंसी दोषके अनुरूप वर्ण, लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

तैरुपहतोजन्मप्रभृतिभवतिअतिकृशोविवर्णःक्षामोदीनःप्रचुरवि-
वद्धवातमूत्रपुरीषःशार्करीचाश्मरीवातथानियतविवद्धमुक्तपका-
मशुष्कभिन्नवर्चाअन्तरांतराश्वेतपाण्डुहरितपीतरक्कारुणतनुसा-
न्द्रपिच्छिलकुणपगन्धामपुरीषोपवेशीनाभिवस्तिवक्ष्णोदेशेप्रचुर-
परिकर्त्तिकान्वितःसशूलगुदप्रवाहिकःपरिहर्षप्रमेहप्रसक्तविष्टम्भा-
न्त्रकूजोदावर्त्तहृदयेन्द्रियोपलेपः प्रचुरविवद्धतिकाम्लोद्गारःसुदुर्व-
लोदुर्वलाभिरल्पशुक्रःक्रोधनोदुःखोपचारशीलःकासश्वासतमकतृ-
ष्णाहृल्लासच्छीर्दररोचकाविपाकपीनसक्षवथुपरीतस्तैमिरिकःशिरः-
शूलीक्षामभिन्नसन्नसक्तजर्जरस्वरःकर्णरोगीसशूनपाणिपादवदनां-
क्षिकूटःसञ्चरःसाङ्गमर्दःसर्वपर्वास्थिशूलीचअन्तरान्तरापाश्वकु-
क्षिवस्तिहृदयपृष्ठत्रिकग्रहोपतप्तःप्रध्यानपरःपरमालसश्चेतिजन्म-
प्रभृतिअस्यगुदजैरावृत्तोमार्गोपरोधाद्वायुरपानःप्रत्यारोहन्तमान-
व्यानप्राणोदानान्पित्तश्लेष्माणौचप्रकोपयति । तेप्रकुपिताःपञ्चवा-
ताःपित्तश्लेष्माणौचार्शसामभिद्रवन्तेएतान्विकारानुपजनयन्ती-
त्युक्तानिसहजान्यर्शासि ॥ ७ ॥

सहज अर्शवाला मनुष्य जन्मकालसे ही कृश, हीनवर्ण, क्षीण, और दीन, तथा नित्य ही अयोवात, मल, और मूत्रके विबंध युक्त रहताहै तथा शर्करा और पथरीका रोग बना रहताहै, उनको सदैव विबंध (कब्ज) से रुक २ कर पक्क मल, विनपचा मल, आम, फटाहुआ मल, सूखाहुआ, और फटाहुआसा मल उत्तरताहै । और बीच २ मे कभी सफेद, पांडुरवर्ण, हरा, पीला, लाल, ताम्रवर्ण, पतला, गाढा, पिच्छिल और मुरदेकीसी दुर्गन्धयुक्त मल निकलताहै । जब वह मनुष्य वैठताहै तो इसकी नाभी, वस्ती, और वंशण (बखिया) में कतरनीकीसी पीडा होने लगतीहै । एवं इस मनुष्यके शूल, प्रवाहिका (पेचिश), रोमांच, प्रमेह, अत्यंत, विष्टंभ (कब्जियत) अंत्रकूजन, उदावर्त, हृदय और इन्द्रियोंका लिपासा रहना, विबंधसे अफारासा होकर खट्टी और कडवी डकार आना, दुर्बलता, अन्नका न पचना, मंदाग्नि, वीर्यकी हीनता, क्रोध और दुःखयुक्त चित्त बना रहना, भोगकी इच्छा रखना, खांसी, श्वास, तमकश्वास हल्लास, वमन, अरुचि, अविपाक, प्रतिश्याय (जुकाम) छींक, तिमिररोग, मस्तकपीडा, स्वरभंग, स्वरकी क्षीणता, स्वरकी जडता, स्वरकी जर्जरता, कर्णरोग, हाय, पांव, मुख और नेत्रोंकी पलकोंमें सूजन, ज्वर, अंगमर्द (अँगडाई) संपूर्ण संधियोंमें पीडा, कभी २ पसली कूख हृदय वस्ती पीठ त्रिक स्थानमें पीडा होना, सदैव चिंता बनारहना, अत्यंत आलस्य होना, जन्मकालसे ही गुदामें प्रगटहुई ववासीरके मस्सोंसे अपानवायु रुक कर ऊपरको गमन करताहुआ समान, व्यान, प्राण, और उदान वायुको दूषित करता हुआ पित्त और कफको भी कुपित करदेताहै । यह पांच प्रकारके वायु ही पित्त और कफको अर्श रोगमें प्रेरित करते हुए इन उपरोक्त विकारोंको प्रकट करते हैं ॥७॥

अत ऊर्ध्वं जातस्योत्तरकालजानिव्याख्यास्यामः ॥ ८ ॥

अब हम जन्म लेनेके अनंतर होने वाले अर्शरोगका वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

जन्मके अनंतर अर्शकप्रगट होनेका कारण ।

गुरुमधुरशीताभिष्यन्दिदाहिविरुद्धाजीर्णप्रमिताशनासात्स्य-
भोजनाद्भव्यमात्स्यवाराहमाहिपाजाविकपिशितभक्षणात्कृशशु-
ष्कपूतिमांसपैष्टिकपरमात्रक्षीरमोदकदधितिलगुडविकृतिसेवना-
च्चमापयूपेक्षुरसपिण्याकपिण्डालुकशुष्कशाकशुक्तलशुनकिलाट-
पिण्डकविसमृणालशालूकक्रौञ्चदानकशेरुकशृङ्गाटकतरुणविरू-
टनवधान्याममूलकोपयोगाद्गुरुफलशाकरागहरितवसाशिरस्प-

दपर्युपितपूतिशीतसङ्कीर्णाभ्यवहरणान्मन्दकान्तमद्य-
 पानाद्व्यापन्नगुरुसलिलपानादतिलोहपानादसंशोधनाद्वस्तिकर्म-
 विभ्रमादव्यवायादिवास्वभ्रासुखशयनासनोपसेवनाच्चोपहताग्ने-
 र्मलोपचयोभवतिअतिमात्रम् । अथोत्कटुकविषमकठिनास-
 नसेवनादुद्भ्रान्तयानोष्ट्रप्रयाणादतिव्यवायाद्वस्तिनेत्रासम्यङ्प्रणि-
 धानाद्गुदक्षणादभीक्षणशीताम्बुसंस्पर्शाच्चेल्लोष्टृणादिघर्षणा-
 त्प्रततातिनिवर्हणाद्वातमूत्रपुरीषवेगोदीरणात्समुदीर्णवेगविनिग्र-
 हात्स्त्रीणाञ्चामगर्भभ्रंशाद्भोत्पीडनाद्बहुविषमप्रसूतिभिश्चप्रकुपि-
 तोवायुरपानस्तंमलमुपचितमधोगममासाद्यगुदवलिङ्वाधत्तेतंत-
 स्तासुअर्शासिप्रादुर्भवन्ति ॥ ९ ॥

भारी, मीठे, शीतल, अभिष्यंदी, विरुद्ध अजीर्णकर्ता, बहुत थोडा, और असात्म्य भोजन करनेसे तथा गौ, मछली, वराह, भैंसा, बकरी और मेंढा आदिके मांस खानेसे कृश, सूखाहुआ, और सडाबुसा मांस खानेसे, पिष्ट पदार्थ, परमान्न (खीर खोजा आदि) दूध, लड्डू, दही, तिल, गुड, इनसे बने हुए पदार्थोंका निरंतर सेवन करनेसे, उडदोंका यूप, ईखका रस, पिण्याण (तिलोंकी पीठी आदि) पिण्डाल, मूखे शाक, सिरका, लहसुन, किलाट, पिडक, विस, मृणाल, शालूक, क्रींचकन्द, कसेरू, सिंघाडे, एवं कच्चे और उगे हुए तथा नवीन धान्योंके सेवनसे, कच्ची मूलीको अत्यंत और निरंतरखानेसे, भारी फल, शाक, राग खांडव, हारत (सब्जी) पशुपक्षियोंके मस्तक चर्वां और पैरोंको खानेसे । वासी दुर्गंधित, टंडा और संकीर्ण भोजन करनेसे मंदक, दही, और मद्य इनके अधिक पीनेसे, दूषित और गुरुपाकी जलके सेवनसे; अधिक स्नेहपान करनेसे, संशोधन न करनेसे, वस्तिकर्मके मिथ्यायोग होनेसे; अव्यवायसे, दिनमें सोनेसे सुखपूर्वक सुंदर आसन, शय्या, आदि पर अधिक बैठे रहनेसे, अग्नि मंद होजातीहै उससे मलकी वृद्धि होतीहै । एवं पावोंके भारसे घेठने तथा विषम और कठोर आसन पर बैठे रहनेसे, बहुत हिलने जुलने वाली उद्भ्रान्त सरारीमें बैठनेसे ऊँट पर चढ़नेसे, अधिक मैथुन करनेसे, वस्तिकर्मके समय वस्तिकी नलीका मिथ्यायोग होनेसे गुदाको यथाचित शुद्ध न रखनेसे, मलद्वारमें अत्यंत शीतल जलके स्पर्शसे, (उष्णजलके साथ धोनेसे) कपडा, मट्टीका देला, या घाम आदि लेकर गुदाको धिसनेसे, निरंतर किनउने (गुदाको बाहरकी ओर धकेलनेका यत्न करने) से मल मूत्र वातको बिना वेग त्यागनेसे इनके उपस्थित वेगोंकी गंठनेसे

एवं द्वियोके गर्भपात, गर्भका उतपीडन, होनेसे अथवा अधिक प्रसव या प्रसवकी विषमता होनेसे, अपानवायु कुपित होकर उस उपचित मलसे अधोगमनके समय मिलकर गुदाकी तीन वलियोंको बाधनकर उनमें अर्श (ववासीर) रोगको प्रकट करताहै ॥ ९ ॥

दोषभेदसे आकृति ।

सर्षपमसूरमापमुद्गमकुष्ठकयकलायपिण्डटिण्डिकेरखर्जूरकर्क-
न्धुकाकणन्तिकाविम्बीवदरकरीरोदुम्बरजाम्बवगोस्तनांगुष्ठकशे-
रुकशृङ्गाटकशृङ्गीदक्षशिखिशुकतुण्डजिह्वामुकुलकर्णिकासंस्था-
नानिसामान्याद्वातपित्तकफप्रवलानि ॥ १० ॥

वात पित्त तथा कफकी प्रवलतावाले अर्शों (ववासीरके मस्तों) की आकृति सामान्यतासे सरसो, मसूर, माप, मूंग, मोठ, जव, कलाय, करीरके फल, खजूर, छोटा बेर, चिर्भटी कंदूरी, बेर, चांसके बीज, गूलर, जामन, दाख, अंगूठा कतेरु सिघाडा, काकडासिंगी समान आकारवाले तथा मुर्गा, मोर तोता इनकी चोंच या जीभके समान अथवा फूलकी कलीके समान आकृति होतीहै ॥ १० ॥

वातार्शके लक्षण ।

तेषामयंविशेषः । शुष्कम्लानकठिनपरुपरूक्षयावातितीक्ष्णा-
ग्राणिवक्त्राणिस्फुटितमुखानिविषमविस्तृतानिशूलाक्षेपतोदस्फुर-
णचिमिचिमासंहर्षणपरीतानिस्त्रिगधोष्णोपशयानिप्रवाहिकाध्मान-
नशिश्रवृषणवस्तिवह्वणहृद्गहाङ्गमर्दहृदयप्रवलानिप्रततविवद्ध-
वातमूत्रवर्चासिकठिनवर्चास्यूरुकटीपृष्ठत्रिकपार्श्वकुक्षिवस्तिशूल-
शिरोऽभितापक्षवधूद्धारप्रतिश्यायकासोदावर्त्तयासशोपशोथमू-
र्च्छारोचकमुखवैरस्यतैमिर्यकण्डूनासाकर्णशंखशूलस्वरोपघातक-
राणिश्यावारुणपरुपनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीपस्यवातोत्वणा-
निअर्शासीतिविद्यात् ॥ ११ ॥

उनमें वातादिभेदसे यह विशेषता (फर्क) होतीहै । वातोत्वणअर्शके मस्ते सूखे, कुम्हलाये दुप, कठिन, सरदरे, रूखे, श्यामवर्ण, धागेसे नोकीले, टेटे, फटेदुप मुख-
वाले, विषमतासे फैलेदुप शूलयुक्त, तथा आक्षेप, तोद, स्फुरण (फडकना) और चिमचिमाहटयुक्त हों इनमें रोमाधहोताहै यह स्निग्ध और उष्ण क्रिया द्वारा शान्त

होते हैं यह वातार्शके मस्सोंके लक्षण हैं । वातार्शमें-प्रवाहिका, अफारा, तथा शिश्रेन्द्रिय फोटे और वंक्षणमें पीडा, हृदयमें शूल, अंगडाई, हृदयद्रव (होल) की प्रबलता, निरंतर वात मूत्र और मलका विबंध, मल कठिनतासे उतरे तथा ऊरु कमर पीठ त्रिकस्थान पार्श्वकुक्षि और वस्तिमें पीडा होय । शिरोवेदना, छींक, डकार, प्रतिश्याय, खांसी उदावर्त, श्रम, शोष, सूजन, मूर्छा, अरोचक, विरसता, अंधकार, खुजली, नाक, कान और कनपटियोंमें पीडा, स्वरभंग, तथा नख, नेत्र, मुख, त्वचा मूत्र और मल काले और लाल वर्णके होना तथा कठोर होना यह वायुकी अर्श (ववासीर) के लक्षण जानना ॥ ११ ॥

वातार्शके कारण ।

भवतश्चात्र ।

कपायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच । प्रमिताल्पाशनंतीक्ष्णंम-
द्यमैथुनसेवनम् ॥ १२ ॥ लङ्घनंदेशकालौचशीतौव्यायामकर्मच ।
तीक्ष्णोवातातपस्पर्शोहेतुर्वातार्शसामिति ॥ १३ ॥

यहां कहते हैं कि कपैले, कडुवे, चपरे, रुखे, शीतल, और लघु पदार्थोंका अधिक सेवन करना । अल्पभोजन तीक्ष्ण मद्य तथा मैथुनका अधिक सेवन शीत काल, शीत देश, अधिक व्यायाम, तीक्ष्णवायुका स्पर्श, यह सब वातार्श होनेके हेतु हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

पित्तार्शका स्वरूप ।

तत्रयानिमृदुशिथिलसुकुमाराणिअस्पर्शासहानिरक्तपीतनीलकृ-
ष्णानिस्वेदोपक्लेदबहुलानिविस्त्रगन्धीनितनुपीतरक्तस्त्रावीणिदाह-
कण्डूशूलनिस्तोदपाकवन्तिशिशिरोपशयानिसंभिन्नपीतहरितव-
र्चांसिपीतविस्त्रगन्धप्रचुरविषमूत्राणिपिपासाज्वरतमकसंमोहभो-
जनद्वेषकराणिपीतनखनयनत्वङ्मूत्रपुरीपस्यपित्तोल्बणानिअर्शा-
सीतिविद्यात् ॥ १४ ॥

जिस ववासीरके मस्से नम्र, शिथिल, सुकुमार, स्पर्श न सहनेवाले, पीले, नीले, लाल, और काले वर्णके हों, जिनमें स्वेद और क्लेदकी अधिकता हो, दुर्गन्धयुक्त पतला पीलेरंगका रुधिर स्रवताहो, सब मस्सोंमेंसे रुधिरका स्राव हो, उनमें दाह, खाज, शूल, तोद और पाक हो, और जिनमें ग्रीतल द्रव्योंको सेवनसे शान्ति मतीतहो एवं पीले और हरे वर्णका मल उतरताहो तथा दुर्गन्धयुक्त हलदीके समान

मल मूत्र पीले वर्णके हैं और प्पास, ज्वर, तमकश्वास, मोह और अन्नसे द्वेष हो । नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मल मूत्र यह सब पीतवर्णके हैं ये लक्षणे पित्तोत्त्वण अर्शके जानने ॥ १४ ॥

पित्तार्शके हेतु ।

भवतश्चात्र ।

कट्फललवणक्षारव्यायामाग्न्यातपप्रभाः । देशकालावशिशिरौ
क्रोधोमद्यमसूयनम् ॥ १५ ॥ विदाहितीक्ष्णमुष्णञ्चसर्वपानान्नभे-
पजम् । पित्तोत्त्वणानांविज्ञेयःप्रकोपहेतुरर्शसाम् ॥ १६ ॥

यहां कहा है कि चरपरे, खट्टे, नमकीन और खारे पदार्थोंके सेवनसे, अधिक कसरत करना, अधिक धूपका सहना, गर्मदेश, उष्ण काल, क्रोध, मद्यपान, ईर्ष्या और सर्व प्रकारके दाहकर्ता, तीक्ष्ण, उष्ण अन्नपान और औषधका सेवन यह सब पित्तोत्त्वण अर्शके प्रकोप होनेके हेतु कहें ॥ १५ ॥ १६ ॥

कफोत्त्वण अर्शका स्वरूप ।

तत्रयानिप्रमाणवन्तिउपचितानिश्लक्ष्णानिस्पर्शसहानिश्चेतपाण्डु-
पिच्छिलानिस्तब्धानिगुरुणिस्तिमितानिसुप्तसुप्तानिस्थिरश्चयथू-
निकण्डूवहुलानिप्रततपिञ्जरश्चेतरक्तपिच्छास्त्रावीणिगुरुपिच्छिल-
श्चेतमूत्रपुरीपाणिरूक्षोष्णोपशयानिप्रवाहिकातिमात्रोत्थानवंक्ष-
णानाहवन्तिपरिकर्तिकाहृल्लासनिष्ठीविकाकासारोचकप्रतिश्या-
यगौरवच्छर्दिमूत्रकृच्छ्रशोपशोथपाण्डुरोगशीतज्वराश्मरीशर्कराहृ-
दयेन्द्रियास्योपलेपास्थमाधुर्यप्रमेहकराणिदीर्घकालानुपशयानि
अतिमात्रमग्निमार्दवहृद्यकराणिआमचिकरप्रयत्नानिपुरुष्णिचशु-
क्लनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीपस्यश्लेष्मोत्त्वणानिअशांतीतिवि-
द्यात् ॥ १७ ॥

जित अर्शके मस्ते प्रमाणशाली, पुष्ट, चिकने, सुडौल, स्पर्शके सहनेवाले, सफेद, पीले, पिच्छिल, स्तब्ध, भारी, गीले, अत्यंत मुत्र, स्थिर, मूजन और राजयुक्त हैं, जिनमें, निरन्तर पीला, सफेद, लास, गाढा और पिच्छिल मात्र होनाहो और मूत्र, मल, गाढे और सफेद हैं, तथा उष्णद्रव्योंके सेवनसे शान्ति प्रतीत होतीहो एवं प्रवाहिका वंक्षणोंमें श्फकारा, कतरनेकीमी पीडा, हृत्पास, वाग्जार थ्रकना,

खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय, गौरवता, मूत्रकृच्छ्र, छर्दी, शोष, मूजन, पाण्डुरोग, शीतज्वर, अश्मरी, शर्करा, हृदय, इन्द्रिय और मुखका कफसे लिपासा होना, मुखमें मीठापन, प्रमेहरोग होना, अर्शका बहुत समय तक बने रहना, अत्यंत मंदाग्नि, क्लीबता, आमविकार, इन प्रबल उपद्रवोंका होना एवं नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका श्वेतवर्ण होना यह सब कफकी बवासीरके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

कफार्शके हेतु ।

भवन्तिचात्र ।

मधुरस्निग्धशीतानिलवणाम्लगुरुणिच । अव्यायामदिवास्वप्न-
शय्यासनसुखेरतिः ॥ १८ ॥ प्राग्वातसेवाशीतौचदेशकालावचि-
न्तनम् । श्लेष्मिकाणांसमुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ १९ ॥

मांठे, चिकने, शीतल, नमकीन, खट्टे और भारी द्रव्योंका अधिक सेवन, व्यायाम न करना, दिनमें सोना, अधिक सोना, आरामसे बैठे रहना, पूर्वकी पवनका सेवन करना, शीतल देश, शीतकाल, किसी प्रकारकी भी चिन्ता न होना यह कफकी बवासीरके कारण हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याह्वन्द्वोल्वणानिच ।

सर्वोहेतुस्त्रिदोषाणांसहजैर्लक्षणैःसमम् ॥ २० ॥

दो दोषोंके हेतु और लक्षणोंके मिलनेसे द्विदोषज अर्श जानना । तन्निपातके अर्शमें तीनों दोषोंके हेतु और लक्षण होतेहैं यह अर्श सहज बर्गके समान होतीहै ॥ २० ॥

अर्शके पूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्यदौर्वल्यंकुक्षेराटोपएवच । कार्श्यमुद्गारवाहुल्यंसक्-
थिसादोऽल्पविट्कता ॥ २१ ॥ ग्रहणीदोषपाण्ड्वार्तिराशङ्काचोद्-
रस्यच । पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ २२ ॥

अन्नका विष्टम्भके साथ परिपाक होना, दुर्बलता, कूखमें अफारासा होना, कृशता, अधिक डकार आना, दोनों जांघोंका रहसा जाना, मलका थोडा २ उतरना, ग्रहणी-दोष, पाण्डुरोग, उदरपीडा बारवार मलत्यागकी शंका होना, यह सब अर्श (बवासीर) के पूर्वरूप कहे हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

सब अर्शोंको त्रिदोषत्वं ।

अर्शासिखलुजायन्तेनासन्निपतितैस्त्रिभिः ।

दोषेदोषविशेषात्तुविशेषःकल्प्यतेऽर्शसाम् ॥ २३ ॥

सब प्रकारके अर्शरोगोंमें तीनों दोषोंका सम्बन्ध होताहै । विना तीनों दोषोंके कोषके अर्शरोग होता ही नहीं, परन्तु इनमें जो दोष प्रबल होताहै उसीके नामसे अर्शकी कल्पना की जातीहै ॥ २३ ॥

अर्शकी कृच्छता ।

पञ्चात्मामारुतःपित्तं कफो गुदवलित्रयम् । सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजा-
नांसमुद्भवे ॥ २४ ॥ तस्मादर्शासिदुःखानिवहुव्याधिकराणि च ।

सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ २५ ॥

अर्शरोगके प्रकट होनेसे प्राणवायु आदिक पांचों वायु पित्त और कफ तथा गुदाकी तीनों वलियें एकसाथ दूषित होजातीहैं इसीलिये बहुतसी व्याधियोंको करनेवाला और संपूर्ण देहको उपतापित (कष्ट) करनेवाला यह अर्शरोग कष्टसाध्य होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

असाध्य अर्शके लक्षण ।

हस्तेपादेगुदेनाभ्यांमुखेवृषणयोस्तथा । शोथोद्धृत्पाश्र्वशूलश्चयस्या-
साध्योऽर्शसोहिसः ॥ २६ ॥ हृत्पाश्र्वशूलसंमोहश्छर्दिरङ्गस्यरुग्ज्वरः ।
तृष्णागुदस्यपाकश्चनिहन्युर्गुदजातुरम् ॥ २७ ॥

जिस अर्शरोगमें हाथ, पांव, गुदा, नाभि, मुख और अण्डकोशोंमें सूजन प्रकट होजाय, हृदय, और पसलीमें शूल हो, वमन, संमोह, अंगांमें पीडा, ज्वर, तृषा, गुदाके अग्रभागका पकना यह लक्षण हों वह अर्शरोगीको मारडालताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

सहजानि त्रिदोषाणियानि चाभ्यंतरां वलिम् । जायन्तेऽर्शासिसं-
श्रित्यतान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥ २८ ॥ शेषत्वादायुपस्तानि चतुष्पा-
दसमन्विते । याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयोऽन्यतोऽन्यथा ॥ २९ ॥
द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौयान्याश्रितानि च । कृच्छ्रसाध्यानि ता-
न्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ३० ॥

एवं जो सहज अर्श त्रिदोषसे कुपित होकर गुदाकी भीतरकी वलीमें आश्रित होजातीहै, वह भी असाध्य है. यदि मनुष्यकी आयु शेष हों और चिकित्साके चारो पाद सर्वगुण सम्पन्न हों तथा जन्मदिन यत्नवान हो तो उपरोक्त रोगी याप्य साध्य होताहै । नहीं तो असाध्य जानना. यदि द्वन्द्वज अर्श गुदाकी दूसरी वलीके आश्रित हो अथवा एक वरससे अधिकका हो वह सब अर्श कष्टसाध्य जानना ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

साध्यार्श ।

वाह्यायान्तुवलौजातान्येकदोषोत्वगानिच । अर्शासिसुखसाध्या-
निनचिरोत्पतितानिच ॥३१॥ तेषांप्रशमनेयत्नमाशुकुर्घ्याद्विचक्ष-
णः । तान्याशुहिगुदंवद्धाकुर्घुर्द्वद्भगुदोदरम् ॥ ३२ ॥

जिस अर्शके मस्से गुदाकी बाहरवाली बलीमें हों तथा एकदोषकी प्रबलतासे उत्पन्न हुए हों और १ वर्षसे भीतरके हों वह सुखसाध्य जानने उनके शान्त करनेके लिये चतुर वैद्य शीघ्र ही यत्न करे । अर्शरोगकी चिकित्सामें विलंब करनेसे अर्श गुदाके मार्गको रोककर बद्धगुदोदर रोगको प्रकट कर देतेहैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शस्त्रादि कर्म ।

तत्राहुरेकेशस्त्रेणकर्त्तनंहितमर्शसाम् । दाहंक्षारेणचाप्येकेदाहमे-
केतथाग्निना ॥ ३३ ॥ अस्त्येतद्भूरितन्त्रेणधीमतादृष्टकर्मणा ।
क्रियतेत्रिविधं कर्मभ्रंशस्तस्यसुदारुणः ॥ ३४ ॥ पुंस्तोपघातःश्व-
यथुर्गुदेवेगविनिग्रहः । आधमानंदारुणंशूलं व्यथारक्तातिवर्त्तनम् ॥
॥ ३५ ॥ पुनर्विरोहोरूढानांक्लेदोभ्रंशोगुदस्यच । मरणंवाभवे-
च्छीघ्रंशस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् ॥ ३६ ॥

कोई कहतेहैं कि अर्शरोगके मस्सोंको शस्त्रसे काटकर निकाल देना हित है । किसीके मतमें क्षारकर्म अथवा अग्निकर्मसे दग्ध करदेना ही श्रेष्ठ मानाहै । सो शास्त्रके जाननेवाले दृष्टकर्मा (क्रियाकुशल) बुद्धिमान् वैद्यको ही समयानुसार इन तीनों उपायोंमेंसे जिस समय जो उचित हो सो करनान्वाहिये । इनमें किसी प्रकारका क्रमभ्रंश होनेसे भयंकर उपद्रव होजातेहैं । इसलिये यह कर्म सिद्धहस्त वैद्यके ही करनेके हैं । शस्त्र, क्षार और अग्निकर्म इनमें किसी प्रकारका विभ्रम होनेसे नपुंसकता, गुदामें, मूत्रन, मलमूत्रादिवेगोंका विघात, अफारा, दारुण शूल, पीडा, रुधिरकी प्रवृत्ति, मस्सोंका फिर प्रकट होजाना, क्लेद, गुदाका निकलना, अथवा विगड जाना तथा मृत्यु यह घोर उपद्रव शीघ्र होजातेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

यत्तु कर्मसुखोपायमल्पभ्रंशमदारुणम् ।

तदर्शासांप्रवक्ष्यामिसमूलानानिवृत्तये ॥ ३७ ॥

अब हम अर्शरोगकी समूल निवृत्तिके लिये उन सुरतमाध्य उपायोंका कथन करतेहैं जिनमें किसी प्रकारकी कठिनता और कर्मभ्रंश होनेके दारुण उपद्रवोंका भय नहीं है ॥ ३७ ॥

वातश्लेष्मोत्वणान्याहुःशुष्काण्यर्शासितद्विदः ।

प्रस्त्रावीणितथार्द्राणिरक्तपित्तोत्वणानिच ॥ ३८ ॥

अर्शके ज्ञाता वैद्यजन वात और कफप्रधान अर्शको सूखी अर्श कहतेहैं । और रक्तपित्त प्रधान अर्शको स्राव तथा गीली अर्श कहतेहैं ॥ ३८ ॥

तत्रशुष्कार्शासांपूर्वप्रवक्ष्यामिचिकित्सितम् । स्तब्धानिस्वेदयेत्पूर्वं शोफशूलान्वितानिच ॥ ३९ ॥ चित्रकक्षारविल्वानांतैलनाभ्यज्य बुद्धिमान् । यवमापपुलाकानांकुलत्थानाञ्चपोटलैः ॥ ४० ॥ गो-खराश्वशकृत्पिण्डैस्तिलकल्कैस्तुपैरपि । वचाशताह्वापिण्डैर्वासुखो-ष्णैः स्नेहसंयुतैः ॥ ४१ ॥ सत्तूनांपिण्डिकाभिर्वास्निग्धानांतैलस-र्पिणा । शुष्कमूलकपिण्डैर्वापिण्डैर्वाकार्णागन्धिकैः ॥ ४२ ॥ रा-स्त्रापिण्डैःसुखोष्णैर्वासस्नेहैर्हपुपैरपि । इष्टकस्यखराह्वायाःशार्कैर्गृ-जनकस्यच । अभ्यज्यकुष्ठतैलेनस्वेदयेत्पोटलीकृतैः ॥ ४३ ॥

अब हम प्रथम सूखी अर्शकी चिकित्साका कथन करतेहैं । जो अर्श (ववासीर) स्तब्ध, सूजन और पीडायुक्त हो उसमें चित्रक, जवाखार, और बेलके फलोंका तेल लगाकर फिर नीचे लिखे द्रव्योंके प्रयोगसे स्वेदन करे । जैसे—जो, उडद, पुलाकधान्य और कुल्या इनको पकाकर पोटलीमें बांध इस पोटलीसे उन मस्तोंको धीरे २ स्वेदन करे । अथवा गौका गोवर, गधे और घोडेकी लीदका गीलागीला गोला बनाकर उस गोलेको कपडेमें लपेट गर्मकर उससे मस्तोंको स्वेदन करे । अथवा तिलोंका कल्क और तुपोंसे अथवा वच और सौंफको पीसकर क्षेद्युक्त कर सुरोष्ण स्वेदन करे । या घृत और तैलके योगसे चिकने किये सत्तूओंकी पिंडीसे स्वेदन करे । अथवा मूखी मूलीके पिंडसे या सुहांजनेके कल्कसे वा सुखोष्ण रातनाके पिंडसे अथवा स्नेद्युक्त द्वाउबेरके पिंडसे स्वेदन करे । अथवा कूठका तेल चोपडकर ईट, खुरासानी अजवायन अथवा अंजमोद और सलजमके सागकी पोटली बनाकर स्वेदन करे ॥ ३९-४३ ॥

वृषार्कैरपण्डविल्वानांपत्रोत्काथैश्चसेचयेत् ॥४४॥ मूलकत्रिफलाकार्णा-णांवेणूनांवरुणस्यच । अग्निमन्थस्यशिग्रोश्चपत्राण्यदमन्तकस्यच ॥ ४५ ॥ जलेनोत्पवाथ्यशूलात्तस्वभ्यक्तमवगाहयेत् । कौलोत्पवा-थेऽधवाकोष्णेसौवीरकतुपोदके ॥ ४६ ॥ विल्वोत्पवाथेथवातके

दधिमण्डालमकाञ्जिके । गोमूत्रेवासुखोष्णेतंशूलार्त्तमुपवेशयेत् ॥
॥ ४७ ॥ कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजतुकावृषदंशजाम् । वसामभ्यञ्जनं
कुर्याद्धूपनंआर्शासांहितम् ॥ ४८ ॥

यदि अर्शके मस्तोंमें अधिक शूल होताहो तो अड्डसा, आक, एरंड और बेलके पत्तोंके कायसे मस्तोंको सेचन करे । अथवा शूलसे पीडित अर्शवालेके मस्तोंपर तैल लगाकर मूली, त्रिफला, आक, वांस, वर्ना, अरणी, सुहांजना और अश्मंतकका काय बनाकर उस कायमें रोगीको विठावे अथवा बेरके कायमें या सौवीरक अथवा तुपोदक या बेलका काय अथवा छाछ या खट्टी कांजी अथवा किंचित् गर्म गोमूत्रमें विठावे, या इन्नु कायोंका अर्शपर तरडा देवे । काला सांप, बराह, ऊंट, चमगीदड अथवा बिल्लीकी चरवीको लेकर बवासीरके मस्तोंपर मालिश करे ॥ ४४-४८ ॥

अर्शपर धूनी ।

नृकेशाःसर्पनिर्मोकोवृषदंशस्यचर्मच ।

अर्कमूलंशमीपत्रमर्शोभ्योद्धूपनंहितम् ॥ ४९ ॥

मनुष्यके केश, सर्पकी कांचुली, बिल्लीका चमडा, आककी जड और शमीवृक्षके पत्रोंको कूटकर आग पर डाल बवासीरके मस्तोंको धूनी देना हितकारक है ॥ ४९ ॥

तुम्बुरुणिविडङ्गानिदेवदार्वक्षताघृतम् । बृहतीचाश्वगन्धांचपिप्प-
ल्यःसुरसाघृतम् । वराहवृषविट्चैवधूपनंसक्तवोघृतम् ॥ ५० ॥

धनियां, वायविडंग, देवदारु, सफेद सरसों, धी, अथवा बडी कटेरी असंगंध, शीपल, सुरसा, तुलसी और घृतकी धूनी या बराहकी विष्टा, बेलके गोवर, सतू और धीकी धूनी देना अर्शरोगमें हितकारी है ॥ ५० ॥

अर्शपर लेप ।

कुञ्जरस्यपुरीपन्तुघृतंसर्जरसोरसः ॥ ५१ ॥ हरिद्राचूर्णसंयुक्तं सु-
धाक्षीरंप्रलेपनम् । गोपित्तपिष्टाःपिप्पल्यःसहरिद्राःप्रलेपनम् ॥ ५२ ॥
शिरीषत्रीजंकुष्ठञ्चपिप्पल्यःसैन्धवंगुडः । अर्कक्षीरंसुधाक्षीरंत्रिफ-
लाचप्रलेपनम् ॥ ५३ ॥ पिप्पल्यश्चित्रकाःश्यामाःकिण्वंमदनत-
ण्डुलाः । प्रलेपःकुक्कुटशकृद्धरिद्रागुडसंयुतः ॥ ५४ ॥ निकुम्भःसा-
मृतासङ्गःपारावतशकृद्गुडः । प्रलेपःश्याद्रजास्थीनिनिम्बोमहा-
तकानिच ॥ ५५ ॥

हाथीकी लीद, घी, राल, शिलारस, हल्दीका चूर्ण और थोहरके दूधको रगडकर ववासीरके मस्तोंपर लेप करनेसे मस्ते दूर होतेहैं। अथवा पीपल और हल्दीको गोपित्तमें मिलाकर लेप करे। अथवा सिरसके बीज, कूट, पीपल, सेंधानमक, गुड, आकका दूध, थोहरका दूध और त्रिफला इन सबको मिलाकर लेपकरे या पीपल, चित्रक, सारिवाकी जड, सुराबीज, भैरफल, विडंग चावल, मुर्गकी बीट, हल्दी और गुड इन सबको मिलाकर लेपकरे। अथवा जमालगोटेकी जड मुर्दाशंख (या नीला थोथा) कन्नूरकी बीट, गुड, हाथीदांतका चूर्ण, नीमके बीज और भेलावे इन सबको पीसकर अर्शके मस्तोंपर लेपकरे ॥ ५१-५५ ॥

प्रलेपः स्यादलकैणवासन्तकवसायुतः । शूलश्वयथुहृद्रोगेषूल्-
कीवसयाथवा ॥ ५६ ॥ आर्कपद्मःसुधाकाण्डंकटुकालाद्युपल्लवाः ।
करञ्जोवस्तमूत्रञ्चलेपनंश्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ५७ ॥

यदि अर्शरोगमें शूल, सूजन और हृदयरोग हो तो ऊंटकी चर्बी, सफेद आकका दूध और उल्लूकी चर्बी मिलाकर लेपकरे। अथवा आकका दूध, थोहरका टुकड़ा, कडुवे तुंबेके पत्ते, करंजुएके बीज इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर लेपकरना अर्शरोगमें हित है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अभ्यङ्गाद्याःप्रदेहान्तायएतेपरिकीर्तिताः । स्तम्भश्वयथुकण्ड्वर्ति-
शमनास्तेऽर्शसामताः ॥ ५८ ॥ प्रदेहान्तेरुपक्रान्तान्यर्शांसिप्रस्रव-
न्तिहि । सञ्चितं दुष्टरुधिरं ततःसम्पद्यतेसुखम् ॥ ५९ ॥ शीतोष्ण-
स्निग्धरूक्षैर्हिनव्याधिरुपशाम्यति । रक्तेदुष्टेभिपकृतस्माद्रक्तमै-
वावसेचयेत् ॥ ६० ॥ जलौकोभिस्तयाशस्त्रैःसूचीभिर्वापुनःपुनः ।
अवर्त्तमानंरुधिरंरक्ताशौभ्यःप्रवाहयेत् ॥ ६१ ॥

अभ्यंगसे लेकर प्रदेह पर्यन्त जो प्रयोग कहे गयेहैं वह अर्शरोगकी स्तम्भका सूजन, खुजली और पीडाको शान्त करतेहैं। इन उपायोंके करनेसे अर्शका संचित हुआ दुष्ट रुधिर निकलकर मस्ते बैठजातेहैं उससे शरीरको सुख प्राप्त होताहै। यदि दुष्ट रुधिर न निकले तो शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष उपचारोंके करनेसे अर्शरोग शान्त नहीं होता इसलिये दुष्ट रुधिरको निकालदेना ही चाहिये। यदि दुष्ट रुधिरका स्राव न हो और वह रुधिर विद्यमान रहकर खुजली आदि उपद्रव करताहो तो जोक अथवा शस्त्र या सुई आदिसे उस रुधिरको पार चार निकालता रहे ॥ ५८-६१ ॥

गुदश्रयथुशूलात्तमन्दाग्निपाययेत्तुतम् । श्यूपणंपिप्पलीमूलंपाठां-
हिङ्गुसचित्रकम् ॥ ६२ ॥ सौवर्चलंपुष्करारव्यमजार्जीविल्वपेपि-
काम् । विडंयमानीहपुषांविडङ्गसैन्धवंवचाम् ॥ ६३ ॥ तिन्तिडीक-
श्चमण्डेनमध्येनोष्णोदकेनच । तथार्शोग्रहणीदोषशूलानाहाद्विसु-
च्यते ॥ ६४ ॥

यदि गुदामें सूजन और शूल तथा मंदाग्नि यह उपद्रव हों तो उस अर्शरोगीको नीचे लिखे द्रव्योंका पान करावे । सोंठ, भिरच, पीपल, पिप्पलामूल, पाठ, हींग, चीता, संबरनमक, कूठ, काला जीरा, बिलगिरि, विडलवण, अजवायन, हाउवेर, वायविडंग, सेंधानमक, वच, इमली इन सबको सुरामण्ड तथा गर्मजलके साथ पिलावे तो अर्शोग्र, ग्रहणीविकार, शूल और अफारा यह सब दूर होतेहैं ॥ ६२-६४ ॥

कुड्याद्वापाचनंतस्ययदुक्तं ह्यातिसारिके । सगुडामभयांवाथप्राश-
येत्पौर्वभक्तिकीम् ॥ ६५ ॥ पाययेत्त्रिवृच्चूर्णंत्रिफलायारसेनवा ।
हृतेगुदाश्रयेदोषेगच्छन्त्यर्शांसिसंक्षयम् ॥ ६६ ॥

अतिसार रोगमें, जिन पाचनयोगोंका वर्णन कियाहै उनका सेवन करना अथवा हरडे, और गुड मिलाकर भोजनसे पहिले सेवन करना या त्रिफलाके रसमें निशोथके चूर्णको मिलाकर पीनेसे गुदाश्रित दोष दूर होकर अर्शरोगभी नष्ट होजाताहै ६५, ६६

गोमूत्राध्युपितांदद्यात्सगुडांवाहरीतकीम् । हरीतकींतक्रयुतांत्रि-
फलांवाप्रयोजयेत् ॥ ६७ ॥ सनागरंचित्रकंवाशीधुयुक्तंप्रयोजयेत् ।
चव्यंवासीधुसंयुक्तमजार्जीदीप्यकंपिवेत् ॥ ६८ ॥ सुरांवाहपुषां
पाठांयुक्तांसौर्चलायुताम् । दधित्थविल्वसंयुक्तं तथावाचव्यचित्र-
कौ ॥ ६९ ॥ भस्त्रातकयुतंवाथप्रदद्यात्तत्रतर्पणम् । विल्वनागरयु-
क्तंवायमान्याचित्रकेणवा ॥ ७० ॥ चित्रकंहपुषांहिंगुंदद्याद्वातक्र-
संयुतम् । पञ्चकोलयुतंवापितक्रमस्मैप्रदापयेत् ॥ ७१ ॥

अथवा हरडेको गोमूत्रमें रात्रिके समय भिगोपदे दूसरे दिन गुडके साथ मिलाकर सेवन करे । अथवा छाछके साथ हरडे, या छाछयुक्त त्रिफलेका सेवन करावे । अथवा सोंठ और चित्रकके चूर्णको शीधुमद्यके साथ सेवन करे । अथवा शीधुके साथ चव्यका चूर्ण वा शीधुके साथ काला जीरा और अजवायनका चूर्ण पिये ।

अथवा सुराके साथ हृषुपाचूर्ण या संचरनिमक मिलाकर पाठेका चूर्ण पीवे । अथवा कैथ और बेलगिरिका क्वाथ वा चव्य और चित्रकका क्वाथ पीवे । अथवा सुधे भिलावोंको तर्पणके साथ पीवे । अथवा बेलगिरि और सोंठ वा अजवायन और चित्रक वा चित्रक, हृषुपा और हींगको छाछमें मिलाकर देवे । अथवा छाछके साथ पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ देवे ॥ ६७-७१ ॥

तक्रारिष्ट ।

हृषुपांकुश्रिकांधान्यमजार्जीकारवींशटीम् । पिप्पलीपिप्पलीमूलं चित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ॥ ७२ ॥ यमानीञ्चाजमोदाञ्चचूर्णितं तक्रसंयुतम् । मन्दाम्लकटुकं विद्वान्स्थापयेद्दृतभाजने ॥ ७३ ॥ व्यक्ताम्लकटुकं जातं तक्रारिष्टं मुखप्रियम् । प्रपिवेन्मात्रया कालेष्वन्नस्य तृपितस्त्रिषु ॥ ७४ ॥ दीपनं रोचनं वर्ण्यकफवातानुलोमनम् । गुदश्वयथुकण्ठार्तिनाशनं बलवर्द्धनम् ॥ ७५ ॥

हाउवेर, सूक्ष्म जीरा (कलौंजी), धनियां, काला जीरा, सोंफ, कचूर, पीपल, पिप्लामूल, चीता, गजपीपल, अजवायन और अजमोद, इन सबको बराबर लेकर चूर्णकर तक्रमें मिलादेवे । यह सब मिलाकर स्वादमें किंचित् खट्टा और चरपरा होजायगा । फिर इसको घीके चिकने पात्रमें भरकर रख देवे । जब देखे कि यह बहुत खट्टा और चरपरे स्वादका बनगया और खानेमें मुखको प्यारा लगने लगा तो इस तक्रारिष्टको भोजनके समय जब जब प्यास लगे इसको मात्राके अनुसार पीया करे । क्रमसे भोजनके आदि मध्य तथा अन्तमें पीवे । यह दीपन, पाचन, रुचिकारक, वर्णकरता, कफ और वायुको अनुलोमन करनेवाला, गुदाकी सूजन, खुजली और पीडाको दूर करनेवाला तथा बलको बढ़ानेवाला है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

तक्रप्रयोग ।

त्वचंचित्रकमूलस्यपिष्ठाकुम्भंप्रलेपयेत् । तक्रं वादधिवातत्रजातमशौहरंपिवेत् ॥ ७६ ॥ वातश्लेष्माशंसान्तक्रात्परं नास्तीह भेषजम् । तत्प्रयोज्यं यथादोषं सस्त्रेहं रूक्षमेव वा ॥ ७७ ॥ सप्ताहं वा दशाहं वा पक्षमासमथापि वा । बलकालविशेषज्ञो भिषक्तक्रंप्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥ अत्यर्थमृदुकायाम्नेस्तक्रमेवावचारयेत् । सायंवालाजसकृनां दद्यात्तक्रावलेहिकाम् ॥ ७९ ॥ जीर्णतक्रे प्रदद्यात्तक्रं पेयां

ससैन्धवाम् ॥ ८० ॥ तक्रानुपानंसस्त्रेहंतक्रौदनमतःपरम् । यूपैर्मांसरसैर्वापिभोजयेत्तक्रसंयुतैः ॥ ८१ ॥

चित्रककी जड़की छालको पीसकर घड़ेके भीतर लेपकर देवे । उस घड़ेमें बनाया हुआ दही अथवा तक्र पीनेसे अशरोग दूर होताहै, वायु और कफसे उत्पन्न हुए अशरोगमें तक्रसे बढकर और कोई औषध नहीं है । इसलिये तक्र (छलबलापाहुआ दही) दोपानुसार त्रिगुण अथवा रूक्ष भोजनके साथ सेवन करावै । दोपोंका बल और कालको विचारकर दैद्य तक्रको मात दिन अथवा दश दिन या पंद्रह दिन वा एक महीने तक सेवन करावै । जिस अशरोगीकी जठराग्नि मंद होगई हो उसकी तक्रद्वारा ही चिकित्सा करनी चाहिये । अथवा सायंकाल खीलोके सत्तू, तक्रमें मिलाकर चटावै । तक्रके जीर्ण होनेपर तक्र (बिना मक्खन निकाली छाछ) में सेधानमक मिला पिलावे । पानीकी जगह भी तक्रका ही अनुपान करावै । और घृतयुक्त चांवलोंको भी तक्रके ही साथ खिलवे । अथवा तक्रमें ही सिद्ध किया यूप अथवा मांसरसके साथ तक्रमें बनाया अन्न प्रयुक्त करे ॥७६-८१॥

कालक्रमज्ञःसहसानचतक्रंनिवारयेत् । तक्रप्रयोगान्मासान्तेक्रमेणोपशमोमतः ॥ ८२ ॥ अपकर्षोयथोत्कर्षोन्तवन्नादपकृष्यते । शक्त्यागमनरक्षार्थदाढ्यार्थमनलस्यच । बलोपचयवर्णार्थमेपनिर्दिश्यतेक्रमः ॥ ८३ ॥

कालक्रमको जाननेवाला वैद्य तक्रके प्रयोगको एकदम ही न छोडादेवे । किंतु जो तक्र १ महीना सेवन कियागया हो उसका क्रमपूर्वक एक महीनेमें ही त्याग करावै । जिसप्रकार १ महीनेमें क्रमक्रमसे तक्रका प्रयोग बढाया गया हो उसी क्रमसे दूसरे महीनेमें घटाना चाहिये । उसका यह क्रम है कि प्रथम महीनेमें अन्नका परिमाण क्रमसे घटाता जाय और तक्रका बढाता जाय । और दूसरे महीनेमें तक्रका परिणाम घटाताजाय और अन्नका बढाताजाय । इस प्रकार शरीरकी रक्षाके लिये और अग्निकी दृढताके लिये तथा बल पुष्टि और वर्णकी वृद्धिके लिये यह क्रम कहागयाहै इस प्रकार तक्रके सेवन करनेसे अशरोग निवृत्त होकर फिर कभी नहीं होता ॥८२॥८३॥

रूक्षमर्द्धोद्धृतस्त्रेहंयतश्चानुद्धृतंघृतम् ॥ ८४ ॥ तक्रंदोपाग्निबलवित्त्रिविधंतत्प्रयोजयेत् । हतानिनविरोहन्तितक्रेणगुदजानितु ॥ ८५ ॥ भूमावपिनिपिकंतद्देहत्तक्रंतृणोलुपम् । किंपुनर्दांतकायाग्नेःशुष्काण्यर्शांसिदेहिनः ॥ ८६ ॥ स्रोतःसुतक्रशुद्धेपुरसःस-

म्यगुपैतियः । तेनंपुष्टिर्वलंवर्णःप्रहर्षश्चोपजायते ॥ ८७ ॥ वात-
श्लेष्मविकाराणांशतश्चापिनिवर्त्तते । नास्ति तत्क्रात्परंकिञ्चिदौषधं
कफवातजे ॥ ८८ ॥

दोष, अग्नि धीर बलको जाननेवाला वैद्य तीन प्रकारसे तक्रका प्रयोग करे ।
जैसे-१ रूक्षतक्र (घृतरहित छाछ) यह कफप्रधान अर्शमें प्रयुक्त किया जाताहै ।
२ अर्धोद्घृतस्नेहतक्र (जिसमेंसे आधा मक्खन निकाला गया हो) यह समवातकफके
अर्शमें प्रयुक्त कियाजाताहै । ३ अनुद्धृतस्नेहतक्र (जिसमेंसे मक्खन विल्कुल न
निकाला हो) यह वातप्रधान अर्शमें प्रयुक्त करना चाहिये । तक्रसेवनसे नष्टहुआ
अर्शरोग फिर कभी प्रकट नहीं होता । तक्रको पृथ्वीमें कांटा, कुशा आदिकी जड़ोंमें
ढालनेसे वह जड़ें भी नष्ट होजातीहैं । फिर यदि दीप्ताग्नि मनुष्यका शुष्क अर्शरोग
जातारहे, तो क्या आश्चर्य है । तक्रके सेवनसे शरीरके छिद्र शुद्ध होकर संपूर्ण
शरीरमें रस उत्तम रीतिसे प्रवाहित होताहै । उससे पुष्टि, बल, वर्ण और हर्ष उत्पन्न
होताहै । और उससे वातकफके सैकड़ों रोग नष्ट होतेहैं । कफवातप्रधान रोगोंमें तक्रसे
बदकर कोई औषधि नहीं है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अर्शहर पेया ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् । शृङ्गवेरमजाजी-
श्चकारवीधान्यतुम्बुरुम् ॥ ८९ ॥ विल्वंकर्कटकंपाटांपिष्ट्वापेयांवि-
पाचयेत् । फलाम्लायमकलेहांतांदद्याद्गुदजापहाम् ॥ ९० ॥
एतैश्चैवखडंकुर्यादेतैश्चैवपचेज्जलम् । एतैश्चैवघृतंसाध्यमर्शसांवि-
निवृत्तये ॥ ९१ ॥

पीपल, पिपलामूल, चित्रक, मज्जीपल, अदरक, कालजीरा, कर्कटकी, घनियां,
बेलगिरी, नेपाली घनियां, कारुडातिगी, पाटला, इनको पीसकर इनके माय पेया
चनावे । उस पेयामें अनारका रस, घृत धीर तेज मिलाकर सेवन करे (पीते)
तो अर्शरोग नष्ट हो । तथा इन्हीं मय द्रव्योंसे खण्डयूप फाय और घृत सिद्धकर
पानकरे तो अर्शरोग शान्त हो ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अर्शहर यवागू ।

शटीपलाशसिद्धांवापिप्पल्यानागरेणवा । दद्याद्यवागूंतक्राम्लाम-
रिचैरचूर्णिताम् ॥ ९२ ॥ शुष्कमूलकयूपंयायूपंकोलत्थमेववा ।

दधित्थविल्वयूपवासकुलत्थमकुष्ठकम् ॥९३॥ छागलंवारसंदद्यायू-
पैरैतैर्विमिश्रितम् । लावादीनांफलांम्लंवासतक्रंग्राहिभिर्युतम् ॥९४॥

कचूर और पलाश (ढाक) के साथ या पीपल और सोंठके साथ. यवागू सिद्ध करके उसमें तक्रकी खटाई, काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर अर्शरोगवाले मनुष्यको देवे सूखी मूलीका यूप अथवा कुल्यीका यूप वा कैथ और बेलगिरिका यूप अथवा कुल्यी और मोठका यूप या इन्हीं उपरोक्त यूपोंमें मिलायाहुआ वकरैका मांसरस अथवा अनारका रस और तक्रकी खटाईसे संयुक्त संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ लवा आदिकोंका मांसरस भोजनमें प्रयुक्त करे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अर्शमें पथ्य ।

रक्तशालिर्महाशालिःकलमोजाङ्गलःसितः । शारदःषष्टिकश्चैवस्या-
दन्नविधिरर्शसाम् ॥ ९५ ॥ इत्युक्तोभिन्नशकृतामर्शसाञ्चविधिक्र-
मः । येऽत्यर्थगाढशकृतस्तेषां वक्ष्यामिभेषजम् ॥ ९६ ॥

लाल शालीचावल, महाशालीचावल, चोहोडा और वासंतीके चावल, जांगल, सित, शारद और साठीचावल इन सबका भात अर्शरोगमें हितकारी है । जिस अर्श रोगवालेका मल फटाहुआ और पतला हो यह चिकित्साविधि उसके लिये वर्णन की गई है । अब कठोर और गाढे मलवाले अर्शरोगीकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

सस्नेहैःसक्तुभिर्युक्तंप्रसन्नांलवणीकृताम् । दद्यान्मत्स्याण्डिकांपूर्वं
भक्षयित्वासनागराम् ॥ ९७ ॥ गुडंसनागरंपाठांफलांम्लंपायये-
च्चतम् । गुडंघृतंतयवक्षारंयुक्तंवापिप्रयोजयेत् ॥ ९८ ॥ यमानीं
नागरंपाठांदाडिमस्यरसंगुडम् । सतक्रंलवणंदद्याद्वातवर्चोऽनुलो-
मनम् ॥ ९९ ॥

पहिले सोंठका चूर्ण और मिसरी मिलाकर भक्षण करे फिर स्नेहयुक्तसत्तू और सेंधे नमकयुक्त सुरामण्ड पीवे तो अर्शरोगीके मलकी कठोरता दूर हो । अथवा गुड, सोंठ, पाठा, अनारका रस यह सब मिलाकर पीवे । या गुड, घृत, जवाखार इनको मिलाकर भक्षण करे । अथवा अजवायन, सोंठ, पाटलां, अनारका, रस, गुड, तक्र, संधानमक यह सब मिलाकर पीवे । इन सब योगोंके सेवनसे अधोवायु और मलका अनुलोमन होताहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

दुःस्पर्शकेनविल्वेनयमान्यानागरेणवा । एकैकेनापिसंयुक्तापाठा-

हन्त्यर्शासारुजम् ॥ १०० ॥ प्रागुक्तान्यमकेभृष्टाञ्छक्तुभिश्चावचूर्णितान् । करञ्जपल्लवान्दद्याद्वातवर्च्चोऽनुलोमनान् ॥ १०१ ॥ म-
दिरांवासलवणांसीधुंसौवीरकंतथा । गुडनागरसंयुक्तंपिवेद्वापौर्व-
भक्तिकम् ॥ १०२ ॥

जवासा, वेलगिरि, अजवायन और सोंठ इनमेंसे किसी एकके साथ पाटला (पाठ) का काथ पानेसे अर्शरोग दूर होताहै पूर्वोक्त यमक (घृत, तैल) में करंजुयैके पत्रोंको भूनकर सत्तुओंके साथ सेवनकरे तो मल और अधोवायुका अनुलोमन होताहै । अथवा भोजनसे प्रथम सेंधानमक मिलाकर मद्य पानेसे या गुड और सोंठ मिलाकर सीधु और सौवीरक पानेसे अधोवायु और विष्टाका अनुलोमन होताहै ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अर्शनाशक घृत ।

पिप्पलीनागरक्षारकारवीधान्यजीरकैः । फाणितेनचसंयोज्यफ-
लाम्लंदापयेद्घृतम् ॥ १०३ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्ति-
पिप्पली । शृङ्गवेरंयवक्षारंतैःसिद्धंवापिवेद्घृतम् ॥ १०४ ॥ चव्य-
चित्रकसिद्धंवागुडक्षारसमन्वितम् । पिप्पलीमूलसिद्धंवासगुडक्षा-
रनागरम् ॥ १०५ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलदधिदाडिमधान्यकैः ।
सिद्धंसर्पिर्विधातव्यंवातवर्च्चोविवन्धनुत् ॥ १०६ ॥

पीपल, सोंठ, जवाखार, कलौजी, धनियां, जीरा और फाणित इनमें अनारके रसकी खटाई और घृत मिलाकर सेवन करे । अथवा पीपल, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, जवाखार, अदरख इनसे सिद्ध किया घृत सेवन करे । अथवा चव्य और चित्रक, अथवा गुड और जवाखारमें मिलाया घृत अथवा पीपलामूलसे सिद्धकिया घृत या गुड जवाखार और सोंठके चूर्णयुक्त घृतको सेवन करे । अथवा पीपल, पीपलामूल, दही, अनारका रस और धनियां इनसे सिद्ध किया घृत सेवन करे तो अधोवायु और मलकी रुकावट दूर होतीहै ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

चव्यादि घृत ।

चव्यंत्रिकटुकंपाठांक्षारकुस्तुम्बुरुणिच । यमानींपिप्पलीमूलमु-
भेचविडसैन्धवे ॥ १०७ ॥ चित्रकंविल्वमभयांपिद्वासर्पिर्विपाच-
येत् । शकृद्वातानुलोम्यार्थंजातेदध्निचतुर्गुणे ॥ १०८ ॥ प्रवाहि-

कांगुदभ्रंशमूत्रकृच्छ्रपरिस्रावम् । गुदवंक्षणशूलञ्चघृतमेतद्व्यपो-
हति ॥ १०९ ॥

चव्य, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाठ, जवाखार, धनियां अजवायन, पीपलामूल, विड-
लवण, सेंधानमक, चित्रक, वेलगिरि और हरड इन सबका कल्क कर चारगुने
दहीके साथ घृतको सिद्धकरे । इस घृतके सेवनसे अधोवात और मलका अनुलोमन
होताहै तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश; मूत्रकृच्छ्र परिस्राव, गुदाकी पीडा, वंक्षणोंकी पीडा
यह सब नष्ट होजातेहैं ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

नागरादिघृत ।

नागरंपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली । इवदंष्ट्रापिप्पलीधान्यंवि-
ल्वपाठायमानिकाः ॥ ११० ॥ चाङ्गेरीस्वरसेसर्पिःकल्कैरेतैर्विपाच-
येत् । चतुर्गुणेनदध्नाचतद्घृतंकफवातनुत् ॥ १११ ॥ अर्शासिग्र-
हणीदोषमूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाम् । गुदभ्रंशार्त्तिमानाहंघृतमेतद्व्य-
पोहति ॥ ११२ ॥

सोंठ, पिपलामूल, चित्रक, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियां, वेलगिरी, पाठ
और अजवायन इन सबके कल्क और चांगेरीके रस तथा ४ गुने दहीके साथ सिद्ध
किया घृत सेवन करनेसे कफवात, अर्शरोग, ग्रहणी विकार, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका,
गुदभ्रंश, गुदाकी पीडा और अफारा यह सब दूर होतेहैं ॥ ११०-११२ ॥

पिप्पल्यादिघृत ।

पिप्पलीनागरंपाठांश्चदंष्ट्राश्चपृथक्पृथक् । भागांस्त्रिपलिकान्कृ-
त्वाकपायसुपकल्पयेत् ॥ ११३ ॥ कण्ठीरंपिप्पलीमूलंच्योपचव्यञ्च
चित्रकम् । पिष्ट्वाकपायेविनयेत्पूतेद्विपलिकंभिपक् ॥ ११४ ॥ पला-
निसर्पिपस्तस्मिश्चत्वारिंशत्प्रदापयेत् । चाङ्गेरीस्वरसंतुल्यंसर्पि-
पादधिपद्गुणम् ॥ ११५ ॥ मृद्वग्निनाततःसाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधाप-
येत् । तदाहारेविधातव्यंपानेप्रायोगिकेविधौ ॥ ११६ ॥ ग्रहण्य-
शौंविकारधनंगुल्महृद्रोगनाशनम् । शोथप्लीहोदरागाहमूत्रकृच्छ्र-
ज्वरापहम् ॥ ११७ ॥ कासहिक्कारुचिश्वाससूदनंपार्श्वशूलनुत् ।
वलपुष्टिकरंवर्ण्यमभिसन्दीपनंपरम् ॥ ११८ ॥

पीपल, सोंठ, पाठ और गोखरू यह प्रत्येक तीन तीन पल लेकर काय करे । इस कायको छानकर कण्डीरतुलसी, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य, चित्रक यह सब दो २ पल लेकर इनका कल्क बनावे । तथा चालीस पल घृत और चालीस पल चांगिरीका रस, धीसे छः गुना, दही इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे घृत सिद्ध करे । इस घृतको विधिपूर्वक सेवन करनेसे ग्रहणी दोष, ववासीर, गुल्म, हृद्रोग, सूजन, प्लीहा, उदररोग, अफारा, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, खांसी, हिचकी, श्वास, अरुचि और पार्श्वशूल, यह सब दूर होतेहैं । तथा बल, पुष्टि, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

हरीतकीप्रयोग ।

सगुडांपिप्पलीयुक्तांघृतभृष्टांहरीतकीम् । त्रिवृदन्तीयुतांवापिभक्ष-
येदानुलोमिकीम् ॥ ११९ ॥ विड्वातकफपित्तानामानुलोम्येनानि-
र्मले । गुदेऽर्शांसिप्रशाम्यंतिपावकश्चाभिवर्द्धते ॥ १२० ॥

धीमें भुनीहुई हरडोंको गुड और पीपलके साथ या निशोय और दन्तीके साथ सेवन करनेसे विष्टाका अनुलोमन होताहै तथा अधोवायु मल, कफ और पित्तका अनुलोमन होकर गुदा शुद्ध होजातीहै और ववासीर नष्ट होतीहै तथा जठराग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ ११९ ॥ १२० ॥

अन्यशाकादियोग ।

वर्हित्तिरिलावानारसानम्लान्सुसंस्कृतान् । दक्षाणांवर्त्तकाना-
श्चदद्याद्विड्वातसंग्रहे ॥ १२१ ॥ त्रिवृदन्तीपलाशानांचाङ्गेर्याश्वि-
त्रकस्यच । सुभृष्टंयमकेदद्याच्छाकंदधिसमन्वितम् ॥ १२२ ॥
उपोदिकांतण्डुलीयंवीरांवास्तुकपल्लवान् । सुवर्चलांसलोणीकांय-
वशाकमवल्गुजम् ॥ १२३ ॥ काकमार्चौरुहापत्रंमहापत्रंतथाश्लि-
काम् । जीवन्तीशटिशाकश्चशाकंगृजनकस्यच ॥ १२४ ॥
दधिदाडिमासिद्धानिभृष्टानियमकेऽपिच । धान्यनागरयुक्तानिशा-
कान्येतानिदापयेत् ॥ १२५ ॥

मल और अधोवायुका अवरोध न होवे तो मोर, तीतर और लवाके मांसरसको खटाई डालकर सेवन करावे । अथवा निशोय, दन्ती, पलाश, चांगिरी और चीता इनके शाकको धी तेलमें भूनकर दहीकी मलाई मिला सेवन करावे । अथवा पोई, चौलाई, काकोली, बथुआ, सोंचली, नौनिया, यवशाक, वावची, मकोय और

गिलोयके पत्र, मानशाक, अम्लिका, जीवन्ती, कचूर और गाजर इनके शाकको धाँ और तेलमें भूनकर दही तथा अनारकी खडाई मिला और धनियाँ तथा सोंठसे संयुक्तकर सेवन करावै ॥ १२१-१२५ ॥

गोधाश्रावित्सलोपाकमार्जारोष्ट्रगवामपि । कूर्मशल्लकयोश्चैवसा-
धयेच्छाकवद्रसान् । रक्तशाल्योदनंदद्याद्रसैस्तैर्वातशान्तये ॥१२६॥
ज्ञात्वावातोत्वणंरूक्षंदीप्तिगुदजातुरम् ॥ १२७ ॥ मदिरांशार्क-
रंजातंशीधुंतक्रंतुपोदकम् । अरिष्टंदधिमण्डंवाशृतंवाशिशिरंजलम्
॥ १२८ ॥ कण्टकार्याशृतंवापिशृतंनागरधान्यकैः । अनुपानंभि-
परदद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम् ॥ १२९ ॥

गोह, सेह, लोपाक, ऊंट, विलाव, कलुआ, शल्लकी इनके मांसरसको ऊपर कहेहुए शाकोंके समान सिद्धकर लाल चावलोंके भातके साथ सेवन करनेसे वायुका अर्शरोग शान्त होताहै, वातप्रधान अर्शरोगमें रूक्षता आर दीप्तिप्राप्ति होनेसे मद्य, शर्कराकी मद्य, सीधु, तक्र, तुपोदक, अरिष्ट, दधिमण्ड, गर्मकर ठण्डा, किया जल अथवा कटेलीसे सिद्धकिया जल या सोंठ और धनियेसे सिद्ध किया जल पीनेके लिये देवे तो अधोवायु और मलका अनुलोमन होताहै ॥१२६॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९॥

अनुवासनयोग्य रोगी ।

उदावर्तपरीतायेयेचात्यर्थविरूक्षिताः ।

विलोमवाताःशूलार्त्तास्तेष्विष्टमनुवासनम् ॥ १३० ॥

जिस अर्शवालेको उदावर्त और अत्यंत रूक्षता हो, जिसकी वायु विलोमगति होगईहो तथा जो शूलसे पीडित हो उसको अनुवासन कर्म करना हित है ॥१३०॥

अनुवासन तैल ।

पिप्पलीमदनंविश्वंशताह्वान्मधुकञ्चाम् । कुण्डशर्टीपुष्कराख्यंचि-
त्रकंदेवदारुच ॥ १३१ ॥ पिड्वातैलंत्रिपक्तव्यंपयसाद्विगुणेनच ।
अर्शसांमूढवातानांतच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ १३२ ॥ गुदनिःसरणं
शूलंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् । कटयूरुष्ट्रदौर्वल्यंमानाहंवक्षणाश्रय-
म् ॥ १३३ ॥ पिच्छास्त्रावंगुदेशोफवातवर्चोविनिग्रहम् । उत्थानंव-
हुशोपचजयेत्तच्चानुवासनात् ॥ १३४ ॥

पीपल, मैनफल, बेलगिरि, सौंफ, मुलैठी, बच, कूठ, कचूर, पोहकरमूल, चित्रक, देवदारु इन सबका कल्क बनाकर दोगुना दूध मिला तैलकी सिद्धकरे । यह तैल अनुवासनकर्म, अर्शरोग और मूढवातमें परम उत्तम है । इसके द्वारा अनुवासन करनेसे गुदाका निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, कमर, जांव और पीठकी दुर्बलता, बंक्षणका अफारा, परिस्त्राव, गुदाकी सूजन, अधोवायु और विष्टाका विबंध वारवार दस्तकी शंका होना, यह सब दूर होतेहैं ॥ १३१-१३४ ॥

आनुवासनिकैःपिष्टैःसुखोष्णैःस्निहसंयुतैः । दार्वन्तैःस्तब्धशूलानि
गुदजानिप्रलेपयेत् ॥ १३५ ॥ दिग्धातैःप्रस्रवन्त्याशुश्लेष्मपिच्छां-
सशोणिताः । कण्डूःस्तम्भसरुक्शोफःस्रुतानांविनिवर्तते ॥१३६॥

ऊपर कहेहुए अनुवासनतैलके पीपलसे लेकर देवदारु पर्यन्त संपूर्ण द्रव्योंको चारीक पीसकर घृत तैल मिला किंचित् गरम करे फिर इसका लेप करनेसे बवासीरकी कठोरता और शूल नष्ट होजाताहै । और इस लेपसे रक्तसहित चिपटाहुआ गाढा कफ शीघ्र निकलजाताहै । उसके निकलनेसे अर्शकी खुजली, कठोरता, पीडा, सूजन-यह सब दूर होजातेहैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

निरूहण कर्म ।

निरूहंवाप्रयुञ्जीतसक्षीरंदशमूलिकम् ।

समूत्रस्नेहलवलंकल्कैर्युक्तंफलादिभिः ॥ १३७ ॥

अथवा दूध, दशमूल, गोमूत्र, चतुःश्रेह, संधानमक और मैनफलका काय करके निरूहणवस्तिकर्म करना चाहिये ॥ १३७ ॥

हरीतकी अरिष्ट ।

हरीतकीनांप्रस्थाद्धंप्रस्थमामलकस्यच स्यात्कपित्थाद्दशपलंततोऽ-
र्द्धाचेन्द्रवारुणी ॥ १३८ ॥ विडङ्गंपिप्पलीलोध्रंमरिचंसैलवालुकम् ।
द्विपलांशंजलस्यैतच्चतुर्द्रोणोविपाचयेत् ॥१३९॥ द्रोणशोषेरसेतस्मि-
न्पूतेशीतेसमावपेत् । गुडस्यद्विशतंतिष्ठेत्तत्पक्षुघृतभाजने ॥१४०॥
पक्षाद्दूर्द्धंभवेत्पेयात्ततोमात्रायथावलम् । अस्याभ्यासादारिष्टस्य
नश्यन्तिगुदजानपि ॥ १४१ ॥ ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदरा-
पहाः । कुष्ठशोफारुचिहरोवलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ १४२ ॥ सिद्धो-
यमभयारिष्टः कामलाद्वित्रनाशनः । किमिग्रन्थ्यर्घुद्वयङ्गराजय-
क्ष्मज्वरान्तकृत् ॥ १४३ ॥

हरडे आधा प्रस्थ, ऑंखले १ प्रस्थ, कैथ १० पल, इन्द्रायण ५ पल, वायविडंग, पठानी लोध, काली मिर्च और एलवा प्रत्येक २ पल इन सबको चार द्रोण जलमें डालकर क्वाथ करे । चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । जब शीतल होजाय तो इसमें २०० पल गुड मिलाकर घीके चिकने पात्रमें ढककर रखदेवे । १५ दिनके बाद अग्निके बलके अनुसार उचित मात्रासे सेवन करे । इस अरिष्टके निरन्तर सेवनसे ववासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, कुष्ठ, सूजन, अरुचि यह सब नष्ट होतेहैं तथाबल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । यह सिद्ध (अनुभव किया हुआ) अभयारिष्ट कामला और श्वित्रकुष्ठको दूर करताहै । तथा कृमिरोग, ग्रंथी, अर्बुद, व्यंग, राजयक्ष्मा और ज्वर इन सबको नष्ट करताहै ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

दंत्यरिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोःपञ्चमूलयोः । भागान्पलांशानापथ्य जलद्रोणेविपाचयेत् ॥ १४४ ॥ त्रिफलायादलानाञ्चप्रक्षिप्यत्रिपलंततः । रसेचतुर्थेशेपेतुपूतेशीतेसमावपेत् ॥ १४५ ॥ तुलांगुडस्यतत्तिष्ठेन्मासाद्धृतभाजने । तन्मात्रयापिवेन्नित्यमशोभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥ १४६ ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नवातवर्चोऽनुलोमनम् । दीपनञ्चारुचिघ्नञ्चदन्त्यरिष्टमिदंविदुः ॥ १४७ ॥

दंती, चित्तेकी जड, दोनों पंचमूल इन वारह औषधियोंको एक एक पल लेवे । त्रिफला ३ पल, इन सबको कूटकर १ द्रोण जलमें क्वाथ पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर छानकर ठण्डा करे फिर इसमें १ तुला गुड मिला घीके चिकने पात्रमें भर १५ दिन पर्यन्त रक्खा रहनेदे । फिर इसमेंसे बलके अनुसार उचित मात्रासे नित्य सेवन करे तो ववासीर, संग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होतेहैं । तथा अधोवायु और मलका अनुलोम होताहै यह दंतीअरिष्ट अग्निको संदीपन करनेवाला और अरुचिनाशक है ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

फलारिष्ट ।

हरीतकीफलप्रस्थंप्रस्थमामलकस्यच । विशालायादधित्थस्यपाटाचित्रकमूलयोः ॥ १४८ ॥ द्वेद्वेपलेसमापथ्यद्विद्रोणेसाधयेदपाम् । पादावशेषेपूतेचरसेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥ १४९ ॥ गुडस्यैकांतुलांबैद्यःसंस्थाप्यघृतभाजने । पक्षस्थितंपित्रेदेनंग्रहण्यशोविका-

रवान् ॥ १५० ॥ हृत्पाण्डुरोगं ग्लीहानं कामलां विषमज्वरम् । वर्चो-
मूत्रानिलकृतान्विवन्धानग्निमार्दवम् ॥ १५१ ॥ कासंगुल्ममु-
दावर्त्तफलारिष्टोव्यपोहति । अग्निसन्दीपनो ह्येष कृष्णात्रेयेण
भाषितः ॥ १५२ ॥

उत्तम हरडे १ प्रस्थ, आँवले १ प्रस्थ, इन्द्रायणकी जड, कैयके फल, पाठ और
चीतेकी जडका छिलका यह प्रत्येक दो २ पल इन सबको कूटकर २ द्रोण जलमें
पकावे । चतुर्थांश रहनेपर छानकर ठण्डा करदेवे । फिर इसमें १ तुला गुड मिला,
घृतके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे । १५ दिनके अनन्तर बलानुसार उचित मात्रासे
सेवन करे तो इस फलारिष्टके सेवनसे संग्रहणी, ववासीर, हृद्रोग, पाण्डु, ग्लीहा,
कामला, विषमज्वर, मलकी रुकावट, मूत्रकी रुकावट, अधोवायुकी रुकावट, मंदाग्नि,
खांसी, गुल्म और उदावर्त्त यह सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १४८-१५२ ॥

दुरालभायाः प्रस्थः स्याच्चित्रकस्य वृषस्य च । पथ्यामलकयोश्चैव पा-
ठायानागरस्य च ॥ १५३ ॥ दन्त्याश्च द्विपलान् भागाञ्जलद्रोणे विपा-
चयेत् । पादावशेषेषूत्ते च सुशीतेशर्कराशतम् ॥ १५४ ॥ प्रक्षिप्य
स्थापयेत्कुम्भे मासाद्धघृतभाजने । प्रलिप्ते पिप्पलीचव्यप्रियंगुक्षौ-
द्रसर्पिषा ॥ १५५ ॥ तस्य मात्रां पिवेत्कालेशर्करस्य यथावलम् ।
अर्शांसिग्रहणीदोपमुदावर्त्तमरोचकम् ॥ १५६ ॥ शकृन्मूत्रानि-
लोद्धारविवन्धानग्निमार्दवम् । हृद्रोगं पाण्डुरोगञ्च सर्वमेतेन साध-
येत् ॥ १५७ ॥

जवासा १ प्रस्थ, चित्रक, अड्डसा, हरड, आँवला, पाठ, सोंठ, दंती यह प्रत्येक २
पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे । चतुर्थांश शेषरहनेपर छानकर ठण्डा करे फिर इसमें
१०० पल खांड मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे । परन्तु इसको
पात्रमें डालनेसे पहिले पात्रके अन्दर, पीपल, चव्य, प्रियंगु, शहद और घी इनका
लेप करलेवे । फिर पंद्रह दिनके अनन्तर बलानुसार उचित मात्रासे सेवन करे तो
ववासीर, संग्रहणी, उदावर्त्त, अरुचि, मलमूत्र और अधोवायुका अवरोध, उद्गार,
विषय, मंदाग्नि, हृद्रोग और पाण्डुरोग यह सब दूर होते हैं ॥ १५३-१५७ ॥

नवस्यामलकस्यैकांकुर्याज्जर्जरितांतुलाम् । कुडवांशं विडङ्गानि पि-
प्पलीमारिचानि च ॥ १५८ ॥ पाठामूलञ्च पिप्पल्याः क्रमुकंचव्यचि-

हरडे आधा प्रस्थ, आँवले १ प्रस्थ, कैय १० पल, इन्द्रायण ५ पल, वायाविडंग, पठानी लोध, काली मिर्च और एलवा प्रत्येक २ पल इन सबको चार द्रोण जलमें डालकर क्वाथ करे । चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । जब शीतल होजाय तो इसमें २०० पल गुड मिलाकर घीके चिकने पात्रमें ढककर रखदेवे । १५ दिनके बाद अग्निके बलके अनुसार उचित मात्रासे सेवन करे । इस अरिष्टके निरन्तर सेवनसे क्वासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, कुष्ठ, सृजन, अरुचि यह सब नष्ट होतेहैं तथाबल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । यह सिद्ध (अनुभव किया हुआ) अभयारिष्ट कामला और श्वित्रकुष्ठको दूर करताहै । तथा कृमिरोग, ग्रंथी, अर्बुद, व्यंग, राजयक्ष्मा और ज्वर इन सबको नष्ट करताहै ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

दंत्यारिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोःपञ्चमूलयोः । भागान्पलांशानापथ्य जलद्रोणेविपाचयेत् ॥ १४४ ॥ त्रिफलायादलानाञ्चप्रक्षिप्यत्रिपलंततः । रसेचतुर्थेशेपेतुपूतेशीतेसमावपेत् ॥ १४५ ॥ तुलांगुडस्यतत्तिष्ठेन्मासाद्धृतभाजने । तन्मात्रयापिवेन्नित्यमशौभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥ १४६ ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नवातवर्चोऽनुलोमनम् । दीपनञ्चारुचिघ्नञ्चदन्त्यारिष्टमिदंविदुः ॥ १४७ ॥

दंती, चित्तेकी जड, दोनों पंचमूल इन वारह औषधियोंको एक एक पल लेवे । त्रिफला ३ पल, इन सबको कूटकर १ द्रोण जलमें क्वाथ पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर छानकर ठण्डा करे फिर इसमें १ तुला गुड मिला घीके चिकने पात्रमें भर १५ दिन पर्यन्त रक्खा रहनेदे । फिर इसमेंसे बलके अनुसार उचित मात्रासे नित्य सेवन करे तो क्वासीर, संग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होतेहैं । तथा अधोवायु और मलका अनुलोम होताहै यह दंतीअरिष्ट अग्निको संदीपन करनेवाला और अरुचिनाशक है ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

फलारिष्ट ।

हरीतकीफलप्रस्थंप्रस्थमामलकस्यच । विशालायादधित्यस्यपाटाचित्रकमूलयोः ॥ १४८ ॥ द्वेद्वेपलेसमापोथ्यद्विद्रोणेसाधयेदपाम् । पादावशेषेपूतेचरसेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥ १४९ ॥ गुडस्यैकांतुलांवैद्यःसंस्थाप्यघृतभाजने । पक्षस्थितंपिवेदेनग्रहण्यशौविका-

रुकावट, खांसी और सब प्रकारके मबल कफरोग तथा सलबट पडना, सफेद बाल-
होना और बालोंका गिरना यह सब रोग नष्ट होते हैं, वातनाशक पत्रोंके गरम र
क्वाथसे बवासीरके मस्तकोंको धोना सूखी बवासीरको नष्ट करताहै। इस प्रकार सूखी
अर्शकी अनुभूत चिकित्साका वर्णन कियागया॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥ १६१ ॥
॥ १६२ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

रक्तार्शकी चिकित्सा ।

चिकित्सितमिदंसिद्धंस्त्राविणांशृण्वतःपरम् ।

तत्रानुबन्धोद्विविधःश्लेष्मणोमारुतस्यच ॥ १७० ॥

अब रक्तस्त्राववाली अर्श (खूनी बवासीर) की सिद्ध चिकित्साका वर्णन
करतेहैं। उस रक्तस्त्रावी बवासीरमें दो प्रकारके अनुबंध होतेहैं। एकमें कफका
अनुबंध और दूसरीमें वायुका अनुबंध होताहै ॥ १७० ॥

वातानुबन्धीरक्तार्श ।

विदश्यावंकठिनरूक्षञ्चाधोवायुर्नवर्त्तते । तनुचारुणवर्णञ्चफेनि-
लञ्चासृग्दर्शसाम् ॥ १७१ ॥ कटयूरुगुदशूलञ्चदौर्वल्यंयदिवाधिक-
म् । तत्रानुबन्धोवातस्यहेतुर्यदिविरूक्षणम् ॥ १७२ ॥

जिस रक्तार्शमें मलकाला और कठिन तथा रूक्ष हो और अधोवायु न निकल सक-
ताहो तथा रुधिर पतला, लालवर्ण और झागदार आताहो एवं कमर,जांघों और पीठमें
पीडा तथा दुर्बलता हो, और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे इसकी उत्पत्ति हुईहो तो इस
खूनी बवासीरमें वायुका अनुबंध जानना ॥ १७१ ॥, १७२ ॥

कफानुबन्धी रक्तार्श ।

शियिलंश्वेतपीतञ्चविद्वलिग्धंगुरुशीतलम् । यवर्शसांघनञ्चासृकृत-
न्तुमत्पाण्डुपिच्छिलम् ॥ १७३ ॥ गुदसंपिच्छंस्तिमितंगुरुस्निग्ध-
ञ्चकारणम् । श्लेष्मानुबन्धोविज्ञेयस्तत्ररक्तार्शसांबुधैः ॥ १७४ ॥

जिस रक्तार्शमें शियिल, सफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल मल उतरताहो
तथा रुधिर गाढा और तारदार कुछ पीतवर्ण, पिच्छिल हो, जिसमें गुदा कफसे
लिपींसी रहे तथा गीली रहे और यह अर्श स्निग्ध और भारी पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न
हुईहो तो इस खूनी बवासीरमें कफका अनुबंध जानना ॥ १७३ ॥ १७४ ॥

स्निग्धशीतंहितंवातेरूक्षशीतंकफानुगे ।

चिकित्सितमिदंतस्मात्सम्प्रधार्य्यप्रयोजयेत् ॥ १७५ ॥

त्रकौ । मञ्जिष्ठानालुकंलोध्रंपलिकान्युपकल्पयेत् ॥ १५९ ॥ कुष्ठं
 दारुहीरद्राञ्चसुराहंसारिवाद्यम् । इन्द्राहंभद्रमुस्तञ्चकुर्व्यादर्द्ध-
 पलोन्मितम् ॥ १६० ॥ चत्वारिनागपुष्पस्यपलान्यभिनवस्यच ।
 द्रोणाभ्यामम्भसोद्गाभ्यांसाधयित्वावतारयेत् ॥ १६१ ॥ पादावशे-
 पेपूतेचशीतं तस्मिन्समावपेत् । मृद्दीकाद्वयाढकरसंशीतं निर्व्यूहसं-
 मितम् ॥ १६२ ॥ शर्करायाश्चभिन्नायादद्याद्विगुणितांतुलाम् ।
 कुसुमस्यरसस्यैकमर्द्धप्रस्थंनवस्यच ॥ १६३ ॥ त्वगेलाप्लवपत्राम्बु-
 सेव्यक्रमुककेशरान् । चूर्णयित्वातुमतिमान्कार्पिकानत्रदापयेत् ॥
 १६४ ॥ तत्सर्वंस्थापयेत्पक्षंशुचौचघृतभाजने । प्रलिप्तेसर्पिपां-
 किञ्चिच्छर्करागुरुधूपिते ॥ १६५ ॥ पक्षादूर्ध्वमरिष्टोऽयंकनकोनाम
 विश्रुतः । पेयःस्वादुरसोहृद्यःप्रयोगान्द्रक्तरोचनः ॥ १६६ ॥ अर्शा-
 सिग्रहणीदोपमानाहमुदरंज्वरम् । हृद्रोगंपाण्डुतांशोपंगुल्मवर्चो-
 विनिग्रहम् ॥ १६७ ॥ कासंश्लेष्मामयांश्चोग्रान्सर्वानेवापकर्षति ।
 वलीपलितखालित्यंदोपजंचव्यपोहति ॥ १६८ ॥ पत्रभंगोदकैः
 शौचंकुर्व्यादुष्णेनचाम्भसा । इतिशुष्कार्शसांसिद्धमुक्तमेतच्चिकि-
 त्सितम् ॥ १६९ ॥

नवीन पकेहुए आँवले १ तुला (५ सेर) वायंविडंग, १ कुडव, पीपल, १ कुडव-
 कालीमिर्च १ कुडव, और पाद, पीपलामूल, सुपारी, चव्य, चित्रक, मंजीठ, एलवा
 और लाघ यह प्रत्येक एक २ पल लेवे । कूठ, दारूहलदी, देवदारू, दोनों सारिवा,
 कुडा, भद्रमोथा यह प्रत्येक आधा २ पल लेवे। नवीन नागकेशर ४ पल लेवे । इन सबको
 कूटकर दो द्रोण पानीमें पकावे । चतुर्थांश शेषहरने पर उतारकर छान लेवे । फिर
 ठण्डा होनेपर इसमें २ आडक मुनकाका रस, २ तुला उत्तम देशी खांड, आधा प्रस्थ उत्तम
 गहद और एक एक कर्ष दालचीनी, इलायचीके बीज, तेजपात, मोथा, मुगंधवाला,
 सुपारी, खस और नागकेशर इन सबका पृथक् २ चूर्ण मिलाने । इन सबको मिलाकर
 पात्रका मुख बन्दकर १५ दिन रखवा रहने देवे । इस पात्रके भीतर प्रथम ही घृत,
 अगर और खांडका लेप कर देना चाहिये । इसको कनकारिष्ट कहतेहैं यह मधुर,
 हृदयको प्रिय, अन्नमें रुचि बढ़ानेवाला परमोत्तम अरिष्ट है । इसके सेवनसे घवा-
 सीर मंत्रदणी, अफारा, उदरगोग, ज्वर, हृद्रोग, पाण्डुरोग, शोषरोग, गुल्म, मलकी

करना चाहिये । पित्तप्रधान रक्ताशंका रुधिर ग्रीष्मकालमें प्रवृत्त होता है । यदि उसमें वात और कफका अनुबंध न हो तो उसको सर्वथा रोकदेना ही उचित है ॥ १८२-१८४ ॥

● संप्राही योग ।

कुटजत्वङ्निर्युहःसनागरःस्निग्धरक्तसंग्रहणः । त्वग्दाडिमस्यत-
द्रत्सनागरश्चन्दनरसश्च ॥१८५॥ चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवा-
साःसनागराःकथिताः । रक्ताशंसांप्रशमानादावीत्वगुशीरनि-
म्बाश्च ॥१८६॥ सातिविपाकुटजत्वक्फलश्चरसाञ्जसनम् । मधुयु-
क्तरक्तापहंदद्यात्पिपासवेतण्डुलजलेन ॥ १८७ ॥

कुडाकी छालके क्वाथमें सोंठ मिलाकर पीनेसे स्निग्धरक्त बन्द होता है एवं अनारके छिलकेके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे अथवा चंदनके काथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे रक्तकी प्रवृत्ति बन्द होजाती है । अथवा चंदन, चिरायता, जवासा और सोंठका काथ पीनेसे रक्ताशं दूर होता है । एवं दारुहल्दी, दालचीनी, खस और नीमका क्वाथ सेवन करनेसे अथवा अतीस, कुडाकी, छाल, इन्द्रजौ और रसौत इन सबके चूर्णको शहद और तंदुलजलके साथ जब २ प्यास लगे तब २ पिलाया करे तो रक्ताशं दूरहो ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

कुटजादिरसायन ।

कुटजत्वचोविपाच्यंपलशतमार्द्रम्यमेघसलिलेन । यावद्भतरस-
द्रव्यंपूतोरसस्तोग्राह्यः ॥ १८८ ॥ मोचरसःससमङ्गःफलनीच-
समांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च । वत्सकवीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥
॥ १८९ ॥ पूतःक्वथितःसरसोदावीलेपस्ततःसमवतार्य्य । मात्रा-
कालोपहितारसक्रियैपाजयतिरक्तम् ॥ १९० ॥ छागलीपयसापी-
तापेयामण्डेनवायथाग्निंवलम् । जीर्णौषधश्चशालीन्पयसाछागेन
भुञ्जीत ॥ १९१ ॥ रक्ताशंस्यतीसारंरक्तंसासृक्कृजोनिहन्यात्तु ।
वलवच्चरक्तपित्तरसक्रियैपाजयत्युभयभागम् ॥ १९२ ॥

कुडाकी छाल, सौ पल लेकर उसको कूटकर आकाशके जलमें पकावे । जब पकते २ छालका रस निकल आवे उसको उतारकर छानलेवे । फिर उसमें मोच-
रस, बाराहीकंद और भिपंगुके फूलोंका चूर्ण समभाग लेकर डाले । फिर इन तीनोंके चूर्णके बराबर इन्द्रजौका चूर्ण मिलावे । इन सबको फिर आगपर

वातानुबंधी रक्ताशमें स्निग्ध, शीतल और कफानुबंधीमें रूक्ष, शीतल चिकित्साका प्रयोग करना चाहिये । इसप्रकार विचारपूर्वक रक्ताशमें चिकित्सा करे ॥ १७५ ॥

पित्तश्लेष्माधिकंमत्वाशोधनेनोपपादयेत् । स्रवणश्चाप्युपेक्षेतल-
ङ्घनैर्वासमाचरेत् ॥ १७६ ॥ प्रवृत्तभादावशोभ्योयोनिगृह्णात्यबुद्धि-
मान् । शोणितंदोषमनिलंतद्रोगाञ्जनयेद्बहून् ॥ १७७ ॥ रक्तपि-
त्तंज्वरंतृष्णामग्निनाशमरोचकम् । कामलांश्वयथुंशूलंगुदवङ्क्ष-
क्षणसंश्रयम् ॥ १७८ ॥ कण्डूरुःकोठपिडकाःकुष्ठपाण्डुमयंगदम् ।
वातमूत्रपुरीषाणांविबन्धांशिरसोरुजम् ॥ १७९ ॥ स्तैमित्यंगुरु-
गात्रत्वंतथान्यात्रक्तजान्गदान् । तस्मात्स्त्रुतेदुष्टरक्तेरक्तसंग्रहणं
मतम् ॥ १८० ॥ हेतुलक्षणकालज्ञोवलशोणितवर्णावित् । कालं
तावदुपेक्षेतयावन्नात्ययमाप्नुयात् ॥ १८१ ॥

यदि रक्ताशमें वायुकी अधिकता न हो और पित्त, कफ प्रबल हों तो पहिले वमन विरेचन आदिसे संशोधन कर फिर चिकित्सा करना चाहिये । अथवा रक्तस्रावको न रोककर लंघनपूर्वक चिकित्सा करे । जो मूर्ख चिकित्सक अशुभ रक्तस्रावको प्रथम ही रोकदेतेहैं उससे वायु कुपित होकर वातजनित रोग प्रगट होजातेहैं । तथा रक्तपित्तज्वर, तृषा, मंदाग्नि, अरुचि, कामला, सूजन, गुदा और वंक्षणमें पीडा, खुजली, व्रण, चकत्ते, पिडिका, कुष्ठ, पाण्डु, अधोवात, मूत्र और मलका विबंध, मस्तकपीडा, स्तैमित्य, देहमें भारीपन तथा अन्य रुधिरके विकार उत्पन्न होजाते हैं । इसलिये दूषित रक्तके कारण, लक्षण, समय, बल और वर्ण विचारकर ही रुधिरके स्रावको रोकना चाहिये । जबतक किसी प्रकारके अनिष्ट होनेकी संभावना न हो तब तक बुद्धिमान् वैद्यको ववासीरके रक्तका स्राव न रोकना चाहिये १७६-१८१ अग्निसन्दीपनार्थश्चरक्तसंग्रहणायच । दोषाणांपाचनार्थश्चपरंतिकै-
रुपाचरेत् ॥ १८२ ॥ यत्तुप्रक्षीणदोषस्यरक्तंवातोल्बणस्यच । वर्त्त-
तेस्त्रेहसाध्यंतत्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ १८३ ॥ यत्तुपित्तोल्बणरक्तं
घर्मकालेप्रवर्त्तते । स्तम्भनीयंतदेकान्तान्नचेद्वातकफानुगम् ॥ १८४ ॥

पीछे अग्निसन्दीपनके लिये स्वच्छ रक्तको रोकनेवाली और दोषोंको पचानेवाली तिक्त औषधों द्वारा चिकित्सा करे । क्षीण दोषवाले वातप्रधान अशुभरोगीका रक्त स्नेहसाध्य होतहि । उस रोगीको स्नेहपान, अभ्यंग और अनुवासन प्रयोगसे शान्त

करना चाहिये । पित्तप्रधान रक्ताशका रुधिर ग्रीष्मकालमें प्रवृत्त होता है । यदि उसमें वात और कफका अनुबंध न हो तो उसको सर्वथा रोकदेना ही उचित है ॥ १८२-१८४ ॥

● संग्राही योग ।

कुटजत्वङ्निर्यूहःसनागरःस्निग्धरक्तसंग्रहणः । त्वग्दाडिमस्यत-
द्रत्सनागरश्चन्दनरसश्च ॥१८५॥ चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवा-
साःसनागराःकथिताः । रक्ताशसांप्रशमानादावीत्वगुशीरनि-
म्वाश्च ॥१८६॥ सातिविपाकुटजत्वक्फलञ्चरसाञ्जसनम् । मधुयु-
क्तरक्तापहंदद्यात्पिपासवेतण्डुलजलेन ॥ १८७ ॥

कुडाकी छालके क्वाथमें सोंठ मिलाकर पीनेसे स्निग्धरक्त बन्द होता है एवं अनारके छिलकेके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे अथवा चंदनके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे रक्तकी प्रवृत्ति बन्द होजाती है । अथवा चंदन, चिरायता, जवासा और सोंठका क्वाथ पीनेसे रक्ताश दूर होता है । एवं दारुहल्दी, दालचीनी, खस और नीमका क्वाथ सेवन करनेसे अथवा अतीस, कुडाकी, छाल, इन्द्रजौ और रसौत इन सबके चूर्णको शहद और तंदुलजलके साथ जब २ प्यास लगे तब २ पिलाया करे तो रक्ताश दूरहो ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

कुटजादि रसायन ।

कुटजत्वचोविपाच्यंपलशतमार्द्रभ्यमेघसलिलेन । थावद्दतरस-
द्रव्यंपूतोरसस्तोग्राह्यः ॥ १८८ ॥ मोचरसःससमङ्गःफलनीच-
समांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च । वत्सकवीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥
॥ १८९ ॥ पूतःक्वथितःसरसोदावीलेपस्ततःसमवतार्य्य । मात्रा-
कालोपहितारसक्रियैपाजयतिरक्तम् ॥ १९० ॥ छागलीपयसापी-
तापेयामण्डेनवायथान्निबलम् । जीर्णोपधश्चशालीन्पयसाछागेन
भुञ्जीत ॥ १९१ ॥ रक्ताशस्यतीसारंरक्तंसासृक्कुरुजोनिहन्यात्तु ।
वलवच्चरक्तपित्तरसक्रियैपाजयत्युभयभागम् ॥ १९२ ॥

कुडाकी छाल, सौ पल लेकर उसको कूटकर आकाशके जलमें पकावे । जब पकते २ छालका रस निकलजावे उसको उतारकर छानलेवे । फिर उसमें मोच-
रस, बाराहीकंद और भिप्युके फूलोंका चूर्ण समभाग लेकर डाले । फिर इन तीनोंके चूर्णके बराबर इन्द्रजौका चूर्ण मिलावे । इन सबको फिर आगपर

चढाकर पकावे और धीरे धीरे चलाताजावे । जब गाढा होजाय और कडछीसे लगने-
लगे तो उतारकर उत्तम चिकने पात्रमें रखदेवे । इसकी मात्रा बल,काल विचारकर
सेवन करनेसे खूनी ववासीर नष्ट होतीहै । इस औषधीको बकरीके दूध या पेयां
अथवा मण्डके साथ सेवन करना चाहिये । औषध पचजानेपर शालिचाबलोंका
भात बकरीके दूधके साथ भोजन करावे । इस कुटजरसायनके सेवन करनेसे खूनी
ववासीर, रक्तातिसार, रक्तकी पीडा, रक्तजनित विकार और प्रबल रक्तपित्त, ऊर्ध्व-
गामी और अधोगामी रक्तविकार यह सब दूर होते हैं ॥ १८८-१९२ ॥

रक्तार्शपर अन्ययोग ।

नीलोत्पलंसमङ्गामोचरसश्चन्दनंतिलालोधम् । पीत्वाछागलिपय-
साभोज्यंपयसैवशाल्यन्नम् ॥ १९३ ॥ छागलिपयःप्रयुक्तंनिहन्ति
रक्तंसवास्तुकरसश्च । धन्वविहङ्गमृगाणांसोनिरम्लःकद-
म्लोवा ॥ १९४ ॥

नीलकमल, वाराहीकंद, मोचरस, लाल चंदन, तिल और पठानी लोघ, इन
सबके चूर्णको बकरीके दूधके साथ सेवन करे । औषध जीर्ण होनेपर बकरीका दूध,
भात भोजन करे । अथवा बधुआके पत्रोंके रसको बकरीके दूधमें मिलाकर पीनेसे
खूनी ववासीर दूर होतीहै । अथवा जंगली जीवोंका मांसरस किंचित् अम्ल करके
या बिना ही खटाईसे सेवन करे तो रक्तार्श दूर होताहै ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

पाठावत्सकवीजरसाञ्जननागरंयमान्यश्च । विल्वमितिचार्षसै-
श्चूर्णितानिपेयानिसशूलेषु ॥ १९५ ॥ दावीकिराततिकंसु-
स्तंदुस्पर्शकश्चरुधिरघ्नम् । रक्तेऽतिवर्त्तमानेशूलेघृतंविधात-
व्यम् ॥ १९६ ॥

पाठ, इन्द्रजी, रसांत, सांठ, अजवायन और बेलगिरिका चूर्ण बकरीके दूधके
साथ सेवन करनेसे शूलयुक्त रक्तार्श दूर होताहै दारुहलदी, चिरायता, नागर
मोया, जवासा इन सबका चूर्ण, ववासीरके खून रोकनेके लिये परमोत्तम है । यदि
रुधिरकी अधिक प्रवृत्ति हो और अधिक पीडा होतीहो तो इन्दी दारुहलदी आदि
औषधियोंके काय और कल्कसे सिद्ध किया घृत सेवन करना चाहिये ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

कुटजफलत्रलकेशरनीलोत्पललोधधातकीकल्कैः । सिद्धंघृतंवि-
धेयंशूलेरक्तार्शसांभिपजा ॥ १९७ ॥ सर्पिःसदाडिमरसंसयावशूकं
जयत्याशु । रक्तंसशूलमथवानिदिग्धिकादुग्धिकासिद्धम् ॥ १९८ ॥

कुडाकी, छाल, इन्द्रजौ, केशर, नीलकमल, पठानी लोघ और धावेके फूल इन सबके कल्कसे सिद्ध किया घृत शूलयुक्त अर्शरोगको शान्त करताहै । अथवा अनारके रस और जवाखारसे सिद्ध किया घृत या कटेली और दूधीबूटीके कल्कसे सिद्ध किया घृत शूलयुक्त रक्ताशको दूर करताहै ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

लाजाःपेयापीताचुक्रिकाकेशरोत्पलैःसिद्धा । हन्त्याशुरक्तरोगं
तथाबलापृश्निपर्णीभ्याम् ॥ १९९ ॥ ह्रीवेरविल्वनागरनिर्घ्यूहे
साधितांसनवनीताम् । वृक्षाम्लदाडिमाम्लामल्लीकाम्लांसको-
लाम्लाम् ॥ २०० ॥ गृजनकसुरासिद्धांभृष्टांयमकेनवापिवेत्पेयाम्।
रक्तातिसारशूलप्रवाहिकाशोथनिग्रहणीम् ॥ २०१ ॥

चूका, नागकेशर, नीलोफरसे सिद्ध कीहुई खीलोंकी पेया अथवा खरैटी और पृष्ठ-
पर्णीसे सिद्ध कीहुई खीलोंकी पेया रक्ताशको शीघ्र नष्टकर्तीहै । एवं नेत्रवाला
बेलगिरि और सोंठके क्वाथसे सिद्ध कीहुई पेया मक्खनके साथ सेवन करनेसे
अथवा तित्तिडीक और अनारदानेके रसके साथ खट्टी करके या इमली और बेरके
गुद्देके साथ खट्टी करके सेवन करनेसे अथवा लहसुन और मद्यके साथ सिद्ध की
हुई पेया घृत और तेलमें छमककर पान करनेसे रक्तातिसार, शूल, मवाहिका
और सूजन यह सब नष्ट होतेहैं । १९९ ॥ २०० ॥ २०१ ॥

काश्मर्यामलकानांसकर्षुदारफलाम्लानाम् । गृजनकशाल्मली-
नांक्षीरिण्याश्चक्रिकायाश्च ॥ २०२ ॥ न्यग्रोधशुङ्गकानां
खडांस्तथाकोविदारपुष्पाणाम् । दध्नःसरेणसिद्धान्दद्याद्रक्तेप्रवृ-
त्तेऽति ॥ २०३ ॥

यदि रक्ताशमें रुधिर अधिक निकलता हो तो कुम्भेर, आमले, गुल्लड, अनार,
लहसुन, साँवल, क्षीरकालोली (या दूधी) चूका, बडके अंकुरें और दहीकी मलाई
इन सबका खडयूप बनाकर सेवन करे तो रुधिरस्त्राव बन्द होताहै ॥ २०२ ॥ २०३ ॥
सिद्धंपलाण्डुशाकञ्चतक्रेणोपोदिकांसवदराम्लान् । रुधिरस्त्रवे
प्रदद्यान्मसूरसूपञ्चतक्राम्लम् ॥ २०४ ॥ पयसाश्रुतेनयूपैर्मसू-
रमुद्गाढकीमकुष्ठानाम् । भोजनमद्यादम्लैःशालिश्यामाककोद्र-
वजम् ॥ २०५ ॥

प्याजका शाक, अथवा पोईका साग और बेरकी खटाई, छालमें सिद्ध करके रुधिरस्त्रावमें देना चाहिये । अथवा मसूरका घूप तक्रसे खटाकर पीनेको देवे । रुधिरस्त्रावमें जलसे सिद्ध किया दूध अथवा रक्तनाशक द्रव्योंके क्वाथसे या पंच-मूलादि क्वाथसे सिद्ध किया दूध अथवा मसूर, मूंग, अडहर और मोठका घूप रुधिर-स्त्रावकी शान्तिके लिये देवे । और भोजनके लिये शालिचावल, श्यामाक चावल और कोद्रव अन्नको सिद्धकर मद्य और तक्रके साथ सेवन करावे ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

शशहरिणलावमांसैःकपिअलैणैःसुसिद्धैश्च ।

भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीपत्समारिचैर्वा ॥ २०६ ॥

रक्तार्शमें खरगोश, हिरण, लवा, तीतर और एणका मांस खटाई अथवा मिठाई, थोड़ी काली मिर्चके योगसे सिद्ध करके खानेको देवे ॥ २०६ ॥

दक्षशिखितित्तिरिरसैर्द्विककुल्लोपाकजैश्चमधुराम्लैः ।

अद्याद्रसैरतिवहेष्वर्शःस्वनिलोत्वणशरीरः ॥ २०७ ॥

वातोत्वण रक्तार्शमें यदि अधिक रक्तकी प्रवृत्ति हो तो मुर्गा, मोर, तीतर, जंत अथवा लोपाकका मांसरस मधुर, अम्ल करके सेवन करावे ॥ २०७ ॥

रसखड्यूपयवागृसंयुक्तःकेवलोऽथवाजयति ।

रक्तमतिवर्त्तमानंवातश्चपलाण्डुरुपयुक्तः ॥ २०८ ॥

मांसरस अथवा खड्यूप या यवागूके साथ प्याजका सेवन करना अथवा केवल प्याज ही सेवन करना वातानुबंधी रक्तकी अधिक प्रवृत्तिको दूर करदेताहै और वायुको शान्त करताहै ॥ २०८ ॥

छागान्तराधितरुणंसरुधिरमुपसाधितंवहुपलाण्डु ।

व्यत्यासान्मधुराम्लंविदूशोणितसंक्षयेदेयम् ॥ २०९ ॥

जिस रक्तार्शवाले रोगीका मल और रक्त अत्यंत क्षीण होगयाहो उसको तरुण वक्रके मध्य देहका मांस तत्काल निकालेहुए रुधिरके साथ प्याजके योगसे सिद्धकर विपरीत क्रमसे खटा और मीठा बनाकर सेवन करावे ॥ २०९ ॥

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ।

दधिसरमथिताभ्यासादर्शास्यपयान्तिरक्तानि ॥ २१० ॥

मक्खन और काले तिलोंका सेवन करनेसे अथवा नागकेशर, मक्खन और मिमरी मिलाकर सेवन करनेसे या दहीकी मलाई और जररहित घोलके सेवन करनेसे रक्तार्श (रूनी चगसांस) अदृश्य दूर होताहै ॥ २१० ॥

नवनीतघृतं छागं मांसं सपष्टिकः शालिः ।

तरुणश्च सुरामण्डस्तरुणाचसुरानिहन्त्यजस्रम् ॥ २११ ॥

मक्खन, घृत, बकरेका मांस, साठी और शालिचावल, नवीन सुरामण्ड और नवीन मद्यके सेवन करनेसे रक्तार्शं शान्त होती है ॥ २११ ॥

प्रायेण वातबहुलान्यशांसि भवन्त्यतिस्तुतेरक्ते । दुष्टेऽपि कफपित्ते
तस्मादनिलोऽधिको ज्ञेयः ॥ २१२ ॥ दृष्ट्वा तु रक्तपित्तं प्रबलं कफवा-
तलिङ्गमल्पञ्च । शीताः क्रियाः प्रयोज्यायथेरिता वक्ष्यते चान्या ॥ २१३ ॥

ववासीरका रक्त अधिक निकल जानेसे अर्शमें प्रायः वायुका अधिक कोप होता है । इसलिये कफपित्त दूषित होनेपर भी वायु ही बलवान् होती है । अर्शमें रक्तपित्तकी अधिकता और कफवातके लक्षणोंकी अल्पता दिखाई दे तो पूर्वोक्त और जो आगे कहेंगे वह शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

मधुकंसपञ्चवल्कंवदरीत्वगुदुम्बरंधवपटोलम् । पारिपेचने विदध्या-
द्वृषककुभयवासनिम्वांश्च ॥ २१४ ॥ रक्तेऽतिवर्त्तमाने दाहे क्लेदे च

गाहयेच्चापि । मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनिःकाथे ॥ २१५ ॥

इक्षुरसमधुकवेतसनिर्युहेशीतलेपयसिवातम् । अवगाहयेत्प्रदि-
ग्धंपूर्वांशिशिरेण तैलेन ॥ २१६ ॥

मुलैठी, पंचवल्कल, (गूलर, पीपल, बड, पिलखन और वेतस मजजूकी छाल) बेरकी छाल, उदुम्बर और धवकी छाल, पटोल, अडुसा, अर्जुन, जवासा और नीमकी छाल, इन सबका काय करके रक्तार्शका परिसेचन करे ॥ अर्शका रुधिर अत्यंत स्राव होनेपर तथा दाह और क्लेद होय तो पहले रोगीके शरीरमें शीतल तैलका अभ्यंग करके फिर उसको मुलैठी, कमलकी डंडी, पद्मास, लालचंदन, कुशा और कांसकी जड़ें इन सबका काय कर शीतल होनेपर इस कायमें पिठावे । अथवा ईखके रसमें या मुलैठी और वेतसके कायमें, अथवा शीतल दूधमें अवगाहन करावे ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ २१६ ॥

दत्त्वा घृतं सशर्करमुपस्थदेशे गुदे त्रिकदेशे । शिशिरजलस्पर्शसु-
खाधाराप्रस्तम्भचीयोज्या ॥ २१७ ॥ कदलीदलैरभिनवैः पु-
ष्करपत्रैश्च शीतजलसिक्तैः । प्रच्छादनं मुहुर्मुहुरिष्टंपद्मोत्पल-
दलैश्च ॥ २१८ ॥

शिश्नेन्द्रिय, गुदा और त्रिकस्थानमें घृत और मिसरीका लेप करके ऊपरसे सुहाती २ शीतल जलकी धारा देवे तो अशके रक्तका प्रवाह बंद होजाताहै एवं कोमल ताजे केलेके पत्रोंसे अथवा शीतल जलमें भिगोकर कमल या नीलकमलके पत्रोंसे बार २ गुदाको ढकना भी रक्तार्शमें हितकारी है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

दूर्वाघृतप्रदेहःशतधौतसहस्रधौतमपिसर्पिः ।

व्यजनपवनश्चशीतोरक्तस्त्रावञ्जयत्याशु ॥ २१९ ॥

दूब और घृतका लेप करना अथवा सौवार धोएहुए या सहस्रवार धोएहुए मक्खनका लेप करना और पंखेकी पवन करना भी खूनी ववासीरके रक्तस्त्रावको बंद करताहै ॥ २१९ ॥

समङ्गामधुकाभ्यांतिलमधुकाभ्यांरसाञ्जनघृताभ्याम् । सर्जरसघृ-
ताभ्यांवानिम्बघृताभ्यामधुघृताभ्याम् ॥ २२० ॥ दार्वीत्वक्सर्पि-
भ्यांसचन्दनाभ्यामथोत्पलघृताभ्याम् । दाहेक्लेदेगुदभ्रंशोगुदजाः
प्रतिसारिणीयाःस्युः ॥ २२१ ॥

वारांहीकंद और मुलैठी, अथवा तिल और मुलैठी या रसौत और घृत, एवं रास और घृत, नीम और घृत, शहत और घृत, दारुहल्दीकी छाल और घृत, नीलकमल, लालचंदन और घृत; इनमेंसे किसी एक योगका लेप करनेसे ववासीरकीः दाह, क्लेद और गुदाका निकलना यह सब दूर होतेहैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥

आभिःक्रियाभिरथवाशीताभिर्यस्यतिष्ठतिनरक्तम् । तंकालेस्त्रिगो-
ष्णौर्मासैस्तर्पयेन्मतिमान् ॥ २२२ ॥ अवपीडकसर्पिर्भिःको-
ष्णैर्वृततैलिकैस्तथाभ्यंगैः । क्षीरघृततैलसेकैःकोष्णैःसमुपाचरे-
दाशु ॥ २२३ ॥ कोष्णेनवातप्रवलेघृतमण्डेनानुवासयेच्छीघ्रम् ।
पिच्छावस्तिदद्याद्दस्तिकालेतस्याथवासिद्धम् ॥ २२४ ॥

इन उपरोक्त शीतल क्रियाओंके करनेसे यदि अशका रुधिर बन्द न हो तो रोगीको त्रिगोष्ण मांसरसका तर्पण देवे । और ऐसे रोगीको शिरोविरेचन करनेवाले घृतका प्रयोग अथवा किंचित् उष्ण घृत तैलकी मालिश करावे । और मुखोष्ण दूध, घृत और तैलसे सेचन करे । तथा ऐसे रोगीको वात प्रवल होने तो किंचित् उष्ण घृत और मस्तुमे शीघ्र अनुवासन करे । और यथासमय आगे कही पिच्छावस्ति या सिद्धवस्तिका प्रयोग करे ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ २२४ ॥

पिच्छावस्ति और सिद्धवस्ति ।

यवासकुशकाशानामूलंपुष्पशाल्मलम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशु-
ङ्गाश्चद्विपलोन्मिताः ॥ २२५ ॥ त्रिप्रस्थेसलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थंच-
साधयेत् । क्षीरशेषंकषायञ्चपूतंकल्कैर्विमिश्रयेत् ॥ २२६ ॥ कं-
ल्काःशाल्मलिंनिर्याससमङ्गाचन्दनोत्पलम् । वत्सकस्यचवीजा-
निप्रियंगुःपद्मकेशरम् ॥ २२७ ॥ पिच्छावस्तिरयंसिद्धःसघृतक्षौ-
द्रशर्करः । प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्त्रावज्वरापहः ॥ २२८ ॥

जवासा, कुशा, कांसकी जड, सेंमलके फूल और बड, गूलर तथा पीपलके अंकुर
(कलियें) प्रत्येक दो २ पल लेवे : पानी ३ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर
पकावे । जब दूधमात्र शेष रहे तो उतारकर छानलेवे । फिर मोचरस, वाराहीकंद,
लाल चंदन, नीम, कमल, इन्द्रजौ, फूलप्रियंगु और कमलके केशर इन सबको
वारीक पीसकर कल्क बना उपरोक्त दूधमें मिलादेवे । इस कल्क मिले औषध सिद्ध
दूधसे जो वस्तिकर्म कियाजाताहै उसको पिच्छावस्ति कहतेहैं । और इसी पिच्छाव-
स्तिमें घृत,शहत और खांड मिलादेवें तो इसको सिद्धवस्ति कहतेहैं । यह दोनो प्रकारकी
वस्तियें प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तस्त्राव और ज्वरको नष्ट करतीहैं ॥ २२५-२२८ ॥

अनुवासनवस्ति ।

प्रपौण्डरीकमधुकंपिच्छावस्तौयथेरितम् ।

पिष्टानुवासनंस्नेहंक्षीरद्विगुणितंपचेत् ॥ २२९ ॥

प्रपौण्डरीक (पंडचारा) मुलैठी, तथा पिच्छावस्तिमें कहेहुए संपूर्ण द्रव्य इन
सबका कल्क बना दुगना दूध डाल तैल सिद्धकरे । इस तैलसे अनुवासन वस्ति करना
अर्शरोगमें हितकारी है ॥ २२९ ॥

ह्रिविरादिघृत ।

ह्रिविरमुत्पलंलोभ्रंसमङ्गाचव्यचन्दनम् । पाठासातिविषाविल्वंधा-
तकीदेवदारुच ॥ २३० ॥ दावीत्वङ्नागरंमांसीमुस्तंक्षारोयवाग्र-
जः । चित्रकश्चेतिपेप्याणिचाङ्गेरीस्वरसेघृतम् ॥ २३१ ॥ ऐकध्यं
साधयेत्सर्वतत्सर्पिःपरमौषधम् । अशोप्रतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्व-
रारुचौ ॥ २३२ ॥ मूत्रकृच्छ्रेगुदभ्रंशेश्वस्त्यानाहप्रवाहणे । पिच्छा-
स्त्रावेर्शासांशूलेयोज्यमेतद्विदोपनुत् ॥ २३३ ॥

सुगंधवाला, नीलकमल, पठानी लोध, वाराहीकंद, चव्य, लालचंदन, पाठा, अतीश, वेलगिरि, धावेके फूल, देवदारु, दारुहलदी, सोंठ, जटामांसी, नागरमोथा, जवाखार और चित्रक इन सबका कल्क और ओंवलेका स्वरस, मिलाकर सिद्धक्रिया घृत सेवन करनेसे, ववासीर, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डुज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, गुदाका निकलना, वस्तिरुका अफारा, प्रवाहिका, पिच्छासाव और शूलयुक्त अर्शरोग यह सब दूर होतेहैं । हवीरादिघृत त्रिदोषको भी नष्ट करता है ॥२३०॥२३१॥२३२॥२३३॥

सुनिषप्पाकचांगेरी घृत ।

अवाक्पुष्पीवलादावीपृश्निपर्णीत्रिकण्टकः । न्यग्रोधोदुम्बराश्व-
त्थशुङ्गाश्चद्विपलोन्मिताः ॥ २३४ ॥ कषायएपापेप्यास्तुजीव-
न्तीकटुरोहिणी । पिप्पलीपिप्पलीमूलंनागरंसुरदारुच ॥ २३५ ॥
कलिङ्गाःशाल्मलंपुष्पंवीराचन्द्रनमुत्पलम् । कटूफलंचित्रकंमुस्तं
प्रियंग्वतिविषास्थिराः ॥ २३६ ॥ पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कंसमङ्गास-
निदिग्धिका । विल्वंमोचरसःपाठाभागाःकर्पसमन्विताः ॥२३७॥
चतुःप्रस्थेशृतंप्रस्थंकषायमवतारयेत् । त्रिंशत्पलानिप्रस्थोऽत्रवि-
ज्ञेयोद्विपलाधिकः ॥ २३८ ॥ सुनिषण्णकचाङ्गेर्याःप्रस्थौद्वौस्वरस-
स्यच । सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ २३९ ॥ एतदर्शः-
स्वतीसारैरक्तस्त्रावेत्रिदोषजे । प्रवाहणेगुदभ्रंशेपिच्छासुविविधा-
सुच ॥ २४० ॥ उत्थानेचातिवहुशः शोथशूलेगुदाश्रये । मूत्रग्र-
हेमूढवातिमन्देऽग्नावरुचावपि ॥ २४१ ॥ प्रयोज्यंविधिवत्सर्पिर्व-
लवर्णाग्निवर्द्धनम् । विविधेष्वन्नपानेषुकेवलंवानिरत्ययमिति ॥२४२॥

अवाक्पुष्पी (सौंफ), वला, दारुहलदी, पृश्निपर्णी, गोखरू, बडके अंकुर, गूलरके अंकुर, पीपलके अंकुर यह प्रत्येक दो पल लेकर ४ प्रस्थ जलमें पकावे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर जिवन्ती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, सोंठ, देवदारु, इन्द्रजौ, सेंमलके फूल, काकोली, लाल चंदन, नील कमल, कायफल, चित्रक, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, अतीश, शालपर्णी, लाल और नीलकमलकी केशर, समंगा, (वाराहकान्ता) कटेरी, वेलगिरि, मोचरस और पाठ यह प्रत्येक दो २ तोले लेकर कल्क बनावे । चीपतियाका रस १ प्रस्थ, चांगेरीका रस १ प्रस्थ, इन सबको एकत्र कर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे । इस घृतके सेवनसे ववासीर, अतिसार, त्रिदोषज-

रुधिरसाव, प्रवाहिका, गुदाका निकलना, अनेक प्रकारका पिच्छासाव, वारंवार मलत्यागकी शंका होना, गुदाका शोथ, पीडा, मूत्रावरोध, मूढवात, मंदाग्नि और अरुचि यह सब नष्ट होतेहैं । इसके विधिवत प्रयोगसे बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । इस घृतको अकेला ही अथवा अनेक प्रकारके भोजनादिकोंमें सेवन करना चाहिये ॥ २३४-२४२ ॥

भवन्ति चात्र ।

व्यत्यासान्मधुरात्मानिशीतोष्णानिचयोजयेत् । नित्यमग्निबलापे-
क्षीजयत्यर्शःकृतान्गदान् ॥ २४३ ॥ त्रयोविकाराःप्रायेणयेपरस्प-
रहेतवः । अर्शासिचातिसारश्चग्रहणीदोषएवच ॥ २४४ ॥ एषा-
मग्निबलेहीनेवृद्धिर्वृद्धेपरिक्षयः । तस्मादग्निबलंरक्ष्यमेपुत्रिपु
विशेषतः ॥ २४५ ॥

यहां कहतेहैं कि अर्शरोगमें विपरीतक्रमसे मीठे, खट्टे, शीतल और उष्ण पदार्थोंका प्रयोग करे । और सदा जठराग्निके बलकी ओर ध्यान रखताहुआ अर्शके विकारोंको जीते । अर्शरोग, अतिसार और ग्रहणी यह प्रायः तीनों ही परस्पर एक दूसरेके कारण होतेहैं । इन तीनोंमें ही जठराग्निका बल क्षीण होनेसे रोगकी वृद्धि होती है और अग्निके बलवान् होनेसे रोगका हास होताहै । इसलिये इन तीनोंमें अग्निबलकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ २४३ ॥ २४४ ॥ २४५ ॥

भृष्टैःशाकैर्यवागूभिर्वृषैर्मांसरसैःखडैः । क्षीरतक्रप्रयोगैश्चविचित्रै-
र्गुदजाञ्जयेत् ॥ २४६ ॥ यद्वायोरानुलोम्याययदग्निबलवृद्धये ।
अन्नपानौषधंद्रव्यंतत्सेव्यंनित्यमर्शसैः ॥ २४७ ॥ यदतोवि-
परीतंस्यान्निदानेयत्प्रदर्शितम् । गुदजाभिपरीतेनतत्सेव्यंनक-
थञ्चन ॥ २४८ ॥

अर्शरोगकी शान्तिके लिये अनेक प्रकारके भुनेहुए साग, घृत, यवागृ, मांसरस, दूध और तक्रका प्रयोग करना चाहिये । जो द्रव्य वायुको अनुलोमन करनेवाले हैं जो अग्निबलको बढ़ातेहैं उन अन्नपान और औषधोंका अर्शरोगीको बराबर सेवन करना चाहिये । तथा जो इनसे विपरीत अर्थात् अर्शरोगको उत्पन्न करनेवाले द्रव्योंमें कहे गयेहैं उनको कभी भी सेवन न करे ॥ २४६ ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

तत्रश्लोकाः ।

अर्शसांद्दिविधंजन्मपृथगायतनानिच । स्थानसंस्थानलिङ्गानिसा-

ध्यासाध्यविनिश्चयः ॥ २४९ ॥ अभ्यंगाःस्वेदनंधूमाःसावगाहाःप्रले-
पनाः । शोणितस्यावसेकश्चयोगादीपनपाचनाः ॥ २५० ॥ पाना-
न्नविधिरध्यश्चवातवर्च्चोऽनुलोमनः । योगाःसंशमनीयाश्चसर्पिषि
विविधानिच ॥ २५१ ॥ वस्तयस्तक्रयोगाश्चवरारिष्टाःसशर्कराः ।
शुष्काणामर्शासांशस्ताःस्त्राविणालक्षणानिच ॥ २५२ ॥ द्विविधं
सानुबन्धानांतेपाञ्चेष्ट्यदौषधम् । रक्तसंग्रहणायोगाःपेष्याश्चविवि-
धात्मकाः ॥ २५३ ॥ स्नेहपानविधिश्चाध्योविधिःपानान्नयोश्चयः ।
परिपेकावगाहाश्चप्रदेहाःप्रतिसारणम् ॥ २५४ ॥ अतिवृत्त-
स्थरक्तस्यविधातव्यंयदुत्तरम् । तत्सर्वमिहनिर्दिष्टंगुदजानांचि-
कित्सितम् ॥ २५५ ॥

इति चरक० चि० अर्शाश्चिकित्सितंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं कि इस अर्श चिकित्सितनामक अध्यायमें सहजार्श और जन्मसे उपरांत होनेवाली अर्शोंकी अलग २ कारण, स्थान, आकृति, लक्षण, सध्यता और असाध्यताका निर्णय, अभ्यंग, स्वेदन, धुनी देना, अवगाहन, प्रलेपन, रक्तमोक्षण, दीपन और पाचनप्रयोग, वात और मलके अनुलोमन करनेवाले योग, अन्नपानविधि, संशमनीय द्रव्य, अनेक प्रकारके घृत, पस्तिर्यं, तक्रप्रयोग, शर्करायुक्त परमोत्तम अरिष्ट, सूखी ववासीरमें उपयोगी औषध प्रयोग, रक्तार्शके लक्षण और दो प्रकारके अनुबंध, औषध, रक्त रोकनेवाले अनेक औषधप्रयोग अनेक प्रकारके घृत, स्नेहपानविधि, अन्नपानविधि, रक्तके अधिक स्त्रावमें परिपेक और अवगाहन तथा प्रदेह और रक्तार्शनाशक योग, रक्तकी अतिप्रवृत्तिमें कर्तव्य यह सब वर्णन किया है ॥ २४९-२५५ ॥

इति श्रीमहापरिचरक० प्र० आयुर्वेदीय सं० चि० स्था० प्र० भा० टी० अर्शाश्चिकित्सितं
नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

अतिसारचिकित्सितम् ।

अथातोऽतिसारचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माहभग-
वानात्रेयः ।

अब हम अतिसारचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

भगवंतंखलुआत्रेयंकृताहिकंकृताग्निहोत्रमासीनमृपिगणपरिवृत-
सुत्तरेहिमवतःपाश्र्वेविनयादुपेत्यअभिवाद्यअग्निवेशउवाचभगवन् ।
अतिसारस्यप्रागुत्पत्तिनिमित्तलक्षणोपशमनानिप्रजानुग्रहार्थमा-
ख्यातुमर्हसीति ॥ १ ॥

एक समय भगवान् आत्रेयजी अग्निहोत्रादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर हिमालयके उत्तर निकुञ्जमें ऋषिगणोंसे विरेहिए बैठे थे । उस समय अति नम्रतापूर्वक वंदनाकर अग्निवेश पृष्ठनेलगे कि हे भगवन् ! अतिसार रोगकी प्रथम उत्पत्ति, कारण, लक्षण और उसके शान्त करनेका उपाय प्रजाजनोंके कल्याणके लिये कहिये ॥ १ ॥

अथभंगवानात्रेयस्तदग्निवेशवचनमनुनिशम्योवाच । श्रूयताम्
अग्निवेश ! सर्वमेतदखिलेनव्याख्यायमानम् ॥ २ ॥

अग्निवेशके इस कथनको सुनकर भगवान् आत्रेय कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! इस विषयमें हमारे संपूर्ण कथनको सुनो ॥ २ ॥

अतिसारकी उत्पत्ति ।

आदिकालेखलुयज्ञेषुपशवःसमालभनीयावभूकुर्नारम्भायप्रक्रिय-
न्तेस्व । ततोदक्षयज्ञप्रत्यवरकालंमनोःपुत्राणांमरिष्यन्नाभागेक्ष्वा-
कुकुविडचर्येत्यादीनाञ्चक्रतुपुपशूनामेवअभ्यनुज्ञानात्पशवः प्रो-
क्षणमवापुः । अतश्चप्रत्यवरकालंपृषध्रेणदीर्घसत्रेणयजमानेनपशू-
नामलाभाद्गवामालम्भःप्रावर्त्तितः । तंहृद्वाप्रव्यथिताभूत्तगणास्ते-
पाञ्चोपयोगादुपकृतानांगवांगौरवादीण्यदात्सात्म्यत्वादशस्तोपयो-
गाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसामतीसारःपूर्वमुत्पन्नःपृषध्रयज्ञे ॥ ३ ॥

पहिले समयमें यज्ञमें पशुओंका वध नहीं किया जाता था किन्तु यह यज्ञभूमिमें जैसे ही लाये जातेथे फिर दक्षके यज्ञके अनन्तर मरिष्यन्, नाभाग, इस्वाकु, कुविडचर्या आदि मनुषुत्रोंने यज्ञमें पशुओंको छोड़ देनेकी प्रथा चलाई । फिर इसके अनन्तर राजा पृषध्रने पशुओंके न मिलनेसे यज्ञमें गोवध किया इसको देखकर गौओंकी अत्यंत उपयोगिता स्मरण करतेहुए संपूर्ण प्राणी अत्यंत दुःखित हुए । और उस यज्ञमें गोमांसके गुरु और असात्म्य तथा दुष्ट भोजनके कारण भोजनकरने-

वालोंकी जठराग्नि नष्ट होगई और मन भी भ्रष्ट होगये । तब उस यज्ञमें उन मनुष्योंको अतिसार रोग प्रगट हुआ ॥ ३ ॥

वातातिसारके हेतु ।

अथापरंकालंवातलस्यवातातपव्यायामातिमात्रनिषेविणोरूक्षाल्प-
प्रमिताशिनःतीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्यउदावर्त्तयतश्चवेगाद्वायुप्र-
कोपमापद्यतेपक्ताचोपहन्यतेसवायुःकुपितोऽग्नाउपहतेमूत्रस्वेदौपुरी-
पाशयमुपहृत्यताभ्यांपुरीपंद्रवीकृत्यअतिसारायप्रकल्पते ॥ ४ ॥

अब वातादिभेदसे अतिसार रोगका वर्णन करतेहैं । वातलस्वभाववाले मनुष्यके वायु, धूप और शारीरक परिश्रमके अधिक सेवनसे अथवा अत्यंत रूक्ष अल्प और एकरस भोजनके निरन्तर सेवनसे एवं मलभूत्रादिवेगोंको रोकनेसे वायु कुपित होकर पाचकाग्निको विगाड देता है । उस अग्निके उपहत होनेसे कुपित हुआ वायु मूत्र और स्वेदको मलाशयमें प्राप्तकर मलको पतला बना अतिसार रोगको उत्पन्न करताहै ॥ ४ ॥

वातिक आमातिसारके लक्षण ।

तस्यरूपाणिविड्जलमामत्रिप्लुतमवसादितंरूक्षंद्रवंसशब्दमशब्दं
वाविवद्धमूत्रवातमतिसार्यतेपुरीपंवायुश्चान्तःकोष्ठस्यसशब्दशूलः
तिर्य्यक्चरतिविवद्धइतिआमातिसारः ॥ ५ ॥

उस वातिक अतिसारके यह लक्षण होतेहैं । जैसे मलका जलके समान होना, अपक मलका गिरना, अवसादित तथा रूक्ष, द्रव और शब्दके साथ अथवा एक-साथ शब्दरहित मलका आना, मूत्र और अधोवायुके विबंध सहित दस्त होना और कोठेमें वायु विबंधहोकर गुड गुड शब्दयुक्त शूलके साथ तिरछा गमन करे यह वायुके आमातिसारके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

वातिक पक्वातिसारके लक्षण ।

वातात्पक्वंविवद्धमल्पालंपंसशब्दंसशूलपिच्छापरिकर्तिकंहृष्टरोमा-
विनिद्रवसञ्शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुपृष्ठपार्श्वशूलीभ्रष्टगुदोमुहु-
र्मुहुर्विग्रथितमुपवेद्यतेपुरीपंवातात्तमाहुःअनुग्रन्थमइत्येकेवातानु-
ग्रन्थितवर्चस्त्वात् ॥ ६ ॥

वायुसे पक्व होकर मल बद्ध होकर अथवा विबंधयुक्त थोडा २ शब्द और शूल-सहित सागदार और कतरनेकीसी पीडायुक्त दस्त आवे उस समय रोमोंका खडा

होना, मुख सुखना, कमर, ऊरू, त्रिकस्थान, जानु और दोनों पाश्वर्धं पीडा होना, गुदाका बाहर निकलना, वारंवार गांठदार मल आना, यह पक्व वातातिसारके लक्षण हैं। वातातिसारमें इस प्रकार गांठदार मल होनेसे कोई उसको अनुग्रथित अतिसार भी कहतेहैं ॥ ६ ॥

पित्तातिसारके हेतु और संप्राप्ति ।

पित्तलस्यपुनरम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णातिमात्रनिपेविणःप्र-
तताग्निसूर्यसन्तापोष्णमारुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहुलस्यपि-
त्तंप्रकोपमापद्यते । तत्प्रकुपितंद्रवत्वादुष्माणमुपहत्यपुरीपाशय-
माश्रितमौष्ण्याद्भवत्वात्सरत्वाच्चभित्वापुरीपमतिसारायप्रकल्पते॥

पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यके खट्टे, नमकीन, चरपरे, खारे, गरम और तीक्ष्ण द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे और निरंतर अग्नि, सूर्यकी धूप और गरम वायुसे शरीरके तपायमान होनेसे तथा क्रोध और इर्ष्यावाला स्वभाव होनेसे पित्त कुपित होजाताहै। वह कुपित हुआ पित्त पतला होनेसे पाचकाश्रिको उपहत करके मला-
शयमें आश्रित हो उष्णत्व, द्रवत्व और सरत्व होनेसे मलको भेदन करदेताहै। तन अतिसार रोगको उत्पन्न करताहै ॥ ७ ॥

पित्तातिसारके लक्षण ।

तस्यरूपाणिहरिद्रहरितनीलकृष्णपित्तोपहितमतिदुर्गंधमतिसार्य-
तेपुरीपंतृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलव्रधंसन्तापपाकपरीतः ॥ ८ ॥

पित्तातिसारमें दस्तका रंग हलदीके वर्णका, हरा, नीला, काला, पित्तयुक्त, और दुर्गंधित होताहै। तथा रोगीको पसीना, दाह, मूर्च्छा, शूल, वद निकलना, या वदकासा संताप और गुदा आदिका पकना यह पित्तातिसारके लक्षण होतेहैं ॥ ८ ॥

कफातिसारके हेतु ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेविनःसम्पूरकस्याचिन्तयतो
दिवास्वप्नपरस्यालसस्यश्लेष्माकोपमापद्यते । सस्वभावाद्गुरुमधु-
रशीतस्निग्धःस्रस्तोऽग्निमुपहत्यसौम्यस्वभावात्पुरीपाशयमुपहत्यो-
पक्रेद्यपुरीपमतिसारायकल्पते ॥ ९ ॥

भारी, मीठे, शीतल और चिरने द्रव्योंका अधिक सेवन करनेमें एवं अनिभोजन,

रक्त और बल किंचित् क्षीण होजातेहैं, अग्नि मंद पडजातीहै और मुखका स्वाद, नीरस होजाताहै । इन लक्षणोंवाले त्रिदोषज अतिसारको कष्टसाध्य जानना । जिस अतिसारमें नीचे लिखे हुए वर्णोंवाला मल आताहो और रोगी इन उपद्रवोंसे युक्त हो तो उसको ग्रह असाध्य है ऐसा कहकर त्यागदेना चाहिये । वे लक्षण यह हैं । जैसे मलका वर्ण क्वाथ, रुंधिर, यकृतपिण्ड, मांसका धोवन, दही, घी, मज्जा, तेल, वसा, दूध, बेसवारके समान हो अथवा अधिक नीला या अत्यंत लाल, अत्यंत काला अथवा जलके समान स्वच्छ, मोरके पंखके समान चित्रविचित्र, अत्यंत चिकना, हरा, नीला, कसैले वर्णका, अनेक वर्णवाला, गंदला, तारदार, आमयुक्त, चकमका-हृद्युक्त, मुर्देकीसी गंधवाला, अत्यंत दुर्गंधवाला, कच्ची मछलीकी गंधवाला, जिसपर मक्खियें बहुतसी आकर चिपटती हों, पतली कीहुई धातुके समान अल्प मल और अधिक धातुवाला अथवा मलरहित-दस्त आतेहों और रोगीको प्यास, दाह, ज्वर, भ्रम, तमकश्वास, हिचकी और श्वास हो तथा दस्त अत्यंत पीडा या पीडा-रहित आतेहों, गुदा शिथिल और पाकयुक्त हो, गुदाकी त्रिवली विच्छन्न होजाय, गुदाकी नाल बाहरको निकल आवे । बल, मांस और रुधिर अत्यंत क्षीण होजाय या संपूर्ण देह, पार्श्वभाग और हड्डियोंमें पीडा प्रकट होजाय, एवं रोगी अरुचि, प्रलाप, और वेहोशीसे व्याकुल हो, अथवा यह उपरोक्त संपूर्ण उपद्रव एकाएकी शान्त होजाय तो ऐसे रोगीकी चिकित्सा नहीं करना चाहिये । यह असाध्य होताहै ॥ १२ ॥

तमसाध्यतामसंप्राप्तंचिकित्सेव्यथाप्रधानोपक्रमेणहेतूपशयदोष-
विशेषपरीक्षयाचेति ॥ १३ ॥

जो अतिसार असाध्य न हुआ हो उसकी प्रधान दोषके अनुसार हेतु, उपशय और दोष विशेषकी परीक्षा करके चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३ ॥

आगन्तूद्वावतीसारौमानसौभयशोकजौ । तत्तयोर्लक्षणंवायोर्यद-
तीसारलक्षणम् ॥ १४ ॥ मारुतोभयशोकाभ्यांशीघ्रंहिपरिकुप्यति ।
तयोःक्रियावातहराहर्षणाश्र्वासनानिच ॥ १५ ॥

दो प्रकारके आगन्तुक अतिसार होतेहैं, यह दोनों मनसे होतेहैं । जैसे श्मयातिसार २ शोकातिसार । इन दोनोंके लक्षण वातातिसारके समान होतेहैं । भय और शोकसे वायुका शीघ्र कोप होजाताहै इसलिये इसमें वातनाशक क्रिया करना चाहिये । तथा आनन्दको उत्पन्न करनेवाली और धीरज देनेवाली वार्ता आदिकोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

इत्युक्ताःषडतीसाराःसाध्यानांसाधनन्वतः ।

प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येणयथावत्तन्निबोधत ॥ १६ ॥

इस प्रकार छः प्रकारके अतिसारोंका वर्णन किया गया है । अब इससे आगे क्रमपूर्वक साध्य अतिसारोंकी चिकित्साका श्रवण करो ॥ १६ ॥

दोषाःसन्निचितायस्यविदग्धाहारमूर्च्छिताः ।

अतीसारायकल्पन्तेभूयस्तान्संप्रवर्त्तयेत् ॥ १७ ॥

जिसके दोष आहारके विदग्ध होनेसे कुपित और संचित होकर अतिसारको उत्पन्न करें । उस अतिसारवालेको विरेचन देकर दोषोंको निकालदेना चाहिये ॥ १७ ॥

नतुसंग्रहणंदिद्यंपूर्वमामातिसारिणे । विवध्यमानाःप्राग्दोषाजनय-
न्यामयान्वहून् ॥ १८ ॥ दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यशौगदांस्त-

था । शोथपाण्ड्वामंयस्त्रीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ॥ १९ ॥ तस्मादुपे-

क्षेतोत्क्लिष्टान्वर्तमानान्स्वयंमलान् । कृच्छ्रंवावहतान्दद्यादभयां
संप्रवर्त्तिनीम् ॥ २० ॥ तथाप्रवाहितेदोषेप्रशाम्यत्युदरामयः ।

जायतेदेहलघुताजठराग्निश्चवर्द्धते ॥ २१ ॥

आमातिसारमें कभी भी दस्तोंको रोकनेवाली औषध नहीं देना चाहिये, क्योंकि कच्चे दस्तोंको रोकदेनेसे दोष विवद्ध होकर बहुतसे रोगोंको उत्पन्न करतेहैं । जैसे दण्डकवायु, अलसक, अफारा, संग्रहणी, अशरोग, सूजन, पाण्डु, एडीरोग, कुष्ठ, गुल्म, उदररोग और ज्वर इन रोगोंको उत्पन्न करताहै । इसलिये उठेहुए प्रचलित दोष और मलोंको प्रथमही रोकना नहीं चाहिये । यदि मल कठिनतासे उतरताहो तो मलके निकालनेके लिये हरडे खिलाकर विरेचन करादेना चाहिये । हरड द्वारा दोष निकलजानेसे पेटके विकार शान्त होजातेहैं और शरीर हल्का होजाता है तथा जठराग्निकी वृद्धि होताहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

प्रमथ्यामध्यदोषाणांदद्याद्दीपनपाचनीम् ।

लंघनश्चाल्पदोषाणांप्रशस्तमतिसारिणाम् ॥ २२ ॥

अतिसारमें दोषोंका बल मध्यम होवे तो दीपन, पाचन औषधका प्रयोग करना चाहिये । और अल्प दाप बलपाठे अतिसारमें लंघन कराना ही हित है ॥ २२ ॥

अतिसारकी चिकित्सा ।

पिप्पलीनागरंधान्यंभूतीकमभयावचा । ह्रीवेरंभद्रमुस्तानिविल्वं-

वेफिकरी, दिनमें सोना, आलसी बने रहना, इन कारणोंसे कफप्रधान मनुष्योंके शरीरमें कफ कुपित होताहै। कफ स्वभावसे ही मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीत और शिथिल होनेसे जठराग्निको उपहत करके सौम्यभावसे मलाशयमें प्राप्त हो मलाशयके बलको क्षीण और क्लेशित कर कफातिसारको प्रगट करता है ॥ ९ ॥

कफातिसारके लक्षण ।

तस्यरूपाणिस्लिग्धंश्वेतंपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदुर्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबन्धशूलमल्पामभीक्षणमतिसार्यतेसप्रवाहिकंगुरुदरगुदवस्तिबंधणोद्देशःकृतापकृतसंगोभवतिसलोमहर्षःसोत्केशो निद्रालस्यपरीतःसादनोऽन्नद्वेषीचेतिश्लेष्मातिसारः ॥ १० ॥

उस कफातिसारके यह लक्षण होतेहैं। जैसे स्निग्ध, सफेद, पिच्छिल, तंतुयुक्त, आँववाला, भारी, दुर्गन्धित, कफयुक्त, पीडाके साथ थोडा २ दस्त आना। और प्रवाहिका, तथा पेट, गुदा, वस्ति और बंधण (वस्त्रियों) में भारीपन, कभी बँधा हुआ कभी पतला मल उतरना, रोमांच, कफका उत्केश, निद्रा, आलस्य, बंगोंका सो जाना और अन्नमें अरुचि यह कफातिसारके रूप (लक्षण) जानना ॥ १० ॥

सन्निपातातिसारके हेतु और संप्राप्ति ।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुखरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यत्किञ्चिदभ्यवहरणाद्दुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्मणांविषमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसेवनादस्वप्नादतिस्वप्नाद्वेगविधारणादनुविपर्ययादयथावलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्किमिशोपज्वराशौंविकारातिकर्शनाद्वाविपन्नाश्रेस्त्रयोदोषाप्रकुपिताभूयएवमिमुपहत्यपकाशयमनुप्रविश्यतीसारंसर्वदोषलिङ्गजनयन्ति ॥ ११ ॥

अत्यंत शीतल, चिकने, रूखे, गरम, भारी, खर, कठिन, पदार्थोंके सेवनसे विषम विरुद्ध और असात्म्य भोजनके सेवनसे, समयातीत भोजन और अल्पभोजन करनेसे, दूषित मद्य और दूषित जल, पीनेसे, अतिमद्यपान, संचितमलका शोधन न करना, वार २ विरेचन कराना, अग्नि, सूर्यका ताप, अधिक वायु, अधिक जल, इनके अधिक सेवनसे, न सोने अथवा अधिक सोनेसे, मलमूत्रादिवेगोंको रोकनेसे,

ऋतुओंके विपर्ययसे सामर्थ्यसे अधिक बल करनेसे, एवं भय, शोक और चित्तोद्वेगके अतियोगसे, या कृमि, शोष, ज्वर और अर्शरोगसे; एवं अतिकर्पणसे मंदाग्निवाले मनुष्योंके शरीरमें वातादि तीनों दोष कुपित होकर जठराग्निको फिर उपहत करके मलाशयमें प्रविष्ट हो सर्व दोषोंके लिंगोंवाले अतिसार रोगको प्रगट करतेहैं ॥ ११ ॥

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण ।

अपिच । शोणितादीन्धातून्तिप्रदुष्टान्दूपयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति । तत्रशोणितादिपुधातुपुअतिप्रदुष्टेषु, हारिद्रहरितनीलमाञ्जिष्ठमांसधावनसन्निकाशंरक्तंकृष्णंश्चेतंवराहमेदःसदृशमनुबद्धवेदनमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशकृद्प्रथितमामंसकृत्सकृदपिपक्मनतिक्षीणमांसशोणितवलोमन्दाग्निर्विहतमुखरसस्तादृशमातुरंकृच्छ्रसाध्यंविद्यात् । एभिर्वर्णैरतिसार्य्यमाणंसोपद्रवमातुरमसाध्योऽयमितिप्रत्याचक्षीत् । तद्यथा—काथशोणिताभ्यंकृत्पिण्डोपमंमांसोदकसन्निकाशंदधिघृतमज्जातैलवसाक्षीरवेशवाराभमतिनीलमतिरक्तमतिकृष्णमुदकमिवाच्छंपुनर्मेचकाभमतिस्निग्धंहरितनीलकषायवर्णंकर्बुरमाविलंतन्तुमदामंचन्द्रकोपगतमतिकुणपपूतिपूयगन्धमाममत्स्यगन्धिमक्षिकाक्रान्तंक्थितवहुधातुद्रवमल्पपुरीषमपुरीषंवातिसार्य्यमाणंतृष्णादाहज्वरभ्रमतमकहिक्काश्वासानुबन्धमतिवेदनमवेदनंवास्त्रस्तपक्वगुदंपतितगुदवलिमुक्तनालमतिक्षीणवलमांसशोणितंसर्वपार्श्वस्थिशूलिनमरोचकातिप्रलापसंमोहपरीतंसहसोपरतविकारमतिसारिणमचिकित्स्यंविद्यादितिसन्निपातातिसारः ॥ १२ ॥

तथा त्रिदोषज अतिसारमें रक्तादि संपूर्ण धातुयें दूषित होजातीहैं । उन दूषित धातुओंके स्वभावानुसार अतिसारका वर्ण विशेष होताहै । रक्तादिधातु अत्यंत दुष्ट हों तो हलदीके समान पीला, हरा, नीला, मजीठके समान, वर्णवाला, मांसके धोवनके समान, लाल, काला, सफेद, बाराहकी चर्बीके समान शूलयुक्त अथवा शूलके बिना थोडा २ या अनेक प्रकार विपरीतभावसे कभी गांठदार-कभी कच्चा, कभी पक्कर मल आने लगताहै । इस त्रिदोषातिसारमें रोगीका मांस

नागरधान्यकम् ॥ २३ ॥ पृश्निपर्णीश्वदंष्ट्राचसमांशाकण्टका-
रिका । तिस्रःप्रमथ्याविहिताःश्लोकाद्धैवतिसारिणाम् ॥ २४ ॥

१ पीपल, सोंठ, धनियां अजवायन, हरडे और वच । २ नेत्रवाला, भद्रमोथा, बेलगिरी, सोंठ और धनियां । ३ पृष्ठपर्णी, गोखरू और इन दोनोंके बराबर कटेली यह आधे २ श्लोकमें कहेहुए तीन योग अतिसारमें हितकारी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

वचाप्रतिविषाभ्यांवामुस्तपर्यटकेनवा ।

हीवेरशृङ्गवेराभ्यांपक्वंवापाययेज्जलम् ॥ २५ ॥

वच और अतीश, नागरमोथा और पापडा, अथवा नेत्रवाला और सोंठ, डालकर पकायाहुआ जल पीनेको देना अतिसारमें हितकारी है ॥ २५ ॥

युक्तेऽन्नकालेक्षुत्क्षामंलघून्यन्नानिभोजयेत् । तथासशीघ्रमाप्नोति
रुचिमग्निबलंवलम् ॥ २६ ॥ तक्रेणावन्तिसोमेनयवाग्वातर्षणे-
नवा । सुरयामधुनाचादौयथासात्म्यमुपाचरेत् ॥ २७ ॥ यवागू-
भिर्विलेपीभिःखड्यूपैरसौदनैः । दीपनग्राहिसंयुक्तैःक्रमश्चस्या-
दतःपरम् ॥ २८ ॥

अतिसारमें क्षुधा लगनेपर हलके अन्नका भोजन देवे । ऐसा करनेसे रुचि जठ-
राग्नि और बलकी वृद्धि होतीहै । प्रथम भोजनके लिये प्रकृतिके अनुसार जैसे
सात्म्य हों तक्र, कांजी, यवागू तर्पण या सुरा अथवा शहदका प्रयोग करना चाहिये ।
फिर क्रमपूर्वक दीपन और संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई यवागू, विलेपी, खड्यूप,
मांसरस और भात आदि भोजनके लिये प्रयुक्त करे ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

शालपर्णीपृश्निपर्णीवृहतीकण्टकारिकाम् । बलांश्वदंष्ट्रां विल्वानि
पाठांनागरधान्यकम् ॥ २९ ॥ शर्टीपलाशंहपुपां वचांजीरकपिप्प-
लीम् । यमानींपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ॥ ३० ॥ वृक्षा-
म्लंदाडिमांम्लश्चसर्हिगुविडसैन्धवम् । प्रयोजयेदन्नपानेविधि-
नासूपकल्पितम् ॥ ३१ ॥ वातश्लेष्महरोह्येपगणोदीपनपाचनः ।
ग्राहीबल्योरोचनश्चतस्माच्छस्तोऽतिसारिणाम् ॥ ३२ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेली, बला, गोखरू, बेलगिरी, पाठ, सोंठ, धनियां,
कचूर, टाक, हाडवेर, वच, जीरा, पीपल, अजवायन, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल,
अमलपेत, अनारदाना, हांग, विडनमक, सैधानक, इन सबका विधिपूर्वक जलमें

व्यंजनकी भांति रस बना अतिसारके रोगीको अन्नपानमें दियाकरे । यह शालपण्यादि औषधोंका गण वात और कफकी हरनेवाला दीपन, पाचन, संग्राही, बलकारक, रुचिकी प्रकट करनेवाला है । इसीलिये इसका प्रयोग अतिसार रोगवालोंके लिये परमोत्तम है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

आमेपरिणतेयस्तुविवन्धमतिसार्यते । सशूलपिच्छमल्पाल्पंवहु-
शःसप्रवाहिकम् ॥ ३३ ॥ तंमूलकानांयूपेणवदराणामथापिवा ।
उपोदिकायाःक्षीरिण्यायमान्यावास्तुकस्यवा ॥ ३४ ॥ सुवर्चलायाश्च-
श्रोर्वाशाकेनावल्गुजस्यवा । शठ्याःकर्कारुकाणांवाजीवन्त्याश्चिर्भ-
टस्य वा ॥ ३५ ॥ लोणीकायाःसपाठायाः शुष्कशाकेनवापुनः ।
दधिदाडिमसिद्धेनबहुस्त्रेहेनभोजयेत् ॥ ३६ ॥

आमके पकजानेसे जिसका दस्त बद्ध होगयाहो तो शूलयुक्त पिच्छल और थोडा २ वार वार आताहो । प्रवाहिकासे युक्त हो तो उस रोगीको मूली अथवा बेर या पोईका यूप अथवा खिरनी या अजवायन या बथुआ अथवा ब्राह्मी या हुल-हुलका यूप एवं चंबु, नाडीका साग सोमराजी, कचूर, ककीरू (कडू) जीवन्ती, चिरभट, लोनिर्घाँ और पाठा इनमेंसे किसी एकका सूखा साग लेकर उसको विधिवत् सिद्धकर दही और अनारकी खटाई तथा बहुतसा घृत मिला भोजन करावे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

प्रवाहिकाका यत्न ।

कल्कःस्याद्वालविल्वानांतिलकल्कश्चतत्समः ।

दध्नःसरोऽल्मस्त्रेहाद्यःखडोह्न्यात्प्रवाहिकाम् ॥ ३७ ॥

कच्चे विल्वका कल्क और उसके समान तिलोंका कल्क और दहीकी मलाई, अनारका रस और घृत इनसे खडूयूप बनाकर सेवन करे तो प्रवाहिका (पेचिस) दूर हो ॥ ३७ ॥

यवानांमुद्गमापाणांशालीनाश्चतिलस्यच । कोलानांवालविल्वा-
नांधान्ययूपंप्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥ ऐकध्यंयमकेभृष्टंदधिदाडिमसा-
धितम् । वर्चःक्षयेशुष्कमुखंशाल्यन्नतेनभोजयेत् ॥ ३९ ॥

यदि मलके क्षय होजानेसे रोगीका मुख सूखजाय तो उसको जव, मूंग, उडद, चावल, तिल, बेर, कच्चे विल्वकी गिर और दही, अनारदानेका रस इनका धान्ययूप बनाकर तेल और घृतसे भर्जितकर पुगने चावलोंके भातके साथ खानेको देवे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

दध्नःसरंवायमकेभृष्टसगुडनागरम् । सुरांवायमकेभृष्टांव्यञ्जना-
र्थप्रदापयेत् ॥ ४० ॥ फलाम्लंयमकेभृष्टंयूपंगृञ्जनकस्यवा । लोपा-
करसमम्लंवास्त्रिग्धाम्लंकच्छपस्यवा ॥ ४१ ॥ वह्नितित्तिरिदक्षा-
णांवर्त्तकानांतथारसः । स्त्रिग्धाम्लाःशालयश्चाश्यावर्चःक्षयरुजा-
पहाः ॥ ४२ ॥

अथवा दहीकी मलाई, गुड और सोंठ, इनको यमकंस्नेहमें भूनकर अथवा सुराको घृत तैलमें छौंककर भोजनके साथमें देवे । अथवा लहसुनका रस और अनार-दानेका रस घृत तैलमें छौंककर अथवा लोपाकका मांसरस अनारके रसयुक्त कर या कछुएका मांस स्त्रिग्ध और खट्टा करके भातके साथ देवे । अथवा मोर, तीतर, मुर्गा या बटेरका मांसरस स्त्रिग्ध और अम्ल करके उत्तम पुराने चावलोंके भातके साथ खानेको देवे तो मलके क्षय होनेसे उत्पन्न हुए विकार शान्त होतेहैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अन्तराविरसंपूत्वारक्तंमेपस्यचोभयम् । पचेद्वाडिमसाराम्लंस-
धान्यस्त्रेहनागरम् ॥ ४३ ॥ भोजनंरक्तशालीनांतेनाद्यात्प्रपिवेच्च
त्तत् । तथावर्चःक्षयकृतैर्व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

मंडेके मध्यभागके मांसरसमें मंडेका रुधिर मिलाकर छानलेवे । फिर इसमें अनारका रस, धनियां, घृत, सोंठ मिलाकर फिर व्यंजनपाकविधिसे सिद्धकरले । इस रसके साथ उत्तम पुराने चावलोंका भात भोजन करावे तो मलके क्षय होनेसे उत्पन्न हुए विकार दूर होतेहैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

गुदभ्रंशकी चि० ।

गुदानिःसरणेशूलेपानमम्लस्यसर्पिषः ।

प्रशस्यतेनिरामाणामथत्राप्यनुवासनम् ॥ ४५ ॥

-यदि अंतिसारवाले रोगीकी गुदा बाहर निकल आवे और शूल होताहो तो चूकाकी खटाई और घृत मिला पीना चाहिये । यदि रोगीका उदर जामरहित हो तो अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे ॥ ४५ ॥

चांगेरीघृत ।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ।

घृतमुत्कथितंपेयंगुदभ्रंशरुजापहम् ॥ ४६ ॥

चांगेरी, (चूका) वेर, दही, अनारका रस, सोंठ और जवाखार इन सबको मिलाकर सिद्ध किया घृत गुदभ्रंश और शूलको दूर करताहै ॥ ४६ ॥

चव्यादिघृत ।

सचव्युपिप्पलीमूलंसव्योपविडदाडिमम् ।

पेयमम्लंघृतंयुक्त्यासधान्याजाजिचित्रकम् ॥ ४७ ॥

चव्य, पीपलामूल, मिर्च, पीपल, सोंठ, विडनमक, अनारदाना, धनियां, जीरा और चित्रक इनसे सिद्ध किया हुआ घृत पीनेसे गुदभ्रंश (कोंच निकलना) दूर होताहै ॥ ४७ ॥

अनुवासन प्रयोग ।

दशमूलोपसिद्धंवासविल्वमनुवासनम् । शताह्वाशटिविल्वैर्वावच-
याचित्रकेणवा । स्तब्धभ्रष्टगुदेपूर्वस्नेहस्वेदौप्रयोजयेत् । सुस्वि-
न्नश्चमृदुभूतंपिचुनासंप्रवेशयेत् ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

दशमूल और कच्चे वेलगिरिसे सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन वंस्ति करना अथवा सोंफ, कचूर और वेलगिरिसे सिद्ध किये तैल या वच, और चित्रकसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करना गुदस्तम्भ और गुदभ्रंशको दूर करताहै । किन्तु पहिले स्नेहन और स्वेदन करनेपर जग गुदा नरम होजाय तो इस तैलमें उत्तम रूईका फोहा भिगीकर अनुवासन (गुदामें प्रवेश) करे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

विवन्धवातवर्चास्तुवहुशूलप्रवाहिकः । सरक्तपिच्छतृष्णार्त्तःक्षीर-
सौहित्यमर्हति । यमकस्योपरिक्षीरंधारोष्णंवापिवेन्नरः ॥ ५० ॥

शृतमैरण्डमूलेनवालविल्वेनवापयः । एवंक्षीरप्रयोगेणरक्तंपिच्छा-
वशाम्यति । शूलंप्रवाहिकाचैत्रविवन्धश्चोपशाम्यति ॥ ५१ ॥

जिस रोगीका अधोवायु और मल बद्ध होगयाहो तयां प्रवाहिका (पेशिश) और शूल अत्यंत बढगयाहो तथा रक्त और पिच्छिल मल निकलना हो और प्याससे व्याकुल हो तो उसको पेटभरकर दूध पिलावे । अथवा घी और तैल पिलाकर ऊपरमे धारोष्ण दूध पिलावे । या एरंडकी जड अथवा कच्ची वेलगिरिसे सिद्ध किया दूध पिलावे । इस प्रकार दूधके पीनेसे रक्तमत्र, पिच्छाशूल, प्रवाहिका और विन्ध यह सब शान्त होतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

पित्तातिसारकी चि० ।

पित्तातिसारंपुनर्निदानोपशयाकृतिभिरामान्दयमुपलभ्ययथांचलं

लङ्घनपाचनाभ्यामुपाचरेत् ॥ ५२ ॥ 'तृष्यतस्तुमुस्तर्पटकोशीर-
शारिवाचन्दनकिराततिक्तकोदीच्यवारिभिरुपचारः ॥ ५३ ॥

पित्तके अतिसारमें निदान, उपशय और लक्षणोंसे आमका अनुबंध प्रतीत हो तो यथाबल लंघन और पाचन देवे । यदि रोगी तृपासे व्याकुल हो तो मोथा, पापडा, खस, सारिवा, लाल चंदन, चिरायता और नेत्रवाला इनसे पकाया जल शीतल कर देवे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

लंघितस्यचाहारकालेवलातिवलासूर्य्यशालपर्णीपृश्निपर्णीवृहती-
कण्टकारिकाशतावरीश्वदंष्ट्रानिर्यूहसंयुक्तेनयथासात्म्यंयवागूम-
ण्डादिनातर्पणादिनावाक्रमेणोपचारः ॥ ५४ ॥

लंघन करानेके अनन्तर भोजनके समय बला, अतिवला, मुग्धपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, शतावर, गोरखरू इनके क्वाथके साथ यवा-
गूमण्ड अथवा तर्पणादि सात्म्यके अनुसार क्रमपूर्वक भोजनके लिये देवे ॥ ५४ ॥

मुद्गमसूरहरेणुमकुष्ठक्यूषैर्वालावकापिअलशशहरिणैण्येकालपु-
च्छकरसैरीपदम्लैरनम्लैर्वाक्रमशोऽग्निं सन्धुक्षयेत् ॥ ५५ ॥

मूंग, मसूर, हरेणु और मोठ, इनका यूप अथवा लवा, तीतर, शगा, हिरण,
काला हिरण, कालपुच्छक हिरण इनके मांसरसको अनारकी खटाईसे अम्लकर
अथवा बिना अम्ल किये क्रमपूर्वक पीनेको देवे तो अग्नि चैतन्य हो ॥ ५५ ॥

अनुबन्धत्वेतुअस्यदीपनीयपाचनीयोपशमनीयसंग्रहणीयान्योगा-
न्प्रयोजयेदिति ॥ ५६ ॥

यदि इन क्रियाओंसे अतिसार रोग शान्त होकर उसका कुछ अंग शेष रहजाय
तो दीपन, पाचन, उपशमन और संग्राही योगोंका प्रयोग करे ॥ ५६ ॥

पित्तातिसारपर योग ।

भवन्तिचात्र ।

सक्षौद्रातिविषंपिष्टावत्सकस्यफलत्वचम् ।

पित्रेत्पित्तातिसारघृतण्डुलोदकसंयुतम् ॥ ५७ ॥

पीस, अतीम, इन्द्रजी, आंग कुटाकी छालको शहद आंग तण्डुलजलके साथ
सोखन करे तो पित्तातिसार दूर हो ॥ ५७ ॥

किराततिक्तकंमुस्तंबत्सकःसरसाअनः । विल्वंदारुहरिद्राअत्वग्धी-

चेरंदुरालभाम् ॥ ५८ ॥ चन्दनञ्चमृणालञ्चनागरंलोध्रमुत्पलम् ।
तिलामोचरसोलोध्रंसमङ्गाकमलोत्पलम् ॥ ५९ ॥ उत्पलंघात-
कीपुष्पंदाडिमत्वक्महौषधम् । कट्फलंनगरंपाठाजम्बाम्नास्थि
दुरालभाः ॥ ६० ॥ योगाःपडेतेसक्षौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः ।
पेयाःपित्तातिसारघ्नाःश्लोकाञ्छेननिदर्शिताः ॥ ६१ ॥

१-चिरायता, नागरमोयो, कुडाकी छाल, और रसौत, २-त्रेलगिरि, दास-
हलदी, दालचीनी, नेत्रवाला और जवासा, ३-लाल चंदन, कमलकी डण्डी, सोंठ,
लोध, और नीलकमल, ४-तिल, मोचरस, पठानी लोध, लाजवंती, नील कमल
और लाल कमल; ५-नीलकमल, धूपके फूल, अनारका छिलका और सोंठ । ६-
कायफल, सोंठ, पाठ, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली और जवासा, इन आधे २
श्लोकोंमें कहेहुए छः प्रयोगोंमेंसे किसी एकका वारीक चूर्ण शहद और तण्डुलजलके
साथ सेवन करनेसे पित्तातिसार दूर होजाताहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

जीर्णोपधानांशस्यन्तेयथायोगंप्रकल्पितैः ।

रसैःसांग्राहिकैर्युक्ताःपुराणारक्तशालयः ॥ ६२ ॥

औषध जीर्ण होनेपर उसी प्रयोगकी औषधोंसे सिद्ध किया संग्राही मांसरस पुगने
लाल शालीचावलोंके भातके साथ भोजन करावे ॥ ६२ ॥

पित्तातिसारोदीप्ताग्नेःक्षिप्रंसमुपशाम्यति । अजाक्षीरप्रयोगेणवलं
वर्णश्चवर्द्धते ॥ ६३ ॥ बहुदोषस्यदीप्ताग्नेःसप्राणस्यनतिष्ठति ।
पैत्तिकोयद्यतीसारःपयसातंविरेचयेत् ॥ ६४ ॥

दीप्ताग्निवाले मनुष्यका पित्तातिसार शीघ्र शान्त होजाताहै । उसको बकरीका दूध
पिलानेसे बल और वर्णकी वृद्धि होतीहै । बहुत दोषवाले दीप्ताग्नियुक्त बलवान
पित्तातिसारवालेको दूधके साथ विरेचन करानेसे अतिसार दूर होताहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पलाशफलनिर्यूर्यहंपयसापाययेत्तुतम् । ततोऽनुपाययेत्कोष्णक्षीर-
मेवयथाचलम् ॥ ६५ ॥ प्रवाहितेतेनमलेप्रशाम्यत्युदरामयः ।
पलाशवत्प्रयोज्यावात्रायमाणाविशोधिनी ॥ ६६ ॥

दूधके साथ विरेचन देनेमें डाककी फलियोंका काय दूधमें मिलाकर पियावे ।
किर यथाशक्ति किंचित् उष्ण दूधका अनुपान करावे । इस प्रकार मल निकल
जानेपर पेटका विकार शान्त होजाताहै । अथवा डाककी फलियोंकी जगह त्रायमा-
णका काय दूधमें मिलाकर मलके शोधनके लिये प्रयुक्त करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ -

पित्तातिसारमें अनुवासन ।

संसर्ग्याक्रियमाणायांशूलयद्यनुवर्त्तते । स्तुतदोषस्यतंशीघ्रंयथाव-
दनुवासयेत् ॥ ६७ ॥ शतपुष्पावरीभ्याञ्चपयसामधुकेनच । तैल-
पादंघृतंसिद्धंसवित्वमनुवासनम् ॥ ६८ ॥ कृतानुवासनस्यापिक्लृ-
तसंसर्जनस्यच । वर्त्ततेयद्यतीसारःपिच्छावस्तिरतःपरम् ॥ ६९ ॥

मल शोधन करनेके अनन्तर पेयादिके क्रमका पालन करनेपर भी यदि शूल आदि
रहजाय तो दोष निकालनेके अनन्तर विधिपूर्वक अनुवासन कर्म करे । सौंफ, शता-
वर, दूध, मुलैठी, घी और घीसे चौथा भाग तेल, बेलगिरि इन सबको तैलपाक
विधिसे सिद्ध करके अनुवासनमें प्रयुक्त करे । अनुवासन कर्म करनेपर भी पेयादिक-
मका पालन करतेहुए अतिसार संपूर्णरूपसे निःशेष शान्त न हो तो पिच्छावस्तिका
प्रयोग करे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

पिच्छा वस्ति ।

परिवेष्ट्यकुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानिशात्मलेः । कृष्णमृत्तिकयालिप्यस्वे-
दयेद्भोमयाग्निना ॥ ७० ॥ सुशुष्कांमृत्तिकांज्ञात्वातानिवृन्तानिशा-
त्मलेः । शृतेपयसिमृद्नीयादापोथ्योलूखलेततः ॥ ७१ ॥ पिष्टंमु-
ष्टिसमंप्रस्थेतत्पूतंतैलसर्पिषा । योजितंमात्रयायुक्तंकल्केनमधुक-
स्यच ॥ ७२ ॥ वस्तिमभ्यक्तगात्रायदद्यात्प्रत्यागतेततः । स्नात्वा
भुञ्जीतपयसाजाङ्गलानारसेनवा ॥ ७३ ॥ पित्तातिसारज्वरशोथ-
गुल्माजीर्णातिसारग्रहणीप्रदोषान् । जयत्ययंशीघ्रमतिप्रवृद्धान्वि-
रेचनास्थापनयोश्चवस्तिः ॥ ७४ ॥

सेमलके फूलोंकी जडकी थोरकी गीली कच्ची टोपिये लेकर उनको हरी कुशाआसे
लेपेटकर ऊपरसे काली मिट्टीका लेप करे । फिर इस गोलेको मृदु आगमें पकावे
नव ऊपरकी मट्टी स्रष्टजाय तो बीचमेंसे सौंवलके फूलोंकी टोपिये निकालकर ऊपर-
लमें भली प्रकार कूटलेवे । वह कुटीहुई सौंवलकी कलिये ५ तोला लेकर १ सेर
दूधमें पकावे । इस दूधमें तैल घृत और मुलैठीका कल्क मिलाकर इसमें वस्तिकर्म
करे । किन्तु वस्ति देनेसे प्रथम रोगीके शरीरपर तैलकी मालिशकर लेना चाहिये ।
जब वस्तिद्राग भीतर गया द्रव्य बाहर निकलचुके फिर रोगीको स्नान कराके दूध
अथवा जांगलजीवांका मांसरस पिलावे । इस वस्तिके प्रयोगसे पित्तातिमार, ज्वर,

सूजन, गुल्म, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, विरेचन और आस्थापनके मिथ्यायोगसे उत्पन्न हुए सब प्रकारके रोग दूर होजातेहैं ॥ ७०-७४ ॥

रक्तातिसारकी संप्राप्ति ।

पित्तातिसारीयस्त्वेतांक्रियांमुक्त्वा निषेवते । पित्तलान्यन्नपानानि
तस्यपित्तमहाबलम् ॥ ७५ ॥ कुर्याद्रक्तातिसारन्तुरक्तमाशुप्रदूष-
येत् । तृष्णांशूलंविदाहञ्चगुदपाकञ्चदारुणम् ॥ ७६ ॥

जो पित्तातिसारवाला रोगी उपरोक्त क्रियाको छोड़कर पित्तके बढानेवाले अन्न-
पानोंका सेवन करताहै उसका पित्त अत्यंत प्रकोपको प्राप्त होकर रक्तको अत्यंत
दूषित करके रक्तातिसारको उत्पन्न करदेताहै । उसमें प्यास, शूल, विदाह और
गुदाका दारुण पाक यह उपद्रव होतेहैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

रक्तातिसारकी चिकित्सा ।

छागंतत्रपयःशस्तंशीतंसमधुशर्करम् । पानार्थेव्यञ्जनार्थंचगुदप्र-
क्षालनंतथा ॥ ७७ ॥ भोजनंरक्तशालीनांपयसातेनभोजयेत् ।
रसैःपारावतादीनांघृतभृष्टैःसशर्करैः ॥ ७८ ॥ शशपक्षिमृगाणाञ्च
शीतानांवनचारिणाम् । रसैरनम्लैःसघृतैर्भोजयेत्तंसशर्करैः ॥ ७९ ॥
रुधिरंमार्गमाजंवाघृतभृष्टंप्रशस्यते । काश्मर्याःफलयूपोवाकिञ्चि-
दम्लःसशर्करः ॥ ८० ॥

रक्तातिसारमें शहद और मिसरी मिलाहुआ बकरीका शीतल दूध पीना परम
हितकारी है । यह दूध पीनेमें, तथा व्यंजनमें और गुदाको धोनेमें प्रयुक्त करना
चाहिये । इसी दूधको लाल शालीचावलोंके भातके साथ भोजनमें प्रयुक्त करे ।
अथवा कवूतर आदि पक्षियोंके मांसरसको घीमें भूनकर मिसरी मिला पिलावे । या
खरगोश, पक्षी, मृग आदि शीतवीर्य मांसका रस खटाईके बिना घी और मिसरी
मिला पिलावे । अथवा मृगका रक्त या बकरीका रक्त घृतमें भूनकर पिलावे । अथवा
कुंभेरके फलोंका यूप, किंचित् खटाई और मिसरी मिला पिलावे ॥ ७७-८० ॥

नीलोत्पलंमोचरसोसमङ्गपद्मकेशरम् । अजाक्षीरयुतंदव्याज्जीर्णं
चपयसौदनम् ॥ ८१ ॥ दुर्बलंपाययित्वावातस्यैवोपरिभोजयेत् ।

प्रागुक्तंनवनीतंवादद्यात्समधुशर्करम् ॥ ८२ ॥

नीलकमल, मोचरस, वाराहकांता और कमलकी केसर इन सबका चूर्ण बनाकर

बकरीके दूधके साथ देवे । क्षुधा लगनेपर बकरीका दूध और पुराने शालिचावलोंका भात खिलावे यदि रोगी दुर्बल हो तो औषधपान करनेके अनन्तर ही भोजन करवै । अथवा बकरीके दूधका मक्खन शहत और मिसरी मिलाकर चटावे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

प्राश्यक्षीरोत्थितंसर्पिकपिञ्जलरसाशनः । त्र्यहादारोग्यमाप्नोति
पयसाक्षीरभुक्तथा ॥ ८३ ॥ पीत्वाशतावरीकल्कंपयसाक्षीरभुग्-
जयेत् । रक्तातिसारंपीत्वावातथासिद्धंघृतनरः ॥ ८४ ॥

दूधसे निकाले मक्खनको खाकर ऊपरसे कर्पिजल (सफेद तीतर) का मांसरस पीवे । अथवा जल मिलाहुआ बकरीका दूध तीन दिन तक पीवे तो रक्तातिसार दूर होताहै ॥ ८३ ॥ शतावरके कल्कको जलयुक्त दूधमें मिलाकर पीवे और दूधका ही भोजन करे । अथवा शतावरके कल्कसे सिद्ध किया घृत पीवे तो रक्तातिसार दूर हो ॥ ८४ ॥

घृतंयवागूमण्डेनकुटजस्यफलैःशृतम् ।

पेयंतस्यानुपातव्यापेयारक्तोपशान्तये ॥ ८५ ॥

इन्द्रजौ और यवागुमण्डसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेयाका पान करे तो रक्तातिसार शान्त होताहै ॥ ८५ ॥

अतिसारनाशक योग ।

त्वक्चदारुहरिद्रायाःकुटजस्यफलानिच । पिप्पलीशृङ्गवेरञ्जला-
क्षाकंदुकरोहिणी ॥ ८६ ॥ पद्भिरेतैर्घृतंसिद्धंपेयामण्डावचारि-
तम् । अतीसारंजयेच्छीघ्रंत्रिदोषमपिदारुणम् ॥ ८७ ॥

दारुहलदीकी छाल, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ, लाख, कुटकी, इन छः औषधियोंसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेया मण्डका अनुपान करे तो त्रिदोषजनित दारुण अतिसार दूर होताहै ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

कृष्णमृन्मधुकंशंखंरुधिरंतण्डुलोदकम् । पीतमेकत्रसक्षौद्रंरक्तसं-
ग्रहणंपरम् ॥ ८८ ॥ पीतःप्रियंगुकाकल्कःसक्षौद्रस्तण्डुलाभसा ।
रक्तस्त्रावंजयेच्छीघ्रंघन्वमांसरसाशिनः ॥ ८९ ॥

काली मट्टी, मुलेठी, शंखभस्म, केशर और चावलोंका घोजन इन सबको एक-
प्रकर शहत मिलाकर पीवे तो रक्तातिसार दूर होताहै । अथवा फूलप्रियंगुका कल्क,
शहत और तण्डुलजलसे पीवे तो रक्तका माव शीघ्र वन्द होताहै । इसके ऊपर जंगली
जीपोंके मांसरसके संग चावलोंका भात भोजन करना चाहिये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

कल्कस्तिलानांकृष्णानांशर्करापञ्चभागिकः ।

आजेनपयसापीतः सद्योरक्तंनियच्छति ॥ ९० ॥

काले तिलोंका कल्क ५ भाग, खांड १ भागको बकरीके दूधके साथ पीनेसे रक्तातिसार शीघ्र दूर होताहै ॥ ९० ॥

पलंवत्सकवीजस्यश्रपयित्वारसंपिबेत् ।

योरसाशीजयेच्छीघ्रंसपैत्तंजठरामयम् ॥ ९१ ॥

१ पल इन्द्रजौके क्वाथको जो मनुष्य पीताहै और ऊपरसे मांसरसका सेवन कर-
ताहै उसके पित्तातिसार और रक्तातिसार तत्काल नष्ट होजातेहैं ॥ ९१ ॥

पीत्वासशर्कराक्षौद्रं चन्दनंतण्डुलाम्भसा ।

दाहत्पृष्णाप्रमेहेभ्योरक्तस्त्रावाद्दिमुच्यते ॥ ९२ ॥

चावलोंके धोवनमें शहत, मिसरी और लालचंदन मिलाकर पीवे तो दाह, प्यास,
प्रमेह और रक्तका स्राव यह सब दूर होतेहैं ॥ ९२ ॥

गुदोवहुभिरुत्थानैर्यस्यपित्तेनपच्यते ।

सेचयेत्सुशीतेनपटोलमधुकाञ्चुना ॥ ९३ ॥

यदि बहुत दस्तोंके लगनेसे गुदा पकगई हो तो गुदाको पटोलपत्र और मुलेठीके
क्वाथको शीतलकर उससे धोवे ॥ ९३ ॥

पञ्चवल्कमधूकानारसैरिक्षुरसैर्घृतैः। छागैर्गन्धैः पयोभिर्वाशर्कराक्षौ-
द्रसंयुतैः ॥ ९४ ॥ प्रक्षालनानांकल्कैर्वाससर्पिष्कैः प्रलेपयेत् ।

एपांवासुकृतैश्चूर्णेस्तंगुदंप्रतिसारयेत् ॥ ९५ ॥ धातकीलोध्रचूर्णे-
र्वासमांशैः प्रतिसारयेत् । तथातत्रस्त्रवत्यस्त्रंगुदंतैः प्रतिसारितम् ॥

॥ ९६ ॥ पत्रवताप्रशमंयातिवेदनाचोपशाम्यति । यथोक्तैः सेचनैः
शीतैः शोणितेनिःस्त्रवत्यपि । गुदवंक्षणकटयूरुसेचयेद्घृतभावित-

तम् ॥ ९७ ॥ चन्दनाद्येनतैलेनशतधोतेनसर्पिषा । कार्पाससह-
योगेनसेचयेद्गुदवंक्षणौ ॥ ९८ ॥

अथवा पंचवल्कल और महुएका क्वाथ, या ईखका रस अथवा घृत या शहद
और मिसरीयुक्त बकरीका दूध, या गौका दूध लेकर उससे गुदा प्रक्षालनकरे
या इन सब द्रव्योंके घारीक चूर्णको घीमें मिलाकर गुदापर लेपकरे अथवा इन
सबके घारीक चूर्णको गुदापर धुंकावे । अथवा धोवेके कूल और पठानी लोचको
घारीक करके गुदापर प्रतिसारण करे । इस प्रकार प्रतिसारण करनेमें मलद्वारमें

रुधिरका स्राव होताहै । उससे गुदाका पकना और गुदाकी पीडा यह सब दूर होजातीहै । रक्तका स्राव होनेपर गुदा, वंक्षण, कमर और उरुस्थलमें घृत चुपडकर पूर्वोक्त शीतल क्वाथोंका तरडा देवे । अथवा चंदनादितैल या १०० वार धुलेहुए घृतको गुदा और वंक्षणोंपर लेप करके रूईके फोहेको उपरोक्त शीतल क्वाथोंमें भिंगो उससे गुदाको सेचनकरे ॥ ९४-९८ ॥

अल्पाल्पबहुशोरक्तंसशूलमुपवेश्यते । यदावायुर्विवद्धश्चकुच्छ्रंच-
रतिवानवा ॥ ९९ ॥ पिच्छावस्तितदातस्ययथोक्तमुपकल्पयेत् ।

प्रपौण्डरीकसिद्धेनसर्पिषाचानुवासयेत् ॥ १०० ॥

यदि थोडा २ रक्त वारंबार पीडाके साथ निकले और अपानवायु विरुद्ध होकर कोष्ठमें विचरण करे अथवा एकस्थानमें ही बद्ध रहे तो ऐसे समय पूर्वोक्त पिच्छावस्ति विधिवत् प्रयोग करना चाहिये । अथवा प्रपौण्डरीकके साथ सिद्धकियेहुए घृतसे अनु-वासन करे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

प्रायशोर्दुर्बलगुदाश्चिरकालातिसारिणः ।

तस्माद्भीक्षणशस्तेषांगुदस्नेहंप्रयोजयेत् ॥ १०१ ॥

अतिसार रोग बहुत दिन तक बना रहनेसे गुदा अत्यंत दुर्बल होजातीहै । इसलिये ऐसे मनुष्योंकी गुदामें नित्य चिकनाई लगाना चाहिये ॥ १०१ ॥

पवनोऽतिप्रवृत्तोहिस्वेस्थानेऽभतेऽधिकम् ।

वलंतस्यसपित्तस्यजयार्थेवस्तिरुत्तमः ॥ १०२ ॥

अतिसारकी अत्यंत प्रवृत्ति होनेसे वायु अपने स्थान (मलाशय) में अत्यंत कुपित होकर पित्तसे मिलजातीहै । उस प्रबल वात पित्तके जीतनेके लिये वस्ति क्रिया करना ही श्रेष्ठहै ॥ १०२ ॥

रक्तंविट्सहितंपूर्वपश्चाद्वायोऽतिसार्यते ।

शतावरीघृतंतस्यलेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ १०३ ॥

शर्कराद्धांशिकंलीढंनवनीतंनवोद्धृतम् ।

क्षौद्रपादंजयेच्छीघ्रंतं विकारंहिताशिनः ॥ १०४ ॥

जिस गोगीके मलके साथ प्रथम रुधिर निकले और पीठे अधोवायु निकले उसको शतावरीका घृत चटाना चाहिये । अथवा ताजा मक्खन लेकर उसमेंसे आधेको मिर्गरीमें और आधा शहतमें मिलाकर चाटे और पथ्य भोजन करे तो यह विकार शान्त होताहै ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गानापोथ्यवासयेत् । अहोरात्रंजलेतसेघृ-
तंतेनाम्भसापचेत् ॥ १०५ ॥ तदर्द्धशर्करायुक्तंलिह्यात्सक्षौद्रपादि-
कम् । अधोवायुदिव्याप्यूर्ध्वस्यरक्तंप्रवर्त्तते ॥ १०६ ॥

बड, गूलर और पीपलके अंकुरोंको कूटकर १ दिन रात गर्म जलमें भिंगोरकवे । फिर उरा जलसे सिद्ध कियाहुआ घृत आधी मिसरी और चौथा भाग शहत मिलाकर चाटनेसे अधोवायुके साथ या दस्तके साथ अथवा वमनके साथ रक्तका निकलना बन्द होजाताहै ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

यस्त्वेवंदुर्बलोमोहात्पित्तलान्येवसेवते ।

शीघ्रंविपद्यतेप्राप्यवलीपाकंसुदारुणम् ॥ १०७ ॥

जो दुर्बल रक्तातिसार रोगी मोहसे पित्तकर्त्ता पदार्थोंका सेवन करताहै वह दारुण गुदवलीके पाकसे व्याकुल हो मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १०७ ॥

कफातिसारकी चिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारेप्रथमंहितंलङ्घनपाचनम् । योज्यश्चामातिसारघ्नोय-
थोक्तोदीपनोगणः ॥ १०८ ॥ लंघितस्यानुपूर्व्याश्चकृतायांननिव-
र्त्तते । कफजोयद्यतीसारःकफघ्नैस्तमुपाचरेत् ॥ १०९ ॥

कफके अतिसारमें पहिले लंघन कराना और पाचन देना हितकारी है तथा पहिले कहाहुआ आमातिसारनाशक दीपनीयगणका प्रयोग करना उचित है । भले प्रकार लंघन और पेयादिक्रमके पालन करनेपर भी यदि कफातिसार शान्त न हो तो कफ-नाशक योगोंसे चिकित्सा करना चाहिये ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

वित्त्वर्कटिकामुस्तमभयाविश्वभेषजम् । वचाविडंगंभूतीकंधान्य-
कंदैवदारुच ॥ ११० ॥ कुष्ठंसातिविषापाठाचव्यंकटुकरोहिणी ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलंचैत्रकंहस्तिपिप्पली ॥ १११ ॥ योगाञ्छ्लोका-
र्द्धविहितांश्चतुरस्तान्प्रयोजयेत् । श्रृताञ्छ्लेष्मातिसारेपुकाया-
श्रिवलवर्द्धनान् ॥ ११२ ॥

१ बेलगिर, काकडासिंगी, नागरमोया, हरडे और सांड; २ वच, वापविडंग, अजनायन, धनियां और देवदारु; ३ कुठ, अतीश, पाठ, चव्य और कुटकी, ४ पीपल, पीपलामूल, चित्रक, और गजपीपल; इन आधे २ श्लोकोंमें कहेहुए चार योगोंमेंसे किसी एक योगका उपाय शहत मिलाकर पीनेसे कफातिसार दूर होकर शरणांतिका बल बढताहै ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

अजार्जीससितांपाठानागरंमरिचानिच । धातकीद्विगुणंदद्यान्मा-
तुलुङ्गरसाप्लुतम् ॥ ११३ ॥ रसाञ्जनंसातिविपंकुटजस्यफलानिच
धातकीद्विगुणंदयात्पातुंसक्षौद्रनागरम् ॥ ११४ ॥

जीरा, मिसरी, पाठ, सोंठ, काली मिर्च इन सबसे दूने धावेके फूल लेकर वारीक
चूर्ण बना विजैरके रसमें घोडकर सेवन करे । अथवा रसौत, अतीश, इन्द्रजौ इन
सबसे दूने धावेके फूल इनका चूर्ण बना शहत और सोंठ मिला सेवन करे तो कफा-
तिसार दूर हो ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

धातकीनागरंविल्वंलोध्रंपद्मस्यकेशरम् । जम्बुत्वङ्नागरंधान्यं
पाठामोचरसंवला ॥ ११५ ॥ समङ्गाधातकीविल्वमध्यंजम्बाम्र-
योस्त्वचा । कपित्थानिविडङ्गानिनागरंमरिचानिच ॥ ११६ ॥
चाङ्गेरीकोलतकाम्लांश्चतुरस्तान्कफातुरे । श्लोकार्द्धविहितान्द-
द्यात्सस्नेहलवणान्वडान् ॥ ११७ ॥

१ धावेके फूल, सोंठ, बेलगिरि, पठानी लोध और पद्मकेशर, २ जामतुकी छाल
सोंठ, धनियाँ, पाठा, मोचरस और वला, ३ वागहकान्ता, धावेके फूल, बेलगिरि,
जामुनकी छाल और वामकी छाल, ४ कैथ, वायविडंग, सोंठ और मिर्च; इन
आधे २ श्लोकोंमें कहे चार योगोंमेंसे किसी एकको चांगेरी, बेर और तक्रकी
खटाई तथा स्नेह और लवणयुक्त कर खडयूप बना कफातिसारमें प्रयुक्त
करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

कपित्थमध्यंलीङ्गातुसव्योपक्षौद्रशर्करम् ।

कट्फलमधुयुक्तंवामुच्यतेजठरामयात् ॥ ११८ ॥

कैथका गूदा, त्रिकुटा, शहद और शर्करा इन सबको मिलाकर चाटे, अथवा
कायफल, शहदमें मिलाकर चाटे तो कफजनित पेटके विकार शान्त होतेहैं ॥ ११८ ॥

कणांमधुयुतांपीत्वातकंपीत्वासचित्रकम् ।

जग्ध्वावावालविल्वानिमुच्यतेजठरामयात् ॥ ११९ ॥

शहदमें पीपल मिलाकर चाटनेसे अथवा नरुमें चित्रकका चूर्ण मिलाकर पीनेसे
अथवा कच्चे विल्वकी गिरि खानेसे कफजनित उदररोग दूर होताहै ॥ ११९ ॥

वालविल्वंगुडंतैलंपिप्पलीविश्वभेषजम् ।

लिप्साद्वातेप्रतिहतेसशूलःसप्रवाहिकः ॥ १२० ॥

कच्चे विल्वकी गिरि, गुड, तेल, पीपल और सोंठ इन सबको मिलाकर सेवन करनेसे अधोवायुकी रुकावट शूल और प्रवाहिकां यह सब दूर होंतैं ॥ १२० ॥
 भोज्यमूलकपायेणवातघ्नैश्चोपसेवनैः । वातातिसारविहितैर्यूषै-
 मांसरसैःखडैः ॥ १२१ ॥ पूर्वोक्तमम्लंसर्पिर्वापट्पलंवायथाव-
 लम् । पुराणंवाघृतंदद्यायवागूमण्डमिश्रितम् ॥ १२२ ॥ वातश्ले-
 ष्मविवन्धेवाकफेवातिस्त्रवत्यपि । शूलेप्रवाहिकायांवापिच्छाव-
 स्तिप्रयोजयेत् ॥ १२३ ॥

मूलीका क्वाथ अथवा वातनाशक द्रव्य या वातातिसारमें कहेहुए यूप, मांसरस, खडयूप इनका सेवन करना अथवा पूर्वोक्त अम्लघृत वा पट्पल घृत अथवा पुराना घृत यवागूमण्डमें मिलाकर सेवन करावे । वात और कफके विबंध अथवा कफवातके स्रावमें शूल और प्रवाहिका हो तो पिच्छावस्तिका प्रयोग करावे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

पिप्पलीविल्वकुष्ठानांशताह्वावचयोरपि । कल्कैःसलवणैर्युक्तंपूर्वो-
 क्तंस्त्रिधापयेत् ॥ १२४ ॥ प्रत्यागतेसुखेस्त्रातंकृताहारंदिनात्यये ।

विल्वतैलेनभतिमान्सुखोष्णेनानुवासयेत् ॥ १२५ ॥

पीपल, वेलगिरि, कूठ, सोंफ और वच, इनके कल्कमें नमक मिलाकर पिच्छावस्तिका प्रयोग करे । जब वस्तिद्वारा गयाहुआ द्रव्य सब बाहर निकल-
 जाय तो रोगीको स्नान कराकर पथ्य भोजन करावे । फिर सायंकाल विल्वतैलसे अनुवासन करावे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

वचान्तैरथवाकल्कैस्तैलंपक्वानुवासयेत् ।

बहुशःकफवातार्त्तस्तथासलभतेसुखम् ॥ १२६ ॥

अथवा पीपल, वेलगिरि, कूठ, सोंफ और वच, इनसे सिद्धकिये तैलसे कफ और वायुसे पीडित रोगीको बार बार अनुवासनकर्म करावे । ऐसा करनेसे रोग शान्त होकर मनुष्यको सुख प्राप्त होताहै ॥ १२६ ॥

स्वेस्थानेमारुतोऽवश्यंवर्द्धतेकफसंक्षये ।

सवृद्धःसहसाहन्यात्तस्मात्तत्त्वरयाजयेत् ॥ १२७ ॥

कफके क्षय होनेपर पक्वाशयमें स्थित वायु अत्यंत प्रबल होजातीहै फिर वह चढीहुई वायु शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट कर देतीहै । इसलिये उसको अत्यंत शीघ्र जीतना चाहिये ॥ १२७ ॥

वातस्यानुजयेत्पित्तं पित्तस्यानुजयेत्कफम् ।

त्रयाणां वाजयेत्पूर्वयो भवेद्द्वलवत्तमः ॥ १२८ ॥

पहिले वातको जीते, फिर पित्तको जीते तदनन्तर कफको जीतना चाहिये । अथवा इन तीनोंमें जो बढा हुआ हो पहिले उसको जीतना उचित है ॥ १२८ ॥

तत्र श्लोकः ।

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानिलक्षणं साध्यता तथा ।

क्रियाचावस्थिकी सिद्धानिर्दिष्टा ह्यतिसारिणाम् ॥ १२९ ॥

इति चरक० चि० राजयक्ष्मचिकित्सितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस अतिसारचिकित्सित अध्यायमें अतिसाररोगकी प्रथम उत्पत्ति, हेतु, लक्षण, साध्यता और अवस्थानुसार अतिसार रोगियोंकी सिद्ध चिकित्सा यह सब वर्णन किया गया है ॥ १२९ ॥

इति श्री च० प्र० भा० स० चि० स्थाने प्र० भा० अतिसारचिकित्सितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातो विसर्पचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवनात्रेयः ।

अब हम विसर्पचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

कैलासे किन्नराकीर्णं बहुप्रस्रवणौपधे । पादपैर्विर्विधैः स्निग्धैर्नित्यं

कुसुमसम्पदैः ॥ १ ॥ वहद्भिर्मधुरान्गन्धान्सर्वतः स्वभ्यलंकृते ।

विहरन्तं जितात्मानमात्रेयमृषिवन्दितम् ॥ २ ॥ महर्षिभिः परिवृ-

तं विभुं भूताहितैरतम् । अश्विवेशोगुरुंकाले विनयादिदमुक्तवान् ॥ ३ ॥

भगवन् ! दारुणं रोगमाशीविषविषोपमम् । विसर्पन्तं शरीरे पुदेहि-

नामुपलक्षये ॥ ४ ॥ सहसैव नरास्तेन परीताः शीघ्रकारिणा । विन-

श्यन्त्यनुपक्रान्तास्तत्र नः संशयो महान् ॥ ५ ॥ सनाम्नाकेन विज्ञेयः

संज्ञितः केन हेतुना । कतिभेदः कियद्भातुः किं निदानः किमाश्रयः ॥ ६ ॥

सुखसाध्यः कृच्छ्रसाध्योज्ञेयोयश्चानुपक्रमः । कथंकैर्लक्षणैः किञ्च भ-
गवँस्तस्य भेषजम् ॥ ७ ॥

किन्नरोंसे सुशोभित अनेक झरने और बहुतसी औषधियोंसे युक्त, जिसमें अनेक प्रकारके त्रिभू वृक्ष सुगन्धित फूलोंकी सुन्दर गन्धोंको बरसारेहैं और सब ओरसे शोभाकी बढारहैं उस कैलास पर्वतपर एक समय जितेन्द्रिय ऋषिगणोंसे पूजित प्रभावशाली परम करुणामय महर्षि आत्रेयजी भ्रमण कर रहे थे । उन महर्षिगणोंसे घिरे हुए अपने गुरु भगवान् आत्रेयजीसे आग्निवेश अवकाश पाकर पूछने लगे कि हे गुरो ! एक प्रकारका दारुण रोग सांपके विषके समान मनुष्योंके शरीरमें शीघ्र फैलनेवाला देखनेमें आताहै इससे ग्रसित हुए मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होतेहैं । इसमें मुझे बड़ा भारी संशय है कि इस रोगका नाम क्या है और वह नाम किस कारणसे हुआ इसके कितने भेद हैं और कौनसी धातुयें हैं तथा निदान क्या है और अधिष्ठान क्या है । इसकी साध्यता, कष्टसाध्यता और असाध्यता लक्षण तथा चिकित्सा किस प्रकार है सो कृपा करके यथाक्रम इसका वर्णन कीजिये ॥ १-७ ॥

विसर्पकी निरुक्ति ।

तदग्निवेशस्य वचः श्रुत्वा त्रेयः पुनर्वसुः । यथावदखिलं सर्वं प्रोवाच
मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥ विविधं सर्पतियतो विसर्पस्तेन सस्मृतः । परि-
सर्पांश्च वानाम्नासर्वतः परिसर्पणात् ॥ ९ ॥

आग्निवेशके इस प्रश्नको सुनकर मुनियोंमें श्रेष्ठ पुनर्वसु आत्रेयजी इसके विषयमें संपूर्णरूपसे कथन करने लगे कि यह रोग अनेक प्रकारसे देहमें सर्पण (विचरण) करताहै इसलिये इसका नाम विसर्प है । और शरीरमें सर्वतः परिसर्पित होनेसे इसको परिसर्प भी कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

विसर्पके भेद ।

सचसप्तविधो दोषैर्विज्ञेयः सप्तधातुकः । पृथक्त्रयास्त्रिभिश्चैकोवि-
सर्पांश्चन्द्रजास्त्रयः ॥ १० ॥ वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपाति-
कः । चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ ११ ॥

यह वातादिभेदसे सात प्रकारका होताहै । जैसे एक वातका, एक पित्तका, एक कफका और तीन दो दो दोषोंसे एक सान्निपातसे ॥ १० ॥ ११ ॥

आग्नेयोवातपित्ताभ्यां ग्रन्थाख्यः कफवातजः ।

यस्तु कर्दमको घोरः सपित्तकफसम्भवः ॥ १२ ॥

वातपित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पको अग्नेय कहतेहैं । कफ और वातसे उत्पन्नहुए विसर्पको ग्रंथिविसर्प कहतेहैं और पित्तकफके विसर्पको कर्दमक ॥ १२ ॥

विसर्पके धातु ।

रक्तंलसीकात्वङ्मांसद्व्युदोपास्त्रयोमलाः ।

विसर्पाणांसमुत्पत्तौविज्ञेयाःसप्तधातवः ॥ १३ ॥

रक्त, लसीका, त्वचा, मांस यह चारों दूध और तीनों दोष यह सात धातु विसर्पकी उत्पत्तिमें दूषित होतेहैं ॥ १३ ॥

विसर्पका निदान ।

लवणाम्लकटूष्णानारसानामतिसेवनात् । दध्यम्लमस्तुशुकानां-
सुरासौवीरकस्यच ॥ १४ ॥ व्यापन्नवहुमद्यौष्णरागषाडवसेव-

नात् । शाकानांहरितानाञ्चसेवनाच्चविदाहिनाम् ॥ १५ ॥ कूर्चि-
कानांकिलाटानांसेवनान्मन्दकस्यच । दध्नःशाण्डाकिपूर्वाणामा-

स्तुतानाञ्चसेवनात् ॥ १६ ॥ तिलमापकुलत्थानांतैलानांपैष्टिक-
स्यच । ग्राम्यानूपौदकानाञ्चमांसानांलशुनस्यच ॥ १७ ॥ प्रस्वि-

न्नानामसात्म्यानांविरुद्धानाञ्चसेवनात् । अत्यादानाद्विवास्वप्नाद-
जीर्णाध्यशनात्क्षतात् ॥ १८ ॥ वधवन्धप्रपतनाद्धर्मकर्मातिसेव-

नात् । विषवाताग्निदोषाच्चविसर्पाणांसमुद्भवः ॥ १९ ॥

लवण, अम्ल, कटु और उष्ण रसोंके अत्यंत सेवनसे; दही, खट्टाई मस्तु (दहीका तोड़) सूत, सुरा, सौवीरक, दूषितमद्य, तीक्ष्णमद्य, दूषित राग, सण्डव, शाक, सब्जी, विटाहकारक द्रव्य, कूर्चिका, किलाट, मंदकदही तथा दही और शाण्डाकी आदि आसवका अधिक सेवन करनेसे तथा तिल, उडद, कुल्फी, तेल और पिष्टान्नके सेवनसे ग्राम्य अनूपसंचारी और जलज जीवोंके मांस अधिक सेवन करनेसे, लहसुन तथा हेतित विरुद्ध और असात्म्य अन्नके सेवनसे अत्यंत आदान, दिनमें सोना, अजीर्ण और अधिक भोजन करनेसे क्षत, वेधन, बंधन और पतन होनेसे रूष और परिश्रमके अधिक सेवनसे, विष, दूषितपवन और अग्निदोषसे विमर्षगोग्नी उत्पत्ति होतीहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

एतेर्निदानैर्व्यामिश्रैःकुपितामारुतादयः ।

द्व्युदोष्यरक्तादिविसर्पन्त्यहिताशिनाम् ॥ २० ॥

इन मिलेहुए कारणोंसे अहित भोजन करनेवाले मनुष्योंके वातादि दोष कुपित होकर रक्त, लसीका, त्वचा और मांसको दूषित करके विसर्परोगको शरीरमें फैलातेहैं ॥ २० ॥

विसर्पकी साध्याऽसाध्यता ।

वहिःश्रितःश्रितश्चान्तस्तथाचोभयसंश्रितः ।

विसर्पोवलमेतेपाज्ञेयंगुरुयथोत्तरम् ॥ २१ ॥

वह विसर्प रोग शरीरके बाहर अथवा भीतर या बाहर और भीतर दोनों स्थानोंमें आश्रित होताहै । इनमें बाहर होनेवाले विसर्पसे भीतरवाला विसर्प बलवान् होताहै और भीतर वालेसे दोनों स्थानोंमें आश्रित विसर्प प्रबल होताहै ॥ २१ ॥

वहिर्मागाश्रितसाध्यमसाध्यमुभयाश्रितम् ।

विसर्पदारुणांविद्यात्सुकृच्छ्रन्त्वन्तराश्रयम् ॥ २२ ॥

बाहर होनेवाला विसर्प साध्य होताहै । बाहर और भीतर दोनों स्थानोंमें आश्रित विसर्प असाध्य तथा केवल भीतर ही होनेवाला विसर्प कष्टसाध्य होताहै ॥ २२ ॥

अन्तःप्रकुपितादोपाविसर्पन्त्यन्तराश्रये ।

वहिर्वहिःप्रकुपिताःसर्वत्रोभयसंश्रिताः ॥ २३ ॥

अंतराश्रित विसर्पमें सब दोष भीतरकी ओर कुपित होकर भीतर विसर्पको करतेहैं वहिराश्रित विसर्पमें बाहर और उभयाश्रित विसर्पमें सर्वत्र विसर्पण करतेहैं ॥ २३ ॥

विसर्पके लक्षण ।

मर्मोपघातात्संमोहादयनानांविघट्टनात् । तृष्णातियोगाद्देगानां
विपमणांप्रवर्त्तनात् ॥ २४ ॥ विद्याद्विसर्पमन्तर्यदाशुचान्निबल-
क्षयात् । अतोविपर्ययाद्वाह्यमन्यैर्विद्यात्स्वलक्षणैः ॥ २५ ॥

मर्मोंका अभिघात, वेदोशी, मल मूत्रादि वेगोंकी विपमभावसे प्रवृत्ति और शीघ्र अग्निके बलकी हानि यह अंतर्विसर्पके लक्षण हैं । इससे विपरीत लक्षणोंसे बाहर होनेवाले विसर्पको जाने ॥ २४ ॥ २५ ॥

यस्यलिङ्गानिसर्वाणिवलव्यस्यकारणम् ।

यस्यचोपद्रवाःकृष्टामर्मगोयश्चहन्तिसः ॥ २६ ॥

जिस विसर्पके कारण बलवान् हों और बाहर और भीतरके सब लक्षणयुक्त हों तथा उपद्रव सहित हों और मर्मगामी हों वह विसर्प प्राणोंको नाश करनेवाला होताहै ॥ २६ ॥

वातजविसर्पका निदान लक्षण ।
 रूक्षोष्णैःकेवलोवायुःपूरणैर्वासमाचितः ।
 प्रदुष्टोदूपयन्दूप्यं विसर्पति यथावलम् ॥ २७ ॥

तस्य स्वरूपाणि ।

भ्रमदवधुपिपासानिस्तोदशूलाङ्गमर्दोद्वंष्टनकम्पज्वरतमककासा-
 स्थिसन्धिभेदविश्लेषणवेपनारोचकावियाकाश्चक्षुपोराकुलत्वमस्त्रा-
 गमनंपिपीलिकासञ्चारइवचाङ्गेपुयस्मिश्चावकाशे विसर्पो विसर्पति
 सोऽवकाशःश्यावारुणावभासःश्वयथुमान्निस्तोदभेदशूलायाससं-
 कोचहर्षस्फुरणैरतिमात्रंप्रपीड्यते । अनुपक्रान्तश्चोपचीयतेशीघ्रं
 भेदैःस्फोटकैस्तनुभिररुणाभैःश्यावैर्वातनुविषमदारुणाल्पास्त्रावै-
 विवद्धवातमूत्रवर्चस्तानिनिदानोक्तानिचास्यनोपशेरतेविपरीता-
 निचोपशेरतइतिवातविसर्पः ॥ २८ ॥

रूक्ष, उष्ण अथवा बहुत भोजन करनेमें संचित हुई वायु अथवा अपने कारणोंमें
 कुपित हुई वायु प्रदुष्ट होकर रक्तादि द्रव्योंको दूषितकर यथावल शरीरमें विचरण
 करतीहै तब उसके यह लक्षण होतेहैं । जैसे भ्रम, धुकधुकी, प्यास, तोद, शूल, अंगमर्द,
 उद्वेष्टन, कंप, ज्वर, तमकश्वास, सांसी, हृदफूटन, संधियोंमें पीडा, हृदियोंका ढीला
 पडजाना और कांपना, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, नेत्रोंमें व्याकुलता,
 रुधिरका निकलना, शरीरमें चींटियोंका चलनासा प्रतीत होना, जिस स्थानमें विसर्प
 फैलताहो उस स्थानका वर्ण, लाल और सूजनयुक्त होजाना, उसमें मुई चुमनेसी
 पीडा होनी तथा भेद, शूल, आपाम, संकोच, हर्ष, स्फुरण इनका अधिक होना,
 इसकी चिन्तितता शीघ्र न की जानेसे विसर्पके स्थानमें भेद होना तथा पनले, लाल या
 काले, पड़तसी फुन्सियां होना, उनमेंसे पतला, स्वच्छ और लाल थोडा २ मात्र होना,
 अधोशयु, मूत्र और मलकी रुकावट होना और वातकारक निदानमें कटेहुए द्रव्योंमें
 रोगका घटना, उससे विपरीत द्रव्योंमें शान्त होना यह वातजविसर्पके लक्षण
 हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

पित्तविसर्पके निदान लक्षण ।

पित्तमुष्णोपचारादिविदाह्यम्लाशनैश्चितम् । दूप्यंसंदूप्यमार्गाश्च
 पूरयन्ने विसर्पति ॥ २९ ॥ तस्यरूपाणि-ज्वररत्तृणामूर्च्छामोहश्छ-

द्विरोचकोऽङ्गभेदःस्वेदोऽतिमात्रमन्तर्दाहःप्रलापःशिरोरुक्चक्षुषो-
राकुलत्वमस्वप्नमरतिभ्रमःशीतवातवारितर्षोऽतिमात्रंहरितनेत्रमू-
त्रवर्चस्त्वक्तेपांहरितहारिद्ररूपदर्शनयस्मिंश्चावकाशेविसर्पोऽनुस-
र्पतिसोऽवकाशस्ताम्रहरितहरिद्रनीलकृष्णरक्तानांवर्णानामन्यतमं
पश्यति । सोत्सेधैश्चातिमात्रंदाहसम्भेदनपरीतैःस्फोटकैरुपचीयते
तुल्यवर्णास्त्रिवैरचिरपाकैर्निदानोक्तानिनोपशेरतेविपरीतानिचोप-
शेरतइतिपित्तविसर्पः ॥ ३० ॥

पित्तकारक, गरम, उपचारके करनेसे विदाही, खट्टे, द्रव्योंके सेवनसे संचित
हुआ पित्त रक्तादि दूष्योंको दूषित करके छिद्रोंको पूरणकर विसर्परोगको प्रगट
करताहै । उस पित्तविसर्पके ये लक्षण हैं । जैसे ज्वर, प्यास, गूच्छा, मोह, वमन,
अरुचि, अंगमर्द, स्वेद, अधिक अन्तर्दाह, वक्वाद्, मस्तकपीडा, नेत्रोंमें व्याकुलता,
नींदका न आना, अस्थिरता, भ्रम, शीतल, पवन और शीतल जलकी इच्छा, नेत्र,
मूत्र, मल और त्वचाका हरा और हल्दीके समान होना, सब वस्तुयें हल्दीके समान
दिखाई देना, विसर्प होनेके स्थानमें ताम्रवर्ण, हरा, हल्दीके समान, नीला, काला
अथवा लालवर्ण होना, विसर्पका अत्यंत उठाहुआ होना, जलन और स्वेदसे युक्त
फोडोंसे व्याप्त होना, इनमेंसे उपरोक्त वर्णका साथ होना, इस विसर्पका अतिशीघ्र
पकजाना निदानमें कहेहुए द्रव्योंसे वृद्धिको प्राप्त होना और उससे विपरीत द्रव्योंसे
शान्त होना यह पित्तविसर्पके लक्षण हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

कफविसर्पके निदान लक्षण ।

स्वाद्वल्मलवणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसंचितः । कफःसंदूपयन्दूप्यंकृच्छ्र-
मङ्गेविसर्पति ॥ ३१ ॥ तस्यरूपाणि-शीतकःशीतकज्वरोगौरवंनि-
द्रातन्द्रारोचकोमधुरास्यत्वमास्योपलेपोनिष्ठीविकाच्छर्दिरालस्यं
स्तैमित्यमग्निनाशोदौर्बल्यंयस्मिंश्चावकाशेविसर्पतिसोऽवकाशःश्व-
यधुमान्पाण्डुमात्रातिरक्तक्षेहःसुप्तिस्तम्भगौरवैरन्वितोऽल्पवेदनः
कृच्छ्रपाकैश्चिरकारिभिःअहुलत्वगुपलेपैःस्फोटैःश्वेतपाण्डुभिरनुव-
ध्यतेप्रभिन्नस्तुश्वेतंपिच्छिलंतन्तुमद्धनमनुवद्धंस्निग्धमास्त्रावंस्वत्व्यू-
द्धंश्वगुरुभिःस्निग्धैर्जलावततैःस्निग्धैर्बहुलत्वगुपलेपैर्वर्णैरनुवध्यते-

नुपङ्गीश्वेतनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चस्तानिनिदानोक्तानिनोपशो-
रतेविपरीतानिचोपशेरतइतिश्लेष्मविसर्पः ॥ ३२ ॥

मीठे, खट्टे, नमकीन, चिकने और भारी पदार्थोंके सेवनसे और दिनमें सोनेसे संचितहुआ कफ रक्तादि दूष्योंको दूषित करके कष्टकारक हुआ शरीरमें परिसर्पण (विसर्परोग) करताहै । उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे विसर्पका शीतल होना, शीत-ज्वर, गुरुता, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि मुखमें मीठापन और लिपाहट, वाग्वार कफका प्रसेक, वमन, आलस्य स्तैमित्य, जठराग्निका नाश और दुर्बलता तथा विसर्पके स्थानमें सूजन हो पीला और अत्यंत लाल, अधिक चिकना, सुन्न, कठोर, भारी और अल्प पीडायुक्त विसर्प हो । वह कठिनतासे परिपाकको प्राप्त हो, देरतक बनारहे, त्वचामें अत्यंत उपलेपसा हो, सफेद तथा पाण्डुवर्णके फोड़ोंसे व्याप्त हो विसर्पके फूटनेसे स्वेद, पिच्छिल, तारयुक्त, गाढा और ह्रस्वत्त रहनेवाला तथा चिकना स्राव हो, विसर्पके ऊपरके भागमें भारी, चिकने, गीले त्वचामें लिपेहुएसे व्रणोंका अनुबंधन होना, आनुपंगिका, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका सफेद होना कफकारक द्रव्योंसे रोगका बढना और विपरीत द्रव्योंसे शान्त होना यह कफविसर्पके लक्षण हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

वातपित्तज अग्निविसर्पके लक्षण ।

वातपित्तप्रकुपितमतिमात्रंस्वहेतुभिः । परस्परंलब्धवलंदहद्वात्रंवि-
सर्पति ॥ ३३ ॥ तदुपतापादातुरःसर्वशरीरमङ्गोरैरिवाकीर्य्यमाणं
मन्यते । छर्द्यतीसारमूर्च्छादाहमोहज्वरतमकारोचकास्थिसन्धिभे-
दतृष्णाविपाकाङ्गभेदादिभिश्चाभिभूयते । यंयंचावकाशंविसर्पोऽनु-
सर्पतिसोऽवकाशःशान्ताङ्गारप्रकाशोऽतिरिक्तोवाभवत्यग्निदग्धप्र-
कारैश्चस्फोटैरुपचीयतेसशीघ्रगत्वादाशुएवमर्मानुसारीभवतिमर्म-
णिचोपतप्तपवनोऽतिबलोभिनस्तिअङ्गानिअतिमात्रंप्रमोहयतिसं-
ज्ञांहिकाश्चासौजनयतिनाशयतिनिद्रांसनष्टनिद्रःप्रमूढसंज्ञोव्याधि-
तचेतानकचनसुखमुपलभतेअरतिपरीतःस्थानादासनाच्छय्यांक्रा-
न्तुमिच्छतिक्लिष्टभूयिष्ठश्चाशुनिद्रांभजतिअवलोदुःखप्रबोधश्चतमे-
वंविधमग्निविसर्पपरीतमाचिकित्स्यांविद्यात् ॥ ३४ ॥

अपने कारणोंसे प्रकोपको प्राप्त हुए वात, पित्त, परस्पर बलको प्राप्त हो देहमें

दाहको प्रगट करतेहुए विसर्पको करतेहैं तब यह होतेहैं । वातपित्तके विसर्पमें संपूर्ण शरीरमें जलतेहुए अंगार विखरेहुए हैं ऐसा प्रतीत हो, तथा, वमन, अतिसार, मूर्च्छा, दाह, मोह, ज्वर, तमकश्वास, अरुचि, हड्डियोंका टूटना, संधियोंमें पीडा, प्यास, अन्नका न पकना और अंगभेद आदि उपद्रवोंका होना, विसर्प होनेका स्थान बुझेहुए अंगारोंके समान अथवा अत्यंत काले वर्णका हो । आगसे जले हुएके समान दाहयुक्त फोडोंसे व्यापक होना । यह विसर्प शीघ्रगति होनेसे सद्यः गरम स्थानमें पहुंचजाय । मर्मस्थानमें वायुका संताप होनेसे सब अंगोंमें अत्यंत भेदनकीसी पीडा, संज्ञानाश, हिचकी, श्वास यह उत्पन्न होते हैं और निद्रानाश होताहै । रोगी निद्रारहित, चैतन्यतारहित और व्यथायुक्त चित्तवाला होनेसे किसी प्रकार भी सुखको प्राप्त नहीं होसकता और अस्थिर होकर स्थान, आसन, शय्यापर इधर उधर पलटनेकी इच्छा करताहै । फिर अत्यंत व्याकुल और दुर्बल होकर गिरजाताहै । और तत्काल वैकारिक निद्राको प्राप्त होताहै तथा जगानेसे भी मुश्किलसे जागताहै । इस प्रकार यह अग्निविसर्पवाला रोगी अचिकित्स्य जानना ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कफपित्तजकर्दमविसर्पके ल० ।

कफपित्तप्रकुपितंवलवत्स्वेनहेतुना । विसर्पत्येकदेशन्तुप्रक्लेदयति देहिनः ॥ ३५ ॥ तद्विकाराः—शीतज्वरःशिरोगुरुत्वंदाहःस्तैमित्य-मङ्गावसादनंनिद्रातन्द्रामोहोऽन्नद्वेषःप्रलापोऽग्निनाशोदौर्बल्यमस्थि-भेदोमूर्च्छापिपासास्रोतसांप्रलेपोजाड्यमिन्द्रियाणांप्रायोपवेशन-मंगविक्षेपोऽङ्गमर्दोऽरतिरौत्सुक्यञ्चउपजायतेप्रायश्चामाशयेविसर्प-त्येकदेशग्राहीयस्मिंश्चावकाशेविसर्पतिसोऽवकाशोरक्तपीतपाण्डु-पीडकापकीर्णइवमेचकाभःकालोमलिनःस्निग्धोवहूष्मागुरुःस्तिमि-तवेदनःश्वयथुमान्गम्भीरपाकःनिरास्त्वःशीघ्रक्लेदःस्विन्नक्लिन्नपूति-मांसत्वक्क्रमेणाल्परुक्परामृष्टोऽवदीर्यतेकर्दमइवावपीडितोऽनन्त-रंप्रयच्छत्युपक्लिन्नपूतमांसत्यागीशिरास्त्रायुसंदर्शीकुण्ठपगन्धीचभवं-तिसंज्ञास्मृतिहर्त्तांतर्कर्मविसर्पपरीतमचिकित्स्यंविद्यात् ॥ ३६ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुए कफ और पित्त परस्पर बलको प्राप्त हो मनुष्यके शरीरको क्लेशित कर देहके एकदेशमें विसर्पको करतेहैं । इस कफपित्तजनित विसर्पके यह लक्षण होतेहैं । जैसे शीतज्वर, मिगका भारी होना, दाह, स्तैमित्य, अंगोंका मोना, निद्रा, तन्द्रा, मोह, अन्नसे द्वेष, प्रलाप, अग्निनाश, दुर्बलता, हडफटन, मूर्च्छा,

प्यास, उिद्रोंका उपलेप, इन्द्रियोंमें जडता, आम निकलना, अंगविशेष, अंगमर्द, अरति और उत्सुकता यह उपद्रव होते हैं । प्रायः यह विसर्प आमाशयके एक देशमें प्रगट होकर धीरे २ फैलने लगताहै । जिस स्थानमें यह विसर्प होताहै वह लाल, पीला, पाण्डुवर्ण, पिडकाओंसे व्याप्त होताहै । तथा, मेचकके रंगका काला, मलिनवर्ण, चिकना, भारी, स्तिमित, स्थिर पीडायुक्त मूजनवाला, गंभीरपाकी, स्यावरहित और शीघ्र क्लेदयुक्त होजाताहै । इस विसर्पके स्थानका मांस स्वन्न क्लेदयुक्त, दुर्गन्धित होताहै । इसमें थोड़ी २ पीडा होतीहै और उस स्थानको दवानेसे विसर्प फूटजाताहै । अधिक दवानेसे कीचके समान उसमें अंगुली गडजातीहै अथवा वह कीचके, समान अंगुलीसे लिपटजाताहै । और इसमेंसे सडाहुआ, दुर्गन्धित क्लेदयुक्त मांस निकलता है तथा शिरा, स्रायु बाहर निकलआतीहैं । मुर्देकीसी दुर्गन्ध आतीहै । रोगीका ज्ञान और स्मृति नष्ट होजातीहै । इस कफपित्तज विसर्पको कर्दम विसर्प भी कहतेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

कफवातजग्रन्थिविसर्पके लक्षण ।

स्थिरगुरुकठिनमधुरशीतस्निग्धान्नपानाभिष्यन्दिसेविनामव्या-
यामसेविनामप्रतिकर्मशालिनांश्लेष्मावायुश्चप्रकोपमापद्यतेतावु-
भौदुष्टप्रवृद्धौअतिवलौप्रदूष्यदूष्यं विसर्पायकल्पेते । तत्रवा-
युःश्लेष्मणाविवद्धमार्गस्तमेवश्लेष्माणमनेकधाभिन्दन्क्रमेणग्र-
न्थिमालांकृच्छ्रपाकसाध्यांकफाशयेसंजनयतिउत्सन्नरक्तस्यवाप्र-
दूष्यरक्तशिरास्नायुमांसत्वगाश्रितंग्रन्थिविसर्पकुरुतेतीव्ररुजाग्र-
मन्यते । ~~हृत्~~ ~~नाम~~ ~~पूनां~~ ~~दीर्घवृत्तरक्तानांतदुपतापाज्ज्वरातिसारका-~~
~~दतृष्णादि~~ ~~शोष~~ ~~प्रमेहवैषर्प्यारोचकाविपाकच्छर्दिमूर्च्छाङ्गभङ्गनि-~~
सर्पतिसोऽ- ~~नाथाः~~ ~~प्रादुर्भवन्तिउपद्रवास्तैरुपद्रुतःसर्वकर्मणांविष-~~
कारैश्चस्फो- ~~वैवर्जनीयोभवतीतिग्रन्थिविसर्पः ॥ ३७ ॥~~

इति, मधुर, शीतल और स्निग्ध अन्नपान तथा अभिष्यन्दी द्रव्योंके
द्वन्द्वते संचित दोषोंका शोधन न करनेसे कफ और वायुकोपको
गुण और प्रबल होकर रक्तादि दूष्योंको दूषित कर विसर्पको प्रगट
मार्ग बन्द करने रुकजाताहै फिर वह वायु कफके अनेक विभागकर
शोषकारी और कृच्छ्रसाध्य ग्रंथिमालाको प्रगट करताहै ।
असुररूपित रक्तवाले मनुष्यके रक्तको दूषितकर शिरा, स्रायु,
आंशुके लक्षण करतेहैं । उन ग्रंथियों (गाठों) में अत्यंत पीडा

होती है । वह ग्रंथियें स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ, गोल और लालवर्णकी होती हैं । इनके उपतापसे ज्वर, अतिसार, खांसी, हिचकी, श्वास, शोष, ममेह, विवर्णता, अरुचि, अविपाक, छर्दि, मूच्छा, अंगभेद, निद्रा, अरति, अंगावसाद, आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं । इन संपूर्ण उपद्रवोंसे व्याकुल हुआ मनुष्य संपूर्ण कर्मोंके करनेमें अयोग्य होजाता है । यह वातकफजनित ग्रंथिविसर्प त्याग देने योग्य है ॥ ३७ ॥

रोग और उपद्रवोंके भेद ।

उपद्रवस्तुखलुरोगोत्तरकालजोरोगाश्रयोरोगएवस्थूलोऽणुर्वारोगा-
त्पश्चाज्जायतइतिउपद्रवसंज्ञः । तत्रप्रधानोव्याधिव्याधिर्गुणीभूत
उपद्रवस्तस्यप्रायःप्रधानप्रशमेप्रशमोभवति । सतुपीडाकरतरोभ-
वतिइतिपश्चादुत्पद्यमानोव्याधिः परिक्लिष्टशरीरत्वात्तस्मादुपद्रवं
त्वरमाणोऽभिवाधेत ॥ ३८ ॥

रोग होनेके उपरांत रोगके आश्रयसे उपद्रव उत्पन्न होते हैं । इसलिये इनको भी रोग ही मानना चाहिये । क्योंकि यह रोग स्थूल अथवा सूक्ष्मरूपसे रोगके अनन्तर प्रगट होते हैं । इसलिये यह उपद्रव कहेजाते हैं । इनमें रोगको प्रधान तथा उपद्रवोंको रोगका गुणीभूत मानना चाहिये । प्रायः रोगके शान्त होनेपर उपद्रव भी शान्त होजाते हैं । उपद्रव शरीरके व्याधिद्वारा अत्यंत क्लेशित होनेसे व्याधिके पीछे प्रकट होजाते हैं परन्तु कष्ट देनेमें प्रधान व्याधिसे भी अधिकतर होते हैं इसलिये उपद्रवोंकी शान्तिके लिये शीघ्र यत्न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

सन्निपातका विसर्प ।

सर्वायतनसमुत्थंसर्वलिङ्गव्यापिनंसर्वधात्वनुसारिणमाशुकारिणम् ।
महात्ययिकमितिसन्निपातविसर्पमचिकित्स्यंविद्यात् ॥ ३९ ॥

सब हेतुओंसे प्रकट हुआ संपूर्ण लक्षणोंवाला सब धातुओंको दूषितकर व्यापक हुआ शीघ्रकारी आत्ययिक दारुण सान्निपातिक विसर्प अचिकित्स्य (असाध्य) जानना ॥ ३९ ॥

इनकी साध्याऽसाध्यता ।

तत्रवातपित्तश्लेष्मनिमित्ताविसर्पास्त्रयःसाध्याभवन्त्यग्निकर्दमा-
र्यौपुनरनुपसृष्टेमर्माणिअनुपहतेवाशिरास्नायुमांसक्लेदेसाधारण-
क्रियाभिरुपायैस्तावेवाभ्यस्यमानोप्रशान्तिमापद्येयात्तामनादरोप-
क्रान्तंपुनस्तयोरन्यतरौहन्यात्देहमाश्वेवाशीविषवत् ॥ ४० ॥

इनमें वातका, पित्तका और कफका यह तीन विसर्प साध्य हैं । और आप्नेय, कर्दमक, यह दो द्वन्द्वज विसर्प यदि मर्मस्थानमें व्यापक न हों तथा शिरा, स्रायु और क्लेदको धिगाडकर फैलेहुए न हों तो उनमें उन उन दोषोंकी साधारण चिकित्सा करनेसे शान्त होजातेहैं । परन्तु विधिवत् यत्नपूर्वक चिकित्सा न करनेसे उनमें भी कोई विसर्प आशीविषके समान शीघ्र प्राणोंको नष्टकर देताहै ॥ ४० ॥

तथाग्रन्थिविसर्पमजातोपद्रवमारभेतचिकित्सितुमुपद्रवोपद्रुतन्त्वे-
नपरिहरेत् । सन्निपातजंसर्वधात्वनुसारित्वादाशुकारित्वाद्विरुद्धोप-
क्रमत्वाच्चअसाध्यंविद्यात् ॥ ४१ ॥

और ग्रंथिविसर्प यदि उपद्रवयुक्त न हो तो उसकी चिकित्सा करे । यदि वह उपद्रवयुक्त हो तो उसको असाध्य समझकर त्यागदेवे । और सन्निपातसे उत्पन्न हुआ विसर्प सर्व धातु अनुसारी आशुकारी और चिकित्सामें विरुद्ध पडनेसे सर्वथा असाध्य जानना ॥ ४१ ॥

विसर्पकी चिकित्सा ।

तत्रसाध्यानांसाधनमनुव्याख्यास्यामः ॥ ४२ ॥ लंघनोल्लेखनेश-
स्तंतिक्तकानाञ्चसेवनम् । कफस्थानगतेसामेरूक्षशीतैःप्रलेपयेत्४३

अब साध्य विसर्पोंके साधन (चिकित्सा) का वर्णन करतेहैं । आमदोषयुक्त कफस्थानगत विसर्प हो तो लंघन वमन और तिक्तरसका सेवन कराना हितहै । तथा विसर्पके ऊपर रूक्ष, शीतल द्रव्योंका लेप करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

पित्तस्थानगतेऽप्येतत्सामेकुट्याच्चिकित्सितम् ।

शोणितस्यात्रसेकञ्चविरैकञ्चविशेषतः ॥ ४४ ॥

आमदोषयुक्त दोष यदि पित्तस्थानगत हो तब भी इसीप्रकार चिकित्सा करे । और रक्तमोक्षण (फस्त) तथा विरेचन यह दो कर्म इसमें विशेष करे ॥ ४४ ॥

मारुताशयसम्भूतेऽप्यादितःस्याद्विरूक्षणम् ।

रक्तपित्तान्वयेऽप्यादौस्नेहनंनहितंमतम् ॥ ४५ ॥

रक्तपित्तके संसर्गयुक्त रोग यदि वातस्थानगत भी हों तो भी प्रथम रूक्षक्रिया ही करना चाहिये । क्योंकि रक्तपित्तके संबन्धवाले रोगोंमें भी प्रथम ही स्नेहन कराना हित नहीं मानाहै ॥ ४५ ॥

वातोल्वणोतिक्तघृतंपैत्तिकेचप्रशस्यते ।

लघुदोषेमहादोषेपैत्तिकेस्याद्विरेचनम् ॥ ४६ ॥

जिस विसर्पमें वायु प्रबल हो और जिसमें अल्पपित्त हो उसमें तिक्तघृतका प्रयोग करना चाहिये । जिस विसर्पमें पित्त अत्यंत बढी हुई हो उसमें विरेचन कराना हित है ॥ ४६ ॥

नघृतं बहुदोषाय देयं यन्न विरेचयेत् । तेन दोषो ह्युपस्तब्धस्त्वङ्मांस-
रुधिरं पचेत् ॥ ४७ ॥ तस्माद्द्विरेकमेवादौ शस्तं विद्याद्विसर्पिणः ।

रुधिरस्यावसेकञ्च तद्धृत्तस्याश्रयसंज्ञितम् ॥ ४८ ॥

जो घृत विरेचन करनेवाला न हो उसको बहुत दोषयुक्त विसर्पमें नहीं देना चाहिये क्योंकि यदि घृत विरेचनकर्ता न होगा तो उससे दोषोंका उपस्तम्भ होकर त्वचा, मांस, और रुधिर पाकको प्राप्त होंगे। इसलिये विसर्परोगीको प्रथम विरेचन कराना ही हित है । तथा रक्तमोक्षण (फस्त) करना श्रेष्ठ है । क्योंकि विसर्परोगका आश्रय रक्त कहा जाता है उसके निकलनेसे विसर्प भी शान्त होता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति विसर्पनुत्प्रोक्तं समासेन चिकित्सितम् ।

एतदेव पुनः सर्वव्यासतः संप्रवक्ष्यते ॥ ४९ ॥

इस प्रकार विसर्पनाशक चिकित्साका संक्षेपसे वर्णन किया है । उमीको अब फिर विशेषतासे वर्णन करते हैं ॥ ४९ ॥

विसर्पकी विशेषचिकित्सा ।

मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च । वमनं संप्रदातव्यं विसर्पे
कफपित्तजे ॥ ५० ॥ पटोलपिचुमर्दाभ्यां पिप्पल्यामदनेन च ।

विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रयवैः सह ॥ ५१ ॥ यांश्च योगान् प्रव-
क्ष्यामि कल्पेपुकफपित्तिनाम् । विसर्पिणां प्रयोज्यास्ते दोषनिर्हरणाः
परम् ॥ ५२ ॥

मेनफल, मुलैठी, नीमकी छाल और इन्द्रयव इनका मवाथ पिलाकर कफपित्त-जनित विसर्पमें वमन करावे जयवा पटोलपत्र, नीमकी छिलका, पीपल और इन्द्रयव इनके मवाथसे वमन कराना श्रेष्ठ है । या कल्पस्थानमें कफपित्तव्याधिवालोंके लिये जो वमनकारक प्रयोग कहे जायेंगे उनके प्रयोगों द्वारा कफपित्तके विसर्पमें भी दोषको निकालना परम श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मुस्तनिम्बपटोलानां चन्दनोत्पलयोरपि । शारिवामलकोशीरमु-
स्तानां वा विचक्षणः ॥ ५३ ॥ पाययेत्कपायान् रहिसिद्धान् वीसर्प-

नाशनान् । किराततित्तकंलोध्रंदुरालभांसचन्दनाम् ॥ ५४ ॥
नागरंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलंसविभीतकम् । मधुकंनागपुष्पञ्चदद्याद्वि-
सर्पशान्तये ॥ ५५ ॥

१ अथवा नागरमोथा, नीमका छिलका, और पटोलपत्र, २ लालचंदन और नीलकमल, ३ सारिवा, आँवले, खस और नागरमोथा, इन तीनोंमेंसे किसी एकका क्वाथ बनाकर पिलानेसे विसर्परोग शान्त होताहै । अथवा चिरायता, पठानीलोध, जवासा, लालचंदन, सोंठ, कमलकी केशर, नीलकमल, वहेडा, मुलैठी और नागकेशर इनका क्वाथ विसर्परोगकी शान्तिके लिये देवे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

प्रपौण्डरीकंमधुकंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलम् ।

नागपुष्पञ्चलोध्रञ्चतेनैवविधिनापिवेत् ॥ ५६ ॥

अथवा उसी प्रकार प्रपौण्डरीक, (पंड्यारा) मुलैठी, कमलकी केशर, नील-कमल, नागकेशर, पठानी लोध इनका क्वाथ बनाकर पीवे ॥ ५६ ॥

द्राक्षांपर्पटकंशुण्ठींगुडूचींधन्वयासकम् ।

निशापर्युपितंदद्यात्तृष्णाविसर्पशान्तये ॥ ५७ ॥

मुनक्का, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय, जवासा, इनको कुटकर रात्रिको जलमे भिगो देवे । फिर प्रातःकाल इसका पानी उतारकर विसर्प और प्यामकी शान्तिके-लिये देवे ॥ ५७ ॥

पटोलंपिचुमर्दञ्चदावींकटुकरोहिणीम् ।

यष्टयाह्नात्रायमाणाञ्चदद्याद्विसर्पशान्तये ॥ ५८ ॥

पटोलपत्र, नीमका छिलका, दारुहलदी, कुटकी, मुलैठी और त्रायमाणका काथ विसर्पकी शान्तिके लिये पिलावे ॥ ५८ ॥

पटोलादिकपायंवापिवेत्रिफलयासह । मसूरविदलैर्युक्तंघृतमिश्रं
प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥ पटोलपत्रमुद्गानारंसमामलकन्यच । पायये-

तघृतोन्मिश्रंनरं विसर्पपीडितम् ॥ ६० ॥ यच्चसर्पिर्महातिकंपित्त-
कुष्ठनिवर्हणम् । निर्दिष्टंतदपिप्राज्ञोदद्याद्विसर्पशान्तये ॥ ६१ ॥

त्रायमाणाघृतसिद्धंगौलिमकेयदुदाहृतम् । विसर्पाणांप्रशान्त्यर्थं
दद्यात्तदपिवुद्धिमान् ॥ ६२ ॥

अथवा पटोलपत्रादि क्वाथको त्रिफलके साथ पिलावे । अथवा मसूरकी दालका पानी घृतयुक्त कर पिलावे । या पटोलपत्र, मूंग और आँवलोंका रस विसर्पसे पीडित रोगीको पिलाना हित है । अथवा महातिक्तकघृत जो कुष्ठाधिकारमें पित्त-कुष्ठशान्तिके लिये कहा है उसको विसर्परोगकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करे एवं गुल्म-चिकित्सामें जो त्रायमाणघृत कह आये हैं उसको भी बुद्धिमान् वैद्य विसर्पकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

त्रिवृच्चूर्णसमालोड्यसर्पिषापयसापित्रा । घर्मांश्वुनावासंयोज्यमृ-
द्वीकानारसेनवा ॥ ६३ ॥ विरेकार्थप्रयोक्तव्यंसिद्धं विसर्पनाशनम् ।
त्रायमाणाश्रुतं वापिपयोदद्याद्विरेचनम् ॥ ६४ ॥

निशोथके चूर्णको घृतमें घोलकर अथवा दूधमें घोलकर अथवा गरम जलके साथ वा मुनक्काके रस (क्वाथ) के साथ विसर्परोगमें विरेचन करानेके लिये पिलावे । अथवा त्रायमाणके साथ सिद्धकिया दूध विरेचनार्थ पिलावे, यह भी विसर्पको शान्त करता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

त्रिफलारससंयुक्तंसर्पिस्त्रिवृतयासह ।

प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरनाशनम् ॥ ६५ ॥

त्रिफलके रस (क्वाथ) के साथ निशोथका चूर्ण पिलावे इससे विरेचन होकर विसर्पका ज्वर (दुःख) नष्ट होजाता है ॥ ६५ ॥

रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ।

स एव गुरुकोष्ठाय त्रिवृच्चूर्णयुतो हितः ॥ ६६ ॥

अथवा आँवलेके रसयुक्त घृतको पिलावे । यदि रोगी भारी कोंठेवाला हो तो इसीमें निशोथका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ६६ ॥

दोषेकोष्ठगते भूय एतत्कुर्व्याच्चिकित्सितम् । शाखादुष्टेतुरुधिरेरक्त-
मेवादितो हरेत् ॥ ६७ ॥ पिभग्वातान्वितं रक्तं विपाणेनाभिनिर्हरेत् ।
पित्तान्वितं जलौकोभिः कफान्वितं मलाबुभिः ॥ ६८ ॥ यथासन्नं
विकारस्य व्यथयेदाशुवासिनाम् । त्वङ्मांसस्नायुसंक्लेदोरक्तक्लेदाच्चि-
जायते ॥ ६९ ॥

यदि कोष्ठमें दोषकी अधिकता हो तो यह उपरोक्त रेचनकारक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करे । और जो रुधिर अपने स्थानमें प्रदुष्ट हो तो पहले रुधिको ही निकालना

चाहिये । यदि रक्त वाताश्रित हो तो उसको सिंगी लगाकर निकाले । और पित्ताश्रित हो तो जोंक लगाकर निकाले । एवं कफसंयुक्त रुधिरको तृवी लगाकर निकालना चाहिये । विगडे हुए रक्तको विसर्पके समीपकी नसमें नस्तर लगाकर शीघ्र निकाल, देवे जिससे रक्तमें क्लेदता उत्पन्न न होनेपावे । क्योंकि रक्तमें क्लेदता आनेसे त्वचा, मांस और स्नायुओंमें भी क्लेदता आकर सडन उत्पन्न होजातीहै ॥ ६७-६९ ॥

अन्तःशरीरेसंशुद्धेदोषेत्वङ्मांससंश्रिते ।

आदितःखल्पदोषाणांक्रियावाह्याप्रवक्ष्यते ॥ ७० ॥

जब उपरोक्त विरेचनी क्रियासे अथवा रक्तमोक्षणसे भीतरी दोष शुद्ध होजाय और त्वचा मांसमें रहजाय अथवा पहलेसे ही बहुत अल्प दोष हो तो बाह्य क्रियाका प्रयोग करना चाहिये अब उस बाह्यक्रियाको कहतेहैं ॥ ७० ॥

वातपित्तोल्बण विसर्पपर लेप ।

उदुम्बरत्वङ्मधुकंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलम् ।

नागपुष्पंप्रियंगुश्चप्रदेहःसघृतोहितः ॥ ७१ ॥

गूलरकी छाल, मुलैठी, कमलकेशर, नीलकमल, नागकेशर, प्रियंगु इन सबको वारीक पीसके घृत (मखन) में मिलाकर लेप करनेसे विसर्परोग शान्त होताहै ॥ ७१ ॥

न्यग्रोधपादास्तरुणाःकदलीगर्भसंयुताः ।

विसर्ग्रन्थिश्रलेपःस्याच्छतधौतघृताप्लुतः ॥ ७२ ॥

बडकी नवीन कोमल जटा, केलेकी गोभ, कमलकी जड और सौवार धुलाहुआ मखन इन सबको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे विसर्प रोग शान्त होताहै ॥ ७२ ॥

कालीयंमधुकंहेमवलयंचन्दनपद्मकम् ।

एलामृणालंफलिनीप्रलेपःस्याद्घृताप्लुतः ॥ ७३ ॥

अगर, मुलैठी, नागकेशर, लालचंदन, पद्माक, छोटी इलायची, कमलकी ठंडी और प्रियंगु इन सबको वारीक पीस १०० बार धोयेहुए घृतमें मिलाकर लेप करनेसे विसर्प शान्त होताहै ॥ ७३ ॥

शाद्वलश्चमृणालश्चशंखचन्दनमुत्पलम् ।

वेतसस्यचमूलानिप्रदेहस्यात्सतण्डुलः ॥ ७४ ॥

कमलकी डण्डी अथवा दूब, शंखका चूर्ण, लाल चंदन, नीलकमल, वेतसकी जड और वायविडंग इन सबको वारीक पीसकर लेपकरे ॥ ७४ ॥

शारिवापद्मकिञ्जल्कमुशीरं नीलमुत्पलम् ।

मञ्जिष्ठाचन्दनं लोध्रमभयाचप्रलेपनम् ॥ ७५ ॥

नलदश्वहरेणुश्च लोध्रं मधुकपद्मकौ ।

दूर्वासर्जरसश्चैव सघृतं स्यात्प्रलेपनम् ॥ ७६ ॥

या शारिवा, कमलकेशर, खस, नीलकमल, मँजीठ, लालचंदन, पठानी लोध्र और हरडे इन सबका लेप करे । अथवा खस, रेणुका, पाठानी लोध्र, मुलैठी, पद्माक, दूव और राल इनको बारीक पीस घुलेहुए घृतमें मिला लेप करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

यावकाः सक्तत्रश्चैव सर्पिपासहयोजिताः । प्रदेहो मधुकं वीरासघृता-

यवसक्तवः ॥ ७७ ॥ वलामुत्पलशालूकं वीरामगुरुचन्दनम् ।

कुर्यादालेपनं वैद्यो मृणालश्च विसान्वितम् ॥ ७८ ॥ यवचूर्णं सम-

धुकंसघृतश्च प्रलेपनम् । हरेणवो मसूराश्च समुद्गाः श्वेतशालयः ।

पृथक्पृथक्प्रदेहाः स्युः सर्वे वा सर्पिपासह ॥ ७९ ॥

यवोंके सत्तुओंको घृतमें मिला लेपकरे अथवा यवके सत्तुघृत, क्षीरकाकोली और मुलैठी इनको मिला लेपकरे । या बला, नीलकमल, शालू, क्षीरकाकोली, अगर और लाल चंदन घिस और खस इन सबको बारीक पीसकर लेपकरे । या यवका चूर्ण और मुलैठीका मैदा इनको घृतमें मिला लेपकरे । अथवा रेणुका, मसूर, मूंग सफेद शालीचावल इन सबको एकत्र घृतमें मिलाकर लेपकरे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

पद्मिनीकर्दमः शीतोमौक्तिकं पिष्टमेव वा ।

शंखः प्रवालः शुक्तिर्वागैरिको वा घृताप्लुतः ॥ ८० ॥

पद्मिनी और कीच अथवा कमलिर्नाकी जड़में लगा शीतल कीचका लेप या शीतल जलमें पीसेहुए मोती; अथवा शंख, मूंगा, सीपी गेरू इनमेंसे किसी एकका बहुत बारीक चूर्ण घीमें मिला लेपकरे ॥ ८० ॥

प्रपौण्डरीकं मधुकं बलाशालूकमुत्पलम् । न्यग्रोधपत्रंदुग्धीकासघृ-

तं स्यात्प्रलेपनम् ॥ ८१ ॥ विसानिचमृणालश्च सघृताचकशेरुका ।

शतावर्याविदार्याश्च कन्दौघौ तघृताप्लुतौ ॥ ८२ ॥

पंड्यारेकी छाल, मुलैठी, बला, कमलकंद, नीलकमल, चडके पत्ते और मुनगा इनको पीसकर घृतमें मिला लेपकरे । कमलकी जड़, कमलकी डण्डी और कसेरू

इनको वारीक पीसकर घृतमें मिला लेपकरे । अथवा शतावर और विदारीकंदको वारीक पीसकर धुलेहुए घृतके साथ लेपकरे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

शैवालंनलमूलानिगोजिह्वावृषकर्णिका ।

इन्द्राणीशाकंसघृतंशिरीषत्वग्बलाघृतम् ॥ ८३ ॥

शैवाल (पानीकी काई) नरसलकी जड़, जंगली गोभी, वृषकर्णी (मुखदर्शन) संभालेके पत्ते इन सबको वारीक पीसकर घृतमें मिला लेप करे । अथवा सिरसकी छाल और बलाको घृतमें मिला लेप करे ॥ ८३ ॥

न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षवेतसाश्वत्थपल्लवैः ।

त्वक्कल्कैर्वहुसर्पिष्कैस्तैरेवालेपनंहितम् ॥ ८४ ॥

बड़, गूलर, पिलखन, वेतस और पीपलके पत्ते और छालको वारीक पीसकर चहुतसे घृतमें मिला लेपकरे । तो विसर्पारोग शान्त हो ॥ ८४ ॥

प्रदेहाःसर्वएवैतेवातपित्तोत्वणेशुभाः ।

सकफेतुप्रवक्ष्यामिप्रलेपानपराञ्छुभान् ॥ ८५ ॥

यह सब लेप वातपित्तोत्वण विसर्पमें हितकारी हैं । अब कफोत्वण विसर्पको शान्त करनेवाले लेपोंका वर्णन करतेहैं ॥ ८५ ॥

कफोत्वण विसर्पोंपर लेप ।

त्रिफलांपद्मकोशीरंसमंगांकरवीरकम् । नलमूलान्यनन्तश्चप्रदेह-

मुपकल्पयेत् ॥ ८६ ॥ खदिरंसप्तपर्णचमुस्तमारग्वर्धधवम् । कुर-

ण्टकंदेवदारुदद्यादालेपनंभिषक् ॥ ८७ ॥

त्रिफला, पद्मकाष्ठ, खस, समंगा (मजीठ) कनेरकी छाल, नरसलकी जड़, अनन्तमूल इन सबको वारीक पीसकर लेप करे । अथवा कल्या, सप्तपर्णकी छाल, नागरमोया, अमलतास धवकी छाल, कठसरईया और देवदारु इनको वारीक पीसकर लेपकरे ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

आरग्वधस्यपत्राणित्वचंश्लेष्मान्तकस्यच । इन्द्राणीशाकंकाका-

ह्वांशिरीषकुसुमानिच ॥ ८८ ॥ शैवालंनलमूलानिवीरागन्धप्रियं-

गुकौ । त्रिफलांमधुकंठीरांशिरीषकुसुमानिच ॥ ८९ ॥ प्रपौण्डरी-

कंहीविरंदावीत्वङ्मधुकंवलाम् । पृथगालेपनंकुर्याद्द्वन्द्वशःसर्वशोऽ-

पिवा ॥ ९० ॥ प्रदेहाःसर्वएवैतेदेयाःस्वल्पघृतायुताः । वातपित्तो-
 ल्वणेयेतुप्रदेहास्तेघृताधिकाः ॥ ९१ ॥

अमलतासके पत्ते, लसोढेकी छाल, संभालूके पत्ते मकोहके पत्ते, और सिरसके फूल; शैवाल (पानीकी काई) नरसलकी जड़, वीरा (विदारीकंद) और गंव भियंगु, त्रिफला, मुलैठी, वीरा और मिरसके फूल, यह तीन प्रकारके लेप विसर्पको शान्त करतेहैं । एवं पंडचारा, नैत्रवाला, दारूहलदीकी छाल मुलैठी इन द्रव्योंमेंसे एक एक द्रव्यको अथवा दोदोको मिलाकर या संपूर्ण मिलाकर वारीक पीसकर लेप करे । यह सब लेप थोडा घृत मिलाकर करना चाहिये और पीछे जो वातपित्तो-
 ल्वण विसर्पपर लेप कह आयेहैं उनमें अधिक घृत मिला करना चाहिये ॥९०॥९१॥

प्रदेहाःसर्वएवैतेकर्त्तव्याःसंप्रसादनाः ।

क्षणक्षणेयुज्यमानापूर्वमुद्धृत्यलेपनम् ॥ ९२ ॥

यह संपूर्ण लेप रक्तको स्वच्छ करनेवाले हैं इन लेपोंको क्षण क्षणके बाद उतारकर दूसरा नवीन लेप करते रहना चाहिये ॥ ९२ ॥

विसर्पपर अन्य उपचार ।

घृतेनशतधौतेनप्रदिह्यात्केवलेनच । घृतमण्डेनशीतेनपयसामधु-
 काम्बुना ॥ ९३ ॥ पञ्चवल्ककपायेणसेचयेच्छीतलेनवा । वातासृ-
 क्षिपत्तवहुलं विसर्पवहुशोभिषक् ॥ ९४ ॥ सेचनास्तेप्रदेहायेतएव-
 घृतसाधनाः । तेचूर्णयोगावीसर्पचूर्णानामवचूर्णनाः ॥ ९५ ॥

वातसंयुक्त रक्तपित्त विषयमें केवल सौ बार धुलेहुए घृतका लेप करना चाहिये । अथवा घृतमण्डते या शीतल दूधसे अथवा मुलैठीसे या पंचवल्कल (वड, पीपल, गूलर, पिलखन और वेतसकी छाल) के शीतल कायसे वैद्य विसर्पको सेचन करे । तथा विसर्पमें जिन द्रव्योंका घृतके साथ मिलाकर लेप करना कहाहै उन द्रव्योंके कायसे विसर्पको सेचन भी करना चाहिये । अथवा उन्हीं द्रव्योंका वारीक चूर्ण विसर्पके जखमोंपर बुरकावे (उन्हीं द्रव्योंके कायका पिलानेमें प्रयोग करे और उन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत भी प्रयोग किया जासकताहै) ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

दूर्वास्वरससिद्धश्चघृतंस्याद्द्वणरोपणम् ।

दार्वात्वङ्मधुकंलोध्रकेशरश्चावचूर्णनम् ॥ ९६ ॥

दूबके स्वरससे सिद्ध किया घृत विसर्पके घर्गोंपर लेप करनेसे घावोंको भरताहै और दारूहलदीकी छाल, मुलैठी, लोध और नागकेशरका वारीक चूर्ण घावोंपर

बुरकावे तो विसर्पके घाव दूर हों (पहिले उपरोक्त घृतको घावोंपर चुपडकर ऊपरसे बंध चूर्ण बुरकाना परम हितकारक है) ॥ ९६ ॥

पटोलःपिचुमर्दस्तुत्रिवलामधुकोत्पले ।

एतत्प्रक्षालनंसर्पिर्वणचूर्णप्रलेपनम् ॥ ९७ ॥

पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलैठी और नीलकमल इनका क्वाथ बनाकर विसर्पके जखमोंको धोना चाहिये । और उन्हीं द्रव्योंके कल्क, क्वाथसे सिद्ध किया घृत खाने और लेपनमें हित है तथा इन ही द्रव्योंका वारीक चूर्ण जखमोंपर बुरकाना हितकारक है । एवं इन्हींका लेप करना भी परम हितकर है ॥ ९७ ॥

प्रदेहाःसर्वेष्वैतेकर्त्तव्याःसंप्रसादनाः ।

क्षणक्षणेप्रयोक्तव्याःपूर्वमुद्धृत्यलेपनम् ॥ ९८ ॥

पूर्वोक्त संपूर्ण लेप रक्तको प्रसादन करनेवाले हैं, इनको क्षणक्षणमें पहिलेको उतार फिर नया २ करते रहना चाहिये । (यह श्लोक दोबारा कहा गया) ॥ ९८ ॥

अनवीनेघृतेपूर्वेप्रदेहावहुशोधनाः ।

देयाःप्रदेहाःकफजेपर्याधानोद्धृतेघनाः ॥ ९९ ॥

संपूर्ण लेप पुराने घृतके संयोगसे करने चाहिये । और भली प्रकार वारीक शुद्धतापूर्वक कंकड आदि रहित होने चाहिये । अथवा यों कहिये कि पुराने घृतमें मिलाकर किये लेप जखमोंको शीघ्र शुद्धकर भर देनेवाले होते हैं । कफजविसर्पमें जो कफनाशक लेप हैं उनको लगाकर पहिलेको उतार दूसरा गाढा २ लेप करता रहे ॥ ९९ ॥

लेपका विधान ।

त्रिभागांगुष्ठमात्रःस्यात्प्रलेपःकल्कपेषितः । नातिलिग्धोनरूक्षश्च

नपिण्डोनद्रवःसमः ॥ १०० ॥ नचपर्युषितंलेपंकदाचिदवचार-

येत् । नचतेनैवलेपेनपुनर्जातुप्रलेपयेत् ॥ १०१ ॥ क्लेदवीसर्पशू-

लानिसोष्णभावात्प्रवर्त्तयेत् । लेपोह्युपरिपट्टस्यकृतःस्वेदयतिव-

णम् ॥ १०२ ॥ स्वेदजाःपीडकास्तस्यकण्डूश्चैवोपजायते । उप-

र्युपरिलेपस्यलेपोयद्यवचार्यते ॥ १०३ ॥ तानेवदोषाजनयेत्पट्ट-

स्योपरियान्कृतः । अतिलिग्धोऽतिद्रवश्चलेपोयद्यवचार्यते ॥ १०४ ॥

त्वचिनश्लिष्यतेसम्यङ्ग्नदोषंशमयत्यपि । तन्वालितंनकुर्वीतसं-

शुष्कोह्यापुटायते ॥ १०५ ॥ नचौषधिरसोव्याधिंप्राप्नोत्यपिचशु-
ष्यति । तन्वालिसेनयेदोपास्तानेवजनयेद्भृशम् ॥ १०६ ॥ संशु-
ष्कःपीडयेद्व्याधिंनिस्त्रेहोह्यवचारितः । अन्नपानानिवक्ष्यामिवि-
सर्पाणांनिवृत्तये ॥ १०७ ॥

लेपका यह क्रम है कि अंगूठेके तीसरे भाग बराबर मोटा लेप करना चाहिये । और लेपका कल्क न बहुत चिकना, न बहुत रूक्ष, न पिण्डकी समान बंधनेवाला और न अत्यंत पतला होना चाहिये । लेप सम और उत्तम रीतिसे करना चाहिये । जिस स्थानपर पहिले लेप किया हो उसीपर फिर लेप करना उचित नहीं और जो लेप उतारा गया हो उसीको भी फिर लेपन नहीं करना चाहिये । क्योंकि लेपके ऊपर लेप करनेसे जखमोंके अन्दर क्लेद बन्द होकर विसर्प, शूल और जखमोंमें उष्णता प्रगट होजातीहै और पूर्वोद्धृत लेपकी औषधिकी फिर लेपकरना भी जखमोंमें ह्येदता आदि उत्पन्न करताहै । एवं घावपर वस्त्र विठाकर लेप करना भी उचित नहीं ऐसा करनेसे घावोंका स्वेदन होताहै और पसीना आनेसे घावके इधर उधर और फुन्सियें प्रगट होजातीहै तथा खाज होने लगती हैं । लेपके ऊपर लेप करनेसे जो २ उपद्रव होतेहैं । कपडेपर लेपकर जखमोंपर लगानेसे भी वही उपद्रव होजातेहैं । एवं अतिस्निग्ध और अत्यन्त पतला लेप त्वचापर ठहरता नहीं इसलिये रोगको भी शान्त नहीं कर सकता । तथा बारीक २ लेप करनेसे वह लेप जल्दी सूखकर फटजाताहै और संपुटके समान ऊंचा खिंच जाताहै । और पिण्डके समान बहुत काठा लेप कियाजाय तो उस औषधीका रस रोगतक नहीं पहुंच सकता और वह लेप भी जल्दी सूखजाताहै । बारीक लेप करनेसे जो दोष होतेहैं वही बहुत कठोर लेपसे भी होतेहैं । यदि विना चिकनाईसे रूक्ष लेप किया जाय तो वह जखमोंको पीडन करताहै उससे जखम फट जाताहै । इसलिये इन दोषोंसे रहित विधिवत् लेप करना चाहिये । अब विसर्पोंकी निवृत्तिके लिये अन्नपान विधिका कथन करतेहैं ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

विसर्पमें अन्नपानविधि ।

लंघितेभ्योहितोमन्थोरूक्षःसक्षौद्रशर्करः ।

मधुरःकिञ्चिदम्लोवादाडिसामलकान्वितः ॥ १०८ ॥

विसर्परोगवाला मनुष्य लंघन आदि कर चुकनेपर स्निग्धतारहित शहत और

१. यहां लघनशब्दसे उपवास, वमन, विरेचन और रक्तमोक्षण यह सब जानना ।

शर्कराके योगसे मन्यका पान करे । उन्हीं मन्योंको दाडिम और आँवलोंसे खटा कर अथवा शहतसे मधुर कर पानकरे ॥ १०८ ॥

सपरूपकमृद्धीकःसखर्जूरःश्रृताम्बुना । तर्पणैर्वशालीनांसखेहा
चावलेहिका ॥ १०९ ॥ जीर्णपुराणशालीनांयूपैर्भुञ्जीतभोजनम् ।
मुद्गान्मसूरांश्चणकान्यूषार्थमुपकल्पयेत् ॥ ११० ॥ अनम्लान्दाडि-
माम्लान्वापटोलामलकैःसह । जांगलानाञ्चमांसानारसांस्तस्योप-
कल्पयेत् ॥ १११ ॥ रूक्षान्परूपकद्राक्षादाडिमामलकान्वितान् ।
रक्ताःश्वेतामहाह्वाश्चशालयःपष्टिकैःसह ॥ ११२ ॥ भोजनार्थप्र-
शस्यन्तेपुराणाःसुपरिस्तुताः । यवगोधूमशालीनांसात्म्यान्येवप्रदा-
पयेत् ॥ ११३ ॥ येषानात्युचितःशालिर्नरायेचकफाधिकाः ॥११४॥

फालसा, मुनक्का और खजूरके साथ सिद्ध किये जलमें तर्पण बना पीवे । अथवा यव और शालीचावलोंकी पतलीसी भवलेहिका रस बनाकर घृत (औषध-सिद्ध) मिला सेवन करे । इसके पचजानेपर पुराने शालीचावलोंका भात यूपके साथ देवे । यूपके लिये मूंग अथवा मसूर या चने लेने चाहिये । वह यूप बिना खटाई अथवा अनारकी खटाईयुक्त देवे । या पटोल और आँवलोंका यूप बना देवे । अथवा जंगली जीवोंका मांसरस बिना चिकनाईसे फालसा, दाख, अनार और आँवले डालकर सेवन करावे । भोजनके लिये लाल चावल, सफेद चावल, वासमती चावल, शाठी चावल, भली प्रकार पकाकर उनकी पीछ (मांड) आदि दूरकर उत्तम भात बनाकर खानेको दे । अथवा यव, गेहूँ, चावल इनमेंसे जो सात्म्य ही उसका भोजनमें प्रयोगकरे । किसी पुस्तकमें “ पयोगोधूमसात्म्यानाम् ” ऐसा पाठ लिखा है कि जिन मनुष्योंको दूध और गेहूँ (गेहूँका दलिया) सात्म्य (माफिक, अनुकूल) हो वह उनका सेवन करे । जिनको चावल खानेका अभ्यास नहीं अर्थात् चावल सात्म्य न हों और जिनकी कफप्रकृति है उनको दूध और गेहूँका प्रयोग करे ॥ १०९ ॥ ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

विसर्पमें लुपथ्य ।

विदाहीन्यन्नपानानिविरुद्धंस्वपनंदिवा ।

क्रोधव्यायामसूर्याग्निप्रवातांश्चविवर्जयेत् ॥ ११५ ॥

१ कफप्रधान विसर्पमें स्नेहहित शहदयुक्त तर्पण और वातप्रधान विसर्पमें अषडेरिका, पित्तप्रधानमें समपानुसार दोनोंमेंसे कोई एक या शर्करायुक्त फालसे आदि द्रव्योंका पीउतहित सिद्ध किया तर्पण देवे ।

विसर्प रोगीको विदाही अन्नपान, विरुद्ध भोजन, दिनमें सोना, क्रोध, व्यायाम, धूपमें फिरना, अग्निका ताप प्रबल वायु इन सबका त्याग कर देना चाहिये ॥११५॥

द्वंद्वजविसर्पोंकी चिकित्सा ।

कुर्याच्चिकित्सितान्यस्माच्छीतप्रायाणिपैत्तिके । रूक्षप्रायाणिकफ-
जेस्त्रैहिकान्यनिलात्मके । वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्पणेहितम् ॥

॥ ११६ ॥ कफपित्तप्रशमनंप्रायःकर्दमसंज्ञिते ॥ ११७ ॥

पित्तप्रधान विसर्पमें शीतल प्रायः चिकित्सा करनी चाहिये और कफप्रधानमें रूक्ष चिकित्सा एवं वातप्रधानमें स्निग्धप्रायः चिकित्सा करना चाहिये । अग्नि-
विसर्पमें वातपित्तको शान्त करनेवाली चिकित्सा करना हित है । कर्दम विसर्पमें कफपित्तनाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

रक्तपित्तोत्तरंहृद्वाग्रन्थिवीसर्पमादितः । रूक्षणैर्लघनैःसैकैःप्रदेहैः-
पाञ्चवल्किकैः । शिरामोक्षैर्जलौकाभिर्वमनैःसविरेचनैः ॥ ११८ ॥

घृतःकपायतिकैश्चकालज्ञैःसमुपाचरेत् । ऊर्ध्वञ्चाधश्चशुद्धायरक्तं
चाप्यवसेचिते ॥ ११९ ॥ वातश्लेष्महरं कर्मग्रन्थिविसर्पिणेहितम् ॥

उत्कारिकाभिरुष्णाभिरुपनाहःप्रशस्यते ॥ १२० ॥

ग्रंथिविसर्पमें रक्तपित्तकी अधिकता प्रतीत हो तो पहिलेसेही रूक्षण, लघन, पंच-
वल्कलसे सेक और प्रलेप तथा शिरामोक्षण (फस्त) जोंक लगाना, तथा वमन
विरेचन द्वारा दोष निकालना या तिक्तक घृतका प्रयोग करना बुद्धिमान् वैद्य दोष
काल आदि विचारकर जिस प्रकार उचित समझे उस प्रकारकी चिकित्सा करे ।
पहिले वमन विरेचन द्वारा उभयतः शुद्धकर और रक्तनिकालनेके अनन्तर ग्रंथिविसर्-
पमें वातकफनाशक कर्म करे ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

स्निग्धाभिर्वेशवारैर्वाग्रन्थिवीसर्पशूलिनः । दशमूलोपसिद्धेनतैले-
नोष्णेनसेचयेत् ॥ १२१ ॥ कुष्ठतैलेनचोष्णेनयवक्षारयुतेनच । गो-
मूत्रैःपत्रनिर्व्यूहैरुष्णैर्वापरिपेचयेत् ॥ १२२ ॥

ग्रंथिविसर्पमें पीडा दूर करनेके लिये गर्म २ उत्कारिका (रोटी आदि) से
उपनाह (सेक) करना अथवा स्निग्ध वेशवारसे या दशमूलसे सिद्ध कियेहुए तैलसे
ग्रंथिविसर्पकी ग्रंथियोंको सेचन (टकोर) करना चाहिये । अथवा कूठसे सिद्ध किये
हुए जवाखारयुक्त गर्म २ तैलसे अथवा गर्म गोमूत्रसे या गर्म द्रव्योंके पत्तोंके काथसे
सेचन करे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

सुखोष्णयाप्रदिह्याद्रापिष्टयाचाश्वगन्धया । शुष्कमूलककल्केन-
 क्तमालत्वचापिवा ॥ १२३ ॥ विभीतकस्यवाग्रन्थिकल्केनोष्णेन
 सेचयेत् । वलांनागवलांपथ्यांभूर्जग्रन्थिविभीतकम् ॥ १२४ ॥
 वंशपत्राण्यग्निमन्थंकुड्यांद्रंथिप्रलेपनम् । दन्तीचित्रकमूलत्वक्सु-
 धार्केपयसीगुडः ॥ १२५ ॥ भह्लातकास्थिकासीसंलेपोभिन्ध्या-
 च्छिलामपि । वहिर्मार्गस्थितंग्रन्थिकिंपुनःकफसम्भवम् ॥ १२६ ॥

अथवा किंचित् उष्ण असंगंधके कल्कका या सूखी मूलीके कल्कका अथवा
 करंजुएकी छालके कल्कका ग्रंथिविसर्पपर लेप करना चाहिये । अथवा वहडेके
 गर्म गर्म कल्कको ग्रंथिविसर्पपर लेप करे या बला, नागबला, हरड भोजपत्रकी
 गांठ, वहडे, वांसके पत्ते, अभिमंथ इनको वारीक पीसकर गर्मकर ग्रंथिविसर्पपर
 लेप करे । अथवा दंती, चित्तेकी जडकी छाल, फोहरका दूध, आकका दूध, गुड,
 भिलांवेकी गुठली, हीराकसीस इन सबको लेप करनेसे पत्थरकी शिला भी
 फूटजावे फिर कफजनित वहिर्मार्गगामी विसर्पकी ग्रंथिका तो कहना ही क्या
 है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

बहुतदिनकी ग्रंथिकी चिकित्सा ।

दीर्घकालस्थितंग्रन्थिभिन्ध्याद्वाभेषजैरिमैः । मूलकानांकुलत्थानां
 यूपैःसक्षारदाडिमैः ॥ १२७ ॥ गोधूमार्त्रैर्यवात्रैर्वासशीधुमधुश-
 र्करैः । सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुलुङ्गरसान्वितैः ॥ १२८ ॥ त्रिफ-
 लायाःप्रयोगैश्चपिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः । मुस्तभह्लातसक्तूनांप्रयोगै-
 र्माक्षिकस्यच ॥ १२९ ॥ देवदारुगुडूच्योश्चप्रयोगैर्गिरिजस्यच ॥
 ॥ १३० ॥ धूमैर्विरैकैःशिरसःपूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ॥ अयोलवणपापा-
 णहेमताम्रप्रपीडनैः । आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्विधिभिर्वली
 स्थिरः ॥ १३१ ॥

यदि ग्रंथि बहुत दिनकी उत्पन्न हुई हो और फूटनेमें न आवे तो उसका इन
 औषधियोंमें भेदन करावे । जैसे जवाखार और डामिका रस मिलाहुआ कुल्युका
 यूप । अथवा मूलीका यूप या शीधु, शहत और खांडके साथ गेंदूका दलिया या
 यवका दलिया । अथवा शहत, वारुणीमण्ड, और निर्जारेका रस मिलाकर या
 पीपट और शहतेके साथ त्रिफलाका प्रयोग करे । अथवा शहत, नागमोथा और

भिलावेके साथ अनेक प्रकारकी सत्तुओंका प्रयोग करे। या देवदारुके साथ गिलोय तथा गेरूका प्रयोग करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

ग्रन्थिःपाषाणकठिनोयदानैवोपशाम्यति ।

अथास्त्रदाहःक्षारेणशरैर्लोहेनवाहितः ॥ १३२ ॥

अथवा गुल्मरोगके भेदन करनेवाले जो धूम्रप्रयोग शिरोविरेचन, कहे हैं उनका प्रयोग करे। और लोह, लवण, पाषाण, सुवर्ण और ताम्रआदि गरम कर उससे ग्रंथिको पीडनकरे। अथवा उष्ण द्रव्योंके लेपन द्वारा प्रपीडन करे। इन सिद्ध अनेक प्रकारकी क्रियाओं द्वारा बलवान् स्थिर और पत्यरके समान कठिन यदि शान्त न हो तो उसकी क्षारकर्म, दाहकर्म अथवा शर (वाण) वा लोहसे दागना आदि कर्म करना हित है ॥ १३२ ॥

**पाकिभिःपाचयित्वावापाटयित्वासमुद्धरेत् । मोक्षयेद्बहुशश्चास्य
रक्तमुत्क्लेशमागतम् ॥ १३३ ॥ पुनश्चापहृत्तेरक्तेवातश्लेष्मजिदौ-
षधम् । धूमोविरेकःशिरसःस्वेदनंपरिमर्दनम् ॥ १३४ ॥**

अथवा पकानेवाली औषधोसे पकाकर तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा सिद्धहस्त वैद्य ग्रंथिको चीरकर उसका सब मवाद निकालडाले और जो उसमें उत्क्लेशित रक्त ही उसको भी निकालता रहे जब रक्त निकलचुके फिर वातकफनाशक औषध, धूम्र, शिरो-विरेचन, स्वेदन और प्रपीडन कर्म करे ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

**अपशाम्यतिदोषेषुपाचनंवाप्रशस्यते । प्रक्लिन्नेदाहपाकाभ्यांभि-
षयशोधनरोपणैः । वाह्यैश्चाभ्यन्तरैश्चैवव्रणव्रत्समुपाचरेत् ॥ १३५ ॥**

जो ग्रंथि दग्ध आदि करनेसे शांत न होतीहो उसको पकाना ही उत्तम होताहै। और जो ग्रंथि दाह तथा पाकसे क्लेशित होगई-हो उसकी वैद्य शोधनीय और रोपणीय क्रिया करे। तथा वाहर और भीतरसे उस ग्रंथिकी व्रणके समान-चिकित्सा करे ॥ १३५ ॥

कम्पित्यकंविडंगानिदार्वीकारञ्जकंफलम् ।

पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंग्रन्थिव्रणचिकित्सितम् ॥ १३६ ॥

कमीला, वायविडंग, दारूहल्दी और कंजुएके फलोंके कल्कसे सिद्ध किये तेलका ग्रंथिविसर्पके जखमोंको रोपण करनेके लिये प्रयोग करे ॥ १३६ ॥

द्वित्रणीयोपदिष्टेनकर्मणाचाप्युपाचरेत् ।

देशकालविभागज्ञोव्रणग्रन्थिविसर्पवित् ॥ १३७ ॥

देश, कालके विभागको जाननेवाला और व्रण तथा ग्रंथिविसर्पको जाननेवाला वैद्य द्वित्रणीय चिकित्सामें कहीहुई क्रियाद्वारा ग्रंथिविसर्पकी चिकित्सा करे ॥ १३७ ॥

गंडमालाकी चिकित्सा ।

यएवविधिरुद्दिष्टोग्रन्थीनांविनिवृत्तये । सएवगलगण्डानांकफजानां
निवृत्तये ॥ १३८ ॥ गलगण्डास्तुवातोत्थायेकफानुगतानृणाम् ।

घृतक्षीरकषायाणामभ्यासान्नभवन्तिते ॥ १३९ ॥

ग्रंथियोंको निवृत्त करनेकी जो चिकित्सा वर्णन की है कफसे उत्पन्न हुई गलगण्ड (अंजीरों) की निवृत्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये । सब प्रकारकी गलग्रंथियों जो कफके संबंधसे उत्पन्न होतीहैं वह घृत, क्षार और कषायोंके अभ्यास करनेसे मनुष्योंके शरीरमें होही नहीं सकती ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

यानीहोक्तानिकर्माणिविसर्पाणांनिवृत्तये ।

एकतस्तानिसर्वाणिरक्तमोक्षणमेकतः ॥ १४० ॥

विसर्पेनह्यसंसृष्टोरक्तपित्तेनजायते ।

तस्मात्साधारणंसर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम् ॥ १४१ ॥

विसर्परोगकी शान्तिके लिये जितने कर्म कहेहैं वह सब एक ओर और केवल रक्तका निकाल देना एक ओर है । क्योंकि रक्तपित्तके संसर्गके विना विसर्प रोग होही नहीं सकता. इसलिये रक्तका निकाल देना ही साधारण रूपसे उत्तम चिकित्सा है । इस प्रकार विसर्परोगकी साधारण चिकित्साका कथन किया है ॥ १४० ॥ १४१ ॥

विशेषोदोषवैषम्यान्नचनोक्तःसमांसतः ।

समासव्यासनिर्दिष्टांक्रियांविद्वानुपाचरेत् ॥ १४२ ॥

इसमें दोषोंकी विषमता हेतु भेद आदि जो हैं वह बहुत विशेषतासेही नहीं कहेगये और न बहुत संक्षेपसे ही कहेगये हैं । इस संक्षेप और विस्तारसे निर्देश कीहुई क्रियाको बुद्धिमान् वैद्य विचारकर चिकित्सा कर ॥ १४२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

निरुक्तनामभेदाश्चदोषादूप्याणिहेतवः । आश्रयोमार्गतश्चैवविस-
र्पगुरुलाघवम् ॥ १४३ ॥ लिंगान्युपद्रवायेचयल्लक्षणउपद्रवाः ।

साध्यत्वंनचसाध्यानांसाधनश्चयथाक्रमम् ॥ १४४ ॥ इतिपिप्रच्छ-
वेसिद्धिमग्निवेशायधीमते । उक्तंभगवताह्येतद्विसर्पाणांचिकि-
त्सिते ॥ १४५ ॥

इति चरक० विसर्पचिकित्सितं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करते हैं कि इस विसर्पचिकित्सित नामके अध्यायमें
विसर्पकी निरुक्ति नाम, भेद, दोष, दूष्य, हेतु, आश्रय, मार्ग, गुरुता, लाघव, लक्षण,
उपद्रव, उपद्रवोंके लक्षण, साध्यता, असाध्यता और चिकित्सा यह सब भगवान्
आत्रेयजीने बुद्धिमान् तत्त्वके जाननेकी इच्छावाले अभिवेशके प्रति यथाक्रम वर्णन
कियाहै ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

इति श्री च० प्र० आ० स० चि० स्थाने प्र० भा० टी विसर्पचिकित्सितं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो मदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भग-
वानात्रेयः ।

अब हम मदात्यय चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार
भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

सुरैःसुरेशसहितैर्यासुरापरिपूजिता । सौत्रामण्यांहूयतेयाकर्म-
भिर्याप्रतिष्ठिता ॥ १ ॥ यज्ञोहियाचशक्रस्यसोमोऽतिपति-
तोयया । नीरजस्तमसाविष्टस्तस्माद्गुर्गात्समुद्भूतः ॥ २ ॥
विधिभिर्वेदविहितैर्यायजद्भिर्महात्मभिः । दृश्यास्पृश्याप्रकल्प्या-
चयज्ञियायज्ञसिद्धये ॥ ३ ॥ योनिसंस्कारनामाद्यैर्विशेषैर्वहुधाच-
या । भूत्वाभवत्येकविधासामान्यान्मदलक्षणात् ॥ ४ ॥ यादेवा-
नमृतंभूत्वास्वधाभूत्वापितृंश्चया । सोमोभूत्वाद्विजातीन्यायुङ्क्ते
श्रेयोभिरुत्तमैः ॥ ५ ॥ आश्विनंयामहत्तेजोवीर्यंसारस्वतश्चया ।
बलमैद्रं चयासोमेसौत्रामण्याश्चयामता ॥ ६ ॥ शोकारतिभयो-
द्देगनाशिनीयामहाबला । याप्रीतिर्यारतिर्यावाग्यापुष्टिर्याचनिर्वृ-

रतिः ॥ ७ ॥ चासुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः । रतिःसुरेत्यभि-
हितातांसुरांविधिनापिवेत् ॥ ८ ॥

इन्द्र सहित देवताओंने जिस मद्यका पूर्व समयमें पूजन कियाहै जिसकी सौत्रा-
मणी यज्ञके बीचमें आहुती दीगई । जो कर्मद्वारा प्रतिष्ठित हुई है । जो यज्ञमें प्रतिष्ठा
पात्रकी है । जिसके पीनेसे सोमपान करनेवाले इन्द्र तमसे आविष्ट हुए संकटसे
विमुक्त हुए, जिस मद्यको यज्ञकी हितकारिणी होनेसे महात्माओंने वेदविहित
विधिसे यजन करतेहुए देखनेयोग्य स्पृश्य कल्पना करने योग्य यज्ञकी सिद्धिके लिये
मानाहै । जो मद्य द्रव्य, संस्कार और नाम विशेषसे अनेक प्रकारकी होतेहुए भी
मदकारक सामान्य लक्षणोंसे एक ही प्रकारकी मानी जातीहै । जो मद्य अमृत-
रूपसे देवताओंको, स्वधा होकर पितृगणोंको, सोम होकर द्विजोंको, उत्तम कल्या-
णकी देनेवाली है जो सुरा अश्विनीकुमारोंको महातेजको देनेवाली है, जो सरस्व-
तीका वीर्य है, इन्द्रका बल है, सौत्रामणी यज्ञमें सोमरूप है जो सुरा शोक, अरति,
भय और उद्वेगको नाशकरनेवाली है, जो सुरा प्रीति, रति, वाणी, पुष्टि और
सुखको देनेवाली है । जो सुरा देवता, दैत्य, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और मनुष्योंमें रतिकी
उत्पादन करनेवाली है । उस सुराको सुरापी पुरुष (वाममार्ग) इस विधिसे
पीवे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

शरीरकृतसंस्कारःशुचिरुत्तमगन्धवान् । प्रावृतोनिर्मलैर्वस्त्रैर्यथर्तु-
द्वामगन्धिभिः ॥ ९ ॥ विचित्रविविधस्त्रग्वीरत्नाभरणभूषितः ।
देवद्विजातीन्संपूज्यस्पृष्ट्वामङ्गलमुत्तमम् ॥ १० ॥ देशेयथर्तुकेश-
स्तेकुसुमप्रकरीकृते । संवाससंमतेमुख्येधूपसंमोदवोधिते ॥ ११ ॥
सोपधानेसुसंस्तीर्णेविहितेशयनासने । उपविष्टोऽथवातिर्यक्स्वश-
रीरसुखेस्थितः ॥ १२ ॥ सौवर्णेराजतैश्चापितथामणिमयैरपि ।
भाजनैर्विमलैश्चान्यैःसुकृतैश्चपिवेत्सदा ॥ १३ ॥ स्त्रीभिर्यौवनम-
त्ताभिःशिक्षिताभिर्यथर्तुकैः । वस्त्राभरणमाल्यैश्चभूषिताभिर्विभू-

१. स्तेनो हिरण्यस्य सुरा पित्रथ गुरोस्तल्पमानसन् ।

प्रदहा चैते पतन्ति चत्वारः पद्ममाधर ७७ स्तैः ॥ १ ॥

“ छान्दोगोपनिषद् ”

मददक्ष्या सुरापान स्तेय गुर्वगनागमः । महान्ति पातकान्यादृस्ससर्गश्चापि तेः सह ॥ मनुः-

पितः ॥ १४ ॥ शौचानुरागयुक्ताभिःप्रमदाभिरितस्ततः । संवाह्य-
मानङ्गुष्ठाभिःपिवेन्मद्यमनुत्तमम् ॥ १५ ॥ पिवेन्मद्यानुकूलैर्वाफ-
लैर्हरितकैःशुभैः । लवणैर्गन्धपिशुनैरवदंशैर्यथर्तुकैः ॥ १६ ॥ भृष्टै-
र्मांसैर्बहुविधैर्भूजलाम्बरचारिणाम् । पौरोगवर्गविहितैर्भक्ष्यैश्चवि-
विधात्मकैः ॥ १७ ॥

वमन, विरेचनादिसे शुद्धदेह होनेपर उत्तम पवित्र, सुगंधित द्रव्योंसे सुगंधित हो निर्मल वस्त्रोंको धारणकर ऋतुके अनुसार सुगंधित फूलमाला आदि धारणकर अनेक प्रकारके रत्न आभूषणोंसे सुशोभित हो, देवता, ब्राह्मण आदिका पूजन कर, मंगल वस्तुओंका स्पर्श करे फिर ऋतुके अनुसार पुष्पादिकोंसे सुशोभित, सुगंधित द्रव्योंसे धूपन कियेहुए सुन्दर स्थानमें एक शय्या विछावे, जिस शय्या, आसन, आदि पर मनोनुकूल तकिया, तोशक आदि बिछे हुए हों ऐसी शय्या आसन आदि पर बैठकर, अथवा तकियेके सहारेसे टेढ़ा होकर स्थित हुआ सुवर्ण, चांदी अथवा अन्य मणिमय निर्मल सुन्दर बनेहुए सुचित्रित पात्रमें डालकर यौवनके मदसे मत्त-हुई सब कलाओंको जाननेवाली ऋतुके अनुसार वस्त्र, भूषण, माला आदिकोंसे सुशोभित हुई पवित्रता और अनुरागयुक्त मनोनुकूल स्त्रियोंसे सेवित किया हुआ पुरुष मद्यका पान करे । और उसके अनन्तर अनुकूल उत्तम फल नमकीन सुगंधित ऋतुके अनुसार चटनी आदि सेवन करे । अनेक प्रकारके जीवोंके मांसको नमकीन सुगंधित बनाकर अयसा और अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ सेवन करे ॥ ९-१७ ॥

पूजयित्वासुरान्पूर्वमाशिपःप्राक्प्रयुज्यच ।

प्रदायसजलमद्यमादितोवसुधातले ॥ १८ ॥

प्रकृतिभेदसे मद्यसेवन ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः । स्निग्धोष्णैर्भावितैश्चान्नै-
र्वातिकोमद्यमाचरेत् ॥ १९ ॥ शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशी-
तलैः । पैत्तिकोभावितश्चान्नैःपिवेन्मद्यंनसीदति ॥ २० ॥ उपचारै-
रशिशिरैर्यवगोधूमभुक्विपवेत् । श्लैष्मिकैर्धन्वजैर्मांसैर्मद्यंमरिच-

१ मद्यमानं दिजातीनां गहितं पातकं महत् । प्रायश्चित्ता भवेत्पुनः पीया च नरकं प्रवेत् ॥
सुरा ये मद्यमनानां पान्ना च मद्यमुष्यते । तस्माद्वासगराजन्वी धेनुपथं न सुरां विनेत् ॥
एकमधुरो येषां प्रद्व्यर्षं तथेवतः । एवतः सर्वपापानि मद्यपानं तथेवतः ॥
अज्ञानां प्रायश्चित्तं सुरासस्पृष्टेभ्य च । पुनः सप्तवारमर्हति न तपो वर्गा दिजातपः ॥

कैःसह ॥ २१ ॥ विधिर्वसुमतामेषभविष्यद्भिभवाश्रये । यथोपप-
त्तिकैर्मद्यंपातव्यंमात्रयाहितम् ॥ २२ ॥

देवताओंका पूजन कर आशीर्वाद ले मद्यमें थोडासा जल मिलाकर पृथ्वीपर डाले फिर वातप्रकृति मनुष्य शरीरमें तैलकी मालिशकर, उबटना लगा, स्नानकर उत्तम वस्त्र पहिने, फिर धूम्रपानकर चंदन लगा घृतयुक्त गर्म अन्नके साथ मद्यका सेवन करे । पित्तप्रधान मनुष्य अनेक प्रकारके शीतल उपचार कर-मधुर, स्निग्ध और शीतल अन्नके साथमें जलमिले मद्यका सेवन करे । एवं कफप्रधान मनुष्य उष्ण उपचार करनेके उपरांत यव और गेहूंसे बनेहुए भोजन और कालीमिर्च डालकर सिद्धकिये हुए जंगली जीवोंके मांसरसके साथ मद्यका सेवन करे । जो मनुष्य धनसम्पन्न हैं अथवा आगेको धन सम्पन्न होने वालेहों वह मात्रानुसार इसी विधिसे ही मद्यका सेवन करें । (इस विधिको छोडकर पूर्वोक्त विधिसे मद्यके सेवन करनेवाले मनुष्योंका धनादि भी मद्यके साथ ही स्वाहा हो जाता है) ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

वातिकेभ्योहितंमद्यंप्रायोगौडिकपैष्टिकम् ।

कफपित्ताधिकेभ्यस्तुफालमाधवशार्करम् ॥ २३ ॥

वातप्रधान मनुष्यको गुडसे बना अथवा पैष्टिकमद्य पीना चाहिये । तथा कफ-पित्तप्रकृतिवालोंको फलोंसे बना मद्य और शहदसे बना अथवा खांडसे बना मद्य हितकारी होतीहै ॥ २३ ॥

मद्यके गुणदोष ।

बहुद्रवंबहुगुणंबहुकर्मप्रदात्मकम् । गुणैर्दोषैश्चतन्मद्यमुभयञ्चोप-
लक्ष्यते ॥ २४ ॥ विधिनामात्रयाकालेहितैरन्नैर्यथावलम् । प्रहृष्टो
यःपिवेन्मद्यंतस्यस्यादमृतंतथा ॥ २५ ॥ यथोपेतंपुनर्मद्यंप्रसंगा-
द्येनपीयते । रूक्षव्यायामनित्येनविषवद्यातितस्यतत् ॥ २६ ॥
मद्यंहृदयमाविश्यस्वगुणैरोजसोगुणान् । दशभिर्दशसंक्षोभ्यचे-
तोनयतिविक्रियाम् ॥ २७ ॥

मद्य बहुत पतला और अनेक गुण कर्मवाला होताहै । अब उस मद्यके गुण और दोष दोनोंको दिखातेहैं । उचित समयमें ठीक मात्रासे विधिपूर्वक बल और कालके अनुसार मसन्न चित्त हो मद्यका सेवन करे तो अमृतके समान गुणोंको करनेवाला होताहै । तथा जो मनुष्य रूक्ष और परिश्रम नित्य करनेवाला होते हुए अकस्मात्

अथवा अधिक मात्रासे उसे पीलेताहै अथवा जैसी कैसी प्रसंगवश मिले विना मात्राकाल सात्म्यादिका विचार किये विना मद्य पीताहै उसको वह विषके समान हानिकारक होतीहै । तथा वह हृदयमें प्रवेशकर अपने दशगुणोंसे ओजधातुके दश गुणोंको संक्षोभितकर चित्तमें विकारको उत्पन्न करतीहै ॥ २४-२७ ॥

मद्यके १० गुण ।

लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्मांम्लव्यवायाशुगमेवच ।

रूक्षंविकाशिविशदंमद्यं दशगुणंस्मृतम् ॥ २८ ॥

लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, शीघ्रगामी, रूक्ष, विकाशी और विशद, यह मद्यके दश गुण हैं ॥ २८ ॥

ओजके १० गुण ।

गुरुशीतंमृदुश्लक्ष्णं वहलंमधुरंस्थिरम् ।

प्रसन्नं पिच्छिलंस्निग्धमोजोदशगुणंस्मृतम् ॥ २९ ॥

भारी, शीतल, मृदु, श्लक्ष्ण, वहल, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और स्निग्ध यह दश गुण ओज धातुके हैं ॥ २९ ॥

मद्यसे ओजके गुण नष्ट होकर मदकी उत्पत्ति ।

गुरुत्वंलाघवाच्छैत्यञ्चौष्ण्यादम्लस्वभावतः । माधुर्य्यमादवंतै-
क्षण्यात्प्रसादश्चाशुभावनात् ॥ ३० ॥ रौक्ष्यात्त्नेहं व्यवयित्वात्स्थि-
रत्वंश्लक्ष्णतामपि । विकासिभावात्पैच्छिल्यं वैशद्यात्सान्द्रतां
तथा ॥ ३१ ॥ सौक्ष्म्यान्मद्यंनिहन्त्येवमोजसःस्वगुणैर्गुणान् ।

सत्त्वंतदाश्रयश्चाशुसंक्षोभ्यजनयेन्मदम् ॥ ३२ ॥

मद्यकी लघुतासे ओजकी गुरुता, उष्णतासे शीतलता, अम्लतासे मधुरता, तीक्ष्णतासे मृदुता शीघ्रगामितासे प्रसन्नता रूक्षतासे स्निग्धता, व्यवायी होनेसे स्थिरता, विकाशी होनेसे श्लक्ष्णता, विशदतासे पिच्छिलता और सूक्ष्मतासे वहलता (सान्द्रता) इस प्रकार मद्य अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको नष्ट करतीहै । मद्य सूक्ष्म होनेसे अपने गुणों द्वारा ओजके गुणोंको नष्टकर मन और तदाश्रय ओजको संक्षोभित कर मद (नशा) को उत्पन्न करतीहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

रसधात्वादिमार्गाणांसत्त्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम् । प्रधानस्यौजसश्चैव-
हृदयंस्थानमुच्यते ॥ ३३ ॥ अतिपीतेनमयेनविहतेनौजसाच-
त्त । हृदयंयातिवैकृत्यंतत्रस्यायेचधातवः ॥ ३४ ॥

रस और धातु आदिकोंके मार्गोंका तथा सत्त्वसंज्ञक मन, बुद्धि, इन्द्रियज्ञान आत्मा और ओजधातुका प्रधान स्थान हृदय ही है। अति मद्यके पीनेसे ओजधातु नष्ट होकर हृदय और हृदयस्थ संपूर्ण धातु विकृत होजाते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मदके भेद ।

ओजस्यविहतेपूर्वोहृदिचप्रतिबोधिते ।

मध्यमोविहतेऽल्पेऽत्रविहतेतूत्तमोमदः ॥ ३५ ॥

मद्यके पीनेसे ओजधातु नष्ट न होकर हृदयमें चैतन्यता रहतेहुए जो मद होताहै उसको पूर्वमद कहतेहैं और जिस मद्यके पीनेसे ओजधातु किंचित् विहृत होकर चंचलता (शरारत) उत्पन्न हो उसको मध्यमद्य कहतेहैं । ओजधातुके अत्यंत विहृत होजानेसे जब मनुष्य उन्मत्त होजाताहै तब उसको उत्तम मद्य कहते हैं ॥ ३५ ॥

नैवविघातंजनयेन्मद्यं पैष्टिकमोजसः ।

विकाशरूक्षविशदागुणास्तत्रहिनोल्बणाः ॥ ३६ ॥

पैष्टिकमद्य ओजधातुमें अधिक विकार उत्पन्न नहीं करता क्योंकि इसमें विकाशी, रूक्ष और विगदता यह गुण प्रबल नहीं हैं ॥ ३६ ॥

हृदिमद्यगुणाविष्टेहर्षस्तर्पोरतिःसुखम् ॥ ३७ ॥

जब मद्यके गुण हृदयमें प्रवेश करते हैं तब हर्ष, इच्छा, रति और सुख यह भाव प्रगट होजातेहैं ॥ ३७ ॥

विकाराश्चयथासत्त्वंचित्राराजसतामसाः । जायन्तेमोहनिद्रार्त्ता

मद्यस्यातिनिपेवणात् । समद्यविभ्रमोनाम्नामदइत्यभिधीयते ॥ ३८ ॥

मद्यके अधिक सेवनसे जैसा मनुष्यका स्वभाव होताहै उसके अनुसार राजस अथवा तामस अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न होतेहैं तथा मोह निद्रासे व्याकुलता आदि दोष प्रगट होते हैं । इस मदको मद्यविभ्रम कहते हैं ॥ ३८ ॥

मदके ३ भेद ।

पीयमानस्यमद्यस्यविज्ञातव्यास्त्रयोमदाः ।

प्रथमोमध्यमोऽन्त्यश्चलक्षणैस्तान्प्रचक्षते ॥ ३९ ॥

मद्यके पीनेसे तीन प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं । जैसे प्रथम मद, मध्यम मद और अन्त्य मद । अब इन तीनोंके लक्षणोंकी कहते हैं ॥ ३९ ॥

१ मनो हिनस्ति सर्प मिथ्या प्रउपति हि विरुडया बुद्ध्या । मातरमपि कामयते साश्रय मद्यपान-
मत्तः सन् ॥ वैकल्य धरणीपातमयधोचिगजत्पनम् । सन्निपातरप्य विह्वानि मयं सर्वाणि दर्शयेत् ॥

प्रथममदके लक्षण ।

प्रहर्षणःप्रीतिकरःपानान्नगुणदर्शकः । वायगीतप्रहासानांकथानाञ्चप्रवर्त्तकः ॥ ४० ॥ नचबुद्धिस्मृतिहरोविषयेपुनचाक्षमः । सुखनिद्राप्रबोधश्चप्रथमःसुखदोमदः ॥ ४१ ॥

प्रथम मद हर्षकारक, प्रीतिवर्द्धक, अन्नपानके गुणोंको दिखानेवाला (रुचिकारक) वाजा, गीत, परिहास और अनेक प्रकारकी वार्त्ताओंका प्रवर्त्तक होताहै । इससे बुद्धि और स्मृति नष्ट नहीं होती और न विषयमें शिथिलता होती है । तथा सुखसे निद्रा और सुखपूर्वक प्रबोध (जागरण) यह लक्षण होते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

मध्यममदके लक्षण ।

मुहुःस्मृतिर्मुहुर्मोहोव्यक्तासज्जतिवाङ्मुहुः । युक्तायुक्तप्रलापश्चप्रपलायनमेवच ॥ ४२ ॥ स्थानपानान्नसांकथ्येयोजनासविपर्यया । लिङ्गान्येतानिजानीयादाविष्टेमध्यमेमदे ॥ ४३ ॥

वारंवार स्मरण और मोहका होना, सुखसे अस्पष्ट अक्षरोंका निकलना, कभी स्पष्ट शब्दोंका बोलना, कभी कण्ठका रुकजाना, कभी युक्त कभी अयुक्त अण्टसण्ट बकना, चलायमान होना, कभी स्थिर होजाना, खानेपीनेकी चेष्टा करना, कहनेमें विपरीतता होना, यह मध्य मदविशिष्ट पुरुषके लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

मध्यममदमुत्क्रम्यमदमप्राप्यचोत्तमम् ।

नकिञ्चिन्नाशुभंकुर्युर्नराराजसतामसाः ॥ ४४ ॥

राजस, तामस प्रकृतिवाले मनुष्योंको यदि उत्तम मद (बेहोशी निद्रा) न हो तो यह मध्य मदको प्राप्त होकर अनुचित कर्मोंको करने लगते हैं । ऐसा कोई अशुभ (खोटा) कर्म नहीं जिसको यह मदातुर मनुष्य न करडाले ॥ ४४ ॥

कोमदंतादृशंविद्वानुन्मादमिवदारुणम् ।

गच्छेदध्वानमस्वन्तंबहुदोषमिवाध्वगः ॥ ४५ ॥

इस प्रकारके दारुण उन्मादके समान मदकारक मद्यको बुद्धिमान् मनुष्य त्याग देवे । जैसे-बहु दोषयुक्त जिसमें अनेक उपद्रवोंका भय हो ऐसे प्राणनाशक मार्गको बुद्धिमान् पथिक त्याग देताहै उसी प्रकार इस उन्मादकेसे लक्षणोंवाले मध्य मदको त्याग देना चाहिये ॥ ४५ ॥

अंत्य मद ।

तृतीयन्तुमदंप्राप्यभग्नदार्ढ्यनिष्क्रियः । मदमोहावृतमनाजीव-

न्नपिमृतैःसमः ॥ ४६ ॥ रमणीयान्सविषयान्नवेत्तिनसुहृज्जनम् ।
 यदर्थपीयतेमद्यंरतिताञ्चनविन्दति ॥ ४७ ॥ कार्याकार्यसुखदुः-
 खलोकेयच्चहिताहितम् । यदवस्थोनजानातिकोऽवस्थांतांत्रजे-
 द्बुधः ॥ ४८ ॥ सदूष्यःसर्वभूतानानिन्द्यश्चाग्राह्यएवच । व्यसनि-
 त्वादुदकैचसदुःखंव्यधिमश्नुते ॥ ४९ ॥

अन्त्यमदके होनेसे मनुष्य कटी हुई लकड़ीके समान निष्क्रिय होकर गिरजाता है वह मद और मोहसे आवृत हुआ जीताहुआ भी मरेके समान पडारहता है । उस समय उसको किसी प्रकारके रमणीय विषय अथवा सुहृदजन कुछ भी नहीं जान पडते और न, किसीको किसी प्रकार जानने पहिचाननेका ज्ञान रहता है । जिस मतलबके लिये वह मद्य पीता है उसका भी उसको कुछ ज्ञान नहीं रहता । कार्य, अकार्य, सुख, दुःख और हित और अहित आदि जो कुछ भी जगत्में है उस किसीको भी उस अवस्थामें वह नहीं जानसकता । इस अवस्थाका नाम अन्त्य मद है । ऐसी अवस्थाको कौन मनुष्य है जो प्राप्त होना चाहताहो । इस प्रकार मद्य पीनेवाला मनुष्य प्राणिमात्रकी दृष्टिमें दूषित निन्दाके योग्य और किसी प्रकार भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता है । और अन्तमें इस व्यसनसे दुःख तथा रोगोंसे पीडित होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मद्यकी निन्दा ।

प्रेत्यचेहचयच्छ्रेयःश्रेयोमोक्षश्चयत्परम् । मनःसमाधौतत्सर्वमाय-
 त्तंसर्वदेहिनाम् ॥ ५० ॥ मद्येनमनसश्चास्यसंक्षोभःक्रियतेमहान् ।
 महामारुतवेगेनतटस्थस्यैवशाखिनः॥५१॥ मद्यप्रसङ्गमज्ञात्वामहा-
 दोषमहागदम् । सुखमित्यधिगच्छन्तिरजोमोहपराजिताः ॥ ५२ ॥
 मद्योपहतविज्ञानावियुक्ताःसात्त्विकैर्गुणैः । श्रेयोनिर्विप्रयुज्यन्तेम-
 दान्धामदलालसाः ॥ ५३ ॥

इस लोकाका सुख और पारलौकिक स्वर्गादि सुख तथा मोक्ष यह सब मनुष्योंके मनकी समाधिके आधीन हैं । और जिसप्रकार आंधी, तूफान आदिसे नदीके किनारेके वृक्ष संक्षोभित होतेहैं उसी प्रकार मद्यके पीनेसे मनुष्योंका मन संक्षोभित होजाता है । मद्यके पीनेसे ज्ञान नष्ट होकर अनेक दोष और रोग उत्पन्न होतेहैं परन्तु रजोगुण और तमोगुणके मोहसे पराजित हुए मूर्ख फिर भी मद्यके पीनेमें

१ पेषं मद्यं पठं खाद्य समालोक्ष्याः परत्रियः । इष्येय श्रेष्ठमाचारं पामताः प्रवदन्ति हि ॥

सुख मानतेहैं । मद्यके पीनेसे मदांध और मदकी लालसावाला मनुष्य हतज्ञान होकर संपूर्ण सात्विक गुणोंसे हीन और कल्याणसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ ५०-५३ ॥

मध्येमोहोभयंशोकःक्रोधोमृत्युश्चसंश्रितः ।

सोन्मादमदमूर्च्छाद्याःसापस्मारापतानकाः ॥ ५४ ॥

मद्यके पीनेसे वेहोशी, भय, शोक, क्रोध, उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और अपतानक आदि महाव्याधियें अथवा मृत्यु भी होजातीहै ॥ ५४ ॥

यत्रैकःस्मृतिविभ्रंशस्तत्रसर्वमसाधुवत् ।

इत्येवमद्यदोषंज्ञामद्यंगर्हन्तियत्नतः ॥ ५५ ॥

सत्यमेतेमहादोषामद्यस्योक्तानसंशयः ।

अहितस्यातिमात्रस्यपीतस्यविधिवर्जनम् ॥ ५६ ॥

जिस मद्यके पीनेसे मनुष्यकी स्मृति ही नष्ट होजाय उसमें और बाकी दुर्गुण क्या रहे अर्थात् संपूर्ण निन्दनीय दोष मद्यसे प्राप्त होतेहैं । इसलिये दोषके जाननेवाले बुद्धिमान् (द्विजाती) मद्यकी यत्नपूर्वक निन्दा करतेहैं । अर्थात् मद्यका स्पर्श करना भी पाप मानते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

किन्तुमद्यंस्वभावेनयथैवान्नंतथास्मृतम् । अयुक्तियुक्तरोगाययुक्ति-

युक्तंयथास्मृतम् ॥ ५७ ॥ प्राणाःप्राणभृतामन्नंतदयुक्तयानिहन्त्य-

सून । विषंप्राणहरंतच्चयुक्तियुक्तरसायनम् ॥ ५८ ॥

मद्यके पीनेवाले मनुष्य भी यदि युक्तिके विना अहित और अधिक मात्रासे मद्यको पीते हैं तो निश्चय ही उनको भी यह महाव्याधियें और दोष अवश्य प्राप्त होते हैं । जैसे अन्न स्वभावसे ही हितकारक होतेहुए भी विधिको त्यागकर अधिक मात्रासे अथवा अयुक्तिसे सेवन किया जाय तो रोगोंको उत्पन्न करनेवाला होताहै और युक्तियुक्त होनेसे अमृतके समान होताहै, उसी प्रकार मद्यसात्म्य मनुष्य भी यदि अहित मात्रासे मद्यपान करे तो उसके प्राणोंको विषके समान नष्ट करदेताहै । और युक्तिपूर्वक पीनेसे अमृतके समान होताहै । देखिये मनुष्योंके प्राणोंका आचार अन्न ही है, वह ही अहित रीतिसे सेवन किया प्राणोंको नष्ट कर देताहै । और विष प्राणोंको नष्ट करनेवाला है परन्तु वही विधिवत् सेवन किये जानेसे अमृतके समान रसायन होकर प्राणोंको चिरकालस्थायी बनानेवाला होजाताहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

१ वेदस्वागान्मघपानाच्छूद्रदारनिरेग्गात् । तत्त्व्याज्याप्यते विप्रश्वाण्डालापि गर्हितः ॥

वेदमार्गपरिपाम्नी केवल्येष्वाविजितः । सिद्धिकामी याममार्गी मादण्यो नारकी भवेत् ॥

अज्ञानाद् पादगी पीरथा सस्कारोपेव शुद्भवति । मतिपूर्वमनिर्देशं प्राणान्तिरुमिति स्थितिः ॥

युक्तियुक्त मद्यके गुण ।

हर्षमूर्जोमदंपुष्टिमारोग्यंपौरुषंपरम् । युक्त्यापीतंकरोत्याशुमद्यम-
दसुखावहम् ॥ ५९ ॥ रोचनंदीपनंहृद्यंस्वरवर्णप्रसादनम् ।
प्रीणनंवृंहणंवल्यंभयशोकश्रमापहम् ॥ ६० ॥ स्वापनंनष्टनिद्राणां
मूकानांवाग्विवोधनम् । बोधनश्चातिनिद्राणांविबद्धानांविबन्ध-
नुत् ॥ ६१ ॥ बधवन्धपरिक्लेशदुःखानाश्चावमोहनम् । मद्योत्था-
नाश्चरोगाणांमद्यमेवप्रवाधकम् ॥ ६२ ॥ रतिविषयसंयोगेप्रीतिसं-
योगवर्द्धनम् । अतिप्रवयसांमद्यमुत्सवामोदकारकम् ॥ ६३ ॥

मद्यसात्म्य मनुष्य यदि युक्तिपूर्वक उचित मात्रासे मद्यका सेवन करे तो उस पुरुषको हर्ष, बल, मद, पुष्टि, आरोग्यता और पुरुषार्थको उत्पन्न करताहै । इस प्रकारके मद्यके मदसे शीघ्र सुख प्रतीत होने लगताहै । तथा युक्तियुक्त सेवन किया मद्य रुचिकारक, अग्निवर्द्धक, हृदयको हितकारी, स्वर और वर्णको प्रसन्न करनेवाला शरीरको पुष्ट करनेवाला, वृंहण, बलकारक, भय और शोकको दूर करनेवाला, थकावटको हरनेवाला, नींद न आनेवालोंको सुन्दर नींद लानेवाला, मूकोंको (गूगोंको) वाणीका देनेवाला, अतिनिद्रावालोंको प्रबोधन करनेवाला, मलमूत्रादिकोंके विबंधको खोलनेवाला, आघात, बन्धन, वलेशन और दुःखोंको भुलानेवाला होताहै । मद्यके उत्पन्न हुए रोगोंको मद्य ही दूर करताहै तथा युक्तियुक्त मद्य रतिविषयमें प्रवृत्त करनेवाला, प्रीतिजनक, वृद्धमनुष्योंको भी रतिउत्सवका आनंद देनेवाला होता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

पञ्चस्वर्थेषुकान्तेषुयारतिःप्रथमेमदे । यूनांयास्थविराणांवातस्य
नास्त्युपमाभुवि ॥ ६४ ॥ बहुदुःखकृतस्यास्यशोकेनोपहतस्यच ।
विश्रामोजीवलोकस्यमद्यंयुक्त्यानिषेवितम् ॥ ६५ ॥

प्रथम मदसे (युक्तियुक्त) युवा पुरुष तथा वृद्ध अवस्थावालोंको भी पांचों विषयोंमें जो आनन्द प्राप्त होताहै उसकी पृथ्वीपर कोई भी उपमा नहीं । बहुतसे दुःखों और शोकसे उपहत हुए मनुष्योंको युक्तियुक्त मद्य पीना ही जीवलोकका विश्राम है अर्थात् दुःख और शोकको भुलाकर शान्तिदायक होताहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अन्नपानवयोव्याधिवलकालत्रिकाणपट् । त्रीन्दोपांस्त्रिविधंसत्त्वं
ज्ञात्वामद्यंपिबेत्सदा ॥ ६६ ॥ तेषांत्रिकाणामष्टानांयोजनायुक्तिरु-

च्यते । यथायुवत्यापिवेन्मद्यमद्यदोषैर्नयुज्यते ॥ ६७ ॥ मद्यस्य
चगुणान्सर्वान्यथोक्तान्ससमश्नुते । धर्मार्थयोरपीडार्थैर्नरःसत्त्वगु-
णोच्छ्रितः ॥ ६८ ॥

अन्न, पान, वय, व्याधि, बल और काल इन छहोंकी त्रिविध अवस्था, त्रिविध
दोष और त्रिविध सत्त्व इन आठ त्रिकोंका विचार कर मद्यका सेवन करना
चाहिये । इन आठ त्रिकोंका विचार करके मद्यके प्रयोगको करना ही युक्ति कही
जाती है । सो जिस प्रकार दोषोंका संयोग न होनेपावे उस युक्तिसे मद्यका सेवन
करना चाहिये । जो सात्म्य मनुष्य मद्यको युक्तिपूर्वक पीताहै वह मद्यके संपूर्ण
गुणोंको प्राप्त होताहै । इस प्रकारके मद्यसे सुरापी पुरुषोंका धर्म, अर्थ, नष्ट नहीं
होता और मनके गुणोंकी वृद्धि होतीहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

सत्त्वानितुप्रबुध्यन्तेप्रायशःप्रथमेमदे । द्वितीयेव्यक्ततांयान्तिमदे
चोत्तममध्ययोः ॥ ६९ ॥ सत्त्वसंबोधकंहर्षमोहप्रकृतिदर्शकम् ।
हुताशःसर्वसत्त्वानांमद्यन्तूभयकारकम् ॥ ७० ॥ प्रधानावरम-
ध्यानांरुक्माणांव्यक्तिसाधकः । यथाग्निरेवं सत्त्वानां मद्यं प्रकृति-
दर्शकम् ॥ ७१ ॥

उत्तम और मध्यम मनुष्यके प्रथम मदमें मनके सब भाव प्रगट होने लगते हैं
और मध्यम मदमें वह सब स्पष्ट अर्थात् जो मनुष्य जिस प्रकृतिका ही मद्यके
पनिसे उसके स्वभावके सब गुण प्रथम मदमें जाग्रत होने लगते और मध्यम मदमें
वह अपने सब भावोंको प्रगटरूपसे बकने और दिखाने लगताहै । जैसे अग्नि सुवर्णका
प्रकृतिज्ञान (भलाजुरापन) दिखाने लगतीहै ऐसे मद्य भी पुरुषोंके मनको प्रबोधन
करनेवाला, हर्षको बढ़ानेवाला और उसके स्वभावोंको स्पष्टरूपसे दिखानेवाला होताहै,
जैसे-अग्नि सुवर्णकी उत्तमता, मध्यमता और अधमता इन तीनों ही प्रकारके गुणोंको
प्रकाश करदेतीहै मद्य भी उसी प्रकार मनुष्यके भले और बुरे स्वभावको प्रकाशकर
दिखादेतीहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

सात्त्विकमद्यपान ।

सुगन्धिमाल्यगन्धैर्वासुप्रणीतमनाकुलम् । मिष्टान्नपानविशदंस-
दामधुरसंकथम् ॥ ७२ ॥ सुखप्रपानंसुमदंहर्षप्रीतिविवर्द्धनम् ।
स्वन्तंसात्त्विकमापानंनचोत्तममदप्रदम् ॥ ७३ ॥

सुगंधी फूलमाला और गंधके साथ उंचित मात्रासे उत्तम वनेहुए मद्यको मधुर अन्नपानके साथ मृदुभाषण करता हुआ और सुखप्रमाण सेवन करे तो सुखकारक मद हर्ष और प्रीति बढ़ाताहै । जिस मद्यके पीनेसे मनमें विकार पैदा न होकर सुख, हर्ष, प्रीति आदि शुभ भाव बनेरहें उसको सात्त्विक मद्यपान कहते हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

वैगुण्यंसहसायान्तिमद्यदोषैर्न सात्त्विकाः ।

मद्यंहिवलवत्सत्त्वंगृह्णातिसहसान्तु ॥ ७४ ॥

इस प्रकार सात्त्विक मद्यपानसे विगुणता उत्पन्न न होकर सात्त्विकता प्रगट होतीहै । बलवान् सत्त्ववाले मनुष्यको मद्य शीघ्र ही पराजित नहीं कर सकता ॥ ७४ ॥

राजसी मद्यपान ।

सौम्यासौम्यकथाप्रायंविशदाविशदंक्षणात् । चित्रंराजसमापन्नं प्रायेणास्वन्तकाकुलम् ॥ ७५ ॥ हर्षप्रीतिकथोपेतमदुष्टंपान- भोजने ॥ ७६ ॥

राजस मद्यके पीनेसे कभी सौम्य, कभी असौम्य भाषण करनेलगे, कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट भाषण करे । स्वभावमें अनेक प्रकारकी विचित्रता उत्पन्न हो । इस मद्यके पीनेसे अन्तमें प्रायः अशुभ परिणाम होताहै । इस राजसमद्य (मध्य) पान करनेसे बहुतसी स्मरणशक्तिका होना, अण्ड सण्ड बकना चित्तमें अत्यंत हर्ष होना, खाने पीनेमें रुचि होना, यह लक्षण (मध्यम मात्रा मद्य पीनेसे) होतेहैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

तामस मद्यपान ।

सम्मोहक्रोधनिद्रान्तमापानंतामसंस्मृतम् । आपानेसात्त्विका- न्बुद्ध्यातथाराजसतामसान् । जह्यात्सहंयान्यैःपीत्वासहदोपानु- पाश्नुते ॥ ७७ ॥

अति मद्य पीनेसे संमोह, क्रोध और अत्यंत निद्रा होतीहै । इस प्रकारके मद्य पीनेको तामसमद्य कहतेहैं । अथवा सात्त्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारकी प्रकृतिवाले मनुष्योंके मद्य पीनेसे यह उपरोक्त तीन प्रकारके गुण होतेहैं । सो इन सात्त्विक, राजस और तामस मद्य पीनेवालोंका विचारकरके मद्यपान करनेके स्थानमें जिनके साथ मद्य पीनेसे दुर्गुण प्रगट हों उनको त्याग देना चाहिये ॥ ७७ ॥

सुखशीलाःसुसम्भाषाःसुमुखाःसम्मताःसताम् । कलासुवाक्य-

विशदाविषयप्रवणाश्चये ॥ ७८ ॥ परस्परविधेयायेयेयामैक्यं
सुहृत्तया । प्रहर्षप्रीतिमाधुर्यैरापानं वर्द्धयन्ति ये ॥ ७९ ॥
उत्सवादुत्सवतरंयेपामन्योन्यदर्शनम् । तेसहायाःसुखाःपानेतैः
पिवन्सहमोदते ॥ ८० ॥ रूपगन्धरसस्पर्शैःशब्दैश्चापिमनोरमैः ।
पिवन्तिसुसहायायेतेवैसुकृतिभिःसमाः ॥ ८१ ॥ पञ्चभिर्विषयैरि-
ष्टैरुपेतैर्मनसःप्रियैः । देशकालेपिवेन्मद्यंप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ८२ ॥

जो सुन्दर स्वभाववाले, शुभ भाषण करनेवाले, सुमुख, श्रेष्ठसंमत, सब कलाओंमें
चतुर, बोलनेमें चतुर, विषयप्रवीण, परस्पर एक दूसरेसे स्नेह रखनेवाले, ऐक्यता
गुणयुक्त, सौहृद्य संपन्न, हर्ष, प्रीति और मधुरतासे पीनेके स्थानको उत्सवसे भी
अधिक मानें, एक दूसरेको देखकर परम प्रसन्नताको प्राप्त हों ऐसे सहधर्मियोंके
साथ मिलकर मद्य पीना चाहिये । ऐसे समान गुणवालों, मद्यसात्म्य मित्रों संयुक्त
रूपरसगंध शब्द और स्पर्श इन पांचों इन्द्रियोंके पांच विषयोंका आनन्द लेतेहुए
मद्यपायी मनुष्य पुण्यात्माओंके समान सुखी होतेहैं । मनके प्यारे इच्छित पंच
विषयोंसंयुक्त प्रसन्नमन हुआ देश, काल विचारकर मद्यका पान करे ॥ ७८-८२ ॥

मद्य पीनेयोग्य मनुष्य ।

स्थिरसत्त्वशरीराद्येपुराणामद्यपान्त्रयाः ।

बहुमद्योचितायेचमाद्यन्तिसहसानते ॥ ८३ ॥

जिन मनुष्योंका मन और शरीर बलवान् हो, जिनके वंशमें सदासे मद्य पानकर-
नेकी प्रथा हो जिनको सदासे मद्यपान करनेका अभ्यास हो, जो मद्यके मदका
सहन कर सकते हों जिनको शीघ्र मद न होसकताहो उनको ही मद्यपान करना
चाहिये ॥ ८३ ॥

मद्यके अयोग्य मनुष्य ।

प्राङ्मयात्क्षुत्पिपासार्त्तादुर्वलावातपैत्तिकाः ।

रूक्षाल्पप्रमिताहाराविस्तब्धाःसत्त्वदुर्वलाः ॥ ८४ ॥

क्रोधिनोऽनुचिताःक्षीणाःपरिश्रान्तामदक्षताः ।

स्वल्पेनापिमदंशीघ्रयान्तिमद्येनमानवाः ॥ ८५ ॥

जिनको मद्य पीनेसे पहिले भूख और प्यास लगरहीहो तथा जो अत्यंत दुर्बल हों
जो वात पित्तके स्वभाववाले हों, जो रूक्ष, अल्प और प्रमित भोजन करनेवाले हों जो

विस्तव्य हों, जिनका मन दुर्बल हो, जिनका क्रोधी स्वभाव हो जिनकी जातिमें मद्य पीना निषिद्ध हो अथवा जिन्होंने कभी मद्य पीया न हो, जो क्षीण हों, जो परिश्रम कर थके हों और जिनकोऽक्षतरोग हो ऐसे मनुष्य थोडासा मद्य पीनेसे भी शीघ्र मर्दा-
तुर होजातेहैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

ऊर्द्ध्वमदात्ययस्यातःसम्भवंस्वस्वलक्षणम् ।

अग्निवेश ! चिकित्साञ्चप्रवक्ष्यामियथाक्रमम् ॥ ८६ ॥

हे अग्निवेश ! अब हम यथाक्रम मदात्ययरोगकी उत्पत्ति और लक्षण तथा चिकित्साको कहतेहैं ॥ ८६ ॥

वातप्रधान मदात्यय ।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्मभिर्योऽतिकर्पितः । रूक्षाल्पप्रमिताशीवा
यःपिबत्यतिमात्रया ॥ ८७ ॥ रूक्षंपरिणतंमद्यंनिशिनिद्रांविहृत्य
च । करोतितस्यतच्छीघ्रंवातप्रायंमदात्ययम् ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य स्त्रीसंग, शोक, भय, भार उठाना, मार्ग चलने तथा इसी प्रकार अन्य कर्मोंके करनेसे अत्यंत कर्पित होगयाहो तथा सदा ही रूक्ष, अल्प और एकरसका भोजन करनेवाला हो यदि ऐसा मनुष्य अत्यंत मद्य पीवे तो वह मद्य परिपाकके समय अत्यंत रूक्षताको प्रगटकर रात्रिमें निद्राको नष्ट कर देताहै । फिर शीघ्र ही वातप्रधान मदात्यय रोगको नष्ट करताहै ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।

विद्याद्बहुप्रलापस्यवातप्रायंमदात्ययम् ॥ ८९ ॥

हिचकी, श्वास, सिरका, कांपना, पार्श्वशूल, दिनानाश और बहुत बकवाद करना यह वातज मदात्ययके लक्षण हैं ॥ ८९ ॥

पित्तप्रधान मदात्यय ।

तीक्ष्णोष्णमद्यमम्लंवायोऽतिमात्रंनिपेवते । अम्लोष्णतीक्ष्णभो-
जीचक्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः ॥ ९० ॥ तस्योपजायतेपित्ताद्विशेषेण
मदात्ययः । सतुवातोल्बणस्याशुप्रशमंयातिहन्तिवा ॥ ९१ ॥
तृष्णादाहज्वरस्वेदमूर्च्छातीसारविभ्रमैः । विद्याद्धरितवर्णस्यपि-
त्तप्रायंमदात्ययम् ॥ ९२ ॥

अथवा जो मनुष्य, तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल मद्यको अत्यंत सेवन करताहै तथा सदा ही

खटाई उष्ण और तीक्ष्ण भोजन करे तथा स्वभावका क्रोधी हो, अग्नि और धूपका अत्यंत सेवन करनेवाला हो उसके पित्तकी विशेषतासे मदात्ययरोग उत्पन्न होता है । यदि वह वातप्रधान मनुष्यको होजाय तो शीघ्र शान्त होजाता है अथवा उस मनुष्यको मार डालता है । पित्तप्रधान मदात्ययके यह लक्षण होते हैं । जैसे प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मृच्छा, अतिसार, अत्यंत भ्रम और हरावर्ण होना यह पित्तप्रधान मदात्ययके लक्षण होते हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

कफप्रधान मदात्यय ।

तरुणमधुरप्रायंगौडपैष्टिकमेववा । मधुरस्निग्धगुर्वाशीयःपिवत्य-
तिमात्रया ॥ ९३ ॥ अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतः ।

मदात्ययंकफप्रायंसशीघ्रमधिगच्छति ॥ ९४ ॥ छर्द्यरोचकहृत्लास-
तन्द्रास्तैमित्यगौरवैः । विद्याच्छीतपरीतस्यकफप्रायमदात्य-
यम् ॥ ९५ ॥

जो मनुष्य नवीन और मधुरप्राय गौड़ी मद्य तथा पैष्टिक मद्यको अधिक पीता है और मधुर, स्निग्ध तथा भारी पदार्थोंका सेवन करता है और व्यायाम नहीं करता, दिनमें अधिक सोता है, शय्या, आसन, आदिके सुखमें मस्त रहता है उस मनुष्यको कफप्रधान मदात्यय रोग उत्पन्न होता है । उसके ये लक्षण होते हैं । जैसे-उर्दि, अरुचि, हृत्लास, तन्द्रा, स्तैमित्य, भारीपन और शीतलता यह कफप्रधान मदात्ययके लक्षण हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

विपस्ययेगणादृष्टाःसन्निपातप्रकोपणाः । तएवमद्येदृश्यन्तेविपेतु
वलवत्तराः ॥९६॥ हन्त्याशुहिविपंकिञ्चित्किञ्चिद्रोगायकल्पते । यथा
विपंतथैवान्त्योज्ञेयोमद्यकृतोगदः ॥ ९७ ॥ तस्मान्निदोपजंलिङ्गं-
सर्वत्रापिमदात्यये । दृश्यतेरूपवैशेष्यात्पृथक्कश्चास्यलक्ष्यते ॥९८॥

तीनों दोषोंके कुपित करनेवाले जितने दोष विपके हैं मद्यमें भी वह सब दिखाई देते हैं । जैसे-विपके बलवान् दोष शीघ्र मनुष्यको मारडालते हैं और थोड़े विपके दोष रोगोंको उत्पन्न करनेवाले होते हैं वैसे ही विपके समान अत्यंत मद्यके पीनेसे अन्त्यमद जानना-इतलिये मदात्ययरोगमें सर्वत्र ही निदोषके चिह्न दिखाई देते हैं । केवल दोषोंके लक्षणोंकी विशेषताके भेदसे वातादिभेद दिखाई पडते हैं ॥९६॥९७॥९८॥

मदात्ययके लक्षण ।

शरीरदुःखंवलवत्सम्मोहोहृदयव्यथा । अरुचिःप्रततातृष्णाज्वरः

शीतोष्णलक्षणः ॥ ९९ ॥ शिरःपार्श्वस्थिसन्धीनांविद्युत्तुल्याचवे-
दना । जायतेऽतिवलाजृम्भास्फुरणंवेपनंश्रमः ॥ १०० ॥ उरोवि-
बन्धःकासश्चहिकाश्वासःप्रजागरः । शरीरकम्पःकर्णाक्षिमुखरोग-
त्रिकग्रहः ॥ १०१ ॥ छर्द्यतीसारमुक्लेशोवातपित्तकफात्मकः ।
भ्रमःप्रलापोरूपाणामसताञ्चैवदर्शनम् ॥ १०२ ॥ तृणभस्मलता-
पर्णपांशुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्षणंविहङ्गैश्चभ्रान्तचेताःसमन्यते ॥
॥ १०३ ॥ व्याकुलानामशस्तानांस्वप्नानांदर्शनानिच । मदात्यय-
स्वरूपाणिसर्वाण्येतानिलक्षयेत् ॥ १०४ ॥

अत्यंत शारीरिक कष्ट, बेहोशी, हृदयमें व्यथा, अरुचि, प्यासकी अधिकता, शीते अथवा उष्ण लक्षणोंवाला ज्वर, शिरमें पीडा, पार्श्वशूल, हड्डी और जोड़ोंमें विजली चमकनेकीसी पीडा, वेगपूर्वक जंभाई अंगोंका फडकना, शरीरका कांपना, यकावट, छातीका रुकाहुआसा होना, खांसी, हिचकी, श्वास, निद्रानाश, शरीरका कांपना, कान नेत्र और मुखके रोग, त्रिकस्थानमें पीडा, छर्दि, अतिसार, वात, पित्त और कफका उत्क्लेश, भ्रम, प्रलाप, अविद्यमान भयंकर रूपोंका दिखाई देना, सब आकाश, तृण, भस्म, लता, पत्र, धूल आदिसे भरा दिखाई देना । अपने आपको विहंगमों (पक्षियों) से पीडित होतेहुए प्रतीत होना, चित्तमें भ्रम होकर ऐसे २ असत्य लक्षणोंका दिखाई देना, भयकारक दुःस्वप्नोंका देखना यह सब (त्रिदोषो-
त्त्वण) महात्यय रोगके रूप जानने ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

मदात्ययका चिकित्साक्रम ।

सर्वमदात्ययंविद्यात्रिदोषमधिकन्तुयत् । दोषंमदात्ययेपश्येत्तस्या-
दौप्रतिकारयेत् ॥ १०५ ॥ कफस्थानानुपूर्व्याचक्रियाकार्यमदा-
त्यये । पित्तमारुतपर्य्यंतःप्रायेणहिमदात्ययः ॥ १०६ ॥

संपूर्ण मदात्यय त्रिदोषज ही होतेहैं परन्तु उनमें जिस दोषकी अधिकता देखे पहिले उसके शान्त करनेका उपाय करना चाहिये । मदात्यय रोगमें कफस्थान (आमाशय) पित्तस्थान (ग्रहणी) वातस्थान (मलाशय) यह आनुपूर्विक क्रमसे एकके अनन्तर दूसरा, दूसरेके अनन्तर तीसरा मदात्ययरोगसे आक्रमित होता है । इसलिये यदि किसी दोषकी विशेषरूपसे प्रधानता न हो तो त्रिदोषज मदात्ययमें पहिले कफ, फिर पित्त, फिर वायुकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोऽध्याधिरुपजायते । सभपीतेनतेनैवसमथे-
नोपशाम्यति ॥ १०७ ॥ जीर्णाममद्यदोषायमद्यमेवप्रदापयेत् ।
प्रकांक्षालाघवेजातेयद्यदस्मैहितंभवेत् ॥ १०८ ॥ सौवर्चलानुसंवि-
द्धंशीतंसविडसैन्धवम्।मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंप्रमाणवित् ॥१०९॥

मद्य मिथ्यायोगसे अथवा अधिक या हीन मात्रासे पीयेजानेपर जो विकारों
पैदा होतेहैं उन रोंगोंकी शान्ति मद्यकी संममात्रा पीनेसे होसकती है मदात्यय रोगमें
मद्यजनित आमदोष जीर्ण होनेपर जब हलकापन प्रतीत होने लगे तो उसको हित-
मात्रासे हितकारी मद्य, काला निमक, विडलवण, सेंधानमकं, विजैरेका रस, अदर-
खका रस, जल तथा शीतवीर्य द्रव्य मिलाकर हितकारी मात्रासे प्रमाणको जानने-
वाला वैद्य मद्यपान करावे । (तदनन्तर अन्य उचित चिकित्सा भी करे) १०७-१०९

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेणपीतेनाम्लविदाहिना । मद्येनान्नरसक्लेदो
विदग्धःक्षारतांगतः ॥ ११० ॥ अन्तर्दाहंज्वरंतृष्णांप्रमोहंविभ्रमं
मदम् । जनयत्याशुतच्छान्त्यै मद्यमेवप्रदापयेत् ॥ १११ ॥ क्षारो-
हियातिमाधुर्यंशीघ्रमम्लोपसंस्कृतः । श्रेष्ठमम्लेषुमद्यश्चयैर्गुणैस्ता-
न्परंशृणु ॥ ११२ ॥

तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और विदाही मद्योंकी अधिक मात्रा पीनेसे अन्नका खट्टा
रस बनकर उसका उत्क्लेद हो विदग्ध होजाताहै । उसमें क्षारता प्राप्त होजातीहै ।
उससे अन्तर्दाह, ज्वर, प्यास, मोह (बेहोशी) विभ्रम, मद यह लक्षण शीघ्र प्रगट
होजातेहैं । इसलिये इनके शान्त करनेको उचित रीतिसे मद्यका पान कराना ही
श्रेष्ठ है । क्योंकि अम्लरस (खटाई) के मिलनेसे क्षार रस फिर मधुरताको प्राप्त
होजाताहै । जिन गुणोंसे सब अम्लरसोंमें मद्यको श्रेष्ठता है उन गुणोंको श्रवण
करो ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मद्यके अनुरस और मद्यको अम्लरसोंमें श्रेष्ठत्व ।

मद्यस्याम्लस्वभावस्यचत्वारोऽनुरसाःस्मृताः । मधुरश्चकपायश्च
तिक्तःकटुकएवच ॥ ११३ ॥ गुणाश्चदशपूर्वोक्तास्तैश्चतुर्दशभि-
र्गुणैः । सर्वेषामद्यमम्लानामुपर्युपरितिष्ठति ॥ ११४ ॥

अम्लस्वभाव मद्यके अनुपायी मधुर, कपाय, तिक्त और कटु यह चार अनुरस
होतेहैं । और दश गुण मद्यके पादिले कइ आयेहैं । उनमें यह चार मिलानेने १४
गुणयुक्त मद्य होताहै । इसलिये सब अम्लरसोंमें यह परमोत्तम मानाहै ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

शीतोष्णलक्षणः ॥ ९९ ॥ शिरःपार्श्वस्थिसन्धीनांविद्युत्तुल्याचवे-
 दना । जायतेऽतिवलाजृम्भास्फुरणंवेपनंश्रमः ॥ १०० ॥ उरोवि-
 चन्धःकासश्चहिक्काश्वासःप्रजागरः । शरीरकम्पःकर्णाक्षिमुखरोग-
 च्छिकग्रहः ॥ १०१ ॥ छर्द्यतीसारमुक्लेशोवातपित्तकफात्मकः ।
 भ्रमःप्रलापोरूपाणामसताञ्चैवदर्शनम् ॥ १०२ ॥ तृणभस्मकृता-
 पर्णपांशुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्षणंविहङ्गैश्चभ्रान्तचेताःसमन्यते ॥
 ॥ १०३ ॥ व्याकुलानामशस्तानांस्वप्नानांदर्शनानिच । मदात्यय-
 स्वरूपाणिसर्वाण्येतानिलक्षयेत् ॥ १०४ ॥

अत्यंत शारीरिक कष्ट, वेहोशी, हृदयमें व्यथा, अरुचि, प्यासकी अधिकता,
 शीते अथवा उष्ण लक्षणोंवाला ज्वर, शिरमें पीडा, पार्श्वशूल, हड्डी और जोड़ोंमें
 विजली चमकनेकीसी पीडा, वेगपूर्वक जंभाई अंगोंका फडकना, शरीरका कांपना,
 थकावट, छातीका रुकाहुआसा होना, खांसी, हिचकी, श्वास, निद्रानाश, शरीरका
 कांपना, कान नेत्र और मुखके रोग, त्रिकस्थानमें पीडा, छर्दि, अतिसार, वात, पित्त
 और कफका उत्क्लेश, भ्रम, प्रलाप, अविद्यमान भयंकर रूपोंका दिखाई देना, सब
 आकाश, तृण, भस्म, लता, पत्र, धूल आदिसे भरा दिखाई देना । अपने आपको
 विहंगमों (पक्षियों) से पीडित होतेहुए प्रतीत होना, चित्तमें भ्रम होकर ऐसे २
 असत्य लक्षणोंका दिखाई देना, भयंकरक दुःस्वप्नोंका देखना यह सब (त्रिदोषो-
 त्त्वण) महात्यय रोगके रूप जानने ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

मदात्ययका चिकित्साक्रम ।

सर्वमदात्ययंविद्यात्रिदोषमधिकन्तुयत् । दोषमदात्ययेपश्येत्तस्या-
 दौप्रतिकारयेत् ॥ १०५ ॥ कफस्थानानुपूर्व्याचक्रियाकार्यामदा-
 त्यये । पित्तमारुतपर्यंतःप्रायेणहिमदात्ययः ॥ १०६ ॥

संपूर्ण मदात्यय त्रिदोषज ही होतेहैं परन्तु उनमें जिस दोषकी अधिकता
 देखे पहिले उसके शान्त करनेका उपाय करना चाहिये । मदात्यय रोगमें कफस्थान
 (आमाशय) पित्तस्थान (ब्रह्मणी) वातस्थान (मलाशय) यह आनुपूर्विक क्रमसे
 एकके अनन्तर दूसरा, दूसरेके अनन्तर तीसरा मदात्ययरोगसे आक्रमित होता
 है । इसलिये यदि किसी दोषकी विशेषरूपसे प्रधानता न हो तो त्रिदोषज मदात्ययमें
 पहिले कफ, फिर पित्त, फिर वायुकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोव्याधिरुपजायते । सभपीतेनतेनैवसमध्ये-
नोपशाम्यति ॥ १०७ ॥ जीर्णाममद्यदोषायमद्यमेवप्रदापयेत् ।
प्रकांक्षालाघवेजातेयद्यदस्मैहितंभवेत् ॥ १०८ ॥ सौवर्चलानुसंवि-
द्धंशीतंसविडसैन्धवम् । मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंप्रमाणवित् ॥ १०९ ॥

मद्य मिथ्यायोगसे अथवा अधिक या हीन मात्रासे पीयेजानेपर जो विकारें पैदा होतेहैं उन रोंगोंकी शान्ति मद्यकी संममात्रा पीनेसे होसकती है मदात्यय रोगमें मद्यजनित आमदोष जीर्ण होनेपर जब हलकापन प्रतीत होने लगे तो उसको हित-मात्रासे हितकारी मद्य, काला निमक, विडलवण, सेंधानमक, विजौरेका रस, अद्र-खका रस, जल तथा शीतवीर्य द्रव्य मिलाकर हितकारी मात्रासे प्रमाणको जानने-वाला वैद्य मद्यपान करावे । (तदनन्तर अन्य उचित चिकित्सा भी करे) १०७-१०९

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेणपीतेनाम्लविदाहिना । मद्येनान्नरसक्लेदो
विदग्धःक्षारतांगतः ॥ ११० ॥ अन्तर्दाहंज्वरंतृष्णांप्रमोहंविभ्रमं
मदम् । जनयत्याशुतच्छान्त्यै मद्यमेवप्रदापयेत् ॥ १११ ॥ क्षारो-
हियातिमाधुर्यशीघ्रमम्लोपसंस्कृतः । श्रेष्ठमम्लेषुमद्यञ्चयैर्गुणैस्ता-
न्परंशृणु ॥ ११२ ॥

तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और विदाही मद्योंकी अधिक मात्रा पीनेसे अन्नका खट्टा रस बनकर उसका उत्क्लेद हो विदग्ध होजाताहै । उसमें क्षारता प्राप्त होजातीहै । उससे अन्तर्दाह, ज्वर, प्यास, मोह (वेहोशी) विभ्रम, मद यह लक्षण शीघ्र प्रगट होजातेहैं । इसलिये इनके शान्त करनेको उचित रीतिसे मद्यका पान कराना ही श्रेष्ठ है । क्योंकि अम्लरस (खटाई) के मिलनेसे क्षार रस फिर मधुरताको प्राप्त होजाताहै । जिन गुणोंसे सब अम्लरसोंमें मद्यको श्रेष्ठता है उन गुणोंको श्रवण करो ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मद्यके अनुरस और मद्यको अम्लरसोंमें श्रेष्ठत्व ।

मद्यस्याम्लस्वभावस्यचत्वारोऽनुरसाःस्मृताः । मधुरश्चकषायश्च
तिक्तःकटुकएवच ॥ ११३ ॥ गुणाश्चदशपूर्वाक्तास्तैश्चतुर्दशभि-
र्गुणैः । सर्वेषामद्यमम्लानामुपर्युपरितिष्ठति ॥ ११४ ॥

अम्लस्वभाव मद्यके अनुपायी मधुर, कषाय, तिक्त और कटु यह चार अनुरस होतेहैं । और दश गुण मद्यके पहिले कहे आयेहैं । उनमें यह चार मिलानेसे १४ गुणयुक्त मद्य होताहै । इसलिये सब अम्लरसोंमें यह परमोत्तम मानाहै ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

मद्योत्कृष्टेनदोषेणरुद्धःस्रोतःसुमारुतः । करोतिवेदनांतीत्रांशिरस्य-
स्थिपुसन्धिषु ॥ ११५ ॥ दोषविष्यंदनार्थंहितस्मैमद्यंविशेषतः ।
व्यवायितीक्ष्णोष्णतयादेयमम्लेषुसत्स्वपि ॥ ११६ ॥ स्रोतोविव-
न्धमुन्मथ्यमारुतस्यानुलोमनम् । रोचनंदीपनञ्चाग्नेरभ्यासात्सा-
त्म्यमेवच ॥ ११७ ॥ रसस्रोतःस्वरुद्धेषुमारुतेचानुलोमिते । निव-
र्त्तन्तेविकाराश्चशाम्यन्त्यस्यमदोदयाः ॥ ११८ ॥

मद्यसे उत्कृष्टित हुए दोषों द्वारा स्रोतसमूहोंके रुकजानेपर वायु रुकाहुआ शिर,
हड्डियों और संधियोंमें तीव्र पीडाको उत्पन्न करदेताहै । दोषोंको अभिष्यंदन करनेके
लिये विशेषकर मद्य पिलाना ही हितकारक होताहै । क्योंकि मद्य व्यायी, तीक्ष्ण
और उष्ण होनेसे अम्ल होतेहुए भी श्रोतोंके विबंध (रुकावट) उन्मथितकर वायुको
अनुलोमन करदेताहै तथा रोचन और अग्निको दीपन करनेवाला एवं मद्यपान करनेवालों-
को सात्म्य होताहै । जब रसवाही स्रोतोंके मार्ग खुलजाते हैं और वायु अनुलोमन हो
जाताहै तब सब विकार निवृत्त होजाते हैं और मदात्यय (उन्मत्तता) रोग भी शान्त
होजाताहै । (इसलिये मद्यविकारकी शान्तिके लिये प्रथम मद्यद्वारा ही शान्तिका
उपाय करना श्रेष्ठ है) ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

वातमदात्यय नाशक यत्न ।

वीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् । यमानीहपुषाजाजीशृंगवे-
रावचूर्णितम् ॥ ११९ ॥ सस्नेहैःसक्तुभिर्युक्तमर्द्धदंशैश्चिरोत्थितम् ।
दद्यात्सलवणंमद्यंपैष्टिकंवातशांतये ॥ १२० ॥

विजौरैका रस, इमली, वेत, अनारका रस, अजवायन, हाउवेर, काला जीरा और
अदरख इन सबका रस और चूर्ण मिलाकर प्रयोग करे । अथवा स्नेहयुक्त सत्तुओंमें
मिलाकर खिलावे और नमकयुक्त पुराना पैष्टिक मद्य पिलावे तो मदात्ययमें वात
शान्त होताहै ॥ ११९ ॥ १२० ॥

दृष्ट्वावातोत्वणंलिङ्गरसैश्चैनमुपाचरेत् । लावतिचिरदक्षणांस्निग्धा-
म्लैःशिखिनामपि ॥ १२१ ॥ पक्षिणांमृगमत्स्यानामानूपानाञ्च
संस्कृतैः । भूशयप्रसहानाञ्चरसैश्शल्योदनेनच ॥ १२२ ॥ स्निग्धो-
ष्णलवणाम्लैश्चवेशारैर्मुखप्रियैः । चित्रैर्गोधूमिकैश्चाद्वैर्वारुणी-
मण्डसंयुतैः ॥ १२३ ॥ पिशितार्द्रकगर्भाभिःस्निग्धाभिर्धूपवर्त्ति-

भिः । माषंपूपालिकाभिश्चवातिकंसमुपाचरेत् ॥ १२४ ॥ नातिस्लि-
ग्धं चाम्लेन युक्तसमरिचार्द्रकम् । मध्येप्रागुदितं मांसं दाडिमस्वर-
सेनवा ॥ १२५ ॥ पृथक्त्रिजातकोपेतसधान्यमरिचार्द्रकम् । रस-
प्रलेपिसंपृषैः सुखोष्णैः सम्प्रदापयेत् ॥ १२६ ॥

जिस मदात्ययमें वायुके बड़े हुए लक्षण प्रतीत होते हैं उस रोगीकी मांसरसके प्रयोग द्वारा चिकित्सा करे और लवा, तीतर, मुर्गा, मोर इनका मांसरस स्निग्ध करके अथवा अन्य पक्षी वा अनूपसंचारी, अथवा भृशय, प्रसह मृगादिक जीवोंका मांसरस वा मछलियोंका मांसरस शालीचावलोंके भातके साथ देवे तथा—स्निग्ध, उष्ण, लवण, अम्ल, और अनेक सुस्वादु मसालेयुक्त भोजन, वारुणीमण्ड, अनेक विधिसे बने हुए गेहूँके भोजन, मांस और अदरखकी पिष्टी भरी हुई स्निग्ध धूमवर्ती उडदोंकी पूडियें यह सब वातप्रधान मदात्ययमें हितकारक हैं । पूर्वोक्त सब द्रव्योंको किंचित् स्निग्ध और किंचित् अम्लरसयुक्त करके काली मिर्च और अदरख मिलाकर अथवा अनार (दाडिम) मिलाकर सेवन करावे अथवा तेजपत्र, इलायची, दालचीनी, घनियां, मिर्च और अदरख यह अलग मिलाकर प्रलेपी, पृडी आदि बनाकर सुखोष्ण मांसरसके साथ देवे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

भक्तेन वारुणीमण्डं दद्यात्पातुं पिपासवे । दाडिमस्वरसंवाथजलं वा
पाञ्चमूलिकम् ॥ १२७ ॥ धान्यनागरतोयञ्च दधिमंडमथापिवा ।

अम्लकाञ्जिकमण्डं वा शुक्तोदकमथापिवा ॥ १२८ ॥ कर्मणानेन
सिद्धेन विकार उपशाम्यति । मात्रा कालप्रयुक्तेन वलं वर्णश्च वर्धते ॥ १२९ ॥

मदात्ययमें प्यासकी अधिकताहो तो शालिचावलोंके भातके साथ वारुणी मण्ड पिलावे अथवा अनारका रस । या पंचमूलसे सिद्ध किया हुआ जल पिलावे । अथवा घनियां और सांठसे सिद्ध किया जल या दधिमंड । अथवा खट्टी कांजीका पानी, या शुक्तोदक (सिरका मिला जल) पिलावे । इस विधिसे मात्रा काल विचार कर उपरोक्त कर्म (औषधादि) के प्रयोग करनेसे मद्यके विकार शांत होकर बल वर्णकी वृद्धि होती है ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

रागपाडवसंयोगैर्विधिर्भक्तरोचनैः । पिशितैर्वहुपिष्टान्नैर्यवगोधू-
मशालिभिः ॥ १३० ॥ अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैरुष्णैः प्रावरणैर्धनैः ।
घनैरगुरुपङ्केश्च धूपैश्चागरुजैर्धनैः ॥ १३१ ॥ नारीणां यौवनोष्णानां
निर्दयैरवगूहनैः । श्रोण्यूरुकुचभारैश्च संरोधोष्णसुखावहैः ॥ १३२ ॥

शयनाच्छादनैरुष्णैरुक्षैश्चान्तर्गृहैःसुखैः । मारुतप्रबलःशीघ्रप्रशा-
म्यतिमदात्ययः ॥ १३३ ॥

वातप्रधान मदात्ययमें विविध प्रकारके रुचिकारक भोजन रागखाण्डवके योगसे अथवा मांस, अनेक प्रकारके पिष्टान्न, यव, गेहू शाली आदिसे बने विविध भोजन तथा अभ्यंग, उत्सादन, स्नान, ओढनेके लिये गर्म और भारी वस्त्र, अगरका गाढा लेप, अगरका घनीमूत धूपन, जवानीकी गर्मांसि युक्त युवतीस्त्रियों द्वारा गाढ आर्लिगन, तथा उन युवती स्त्रियोंके नितम्ब, ऊरुस्थल (जांघों) और कुर्चेके भारसे रुकीहुई गर्मांस, सुखदायक गरम शय्या और गरम वस्त्र, सुखदाई क्लेद आदि रहित पवित्र सूखा अन्तर्गृह इनका सेवन करना वातप्रबल मदात्ययको शान्त करताहै ॥१३०-१३३॥

पित्तप्रधान मदात्ययकी चिकित्सा ।

भव्यंखजूरमृद्धीकापरूपकरसैर्युतम् । सदाडिमरसंशीतंसक्तुभिः
स्ववचूर्णितम् ॥ १३४ ॥ सशर्करंशर्करंवासाध्वीकमथवापरम् ।
दद्याद्बहुदकंकालेपातुंपित्तमदात्यये ॥ १३५ ॥

भव्यफल, खजूर, द्राक्षा, फालसेका रस, और अनारका रस मिलाकर सत्तू खाना अथवा भिसरीयुक्त मद्य वा शर्करामद्य अथवा बहुतसा जल मिला अन्य किसी प्रकारके मद्यमें बहुतसा जल मिलाकर पीना पित्तप्रधान मदात्ययको शान्त करता है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

शशान्कपिञ्जलान्नेणाल्लावानसितपुच्छकान् । मधुराम्लान्प्रयुञ्जी-
तभोजनेशालिषष्टिकान् ॥ १३६ ॥ पटोलयूपमिश्रंवाच्छागलं
कल्पयेद्रसम् । सतीनमुद्गमिश्रंवादाडिमामलकान्वितम् ॥ १३७ ॥

खरगोश, कर्पिजल, एण, लवा, कालपुच्छ हरिण, इनका मांसरस मधुराम्ल करके उसके साथ शालिचावलोंका भात भोजनके लिये देवे अथवा पटोलका यूप वा वकरेका मांसरस अथवा मटर या मूंगका यूप अनारका रस और आँवलोंकी खटाईसे अम्लकर उसके साथ शालिचावलोंका भात भोजन करावे ॥१३६॥१३७॥

द्राक्षामलकखजूरपरूपकरसेनवा । कल्पयेत्तर्पणान्यूपान्नसांश्रवि-
विधात्मकान् ॥ १३८ ॥

द्राक्षा (अंगूर) आँवले, खजूर, और फालसेके रससे अनेक प्रकारके तर्पण (शरवत आदि) यूप अथवा मांसरस सेवन करावे । यह पित्तप्रधान मदात्ययमें हितकारी होतेहैं ॥ १३८ ॥

कफपित्तप्रबलमदात्ययचिकित्सा ।

आमाशयस्थमुक्लिष्टकफपित्तमदात्ययोविज्ञायबहुदोषस्यदह्यमान-
स्यतुष्यते ॥ १३९ ॥ मयद्राक्षारसंतोयंदच्वातर्पणमेववा । निःशेषंवा-
मयेच्छीघ्रमेवंरोगाद्विसुच्यते ॥ १४० ॥

यदि बहुदोषयुक्त कफपित्त मदात्ययवाले रोगीके आमाशयमें स्थित आमदोष
उत्कलेशित होकर वमन होनेके लिये प्रतीत होनेलगे और रोगीको उस आमाश-
यस्थ दोषजनित दाह और प्यासकी अधिकता हो तो उस रोगीको दासका रस और
जल मिलाकर मद्य अथवा अन्य तर्पण आदि पिलाकर शीघ्र वमनद्वारा संपूर्ण दोष
निकाल डाले । ऐसा करनेसे मनुष्य शीघ्र रोगसे छूट जाताहै ॥ १३९ ॥ १४० ॥

कालेपुनस्तर्पणाढ्यंक्रमंकुर्यात्प्रकांक्षिते ।

तेनाग्निर्दीप्यतेतस्यदोषशेषान्नपाचनः ॥ १४१ ॥

इसके अनन्तर रोगीको क्षुधाकी इच्छा होनेपर समयानुसार तर्पण आदि पिला
अनारके रसयुक्त उचित पेयाका पान करावे जिससे उसकी आग्नि चैतन्य हो दोषकी
शान्तिहोवे और अन्नका यथोचित परिपाक होनेलगे ॥ १४१ ॥

मदात्ययोकी विशेष चिकित्सा ।

कासेसरक्तनिष्ठीवेपार्श्वस्तनरुजोस्तथा । तृप्यतेसविदाहेचसोत्क्लेशे
हृदयोरसि ॥ १४२ ॥ गुडूचीभद्रमुस्तानांपटोलस्याथवाभिषक् ।

रसंसनागरंदद्यात्तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४३ ॥

यदि खांसीकेसाय रुधिर निकलताहो और पार्श्वभाग तथा स्तनस्थानमें पीडा होतीहो
और प्यास, विदाह, हृदय तथा छातीमें उत्क्लेश होताहो तो गिलोय और भद्रमो-
येका क्वाथ अथवा पटोलका काय टंडा करके सांठका चूर्ण मिलाकर देवे । औरक्षुधा
लगनेपर तीतरका मांसरस अथवा इस मांसरसके साय भोजन करावे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

तृप्यतेचातिवलवद्वातपित्तसमुद्धते ।

दद्याद्द्राक्षारसंपातुंशीतंदोपानुलोमनम् ॥ १४४ ॥

मदात्ययमें वातपित्तजनित अत्यंत प्यास हो तो द्राक्षारस (दासका काय) टंडा
कर पिलावे तो दोषोंका अनुलोमन होताहै ॥ १४४ ॥

जीर्णसमधुराम्लेनच्छागमांसरसेनतम् । भोजनंभोजयेन्मद्यस्यानुत-
र्पणपाययेत् ॥ १४५ ॥ अनुतर्पस्यमाघ्रासाययानोहन्यतेमनः । तृ-

प्यतेमद्यमल्पाल्पंप्रदेयंस्याद्बहूदकम् ॥१४६॥ तृष्णायेनचसंशाम्ये-
न्मदंयेनचनाप्नुयात् । परूपकाणांपीलूनारसंशीतमथापिवा ॥१४७॥

भूख लगनेपर मधुराम्ल मांसरसके साथ भोजन और अनारका रस तथा जल मिला मद्य पिलावे । और वह मद्य (जो भोजनके अनन्तर अनुपान कियाजाय) ऐसी मात्रासे देना चाहिये जिससे वह मनमें किसी प्रकार मद्यका विकार उत्पन्न न करे । और प्यासके समय भी थोडा २ मद्य बहुतसा जल मिलाकर पीनेको देवे । जिससे प्यासकी शान्ति हो और मदको प्राप्त न हो । अथवा फालसेका शरवत अथवा पीलु फलाक रसका वना शर्वत पिलावे ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

पर्णिनीनांचतसृणांपिवेद्वाशिशिरंजलम् । सुस्तदाडिमलाजानांतृ-
ष्णाघ्नंवापिवेद्रसम् ॥१४८॥ कोलदाडिमवृक्षांम्लचुकीकाचुक्रिकार-
सः । पञ्चाम्लकोमुखालेपःसद्यस्तृष्णांनियच्छति ॥ १४९ ॥

अथवा चारों पर्णियोंसे सिद्ध किया शीतल जल अथवा मोथा, दाडिम और धानकी खीलोंसे सिद्ध किया शीतल जल प्यासकी शान्तिके लिये देवे । अथवा बेर, बनार, इमली और चूकेका रस इस पंचाम्लको मुखमें लेप करना (या मुखमें भरकर कुल्ले करना) शीघ्र प्यासको शान्त करताहै ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

पित्तमदात्ययमें सेवनीय वस्तु ।

शीतलान्यन्नपानानिशीतशय्यासनानिच । शीतवातजलस्पर्शः
शीतान्युपवनानिच ॥ १५० ॥ क्षौमपद्मोत्पलानाञ्चमणीनांमौक्ति-
कस्यचै । चन्दनोदकशीतानांस्पर्शाश्चन्द्रांशुशीतलाः ॥ १५१ ॥
हेमराजतकांस्थानांपात्राणांशीतवारिभिः । पूर्णानांहिमपूर्णानांहता-
नांपवनाहताः ॥ १५२ ॥ संस्पर्शाश्चन्दनाद्राणांनारीणाञ्चसमा-
रुताः । चन्दनानाञ्चमुख्यानांशस्ताःपित्तमदात्यये ॥ १५३ ॥

शीतल अन्नपान, शीतल शय्या, आसन, शीतल पवन, शीतल जलका स्पर्श, शीतल वगीचे, शीतल रेशमी वस्त्र, शीतल जलमें भिंगोयेहुए कमलोंके फूल, शीतल जल भरेहुए सुवर्ण, चांदी अथवा कांसेके पात्रोंका स्पर्श, शीतल पवनसे ताडित शीतल जलयुक्त वायुकी फुंआरेका स्पर्श, पवित्र वायुयुक्त स्थानमें चंदनसे चर्चित अंगोंवाली स्त्रियोंका स्पर्श और चंदनका लेपन यह सब पित्तमदात्ययमें हितकारक होतेहैं ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

मदात्ययका दाहनाशकयत्न ।

कुमुदोत्पलपत्राणांसिक्तानांचन्दनाम्बुना ।

हिताःस्पर्शामनोज्ञानांदाहेमद्यसमुत्थिते ॥ १५४ ॥

कुमुद और कमलोंके फूलोंको चंदन और शीतल जलमें भिंगो स्पर्श करना अथवा इनके मनोहर पत्रोंको चंदन और शीतल जलमें भिंगो स्पर्श करना मदात्ययकी दाहको शान्त करताहै ॥ १५४ ॥

कथाश्रविविधाःशस्ताःशब्दाश्रशिखिनांशिवाः । तोयदानाश्चशब्दा
हिशमयन्तिमदात्ययम् ॥ १५५ ॥ जलयन्त्राभिवर्षीणिवातयन्त्र-
वहाणिच । कल्पनीयानिभिपजादाहेधारागृहाणिच ॥ १५६ ॥

अनेक प्रकारकी मनको हरण करनेवाली कथायें, मयूरोंके श्रेष्ठ शब्द, वादलोंका गरजना फव्वारोंके जलकी फुंवार तथा पवनकारक यंत्रों युक्त धारागृहमें निवास यह सब मदात्ययरोगके दाहको शान्त करनेवाले हैं ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

फलिनीसेव्यलोध्राम्बुहेमपत्रंकुटन्नटम् ॥

कालीयकरसोपेतंदाहेशस्तंप्रलेपनम् ॥ १५७ ॥

प्रियंगु, खस, लोध, नेत्रवाला, हेमपत्र, केवटीमोया, अगर इन सबको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे मदात्ययका दाह शान्त होताहै ॥ १५७ ॥

वदरीपल्लवोत्थाश्चतथैवारिष्टकोद्भवाः ।

फेनिलायाश्चयःफेनस्तैर्दाहेलेपनंशुभम् ॥ १५८ ॥

वेरीके पत्रोंकी झाग अथवा नीमके पत्तोंकी झाग अथवा रीठोंकी झाग (फेन) का देहपर लेप करना भी दाहको शान्त करताहै ॥ १५८ ॥

सुरासमण्डादध्यम्लंमातुलुङ्गरसोमधु ।

सेकप्रदेहेशस्यन्तेदाहघ्नाःसाम्लकाञ्जिकाः ॥ १५९ ॥

सुरामण्ड, दहीका खट्टा पानी, विजौरैका रस, शहद और खट्टी कांजी इनका देहपर सेचन करना अथवा लेपन करना दाहको शान्त करताहै ॥ १५९ ॥

पारिपेकावगाहेपुण्यञ्जनानाश्चसेवने ।

शस्यतेशिशिरंतोयंदाहतृष्णाप्रशान्तये ॥ १६० ॥

शीतल जलके तरडे देना, शीतल जलमें प्रवेश कर छान करना, शीतल जलसे भिंगेदुष्ट पंसेकी परन और शीतल जलका पीना यह सब मदात्ययके दाह और तृष्णाको शान्त करतेहैं ॥ १६० ॥

मात्राकालप्रयुक्तेनकर्मणानेनशाम्यति ।

धीमतोवैद्यवश्यस्यशीघ्रंपित्तमदात्ययम् ॥ १६१ ॥

मात्रा और कालके अनुसार इन उपरोक्त सब कर्मोंके करनेसे वैद्यके वशमें रहनेवाले रोगीका पित्त मदात्यय शान्त होताहै ॥ १६१ ॥

कफप्रधानमदात्ययकी चिकित्सा ।

उल्लेखनापवासाभ्यांजयेत्कफमदात्ययम् । तृप्यतेसलिलश्चास्मैद-

द्याद्धीवैरसाधितम् ॥ १६२ ॥ वलायाःपृश्निपण्यात्राकण्टकार्या-

थवाशृतम् । सनागराभिःसर्वाभिर्जलंवाशृतशीतलम् ॥ १६३ ॥

दुःस्पर्शितेनमुस्तेनमुस्तर्पटकेनवा । जलंमुस्तैःशृतंवापिदद्यादो-

पविपाचनम् ॥ १६४ ॥

कफप्रधान मदात्ययको उल्लेखन (वमन) और उपवास (लंघन) द्वारा जीतना चाहिये । कफप्रधान मदात्ययमें प्यासकी शान्तिके लिये नेत्रवालासे सिद्ध किया जल पिलावे अथवा बला, पृश्निपर्णी और कटेलीसे सिद्ध किया हुआ जल या इन्हींमें सोंठ मिला इन औषधियोंसे सिद्ध किया जल शीतलकर पिलावे । अथवा जवासा और नागरमोथा या नागरमोया और पित्तपापडासे सिद्ध किया जल अथवा केवल मोथा डालकर सिद्ध किया जल प्यासकी शान्तिके लिये और दोष पाचन करनेके लिये देना चाहिये ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

एतदेवचपानीयंसर्वत्रापिमदात्यये ।

निरत्ययंपीयमानंपिपासाज्वरनाशनम् ॥ १६५ ॥

यह उपरोक्त जल सब प्रकारके मदात्ययोंमें ही हितकारक होतेहैं । इस पानीके पीनेसे किसी प्रकारका विकार न होकर प्यास और ज्वरकी शांति होतीहै ॥ १६५ ॥

निरामंकांक्षितंकालेसक्षौद्रंपाययेन्नृतम् । शार्करंमधुवाजीर्णमारिष्टं-

शीधुमेववा ॥ १६६ ॥ रूक्षतर्पणसंयुक्तंयमानीनागरान्वितम् ।

यवगोधूमिकंचान्नंरूक्षयूपेणभोजयेत् ॥ १६७ ॥ कुलत्थानांसुशु-

ष्काणांमूलकानारंसेनवा । तनुनाल्पेनलघुनाकट्फलैनाल्प-

सर्पिणा ॥ १६८ ॥

कफके मदात्ययमें आमदोष शान्त होनेपर जब भूखकी इच्छा हो उस समय रोगीको शहत मिलाकर शर्करामद्य अथवा पुराना शहद वा अरिष्ट अथवा शीधु पान

करावे । कफ मदात्ययमें अजवायन और सोंठ डालकर रूक्ष तर्पण कराना चाहिये । तथा घृतरहित यूपके साथ यव और गेहूँका अन्न भोजन करावे । अथवा कुल्थीका यूप वा अत्यंत सूखी मूलियोंका यूप, पतला और थोडा हलका कटु, अम्ल औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए अल्प घृतको मिलाकर देवे ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

व्योपयूपमथाम्लंवायूपंवासांम्लवेतसम् । छागमांसरसंरूक्षमम्लं
वाजाङ्गलंसम् ॥ १६९ ॥ स्थाल्यांवाथकपालेवाभृष्टंनिर्द्रववर्त्तितम् ।
कटुम्ललवणंमांसंभक्षयन्वृणुयान्मधु ॥ १७० ॥ व्यक्तमा-
रीचकंमांसंमातुलुङ्गरसान्वितम् । भृष्टंदाडिमसारांम्लमुष्णयूपोप-
वेष्टितम् ॥ १७१ ॥ यथाग्निभक्षयेत्कालेप्रभूतार्द्रकपेशितम् ।
पिवेच्चनिगदंमद्यंकफप्रायेमदात्यये ॥ १७२ ॥

अथवा पीपल, मिर्च, सोंठ मिलाकर अम्लयूप वा अम्लवेतयुक्त यूप अथवा छागका रूक्ष मांसरस या जांगलजीवोंका रूक्ष मांसरस देवे । अथवा पतीले या मट्टीके पात्रमें त्रिकटु, छाछ और नमक डालकर धीरे २ भुनाहुआ रसरहित मांसका प्रयोग करे । इसके अनन्तर माध्वीक (शहतसे बना मद्य) पान करे । अथवा भूख लगनेपर मिर्चके चरचराहटयुक्त विजौरेके रससे खट्टा किया हुआ अनारदाना मिला भूनकर उष्ण अम्लयूपके साथ अभिवल विचारकर समयानुसार भक्षण करे । और इसमें बहुतसा अदरख मिलाकर सिद्ध करना चाहिये । इसके ऊपर शहतसे बना मद्यका पान करे तो कफप्रधान मदात्यय शांत होताहै ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥
अष्टांगलवण ।

सौवर्चलमजाजीचवृक्षाम्लंसांम्लवेतसम् । त्वगेलामारिचार्द्धांश-
र्कराभागयोजितम् ॥ १७३ ॥ एतल्लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनंपरम् ।
मदात्ययेकफप्रायेदद्यात्स्वोतोविशोधनम् ॥ १७४ ॥ एतदेवपुन-
र्युक्तयामधुराम्लैर्द्रवीकृतम् । गोधूमान्नयवान्नानांमांसानाञ्चाति-
रोचनम् ॥ १७५ ॥

संचरनमक, कालाजीरा, इमली, अम्लवेत, यह सब सम भाग लेवे । दालचीनी, इलायची और मिर्च यह आधा भाग लेवे । खांड एक भाग लेवे इन सबका चूर्ण बना लेवे । यह अष्टांग लवण नामक चूर्ण अग्निको अत्यंत दीपन करनेवाला, स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला कफप्रधान मदात्ययमें प्रयोग करना चाहिये । और यही अष्टांग लवणमधुर और अम्ल द्रव्योंके योगसे पतलाकर गेहूँ और यवोंसे बनेहुए अनेक

प्रकारके भोजनोंके साथ तथा मांसके साथ भोजनमें देनेसे अत्यंत रुचिको देनेवाला है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

पेपयेत्कटुकैर्युक्तांश्वेतांवीजविवर्जिताम् ।

मृद्धीकांमातुलुङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा ॥ १७६ ॥

अथवा मिर्च आदि चरपरे द्रव्योंको मिलाकर सफेद दूब, बीज रहित दाख, अथवा विजौरा वा अनारके रसके साथ पीसकर पीनेसे कफप्रधान मदात्पय नष्ट होताहै ॥ १७६ ॥

सौवर्चलैलामरिचैरजाजीभृङ्गदीप्यकैः ।

सरागःक्षौद्रसंयुक्तःश्रेष्ठोरोचनदीपनः ॥ १७७ ॥

संचरनमक, इलायची, मिर्च, जीरा, दालचीनी, अजवायन इनका चूर्ण राग-खाण्डव और शहतमें मिला सेवन करे तो यह अत्यंत रुचिको करनेवाला तथा अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ १७७ ॥

मृद्धीकानांविधानेनकारयेत्कारवीमपि ।

युक्तमत्स्याण्डिकोपेतरागंदीपनपाचनम् ॥ १७८ ॥

विधिपूर्वक द्राक्षा और सौंफका मिसरी मिलाकर राग (रावके समान चटनी) बनाया हुआ सेवन करनेसे अग्निदीपन और पाचन होताहै ॥ १७८ ॥

आम्रामलकपेशीनारागान्कुर्व्यात्पृथक्पृथक् । धान्यसौवर्चलाजा-
जीकारवीमरिचान्वितान् ॥ १७९ ॥ गुडेनमधुयुक्तेनव्यक्ताम्ल-
लवणीकृतान् । तेरन्नरोचतेदिग्धंसम्यग्भुक्तंविजीर्यति ॥ १८० ॥

आम और आंबलोंका गूदा अलग २ लेकर धनियां, संचरनमक, काला जीग, सौंफ और मिर्च मिलाकर गुड और शहतके योगसे रागखाण्डव बनावे । इन व्यक्त (चरपरी) रसदाई नमक युक्त रागोंसे भोजन करे तो यह रुचिको उत्पन्न करतेहैं तथा भलीप्रकार भोजनको पचा देतेहैं ॥ १७९ ॥ १८० ॥

रूक्षोष्णेनान्नपानेनस्नानेनाशिशिरेणच । व्यायामलंघनाभ्याश्च
युक्ताभ्यांजागरेणतु ॥ १८१ ॥ कालयुक्तेनरूक्षेणस्नानेनोद्भर्त्तनेन

च । स्नानवर्णकवासानांप्रहर्षाणाश्चसेवया ॥ १८२ ॥ सेवनं वम-
नानाश्चगुरुणामगुरोरपि । सकामोष्णसुखाह्नीनामह्नानाश्चसे-
वया ॥ १८३ ॥ मुखशिक्षितहस्तानांस्त्रीणांसेवाहनेनच । मदा-
त्ययःकफप्रायःशीघ्रमेवोपशाम्यति ॥ १८४ ॥

रूक्ष और उष्ण अन्नपान, गरम जलम स्नान, व्यायाम, लंघन, निद्रा न लेना स्नानके समय कालानुसार, रूक्ष औषधियोंके क्वाथसे स्नान, रूक्ष उबटना, रूक्ष औषधियोंका लेपन, रूक्ष बम्बोंका धारण करना, हर्षोत्पादक कर्म, वमन कराना, गाढे अगरके लेपनसे चर्चित अंगोंवाली पुष्ट अंगीयुक्त, सकामा युवावस्थाकी गर्मीयुक्त मुखस्पर्श अंगोंवाली स्त्रियोंका सेवन, सुशिक्षित हाथोंवाली स्त्रियोंके हाथोंसे संवाहन (शरीर दबवाना) इन कर्मोंके करनेसे कफप्रधान मदात्यय शीघ्र शान्त होजाताहै ॥ १८१ ॥ २८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

सन्निपातज मदात्ययमें चिकित्सानिर्देश ।

यदिदं कर्मनिर्दिष्टं पृथग्दोषवलंप्रति । सन्निपाते दशविधेतद्विकल्पं
भिषग्विदा ॥ १८५ ॥ यस्तु दोषविकल्पज्ञो यश्चौषधिविकल्पवित् ।

ससाध्यान्साधयेद्ब्याधीन्साध्यासाध्यविभागवित् ॥ १८६ ॥

यह जो वातादि दोषोंकी प्रधानतासे मदात्यय रोगमें अलग २ चिकित्साका निर्देश किया है दोषोंके पृथक् २ विकल्पको जाननेवाला वैद्य दशविध कल्पनासे सन्निपात मदात्ययमें चिकित्सा प्रयोग करे। जो वैद्य दोष और विकल्पका जानने-वाला है तथा औषधीकी विधि, कल्पना और व्याधिके विकल्प तथा उसकी साध्य, असाध्यके विभागकी जाननेवाला है वह ही साध्यमदात्ययोंको साधन (अच्छा) कर सकताहै ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

मदात्ययनाशक योग ।

वनानिरमणीयानिसपद्माःसलिलाशयाः । विशदान्यन्नपानानि
सहायाश्चप्रहर्षणाः ॥ १८७ ॥ माल्यानिगन्धयोगाश्चवासांसिवि-

मलानिच । गान्धर्वशब्दाःकान्ताश्चगोष्ठ्यश्चहृदयप्रियाः ॥ १८८ ॥

सङ्कथाहास्यगीतानां विशदाश्चैवयोजनाः । प्रियाश्चानुगतानाव्यो
नाशयन्ति मदात्ययम् ॥ १८९ ॥

रमणीय वन, कमलोंसे शोभायमान सरोवर, स्वच्छ अन्नपान, हर्षके उत्पन्न करनेवाले सहचारी, सुगंधित पुष्पमाला, निर्मल वस्त्र, उत्तम गांनेवालोंका गाना, सुशीला स्त्री, हृदयकी प्यारी लगनेवाली गोष्ठी, हास्य, कथा और गीतोंका श्रवण, स्पष्ट वार्ताओंका कथन, प्यारी और अपने अनुकूल स्त्रियें यह सब मदात्ययरोगको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

नाक्षोभ्यंहिमनोमयंशरीरमवहत्यच ।

कुर्यान्मदात्ययंतस्मादेष्टव्याहर्षणीक्रिया ॥ १९० ॥

क्योंकि मनमें क्षोभको उत्पन्न किये बिना और शरीरमें व्याप्तहुए बिना मद्य मदात्यय रोगको नहीं करता अर्थात् मनको क्षुभित कर और शरीरमें व्याप्त होकर ही मदात्ययको उत्पन्न करताहै इसलिये इस रोगमें चित्तको हर्षित करनेवाली क्रियाका प्रयोग करना चाहिये ॥ १९० ॥

क्षीरप्रयोग ।

आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिःशमंयातिमदात्ययः ।

नचेन्मद्यविधिं हित्वाक्षीरमस्यप्रयोजयेत् ॥ १९१ ॥

इन संपूर्ण सिद्ध क्रियाओंके करनेसे यदि मदात्यय रोगकी शान्ति न हो तो मद्यविधिको छोड़कर दूधका प्रयोग करे अर्थात् इस रोगकी नीचे लिखे दूधों द्वारा चिकित्सा करे ॥ १९१ ॥

लंघनेःपाचनैश्चैवदोषसंशोधनैरपि । विमद्यस्यकफेक्षीणेजातेदौ-
र्वल्यलाघवे ॥ १९२ ॥ तस्यमद्यविदग्धस्यवातपित्ताधिकस्यवा ।

श्रीष्मोपतस्यतरोर्यथावर्षतथापयः ॥ १९३ ॥ पयसाभिहृतेरोगे
वलेजातेनिवर्त्तयेत् । क्षीरप्रयोगंमद्यश्चक्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥

॥ १९४ ॥ विच्छिन्नमद्यःसहसायोऽतिमद्यंनिपेवते । ध्वंसकोविद्-
क्षयश्चैवरोगस्तस्योपजायते ॥ १९५ ॥

पहिले लंघन, पाचन और संशोधन क्रियाओं द्वारा शरीरको शोधन कर तथा जब शरीरसे मद्यका अपगम होकर कफ क्षीण होजानेपर शरीरमें हलकापन और दुर्बलता उत्पन्न होजाय उस समय उस मद्य विदग्ध अथवा वातपित्तप्रबल मनुष्यको दूधका प्रयोग इस प्रकार गुणकारक होताहै जैसे गर्मीसे मुर्झाये हुए वृक्षको वर्षाका जल हरा करदेताहै । दूध द्वारा रोगकी निवृत्ति होकर जब रोगीके शरीरमें चैतन्यता प्राप्त हो बल आजाय तो क्रमपूर्वक दूधके प्रयोगको बन्दकर मद्यसात्म्य मनुष्योंको किंचित् २ मद्यका सेवन करावे । क्योंकि जिस मनुष्यका एक बार मद्य छूट चुका है यदि वह एकाएकी अधिक मद्यका पान करलेवे तो उसको ध्वंसक और विदक्षय रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

व्याध्युपक्षीणदेहस्यदुश्चिकित्स्यतमौमती ।

तयोर्लिङ्गचिकित्साश्चयथावदुपदेक्ष्यते ॥ १९६ ॥

जिस मनुष्यका व्याधिसे देह क्षीण हो उसके यह दोनों रोग दुश्चिकित्स्य होतेहैं ।
अब इन दोनों (ध्वंसक, विदक्षय) के लक्षण और चिकित्साको कहतेहैं ॥ १९६ ॥

ध्वंसकके लक्षण ।

श्लेष्मप्रकोपःकण्ठस्यशोषःशब्दासहिष्णुता ।

तन्द्रानिद्राभियोगश्चज्ञेयंध्वंसकलक्षणम् ॥ १९७ ॥

कफका प्रयोग, कण्ठशोष, किसी भी शब्दका अच्छा न लगना, तंद्रा और निद्राकी अधिकता यह ध्वंसकरोगके लक्षण हैं ॥ १९७ ॥

विदूक्षयके लक्षण ।

हृत्कण्ठरोगःसम्मोहश्छर्दिरङ्गरुजाज्वरः ।

तृष्णाकासःशिरःशूलमेतद्विदूक्षयलक्षणम् ॥ १९८ ॥

हृद्रोग, कण्ठरोग, बेहोशी, वमन, अंगोंमें पीडा, ज्वर, प्यास, खांसी, मस्तकपीडा यह विदूक्षयके लक्षण हैं ॥ १९८ ॥

इन दोनोंकी चिकित्सा ।

तयोःकर्मतदेवेष्टंवातिके यन्मदात्यये । तौहिप्रक्षीणदेहस्यजा-

येतेदुर्बलस्यवा ॥ १९९ ॥ वस्तयःसर्पिषःपानंप्रयोगःक्षीरस-

र्पिपोः । अभ्यङ्गोद्वर्त्तनस्तनानान्यनुपानञ्चवातनुत् ॥ २०० ॥ ध्वंस-

कोविदूक्षयश्चैवकर्मणानेनशास्यति । युक्तमद्यस्यमद्योत्थोनव्या-

धिरुपजायते ॥ २०१ ॥

जो वातप्रधान मदात्ययमें चिकित्सा कहआयेंहैं वही चिकित्सा इन दोनों रोगोंमें भी हितकारी होतीहै क्योंकि यह दोनों दुर्बल और क्षीणदेह मनुष्यको होतेहैं । इन ध्वंसक और विदूक्षय दोनों रोगोंमें वस्तिकर्म, घीका पीना, दूध और घृतमिला पीना स्नेहाभ्यंग, उद्वर्त्तन, स्नान तथा अन्य वातनाशक अन्नधानोंका सेवन करना इन क्रियाओंसे ध्वंसक और विदूक्षय यह दोनों शांत होतेहैं । जो मनुष्य युक्तिपूर्वक मद्यपान करताहै उसको मद्यसे उत्पन्न होनेवाले रोग नहीं होसकते ॥१९९॥२००॥ २०१ ॥

मद्य न पीनेके गुण ।

निवृत्तःसर्वमद्येभ्योनरोयःस्याज्जितेन्द्रियः ।

शरीरमानसैर्धीमान् विकारैर्नसयुज्यते ॥ २०२ ॥

जो मनुष्य सब प्रकार मद्यमें निवृत्त है अर्थात् मद्यको ग्रहण नहीं करता वह बुद्धिमान् जितेन्द्रिय मनुष्य शारीरिक और मानसिक विकारोंसे ग्रस्त नहीं होता ॥ २०२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

यत्प्रभावाभगवतीसुरापेयायथाचक्षा । यद्द्रव्यायस्ययाचेष्टायो-
गश्चापेक्षतेयथा ॥ २०३ ॥ यथायथामदयतेयैश्चयुक्तामहागु-
णैः । योमदोमदभेदाश्चयेत्रयःस्वस्वलक्षणाः ॥ २०४ ॥ येचमद्य-
कृतादोषागुणायेचमदात्मकाः । यच्चत्रिविधमापानंयथासत्त्व-
ञ्चलक्षणम् ॥ २०५ ॥ येसहायाःसुखायेचचिरक्षिप्रमदानराः ।
मदात्ययस्ययोहेतुर्लक्षणंयद्यथाचयत् ॥ २०६ ॥ मद्यमद्यो-
त्थितानुरोगान्हन्तियश्चक्रियाक्रमः । सर्वतदुक्तमखिलंमदात्यय-
चिकित्सिते ॥ २०७ ॥

चरक० चि० मदात्ययचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें
महाभाग मद्यका प्रभाव और पीनेके प्रकार, मद्यके द्रव्य, जिनको मद्य पीना चाहिये
मद्योंके भिन्न २ भेद युक्त गुण, मद्यके तीन भेद और लक्षण, मद्यके पीयेहुए दोष,
मद्यकृत गुण, तीन प्रकारके मद्यालय, तीन प्रकारके सत्त्वोंका लक्षण, मद्य-
पान योग्य सहचारी, मद्यपान करनेपर विलंबसे मद होना, शीघ्र उन्मत्त होजाना
मदात्ययके कारण और लक्षण, मदात्यय रोगकी निवृत्तिके लिये मद्यका प्रयोग
मदात्ययकी चिकित्साक्रम यह सब विधिवत् वर्णन कियाहै ॥ २०३-२०७ ॥

इति श्रीमहापिचरक० प्र० आयुर्वेदीय स० चि० स्थाने ट० नि० रा० वे० वि० प्र०

भा० टी० मदात्ययचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो द्विव्रणीयचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माहभग-
वानात्रेयः ।

अब हम द्विव्रणीय चिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार
भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

परावरज्जमात्रेयंगतमानमदव्ययम् । अग्निवेशोगुरुंकालेविनयादि-

दमुक्तवान् ॥ १ ॥ भगवन् ! पूर्वमुद्दिष्टौद्वौत्रणौरोगसंग्रहे । तयो-
लिङ्गंचिकित्साञ्चवक्तुमर्हसिशर्मद ॥ २ ॥

भूत भविष्यत्के जाननेवाले अभिमानरहित तथा विगतमद और संतापसे वैठेहुए गुरुके समीप यथासमय विनयपूर्वक अग्निवेश इस प्रकार पूछने लगे कि हे भगवन् । रोगसंग्रह (सूत्रस्थान) में निज और आगन्तुक इन दो व्रणोंको पहिले कह चुके हैं हे कल्याणप्रद ! उनके लक्षण और चिकित्साका यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥

इत्यग्निवेशस्यवचोनिशम्यगुरुरब्रवीत् । यौत्रणौपूर्वमुद्दिष्टौनिज-
श्चागन्तुरेवच । श्रूयतांविधिवत्सौम्यतयोर्लिङ्गञ्चभेषजम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके प्रश्नको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहने लगे कि हे सौम्य ! पहिले जो निज और आगन्तुक भेदसे दो प्रकारके व्रणोंको कह आये हैं उनके लक्षण और औषधियोंको विधिवत् सुनो ॥ ३ ॥

द्विविध व्रण ।

निजःशरीरदोषोत्थआगन्तुर्वाह्यहेतुजः ॥ ४ ॥

शारीरिक दोषसे हुए व्रण (घाव) को निजव्रण कहते हैं । और बाहरी हेतुओंसे उत्पन्न हुए व्रणको आगन्तु व्रण कहते हैं ॥ ४ ॥

आगन्तु व्रणोंके हेतु ।

वधवन्धप्रपतनादंष्ट्रादन्तनखक्षतात् । आगन्तवोत्रणास्तद्विपस्पर्शाग्निशस्त्रजाः ॥ ५ ॥ मन्त्रागदप्रलेपाद्यैर्भेषजैर्हेतुभिश्चते । लिङ्गैकदेशैर्निर्दिष्टाविपरीतानिजैर्व्रणाः ॥ ६ ॥

उनमें चोट आदि आघात, बंधन, पतन, दंत (दाढ़)का लगना, नखका लगना अथवा अन्य किसी प्रकार कटजाना, विपका स्पर्श होना, अग्निका स्पर्श होना वा किसी प्रकारके शस्त्रका लगना, इनसे जो घाव होता है अथवा मंत्र वा औषधियोंके योगसे वा किसी अगदके लेपआदिसे जो व्रण उत्पन्न होते हैं उन सबको आगन्तु व्रण कहते हैं यह आगन्तु व्रण हेतुविशेषसे और लक्षणभेदसे अनेक प्रकारके होते हैं । उनके लक्षणोंके एक देशसे यहांपर दिखाया गया है । इससे विपरीत वातादि दोषोंके द्वारा प्रकट होनेवाले निजव्रण होते हैं । निजव्रणोंमें प्रथम वातादि दोषोंका कोप होकर पीछे व्रणोंकी उत्पत्ति होती है और आगन्तु व्रण पहिले व्रण होकर पीछे वातादि दोष कुपित होते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

व्रणानांनिजहेतृनामागन्तूनामसाध्यताम् ।

कुर्याद्दोषवलापेक्षीनिजानामौषधंयथा ॥ ७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

यत्प्रभावाभगवतीसुरापेयायथाचसा । यद्द्रव्यायस्ययाचेष्टायो-
गञ्चापेक्षतेयथा ॥ २०३ ॥ यथायथामदयतेयैश्चयुक्तामहागु-
णैः । योमदोमदभेदाश्चयेत्रयःस्वस्वलक्षणाः ॥ २०४ ॥ येचमद्य-
कृतादोषांगुणायेचमदात्मकाः । यच्चत्रिविधमापानंयथासत्त्व-
ञ्चलक्षणम् ॥ २०५ ॥ येसहायाःसुखायेचचिरक्षिप्रमदानराः ।
मदात्ययस्ययोहेतुर्लक्षणंयद्यथाचयत् ॥ २०६ ॥ मद्यमद्यो-
त्थितानरोगान्हन्तियश्चक्रियाक्रमः । सर्वतदुक्तमखिलंमदात्यय-
चिकित्सिते ॥ २०७ ॥

चरक० चि० मदात्ययचिकित्सितंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें
महाभाग मद्यका प्रभाव और पीनेके प्रकार, मद्यके द्रव्य, जिनको मद्य पीना चाहिये
मद्योंके भिन्न २ भेद युक्त गुण, मद्यके तीन भेद और लक्षण, मद्यके पीयेहुए दोष,
मद्यकृत गुण, तीन प्रकारके मद्यालय, तीन प्रकारके सत्त्वोंका लक्षण, मद्य-
पान योग्य सहचारी, मद्यपान करनेपर विलंबते मद्य होना, शीघ्र उन्मत्त होजाना
मदात्ययके कारण और लक्षण, मदात्यय रोगकी निवृत्तिके लिये मद्यका प्रयोग
मदात्ययकी चिकित्साक्रम यह सब विधिवत् वर्णन कियाहै ॥ २०३-२०७ ॥

इति श्रीमहापिचरक० प्र० आपुर्वेदीय सं० चि० स्थाने ट० नि० रा० वे० वि० प्र०

भा० टी० मदात्ययचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो द्विघ्नणीयचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माहभग-
वानात्रेयः ।

अब हम द्विघ्नणीय चिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार
भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

परावरज्ञमात्रेयंगतमानमदव्ययम् । अग्निवेशोगुरुंकालेविनयादि-

कफत्रणके लक्षण ।

बहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः ।

पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरकारीकफत्रणः ॥ १३ ॥

अत्यन्त पिच्छिलता, भारीपन, स्निग्धता, स्तैमित्य, मन्द मन्द पीडा, पाण्डु वर्ण, थोडा २ क्लेद निकलना, त्रणका बहुत देरमें पकना यह कफत्रणके लक्षण होतेहैं ॥ १३ ॥

कफत्रणमें चि० ।

कपायकटुरूक्षोष्णैःप्रदेहपरिपेचनैः ।

कफत्रणंप्रशमयेत्तथालंघनपाचनैः ॥ १४ ॥

कफत्रणको कपाय, कटु, रुक्ष और उष्ण द्रव्यों द्वारा लेपन और परिसेचन करे । तथा लंघन और पाचनों द्वारा शान्त करे ॥ १४ ॥

त्रणोंके भेदादि ।

तौद्वौनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिर्त्रणाः । तेषांपरीक्षात्रिविधाप्र-

दुष्टाद्वादशस्मृताः ॥ १५ ॥ स्थानान्यष्टौतथागन्धाःपरिस्त्रावा-

श्चतुर्दश । षोडशोपद्रवादोपाश्चत्वारोविंशतिस्तथा ॥ १६ ॥ तथा-

चोपक्रमाःसिद्धाःषट्त्रिंशत्समुदाहृताः । विभाव्यमानाःशृणुता-

न्सर्वनिवयथेरितान् ॥ १७ ॥

निज और आगन्तु भेदसे यह दोनों त्रण बीसप्रकारके होतेहैं । उनकी तीन प्रकारकी परीक्षा होतीहै । दूषित होनेसे प्रत्येक त्रणके चारह भेद होजातेहैं त्रणोंके आठ स्थान हैं और आठ ही प्रकारके गंध हैं । चौदह प्रकारके स्राव हैं । सोलह प्रकारके उपद्रव हैं । चौबीस प्रकारके दोष हैं और छत्तीसप्रकारकी सिद्धचिकित्सा है । अब इनका विस्तारपूर्वक वर्णन सुनो ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

त्रणके २० प्रकार ।

कृत्योत्कृत्यस्तथादुष्टस्तथामर्मस्थितोनवः । संवृतोदारुणःस्त्रावीस-

विपोविपमस्थितः ॥ १८ ॥ त्वक्संग्युत्सन्नएपाश्चत्रणान्विद्या-

द्विपर्ययात् । इतिनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिर्त्रणाः ॥ १९ ॥

कृत्योत्कृत्य, दुष्ट, मर्मस्थित, नवीन, संवृत, दारुणस्त्रावी, सविप, विपमस्थित, उत्संगी, उत्सन्न, अकृत्योत्कृत्य (जो चिरता फटता न हो) अदुष्ट, अमर्मस्थित,

निज हेतुओंसे उत्पन्न हुए व्रण और आगन्तु व्रणकी यदि स्वयं शान्ति होते प्रतीत न हो तो दोष और बलको जाननेवाला वैद्य विचारपूर्वक आगे कहीहुई निज व्रणोंमें औषधियोंका प्रयोग करे ॥ ७ ॥

निजव्रणोंकी संप्राप्ति ।

यथास्वैहेतुभिर्दुष्टावातपित्तकफानृणाम् ।

वहिर्मागसमाश्रित्यजनयन्तिनिजान्त्रणान् ॥ ८ ॥

अपने २ कारणोंसे कुपितहुए वात, पित्त, कफ मनुष्योंके शरीरमें त्वचाका आश्रय ले निजव्रणों (नखमों) को उत्पन्न करतेहैं ॥ ८ ॥

वातव्रणके लक्षण ।

स्तब्धःकठिनसंस्पर्शोमन्द्रस्त्रावोतितीव्ररूक् ।

तुयते स्फुरतिश्यावोव्रणोमारुतसम्भवः ॥ ९ ॥

जो व्रण स्तब्ध, स्पर्शमें कठोर, मन्द २ स्रावयुक्त, अत्यंत पीडावाला, सूईके चुभानेकीसी पीडायुक्त फडकनेवाला, और श्यामवर्ण हो वह वायुसे उत्पन्न हुआ जानना ॥ ९ ॥

वातव्रणमें चिकित्सानिर्देश ।

संपूरणैःस्नेहपानैःस्निग्धैःस्वेदोपनाहनैः ।

प्रदेहैःपरिपेकैश्चवातव्रणमुपाचरेत् ॥ १० ॥

वायुसे उत्पन्न हुए व्रणमें संपूरण, (वातनाशक द्रव्योंका प्रयोग अथवा व्रणपूरक) स्नेह पान, स्निग्ध स्वेद, स्निग्ध उपनाह, स्निग्ध प्रलेप और स्निग्ध परिपेको द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १० ॥

पित्तव्रणके लक्षण ।

तृष्णामोहज्वरस्वेददाहदुष्टावदारणैः ।

व्रणंपित्तकृतंविद्याद्गन्धस्त्रावैःसपूतिकैः ॥ ११ ॥

प्यास, मोह, ज्वर, पसीने, दाह, दुष्ट, अवदारण (घावका गुरीतरहसे फटना) दर्गधयुक्त स्राव होना और राधका निकलना यह पित्तव्रणके लक्षण जानना ॥ ११ ॥

पित्तव्रणमें चिकित्सानिर्देश ।

शीतलैर्मधुरैस्तिक्तैःप्रदेहपरिपेचनैः ।

सर्पिःपानैर्विरेकैश्चपैत्तिकंशमयेद्व्रणम् ॥ १२ ॥

शीतल, मधुर और तिक्तद्रव्योंसे लेपन, सेचन, घृतपान और विरेचन आदिमे पित्तव्रणको शान्त करना चाहिये ॥ १२ ॥

कफव्रणके लक्षण ।

बहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः ।

पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरकारीकफव्रणः ॥ १३ ॥

अत्यन्त पिच्छलता, भारीपन, स्निग्धता, स्तैमित्य, मन्द मन्द पीडा, पाण्डु वर्ण, थोडा २ क्लेद निकलना, व्रणका बहुत देरमें पकना यह कफव्रणके लक्षण होतेहैं ॥ १३ ॥

कफव्रणमें चि० ।

कपायकटुरूक्षोष्णैःप्रदेहपरिपेचनैः ।

कफव्रणंप्रशमयेत्तथालंघनपाचनैः ॥ १४ ॥

कफव्रणको कपाय, कटु, रूक्ष और उष्ण द्रव्यों द्वारा लेपन और परिसेचन करे । तथा लंघन और पाचनों द्वारा शान्त करे ॥ १४ ॥

व्रणोंके भेदादि ।

तौद्वौनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिर्व्रणाः । तेषांपरीक्षात्रिविधाप्र-

दुष्टाद्वादशस्मृताः ॥ १५ ॥ स्थानान्यष्टौतथागन्धाःपरिस्वावा-

श्चतुर्दश । षोडशोपद्रवादोपाश्चत्वारोविंशतिस्तथा ॥ १६ ॥ तथा-

चोपक्रमाःसिद्धाःपट्त्रिंशत्समुदाहृताः । विभाव्यमानाःशृणुता-

न्सर्वानिवयथेरितान् ॥ १७ ॥

निज और आगन्तु भेदसे यह दोनों व्रण बीसप्रकारके होतेहैं । उनकी तीन प्रकारकी परीक्षा होतीहै । दूषित होनेसे प्रत्येक व्रणके वारह भेद होजातेहैं व्रणोंके आठ स्थान हैं और आठ ही प्रकारके गंध हैं । चौदह प्रकारके स्वाव हैं । सोलह प्रकारके उपद्रव हैं । चौबीस प्रकारके दोष हैं और छत्तीसप्रकारकी सिद्धचिकित्सा है । अब इनका विस्तारपूर्वक वर्णन सुनो ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

व्रणके २० प्रकार ।

कृत्योत्कृत्यस्तथादुष्टस्तथामर्मस्थितोनवः । संवृतोदारुणःस्वावीस-

विपोविपमस्थितः ॥ १८ ॥ त्वक्संग्युत्सन्नपपाञ्चव्रणान्विद्या-

द्विपर्ययात् । इतिनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिर्व्रणाः ॥ १९ ॥

कृत्योत्कृत्य, दुष्ट, मर्मस्थित, नवीन, संवृत्त, दारुणभावी, सविप, विपमस्थित, उत्संगी, उत्सन्न, अकृत्योत्कृत्य (जो चिरता पटता न हो) अदुष्ट, अमर्मस्थित,

पुराचीन, असंवृत, अल्पस्रावी, निर्विष, अविषमस्थित, अनुत्संगी और अनुत्सन्न यह व्रणोंके बीस भेद कहेहैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

विविध परीक्षा ।

दर्शनप्रश्नसंस्पर्शैः परीक्षात्रिविधास्मृता । वयोवर्णशरीराणामिन्द्रियाणाञ्चदर्शनात् ॥ २० ॥ हेत्वर्त्तिसात्म्यान्निबलंपरीक्षथं वचनाद्बुधैः । स्पर्शान्मार्दवशैत्येचपरीक्ष्येसविपर्यये ॥ २१ ॥

व्रणोंको देखना, हाथसे स्पर्श करना और रोगीसे पूछना यह तीन प्रकारकी परीक्षा है । इनमें रोगीकी अवस्था, वर्ण, शरीर और इन्द्रियोंको देखकर परीक्षा करना रोगके कारण, पीडा, सात्म्य, अग्नि बल इनकी पूछकर परीक्षा करना, मृदुता, शीतलता, कठोरता और उष्णता आदि स्पर्शद्वारा परीक्षा करना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

दुष्ट व्रणोंके भेद ।

श्वेतोपसन्नवर्त्मातिस्थूलवर्त्मातिपिञ्जरः । नीलःश्यावोऽतिपिडकोरक्तकृष्णोऽतिपूतिकः ॥ २२ ॥ रौप्यःकुम्भीमुखश्चेतिप्रदुष्टाद्वादशव्रणाः । कल्पेनानेनदोषाणांचतुर्विंशतिरुच्यते ॥ २३ ॥

श्वेतवर्त्मा, उपसन्नवर्त्मा, स्थूलवर्त्मा, अत्यंत पिञ्जर, अतिनील, अतिश्याम, अत्यंत पिडिकायुक्त, अतिरक्तवर्ण, अत्यंत कृष्णवर्ण, अत्यंत दुर्गंधयुक्त, रौप्य और कुम्भीमुख यह व्रणोंके दुष्ट होनेसे बारह प्रकारके भेद होतेहैं । इन बारहोंकी उपरोक्त प्रकारसे कल्पना कीजाय तो इनके चौबीस भेद होजातेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

व्रणके आठ स्थान ।

त्वक्शिरामांसमेदोऽस्थिस्त्रायुमर्मन्तराश्रयाः ।

व्रणस्थानानिनिर्दिष्टान्यष्टावेतानिसंग्रहे ॥ २४ ॥

त्वचा, सिरा, मांस, मेद, अस्थि, स्नायु, मर्म और अंतर (अंतडी) यह संग्रहमें आठ व्रणोंके स्थान कहेहैं ॥ २४ ॥

व्रणोंकी ८ प्रकारकी गंध ।

सर्पिस्तैलवसापूयरक्तश्यावाम्लपूतिकाः ।

व्रणानां व्रणगन्धैरष्टौ गन्धाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २५ ॥

घृतसमान, तैलके समान, चर्बीके समान, घृष (राष) के समान, रुधिरके समान, मुर्देके समान, सटाईके समान, सडीहुई दुर्गंध यह आठ प्रकारकी व्रणकी गंध होतीदे ॥ २५ ॥

१४ प्र० स्राव ।

लसीकाजलपूयासृक्हरितारुणपिञ्जराः । कपायनीलहरितस्निग्ध-
रूक्षसितासिताः । इतिरूपैःसमुद्दिष्टैर्व्रणस्त्रावाश्चतुर्दश ॥ २६ ॥

लसीका, जल, पूय, रुधिर, हरितवर्ण, अरुण, पीतवर्ण, कपायवर्ण, नीलवर्ण,
हारिद्रवर्ण, स्निग्ध, रूक्ष, श्वेत और कृष्ण यह १४ प्रकारके व्रणोंमेंसे स्राव
होतेहैं ॥ २६ ॥

व्रणके १६ उपद्रव ।

विसर्पःपक्षघातश्चशिरास्तम्भोपतानकाः ॥ २७ ॥ मोहोन्मादव्र-
णरुजोऽज्वरस्तृष्णाहनुग्रहः । कासश्छर्दिरीसारोहिकाश्वासःसवे-
पधुः । षोडशोपद्रवाःप्रोक्ताव्रणानांव्रणचिन्तकैः ॥ २८ ॥

विसर्प, पक्षाघात, शिरास्तंभ, अपतानक, मोह उन्माद, व्रणपीडा, ज्वर, प्यास,
हनुग्रह, खांसी, वमन, अतिसार, हिचकी, श्वास और कंप, यह व्रणके १६ उपद्रव
व्रणोंके ज्ञाताओंने कहेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

व्रण शांत न होनेके कारण ।

स्नायुकृेदाच्छिराक्हेदाद्गाम्भीर्यात्किमिदर्शनात् ॥ २९ ॥ अस्थि-
भेदात्सशल्यत्वात्सविषत्वाच्चसर्पणात् । नखकाष्ठप्रभेदाच्चचर्म-
लोमातिघटनात् ॥ ३० ॥ मिथ्यावन्धादतिस्नेहादतिभैषज्यकर्ष-
णात् । अजीर्णादतिभुक्ताच्चविरुद्धासात्म्यभोजनात् ॥ ३१ ॥
शोकात्क्रोधादिवास्वप्नाद्व्यायामान्मैथुनात्तथा । व्रणानप्रशमंया-
न्तिनिष्क्रयत्वाच्चदेहिनाम् ॥ ३२ ॥

स्नायुओंमें क्लेदता आजानेसे, शिराओंमें क्लेदता होनेसे, व्रणके गंभीर होनेसे,
व्रणमें कृमि पडजानेसे, व्रणमें हड्डी निकलकर घावमें लगते रहनेसे, व्रणके अंदर शल्य
रहनेसे, विषयुक्त व्रण होनेसे, व्रणमें घसीट लगजानेसे, व्रणमें नख काष्ठ आदि लगजा-
नेसे, चर्म और केशादिसे व्रणको रगडनेसे, व्रणपर अनुचित बंध लगानेसे, अति-
स्नहके प्रयोगसे, औषधीयोग द्वारा अत्यंत कर्षण किये जानेसे, व्रणवाले रोगीको
अजीर्ण होनेसे, अथवा अत्यंत भोजन करनेसे या विरुद्ध वा असात्म्य भोजन कर-
नेसे, अत्यंत शोकसे, क्रोध करनेसे, दिनमें सोनेसे, व्यायाम करनेसे तथा मथुन
करनेसे एवं व्रणकी चिकित्सा न करनेसे, मनुष्योंके व्रण (घाव, जखम,) शांत-
(आरोग्य) नहीं होते ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

व्रणोंमें साध्यासाध्यता ।

परिस्त्रावाच्चगन्धाच्चदोषश्रोपद्रवैःसह ।

व्रणानां बहुदोषाणां कृच्छ्रत्वञ्चोपजायते ॥ ३३ ॥

बहुदोषयुक्त व्रणोंमें सर्वतः स्त्राव और दुर्गन्ध होनेसे तथा दोषोंके उपद्रवोंसे युक्त होनेसे कृच्छ्रता (कष्ट साध्यता) होजातीहै अर्थात् वह कृच्छ्रतासे शांत होतेहैं ॥ ३३ ॥

त्वङ्मांसजःसुखेदेशेतरुणस्यानुपद्रवः । धीमतोऽभिनवःकालेसु-
खसाध्यःस्मृतोव्रणः ॥ ३४ ॥ गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततःकृच्छ्रतमः

स्मृतः । सर्वैर्विहीनोविज्ञेयस्त्वसाध्योनिरुपक्रमः ॥ ३५ ॥

जो व्रण त्वचा और मांसमें ही आश्रित हैं तथा मर्मादिस्थानोंमें उत्पन्न न होकर आरोग्य होने योग्य स्थानमें पैदाहुये हैं बहुत दिनके पुराने न हों (नये हों) एवं उप-
द्रवराहित हों और बुद्धिमान्के शरीरमें हों तो यथाकाल शीघ्र चिकित्सा कियेजाने
पर वह व्रण सुखसाध्य जानने इन उपरोक्त लक्षणोंमें किसी गुणके न होनेसे वह
व्रण कृच्छ्रसाध्य होतेहैं उपरोक्त सुखसाध्यवाले संपूर्ण गुण न होनेसे व्रणोंको
असाध्य और अचिकित्स्म जानना ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

चिकित्सानिर्देश ।

व्रणानामादितःकार्य्ययथासन्नविशोधनम् । ऊर्ध्वभागैरधोभागैः
शस्त्रैर्वस्तिभिरेवच ॥ ३६ ॥ सद्यःशुद्धशरीराणांप्रशमंयान्तिहिव्रणाः ।
यथाक्रममतश्चोर्ध्वशृणुसर्वानुपक्रमान् ॥ ३७ ॥

व्रणोंकी चिकित्सा करनेमें प्रथमही व्रणको शोधन करना चाहिये और वह शो-
धन अथासन्न सर्वाङ्गवर्तों होना चाहिये जैसे कर्कजनित्र व्रणमें वस्त्र पित्तमें विरेचन
वातव्रणमें वस्तिकर्म कराना तथा वाहरी त्वचामें होनेवाले दुष्टव्रणोंका दृषिपि
आदि निकालकर स्वच्छ करना चाहिये इसप्रकार शुद्ध शरीर होनेसे व्रण बहुत
शीघ्र शान्त होजातेहैं अब यथाक्रम उन व्रणोंकी चिकित्सा श्रवणकरो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

व्रणोंकी ३६ प्रकारकी चिकित्सा ।

शोफमंपद्भिधञ्चैवशस्त्रकर्मावपीडनम् । निर्वापणंसन्धानंस्वेदः
शमनमेपणा ॥ ३८ ॥ शोधनोरोपणीयोत्कषायोसप्रलेपनौ ।
द्वौग्रेहीतदृणोपत्रच्छेदनेद्वेचयन्धने ॥ ३९ ॥ गोज्यमुत्सादनंदाहो
द्विषिधःसावसादनः । काटिन्यमार्दवकरेधूपनेलेपनेशुभे ॥ ४० ॥

व्रणावचूर्णनं व्रण्यलेपनं लोमरोपणम् । इति पट्त्रिंशद्द्विष्टाव्रणानां
समुपक्रमाः ॥ ४१ ॥

शोथ (सूजन) नाशक चिकित्सा, छः प्रकारका शस्त्रकर्म, अवपीडन, निर्वापण, संधान, स्वेदन, शमन, एपण (एपणीयंत्र द्वारा घावकी गहराई देखना), शोधन क्माय, रोपणकपाय, शोधनप्रलेपन, रोपणप्रलेपन, शोधनस्नेह, रोपणस्नेह, दो प्रकारके उपरोक्त गुणोंवाले पत्रप्रच्छादन, दो प्रकारके बंधन, भोज्यविधि, उत्सादन, दो प्रकारके दाह, भवसादन, काठिन्यकारक और मृदुताकारक, थूपन तथा लेपन, व्रणावचूर्णन व्रणोपयोगी लेपन और लोमरोपणं यह व्रणोंके छत्तीस प्रकारके उपक्रम (उपाय) कथन किये हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पूर्वरूपं भिषग्वुद्धाव्रणानां शोफमादितः । रक्तावसेचनं कुर्यादजा-
तव्रणशान्तये ॥ ४२ ॥ शोधयेद्बहुदोषांस्तु स्वल्पदोषान्विलङ्घयेत् ।
पूर्वकपायैः सर्पिर्भिर्जयेद्द्वामारुतोत्तरम् ॥ ४३ ॥

वैद्यको उचित है कि जब व्रणके उत्पन्न होनेसे पहिले सूजन प्रतीत होनेलगे तब ही व्रणशोथकी जगहका रक्तसाव करा देवे, जिससे अजातव्रण उत्पन्न न होने पावे । यदि रोगी बहुदोषयुक्त हो तो उसको बमन, विरेचन द्वारा शोधनकरे । अल्पदोषवाले रोगीके दोषोंको लंघन द्वारा शान्त करे । वातप्रधान व्रणको कपाय और घृत पिलाकर शान्त करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

शोथनाशक लेप ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलाः ।

ससर्पिष्कः प्रलेपः स्याच्छोफनिर्वापणं परम् ॥ ४४ ॥

बड, गुल्लड, पीपल, पिलखन और वेतसके बल्कलोंको पीसकर घृतयुक्त कर किंचित् गरम २ लेपन करनेसे सूजन दूर होतीहै ॥ ४४ ॥

विजयामधुकं वीराविसग्रन्थिः शतावरी ।

नीलोत्पलं नागपुष्पं प्रदेहः स्यात्सचन्दनः ॥ ४५ ॥

हरड, मुलैठी, काकोली, कमलकी जड, शतावर, नीलकमल, नागकेशर और लाल चंदन इनको पीसकर लेप करनेसे सूजन दूर होतीहै ॥ ४५ ॥

सक्तवोमधुकंसर्पिः प्रदेहः स्यात्सशर्करः ।

अविदाहीनिचान्नानि शोफेभेपजमुत्तमम् ॥ ४६ ॥

अथवा यवके सत्तू, मुलैठी, घी और खांडका लेप करनेसे सूजन दूर होतीहै

एवं अविदाही अन्नपानका सेवन करना भी शोथरोगको शान्त करनेवाली उत्तम औषधी है ॥ ४६ ॥

सचेदेवमुपक्रान्तःशोथोनप्रशमं व्रजेत् ।

तस्योपनाहैःपक्वस्यपाटनंहितमुच्यते ॥ ४७ ॥

जो इन उपरोक्त लेपोंसे शोथ (सूजन) शान्त न हो तो उसको पुलटिस बांधकर पकावे । पक्वानेपर शस्त्रद्वारा चीर डालना हितकारक कहा है ॥ ४७ ॥

तैलेनवासर्पिषावाताभ्यांवासक्तुपिण्डिका ।

सुखोष्णाशोफपाकार्थमुपनाहःप्रशस्यते ॥ ४८ ॥

वायुके व्रणमें तेलके साथ, पित्तके व्रणमें घृतके साथ, रक्तपित्तव्रणमें दोनोंके साथ यवके सत्तुओंकी पिण्डीसे बनाकर गरम करके व्रणशोषपर लगावे तो यह पक्वानेके लिये उत्तम उपनाह (पुलटिस) है ॥ ४८ ॥

सतिलासातसीबीजदध्यम्लासक्तुपिण्डिका ।

सकिण्वकुष्ठलवणाशस्तास्यादुपनाहने ॥ ४९ ॥

तिल, अलसी, दही, कांजी, यवके सत्तु सुराबीज, कुठ और नमक इन सबका कल्क बना गर्मकर लेपकरनेसे शोथ पक्कर फूटजाता है ॥ ४९ ॥

दग्ध और पक्व शोथकेल० ।

रुग्दाहरागतोदैश्वविदग्धंशोफमादिशेत् । जलवस्तसमस्पर्शसंपकं
पिण्डितोन्नतम् ॥ ५० ॥ उमाथोगुग्गुलुःसौधंपयोदक्षकपोतयोः ।

विट्पलाशभवःक्षारोहेमक्षीरीमकूलकः ॥ ५१ ॥ इत्युक्तोभेपजग-

णःपक्वशोथप्रभेदनः। सुकुमारस्यकृच्छ्रस्यशस्त्रन्तुपरमुच्यते॥५२॥

जिस सूजनमें पीडा, दाह, ललाई और तोद हो उसको विदग्ध सूजन कहते, हैं जिस सूजनमें छूनेसे पानीसे भरी मसकके समान प्रतीत हो और गोल तथा उन्नत हो उसको पक्व सूजन कहते हैं पकी हुई सूजनको फोडनेके लिये गुग्गुलु, थोहरका दूध अथवा चूना, मुर्गा और कबूतरकी बीट, विडनमक, ढाकका क्षार, सत्यानासी की जड़ और दंती इन सबको रगडकर लेप करे तो यह गण सब प्रकारकी पकी-हुई सूजनको भेदन कर देता है यदि सूजन कोमल और कष्टसाध्य प्रतीत होतीहो अर्थात् लेपोंद्वारा न फूटसकती हो तो शस्त्र कर्मका प्रयोग करे ॥५०॥५१॥५२॥

६ प्रकारके शस्त्रकर्म ।

पाटनं व्यधनञ्चैव छेदनं लेखनं तथा ।

प्रोच्छनं सीवनञ्चैव पड् विधं शस्त्रकर्मतत् ॥ ५३ ॥

बह शस्त्रकर्म पाटनं, व्यधन, छेदन, लेपन, पठन और सीवन यह छः प्रकारके होते हैं ॥ ५३ ॥

पाटनयोग्य सूजन ।

नाडीव्रणाःपक्वशोथास्तथाक्षतगुदोदरम् ।

अन्तःशल्यश्रयेशोफाःपाठ्यास्तेतद्विधाश्रये ॥ ५४ ॥

नाडीव्रण, पक्वशोथ, क्षतज, गुदोदर, अन्तःशल्य (जिसके भीतर किसी प्रकारका कांटा आदि रहगयाहो) इतने प्रकारके शोथ शस्त्रद्वारा काटने योग्य हैं ॥ ५४ ॥

वेधनयोग्य रोग ।

दकोदराणिसंपक्वागुल्माथेयेचरक्तजाः ।

व्यध्याःशोणितरोगाश्चविसर्पपिडकादयः ॥ ५५ ॥

जलोदर, पकाहुआ गुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प और पिडिका आदिक व्यधन (भीतरसे छिद्रयुक्त सूचीद्वारा वेधनकर सूचीक भीतरके छिद्रद्वारा मवाद निकालदेना) करनेयोग्य हैं ॥ ५५ ॥

छेदनीय रोग ।

उद्धृत्तान्स्थूलपर्यन्तानुत्सन्नान्कठिनान्त्रणान् ।

अर्शःप्रभृत्यधीमांसंछेदनेनोपपादयेत् ॥ ५६ ॥

उद्धृत, स्थूलपर्यन्त उठाहुआ, कठोर व्रण तथा सब प्रकारके अर्श (मस्ते) तथा आधीमांस यह छेदन करने (काटने) के योग्य हैं ॥ ५६ ॥

लेखनीय रोग ।

किलासानिसकुष्ठानिलिखेह्येख्यानिबुद्धिमान् ॥ ५७ ॥

किलास और कुष्ठको बुद्धिमान् वैद्य संपूर्ण रूपसे लेखनकरे ॥ ५७ ॥

वातासृग्ग्रन्थिपिडकाःसकोठारक्तमण्डलाः ।

कुष्ठान्यभिहतश्चाङ्गंशोथांश्चप्रच्छयेद्विपक्व ॥ ५८ ॥

वातरक्त, ग्रंथी, पिडिका, कोठरोग, रक्तमण्डल, कुष्ठ, चोट लगकर हुई सूजन तथा अन्य सूजन इनको वैद्य पाछ (पछने) लगावे ॥ ५८ ॥

सीव्यंकुक्ष्युदराद्यन्तुगम्भीरंयद्विपाटितम् ।

इतिपञ्चविधमुद्दिष्टंशस्त्रकर्ममनीषिभिः ॥ ५९ ॥

कुक्षि और उदरमें जो गहरा उत्पाटन (फटना) होगयाहो तो उसको सीना चाहिये । इन छः प्रकारके शस्त्रकर्मोंको मुनियोंने कथन किया है ॥ ५९ ॥

सूक्ष्माननाःकोपवन्तोयेत्रणास्तान्प्रपीडयेत् ।

जिस व्रणका मुख छोटासा हो और भीतरसे पककर भराहुआ हो उसको पीडनकरे.
पीडनद्रव्य ।

कलायाश्चमसूराश्चगोधूमाःसहरेणवः ।

कल्कीकृताःप्रशस्थन्तेनिःस्नेहाव्रणपीडने ॥ ६० ॥

मटर, मसूर, गेहूं और हरेणुके कल्कको विना चिकनाईके व्रणके ऊपर लेपकरे तो वह सूखकर व्रणको पीडनकर मवाद बाहर निकाल देताहै ॥ ६० ॥

शाल्मलीत्वग्बलामूलंतथान्यग्रोधपल्लवाः । न्यगोधादिकमुद्दिष्टं

वलादिकमर्थापिवा ॥ ६१ ॥ आलेपनंनिर्वपणंतद्विधान्यैश्चसेचनम् ।

सर्पिषाशतधौतेनपयसामधुकाम्बुना ॥ ६२ ॥ निर्वापयेत्सुशीतेनर-

क्तपित्तोत्तरान्ब्रणान् ॥ ६३ ॥

सीमलकी छाल, बलाकी जड़, बडके पत्ते, न्यग्रोधादिगण अथवा बलादिगण वा इसी प्रकारके अन्य गणोंका लेपन अथवा सेचन करनेसे व्रणोंका मवाद बाहर निकल जाताहै और व्रण शुद्ध होजातेहैं । तथा सौवारके धोयेहुए घृतको अथवा दूध या मुलैठीके क्याथको रक्तपित्तोत्त्वण व्रणोंमें उपयोग करे तो व्रणोंकी शान्ति होती है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

लम्बानिब्रणमांसानिप्रलिप्यमधुसर्पिषा । संदधीतसमवैद्योवन्धनै-

श्रोपपादयेत् । तान्समान्सुस्थिताञ्ज्ञात्वाफलिनीलोध्रकट्फलैः ॥ ६४ ॥

समङ्गाधातकीयुक्तैश्चूर्णितैरवचूर्णयेत् । पञ्चवल्कलचूर्णैर्वाशुक्ति-

चूर्णसमायुतैः ॥ ६५ ॥ धातकीलोध्रचूर्णैर्वातथारोहन्तितेव्रणाः ६६

व्रणोंसे यदि मांस लटकपडे तो झहद और घृतका लेपकर उनको बरानर करके बांधदेवें व्रण, समान एकता और सुस्थिर हो तो भ्रियंगु, लोव, कायफल, समंगा, घावके फूल इनका बारीक चूर्णकर व्रणको घृतसे चुपडकर ऊपरसे यह चूर्ण घुरका देवे अथवा पंचवल्कल और सीपीका समान भाग सूक्ष्म चूर्ण घुरकावे या घावके फूल और पठानीलोधका चूर्ण कर व्रणोंपर घुरकावे तो व्रण शीघ्र भरकर अच्छे होजातेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अस्थिभग्नच्युतंसन्धिसंदधीतसमंपुनः । समेनसममङ्गेनकृतवान्ये-

नविचक्षणः । स्थिरैःकवलिकावन्यैःकुशिकाभिश्चसंस्थितम् । पट्टैः

प्रभूतसर्पिष्कैर्वर्ध्नीयादवलंसुखम् । अविदाहिभिरन्नैश्चपैष्टिकैस्तमु-
पाचरेत् । ग्लानिर्हि नहितातस्यसन्धिविश्लेषकारिका ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

यदि हड्डी टूटगई हो अथवा जोड़ खुलगया हो तो उसको विधिपूर्वक जोड़कर कवलिकानामक बंधनसे बांध देवे अथवा कुशाके पत्रोंको घृत लगा विना जोरसे धीरे २ लपेटकर ऊपरसे घीमें भिगोई कपडेकी पट्टी विधिपूर्वक बांधदेवे और इसको अविदाही अन्न और पिष्टक अन्न विधिपूर्वक सेवन करावे यदि रोगीको विदाही अन्न दिया जायगा तो उससे विदाह होकर अथवा किसी प्रकार ग्लानि उत्पन्न होनेसे उसकी संधिमें ढीलापन आजाता है इसलिये उसको विदाही और हानिकारक पदार्थ नहीं देना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

विच्युताभिहताङ्गानां विसर्पादीनुपद्रवान् । उपाचरेद्यथाकालं कालज्ञः स्वचिकित्सितात् ॥ ६९ ॥

अंग विच्युत होनेसे रोगीको विसर्प आदि होजाय तो कालको जाननेवाला वैद्य समयानुसार उन उपद्रवोंकी चिकित्सा करे ॥ ६९ ॥

शुष्कामहारुजःस्तब्धायैव्रणामारुतोत्तराः । स्वेद्याः सङ्करकल्पेन ते
स्युः कृसरपायसैः ॥ ७० ॥ ग्राम्यवैलाम्बुजानूपैर्वैशवारैश्च संस्कृतैः ।
उत्कारिकाभिरुष्णाभिः सुखी स्याद् व्रणितस्तदा ॥ ७१ ॥

जो व्रण सुखेहुये अत्यंत पीडायुक्त स्तब्ध और वातप्रधान हा उनको संकरस्वेद विधिसे खिचडी, खीर तथा औषधियोंसे संस्कार कियेहुए ग्राम्य, विलेशय, जठरार और अनूपचारी जवोंके मांसकी टिकिया बना स्वेदन करे तो व्रणवाले रोगीको सुख प्राप्त हो ॥ ७० ॥ ७१ ॥

सदाहवेदनावन्तोयेव्रणामारुतोत्तराः । थेपांतिलानुमाश्चैवभृष्टान्-
पयसिनिर्वृतान् ॥ ७२ ॥ तेनैवपयसापिष्ट्वाकुर्यादालेपनं भिषका-
बलागुडूचीमधुकंपृश्निपर्णीशतावरी ॥ ७३ ॥ जीवन्तीशर्करा-
राक्षीरंतैलमत्स्यवसाघृतम् । संसिद्धासमधूच्छिष्टाशूलघ्नीस्नेहश-
र्करा ॥ ७४ ॥

वातप्रधान दाहयुक्त और पीडायुक्त व्रणोंमें तिल, अलसी इनकी घीमें भून और दूधमें पकालेवे फिर उसी दूधमें पीसकर लेपन करे । अथवा खरेटी, गिलोप, मुलैठी, पृष्ठपर्णी, शतावर, जीवन्ती, खांड, दूध, तेल, मठलीकी चर्बी वी और मोम इन सबको पकाकर व्रणपर लेप करनेसे व्रणकी पीडा दूर होतीहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

द्विपञ्चमूलकथितेनाम्भसापयसाथवा ।

सर्पिषावासतैलेनकोष्णेनपरिषेचयेत् ॥ ७५ ॥

किञ्चित् गर्भ दशमूलका क्वाथ अथवा दशमूलसे सिद्ध किया दूध अथवा इनमें तेल या घृत मिलाकर ब्रणोका परिसेचन करे तो पीडा शान्त हो ॥ ७५ ॥

यवचूर्णसमधुकंसतैलंसहसर्पिषा ।

दद्यादालेपनंकोष्णंदाहशूलोपशान्तये ॥ ७६ ॥

यवोंका चूर्ण, मुलैठी और घृत इनका सुखोष्ण लेप करनेसे ब्रणकी पीडा और दाह शान्त होताहै ॥ ७६ ॥

उपनाहश्चकर्त्तव्यःसतिलोमद्रपायसः ।

रुग्दाहयोःप्रशमनोब्रणेष्वेपुविधिर्हितः ॥ ७७ ॥

दूधके साथ तिल और मूंगका कल्क करके उसका सुखोष्ण लेप करनेसे दाह और पीडा शान्त होतीहै ॥ ७७ ॥

एपणीय ब्रण ।

सूक्ष्माननावहुस्त्रावाःकोपवन्तश्चयेब्रणाः । नचमर्माश्रितास्तेपामे-

पणंहितमुच्यते ॥ ७८ ॥ द्विविधामेपणांविद्यान्मृद्दीश्वकठिनामपि ।

उद्भिदैर्मृदुभिर्नालैर्लोहानांवाशलाकया ॥ ७९ ॥ गम्भीरमांसगेदे-

शेषार्थैर्लोहशलाकया । एष्यंविद्याद्ब्रणंनालैर्विपरीतमतोभिपक् ८० ॥

जो ब्रण, सूक्ष्म, सुखवाला अनेक प्रकारके स्त्रावयुक्त और कोपयुक्त हो किन्तु वह मर्मस्थानमें न हो तो उसको एपणीयन्त्र (सलाई) द्वारा देखे कि वह कहाँ तक है अथवा उसमें सलाई डालना ही हित होताहै एपणीयन्त्र दो प्रकारका होताहै १ मृदु और २ कठिन इनमें उद्भिद नर्मनाल (दूधका डका) आदि मृदु और लोहेका कठिन एपणा सलाका यन्त्र होताहै जिस स्थानमें ब्रण गहरा हो और मांस बहुत हो वहाँपर लोहेकी सलाईका प्रवेश करना चाहिये । जिस स्थानमें मांस गहरा न हो उसमें मृदु सलाईका प्रवेश करे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

शोधनयोग्यब्रण ।

पूतिगन्धान्विवर्णाश्ववहस्त्रावान्महारुजः ।

ब्रणानशुद्धान्विज्ञायशोधनैःसमुपाचरेत् ॥ ८१ ॥

जिन ब्रणोंमें दुर्गंध विवर्णता, अधिक स्त्राव और अत्यंत पीडा हो तथा वह अशुद्ध हों तो उनको प्रथम शोधन करना चाहिये ॥ ८१ ॥

शोधनयोग ।

त्रिफलाखदिरोदावीन्यग्रोधादिर्वलाकुशः ।

निम्बकोलकपत्राणिकपायाःशोधनामताः ॥ ८२ ॥

त्रिफला, खैरसार, दारुहलदी, बडका छिलका, अतिवला, कुशाकी जड, नीमके पत्ते, बेरीके पत्ते इन सबका क्वाथ कर उस क्वाथते व्रणको शुद्ध करदेवे ॥ ८२ ॥

तिलकल्कःसलवणोद्वेहरिद्रेत्रिवृद्धृतम् ।

मधुकंनिम्बपत्राणिप्रलेपोव्रणशोधनः ॥ ८३ ॥

तिलका कल्क, संधानमक, हलदी, दारुहलदी, निसोथ, घृत, मुलैठी और नीमके पत्तोंका कल्क कर लेपन करनेसे व्रण शुद्ध होताहै ॥ ८३ ॥

रोपणीय व्रण ।

नातिरक्तोनातिपाण्डुर्नातिश्यावो नचातिरूक् ।

नचोत्सन्नो नचोत्सङ्गीशुद्धोरोप्यःपरंब्रणः ॥ ८४ ॥

जो व्रण अधिक लाल न हो और अधिक पीला न हो तथा अधिक कालाभी न हो, उसमें अत्यंत पीडा न होतीहो जो बहुत ऊंचा न हो, जिसमें क्लेदादि दोष न हों ऐसा शुद्ध व्रण रोपण करनेयोग्य है ॥ ८४ ॥

रोपणकर्ता द्रव्य ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकदम्बप्लक्षवेतसाः ।

करवीरार्ककुटजाःकपायारोपणाःस्मृताः ॥ ८५ ॥

चन्दनंपद्मकिञ्जल्कंदावीत्वङ्नीलमुत्पलम् ।

मेदांमूर्वासमङ्गाश्चयष्टधाह्वांब्रणरोपणम् ॥ ८६ ॥

बड, गूलर, पीपल, कदम्ब, पिलखन, वेतस (ब्यूत), कनेरकी छाल, आककी छाल, कुडाकी छाल इनका क्वाथ रोपणकारक होताहै । अथवा लालचन्दन, कमलकी केशर, दारुहलदी, नीलकमल, मेदा, मूर्वा, समंगा और मुलैठी यह सब व्रणके रोपणकरनेवाले हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

प्रपौण्डरीकंजीवन्तींगोजिह्वां धातर्कावलाम् ।

रोपणंसतिलंदद्यात्प्रलेपंसघृतंव्रणे ॥ ८७ ॥

प्रपौण्डरीक (पंड्यारा), जीवन्ती, जंगली गोभी (गोजिह्वा वूटी), धावेके फूल, बला और तिल इन सबका कल्क कर घृतयुक्त कर लेप करे तो व्रणोंका रोपण होय ॥ ८७ ॥

कम्पिहकंविडङ्गानिवत्सकंत्रिफलांवलाम् । पटोलांपिचुमर्दंश्वलोभ्रं
मुस्तंप्रियंगुकम् ॥ ८८ ॥ खदिरंधातकीसर्जमेलासगुरुचन्दने ।
पिट्टासाध्यंभवेत्तैलंतत्परंब्रणशोधनम् ॥ ८९ ॥

कमीला, वायविडंग, इंद्रजव, त्रिफला, बला, पटोलकी जड़, नीमके पत्ते, पठानी-
लोध, मोये, फूलप्रियंगु, खैरसार, धावेके फूल, राल, इलायची, अगर, लालचंदन
इन सबका कल्क और काय मिलाकर तेल सिद्ध करले यह तेल ब्रणोंका अत्यंत
रोपण और शोधन करनेवाला है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

प्रपौण्डरीकंमधुकंकाकोल्यौद्वेचचन्दने ।

सिद्धमेतैःसमैस्तैलंतर्पणंब्रणरोपणम् ॥ ९० ॥

प्रपौण्डरीक, मुलैठी, दोनों काकोली, लालचंदन इनके कल्क और कायसे सिद्ध
किया तैल तर्पण और ब्रणोंको रोपण करनेवाला है ॥ ९० ॥

दूर्वास्वरससिद्धंवातैलंकम्पिहकेनवा ।

दावीत्वचश्चकल्केनप्रधानंब्रणरोपणम् ॥ ९१ ॥

दूबके स्वरसमें अथवा कमीलेमें या दारुहल्दीकी छालके कल्कमें सिद्ध किया
तैल ब्रणोंको रोपण करनेमें प्रधान है ॥ ९१ ॥

येनैवविधिनातैलंघृतंतेनैवसाधयेत् ।

रक्तपित्तोत्तरंदृष्टारोपणीयंघृतंतया ॥ ९२ ॥

जिन २ द्रव्योंसे जिस प्रकार तैल सिद्ध किये जातेहैं उन्हीं द्रव्योंसे उसी प्रकार
घृतोंको साधन करना चाहिये । रक्तपित्तप्रधान ब्रणोंमें रोपणी औषधोंसे सिद्ध किये
घृतद्वारा ही रोपणी क्रिया करनी चाहिये ॥ ९२ ॥

कदम्बार्जुननिम्बानांपाटल्याःपिप्पलस्यच ।

ब्रणप्रच्छादनेविद्वान्पत्राण्यर्कस्यचादिशेत् ॥ ९३ ॥

कदम्ब, अर्जुन, नीम, पाटला, पीपल और आरुके पत्ते ब्रणोंपर बांधनेके लिये
हितकारी हैं ॥ ९३ ॥

राङ्गोऽथवादरश्चैवपट्टोत्रणाहितःस्मृतः ।

वन्धश्चद्विविधःशस्तोत्रणानांसव्यदक्षिणः ॥ ९४ ॥

सावर आदि नरम मृगोंके चर्म, रुईमें बना वस्त्र या ऊनमें बना वस्त्र अथवा
मृक्षकी छालसे बना वस्त्र लेकर उसकी पट्टी बांधना चाहिये । वह पट्टी प्रगके
बायें और दहिने दोनों ओर लपेटकर बांधना चाहिये ॥ ९४ ॥

व्रणमे पथ्याऽपथ्य ।

लवणाम्लकटूष्णानिविदाहीनिगुरूणिच ।

वर्जयेदन्नपानानिव्रणीमैथुनमेवच ॥ ९५ ॥

लवण, अम्ल, कटु और विदाही पदार्थ तथा भारी अन्नपान और मैथुन इन सब कर्मोंको व्रणरोगवाला मनुष्य त्याग देवे ॥ ९५ ॥

नातिशीतगुरुस्निग्धमविदाहियथाक्रमम् ।

अन्नपानंव्रणहितंहितश्चास्वपनंदिवा ॥ ९६ ॥

जो अत्यंत शीतल न हो, अत्यंत भारी न हो, अत्यंत स्निग्ध तथा विदाही न हो ऐसा अन्नपानका सेवन करना हित है । एवं दिनमें सोना भी व्रणरोगियोंके लिये अत्यंत अहित करता है ॥ ९६ ॥

स्तन्यानिजीवनीयानिवृंहणीयानियानिच ।

उत्सादनार्थनिम्नानां व्रणानां तानिकल्पयेत् ॥ ९७ ॥

जो व्रण निम्न (नीचेको गढेके समान) हों उनको उन्नत (भरकर बराबर) करनेके लिये स्तन्यवर्धकगणकी औषधियों, जीवनीय औषधियों और वृंहणीय द्रव्योंके प्रयोग (घृतादिके संयोगसे लेपन, कायसे प्रक्षालन और इन्हीसे सिद्ध घृतका पान) करे ॥ ९७ ॥

भूर्जग्रन्थिश्मकासीसमधोभागानिगुग्गुलुः ।

व्रणावसादनंतद्रत्कलविड्कपोतविट् ॥ ९८ ॥

भोजपत्रकी गाठ, पापाणभेद, हीराकलीस यह क्रमसे एक दूसरेसे आधा लेवे । एक भाग गूगल लेवे इन सबको मिलाकर लेपकरनेसे व्रण भर आताहै इसी प्रकार कलविक (मुर्गा या चिडा) की और कबूतर की बीटका लेप करनेसे भी यही गुण होताहै ॥ ९८ ॥

अग्निकर्मका निर्देश ।

रुधिरेऽतिप्रवृद्धेतुच्छिन्नेच्छेयेऽधिमांसके । कफग्रन्थिपुगण्डेषु वात-
स्तर्भानिलार्त्तिषु ॥ ९९ ॥ गूढपूयलसीकेपुगम्भीरेषु स्थिरेषु
च । क्लिन्नेषु चाद्गदेशेषु कर्मभिः संप्रशस्यते ॥ १०० ॥

छेदन योग्य अधिमांस (मस्ते) आदिके काग्नेपर यदि रुधिरकी अतिप्रवृत्ति होय तब उस स्थानको तथा कफग्रन्थि, गलगड, वातस्तम्भ, वातपीडा, गूढपूय, (जिसमें पीव, छिपी हुई हो) और गूढलसीकायुक्त व्रण, गंभीर, स्थिर और क्लिदित अंगदेशोंमें अग्निकर्म (दागना) श्रेष्ठ होनाहै ॥ ९९ ॥ १०० ॥

मधूच्छिष्टेनतैलेनमज्जाक्षौद्रवसाघृतैः । तसैर्वाविविधैर्लोहैर्दहेद्वा-
हविशेषवित् ॥ १०१ ॥ रूक्षाणांसुकुमाराणांगम्भीरान्मारुतोत्त-
रान् । दहेत्स्नेहैर्मधूच्छिष्टैर्लोहैःक्षौद्रैस्ततोन्वथा ॥ १०२ ॥

मोम, तेल, मज्जा, शहद, चर्बी, घृत अथवा लोहा आदि धातुओंको तपा कर व्रणको दग्ध करना चाहिये । विशेषरूपसे सब क्रियाको जाननेवाला वैद्य रूक्ष, नम्र और गंभीर तथा वातप्रधान व्रणोंको स्नेह और मोम द्वारा दग्ध करे । पित्तप्रधान व्रणको लोहद्वारा दग्ध करे । और कफप्रधानको शहदसे दग्ध करना चाहिये ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अग्निकर्मके अयोग्यमनुष्य ।

वालदुर्वलवृद्धानांगर्भिण्यारक्तपित्तिनाम् । तृष्णाज्वरपरीतानाम-
वलानांविषादिनाम् ॥ १०३ ॥ नाग्निकर्मोपदेष्टव्यंत्नायुमर्मव्रणेषुच ।
सविषेषुचशल्येषुनेत्रकुष्ठव्रणेषुच ॥ १०४ ॥

वालक, दुर्वल, वृद्ध, गर्भवती स्त्री, रक्तपित्त रोगी, तृषातुर, ज्वरवाला, क्षीण और विषाद्युक्त मनुष्योंके व्रणोंमें अग्निकर्म नहीं करना चाहिये । तथा स्नायुगत व्रण, मर्मगत व्रण, सविष व्रण, शल्ययुक्त व्रण और नेत्रव्रणमें तथा कौष्ठव्रणमें अग्निकर्म नहीं करना चाहिये ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

रोगदोषवलापेक्षीमात्राकालाग्निकोविदः ।

शस्त्रकर्माग्निकृत्येषुक्षारमप्यवचारयेत् ॥ १०५ ॥

रोग, दोष, बल, मात्रा, काल और अग्निकर्मको जाननेवाला वैद्य शस्त्रकर्म और अग्निकर्म साध्य व्रणोंमें क्षार (तेजाव आदि) के प्रयोग द्वारा भी दग्ध कर सकताहै ॥ १०५ ॥

कठिनत्वंव्रणायान्तिगन्धैःसारैश्चधूपिताः ।

सर्पिमज्जावसाधूपैःशैथिल्यंयान्निहिव्रणाः ॥ १०६ ॥

गंधद्रव्य और राल आदि वृक्षोंके सारोंकी धूनी देनेसे व्रण कठोर (सरत) होजाताहै । एवं घृत, मज्जा और वसा (चर्बी) की धूनी देनेसे व्रण शिथिल (नरम) पडजाताहै ॥ १०६ ॥

रुजःस्त्रावाश्चगन्धाश्चक्रिमयश्चव्रणाश्रिताः ।

शैथिल्यंमार्दवंवापिधूपनेनोपशाम्यति ॥ १०७ ॥

धूनी देनेसे व्रणकी पीडा, स्राव, दुर्गंध, कृमि, शिथिलता और मृदुता यह सब दूर होजातेहैं ॥ १०७ ॥

लोध्रन्यग्रोधशुङ्गानिखदिरंत्रिफलाघृतम् ।

प्रलेपोव्रणशैथिल्यंसौकुमार्यप्रबोधनः ॥ १०८ ॥

पठानी लोध, बडके अंकुर, कत्या, त्रिफला और घृत इनको मिला मिलाकर लेप करनेसे व्रणमें शिथिलता और नम्रता प्रकट होतीहै ॥ १०८ ॥

सरुजःकठिनाःस्तब्धानिरास्त्रावाश्रयेव्रणाः ।

यवचूर्णैःससर्पिष्कैर्वहुशस्तान्प्रलेपयेत् ॥ १०९ ॥

जो व्रण कठोर, स्तब्ध, पीडायुक्त और स्रावयुक्त हों उनपर बहुतसा घृत मिलाकर जवोंके उत्तम घूर्णका लेप करे ॥ १०९ ॥

मुद्गपट्टिकशालीनांपायसैर्वायथाक्रमम् ।

सघृतैर्जीवनीयैर्वार्तर्पयेत्तानभीक्षणशः ॥ ११० ॥

मूंग, साठी चावल, शालि चावल इनमेंसे किसी एकको या सबको दूधमें पकाकर लेप करनेसे अथवा जीवनीयगणकी औषधियोंको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे व्रणोंका तर्पण होताहै ॥ ११० ॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थलोध्रजाम्बवकट्फलैः ।

त्वचमाश्वेवगृह्णन्तिस्त्वक्चूर्णैश्चूर्णिताव्रणाः ॥ १११ ॥

अर्जुन वृक्षकी छाल, गूलरकी छाल तथा पीपल, लोध, जामन, कायफल इन सबकी छालका बारीक चूर्ण व्रणोंपर बुरकानेसे व्रण शीघ्र त्वचायुक्त होजातेहैं ॥ १११ ॥

मनःशिलैलामञ्जिष्णालाक्षाचरजनीद्वयम् ।

प्रलेपःसघृत्तक्षौद्रस्वग्विशुद्धिकरःपरः ॥ ११२ ॥

मनशिल, इलायची, मंजीठ, लाख, हलदी, दारुहलदी घृत और शहद इनको मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजातेहैं ॥ ११२ ॥

सफेद त्वचाको सर्वदेहसमकारक लेप ।

अयोरजःसकासीसंत्रिफलाकुसुमानिच ।

करोतिलेपःकृष्णत्वंसंयएवनवत्वचि ॥ ११३ ॥

लोहचूर्ण, हीराकसीस, त्रिफलाके फूल (या फल) इनका लेप करनेसे व्रण दूर होनेपर रहीहुई त्वचाकी सफेदी दूर होजातीहै ॥ ११३ ॥

कालीयकनताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमाः ।

लेपःसगोमयरसः सवर्णीकरणःपरः ॥ ११४ ॥

कालीयक (काली अगर), नत (तगर), आमकी गुठली, नागकेशर, कांति-
सार, लोहका चूर्ण इनको गोवरके रसमें घोटकर लेप करनेसे नई त्वचाकी सफेदी दूर
होकर सब त्वचाके समान वर्ण होजाताहै ॥ ११४ ॥

ध्यामकाश्वत्थनिचुलमूलंलाक्षासगौरिका ।

सहेमश्चामृतासंगाकासीसञ्चेतिवर्णकृत् ॥ ११५ ॥

रोहिपट्टण, पीपलवृक्षकी त्वचा, निचुल (हिंजल) की जड़, लाख, गेरु, नागके-
शर, हरड, सुरदासंग, हीराकशीश, इन सबको मिलाकर लेप करनेसे नई त्वचा सब
शरीरके वर्णकीसी होजातीहै ॥ ११५ ॥

व्रणोंकी त्वचापर बाल जमानेकी क्रिया ।

चतुष्पदानांत्वग्लोमखुरशृंगास्थिभस्मना ।

तैलाकाचूर्णिताभूमिर्भवेच्छोमवतीपुनः ॥ ११६ ॥

चतुष्पद जानवरोंकी त्वचा, लोम, खुर, साँग और हड्डीकी भस्म कर तेलमें मिला
व्रणकी त्वचापर लेप करनेसे बाल उत्पन्न होजातेहैं ॥ ११६ ॥

षोडशोपद्रवायेचव्रणानांपरिकीर्त्तिताः ।

तेपांचिकित्सानिर्दिष्टायथास्वेस्वेचिकित्सिते ॥ ११७ ॥

इस प्रकार व्रणोंके जो सोलह उपद्रव कहेगएये उनकी यथाक्रम अलग २ चिकि-
त्सा कीगई ॥ ११७ ॥

तत्रश्लोकौ ।

द्वौव्रणौव्रणभेदाश्चपरीक्षादुष्टिरेवच । स्थानानिगन्धाःस्त्रावश्चसो-

पसर्गाःक्रियाश्वयाः ॥ ११८ ॥ व्रणाधिकारेसप्रश्रमेतन्नवकमुक्तवा-

न् । मुनिर्व्याससमासाभ्यामग्निवेशायभीमते ॥ ११९ ॥

इति चरक०द्विव्रणीयचिकित्सितंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अध्यायके उपसंहारमें यह दो श्लोक हैं कि इस द्विव्रणीय चिकित्सिताध्यायमें
दो प्रकारके व्रण, व्रणोंके भेद, परीक्षा, दुष्टता, स्थान, गंध, स्त्राव, उपसर्ग और
चिकित्सायह सब भगवान् पुनर्वंमुजीने बुद्धिमान् अभिवेशके प्रति संक्षेप और विस्ता-
रसे विधिवत् वर्णन कियेहैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

इति धी ष० चि० स्थाने प्र० भा० टी० द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथात उन्मादचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम उन्मादचिकित्सितनामक अध्यापकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

बुद्धिस्मृतिज्ञानतपोनिवासःपुनर्वसुःप्राणभृतांशरण्यः । उन्मादहेत्वाकृतिभेषजानिकालेऽग्निवेशायप्रशंसपृष्टः ॥ १ ॥

बुद्धि, स्मृति, ज्ञान, और तपके निवासभूमि प्राणधारियोंको शरण्य भगवान् पुनर्वसुजी अग्निवेशके पूछनेपर उन्माद रोगके हेतु, लक्षण और चिकित्साका यथासमय वर्णन करनेलगे ॥ १ ॥

उन्मादके हेतु ।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानिप्रधर्षणंदेवगुरुद्विजानाम् । उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वोमनोऽभिघातेविपमाश्चचेष्टाः ॥ २ ॥

विरुद्ध, दूषित और अपवित्र भोजनका सेवन, देव, गुरु और ब्राह्मणोंका धर्षण (ताडन), अधिक भय या हर्षसे मनमें विकार होना और विपम चेष्टा यह सब उन्मादि रोगके कारण होतेहैं ॥ २ ॥

उन्मादकी संप्राप्ति ।

तैरल्पसत्त्वस्यमलाःप्रदुष्टाबुद्धेर्निवासंहृदयंप्रदूष्य ।

स्रोतांस्यधिष्ठायमनोवहानिप्रमोहयन्तीहनरस्यचेतः ॥३॥

इन कारणोंसे अल्पसत्त्व (कमजोर दिल) वाले मनुष्योंके वातादि दोष दुष्ट होकर बुद्धिके निवासस्थान दिमाग (मस्तिष्क) और हृदयको प्रदूषित कर मनोवाहक स्रोतोंमें स्थित हो मनुष्यके चित्तको प्रमोहित करदेतेहैं ॥ ३ ॥

उन्मादके सामान्य लक्षण ।

धीविभ्रमःसत्त्वपारिप्लवश्चपर्याकुलादृष्टिरधीरताच ।

अवच्छवाक्त्वंहृदयंचशून्यंसांमान्यमुन्मादगदस्यलिङ्गम् ॥ ४ ॥

बुद्धिका विभ्रम, चित्तमें चंचलता, अकुलाई हुई दृष्टि, अधीरता, अंतःसंत अस्वच्छ भाषण, हृदयमें शून्यता यह सब उन्मादरोगके सामान्य लक्षण हैं ॥ ४ ॥

समूढचेतानसुखंनदुःखंनानाचारधर्मोक्तएवशान्तिम् ।

विन्दत्यपास्तस्मृतिबुद्धिसंज्ञोभ्रमत्ययंचेतइतस्ततश्च ॥ ५ ॥

इस प्रकार उन्माद रोगसे मूढचित्त हुआ वह मनुष्य किसी प्रकारका सुख, दुःख, आचार, धर्मको नहीं जानता और न शांतिको प्राप्त होसकताहै वह बुद्धि, स्मृति और संज्ञारहित हुआ इधर उधर घूमता फिरता है ॥ ५ ॥

उन्मादकी निरुक्ति व भेद ।

समुद्भ्रमंबुद्धिमनःस्मृतीनामुन्मादमागन्तुनिजोत्थमाहुः ।

तस्योद्भ्रवंपञ्चविधस्यभूयोवक्ष्यामिलिङ्गानिचिकित्सितश्च ॥६॥

बुद्धि मन और स्मृतिके समुद्भ्रम (विगडकर उद्भ्रान्त) होनेको ही उन्माद कहतेहैं । वह उन्माद निज और आगंतु भेदोंसे दो प्रकारका है । इसकी पांच प्रकारसे उत्पत्ति है । अब उन पांच प्रकारके उन्मादरोगोंके लक्षण और चिकित्सा कहतेहैं ॥ ६ ॥

वातज उन्मादके हेतु ।

रूक्षाल्पशीतान्नाविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।

चिन्तादिजुष्टं हृदयंप्रदूष्यबुद्धिंस्मृतिंचाप्युपहन्तिशीघ्रम् ॥ ७ ॥

रूक्ष, अल्प और शीतल अन्नके सेवनसे, अधिक विरेचनसे, धातुओंके क्षयसे तथा उपवास करनेसे वायु अत्यंत बढ़कर चिन्तासे दुःखित हुए, हृदयको और भी दूषित करके मनुष्यकी बुद्धि और स्मृतिको शीघ्र नष्ट करदेताहै ॥ ७ ॥

वातज उन्मादके लक्षण ।

अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि । पारुष्यका-
र्यारुणवर्णताचजीर्णवलश्चानिलजस्यरूपम् ॥ ८ ॥

तब बिना कारण हँसना, मुसकराना, नाँचना, गानेलगजाना, बकना, हाथ पांवाँकी इधर उधर चलाना, रोना, देहमें कठोरता, कृशता, लाल वर्ण होना, और अन्नके परिपाक होजानेपर रोगकी अधिक वृद्धि होना यह सब लक्षण वातजनित उन्मादमें होतेहैं ॥ ८ ॥

पित्तोन्मादके हेतु ।

अजीर्णकट्फलविदाहशीतैर्भोज्यैश्चितंपित्तमुदीर्णवेगम् । उन्माद-
मत्युद्यमनात्मकस्यहृदिश्रितंपूर्ववदेवकुर्यात् ॥ ९ ॥

अजीर्णकारक भोजन करनेसे कटु, अम्ल, विदाही और उष्ण अन्नपानके सतन

संचितहुआ पित्त उदीर्ण हो वेगको धारण करताहै, तब अजितात्मा मनुष्यके हृदयमें आश्रित हो चित्तको विगाड देताहै, फिर बुद्धि और स्मृतिको नष्टकर उन्माद रोगको उत्पन्न करताहै ॥ ९ ॥

पित्तोन्मादके लक्षण ।

अमर्षसंरम्भविनम्रभावाःसन्तर्जनाभिद्रवणौष्णयोषाः । प्रच्छाय-
शीतान्नजलाभिलापःपीताचभाःपित्तकृतस्यलिङ्गम् ॥ १० ॥

क्रोध, घबडाहट, नंगा होजाना, संतर्जन(क्षिडकना) भागना, शरीरमें गरमी होना, रोष, छायाकी इच्छा और शीतल अन्नजलकी अभिलापा करना, नेत्रोंका और शरीरका वर्ण पीला होना यह पित्त उन्मादके लक्षण हैं ॥ १० ॥

कफोन्मादके हेतु ।

संपूरणैर्मन्दविचेष्टनैश्चसोष्माकफोर्मणिसम्प्रवृद्धः । बुद्धिस्मृति-
श्चाप्युपहृत्यचित्तप्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

अधिक भोजन करनेसे, शारीरक चेष्टा न करने (आलसी बना रहने) से, ऊष्माके साथ मिला कफ हृदयमें प्रविष्ट होकर बुद्धिको प्राप्त होताहै फिर बुद्धि और स्मृतिको नष्टकर चित्तको विगाडताहुआ उन्माद रोगको उत्पन्न करताहै ॥ ११ ॥

कफोन्मादके लक्षण ।

वाक्चेष्टितंमन्दमरोचकश्चनारीविविक्तप्रियतातिनिद्रा । छर्दिश्चला-
लाचवलश्चभुङ्क्तेनखादिशौक्ल्यश्चकफात्मकेस्यात् ॥ १२ ॥

वाणी और चेष्टाका मंद होना, अरुचि, स्त्रियोंसे प्रेम, एकांत वासकी इच्छा, अतिनिद्रा, वमन और लारका गिरना, भोजन करते ही रोग पहिलेसे अधिक बढ़जाना नख, नेत्र और मूत्र पुरीपादिकोंको श्वेत होना यह कफजनित उन्मादके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

सन्निपातज उन्माद ।

यःसन्निपातप्रभवोऽतिघोरःसर्वैःसमस्तैःसतुहेतुभिःस्यात् । सर्वा-
णिरूपाणिविभर्त्तितादृग्वरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

जो उन्माद सन्निपातसे उत्पन्न होताहै वह अतिघोर उन्माद तीनों दोषोंके कारणोंसे उत्पन्न होताहै, इसमें तीनों दोषोंके समान संपूर्ण लक्षण होतेहैं यह चिकित्सामें विरोधी होनेसे अचिकित्स्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ १३ ॥

जागतुंजोन्माद ।

देवर्षिगन्धर्वपिशाचयक्षरक्षःपितृणामभिधर्षणानि । आगन्तुहेतु-
नियमव्रतादिमिथ्याकृतंकर्मचपूर्वदेहे ॥ १४ ॥

देवता, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस और पितृगणोंके शापसे व्रतादिकोंमें विधिभंग होनेसे, अथवा व्रतादिकोंमें अनुचित व्यवहार करनेसे वा पूर्वजन्मके पापोंके फलसे आगंतु उन्माद होताहै ॥ १४ ॥

भूतोन्मादके लक्षण ।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्य्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानवलादिभिर्य्यः । उन्मा-
दकालोऽनियतश्चयस्यभूतोत्थमुन्मादसुदाहरेत्तम् ॥ १५ ॥

जिस उन्मादमें वाणी, पराक्रम, वीर्य, चेष्टा, ज्ञान, विज्ञान और बल यह सब अमानुषीय हों अर्थात् मनुष्यके समान न हों और इस उन्मादके वेग होनेका कोई नियत समय नहीं हो उसको भूतोन्माद (भूतावेशसे उत्पन्न हुआ) जानना ॥ १५ ॥

शरीरमें देवादिकोंका आवेश ।

अदूषयन्तःपुरुषस्यदेहदेवादयःस्वैश्रुगुणप्रभावैः । विशन्त्यदृश्या-
स्तरसायथैवच्छायात्पौदर्पणसूर्यकान्तौ ॥ १६ ॥

देवता आदि मनुष्योंके शरीरको वातादिदोषोंसे दूषित न करतेहुए अपने गुणोंके प्रभावसे अलक्षितरूप हो मनुष्योंके देहमें प्रवेश करते हैं जैसे सूर्यकान्त मणि और दर्पणमें सूर्यकी किरणें अपने गुणप्रभावसे शीघ्र प्रवेश करलेतीहैं उसी प्रकार देवता आदि भी अलक्षित हो, शरीरमें प्रवेश करलेते हैं ॥ १६ ॥

आयातकालोहिसपूर्वरूपःप्रोक्तोनिदानेऽस्यपरंसुरायैः । उन्माद-
रूपाणिपृथङ्निबोधकालश्चगम्यान्पुरुषांश्चतेषाम् ॥ १७ ॥

निदानस्थानमें देवताआदिकोंके प्रवेश होनेका काल और उन्मादरोगके पूर्वरूप कह आयेहैं अब सब प्रकारके उन्मादोंके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवणकरो तथा उन्मादोंका काल और देवताआदिकोंसे आविष्टहुए मनुष्योंके लक्षण श्रवण करो ॥ १७ ॥

देवोन्मादके लक्षण ।

तद्यथा—सौम्यदृष्टिगम्भीरमप्रधृष्यमकोपनमस्वप्नमभोजनाभि-
लापिणमल्पस्वेदमूत्रपुरीषवाचंशभगन्धंफुल्लपद्मवदनमितिदेवो-
न्मत्तंविद्यात् ॥ १८ ॥

वह इसप्रकार हैं. देवताकृत उन्मादमें मनुष्यकी सौम्य दृष्टि, गंभीरता, अनिन्दनीय, क्रोधरहित, निद्राहीन, भोजनकी इच्छा न होना, स्वेद, मूत्र और पुरीष इनका अल्प होना बहुत थोडा बोलना देहसे सुगंध आना, मुखका प्रफुल्लित कमलके समान होना यह लक्षण देवोन्माद युक्त मनुष्योंके होतेहैं ॥ १८ ॥

शापोन्मादके लक्षण ।

गुरुवृद्धसिद्धर्षीणामभिशपाभिचाराभिध्यानानुरूपाहारचेष्टाव्याहारतैरुन्मत्तंविद्यात् ॥ १९ ॥

गुरु, वृद्ध, सिद्ध और ऋषियोंके अभिचार अथवा शाप या अभिध्यानसे जो उन्माद उत्पन्न होताहै वह उन्ही (अभिचार, शाप, आदि) के अनुरूप आहार चेष्टा और व्यवहार द्वारा जानना चाहिये ॥ १९ ॥

पितृकृतोन्मादके लक्षण ।

अप्रसन्नदृष्टिमपश्यन्तंनिद्रालुंप्रतिहतवाचमनन्नाभिलापारोचकाविपाकपरीतंपितृभिरुन्मत्तंविद्यात् ॥ २० ॥

कलुषित दृष्टि होना, देखनेमें असमर्थता, अधिक निद्रा, वाणीका प्रतिहत होना, अन्नकी अभिलाषा न होना, अरोचक और अविपाक (अन्नका पाक न होना) यह सब लक्षण पितृगणके कोपसे उत्पन्नहुए उन्मादके होतेहैं ॥ २० ॥

गंधर्वाविष्टोन्मादके ल० ।

चण्डंसाहसिकंतीक्ष्णंगम्भीरमप्रधृष्यंमुखवाद्यनृत्यगीतान्नपानस्नानपानमाल्यधूपगन्धरक्तवस्त्रवलिकर्महास्यकथायोगप्रियंशुभगन्धमितिगन्धर्वोन्मत्तंविद्यात् ॥ २१ ॥

स्वभावका प्रचण्ड होना, साहस, स्वभावमें तीक्ष्णता, गंभीरता, अप्रधृष्य, मुखसे वाजे बजाना, नृत्यगीतादि प्रिय होना, अन्न पान और स्नानमें प्रेम होना माला, धूप और गन्धादिकोंमें स्नेह होना, लाल वस्त्र, ब्रलिकर्म और हास्य कथा आदिक प्रिय लगना, शरीरसे अति उत्तम गन्धका आना यह गन्धर्वाविष्ट उन्मादके लक्षण जानना ॥ २१ ॥

यक्षोन्मादके लक्षण ।

असकृत्स्वप्नरोदनहास्यंनृत्यगीतवाद्यकथान्नपानस्नानमाल्यधूपगन्धरतिरक्तविभुताक्षंद्विजातिवैद्यपरिवादिनंरहस्यभाषिणामितियक्षोन्मत्तंविद्यात् ॥ २२ ॥

वारम्बार सोना, रोदन करना और हँसना तथा नाचना, गाना, मुखसे वाजे वजाना, बकना और अन्नपान, स्नान, फूलमाला, धूप और गंधधारणमें इच्छा होना, नेत्रोंका अत्यंत लाल होना, ब्राह्मण और वैद्योंकी निन्दा करना, अपनी तथा अन्य पुरुषोंकी गुह्य बातोंका प्रकाश करना यह यक्षोन्मादयुक्तके लक्षण जानने ॥ २२ ॥

राक्षसोन्मादके लक्षण ।

नष्टनिद्रमन्नपानद्वेषिणमनाहारमप्रतिवलिर्नशस्त्रशोणितमांसरक्त-
माल्याभिलाषिणंसन्तर्जकमितिराक्षसोन्मत्तंविद्यात् ॥ २३ ॥

निद्रानाश, अन्नपानमें द्वेष, भोजन न करना, अत्यन्त बल होना तथा शस्त्र, रुधिर, मांस और लाल फूलोंकी मालाकी अभिलाषावाला होना, ताडन करनेवाला होना यह सब लक्षण राक्षसोन्मादसे उन्मत्त पुरुषके होतेहैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मराक्षसजनितोन्मादके ल० ।

प्रहासनृत्यप्रधानंदेवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभिष्टुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहर-
णैःकाष्ठादिभिरात्मपीडनेनचब्रह्मराक्षसोन्मत्तंविद्यात् ॥ २४ ॥

अत्यन्त हँसना, नाचना, तथा देवता, ब्राह्मण और वैद्योंसे द्वेष रखना, अवज्ञा-पूर्वक स्तुति, वेदमंत्र और शास्त्रोंके उदाहरण देना, अपनी देहको लकड़ी आदिसे पीडन करना यह सब ब्रह्मराक्षसजनित उन्मादरोगीके लक्षण हैं ॥ २४ ॥

पेशाचिक उन्मादके लक्षण ।

अस्वस्थचित्तंस्थानमलभमानंनृत्यगीतहासिनंवद्धावद्धप्रभाषिणं-
सङ्कटकूटमलिनरथ्याचेलतृणेष्वारोहणरतिसंभिन्नवर्णरूक्षस्वरंन-
श्रंविधावन्तंनैकत्रतिष्ठन्तंदुःखान्यावेदयन्तंनष्टस्मृतिपिशाचोन्मत्तं-
विद्यात् ॥ २५ ॥

चित्तका स्वास्थ्य न होना, किसी स्थानमें स्थिर होकर न बैठना, नाचना, गाना, हँसना, उचित और अनुचित अथवा संगत और असंगत बातोंको बकना, कष्टदायक स्थानोंमें, अथवा पर्वतादिकोंके शिखरपर वा मलिन मार्गमें, अथवा कुचैले वस्त्रोंके ढेरपर चलना, घासके ढेरपर चढ़ना और उन विकट स्थानोंमें बैठकर मुख मानना, वर्णका विगड़जाना, स्वरका रूक्ष होना, नंगा होजाना, इधर उधर भागते फिरना, एक स्थान पर नहीं ठहरना, दुःखोंको कहना, स्मरणशक्तिका नष्ट होना यह पिशाचा-वेशजनित उन्मादके लक्षण हैं ॥ २५ ॥

देवादिआवेशके समय ।

तत्रशौचाचारंतपःस्वाध्यायकोविदनंरप्रायःशुक्लप्रतिपदित्रयोदश्या-
ञ्चदेवार्धर्पयन्ति ॥ २६ ॥

शौच, आचार, तप और स्वाध्याययुक्त मनुष्यको प्रायः शुक्लपक्षकी
प्रतिपदा अथवा त्रयोदशीको छिद्र पाकर देवता अपना आवेश करतेहैं ॥ २६ ॥

स्नानशुचिविविक्तसेविनंधर्मशास्त्रश्रुतिकाव्यकुशलंप्रायःपष्ठीनव-
म्योर्ऋषयो धर्पयन्ति ॥ २७ ॥

जो मनुष्य नित्य स्नान, पवित्रता, एकांतवास करता है और धर्मशास्त्र, श्रुति,
काव्यके जाननेमें कुशल है, उस मनुष्यमें पष्ठी और नवमीके दिन छिद्र पाकर ऋषि-
योंका आवेश होताहै ॥ २७ ॥

मातृपितृगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्योपसेविनंप्रायोदशम्याममावस्यायाञ्च
पितरो धर्पयन्ति ॥ २८ ॥

जो मनुष्य माता, पिता, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्योंका सेवक होताहै उसके
शरीरमें प्रायः दशमी १० और अमावस्या ३० को समय पाकर पितृगण अपना
असर (आवेश) करतेहैं ॥ २८ ॥

गन्धर्वास्तुस्तुतिगीतवादित्ररतिपरदारगन्धमाल्यंप्रियंशौचाचारं
द्वादश्यांचतुर्दश्याञ्चधर्पयन्ति ॥ २९ ॥

जो मनुष्य स्तुतिपाठ, गाना, वजाना, आदिमें तत्पर हो अथवा पग्वलीगमन
करताहो या गंध, सुगन्धितमाला धारण कियेहुए हो, शौचाचारसे स्नेह रखताहो,
उसके शरीरमें द्वादशी १२ अथवा चतुर्दशीको १४ गन्धर्व समय पाकर आवेश
करतेहैं ॥ २९ ॥

सत्त्ववलरूपगर्वशौर्य्ययुक्तंमाल्यानुलेपनंहास्यप्रियमतिवाक्करणं-
प्रायःशुक्लैकादश्यांसप्तम्याञ्चयक्षाधर्पयन्ति ॥ ३० ॥

जो मनुष्य सत्त्व, बल, रूप, गर्व और शौर्य युक्त हो, माला और चन्दनादि-
लेपन धारण कियेहुए हो, हास्यप्रिय और अत्यन्त बोलनेवाला और सर्वेन्द्रिय संपन्न
हो उसके शरीरमें शुक्लपक्षकी एकादशी ११ अथवा सप्तमी ७ को छिद्र पाकर यक्ष
प्रवेश करतेहैं ॥ ३० ॥

स्वाध्यायतपोनियमोपवासव्रतचर्यादेवयतिगुरुपूजारतिभ्रष्टशौ-

चंद्राहाणमब्राह्मणंवाब्रह्मवादिनंशूरमानिनंदेवतागारसलिलक्रीड-
नरतिप्रायःशुक्लपञ्चम्यांपूर्णचन्द्रदर्शनेचब्रह्मराक्षसाधर्षयन्ति॥३१॥

जो मनुष्य स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, व्रतचर्या और देव, यति तथा गुरुकी पूजामें रत हो वह भ्रष्टशौच (अशुद्ध), ब्राह्मणनिन्दक, शूरवीरताका अभि-
मानी, देवस्थानमें जलक्रीडा करताहो तो उस मनुष्यके शरीरमें पंचमी ५ अथवा
पूर्णिमा १५ तिथिको छिद्र पाकर ब्रह्मराक्षस प्रवेश करतेहैं ॥ ३१ ॥

रक्षःपिशाचास्तुहीनसत्त्वपिशुनस्त्रीणलुब्धंप्रायोद्वितीयातृतीयाष्टमी-
पुपुरुषंछिद्रमवेक्ष्याभिधर्षयन्ति । इत्यपरिसंख्येयानांग्रहाणामा-
विष्कृततयाह्यष्टावेतेव्याख्याताः ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य हीनसत्त्व, पिशुन और स्त्रीलंपट तथा लोभी हो, उस मनुष्यके शरीरमें
द्वितीया, तृतीया, अथवा अष्टमीके दिन छिद्र पाकर राक्षस और पिशाच अपना
आवेश करतेहैं सब प्रकारके ग्रहोंमें यह आठ अत्यंत बलवान् होनेसे इनका वर्णन इस
स्थानमें कियागयाहै ॥ ३२ ॥

सर्वेष्वपितुखल्वेपुयोहस्ताबुध्यम्यरोपसंरम्भान्निःसंज्ञमन्येष्व्वात्म-
निवापातयेत्सह्यसाध्योज्ञेयस्तथायःसाश्रुनेत्रोमेदूप्रवृत्तरक्तःक्षतजि-
ह्वःप्रस्रुतनासिकश्छिद्यमानमर्माप्रतिहन्यमानपाणिःसततंविकृज-
न्दुर्वर्णस्तृपार्त्तःपूतिगन्धिश्चहिसार्थ्युन्मत्तोज्ञेयस्तंपरिवर्जयेत्॥३३॥

इन सप्त प्रकारके उन्मादग्रस्त रोगियोंमें जो उन्मादरोगी दोनों हाथोंको उठाकर
क्रोधसे भ्रुकुटियोंको चढाताहुआ, एकाएकी अचेत होकर स्वयं अपने अथवा अन्यके
शरीरपर दोनों हाथोंको पटक देवे और संज्ञारहित होजावे वह रोगी असाध्य जानना
जिस उन्मादरोगीके नेत्रोंसे आंसुओंका स्राव, शिश्रेन्द्रियसे रुधिरस्राव, होताहो और
जिह्वा फटकर घावयुक्त होगई हो, नासिकासे स्राव होता हो, हृदयमें छेदनक्रीती पीडा
होतीहो, चारंधार हाथोंको पटकताहो, निरन्तर कण्ठकूजन हो, शरीरका वर्ण विगड
जावे, प्याससे व्याकुल हो, और शरीरसे दुर्गन्ध आतीहो, जो हिंसा कलेंके लिये
उद्यत हो ऐसा उन्मादरोगी असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ ३३ ॥

रत्यर्चनकामोन्मादिनौतुभिपगभिचाराभिशापाभ्यांबुद्ध्वातदहो-
पहारवलिश्रमेणमन्त्रभैषज्यविधिनाउपक्रमेन ॥ ३४ ॥

जो उन्माद क्रीती स्त्रीके किये हुए अभिचार (जादूटोना) से उत्पन्न हुआ हो
वह उन्मादवाला रोगी रतिभिय होताहै, और क्रीपी इष्ट देवताके पूजनमें धार्तिकरूप

होनेसे जो उन्माद होताहै उसमें पूजन प्रियके लक्षण होतेहैं इसलिये वैद्य अभिज्ञाप और अभिचारसे उत्पन्न हुए इन दोनों प्रकारके उन्मादोंमें बलिदान, उपहार पूजन आदि तथा अभिमंत्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ ३४ ॥

तत्रद्वयोरपिनिजागन्तुनिमित्तयोरुन्मादयोःसमासविस्ताराभ्यांभे-
पजविधिंव्याख्यास्यामः ॥ ३५ ॥

अब हम उन निज और आगंतु निमित्तक उन्मादोंकी संक्षेप और विस्तारसे चिकित्साका वर्णन करते हैं ॥ ३५ ॥

उन्मादोंमें शोधनका निर्देश ।

उन्मादेवातजेपूर्वस्नेहपानंविशेषवित् । कुर्यादावृतमार्गतुसस्नेहं
मृदुशोधनम् ॥ ३६ ॥ कफपित्तभवेप्यादौवमनंसविरेचनम् । स्नि-
ग्धस्त्रिन्नस्यकर्त्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः ॥ ३७ ॥ निरूहणस्नेहव-
स्तीशिरसश्चविरेचनम् । ततःकुर्याद्यथादोषतेपांभूयस्त्वमाच-
रेत् ॥ ३८ ॥

वातजनित उन्मादमें प्रथम स्नेह पान कराना चाहिये. यदि उसमें छिद्र रुकेरहेतो मृदु शोधन करना हितकारी होताहै कफसे उत्पन्न हुए उन्मादमें स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर वमन कराना चाहिये पित्तसे उत्पन्न हुए उन्मादमें स्नेहन स्वेदन कराके विरेचन कराना चाहिये फिर विधिवत् पेयादि क्रमका प्रयोग करे उसके अनन्तर निरूहण वस्ति और शिरोविरेचन कराना हित है इसके अनन्तर यदि दोष शेष हो और शोधनकर्म योग्य हो तो फिर भी यथारुम वमनादिका प्रयोग करतारहे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

शोधनके गुण ।

हृदिन्द्रियशिरःकोष्ठेसंशुद्धेवमनादिभिः ।

मनःप्रसादमाप्नोतिस्मृतिसंज्ञाञ्चविन्दति ॥ ३९ ॥

वमन विरेचनादि द्वारा हृदय, इन्द्रिय, मस्तक और कोष्ठ शुद्ध होनेपर मन प्रसन्न होताहै और प्रसन्नता होनेसे स्मरण और संज्ञाज्ञानका संचार होने लगताहै ॥ ३९ ॥

स्मृतिकारक यत्न ।

शुद्धस्याचारविभ्रंशैतीक्ष्णनावनमजनम् ।

ताडनश्चमनोबुद्धिदेहसंतर्जनंहितम् ॥ ४० ॥

वमनादि द्वारा शुद्ध काय होनेपर भी यदि रोगी आचारविभ्रंश (वेहोशी, भ्रष्टता आदि) के लक्षण दिखावे तो उसको तीक्ष्ण नस्य अंजन और ताडना आदिका प्रयोग करे । ऐसे समय मन, बुद्धि और देहको तर्जन (ताडन) करनेवाले उपाय हितकारी होतेहैं ॥ ४० ॥

यःशक्तोविनयेत्पट्टैःसंयम्यसुदृढैःसुखैः । अपेतलोष्टकाष्ठाद्यैःसंरो-
ध्यश्चतमोगृहे ॥ ४१ ॥ तर्जनंत्रासनंदानंसान्त्वनंहर्षणंभयम् ।

विस्मयोविस्मृतेर्हेतोर्नयन्तिप्रकृतिमनः ॥ ४२ ॥

यदि रोगी बलवान् हो उसको दृढ नरम रेशमी रस्तीसे अथवा कपड़ेसे दृढ बांधकर जिस प्रकार उसके शरीरमें चोट आदि न लगे ऐसी रीतिसे बांधे और कंकड, लकड़ी आदिसे रहित अंधेरे घरमें बन्द करदेवे ऐसे रोगीको ताडना, त्रास देना, उसके इच्छित पदार्थ देना, शान्तिदायक वाक्योंसे समझाना, प्रसन्न करना, भय दिखाना और अनेक बातोंमें भुलाये रखना इन सब कर्मोंसे उस स्मृतिरहित मनुष्यमें फिर स्मरणशक्तिका प्रबोध होजाताहै और मन पहिलेके समान स्वस्य होजाताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमपानञ्चसर्पिपः । प्रयोक्तव्यमनोबुद्धिस्मृ-
तिसंज्ञाप्रबोधनम् ॥ ४३ ॥ सर्पिःपानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्रेण्य-
तेविधिः । अतःसिद्धतमान् योगाञ्छृणून्मादविनाशनान् ॥४४॥

औषधियोंका मलेप, उत्सादन, अभ्यंग, धूम्रपान और घृत पान इन सबके कर-
नेसे मन, बुद्धि, स्मृति और संज्ञा इनका प्रबोध होताहै । आगंतुज उन्मादमें मंत्रा-
दिकोंसे अभिमंत्रित कियेहुए और भूतनाशक औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए घृतोंका पान
कराना तथा मंत्रप्रयोग करना हितकारक होताहै । अब उन्मादनाशक सिद्ध (अनुभव
कियेहुए) योगोंको श्रवण करो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

उन्मादनाशक घृत ।

हिंगुसौवर्चलाद्योपैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।

चतुर्गुणेगवांसूत्रेसिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ४५ ॥

हींग, संचरनमक, पीपल, मिरच, सांठ यह प्रत्येक दो २ पल लेकर कल्क बनावे,
इनका कल्क और चारगुना जल मिलाकर एक आढक घृतको शुद्ध करें यह घृत
उन्मादरोगको दूर करताहै ॥ ४५ ॥

कल्याण घृत ।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वेलवालुकम् । स्थिरानन्तारजन्यौ-

द्वेशारिवेदप्रियंगुकम् ॥ ४६ ॥ नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडि-
मकेशरम् । तालीशपत्रं बृहतीमालत्याःकुसुमं नवम् ॥ ४७ ॥ विड-
ङ्गपृष्ठीपर्णीञ्चकुष्ठं चन्दनपद्मकौ । कल्कैः कर्पसमैरेतैर्विशत्यष्टाभि-
रेवच ॥ ४८ ॥ चतुर्गुणेजलेपक्त्वाघृतप्रस्थं विपाचयेत् । अपस्मारे
ज्वरेकासेश्वासेमन्देऽनलक्षये ॥ ४९ ॥ वातरोगेप्रतिश्यायेतृतीय-
कचतुर्थके । छर्द्यशोमूत्रकृच्छ्रेचविसर्पोपहतेपुचं ॥ ५० ॥ कण्डुपा-
ण्डामयोन्मादविपमेहगदेपुच । भूतोपहतचित्तानांगद्गदानामचे-
तसाम् ॥ ५१ ॥ शस्तंस्त्रीणाञ्चवन्धानां धन्यमायुर्वलप्रदम् । अ-
लक्ष्मीपापरक्षोभं सर्वग्रहविनाशनम् । कल्याणकमिदं सर्पिःश्रेष्ठं पुं-
सवनेपुच ॥ ५२ ॥

इन्द्रायण, हरड, बहेडा, आँवला, रेणुका, देवदारु, एलवालुक, शालपर्णी, हलदी,
दारुहलदी, दोनों शारिवा, फूलप्रियंगु, नील कमल, इलायची, मजीठ, दन्ती,
दाडिम, नागकेशर, तालीशपत्र, बड़ी कटेली, मालतीके नवीन फूल, बायविडंग,
पृष्ठीपर्णी, कूठ, चन्दन और पद्माक, इन २८ औषधियोंको एक एक कर्प
लेकर कल्क करे ४ चार प्रस्थ लेवे इन सबको मिलाकर अग्निपर पकावे घृत-
मात्र शेष रहनेपर छानकर पात्रमें भरलेवे । इस घृतके सेवनसे अपस्मार, ज्वर,
खांसी, श्वास, मन्दाग्नि, वातरोग, प्रतिश्याय, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर,
वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विपविकार, प्रमेह,
दूषीविप, भूतावेशसे उपहतचित्त, गद्गदभाषणरोग, शुकनाश और स्त्रियोंका वांस्त-
पन यह सब दूर होतेहैं यह घृत आयु और बलको बढ़ाताहै तथा अलक्ष्मी, पाप,
राक्षस और सब प्रकारके ग्रहोंको दूर करताहै यह कल्याण नामक घृत पुंसवन कर्ममें
भी परम श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

एभ्यएवस्थिरादीनिजलेपक्त्वाकविंशतिम् । रसेतस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृ-
ष्टिक्षीरचतुर्गुणे ॥ ५३ ॥ वीराद्विमापकाकोलीस्त्र (यं) गुप्तर्षभक-
र्द्धिभिः । मेदयाचसमैःकल्कैस्तस्यात्कल्याणकं महत् । बृंहणीयं
विशेषेणसन्निपातहरं परम् ॥ ५४ ॥

शाठपर्णीसे लेकर उपरोक्त (कल्याणघृत) की २१ इक्कीस औषधियों एक एक
कर्प लेकर दशगुने जलमें पकावे चतुर्याश शेष रहनेपर छानलेवे इस कायमें पहिले

ब्याईहुई गौका दूध चार ४ प्रस्थ, पुराना घृत एक १ प्रस्थ मिलावे और क्षीरकाकोली, उडद, राजमाप, काकोली, कौंचके बीजोंकी गिरि, ऋपभक, ऋद्धि और मेदा इन सब औषधियोंका कल्क मिलावे सबको विधिपूर्वक पकाकर घृत सिद्ध होनेपर छानलेवे इस घृतको महाकल्याणघृत कहतेहैं यह घृत शरीरको वृंहण करनेवाला और विशेषकर सन्निपातके उन्मादको नष्ट करनेवाला है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

महापैशाचिकघृत ।

जटिलांपूतनांकेशींचारटींमर्कटीं वचाम् । त्रायमाणांजयांवीरां-
चोरकंकटुरोहिणीम् ॥ ५५ ॥ कायस्थांशूकर्रीछत्रामतिच्छत्रां
पलंकपाम् । महापुरुपदन्ताश्ववयःस्थानाकुलीद्वयम् ॥ ५६ ॥
कटम्भरांवृश्चिकार्लींस्थिराश्चाहृत्यतैर्घृतम् । सिद्धंचातुर्थकोन्मा-
दग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ५७ ॥ महापैशाचिकं नामघृतमेतद्यथा-
मृतम् । बुद्धिस्मृतिकरश्चैववालानाश्चाङ्गवर्द्धनम् ॥ ५८ ॥

जटामांसी, हरड, भूतकेशी, भूमिआमलकी, कौंचके बीज, वच, त्रायमाण, हरी दूर्वा, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी, कुटकी, गिलोय, वाराहीकंद, छत्रा [धनियां] सौंफ, गूगल, शतावरी, वेहेडा, गन्धनाकुली, सफेद कटेरी, कटंभरा, वृश्चिक-पत्री, शालपर्णी इन सबका कल्क बनाकर चारगुना दूध मिला पुराने घृतको सिद्ध-करे यह घृत तत्काल फल दिखानेवाला है इससे चातुर्यिक ज्वर, उन्माद, ग्रह और अपस्मार यह सब नष्ट होतेहैं यह महापैशाचिक घृत अमृतके समान गुणकारी है बुद्धि और स्मृतिको बढ़ानेवाला है तथा बालकोंके भंगोंको बढ़ाताहै ॥ ५५-५८ ॥

लशुनादिघृत ।

लशुनानांशतंत्रिशदभयाज्यूपणात्पलम् । गवांचर्ममसीप्रस्थो
द्वयाढकंधीरमूत्रयोः ॥ ५९ ॥ पुराणसर्पिपःप्रस्थमोभिःसिद्धंप्रयो-
जयेत् । हिंसुचूर्णपलंशीतेदच्चाचमधुमाणिकाम् ॥ ६० ॥ तद्दो-
षागन्तुसम्भूतानुन्मादान्विषमज्वरान् । अपस्मारांश्चहन्त्याशुपा-
नाभ्यञ्जननावनैः ॥ ६१ ॥

लहसुन, नग १००, हरड ३०, मिर्च पीपल सोंठ यह सब मिलाकर १ पल गोदुग्ध १ आढक, गोमूत्र १ आढक, पुराना घृत १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर सिद्ध करे फिर इस घृतको टंडा करके इसमें भुनी और पिसीहुई रिंग एक पल और शहद आठ पट मिलावे इस घृतको पीने, मालिश करने और नस्यक्रममें प्रयोग करनेसे आगन्तु उन्माद, विषमज्वर और अपस्मार यह सब दूर होतेहैं ॥ ५९-६१ ॥

द्वितीयलक्षणादि घृत ।

लशुनस्याविनष्टस्यतुलार्द्धनिस्तुपीकृतम् । तदर्द्धदशमूलस्यद्वधा-
ढकेऽपांविपाचयेत् ॥ ६२ ॥ पादशेषेघृतप्रस्थंलशुनस्यरसंतथा ।
कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकैरसैः ॥ ६३ ॥ दाडिमांम्लसुरा-
मस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्द्धिकैः । साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदी-
प्यकैः ॥ ६४ ॥ यमानीचव्यहिङ्गवम्लवेतसैश्चपलार्द्धिकैः । सि-
द्धमेतत्पिवेच्छूलगुल्मार्शोजठरापहम् ॥ ६५ ॥ ब्रध्नपाण्ड्वामयस्त्री-
हयोनिदोषज्वरकिमीन् । वातश्लेष्मामयान्सर्वानुन्मादश्चाप-
कर्पति ॥ ६६ ॥

छिलकारहित उत्तम लहसुनके कंद ५० पचास पल, दशमूल २५ पल इन सबका दो आढक जलमें पकावे चतुर्याश शेष रहनेपर छान लेवे फिर इसमें घृत एक प्रस्थ, लहसुनका रस एक प्रस्थ, वेर मूली, नितिडीक, विजौरा, अदरक और अनारदानेका रस, सुरा, मस्तु, काँजी यह सब आधा २ प्रस्थ लेवे । हरडे, आँवले, बहेडे, दारु-हलदी, सेंधालवण, मिरच, पीपल, तौंठ, अजवायन, अजमोद, चव्य, हींग, बम्लवेत इन प्रत्येकको आधा २ पल लेवे, इन सबको विधिवत् मिलाकर घृत सिद्ध करे इस घृतके सेवनसे शूल, गुल्म, बवासीर, उदररोग, ब्रध्नरोग, पाण्डुरोग, प्रीहारोग, योनिदोष, ज्वर, क्रिमिरोग, वात, कफरोग तथा अन्य उन्माद आदि रोग सब दूर होतेहैं ॥ ६२-६६ ॥

अन्यादि घृत ।

हिं गुनाहिं गुपण्याचिसकायस्थावयःस्थया । सिद्धं सर्पिर्हितं तद्द्वयः-
स्थाहिं गुरोचकैः ॥ ६७ ॥ केवलं सिद्धमेभिर्वापुराणं पाययेदृतम् ।
पाययित्त्वोत्तमांमात्रांश्च भ्रेरुन्ध्याद्गृहेऽपिवा ॥ ६८ ॥

हींग, वेणुपत्री, आमला, हरडे इनके कल्कोंके साथ सिद्ध कियाहुआ पुराना घृत अथवा यमस्या, हींग और राजपलांडुमे सिद्ध कियाहुआ घृत उत्तममात्रा पिलाकर निर्वातक स्थानमें रखे यह दोनों घृत उन्माद रोगको दूर करनेवाले हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पुराने घृतके गुण ।

विशेषतः पुराणघृतं तं पाययेन्निपक् । त्रिदोषघ्नं पवित्रत्वाद्दिशोपा-
द्ब्रह्मोक्षणम् ॥ ६९ ॥ गुणकर्माधिकं स्थानादास्वादात्कटुतिक-

कम् । उग्रगन्धपुराणस्याद्दशवर्षस्थितं घृतम् ॥ ७० ॥ लाक्षारस-
निभं शीतं तद्धिसर्वग्रहापहम् । मेध्यं विरेचनेष्वभ्यं प्रपुराणमतः पर-
म् ॥ ७१ ॥ नासाध्यं नाम तस्यास्ति यत्स्याद्द्वर्षशतस्थितम् । दृष्टं
स्पृष्टमथाघ्रातं तद्धिसर्वग्रहापहम् । अपस्मारग्रहोन्मादवतांशस्तं
विशेषतः ॥ ७२ ॥

उन्माद रोगमें विशेषकर वैद्य पुराना घृत पिलावे । पुराना घृत त्रिदोषनाशक और पवित्र होनेसे विशेषकर ग्रहनाशक होता है । जो घृत बहुत दिनका पुराना होनेसे चर्परा, कडवा, उग्रगन्धयुक्त और दश वर्षका पुराना हो तथा लाखके समान लाल-वर्णका और शतिल होता है वह सब प्रकारके ग्रहोंको दूर करनेवाला है । दस वर्षसे भी अधिक पुराना घी मेधावर्धक, उत्तम विरेचनकारक, होता है दस वर्षसे अधिक घृत ही पुराना घृत कहा गया है । एक सौ वर्षसे पुराने घृतसे जो नष्ट न हो ऐसा कोई भी रोग नहीं विशेषकर अपस्मार और भूतोन्मादवाले रोगीको परम हितकारक है यह घृत देखनेसे स्पर्श करनेसे और सूंघने मात्रसे ही सब ग्रहोंको दूर कर देता है । अथवा ऐसे समक्षिये कि, आँखोंमें अंजन शरीरपर मालिश और नस्य कर्ममें प्रयोग करनेसे यह घृत सब ग्रहोंको दूर करता है ॥ ६९-७२ ॥

उन्मादनाशक नस्य और अञ्जन ।

एतैरौषधवर्गैर्वाविधेयत्वसंगच्छति । अञ्जनोन्मादनालेपान्नावना-
दींश्चयोजयेत् ॥ ७३ ॥ शिरीषोमधुकं हिं गुलशुनंतगरंवचाम् ।
कुष्ठञ्चवस्तमूत्रेणपिष्टं स्यान्नावनाञ्जनम् ॥ ७४ ॥

इन नीचे लिखी हुई औषधियोंसे अंजन, उत्सादन, आलेपन और नस्यकर्म करनेसे उन्मादरोग शान्त होजाता है । वे यह हैं जैसे शिरसके बीज, सुलेठी, हींग, लहसुनका रस, तगर, वच और कहुआ कूट, इन औषधियोंमेंसे किसी एक अथवा सबको बकरीके मूत्रमें घोटकर नस्य और अंजन करे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

तद्द्वयोपंहरिद्रेहेमजिष्ठाहिंसुसर्पपाः ।

शिरीषबीजञ्चोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ७५ ॥

इसीविधिते सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहरदी, आवा हरदी, मँजीठ, हींग, सफेद सरसों और शिरसके बीज इन सबके चूर्णको बकरीके मूत्रमें घोटकर अंजन और नस्य कर्ममें प्रयुक्त करनेसे उन्माद, ग्रह और अपस्मार रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ७५ ॥

पिष्ट्वा तुल्यमपामार्गं हिं गुलं हिं गुपत्रिकाम् । वर्त्तिः स्यान्मरिचार्द्धा-
शापित्ताभ्यां गोशृगालयोः ॥ ७६ ॥ तथा ज्ञयेदपस्मारभूतोन्माद-
ज्वरादितान् । भूतार्त्तानमरार्त्ताश्चनरार्त्ताश्चैव गोमये ॥ ७७ ॥
मरिचश्चातपेमासंसपित्तं स्थितमञ्जनम् । वैकृतंपश्यतः कार्यदोष-
भूतहतस्मृतेः ॥ ७८ ॥

अपामार्गके बीज, हिं गुल (सिंगरफ) हिं गुपत्री इन सबको समानभाग लेकर इन सबसे आधी काली मिर्च मिला गोवृत और शृगालके पित्तमें मिलाकर बत्ती बनावे इस बत्तीको आग लगाकर इसके नीचे कांसीके पात्र रस देवे । इस बत्तीके जलते समय इसमेंसे जो स्नेह उस पात्रमें टपके उस स्नेहका अंजन करनेसे अपस्मार, भूतोन्माद, विषमज्वर, भूतावेश, देवताओंका आवेश यह सब दूर होतेहैं अथवा काली-मिर्चको गोबरके रस और गीदडके पित्तमें मिलाकर एक महीना धूपमें रक्खे । फिर इसका अंजन करे तो भूतोन्मादसे हुई विकृत दृष्टि और उन्मादका स्मृतिभ्रंश यह दूर होतेहैं ॥ ७६-७८ ॥

सिद्धार्थकादि अगद ।

सिद्धार्थकोवचा हिं गुकरज्जे देवदारुच । मञ्जिष्ठात्रिफलाश्चेताकट-
भीत्वक्कटुत्रिकम् ॥ ७९ ॥ समांशानि प्रियंगुश्च शिरीषोरजनी-
द्वयम् । वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ ८० ॥ नस्यमा-
लेपनञ्चैव स्नानमुद्धर्तनं तथा । अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मी-
ज्वरापहः ॥ ८१ ॥ भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते । सर्पि-
रेतेन सिद्धं वासगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ ८२ ॥

सफेद सरसों, हींग, करंजुएके फल, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, श्वेता, कटभीकी छाल, त्रिकुटा, फूलप्रियंगु, शिरसकी छाल, हलदी और दारुहलदी इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसलेवे तो इसको अगद कहतेहैं इस अगदको पीनेमें, अंजनमें, लेपनमें, नस्यमें, स्नानमें तथा उद्धर्तनमें प्रयोग करनेसे अपस्मार, विषदोष, उन्माद, अलक्ष्मी और ज्वर यह सब नष्ट होतेहैं । इसके प्रभावे भूतादिकोंसे भय नहीं रहता । इसका अंजन कर राजद्वारमें जानेसे सिद्धि होतीहै, इन्हीं औषधियोंमें गोमूत्र डालकर सिद्ध कियाहुआ घृत भी उपरोक्त संपूर्ण गुणोंको करताहै ॥ ७९-८२ ॥

धूमवर्ती ।

प्रसेकेपीनसेगन्धैर्धूमवर्तिं कृतां पिवेत् । वैरेचनिकधूमोक्तैः श्वेता-

निक्रूरकर्मच ॥ ९८ ॥ सर्पिष्पानादितस्येहमृदुभैषज्यमाचरेत् ।
 पूजांवल्युपहारांश्चमन्त्राञ्जनविधींस्तथा ॥ ९९ ॥ शान्तिकर्मेष्टि-
 होमांश्चजप्यस्त्रस्त्ययनानिच । वेदोक्तान्नियमांश्चापिप्रायश्चित्तानि
 चाचरेत् ॥ १०० ॥

भूतादियोंके आवेशसे उत्पन्न हुए उन्मादमें और वातादिजनित निज उन्मादमें देश, अवस्था, सात्म्य, दोष, काल और बलाबल इन सबको जानकर चिकित्सा करना चाहिये । देवता, ऋषि, पितृगण और गंधर्वोंसे उत्पन्न हुए उन्मादमें बुद्धि-मात्र वैद्य तीक्ष्ण अंजन और ताडनादि क्रूर कर्म न करे । किंतु घृतपानादि मृदु औषधप्रयोग और पूजा, बलिदान, उपहार, मंत्र, पवित्र अंजन, शान्तिकर्म वैदविधिसे यज्ञ, होम, जप, स्वस्तिकर्म करे तथा वेदोक्त नियमोंका पालन करे और प्रायश्चित्तादि शुभ आचरण करे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

भूतानामधिपदेवमीश्वरंजगतःप्रभुम् ।

पूजयन्प्रयतो नित्यं जयत्युन्मादजं भयम् ॥ १०१ ॥

जो मनुष्य गण गणेशादि सहित भूतोंके पति, महेश, जगत्के स्वामी महादेवको नित्य यतचित्त हो पूजन करताहै वह उन्मादसे होनेवाले भयसे छूट जाताहै ॥ १०१ ॥

रुद्रस्यप्रमथानामगणालोकेचरन्तिये ।

तेषांपूजाञ्चकुर्वाणउन्मादेभ्योविमुच्यते ॥ १०२ ॥

महादेवजीके प्रमथ नामक गण जो संसारमें विचरतेहैं उनका पूजन करनेवाला मनुष्य भूतोन्माद रोगसे छूट जाताहै ॥ १०२ ॥

बलिभिर्मङ्गलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः । सत्याचारतपोज्ञानप्रदान-
 नियमव्रतैः ॥ १०३ ॥ देवगुह्यकविप्राणांगुरूणांपूजनेनच । आग-
 न्तुःप्रशमंयातिसिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा ॥ १०४ ॥

बलिदान, मंगलकर्म और होम करनेसे, पवित्र औषध और अगदके धारणसे, सत्य आचार, तप, ज्ञान, दान, नियम और व्रत करनेसे; देवता, गुह्यक, ब्राह्मण और गुरुजनोंके पूजनसे आगंतु उन्माद शांत होजातेहैं । तथा मित्रमंत्रों और औषधियोंसे भी शांत हो जातेहैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

यच्चोपदेक्ष्यतेकिञ्चिदपस्मारोचिकित्सिते ।

उन्मादेतच्चकर्त्तव्यंसामान्याद्धेतुदृष्ययोः ॥ १०५ ॥

अपस्मार रोग चिकित्सांमं जो विधि वर्णन करेंगे हेतु, द्रव्योंमें समानता होनेसे उन्मादरोगमें भी उस विधिका आचरण करना चाहिये ॥ १०५ ॥

पवित्रजनोंको उन्माद न होना ।

निवृत्तामिषमद्योयोहिताशीप्रयतःशुचिः ।

निजागन्तुभिरुन्मादैःसत्त्ववान्नसयुज्यते ॥ १०६ ॥

जो मनुष्य मांस मद्यका स्पर्श भी नहीं करते और पवित्र हित भोजन करते हैं तथा जितेन्द्रिय और पवित्र रहते हैं उनको निज या आगत उन्माद होता नहीं ॥ १०६ ॥

उन्मादमुक्तके लक्षण ।

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानांबुद्ध्यत्ममनसांतथा ।

धातूनांप्रकृतिस्थत्वंविगतोन्मादलक्षणम् ॥ १०७ ॥

इन्द्रिय, बुद्धि, आत्मा और मन इनकी प्रसन्नता होना और सब धातुओंका प्रकृतिस्थ होना यह उन्मादयुक्त होनेके लक्षण हैं ॥ १०७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

उन्मादानांसमुत्थानंलक्षणंसचिकित्सितम् ।

निजागन्तुनिमित्तानामुक्तवान्मिषगुत्तमः ॥ १०८ ॥

इति चरक० चि० उन्मादचिकित्सितं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इसे उन्मादचिकित्सित, अध्यायमें निज और आगत उन्मादाक कारण लक्षण और चिकित्साको वैद्यशिरोमणि आत्रेयजीने वर्णन किया ॥ १०८ ॥

इति श्रीचर० चिकित्सितस्थाने प्र० भा० टी० उन्मादचिकित्सित नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथातोऽपस्मारचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवान्नात्रेयः ॥

अब हम अपस्मार (मृगी) चिकित्सानामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

स्मृतेरपरगमंप्राहुरपस्मारंभिषग्विदः ।

तमःप्रवेशवीभत्सचेष्टंधीसत्त्वसंल्लवात् ॥ १ ॥

स्मरणशक्तिके नष्ट होनेको वैद्यक शास्त्रके जाननेवाले अपस्मार कहतेहैं । इसमें स्मृतिके नष्ट होनेसे बुद्धि और मन उपहत होकर मनुष्य अंधकारमें प्रवेश करताहै तब इसकी भयानक चेष्टा होजातीहै ॥ १ ॥

अपस्मारके कारण ।

विभ्रान्तबहुदोषाणामहिताशुचिभोजनाम् । रजस्तमोभ्यांविह-
तेसत्त्वेदोषावृतेहृदि ॥ २ ॥ चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभि-
स्तथा । मनस्यभ्याहतेनणामपस्मारःप्रवर्त्तते ॥ ३ ॥

जिनका चित्त विभ्रान्त हो, जिनके शरीरमें दोषोंकी अधिकता हो, जो अहित और अपवित्र भोजन करतेहों, जिनका सत्त्वगुण, रज और तमसे नष्ट हो गयाहो, जिनका हृदय दोषोंसे ढका जाय उन मनुष्योंको तथा चिन्ता, काम, भय, क्रोध, शोक, और उद्वेग आदिकोंसे मनुष्योंका मन अमिहत होकर अपस्मार (मृगी) रोगकी प्रवृत्ति होतीहै ॥ २ ॥ ३ ॥

अपस्मारके लक्षण ।

धमनीभिःश्रितादोषाहृदयंपीडयन्तिहि । सम्पीडयमानोव्यथते
मूढोभ्रान्तेनचेतसा ॥ ४ ॥ पश्यत्यसन्निरूपाणिपततिप्रस्फुरत्यपि
जिह्वाक्षिभ्रूखवह्नालोहस्तौपादौचविक्षिपन् । दोषवेगेचविगतेसु-
तवत्प्रतिबुध्यते ॥ ५ ॥

वातादिदोष, हृदयमूला, धमनियोंमें प्रवेश कर हृदयको पीडन करतेहैं तब यह पीडित हृदयवाला मनुष्य व्यथित होताहै और चित्तके विभ्रान्त होनेसे मूढ (बेहोश) होजाताहै । उस समय इसको असत् रूप दिखाई देंगे तथा बेहोश होकर पृथ्वीपर गिरपड़े, फडकने लगे इसके नेत्र और भ्रुकुटियों टेढ़ीसी होजायें, मुखसे लार गिर हायपांकोंको इधर उधर पटकें, दोषोंका वेग शान्त होनेपर आरोग्य मनुष्यके समान उठकर स्वस्य अवस्थामें होजाय । यह अपस्मार रोगके रूप हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अपस्मारके ४ भेद ।

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चवक्ष्यतेसचतुर्विधः ॥ ६ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे अपस्मार रोग चार प्रकारका कहै । अब उनके लक्षणोंको कहतेहैं ॥ ६ ॥

वातापस्मारके लक्षण ।

कम्पतेदशतेदन्तान्फेनोद्गामीश्वसित्यपि ।

परुषाणिचकृष्णानिपश्येद्रूपाणिचानिलात् ॥ ७ ॥

शरीरका कौपना, दाँतोंका विसना वा कटकटाना, मुखसे झाग गिरना, श्वास होना, तथा रोगीको कठोर और काले वर्णके रूप दिखाई देना । यह वातजनित अपस्मारके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

पित्तापस्मारके लक्षण ।

पीतफेनाङ्गवक्राक्षःपीतासृग्रूपदर्शनः ।

सतृष्णश्चानलव्यासलोकदर्शीचपैत्तिकः ॥ ८ ॥

पित्तके अपस्मारमे मुखसे पीले रंगकी झाग गिरना, अंग, मुख, और नेत्रोंका पीला होना रोगीको पीले और लाल रूपोंका दिखाई पडना, प्याससे व्याकुल होना और संपूर्ण जगत्मे अग्नि प्रज्वलित हुईसी दिखाई पडना यह लक्षण होतेहैं ॥ ८ ॥

कफके अपस्मारके लक्षण ।

शुक्लफेनाङ्गवक्राक्षःशीतहृष्टाङ्गजोगुरुः ।

पश्यञ्जुक्कानिरूपाणिश्लैष्मिकोमुच्यतेचिरात् ॥ ९ ॥

मुखसे सफेद झाग गिरना, अंग, मुख, नेत्र यह सफेद होना, सब अंगोंका शीतल रोमांचयुक्त और भारी होना, सफेद रूपोंका दिखाई देना तथा अपस्मारका वेग बहुत देरमें दूर होना यह कफजनित अपस्मारके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

सन्निपातके अपस्मारके लक्षण ।

सर्वैरेतैःसमस्तैस्तुलिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ।

अपस्मारःसचासाध्योयःक्षीणस्यानवश्रयः ॥ १० ॥

जिस अपस्मारमे तीनों दोषोंके लक्षण हो उसको सन्निपातजनित अपस्मार जानना । सन्निपातके सब लक्षणोंवाला अपस्मार तथा क्षीण मनुष्योंका एकदोषज अपस्मार भी असाध्य होताहै और बहुत दिनोंका पुराना अपस्मार भी असाध्य होजाताहै ॥ १० ॥

अपस्मारके वेगका समय ।

पक्षाद्वाद्वादशाहाद्वामासाद्वाकुपितामलाः । अपस्मारायकुर्वन्तिवे-
गंकिञ्चिदथान्तरम् ॥ ११ ॥

कुपितहुए वातादि दोष बारहवें दिन अथवा पंद्रहवें दिन या एक महीनेमें अपस्मार रोगके वेग (दौरा) को करतेहैं अथवा कभी इस नियममें अन्तर भी होजाताहै अर्थात् पुराना होनेपर या किसी अन्य कारणसे नित्य या आगे पीछे भी होने लगताहै ॥ ११ ॥

चिकित्साक्रम ।

तैरावृतानांहृत्स्रोतोमनसांसंप्रबोधनम् । तीक्ष्णैरादौभिषककुर्व्या-
त्कर्मभिर्वमनादिभिः ॥ १२ ॥ वातिकं वस्तिभूयिष्ठैःपित्तप्रायोविरे-
चनैः । श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारं समाचरेत् ॥ १३ ॥ सर्व-
तःसुविशुद्धस्यसम्यग्वाशिसितस्यच । अपस्मारविमोक्षार्थयोगा-
न्संशमनाञ्छृणु ॥ १४ ॥

अपस्मार रोगमें दोषोंसे आवृत हुए हृदय और मनको बहन करनेवाले स्रोतोंको स्वच्छ तथा मनको चैतन्य करनेके लिये वैद्य प्रथम तीक्ष्ण वमनादि द्वारा शोधन करावे । वातसे उत्पन्नहुए अपस्मारमें वस्तिकर्म द्वारा, पित्तसे उत्पन्न हुएमें विरेचन द्वारा, कफजनितमें वमन द्वारा, प्रायः शरीर शुद्ध करना चाहिये । इस प्रकार सर्वतः शुद्धकाय होनेपर रोगीको उत्तम दृढ वातों, द्वारा आश्वासन (दिलासा) देवे । फिर नीचे लिखी औषधियोंका प्रयोग करे उन अपस्मार नाशक संशमन योगोंको श्रवण करो ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

पञ्चगव्य घृत ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैःसमैर्घृतम् । सिद्धंपिवेदपस्मारकाम-
लाज्वरनाशनम् ॥ १५ ॥

गोवरका रस, दही, दूध, गोमूत्र और गोघृत इन पाँचोंको समभाग लेकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर छानकर रखलेवे । इस घृतके पीनेसे अपस्मार (मृगी) रोग, कामला और ज्वर नष्ट होतेहैं ॥ १५ ॥

महापञ्चगव्य घृत ।

द्वेषमूलेत्रिफलारजन्यौकुटजत्वचम् । सप्तपर्णमपामार्गनीलिनी-
कटुरोहिणीम् ॥ १६ ॥ सम्पाकंफल्गुमूलञ्चपौष्करंसदुरालभम् ।
द्विपलानिजलद्रोणेपक्वापादावशेषिते ॥ १७ ॥ भार्गीपाठांत्रिकटु-
कांत्रिवृतांनिचुलानिच । श्रेयसीमाढकींमूर्वादन्तींभूनिम्बचित्र-
कौ ॥ १८ ॥ देशारिवेरोहियञ्चभूतीकंमदयन्तिकाम् । क्षिपेत्पिष्ट्वा-

क्षमात्राणितेनप्रस्थंघृतात्पचेत् ॥ १९ ॥ गोशकृद्रसदध्यम्लक्षी-
रमृत्रैश्चतत्समैः । पञ्चगव्यमितिरुष्यातंमहत्तदमृतोपमम् ॥ २० ॥
अपस्मारेतथोन्मादेश्वयथाबुदरेषुच । गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषुकाम-
लासुभगन्दरे । अलक्ष्मीग्रहरोगघ्नंचातुर्थिकविनाशनम् ॥ २१ ॥

लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, कुडाकी छाल, सतपर्ण
(सतौना) की छाल, अपामार्ग, नीलिनी, कुटकी, अमलतासका गृदा, कटूमर
पोहकरमूल और जवासा इन सबको दो २ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे चतु,
थाँश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर इसमें भारंगी, पाठ, त्रिकुटा, निशोय,
निचुल (वेतस), गजपीपल, आढकी (अरहर), मूर्वा, दंती, चिरायता, चित्रक,
दोनों शारिवा, रोहिपतृण, अजवायन और मल्लिका इन सबका एक २ अक्ष (२
तोले) लेकर बारीक पीसकर मिलावे । घृत एक प्रस्थ, गोबरका रस एक प्रस्थ, गोमूत्र
१ प्रस्थ, दही १ प्रस्थ, दूध एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे जब सब पानी
आदि जलकर घृत मात्र शेष रहे तो इसको छानकर पात्रमें भरलेवे । यह महापञ्च
गव्य नामक घृत अमृतके समान गुणकारी है । इसके सेवनसे अपस्मार (मृगी),
उन्माद, सृजन, उदररोग, गुल्मरोग, बवासीर, पाण्डु, कामला, भगंदर, अलक्ष्मी, ग्रह
दोष और चौथैया ज्वर यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १६-२१ ॥

अन्य घृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेवच । पुराणंघृतमुन्मादालक्ष्म्य-
पस्मारपाप्मजित् ॥ २२ ॥

ब्राह्मीका स्वरस, वच, कूठ और शंखपुष्पीसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करनेसे
उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप दूर होतेहैं ॥ २२ ॥

घृतंसैन्धवाहिंगुभ्यांवापेवास्तेचतुर्गुणे । सूत्रेसिद्धमपस्मारहृद्ब्रहा-
मयनाशम् ॥ २३ ॥

संधानमक और हाँगका कल्क १ पाव, घृत एक सेर, बैल और बकरेका मूत्र
४ सेर इन सबको मिलाकर सिद्धकिया हुआ घृत अपस्मार, हृदयविकार और
ग्रहदोषको दूर करताहै ॥ २३ ॥

वचासम्पाककैटव्यवयःस्थाहिंगुरोचकैः । सिद्धंपलङ्कपायुकैर्वात-
श्लेष्मात्मकेघृतम् ॥ २४ ॥

वच, अमलताप्त, कायफल, वहेला, हींग, राजपलाण्डु और गुग्गुलु इनके कल्कसे सिद्ध कियेहुए घृतको सेवन करनेसे वातापस्मार और कफापस्मार दूर होतेहैं ॥२४॥

तैलप्रस्थंघृतप्रस्थंजीवनीयैःपलोन्मितैः । क्षीरद्रोणेपचैत्सिद्धमप-
स्मारविनाशनम् ॥ २५ ॥

पुराना घृत १ प्रस्थ, जीवनीयगणकी सब औषधियें एक एक पल, दूध १ द्रोण इन सबको मिलाकर पकावे । स्नेह (घृत, तेल) मात्र शेष रहनेपर छानकर पात्रमें भरलेवे । इस यमकस्नेहको पीने और मालिश करनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै ॥ २५ ॥

कंसेक्षीरेक्षुरसयोःकाश्मर्य्येऽष्टगुणेरसे । कार्पिकैर्जीवनीयैश्चघृत-
प्रस्थंविपाचयेत् ॥ २६ ॥ वातपित्तोद्भवंक्षिप्रमपस्मारंनियच्छति ।

तद्वत्काशविदारीक्षुकुशकाथशृतंघृतम् ॥ २७ ॥

दूध १ आढक, ईपका रस १ आढक, काश्मरी (कंभारी) का क्वाथ ८ प्रस्थ, जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधी एक एक कर्प इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे इस घृतके सेवनसे वातज अपस्मार और पित्तज अपस्मार शान्त होते हैं । अथवा किसी प्रकार कांसकी,जड, विदारीकंद, ईरकी जड, कुशाकी जड, इन सबको ज्वरूट कर क्वाथ बनाने । उस क्वाथसे और जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कसे सिद्धकिया घृत भी पूर्वोक्त गुणको करताहै ॥ २६ ॥२७॥

मधुकद्विपलेकल्लेद्रोणेचामलकीरसात् । तद्वत्सिद्धोघृतप्रस्थःपि-
त्तापस्मारभेषजम् ॥ २८ ॥

मुलेठी २ पल लेकर उसको वारीक पीसकर कल्क बनावे । आंवलेका रस १ द्रोण, पुराना घी १ प्रस्थ इन सबको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर सेवन किया-
जाय तो पित्तज अपस्मारको दूर करताहै ॥ २८ ॥

अभ्यङ्गःसार्पपतैलंघृतस्तभूत्रेचतुर्गुणे । सिद्धंस्याद्दोशकृन्मूत्रेक्षानो-
त्सादनमेवच ॥ २९ ॥

सरसोंका तेल १ भाग, बकरेका मूत्र ४ भाग इन दोनोंको मिलाकर पकावे । जत्र मूत्र जलकर तेलमात्र शेष रहे तो उसको छानकर टण्डा करलेवे । इस तैलकी मालिश कर गीके गोबरको उबटनेके समान मल गोमूत्रसे स्नान करडाले तो अपस्मार रोग दूर हो ॥ २९ ॥

कटभीनिम्बकद्वृङ्गमधु, शीमुत्वचारसे । सिद्धंमूत्रसंतैलमभ्यङ्गार्थं
प्रशस्यते ॥ ३० ॥

कटभी, नीमकी छाल, सोनापाठेकी छाल, मुलैठी, और सहजनेकी छाल इन सबका क्वाथ करके वह क्वाथ और गोमूत्र तथा समान भाग तेल इन सबको मिलाकर सिद्ध करे सिद्ध होनेपर इस तैलकी मालिश करे तो अपस्मार रोग दूर हो ॥ ३० ॥

पलङ्कषावचापथ्यावृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः । जटिलापूतनाकेशीनाकु-
लीहिङ्गुचोरकैः ॥ ३१ ॥ लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्चपक्षि-
णाम् । मांसाशिनायथालाभं वस्तमूत्रेचतुर्गुणे ॥ ३२ ॥ सिद्धम-
भ्यञ्जनंतैलमपस्मारविनाशनम् । एतैश्चैवौषधैःकार्यधूपनंसम्प्र-
लेपनम् ॥ ३३ ॥

पलंकपा (गूगुल या लाव) वच, हरड, वृश्चिकपत्री, आक, सफेद सरसों, पूतना हरड, जटामांसी, रासना, हींग, राजपलाण्डु, लहसन, अतिरसा, चित्रक, कूठ और मांसाहारी पक्षियोंकी विष्ठा और मूत्र जितना मिलसके, इन सबको लेकर तेल और तेलसे चारगुना बकरेका मूत्र मिला तेल सिद्धकरे इस तेलकी मालिश करनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै । इन्हीं औषधियोंकी धूप देनेसे अथवा लेप करनेसे भी अपस्मार दूर होताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पिप्पलीलवणंशिग्रुहिङ्गुहिङ्गुशिवाटिकाम् । काकोलींसर्षपान्काक-
नासाकैटय्यचन्दने ॥ ३४ ॥ शुनःस्कन्धास्थिनखरान्पर्शुकांश्चेति
पेपयेत् । वस्तमूत्रेणपुष्यर्क्षेप्रदेहःस्यात्सधूपनः ॥ ३५ ॥

पीपल, सेंधानमक, हींग, सहजना, वंशपत्री, काकोली, पीली सरसों, काकनासा, कायफल, लालचंदन, कुत्तेके कंघेकी हड्डी और नख तथा पतवाडेकी अस्थिको पुष्य-
नक्षत्रमें लाकर इन सबको बकरीके मूत्रमें पीस लेपकरने और धूनी देनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः । उत्सादनंमूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवा-
वसेचनम् ॥ ३६ ॥

काली तुलसी, हरड, कूठ, बालछड और चोरक इनको गोमूत्रमें रगडकर शरीर-
पर मले और गोमूत्रमें घोलकर सेचनकरे तो अपस्मार रोग दूर हो ॥ ३६ ॥

जलौकाशकृतातद्दह्ग्धैर्वावस्तलोमभिः । खरास्थिभिर्हस्तिनखै-
स्तथागोपुच्छलोमभिः ॥ ३७ ॥

जलौकाकी विष्ठाका लेप अथवा बकरेके वालोंकी भस्म, गधेकी हड्डी, हार्यके नख तथा गोपुच्छके बाल इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अपस्मार दूर होताहै ॥ ३७ ॥

कपिलानांगवांसूत्रनावनंपरसंहितम् । श्वश्रृगालविडालानांसिंहा-
दीनाञ्चशस्यते ॥ ३८ ॥

कपिला गौके मूत्रकी नस्य लेना अपस्मार रोगमें परम हितकारी है तथा कुत्ते, गीदड़, बिल्ली और सिंह आदिके मूत्रोंकी नस्य लेना भी गुणकारी है ॥ ३८ ॥

भांर्गीवचानागदन्तीश्वेताश्वेताविषाणिका । ज्योतिष्मतीनागद-
न्तीपादोत्थामूत्रपेषिताः ॥ ३९ ॥ योगास्त्रयोऽतःषड्विन्दून्पञ्चवा
नावयेद्भिषक् ॥ ४० ॥

१ भारंगी, वच और नागदन्ती; २ श्वेत अपराजिता, सेफद दूब और मेढासिंगी, ३ मालकांशुनी और नागदन्ती; इन तीनों योगोंमेंसे किसी एकको गोमूत्रमें पीसकर अपस्मार रोगीके नाकमें पांच या छः बूंद टपकावे तो अपस्मारका वेग दूर हो ॥ ३९ ॥ ४० ॥

त्रिफलाव्योपपीतद्रुयवक्षारफणिज्झकैः । त्र्यामापामार्गकारञ्जफ-
लैर्मूत्रेऽथवस्तजे । साधितंनावनंतैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ४१ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, दारुहलदी, जवात्वार, फणिज्झक, तुलसी, फूलप्रियंगु, पुठ-
कण्डेके बीज, करंजुफके फल इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर सिद्ध किये तैलकी नस्य देनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै ॥ ४१ ॥

पिप्पलीवृश्चिकालीचकुष्ठञ्चलवणानिच । भांर्गीचचूर्णितंनस्तःका-
र्यप्रधमनंपरम् ॥ ४२ ॥

पीपल, वृश्चिकपत्री, कूठ, सेंधानमक इन सबका बारीक चूर्णकर नस्य (सूंघनी
लेवे तो अपस्मारका वेग (मूर्छा) दूर हो ॥ ४२ ॥

कायस्थाञ्छारदान्मुद्गान्मुस्तोशीरयवांस्तथा । सव्योपान्वस्तमू-
त्रेणपिष्ट्वावर्त्तीःप्रकल्पयेत् ॥ ४३ ॥ अपस्मारेतथोन्मादेसर्पदष्टेतथा-
र्दिते । विपपीतेजलमृतेचैताःस्युरमृतोपमाः ॥ ४४ ॥

काली तुलसी, मुद्गपर्णा (वा शरद् ऋतुके मूंग) नागरमोथा और त्रिकुटा इन
सबको बकरेके मूत्रमें रगडकर छोटी २ वत्तियें बनालेवे । इस बत्तीको नेत्रोंमें अंजन

करनेसे अपस्मार उन्माद, सापका विष अर्दित रोग, विषविकार और जलमें
दूबनेसे उत्पन्नहुई बेहोशी यह सब दूर होतेहैं । यह वत्ती अमृतके समान गुण-
कारी है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

मुस्तं वयःस्थां त्रिफलां कायस्थां हिं गुशाद्वलम् । व्योषं माषान्यवान्मू-
त्रैर्वस्तमेपर्पभैस्त्रिभिः ॥ ४५ ॥ पिष्ट्वा कृत्वा च तां वर्त्तिमपस्मारे प्र-
योजयेत् । किलासेपुतथोन्मादेज्वरेपुविषमेपुच ॥ ४६ ॥

नागरमोया, गिलोय, त्रिफला, काली तुलसी, हींग, दूब, त्रिकुटा, उड़द और
यव इनको बकरे, भेडे तथा बैलके मूत्रमें पीसकर वत्ती बनावे । इस वत्तीका अंजन
करनेसे अपस्मार, किलास, उन्माद और विषमज्वर यह दूर होतेहैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

पुष्योद्धृतशुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम् ।

तदेव सर्पिषायुक्तं धूपनं परमं मतम् ॥ ४७ ॥

पुष्य नक्षत्रमें निकालाहुआ कुत्तेका पित्ता नेत्रोंमें आंजनेसे अपस्मार दूर
होताहै । अथवा इस पित्तेको घृत्में मिलाकर धूप देनेसे अपस्मार अवश्य दूर
होताहै ॥ ४७ ॥

नकुलो लूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।

तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्विषक् ॥ ४८ ॥

नेवला, उल्लू, विला, गीघ, कीटाही तथा कौबेकी चोंच, पंख और घीटकी घूनी
दोनोंसे अपस्मारकी मूर्च्छा दूर होतीहै ॥ ४८ ॥

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिर्हृदयं संप्रचुध्यते ।

स्रोतांसि चापिशुध्यन्ति ततः संज्ञांसि विन्दति ॥ ४९ ॥

इन उपरोक्त सिद्ध क्रियाओंके करनेसे हृदयमें चेतन्यता और स्रोतोंकी शुद्धि
होकर बेहोशी दूर होतीहै ॥ ४९ ॥

यस्यानुबन्धन्त्वागन्तुर्दोषलिङ्गाधिकाकृतिम् ।

पश्येत्तस्त्रभिषक् कुर्यादागन्तुन्मादभेषजम् ॥ ५० ॥

जिम अपस्माग्वात्रे रोगीमें आगन्तु अनुबंधके लक्षण (आकार) दिखाई देवे
उमर्नी आगन्तु उन्मादके समान चिन्तिता घग्ना चाहिये ॥ ५० ॥

महागद्गर वर्णन ।

अनन्तरमुवाचेदमग्निवेशः कृताञ्जलिः । भगवन् । प्रांससन्दिष्ट-

श्लोकस्थानेमहागदः ॥ ५१ ॥ अतस्त्वाभिनिवेशश्चतस्यव्यक्तिरि-
होच्यताम् । शुश्रूषवेवचःश्रुत्वाशिष्यायाहपुनर्वसुः । महागदं
सौम्य ! शृणुसहेत्वाकृतिभेषजम् ॥ ५२ ॥

इसके अनन्तर अग्निवेश हाथ जोड़कर पृथले लगे कि हे भगवन् ! पहिले आपने
सूत्रस्थानमें महागदका कथन किया है । वह महागद मनसे संबंध रखनेवाला अर्थात्
ज्ञानके नष्ट होनेसे मनोमय विकारको महागद, कहाहै सो उसके विषयमें कृपाकर
स्पष्ट रूपसे वर्णन कीजिये । यह सुनकर भगवान् पुनर्वसुजी सुननेकी इच्छावाले अपने
शिष्य अग्निवेशसे कहनेलगे कि हे सौम्य ! महागदके हेतु, लक्षण और चिकित्साको
श्रवण करो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मलिनाहारशीलस्यवेगान्प्रासान्निगृह्यतः । शीतोष्णस्निग्धरूक्षा-
द्यैर्हेतुभिश्चातिसेवितैः ॥ ५३ ॥ हृदयंसमुपाश्रित्यमनोबुद्धिवहाः
शिराः । दोषाःसंदूष्यतिष्ठन्तिरजोमोहावृतात्मनः ॥ ५४ ॥ रज-
स्तमोभ्यांवृद्धाभ्यांबुद्धौमनसिचावृते । हृदयेव्याकुलेदोषैरथमू-
ढोऽल्पचेतनः ॥ ५५ ॥ करोतिविषमांबुद्धिर्नित्यानित्येहिताहितौ
अतस्त्वाभिनिवेशं तमाहुरासामहागदम् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य नित्य मलिन अथवा मलकारक अन्नका सेवन करताहै और मलमू-
त्रादि आषेदुष्य वेगोंको रोकताहै तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्षादि हेतुओंका
अत्यंत सेवन करताहै उस मनुष्यके कुपितदुष्ट दोष हृदयका आश्रय ले मन और
बुद्धिकी बहन करनेवाली शिराओंको दूषितकर स्थित होजाते हैं तब रजोगुण और
तमोगुण वृद्धर बुद्धि और मनको ढक लेतेहैं उस समय इसके हृदयमें व्याकुलता
होतीहै तब यह मनुष्य अल्प चेतना युक्त और जड होजाताहै । हित और अहितमें
इसकी विषम बुद्धि होजातीहै । इसको आप्तपुरुष “आतस्त्वाभिनिवेश” नामक महा-
गद कहतेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

महागदकी चिकित्सा ।

रौहस्वेदोपपन्नंतंशोध्यवननादिभिः ।

कृतसंसर्जनंमेघैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ ५७ ॥

इस महागद रोगमें ज्वर और स्वेदन करके वमनादि संशोचन द्वारा शुद्ध
शरीर कर पेयादि विधिकी सेवन करावे और भेदान्नक अन्नपानोंका सेवन
करावे ॥ ५७ ॥

ब्राह्मीस्वरससंयुक्तपञ्चगव्यमुदाहृतम् ।

तत्सेव्यंशंखपुष्पीचयञ्चसेव्यंरसायनम् ॥ ५८ ॥

तथा पूर्वोक्त ब्राह्मीरससंयुक्त घृत, पंचगव्य घृत, महापंचगव्य घृत, शंखपुष्पीका-
रस- और रसायन प्रयोगोंका सेवन कराना चाहिये ॥ ५८ ॥

अपस्मार रोगीकी रक्षा ।

सुहृदश्चानुकूलास्तंस्वातधर्मार्थवादिनः ।

संयोजयेयुर्विज्ञानधैर्य्यस्मृतिसमाधिभिः ॥ ५९ ॥

उसके हितकारी सुहृद् तथा धर्म, अर्थके जाननेवाले प्रामाणिक योग्य पुरुष ज्ञान,
धैर्य और स्मरण शक्तिको स्थापन करनेवाले वाक्योंसे उसको बुद्धिसम्पन्न करें ॥५९॥

प्रयुञ्ज्यात्तैललशुनंपयसात्राशतावरीम् ।

ब्राह्मीरसंकुष्ठरसंवचां वामधुसंयुताम् ॥ ६० ॥

तथा तैलके साथ लहसुन अथवा दूधके साथ शतावरका रस एवं शहतके साथ
ब्राह्मीका रस अथवा कूठका रस सेवन करावे तो अतत्वाभिनवेश (विपरीतबुद्धि)
नामक मद्भागद् दूर होताहै ॥ ६० ॥

दुश्चिकित्स्वयोह्यपरस्मारश्चिरकारीकृतास्पदः ।

तस्माद्रसायनैरेनंप्रायशःसमुपाचरेत् ॥ ६१ ॥

अपस्मार रोग दुश्चिकित्स्य होताहै यह रोग बहुत कालतक रहनेवाला और
बद्धमूल होताहै । इसलिये इसमें प्रायः सदाही रसायन प्रयोगोंका सेवन कराना
चाहिये ॥ ६१ ॥

जलाग्निद्रुमशैलेभ्योविषमेभ्यश्चतंसदा ।

रक्षेदुन्मादिनश्चैवसद्यःप्राणहराहिते ॥ ६२ ॥

अपस्मार रोगीको और उन्माद रोगीको जन्तु, अग्नि, वृक्ष और विषमस्थानोंसे
सदा ही बचाकर रखना चाहिये । क्योंकि यह सब अपस्मार रोगवाले मनुष्यके
शीघ्र प्राणोंको हरनेवाले होतेहैं ॥ ६२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ ।

हेतुं कुर्वन्त्यपस्मारंदोषाः प्रकुपित यथा । सामान्यतः पृथक्त्वाच्चलितं

तेषाञ्चभेषजम् ॥ ६३ ॥ महागदसमुत्थानंलिङ्गञ्चोवाचमौषधम् ।

मुनिर्व्याससमासाभ्यामपस्मारचिकित्सिते ॥ ६४ ॥

इति चरक० चि० अपस्मारचिकित्सितं नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस अपस्मार चिकित्सितनामक अध्यायमें भगवान् आत्रेयजीने अपस्मारके हेतु तथा जिस प्रकार दोष कुपित होकर अपस्मारको करतेहैं, अपस्मारके सामान्य और पृथक् २ लक्षण, उनकी औषधी, महागदके कारण, लक्षण और उपाय यह सब संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किये हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहापिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सास्थाने टकसालनिवासि पं० रामप्रसाद वैद्यो-
पाध्यायविरचितप्रसादनीभाषाटीकाया मपस्मारचिकित्सितं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

पोडशोऽध्यायः ।

अथातः क्षतक्षीणचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माहभग-
वानात्रेयः ।

अब हम क्षतक्षीणचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

उदारकीर्त्तिर्ब्रह्मर्षिरात्रेयःपरमार्थवित् ।

क्षतक्षीणचिकित्सार्थमिदमाहचिकित्सितम् ॥ १ ॥

उदारकीर्त्ति परमार्थके जाननेवाले ब्रह्मर्षि आत्रेयजीने क्षतक्षीणकी चिकित्साके लिये इस प्रकार चिकित्सा वर्णन की ॥ १ ॥

क्षतरोगके कारण ।

धनुषायस्यतोऽत्यर्थभारमुद्रहतोगुरुम् । पततोविषमोच्चेभ्योयुध्य-
मानस्यचाधिकैः ॥ २ ॥ वृषंहयंवाधावन्तंदम्यंवान्यंनिगृह्यतः ।

शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतोनिघ्नतःपरान् ॥ ३ ॥ अधीयमान-

स्यात्युच्चैर्दूरंवात्रजतोद्भुतम् । महानदींवातरतोगजैर्वासहधावतः

॥ ४ ॥ सहस्रोत्पततोद्दूरंतूर्णश्चातिप्रनृत्यतः ॥ तथान्यैःकर्मभिः

ऋरैर्भृशमभ्याहतस्यवा । विक्षतेवक्षसिव्याधिर्धलवान्समुदी-

र्यते ॥ ५ ॥

धनुष्यको अत्यंत जोरसे खेंचना अधिक, भारी वोशको उठाना, विषमस्थानसे गिरपडना, अपनेसे अधिक बलवालेसे कुश्ती करना, दौडतेहुए बैल, घोडे आदिको बलपूर्वक पकडना । शिला, लकडी, पत्थर, गदा आदिको अत्यंत जोरसे वेगपूर्वक फेंकना । या शिला, मुद्गर आदिकोंसे बलपूर्वक शत्रुओंपर प्रहार करना, बहुत जोरसे ऊंचे २ स्वरसे पढते रहना, अत्यंत वेगसे दौडना, बडी भारी नदीको बलपूर्वक तैरजाना, हाथी, घोडे, आदिके साथ भागना, वेगपूर्वक उछलकर कलांच मारना, बहुत देरतक वेगपूर्वक नौचना तथा ऐसे ही अन्यान्य क्रूरकर्म करना । इन सब कारणोंसे अथवा अन्य किसी प्रकार छातीमें चोट पहुँचनेसे मनुष्योकी छातीमें क्षत (घाव) होजाताहै । उससे बलवान् गोग उत्पन्न होजाताहै ॥ २॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

क्षीणके हेतु ।

स्त्रीपुचातिप्रसक्तस्यरूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ ६ ॥

अत्यंत स्त्रीसंग करनेसे तथा रूक्ष, अल्प और मित भोजन करनेसे मनुष्य क्षीण रोगको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

क्षतक्षीणके लक्षण ।

उरोनिरुज्यतेतस्यभियतेऽथविदह्यते । प्रपीड्यतेततःपार्श्वेषु-
ष्यत्यङ्गप्रवेपते । क्रमाद्वीर्यबलंवर्णोरुचिरग्निश्चहीयते ॥ ७ ॥

ज्वरोव्यथामनोदैन्यंविड्भेदोऽग्निवधस्तथा । दुष्टःश्यावःसदुर्गन्धः
पीतोविग्रथितोबहुः ॥ ८ ॥ कासमानस्यचश्लेष्मासरक्तःसंप्रवर्त्त-
ते । सक्षतःक्षीयतेऽत्यर्थतथाशुकौजसोःक्षयात् ॥ ९ ॥

क्षत और क्षीण दोनों रोगोंमें छातीमें भेदनेकी सी पीडा होना और विदाह (छातीमें जलन) होना, पार्श्वमें पीडा होना, अंगोंका सूखने लगना, शरीरका कां-
चना यह सब लक्षण होते हैं । फिर बल, वर्ण, रुचि और जाउरतग्नि यह क्रमसे धीरे २ क्षीण होने लगतेहैं फिर ज्वर, व्यथा, मनमें दीनता, मलका फटकर आना, अग्निका मंद होना, खोंसी और खोंसीके साथ २ दूषित हुआ काला, पीला, दुर्ग-
धयुक्त और गांठदार रुधिर मिला, बलगम आना यह लक्षण होते हैं ॥ इसप्रकार क्षतवाला रोगी अत्यंत क्षीण होजाताहै एवं स्त्रीप्रसंगादिके कारण वीर्य और ओजके क्षय होनेसे क्षीणरोगी अत्यंत क्षीण होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

क्षतक्षीणका पूर्वरूप ।

अव्यक्तंलक्षणंतस्यपूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥ १० ॥

क्षत और क्षीणके सब लक्षण स्पष्टरूपसे प्रकट न होनेपर अव्यक्त लक्षण होना क्षतक्षीणका पूर्वरूप कहा जाताहै ॥ १० ॥

क्षतक्षीणमें विशेषता ।

उरोरुकूशोणितच्छर्दिःकासोवैशेषिकःक्षते ।

क्षीणिसरक्तमूत्रत्वंपाद्वर्षपृष्ठकटिग्रहः ॥ ११ ॥

क्षत और क्षीण रोगमें विशेषता (फरक) केवल इतनाही है कि क्षतरोगके प्रकट होनेके समय छातीमें पीडा, रुविरका वमन और सॉती यह विशेष लक्षण होतेहैं । और क्षीणरोगमें मूत्रका वर्ण लाल होना अथवा रक्तयुक्त होना पार्श्वभागमें और पीठमें तथा कमरमें अत्यंत पीडा होना अथवा जकडेसे रहना यह लक्षण होतेहैं ॥ ११ ॥

साध्याऽसाध्य ।

अल्पलिंगस्यदीप्तान्नेःसाध्योवलवतोऽनरः ।

गतेसंवत्सरेयाप्यःसर्वलिंगन्तुवर्जयेत् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यकी अग्नि चैतन्य हो और शरीरमें बल हो तथा रोगके लक्षण अल्प हों उमका क्षतक्षीण रोग साध्य होताहै । एक वर्ष व्यतीत होनेपर याप्य-साध्य होजाताहै । और संपूर्ण लक्षणोंवाला क्षतक्षीण असाध्य समझ त्याग देना चाहिये ॥ १२ ॥

क्षतकी चिकित्सा ।

उरोमत्वाक्षतंलाक्षांपयसामधुसंयुताम् । सद्यएवपिवेज्जीर्णेपयसा-
द्यात्सर्शर्करम् । पाद्वर्षास्तिरुजश्चाल्पपित्ताग्निस्तांसुरायुताम् ॥ १३ ॥

भिन्नविद्रुकःसमुस्तातिविपांपाटांसवत्सकाम् ॥ १४ ॥

यदि छातीमें क्षत (घार) प्रतीत हो तो लासक़ो वारीरू पीसकर दूध और शह-तमें मिलाकर पिलावे । इसके पचजानेपर जव भूस लगे तो दूध और शुद्ध चीनीके साथ भातका भोजन करे । यदि पार्श्वभागमें पीडा हो और जठराग्नि मंठ हो तो धुली हुई लासके चूर्णको सुरामें मिलाकर पिलावे । परन्तु इस रोगमें रक्तपित्त होनेसे सुग देना उचित नहीं यदि रोगीको दस्त आते हों तो नागरमोया, अतीश, पाठा और इन्द्रयवका काथ पिलावे ॥ १३ ॥ १४ ॥

लाक्षांसर्पिर्मधुच्छिष्टंजीवनीवगणंसिताम् । त्वक्क्षीरीसम्मितंक्षी-
रेपचादीप्तानलःपिवेत् । इक्ष्वालिकविसग्रन्धिपद्मकेशरचन्दनैः ॥

॥ १५ ॥ शृतंपयोमधुयुतंसन्धानार्थंपिवेत्क्षती ॥ १६ ॥

जिस क्षत रोगीकी जठराग्नि बलवान् हो वह क्षतरोग निवृत्तिके लिये धूलि, लाखका चूर्ण, घृत, मोम, जीवनीयगणकी सब औषधियें, मिसरी और वंशलोचन इन सबको समान भाग ले दूधमें पकाकर पानकरे । अथवा तालमखाने, मृणाल (भिस्) पीपलामूल, कमलकी केशर और चंदन इन सबसे सिद्ध किया दूध सहद मिलाकर पीवे तो छातीका घाव संधान होजाता है । इसका यह क्रम है कि कुटीहुई सब औषधियें दो तोला लेवे दूध १६ तोला पानी ६४ तोला ले सबको मिलाकर पकावे दूधमात्र शेष रहनेपर छानकर ठंडा कर फिर इसमें शहद मिलाकर पीवे ॥ १५ ॥ १६ ॥

यवानांचूर्णमादायक्षीरसिद्धंघृतमुत्तमम् । ज्वरदाहेसिताक्षौद्रसक्तू-
न्वापयसापिवेत । कासीपर्वास्थिशूलीचलिह्यात्सघृतमाक्षिकाः ।
मधुकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीबलाः ॥ १७ ॥

यदि क्षतरोगमें ज्वर और दाह हों तो जबकि चूर्णको दूधमें सिद्धकर घृत मिलाकर पीवे । अथवा जबकि सत्तुओंको शहद मिसरी और दूध मिलाकर पीवे । जिस रोगीके खाँसी तथा पर्व और अस्थिर्योंमें पीडा हो उसको महुएके फल, मुलैठी, पिंड खजूर, मुनक्का इनको बारीक पीसकर शहद और घृतमें मिला नित्य प्रातःकाल ४ तोला चटाना चाहिये ॥ १७ ॥

एलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाःपिप्पल्यर्द्धपलंतथा । सितामधुकखर्जूरमृ-
द्दीकाश्चपलोन्मिताः ॥ १८ ॥ संचूर्ण्यमधुनायुक्तागुलिकाःसंप्रक-
ल्पयेत् । अक्षमात्रांततश्चैकांभक्षयेन्नादिनेदिने ॥ १९ ॥ कासंश्वा-
संज्वरंहिक्कांछर्दिमूच्छर्मदंभ्रमम् । रक्तनिष्ठीवनंतृष्णांपाईर्वशूल-
मरोचकम् ॥ २० ॥ शोप्लीहाढ्यवातांश्चस्वरभेदंक्षतक्षयम् । गु-
लिकातर्पणीवृष्यारक्तपित्तश्चनाशयेत् ॥ २१ ॥

छोटी इलायची, तेजपत्र, दालचीनी यह प्रत्येक ६ माशे, पीपल दो तोला, मिसरी, मुलैठी, छुवारे और बीजरहित मुनक्का यह सब चार २ तोला लेवे । इन सबको बारीक पीसकर शहदमें मिला एक २ तोलेकी गोली बनावे । अथवा चटनीसी बनाले इसमेंसे एक तोला नित्य दूधके साथ अथवा जीवनीय औषधियोंके अर्कके साथ या अन्य योग्य अनुपानसे खावे अथवा विना किसी अनुपानके ही खावे तो खाँसी, श्वास, हिचकी, ज्वर, वमन, मूच्छा, मद, भ्रम, रुधिरका थूकना, प्यास, पार्श्वशूल, अरोचक, शोष, प्लीहा, अकारा, स्वरभेद, क्षत और क्षय यह सब रोग नष्ट

होते हैं । यह गोली तपणीय और शरीरको पुष्ट करती हैं तथा रक्तपित्तको दूर करने वाली हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

रक्तेऽतिघृत्तेदक्षाण्डंयूपैस्तोथेनवापिवेत् ।

चटकाण्डरसंवापिरक्तंवाछागजाङ्गलम् ॥ २२ ॥

रक्तके अत्यंत निकल जानेपर मुँगेके अण्डोंसे बनाया हुआ यूप अथवा चिड़ियोंके अण्डोंसे बनाया हुआ यूप, या बकरेका रक्त अथवा जंगली जीवोंका जलयुक्त मांस-यूप पीनेको देवे ॥ २२ ॥

चूर्णपौनर्नवरक्तशालितण्डुलशर्करम् ।

रक्तघ्नीवीपिवेत्सिद्धंद्राक्षारसपयोघृतैः ॥ २३ ॥

पुनर्नवाका चूर्ण, लाल शाली चावल, शर्करा और द्राक्षाका रस, दूध और घीमें मिलाकर पीनेसे मुखद्वारा रक्तकी प्रवृत्ति होना बन्द होजाताहै ॥ २३ ॥

मधुकमधुकक्षीरसिद्धंवातण्डुलीयकम् ।

मूढवातस्त्वजामेदःसुराभृष्टंसैन्धवम् ॥ २४ ॥

महुएके फल और मुलहठीको दूधमें पकाकर अथवा चौलाईकी जड़ घूपमें पका पीवे तो रक्तकी प्रवृत्ति बन्द हो और मूढवातवाला मनुष्य बकरेकी मेदकी सुरामें मिला उसको सेंधेनमकयुक्त कर गर्म करके पीवे ॥ २४ ॥

क्षामःक्षीणःक्षतोरस्कस्त्वनिद्रःसवलेऽनिले ।

शृतक्षीररसेनायात्सक्षौद्रघृतशर्करम् ॥ २५ ॥

जिस क्षतरोगीको वायुकी अधिकतासे कृशता और क्षीणता होजाय तथा निद्रा जाती रहे उसको दूधमें मांसारस मिला पकाकर उसमें शर्करा, घृत और मिसरी मिलाकर पिलावे ॥ २५ ॥

शर्कराश्वयवक्षौद्रजीवकर्मभकोमधु । शृतक्षीरानुपानंवालियात्क्षी-

णःक्षतःकृशः ॥ २६ ॥ क्रव्यादमांसनिर्यृहंघृतभृष्टंपिवेच्चसः ।

पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तंमांसशोणितवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

और उस क्षतक्षीणसे कृशदृष्ट मनुष्यको मिसरी, सबके तनू, जीवक, ऋषभ-का चूर्ण और शर्करा यह सब मिलाकर चटावे और ऊपरसे गर्म दूध पिलावे अथवा मांस खानेवाले जीवोंके मांसारमको घीमें भूतकर पीपलका चूर्ण शर्करा मिलाकर रोदन करनेसे मांस और रक्तकी वृद्धि होतीहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थम्लक्षशालप्रियंगुभिः । तालमस्तकजम्बूत्व-
विप्रयालैश्चसमन्नकैः ॥ २८ ॥ साश्वकर्णैःशृतात्क्षीराद्व्याज्जातेन
सर्पिणा । शाल्योदनंक्षतोरस्कः क्षीणशुक्रश्चमानवः ॥ २९ ॥

बड, गूलर, पीपल, पिलखन, शाल, प्रियंगु ताडकी कोंपल, जामुनकी छाल,
चिरौंजी, पद्माख और अश्वकर्ण इन सबसे सिद्ध कियेहुए दूधसे निकाला हुआ घृत
शालीचावलोंके साथ भोजन करनेके लिये देवे तो ऊरःक्षत और क्षीणशुक्रवाला मनुष्य
शीघ्र आरोग्य हो ॥ २८ ॥ २९ ॥

यष्टथाह्वानागवलयोःक्राथेक्षीरसमंघृतम् ।

पयस्यापिप्पलीवांशीकल्कसिद्धंक्षतेशुभम् ॥ ३० ॥

मुलैठी और नागवलाका क्वाथ ४ भाग, घी और दूध दोनों एक एक भाग इन
सबको मिलाकर क्षीरकाकोली, पीपल और वंशलोचनका कल्क डालकर घृत
सिद्ध करे । इस घृतके पीनेसे क्षतरोग दूर होताहै ॥ ३० ॥

कोललाक्षारसेतद्वत्क्षीराष्टगुणसाधितम् ।

कल्कैःकट्फद्गदावींत्वग्वत्सकत्वक्फलैर्घृतम् ॥ ३१ ॥

वेर (वेरकी गुठलीकी गिरी), लाखका रस इन दोनोंको समान भाग ले, आठ गुणा
दूध मिला पूर्ववत् घृत सिद्ध करके सेवन करे अथवा सोनापाठा दासुदलदीकी छाल,
कुडाकी छाल और इन्द्रयव इन सबके कल्क और आठगुने दूधसे सिद्ध किया घृत
क्षतरोगको दूर करताहै ॥ ३१ ॥

अमृतप्राश घृत ।

जीवकर्पभकौवीरांजीवन्तीनागरंशटीम् । चतस्रःपर्णिनीमेंदेकाको-
ल्योद्वेनिदिग्धिके ॥ ३२ ॥ पुनर्नवेद्वेमधुकेसात्मगुप्तांशतावरीम् ।

ऋद्धिंपरूपकंभार्गीमृद्धीकांवृहतीतथा ॥ ३३ ॥ शृङ्गाटकीतामल-
कीपयस्यांपिप्पलीवलाम् । वदराक्षोटखर्जूरवातामाभिपुकापयपि ॥

॥ ३४ ॥ फलानिचैवमादीनिकल्कान्कुर्वीतकार्पिकान् । धात्रीरस-
विदारीक्षुच्छागमांसरसंपयः ॥ ३५ ॥ कुट्यात्प्रस्थोन्मितंतेनघृ-
तप्रस्थंविपाचयेत् । प्रस्थार्द्धमधुनःशीतेशर्करार्द्धतुलांतथा ॥ ३६ ॥

द्विकार्षिकानिपत्रैलादेमत्वश्मरिचानिच । चूर्णितानिघ्निनीयास्मा-
द्विद्यान्मात्रांसदा नरः ॥ ३७ ॥ अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं

घृतम् । सुधामृतरसंप्राश्यक्षीरमांसरसाशिना ॥ ३८ ॥ नष्टशुक्र-
क्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्षितान् । स्त्रीप्रसक्तान्कृशान्वर्णस्वरहीनां-
श्चवृंहयेत् ॥ ३९ ॥ कासहिक्काज्वरश्वासदाहतृष्णाम्लपित्तनुत् ।
पुत्रदंभमिमच्छाहयोनिमूत्रामयापहम् ॥ ४० ॥

जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, सोंठ, कचूर, शालपर्णी, माषपर्णी,
मुद्गपर्णी, पृष्ठपर्णी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, छोटी और बड़ी कटेरी,
रक्तपुनर्नवा, श्वेतपुनर्नवा, मुलैठी, कोंचके बीज, शतावर, ऋद्धि, फालसा, भारंगी, मुनका,
बड़ी कटेली, सिंघाडा, भूमिअंवल, क्षीरविदारी, पीपल, वला, बेर, अखरोट,
खजूर, वादाम, पिस्ता तथा अन्य ऐसे ही फल इन सबको एक एक कर्प लेकर कल्क
बनावे । अंवलका रस, विदारीकंदका रस, ईखका रस, बकरेके मांसका रस और
दूध यह एक एक प्रस्थ, घृत १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर घृत सिद्धकरे । घृत सिद्ध
होनेपर इसको छानलेवे । फिर इस घृतमें ठण्डा होनेपर शहद आधा प्रस्थ, भिसरी
आधी तुला (२ ॥ सेर) और तेजपत्र, इलायची, दालचीनी और कालीमिर्च यह
प्रत्येक एक एक कर्प लेकर चूर्णकर मिला देवे । यह अमृतप्राशघृत मात्रानुसार
सेवन करनेवाले मनुष्यको अमृतके समान गुण करताहै । इस घृतको पानकर दूध
या मांसरसका अनुपान करना चाहिये जिस मनुष्यका वीर्यक्षय हुआहो अथवा
क्षतक्षीणसे पीडित हो अथवा दुर्बल या व्याधिते कृश हो उसको अमृतके समान
गुण करताहै । यह घृत स्त्री प्रसंगसे कृश हुए मनुष्यको बलदायक, वर्णकारक, स्वर-
भंगनाशक तथा खांसी, हिचकी, ज्वर, दाह, प्यास, रक्तपित्त, छर्दि, मूर्च्छा, योनि-
रोग और मूत्ररोग इन सबको दूर करताहै और संतानको देनेवाला है ॥ ३२-४० ॥

इवदंष्ट्रेक्षीरमज्जिष्ठावलाकाश्मर्य्यकतृणम् । दर्भमूलंपृथक्पर्णीप-
लाशर्षभकौस्थिराम् ॥ ४१ ॥ पालिकसाधयेत्तेषांरसेक्षीरचतुर्गुणे ।
कल्कैःस्वगुप्ताजीवन्तीमेदकर्षभजीवकैः ॥ ४२ ॥ शतावय्यूद्धिमृ-
द्धीकाशर्कराश्रावणीविसैः । प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातपित्तहृद्वद्रवशूल-
नुत् ॥ ४३ ॥ मूत्रकृन्लूप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः । धनुःस्त्रीम-
द्यभाराध्वखिन्नानांवलमांसदः ॥ ४४ ॥

गोखरू, खस, गजीठ, वला, कुम्भार, कतृण, ४ कुशाकी जड, पृष्ठपर्णी, दाऊ,
ऋषभक, शालपर्णी यह प्रत्येक एक एक पल लेकर इनका क्वाय करे घृत १ प्रस्थ,
दूध ४ प्रस्थ, कोंचके बीज, जीवन्ती, मेदा, ऋषभक, जीवक, शतावर, ऋद्धि,
मुनका, गोंड, ब्राह्मी, कमलकंद इन सबको मिलाकर एक कुडवं लेवे । फिर

इनका कल्क कर क्वाथ और घृतमें मिला पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर छान लेवे । इस घृतके सेवनसे वात, पित्त, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, खांसी, शोष और क्षय यह सब नष्ट होते हैं । तथा धनुषके खींचनेसे: अथवा खीसंग, मद्यपान, भार और मार्गके श्रमसे जो क्षीण होगयेहों उनके बल और मांसकी वृद्धि होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

सत्तूप्रयोग ।

मधुकाष्टपलद्राक्षाप्रस्थकाथेघृतंपचेत् । पिप्पल्यष्टपलेकल्केप्रस्थंसि-
द्धेचशीतले ॥ ४५ ॥ पृथगष्टपलंक्षौद्रंशर्कराभ्यांविमिश्रयेत् । समं
सत्तुक्षतक्षीणेरक्तगुल्मेपुताद्धितम् ॥ ४६ ॥

मुलेठी ८ पल, मुनका १ प्रस्थ इनको १६ सेर जलमें पकावे । ४ सेर बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे फिर इस काथमें १ प्रस्थ घृत, ८ पल पीपलका कल्क, मिलाकर सिद्धकरे । सिद्ध होनेपर छानकर ठण्डा करलेवे । इसमें ८ पल शहद और ८ पल मिसरी मिलावे तथा १ प्रस्थ यवोंके सत्तू मिलावे । इन सत्तुओंको क्षतक्षीण, रोगी तथा रक्तगुल्मवालेको सेवन कराना परम हितकारी है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

धानी आदि घृत ।

धानीफलविदारीक्षुजीवनीयरत्नाद्धृतात् । छागगोपयसोश्चैवसप्त-
प्रस्थान्पचोद्भिपक् ॥ ४७ ॥ सिद्धशीतेसिताक्षौद्रद्विप्रस्थंविनयेत्त-
तः । यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमोहक्षयापह्नम् ॥ ४८ ॥ वयःस्था-
पनमायुष्यंमांसशुक्रबलप्रदम् ॥ ४९ ॥

आँवलेका रस १ प्रस्थ, विदारीकिंदका रस १ प्रस्थ, ईखका रस १ प्रस्थ, जीवनीय गणकी दण औषधियोंका काथ १ प्रस्थ, घृत १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ-
गौका दूध १ प्रस्थ इन सातोंको लेकर वैद्य घृतपाक विधिसे पकावे जब सब जलकर घृतमात्र शेष रहजाय तो उतागर छान लेवे । इस घृतमें ठण्डा होनेपर १ प्रस्थ मिसरी और एक प्रस्थ (१ सेर) शहद मिलावे । इसके सेवनसे राजयक्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी प्रमेह और क्षय यह सब नष्ट होते हैं । तथा यह घृत अवस्थास्थापन करनेवाला, आयुवर्द्धक, मांस, वीर्य और बलको पैदा करनेवाला है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

घृतन्तुपित्तेऽभ्यधिकेलिहाद्वातेऽधिकेपिबेत् । लीढंनिर्वापयेत्पित्त-
मल्पत्वाद्धन्तिनानिळम् । आक्रामत्यनिलंपीतमृष्माणानिरुण-
द्धिच ॥ ५० ॥

क्षतक्षीण रोगमें पित्त अविक हो तो घृत चटना चाहिये । सौर वायुकी अधिकतामें घृत पिलाना चाहिये । क्योंकि चाटाहुआ घृत पित्तको-शान्त करताहै और अल्प होनेके कारण वायुको हनन नहीं करता इसी प्रकार पीयाहुआ घृत वायुको शान्त करताहै और शरीरकी ऊष्माको नहीं रोकता ॥ ५० ॥

क्षामक्षीणकृशाङ्गानामेतान्येवघृतानिच ।

त्वक्क्षीरीशर्करालाजचूर्णैःपानानियोजयेत् ॥ ५१ ॥

दुर्बल, क्षीण और कृशशरीरवाले मनुष्योंको यह संपूर्ण घृत वंशलोचन, मिसरी और लाजा (खील) का चूर्ण मिला चाटना चाहिये ॥ ५१ ॥

सर्पिर्गुडान्समध्वंशाञ्जग्ध्वादद्यात्पयोनुच ।

रेतोवीर्य्यवलंपुष्टितैराशुतरमाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

आगे जो सर्पिर्गुड कथन किये हैं उनमें जहां शहदका प्रक्षेप नहीं किया तो चौथा भाग शहद मिलाकर चटावे और ऊपरसे दूध पिलावे तो क्षतक्षीण रोगी शीघ्र ही बल, वीर्य और पुष्टीको प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥

सर्पिर्गुड ।

वलांविदारींह्रस्वाश्रपञ्चमूर्लींपुनर्नवाम् । पञ्चानांक्षीरिवृक्षाणां

शुङ्गामुष्टयंशकामपि ॥ ५३ ॥ एषांपकापायेद्विक्षीरेविदाग्यांजरसां-

शिके । जीवनीयैःपचेत्कल्करक्षमात्रैर्घृताढकम् ॥ ५४ ॥ सितापला-

निपूतेऽस्मिञ्छीतेद्वात्रिंशतंक्षिपेत् । गोधूमपिप्पलीवांशीचूर्णंशृङ्गाट

कस्यच ॥ ५५ ॥ सक्षौद्रंकुडवांशेनतत्सर्वखजमूर्च्छितम् । स्वानं

सर्पिर्गुडान्कृत्वाभूर्जपत्रेणवेष्टयेत् ॥ ५६ ॥ ताञ्जग्ध्वापलिकान्क्षीरं

सद्यंवानुपिवेत्कफे । शोपेकासेक्षतेक्षीणेश्रमस्त्रीभारकर्षिते ॥ ५७ ॥

रक्तनिष्ठीवनेतापेपीनसेचोरसिस्थिते । शस्ताःपार्श्वशिरःशूले

विभेदेस्वरवर्णयोः ॥ ५८ ॥

वला, विदारीकंद, लघु पंचमूलकी पांचो औषधियें, पुनर्नवा, वड, गूठर, पीपल, पिलखन और वेतस इन पांचों वृक्षांके अंशुर, कांपलें यह प्रत्येक एक एक पल लेकर काय करे । फिर इस क्वायमें बकरीका दूध, गायका दूध और घृत तथा विदारीकंदका रस और बकरीका मांसरस यह सब एक एक आठक मिलावे । जीवनीय गणकी दस औषधियोंको एक एक तोला लेकर कल्क बना इसीमें मिलावे । इस

घृतको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । फिर इसमें ठण्डा होने पर मिसरी बत्तीस पल, गेहूँके सत्तू, पीपल, वंशलोचन, सिंधाडेका चूर्ण और शहत एक एक कुडव मिलाकर आगपर चढा कडलीसे हिलाताजावे और गुडपाक विधिसे पकावे । जब सब एकजीव होजाय तो उतारकर गोलेसे बना भोजपत्रमें लपेट लपेट कर रखताजावे । यह सर्पिर्गुड उचित मात्रासे सेवनकर ऊपरसे दूध पीवे, और कफकी अधिकतामें मद्यका अनुपान करे । इसके सेवनसे क्षतक्षीण, स्त्रीसेवन और भार उठानेसे उत्पन्न हुई कृशता और रुधिरका थूकना, ताप, पीनस, वक्षस्थलकी पीडा, पार्श्वशूल, मस्तकपीडा, स्वरभेद और विवर्णता यह सब दूर होतीहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

द्वितीय सर्पिर्गुड ।

त्वक्क्षीरीश्रावणीद्राक्षामूर्वकर्पभजीवकैः । वीरर्द्धिक्षीरकाकोली-
वृहतीकपिकच्छुभिः ॥ ५९ ॥ खर्जूरफलमेदाभिःक्षीरापिट्टैःफलो-
न्मितैः । धात्रीविदारीक्षुरसप्रस्थैःप्रस्थंघृतात्पचेत् ॥ ६० ॥
शर्करार्द्धतुलांशीतेक्षौद्रार्द्धप्रस्थमेवच । क्षिप्त्वासर्पिर्गुडान्कुड्या-
त्कासहिक्काज्वरापहान् ॥ ६१ ॥ यक्षमाणंतमकंश्वासंरक्तपित्तं
हलीमकम् । शुक्रनिद्राक्षयंतृष्णांहन्युःकार्श्यसकामलम् ॥६२॥

वंशलोचन, गोरखमुण्डी, मुनका, मूर्वा, ऋषभक, जीवक, पृष्ठपर्णी, ऋद्धि क्षीर-
काकोली, बडी कटेली, कौंचके बीज, खजूर, भिस, मेदा यह सब एक एक पल लेकर दूधमें घोटकर अलगरक्त्क करे । आँवलेका रस १ प्रस्थ, विदारीकंदका रस १ प्रस्थ, ईपका रस १ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, सबको घृतपाक विधिसे पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर छानलेवे इसमें मिसरी आधा तुला, शहत आधा प्रस्थ मिलाकर गोलेसे बना भोजपत्रमें लपेटकर रखदेवे । इनको सेवन करनेसे खांसी, हिचकी, ज्वर, यक्ष्मा, तमक-
श्वास, श्वास, रक्तपित्त, हलीमक, वीर्यक्षय, निद्रानाश, कृशता, प्यास और कामला यह सब दूर होते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

तृतीय सर्पिर्गुडक ।

द्राक्षांनवामामलकीमात्मगुप्तांपुनर्नवाम् । शतावरीत्रिदारीथस-
मांशांपिप्पलीतथा ॥ ६३ ॥ पृथग्दशपलान्भागान्पलान्यष्टौच
नागरात् । यष्ट्याहसौवर्चलयोर्द्विपलंमारिचस्यच ॥ ६४ ॥ क्षीर-
तैलगृतानाञ्चत्र्याढकेशर्कराशते । कथितेतानिचूर्णानिदत्त्वावि-

त्वसमान्गुडान् ॥ ६५ ॥ कुट्यान्तान्भक्षयेत्क्षीणःक्षतशुष्कश्चमा-
नवः । तेनसद्योरसादीनांवृद्ध्यापुष्टिसविन्दति ॥ ६६ ॥

मुनका, नवीन आंगले, कौंचके बीजोंकी गिरि, पुनर्नवा, शतावर, विदारीकंद और पीपल इन प्रत्येकका चूर्ण, दस दस पल लेवे । सोंठका चूर्ण ८ पल, मुलैठी, कालानमक, और मिर्च इनका चूर्ण दो दो पल, गौका दूध एक आठक, तेल आठक, घृत एक आठक, मिसरी १०० पल लेवे । प्रथम घृत, तेल, दूध और मिसरी मिलाकर पकावे, जब दूध जलजाय तब उतारकर इसमें उपरोक्त द्रव्योंका चूर्ण मिलाकर एकजीव करदेवे इसके चार २ तोलाके लड्डू बनावे, एक गुडक (लड्डुवा) में एक तोला शहद मिलाकर खावे । इनके सेवनसे मनुष्य क्षतक्षीण और कृशतासे रहित होजाता है । तथा रसादिक धातुकी वृद्धि होकर पुष्टताको प्राप्त होजाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

चौथासर्पिण्ड ।

गोक्षीराद्व्याढकंसर्पिःप्रस्थमिक्षुरसाढकम् । विदार्याःस्वरसात्प्र-
स्थंरसात्प्रस्थञ्चतैत्तिरात् ॥ ६७ ॥ दद्यात्सिध्यतितस्मिस्तुपिष्टा-
निक्षुरसौरिमान् । मधूकपुष्पकुडवंपियालकुडवंतथा ॥ ६८ ॥
तुगाक्षीर्यर्द्धकुडवांखर्जुराणिचत्रिंशतिम् । पृथग्विभीतकानक्षः
पिप्पल्याश्चचतुर्थिकाम् ॥ ६९ ॥ त्रिंशत्पलानिखण्डाच्चमधुका-
त्कर्पमेवच । तथार्द्धपलिकान्यत्रजीवनीयानिचावपेत् ॥ ७० ॥
निद्धेऽस्मिन्कुडवंक्षौद्रंशीतेक्षिप्त्वाथसोदकान् । कारयेन्मरिचा-
जाजीपलचूर्णाच्चूर्णितान् ॥ ७१ ॥ वातासृक्पित्तरोगेषुक्षतका-
सक्षयेषुच । शुष्यतांक्षीणशुक्राणांरक्तेचोरसिसंस्थिते ॥ ७२ ॥
कृशदुर्बलवृद्धानांपुष्टिवर्णवलाथिनाम् । योनिदोषक्षतस्त्रावहता-
नाथ्यापियोपिताम् ॥ ७३ ॥ गर्भार्थिनीनांगर्भश्चस्त्रवेद्यासांमि-
येतवा । धन्यावल्पाहितास्ताभ्यःशुक्रशोणितवर्द्धनाः ॥ ७४ ॥

गौका दध १ आठक (४ सेर), घृत १ प्रस्थ, (१ सेर), ईखका रम १ आठक, विदारीकंदका रम १ प्रस्थ, तीतरका मांसारस १ प्रस्थ, गोघृत १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पत्तो, फिर इसमें जब पत्तो २ सब रम जलनेपर आये तो इसमें महुएके फूल १ कुड्य, चिरीजी १ कुड्य (१ पाव) बंगलोजन जाया कुड्य, लुहारे बीस,

बहेडेका ठिलका और पीपलका चूर्ण एक एक पल, मिसरी ३० पल मुलैठी १ कर्ष तथा जीवनीयगणकी औषधियें आधा २ पल इन सबको ईखके रसमें पीसकर कल्क बना उपरोक्त पक्तेहुए घृतमें मिलादेवे । सिद्ध होनेपर उतारकर रसदे जब शीतल होजाय तो इसमें १ कुडव शहद मिलाकर कालीभिर्च और जीरेका १ पल चूर्ण मिलाकर चार चार तोलेके गुडक (गोला) बनावे । इसके खानेसे वातरक्त, पित्तके विकार, क्षत, खांसी, क्षय, शोष, क्षीणता, वीर्यक्षय, छातीसे रक्तका आना अथवा छातीमें दूषित रक्तका स्थित होना यह सब दूर होते हैं । यह कृश, दुर्बल और वृद्ध मनुष्योंकी पुष्टि, वर्ण और बलकी वृद्धिके लिये सेवन करना चाहिये । इसके सेवनेसे स्त्रियोंके योनिदोष, पेंध्यापन, गर्भस्त्राव और मृतवत्सादोष दूर होते हैं । तथा रजवीर्यकी शुद्धि होती है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

स्त्रीसंगसे कृशहुवेके यत्र ।

वस्तिदेशेविक्रवाणेश्चिप्रसक्तस्यमारुते ।

वातघ्नान्वृंहणान्वृष्यान्योगांस्तस्यप्रयोजयेत् ॥ ७५ ॥

अधिक स्त्रीसंगके करनेसे मनुष्यके दीर्घ क्षय होनेसे वायु, वस्तिस्थानमें प्राप्त होकर विकृत हो जाती है इसलिये उस मनुष्यकी चिकित्सा वातनाशक, वृंहण और वृष्य प्रयोगसे करना चाहिये ॥ ७५ ॥

शर्करापिप्पलीचूर्णैःसर्पिषामाक्षिकेणवा ।

संयुक्तंवाश्रुतंक्षीरंपिवेत्कासज्वरापहम् ॥ ७६ ॥

मित क्षीण मनुष्यको खांसी और ज्वर हो उसको पीपल डालकर औटायाहुआ दूब मिसरी मिला अथवा घी, शहद मिला पिलाना चाहिये ॥ ७६ ॥

फलाम्लंसर्पिषामृष्टंविदारीक्षुरसेशृतम् ।

स्त्रीपुक्षीणःपिवेद्युषंजीवनंवृंहणंपरम् ॥ ७७ ॥

मांसयुष अथवा उड्डांका यूप वा भृंग आदिका यूप ले उसमें समान भाग विदारीकंदका रस और ईपका रस मिचाने पकाये । फिर उसको अना-रका रस मिला घृतमें भूनकर पिचाने तो यह जीवनदायक और वृंहणकर्ता योग है ॥ ७७ ॥

सक्तूनां वस्त्रपूतानांमन्थंक्षौद्रघृणान्त्रितम् ।

यावन्नसात्म्योदीताग्निःक्षतक्षीणःपिवेन्नरः ॥ ७८ ॥

कपडेमें छानेहुए धवके सतुओंको घृत, शहत और जल मिलाकर जिसको यवसात्म्य हो और अग्नि चैतन्य हो ऐसा क्षतक्षीणवाला रोगी पीवे ॥ ७८ ॥

जीवनीयोपसिद्धंवाघृतभृष्टन्तुजाङ्गलम् ।

रसंप्रयोजयेत्क्षीणोव्यञ्जनार्थेसशर्करम् ॥ ७९ ॥

जीवनीयगणके क्वाथमें जंगली जीवोंके मांसको पकाकर घीमें भूनकर शर्करा-युक्त कर क्षीणरोगीको भातके साथ व्यंजनके लिये देवे ॥ ७९ ॥

गोमहिष्याश्वागाजैःक्षीरैर्मांसरसैस्तथा ।

यथाग्निभोजयेद्यूपैःफलाम्लैर्घृतसंस्कृतैः ॥ ८० ॥

गौ, भैंस, घोड़ी, हथनी, बकरी, इनके दूधके साथ क्षीण रोगीको भोजन करावे अथवा जंगली जीवोंके मांसोंके रसके साथ, अथवा अनारके रससे अम्लकिये मूंग आदिके यूप घृत मिलाकर क्षुधानुसार अग्नि बल विचारकर सेवन करे ॥ ८० ॥

विशेष ज्ञातव्य ।

दीप्तेऽग्नीविधिरेपस्यान्मन्देदीपनपाचनः ।

यक्षिणांविहितोग्राहीभिन्नैश्कृतिचेप्यते ॥ ८१ ॥

यह उपरोक्त बृंहण और वृष्य योग दीप्ताग्निवाले मनुष्योंको ही देना चाहिये । और मंदाग्निवाले मनुष्योंको दीपन और पाचन द्रव्य ही देना चाहिये । क्षतक्षीण-वाले रोगियोंको यदि दस्त लगने लगे तो जो राजयक्ष्मामं दस्त रोकनेको संग्राहि-द्रव्य कहें उनका प्रयोग करे ॥ ८१ ॥

सैंधवादि चूर्ण ।

पलिकंसैन्धवंशुण्ठीद्वेचसौवर्चलात्पले । कुडवांशानिवृक्षाम्लंदा-

डिमंपत्रसर्जकात् ॥ ८२ ॥ एकैकंमारिचाजाज्योर्धान्यकाद्वेचतु-

र्थिके । शर्करायाःपलान्यत्रदशद्वेचप्रदापयेत् ॥ ८३ ॥ कृत्वाचूर्ण-

मतोमात्रामन्नपानेप्रयोजयेत् । रोचनंदीपनंवल्यंपाश्वात्तिश्वासका-

सनुत् ॥ ८४ ॥

सैंधानमक एक पल, सोंठ, एक पल, संचर नमक दो पल और अमलप्रेत, अना(दाना, वनतुलसी, पत्रज, यह प्रत्येक एक २ पल । मिर्च और जीरा एक पल, घनिषां दो चौथाई (२ पल), शर्करा बारह पल, इन सबका बारीक चूर्णकर इस चूर्णको अन्नपानादिमें प्रयुक्त करे । यह सैंधवादिचूर्ण रुचिहारक, दीपन, वल्यप्रदक, तथा पार्श्वीदा, श्वास और खांसीको दूर करताहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

खांडव चूर्ण ।

एकापोडशिकाधान्याद्धिद्वेऽजाज्यजमोदयोः । ताभ्यांदाडिमवृक्षा-
म्लद्विद्विःसौवर्चलात्पलम् ॥ ८५ ॥ शुण्ठ्याःकर्पदधित्थस्यमध्या-
त्पञ्चपलानिच । तच्चूर्णपोडशपलेशर्करायाविमिश्रयेत् । पाडवो-
ऽयंप्रदेयःभ्यादन्नपानेषुपूर्ववत् ॥ ८६ ॥

धनियां एक पल, जीरा दो पल, अजमोद दो पल, अनारदाना चार पल, अम्ल-
वेत चार पल, संचर नमक एक पल, सोंठ एक कर्प, कैथका गूदा पांच पल, शर्करा
सोलह पल, इन सबका चूर्ण कर अन्नपानादिमें सेवनकरे तो यह खांडवचूर्ण पूर्व
(सैंधवादिचूर्ण) के समान गुण करे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

नागवला प्रयोग ।

पिवेन्नागवलामूलस्यार्द्धकर्पविवर्द्धनम् । पलंक्षीरयुतंमासंक्षीरवृ-
त्तिरनन्नभुक् ॥ ८७ ॥ एपप्रयोगःपुष्ट्यायुर्वलारोग्यकरःपरः । म-
ण्डूकपर्ण्याःकल्पोऽथशुण्ठीमधुकयोस्तथा ॥ ८८ ॥

नागवलाकी जड़की छाल प्रथमदिन आधा कर्प लेकर दूधमें घोलकर पीवे,
दूसरे दिन एक कर्प, तीसरे दिन १॥ डेढ कर्प पीवे, इस प्रकार नित्य आधा कर्प
वढाता २ एक पल तक वढावे, फिर बराबर एक महीने तक पीताजाय । इसका सेवन
करते हुए एक महीना तक दूध ही पीवे और अन्न न खावे । यह योग पुष्टि, आयु,
बल और आरोग्यताको वढानेमें परमोत्तम है । इसी प्रकार ब्राह्मीका एक माह
सेवन क्रियाजाताहै तथा मुलैठी या सोंठ भी इसी प्रकार सेवनसे यही गुण
करतीहै ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

क्षतक्षीणमें पथ्य ।

यद्यत्सन्तर्पणंशीतमाविदाहिहितंलघु । अन्नपानंनिपेव्यंतक्षतक्षी-
णैःसुखार्थिभिः ॥ ८९ ॥ यच्चोक्तंयक्षिणांपथ्यंकासिनारक्तपित्ति-
नाम् । तच्चकुट्यादपेक्ष्याशिव्याधिसात्म्यवलांस्तथा ॥ ९० ॥

जो जो अन्न पान संतर्पण, अविदाहे, हित और हल्के हैं क्षतक्षीण रोगीको
आरोग्यताकी इच्छाके लिये उन २ का ही सेवन करना चाहिये । राजयक्ष्मावाले
रोगियोंके लिये और खांसी तथा रक्तपित्तवाले रोगियोंके लिये जो पथ्य कहे हैं
क्षतक्षीणवाओंको भी जठराग्नि, व्याधि और सत्त्व्य तथा बल विचार कर उन्नहीका
सेवन करावे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

कपडोंमें छानेहुए यवके सतुओंको घृत, शहत और जल मिलाकर जिसको यवसात्म्य हो और अग्नि चैतन्य हो ऐसा क्षतक्षीणवाला रोगी पीये ॥ ७८ ॥

जीवनीयोपसिद्धंवाघृतभृष्टन्तुजाङ्गलम् ।

रसंप्रयोजयेत्क्षीणोव्यञ्जनार्थेसशर्करम् ॥ ७९ ॥

जीवनीयगणके क्वायमं जंगली जीवोंके मांसको पकाकर घीमें भूनकर शर्करा-युक्त कर क्षीणरोगीको भातके साथ व्यंजनके लिये देवे ॥ ७९ ॥

गोमहिष्याश्वनागाजैःक्षीरैर्मांसरसैस्तथा ।

यथाग्निभोजयेद्यूपैःफलाम्लैर्घृतसंस्कृतैः ॥ ८० ॥

गौ, भैंस, घोड़ी, हथनी, बकरी, इनके दूधके साथ क्षीण रोगीको भोजन करावे अथवा जंगली जीवोंके मांसोंके रसके साथ, अथवा अनारके रससे अम्लकिये मूंग आदिके दूध घृत मिलाकर क्षुधानुसार अग्नि बल विचारकर सेवन करे ॥ ८० ॥

विशेष ज्ञातव्य ।

दीप्तेऽग्नौविधिरेपस्यान्मन्देदीपनपाचनः ।

यक्षिमांविहितोग्राहीभिन्नैश्कृत्तित्चेष्यते ॥ ८१ ॥

यह उपरोक्त बृंहण और वृष्य योग दीप्ताग्निवाले मनुष्योंको ही देना चाहिये । और मंदाग्निवाले मनुष्योंको दीपन और पाचन द्रव्य ही देना चाहिये । क्षतक्षीण-वाले रोगियोंको यदि दस्त लगने लगे तो जो राजयक्ष्मामं दस्त रोकनेको संग्राहि-द्रव्य कहें उनका प्रयोग करे ॥ ८१ ॥

सैंधवादि ज्वर्ण ।

पलिकंसैन्धवंशुण्ठीद्वेचसौवर्चलात्पले । कुडवांशानिवृक्षाम्लंदा-
डिमंपत्रसर्जकात् ॥ ८२ ॥ एकैकंमरिचाजाज्योर्धान्यकाद्वेचतु-
र्थिके । शर्करायाःपलान्यत्रदशद्वेचप्रदापयेत् ॥ ८३ ॥ कृत्वाचूर्ण-
मतोमात्रामन्नपानेप्रयोजयेत् । रोचनंदीपनंवल्यंपार्श्वार्त्तिश्चासका-
सनुत् ॥ ८४ ॥

सैंधानमक एक पल, सोंठ, एक पल, संचर नमक दो पल और जमलपेत, अनारदाना, वनतुलसी, पत्रज, यह प्रत्येक एक २ पल । मिर्च और जीरा एक पल, घनिषां दो चौथाई (२ पल), शर्करा बारह पल, इन सबका वारीक चूर्णकर इन चूर्णको अन्नपानादिमें प्रयुक्त करे । यह सैंधवादिचूर्ण रुचिहारक, दीपन, वलरसक, तथा पार्श्वरीरा, आस और रासीको दूर करताहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

खांडव चूर्ण ।

एकापोडशिकाधान्याद्धिद्वेऽजाज्यजमोदयोः । ताभ्यांदाडिमवृक्षा-
म्लद्विद्विःसौवर्चलात्पलम् ॥ ८५ ॥ शुण्ठ्याःकर्पदधित्थस्यमध्या-
त्पञ्चपलानिच । तच्चूर्णपोडशपलेशर्करायाविमिश्रयेत् । पाडवो-
ऽयंप्रदेयःभ्यादन्नपानेषुपूर्ववत् ॥ ८६ ॥

धनियां एक पल, जीरा दो पल, अजमोद दो पल, अनारदाना चार पल, अम्ल-
वेत चार पल, संचर नमक एक पल, सोंठ एक कर्प, कैथका गूदा पांच पल, शर्करा
सोलह पल, इन सबका चूर्ण कर अन्नपानादिमें सेवनकरे तो यह खांडवचूर्ण पूर्व
(सैंधवादिचूर्ण) के समान गुण करे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

नागवला प्रयोग ।

पिवेन्नागवलामूलस्यार्द्धकर्पविवर्द्धनम् । पलंक्षीरयुतंमासंक्षीरवृ-
त्तिरनन्नभुक् ॥ ८७ ॥ एषप्रयोगःपुष्ट्यायुर्वलारोग्यकरःपरुः । म-
ण्डूकपर्ण्याःकल्पोऽथशुण्ठीमधुकयोस्तथा ॥ ८८ ॥

नागवलाकी जडकी छाल प्रथमदिन आधा कर्प लेकर दूधमें घोलकर पीवे,
दूसरे दिन एक कर्प, तीसरे दिन १॥ डेढ कर्प पीवे, इस प्रकार नित्य आधा कर्प
बढ़ाता २ एक पल तक बढ़ावे, फिर बराबर एक महीने तक पीताजाय । इसका सेवन
करते हुए एक महीना तक दूध ही पीवे और अन्न न खावे । यह योग पुष्टि, आयु,
बल और आरोग्यताको बढ़ानेमें परमोत्तम है । इसी प्रकार ब्राह्मीका एक माह
सेवन किपाजाताहै तथा मुलैठी या सोंठ भी इसी प्रकार सेवनसे यही गुण
करतीहै ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

क्षतक्षीणमें पथ्य ।

यद्यत्सन्तर्पणंशीतमविदाहिहितंलघु । अन्नपानंनिषेव्यंतक्षतक्षी-
णैःसुखार्थिभिः ॥ ८९ ॥ यच्चोक्त्याक्षिणांपथ्यंकासिनारक्तपित्ति-
नाम् । तच्चकुट्यादपेक्ष्याग्निव्याधिसात्म्यवलांस्तथा ॥ ९० ॥

जो जो अन्न पान संतर्पण, अत्रिदाहि, दित और हलके हैं क्षतक्षीण रोगीको
आरोग्यताकी इच्छाके लिये उन २ का ही सेवन करना चाहिये । राजयक्ष्मावाले
रोगियोंके लिये और रसांसी तथा रक्तपित्तवाल रोगियोंके लिये जो पथ्य कहे हैं
क्षतक्षीणपात्रोंको भी जठराग्नि, व्याधि और सतम्य तथा बल विचार कर उनहीका
सेवन करावे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

उपेक्षितो भवेत्तस्मिन्ननुबन्धो हियक्ष्मणः ।

प्रागेवागमनात्तस्य तस्मात्तत्वरयाजयेत् ॥ ९१ ॥

क्षतक्षीणरोगकी शीघ्र चिकित्सा न करनेसे राजयक्ष्मा रोग होजाताहै इस-
लिये राजयक्ष्मा होनेसे प्रथम ही क्षतक्षीणकी चिकित्सा कर रोग दूर करदेना
चाहिये ॥ ९१ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

असाध्ययाप्यसाध्यत्वं
साध्यानां सिद्धिमेव च ॥ ९२ ॥ उक्तवाञ्छयेष्टशिष्या यक्षतक्षीण-

चिकित्सिते । तत्त्वार्थविद्वीतरजस्तमोदोषः पुनर्वसुः ॥ ९३ ॥

इति चरक० चि० क्षतक्षीणचिकित्सितं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस क्षतक्षीणचिकित्सिताऽध्यायमें रज-
तमसे रहित तत्त्वार्थवेत्ता पुनर्वसुजीने क्षतक्षीणके हेतु सामान्य लक्षण, पृथक् २ भेद,
असाध्य, याप्यसाध्य और साध्यता तथा साध्योंकी चिकित्सा यह सब शिष्य-
शिरोमणि अप्रिवेशसे कथन कियाहै ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

इति श्रीच० चिकि० स्थाने भा० टी० क्षतक्षीणचिकित्सितं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातः श्वयथुचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भग-
वानात्रेयः ॥

अब हम श्वयथुचिकित्सितकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी
कहनेलगे ।

भिषग्वरिष्ठंसुरसिद्धजुष्टं मुनीन्द्रमन्यात्मजमग्निवेशः । महागदस्य-

श्वयथोर्यथावत्प्रकोपरूपप्रशमानपृच्छत् ॥ १ ॥

बेद्योंमें श्रेष्ठ, देवता और सिद्धोंमें सेवित, मुनीश्वर अत्रिनेन्दन पुनर्वसुजीसे, अप्रिवेश
पृच्छने लगे कि हे भगवन् ! श्वयथु (सूत्रन) महारोगके कारण, लक्षण और प्रशमनो-
पाय-रूपका क्यावत् वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

तस्मैजगादागदवेदसिन्धुप्रवर्तनाद्रिप्रवरोऽत्रिजस्तान् । वाता-
दिभेदांस्त्रिविधस्यसम्यङ्निजानिजैकाङ्गजसर्वजस्य ॥ २ ॥

यह मनुकर आयुर्वेदके समुद्र, ऋषिप्रवर, आत्रेयजी अभिवेशसे निज, आगंतु, एकांगज और सर्वांगज तथा वातादिभेदसे त्रिविध शोथका वर्णन करनेलगे ॥ २ ॥
निजशोथके कारण ।

शुद्धयामयाभक्तकृशावलानांक्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा । द-
ध्याममृच्छाकाविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणञ्च ॥ ३ ॥ अर्शा-
स्यचेष्टानचदेहशुद्धिर्मर्मोपघातोविपमाप्रसूतिः । मिथ्योपचारःप्र-
तिकर्मणाञ्चनिजस्यहेतुः श्वयथौप्रदिष्टः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य संशोधनसे अथवा रोगसे या उपवाससे कृश और दुर्बल होगयेहैं
उनको क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और भारी पदार्थोंके सेवनसे तथा दही, कच्चे पदार्थ,
शाक, विरुद्ध भोजन तथा दूषित भोजनके अधिक सेवनसे, गर (विप) युक्त
भोजन करनेसे, अर्शरोगसे, व्यायाम न करनेसे देहकी अशुद्धिसे, मर्मस्थानमें चोट
लगनेसे, स्त्रियोंके प्रसूतमें विपमता होनेसे, शोधन क्रियाका, मिथ्याउपचार होनेसे
मनुष्योंको शोथ (सूजन) रोग उत्पन्न होताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

आगंतुज शोथ ।

वाह्यास्त्वचोदूपयिताभिघातः काष्ठाश्मशस्त्राग्न्यशनीविपाद्यैः ।

आगन्तुहेतुस्त्रिविधोनिजश्चसर्वाङ्गान्नावयवाश्रितत्वात् ॥ ५ ॥

लकड़ी, पत्थर, शस्त्र, अग्नि, अशनीके लगनेसे और विपैले जानवरके काटनेसे
अथवा भिलावाआदि विप त्वचापर लगने आदिसे अथवा अन्य किसी प्रकारकी
चोट लगनेसे जो सूजन वाह्यत्वचामें उत्पन्न होतीहै उसको आगन्तु शोथ कहतेहैं ।
आगन्तु शोथ और वात, पित्त, कफ इन तीनोंके हेतुओंसे कोपसे उत्पन्न हुआ तीन
प्रकारका निजशोथ यह सबही सर्वांगमें अथवा अर्धांग वा किसी अंगावयवमें आश्रित
हो प्रकट होतेहैं ॥ ५ ॥

शोथकी संप्राप्ति ।

वाह्याःशिराःप्राप्ययदाकफासृक्पित्तानिसंदूषयतीहवायुः । तैर्वद्ध-
मार्गःसतदापिसर्पन्नुत्सेधलिङ्गंश्वयथुंकरोति ॥ ६ ॥

वायु वाहकी शिराओंमें प्राप्त होकर जब कफ, रक्त और पित्तको दूषित करताहै
तो उनसे शरीरके मार्ग बन्द होजातेहैं । फिर वह वायु शरीरमें सर्पग करताहुआ

शोथको उत्पन्न करता है । शरीरकी त्वचाका ऊपरको फूलजाना ही शोथका लक्षण है ॥ ६ ॥

उरःस्थितैरूर्ध्वमधस्तुवायोःस्थानस्थितैर्मध्यगतैस्तुमध्ये । सर्वाङ्गैःसर्वगतैःकचित्स्थेदोषैःकचित्स्याच्छ्रयथुस्तदारव्यः ॥ ७ ॥

यदि शोथकारक दोष शरीरके ऊपरी भागमें स्थितहों तो ऊपरके अंगोंमें सूजन उत्पन्न करतेहैं । और मलाशय आदि वायुके स्थानोंमें अर्थात् शरीरके आधोभागमें स्थित होनेसे नीचेके अंगोंमें सूजन उत्पन्न करतेहैं । तथा शरीरके मध्यभागमें स्थित होनेसे शरीरके मध्यभागमें सूजनको प्रगट करतेहैं । और संपूर्ण शरीरमें प्राप्त होनेसे सर्वांगगत शोथको करतेहैं । यदि शरीरके किसी एक अंगमें व्यापक हों तो उसी अंगविशेषमें उसी नामवाली सूजनको प्रकट करतेहैं ॥ ७ ॥

ऊष्मातथास्याद्भवथुःशिराणामायासइत्येवचपूर्वरूपम् । सर्वाङ्घ्रिदोषोऽधिकदोषलिङ्गैस्तत्संज्ञमभ्येतिभिपरिजतञ्च ॥ ८ ॥

शोथके प्रगट होनेसे प्रथम शोथ होनेवाले स्थानमें गरमी, दाह और शिराओंका फूलना यह लक्षण होतेहैं । सब प्रकारकी सूजनोंमें जिस दोषकी अधिकता प्रतीत हो वैद्य उस सूजनको उसीके नामकी कहे और उसी दोषका लक्ष्य रसकर चिकित्सा करे ॥ ८ ॥

शोथके सामान्य लक्षण ।

संगौरवंस्यादनवस्थितत्वंसोत्सेधमुण्णोथशिरातनुत्वम् । सलोमहर्षाङ्गविवर्णताचसामान्यलिङ्गंश्वयथोःप्रदिष्टम् ॥ ९ ॥

सूजन होनेवाले स्थानका भारी होना, चंचल होना और उस स्थानका ऊंचा होना, उस स्थानमें गरमी प्रतीत होना, शिराओंका पतला प्रतीत होना, रोमांच और शोथ होनेवाले स्थानकी विवर्णता यह शोथरोगके सामान्य लक्षण कहे हैं ॥ ९ ॥

वातज शोथ ।

चलस्तनुत्वपरुषोऽरुणोशितः सुपुसिहर्षात्तियुतोऽनिमित्ततः । प्रशाम्यतिप्रोन्नमतिप्रपीडितोदिवावलीचद्रव्यथुःसमीरणात् ॥१०॥

वातसे उत्पन्न हुई शोथ एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चलनेवाली, पतली, रुक्ष, लाल, काली होतीहै । शोथस्थान सोया हुआसा और हर्षयुक्त और पीडासहित होताहै । इस शोथके हेतुओंके न मिलनेसे यह शान्त होजातीहै । शोथस्थानको दबाकर छोड़ देनेसे फिर उन्नत होजातीहै । यह सूजन दिनमें बलवान् होतीहै ॥१०॥

मृदुःसगन्धोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः । यउ-
प्यतेस्पर्शसहोऽक्षिरागकृत्सपित्तशोथोभृशदाहपाकवान् ॥ ११ ॥

जो सूजन मृदुस्पर्शवाली, गंधयुक्त, काली, पीली अथवा लालवर्णकी हो, सूज-
नका स्थान उष्ण हो, स्पर्श करनेसे पीडा प्रतीत होतीहो रोगीके नेत्र लालवर्णके हों,
शोथमें अत्यंत दाह और पाक हो वह पित्तसे उत्पन्न हुई सूजन जानना ॥ ११ ॥

गुरुःस्थिरःपाण्डुरोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिबहिमान्द्यकृत् ।
सुकृच्छ्रजन्मप्रशमोनिपीडितोनचोन्नमेद्रात्रिवलीकफान्वितः १२ ॥

जो सूजन, भारी, स्थिर, पाण्डुवर्णकी हो तथा जो देरमें उत्पन्न और देरमें ही
शान्त होनेवाली हो, सूजनमें अंगुली दबानेसे गढासा पडजाय रात्रिके समय सूजनका
अधिक बल हो उसको कफकी सूजन जानना ॥ १२ ॥

असाध्य शोथके लक्षण ।

कृशस्यरोगैरवलस्ययोभवेदुपद्रवैर्वावमिपूर्वैर्युतः । महार्त्तिमर्मा-
नुगतोऽथराजिमान्परिस्त्रवन्भीमवलश्चसर्वशः ॥ १३ ॥

कृश और रोगसे दुर्बल हुए मनुष्यकी सूजनमें यदि वमनादि उपद्रव हों अथवा
हृदयादि मर्म स्थानकी सूजन अत्यंत पीडायुक्त हो वह तथा कृश और दुर्बल रोगीकी
रेखा और परिस्त्रावयुक्त सूजन असाध्य होतीहै ॥ १३ ॥

साध्यसूजन ।

अहीनमांसस्ययएकदोषजोनवोवलस्तस्यसुखःससाधने । निदा-
नदोषर्तुविपर्ययक्रमैरुपाचरेत्तंवलदोषकालवित् ॥ १४ ॥

जिस रोगीका मांस क्षीण न हुआ हो, सूजन केवल एक ही दोषजनित हो, पुरानी
न हो और बलवान् रोगीके शरीरमें हो तो वह सूजन साध्य होती है उसको निदान,
दोष, ऋतु, विचारकर बल, काल और दोषकी जाननेवाला वैद्य कारणादि विपरीत
चिकित्सा द्वारा शान्त करे ॥ १४ ॥

शोथकी चिकित्सा ।

अथामजंलङ्घनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुत्थणदोषमादितः । शिरोग-
तंशीर्षविरेचनैरधोविरेचनैरूर्ध्वहरेस्तथोर्ध्वजम् ॥ १५ ॥

जो सूजन आमदोषसे हुई हो उसको लंघन और पाचन द्वारा शान्त करना चाहिये
नितमें दोष अधिक बढेहुए हों उसमें संशोधन करना चाहिये । शिरोगत शोथमें
पिंग्वनीय नस्य द्वारा दोषको शान्त करे । अधोगत शोथमें विरेचन करे । ऊर्ध्वगत
शोथमें वमन करे ॥ १५ ॥

उपाचरेत्स्नेहगतं विरूक्षणैः प्रकल्पयेत्स्नेहविधिञ्चरूक्षजे । विवद्ध-
विट्केऽनिलजेनिरूहणं घृतन्तु पित्तानिलजेसतिक्तकम् ॥ १६ ॥

अधिक स्नेहसे उत्पन्न हुई शोथमें रूक्षणक्रिया करे । रूक्षकारणोंसे उत्पन्न हुई सूजनको स्नेहक्रिया द्वारा जीते । वात और पित्तसे उत्पन्न हुई शोथमें तिक्तकघृता-
द्वारा चिकित्सा करे ॥ १६ ॥

पयश्चमूर्च्छारतिदाहतर्षिते विशोधनीये तु समूत्रमिष्यते । कफोत्थि-
तं क्षारकद्रव्यसंयुतैः समूत्रतक्रासवयुक्तिभिर्जयेत् ॥ १७ ॥

मूर्च्छा, अरति, दाह और उपायुक्त सूजनमें औषध सिद्ध दूध पिलावे । यदि
ऐसे रोगीको शोधन कराना उचित समझे तो दूध और गोमूत्र मिलाकर पिलावे ।
कफसे उत्पन्न हुई सूजनमें क्षार, कटु और उष्ण द्रव्योंसे युक्तकर गोमूत्र और तक्र
मिलाकर अथवा गोमूत्र और आसव मिलाकर विविधत् पिलावे तो कफकी सूजन
शान्त होती है ॥ १७ ॥

शोथरोगमें त्याज्यवस्तु ।

ग्राम्यान्पंपिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टं दधितिलकृतं वि-
जलं मद्यमग्लम् । धानावल्लूरमशनमथोर्गुर्वसात्म्यां विदाहिस्वप्नं
रात्रौ श्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनञ्च ॥ १८ ॥

शोथरोगवाले मनुष्यको जलसंचारी जीवोंका मांस और अनूप संचारी जीवोंका
मांस, लवण, नवीन अन्न, सृसे साग, गुडके पदार्थ, पिष्टपदार्थ, दही, तिलकल्कादि,
खिचडी, गाढे द्रवयुक्त द्रव्य, मद्य, सटाई भुने गेहूं आदि धान्य सूखा मांस ममशन
(अधिक भोजन) भारी पदार्थ, असात्म्य भोजन, विदाही अन्न, दिनमें सोना और
स्त्रीसंग इन सबको त्यागदेना चाहिये ॥ १८ ॥

कफज शोथकी चिकित्सा ।

व्योषं त्रिवृत्तिक्तकरो हि णिचसायोरजस्का त्रिफलारसेन ।

पीतंकफोत्थं शमयेत्तु शोफं मूत्रेण गढ्येन हरीतकीवा ॥ १९ ॥

सांठ, मिर्च, पीपल, निशोय, कुटकी, लोहभस्म इनको त्रिफलोंके प्याथके साथ
पीने तो कफजनित शोथ दूर हो अथवा हर्डीके चूर्णको गोमूत्रके साथ पीने तो
कफजनित सूजन दूर हो ॥ १९ ॥

हरीतकीनागरदेवदारुसुखास्त्रयुक्तं सपुनर्नर्नवा ।

सर्वपिपेप्रिप्यपिमूत्रयुक्तं स्नातश्च जीर्णपयसान्नमथात् ॥ २० ॥

या हरड, सांठ, देवदारू और पुनर्नवा इनके चूर्णको सुखोष्ण गरमजलके साथ पीवे । अथवा इन सबको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीवे तो तीनों प्रकारकी सूजन दूर होतीहै । औषध जीर्ण होनेपर स्नानकर दूधके साथ भोजन करे ॥ २० ॥

वातजशोथके यत्न ।

पुनर्नवानागरमुस्तकल्कान्प्रस्थेनधीरःपयसोऽक्षमात्रान् ।

मयूरकंमागधिकांसमूलांसनागरांवाप्रपिवेत्सवाते ॥ २१ ॥

पुनर्नवा, सांठ, नागरमोथा इनके एक एक तोला कल्कको लेकर एक सेर दूधमें पकावे । आधा दूध शेष रहनेपर रोगीको पिलावे । अथवा अपामार्गकी जड, पीपल पीपलामूल और सांठके कल्कको इसी प्रकार दूधमें पकाकर पीये तो वातकी सूजन दूर होतीहै ॥ २१ ॥

दन्तीत्रिवृष्ट्यूपणचित्रकैर्वापयःशृतंदोपहरंपिवेत्ना ।

द्विप्रस्थमात्रश्चपलार्द्धिकैस्तैरर्द्धविशिष्टंपवनेसपित्ते ॥ २२ ॥

दन्ती, निशोय, सांठ, पीपल, मिर्च और चित्रक, यह प्रत्येक २ तोला, दूध २ सेर मिलाकर पकावे । जब १ सेर दूध बाकी रहे तो इसको पीनेसे विरेचन होकर दोष दूर हों और उस मनुष्यके वात तथा पित्तजनित सूजन दूर हो ॥ २२ ॥

सशुण्ठिपीतद्रुरसंप्रयोज्यंश्यामोरुद्यूकोपणसाधितंथा ।

त्वग्दारुवर्षाभुमहौषधैर्वागुडूचिकानागरदन्तिभिर्वा ॥ २३ ॥

सांठ और दारुहलदीके काथको दूध मिलाकर पीवे अथवा निशोय, एरंडकी जड और काली मिर्चसे सिद्ध किया दूध पीवे अथवा दालचीनी, दारुहलदी, पुनर्नवा और सांठसे सिद्ध कियाहुआ दूध अथवा गिलोय, सांठ और दन्तीसे सिद्ध किया हुआ दूध वात तथा पित्तकी सूजनको दूर करताहै ॥ २३ ॥

सप्ताहमौष्ट्र्यदिवापिमासंपयःपिवेद्भोजनवारिवर्जी ।

गव्यंसमूत्रंमहिषीपयोवाक्षीराशनंमूत्रमथोगवांवा ॥ २४ ॥

सात दिन पर्यन्त अथवा १ महीने तक केवल ऊंटनीका दूध पीवे सिवाय इस दूधके और अन्न जल किसी प्रकारका कुछ न खाय तो वात और पित्तकी सूजन दूर होतीहै । अथवा भैंसका दूध और गोमूत्र मिला सेवन करे । अथवा १ महीने पर्यन्त गोमूत्रका सेवन करे और गीके दूधका ही पथ्य करे तो वात और पित्तकी सूजन दूर होतीहै ॥ २४ ॥

तक्रंपिवेद्वागुरुभिन्नवर्चाःसव्योपसौवर्चलमाक्षिकंवा ।

गुडाभयांवागुडनागरांवासदोपभिन्नामविवद्धवर्चाः ॥ २५ ॥

जिस मनुष्यको शोथरोगमें दस्त आनेलगें या भारी और अधिक मल आवे तो उसको त्रिकुटा, काला नामक और शहद मिलाकर तक्र पिलावे । यदि मल आम-दोपयुक्त तथा वद्ध (कवजयुक्त) हो तो उसको गुंडके साथ हरड या सोंठ और गुड मिलाकर देवे ॥ २५ ॥

विड्वातसङ्गेपयसारसैर्वाप्राग्भुक्तमद्यादुरुवूकतैलम् । स्रोतोविवन्धेऽ
ग्निरुचिप्रणाशेमद्यान्यरिष्टांश्चपिवेत्सुजातान् ॥ २६ ॥

यदि शोथरोगीका मल और अधोवायु वद्ध होजाय तो उसको भोजनसे प्रथम उचित द्रव्योंके क्वाथमें या मांसरसमें अथवा दूधमें मिलाकर एरंडतैल पिलावे । यदि स्रोतोका विवंध हो, प्रंदाग्नि और अरुचि हो तो उचित मद्य अथवा उत्तम अरि-ष्टोंका पान करावे ॥ २६ ॥

कण्डीरादि अरिष्ट ।

कण्डीरभल्लातकचित्रकांश्चव्योपंविडङ्गवृहतीद्वयञ्च । द्विप्रस्थिकं
गोमयपावकेन्द्रोणेपचेत्कूर्चिकमस्तुनस्तु ॥ २७ ॥ त्रिभागशेष-
ञ्चसुप्तशीतंद्रोणेनतत्प्राकृतमस्तुनाच । सितोपलायाश्चशतेनयु-
क्तंलिसेघटेचित्रकपिप्पलीनाम् ॥ २८ ॥ वैहायसेस्थापितमादशाहा-
त्प्रयोजयंस्तद्विनिहन्तिशोफान् । भगन्दरार्शःकिमिकष्टमेहान्वै-
वर्ष्यकार्यानिलहिकनञ्च ॥ २९ ॥

कण्डीर (अपामार्ग या काण्डवेल), भेलावे, चित्रक, त्रिकुटा, वायविडंग, कटेली वडी कटेली इन सबको मिलाकर दो प्रस्थ लेवे । तथा कूर्चिक मस्तु (दूधमें आधा पानी मिला गरमकर उसमें खट्टी दही डालदेनेसे दूध फटकर जो पानी निकले) १ द्रोण लेवे । इन सबको मिलाकर गौंके जंगली उपलोंकी अप्रिसे पकावे । जब १ भाग जलकर तीन भाग शेष रहे तब उसको अच्छी तरहसे छानकर फिर इसमें १ द्रोण दहीका पानी मिलावे । १०० पल मिसरी मिलावे और चित्रक तथा पीपलके कल्कसे लिपेटुए घडेमें रसकर बन्द करदे । इस घडेको रसोंके छीकेमें बांधकर जिस स्थानमें धूप लगतीहो किसी वृक्षसे अथवा अन्य किसी वस्तुसे बांधकर आका-शमें लटकावे । फिर १० दिनोंके पीछे उतारकर गौंकी उचित मात्रासे पिलावे । इसके सेवनसे सूजन, भगन्दर, अर्शगोग, कुमिरोग, कुष्ठ, प्रमेद, विषर्णता, कृशता, नातरोग और दिचनी यह मद्य दूर होतेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

काश्मर्यादि अरिष्ट ।

काश्मर्यधार्त्रीमारिचाभयानांद्राक्षाफलानाञ्चसपिप्पलीनाम् ।
शतंशतंजीर्णगुडात्तुलाञ्चसंक्षुद्यकुम्भेमधुनाप्रलिप्ते ॥ ३० ॥ सप्ता-
हमुष्णोद्विगुणन्तुशीतेस्थितंजलद्रोणयुतंपिवेत्ना । शोफान्विवन्धा-
न्कफवातजांश्चसहन्यारिऽष्टोऽष्टशतोऽन्निकृच्च ॥ ३१ ॥

कुंभेरके फल, आँवले, मिर्च, हरड, बहेडे, द्राक्षा, पीपल यह प्रत्येक सौ सौ पल लेवे, पानी १ द्रोण इन सबको मिलाकर आग पर गरम करे। जब जल १ भाग जलकर तीन भाग शेष रहे तो उसको उतारकर १ तुला (५ सेर) पुराना गुड मिलावे। इन सबको घोलकर शहत लिपेहुए घडेमें भरकर बन्द करदेवे। यदि गर्मीकी ऋतु हो तो इसको ७ दिन धरा रहनेदे और शीतकालमें १४ दिन तक रखे फिर इसको छानकर सेवन करनेसे सूजन, कफ और वायुका विबंध तथा मँदाभिं यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट ।

पुनर्नवेद्वेचवलेसपाठेदन्तीगुडूचीमथचित्रकञ्च । निदिग्धिकाञ्च
त्रिपलानिपक्काद्रोणाञ्छेषेसलिलेततस्तम् ॥ ३२ ॥ पूत्वारसंद्वे
चगुडात्पुराणात्तुलेमधुप्रस्थयुतंसुशीतम् । मासंनिदध्याद्धृतभाज-
नस्थंपलेयवानांपरितस्तुमापान् ॥ ३३ ॥ चूर्णीकृतैरर्क्षपलांशिकै-
स्तंपत्रत्वगेलामरिचाम्बुलोहैः । गन्धान्वितंक्षौद्रघृतप्रदिग्धैर्जी-
र्णैपिवेद्रयाधिवलंसमीक्ष्य ॥ ३४ ॥ हृत्पाण्डुरोगंश्वचथुंप्रवृच्छंघ्नीह-
भ्रमारोचकमेहगुल्मान् । भगन्दरंपड्जठराणिकासंश्वासंग्रहण्या-
मयकुष्ठकण्डूः ॥ ३५ ॥ शाखानिलंवद्धपुरीपताञ्चहिवकांकिलास-
ञ्चहलीमकञ्च । क्षिप्रंजयेद्दर्णवलायुरोजस्तेजोन्वितोमांसरसान्न-
भोक्ता ॥ ३६ ॥

लाल पुनर्नवा, श्वेतपुनर्नवा, बला, अतिवला, पाठा, सोनापाठा, दंती, गिलोय, चित्रक और कटेरी इन प्रत्येकको तीन तीन पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे। आधा जल बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे। शीत होनेपर इसमें २ तुला पुराना गुड मिलादेवे और १ प्रस्थ शहत मिलावे। फिर घृतसे चिकने पात्रमें भरकर बन्द करदेवे। फिर इसको यवाँके आटेसे संपुटक उडदाँके ढेमें दवाकर १ महीना

रखदेवे १ महीने वाद इसको निकालकर इसमें तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, कालीमिर्च और नेत्रवाला इनका दो दो तोला वारीक चूर्ण मिलाकर सुगंधित करे । (इसमें २ तोला लोहभस्म मिलावे) सबको हिलाकर किसी पात्रमें भरलेवे । (फिर नित्य शहत और घृतयुक्त भोजन करे । तथा भोजनके जीर्ण होनेपर इस अरिष्टको अग्निबल और व्याधि विचारकर मात्रानुसार पीवे) अथवा इस अरिष्टको पहिले दिनका किया भोजन जीर्ण होनेपर नित्य प्रातःकाल शहत और घृत मिला व्याधि, बल विचारकर पीवे तो हृद्रोग, पाण्डुरोग, बढीहुई सृजन, घ्नीह्रोग (तिल्लीका बढना) भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, छः प्रकारका उदररोग, खांसी, श्वास, ग्रहणी विकार, कोढ़, खुजली, शाखागत वात मलका विन्ध, हिचकी, किलास और हलीमक यह सब रोग नष्ट होतेहैं । इसके सेवनसे वर्ण बल, आयु, ओज और तेजकी वृद्धि होतीहै । इसके सेवनमें मांसरस और भातका भोजन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

त्रिफला अरिष्ट ।

फलत्रिकंदीप्यकचित्रकौचसपिप्पलीलोहरजोविडङ्गम् । चूर्णाकृतं
कौडविकंदिरंशंक्षौद्रंपुराणस्यतुलांगुडस्य । मासंनिदध्यादृतभा-
जनस्थंयवेपुतानेवनिहन्तिरोगान् ॥ ३७ ॥

त्रिफला, अजनायन, चीता, पीपल, लोहचूर्ण और वायनिडंग यह प्रत्येक एक एक कुडव लेकर वारीक चूर्ण कर लेवे । शहद २ कुडव पुराना गुड १ तुला, पहिले शहत और गुडके सिवाय सब औषधियोंको १ द्रोण जलमें पकावे आधा भाग घेप रहनेपर नीचे उतारकर ठण्डा कालेवे फिर इसमें शहद और गुड मिलाकर बीके चिकने पात्रमें डाल यवोंके देरमें गाडकर १ महीना रखे । फिर छानकर किसी शुद्ध पात्रमें भरे । इसके सेवनसे उपरोक्त पुनर्नवाग्निष्टके समान गुण होतेहैं ॥ ३७ ॥

येचार्शसाम्पाण्डुविकारिणाश्चप्रोक्ताःशुभाःशोफिपुतेऽप्यरिष्टाः३८

इसके मित्राय और भी जो अग्नि अर्शरोग और पाण्डुरोगमें कथन किये हैं वर सब शोषरोगमें हितकारक होतेहैं ॥ ३८ ॥

पिप्पली आदि चूर्ण ।

कृष्णासपाटागजपिप्पलीचनिदिग्धिकाचित्रकनागरेच । सपिप्प-
लीमूलरजन्यजाजीमुस्तश्चचूर्णसुरसोनोयपीतम् । हन्याग्निदोषंचि-
रजशशोफंकफल्कश्चभृनिम्बमहापथस्य ॥ ३९ ॥

पीपल, पाठ, गजपीपल, कटेली, चित्रक, सोंठ, पीपलामूल, हलदी, जीरा, नागरमोथा इन सबका चूर्णकर सुखोष्ण जलके साथ पीनेसे तीनों दोषोंके शोथ, बहुत दिनके पुराने शोथ दूर होतेहैं। इसी प्रकार चिरायता और सोंठके कल्कको गरम जलके साथ पीनेसे भी तीनों दोषोंका शोथ दूर होताहै ॥ ३९ ॥

अयोरजस्यूषणयावशूकंचूर्णञ्चपीतंत्रिफलारसेन ॥ ४० ॥

लोहकी रज (लोहभस्म अथवा मण्डूरभस्म) सोंठ, मिर्च, पीपल और जवाखार इनको त्रिफलाके क्वाथके साथ पीवै तो तीनों दोषोंकी पुरानी सृजन भी दूर होतीहै ॥ ४० ॥

क्षारादि गुटिका ।

क्षारद्वयस्याल्लवणानिचत्वार्थयोरजोव्योपफलत्रिकञ्च । सपिप्पलीमूलविडङ्गसारंमुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम् । कलिङ्गकाश्चित्रकमूलपाठंसयष्टिकञ्चातिविषंपलांशम् ॥ ४१ ॥ सहिंगुकर्षन्त्वनुसूक्ष्मचूर्णद्रोणंयथामूलकशुण्ठिकानाम् । स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेनसाध्यमालोढ्ययावद्धनमप्रदग्धम् ॥ ४२ ॥ स्त्यानंततःकोलसमान्तुमात्रांकृत्वासुशुष्कांविधिनाभजेत् । ग्रीहोदरद्वित्रहलीमकांस्तुपाण्ड्यामयारोचकशोषशोकान् । विपूचिकागुल्मगराश्मरीश्चसद्वासकासाःप्रणुदेत्सकुष्ठाः ॥ ४३ ॥

जवाखार, सजीखार, सेंधानमक, संचरनमक, सांभरनमक, विडनमक, लोहभस्म, पीपल, मिर्च, सोंठ, हरड, बहेडे, आंवले, पीपलामूल, वायविडंगके चावल, नागरमोथा, अजमोद, देवदारु, बेलगिरि, इन्द्रयव, चित्रककी छाल, पाठा, मुलैठी और अत्तीस इन सबको एक एक पल लेवे। भुनीहुई हिंग एक कर्ष लेवे। इन सबको कूटकर बारीक चूर्ण करे। फिर मूली और सोंठकी भस्म जल मिलाकर १ द्रोण लेकर पकावे। चौथा भाग शोष रहमेपर उतारकर छानले। इस छनेहुए जलमें ऊपरकी सब औषधियोंका चूर्ण मिलाकर पकावे और दिलाताजावे। जब गाढा होजाय तब नीचे उतारकर जंगली बेरके समान गोलियां बनावे। जब यह सूखजाय तो इनका सेवन करनेसे प्लीहा, उदररोग, श्वेतकुष्ठ, हलीमक, पाण्डुरोग, अरुचि, शोषरोग, शोथरोग, विपूचिका, गुल्म, अश्मरी, श्वास, खांसी और कुष्ठ यह सब रोग नष्ट होतेहैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

गुढार्द्रक योग ।

प्रयोजयेद्गार्द्रकनागरंवातुल्यं गुडेनार्द्रपलाभिवृद्धया । मात्रापलंप-
ञ्चपलानिमासंजीर्णेपयोयूपरसान्नभोक्ता ॥ ४४ ॥ गुल्मोदरार्शः-
श्वयथुप्रमेहाञ्ज्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान् । सकामलांशोपम-
नोविकारान्कासंकफश्चैवजयेत्प्रयोगः ॥ रसस्तथैवार्द्रकनागरस्यपे-
योऽथजीर्णेपयसान्नमद्यात् ॥ ४५ ॥

अदरख अथवा सोंठको बराबरके गुडमें मिलाकर सेवनकरे । इसका यह क्रम है कि पहिले दिन आधा पल, दूसरे दिन एक पल, तीसरे दिन डेढ पल इसी प्रकार आधा २ पल बढ़ाते हुए पांच पल पर्यन्त पहुँचावे फिर १ महीने तक पांच पल बराबर खाताजाय मात्रा जीर्ण होनेपर दूध, मूंगका घूप, अथवा मांसरसके साथ चावलका भोजन करे तो गुल्म, उदररोग, ववासीर, शोथ, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अन्नका न पचना, कामला, शोथ, मनके विकार, खांसी और कफ यह सब दूर होतहैं । इसी प्रकार अदरखका रस वा सोंठका रस आधे पलसे आरम्भकर पांच पल पर्यन्त क्रमशः बढ़ा १ महीने पर्यन्त सेवनकरे और दूध चावलका पथ्य करे तो भी उपरोक्त गुण होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

शिलाजतु प्रयाग ।

जत्वश्मजश्चत्रिफलारसेनहन्यात्रिदोषंश्वयथुंप्रसह्य ॥ ४६ ॥

शिलाजीतकी त्रिफलाके ब्याथके साथ सेवन किया जाय तो तीनों दोषोंके शोथको दूर करताहै ॥ ४६ ॥

कंसहरितकी ।

द्विपञ्चमूलस्यपचेत्कपायकंसोऽभयानाञ्चशतंगुडस्य । लेहेसुसि-
द्धेचविनीयचूर्णव्योपत्रिसौगन्ध्यमुपांस्थितेच ॥ ४७ ॥ प्रस्थार्द्र-
मात्रंमधुनःसुशीतेकिञ्चिच्चूर्णादपियावशूकात् । एकाभयांप्राश्य-
ततश्चलेहाच्छुक्तिनिहन्तिश्वयथुंप्रवृद्धम् ॥ ४८ ॥ श्वासञ्ज्वरा-
रोचकमेहहृक्काष्ठीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् । कार्यामवातान-
सृगम्लपित्तवैदण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ४९ ॥

दशमूलकी औषधिये १ कंम (आठक, ४ सेर), बडी २ उत्तम हरडे १००, हरडोंकी एक कपडेमें ढीलीसी बांधकर १६ सेर जलमें डालकर उमी जलमें दश-

मूलकी औषधियें मिला काथ बनावे । जब ४ सेर पानी बाकी रहे तो उतारकर छानलेवे और हरडोंको क्वाथमें मिलावे और उसी क्वाथमें गुड (४ सेर) मिलाकर पकावे । जब वह पककर गाढा होजाय तो इसको नीचे उतार शीतलकर आधा सेर शहद मिलावे और मिर्च, पीपल, सोंठ, इलायची, दालचीनी और तेजपत्र यह एक एक पल वारीक चूर्ण कर मिलावे । इसमेंसे एक हरड खाकर ऊपरसे यह अवलेह १ तोला चाटलेवे । इस प्रकार १०० दिनमें इन १०० हरडोंको खावे । इस प्रयोगसे अत्यंत बढीहुई सूजन, श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोष, उदररोग, पाण्डुरोग, कुशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष और वीर्यदोष यह सब दूर होतेहैं ॥ ४७-४९ ॥

पटोलमूलादि घृत ।

पटोलमूलासुरदारुदन्तीत्रायन्तिपिप्पल्यभयाविशालाः । यष्ट्या-
ह्लिकातिक्तकरोहिणीचसचन्दनास्यान्निचुलानिदार्वी ॥ ५० ॥
कषोत्थितैस्तैःकथितःकषायोघृतस्यपेयःकुडवेनयुक्तः । विसर्पदा-
हज्वरसन्निपातांस्तृष्णांविषाणिश्वयथुंनिहन्ति ॥ ५१ ॥

पटोलकी जड, देवदारु, दंती, त्रायमाण, पीपल, हरड, इन्द्रायणकी जड, मुलैठी, कुटकी, लालचंदन, निचुल (समुद्रफल) और दारुहलदी यह सब एक एक कर्प लेवे । इनको सोलह गुने जलमें पकाकर चौथा भाग रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस क्वाथसे एक कुडव घृत सिद्धकरे इस घृतके पीनेसे विसर्प, दाह, ज्वर सन्निपात, प्यास, विषदाप और सूजन यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

चित्रकादि घृत ।

सचित्रकंधान्ययवान्यजाजीसौवर्चलंयूपणवेतसाम्लम् । वित्वा-
त्फलंदाडिमयावशूकौसपिप्पलीमूलमथोऽपिचव्यम् ॥ ५२ ॥
पिष्ट्वाक्षमात्राणिजलाढकेनपक्त्वाघृतप्रस्थमथोप्रयुंज्यात् । अशा-
सिगुलमंश्वयथुश्चदुःखंतद्धन्तिवह्निश्चकरोतिदीप्तम् ॥ ५३ ॥

चित्रक, धनियां, अजवायन, जिरां, संचरनमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, अमलवेत, बेलगिरि, अनारका छिलका, जवाखार, पिपलामूल और चव्यको एक एक कर्प लेकर १ आढक जलमें पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस क्वाथमें १ प्रस्थ घी डालकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारलेवे । इस घृतके सेवनसे ववासीर, गुल्म, सूजन और मूत्रकृच्छ्र, यह सब विकार दूर होतेहैं । यह घृत अग्निको भी चैतन्य करताहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

पिवेदृतवाष्टगुणाम्बुसिद्धंसित्रकक्षारमुदारवीर्यम् । कल्याणकं-
वापिसपञ्चगव्यांतिक्तमहद्वाप्यथतिक्तकंवा ॥ ५४ ॥

अथवा चित्रक और जवाखारके कल्कको मिलाकर आठगुना जल डाल घृतको सिद्धकरे । इस घृतके सेवनसे बढीहुई शोथ भी दूर होतीहै । एवं कल्याणकघृत अथवा पंचगव्यघृत या महातिक्तक घृत अथवा तिक्तघृतके सेवनसे भी शोथरोग दूर होताहै ॥ ५४ ॥

क्षीरघटेचित्रककल्कलिसेदध्यागतंसाधुविमथ्यतेच । तज्जघृतंचि-
त्रकमूलगर्भतक्केणासिद्धंश्वयथुषमम्यम् ॥ ५५ ॥ अशोऽतिसारानि-
लगुल्ममेहांश्चैतन्निहन्यन्निवलप्रदञ्च । तक्केणवाद्यात्सघृतेनतेन-
भोज्यानिसिद्धामथवायवागूम् ॥ ५६ ॥

चित्रककी जड़की छालको जलके संयोगसे वारीक पीस, घडेमें लेपकरै । जब वह लेप सूखजाय उसमें दूधको गर्मकर दही जमा देवे । फिर इसमें विलोकर घी निकाल लेवे । उस घृतमें आठवां भाग चित्रकका कल्क मिलाकर और चारगुना तक मिला करावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस घृतके सेवनसे बढीहुई सूजन, अर्श, अतिसार, वातगुल्म, प्रमेह यह सब दूर होतेहैं और जठराग्नि बल बढ़ताहै । मात्रा पचनेपर घृत और तकके साथ भोजन करावे । अथवा घृत और तक मिलाकर सिद्ध कीहुई यवागृ पान करावे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

शोथहरयवागू ।

जीवन्त्यजाजीशटिपुष्कराहैःसकारवीचित्रकविल्वमध्येः । सया-
वशूकेर्वदरप्रमाणैर्वृक्षाम्लयुक्ताघृततैलभृष्टाः ॥ ५७ ॥ अशोऽति-
सारानिलगुल्मशोफहृद्रोगमन्दाग्निहितायवागूः । यापञ्चकोलैर्वि-
धिनैवतेनसिद्धाभवेत्साचसमातयैव ॥ ५८ ॥

जीवनी, जीरा, कचूर, पोहकरमूल, कलैजी, चित्रक, बेलकी गिरि और जवा-
खार यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर क्वाय बनावे । उस क्वायको छानकर उसमें
यवागू सिद्धकरे । इस यवागूको इमलीकी खटाईसे सटा बना घृतमें भूनकर सेवन-
करे तो अर्शरोग, अतिसार, वातगुल्म, सूजन, हृद्रोग और मंदाग्नि इन सबमें हित
होना है । अथवा इसी प्रकार पंचकोलसे सिद्ध कीहुई यवागू भी इसीके समान
गुणगती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

कुलत्थयूपश्चसपिप्पलीकोमौद्गश्चसञ्चूषणयावशूकः । रसस्तथावि-
 ष्केरजाङ्गलानांसकूर्मगोधाशिखिशल्लकानाम् ॥ ५९ ॥ सुवर्चि-
 कागृञ्जनकंपटोलंसवायसीमूलकनेत्रनिम्बम् । शाकार्थिनांशाक-
 मतिप्रशस्तंभोज्यंपुराणश्चयवःसशालिः ॥ ६० ॥

पीपलके क्वाथसे सिद्ध किया कुल्थीका यूप अथवा पीपल, मिर्च, सोंठ और जवाखार इनसे सिद्ध किया मूंगका यूप सूजनको शान्तकारक है । और विष्किर पक्षियोंका मांसरस अथवा जांगलजीवोंका मांसरस या कूर्म, गोह, मोर और सेहका मांसरस शोथरोगीके लिये हितकारी है । तथा डुलडुलका साग, सलजम, पटोल, मकोह कच्ची मूली, वेतकी कोंपल, नीम इनके शाक पुराने शालीचावलोंका भात यह सब शोथरोगमें पथ्य हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥

आभ्यन्तरंभेषजमुक्तमेतद्वहिर्हितंयच्छृणुतद्यथावत् । स्नेहान्प्रदे-
 हान्परिपेचनानिस्वेदांश्चवातप्रवलांश्चकुर्थात् ॥ ६१ ॥

शोथरोगकी शान्तिके लिये आभ्यन्तर (भीतरी) चिकित्साका वर्णन कियाग-
 याहै । अब बाहर लेपनादिमें जो हितकारक औषधियें हैं उनको सुनो वायुके शोथमें स्नेहन, प्रलेपन, परिपेचन और स्वेदन कर्म करना हितकारक है ॥ ६१ ॥

वातशोथनाशक शैलेयादि तैल ।

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः । प्रियंगु-
 स्थौणेयकहेममांसीतालीशपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥ ६२ ॥ श्रीवेष्टक-
 ध्यामकपिप्पलीभिःस्पृक्त्वा नखैश्चैवयथोपलाभम् । वातान्वितेऽभ्य-
 ङ्गमुपान्तितैलंसिद्धंसुपिष्टैरपिचप्रदेहम् ॥ ६३ ॥

शैलेय कूठ (भूरी छरीछा अथवा सेंधानमक) अगर, देवदारु, रेणुका, दालचीनी, पद्मककाष्ठ, इलायची, नेत्रवाला, पलाश, नागरमोथा, प्रियंगु, गाडिवन, नागकेशर, जटामांसी, तालीशपत्र, केवटीमोथा, तेजपत्र, धनियां, श्रीवेष्टक, वीरणतृण, पिप्पली, स्पृक्त्वा (असवर्ग) और नख इनमेंसे जो प्राप्त होसकें उनके कल्क और क्वाथ द्वारा सिद्धकिया तैल मालिश करनेसे और - हीं उपरोक्त औषधियोंको लेप करनेसे वातकी सूजन दूर होतीहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

जलैश्चवासाकंकरजशिशुकाश्मर्य्यपत्रार्जकजैश्चसिद्धैः ।

स्विन्नोमृदूष्णोरवितसतोयस्नातश्चगन्धैरनुलेपनीयः ॥ ६४ ॥

वांसा, आककी जडका छिलका, करंजुआ, सोहांजना कुंभेर, और तुलसीके पत्र इन सबको जलमें पकाकर उस जलकी भाफ सूजनपर देना जब अच्छी तरह पसीना आलेवे फिर पसीना शान्त होनेपर धूपसे गर्म हुए जलमें स्नानकर गंधद्रव्योंका लेपन करे ॥ ६४ ॥

पित्तजशोथमें यत्न ।

सवेतसाःक्षीरवतांद्रुमाणांत्वचःसमञ्जिष्ठलतामृणालाः । सचन्द-
नाःपद्मकवालकौचपैत्तेप्रदेहस्तुसतैलपाकः ॥ ६५ ॥ आक्तस्यते-
नाम्बुरविप्रतप्तंसचन्दनंसाभयपद्मकञ्च । खानेमतंक्षीरवतांकपा-
यःक्षीरोदकंचन्दनलेपनञ्च ॥ ६६ ॥

वेतसकी छाल और बड आदि वृक्षोंकी छाल, मजीठ, कमलकी डण्डी, चंदन, पद्माक, सुगंधवाला इन सबको रगडकर लेप करना और इन्हींसे सिद्ध किये तेलकी मालिश पित्तकी सूजनको दूर करताहै । पित्त शोथवाला रोगी इस तैलकी मालिशकर फिर चंदन, हरड और पद्माकको पीसकर जलमें मिलाकर कल्क करे । इसको धूपमें तपाकर शरीरपर लगावे और बड आदि क्षीरीवृक्षोंके क्वाथसे अथवा दूध मिले जलसे स्नानकर चंदनका लेपन करे यह कर्म पित्तकी सूजनको शान्त करताहै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

कफशोथनाशक यत्न ।

कफेतुकृष्णासिकतापुराणपिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेपः ।

कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेकश्चण्डागुरुभ्यामनुलेपनञ्च ॥ ६७ ॥

पीपलका चूर्ण, पुरानी खल, साहजनेकी छाल और राई इनको पीसकर लेप करना कफकी सूजनको दूर करताहै । तथा कुलथी और साँठके क्वाथसे गोमूत्र मिलाकर परिपेचन करना फिर चौर नामक गंधद्रव्य और अगरका लेपकरना कफकी सूजनको शान्त करताहै ॥ ६७ ॥

विभीतकानांफलमध्यलेपःसर्वेषुदाहार्त्तिहरःप्रलेपः ।

यष्ट्याहमुस्तैःसकपित्थपत्रैःसचन्दनैस्तत्पिडकासुलेपः ॥ ६८ ॥

बड़ेकी गुठलीको पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारकी सूजनोंकी दाह दूर होतीहै मुलैठी, नागरमोथा और कैयके पत्ते और लालचंदन इनको रगडकर लेप करनेसे शोथकी पिडका शान्त होतीहैं ॥ ६८ ॥

रास्नावृषार्कत्रिफलाविडङ्गाशिग्रुत्वचोमूपिककर्णिकाच । निम्बा-
र्जकौव्याघ्नखःसदृर्वासुवर्चलात्तिककरोहिणीच ॥ ६९ ॥

सकाकमाचीवृहतीसकुष्ठापुनर्नवाचित्रकनागरेचा उन्मर्दनंशोफिपु ।

सूत्रपिष्टंशस्तस्तथामूलकतोयसेकः ॥ ७० ॥

रासना, अद्रुसा, आककी जडका छिलका, त्रिफला, वायविडंग, सांहजनेकी छाल, मूषकपर्णी, नीमके पत्ते, तुलसीके पत्ते, व्याघ्रनखी, दूर्वा, हुलहुल, कुटकी, मकोय, बडी कटेली, कूठ, पुनर्नवा, चित्रक, सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर सूजनपर मर्दन करना और सूखी मूलीको जलमें पकाकर उस जलका तरडा देना सब प्रकारकी सूजनोंको दूर करताहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अंगावयवभेदसे शोफोंका वर्णन ।

शोफास्तुगात्रावयवाश्रितायेतेस्थानदूष्याकृतिनामभेदात् ।

अनेकसंख्याःकतिचिच्चतेषांनिदर्शनार्थंशृणुचोच्यमानान् ॥ ७१ ॥

जो सूजनमें शरीरके अवयवोंमें होतीहैं वह स्थान दूष्य, आकृति और नामभेदसे अनेक प्रकारकी होतीहैं उनमेंसे उदाहरण मात्रके लिये कुछ सूजनोंको कहतहै सो तुम श्रवण करो ॥ ७१ ॥

गल और शिरकी सूजन ।

दोषास्त्रयःस्वैःकुपितानिदानैःकुर्वन्तिशोफाञ्छिरसःसुघोरांन् ।

अन्तर्गलेघुर्धुरिकान्वितश्चशालूकमुच्छ्वासनिरोधनानि ॥७२॥

तीनों दोष अपने २ हेतुओंसे कुपित होकर सिरमें घोर सूजनको उत्पन्न करतेहैं । तथा कुपितदुष् दोष गलेमें श्वासको रोकनेवाली और घुरघुर शब्द करनेवाली शालूक नामक सूजनको उत्पन्न करतेहैं ॥ ७२ ॥

सुचोय्र और विडालिका ।

गलस्यसन्धौचिबुकेगलेचसदाहरागश्चसनःसुचोय्रः ।

शोफोभृशार्त्तिस्तुविडालिकास्याद्धन्याद्गलेचेद्वलयीकृतास्यात् ७३ ॥

गलेकी संधि, ठोढी, गला इनमें दाहयुक्त, लालवर्ण और श्वाससहित जो सूजन उत्पन्न होतीहै उसको सुचोय्र कहतेहैं । जो शोय गलेमें गोलाकार उत्पन्न हो और उसमें अत्यंत पीडा होतीहो वह विडालिका नामक सूजन मनुष्योंको मारडालताहै ॥ ७३ ॥

तालुविद्रधि उपजिह्व, अधिजिह्व ।

स्यात्तालुविद्रध्यपिदाहरोर्गैर्युताभवेत्तालुनिसात्रिदोषात् ।

जिह्वोपरिष्ठादुपजिह्विकास्यात्कफादधस्तादधिजिह्विकाच ॥ ७४ ॥

दाह और लालवर्णयुक्त तालुवोंमें होनेवाली विद्रधि त्रिदोषसे होती है । जीभके ऊपर उपजिह्वा नामक सूजन उत्पन्न होती है । जीभके नीचे कफजनित सूजन अधिजिह्विका नामकी होती है ॥ ७४ ॥

उपकुश और दंतविद्रधि ।

योदन्तमांसेपुतुरक्तपित्तात्पाकोभवेत्सोपकुशःप्रदिष्टः ।

स्यादन्तविद्रध्यपिदन्तमांसेशोफःकफाच्छोणितसञ्चयोत्थः ॥ ७५ ॥

जो दांतोंके मांसमें रक्तपित्तसे पाक होता है उसको उपकुश कहते हैं । कफ और रक्तसे उत्पन्न हुई दांतोंकी जड़ोंकी सूजन दंतविद्रधि (मसूडा) कही जाती है ॥ ७५ ॥

गलगण्ड और गंडमाला ।

गलस्यपाश्र्वंगलगण्डएकःस्याद्गण्डमालावहुभिस्तुगण्डैः ।

साध्यास्मृतापीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ॥ ७६ ॥

गलेके पार्श्वमें, जो गांठकासा एक आकार प्रकट हो उसको गलगण्ड कहते हैं । और बहुतसी ग्रंथियों हों तो उनको गण्डमाला कहते हैं । यह दोनो साध्य होते हैं । परन्तु इनमें प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और वमन यह सब उपद्रव होनेसे असाध्य माने जाते हैं ॥ ७६ ॥

उपरोक्त सूजनोंकी चिकित्साक्रम ।

तेपांशिराकायशिरोविरेकोधूमः पुराणस्यघृतस्यपानम् ।

सलंघनं वक्रभवेपुचापिप्रहर्षणंस्यात्कवलग्रहश्च ॥ ७७ ॥

इन संपूर्ण सूजनोंको शान्त करनेके लिये शिरालंघन, विरेचन, शिरोविरेचन, घृत्पान और पुराने घृतका पान करना तथा लंघन यह सब हितकारक हैं । मुखमें होनेवाली सूजनोंमें शोथनाशक चूर्णोंको मुखकी शोथपर मलना, शोथनाशक द्रव्योंके व्वाथकी मुखमें धारणकर कुल्ले करना तथा लंघनकरना हितकारक होता है ॥ ७७ ॥

ग्रंथियोंका वर्णन ।

अङ्गैकदेशेष्वनिलादिभिःस्यात्स्वरूपधारीस्फुरणःशिराभिः ।

ग्रन्थिर्महान्मांसभवस्त्वन्तिर्मेदोभवःस्निग्धतमश्चलश्च ॥ ७८ ॥

वातादि दोषोंसे शरीरके किसी देशमें जो सूजन होती है वह वातादिदोषोंके प्रत्यक्ष दृश्यायुक्त होता है । वह सूजन यदि शिराके बीचमें हो तो वह फडकती है इसको

शिराग्रंथि कहतेहैं । यदि सूजन मांसगत हो तो वह बड़ी गांठसी होतीहै उसमें पीडा नहीं होती । और भेदगत ग्रंथि अथवा भेदमें होनेवाली ग्रंथि अत्यंत चिकनी और चलायमान होनेवाली होतीहै ॥ ७८ ॥

ग्रन्थियोंकी चिकित्सा ।

तंशोधितंस्वेदितमश्मकाष्ठैःसांगुष्ठदण्डैर्विनयेदपक्वम् । विपाठ्य-
चोद्धृत्यभिषक्सकोपंशस्त्रेणदग्ध्वाव्रणवच्चिकित्सेत् ॥ ७९ ॥ अद-
ग्धैर्षत्परिशोषितश्चप्रयातिभूयोऽपिशनैर्विवृद्धिम् । तस्मादशेषः
कुशलैःसमन्ताच्छेद्योभवेद्दीक्ष्यशरीरदेशान् ॥ ८० ॥ शेषे कृते
पाकवशेन शीघ्र्येत्ततः क्षतोत्थः प्रसरेद्विसर्पः । उपद्रवं तंप्रतिवा-
र्यतज्ज्ञःस्वैर्भेषजैःपूर्वतरैर्यथोक्तैः । ततःक्रमेणास्ययथाविधानंव्रणं
व्रणज्ञस्त्वरयाचिकित्सेत् ॥ ८१ ॥

संपूर्ण ग्रंथियोंको पकनेसे पहिले ही शोधन तथा स्वेदन करना और पत्थर, काष्ठ, अंगूठा और दण्ड आदिसे सेककर नरम करना चाहिये । और शस्त्रद्वारा चीरकर कोपसमेत निकाल देना चाहिये । तथा ग्रंथिके स्थानको शस्त्रसे दाग देवे और व्रणके अनुसार चिकित्सा करे । यदि उसको शुद्ध करके दग्ध न करदियाजाय तो वह थोडासा दोष भी बाकी रहजानेसे ग्रंथि फिर होजातीहै । इसलिये यदि रक्तवाहिनी नाडीमें या मर्मस्थानमें न हो तो शस्त्रक्रियामें कुशल वैद्य उसको कोपसमेत निकाल डाले । क्योंकि शस्त्रद्वारा निकाल देनेके बाद भी यदि ग्रंथिका कुछ भाग शेष रहजाय तो वह फिर पककर फूटताहै । और विगडकर क्षतजनित विसर्प उत्पन्न कर-
ताहै । ऐसा होनेपर बुद्धिमान् वैद्य उसके संपूर्ण उपद्रवोंको विसर्पमें कहे क्रमसे शान्तकरे । उसके अनन्तर व्रणचिकित्साकी विधिसे क्रमको जाननेवाला वैद्य शीघ्र चिकित्सा करे ॥ ७९, ॥ ८० ॥ ८१ ॥

त्याज्यग्रंथियें ।

विवर्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितञ्चतथागलेमर्मणिसंश्रितञ्च ।

स्थूलःखरश्चापिभवेद्विज्योयश्चापिबालस्थविरावलानाम् ॥ ८२ ॥

कुक्षि, उदर, गला और मर्मस्थानमें उत्पन्न हुई ग्रंथियोंको त्याग देना चाहिये । और जो ग्रंथि स्थूल, दृढ और रूक्ष हो उसमें भी शस्त्रक्रिया करना उचित नहीं, एवं बालक, वृद्ध और दुर्बल मनुष्योंकी ग्रंथियें भी शस्त्रक्रियाके योग्य नहीं होती ॥ ८२ ॥

दाह और लालवर्णयुक्त तालुवोंमें होनेवाली विद्रधि त्रिदोषसे होतीहै । जीभके ऊपर उपजिह्वा नामक सूजन उत्पन्न होतीहै । जीभके नीचे कफजनित सूजन अधिजिह्विका नामकी होतीहै ॥ ७४ ॥

उपकुश और दंतविद्रधि ।

योदन्तमांसेपुतुरक्तपित्तात्पाकोभवेत्सोपकुशःप्रदिष्टः ।

स्यादन्तविद्रध्यपिदन्तमांसेशोफःकफाच्छोणितसञ्चयोत्थः ॥ ७५ ॥

जो दांतोंके मांसमें रक्तपित्तसे पाक होताहै उसको उपकुश कहतेहैं । कफ और रक्तसे उत्पन्न हुई दांतोंकी जड़ोंकी सूजन दंतविद्रधि (मसूडा) कही जातीहै ॥ ७५ ॥

गलगण्ड और गण्डमाला ।

गलस्थपाद्भेगलगण्डएकःस्याद्गण्डमालावहुभिस्तुगण्डैः ।

साध्यास्मृतापीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ॥ ७६ ॥

गलेके पार्श्वमें, जो गांठकासा एक आकार प्रकट हो उसको गलगण्ड कहतेहैं । और बहुतसी ग्रंथियों हों तो उनको गण्डमाला कहतेहैं । यह दोनों साध्य होतेहैं । परन्तु इनमें प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और वमन यह सब उपद्रव होनेसे असाध्य माने जातेहैं ॥ ७६ ॥

उपरोक्त सूजनोंकी चिकित्साक्रम ।

तेपांशिराकायशिरोविरेकोधूमः पुराणस्यघृतस्यपानम् ।

सलंघनंवक्त्रभवेपुचापिप्रहर्षणंस्यात्कवलग्रहश्च ॥ ७७ ॥

इन संपूर्ण सूजनोंको शान्त करनेके लिये शिरावेधन, विरेचन, शिरोविरेचन, घृत्नपान और पुराने घृतका पान करना तथा लंघन यह सब हितकारक हैं । मुखमें होनेवाली सूजनोंमें शोथनाशक चूर्णोंको मुखकी शोथपर मलना, शोथनाशक द्रव्योंके व्वायको मुखमें धारणकर कुल्ले करना तथा लंघनकरना हितकारक होताहै ॥ ७७ ॥

ग्रंथियोंका वर्णन ।

अङ्गैकदेशेष्वनिलादिभिःस्यात्स्वरूपधारीस्फुरणःशिराभिः ।

ग्रन्थिर्महान्मांसभवस्त्वन्तिर्मेदोभवःस्निग्धतमश्चलश्च ॥ ७८ ॥

वातादि दोषोंसे शरीरके किसी देशमें जो सूजन होतीहै वह वातादिदोषोंके प्रत्यक्ष लक्षणोंयुक्त होतीहै । वह सूजन यदि शिराके बीचमें हो तो वह फडकतीहै इसको

शिराग्रंथि कहतेहैं । यदि सूजन मांसगत हो तो वह बड़ी गांठसी होतीहै उसमें पीडा नहीं होती । और भेदगत ग्रंथि अथवा भेदमें होनेवाली ग्रंथि अत्यंत चिकनी और चलायमान होनेवाली होतीहै ॥ ७८ ॥

ग्रन्थियोंकी चिकित्सा ।

तंशोधितंस्वेदितमर्मकाष्ठैःसांगुष्ठदण्डैर्विनयेदपक्वम् । विपाट्य-
चोद्धृत्यभिषक्सकोपंशस्त्रेणदग्ध्वाव्रणवच्चिकित्सेत् ॥ ७९ ॥ अद-
ग्धईपत्परिशोषितश्चप्रयातिभूयोऽपिशनैर्विवृद्धिम् । तस्मादशेषः
कुशलैःसमन्ताच्छेद्योभवेद्वीक्ष्यशरीरदेशान् ॥ ८० ॥ शोषे कृते
पाकव्रशेन शीघ्र्येत्ततः क्षतोत्थः प्रसरेद्विसर्पः । उपद्रवं तंप्रतिवा-
र्य्यतज्ज्ञःस्वैर्भेषजैःपूर्वतरैर्यथोक्तैः । ततःक्रमेणास्ययथाविधानंव्रणं
व्रणज्ञस्वरयाचिकित्सेत् ॥ ८१ ॥

संपूर्ण ग्रंथियोंको पकनेसे पहिले ही शोधन तथा स्वेदन करना और पत्थर, काष्ठ, अंगूठा और दण्ड आदिसे सेककर नरम करना चाहिये । और शस्त्रद्वारा चीरकर कोपसमेत निकाल देना चाहिये । तथा ग्रंथिके स्थानको शस्त्रसे दाग देवे और व्रणके अनुसार चिकित्सा करे । यदि उसको शुद्ध करके दग्ध न करदियाजाय तो वह थोडासा दोष भी बाकी रहजानेसे ग्रंथि फिर होजातीहै । इसलिये यदि रक्तवाहिनी नाडीमें या मर्मस्थानमें न हो तो शस्त्रक्रियामें कुशल वैद्य उसको कोपसमेत निकाल डाले । क्योंकि शस्त्रद्वारा निकाल देनेके बाद भी यदि ग्रंथिका कुछ भाग शेष रहजाय तो वह फिर पककर फूटताहै । और बिगडकर क्षतजनित विसर्प उत्पन्न करताहै । ऐसा होनेपर बुद्धिमान् वैद्य उसके संपूर्ण उपद्रवोंको विसर्पमें कहे क्रमसे शान्तकरे । उसके अनन्तर व्रणचिकित्साकी विधिसे क्रमको जाननेवाला वैद्य शीघ्र चिकित्सा करे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥

त्याज्यग्रंथियें ।

विवर्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितश्चतथागलेमर्मणिसांश्रितश्च ।

स्थूलःखरश्चापिभवेद्विवर्ज्योयश्चापिवालस्थविरावलानाम् ॥ ८२ ॥

कुक्षि, उदर, गला और मर्मस्थानमें उत्पन्न हुई ग्रंथियोंको त्याग देना चाहिये । और जो ग्रंथि स्थूल, दृढ और रूक्ष हो उसमें भी शस्त्रक्रिया करना उचित नहीं, एवं वालक, वृद्ध और दुर्बल मनुष्योंकी ग्रंथियें भी शस्त्रक्रियाके योग्य नहीं होती ॥ ८२ ॥

अर्बुदकी चिकित्सा ।

ग्रन्थ्यर्बुदानाश्चयतोऽविशेषःप्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूप्यैः ।

ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानिविधानविद्वन्थिचिकित्सितेन ॥ ८३ ॥

स्यात्, हेतु, लक्षण, दोष और दूप्योंसे ग्रंथिरोगमें और अर्बुदमें कोई विशेषता नहीं है । इसलिये चिकित्साको जाननेवाला वैद्य अर्बुद (रसीली) रोगकी चिकित्सा ग्रंथिरोगके समान ही करे ॥ ८३ ॥

आलजीके लक्षण ।

ताम्रासशूलापिडकाभवेद्यासात्वालजीनामपरिस्तुताग्रा ॥ ८४ ॥

ताम्रवर्णकाली, शूलयुक्त और जिसके अग्रभागमें बहुत थोडा साव होताहै उस पिडिकाको आलजी कहतेहैं ॥ ८४ ॥

चिप्यक और विदारिका ।

शोफःकृतश्चर्मनखान्तरेस्यान्मांसास्त्रिदूषीभृशशीघ्रपाकः । ज्वरान्वितावंक्षणकक्षजायावर्तिर्निरर्तिःकठिनायताच ॥ ८५ ॥ विदा-

रिकासाकफमारुताभ्यांतेपांयथादोषमुपक्रमःस्यात् । विस्त्रावणं पिण्डिकयोपनाहःपक्वेपुचैवत्रणवच्चिकित्सा ॥ ८६ ॥

चर्म और नखोंके भीतर जो मांस और रक्तको दूषित करनेवाला अत्यंत शीघ्र-पाकी शोथ उत्पन्न होताहै (इसको चिप्य कहतेहैं) । वंक्षण और कक्षामें जो बर्तियोंके समान पीडारहित, कठोर, फैलीहुई, ज्वरयुक्त सूजन होतीहै उसको विदारिका कहतेहैं यह कफ और वायुसे उत्पन्न होतीहै । इन सब पिडिकाओंकी दोषानुसार चिकित्सा करना चाहिये । कच्ची अवस्थामें रक्तसावण और पिण्डिकाद्वारा उपनाह स्वेद, तथा प्रकने पर व्रणरोगके समान क्रिया करे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

विस्फोटक और कक्षा ।

विस्फोटकाःसर्वशरीरजाःस्युःस्फोटास्तुरागज्वरतर्पयुक्ताः ।

यज्ञोपवीतप्रतिमाःप्रभूताःपित्तानिलाह्लाजनिभास्तुकक्षाः॥८७॥

जो संपूर्ण शरीरमें लालवर्णके ज्वर और तृषायुक्त फोडे हों उनको विस्फोटक कहते हैं ॥ यज्ञोपवीतके समान वातपित्तसे जो शरीरमें सूजन होतीहै उसको कक्षा (ब्रह्मसांचली) कहतेहैं ॥ ८७ ॥

मसूरिका ।

याश्चापराःस्युःपिडकाःप्रकीर्णाःस्थूलाणुमध्याअपिपित्तजास्ताः ।

सर्वत्रगात्रेषु मसूरमात्रयो मसूरिकाः पित्तकफात्प्रदिष्टाः ॥ ८८ ॥

इनके सिवाय शरीरमें होनेवाली और जो पिडिकायें हैं उनमें कोई स्थूल, कोई प्रकीर्ण, कोई छोटी, कोई मध्यम होती है यह सब पित्तसे उत्पन्न होती हैं। कफ और पित्तसे संपूर्ण शरीरमें मसूरके समान कुन्तियें होती हैं उनको मसूरिका कहते हैं ॥ ८८ ॥

विसर्पशान्त्यै विहिता क्रियाया तांतासुकुष्ठेषु हितां विदध्यात् ॥ ८९ ॥

इन सबकी शान्तिके लिये विसर्प और कुष्ठरोगमें जो चिकित्सा कही है वह चिकित्सा करे ॥ ८९ ॥

अण्डवृद्धि ।

ब्रह्मानिलार्थैर्वृषणे स्वलिङ्गैरन्त्रान्निरेतिप्रविशेन्मुहुश्च । सूत्रेण पूर्णं
मृदुमेदसा तु स्निग्धश्च विद्यात्कठिनश्च शोथम् । विरेचनाभ्यङ्गनि-
रूहलेपाः पक्केषु चैव व्रणवच्चिकित्सा ॥ ९० ॥ स्यान्मूत्रसेकः कफजं
विपाद्य विशोध्य सीव्यं व्रणवच्चपक्वम् ॥ ९१ ॥

वातादि दोष कुपित होकर अपने अपने लक्षणोंसे युक्त हो उदर स्थानोंकी नसोंमें पहुँचकर वारंवार वृषणोंमें प्रवेश करते हैं उस समय फोतोंकी नसोंको बढा देते हैं इसको अंत्रवृद्धि कहते हैं। दोषों द्वारा वृषणों (फोते) में मूत्रके परिपूर्ण होनेसे जो मृदु शोथ उत्पन्न होती है उसको मूत्रशोथ कहते हैं। यदि दोष वृषणोंमें मेद पहुँचायें तो वह शोथ चिकनी और कठिन होती है। इससे अण्डकोश बढजाते हैं इसी रोगको अण्डवृद्धि कहते हैं। इस रोगमें अपक्व अवस्थामें विरेचन, अभ्यंग, निरूहण और लेपन क्रिया करे। इसके पकजानेपर व्रणके समान चिकित्सा करे। मूत्रवृद्धिमें शस्त्रद्वारा वेधनकर मूत्रको निकालदेवे। कफजनित मेदज वृद्धिमें शस्त्रसे चीरकर मेद निकालकर शुद्ध करके सीदिना चाहिये। और पकजानेपर व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ ९० ॥ ९१ ॥

भगंदरका वर्णन ।

क्रिन्धस्थिसूक्ष्मक्षणानव्यवाचप्रवाहनान्युत्कटुकाश्चपृष्ठैः । गुदस्य-
पाश्वेपिडकाभृशार्तिः पक्वप्रभिन्ना तु भगन्दरः स्यात् । विरेचनश्चैषण-
पाटनश्च विशुद्धमार्गस्य च तैलदाहः ॥ ९२ ॥ स्यात्क्षारमूत्रेण सु-
पाचितेनाच्छिन्नस्य चास्य व्रणवच्चिकित्सा ॥ ९३ ॥

गुदामें कृमियोंके होनेसे अस्थि, पेंडका आदि गुदाके किनारे चुभजानेसे, मैथुनसे,

बिना वेगके जोर लगाकर मलत्याग करनेसे घोंडेकी नंगी पीटर चढनेसे अथवा अन्य उत्कट सवारीपर बैठनेसे गुदाके किनारेपर पीडायुक्त पिडिका होजाती है । वह पककर फूटतीहै उनको भगन्दर कहतेहैं । भगन्दररोगमें विरेचन एषणीयन्त्र (सलाई) द्वारा भगन्दरको देखकर उसमें रोपण औषधी पहुंचाना और चीरकर स्वच्छ करदेना चाहिये । फिर शुद्ध मार्ग होनेपर तैल आदि औषधीके साथ दाह करना अथवा क्षार और मूत्रद्वारा सिद्ध किये तैलसे दग्ध करना तथा स्वच्छ होनेपर व्रणके समान चिकित्सा करना चाहिये ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

श्लीपदकी निदान चि० ।

जंघासुपिण्डीप्रपदोपरिष्ठात्स्याच्छ्लीपदमांसकफाल्मदोषात् ।

शिराकफघ्नश्चविधिःसमग्रस्तत्रैष्यतेसर्पलेपनञ्च ॥ ९४ ॥

जंघाकी पिण्डलियोंमें पीछेकी तग्न मांस, कफ और रक्तके दोषसे नसें फूलकर जो मोटापन होजाताहै उसको श्लीपद कहतेहैं । इस श्लीपदरोगमें शिरावेधन, कफनाशक चिकित्सा और कफनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलोंका लेपन हित होताहै ९४ ॥

जालगर्दभका निदान चि० ।

मन्दास्तुपित्तप्रवलाःप्रदिष्टादोषाःसुतीव्रतनुरक्तपाकम् । कुर्वन्ति शोथंज्वरतर्पयुक्तं विसर्पणंजालगर्दभाख्यम् । विलंघनंरक्तविमोक्षणञ्चविरूक्षणंकायविरेचनञ्च ॥ ९५ ॥ धात्रीप्रयोगाञ्छिशिरान्प्रदेहान्कुर्यात्सदाजालगर्दभस्य । एवंविधांश्चाप्यपरान्निशम्य शोथप्रकाराननिलादिलिङ्गैः । शान्तिनयेदोषहरैर्यथास्वमालेपनच्छेदनभेददाहैः ॥ ९६ ॥

मंद, वात कफ और पित्तकी प्रवलतासे तीव्र दाह और पाकयुक्त पतली लालवर्णकी ज्वर और तृपासहित फैलनेवाली जालगर्दभ नामक मूजन होतीहै । इसमें लंघन, शिरामोक्षण, विरूक्षण, कायविरेचन, करना चाहिये । इसमें आमलोंका प्रयोग और शीतल लेपोंका करना हितकारी होताहै । और इसी प्रकारके पित्त प्रधान अन्य पिडिका तथा मूजनोंपर भी दोषोंके लक्षणोंको विचारकर उन्ही २ दोषोंके हरनेवाले लेप, छेदन, भेदन, दाह आदि क्रिया करना चाहिये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

आगन्तु शोथ ।

प्रायोऽभिघातादनिलःसरक्तःशोथंसरागंप्रकरोतितत्र ।

वीसर्पन्नुन्मारुतरक्तनुच्चकार्यंविषघ्नंविषजेचकर्म ॥ ९७ ॥

चोट आदि लगनेसे जो शोथ उत्पन्न होता है उसमें प्रायः वायु और रक्त दूषित होकर लालवर्णकी सूजन उत्पन्न होती है, उसमें विसर्पनाशक तथा वायु और रक्तको शान्त करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये । विपसे उत्पन्न हुई सूजनमें विपनाशक क्रिया करना हित है ॥ ९७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवतिचात्र । त्रिविधस्यदोषभेदात्सर्वाद्धावयवगात्रभेदाच्च ।

इवयथोर्द्विविधस्यतथालिङ्गानिचिकित्सितञ्चोक्तम् ॥ ९८ ॥

इति चरक० चि० श्रयथुचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस अध्यायमें तीन प्रकारके दोषोंके भेदसे शोथ, 'सर्वांगगत शोथ, अर्धांगशोथ और अवयव तथा स्थानभेदसे शोथ उनके निज और आगन्तु दो भेद, लक्षण और चिकित्सा यह सब वर्णन किया गया है ॥९८ ॥

इति श्रीचर० प्र० आ० स० चि० श्रयथुचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथात उदरचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवान्ना-
त्रेयः ।

अब हम उदरचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकारः भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

सिद्धविद्याधराकीर्णकैलासेनन्दनोपमे । तप्यमानंतपस्तीव्रंसा-
क्षाद्धर्ममिवस्थितम् ॥ १ ॥ आयुर्वेदविदांश्रेष्ठंभिपग्निव्याप्रवर्त्त-
कम् । पुनर्वसुंजितात्मानमग्निवेशोऽन्नवीद्वचः ॥ २ ॥ भगवन्नृदरै-
र्दुःखैर्दृश्यन्ते ह्यर्दितानराः । शुष्कवक्त्राः कृशैर्गात्रैराध्मातोदरकु-
क्षयः ॥ ३ ॥ प्रनष्टाग्निबलाहाराः सर्वचेष्टास्वनीश्वराः । दीनाः
प्रतिक्रियाभावाज्जिह्वतोऽसूननाथवत् ॥ ४ ॥ तेषामायतनंसं-
ख्यांप्राग्रूपाकृतिभेपजान् । यथावज्ज्ञातुमिच्छामिगुरुणासम्य-
गीरितम् ॥ ५ ॥

सिद्ध और विद्याधरोंसे पर्याप्त हुए नन्दनवनके समान कैलासपर्वतमें तीव्र तपको

तपतेहुए साक्षात् धर्मके समान स्थितहुए आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ वैद्यविद्याके प्रवर्तक जितात्मा पुनर्वसुजीके प्रति अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! मनुष्य उदररोगसे दुःखित हुए दिखाई देतेहैं और उदररोग होनेसे उनके मुख सूखेहुए, कृश-शरीर, उदर और कुक्षियोंमें अफारेयुक्त, मंदाग्नि, बलरहित, सब चेष्टाओंमें असमर्थ हुए, दीन अनाथोंके समान प्रतिक्रियारहित हुए प्राणोंका त्याग करतेहैं । इसलिये उदररोगके कारण, संख्या, पूर्वरूप, रूप और चिकित्साको कृपाकर कहिये मैं इस विषयमें यथार्थ जाननेकी इच्छा करताहूँ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

सर्वभूतहितायर्षिःशिष्येणैवंप्रचोदितः । सर्वभूतहितंवाक्यंव्या-
हर्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

इस प्रकार शिष्यके पूछनेपर संपूर्ण मनुष्योंके हितके लिये सबके हितकारक वाक्यको महर्षि आत्रेयजी इस प्रकार कहनेलगे ॥ ६ ॥

उदररोगकी संप्राप्ति ।

अग्निदोषान्मनुष्याणारोगसद्वाः पृथग्विधाः । मलवृद्ध्याप्रवर्त्त-
न्तेविशेषेणोदराणितु ॥ ७ ॥ मन्देऽशौमलिनैर्भुक्तैरपाकादोष-
सञ्चयः । प्राणाग्न्यपानान्संदूष्यमार्गान्वद्धोत्तरोत्तरान् ॥ ८ ॥
त्वङ्मांसान्तरमागम्यकुक्षिमाध्मापयन्भृशम् । जनयत्युदरंतस्य
हेतुंशृणुसलक्षणम् ॥ ९ ॥

जठराग्निके दोषसे मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारके रोगसमूह उत्पन्न होते हैं और विशेषकर अग्निके विकारसे मलकी वृद्धि होकर उदररोग उत्पन्न होतेहैं मंदाग्निमें मलकारक भोजन करनेसे उस भोजनका परिपाक नहीं होता उससे दोषोंका संचय होताहै । संचित हुए दोष प्राणवायु, जठराग्नि और अपानवायुको दूषितकर ऊपर नीचेके मार्गोंको बद्ध करदेतेहैं और त्वचा और मांसके मध्यमें प्राप्त होकर दोनों कुक्षियोंमें अफारा करतेहुए उदररोगको उत्पन्न करदेतेहैं उस उदररोगके कारण और लक्षणोंको श्रवण करो ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

उदररोगके कारण ।

अत्युष्णलवणक्षारविदाह्यम्लरसाशनात् । मिथ्यासंसर्जनाद्रूक्ष-
विरुद्धाशुचिभोजनात् ॥ १० ॥ स्त्रीहाशौग्रहणीदोषकर्षणात्कर्म-
विभ्रमात् । क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्वेगविधारणात् ॥ ११ ॥

स्रोतसांदूषणादामात्संक्षोभादतिपूरणात् । अर्शोवलिशकृद्रोधा-
दन्त्रस्फुटनभेदनात् ॥ १२ ॥ अतिसञ्चितदोषाणांपापंकर्मच
कुर्वताम् । उदराण्युपजायन्तेमन्दाग्नीनांविशेषतः ॥ १३ ॥

अत्यन्त उष्ण, नमकीन, क्षार, विदाही और अम्लरसोंके अत्यंत सेवनसे विरेच-
नके अनन्तर पेयादि क्रमके विगडजानेसे रूक्ष विरुद्ध और अपवित्र (भोजनोंके करनेसे
प्रीहा, व्यर्थ और) संग्रहणीके विकारसे शरीरके अत्यन्त कर्पण होनेसे वमन,
विरेचनादिक कामोंमें विभ्रम होनेसे, कुष्ठरोगोंमें चिकित्सा न करनेसे, रूक्षता
होनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको धारण करनेसे, स्रोतोंके दूषित होनेसे आमदोषसे मन
और शरीरमें संक्षोभ होनेसे, अत्यंत भोजन करनेसे, अर्शरोगके मस्सों द्वारा
मलद्वार रुककर अपानवायु और मलके रुकजानेसे किसी दुष्ट पदार्थके सेवन द्वारा
आंतोंके(फटजानेसे अथवा आंतोंमें)फटनेकीसी पीडा होनेसे जिन मनुष्योंके दोष अति
संचित हुए हों और पापाचारी मनुष्योंके तथा विशेषकर मंदाग्निवालोंको उदररोग
उत्पन्न होतेहैं ॥ १०-१३ ॥

उदररोगके पूर्वरूप ।

क्षुन्नाशःस्यादतिस्त्रिगुर्वन्नंपच्यतेचिरात् । भुक्तंविदाह्यतेसर्व-
जीर्णाजीर्णनवेत्तिच ॥ १४ ॥ सहतेनातिसौहित्यमीपच्छोफश्चपा-
दयोः । शश्वद्वलक्षयोऽल्पेऽपिव्यायामेश्वासमृच्छति ॥ १५ ॥ पुरी-
पनिचयोवृद्धिरुदावर्त्तकृताचरुक् । वस्तिसन्धौरुगाध्मानंवर्द्धतेपा-
त्यतेऽपिच ॥ १६ ॥ आतन्यतेचजठरमपिलघ्वल्पभोजनात् ।
राजीजन्मवलीनाशइतिलिङ्गंभविष्यताम् ॥ १७ ॥

भूख न लगना, मीठे, चिकने और भारी पदार्थोंका बहुत बिलंबसे परिपाक होना
भोजन किये अन्नका विदाही (छातीमें दाह उत्पन्न करनेवाला) परिपाक होना और
भोजनका यथोचित परिपाक होगया या नहीं हुआ यह प्रतीत न होना, पेट
भरकर भोजन करनेमें असमर्थ होना, दोनों पांवाँपर किंचित् मूजनसी प्रतीत
होना बलका शीघ्र क्षय होना किंचित् परिश्रम करनेपर भी उदरमें मलका संचय
होना, उदावर्त्तजनित पीडा होना, वस्तिकी संधियोंमें पीडा होना, अफारेकी वृद्धि
होतीजाना, हल्का और थोडासा भोजन करनेपर भी पेटका फटासा जाना और
तनजाना, पेटमें रेखासी उत्पन्न होजाना और उदरके सलयट दृग् होकर कपालके
समान तनजाना यह उदररोगके पूर्वरूप हैं ॥ १४-१७ ॥

उदररोगकी संप्राप्ति ।

रुद्धास्वेदाम्बुवाहानिदोषाःस्रोतांसिसञ्चिताः ।

प्राणापानान्हिसंदृष्यजनयन्त्युदरंनृणाम् ॥ १८ ॥

संचित हुए वातादि दोष स्वेदवाही और जलवाही स्रोतोंको रोककर प्राण और अपान वायुको दूषित करदेतेहैं फिर मनुष्यको उदररोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १८ ॥

उदररोगके सामान्य लक्षण ।

कुक्षेराध्मानमाटोपःशोफःपादकरस्यच ।

मन्दोऽग्निःश्लक्ष्णगण्डत्वंकार्श्यञ्चोदरलक्षणम् ॥ १९ ॥

कुक्षीमें अफारेका होना, पेटका फूलजाना, हाथ पैरोंमें सूजन, मंदाग्नि, कपोलोंमें चिकनाहट और कृशता यह उदररोगके साधारण लक्षण हैं ॥ १९ ॥

उदररोगके ८ भेद ।

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चप्लीहबन्धक्षतोदकैः ।

सम्भवन्त्युदराण्यष्टतेपालिंगंपृथक्शृणु ॥ २० ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे, त्रिदोषसे, ड्डीहरोगसे, बद्ध, क्षत और जलके विकारसे उदररोग आठ प्रकारका होताहै । अब उनके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवण करो ॥ २० ॥

वातोदरका निदान ।

रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तकर्शनैः । वायुःप्रकुपितःकुक्षिहृ-

द्वस्तिगुदमार्गगः ॥ २१ ॥ हत्वाग्निं कफमुद्धूयतेन रुद्धगतिस्तथा ।

आचिनोत्युदरंजन्तोस्त्वङ्मांसान्तरमाश्रितः ॥ २२ ॥

रूक्ष और अल्प भोजनके करनेसे, अधिक परिश्रमसे, मलमूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे, उत्पन्न हुए उदावर्त्तसे और शरीरके कृश होजानेसे कुक्षी, हृदय, वस्ति, गुदा और स्रोतगत वायु कोपको प्राप्त होकर जठराग्निको नष्ट कर देतीहै । फिर कफको बढ़ाकर ऊपर और नीचेके मार्गोंको रोककर त्वचा और मांसके मध्यमें स्थित होकर वायु उदररोगको करतीहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

वातोदरके लक्षण ।

तस्यरूपाणिकुक्षिपाणिपादवृषणश्चयथूदरविपाटनमनियतौचवृ-
द्धिह्यासौकुक्षिपार्श्वशूलोदावर्त्ताङ्गमर्दपर्वभेदशुष्ककासकार्श्यदौर्व-
ल्यारोचकाविपाकाअधोगुरुत्वंवातवर्च्चोमूत्रसङ्गःश्यावारुणत्वंनख-

नयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंतनुअसितराजीशिरासन्तत-
माहतमाध्मातदृतिशब्दवद्भवति । वायुश्चोद्धर्मधस्तिर्य्यक्चसशू-
लशब्दश्चरतिएतद्वातोदरंविद्यात् ॥ २३ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे—कुक्षी, हाथ, पांव और फोतोंमें सूजन, पेटका फटनासा प्रतीत होना, कभी पेट फटना, कभी कम होना, कुक्षिशूल, पार्श्वपीडा, उदावर्त, अंगडाई, पर्वभेद, सूखी खांसी, शरीरका कृज होना, दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, देहका अधोभाग भारी होना, अधोवायु, मल और मूत्रका वद्ध होना, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका श्याम और लालवर्ण होना, पतली और काले रंगकी रेखा तथा नसोंका जालसा उदरपर दिखाई देना, उदरकों बजानेसे फूलीहुई मसकके समान शब्द होना, तथा वायु ऊपर, नीचे और तिरछी तथा सब धोर शूल और शब्दके साथ विचरना । यह वातजनित उदररोगके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

पित्तज उदररोगके निदान ।

कटुम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसेवनैः ।

विदाह्यध्यशनाजीर्णश्चाशुपित्तंसमाचितम् ॥ २४ ॥

प्राप्यानिलकफौरुद्धामार्गमुन्मार्गमास्थितम् ।

निहत्यामाशयेवह्निजनयत्युदरंततः ॥ २५ ॥

कटु, अम्ल, लवण, अत्यंत उष्ण और तीक्ष्ण द्रव्योंके सेवनसे, अधिक काल तक धूपमें रहनेसे, विदाही भोजन करनेसे अधिक भोजन तथा अजीर्णकारी भोजनके करनेसे पित्त संचित होकर कफ और वायुके साथ मिलजाताहै उससे पित्तका मार्ग रुककर उन्मार्गगामी होजाताहै तब आमोशयकी अग्नि नष्ट होनेसे वह पित्त उदररोगको उत्पन्न करताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

पित्तज उदररोगका लक्षण ।

तस्यरूपाणि—दाहज्वरतृष्णामूर्च्छातीसारभ्रमाःकटुकास्यत्वं हारि-
तहारिद्रत्वंनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंनिलपीतहारि-
द्रहरितताम्रराजीशिरावनद्धंदद्याहूपयतेधूप्यतेजम्मायते स्वियते
क्लिद्यतेमृदुस्पशंक्षिप्रपाकश्चभवतिएतत्पित्तोदरंविद्यात् ॥ २६ ॥

उसके ये लक्षण होते हैं । जैसे—दाह, ज्वर, प्यास, मूर्च्छा, अतिसार, भ्रम, मुखमें कड़ुआपन और मुख, नेत्र, नख, त्वचा, मूत्र यह सब हरे तथा हल्दीके समान पीले वर्णके हों और पेटके ऊपर नीली, पीली हल्दीके वर्णकी, हरी और ताम्रवर्णकी रेखा तथा नसोंका जाल दिखाई देना और दाह, क्लेश, धूँआसा निकलना, संताप, उष्णता, स्वेद, क्लेद, नम्र, स्पर्श और शीघ्र पाक यह पित्तके उदररोगके लक्षण जानने ॥ २६ ॥

कफज उदररोगका निदान ।

अव्यायामदिवास्वप्नस्वाद्वित्स्निग्धपिच्छिलैः ।

दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्चात्युपसेवितैः ॥ २७ ॥

कुष्ठेनश्लेष्मणास्रोतःस्त्राहतेष्वामृतोऽनिलः ।

तमेवपीडयन्कुट्यादुदरं वहिरन्त्रगः ॥ २८ ॥

कसरत न करनेसे, दिनमें सोनेसे, मधुर और अत्यंत चिकने तथा पिच्छिल द्रव्योंके अधिक सेवनसे दही, दूध और अनूपसंचारी जीवोंका मांस अधिक सेवन करनेसे कफ कुपित होकर वायुसे मिले स्रोतोंको रोक देता है तब उस कफसे मिला हुआ वायु-कफको ही पीडित करता हुआ पेटकी नाडियोंमें पहुंचकर कफके उदररोगको उत्पन्न करता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

कफके उदररोगके लक्षण ।

तस्यरूपाणि-गौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्दसुतिपाणिपादमुष्कोरुशो-
फोत्क्लेशनिद्राकासश्वासाःशुक्लत्वञ्चनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवसार्च-
मपिचोदरंशुक्रराजीशिरासन्ततंगुरुस्तिमितस्थिरंकठिनञ्चभवति-
एतच्छ्लेष्मोदरंविद्यात् ॥ २९ ॥

उसके ये लक्षण होते हैं । जैसे—शरीरमें भारीपन, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, अंगमर्द, शरीरका सोयाहुआसा होना, हाथ, पांव, अण्डकोश और छातीमें सूजन होना, कफका उत्क्लेश होना, निद्रा, खांसी और श्वासका होना तथा नख, नेत्र, मूत्र और मलका श्वेत होना और सफेद रंगकी रेखा तथा नसोंके जालसे पेटका व्याप्त होना, पेटका भारी, आर्द्र, स्थिर और कठिन होना, यह सब कफजनित उदररोगके लक्षण हैं ॥ २९ ॥

सन्निपातज उदररोगके लक्षण ।

दुर्बलाक्षेरपथ्यामविरोधिगुरुभोजनात् । स्त्रीदन्तैश्चरजोरोमविष्मू-

त्रास्थिनखादिभिः ॥ ३० ॥ विषैश्चमन्दैर्वाताद्याःकुपिताःसञ्चिता-
स्त्रयः । शनैःकोष्ठेप्रकुर्वन्तोजनयन्त्युदरंनृणाम् ॥ ३१ ॥

दुर्बल व्यक्तिवाले मनुष्यके कुपथ्य, आमजनक, विरुद्ध और भारी भोजन करनेसे अथवा स्त्रीका दियाहुआ मासिकरज, रोम, विष्ठा, मूत्र, अस्थि और नख आदिके खानेसे अथवा बहुत देरमें असर करनेवाले (कानके मैल आदि) विषके खानेसे वातादि तीनों दोष संचित होकर धीरे धीरे कोष्ठमें कुपित हो सन्निपातके उदररोगको उत्पन्न करतेहैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

सन्निपातज उदररोगके लक्षण ।

तस्यरूपाणि—सर्वेषामेवदोषाणांसमस्तानिलिङ्गान्युपलभ्यन्तेवर्णा-
श्चनखादिपुउदरमपिनानावर्णराजीशिरासन्ततंभवतिपतत्सन्निपा-
तोदरंविद्यात् ॥ ३२ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे—वातादि तीनों दोषोंके सपूर्ण लक्षण दिखाई देना, नख नेत्रादिकोंके वर्ण अनेक प्रकारके होना, उदरमें अनेक वर्णकी रेखा और शिराओंका जाल दिखाई देना यह सन्निपातज उदररोगके लक्षण जानना ॥ ३२ ॥

श्लीहोदरका निदान ।

आशितस्यातिसंक्षोभाद्यानयानाभिचेष्टितैः । अतिव्यवायभाराध्व-
वमनव्याधिकर्शनैः ॥ ३३ ॥ वामपाश्चात्श्रितःश्लीहाच्युतःस्थाना-
त्प्रवर्द्धते । शोणितंवारसादिभ्योविवृद्धंतंविवर्द्धयेत् ॥ ३४ ॥

भोजन करके अत्यंत क्षोभकारक ऊंट आदिकी मवारीपर चठना अथवा भोजन करते ही तुरंत बहुत हिलने जुलनेवाली चेष्टा करना, अत्यंत मैथुन करना, भार उठाना और मार्ग चलना तथा व्याधिते गर्भाग्का कृश होजाना । इन कारणोंसे याई वगलमें रहनेवाली तिष्टी (श्लीहा) अपने स्थानमें अधिक चटजातीहै । अथवा रसादिकोंसे वृद्धिको प्राप्त हुआ रुधिर तिष्टीको बढा देताहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इतितस्यश्लीहाकठिनोऽशीलेवादौवर्द्धमानःकच्छपसंस्थानउपलभ्य
तेसचोपेक्षितःक्रमेणकुक्षिजठरमध्यधिष्ठानश्परिक्षिपन्नुदरमभि-
निवर्त्तयति ॥ ३५ ॥

कोई दुष्ट विषे पुण्योको यज्ञमें दत्तेके विषे भ्रष्टानमें जानसी गैठ और रज आदि विष्ठा देतीहै यह विषके समान मनुष्योंके शरीरमें अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै ।

फिर वह तिल्ली पहिले अग्नीलाके समान कठोर होकर क्रमसे बढ़ते २ कछुएकी पीठके समान प्रतीत होने लगतीहै फिर यह शीघ्र यत्न न किये जानेसे क्रमपूर्वक बढ़ते २ कुक्षी, पेट, और अमिके अधिष्ठानको धक्का पहुंचाती हुई संपूर्ण उदरको बढ़ा देतीहै ॥ ३५ ॥

प्लीहोदरके लक्षण ।

तस्यरूपाणि—दौर्वल्यारोचकाविपाकवर्चोमूत्रग्रहतमःपिपासाङ्ग-
मर्दच्छर्दिमूर्च्छाङ्गसादकासश्वासमृदुज्वरानाहाग्निनाशकार्श्यास्य-
वैरस्यपर्वभेदकोष्ठवातशूलान्यपिचोदरमरुणवर्णविवर्णवानीलहारि-
तहारिद्रराजिमद्भवति एवमेवयकृदपिदक्षिणपार्श्वस्थंकुर्यात्तुल्य-
हेतुलिङ्गौपधत्वान्तस्यप्लीहजठरएवावरोधइत्येतद्यकृत्प्लीहोदरंवि-
द्यात् ॥ ३६ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे—दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, मल मूत्रका रुकना, नेत्रोंके आगे अन्धकार प्रतीत होना, टूपा, अंगड़ाई, वमन, मूर्च्छा, अंगोंका सोना, खांसी, श्वास, मंदज्वर, अफारा, अमिका नाश, कृशता, मुखका विरस होना, पर्वभेद, कौठमें वायुकी पीडा और पेटका लाल अथवा देहके समान वर्ण होना और नीले, हरे वा हल्दीके रंगकी रेखा और नसोंके जालसे पेटका विरना यह प्लीहोदरके लक्षण होतेहैं । इसी प्रकार दाहिने बगलमें यकृत भी प्लीहाके समान बढ़कर उदररोगको प्रगट करताहै । परन्तु प्लीहा और यकृतके हेतु, लक्षण और औषधमें तुल्यता होनेसे यकृतजनित उदररोगको अलग वर्णन नहीं कियाहै ॥ ३६ ॥

वृद्धोदरके निदान ।

पक्ष्मवालैःसहान्नेनभुक्तैर्वद्भ्रायनेगुदे । उदावर्त्तैस्त्वथाशोभिरन्त्रसं-
मूर्च्छनेनवा ॥ ३७ ॥ अपानोमार्गसंरोधाद्धात्वश्लिकुपितोऽनिलः ।

वर्चःपित्तकफान्नुद्धाजनयत्युदरततः ॥ ३८ ॥

भोजनके साथ पलकोंके बाल खाये जानेसे अथवा केशमिले भोजनके किये जानेसे अथवा उदावर्तके होनेसे या अशोक मस्तों द्वारा गुदाके रुकजानेसे और अंतडियोंके संमूर्च्छन होनेसे मलद्वारा रुककर अपानवायुका मार्ग बन्द होनेसे वह वायु कुपित होजठराग्निको हननकर मल, पित्त और कफको रोकदेतीहै । तब बद्ध-
गुदोदर नामके उदररोगको उत्पन्न करताहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वद्धगुदोदरके लक्षण ।

त्तस्यरूपाणि-तृष्णादाहज्वरमुखनालुशोषोरुसादकासश्वासदौर्ब-
ल्यारोचकाविपाकवर्चोमूत्रसङ्गाध्मानच्छर्दिक्ष्वथुशिरोहन्नाभिगु-
दशूलान्यपिचोदरंमृढवातंस्थिरमरुणंनीलराजिशिरावनद्धमराजि-
कंवाप्रायोनाभ्युपरिगोपुच्छवदभिनिवर्त्ततइत्येतद्वद्धगुदोदरंवि-
द्यात् ॥ ३९ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे-प्यास, दाह, ज्वर, मुख और तालुका शोष होना,
दोनों जाँवोंका रहसा जाना, खांसी, श्वास, दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक
न होना, मलमूत्रका रुकना, अफारा, घमन, हिचकी, मस्तकपीडा, हृदय, नाभि
और गुदामें शूल होना, अधोवायुका न निकलना, उदरका स्थिर होना तथा लाल
और नीली रेखाओं तथा नसोंके जालसे व्याप्त होना, अथवा रेखाओंसे बिना ही
लाल और नीली नसोंसे व्याप्त होना, प्रायः नाभिका ऊर्ध्वभाग गोपुच्छके समान
होना, यह वद्धगुदोदरके लक्षण जानना ॥ ३९ ॥

छिद्रोदर (क्षतोदर) का निदान ।

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्ठकैरन्नसंयुतैः । भिद्येतान्त्रयदाभुक्तैर्जृम्भ-
यात्पशनेनवा ॥ ४० ॥ इयात्पाकरसस्तेभ्यश्छिद्रेभ्यःप्रस्रवद्बहिः ।

पूरयन्गुदमन्त्रञ्चजनयत्युदरंततः ॥ ४१ ॥

वालू, तृण, काष्ठ, हड्डी और कांटा आदि अन्नमें मिलकर खायेजानेसे यदि
आंत छिलजाय अथवा जंभाई आदि वायुको वेगसे या अत्यंत भोजन करनेसे आंत
फटजाय तो उस छिद्रद्वारा पाकरस बाहर निकलने लगजाताहै । इससे आंत और
गुदा परिपूर्ण होकर छिद्रोदर नामक उदररोग उत्पन्न होताहै । इसको क्षतोदर भी
कहतेहैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

छिद्रोदरके लक्षण ।

इतितदधोनाभ्याःप्रायोऽभिनिवर्त्तमानमुदकोदरस्यचयथावलञ्च
दोषाणारूपाणिदर्शयत्यपिचातुरःसलोहितनीलपीतपिच्छिलकुण-
पगन्धामवर्चउपवेशतेहिक्काश्वासकासतृष्णाप्रमेहारोचकाविपा-
कदौर्बल्यपरीतश्चभवतिएतच्छिद्रोदरंविद्यात् ॥ ४२ ॥

छिद्रोदर प्रायः नाभिके अधोभागमें होताहै । इसमें बहुतसे लक्षण जलोदरके समान

और बहुतसे बड़ेहुए दोपानुरूप होतेहैं । छिद्रोदरमें लाल, नीला, पीला, पिच्छिल, मुदेकीसी गंधवाला और अपक्क मल निकलताहै । इस रोगीको हिचकी, श्वास, खांसी, प्यास, प्रमेह, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना और दुर्बलतासे व्याकुल होना यह लक्षण होतेहैं ॥ ४२ ॥

जलोदरका निदान ।

स्नेहपीतस्यमन्दाग्नेःक्षीणस्यातिकृशस्यवा । अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौ
मारुतःक्लोमिसंस्थितः ॥ ४३ ॥ स्रोतःसुरुद्धमार्गेषुकफश्चोदकमू-
र्च्छितः । वर्द्धयेतांतदेवाम्बुस्वस्थानाद्दुदरायतौ ॥ ४४ ॥

स्नेहपान किया हुआ मनुष्य, मंदाग्नियुक्त, क्षीण, अतिकृश अवस्थामें अत्यंत जल पीवे तो उसकी जठराग्नि नष्ट होकर वायु क्लोममें स्थित होजातीहै जलसे मूर्च्छित कफ सब स्रोतांको रोकदेतीहै तब क्लोमस्थान (पिपासास्थान) के संरुद्ध होनेसे बड़ेहुए कफ और वायु पीयेहुए जलको अपने स्थानसे संचालित कर त्वचा और मांसके मध्यमें संचित कर जलोदरको उत्पन्न करतेहैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

जलोदरके लक्षण ।

तस्यरूपाणि । अनन्नकांक्षापिपासागुदस्त्रावशूलश्वासकासदौर्वल्या-
न्यपिचोदरंनानावर्णराजिशिरासन्ततमुदकपूर्णदृतिशोभसंस्पर्शभि-
वतिएतद्दुदकोदरंविद्यात् ॥ ४५ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । अन्नकी इच्छा न होना, तृषा, गुदाद्वारा जलका निकलना, शूल, श्वास, खांसी, दुर्बलता, पेटपर अनेक वर्णकी रेखा तथा नसोंका जाल दिखाई देना । जलसे भरीहुई मशकके समान हिलानेसे पेटका बोलना अथवा हाथ लगानेसे जलकी भरीहुई मशकके समान प्रतीत होना । यह जलोदरके लक्षण जानना ॥ ४५ ॥

उदररोगमें शीघ्रचिकित्सा न करनेसे हानि ।

तत्रअचिरोत्पन्नमनुपद्रवमनुदकमप्राप्तमुदरंस्वरमाणश्चिकित्सेदुपे-
क्षितानांह्येषांदोषाः स्वस्थानादपावृत्ताअपरिपाकाद्भ्रवीभूताःसन्धी-
न्स्रोतांसिचोपल्केदयन्तिस्वेदश्चवाह्येषुस्रोतःसुप्रतिहृतगतिस्ति-
र्यगवतिष्ठमानस्तदेवोदकमाप्यायति ॥ ४६ ॥

जो उदररोग नवीन, अर्थात् बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ न हो, उपद्रव रहित हो, जिसमें पानी न उतराहो उसकी अतिशीघ्र चिकित्सा करना चाहिये । उदररोगकी

शीघ्र चिकित्सा न करनेसे दोष अपने २ स्थानोंसे चलायमान हो अन्नका परिपाक न होनेसे पतले होकर संधियोंको और संपूर्ण स्रोतोंको क्लेशित (गीला) करदेतेहैं । फिर बाह्यस्रोतोंके छिद्र रुकजानेसे स्वेद बाहर न निकलकर तिरछी गतिसे रहकर जलकी ही वृद्धि करताहै ॥-४६ ॥

जलोदरकी संप्राप्ति ।

तत्रपिच्छोत्पत्तौमण्डलमुदरंगुरुस्तिमितमाकोठितमशब्दंमृदुस्प-
शमपगतराजीकमाक्रान्तंनाभ्यांसर्पतीति । ततोऽनन्तरमुदकप्रादु-
र्भावः । तस्यरूपाणिकुक्षेरतिमात्रवृद्धिःशिरान्तर्द्धानगमनमुद-
कपूर्णवृत्तिसंक्षोभस्पर्शत्वञ्च ॥ ४७ ॥

फिर पेटमें जलकी उत्पत्ति होनेके पहिले ही पिच्छा (क्लेद) उत्पन्न होतीहै । उस पिच्छासे उदर गोल आकारवाला होजाताहै उस समय पेट भारी, स्तिमित, कोठयुक्त, शब्दरहित, मृदुस्पर्श और रेखा आदिसे रहित होकर, नाभीके चारों ओर दवानेसे इधर उधरकी फिरताहै । अर्थात् एक ओर दवानेसे दूसरी ओर ऊंचापन प्रतीत होताहै । इसके अनन्तर उदरमें जल बढ़ने लगताहै । तब यह लक्षण होतेहैं । जैसे कुक्षीका अत्यंत फूलजाना, नसोंका छिपजाना, जलसे भरीहुई मशकके समान हिलना और स्पर्श करनेसे प्रतीत होना, यह लक्षण होतेहैं ॥ ४७ ॥

जलोदरके उपद्रव ।

तदातुरमुपद्रवाःस्पृशन्तिछर्द्यतीसारतमकतृष्णाश्वासकासहिकका-
दौर्बल्यपार्श्वशूलारुचिस्वरभेदमूत्रसङ्गादयस्तथाविधमचिकित्स्यं
विद्यादिति ॥ ४८ ॥

जब पेटमें जल बढ़ताहै तो वमन, अतिसार, तमकश्वास, प्यास, खांसी, श्वास, हिचकी, दुर्बलता, पार्श्वपीडा, अरुचि, स्वरभंग, मूत्रका, रुकना आदिक उपद्रव होजातेहैं । इन उपद्रवोंवाला होनेसे इस रोगको असाध्य जानना ॥ ४८ ॥

उदररोगकी कृच्छ्रता ।

भवतिचात्र । वातापिप्तात्कफात्सीहःसन्निपातात्तथोदकात् ।

परस्परंकृच्छ्रतरमुदरंभिपगादिशेत् ॥ ४९ ॥

वातोदर, पित्तोदर, घ्नीहोदर, सन्निपातोदर और जलोदर इन सब उदररोगोंमें पहिलेकी अपेक्षा दूसरा, दूसरेकी अपेक्षा तीसरा इसी क्रमसे उत्तरोत्तर कष्टसाध्य जानने ॥ ४९ ॥

मृत्युकारक उदररोगकी अवधि ।
पक्षाह्वच्छगुदन्तूर्द्ध्वसर्वजातोदकंयथा ।

प्रायोभवत्यभावायच्छिद्रान्त्रश्चोदरंनृणाम् ॥ ५० ॥

वह उदोदर, जलोदर और छिद्रोदर यह तीन एक पक्षके उपरांत होनेसे मनुष्योंको नष्ट करनेवाले अर्थात् असाध्य होतेहैं ॥ ५० ॥

साध्याऽसाध्यता ।

शूनाक्षंकुटिलोपस्थमपक्लिन्नतनुत्वचम् ।

वलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणञ्चसंत्यजेत् ॥ ५१ ॥

जिस उदररोगीके दोनों नेत्रोंपर सूजन आजाय और शिशनेन्द्रिय टेढ़ी होजाय, त्वचा क्लेदयुक्त और पतली पडजाय, वल, रक्त, मांस और जठराग्नि क्षीण होजाय ऐसे रोगीको असाध्य समझ त्यागदेना चाहिये ॥ ५१ ॥

० द्रव्यथुःसर्वमर्मोत्थःश्यासौहिवकारुचिःसत्तृट् ।

मूर्च्छार्छर्यतिसारश्चनिहन्त्युदरिणंनरम् ॥ ५२ ॥

जिस उदररोगीके मर्मस्थानोंमें सूजन, श्वास, हिचकी, अरुचि, प्यास, मूर्च्छा, छर्दी और अतिसार यह उपद्रव हों उसको उदररोग शीघ्र मारडालताहैं ॥ ५२ ॥

जन्मनैवोदरं सर्वप्रायःकृच्छ्रतमममत्म् ।

वलिनस्तदजातान्बुयलसाध्यंनवोत्थितम् ॥ ५३ ॥

प्रायः सब प्रकारके उदररोग उत्पन्न होते ही अत्यंत कष्टसाध्य होतेहैं, परन्तु बलवान् रोगीको नवीन ही उत्पन्न हुआ उदररोग जिसमें जल प्रगट न हुआहो वह विधिवत् यत्न करनेसे साध्य होसकताहैं ॥ ५३ ॥

अजातजल उदररोगके लक्षण ।

अशोथमरुणाभासंसशब्दंनातिभारिकम् । सदागुडगुडायन्तंशि-

राजालगवाक्षितम् ॥ ५४ ॥ नाभिविष्टभ्यपायौतुवेगंकृत्वाप्रण-

श्यति । हृन्नाभिवंक्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः ॥ ५५ ॥ कर्कशं

सृजतोवातंनातिमन्देचपावके । सूत्रेऽल्पेसंहतविपिलालयाविरसे-

मुखे ॥ ५६ ॥ अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विज्ञायतस्त्वतः ॥ ५७ ॥

जिस रोगीका उदर सूजनरहित हो और लाल वर्णका हो तथा शब्दसहित, गुच्छ भारी, गुडगुडशब्दयुक्त हो और श्रोत्रोत्प्रेषण समान नसोंके जालसे व्याप्त हों और

नाभीको फुलाकर वेग धारण करे तो वायु गुदा पर्यन्त जाकर नष्ट होजाय, रोगीके हृदय, वंक्षण, कमर और गुदामें पीडा हो, कर्कश शब्द करतीहुई वायु निकले, सर्वथा अग्नि मंद न हुई हो, मूत्र, थोडा और मल अधिक निकले मुखसे लार बहे और मुख विरस हो तो यह विना जल प्रगटहुए उदररोगके लक्षण जानना ॥५४-५७॥

वातोदरकी चिकित्सा ।

उपक्रामोद्भिपगदोपबलकालविशेषवित् । वातोदरेवलवतःपूर्वत्नेहै-
रुपाचरेत् । स्निग्धायस्वेदिताद्भ्रायदद्यात्स्नेहविरचनम् ॥ ५८ ॥

हृतेदोपेपरिस्नानंवेष्टयेद्वाससोदरम् । तथास्यानवकाशत्वाद्वायु-
नाध्मापयेत्पुनः ॥ ५९ ॥

दोप, बल, काल आदिका जाननेवाला चतुर वैद्य उदररोगकी शीघ्र चिकित्सा करे । वातज उदररोगमें बलवान् मनुष्यको पहिले स्नेहपान करावे । फिर स्निग्धको स्वेदितकर स्नेह विरेचन कराके दोषोंको निकाल डाले । जब उदरके दोष निकल-जानेसे पेट मुझाजाय तो पेटको कपडेसे लपेटकर बांधदेना चाहिये । ऐसा करनेसे पेटमें फिर वायु प्राप्त नहीं होसकेगी । और वायुके प्राप्त न होनेसे पेट भी नहीं फूलेगा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतसांसन्निरोधनात् । सम्भवन्त्युदराण्ये-
वमतो नित्यं विशोधयेत् ॥ ६० ॥ शुद्धंसंसृज्यचक्षीरं वलार्थं पायये-

त्तुतम् । प्रागुत्कृशान्निवर्त्यश्च वलेलब्धे क्रमात्पयः ॥ ६१ ॥

शूषैरसैर्वा मन्दाम्ललवणैरोधितानलम् । सोदावर्त्तपुनः स्निग्धांस्वि-
न्नमास्थापयेन्नरम् ॥ ६२ ॥

दोषोंका अत्यंत उपचय होनेसे और स्रोतोंके रुकजानेसे ही उदररोग उत्पन्न होतेहैं । इसलिये उदररोगमें स्नेहन, स्वेदन कराकर शोधन करना हित होताहै ॥ उदररोगीको शोधन करानेके अनन्तर पेयादि क्रमसे बलवृद्धिके लिये दूध पिलावे । जिस प्रकार दोषोंका उत्कलेश न होनेपावे अर्थात् वमन न होजाय उतनाही दूध पिलावे । मनुष्यके शरीरमें बल प्राप्त होनेपर दूध बंद कराना चाहिये । यदि रोगीकी अग्नि मंद होजाय या उदावर्त ही तो फिर स्नेहन और स्वेदन कर थोडा नमकयुक्त शूप अथवा मांसरससे आस्थापनवस्ति करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपाद्वर्षष्टत्रिकार्त्तिपु ।

दीप्तार्त्तिवद्धविड्वातरूक्षमप्यनुवासयेत् ॥ ६३ ॥

यदि वातोदर रोगीके शरीरमें फडकना और आक्षेप हो तथा संधिअस्थि, पार्श्व, पीठ और त्रिकस्थानमें पीडा हो, अग्नि चैतन्य हो, मल मूत्र बद्ध हों और रूक्षता हो तो उसको अनुवासन करना चाहिये ॥ ६३ ॥

तीक्ष्णाधोभागयुक्तःस्यान्निरूहोदाशमूलिकः ।

वातघ्नाम्लशृतैरण्डतिलतैलानुवासनः ॥ ६४ ॥

अथवा तीक्ष्ण औषधियों और दशमूलके कायसे निरूहणवास्ति करे । अथवा वातनाशक अम्ल द्रव्योंसे एण्ड तैलको सिद्धकर इस तैलसे अनुवासन कर्म करे ॥ ६४ ॥
अविरेच्य रोगी ।

अविरेच्यन्तुयंविद्यादुर्वलंस्थविरांशिशुम् । सुकुमारंप्रकृत्याल्पदोषं
वातोल्घणानिलम् ॥ ६५ ॥ तंभिपक्वशमनैःसर्पिर्यूपमांसरसौदं-
नैः । वस्यभ्यङ्गानुवासैश्चक्षीरैश्चोपाचरेद्बुधः ॥ ६६ ॥

जो रोगी विरेचनके योग्य न हो तथा दुर्बल, वृद्ध, बालक, सुकुमार प्रकृतिका हो-
और अल्पदोषवाला हो तथा जिसके शरीरमें वायुकी प्रबलता हो उसको विरेचन न
कराकर औषधियोंसे सिद्ध किये हुए घृत, यूप और मांसरस आदिसे तथा संशमन
द्रव्योंसे चिकित्सा करे । और वस्ति, अभ्यंग, अनुवासन तथा औषधिसिद्ध दूधका
प्रयोग करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

पित्तज उदररोगचिकित्सा ।

पित्तोदरेतुवलिनंपूर्वमेवविरेचयेत् । दुर्वलन्त्वनुवास्यादौशोधयेत्
क्षीरवस्तिना ॥ ६७ ॥ संजातवलकायाग्निपुनःस्निग्धंविरेच-
येत् ॥ ६८ ॥

बलवान् मनुष्यको पित्तजनित उदररोग हो तो पहिले विरेचन करावे । यदि रोगी
दुर्बल हो तो पहिले अनुवासनकर क्षीरवस्ति द्वारा शोधन करे । फिर बल और
जठराग्निके बढ़नेपर स्निग्ध विरेचन करावे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पित्तोदरमें विरेचन योग ।

पयसासत्रिवृत्कल्केनोरुब्रूकशृतेनवा । सातलात्रायमाणाभ्यांशृ-
तेनारग्वधेनवा । सकफेवासमूत्रेणसवातेतिक्तसर्पिषा ॥ ६९ ॥

पित्तजनित उदररोगमें बल और अग्नि संपन्न होनेपर विरेचनके लिये निशोयका
कल्क मिलाकर दूध पिलावे । अथवा एण्डके बीजोंको दूधमें पकाकर पिलावे । या
सातला (घोहरकी जाति) और त्रायमाणसे सिद्ध किया दूध पिलावे । यदि पित्तज

उदररोगमें कफका संसर्ग हो तो गोमूत्र मिलाकर पिलावे । यदि वायुका अनुबंध हो तो तिक्तकवृत पिलावे ॥ ६९ ॥

पुनःक्षीरप्रयोगञ्चवस्तिकर्मविरेचनम् ।

क्रमेणध्रुवमातिष्ठन्युक्तः पित्तोदरंजयेत् ॥ ७० ॥

पित्तके उदररोगमें बारबार क्षीरप्रयोग और वस्तिकर्म करता रहे फिर अग्निबल सम्पन्न होनेपर विरेचन करावे । इस प्रकार समयोचित चिकित्सा द्वारा चतुर वैद्य पित्तके उदररोगको जीते ॥ ७० ॥

कफजनित उदररोगकी चिकित्सा ।

स्निग्धंस्विन्नंविशुद्धन्तुकफोदरिणमातुरम् । संसर्जयेत्कटुकक्षारयु-
क्तैरन्नैःकफापहैः ॥ ७१ ॥ गोमूत्रारिष्टपानैश्चूर्णायस्ततिभिस्तथा ॥

सक्षारैस्तैलपानैश्चशमयेत्तुकफोदरम् ॥ ७२ ॥

कफके उदररोगमें स्नेहन और स्वेदन कर शोधन करावे । फिर वह कफनाशक चरपरे और क्षार द्रव्योंसे युक्तकर पेयादि क्रम सेवन करावे । कफके उदररोगीको गोमूत्र, अरिष्ट, लोहचूर्ण, क्षार और चरपरे द्रव्योंसे सिद्ध किये तेल आदिकोंका प्रयोग करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सन्निपातके उदररोगकी चिकित्सा ।

सन्निपातोदरेसर्वायथोक्ताःकारयेत्क्रियाः ।

सोपद्रवन्तुनिर्वृत्तंप्रत्याख्येयंविजानता ॥ ७३ ॥

सन्निपातके उदररोगमें सब प्रकारसे यथोचित चिकित्सा करना चाहिये । यदि सन्निपातके उदररोगमें उपद्रव भी प्रगट होगये हों तो उसको त्याग देना चाहिये ॥ ७३ ॥

प्लीहोदरकी चिकित्सा ।

उदावर्त्तरुगानाहैर्दाहमोहतृपाज्वरैः । गौरवाशुचिकाठिन्यैश्चानि-
लादीन्यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥ लिङ्गैःप्लीहोदरान्द्वारक्तंवापिस्त्रल-
क्षणैः । चिकित्सांसंप्रकुर्वीतयथादोषंयथावलम् ॥ ७५ ॥

प्लीहजनित उदररोगमें उदावर्त्त, शूल, और अफारा हो तो दोष, बल विचारकर वातनाशक चिकित्सा करे । दाह, मोह, तृषा और ज्वर हो तो पित्तके उदररोगके समान चिकित्सा करे । गुरुता, अरुचि और कठिनता हो तो कफकी चिकित्सा करे । रुधिरके लक्षण प्रतीत हों तो रुधिरकी चिकित्सा करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

उदररोगमें चिकित्साक्रम ।
 स्नेहस्वेदं विरेकश्च निरूहमनुवासनम् ।
 समीक्ष्य कारयेद्वाहोवामेवाव्यधयेच्छिराम् ॥ ७६ ॥

संपूर्ण उदररोगोंमें श्लोषवलानुसार स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण और अनुवा-
 सन कर्म करे । रक्तजनित प्लीहोदरमें स्नेहन, स्वेदनादि करा वाई भुजाकी शिगभेदन
 करावे । अर्थात् वाई भुजामेंसे फस्त लगाकर रक्त निकलवाडाले ॥ ७६ ॥

पट्पलंवापिवेत्सर्पिःपिप्पलीर्वाप्रयोजयेत् ।
 सगुडामभयांवापिक्षारारिष्टगणांस्तथा ॥ ७७ ॥

उदररोगमें पट्पल घृत, पिप्पलादि रसायन और गुडके साथ हर्ड या क्षार और
 अरिष्टाके गणोंका सेवन करावे ॥ ७७ ॥

प्लीहनाशक चूर्ण ।

पिप्पलीनागरदन्तीचित्रकंद्विगुणाभयम् । विडंगांशयुतंचूर्णमेत-
 दुष्णाम्बुनापिवेत् ॥ ७८ ॥ विडङ्गंचित्रकंशुण्ठीसघृतांसैन्धवंवचा-
 म् । दग्ध्वाकपालेपयसागुल्मप्लीहापहंभवेत् ॥ ७९ ॥

पीपल, सोंठ, दंती और चित्रक यह चारों एक एक भाग, हरड दो भाग, वाय-
 विडंग एक भाग इन सबका चूर्ण कर गग्म जलके साथ पीवे तो गुल्मरोग और
 प्लीहरोग दूर हो । अथवा वायविडंग, चित्रक, सोंठ, घृत, संधानमक, वच इनको
 कूटकर शरावसम्पुटमें फूकलेवे । फिर इसको चूर्ण बना दूधके साथ सेवन करे तो
 गोला और तिल्ली दूर हों ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

रोहीतकलतानान्तुकाण्डकाःसाभयाजले । मूत्रेवाश्रुतमेतच्चसत-
 रात्रस्थितंपिवेत् ॥ ८० ॥ कामलागुल्ममेहार्शःप्लीहसर्वोदरक्रिमी-
 न् । तद्धन्याज्जाङ्गलरसैर्जीर्णस्याञ्चात्रभोजनम् ॥ ८१ ॥

रोहितक घासकी लगेरें कूटकर हरडोके कायमें अथवा गोमूत्रमें पकाकर सात
 दिन तक उत्तम पात्रमें बंदकर धरा रहनेदे फिर छानकर पीनेसे कामला, गुल्म, प्रमेह,
 बवासीर, प्लीहा, सब प्रकारके उदररोग और कृमिरोग यह सब नष्ट होतेहैं । इस
 औषधके पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करना चाहिये ॥ ८० ॥ ८१ ॥

रोहितक घृत ।

रोहीतकत्वचःकृत्वापलानांपञ्चविंशतिम् । कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं क-
 पायमुपकल्पयेत् ॥ ८२ ॥ पालिकैःपञ्चकोलैस्तुतैःसर्वैश्चापितुल्य-

या । रोहीतकत्वचापिष्टैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ८३ ॥ प्लीहातिवृ-
द्धिशमयत्येतदाशुप्रयोजितम् । तथागुल्मोदरश्वासक्रिमिपाण्डु-
त्वकामलाः ॥ ८४ ॥

रोहितवृण २५ पल और वेर (उन्नाव) २ प्रस्थ, लेकर काथ करे । इस काथमें
पंचकोल (पीपल, पीपलामूल चव्य, चित्रक, सोंठ) का कल्क ५ पल, रोहितवृणका
कल्क.१० पल, घृत १ प्रस्थ सबको मिलाकर घृत सिद्धकरे । इस घृतके सेवनसे
अत्यंत बढीहुई प्लीहा शीघ्र शान्त होतीहै तथा गुल्मरोग, उदररोग, श्वास, कृमि,
पाण्डु और कामला यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

उदररोगोंमें विशेष कर्तव्य ।

अग्निकर्मचकुर्वीतभिषग्वातकफोत्वणे । पैत्तिकेजीवनीयानिसर्पौ-
पिक्षीरवस्तयः ॥ ८५ ॥ रक्तावसेकःसंशुद्धिःक्षीरपानश्चशस्यते ।
यूपैर्मांसरसैश्चापिदीपनीयसमायुतैः ॥ ८६ ॥ लघून्यन्नानिसंसृ-
ज्यभजेत्प्लीहोदरीनरः । स्विन्नायबद्धोदरिणेमूत्रतीक्ष्णौषधान्वि-
तम् ॥ ८७ ॥ सतैललवणंदद्यान्निरूहंसानुवासनम् । परिस्त्रंसी-
निचान्नानितीक्ष्णश्चैवविरेचनम् ॥ ८८ ॥ उदावर्त्तहरंकर्मकार्यं
वातघ्नमेवच ॥ ८९ ॥

उदररोगमें वात, कफकी विशेषता हो तो अग्निकर्म (दागदेना) करना चाहिये ।
पित्तकी अधिकता हो तो जीवनीयगणकी औषधियें तित्तक घृत, क्षीरवस्ति, रक्तमो-
क्षण, संशोधन और दुग्धपान कराना हित है । प्लीहोदरमें रक्तमोक्षण कराना, दीप-
नीय द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए यूप और मांस रसोंके साथ हलका भोजन कराना
चाहिये । बद्धोदरमें स्वेदितकर गोमूत्रके साथ और तीक्ष्ण औषधियोंसे युक्तकर
सिद्ध किया तैल संधानमक मिला निरूहण और अनुवासन कर्ममें प्रयोग करना
चाहिये । तथा विरेचकर्त्ता अन्न, तीक्ष्ण विरेचन, उदावर्त्त और वातनाशक द्रव्योंका
प्रयोग करना चाहिये ॥ ८५-८९ ॥

छिद्रोदरकी असाध्यता ।

छिद्रोदरमृतेस्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत् । जातंजातंजलंस्त्राव्यमेवं
तत्पातयेद्भिषक् । तृष्णाकासज्वरार्त्तन्तुक्षीणमांसाग्निभोजनम् ॥
॥ ९० ॥ वर्जयेच्छ्वासिनंतद्वच्छूलिनंदुर्वलेन्द्रियम् ॥ ९१ ॥

छिद्रोदरमें प्यास, खांसी, ज्वर तथा मांस वमि और भोजनकी क्षीणता एवं श्वास, शूल और इन्द्रियोंकी दुर्बलता होनेपर रोगीको असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

जलोदरकी चिकित्सा ।

अपांदोपेग्रहण्यादौविदध्यादुदकोदरे । सूत्रयुक्तानितीक्षणानिवि-
विधक्षारवन्तिच । दीपनीयैःकफघ्नैश्चतमाहारैरुपाचरेत् ॥ ९२ ॥

द्रवेभ्यश्चोदकादिभ्योनियच्छेदनुपूर्वशः ॥ ९३ ॥

जलोदरमें और ग्रहणी आदिमें जलका दोष होनेपर गोमूत्र और तीक्ष्ण विरेचक औषधियें तथा अनेक प्रकारके क्षार गोमूत्रमें मिलाकर पिलावे । तथा दीपनकर्ता और कफनाशक आहारोंका सेवन करावे । तथा जल आदिक पतले पदार्थोंका सेवन बिल्कुल बन्द करा देवे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

सर्वउदररोगोंमें कर्तव्य और पथ्य ।

सर्वमेवोदरंप्रायोदोपसङ्घातजंमत्तम् । तस्मात्रिदोपशमनीक्रियां
सर्वंपुकारयेत् । दोषैःकुक्षौहिसंपूर्णैर्वाहिर्मन्दत्वमृच्छति ॥ ९४ ॥

तस्मान्द्रोज्यानियोज्यानिदीपनानिलघूनिच । रक्तशालीन्यवान्सु-
द्राञ्जाङ्गलांश्चमृगद्विजान् ॥ ९५ ॥ पयोमूत्रासवारिष्ठान्मधुशीघ्रं-

स्तथासुराम् । यवागूमौदनंवापियूपैरद्याद्रसैरपि ॥ ९६ ॥ मन्दा-
म्लस्त्रेहकटुभिर्यच्चमूलोपसाधितैः ॥ ९७ ॥

प्रायः संपूर्ण उदररोग तीनों दोषोंके संघातसे ही उत्पन्न होतेहैं । इसलिये इनमें-
त्रिदोषनाशक चिकित्सा करना चाहिये । दोषोंके कोपसे कुक्षि परिपूर्ण होकर अमि मंद
होजातीहै । इसलिये सब उदररोगोंमें हलका और दीपन भोजन कराना चाहिये
तथा लाल शालीचावल, यव, मूंग, जांगल जीबोंका मांसरस, दूध, गोमूत्र, आसव,
अरिष्ट, मधु, शीघ्र और सुराका सेवन करावे और कटु द्रव्योंसे तथा पंचकोलसे
सिद्ध कियेहुए यवागु, भात अथवा यूप वा मांसरस किंचित् अम्ल और स्नेहयुक्त
कर अमिबल विचारकर सेवन करावे ॥ ९४-९७ ॥

उदररोगमें कुपथ्य ।

औदकानूपजंमांसंशाकंपिष्टकृतंतिलान् । व्यायामाध्वदिवास्वप्नं
यानयानञ्चवर्जयेत् । तथोष्णलवणाम्लानिविदाहीनिगुरूणिच ॥

॥ ९८ ॥ माद्यादन्नानिजठरीतीयपानञ्चवर्जयेत् ॥ ९९ ॥

जल संचारी और अनूप संचारी जीवोंका मांस, शाक, पिष्टान्न, तिल, व्यायाम, भ्रमण, दिनमें सोना, सवारीपर चढना इन सबको त्याग देना चाहिये । तथा उष्ण, लवण, अम्ल, विदाही और भारी पदार्थ, पानीका पीना इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

उदररोगोंमें तक्र प्रयोग ।

नातिसान्द्रंमत्तंपानेस्वादुतक्रमपेलवम् । ड्यूपणक्षारलवणैर्युक्तन्तु
निचयोदरी । वातोदरीपिवेत्तक्रंपिप्पलीलवणान्वितम् ॥ १०० ॥
शर्करामधुकोपेतंस्वादुपित्तोदरीपिवेत् । यमानीसैन्धवाजाजीव्यो-
पयुक्तंकफोदरी ॥ १०१ ॥ पिवेन्मधुयुतंतक्रंव्यक्तान्म्लंनातिपेल-
वम् । मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥ १०२ ॥ युक्तंप्ली-
होदरीजातंसव्योपन्तूदकोदरी । वद्धोदरीतुहवुपायमान्यजाजी-
सैन्धवैः । पिवेच्छिद्रोदरीतक्रंपिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥ १०३ ॥

सब प्रकारके उदररोगोंमें सोंठ, मिर्च, पीपल और नमक मिलाकर जो बहुत गाढा न हो और बहुत पतला भी न हो ऐसा तक्र पीना चाहिये । वातके उदररोगमें पीपल और सेंधानमक मिला तक्र पीना चाहिये । पित्तके उदररोगमें खांड और मुल्लैठीका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये । कफके उदररोगमें सेंधानमक, अजवायन, जीरा और त्रिकुटा मिलाकर तथा शहतयुक्तकर खट्टा और गाढा तक्र पीना चाहिये प्लीहोदरमें शहद, तेल, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सेंधा नमक मिलाकर तक्र पिलावे । जलोदरमें त्रिकुटेका चूर्ण मिला तक्र पिलावे । वद्धोदरमें हाउबेर, अजवायन, कालाजीरा और सेंधानमक मिला तक्र पिलाना चाहिये । छिद्रोदरमें पीपल और शहद मिला तक्र पिलाना चाहिये ॥ १००-१०३ ॥

गौरवारोचकार्तानांसमंदाग्न्यतिसारिणाम् ।

तक्रंवातकफार्तानाममृतत्वायकल्पते ॥ १०४ ॥

जो रोगी गुरुता, अरुचि, मंदाग्नि, अतिसार और वातकफके रोगोंसे पीडित हों उनको तक्र अमृतके समान गुण करताहै ॥ १०४ ॥

दूध प्रयोग ।

शोफानाहार्तितृणमूर्च्छापीडितेकारभंपयः ॥

शुद्धानांक्षामदेहानांगव्यंछांगंसमाहिपम् ॥ १०५ ॥

सूजन, अफारा, शूल, तृषा, मूर्च्छा और अतिक्षीणतामें शोधन करनेके अनन्तर्ग
गौ, चकरी अथवा भैंसका दूध, पिलाना चाहिये ॥ १०५ ॥

उदरपर लेपनादि योग ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिशुकैः ।

साश्वगन्धैःसगोमूत्रैःप्रदिह्यादुदरंसमैः ॥ १०६ ॥

देवदारु, ढाकनी छाल, आककी जडकी छाल, गजपीपल, साँहांजना और
असगंध इनको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरे ॥ १०६ ॥

वृश्चिकालीवचांकुष्ठंपञ्चमूलांपुनर्नवाम् ॥ १०७ ॥ भूर्तीकांना-
गरंधान्यंजलेपक्त्वावसेचयेत् । पलाशंकत्तृणंराक्ष्णातद्वत्पक्त्वावसेच-
येत् ॥ १०८ ॥

वृश्चिक पत्रिका, वच, कूठ, पंचमूल, पुनर्नवा, अजवायन, साँठ और धनियां इनको
जलमें पकाकर सुहाता २ तरडा देवे । अथवा पलाश, रोहिपतृण और रासनाके
कायका तरडा देवे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

मूत्राण्येक प्रयोग ।

मूत्राण्यष्टाबुदरिणांसेकेपानेचयोजयेत् ॥ १०९ ॥

सब प्रकारके उदररोगियोंके लिये आठ प्रकारके मूत्र सेचन करनेमें और पिलानेमें
प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १०९ ॥

रूक्षाणांवहुवातानांतथासंशोधनार्थिनाम् ।

दीपनीयानिसर्पीपिजठरघ्नानिवक्ष्यते ॥ ११० ॥

जो उदररोगी रूक्ष और वायुसे पीडित तथा संशोधनके योग्य हों उनके लिये
उदररोगनाशक स्नेहन घृतोंका कथन करतेहैं ॥ ११० ॥

पंचकोल घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । सक्षारैरर्द्धपलिकैर्द्विप्र-
स्थंसर्पिषःपचेत् । कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्यतुलार्द्धस्यरसेनच ॥ १११ ॥

दधिमण्डातकोपेतंतत्सर्पिर्जठरापहम् । श्वयथुंवातविष्टम्भंगुल्मा-
शांसिचनाशयेत् ॥ ११२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, साँठ और जवाखार यह प्रत्येक दो दो
तोला लेकर कल्क करे । घी १ सेर, दशमूलका क्वाथ २॥ सेर, दहीका पानी ५ सेर

इन सबका मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इसके सेवन करनेसे उदररोग, सृजन, वायुका विष्टंभ, गुल्म और अर्शरोग दूर होते हैं ॥ १११ ॥ ११२ ॥

नागरादि घृत ।

नागरत्रिफलाप्रस्थंघृततैलात्तथाढकम् ।

मस्तुनःसाधयित्वैतत्पिवेत्सर्वोदरापहम् ।

कफमारुतसम्भूतेगुल्मेचैतत्प्रशस्यते ॥ ११३ ॥

सांठ, पीपल, त्रिफला यह दोनों मिलाकर १ सेर ले । घी और तेल ४ सेर ले । दहीका तोड़ ८ सेर सबको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर सेवन करे तो सब प्रकारके उदररोग और वातकफसे उत्पन्न हुए गुल्म शान्त होतेहैं ॥ ११३ ॥

चित्रक घृत ।

चतुर्गुणेजलेमूत्रेद्विगुणेचित्रकात्पले ।

कल्केसिद्धंघृतप्रस्थंसक्षारंजठरीपिवेत् ॥ ११४ ॥

चित्रकी जड़की छाल ४ तोला, जवाखार ४ तोला इनका कल्क कर घी १ सेर, जल ४ सेर, गोमूत्र २ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उदररोगवाला रोगी पीवे ॥ ११४ ॥

यवादि घृत ।

यवकोलकुलत्थानांपञ्चमूलरसेनच ।

सुरासौवीरकाभ्याश्चसिद्धंवापिपिवेद्घृतम् ॥ ११५ ॥

जौ, बेर, (उन्नाभ) कुलथी, यह प्रत्येक ४ तोला, बृहत्पंच मूलका क्वाथ, सुरा और सौवीरक यह सब मिलाकर ४ सेर, घृत १ सेर, सबको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर सेवनकरे तो उदररोग शान्त हो ॥ ११५ ॥

विरेचनका निर्देश ।

एभिःस्निग्धायसंजातेवलेशान्तेचमारुते ।

स्वस्तेदोषाशयेदथात्कल्पदृष्टंविरेचनम् ॥ ११६ ॥

इन उपरोक्त घृतोंसे जब उदररोगी स्निग्ध होजाय और बल, प्राप्त होजाय तथा वायु शमन होजाय तब दोषोंको शुद्ध करनेके लिये कल्पस्थानमें कहीहुई विधिसे विरेचन प्रयोग करे ॥ ११६ ॥

पटोलादि चूर्ण ।

पटोलमूलरजनीविडङ्गत्रिफलात्वचम् । काम्पिल्यकोनीलिनीच-
त्रिवृताचेतिचूर्णयेत् ॥ ११७ ॥ पडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्चद्वित्रि-
चतुर्गुणान् । कृत्वाचूर्णमतोमुष्टिगवांमूत्रेणवापिवेत् ॥ ११८ ॥
विरिकोमृदुभुञ्जीतभोजनंजाङ्गलैरसैः । मण्डपेयाश्चपीत्वावास-
व्योपंपडहंपयः ॥ ११९ ॥ श्रुतंपिवेत्तत्रचूर्णपिवेदेवंपुनःपुनः । ह-
न्तिसर्वोदराण्येतच्चूर्णंजातोदकान्यपि । कामलांपाण्डुरोगश्चश्व-
यथुश्चापकर्षति ॥ १२० ॥

पटोलकी जड़, हलदी, वायविडंग, हरडकी छाल, बहेडेकी छाल और आँवले यह छः द्रव्य एक एक कर्ष लेवे । कमीला २ कर्ष, नीलनी ३ कर्ष और निशोय ४ कर्ष इन सबको बारीक कूटकर चूर्ण बनावे । इस चूर्णमेंसे एक पल चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करे तो इससे खूब विरेचन होताहै । विरेचन होनेके अनन्तर जांगल जीरेके मांसरसके साथ बहुत नरम बनाया चावलोंका भात खावे । अथवा मण्ड, और पेया क्रमपूर्वक सेवन करे । या त्रिकुटेका चूर्ण मिला पकाया हुआ दूध छः दिन तक सेवनकरे । इसके उपरान्त बल प्राप्त होनेपर छः छः दिनके अनन्तर इस चूर्णका सेवन करे । और विरेचन होनेके अनन्तर पेयादि विधि सेवन करता रहे तो सब प्रकारके उदररोग, जलोदर, कामला, पाण्डु और सूजन आदि नष्ट होतेहैं ११७-१२० ॥

गवाक्षादि चूर्ण ।

गवाक्षींशंखिनींदन्तींतिन्वकस्यत्वचंचाम् ।

पिवेद्राक्षाम्बुगोमूत्रकोलकर्कन्धुशीधुभिः ॥ १२१ ॥

इन्द्रायणी जड़, शंखपुष्पी, दंदी, लोध और वच इन सबका चूर्ण कर मुनकोके क्वाथ या गोमूत्र अथवा वेरके क्वाथ या छोटे वेरके क्वाथ अथवा शीधुके साथ उपरोक्त विधिसे सेवनकरे तो उदररोग शान्त होताहै ॥ १२१ ॥

नारायण चूर्ण ।

यमानीहवुपाधान्यंत्रिफलाचोपकुशिका । कारवीपिप्पलीमूलम-
जगन्धाशटीवचा ॥ १२२ ॥ शताह्वाजीरकंय्योपंस्वर्णक्षीरीसाचि-

१ एक पलकी मात्रा अथवा बलमान् और इष्टया मनुष्यके लिये कही है । सामान्य मनुष्योंको २ तोला लेना चाहिये ।

त्रका । द्वौक्षारौपौष्करंमूलंकुष्ठंलवणपञ्चकम् ॥ १२३ ॥ विडङ्गस्य
समांशानिदन्त्याभागास्त्रयस्तथा । त्रिवृद्विशालयोर्द्वौद्वौशातला-
स्याञ्चतुर्गुणा ॥ १२४ ॥ एतन्नारायणंनामचूर्णरोगगणापहम् ।
नैतत्प्राप्यातिवर्त्तन्तेरोगाविष्णुमिवासुराः ॥ १२५ ॥ तक्रेणोदारि-
भिःपेयंगुल्मिभिर्वदराम्बुना । आनद्धवातेसुरयावातरोगेप्रसन्नया
॥ १२६ ॥ दधिमण्डेनविट्सङ्गेदाडिमाम्बुभिरर्शसैः । परिकर्त्तैस-
वृक्षाल्ममुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ १२७ ॥ भगन्दरेपाण्डुरोगेऽवासे
कासेगलग्रहे । हृद्रोगेग्रहणीदोषेकुष्ठेमन्देनलेज्वरे ॥ १२८ ॥ दंष्ट्रा-
विषेमूलविषेसगरेकृत्रिमेविषे । यथार्हस्निग्धकोष्ठेनपेयमेतद्विरेच-
नम् ॥ १२९ ॥

अजवायन, हाउवेर, वनिया, त्रिफला, काला, जीरा, कलौजी, पीपलामूल, अज-
मोद, कचूर, वच, सौफ, सुफेद जीरा, त्रिकुटा, स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख), चीता,
जवाखार, सजीखार, पोहकरमूल, कूठ, पाचों नमक, वायविडंग यह प्रत्येक एक
एक भाग, दंड़ी ३ भाग, निशोथ और इन्द्रायणकी जड दो दो भाग, सातला ४
भाग इन सबको बारीक कर चूर्ण बनावे । यह नारायणचूर्ण सब रोगोंके मूलको
नष्ट करताहै । इस चूर्ण सेवनसे इस प्रकार रोग नष्ट होजातेहै जैसे विष्णुके तेजसे राक्षस
नष्ट होजाते है । यह चूर्ण उदररोगीको तक्रके साथ, गुल्मरोगीको वेरके क्वायके
साथ, धफारेवालके मद्यके साथ, वातरोगीको प्रसन्नाके साथ, मलके विबंधमे दधि-
मण्डके साथ, अर्शरोगमें दाडिमके साथ, परिकर्तिका (पेचिश) मे इमलीके जलके
साथ, अजीर्णमें गरम जलके साथ, सेवन करना चाहिये । यह चूर्ण विरेचक होनेसे
भगन्दर, पाण्डु, खासी, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणीविकार कुष्ठ, मंदाभि, ज्वर,
दंष्ट्राविष, (जो किसी जानवरके काटनेसे हो) मूलविष और कृत्रिम विष इन सबको
नष्ट करताहै । रोगीको यथायोग्य स्निग्धकोष्ठ करके इस चूर्णको सेवन कराना
चाहिये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

ह्रबुपादि चूर्ण ।

ह्रबुपाकाञ्चनाक्षीरीत्रिफलाकटुरोहिणी । नीलिनीत्रायमाणाचशा-
तलान्निवृतावचा ॥ १३० ॥ सैन्धवंकाललवणंपिप्पलीचेतिचूर्ण-
येत् । दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः ॥ १३१ ॥ पेयोऽयंस-

वर्गुल्मेपुष्पीहिसर्वोदरेपुच । कुष्ठेत्रिवत्रेसरुजकेसवातेविपमाग्निषु ॥
 ॥ १३२ ॥ शोथार्शःपाण्डुरोगेषुकामलासुहलीमके । वातपित्तं
 कफश्चाशुविरेकात्संप्रसाधयेत् ॥ १३३ ॥

हाउवेर, स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख), हरड, बहेडे, आंवले, कुटकी, नीलनी,
 त्रायमाण, सातला, निशोय, वच, सेंधानमरु, संचरनमक और पीपल इन सबका
 बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको दाडिमके रस अथवा त्रिफलाके क्वाथ या मांसरस
 अथवा गरम जल या गोमूत्रके साथ पीवे तो सब प्रकारके गुल्म प्लीहा, उदररोग,
 कुष्ठ, उदरकुष्ठ, वातव्याधि, विपमाग्नि, सृजन, अर्श, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक
 और वातपित्त, कफको विरेचनद्वारा शीघ्र शान्त करताहै ॥ १३०-१३३ ॥

नीलिन्यादि चूर्ण ।

नीलिनीनिचुलंब्योपद्रौक्षारौलणानिच ।

चित्रकश्चपिवेच्चूर्णसर्पिपोदरगुल्मनुत् ॥ १३४ ॥

नीलिनीकी जड, निचुल (वेतस), त्रिकुश, जवाखार सजीखार, पांचों नमक,
 चित्रककी छाल इन सबका चूर्णकर, घी मिला पीवे तो सब प्रकारके उदररोग और
 गुल्म नष्ट होतेहैं ॥ १३४ ॥

सुधाक्षीर घृत ।

क्षीरद्रोणंसुधाक्षीरप्रस्थार्द्धसहितंदधि । जातंविमथ्यतद्युक्तयात्रि-
 वृत्तिसिद्धंपिवेद्घृतम् ॥ १३५ ॥ तथासिद्धंघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणोपि-
 वेत् । स्नुक्क्षीरपलकल्केनत्रिवृतापट्टपलेनच । गुल्मानांगरदोषा-
 णामदराणाञ्चशान्तये ॥ १३६ ॥

दूध १ द्रोण, थोहरका दूध आधा प्रस्थ इन दोनोंको मिला गरमकर दही जमावे ।
 इस दहीमेंसे मयकर घी निकाले । इस घृतको निशोयका चूर्ण मिलाकर पान करे ।
 अथवा घी एक प्रस्थ, निशोयका कल्क छः पल थोहरका दूध १ पल, गौका दूध
 आठ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । इन दोनों घृतोंमेंसे किसी एक
 घृतको सेवन करनेसे उदररोग, गुल्मरोग और गरदोष नष्ट होतेहैं ॥ १३५॥१३६ ॥

दधिमण्डाढकेसिद्धात्स्नुक्क्षीरपलकल्कितात् ।

घृतप्रस्थात्पिवेन्मात्रांतद्वज्जठरशान्तये ॥ १३७ ॥

अथवा दधिमण्ड १ आढक, थोहरका दूध १ पल, निशोयका कल्क १ पत्र इन
 सबको मिला घृत सिद्धकरे । इस घृतको मात्रानुसार खानेसे उदररोग शान्त
 होताहै ॥ १३७ ॥

एपाश्चानुपिवेत्पेयांपयोवास्वादुवारसम् । घृतेजीर्णोविरिक्तन्तुको-
ष्णनागरकैःशृतम् ॥ १३८ ॥ शुण्ड्याःपिवेत्ततःपेयांयूपंकौलत्थकं
ततः। पिवेद्रूक्षरूयहन्त्वेवंपयोवाप्रतिभोजितः ॥१३९॥ पुनःपुनःपि-
वेत्सर्पिरानुपूर्व्यात्तथैवच । घृतान्येतानिसिद्धानिविदध्यात्कुशलो-
भिपक् ॥ १४० ॥ गुल्मानांगरदोपाणामुदराणाञ्चशान्तये ॥१४१॥

इन घृतोको पीकर पेया, दूध अथवा मधुर मांसरसका अनुपान करै घृतकी मात्रा
जीर्ण होनेपर जब दस्त होचुके तो सोंठसे सिद्धकिया हुआ दूध अथवा सोंठसे सिद्ध
की हुई पेया वा सोंठसे सिद्ध किया कुल्थीका यूप पान करे और घृतका सेवन
तीन दिन तक न करे । या तीन दिन तक केवल दूध ही पीया करे । तीन दिनके
अनन्तर बुद्धिमान वैद्य बारवार इसी क्रमसे सिद्ध किये घृतोको क्रमपूर्वक पिलावे ।
इन घृतोके सेवनसे गुल्मरोग, उदररोग और गरदोष (दूषीविष) यह सब शान्त
होतैहैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥

पीलुकल्कोपसिद्धंवाघृतमानाहभेदनम् । गुल्मघ्ननीलिनीसर्पिः
स्नेहंवामिश्रकंपिवेत् । क्रमान्निर्हृतदोपाणांजाङ्गलप्रतिभोजि-
नाम् ॥ १४२ ॥

पीलूके कल्कके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत उदररोगीके अफारेको दूर करताहै ।
गुल्मरोगमें कहाहुआ नीलनीघृत और मिश्रकस्नेह भी उदररोगमें हितकारक है । जब
विरेचनादि द्वारा उदररोगीके दोष शान्त होजाय तो क्रमपूर्वक जांगलजीवोंके
मांसरस आदिका भोजन कराता रहे ॥ १४२ ॥

संशमन योग ।

दोषशोपनिवृत्त्यर्थयोगान्वक्ष्याम्यतःपरम् । चित्रकामरदारुभ्यांक-
ल्कंक्षीरेणनापिवेत् ॥ १४३ ॥ मांसयुक्तं तथाहस्तिपिप्पलीविश्व-
भेषजम् । विडङ्गं चित्रकंदन्तीचव्यंवयोपञ्चतैःसमैः ॥ १४४ ॥ क-
ल्कैःकोलसमैःपीत्वाप्रवृद्धमुदरंजयेत् । पिवेत्कपायंत्रिफलादन्ती-
रोहीतकैःशृतम् ॥ १४५ ॥ व्योपक्षारयुतंजीर्णैरसैरद्यात्सजाङ्गलैः
मांसंवाभोजनंभोज्यंसुधाक्षरिघृतान्वितम् ॥ १४६ ॥

यदि उदररोगीके कुछ दोष बाकी रहगये हों तो उन दोषोंकी निवृत्तिके लिये
प. जं. मन योगोंको कथन करतैहैं । चित्रक और देवदारुका कल्क कर दूधके साथ

पीवे । अथवा गजपीपल, सोंठ, चायविडंग, चीता, दंती, चव्य, मिर्च, पीपल और सोंठ यह सब समभाग लेकर वारीक कल्क करे । इसको १ कर्पभर लेकर दूधके साथ खाय तो अत्यंत बढाहुआ उदररोग भी दूर होताहै । अथवा त्रिफला, दंती, रोहितवृणका क्वाथ त्रिकुटेका चूर्ण और जवाखार मिलाकर पीवे । मात्रा जीर्ण होनेपर जांगलजीबोंके मांसरसके साथ भोजन करे । अथवा थोहरके दूधसे पूर्वोक्त रीतिपर बनाया घृत मांसरसके साथ सेवन करे ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

क्षीरानुपानंगोमूत्रेणाभयांवाप्रयोजयेत् । सप्ताहंमाहिषूमूत्रंक्षीर-
श्चानन्नभुक्पिवेत् ॥ १४७ ॥

अथवा गोमूत्रके साथ हरडका सेवन करे और केवल दूधका ही सेवन करे । अथवा सर्वथा अन्नका परित्याग कर भैंसका मूत्र पीवे और अन्नकी जगह भैंसका दूध पीवे । इस प्रकार सात दिन करनेसे उदररोगका शोष विकार शान्त होताहै ॥ १४७ ॥

मासमौष्ट्रंपयश्छागंत्रीन्सासान्वयोपसंयुतम् । हरीतकीसहस्रंवा
क्षीराशीवाशिलाजतु ॥ १४८ ॥ शिलाजतुविधानेनगुग्गुलुंवाप्रयो
जयेत् । शृङ्गेरेवार्द्रंकरसःपानेक्षीरसमोमतः ॥ १४९ ॥ तैलरसेनते
नैवसिद्धंदशगुणेनवा । दन्तीद्रवन्तीफलजंतैलद्रूप्योदरेहितम् ।

शूलानाहविवन्धेषुसक्त्यूपरसादिभिः ॥ १५० ॥

अथवा त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर ऊंटनीका दूध १ महीने तक पीवे या बकरीका दूध त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर तीन महीने तक पीवे अथवा १००० हरडोंको क्रमपूर्वक सेवन करे । अथवा १ महीने तक केवल दूध पीताहुआ शिलाजीतका सेवन करे । या शिलाजीतकी विधिसे ही शुद्ध गुग्गुलुको सेवन करे अथवा समान भाग दूध और अदरखका रस मिलाकर पीवे । अथवा दश भाग अदरखके रससे एक भाग तैलको सिद्धकर पीवे अथवा मालिश करे । दंती और द्रवंतीके फलोंका तेल (पहाडी और दक्षिणी जमाल गोंटेका तेल) युक्तिपूर्वक आधी रत्ती आधासेर दूधमें मिलाकर पिलावे तो दृषीविपसे उत्पन्न हुआ उदररोग विरेचन होकर शान्त होजायगा । शूल, अफारा, विबंधमें अदरखके रससे सिद्ध किया तैल सनू और यवागूम मिलाकर सेवन करे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥

१ एक एक हरडेसे लेकर दश दिन पर्वन्त बढाताहुआ दशवें दिन दश हरडे सेवन करे फिर दश दिनमें एक एक घटाता हुआ एक तक आजाय फिर इसी प्रकार बढाताहुआ दश तक सेवन करे फिर उसी प्रकार घटावे । इसी रीतिसे सहल हरडे खानी चाहिये ।

सरलामरशिग्रूणांवीजेभ्योमूलकस्यच ॥ १५१ ॥

तैलान्यभ्यङ्गपानार्थेशूलघ्नान्यनिलोदरे ॥ १५२ ॥

वायुके उदररोगमें पीडा शान्तिके लिये सरलके बीजोंका तेल और लाल सोहांजनेके बीजोंका तेल, तथा मूलीके बीजोंका तेल मालिशके लिये और पीनेमें प्रयोगकरे ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

स्तैमित्यारुचिहृल्लासेष्वल्पाग्निर्मद्यपस्तथा ।

अरिष्टान्वापिवेदक्षारान्कफस्थानस्थिरोदरः ॥ १५३ ॥

यदि कफके उदररोगमें, पेटका तनना, कठोरता, स्तैमित्य, अरुचि, हृल्लास और मंदाग्नि हो तो कफनाशक अरिष्ट अथवा क्षार मिलाकर मद्य पिलावे ॥ १५३ ॥

पिप्पल्यादिक्षार ।

पिप्पलींतिल्वकंहिङ्गुनागरंहस्तिपिप्पलीम् । भल्लातकंशिग्रुफलं

त्रिफलांकटुरोहिणीम् । देवदारुहरिद्रेद्वेसरलातिविषेवचाम् ॥ १५४ ॥

कुष्ठमुस्तंतथापञ्चलवणानिप्रकल्प्यच । दधिसर्पिर्वसातैलमज्जयु-

क्तानिदाहयेत् ॥ १५५ ॥ अन्नादूर्द्ध्वमतःक्षारान्विडालकपदंपिवेत् ।

मदिरादधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः ॥ १५६ ॥ हृद्रोगंश्चय-

थुंगुल्मंघ्नीहाशौजठराणिच । विषूचिकासुदावर्तवाताष्ठीलाश्चना-

शयेत् ॥ १५७ ॥

पीपल, लोध, हींग, सोंठ, गजपीपल, भिलावे, सोहांजनाके बीज, त्रिफला, कुटकी, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, सरल, अतीस, वच, कुठ, नागरमोथा, पांचों नमक इन सबको समभाग लेकर कूटलेवे । फिर इनमें दही, घृत, वसा, तेल और मज्जा मिलाकर एक हांडीमें संपुट करे और गजपुटमें फूकदेवे । अथवा जिस प्रकार इस संपुटमेंसे धूआ बाहर न निकले उस रीतिसे हांडीको बन्दकर चूरेपर चढा नीचेसे आँच देकर सब द्रव्योंकी भस्म कर डाले । इस क्षारमेंसे एक कर्प लेकर मद्य, दधिमण्ड, उष्णजल, अरिष्ट, सुरा और आसव इनमेंसे किसी एकके साथ सेवन करे तो हृद्रोग, गुल्म, सूजन, घ्नीहा, अर्श, उदररोग, विषूचिका, उदावर्त और वात-ष्ठीला यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १५४-१५७ ॥

क्षारश्चाजकरीपाणांस्तुतंमूर्त्रैर्विपाचयेत् । कार्षिकंपिप्पलीमूलंपञ्चै-

वलवणानिच ॥ १५८ ॥ पिप्पलींचित्रकंशुण्ठींत्रिफलांत्रिवृतांश्च-

चाम् । द्वौक्षारौशातलांदन्तींस्वर्णक्षीरींविपाणिकाम् ॥ १५९ ॥
कोलप्रमाणां वटिकां पिवेत्सौवीरसंयुताम् । श्वयथावविपाकेचप्रवृ-
द्धेचोदकोदरे ॥ १६० ॥

बकरीकी मँगनोंकी राखको आठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब चौथा भाग शेष रहे तो उतारकर छान लेवे फिर इसको दूसरे पात्रमें पकावे । जब गाढा होजाय तो फिर इसमें पीपलामूल, पांचों नमक, चित्रक, सोंठ त्रिफला, निशोथ, वच, जवाखार, सजीशर, सातला, दंती, स्वर्णक्षीरीकी जड और मेंडसिंगी इन सबका वारीक चूर्ण मिलाकर कोल (१ कर्प या बेरके समान) प्रमाण गोलिमें बनालेवे । १ गोलीको नित्य खाकर सौवीरके साथ अनुपान करे । इसके सेवनसे सूजन, अवि-
पाक, बढ़ाहुआ उदररोग और जलोदर यह शान्त होतेहैं ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

भावितानांगवांमूत्रेपष्टिकानान्तुतण्डुलैः । यवागुंपयसासिद्धांप्र-
कामंभोजयेन्नरम् ॥ १६१ ॥ पिवेदिक्षुरसञ्चानुजठराणांनिवृत्तये ।
स्वंस्वंस्थानंत्रजन्त्येपांतथापित्तकफानिलाः ॥ १६२ ॥

इसमें गोमूत्रमें भावना दियेहुए शाठीके चावल दूधमें पकाकर यवागूके समान बना इच्छापूर्वक भोजन करावे । और उसके ऊपर ईखका रस पिलावे तो वात, पित्त, कफ अपने २ स्थानोंमें पहुंच जाय और जठररोग शान्त हो ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

शंखिनीस्तुवित्रवृद्धन्तीचिरविल्वदिपल्लवैः । शाकंगाढपुरीषाय
प्राग्भक्तंदापयोद्भिपक् ॥ १६३ ॥ ततोऽस्मैशिथिलीभूतवर्चो-
दोषायशास्त्रवित् । दद्यान्मूत्रयुतंक्षीरंदोषशेषहरंशिवम् ॥ १६४ ॥

शंखिनी (यवतिक्ता), थोहर, निशोथ, दंती और कंजाके पत्रोंका शाक जिस उदररोगीको सूखीहुई, विष्टा आतीहो उसको भोजनके समय उपरोक्त शाक भातके साथ खिलवे जब देखे कि रोगीका मल शिथिल होगयाहै तो शाखको जाननेवाला, बैद्य दूध और गोमूत्र मिला पिलावे तो बाकी रहे दोष आसानीसे निकल जाते हैं ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

पार्श्वशूलमुपस्तम्भं हृद्ग्रहञ्चापिमारुतम् ।

जनयेद्यस्यतैलंसविल्वक्षारेणनापिवेत् ॥ १६५ ॥

जिन उदररोगीके वायुकी उग्रतासे पार्श्वशूल, ऊरुस्तम्भ और हृदयका जकड़जाना होय उसको मरल, मुहांजने और मूलीके बीजोंका तेल बयवा अदरखसे सिद्ध किया तैल विल्वक्षार मिलाकर पिलावे ॥ १६५ ॥

तथाग्निमन्थशोनाकपलाशतिलनालजैः । वलाकदल्यपामार्गक्षारैः प्रत्येकशःस्रुतैः ॥ १६६ ॥ तैलंपक्त्राभिषग्दद्यादुदराणांप्रशान्तये । निवर्त्ततेचोदरिणांहृद्यहश्चानिलोद्भवः ॥ १६७ ॥

अथवा अग्निमंथ, सोनापाठा, ढाक, तिलोंकी नाल, वला, केलाका कंद, अपामार्ग इन सबका क्षार अलग २ लेकर टपकावे। उन सबसे सिद्ध किया तैल उदररोगियोंका वातज हृद्रोगको दूर करताहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

कफेवातेनपित्तेनताभ्यांवाप्यावृतेऽनिले ।

वालिनःस्वौषधयुतंतैलमैरण्डजंहितम् ॥ १६८ ॥

कफ और वायुसे अथवा कफ पित्तसे यदि वायु रुकजाय तो बलवान उदररोगीको उदररोगनाशक द्रव्योंके साथ एरण्डतैल पिलाना चाहिये ॥ १६८ ॥

सुविरिक्तोनरोयस्तुपुनराधमतीहतम् । सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ १६९ ॥ सोपस्तम्भोऽपिवावायुराध्मापयतिर्यंनरम् ।

तीक्ष्णैःसक्षारगोमूत्रैर्वस्तिभिस्तमुपाचरेत् ॥ १७० ॥

यदि विरेचन द्वारा शुद्धकाय होजानेपर फिर हटकर उदररोग होजाय तो अम्ल और लवण मिलाकर स्निग्ध निरूहण वस्ति करे। और जिस रोगीको वायु उपस्तम्भ होकर अफारा प्रगटकर देवे। उसकी तीक्ष्ण क्षार और गोमूत्र मिलाकर वस्तिक्रिया द्वारा चिकित्सा करे ॥ १६९ ॥ १७० ॥

विशेष निर्देश ।

क्रियातीतेत्रिदोषेचजठरेचाप्रशाम्यति । ज्ञातीन्ससुहृदोदारान्ब्राह्मणान्नृपतीन्गुरुन् ॥ १७१ ॥ अनुज्ञाप्यभिषक्कर्माविदध्यात् संशयंब्रुवन् । अक्रियायांभ्रुवोमृत्युःक्रियायांसंशयोभवेत् । एवमाख्यायतस्येदमनुज्ञातःप्रयोजयेत् ॥ १७२ ॥

यदि त्रिदोषजन्य उदररोग इन सब क्रियाओंके करनेसे भी शान्त न हो ती रोगीके जातीय, ब्राह्मण, स्त्री, ब्राह्मण, राजा और गुरु आदिको बुलाकर कहेकि, मैंने यथोचित चिकित्सा की है परन्तु तब भी रोग शान्त नहीं हुआ १ अब यह (आगे कहीहुई) क्रिया बाकी है। इसके बिना किये रोगीकी अवश्य मृत्यु होजायगी और इस क्रियाके करनेपर भी रोगी अच्छा होजायगा अथवा नहीं बचेगा इस विषयमें पूर्ण विश्रय नहीं है। यदि इस प्रकार वैद्यके कहनेपर सब लोग अनुमति दें तो वैद्य आगे कहीहुई क्रिया करे ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

सार्पविषप्रयोग ।

पानभोजनसंयुक्तं विषमस्मै प्रदापयेत् ॥ १७३ ॥ यस्मिन्वाकुपितः
सर्पो विसृजेद्विफले विषम् । तेनास्य दोषसंघातः स्थिरोलीनो विमार्ग-
गः ॥ १७४ ॥ विषेणाशुप्रमाथित्वादाशुभिन्नः प्रवर्त्तते । विषेण
हतदोषं तं शीताम्बुपरिपेचितम् ॥ १७५ ॥ पाययेत भिषग्दुग्धं-
वागूवायथावलम् । त्रिवृन्ममण्डूकपर्ण्योश्च शाकं सयववास्तुकम् ॥
॥ १७६ ॥ भक्षयेत्कालशाकं वास्वरसोदकसाधितम् । निरम्ललव-
णस्त्रेहंस्विन्नास्त्रिन्नमनन्नभुक् ॥ १७७ ॥ मासमेकं ततश्चैव तृपितः
स्वरसं पिबेत् । एवं विनिर्हते दोषे शाकैर्मासात्परंततः ॥ १७८ ॥ दुर्व-
लायप्रयुञ्जीत प्राणभृत्कारभंपयः ॥ १७९ ॥

जो रोगी किसी प्रकार चिकित्सा करने पर भी अच्छा न हो सकता हो और उसकी उदररोगसे अवश्य मृत्यु होना प्रतीत होता हो तो उसको पान और भोजनमें सर्पका विष खिलावे । सर्प क्रुद्ध होकर जिस फलमें अपने विषको छोड़े वह उस रोगीको खिलावे । इस विषके खानेसे रोगीके स्थिर, लीन और विमार्गगामी दोष विपके बलसे प्रमथित होकर शीघ्र फटकर निकलने लगते हैं । जब वैद्य देखे कि विपसे सब दोष निकल चुके हैं तो रोगीको शीतल जलसे परिसेचन करे फिर यथा-वल दूध अथवा यवामू पिलावे । दूसरे दिन निशोयके पत्र अथवा ब्राह्मी या यव-तित्ता, बथुआ, अथवा कालशाकको जलमें पकाकर नमक, खटाई और चिकनाईके ही बिना भली प्रकार सिद्धकर अथवा थोड़ा सिद्धकर खिलावे और अन्न न देवे । रोगीको प्यास लगे तो इन्हीं शाकोंका जल पिलावे । इस प्रकार इन शाकोंके सेवनसे दोष निकलकर रोगी अत्यंत दुर्बल होजाता है उस समय उसको हयनीका दूध पिलावे जिससे रोगीके प्राणोंमें बल आवे ॥ १७३-१७९ ॥

उदररोगमें शस्त्रकर्म ।

इदन्तुशल्यहर्तृणां कर्मस्याद्दृष्टकर्मणाम् । वामंकुक्षिमापयित्वा
नाभ्यधश्चतुरंगुलम् । मात्रायुक्तेन शस्त्रेण पाटयेन्मतिमान्भिषक् ॥
॥ १८० ॥ विपाट्यान्त्रंततः पश्चाद्दीक्ष्य वद्धक्षतान्त्रयोः । सर्पिणा-
भ्यज्यकेशादीनवमृज्यविमोक्षयेत् ॥ १८१ ॥ मूर्च्छनाद्यच्चसंमूढ-
मन्त्रंतच्चविमोक्षयेत् । छिद्राण्यन्त्रस्य तु स्थूलैर्दशयित्वा पिपीलि-

कैः ॥ १८२ ॥ बहुशःसंगृहीतानिज्ञात्वाछित्त्वापिपीलिकान् । प्रति-
योगैःप्रवेद्यान्त्रप्रेयैःसीव्येद्रणंततः ॥ १८३ ॥

दृष्टकर्मा, सिद्धहस्त, शस्त्रक्रियामें कुशल वैद्य नाभिसे चार अंगुल नीचे बाई कुक्षीकी ओर शस्त्रद्वारा चीरा लगावे और उदरकी वद्ध और क्षत अंतडियोंकी परीक्षा करे और अंतडियोंमें मधुपष्टि घृत चुपडकर उन अंतडियोंके अन्दरका बाल आदि शल्य निकालडाले । अंत्र संवद्ध या मूर्च्छित होनेपर भी शस्त्रद्वारा सब दोष निकलकर वद्ध खुल जायगा । आंतोंके समस्त छिद्र यदि मोटे हों तो बहुतसी वडी २ चींटियोंसे कटवावे । ऐसा करनेसे अंतडियोंके छिद्र इकट्ठे होकर आपसमें मिलजावेंगे फिर उन चींटियोंका छोडा आंतोंको उनके स्थानमें पहुंचाकर जखमको बाहरसे सीदेना चाहिये ॥ १८० ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

जलोदरमें नलिकायंत्रद्वारा जल निकालना ।

तथाजातोदकंसर्वमुदरंव्यधयेन्द्रिपक् । वामपाइवेत्वधोनाभेर्नाडीं
दत्त्वाचगालयेत् ॥ १८४ ॥ निःस्त्राव्यचविमृज्यैतद्वेष्टयेद्वाससोदर-
म् । तथावस्तिविरेकाद्यैर्म्लानंसर्वश्ववेष्टयेत् ॥ १८५ ॥

शस्त्रकर्मको जाननेवाला वैद्य जिस रोगीके पेटमें जल भरा हो उसके नाभिसे नीचे बाई ओर नलिकाशस्त्र लगाकर पेटका जल निकालदेवे जल निकलजानेके अनन्तर पेट हलका होजानेपर नलिका शस्त्र निकालकर त्वचाको ठीक भिजा कपडेसे संपूर्ण पेटको लपेट देवे । इसी प्रकार वस्ति और विरेचन आदिकोंसे शुद्ध होकर मुर्झाये हुए उदररोगीके पेटको बख्त्से लपेट देना चाहिये ताकि उदरमें फिर दोषका प्रवेश न होसके ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

निःसृतेलंघितःपेयामस्त्रेहलवणांपिवेत् । अतःपरश्वपणमासान्क्षी-
रवृत्तिर्भवेन्नरः ॥ १८६ ॥ त्रीन्मासान्पयसापेयांपिवेत्र्त्रींश्चापिभोज-
येत् । श्यामाकंकोरदृग्प्यंवाक्षीरेणलघुभोजनः । नरःसंवत्सरेणैवं
जयेत्प्राप्तंजलोदरम् ॥ १८७ ॥

इस प्रकार उदररोगीके दोष निकलजानेपर लंघन करा लवण और चिकनाई रहित पेया पिनावे । फिर छः महीने पर्यन्त रोगीको दूध ही पिलाना चाहिये । (पानी कभी न पिलावे) फिर तीन महीने तक दूधके साथ पेया पिलावे । तदनंतर श्यामाक चायल अथवा कोदर चायलका भात बहुत नरम बनाकर दूधके साथ भोजन करावे । इस प्रकार १ वर्ष तक जत्रोदर रोगीकी रक्षा करता रहे तो वैद्य जलोदर रोगको जीत सकताहै ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

दूधकी प्रशंसा ।

प्रयोगाणाञ्चसर्वेषामनुक्षीरंप्रयोजयेत् ॥ १८८ ॥ दोपानुबन्धरक्षार्थंवलस्थैर्यार्थमेवच । प्रयोगापचिताङ्गानांहितंद्दुदरिणांपयः । सर्वधातुक्षयार्त्तानांदेवानाममृतंतयथा ॥ १८९ ॥

इन सब प्रयोगोंके अनन्तर दूधका पिलाना ही श्रेष्ठ है । दूधके पिलानेसे दोषोंका अनुबंध नहीं होता बल और स्थिरताकी रक्षा होतीहै । औषधि प्रयोगसे कृश हुए उदररोगियोंके लिये दूध इसप्रकार हितकारी है जैसे सर्वधातु क्षय होनेसे दुःखितहुए देवताओंको अमृतका पीना हितकारी होताहै ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

हेतुंप्राग्रूपमष्टानांलिङ्गव्याससमासतः। उपद्रवान्गरीयस्त्वंसाध्यासाध्यत्वमेवच ॥ १९० ॥ जाताजाताम्बुलिङ्गानिचिकित्साश्चोक्तवानृषिः । समासव्यासनिर्देशैरुदराणांचिकित्सितम् ॥ १९१ ॥

इति चरक० चि० उदरचिकित्सितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस उदर चिकित्सित नामक अध्यायमें उदररोगके हेतु, पूर्वरूप, आठ प्रकारके उदररोगोंके लक्षण, उपद्रव, गुरुता साध्यासाध्य, जात और अजात जलके लक्षण, चिकित्सा यह सब संक्षेप और विस्तारसे महर्षि आत्रेयजीने कहाहै ॥ १९० ॥ १९१ ॥

इति श्रीमहाप्रचरक० प्र० आयुर्वेदीय स० चि० स्थाने उदरचिकित्सितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो ग्रहणीचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम ग्रहणीचिकित्सितनामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार, भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

आयुआदिमें अग्निको कारणता ।

आयुर्वर्णोवलंस्वास्थ्यमुत्साहोपचयौप्रभा ।

ओजस्तेजोऽग्नयःप्राणाश्चोक्तादेहाग्निहेतुकाः ॥ १ ॥

आयु, वर्ण, बल, स्वास्थ्य, उत्साह, पुष्टि, कांति, ओज, तेज, क्षुधा और प्राण यह सब अग्नि के ही अंधीन हैं ॥ १ ॥

शान्तेऽग्निप्रियतेयुक्तेचिरंजीवत्यनामयः । रोगीस्याद्विकृतेमूल-
मग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥ २ ॥ यदन्नदेहधात्वोजोबलवर्णादिपोष-
कम् । तत्रग्निर्हेतुराहारान्नह्यपकाद्रसादयः ॥ ३ ॥

क्योंकि जठराग्नि के शान्त होनेसे ही मनुष्य दीन होकर मरजाता है । यदि जठराग्नि उत्तम हो तो मनुष्य दीर्घायु और नीरोगी होता है । अग्नि के विकृत होनेसे ही मनुष्य रोगी होता है । इसलिये मनुष्यों के जीवन और आरोग्यता का मूल कारण जठराग्नि की यथार्थता ही है । अन्न का अग्नि द्वारा यथोचित परिपाक होकर देह, धातु, ओज और बल वर्णादिका पोषण करनेवाला होता है उस अन्न के रस को यथोचित धातु, ओज आदिमें परिवर्तन करने का कारण जठराग्नि ही है । क्योंकि जठराग्नि के ठीक न होनेसे अन्न का यथोचित परिपाक होकर रस आदिक बन ही नहीं सकते ॥ २ ॥ ३ ॥

अन्नमादानकर्मातुप्राणःकोष्ठंप्रकर्षति । तद्रवैर्भिन्नसंघातंस्नेहेनमृ-
दुतांगतम् ॥ ४ ॥ समानेनावधूतोऽग्निरुदर्य्यःपवनेनतु । कालेभुक्तं
समंसम्पद्यपचत्यायुर्विवृद्धये ॥ ५ ॥ एवंसमलायान्नमाशयस्थ-
मधःस्थितः । पचत्यग्निर्यथास्थाल्यामोदनायास्त्रुतण्डुलम् ॥ ६ ॥

प्राणवायु अन्न को ग्रहण कर कोष्ठमें लेजाती है । क्योंकि अन्न को ग्रहण करके कोष्ठमें पहुंचा देना ही प्राणवायु का कर्म है । फिर वह अन्न आमाशयमें पहुंचकर कफकी द्रवतासे द्रवीभूत होकर स्नेहसे मग्न होजाता है ! फिर समानवायुसे जठराग्नि उत्तेजित होकर उस अन्न को पाचन कर देती है । उसीसे मनुष्य की आयु आदि बढ़ती है । जैसे किसी पात्रमें चावल और जल मिलाकर आग पर चढा देनेसे नीचे की अग्नि उसको भात के रूपमें परिणत कर देती है उसी प्रकार आमाशयमें स्थित हुए अन्न को पाचकाग्नि रस और मलके रूपमें परिणत कर देती है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

भुक्तान्नसे तीनों दोषोंकी उत्पत्ति ।

अन्नस्यभुक्तमात्रस्यपद्मसस्यप्रपाकतः । मधुरात्प्राक्फोद्भावात्फे-
नभूतउदीर्य्यते ॥ ७ ॥ परन्तुपच्यमानस्यविदग्धास्याम्लभा-
वतः । आशयाच्च्यावमानस्यपित्तमच्छमुदीर्य्यते ॥ ८ ॥ पकाश-

यन्तुप्राप्तस्यशोष्यमाणस्यबहिना । परिपिण्डितपक्वस्यवायुः स्या-
त्कटुभावतः ॥ ९ ॥

छः रस युक्त भोजन किये अन्नका प्रथम परिपाक होकर मधुरतासे फेनभूत कफकी उत्पत्ति होतीहै । फिर पकेहुए अन्नके अम्लभावसे विदग्ध होकर आम्राशयसे शरकर स्वच्छ पित्त प्रकट होताहै । फिर वह अन्न अभिसे सूखकर पकाशयमें प्राप्त हो कटुभावसे वायुको उत्पन्न करताहै तथा पिण्डाकार बनकर विष्टारूपमें परिणत होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

आहारसे इंद्रियोंकी पुष्टि ।

अन्नमिष्टंभ्युपकृतमिष्टैर्गन्धादिभिःपृथक् । देहेप्रीणातिगन्धादीन्घ्रा-
णादीनीन्द्रियाणिच ॥ १० ॥

जो अन्न उत्तम, मिय, गंधादियुक्त, आहार किया जाताहै वह शरीरमें स्थित घ्राणादि इंद्रियोंमें गंधादि ग्रहणशक्तियोंको परिपुष्ट करताहै ॥ १० ॥

भौमाप्याग्नेयवायव्याःपञ्चोष्माणःसनाभसाः । पञ्चाहारगुणान्
स्वान्स्वान्पार्थिवादिन्पचन्तिहि ॥ ११ ॥ यथास्वंस्वञ्चपुण्यन्तिदे-

हद्रव्यगुणाःपृथक् । पार्थिवाःपार्थिवानेवशेषाःशेषांश्चकृत्तशः ॥

॥ १२ ॥ सप्तभिर्देहधातारोद्विविधाश्चपुनःपुनः । यथास्वमग्निभिः
पाकंयान्तिकिट्प्रसादवत् ॥ १३ ॥

पृथिव्यादि पांचभौतिक अन्यके परिपाक करनेवाली पांच प्रकारकी ही पांचभौतिक शक्तियोंवाली पार्थिव, जलीय, आग्नेय, वायवीय और आकाशीय गुणोंवाली ऊष्मा (अग्नि) होती है । वह पांच प्रकारकी ऊष्मा पार्थिव आदि पांच प्रकारके गुणोंवाले आहारके अंशोंको परिपाक करताहै । और अपने २ महाभूतात्मक द्रव्यके अंशको लेकर शरीरमें अपने २ भागको पोषण करतीहै । जैसे पार्थिव ऊष्मा आहारके पार्थिव भागको लेकर शरीरके पार्थिव भागको पोषण करतीहै । इसी प्रकार अन्य जलीय आदिक भी जानना । इस प्रकार पांचभौतिक आहारके परिपाक होनेसे यह पंचभूतात्मक शरीर संपूर्ण शारीरिक गुणोंसे संपन्न होताजाताहै । रसादिक सात धातुयें भी अपनी २ अभिसे परिपाक होतेहुए मल और प्रसादरूपसे दो प्रकारके रूपमें परिणत होजातीहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

रसाद्रक्तंतोमांसमांसान्मेदस्ततोऽस्थिच । अस्थ्रोमजाततः शु-

ऋशुक्राद्गर्भःप्रजायते ॥ १४ ॥ रसात्स्तन्यंततोरक्तमसृजःकण्डराः
शिराः । मांसाद्द्रसात्वचःपट्चमेदसःस्नायुसम्भवः ॥ १५ ॥

इस प्रकार उस पांचभौतिक आहारका जठराग्नि द्वारा परिपाक हो पहिले रस धातु बनताहै और किट्ट अलग होजाताहै फिर रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थियोंसे मज्जा, मज्जासे शुक्र (वीर्य) और इस शुक्रसे ही गर्भ उत्पन्न होताहै । एवं रससे स्तन्य (दूध) दूधसे रक्त, रक्तसे कंडरा और शिरा उत्पन्न होतीहैं । मांससे वसा और सात प्रकारकी त्वचा होतीहैं । तथा मेदसे संपूर्ण स्नायु और संधियं पोषण होतीहैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

इत्युक्तवन्तमाचार्य्यशिष्यस्त्विदमचोदयत् । रसाद्रक्तं विसदृशा-
त्कथं देहेऽभिजायते ॥ १६ ॥ रसस्य च न रङ्गोऽस्ति सकथं याति रक्तता-
म् । रसाद्रक्तात्स्थिरं मांसं कथं तज्जायते नृणाम् ॥ १७ ॥ रसाद्र-
क्तात्तथा मांसान्मेदसः श्वेतता कथम् । श्लक्ष्णाभ्यां मांसमेदोभ्यां
खरत्वं कथमस्थिषु ॥ १८ ॥ खरेष्वस्थिषु मज्जा च केन स्निग्धो मृदु-
स्तथा । मज्ज्ञश्च परिणामेन यदि शुक्रं प्रवर्त्तते ॥ १९ ॥ सर्वदेहगतं
शुक्रं प्रवदन्ति मनीषिणः । अथापि मध्ये मज्ज्ञश्च शुक्रं भवति देहिना-
म् ॥ २० ॥ छिद्रं न दृश्यतेऽस्थ्नाश्च तन्निःसरति वा कथम् । एवमुक्त-
स्तु शिष्येण गुरुः प्राहेदमुत्तरम् ॥ २१ ॥

इस प्रकार अपने गुरु भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछनेलगे कि हे भगवन् ! विपरीत वर्णवाले रससे शरीरमें रक्त कैसे होजाताहै क्योंकि रसमें तो लालवर्णका रंग नहीं होता वह कैसे लालवर्णका रक्त बनजाताहै । उस पतले रस और रक्तसे स्थिर मांस कैसे प्रकट होताहै और उस मांससे उत्पन्न होनेवाली मेद श्वेतवर्णकी किस प्रकार होजातीहै । नरम और चिकने मांस मेदसे खर और कठोर अस्थिर्यं कैसे उत्पन्न होतीहैं । उन खरगुणवाली अस्थियोंसे चिकनी और नम्र मज्जा कैसे उत्पन्न होतीहै यदि मज्जाके परिणामसे ही शुक्रकी उत्पत्ति है तो शुक्रको बुद्धिमान् संपूर्ण शरीरमें व्यापक मानतेहैं फिर उस मज्जाके मध्यमें उत्पन्न होनेवाले शुक्रको अस्थियोंसे बाहर निकलनेके लिये अस्थियोंमें कोई छिद्र तो प्रतीत होता ही नहीं फिर वह शुक्र अस्थियोंमेंसे किस प्रकार निकलताहै । इस प्रकार शिष्यके प्रश्नोंकी सुनकर गुरु उत्तर देनेलगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

आत्रेयजीका उत्तर (सात धातुओंके बननेका क्रम) ।

तेजोरसानांसर्वेषामनुजानांयदुच्यते । पित्तोष्मणःसरागेणरसो-
रक्तत्वमृच्छति ॥ २२ ॥ वाय्वग्नितेजसारक्तमुष्मणाचाभिसंयु-
तम् । स्थिरतांप्राप्यशौक्ल्यञ्चमेदोदेहेऽभिजायते ॥ २३ ॥ पृथि-
व्यग्न्यनिलादीनांसंघातःश्लेष्मणावृतः । खरत्वंप्रकरोत्यस्यजाय-
तेऽस्थिततो नृणाम् ॥ २४ ॥ करोतितत्रसौपित्थ्यमस्त्रांमध्येसमी-
रणः । मेदसस्तानिपूर्यन्तेस्नेहोमज्जाततःस्मृतः ॥ २५ ॥ तस्मा-
न्मज्जस्तुयःस्नेहःशुक्रंसञ्जायतेततः ॥ २६ ॥

सब मनुष्योंके आहारसे जो रस उत्पन्न होताहै उस रसमें जो तेज पदार्थ है वही रसको रक्त बनानेमें कारण है उस रसमें होनेवाले रागयुक्त तेज और पित्तकी गर्मासे रस लालरूपमें परिणत हो रक्तताको प्राप्त होजाताहै । वही रक्त वायु और अग्निके तेजसे स्थिरताको प्राप्त होकर मांसरूपमें परिणत होजाताहै । इसी प्रकार मांस वायु, कफ और अग्निके तेजसे परिणत होकर श्वेत भेदके रूपमें प्राप्त होजाताहै । वह भेद कफसे आवृत हो पृथ्वी, अग्नि और वायुके संघातसे खरत्वको प्राप्त हो मनुष्योंकी अस्थियोंके रूपमें परिणत होजाताहै । उन अस्थियोंमें वायु छिद्रोंको प्रकट करदेताहै । जिससे वह हड्डियें भेदसे परिपूर्ण होकर मज्जाको उत्पन्न करतीहैं । उस मज्जाके स्नेहसे वीर्यकी उत्पत्ति होतीहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

शुक्र निकलनेका क्रम ।

वाय्वाकाशादिभिर्भावैःसौपित्थ्यंजायतेऽस्थिषु । तेनस्त्ववतितच्छु-
क्रंनवात्कुम्भादिवोदकम् । स्रोतोऽभिष्यन्दतेदेहात्समन्ताच्छुक्र-
वाहिभिः ॥ २७ ॥ हर्षेणोदीरितंरागात्सङ्कल्पाच्चमनोभवात् ।
विलीनंघृतवद्वयायामोष्मणास्थानविच्युतम् ॥ २८ ॥ वस्तौसं-
भृत्यनिर्य्यातिस्थलान्निम्नादिवोदकम् ॥ २९ ॥

वायु, और आकाशके गुणसे हड्डियोंके सब भागोंमें सूक्ष्म छिद्र होतेहैं । उन छिद्रोंद्वारा वीर्य बाहर निकलताहै । जैसे नवीन मटीके बडेमें जल भरनेसे वह झरने लगताहै उसी प्रकार अस्थियोंके सूक्ष्म छिद्रोंसे शुक्र झरकर शुक्रवाही स्रोतों द्वारा कामचेष्टासे उत्पन्न हुए राग और संकल्पसे मैथुनादि व्यायामजनित गर्मासे घृतके समान पिघल जाताहै और अपने स्थानसे चल बस्तिमें संचित हाकर जैसे ऊंचे स्थानसे नीचे स्थानको जल निकलजाताहै उसीप्रकार यह भी निकल जाताहै २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

धातुओंके मल ।

किट्टमन्नस्यविण्मूत्ररसस्यचकफोऽसृजः । पित्तमांसस्यचमलोमलः
स्वेदस्तुमेदसः । स्यात्किट्टकेशजालोमास्थनोमज्जःस्नेहोऽक्षिविट्-
त्वचाम् ॥ ३० ॥ प्रसादकिट्टेधातूनांपाकादेवंविधःस्मृतः ॥ ३१ ॥

आहारका किट्ट विष्टा और मूत्र होताहै । रसका किट्ट (मल) कफ (बलगम,
थूक) होताहै । रक्तका किट्ट पित्त होताहै । मेदका मल पसीना । हड्डियोंका मल
लोम । मज्जका मल शरीरगत स्नेह, त्वचाका मल नेत्रोंका कीच होताहै । इस प्रकार
रससे रक्तादिकोंका बनना धातुओंका प्रसाद कहाजाताहै । और मलादिक किट्ट
मल कहेजाते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

परस्परोपसंस्तम्भाधातुस्नेहपरम्परा । वृष्यादीनांप्रभावस्तुपुष्णा-
तिवलमाशुहि । पद्भिःकेचिदहोरात्रैरिच्छन्तिपरिवर्तनम् ॥३२॥
सन्तत्याभोज्यधातूनांपरिवृत्तिस्तुचक्रवत् ॥ ३३ ॥

सब धातुयें आपसमें एक दूसरेको पुष्ट करती हैं और रसादि क्रमसे ही धातु-
ओंका पोषण होकर वीर्यबलादि उत्पन्न होतेहैं । परन्तु वृष्य, वाजीकरणादि पदार्थ
विना ही रसादिक्रमसे परिणत हुए शीघ्र बलको उत्पन्न करतेहैं यह इनका स्वाभाविक
गुण है । कोई कहतेहैं कि एक धातु ६ दिन रात्रिमें दूसरी धातुके रूपमें परिणत
होतीहै । परन्तु इस प्रकार धातुओंके परिवर्तनका चक्रके समान सदैव रूपान्तर
होता जाताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

व्यानेनरसधातुर्हिविक्षेपोचितकर्मणा । युगपरसर्वतोऽजस्रं देहेवि-
क्षिप्यते सदा । क्षिप्यमाणस्तुवैगुण्याद्रसःसज्जतियत्रसः ॥३४॥
करोतिविकृतिश्चात्रखेवर्षमिवतोयदः । दोषाणामपिचैवंस्यादेक-
देशप्रकोपणम् ॥ ३५ ॥

संपूर्ण शरीरमें संचार करनेवाली व्यान वायुका विक्षेप करना ही कर्म है उसीसे
रस एकसाथ संपूर्ण शरीरमें विक्षिप्त (फेंका हुआ) होताहै । वह रस इस प्रकार
व्यानवायु द्वारा फेंकाहुआ जिस स्थानमें इकट्ठा होजाताहै उसी स्थानमें विकार-
भावको प्राप्त होजाताहै । जैसे आकाशमें भेघ इकट्ठे होकर वृष्टि करनेलगतेहैं उसी
प्रकार दोष भी इकट्ठे होनेसे उसी स्थानमें कुपित होजाते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

जठराग्निकी प्रधानता ।

इति भौतिकधात्वन्नपक्वणांकर्मभापितम् । अन्नस्यपक्तासर्वेषांप-

कृणामधिकोमतः ॥ ३६ ॥ तन्मूलास्तेहितदृद्धिक्षयवृद्धिक्षया-
त्मकाः । तस्मात्तंविधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः ॥ ३७ ॥ पाल-
येत्प्रयतस्तस्यस्थितौद्यायुर्वलस्थितिः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार संपूर्ण भौतिक धातु और अन्नके परिपाक करनेवाली अमियोंके कर्म वर्णन किये गये हैं । उन सब प्रकारकी पाचामियोंमें अन्नका परिपाक करनेवाली अग्नि प्रधान मानी जाती है । क्योंकि पाचकाग्नि ही और संपूर्ण अमियोंका मूल है । पाचकाग्निकी वृद्धि और क्षयसे अन्य रंजकादि अमियोंका भी वृद्धि और क्षय होता है । इसलिये जठराग्नियोंको ही अनेक प्रकारके हित अन्न पान रूपी इंधनोंसे निरन्तर पालन करना चाहिये । पाचकाग्निके ठीक रहनेसे ही वायु और बल रह-
सकते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

योहिभुङ्क्तेविधिमुक्त्वाग्रहणीदोषजान्गदान् ।

सलौल्याल्लभतेशीघ्रिवक्ष्यन्तेऽतःपरन्तुये ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य विधिको छोड़कर चपलता अथवा लोभके वश भोजन करते हैं उन्हीं मनुष्योंकी ग्रहणी दोषसे उत्पन्न हुए गेग शीघ्र प्राप्त होते हैं । अब उन रोगोंका वर्णन करते हैं ॥ ३९ ॥

जठराग्नि दूषित होनेका हेतु ।

अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विपमाशनात् । असात्म्यगुरुशीता-
तिरूक्षसन्दुष्टभोजनात् । विरेकवमनस्त्रेहविभ्रमाद्र्याधिकर्षणा-
त् ॥ ४० ॥ देशकालतुर्वैषम्याद्वेगानाञ्चविधारणात् । दुष्यत्यग्निः
सदुष्टोऽन्नंनतत्पचतिलघ्वपि ॥ ४१ ॥

आहार न करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, अत्यंत भोजन अथवा विषम भोजनके सेवनसे, असात्म्य, भारी, शीतल, अतिरूक्ष और विष आदिकोंसे दूषित भोजन करनेसे स्त्रेहन, वमन, विरेचन आदिकोंका अतियोग अथवा मिथ्यायोग होनेसे, रोगादिकोंसे, शरीरके कृश होनेसे, देश, काल और ऋतुके विपरीत भावसे, और मलमूत्रादि वेगोंके धारणसे जठराग्नि दूषित होजाती है । वह दूषित हुई अग्नि हल्के अन्नका भी परिपाक नहीं कर सकती ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अजीर्णके लक्षण ।

अपच्यमानंशुक्तत्वंयात्यन्नंविपताञ्चतत् । तस्यलिङ्गमजीर्णस्य
विष्टम्भोऽङ्गश्चसीदति ॥ ४२ ॥ शिरसोरुचमूर्च्छाचभ्रमःपृष्टक-

टिग्रहः । जृम्भाङ्गमर्दस्तृष्णाचञ्चरइच्छादिःप्रवाहणम् ॥ ४३ ॥
अरोचकोऽविपाकश्चघोरमन्नविषञ्चतत् ॥ ४४ ॥

अन्नका परिपाक न होनेसे वह अन्न अम्लताको प्राप्त होकर विषके समान हानि-कारक होजाताहै । तब उस अजीर्णके यह लक्षण होतेहैं । जैसे विष्टम्भ, अंगोंमें शिथिलता, मस्तक पीडा, मूर्च्छा, भ्रम, पीठ और कमरमें पीडा, जंभाई, अंगडाई, प्यास, ज्वर, बमन, प्रवाहन, अरुचि और अन्नका अविपाक यह अजीर्ण अन्न विषके समान घोर उपद्रवोंको करताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

दोषसंसृष्ट अजीर्णसे रोग ।

संसृज्यमानंपित्तेनदाहंतृष्णांमुखामयान् । जनयत्यम्लपित्तंचपित्त-
जांश्चापरान्गदान् । यक्ष्मपीनसमेहादीन्कफजांन्कफसङ्गतः॥४५॥
करोतिवातसंसृष्टंवातजांश्चगदान्वहून् । सूत्ररोगांश्चसूत्रस्थंकुक्षि-
रोगाञ्छकृद्गतम् ॥ ४६ ॥ रसादिभिश्चसंसृष्टंकुर्याद्रोगात्रसा-
दिजान् ॥ ४७ ॥

वह अजीर्ण अन्न पित्तसे मिलकर दाह, प्यास, मुखरोग, अम्लपित्त तथा अन्न पित्तजनित विकारोंको उत्पन्न करताहै । वही विषरूप अजीर्ण अन्न कफके साथ मिलनेसे कफजनित राजयक्ष्मा, प्रतिश्याय और प्रमेह आदिकोंको उत्पन्न करताहै । यदि वह वातके साथ मिलजाय तो वातजनित अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै । तथा वह अजीर्ण अन्नरूपी विष सूत्रस्थ होनेसे सूत्ररोग होताहै और मलगत होनेसे कुक्षिरोगोंको उत्पन्न करताहै । एवं रसादिके साथ मिलनेसे रसादिके रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अग्निभेदसे परिपाक ।

विषमोधातुवैषम्यं करोति विषमंपचन् । तीक्ष्णो मन्देन्धनो धातून्वि-
शोधयति पावकः । युक्तं भुक्तवतो युक्तो धातुसाम्यं संसंपचन् ॥ ४८ ॥
दुर्बलो विदहत्यन्नंतयात्पूद्धं मधोऽपि वा ॥ ४९ ॥

जठराग्नि विषम होनेसे अन्नका भी विषम परिपाक करके धातुओंमें विषमताको प्रकट करतीहै । और वही अग्नि अधिक चैतन्य होनेसे अल्प आहाररूपी ईधन मिलनेपर उसको दग्धकर धातुओंका शोधन करतीहै । यदि ठीक चैतन्य अग्निमें उचित आहार मिले तो वह ठीक पाककर धातुओंमें साम्यताको पैदा करतीहै । यदि जठराग्नि दुर्बल हो तो वह आहारको विदग्ध पाक करतीहै और वह विदग्ध

(अधपका) अन्न वमन द्वारा ऊपरके मार्गसे अथवा विरेचन द्वारा नीचेके मार्गसे निकलने लगताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

ग्रहणी संग्रहति ।

अधश्चपक्वामंवाप्रवृत्तग्रहणीगदः । उच्यतेसर्वमेवान्नंप्रायोह्यस्य
विदह्यते । अतिसृष्टंविबद्धंवाद्रवंतदुपवेद्यते ॥ ५० ॥

उनमें जो अपक्व अथवा पक्व अन्न अधोमार्गसे होकर निकले उसको ग्रहणीरोग कहतेहैं । ग्रहणी रोगमें प्रायः सब प्रकारके अन्न बिदाही होजातेहैं । वही विबद्ध अन्न विबद्ध अथवा पतला होकर अत्यंत निकलने लगताहै ॥ ५० ॥

ग्रहणीके उपद्रव ।

तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः । शूनपादकरःसास्थिपर्व-
रुक्छर्दनंज्वरः॥लोहामगन्धिस्तक्ताम्लउद्गारश्चास्यजायते ॥ ५१ ॥

प्यास, अरुचि, मुखकी विरसता, लारका बहना, तमकश्वास, हाथ पांयमें सूजन, अस्थिभेद, पर्वभेद, वमन, ज्वर, लोहगंध, आमगंध, खट्टी और कड़वी डकार यह ग्रहणीरोगके उपद्रव होतेहैं ॥ ५१ ॥

ग्रहणीके पूर्वरूप ।

पूर्वरूपन्तुतस्येदंतृष्णालस्यंबलक्षयः ।

विदाहोऽन्नस्यपाकश्चचिरात्कायस्यगौरवम् ॥ ५२ ॥

प्यास, आलस्य, बलक्षय, अन्नका विदाही परिपाक तथा अन्नका देरमें पाक होना और शरीरका भारी होना यह ग्रहणी रोगके पूर्वरूप है ॥ ५२ ॥

ग्रहणीकी निरुक्ति ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्यग्रहणाद्ग्रहणीमता ॥ ५३ ॥ नाभेरुपरिसा-

ह्यग्निबलोपस्तम्भवृंहिता । अपकंधारयत्यन्नंपकंसृजतिपार्श्वतः ।

दुर्बलाग्न्यबलाद्दुष्टादाममेवपिसुञ्चति ॥ ५४ ॥

जठराग्निका अधिष्ठान ग्रहणी है । अन्नको ग्रहण करनेसे उसको ग्रहणी कहतेहैं । नाभिके ऊपर इसका स्थान है । अग्निबल ही इसका उपस्तम्भ और पोषण करताहै । यह कच्चे अन्नको धारण करतीहै, और पकेहुए अन्नको पार्श्वकी ओर त्याग करतीहै । यदि जठराग्नि दुर्बल हो तो ग्रहणी भी दुर्बल होतीहै । जठराग्निके दुर्बल अथवा दूषित होनेसे ही ग्रहणी बिना पके अन्नको त्याग करने लगतीहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

ग्रहणीके भेद ।

1, वातात्पित्तात्कफात्सर्वाद्ग्रहणीदोषउच्यते ।

हेतुलिङ्गचिकित्साञ्चशृणुतस्यपृथक्पृथक् ॥ ५५ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे ग्रहणीरोग चार प्रकारका होताहै । अब उसके हेतु, लक्षण और चिकित्साको अलग २ श्रवण करो ॥ ५५ ॥

वातज ग्रहणीके हेतु ।

कटुतिक्तकपायातिरूक्षशीतलभोजनैः ॥ ५६ ॥ प्रमितान-
शनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः । करोतिकुपितोमन्दमग्निं सञ्छाद्य'
मारुतः ॥ ५७ ॥

चरपरे, कडुवे, कसैले, अत्यंतरूक्ष और अत्यंत शीतल पदार्थोंके निरन्तर खानेसे, अल्प भोजन करनेसे अथवा भोजन न करनेसे अधिक मार्ग चलनेसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे अधिक मैथुन करनेसे वायु कुपित होकर जठराग्निको बाच्छादन कर मंद करदेताहै ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

वातज ग्रहणीके लक्षण ।

तस्यान्नंपच्यतेदुःखंशुक्तपाकंखरांगता । कण्ठास्यशोषःक्षुत्तृष्णा-
तिमिरं कर्णयोःस्वनः ॥ ५८ ॥ पार्श्वोरुवङ्गणग्रीवारुजोऽभीष्णांवि-
पूचिका । हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यंपरिकर्तिका ॥ ५९ ॥ वृद्धिः-
सर्वरसानाञ्चमनसःसदनंतथा । जीर्णेजीर्यतिचाध्मानंभुक्तेस्वा-
स्थ्यमुपैति च ॥ ६० ॥ सवातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्कीचमानवः ।
चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कंतन्वामंशब्दफेनवत् ॥ ६१ ॥ पुनःपुनःसृजेद्द्रव-
कासश्वासान्वितोऽनिलात् ॥ ६२ ॥

फिर उस मनुष्यका भोजन किया अन्न बड़ी कठिनतासे परिपाक हो तथा अम्ल परिपाक हो और धंशोंमें कठोरता, कण्ठ और मुखका शोष, वायुकी तृषा, वायुकी धुंध, नेत्रोंके आगे अंधकार, कानोंमें शब्द होना, पार्श्वपीडा ऊरु, वंक्षण और ग्रीवामें निरन्तर पीडा, विशूचिका, हच्छूल, कृशता, दुर्बलता, मुखकी विरसता परि-
कर्तिका, संपूर्ण रसोंको ग्रहण करनेकी अभिलाषा, मनमें उदासी, अन्नके जीर्ण होनेपर अकारा, भोजन करतेही स्वस्थता प्रतीत होना, रोगीको वानगुल्मसा प्रतीत होना, हृद्रोग और प्लीहाके समान लक्षण प्रतीत होना तथा विलंब और कष्टके साथ

(अधपका) अन्न वमन द्वारा ऊपरके मार्गसे अथवा विरेचन द्वारा नीचेके मार्गसे निकलने लगताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

ग्रहणी संप्राप्ति ।

अधश्चपक्वामांवाप्रवृत्तग्रहणीगदः । उच्यतेसर्वमेवान्नंप्रायोह्यस्य
विदह्यते । अतिसृष्टंविबद्धंवाद्रवंतदुपवेश्यते ॥ ५० ॥

उनमें जो अपक्व अथवा पक्व अन्न अधोमार्गसे होकर निकले उसको ग्रहणीरोग कहतेहैं । ग्रहणी रोगमें प्रायः सब प्रकारके अन्न बिदाही होजातेहैं । वही विबद्ध अन्न विबद्ध अथवा पतला होकर अत्यंत निकलने लगताहै ॥ ५० ॥

ग्रहणीके उपद्रव ।

तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः । शूनपादकरःसास्थिपर्व-
रुच्छर्दनञ्ज्वरः॥लोहामगन्धिस्तिकाम्लउद्गारश्चास्यजायते ॥ ५१ ॥

प्यास, अरुचि, मुखकी विरसता, लारका बहना, तमकश्वास, हाथ पांयमें सूजन, अस्थिभेद, पर्वभेद, वमन, ज्वर, लोहगंध, आमगंध, खट्टी और कडवी डकार यह ग्रहणीरोगके उपद्रव होतेहैं ॥ ५१ ॥

ग्रहणीके पूर्वरूप ।

पूर्वरूपन्तुतस्येदंतृष्णालस्यंबलक्षयः ।

विदाहोऽन्नस्यपाकश्चचिरात्कायस्यगौरवम् ॥ ५२ ॥

प्यास, आलस्य, बलक्षय, अन्नका विदाही परिपाक तथा अन्नका देरमें पाक होना और शरीरका भारी होना यह ग्रहणी रोगके पूर्वरूप हैं ॥ ५२ ॥

ग्रहणीकी निरुक्ति ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्यग्रहणाद्ग्रहणीमता ॥ ५३ ॥ नाम्नेरुपरिस्ता-

ह्यग्निवलोपस्तम्भवृंहिता । अपक्वंधारयत्यन्नंपक्वसृजतिपार्श्वतः ।

दुर्बलाग्न्धवलाहुष्टादाममेवविमुञ्चति ॥ ५४ ॥

जठराग्निका अधिष्ठान ग्रहणी है । अन्नको ग्रहण करनेसे उसको ग्रहणी कहतेहैं । नाभिके ऊपर इसका स्थान है । अग्निवल् ही इसका उपस्तम्भ और पोषण करताहै । यह कच्चे अन्नको धारण करतीहै, और पकेहुए अन्नको पार्श्वकी ओर त्याग करतीहै । यदि जठराग्नि दुर्बल हो तो ग्रहणी भी दुर्बल होतीहै । जठराग्निके दुर्बल अथवा दूषित होनेसे ही ग्रहणी बिना पके अन्नको त्याग करने लगतीहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

विमानस्यानके रोगानीक अध्यायमें जो चार प्रकारकी अग्नि कही हैं उनमें समाना-
ग्निको छोडकर बाकी तीन प्रकारकी अग्नि ग्रहणीदोषमें ही सम्मिलित जाननीं ॥६९॥

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे ।

त्रिदोषनिर्दिशेत्तेषांभेजंशृण्वतःपरम् ॥ ७० ॥

वातादि तीनों दोषोंके हेतु और लक्षण जिसमें सब हों उसको त्रिदोषज ग्रहणी
रोग जानना । अब ग्रहणीरोगकी चिकित्साको श्रवणकरो ॥ ७० ॥

ग्रहणीकी चिकित्सा ।

ग्रहणीमाश्रितंदोषंविदग्धाहारमूर्च्छितम् । सविष्टम्भप्रसेकार्त्तिवि-
दाहारुचिगौरवम् । आमलिंगान्वितंहृद्वासुखोष्णेनाम्बुनोद्धरेत् ॥

॥ ७१ ॥ फलानांवाकपायेणपिप्पलीसर्षपैस्तथा । लीनंपक्वाशय-
स्यंप्यामंस्त्राव्यंसदीपनैः ॥ ७२ ॥

आहार विदग्ध होनेसे दोष मूर्च्छित होकर ग्रहणीके आश्रित होजातेहैं । तब विष्टम्भ,
मुखसे लार बहना, उदरपीडा, विदाह, अरुचि, भारीपन और अन्य भी आमके
लक्षण प्रतीत होने लगतेहैं उस समय रोगीको सुखोष्ण जल पिलाकर अथवा मैनफल
आदिका क्वाथ पिलाकर या पीपल और सरसोंका कल्क पिलाकर उत्केशित हुए
अजीर्ण अन्नको वमन द्वारा निकालदेना चाहिये । यदि दोष द्रवीभूत होकर पक्वा-
शयमें पहुंच, उद्वेग करें तो दीपन विरेचन द्रव्योंसे निकाल देना चाहिये ॥७१॥७२॥

शरीरानुगतेसामेरसेलङ्घनपाचनम् । विशुद्धामाशयायास्मैपञ्चको-
लादिभिर्युतम् ॥ ७३ ॥ दद्यात्पेयादिलघ्वन्नंपुनर्योगांश्चदी-
पनान् ॥ ७४ ॥

यदि ग्रहणीरोगमें आमरस शरीरमें फैलगयाहो तो लंघन करावे और पाचन-
द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये । जब आमाशय शुद्ध होजाय तो पंचकोलादि दीपन
पाचन द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई पेयादि हलका अन्न भोजन करावे और उसके अनन्तर भी
दीपन क्षीपधियोंका प्रयोग करे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

वातजग्रहणीकी चि० ।

ज्ञात्वातुपरिपक्वामंमारुतग्रहणीगदम् । दीपनीययुतंसर्पिःपाययेत्ता-
ल्पशोभिपक्व । किञ्चित्सन्धुक्षितेत्वमौसक्तविष्णुमूत्रमारुतम् ॥ ७५ ॥

आम तथा शब्दके साथ सागदार मले वार वार आना, खांसी और श्वास होना यह वायुकी ग्रहणके लक्षण हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

पित्तज ग्रहणीरोगके हेतु और लक्षण ।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैःपित्तमुल्वणम् । अग्निमाग्लावयद्ध-
न्तिजलंततमिवानलम् । सोऽजीर्णनीलपीताभंपीताभःसार्य-
तेद्रवम् ॥ ६३ ॥ पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृपार्दितः ॥ ६४ ॥

चरपरे, अजीर्णकारी, विदाही, अम्ल और क्षार पदार्थोंके सेवनसे पित्त वृद्धिकों प्राप्त होकर जठराग्निको इस प्रकार नष्ट कर देताहै जैसे गरम जल अग्निको-बुझा देताहै । तब अग्निके नष्ट होनेपर रोगीको कच्चा, नीला, पीला और पीले जलके समान पतला दस्त आनेलगताहै । उससे दुर्गंध आतीहै और रोगी खट्टी डकार, हृदय और कण्ठमें दाह, अरुचि तथा प्यास इनसे व्याकुल होताहै यह पित्तकी ग्रह-
णीके लक्षण हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

कफज ग्रहणीके हेतु लक्षण ।

गुर्वतिस्त्रिग्वधशीतान्नभोजनादतिभोजनात् । भुक्तमात्रस्यचस्वमा-
द्धन्त्यग्निंकुपितःकफः । तस्यान्नंपच्यतेद्वेःखंहृत्सासच्छर्द्यरोचकाः ॥
॥ ६५ ॥ आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपीनसाः । हृदयंमन्यतेस्त्या-
नमुदरंस्तिमितंगुरु ॥ ६६ ॥ दुष्टोमधुरउद्गारःसदनंस्त्रीष्वहर्षणम् ।
भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् ॥ ६७ ॥ अकृशस्यापिदौ-
र्वल्यमालस्यश्चकफात्मके ॥ ६८ ॥

अति त्रिग्वध और शीतल अन्नका सेवन करनेसे, अत्यंत भोजन करनेसे, भोजन करते ही तत्काल सोजानेसे कफ कुपित होकर जठराग्निको नष्ट करदेताहै । तब उसके अन्नका कठिनतासे परिपाक होना, हृत्सास, वमन, अरुचि, मुखका लिपासा रहना, मुखका स्वाद मीठा होना, खांसी, कफका थूकना, पीनस, हृदयका जकड़ासा होना, उदरका स्तिमित और भारी होना, मधुरतायुक्त दुष्ट उद्गार आना, अंगोंका सोना, स्त्रीसंगमें अनिच्छा होना और फटाहुआ आम और कफसे युक्त भारी मल उतरना, रोगीका शरीर कृश न होना, परन्तु दुर्बलता और आलस्य अधिक होना यह कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

यश्चाग्निःपूर्वमुद्दिष्टोरोगानीकेचतुर्विधः ।

तश्चापिग्रहणीदोषंसमवर्जप्रचक्ष्महे ॥ ६९ ॥

विमानस्थानके रोगानीक अध्यायमें जो चार प्रकारकी अग्नि कही हैं उनमें समाना-
ग्निको छोडकर बाकी तीन प्रकारकी अग्नि ग्रहणीदोषमें ही सम्मिलित जाननीं ॥६९॥

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे ।

त्रिदोषनिर्दिशेत्तेषाम्भेषजंशृण्वतःपरम् ॥ ७० ॥

वातादि तीनो दोषोंके हेतु और लक्षण जिसमें सब हों उसको त्रिदोषज ग्रहणी
रोग जानना । अब ग्रहणीरोगकी चिकित्साको श्रवणकरो ॥ ७० ॥

ग्रहणीकी चिकित्सा ।

ग्रहणीमाश्रितदोषविदग्धाहारमूर्च्छितम् । सविष्टम्भप्रसेकार्त्तिवि-
दाहारुचिगौरवम् । आमलिङ्गान्वितं दृष्ट्वासुखोष्णेनाम्बुनोद्धरेत् ॥

॥ ७१ ॥ फलानां वाकषायेण पिप्पली सर्षपैस्तथा । लीनंपक्वाशय-
स्थंवाप्यामंस्त्राव्यंसदीपनैः ॥ ७२ ॥

आहार विदग्ध होनेसे दोष मूर्च्छित होकर ग्रहणीके आश्रित होजातेहैं । तब विष्टम्भ,
मुखसे लार बहना, उदरपीडा, विदाह, अरुचि, भारीपन और अन्य भी आमके
लक्षण प्रतीत होने लगतेहैं उस समय रोगीको सुखोष्ण जल पिलाकर अथवा मैनफल
आदिका क्वाथ पिलाकर या पीपल और सरसोंका कल्क पिलाकर उत्कृशित हुए
अजीर्ण अन्नको वमन द्वारा निकालदेना चाहिये । यदि दोष द्रवीभूत होकर पक्वा-
शयमे पहुंच, उद्रेग करें तो दीपन विरेचन द्रव्योंसे निकाल देना चाहिये ॥७१॥७२॥

शरीरानुगतेसामेरसेलङ्घनपाचनम् । विशुद्धामाशयायास्मैपञ्चको-
लादिभिर्युतम् ॥ ७३ ॥ दद्यात्पेयादिलघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दी-
पनान् ॥ ७४ ॥

यदि ग्रहणीरोगमें आमरस शरीरमें फैल गयाहो तो लंघन करावे और पाचन-
द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये । जब आमाशय शुद्ध होंजाय तो पंचकोलादि दीपन
पाचन द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई पेयादि हलका अन्न भोजन करावे और उसके अनन्तर भी
दीपन औषधियोंका प्रयोग करे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

वातजग्रहणीकी चि० ।

ज्ञात्वातुपरिपक्वामंमारुतग्रहणीगदम् । दीपनीययुतंसर्पिःपाययेता-
ल्पशोभिपक्व । किञ्चित्सन्धुक्षितेत्त्वमौसक्तविष्मूत्रमारुतम् ॥ ७५ ॥

द्वित्रीण्यहानिसस्नेहंस्नेहाभ्यक्तंनिरूहयेत् । ततपेरण्डतैलेनसर्पि-
षातैलकेनवा । सक्षारेणानिलेशान्तेस्त्रस्तदोषंविरेचयेत् ॥ ७६ ॥

वातज ग्रहणीमें आमदोषका परिपाक होजानेपर दीपन औषधियोंयुक्त घृतको
बैद्य थोडा २ कई वार पिलावे जब देखे कि अग्नि कुछ चैतन्य होगई और
मल, मूत्र तथा अधोवातकी रुकावट है तो रोगीको दो तीन दिन स्नेहाभ्यक्त
(शरीरपर तेलयुक्त) कर अथवा स्वेदित करके अथवा स्नेहन और स्वेदन दोनों
करके तीन दिनके अनंतर निरूहण करे । जब निरूहणसे दोष अपने स्थानसे छुट-
जाय तब क्षार मिलाकर एरंडतैल पिलावे । अथवा रेचक घृत पिलावे या रेचक द्रव्योंसे
सिद्धकिया तैल पिलाकर विरेचन करावे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

शुद्धंरूक्षाशयंवद्धवर्चसश्चानुवासयेत् । दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतै-
लेनमात्रया ॥ ७७ ॥ निरूढश्चविरिक्तश्चसम्यक्चैवानुवासितः ।
लघ्वन्नप्रतिसंभुक्तःसर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥ ७८ ॥

यदि इस प्रकार संशोधन करनेसे पकाशयमें रूक्षता होकर मल बद्ध होजाय
तो दीपनीय अम्ल और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तेल द्वारा अनुवासनवस्ति
करे इस प्रकार अच्छीरीतिसे निरूहण, विरेचन और अनुवासन होनेके अनंतर हलका
भोजन करावे और नीचे लिखे घृतोंका अभ्यास करावे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

दशमूलादिघृत ।

द्वेषमूलेसरलंदेवदारुसनागरम्पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्ति-
पिप्पलीम् ॥ ७९ ॥ शणवीजंयवान्कोलान्कुलस्थान्सुरभींस्तथा । पाचये-
दारनालेनदध्नासौवीरकेणवा ॥ ८० ॥ चतुर्भागावशेषेणपचेत्तेनघृता-
ढकम् । स्वर्जिकायावशूकाख्यौक्षारौदत्त्वाचयुक्तितः ॥ ८१ ॥ सैन्ध-
वौद्भिदसामुद्रविडानारोमकस्यच । ससौवर्चलपाक्यानांभागान्द्वि-
पालिकान्पृथक् ॥ ८२ ॥ विनीयचूर्णितान्सिद्धान्ततोद्वेद्वेपलेपिवेत् ।
करोत्यग्निबलंवर्णवातघ्नंभुक्तपाचनम् ॥ ८३ ॥

लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, सरल, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, गज-
पीपल, सणके बीज, जव, बेर, कुलथी और राम्ना, इन बाईस २२ औषधियोंको
मिलाकर ८ आठ सेर लेवे फिर कूटकर चारगुणी कांजी, दही और सौवीर मिलाकर
पकावे पकते २ चौथा भाग बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे फिर इस स्वायमें

चार सेर घृत और जवाखार, सज्जीखार, संधानमक, उद्भिदलवण, सामुद्रलवण, विडलवण, रोमकलवण, संचरलवण और वाक्यलवण यह प्रत्येक आठ २ तोला मिलावे सबको मिलाकर एकत्रकर पकावे जब पकते २ घृतमात्र शेष रहे तो उतार कर छान लेवे इस घृतको जठराग्निका बल विचारकर दो पल अथवा शरीरानुकूल सेवनकरै तो अग्निबलकी वृद्धि, वर्णकी वृद्धि और वायुका नाश तथा आंहांगका उत्तम परिपाक होताहै ॥ ७९-८३ ॥

त्र्यूपणादिघृत ।

त्र्यूपणत्रिफलाकल्केविल्वमात्रेगुडात्पले । सर्पिणोऽष्टपलंपक्वामा-
त्रामन्दानलःपिवेत् ॥ ८४ ॥

सांठ, मिर्च, पीपल, ह्रड, बहेडे, आंवले, प्रत्येक डेढ १॥ तोला, लेकर कल्क करे । गुट पांच तोला, घृत ४० तोला, पानी आठ सेर सबको विधिवत् मिलाकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे इस घृतके सेवनसे मंदाग्नि दूर होकर पाचन शक्ति बलवती होतीहै ॥ ८४ ॥

पञ्चमूलादि घृत ।

पञ्चमूलाभयाव्योपविडङ्गशक्तिभिर्घृतम् । शुक्तेनमातुलुङ्गस्यस्वर-
सेनार्द्रकस्यच ॥ ८५ ॥ शुष्कमूलककोलाभ्युच्चुक्रिकादाडिमस्य
च । तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुपोदकेः ॥ ८६ ॥ काञ्जिकेनच-
त्तपकमग्निदीप्तिकरंपरम् । शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफाप-
हम् ॥ ८७ ॥ सर्वाजपूरकरसंसिद्धंवापाययेद्धृतम् । सिद्धमभ्यञ्ज-
नार्थञ्चतैलमेतैः प्रयोजयेत् ॥ ८८ ॥

बलगिरि, अरुणी, तोनापाठा, कुंभेर, पाटला, ह्रड, सांठ, मिर्च, पीपल, चायविडंग और कचूर, इन सबका कल्क एक सेर, घी चार सेर, विजौरेका रस चार सेर अदरकका रस चार सेर, सूखीमूली, बेर, नेत्रवाला, चूका और बनार इन सबका बवाय चार सेर, तक्र चार सेर, तथा दहीका जल, सुरामण्ड, सौवीरक और तुपोदक यह प्रत्येक एक २ सेर लेवे इन सबको मिलाकर विधिवत् पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे यह घृत अत्यंत अग्निवर्द्धक है तथा शूल, गुल्म, उदररोग, खांसी, श्वास और वात कफको नष्ट करनेवालाहै ! अथवा उपरोक्त संपूर्ण द्रव्योंके कल्क और केवल विजौरेके रससे सिद्ध किया घृत भी इन्हीं गुणोंको करताहै । और इन्हीं पंचमूलादिः द्रव्योंसे सिद्ध किया तैल मालिगके लिपे परम हितकारीहै ॥ ८५-८८ ॥

एतेपामौषधानांवापिवेच्चूर्णसुखाम्बुना । वातेश्लेष्मावृतेसामेक-
फेवावायुनोद्धते । दद्याच्चूर्णपाचनार्थमग्निसन्दीपनंपरम् ॥ ८९ ॥

अथवा उपरोक्त पंचमूलादिघृतकी औषधियोंका चूर्ण कर सुहाते गरम जलसे सेवनकरे तो कफावृत वात, आमयुक्त कफ, और वायुसे उद्धत हुआ कफ दूर होतेहैं और इस चूर्णको अग्निसंदीपन और पाचनके लिये भी देना चाहिये ॥ ८९ ॥

साम और निराम मलकी परीक्षा ।

मज्जत्यामाद्गुरुत्वाद्विट्पकातृत्प्लवतेजले । विनातिद्रवसंघातशैत्य-
श्लेष्मप्रदूषणात् ॥ ९० ॥ परीक्ष्यैवंपुरासामंनिरामंवासदोषिणाम् ।

विधिनोपाचरेत्सम्यक्पाचनेनेतरेणवा ॥ ९१ ॥

आमयुक्त (कच्चा) मल होय तो भारी होनेसे जलमें डूब जाताहै और पक्क मल जलमें डालनेसे ऊपर तिर आताहै । परंतु पक्क मल भी अत्यंत पतला, अतिगाढा, शीतल और कफदूषित होनेसे जलमें डूब जाताहै इस प्रकार साम और निराम तथा दूषित मलकी परीक्षा करके विधिपूर्वक पाचन द्रव्योंसे अथवा अन्य प्रकार चिकित्सा करना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

चित्रकादि गुटिका ।

चित्रकंपिप्पलीमूलंद्वौक्षारौलवणानिच । व्योपंहिंश्वजमोदाश्चच-
व्यश्चैकत्रचूर्णयेत् ॥ ९२ ॥ गुडिकामातुलुङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा ।

कृताविपाचयन्त्यामंदीपयन्त्याशुचानलम् ॥ ९३ ॥

चित्रक, पीपलामूल, जवाखार, सजीखार, पाचों लवण, त्रिकुटा, हींग, अजमोदा और चव्य, इन सबको एकत्र कर चूर्ण करे । इस चूर्णको विजैरेके रसमें अथवा खट्टे अनारके रसमें खरल करके एक २ मासेकी गोली बनावे इन गोलियोंको सेवन करनेसे आमका पाचन होकर अग्नि चैतन्य होतीहै ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

नागरातिविपामुस्तकाथःस्यादामपाचनः । मुस्तान्तकल्कःपथ्या
वानागरश्चोष्णवारिणा ॥ ९४ ॥

सोंठ, अतीत और नागरमोथेका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमका पाचन होताहै । अथवा इन तीनों द्रव्योंका कल्क गरम जलके साथ पीनेसे आम पचजातीहै एवं हरडका चूर्ण अथवा सोंठका चूर्ण गरम जलके साथ लेनेसे भी आम पच-
जातीहै ॥ ९४ ॥

अन्य पाचनयोग ।

देवदारुवचासुस्तनागरातिविषाभयाः । वारुण्यामासुतास्तो-
येकोष्णेवालवणंपिवेत् ॥ ९५ ॥ पिवत्सपरिकर्त्तानेमलेवादाडि-
माम्बुना ॥ ९६ ॥

देवदारु, वच, नागरमोथे, सोंठ, अतीस, और हरड इनको वारुणीमद्यमें भिगो-
देवे । जब इनका सार मद्य ग्रहण कर ले तो इसको छानकर पीवे इससे आम पचकर
निकल जातीहै । अथवा इन्हीं देवदारु आदि औषधोंके चूर्णको थोडा संधानमक
डाल गरम जलके साथ सेवन करनेसे भी आम पचकर नष्ट होजातीहै और अग्नि
चेतन्य होतीहै यदि आमके साथ परिकर्त्तिका अर्थात् कतग्नेकीसी पीडा (पेचिश)
होतीहो तो देवदावादि चूर्णको अनारके रसके साथ पीवे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

विडेनलवणंपिष्टं चिल्वंचित्रकनागरम् ।

वर्चस्यामेसशूलेचपिवेद्वादाडिमाम्बुना ॥ ९७ ॥

बेलगिरि, चित्रक, सोंठ और विडनमक मिलाकर अनारके रस अथवा अनारके
छिलकेके क्वाथके साथ पीवे तो शूलके साथ और आमयुक्त मल आनां, आम
पचकर शान्त होजाताहै ॥ ९७ ॥

सामेवासकफेवातेकोष्ठशूलकरेपिवेत् ।

कलिंगहिङ्गवतिविषावचासौवर्चलाभयाः ॥ ९८ ॥

यदि आम, कफ और वायुसे पेटमें पीडा होतीहो तो इन्द्रयव, हींग, अतीस, वच,
संचरनमक और हड्डेका चूर्ण गरम जलके साथ पिलावे ॥ ९८ ॥

छर्द्यर्शोग्रन्थिशूलेपुपिवेद्दुष्णेनवारिणा ।

पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णमरिचसंयुतम् ॥ ९९ ॥

यदि छर्दी, क्वासीर और गांठोंमें पीडा हो तो हड्ड, संचरनमक, जीरा और
काली मिर्चका चूर्णकर गरम जलके साथ पिलावे ॥ ९९ ॥

अभयादि घूर्ण ।

अभयांपिप्पलीमूलंबचांकटुकरोहिणीम् । पाठांवरसकवीजानिचि-
त्रकंविश्वभेषजम् ॥ १०० ॥ पिवेन्निष्काश्यचूर्णानिकृत्वाकोष्णेन
वारिणा । पित्तश्लेष्माभिभूतायांग्रहण्यांशूलनुद्धितम् ॥ १०१ ॥

हड्ड, पीपत्रामूल, वच, कुट्टनी, पाटला, इन्द्रयव, चित्रक, सोंठ इनका क्वाथ

अथवा इनका चूर्णकर गरम जलके साथ पीवे तो पित्त और कफसे अभिभूत ग्रहणी-
रोगका गूल दूर होताहै ॥ १०० ॥ १०१ ॥

सामेसातिविषाव्योषलवणक्षारहिङ्गुवत् ।

निःत्रवाथ्यपाययेच्चूर्णकृत्वावाकोष्णवारिणा ॥ १०२ ॥

आमयुक्त पित्त और कफसे व्याप्त हुए ग्रहणीरोगमें त्रिकुटा, अतीस, संधानमक,
जवाखार और हींग इन सबका चूर्ण क्वाथ करके पीवे अथवा चूर्णको फांककर ऊपरसे
गरम जल पीवे तो आम पचकर आग्नि चैतन्य हो ॥ १०२ ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

पिप्पलीनागरंपाठांशारिवांवृहतीद्वयम् । चित्रकंकौटजंवीजंलव-
णान्यथपञ्चच ॥१०३॥ तच्चूर्णंसयवक्षारंदध्युष्णाम्बुसुरादिभिः ।

पिवेदमिविबृद्धयर्थकोष्ठवातहरंनरः ॥ १०४ ॥

पीपल, सांठ, पाटला, शारिवा, बडी कटेली, छोटी कटेली, चित्रक इन्द्रयव ।
पांचों लवण और जवाखार इनके चूर्णको दही अथवा गरम जल या सुरा आदिके
साथ पीवे तो जठराग्निकी वृद्धि हो और कोंष्ठकी वायु शान्त हो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचःकुञ्चकाम्बुष्ठावृक्षाम्लाःकुडवाःपृथक् । पलानिदशचाम्ल-
स्यवेतसस्यपलाद्धिकम् ॥ १०५ ॥ सौवर्चलंविडंपात्रयंयवक्षारःस-

सैन्धवः । शटीपुष्करमूलानिहिङ्गुहिङ्गुशिराटिका ॥ १०६ ॥

तत्सर्वमेकतःसूक्ष्मंचूर्णकृत्वाप्रयोजयेत् । हितंवाताभिभूतायांग्र-
हण्यामरुचौतथा ॥ १०७ ॥

मिर्च, काला जीरा, पाटला और इमली यह प्रत्येक एक एक पाव, अम्लवेत
४०तोला, संवरनमक, विडनमक, पांशुनमक, जवाखार, संधानमक, कचूर, पोहकर
मूल, हींग, हिंयुपत्रिका यह सब दो दो तोला लेवे । इन सबको बारीक चूर्णकर लेवे ।
यह चूर्ण वातजग्रहणी और अरुचिको नष्ट करताहै ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

भोजनमें डालनेका चूर्ण ।

चतुर्णांप्रस्थमम्लानांन्यूपणाञ्चपलत्रयम् । लवणानाञ्चचत्वारिंशर्क-
रायाःपलाष्टकम् ॥१०८॥ संचूर्ण्यशाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत् ।

कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्ड्यामयगुल्मनुत् ॥ १०९ ॥

चार प्रकारकी खटाई एक प्रस्थ, पीपल, मिर्च, सोंठ तीन पल, विड नमक, सेंचरनमक, सेंधानमक, और उद्भिद नमक यह चारों नमक ४ पल । मिसरी ८ पल इन सब चीजोंको एकत्र मिलाकर चूर्णकर किसी पात्रमें रखे । इसमेंसे थोडासा चूर्ण ले शाक, दाल, अन्न, राग आदिमें मिलाकर सेवन करनेसे खांसी, अजीर्ण अरुचि, श्वास, हृदयरोग, पाण्डुरोग और गुल्मरोग दूर होताहै ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

चव्यादि चूर्णयुक्त पंचविध यवागू ।

चव्यत्वक्पिप्पलीमूलधातकीटयोपचित्रकम् । कपित्थं विल्वमस्व-
ष्टांशाल्मलंहस्तिपिप्पलीम् ॥ ११० ॥ शिलोद्भेदं तथा जार्जीपिष्ट्वाव-
दरभागिकम् । परिभर्ज्य घृते दध्नायवागूंसाधयेद्भिषक् ॥ १११ ॥
रसैः कपित्थचुक्रीकावृक्षाम्लैर्दाडिमस्य च । सर्वातिसारमन्दाग्निगु-
ल्मार्शः श्लीहनाशिनी ॥ ११२ ॥

चव्य, दालचीनी, पीपलामूल, धावेके फूल, त्रिकुटा, चित्रक, कैयका गूदा, वेल-
गिरि, पाटला, गजपीपल, मोचरस, शिलापुष्प और जीरा इन सबको पीसकर चूर्ण
करे । पहिले चूकेके रससे अथवा (दहीसे या) इमलीके रससे अथवा अनारके रसकी
खटाईसे अम्ल कीहुई यवागूको घीमें छोंककर उसमें १ तोला उपरोक्त चव्यादिचूर्ण
मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारके अतिसार, ग्रहणीगोग, अर्शरोग और प्लीहा, यह
सब नष्ट होतेहैं ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

भोजनार्थ यूपादि ।

पञ्चकोलकयूपश्चमूलकानाञ्चसोपणः । स्निग्धोदाडिमतक्राम्लोजा-
ङ्गलः संस्कृतोरसः ॥ ११३ ॥ क्रव्यादस्वरसः शस्तो भोजनार्थे सदी-
पनः । तक्रारनालमयानिपानार्थेऽरिष्टेष्वच ॥ ११४ ॥

पंचकोलका चूर्ण डालकर सिद्ध किया। मूंगका यूप, काली मिर्चयुक्त सूखी
मूलीका यूप तक्रकी खटाई या अनागकी खटाईसे अम्ल किया हुआ जंगली जीवोंका
मांसरस अथवा मांसाहारी जीवोंका मांसरस भातके साथ खिलावे और पीनेके लिये
तक्र, कांजी, मद्य तथा आसवका प्रयोग करना हितकारी है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

तक्रके गुण ।

तक्रन्तुग्रहणीदोषे दीपनग्राहिलाघवात् । श्रेष्ठं मधुरपाकित्वाच्च पि-
त्तंप्रकोपयेत् ॥ ११५ ॥ कपायोष्णविकासित्वाद्द्रोश्याच्चैव कफे म-

तम् । वातेस्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहितत् ॥ ११६ ॥ तस्मात्तक्रप्रयोगायेजठराणांतथार्शसाम् । विहिताग्रहणीदोषेसर्वशस्तान्प्रयोजयेत् ॥ ११७ ॥

तक्र दीपन, ग्राही और हल्का होनेसे ग्रहणी रोगमें हितकारक है । यह मधुरपाकी होनेसे पित्तको कुपित नहीं होने देता । स्वादु, अम्ल और सान्द्र होनेसे वायुको शान्त करताहै । एवं कपाय, उष्ण, विकासी और रूक्ष होनेसे कफमें भी हितकारक है । वह तक्र ताजा बनाहुआ होनेसे अविदाही होताहै । इसीलिये तक्रको उदररोगोंमें, अर्शरोगमें और ग्रहणीविकारमें सब प्रकार प्रयुक्त करना हितकारक है ॥ ११५-११७ ॥

तक्रारिष्ट ।

यमान्यामलकेपथ्यामरिचंचित्रिपलांशिकम् । लवणानिपलांशानिपञ्च
चैकत्रचूर्णयेत् ॥ ११८ ॥ तक्रकंसासुतंजातंतक्रारिष्टंपिवेन्नरः ।
दीपनंशोथगुल्मार्शःक्रिमिमेहोदरापहम् ॥ ११९ ॥

अजवायन, आंवले, हरड और काली मिर्च यह प्रत्येक तीन तीन पल लेवे । पांचों लवण, एक एक पल लेवे । इन सबको चूर्णकर आठसेर तक्रमें डाल और बन्दकर रख देवे । छः दिनके बाद निकालकर सेवनकरनेसे सूजन, गुल्म, बवासीर, कृमिरोग मंदरोग और उदररोग यह सब दूर होतेहैं । यह तक्रारिष्ट अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

पित्तज ग्रहणीकी चिकित्सा ।

स्वस्थानगतमुत्क्लिष्टमग्निनिर्वापकंभिषक् । पित्तज्ञात्वाविरेकेणनिर्ह-
रेद्रमनेनवा ॥ १२० ॥ अविदाहिभिरन्नैश्चलघुभिस्तिकसंयुतैः ।
जाङ्गलानारसैर्धूपैर्मुद्गादीनांखडैरपि ॥ १२१ ॥ दाडिमाम्लैःसस-
र्पिष्कैर्दीपनग्राहिसंयुतैः । तस्याग्निदीपयेच्चूर्णैःसर्पिर्भिर्वासति-
क्तकैः ॥ १२२ ॥

जठराग्निको बुझानेवाला पित्त अपने स्थान (ग्रहणी) में उत्क्लेशित हुआ प्रतीत हो तो विरेचनद्वारा निकाल देना चाहिये । अथवा वमनद्वारा निकाल देवे । फिर अविदाही और हल्के अन्न तथा तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये हुये जांगलजीवोंके मांसरस वा मूंग आदिका यूप दाडिमकी खटाईसे अम्ल करके घृतयुक्तकर सेवन करावे तथा दीपन और संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और अग्निसंदीपक चूर्ण और तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत सेवन कराता हुआ अग्निको चैतन्य करे ॥ १२०-१२२ ॥

चंदनादिघृत ।

चन्दनपद्मकोशीरंपाठामूर्वाकुटन्नटम् । षड्ग्रन्थाशारिवास्फोतास-
सपर्णाटरूषकान् ॥ १२३ ॥ पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षकपीतना-
न् । कटुकरोहिणीमुस्तानिम्बश्चद्विपलांशिकम् ॥ १२४ ॥ द्रोणेऽपां
साधयेत्पादशेषेप्रस्थघृतात्पचेत् । किराततिकेन्द्रयववीरामागंधि-
कोत्पलेः ॥ १२५ ॥ कल्कैरक्षसमैःपेयंतत्पित्तग्रहणीगदे । तिक्तकं
यद्घृतञ्चोक्तकौष्ठिकेतच्चदापयेत् ॥ १२६ ॥

रक्तचंदन, पद्माक, खस, पाठा, मूर्वा, केवटीमोथा, वच, सारिधा, अपराजिता,
सप्तपर्ण, अडूसा, पटोल, गुल्लड, पीपल, वड, पिलखन, अंबाडा, आमला, नागरमोथा
और नीमकी छाल, ये प्रत्येक दो २ पल लेवे । इनको कूटकर १ द्रोण जलमें पकावे ।
चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । घृत १ प्रस्थ लेवे । चिरायता, इन्द्रयव, शालपर्णी,
पीपल आर नीलोफर यह प्रत्येक दोदोपल लेकर कल्क करे । यह कल्क, क्वाथ,
घृत सब मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे । घृतमात्र शेषरहनेपर उतारकर छानले ।
यह घृत पित्तजग्रहणी रोगकी शान्तिके लिये पान करना चाहिये । तथा कुष्ठाधिकारमें
कदाहुआ तिक्तक घृत भी पित्तकी ग्रहणीमें हितकारक है ॥ १२३-१२६ ॥

नागरादिचूर्ण ।

नागरातिविपेमुस्तंधातर्कासरसाञ्जनम् । वत्सकत्वक्फलं विल्वंपा-
ठांकटुकरोहिणीम् ॥ १२७ ॥ पिवेत्समांशंतच्चूर्णंसक्षौद्रंतण्डुला-
म्बुना । पैत्तिकेग्रहणीदोषेरक्तयञ्चोपवेद्यते ॥ १२८ ॥ अशांसिच
गुदेशूलंजयेच्चैवप्रवाहिकाम् । नागराद्यमिदंचूर्णंकृष्णात्रेयेणपूजि-
तम् ॥ १२९ ॥

सोंठ, अतिस, नागरमोथा, धांवके फूल, रसीत, कुडाकी छाल, बेलगिरि, पाटला
और कुटकी इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको शहत और तण्डुल
जलके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणीमें रक्तका जाना, खूनीववासीर, गुदाकी
पीडा, प्रवाहिका यह सब दूर होतेहैं । इस नागरादि चूर्णको कृष्णात्रेयजीने श्रेष्ठ
मानाहै ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

भूनिम्बादि चूर्ण ।

भूनिम्बंकटुकंब्योपंमुस्तानिन्द्रयवान्समान् । द्वौचित्रकादत्सकत्व-

ग्भागान्षोडशचूर्णयेत् ॥ १३० ॥ गुडशीताम्बुनापीतं ग्रहणीदोष-
गुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥ १३१ ॥

चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, नागरमोथा और इन्द्रयव इन सबको एक एक भाग लेवे । चित्रककी छाल दो भाग लेवे । कुडाकी छाल १६ भाग लेवे । इन सबको मिला वारिक चूर्ण करे । इस चूर्णको गुड मिलाकर शीतल जलके साथ पीवे तो पित्तकी ग्रहणी, गुल्म, कामला, ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि और अतिसार यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १३० ॥ १३१ ॥

वचादि चूर्ण ।

वचामतिविपां पाटांसप्तपर्णरसाञ्जनम् । श्योणाकोदीच्यकट्वङ्गव-
त्सकत्वग्दुरालभा ॥ १३२ ॥ दार्वीपर्पटकंमूर्वीयमानीमधुशियुकम् ।
पटोलपत्रंसिद्धार्थान्युथिकंजातिपल्लवान् ॥ १३३ ॥ जम्बाम्रवि-
त्वमध्यानिनिम्बशाकफलानिच । तद्रोगशर्ममन्विच्छन्भूनिम्बा-
द्येनयोजयेत् ॥ १३४ ॥

वच, अतीस, पाटला, सप्तपर्ण, रसौत, श्योनाक, नेत्रवाला, कद्वंग (श्योनाक), कुडाकी छाल, जवासा, दारुहल्दी, पित्तपापडा, मूर्वा, अजवायन, मीठा सोहांजना, पटोलपत्र, सफेद सरसों, जूहीके पत्र, चमेलीके पत्र, जामनकी गुठली, आमकी गुठली, बेलकी गिरि, नीमके पत्ते और निबोलियां, इन सबका वारिक चूर्णकर सेवन करनेसे भूनिम्बादि चूर्णके समान गुण होता है अथवा इस चूर्णको भूनिम्बादि चूर्णमें मिलाकर सेवन कियाजाय तो अधिक गुण होताहै ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

किरातादि चूर्ण ।

किराततित्तं पद्मग्रन्थात्रायमाणाकटुत्रिकम् । चन्दनपद्मकोशीरं
दार्वीत्वक्कटुरोहिणी ॥ १३५ ॥ कुटजत्वक्फलंमुस्तंयमानीदेवदा-
रुच । पटोलनिम्बपत्रैलासौराष्ट्रातिविपात्वचः ॥ १३६ ॥ मधुशि-
ग्रोश्चबीजानिमूर्वापर्पटकांस्तथा । तच्चूर्णमधुनालेह्यपेयंमद्यै-
र्जलेनवा ॥ १३७ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगगुल्मशूलारुचिज्वरान् ।
कामालांसन्निपातश्चमुखरोगांश्चनाशयेत् ॥ १३८ ॥

चिरायता, वच, त्रायमान, त्रिकुटा, चन्दन, पद्माक, खस, दारुहल्दीकी छाल, कुटकी, कुडाकी छाल, इन्द्रयव, नागरमोथा, अजवायन, देवदारु, पटोल,

नीमके पत्र, इलायची, सौराष्ट्रदेशकी मट्टी, अतीग, दालचीनी, मीठे सुहांत्रनेके बीज, मूर्वा और पित्तपापंडाके चूर्णको शहत मिलाकर चोट या मद्य अथवा जलके साथ पीनेसे हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, गुल्मरोग, शूल, अरुचि, ज्वर, कामला, सन्निपात और मुख रोग दूर होतेहैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

कफजनित ग्रहणीकी चिकित्सा ।

ग्रहण्यांश्लेष्मदुष्टायां वमितस्य यथाविधि । कट्वम्ललवणक्षारैस्तिक्तैश्चाग्निं विवर्द्धयेत् ॥ १३९ ॥

कफसे दूषित ग्रहणीमें रोगीको विधिपूर्वक वमन कराना चाहिये । उसके अनन्तर कटु, अम्ल, लवण, क्षार और तिक्त द्रव्योंके प्रयोगसे अग्निको चैतन्य करे ॥ १३९ ॥

पलाशचित्रकंचव्यं मातुलुङ्गं हरीतकीम् । पिप्पलीं पिप्पलीमूलपाठां नागरधान्यकम् ॥ १४० ॥ कार्षिकण्युदकप्रस्थे पक्त्वा पादावशेषितम् । पानीयार्थं प्रयुञ्जीत यवागूतैश्च साधिताम् ॥ १४१ ॥

पलाश, चित्रक, चव्य, विजौरा, हरड, पीपल, पीपलामूल, पाटला, सोंठ, धनियां यह प्रत्येक एक एक कर्प लेकर १ प्रस्थ जलमें पकावे । चतुर्थांश ओष रहनेपर उतारकर छानले । यह क्वाथ कफकी संग्रहणीमें पीनेके लिये देना चाहिये । अथवा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध की हुई यवागू कफकी संग्रहणीमें देना हितकारक है ॥ १४०-१४१ ॥

शुष्कमूलकयूपेण कौलत्थेनाथवा पुनः । कट्वम्लक्षारपटुनालघू-
न्यन्नानि भोजयेत् ॥ १४२ ॥ अम्लश्चानुपिवेत् क्रंतकारिष्टमथा-
पिवा । सदिरामध्वरिष्टान् वानि गदंशीधुमेववा ॥ १४३ ॥

गोलमिर्च आदि तीक्ष्ण द्रव्योंसे, विजौरा आदि अम्ल द्रव्योंसे, जवाखार आदि क्षार द्रव्योंसे, सिद्ध किया हुआ, सूखी मूलीका यूप अथवा कुल्दीके यूपके साथ हलके अन्नका भोजन करावे । और पीनेके लिये खट्टी छाछ, तक्रारिष्ट, मद्य अथवा मध्वरिष्ट, या निगद अथवा शीधुका प्रयोग करे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

मध्वासव ।

द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडंगानां तथोऽर्द्धतः । चित्रकस्य ततोऽर्द्धस्यात् तथा भल्लातकाढकम् ॥ १४४ ॥ सञ्जिष्टात्रिपलश्चैव त्रिद्रोणेऽपां वि-
पाचयेत् । द्रोणशेषेतु तच्छीतं मध्वर्द्धाढकसंयुतम् ॥ १४५ ॥ एला
मृणालागुरुभिश्चन्दनेन च रूपिते । कुम्भे मामस्थितं जातमासवंतं

प्रयोजयेत् ॥ १४६ ॥ ग्रहणीं दीपयत्येपवृंहणः कफपित्तजित् ।
शोथंकुष्ठं किलासञ्च प्रमेहांश्च प्रणाशयेत् ॥ १४७ ॥

महुएके फूल (पकेहुए महुए) १ द्रोण, वायविडंग आधा द्रोण (दो आढक),
चित्रक १ आढक, भिलावे १ आढक, मजीठ तीन पल, इन सबको ३ द्रोण पानीमें
पकावे । जब १ द्रोण शेष रहे तो उसको उतारकर ठण्डा करे । फिर इसमें आधा
आढक शहद मिलावे । फिर अगर, छोटी इलायची, खस और लालचंदनके फल्कसे
लेप कियेहुए घृतके घडेमें भरकर विधिवत् वन्दकर १ महीनेतक रक्खा रहने देवे ।
महीनेके बाद छानकर किसी उत्तम पात्रमें भरे । इसमेंसे मात्रानुसार पीवे तो ग्रहणी-
रोग दूर हो, शरीर पुष्ट हो, कफ और पित्त नष्ट हो और अमि चैतन्य हो । इस मध्वा-
सवके सेवनसे शोष, कुष्ठ, किलास और प्रमेह यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १४४-१४७ ॥
द्वितीयमध्वासव ।

मधूकपुष्पस्वरसंशृतमर्द्धक्षयीकृतम् । क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्वव-
त्सन्निधापयेत् । तं पिबन् ग्रहणीदोषाञ्जयेत्सर्वाहिताशनः ॥ १४८ ॥

महुएके फूलोंका स्वरस लेकर पकावे जब आधा बाकी रहे तो उतारकर शीतल
करे । इसमें चौथा भाग शहद मिलाकर पहिलेके समान इलायची, रसत, अगर
आदिसे लिपेहुए चिकने घडेमें भरकर, वन्दकर १ महीना रखे । फिर उचित
मात्रासे इस मध्वासवको पीकर हित आहारका भोजन करता रहे तो सब प्रकारके
ग्रहणीविकार दूर होकर अग्नि और बलकी वृद्धि होतीहै ॥ १४८ ॥

तद्वद्वाक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानासुतान्पिबेत् ॥ १४९ ॥

इसी प्रकार द्राक्षा, ईख और खजूरके स्वरसोंका आसव बनाकर पीवे तो वह
भी उपरोक्त गुणोंको करतेहैं ॥ १४९ ॥

दुरालभाद्यासव ।

प्रस्थौदुरालभायाद्वौप्रस्थमामलकस्यच । सुष्ठीचित्रकदन्त्योर्द्वैप्र-
त्यग्रश्चाभयाशतम् ॥ १५० ॥ चतुद्रोणेऽम्भसः पक्वाशीतं द्रोणाव-
शेषितम् । सगुडद्विशतं पूतं मधुनः कुडवायुतम् ॥ १५१ ॥ तद्वत्प्रि-
यङ्गोः पिप्पल्याविडङ्गानाञ्चूर्णितैः । कुडवैर्धृतकुम्भस्थं पक्षाज्जा-
तंततः पिबेत् ॥ १५२ ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगार्शः कुष्ठवीसर्पमेहनुत् ।
स्वरवर्णकरश्चैपरक्तपित्तकफापहः ॥ १५३ ॥

जवासा २ ग्रस्य, आँवले २ ग्रस्य, चित्तेकी जडकी छाल और दंती यह दोनों दो २ पल, उत्तम पकीहुई चोंचदार मोटी हरडें १०० लेवे । इन सबको चार द्रोण पानीमें पकावे । १ द्रोण बाकी रहनेपर उतारकर ठण्डाकरे । फिर इसमें गुड २०० पल, शहद १ कुडव मिलावे । तथा फूलप्रियंगु, पपिल, वायविडंग, एक एक कुडव लेकर इनका चूर्ण बना उसीमें मिलावे । फिर इसको किसी घीके चिकने घडेमें भरकर बन्दकर १५ दिन तक रखे फिर छानकर किसी उत्तम घडेमें भरलेवे । इसके सेवनसे ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, ववासीर, कुष्ठरोग, विसर्प, प्रमेह, रक्तपित्त और कफ यह सब दूर होतेहैं, तथा स्वर और वर्णकी वृद्धि होतीहै ॥ १५०-१५३ ॥

मूलासव ।

हरिद्रापञ्चमूलेद्वेवीरकपर्भजीवकम् । एपांपञ्चपलान्भागांश्चतुर्द्रो-
णेऽम्भसःपचेत् ॥ १५४ ॥ द्रोणशेषेरसेपूतेगुडस्यद्विशतंभिपक् ।
चूर्णितान्कुडवार्द्धाशान्प्रक्षिपेच्चसमाक्षिकान् ॥ १५५ ॥ प्रियंगु-
मुस्तमञ्जिष्ठाविडङ्गमधुकप्लवान् । लोभ्रंशावरकञ्चैवमासार्द्धस्था-
पयेत्ततः ॥ १५६ ॥ एपमूलासवःसिद्धोदीपनोरक्तपित्तजित् ।
आनाहकफहृद्रोगपाण्डुरोगाङ्गसादनुत् ॥ १५७ ॥

हलदी, दशमूलकी दश औषधियें, क्षीरकाकोली, ऋपभक और जीवक इन १४ औषधियोंको पांच पांच पल लेवे । सबको कूटकर ४ द्रोण पानीमें पकावे । जब १ द्रोण शेष रहे तो उतारकर छान ले । ठण्डा होनेपर २०० पल गुड मिलावे । और शहद १ कुडव मिलावे । फिर प्रियंगु, नागरमोया, मजीठ, वायविडंग, मुलैठी, केवटी मोया, पठानी लोध यह सब आधा आधा कुडव लेकर वारीक चूर्ण करे । यह चूर्ण उपरोक्त द्रव्योंमें ही मिलादेवे । फिर इसको किसी घृतके चिकने घडेमें भरकर १५ दिन पर्यन्त बन्दकर रख देवे । फिर इसको छानकर उत्तम पात्रमें भरकर रखे । यह मूलासव परम सिद्धयोग है । यह दीपन है । तथा रक्तपित्त, अफारा, कफ, हृद्रोग, पाण्डुरोग और अंगसाद इन सब रोगोंको दूर करताहै ॥ १५४-१५७ ॥

पिंडासव ।

प्रास्थिकंपिप्पलीपिड्वागुडमध्यविभीतकात् । उदकप्रस्थसंयुक्तंय-
वपलेनिधापयेत् ॥ १५८ ॥ तस्मात्पलंसुजातानुसलिलाञ्जलि-
संयुतम् । पिवेत्पिण्डासवोह्येपरोगानीकविनाशनः ॥ १५९ ॥ स्व-
स्थोऽप्येनंपिवेन्मासंनरःसिद्धंरसायनम् । इच्छंस्तेपामनुत्पत्ति
रोगाणायैप्रकीर्तिताः ॥ १६० ॥

पीपल १ प्रस्थ लेकर वारीक पीस लेवे । गुड १ प्रस्थ और बहेडे १ प्रस्थ इन सबको मिला एकजीव करे । इसमें १ प्रस्थ पानी मिलावे फिर इसको किसी चिकने पात्रमें भरकर किसी यकके ढेर या भूसेमें गाडकर १ महीने रक्खा रहने दे । फिर इसको निकालकर छानलेवे । इसमेंसे १ पल आसव लेकर १ पाव जलमें मिलाकर पीवे तो यह पिण्डासव संपूर्ण गेगोंको नष्ट करताहै । इस रसायन अरिष्टको आरोग्ययुक्त मनुष्य भी पीवे तो उसके शरीरमें किसी प्रकारके रोग उत्पन्न नहीं होते ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

मध्वरिष्टं ।

नवेपिप्पलिमध्वाक्तेकलशेऽगुरुभूपिते । मध्वाढकंजलसमंचूर्णा-
नीमानिदापयेत् ॥ १६१ ॥ कुडवाद्धविडङ्गानांपिप्पल्याःकुडवं
तथा । चतुर्थकांशान्वक्क्षीर्याःकेशरंमरिचानिच ॥ १६२ ॥ त्वगे-
लापत्रकशटीकमुकातिविपावनम् । हरेण्वेनुंकतेजोह्वापिप्पलीमू-
लचित्रकान् ॥ १६३ ॥ कार्पिकांस्तान्स्थितमासमतऊर्द्ध्वप्रयोजयेत् ।
मन्दंसन्दीपयत्यग्निकरोतिविषमंसमम् ॥ १६४ ॥ हृत्पाण्डुग्रह-
णीरोगकुष्ठार्शःश्वयथुज्वरान् । वातश्लेष्मामयांश्चान्यानमध्वरि-
ष्टोव्यपोहति ॥ १६५ ॥

एक नया मट्टीका घडा लेकर उसके भीतर पीपल और शहदका लेप करके अगरकी धूनी देवे । फिर इस घडेमें शहद १ आडक, पानी १ आडक, वायविडंगका चूर्ण आधा कुडव, पीपल १ कुडव, वंगलोचन १ पल और नागकेशर, मिर्च, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, कजूर, सुपारी, अतीश, रेणुका, एलवालक, चव्य, पीपलामूल, चित्रक इन सबको एक एक कर्ष लेकर चूर्ण करे । यह चूर्ण भी उपरोक्त शहदवाले घडेमें मिलादेवे । इस घडेको विधिवत् बन्दकर १ महीना पर्यन्त रक्खा रहने दे । फिर छानकर किसी उत्तम पात्रमें भरे । यह मध्वरिष्ट विधिवत् सेवन कियाजाय तो मंदाग्निको चैतन्य करताहै और विषमाम्निको समाप्ति बनाताहै । तथा हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी विकार, कुष्ठ, अर्श, सूजन, ज्वर, वात और कफके रोग और इसी प्रकारके अन्य भी सब रोगोंको दूर करताहै ॥ १६१-१६५ ॥

पिप्पलीमूलादि चूर्णं ।

समूलांपिप्पलींक्षारौद्वौपञ्चलवणानिच । मातुलुङ्गभयारास्त्राश-
टीमारिचनागरम् ॥ १६६ ॥ कृत्वासमांशंतच्चूर्णपिवेत्प्रातःसुखा-
म्युना । श्लेष्मिकेग्रहणीदोषेवलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ १६७ ॥

पीपलामूल, पीपल, सजीखार, जवाखार, पांचों लवण, बिजौरा, हरड, रासना, कचूर, मिर्च और सोंठ इन सबको बराबर लेकर चूर्णकर नित्य प्रातःकाल गर्मजलके साथ सेवन करनेसे कफजनित ग्रहणीविकार दूर होकर बल, वर्ण और जठराग्नि की वृद्धि होती है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

घृत ।

एतैरेवौषधैःसिद्धंसर्पिःपेयंसमारुते ।

गौल्मिकेपद्मपलंप्रोक्तंभङ्गातकघृतञ्चयत् ॥ १६८ ॥

इस उपरोक्त पिप्पली मूलादि चूर्णकी संपूर्ण औषधियोंके कल्कसे सिद्ध किया हुआ, घृत वातयुक्त कफजनित संग्रहणीमें पिलाना चाहिये । तथा गुल्मरोगमें कहा हुआ पद्मपलघृत और भङ्गातक घृत भी वातयुक्त कफकी संग्रहणीमें हितकारक है ॥ १६८ ॥

क्षारघृत ।

विडंकालोत्थलवणंसर्जिकायवशूकजम् ।

ससलाकण्टकारीचचित्रकश्चेतिदाहयेत् ॥ १६९ ॥

ससकृत्वःस्तुतस्यास्यक्षारस्यद्वयाढकेनतु ।

आढकंसर्पिपःपक्कापिवेदमिविवर्द्धनम् ॥ १७० ॥

विडनमक, कालानमक, जवाखार, सजीखार, सातलाकी भस्म और कटेलीकी भस्म और चित्रककी भस्म मिलाकर इन तीनों भस्मोंको २ आढक पानीमें घोलकर उस पानीको कपडेमें ढालकर टपकावे । इस प्रकार उस पानीको सात बार कपडेसे छानले । फिर उपरोक्त लवण और खार तथा यह जल मिलाकर १ आढक घृत सिद्धकरे । इस घृतको सेवन करनेसे आग्नि चैतन्य होकर कफजनित ग्रहणीविकार दूर होता है ॥ १६९ ॥ १७० ॥

पिप्पलीमूलादि क्षार ।

समूलांपिप्पलीपाठांचव्येन्द्रयवनागरम् । चित्रकातिविपेहिगुश्व-
द्रंमूंकटुरोहिणीम् ॥ १७१ ॥ वचाञ्चकार्पिकंपञ्चलवणानांपला-
निच । दध्नःप्रस्थद्वयेतैलसर्पिपोःकुडबद्दये ॥ १७२ ॥ चूर्णीकृता-
निनिष्कवाध्यशनैरन्तर्गतेरसे । अन्तर्धूमंततोदग्ध्वाचूर्णकृत्वा
घृताप्लुतम् ॥ १७३ ॥ विवेत्पाणितलंतस्मिञ्जीर्णस्यान्मधुरा-
शनः । वातश्लेष्मामयान्स्वर्वाह्न्याद्विपगरांश्चसः ॥ १७४ ॥

पीपलामूल, पीपल, पाटला, चव्य, इन्द्रयव, सोंठ, चित्रक, अतीस, हींग, गोखरू, कुटकी, वच इन सबको एक एक कर्प लेवे । पांचों लवण पांच पल लेवे । दही १ प्रस्थ, तेल १ कुडव, घृत १ कुडव, पहिले उपरोक्त औषधियोंके वारीक चूर्णको दही, घृत और तेलमें मिलाकर आगपर पकावे । जब देखे कि दहीका पानी जलचुका है । तब इसको इस प्रकार बन्द करदेवे जिससे बाहर धूआं न निकलने पावे और भीतर ही भीतर सब द्रव्योंकी जलकर भस्म होजावे । इस भस्मको वारीक पीसकर १ कर्प प्रमाण नित्य लेकर घृतमें मिला पीवे और भूख लगनेपर मधुर भोजनका सेवन करे तो वात और कफसे उत्पन्न हुए संपूर्ण रोग नष्ट होतेहैं और विष तथा गरविकार शान्त होतेहैं ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ १७४ ॥

भल्लातकादिकार ।

भल्लातकं त्रिकटुकं त्रिफलालवणत्रिकम् । अन्तर्धूमं द्विपलिकंगो-
पुरीषाभिनादहेत् ॥ १७५ ॥ सक्षारः सर्पिपापीतो भोज्यो वाप्यत्र चू-
र्णितः । हृत्पांडुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्त्तशूलनुत् ॥ १७६ ॥

भिलावे, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, वहेडे, आमले, संधानमक, संचरनमक और विडनमक इनको दो दो पल लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको संपुटमें बन्दकर अंगली उपलोंकी आगमें फूंक देवे । स्वांग शीतल होनेपर इस भस्मको उचितमात्रासे घृतमें मिला पीवे अथवा भोजनके पदार्थोंमें मिला सेवन करे तो हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणीविकार, गुल्म, उदावर्त्त और शूलको नष्ट करताहै ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

दुरालभादि क्षार ।

दुरालभांकरञ्जौर्द्विसप्तपर्णसवत्सकम् । पटुग्रन्थामदनमूर्वापाठा-
मारग्वधंतथा ॥ १७७ ॥ गोमूत्रेण समांशानिकृत्वा चूर्णानि दाह-
येत् । दग्ध्वा च तं पिवेत्क्षारं ग्रहणीचलवर्द्धनम् ॥ १७८ ॥

जजासा, लताकरंज करंजवृक्ष, सप्तपर्ण, कुडाकी छाल, वच, भेनफल, मूर्वा, पाटला और अमलतास इन सबको समभाग लेकर चूर्णकरे । इस चूर्णको गोमूत्रमें घोटक अन्तर्धूम (विधिमें संपुटकर) भस्म करे । इस भस्मको विधिवत् सेवनकरे तो ग्रहणीविकार दूर हो, यलकी वृद्धि होताहै ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

भूनिम्बादि क्षार ।

भूनिम्बं रोहिणीं तिकां पटोलं निम्बपर्पटम् । दहेन्माहिषमूत्रेण सार-
एषोऽग्निवर्द्धनः ॥ १७९ ॥

चरायता, कुटकी, पटोल, निम्ब और पित्तपापडा इनके चूर्णको भेंसके मूत्रमें खरलकर संपुटमें फूक देवे । यह भस्म उचित मात्रासे सेवन कीजाये तो जठराग्निको बढ़ातीहै ॥ १७९ ॥

हरिद्रादि क्षार ।

द्वेहरिद्रेवचाकुट्टं चित्रकः कटुरोहिणी । मुस्तश्च वस्तमूत्रेण सिद्धः क्षारोऽग्निवर्द्धनः ॥ १८० ॥

हल्दी, दारूहल्दी, वच, कूठ, चित्रक, कुटकी, और नागरमोथा इन सबके चूर्णको बराबर ले बकरीके मूत्रमें घोटकर संपुटमें फूक देवे । स्वांग शीतल होनेपर निकालले । यह क्षार अत्यंत अग्निको चैतन्य करनेवाला है ॥ १८० ॥

क्षारगुटिका ।

चतुष्पलं सुधाकाण्डात्रिपलं लवणत्रयात् । वार्त्ताकीकुडवच्चाकार्कादिष्टौ द्वे चित्रकात्पले ॥ १८१ ॥ दग्धानि वार्त्ताकुरसे गुलिकाभोजनोत्तराः । भुक्तं भुक्तं पचत्याशुकासश्वासार्षांसांहिताः । विषूचिका प्रतिश्याय-हृद्रोगशमनाश्च ताः ॥ १८२ ॥

बज्री थोहरके ऊपरऊपरके टुकड़े ४ पल, सेंधानमक १ पल, संचरनमक १ पल, सांभरनमक १ पल, बड़ी कटेलीके फल १ कुडव, आककी जड आठ पल, चित्रक २ पल इन सबका बारीक चूर्णकर अन्तर्वृम रीतिसे भस्म करे । फिर इसको बड़ी कटेलीके फलोंके रसकी भावना देकर गोली चार २ रत्तीकी बनालेवे । इसमेंसे १ गोली भोजन करनेके अनन्तर नित्य खाया करे तो यह भोजनको शीघ्र पचादेतीहै । तथा खांसी, श्वास, अर्श, विशूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोगको शमन करनेवाली है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

वत्सकादि क्षार ।

वत्सकातिविषेपाटांदुःस्पर्शहिं गुचित्रकम् । चूर्णीकृत्यपलाशानां क्षारे मूत्रस्रुते पचेत् ॥ १८३ ॥ आयसेभाजनेसान्द्रात्तस्मात्कोलंसु-खाम्बुना । मथैर्वाग्रहणीदोपेशोथार्शः पाण्डुमान्पिबेत् ॥ १८४ ॥

कुडकी छाल, अतीश, पाटला, जराता, हिंग और चित्रक इनके चूर्णको गोमूत्रसे सिद्धीरुपे पलाशके क्षारमें डायकर लोहेकी कडाहीमें पकावे । जब पकते २ गाढा होजाय तो उतारकर बेंके मम न गोलियें बनालेवे । १ गोली नित्य गरम

१-फोई १ तोलाको गोली मानते है ।

जलके साथ अथवा मद्यके साथ सेवनकरे तो ग्रहणीविकार, सूजन, अर्श और पाण्डुरोग यह सब शान्त होतेहैं ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

त्रिफलादि क्षार ।

त्रिफलांकटभीचव्यंवित्त्वमध्यमयोरजः । रोहिणींकटुकांमुस्तंकुष्टं
पाठाञ्चहिगुच ॥ १८५ ॥ मधुकंमुष्ककयवक्षारौत्रिकटुकंवचाम् ।
विडङ्गंपिप्पलीमूलंस्वर्जिकानिम्बचित्रकौ ॥ १८६ ॥ मूर्वाजमोदे-
न्द्रयवान्गुडूचीदेवदारुच । कार्षिकंलवणानाञ्चपञ्चानांपलिकान्पृ-
थक् ॥ १८७ ॥ भागान्दग्नित्रिकुडवेघृततैलेनमूर्च्छितान् । अन्तर्धू-
मंशनैर्दग्ध्वातस्मात्पाणितलंपिवेत् । सर्पिपाकफवाताशौग्रहणी-
पाण्डुरोगवान् ॥ १८८ ॥ प्लीहमूत्रग्रहश्वासहिककाकासक्रिमिज्वरान् ।
शोपातिसारौश्वयधुंप्रमेहानाहहृद्ग्रहान् ॥ १८९ ॥ हन्यात्सर्वविष-
ञ्चैवक्षारोऽग्निजननोवरः।जीर्णैरसैर्वामधुरैरन्नस्यात्पयसापिवा ॥ १९० ॥

त्रिफला, कटभी, चव्य, लोहचूर्ण (लोहभस्म), कुटकी, नागरमोथा, कूठ, पाटला, हींग, मुलैठी, मुद्गरक (मोखावृक्ष), जवाखार, त्रिकुटा, वच, वायविडंग, पीपलायूल, सजीखार नीमका छिलका, चित्रक, मूर्वा, अजमोद, इन्द्रयव, गिलोय और देवदारु यह सब एक एक कर्प लेवे । पांचों लवण, एक एक पल लेवे । दही तीन कुडव, घृत और तेल एक एक कुडव, उपरोक्त औषधियोंके चूर्णको दही, घृत और तेलमें मिलाकर कडाहीमें रख आगपर चढादेवे । जब दहीका पानी जलकर धूम निकलने लगे तो ऊपरसे किसी पात्र द्वारा ढक देवे । जिससे धूम बाहर न निकलने पावे और नीचेसे तीक्ष्ण आंच देवे जिससे वह सब द्रव्य जलकर भस्म होजावे । सर्वांग शीतल होनेपर निकाल कर इस क्षारमेंसे एक कर्प लेकर घृतमें मिला पीवे तो कफ, वायु, अर्शरोग, ग्रहणी, पाण्डु, प्लीहा, मूत्रकृच्छ, श्वास, हिचकी, कृमि, ज्वर, शोष, अतिसार, सूजन, प्रमेह, अकारा, हृद्भोग और सब प्रकारके विषदोष नष्ट होतेहैं । तदा जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । औषध जीर्ण होनेपर शुषा लगे तब मधुर रसोंसे अथवा दूधके साथ अन्न (भात) का सेवन करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥

त्रिदोषज ग्रहणीकी चिकित्सा ।

त्रिदोषेविधिविद्वैद्यःपञ्चकर्माणिकारयेत् ।

घृतक्षारासवारिष्टान्दद्याच्चाग्नित्रिवर्द्धनान् ॥ १९१ ॥

साग्निपातकी ग्रंथणीमें चतुर वैद्य पंचकर्माद्वारा दोषोंका शोधन करे तथा अग्निरोचनम् फानवाले घृत, क्षार, आगव और जरिष्ठोंका सेवन करावे ॥ १९१ ॥

क्रियायाचानिलादीनानिर्दिष्टाग्रहणींप्रति ।

व्यत्यासात्तांसमस्ताश्चकुर्याद्दोषविशेषवित् ॥ १९२ ॥

वातादिजनित ग्रहणियोंमें जो अलग २ चिकित्सा कथन की हैं, मिलेदुए दोषोंमें दोषकी विशेषता देखकर उसी दोषकी प्रबलताको शान्त करनेके लिये उन्हीं औषधियोंको कम ज्यादा कर दोषोंकी विशेषताको जाननेवाला वैद्य प्रयोग करे ॥ १९२ ॥

स्नेहनंस्वेदनंशुद्धिल्लङ्घनंदीपनञ्चयत् । चूर्णानिलवणक्षारमध्वरिष्ट-

सुरासवाः ॥ १९३ ॥ विविधास्तक्रयोगाश्चदीपनानाञ्चसर्पिषाम् ।

ग्रहणीरोगिभिःसेव्याः क्रियाश्चावस्थिकींशृणु ॥ १९४ ॥

त्रिदोषज ग्रहणीविकारमें स्नेहन, स्वेदन, शोधन, लंघन, दीपन, चूर्ण, लवण, क्षार, मध्वरिष्ट, सुरा, आसव, और अनेक प्रकारके तक्र तथा दीपन घृतोंकी दोषोंकी न्यूनाधिकता, अवस्थाविशेष, विचारकर क्रिया विशेष करनी चाहिये सो अब उस अवस्थानुरूप क्रियाका ही वर्णन करतेहैं सो श्रवणकरो ॥ १९३-१९४ ॥

ष्टीवनंश्लैष्मिकेरूक्षंदीपनंतिक्तसंयुतम् । सकृद्रूक्षंसकृत्स्निग्धंकृ-

शेवहुकफेहितम् । परीक्ष्यामंशरीरस्यदीपनंस्नेहसंयुतम् ॥ १९५ ॥

दीपनंवहुपित्तस्यतिक्तंमधुरसंयुतम् ॥ १९६ ॥

कफप्रबल त्रिदोषज ग्रहणीमें रूक्ष, दीपन आर तिक्त द्रव्योंके स्वाथको पीकर अथवा सुखमें धारणकर कफको थूक देवे । और कफकी अधिकता होनेपर भी यदि रोगी अधिक कृश हो तो एक बार रूक्ष और एक बार स्निग्ध इस प्रकार बार बार क्रिया करनी चाहिये । जब देखे कि कफ क्षीण होगया तो स्नेहयुक्त दीपन औषधियोंका प्रयोग करे । पित्तप्रधान त्रिदोषज ग्रहणीमें तिक्त और मधुर द्रव्योंसे संयुक्त दीपन औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

बहुवातस्थतुस्नेहलवणाम्लयुतंहितम् ।

सन्धुक्षतियदावह्निःपरेपांविधिनेन्धनैः ॥ १९७ ॥

वातप्रधान त्रिदोषज ग्रहणीमें स्नेह, लवण और अम्ल द्रव्योंसे युक्त दीपनीय चिकित्सा करना हितकारी है । जैभे-विधिवत् ईधनके लगानेसे अग्नि प्रज्वलित होतीहै उसी प्रकार ग्रहणीविकारमें विधिपूर्वक दीपनीय औषधियोंका प्रयोग करनेसे जठराग्नि संदीपन होतीहै ॥ १९७ ॥

स्नेहमेवपरंविद्यादुर्वलानलदीपनम् ।

नालंस्नेहसमिद्धस्यशमायात्रंसुगुर्वपि ॥ १९८ ॥

त्रिदोषज ग्रहणीवाला रोगी यदि दुर्बल हो तो उसके लिये दीपन औषधियोंसे सिद्ध किये स्नेह ही परम उपकारी हैं । स्नेहके सेवनसे चैतन्य हुई जठराग्निको भारी भोजन कियाहुआ भी शमन नहीं कर सकता ॥ १९८ ॥

मन्दाग्निरपिपक्वन्तुपुरीपंयोऽतिसार्थ्यते । दीपनीयौषधैर्युक्तांघृतमात्रांपिवेत्सुसः ॥ १९९ ॥ तथासमानःपवनःप्रसन्नोमार्गमाश्रितः । अग्नेःसमीपचारित्वादाशुप्रकुरुतेवलम् ॥ २०० ॥

जिस रोगीकी, अग्नि मन्द हो और पक्व मूल अधिक निकालताहो तो उसको दीपन द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृतका उचित मात्रासे सेवन कराना चाहिये । इस प्रकार दीपन घृत द्वारा अग्नि चैतन्य करनेसे समानवायु स्वच्छ होकर अपने मार्गमें यथोचित कार्य करने लगतीहै और जठराग्निके बलको बढ़ाती है ॥ १९९ ॥ २०० ॥

अग्निसंदीपनविधि ।

काठिन्याद्यःपुरीपन्तुकृच्छ्रान्मुञ्चतिमानवः । सघृतंलवणैर्युक्तंनरोऽन्नावग्रहंपिवेत् ॥ २०१ ॥ रौक्ष्यान्मन्देपिवेत्सर्पिस्तैलंवादीपनैर्युतम् । अतिस्नेहात्तुमन्देऽग्नौचूर्णारिष्टासवाहिताः ॥ २०२ ॥

ग्रहणीरोगमें मल कठोर होजाय तो रोगी बड़े कष्टसे मलका त्याग करताहै । उस रोगीको संधानमकयुक्त अन्नके साथ पाचन घृत देना चाहिये, यदि ग्रहणी रोगमें रूक्षताके कारण अग्नि मन्द पडजाय तो दीपन औषधियोंसे सिद्ध किया घृत या तैल पिलाना चाहिये और अतिस्निग्धतासे अग्नि मन्द होजाय तो दीपन चूर्ण, अरिष्ट और आसवोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

भिन्नेगुदेऽवलेहास्तुविडतैलसुरासवाः ।

उदावर्त्तान्तुमन्देऽग्नौनिरुहाःस्नेहवस्तयः ॥ २०३ ॥

यदि मलभेदके कारण गुदा फटजाय अथवा बाहरका निकलने लगे तो अवलेह विडलवणादिसे सिद्धकिया तैल, सुरा और आसवोंका प्रयोग करना चाहिये । यदि उदावर्त होनेसे अग्नि मन्द होजाय तो निरुहण और स्नेहवस्ति करना चाहिये ॥ २०३ ॥

१ "अग्निर्गो" ऐसा मूल होनेमें बिना पका मल निःशुद्धता ऐसा अर्थ हो सकताहै पन्तु अर्थात् पुस्तकोंमें "अग्नि पक्व" ही पाठ है ।

दोषवृद्ध्यातुमन्देऽग्नौशुद्धोदोषविधिचरेत् ।

व्याधियुक्तस्यमन्देतुसर्पिरेवाग्निदीपनम् ॥ २०४ ॥

दोषोंकी वृद्धिके कारण यदि मंद अग्नि होजाय तो वमन और विरेचन द्वारा दोषोंको निकाल देना चाहिये । यदि किसी रोगके कारण अग्नि मन्द होगई हो तो संदीपन औपधियोंसे सिद्ध किये घृतोंका सेवन करना चाहिये ॥ २०४ ॥

उपवासाच्चमन्देऽग्नौयवागूभिःपिवेद्धृतम् ।

अन्नावपीडितेचालं दीपनं वृंहणञ्चतत् ॥ २०५ ॥

उपवासके करनेसे यदि अग्नि मंद होजाय तो संदीपन घृत मिलाकर यवागू पिलावे । अन्नके पीडनसे उत्पन्न हुई मंदाग्निमें भी संदीपन घृतयुक्त यवागू ही दीपन और वृंहण होती है ॥ २०५ ॥

दीर्घकालप्रसङ्गानुक्तामक्षीणकृशान्नरान् । प्रसहानारसैःसाम्लैः

भोजयेत्पिशिताशिनाम् ॥ २०६ ॥ लघुतीक्ष्णोष्णशोधित्वादीपय-

न्त्याशुतेऽनलम् । मांसोपचितमांसत्वात्तथाशुतरवृंहणाः ॥ २०७ ॥

यदि बहुत कालसे रोग रहनेके कारण शरीर कृश होगयाहो और वह रोगी मांसका आहार करनेवाला हो तो उसको प्रसहजीवोंका मांसरस अनारकी खटाईसे अम्लकर देना हितकारी है । क्योंकि वह मांसरस हल्के, तीक्ष्ण, गरम और दोषोंके शोधन करनेवाले होनेसे जठराग्निको अग्नि संदीपन कर देतेहैं और प्रसह (मांसाहारी) जीवोंका मांस, मांसद्वारा उपचित होनेके कारण अग्नि शरीरको पुष्ट करनेवाला होताहै ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

नाभोजनेनकायाग्निर्दीप्यतेनातिभोजनात् ।

यथान्निरिन्धनोवह्निरूपोवातीन्धनावृतः ॥ २०८ ॥

जैसे—ईंधनके बिना अथवा अत्यंत ईंधन डालदेनेसे अल्प अग्नि प्रज्वलित नहीं होती उसी प्रकार बिल्कुल भोजन न करनेसे अथवा अधिक भोजनका भाग पड-जानेसे जठराग्नि भी प्रदीप्त नहीं रहसकती ॥ २०८ ॥

स्नेहान्नविधिभिश्चित्रैश्चूर्णारिष्टसुरासवैः ।

प्रयुक्तैर्भिषजासम्यग्वलमग्नेःप्रवर्द्धते ॥ २०९ ॥

नाना प्रकारके स्नेह, अन्न, चूर्ण, अग्नि, सुग और आसवोंका विधिपूर्वक प्रयोग करनेसे जठराग्निका बल बढ़ताहै ॥ २०९ ॥

जठराग्निकी समता और विषमताके गुण दोष ।

यथाहिसारदार्वग्निःस्थिरःसन्तिष्ठतेचिरम् । स्नेहान्नाविधिभिस्त-
द्वदन्तरग्निर्भवेत्स्थिरः ॥ २१० ॥ हितंजीर्णमितश्चाशंश्चिरमारो-
ग्यसञ्जुते । अवैपम्येनधातूनामग्निवृद्धौयतेतत्रा ॥ २११ ॥

जैसे-पकी बलवान् काष्ठकी अग्नि बहुत देर तक स्थिर भावसे रहसकतीहै उसी प्रकार स्नेह अन्नको विधिवत् भोजन करनेसे जठराग्नि स्थिर और बलवान् रहसकतीहै क्योंकि पहिला किया भोजन जीर्ण होजानेके उपरांत हित और प्रमाणका भोजन करनेसे मनुष्य आरोग्यताका लाभ उठा सकताहै । इसलिये जिस प्रकार धातुओंमें विषमता न हो उस प्रकार अग्निवृद्धिके लिये यत्न करना चाहिये ॥ २१०॥२११ ॥

समैदोषैःसमोमध्येदेहस्योष्माग्निसंस्थितः । पचत्यन्नंतदारोग्यपु-
ष्ट्यायुर्वलवृद्धये ॥ २१२ ॥ दोषैर्मन्दोऽतिवृद्धोवाविपमैर्जनयेद्द-
वान् । पाच्यमन्दस्यतत्रोक्तमतिवृद्धस्यवक्ष्यते ॥ २१३ ॥

मनुष्योंके शरीरमें वातादि दोषोंकी साम्यावस्था रहनेसे ही पाचकाग्नि भी साम्या-
वस्थामें रहतीहै । जठराग्निकी साम्यावस्था रहनेसे ही अन्नका यथोचित परिपाक
होकर ही मनुष्योंकी आयु, आरोग्यता, पुष्टि और बलकी वृद्धि होतीहै । इसी प्रकार
दोषोंकी विषमता होनेसे अग्नि मंद या अति तीक्ष्ण होकर अनेक प्रकारके रोगोंकी
उत्पन्न करतीहै । मंदाग्निकी चिकित्सा, औषध आदि कहचुकेहैं । अब अति बढीहुई
अग्निकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

भस्मकाग्निनिदान ।

नरेक्षीणकफेपित्तंकुपितंमारुतानुगम् । स्वोष्मणापावकस्थानेबल-
मग्नेःप्रयच्छति ॥ २१४ ॥ तथालब्धवलोदेहेविरुक्षेसानिलोऽ-
नलः । परिभूयपचत्यन्नतैक्षण्यादाशुसुहुर्मुहुः ॥ २१५ ॥ पक्वान्नं
सततंधातूञ्छोणितादीन्पचत्यपि । ततोदौर्वल्यमातङ्कान्मृत्यु-
श्चोपनयेन्नरम् ॥ २१६ ॥ भुक्तेऽत्रैलभतेशान्तिंजीर्णमात्रे प्रता-
म्यति । तृट्श्वासदाहमूर्च्छाद्याव्याधयोऽत्यभिसम्भवाः ॥ २१७ ॥

मनुष्योंके शरीरमें कफके क्षीण होनेसे पित्त वायुके साथ मिलकर अत्यंत कुपित
ही जाताहै । तब अपनी गर्मीसे अग्निके स्थानमें प्राप्त होकर अग्निको अत्यंत बलवान्
करताहै । इस प्रकार कफरहित रूक्ष शरीरमें वायु सहित अग्नि बलवान् होकर

अन्नको पगभव करतीहुई अपनी तीक्ष्णतासे वारंवार जो भोजन किया जावे उसीको शीघ्र शीघ्र पाचन करती जातीहै । पहिले जब अन्नका परिपाक होलेताहै फिर वह अग्नि रक्तादिक धातुओंका परिपाक करने (जलाने) लगतीहै । इससे रोगीके शरीरमें दुर्बलता, अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करतीहै तथा मृत्युको प्राप्त कर देतीहै । इस भस्मक अग्निवाले रोगीको भोजन करते २ थोड़ी देर शान्ति प्रतीत होतीहै फिर अन्नके जीर्ण होनेपर कष्ट होने लगताहै । इस अत्यंत बढीहुई अग्निके कारण प्यास, श्वास, दाह और मूर्च्छादि अनेक रोग उत्पन्न होजातेहैं ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ ॥ २१६ ॥ २१७ ॥

भस्मक अग्निकी चिकित्सा ।

तमत्यग्निगुरुस्निग्धशीतैर्मधुरविज्जलैः । अन्नपानैर्नयेच्छान्तिदी-
प्तमग्निमिवाम्बुभिः ॥ २१८ ॥ मुहुर्मुहुरजीर्णेष्वपिभोज्यान्यस्योप-
हारयेत् । निरिन्धनोऽन्तरंलब्ध्वायथैनंनविपादयेत् ॥ २१९ ॥

जिस प्रकार अत्यंत जलतीहुई अग्निमें जल डालकर उस अग्निको शान्त करतेहैं उसी प्रकार इस भस्मक अग्निमें भी भारी, चिकने, मधुर, गाढे, शीतल और स्थिर पदार्थोंके भोजन द्वारा बढीहुई जठराग्निको शान्त करना चाहिये । इस रोगीको वारवार अजीर्ण अवस्थामें भी भारी पदार्थोंका भोजन देते रहना चाहिये । जिससे वह अग्नि अपने आहारको पचाकर अवकाश प्राप्त कर इस मनुष्यके शरीरको नष्ट करने न पावे ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

पायसंकुसरांस्निग्धपैष्टिकंगुडवैकृतम् । अद्यात्तथौदकानूपपिशि-
तानिघृतानिच ॥ २२० ॥ मत्स्यान्विशेषतःश्लक्ष्णान्स्थिरतोयच-
रांस्तथा । आधिकंसघृतंमांसमयादत्यग्निनाशनम् ॥ २२१ ॥

जवतक इस रोगीके शरीरमें यथोचित बल न आवे तवतक इसको घृतयुक्त खिचडी, खीर और हलुआ पूडी आदि मैदेके बने पदार्थ, तथा मिठाई, पक्वान्न, जलसंचारी और अनुपसंचारी जीवोंका मांस, भारी द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत, मछलिये विशेषकर तलाव, पुष्करणी, स्थिर जलोंमें रहनेवाली मछलियें, भेडका घृत, मांस, मद्य आदि पदार्थ बढीहुई अग्निको शान्त करनेके लिये देता रहे ॥ २२० ॥ २२१ ॥

यवागूसमधूच्छिष्टांघृतंवाक्षुधितःपिवेत् ।

गोधूमचूर्णमन्धंवाव्यधयित्वाशिरांपिवेत् ॥ २२२ ॥

अथवा अत्यंत धुधामें मधूच्छिष्ट (मोम या तण्डुलभेद) मिलाकर यवागू पीवे

अथवा स्वच्छ घृतको पीवे अथवा ग्रहणीकी गिराको दहनी बांहमेंसे वेधन कर रक्त निकाले फिर गेहूँका चूर्ण मिला मीठा मंथ बना पीवे ॥ २२२ ॥

पयोवाशकरांसर्पिर्जीवनीयौषधैःशृतम् ।

फलानांतैलयोनीनामुत्क्रुश्चाश्वसशर्कराः ॥ २२३ ॥

अथवा घृत और मिसरी मिला दूध पीवे अथवा जीवनीयगणकी औषधियोंसे मिला घृत पीवे । या जिन फलोंमेंसे तेल निकलताहै (वाशाम आदि) उनको कुटकर दूधमें मिला अथवा सर्वतके समान मिसरी और जलमें घोलकर पीवे ॥ २२३ ॥

मार्दवंजनयन्त्यग्नेःस्निग्धान्मांसरसांस्तथा । पिवेच्छीताम्बुनास-

र्पिर्मधूच्छिष्टेनवायुतम् ॥ २२४ ॥ गोधूमचूर्णपयसाससर्पिष्कंपिवे-

न्नरः । आनूपरसासिद्धान्वात्रीन्स्त्रेहांस्तैलवर्जितान् ॥ २२५ ॥

गोधूमचूर्णमन्थंवाव्यधयित्वाशिरांपिवेत् । पयसासम्निताश्चापिघ-

नांस्त्रिस्त्रेहसंयुताम् ॥ २२६ ॥ नारीस्तन्येनसंयुक्तांपिवेदौदुम्बरीं

त्वचम् । आभ्यांवापायसंसिद्धमद्यादत्यग्निशान्तये ॥ २२७ ॥

स्निग्ध मांसरसोंका पीना भी जठराग्निको नर्म बनाता है । अथवा शीतल जलमें सत्तु आदि घोलकर उसमें घी और मोम मिला पीवे या गेहूँका चूर्ण घृत मिला दूधमें घोलकर पीवे । अथवा अनूपसंचारी जीवोंका मांसरस, घृत, चर्बी और मज्जा मिला कर पीवे । अथवा पहले शिरवेधन कर फिर गेहूँके चूर्णका मंथ या गेहूँके चूर्णको दूधमें मिलाकर उसमें घृत और चर्बी (मज्जा) मिलाकर गाढ़ा २ पीवे तो पित्त शान्त होकर अग्निभी शान्त होगी । या गूलरकी छाल स्त्रीके दूधमें घोलकर पीवे । अथवा स्त्रीके दूध और गूलरकी छालसे बनाई हुई खीर वढीहुई अग्निकी शान्तिके लिये सेवन करे ॥ २२४ ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

भस्मकाग्निनाशक विरेचन ।

श्यामात्रिवृद्धिपक्वापयोदद्याद्विरेचनम् । असकृत्पित्तशान्त्यर्थपा-
यसप्रतिभोजनम् । प्रसमीक्ष्यभिपत्रप्राज्ञस्तस्मैदद्याद्विधान-
वित् ॥ २२८ ॥

काली निशोयके चूर्णके साथ सिद्ध किया दूध पिलाकर विरेचन करावे और ह विरेचन कराकर पित्तकी शान्तिके लिये वाग्वार दूध और खीरका भोजन कराता है । सब विधिके जाननेवाला वैद्य यथोचित विचारकर ही विरेचनके अनन्तर आपसोंका सेवन करावे ॥ २२८ ॥

यत्किञ्चिन्मधुरमेध्यंश्लेष्मलंगुरुभोजनम् ।

तदत्यग्निहितं सर्वभुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ २२९ ॥

जितने प्रकारके भोजन मधुर, मेघाजनक, कफकारक और भारी हैं वदीहुई अग्निकी शान्तिके लिये उन भोजनोंका सेवन कर दिनमें सोजाना चाहिये ॥ २२९ ॥

मेघ्यान्यन्नानियोऽत्यग्नावप्रशान्तःसमश्नुते । नतन्निमित्तं व्यसनं लभते पुष्टिमेव च ॥ २३० ॥ कफे वृद्धे जिते पित्ते मारुते चानलः समः ।

समधातोः पचत्यन्नं पुष्टया युर्वलवृद्धये इति ॥ २३१ ॥

जो मनुष्य वदीहुई अग्निकी शान्तिकी लिये मेघाजनक (घृत, मैदा आदि) अन्नोको बारबार खाताजाता है वह भस्मकाग्निजन्य विकारोंको प्राप्त न होकर पुष्टिको प्राप्त होता है । जब इस प्रकार किया करनेसे कफ बढ़जाय और वात, पित्त शान्त होकर जठराग्नि साम्यावस्थामें प्राप्त होजाती है तब दोषोंकी साम्यावस्था होनेसे अन्नका उत्तम परिपाक होकर पुष्टि, आयु और बलकी वृद्धि होती है ॥ २३० ॥ २३१ ॥

तीन प्रकारके भोजनोंको व्याधियोंकी कारणता ।

भवन्ति चात्र ।

पथ्यापथ्यमिहैकत्र भुक्तं समशनं मतम् । विषमं बहुवाल्पं वाप्यप्राप्तातीतकालयोः ॥ २३२ ॥ भुक्तं पूर्वाह्नशेषे तु पुनरध्यशनं मतम् ।

त्रीण्यप्येतानि मृत्युं वा घोरान् व्याधीन्सृजन्ति वा ॥ २३३ ॥

अब यहां कहते हैं कि पथ्य और अपथ्य दोनोंको एकत्र मिलाकर समशन कहते हैं । बहुत भोजन करना अथवा थोडा भोजन करना वा भोजनके समयसे प्रथम भोजन करना अथवा भोजनका समय व्यतीत होकर बहुत देर होनेपर जो भोजन किया जाय उसको विषमाशन कहते हैं । पहिला किये भोजन पचा न हो उसके ऊपर दुबारा भोजन करलेनेको अध्यशन कहते हैं । यह तीन प्रकारके भोजनही मनुष्योंकी मृत्युके कारण हैं । यदि मृत्यु न हो तो घोर व्याधियोंको तो अरुण्यही उत्पन्न करते हैं ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

प्रातः और सायंकालके भोजनमें विशेषता ।

प्रातराशे त्वजीर्णेऽपिसायमाशो न दुष्यति । दिवा प्रबुध्यते केषां हृदयं पुण्डरीकवत् ॥ २३४ ॥ तस्मिन् विबुद्धे स्रोतांसि स्फुटरव्यान्ति सर्वशः । व्यायामाच्च विचाराच्च विक्षिप्तत्वाच्च चेतसः ॥ २३५ ॥ उल्हेदम-

अथवा स्वच्छ घृतको पीवे अथवा ग्रहणीकी गिराको दहनी बांहमेंसे वेधन कर रक्त निकाले फिर गेहूंका चूर्ण मिला मीठा मंथ बना पीवे ॥ २२२ ॥

पयोवाशकरांसर्पिर्जीवनीयौपधैःशृतम् ।

फलानांतैलयोनीनामुत्क्रुञ्चाश्चसशर्कराः ॥ २२३ ॥

अथवा घृत और मिसरी मिला दूध पीवे अथवा जीवनीयगणकी औपधियोंसे मिला घृत पीवे । या जिन फलोंमेंसे तेल निकलताहै (वादाम आदि) उनको कूटकर दूधमें मिला अथवा सर्वतके समान मिसरी और जलमें घोलकर पीवे ॥ २२३ ॥

मार्दवंजनयन्त्यग्नेःस्निग्धान्मांसरसांस्तथा । पिवेच्छीताम्बुनास-

र्पिर्मधूच्छिष्टेनवायुतम् ॥ २२४ ॥ गोधूमचूर्णपयसाससर्पिष्कंपिवे-

न्नरः । आनूपरसासिद्धान्वात्रीन्स्नेहांस्तैलवर्जितान् ॥ २२५ ॥

गोधूमचूर्णमन्थंवाव्यधयित्वाशिरांपिवेत् । पयसासस्मिताश्चापिध-

नांत्रिस्नेहसंयुताम् ॥ २२६ ॥ नारीस्तन्येनसंयुक्तांपिवेदौदुम्बरीं

त्वचम् । आभ्यांवापायसंसिद्धमद्यादत्यग्निशान्तये ॥ २२७ ॥

स्निग्ध मांसरसोंका पीना भी जठराग्निको नर्म बनाता है । अथवा शीतल जलमें सत्तु धादि घोलकर उसमें घी और मोम मिला पीवे या गेहूंका चूर्ण घृत मिला दूधमें घोलकर पीवे । अथवा अनूपसंचारी जीवोंका मांसरस, घृत, चर्बी और मज्जा मिला कर पीवे । अथवा पहले शिरावेधन कर फिर गेहूंके चूर्णका मंथ या गेहूंके चूर्णको दूधमें मिलाकर उसमें घृत और चर्बी (मज्जा) मिलाकर गाढा २ पीवे तो पित्त शान्त होकर अग्निभी शान्त होगी । या गूलरकी छाल स्त्रीके दूधमें घोलकर पीवे । अथवा स्त्रीके दूध और गूलरकी छालसे बनाई हुई खीर बढीहुई अग्निकी शान्तिके लिये सेवन करे ॥ २२४ ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

भस्मकाग्निनाशक विरेचन ।

श्यामात्रिवृद्धिपक्वापयोदद्याद्विरेचनम् । असकृत्पित्तशान्त्यर्थपा-

यसप्रतिभोजनम् । प्रसमीक्ष्यभिषक्प्राज्ञस्तस्मैदद्याद्विधान-

वित् ॥ २२८ ॥

काली निशोथके चूर्णके साथ सिद्ध किया दूध पिलाकर विरेचन करावे और वह विरेचन कराकर पित्तकी शान्तिके लिये बारबार दूध और खीरका भोजन कराता रहे । सब विधिके जाननेवाला वैद्य यथोचित विचागकर ही विरेचनके अनन्तर पापसोंका सेवन करावे ॥ २२८ ॥

थावच्चग्रहणीदोषलक्षणम् ॥ २४३॥ पूर्वरूपंपृथक्चैवव्यञ्जनंसचि-
कित्सितम् । चतुर्विधस्यनिर्दिष्टं तथा चावस्थिकीक्रिया ॥ २४४ ॥
जायतेचयथात्यग्निर्ग्रहणस्यचिकित्सितम् । उक्तवानिहतत्सर्वग्रह-
णीदोषकेमुनिः ॥ २४५ ॥

इति चरक० चिकि० ग्रहणीचिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक हैं कि इस ग्रहणीचिकित्सिताऽध्यायमें-जठरा-
मिके गुण, जठराग्निद्वारा देहके धारणका क्रम, अन्नपरिपाकविधि, आहारकी क्रिया,
अग्निके भेद, जिनको अग्नि पोषण करतीहै, जिनको जिस प्रकार पाचन करतीहै,
रसादिक धातुओंकी क्रमसे उत्पत्ति, उन धातुओंसे मलोत्पत्ति, तृष्णाको अशुकारी
हेतुत्व, धातुओंकी उत्पत्ति, कालक्रम, जठराग्नि जिस प्रकार दुष्ट होनेसे रोगोंकी
करनेवाली होतीहै । जो ग्रहणी है, ग्रहणीका शब्दार्थ, दोषभेदसे ग्रहणीके लक्षण,
पूर्वरूप, वातादिभेदसे पृच्छकता,ग्रहणीके लक्षण, चिकित्सा, चार प्रकारकी ग्रहणीकी
अवस्थानुरूप क्रिया तथा जिस प्रकार अत्यग्नि (भस्मकाग्नि) होतीहै और उसकी
चिकित्सा यह सब मुनि आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २४०-२४५ ॥

इति श्रीच० चि० स्थाने प्र०भाषाटीकायां ग्रहणीचिकित्सितं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातःपाण्डुचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम पाण्डुचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान्
आत्रेयजी कहनेलगे ।

पाण्डुरोगके भेद ।

पाण्डुरोगाःस्मृताःपञ्चवातपित्तकफैस्त्रयः ।

चतुर्थःसन्निपातेनपञ्चमोभक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

पाण्डुरोग पांच प्रकारका होताहै जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे, तीन तो यह हुए
चौथा सन्निपातसे और पांचवां मृदुके रानेसे ॥ १ ॥

१ यद्यपि मृदुके रानेमें भी बिना दोष कुपित हुए पाण्डु नहीं होता परन्तु मृदुके रानेसे
केवल पाण्डु ही विशेषरूपमें होताहै इत्यत्रिये इसको पांचवा माना है ।

पगच्छन्तिदिवातेनास्यधातवः । अक्लिन्नेष्वन्नमासिक्तमन्यत्तेषुन
दुष्यति । अविदग्धइवक्षीरेक्षीरमन्यद्विमिश्रितम् ॥ २३६ ॥

प्रातःकालके किये हुए भोजनके यथोचित परिपाक हुए बिना भी सायंकाल भोजन करनेमें विशेष हानि नहीं क्योंकि दिनमें सूर्यके तेजसे मनुष्यका हृदय कमलके समान खिलाहुआ रहताहै हृदयके विकसित रहनेसे शरीरके सन स्रोत खुले रहतेहैं और दिनभर काम काज परिश्रमादि करते रहनेसे तथा घूमने फिरने और चित्तके इधर उधर चलायमान रहनेसे शरीरके सब धातु क्लेदको त्याग करते रहते हैं । इस लिये आहारसे उत्पन्न हुआ रस भी जैसे बिना फटे सुंदर दूधमें और दूध मिलकर विगडता नहीं है उसी प्रकार सायंकालके भोजनसे विकृत नहीं होता ॥ २३४-२३६ ॥

रात्रौतुहृदयेम्लानेसंवृतेष्वयनेषुच । यान्तिकोष्ठेचविक्लेदंसंवृतेदेह-
धातवः ॥ २३७ ॥ क्लिन्नेष्वन्यदपक्वेषुतेष्वासिक्तंप्रदुष्यति । विदग्धे-
षुपयःखन्वत्पयस्तसेष्विवापितम् ॥ २३८ ॥ नैशेष्वाहारजातेषुना-
विपक्वेषुबुद्धिमान् । तन्मादन्यत्समश्रीयात्पालयिष्यन्वलायुषी २३९

रातके समय हृदय मुचे हुए कमलके समान बन्द रहताहै इसीलिये संपूर्ण देहके छिद्र भी बन्द रहतेहैं और कोष्ठमें भी क्लेद जमा होजाताहै तथा देहकी धातुएं भी क्लेदसे भीगी रहतीहै इस प्रकार सबके क्लेदित होनेसे अजीर्ण आहार और मल दूषित होजाताहै इसके ऊपर आहार करनेस वह आहार भी इस प्रकार दूषित हो जाताहै जैसे फटेहुए दूधमें मिला हुआ अच्छा दूध भी विकृत होजाताहै इस लिये रातके अजीर्णमें प्रातः भोजन नहीं करना चाहिये । बुद्धिमान् मनुष्य बल और आयुकी पालना करताहुआ इस विधिको विचारकर ही भोजनका सेवन करे ॥ २३७ ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकाः ।

अन्तरग्निगुणोदेहंयथाधारयतेचसः । यथान्नंपच्यतेयांश्चयथाहारः
करोत्यपि ॥ २४० ॥ येन्नयोयांश्चपुष्यन्तियावन्तोयेपचन्तियान् ।
रसादीनांक्रमोत्पत्तिर्मलानांतेभ्यएवच ॥ २४१ ॥ तृष्णानामाशु-
कृच्छेतुर्धातुकालोद्भवक्रमः । रोगैकदेशकृच्छेतुरन्तरग्निर्यथाधिकः ॥
॥ २४२ ॥ सन्दुष्यतियथादुष्टोयात्रोगाजनयत्यपि । ग्रहणीयाय-

थावच्चग्रहणीदोषलक्षणम् ॥ २४३॥ पूर्वरूपंपृथक्चैवव्यञ्जनंसचि-
कित्सितम् । चतुर्विधस्यनिर्दिष्टं तथा चावस्थिकीक्रिया ॥ २४४ ॥
जायतेचयथात्यग्निर्यच्चतस्यचिकित्सितम् । उक्तवानिहतत्सर्वग्रह-
णीदोषकेमुनिः ॥ २४५ ॥

इति चरक० चिकि० ग्रहणीचिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक हैं कि इस ग्रहणीचिकित्सिताऽध्यायमें-जठरा-
ग्निके गुण, जठराग्निद्वारा देहके धारणका क्रम, अन्नपरिपाकविधि, आहारकी क्रिया,
अग्निके भेद, जिनको अग्नि पोषण कर्तीहै, जिनको जिस प्रकार पाचन करतीहै,
रसादिक धातुओंकी क्रमसे उत्पत्ति, उन धातुओंसे मलोत्पत्ति, तृष्णाको अशुकारी
हेतुत्व, धातुओंकी उत्पत्ति, कालक्रम, जठराग्नि जिस प्रकार दुष्ट होनेसे रोगोंको
करनेवाली होतीहै । जो ग्रहणी है, ग्रहणीका शब्दार्थ, दोषभेदसे ग्रहणीके लक्षण,
पूर्वरूप, वातादिभेदसे पृच्छकता, ग्रहणीके लक्षण, चिकित्सा, चार प्रकारकी ग्रहणीकी
अवस्थानुरूप क्रिया तथा जिस प्रकार अत्यग्नि (भस्मकाग्नि) होतीहै और उसकी
चिकित्सा यह सब मुनि आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २४०-२४५ ॥

इति श्रीच० चि० स्थाने प्र० भाषाटीकाया ग्रहणीचिकित्सितं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातःपाण्डुचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम पाण्डुचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान्
आत्रेयजी कहनेलगे ।

पाण्डुरोगके भेद ।

पाण्डुरोगाःस्मृताःपञ्चवातपित्तकफैस्त्रयः ।

चतुर्थःसन्निपातेनपञ्चमोभक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

पाण्डुरोग पांच प्रकारका होताहै जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे, तीन तो यह हुए
चौथा सन्निपातसे और पांचवां मृदिके रसानेसे ॥ १ ॥

१ यद्यपि मृदिके खानेमें भी बिना दोष कुपित हुए पाण्डु नहीं होता परन्तु मृदिके खानेसे
केवल पाण्डु ही विशेषरूपमें होताहै इसलिये इसको पांचवा माना है ।

पाण्डुरोगकी संप्राप्ति ।

दोषाःपित्तप्रधानास्तुयस्यकुप्यन्तिधातुषु । शैथिल्यंतस्यधातूनां
गौरवञ्चोपजायते ॥ २ ॥ ततोवर्णवल्लेहायेचान्येऽप्योजसोगुणाः।
व्रजन्तिक्षयमत्यर्थदोषदूष्यप्रदूषणात् ॥ ३ ॥ सोलपरक्तोऽल्पमेद-
स्कोनिःसारःशिथिलेंद्रियःवैवर्ण्यंभजतेतस्यहेतुंशृणुसलक्षणम् ॥४॥

जिस मनुष्यके शरीरमें पित्त प्रधान दोष कुपित होकर धातुओंका आश्रय लेते हैं उसकी धातुओंमें शिथिलता और भारीपन होजाताहै तब दोषों द्वारा दूषित हुए रुधिर, मांस, त्वचा आदि दूषणोंके दूषणसे शरीरका वर्ण, बल, स्नेह तथा अन्य जो बीजके गुण हैं यह सब अत्यंत क्षीण होजातेहैं तब उस रोगीका शरीर अल्परक्त और अल्प-मेद होनेसे निस्सार होजाताहै । सब इन्द्रियें शिथिल पडजातीहैं । उसके देहका वर्ण भी विकृत होजाताहै । अब उसके हेतु और लक्षणोंको श्रवण करो ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

पाण्डुरोगका निदान ।

क्षाराम्ललवणात्युष्णविरुद्धासात्म्यभोजनात् । निष्पावमापि-
प्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ ५ ॥ विदग्धेऽन्नेदिवास्वप्नाद्ब्रूयाया-
मान्मैथुनात्तथा । प्रतिकर्मैर्जुदैपम्याद्देगानाञ्चविधारणात् ॥ ६ ॥
कामचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः । समुदीर्णयथापित्तहृदये
समवस्थितम् ॥ ७ ॥ वायुनावलिनाक्षिसंस्त्रोतोभिदर्शभिःसृतम् ।
प्रपन्नंकेवलंदेहंत्वद्भांसान्नरसाश्रितम् ॥ ८ ॥ प्रदूष्यकफवातासृ-
क्त्वद्भांसानिकरोतितत् । वर्णान्हरितहारिद्रान्पाण्डून्वहुविधां-
स्त्वचि ॥ ९ ॥

क्षार, अम्ल, लवण, अति उष्ण, विरुद्ध और असात्म्य भोजन करनेसे निष्पाव, उदद, पिण्याक, तिलतैल आदिके अधिक खानेसे, भोजन किये आहारका विदग्ध पाक होनेसे, दिनमें सोनेसे अधिक व्यायाम करनेसे, अधिक मैथुन करनेसे, वमन, विरेचनादि कर्मोंमें विषमता होजानेसे, मलमूत्रादि वेगोंकी धारण करनेसे तथा काम, चिन्ता, भय, क्रोध और शोकसे, अति व्याकुलचित्त होनेसे उदीर्ण हो हृदयमें स्थित हुआ पित्त बलवान् वायुके वेगसे फेंकाहुआ हृदयाश्रित दश धमनियोंमें प्राप्त हो संपूर्ण शरीरमें व्यापक होजाताहै फिर त्वचा-और मांसके मध्यमें प्राप्त हो कफ, वात, रक्त, त्वचा और मांसको दूषित करदे ताहै । तब त्वचाके वर्णको हरित और हल्दीके समान बनाकर अनेक प्रकारके प्रगट करताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

पाण्डुके पूर्वरूप ।

सपाण्डुरोगइत्युक्तस्तस्यलिङ्गंभविष्यतः ।

हृदयस्फन्दनरौक्ष्यंस्वेदाभावःश्रमस्तथा ॥ १० ॥

इस प्रकार उत्पन्न होकर वह पाण्डुरोग कहा जाता है । उस पाण्डुरोगके उत्पन्न होनेसे पहिले यह लक्षण होते हैं । जैसे-हृदयका फडकना, शरीरमें रूक्षता, पसीनका न आना और बिना किसी परिश्रम किये भी शरीरमें अत्यंत थकावटसी प्रतीत होना (मट्टीखानेकी इच्छा होना) यह पाण्डुरोगके पूर्वरूप हैं ॥ १० ॥

पाण्डु रोगके सामान्य लक्षण ।

सम्भूतेऽस्मिन्भवेत्सर्वःकर्णक्ष्वेडोहतानलः । दुर्बलःसदनोन्निद्रश्र-

मभ्रमानीपीडितः ॥ ११ ॥ गात्रशूलज्वरश्वासगौरवारुचिमात्रः ।

मृदितैरिवगात्रैश्चपीडितोन्मथितैरिव ॥ १२ ॥ शूनाक्षिकूटोहारितः

शीर्णलोमाहतप्रभः । कोपनःशिशिरद्वेषीनिद्रालुःष्ठीविनोऽल्पवाक्

॥ १३ ॥ पिण्डकोद्वेष्टकटथूरुपादरुकूसदनानिच । भवन्त्यारोहणा-
यासैर्विशेषश्चात्रवक्ष्यते ॥ १४ ॥

अब पाण्डुरोगके प्रगट होजानेपर जो सामान्य लक्षण होते हैं उनको कहते हैं । जैसे कर्णनाद (कानोंमें स्वयं शब्द होते रहना), मंदाग्नि, दुर्बलता, अंगोंका सुन्नता होना, निद्रानाश, भ्रम, श्रम, शरीरमें पीडन, ज्वर, श्वास, शरीरका भारी होना, अरुचि यह तथा जैसे किसीने शरीरको मृदित (मीडन) किया हो ऐसा प्रतीत होना अथवा जैसे शरीरको कोई मथित करताहो ऐसा प्रतीत होना नेत्र-गोलकोंपर सूजन होना, शरीरका वर्ण हल्दीके समान होजाना, रोमांच होना अथवा रोमांचका गिरजाना, शरीरकी कांति नष्ट होजाना और स्वभावका अत्यंत क्रोधी होना, शीतल पदार्थोंसे द्वेष होना अथवा सर्दीसे द्वेष होना, सर्वत्र निद्राकी इच्छा बनी रहना, मुरसे बारवार थूकते रहना, बहुत थोडा बोलना, दोनों पिण्डलियोंमें उद्वेष्टनता होना, थोडा परिश्रम करनेपर अथवा चलने फिरने आदिसे विशेषकर कमर, उरुस्थल (जांघें) और पैरोंमें पीडा प्रतीत होना या उनका रहसा जाना यह लक्षण होते हैं । अब यातादिभेदसे लक्षण विशेषोंका कथन करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

वातज पाण्डुके हेतु लक्षण ।

आहारैरुपचारैश्चवातलैःकुपितोऽनिलः । जनयेत्कृच्छ्रपाण्डुत्वंत-

थारुक्षारुणाङ्गताम् ॥ १५ ॥ अङ्गमर्दरुजंतोदंकम्पंपाश्र्वशिरोरुजम् ।

शकृच्छोपास्यवैरस्यशोफानाहवलययान् ॥ १६ ॥

वायुकारक आहार और उपचारोंके करनेसे वायु कुपित होकर त्वचाको काली, पीली, रूक्ष और लाल वर्णयुक्त बनाकर कटसाध्य पाण्डुरोगको उत्पन्न करतीहै । तब अंगमर्द, ज्वर, तोद, कंप, पार्श्वपीडा, मस्तकपीडा, मलकी शुष्कता, मुखका विरस होना, सूजन, अफारा और बलक्षय यह लक्षण होतेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

पित्तजपाण्डुके हेतु लक्षण ।

पित्तलस्याचितंपित्तंयथोक्तैःस्त्रैःप्रकोपनैः । दूषयित्वातुरक्तादीन्पाण्डुरोगायकल्पते ॥ १७ ॥ सपीतोहरिताभोवाज्वरदाहसमान्वितः । तृष्णामूर्च्छांपरीतस्तुपीतमूत्रशक्नुन्नरः ॥ १८ ॥ स्वेदनःशीतकामश्चनचान्नमभिनन्दति । कटुकास्योनचास्योष्णमुपशेतेऽम्लमेववा ॥ १९ ॥ उद्धारोऽम्लोविदाहश्चविदग्धेऽन्नेऽस्यजायते । दौर्गन्ध्यंभिन्नवर्चस्त्वंदौर्वल्यंतमएवच ॥ २० ॥

पित्तप्रधान मनुष्यके शरीरमें पित्तवर्द्धक आहारविहारके सेवनसे पित्त कुपित होकर रक्तादिकोंको दूषितकर पाण्डुरोगको उत्पन्न करताहै । पित्तजनित पाण्डुरोगवालेके शरीरका वर्ण पीला, और हरि होजाताहै । तथा ज्वर, दाह, प्यास और मूर्च्छांति रोगी व्याप्त होताहै । मूत्र, मल, पीलेवर्णके होना, गर्मी प्रतीत होना, शीतल वस्तुओंपर इच्छा होना, अन्नपर अरुचि, मुखमें कटुआपन, इसको खट्टी और गरम वस्तु अत्यंत हानिकारक होय, खट्टी डकार आना, अन्नका परीपाक होनेपर विदाह होना और अन्नका परिपाक भी खट्टा होना, तथा शरीरमें दाहका होना, शरीरसे दुर्गन्ध आना, मल पतला होना, शरीरमें दुर्बलता होना और अंधकारका प्रतीत होना ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

कफजपाण्डुके हेतु लक्षण ।

विष्टुद्धैःश्लेष्मलैःश्लेष्मापाण्डुरोपंसपूर्ववत् । करोत्तिणौरवत्तन्द्रांछर्दि-
श्वेतावभासताम् ॥ २१ ॥ प्रसेकलोमहर्षश्चसादंमूर्च्छाभ्रमंक्लमम् ।
श्वासकासौतथालस्यमरुचिवाक्स्वरग्रहम् ॥ २२ ॥ शुक्लमूत्राक्षिवर्च-
स्त्वंकटुरूक्षोष्णकामता । श्वयथुर्मधुरास्यत्वमितिपाण्ड्वामयःक-
फात् ॥ २३ ॥

कफवर्द्धक पदार्थोंके सेवनसे वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ पूर्ववत् रक्त आदिकोंको दूषितकर पाण्डुरोगको उत्पन्न करताहै । तब उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे शरीरमें

भारीपन, तन्द्रा, ज्वमन होना, शरीरका वर्ण सफेदसा प्रतीत होना, बारवार कफका थूकना, रोमाञ्च, अंगसाद, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, श्वास, खांसी, आलस्य, अरुचि, बाणी और स्वरका रुकता जाना, मूत्र, नेत्र और मलका सफेद वर्ण होना, कडवे, रूक्ष और उष्ण पदार्थोंकी इच्छा होना शरीरपर अथवा मुखपर सूजन होना, मुखका सीठा स्वाद होना, यह कफजनित पाण्डुरोगके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

सन्निपातज पाण्डुके लक्षण ।

सर्वान्नसेविनःसर्वेदुष्टादोषान्निदोषजम् ।

त्रिदोषलिङ्गकुर्वन्तिपाण्डुरोगंसुदुःसहम् ॥ २४ ॥

वातादि संपूर्ण दोषोंको कुपित करनेवाले आहार विहारके सेवन करनेसे कुपित हुए तीनों दोष संपूर्ण लक्षणोंवाले दुःसह पाण्डुरोगको उत्पन्न करतेहैं । उसके तीनों दोषोंवाले लक्षण होतेहैं ॥ २४ ॥

मृत्तिकाभक्षणजनित पाण्डु ।

मृत्तिकादनशीलस्यकुप्यत्यन्यतमोमलः । कपायामारुतंपित्तसूप-

रामधुराकफम् ॥ २५ ॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्याद्भक्तं विरूक्ष-

येत् । पूरयत्यविषक्त्रैवस्रोतांसिनिरुणाद्भिच ॥ २६ ॥ इन्द्रियाणां

वलंतेजओजोवीर्यनिहत्यच । पाण्डुरोगंकरेत्याशुचलवर्णाग्निना-

शनम् ॥ २७ ॥ शूनगण्डाक्षिकूटभ्रूनाभिपादाग्रमेहनः । किमि-

कोष्ठेतिसार्थ्येतमलंसासृक्कफान्वितम् ॥ २८ ॥

मट्टी खानेवाले मनुष्यके शरीरमें तीनों दोषोंमेंसे कोई एक दोष कुपित होजाताहै। जैसे कतली मट्टीके खानेसे वायु कुपित होताहै । ऊपर मट्टीके खानेसे पित्त और मीठी मट्टीके खानेसे कफका कोप होताहै । मट्टी रूक्ष होनेसे रसादि धातुओंको और भोजन किये हुए अन्नको रूक्ष करदेतीहै तथा विपाकको प्राप्त न होनेपर भी स्रोतोंको रोक देतीहै इसी कारण इन्द्रियोंका बल, तेज, वीर्य और ओजधातुको नष्टकर देतीहै । तथा बल, वर्ण और अग्निको नष्ट कर पाण्डुरोगको उत्पन्न करतीहै । अथवा यों कहिये कि बल, वर्ण और अग्निको नष्ट करनेवाले पाण्डुरोगको उत्पन्न कर देतीहै । तब इस मनुष्यके यह लक्षण होनेहैं जैसे-नेत्र गोलकोंपर सूजन, गण्डस्यल, भ्रौं, नाभि, पाँवके आगे और शिशुनेन्द्रियपर सूजन होना, कोष्ठमें किमियोंका होना अतिसार तथा अतिसारमें रक्त और कफ आना यह मृद्रभक्षणजन्य पाण्डुके लक्षण होतेहैं ॥ २५-२८ ॥

असाध्यपाण्डु ।

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नःखरीभूतो नसिध्यति । कालप्रकर्षाच्छूनोना

यश्चपीतानिपश्यति ॥ २९ ॥ वद्धाल्पविट्कंसकफंहरितंयोतिसा-
र्यते । दीनःश्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृपादितः ॥ ३० ॥
सनास्त्यसृक्क्षयाद्यश्चपाण्डुःश्वेतत्वमाप्नुयात् । इतिपञ्चविध-
स्योक्तंपाण्डुरोगस्यलक्षणम् ॥ ३१ ॥

जो पाण्डुरोग बहुत दिनका पुराना होनेसे रोगीके शरीरमें कठोरता आजाय वह पाण्डुरोग असाध्य होताहै । जो पाण्डुरोग पुराना हो और उसके कारण शरीरमें सूजन होगई हो, रोगीको समस्त पदार्थ पीले वर्णके दिखाई देतेहैं वह भी असाध्य जानना । जिस पाण्डुरोगमें मल बंधाहुआ थोडा २ हरे वर्णका और कफयुक्त व्याताहो, रोगी दीन होगयाहो, शरीरका वर्ण सफेद होजाय, वमन, मूर्च्छा और तृपासे व्याकुल हो उस रोगीको मृत्युवशजानना । जिस पाण्डुरोगीका रक्तक्षय होकर शरीरका वर्ण श्वेत होजाय वह पुराना पाण्डुरोगी भी असाध्य जानना । इस प्रकार पांच प्रकारके पाण्डुरोगके लक्षणोंका कथन किया गया है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कामलाके लक्षण ।

पाण्डुरोगीतुयोऽत्यर्थपित्तलानिनिपेवते । तस्यपित्तमसृङ्गांसंद-
ग्ध्वारोगायकल्पते ॥ ३२ ॥ हारिद्रनेत्रःसुभृशंहारिद्रत्वङ्नखा-
ननः । रक्तपीतशकृन्मूत्रोभेकवर्णोहतेन्द्रियः ॥ ३३ ॥ दाहावि-
पाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः । कामलावहुपित्तैपाकोष्ठशाखाश्र-
यामता ॥ ३४ ॥

पाण्डुरोगी मनुष्यके अत्यंत पित्तकारक पदार्थोंके सेवनसे उस मनुष्यका पित्त बढ़कर रक्त और मांसको दग्ध करके कामला रोगको उत्पन्न करताहै । तब उस मनुष्यके नेत्र हल्दीके समान पीले होजातेहैं और त्वचा, नख, मुख यह सब हल्दीके समान पीले होजातेहैं । और रक्त, मूत्र, मल यह सब पीले वर्णके होजातेहैं । तथा संपूर्ण इन्द्रियोंका शक्तिहीन होजाना, शरीरमें दाह, अन्नका परिपाक न होना, दुर्बलता, अंगोंका रहसाजाना, अरुचि, शरीरका कुश होना यह लक्षण होतेहैं । यह कामला रोग अत्यंत पित्तके बढ़नेसे होताहै और कोष्ठ तथा शाखा (रक्तादि) में इसका आश्रयस्थान होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कुम्भकामला और उसकी असाध्यता ।

कालान्तरात्खरीभूतात्कृच्छ्रास्यात्कुम्भकामला । कृष्णपीतशकृ-
न्मूत्रोभृशंशूनश्चमानवः ॥ ३५ ॥ संरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रो-

यश्चताम्यति । दाहारुचितृपानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ॥ ३६ ॥
 प्रनष्टाग्निर्विसंज्ञश्चनिर्यात्याशुसकामली । साध्यानामितरेपान्तु
 भेषजंसम्प्रवक्ष्यते ॥ ३७ ॥

यह कामला ही कालान्तरमें (बहुत दिनका पुराना) खरीभूत होकर कुम्भका-
 मला नामसे उच्चारण किया जाताहै । यह कष्टसाध्य होताहै । जिस रोगीका मूत्र,
 मल और नेत्र काले और पीले हों सब अंगोंमें प्रकटरूपसे सूजन अथवा बहुत सूजन
 उत्पन्न होजाय या रोगीके नेत्र, मुख, छर्द, मल, मूत्र यह सब लालवर्णके होजाय
 और पीढायुक्त हों तथा दाह, अरुचि, प्यास, अफारा, तन्द्रा और मोह हों, अग्नि
 और संज्ञा नष्ट होजाय तो उस कामला रोगीको असाध्य जानना चाहिये । वह
 रोगी शीघ्र मृत्युवश होजाताहै । अब साध्य पाण्डुरोगोंकी और कामलाकी औषधि-
 योंका कथन करतेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पाण्डुरोगकी चिकित्सा ।

तत्रपाद्मामयीस्निग्धस्तीक्ष्णैरुद्धानुलोमिकैः । संशोध्योमृदुभि-
 स्तित्तैःकामलीतुविरेचनैः ॥ ३८ ॥ ताभ्यांसंशुद्धकोष्ठाभ्यांपथ्या-
 न्यन्नानिदापयेत् । शालयोयवगोधूमपुराणायूपसंस्कृताः ॥ ३९ ॥
 मुद्गाढकमसूरैश्चजांगलैश्चरसैर्हिताः । यथादोषंविशिष्टञ्चतयोर्भेष-
 ज्यमाचरेत् ॥ ४० ॥

प्रथम पाण्डुरोगीको स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण वमन और विरेचन द्वारा शोधन
 करदेना चाहिये और कामला रोगीको स्निग्धकर मृदु और तिक्त द्रव्योसे विरेचन
 करावे । उन पाण्डु और कामला रोगियोंको शुद्धकोष्ठ होनेपर हल्का और पथ्य
 अन्न भोजन करावे । जैसे-पुराने शालिचावल, पुराने यव, पुराने गेहूं और पुराने
 मूंग, अरहर, तथा मसूर आदिका यूप, जंगली जीवोंके हितकारक मांसरस यह सब
 दोष विशेष विचारकर भोजनके लिये देवे तथा दोषानुसार विधिवत् औषधियोंका
 प्रयोग करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

स्नेहनार्थ घृत ।

पञ्चगव्यंसहातिकंकल्याणकमथापिवा ।

स्नेहनार्थघृतंदद्यात्कामलापाण्डुरोगिणे ॥ ४१ ॥

पाण्डुरोगी और कामलारोगीको स्नेहन करनेके लिये पंचगव्यघृत, महातिक्तरु
 घृत और कल्याणघृत, पिलाना चाहिये ॥ ४१ ॥

दाडिमादि घृत ।

दाडिमात्कुडवोधान्यात्कुडवार्द्धपलंपलम् । चित्रकाच्छृंगवेराञ्चपि-
प्यत्यष्टमिकातथा ॥ ४२ ॥ तैःकल्कैर्विंशतिपलंघृतस्यसलिला-
ढके । सिद्धंहृत्पाण्डुरोगार्शःश्लीहवातकफार्त्तिनुत् ॥ ४३ ॥
दीपनंश्वासकासघ्नंमूढवातेचशस्यते । दुःखप्रसविनीनाञ्चवन्ध्या-
नाञ्चैवगर्भदम् ॥ ४४ ॥

दाडिमका छिलका १ कुडव, घनियां २ पल, चित्रक १ पल, अदरख १ पल,
पीपल आधा पल । इन सबको बारीक पीसकर कल्क बनावे । फिर यह कल्क बीस
पल घृत और १ आढक जलमें मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर
छानलेवे । इस घृतके सेवन करनेसे हृद्रोग, पाण्डुरोग, अर्शरोग, श्लीहा और वातकफ-
के रोग यह सब दूर होतेहैं । यह घृत दीपन है और श्वास, कासको दूर करताहै
तथा मूढवातमें भी इसका प्रयोग करना हितकारी है । जिन स्त्रियोंको प्रसव अति
कष्टसे होताहै उनको सुखपूर्वक प्रसव होने लगताहै और यह घृत बंध्या स्त्रियोंके गर्भको,
करनेवाला है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

कटुरोहिण्यादि घृत ।

कटुकारोहिणीमुस्तंहरिद्रेवत्सकात्पलम् । पटोलंचन्दनंसूर्वात्राय-
माणदुरालभा ॥ ४५ ॥ कृष्णापर्पटकोनिम्बोभूनिंबोदेवदारुच ।
तैःकार्षिकैर्घृतप्रस्थःसिद्धःक्षीरचतुर्गुणः ॥ ४६ ॥ रक्तपित्तंज्वरं
दाहंश्वयथुंसभगन्दरम् । अर्शस्यसृग्दरञ्चैवहन्तिविस्फोटकां-
स्तथा ॥ ४७ ॥

कुटकी, नागरमोथा, हल्दी, दारूहलदी, इन्द्रियव, पटोलपत्र, लालचंदन, दूर्वा,
त्रायमाण, जवासा, पीपल, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चिरायता और देवदारू यह
सब एक एक कर्प लेवे । घी १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे ।
घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस घृतके सेवनसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह,
सूजन, भगन्दर, बवासीर, रक्तप्रदर और विस्फोटक और पाण्डु यह सब दूर
होतेहैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पथ्यादि घृत ।

पथ्याशतरसेपथ्यावृन्तार्द्धशतकल्कवान् ।

स्थःसिद्धोघृतात्पेयःसपाण्ड्वाम्यगुल्मनुत् ॥ ४८ ॥

उत्तम पकी हुई १०० पल हरडोंके क्वाथमें ५० पल हरडोंकी डण्डियोंका कल्क मिलाकर १ प्रस्थ घीको सिद्धकरे। यह घृत पाण्डुरोगको और गुल्मको दूर करताहै ॥ ४८ ॥

दन्तीघृत ।

दन्त्याश्रतुष्पलरसेपिष्टैर्दन्तीशलाटुभिः ।

तद्वत्प्रस्थोघृतात्सिद्धःप्लीहपाण्ड्वर्त्तिशोफजित् ॥ ४९ ॥

चार पल दन्तीके काथमें एक पल कच्चे जमालगोटोंका कल्क बनाकर १ प्रस्थ घृतको सिद्ध करे। इस घृतको विधिवत् सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा, गीय और पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ४९ ॥

द्राक्षाघृत ।

पुराणसर्पिषःप्रस्थोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः ।

कामलागुल्मपाण्ड्वर्त्तिज्वरमेहोदरापहः ॥ ५० ॥

पुराना घी १ प्रस्थ, सुनकाका कल्क आधा प्रस्थ, जल ४ प्रस्थ इन सबको एकत्रकर सिद्ध किया घृत पीनेसे कामला, गुल्म, पाण्डुरोग, ज्वर, प्रमेह और उदररोग दूर होताहै ॥ ५० ॥

हरिद्रादि घृत ।

हरिद्रात्रिफलानिम्बवलामधुकसाधितम् ।

सक्षीरंमाहिषंसर्पिःकामलाहरमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

हल्दी, त्रिफला, नीमका छिलका, बला, मुलैठी इन सबका कल्क एक २ पल, भैंसका घृत १ सेर, भैंसका दूध ४ सेर। सबको मिलाकर विधिवत् घृत सिद्धकरे। यह घृत कामला रोगको हरनेमें परम उत्तम है ॥ ५१ ॥

स्नेहन घृत ।

गोमूत्रेद्विगुणेदाढ्याःकल्काक्षद्रयसाधितम् । दाढ्याःपञ्चपलक्वाथे

कल्केकालीयकेपरः ॥ ५२ ॥ माहिपात्सर्पिषःप्रस्थःपूर्वःपूर्वपरेपरः ।

स्नेहैरेभिरुपक्रम्यस्निग्धंमत्वाविरेचयेत् ॥ ५३ ॥ पयसामूत्रयुक्ते-

नवहुशःकेवलेनवा ॥ ५४ ॥

दारूहल्दीका कल्क २ तोला, भैंसका घृत ४० तोला, गोमूत्र, १ सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा दारूहल्दीका पांच पल काय उत्तम १ पल अगरका कल्क मिलाकर भैंसका घृत १ प्रस्थ सिद्ध करे। इन दोनों प्रकारके

घृतोंसे कामलारोगी अथवा पाण्डुरोगीको स्निग्ध करे। जब देखे कि भली प्रकार स्निग्ध होगया है तो दूधमें बहुतसा गोमूत्र मिलाकर अथवा केवल गोमूत्रही पिलाकर विरेचन करावे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अन्ययोग ।

दन्तीफलरसेकोष्णेकाश्मर्याञ्जलिनाशृतम् । द्राक्षाञ्जलिमृदि-
त्वावादद्यात्पाण्ड्यामयापहम् । द्विशर्करंत्रिवृच्चूर्णपलाञ्छपैत्तिकः
पिवेत् ॥ ५५ ॥

पहाडी जमालगोटके २ सेर गरम क्वाथमें २० तोला कुम्भरेके फलोंका कल्क मिलावे । अथवा २० तोला दाखका रस मिलावे । इसमेंसे मात्रानुसार क्वाथ पीनेसे दस्त होकर पाण्डुरोग नष्ट होजाताहै । अथवा दुगुनी मिसरी मिला हुआ निशोथका चूर्ण २ तोला खाकर ऊपरसे जल पीये तो विरेचन होकर पित्तका पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ५५ ॥

कफपाण्डुस्तुगोमूत्रक्लिन्नयुक्तांहरीतकीम् ।

आरग्वधरसेनेक्षोर्विदार्यामलकस्यच ॥ ५६ ॥

हरडको गोमूत्रमें भिगोकर गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफका पाण्डुरोग दूर होताहै । अथवा अम्लतासका गुदा,ईपके रसके साथ अथवा विदारीकंदके रसके साथ या आँवलेके रसमें घोलकर पीनेसे कफका पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ५६ ॥

सन्धूपणं विल्वपत्रं पिवेत्त्राकामलापहम् । दन्त्यर्द्धपलकल्कं वा द्वि-

गुडं शीतवारिणा ॥ ५७ ॥ कामलीत्रिवृतांवापित्रिफलायारसैः

पिवेत् । त्रिशालात्रिफलामुस्तकुष्ठदारुकलिङ्गकान् ॥ ५८ ॥

कार्पिकानर्द्धकर्पाशांस्कुर्व्यादतित्रिपांतथा । कर्पौमधुरसायाद्वौस-

र्धमेत्तत्सुखाम्बुना ॥ ५९ ॥ मृदितंतंरसंपूतंपीत्वालिह्याच्चमध्वनु ।

कासंश्वासंज्वरंदाहंपाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ६० ॥ गुल्मानाहामवा-

तांश्चरक्तपित्तञ्चनाशयेत् ॥ ६१ ॥

पीपल, मिर्च, सोंठ और वेलके पर्तोंका कल्क बनाकर शीतल जलके साथ पीनेसे अथवा आँवलेके रसके साथ पीनेसे कामला रोग दूर होताहै । या दंतीकी जडका कल्क आधा पल लेकर १ पल गुडमें मिला शीतल जलके साथ सेवन करे तो विरेचन होकर कामला रोग दूर होजाताहै । अथवा निशोथके कल्कको त्रिफलाके

शीत कपायके साथ कामलारोगी पीवे तो विरेचन होकर कामला दूर हो अथवा इन्द्रायणकी जड़, त्रिफला, नागरमोथा, कूठ, देवदारु, इन्द्रियव यह सब एक एक कर्प लेवे और अतीस आधा कर्प लेवे, मूर्त्वा २ कर्प लेवे। सबका वारीक चूर्ण कर सुस्तोष्ण जलमें डालकर सायंकाल रखदेवे। प्रातःकाल मल छानकर पीवे। ऊपरसे थोड़ा शहद चाटे तो खांसी, श्वास, ज्वर, दाह, पाण्डुरोग, अरोचक, गुल्म, अफारा, आमवात और रक्तपित्त यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ५७-६१ ॥

त्रिफलायागुडूच्यावादाव्यानिम्बस्यवारसम् । शीतमधुयुतंप्रातः
कामलार्त्तःपिवेन्नरः ॥ ६२ ॥

त्रिफला अथवा गिलोय या दारुहल्दी अथवा नीमका छिलका इनमेंसे किसी एकको कूटकर शामको भिगोदेवे प्रातःकाल छानकर उसमें शहद मिला पीलेवे तो कामला रोग दूर होताहै ॥ ६२ ॥

क्षीरमूत्रंपिवेत्पक्षंगव्यंमाहिपमेववा । पाण्डुगोमूत्रसिद्धंवासंताहं
त्रिफलारसम् । तरुजाञ्ज्वलितान्मूत्रेनिर्वाप्यामृद्यचाङ्कुरान् ॥

॥ ६३ ॥ मातुलुङ्गस्यतत्पूतंपाण्डुशोथहरंपिवेत् । स्वर्णक्षीरींत्रिवृ-
च्छ्यामेभद्रदारुसनागरम् ॥ ६४ ॥ गोमूत्राञ्जलिनापिष्टंमूत्रेवाक्व-
थितंपिवेत् । क्षीरमेभिःशृतंवापिपिवेद्दोपानुलोमनम् ॥ ६५ ॥

पाण्डुरोगी मनुष्य १५ दिन तक गोमूत्र अथवा भैंसका मूत्र दूधमें मिलाकर पीया करे। अथवा गोमूत्रमें सिद्ध किये त्रिफलाके रसको सात दिन पर्यन्त पीवे तो पाण्डुरोग दूर हो। अथवा बिजौर वृक्षके अंकुरोंको आगमें जलाकर गोमूत्रमें बुझावे फिर उनको गोमूत्रमें ही घोटकर बखमें छानलेवे। उसके पीनेसे पाण्डुरोगकी सूजन दूर होतीहै। अथवा सत्यानाशीकी जड़, कालीनिशोथ, देवदारु और सोंठ इनको पीसकर २० तोला गोमूत्रके साथ पीवे। अथवा इनको गोमूत्रमें क्वाथकर पीवे या इन्हीं द्रव्योंसे सिद्धकिये दूधोंको पीवे तो दोषोंका अनुलोमन होताहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

हरीतकी प्रयोग ।

हरीतकींप्रयोगेणगोमूत्रेणाथवापिवेत् ।

जीर्णेक्षीरेणभुञ्जीतरसेनमधुरेणवा ॥ ६६ ॥

हरडको गोमूत्रमें भिगोकर अथवा गोमूत्रके साथ सेवन करे। जब मात्रा पचजाय तो भोजनके समय दूध अथवा मधुर रसके साथ शालिचावलोंका भोजन करे तो पाण्डुरोग शान्त होताहै ॥ ६६ ॥

ससरात्रंगवामूंत्रेभावितंवाप्ययोरजः ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थपयसापाययेन्द्रिषक् ॥ ६७ ॥

अथवा लोहभस्मको सात दिन तक गोमूत्रकी भावना देकर फिर उस भस्मको २ स्ती प्रमाण नित्य दूधके साथ सेवन करावे तो पाण्डुरोग शान्त होताहै ॥ ६७ ॥
नवायसचूर्ण ।

त्र्यूपणंत्रिफलामुस्तंविडङ्गंचित्रकाःसमाः । नवायोरजसोभागा-
स्तच्चूर्णक्षौद्रसर्पिषा ॥ ६८ ॥ भयक्षेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकाम-
लापहम् । नवायसमिदंचूर्णकृष्णात्रेयेणभाषितम् ॥ ६९ ॥

साँठ, मिर्च, पीपल, हरड, वहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, और चित्रक इन सबको समभाग लेकर इन सबके बराबर लोहचूर्ण (लोहभस्म) मिलावे । इस चूर्णमेंसे १ माशा चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर सेवनकरे तो पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ठ, बवासीर और कामला यह सब नष्ट होतेहैं । इस नवायसचूर्णको कृष्णात्रेयजीने कथन कियाहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

गुडादिवटिका ।

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतःसमान् ।

पिप्पलीद्विगुणांकुर्याद्द्विटिकांपाण्डुरोगिणे ॥ ७० ॥

गुड, साँठ, मण्डूरभस्म और तिल, इन सबको एक एक भाग लेवे । पीपल दुगनी लेवे । सबको मिलाकर गोलियें बनावे । इन गोलियोंके सेवनसे पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ७० ॥

मंडूरवटक ।

त्रिफलात्र्यूपणंमुस्तंविडङ्गंचव्यचित्रकौ । दावींत्वड्माक्षिकोधातुर्भ्र-
न्धिकोदेवदारुच ॥ ७१ ॥ एतान्द्विपालिकान्भागांश्चूर्णांस्कुड्यात्पृ-

थक्पृथक् । मण्डूरंद्विगुणंचूर्णाच्छुद्धमज्जनसन्निभम् ॥ ७२ ॥ गो-
मूत्रेऽष्टगुणेपक्त्वात्तस्मिंस्तत्प्राक्षिपेत्ततः । उदुम्बरसमान्कृत्वावटकां-
स्तान्यथामिना ॥ ७३ ॥ उपयुञ्जीत तत्रेण सात्स्यं जीर्णंच

भोजनम् । मण्डूरवटकाद्येतेंप्राणदाःपाण्डुरोगिणाम् ॥ ७४ ॥
कुष्ठान्यजीर्णकं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् । अर्शांसिकामलांमेहं
स्त्रीहानं शमयन्ति च ॥ ७५ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, वायंविडंग, नागरमोथा, चव्य, चित्रक, देवदारु, दारुहल्दीकी छाल, सोनामक्खी, पिपलामूल और देवदारु इन सबको अलग दो दो पल लेकर चूर्ण करे । इन सबके चूर्णसे दोगुना शुद्ध अंजनके समान मण्डूरभस्म लेवे मण्डूरको ८ गुनें गोमूत्रमें पकावे । जब पकते २ गाढा होजाय तो उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण भी इसीमें मिलाकर गूलर फलके समान गोलिये बनालेवे । इनमेंसे अग्निबल विचारकर उचित मात्राके साथ नित्य छाछमें घोलकर पीवे । जब औषध जीर्ण होकर धुधा लगे तो तक्रके साथ हितकारी भोजन करे । यह मण्डूरवटक पाण्डुरोगियोंको प्राणदायक है तथा कुष्ठ, अजीर्ण, सूजन, ऊरुस्तम्भ, कफके विकार, बवासीर, कामला, प्रमेह और प्लीहरोग इन सबको शमन करताहै ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

ताप्यादि चूर्ण ।

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाःपञ्चपलाः पृथक् । चित्रकत्रिफलाव्योषविडङ्गैःपालिकैःसंह ॥ ७६ ॥ शर्कराष्टदलोन्मिश्राचूर्णिता मधुनाप्लुताः । अभ्यस्यास्त्वक्षमात्राहि जीर्णेनियमिताशिना ॥ ७७ ॥ कुलत्थकाकमाच्यादिकपोतपरिहारिणा ॥ ७८ ॥

सोनामक्खी, शिलाजीत, रूपामक्खी और मण्डूर यह प्रत्येक पांच पांच पल लेवे । चित्रक, हरड, बहेडे, आँवले, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायंविडंग यह सब एक एक पल लेवे और मिसरी ८ पल लेवे । इन सबको मिलाकर बारीक चूर्ण बनावे । इस चूर्णको शहदमें मिलाकर १ तोला नित्य सेवन कियाकरे । जब औषध जीर्ण होकर भुखलगे तो हल्का और पथ्य आहार मात्रानुसार सेवन करे तथा कुलथी, मकोय और कबूतरआदि गरम पदार्थोंको त्याग देवे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

योगराज वटक ।

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च । भागाश्चित्रकमूलस्यविडङ्गानांतथैवच । पञ्चाश्मजतुनोभागास्तथारूप्यमलस्यच ॥ ७९ ॥ माक्षिकस्यचशुद्धस्यलोहस्यरजसस्तथा । अष्टौभागाः सितायाश्चतत्सर्वसूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ८० ॥ माक्षिकेणाप्लुतंस्थाप्यमायसेभाजनेशुभे ॥ उदुम्बरसमांमात्रांततःखादेद्यथाग्निना ॥ ८१ ॥ दिनेदिनेप्रयुञ्जीतजीर्णेभोज्यंयदीप्सितम् । वर्जयित्वाकुलत्थानिकाकमाचीकपोतकम् ॥ ८२ ॥ योगराजइतिख्यातोयोगोऽयममृतोप-

मः । रसायनमिदंश्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम् ॥ ८३ ॥ पाण्डुरोगं विषं
कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् । कुष्ठान्यजीर्णकं मेहं शोषं श्वासमरोचक-
म् । विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानिच ॥ ८४ ॥

त्रिफला ३ भाग, त्रिकुटा ३ भाग, चित्रककी जड़ और वायविडंग यह दोनों एक
एक भाग, शिलार्जीत ५ भाग, तथा रूप्यमल (रूपामक्खी या चांदीवाले पहाडकी
शिलाजीत) ५ भाग, शुद्ध सोनामक्खी ५ भाग, लोहरज (लोहभस्म) ५ भाग,
मिसरी ८ भाग इन सबका वारीक चूर्ण कर शहदमें मिला स्वच्छ लोहेके पात्रमें
डालकर रखदेवे । इसमेंसे गूलरफलके समान अथवा अग्निबलानुसार नित्य प्रातःकाल
सेवन करे । औषध जीर्ण हो धुधा लगनेपर इच्छानुसार पथ्य भोजन करे । परन्तु
कुल्यी, मकोय और कपोत आदि उष्ण द्रव्योंको त्यागदे । यह योगराज नामक
योग अमृतके समान गुण करनेवाला है । यह श्रेष्ठ रसायन कल्याणदायक और संपूर्ण
रोगोंको नष्ट करनेवाला है । तथा पाण्डुरोग, विपविकार, खांसी, राजयक्ष्मा, विषम-
ज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास, अरुचि, इन सबको दूर करताहै । विशेष-
कर अपस्मार, कामला और बवासीर आदि गुदके रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ७९-८४ ॥

शिलाजतु शुटिका ।

कौटजत्रिफलानि स्वपटोलघननागरैः । भावितानि दशाहानिरसै-
र्द्वित्रिगुणानि वा ॥ ८५ ॥ शिलाजतुपलान्यष्टौ तावतीं सितशर्करा-
मम् । त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्यापलोन्मिता ॥ ८६ ॥ नि-
दिग्धाः फलमूलाभ्यां पलं युक्तया त्रिगान्धिकम् । चूर्णितं मधुरं कुर्या-
न्त्रिपलेनाक्षिकान्गुडान् ॥ ८७ ॥ दाडिमाम्बुपयः पक्षिरसतोयसुरा-
सवान् । पिवेन्नृभक्षयित्वा तान्निरन्नोभुक्तएव वा ॥ ८८ ॥ पाण्डुकु-
ष्ठज्वरह्नीहतमकाशो भगन्दरान् । पूतिहृच्छुक्रमूत्राग्निदोषशोषगरो-
दरान् ॥ ८९ ॥ कासासृग्दरपित्तासृक्शोथगुल्मगरामयान् । ते च
सर्वत्रणान्हन्युः सर्वरोगहराः शिवाः ॥ ९० ॥

इन्द्रपव, त्रिफला, नीम, पटोलपत्र, नागरमोथा, और सोंठ इन सबके
म्यायमें दश दिन अथवा बीस दिन या तीस दिन तक शिलार्जीतकी भावना देवे ।
फिर यह भावना शिलार्जीत ८ पल, मिसरी ८ पल, बंशलोचन १ पल, पीपल १
पल और काफहार्सगी १ पल, कटेलीके फल और जड़ दोनों मिलाकर १ पल,

दालचीनी, इलायची और तेजपत्र यह तीनों मिलाकर १ पल, शहत ३ पल इन सबको विंधिवत् मिला एक एक तोलेकी गोली बनालेवे । इनमेसे १ गोली अथवा धात्रिवलानुसार भोजन करनेसे प्रथम अथवा भोजन करनेके अनन्तर सेवन करे । ऊपरसे अनारका रस अथवा दूध या पक्षियोंका मांसरस या केवल जल अथवा आसव पीवे । इसके सेवनसे पाण्डुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहरोग, तमकश्वास, अर्शरोग, भगन्दर, पूतीदोष, हृद्रोग, वीर्यके दोष, मूत्ररोग, जठराग्निदोष, शोपरोग, विपविकार, उदररोग, खांसी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, सूजन, गुल्म, गरविकार (दूषीविष) यह सब रोग नष्ट होतेहैं । तथा सब प्रकारके व्रण दूर होतेहैं । यह सब रोगोंको हरने-वाली कल्याणदायक शिलाजितु गुटिकाहै ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

पुनर्नवामंडूर गुटिका ।

पुनर्नवात्रिवृद्धोपविडङ्गदारुचित्रकम् । कुष्ठहारिद्रेत्रिफलादन्तीच-
व्यंकलिङ्गकाः ॥ ९१ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंमुस्तञ्चेतिपलोन्मितम् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाद्भूमूत्रेद्रथाढकेपचेत् ॥ ९२ ॥ कोलवद्गुडिकाः
कृत्वातक्रेणालोडघनापिवेत् । ताःपाण्डुरोगान्प्लीहानमर्शांसिवि-
षमज्वरम् । श्वथुं ग्रहणीदोषंहन्युःकुष्ठंकिर्मिस्तथा ॥ ९३ ॥

पुनर्नवा, निशोय, त्रिकुटा, विडंग, देवदारु, चित्रक, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, हरड, बहेडा आँवला, दंती, चव्य, इन्द्रयव, पीपल, पीपलामूल और नागरमोथा इन सबको एक एक पल लेवे । मण्डूर सबसे दोगुना लेवे । पहिले मण्डूरभस्मको एक षाढक गोमूत्रमें पकावे । जब पकते २ गाढा होजाय तो उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण मिलाकर बेरके समान गोलियां बनालेवे । इन गोलियोंमेंसे वलानुसार १ गोली अथवा जितनी मात्रा उचित हो उतनी तकमें घोलकर पीजावे । क्षुधा लगनेपर पथ्य भोजन करे । यह पुनर्नवादिमण्डूरगुटिका पाण्डुरोग, प्लीहारोग, अर्शरोग, विषमज्वर, सूजन, ग्रहणीदोष, कुष्ठरोग और कृमिरोगको दूर करतीहै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अन्ययोग ।

दार्वात्त्वक्त्रिफलाव्योपविडङ्गमयसोरजः ।

मधुसर्पिर्युतंलिङ्घात्कामलापाण्डुरोगवान् ॥ ९४ ॥

दारुहल्दीकी छाल, हरड, बहेडे, आँवले, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडंग, इन सबको समभाग लेकर चूर्णकरे । सबके समान लोहभस्म मिलावे । इसमेंसे मात्रा-नुसार लेकर शहद और घृतमें मिलाकर चाटे तो कामला और पाण्डुरोग दूर होतेहैं ॥ ९४ ॥

तुल्याअयोरजःपथ्याहरिद्राःक्षौद्रसर्पिषा ।

चूर्णिताःकामलीलिह्याहुडक्षौद्रेणवाभयाः ॥ ९५ ॥

हरड, हल्दी, और इन दोनोंके समान लोहभस्म शहद और घृतमें मिलाकर चाटे अथवा हरड और गुडको शहदमें मिलाकर चाटे तो कामलारोग दूर हो ॥९५॥

त्रिफलाद्वेहरिद्रेचकटुरोहिण्ययोरजः ।

चूर्णितंक्षौद्रसर्पिभ्यांसलेहःकामलापहः ॥ ९६ ॥

त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, लोहभस्म इन सबके वारीक चूर्णको शहद और घृत मिलाकर चाटे तो कामलारोग दूर होताहै ॥ ९६ ॥

धात्री अवलेह ।

द्विपलांशांतुगाक्षीरींनागरंमधुयष्टिकाम् । प्रास्थिकींपिप्पलींद्राक्षां

शर्करार्द्धतुलांशुभाम् ॥ ९७ ॥ धात्रीफलरसद्रोणेसुपिटंलेहवत्प-

चेत् । शीतांमधुप्रस्थयुतांलिह्यात्पाणितलंततः । हन्त्येषकामलां

पित्तपाण्डुंकासहलीमकम् ॥ ९८ ॥

वंशलोचन २ पल, सोंठ, मुलैठी, पीपल और द्राक्षा, यह सब एक एक प्रस्थ (एक एक सेर) लेवे । मिसरी आधी तुला (२॥ सेर) ले, आँवलेका रस १ द्रोण लेकर सब वस्तुओंको वारीक पीसकर इस रसमें मिला अवलेहकी भांति पकावे सिद्ध होनेपर नीचे उतार शीतलकरे । फिर इसमें १ पल शहद मिलावे । इसमेंसे नित्य १ तोला प्रमाण सेवन करे तो यह अवलेह कामला, पित्त, पाण्डुरोग, खांसी और हलीमकको दूर करताहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

मण्डूरवटक ।

त्र्यूपणंत्रिफलाचव्यंचित्रकोदेवदारुच । विडङ्गान्यथमुस्तानिवत्स-

कञ्चेतिचूर्णयेत् ॥ ९९ ॥ मण्डूरतुल्यंतच्चूर्णगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् ।

शनैःसिद्धास्तथाशीताःकार्य्याःकर्पसमागुडाः ॥ १०० ॥ यथाग्निभ-

क्षणीयास्तेष्ठीहपाण्ड्वाभयापहाः । ग्रहणधर्शानुदश्चैवतक्रवाटयाशि-

नःस्मृताः ॥ १०१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडे, आमले, चित्रक, चव्य, देवदारु, वापविडंग, नागरमोथा और इन्द्रियव इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे । सबके बराबर उत्तम मण्डूरभस्म लेवे । प्रथम मण्डूरको गोमूत्रमें पकावे । जब गाढा होजाय तो उपरोक्त

औषधियोंके चूर्ण मिलाकर एक एक तोलाकी गोलियों बनालेवे । इस मण्डूरवटकको अग्निबलानुसार सेवन करनेसे प्लीहरोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीविकार अर्शरोग यह सब दूर होतेहैं । इसको सेवन करते हुए तक्र और भुनेहुए यवोंके मण्डका भोजन करना चाहिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥

गौडारिष्ट ।

मञ्जिष्ठारजनीद्राक्षावलामूलान्ययोरजः ।

लोध्रञ्चैतेपुगौडःस्यादारिष्टःपाण्डुरोगिणाम् ॥ १०२ ॥

मजीठ, हल्दी, द्राक्षा, बलाकी जड, लोहचूर्ण, और पठानीलोघ इन सबको सम-भाग लेवे । गुड सबसे चारगुना, और गुडसे चारगुना जल मिलावे । इनका विधिवत् अरिष्ट तैयार करे । यह गौडारिष्ट मात्रानुसार सेवन करनेसे पाण्डुरोगको दूर करताहै ॥ १०२ ॥

बीजकारिष्ट ।

बीजकात्पोडशपलंत्रिफलायाश्चर्विंशतिः । द्राक्षायाःपञ्चलाक्षायाः

सप्तद्रोणेजलस्थतत् ॥१०३॥ साध्यंपादावशेषेतुपूतशेषेसमावपेत् ।

शर्करायास्तुलांप्रस्थंमाक्षिकस्यचकार्षिकम् ॥ १०४ ॥ व्योषं

व्याघ्रनखोशीरंक्रमुकंसैलवालुकम् । मधुकंकुष्ठमित्येतच्चूर्णितं

घृतभाजने । यवेषुदशरात्रंतद्गीष्मेद्विःशिशिरेस्थितम् ॥ १०५ ॥

पिवेत्तद्ग्रहणीपाण्डुरोगार्शशोथगुल्मनुत् । मुत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकाम-

लासन्निपातनुत् । बीजकारिष्टएवैपआत्रेयेणप्रकीर्तितः ॥ १०६ ॥

विजैसार सोलह पल, त्रिफला बीस पल, द्राक्षा पांच पल, लाख सात, पल, इन सबको १ द्रोण जलमें पकावे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर इसमें मिसरी १ तुला, शहद १ प्रस्थ, और त्रिकुटा, व्याघ्रनखी, खस, सुपारी, पलवालुक, महुएके फूल यह सब एक एक कर्प लेकर चूर्णकर मिलावे । इन सबको घृतके चिकने घडेमें बन्दकर यवोंके ढेरमें गर्मीकी ऋतुमें १० दिन और सर्दीमें २० दिन बन्दकर रखे । फिर छानकर सेवन करनेसे, ग्रहणी, पाण्डुरोग, बवासीर, सूजन, गुल्म, मुत्रकृच्छ्र, पयरी, प्रमेह, कामला और सन्निपात यह सब दूर होते हैं । यह बीजक अरिष्ट भगवान् आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ १०३-१०६ ॥

धान्यरिष्ट ।

धान्नीफलसहस्रेद्वेपीडयित्त्वारसन्तुतम् ॥ क्षौद्राष्टांशेनसंयुक्तं-

ष्णार्द्धकुडवेनच ॥ १०७ ॥ शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रंपक्षंस्निग्धघटेस्थितम् । प्रपिवेन्मात्रयाप्रातर्जीर्णैमितहिताशनः ॥ १०८ ॥ कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान् । कासहिकारुचिश्वासांश्चैवोऽरिष्टःप्रणाशयेत् ॥ १०९ ॥

अच्छे पकेहुए आँबलोंके फल २००० लेकर उनको कूटकर रस निचोड लेवे । इस रससे आठवां भाग शहद, दस तोला पीपल और २॥ सेर मिसरी मिलावे । इन सबको एकत्रकर अरिष्टकी विधिसे चिकने घडेमें भरकर बन्द कर १५ दिन रखवा रहनेदे फिर निकालकर मात्रानुसार पीवे धुवा लगनेपर पथ्य भोजन कियाकरे तो कामला, पाण्डु, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि और श्वास यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

पांडुरोगमें जल ।

स्थिरादिभिःशृतंतोयंपानाहारेप्रशस्यते ।

-पाण्डूनांकामलार्त्तानांमृद्धीकामलकीरसः ॥ ११० ॥

पाण्डुरोगीको शालपर्ण्यादिगणने सिद्धकिया जल पीने और आहारमें प्रयोग करना हित है । और कामलारोगीके लिये दाखका और आँबलेका रस अथवा इनसे सिद्ध किया हुआ जल हितकारी है ॥ ११० ॥

वैद्योंको उपदेश ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थामितिप्रोक्तंमहर्षिणा ।

विकल्पमेतन्निपजापृथग्दोषवलंप्रति ॥ १११ ॥

वातिकेस्नेहभूयिष्ठपैत्तिकेतिकशीतलम् ।

श्लैष्मिकेकटुतिक्तोष्णविमिश्रंसांनिपातिके ॥ ११२ ॥

इस प्रकार पाण्डुरोगकी शान्तिके लिये भगवान् आश्रयजीने चिकित्साका कथन कियाहै । बुद्धिमान् वैद्यको पृथक् २ दोष, धल आदि विचारकर औषधकी मात्राकी कल्पना करना चाहिये । वातजनित पाण्डुमें स्नेहविशेषकरिया करना चाहिये । पित्तके पाण्डुमें तिक्त और शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करना चाहिये । कफजनित पाण्डुमें तिक्त, कटु और उष्णद्रव्योंसे प्रायः चिकित्सा करना चाहिये । और सन्निपातिके पाण्डुमें सब प्रकार मिलीजुली चिकित्सा करना चाहिये ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मृद्भक्षणजनित पाण्डुकी चिकित्सा ।

निष्पातयेच्छरीरात्तुमृत्तिकांभक्षितांभिषक् । युक्तिज्ञःशोधनैरस्ती-

क्षणैःप्रसमीक्ष्यबलाबलम् ॥ ११३ ॥ शुद्धकायस्यसर्पीषिवलाधा-
नानियोजयेत् ॥ ११४ ॥

मट्टीखानेसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगमें रोगीका बलाबल विचार युक्तिको जानने-
वाला वैद्य तीक्ष्ण शोधनों द्वारा उसके शरीरसे मट्टीका विकार निकालडाले । जब
देखे कि रोगीका शरीर शुद्ध होगया तो उसके शरीरमें बल प्राप्त करनेके लिये
घृतोंका सेवन करावे ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

मृदोपनाशकघृत ।

व्योषं विल्वं हरिद्रे द्वे त्रिफला द्वे पुनर्नवे । मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं
देवदारुच । वृश्चिकाली च भार्गी च सक्षीरैस्तैः समैर्घृतम् ॥ ११५ ॥
साधयित्वापिबेद्युक्त्या नरो मृदोपपीडितः । तद्वत्केशरयष्ट्या ह्यपि-
प्पलीमूलशाह्वलैः ॥ ११६ ॥

पीपल, मिर्च, सोंठ बेलगिरी, हल्दी, दाखहल्दी, हरड, बहेडे, अँवले, दोनों
प्रकारकी पुनर्नवा, नागरमोथा, लोहभस्म, पाटला, वायविडंग, देवदारु, वृश्चिक,
पत्रिका, और भार्गी इन सबका कल्क करके इस कल्कसे चारगुनी घृतसे चार-
गुना दूध मिलाकर घृत सिद्ध करे । मृत्तिकाके दोपसे पीडित हुआ मनुष्य इस घृतके
पीनेसे आरोग्यताको प्राप्त होताहै उसी प्रकार नागकेशर, मुलैठी, पीपल, पीपला-
मूल, और शाह्वल इनके कल्कसे पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध किया घृत मट्टीखानेसे उत्पन्न
हुए पाण्डुरोगको दूर करताहै ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

पांडुमें देनेयोग्य मट्टी ।

मृद्भक्षणादातुरस्य लोभादविनिवर्त्तिनः । द्वेष्यार्थभावितां कामंद-
द्यात्तदोपनाशनैः ॥ ११७ ॥ विडङ्गैलातिविषयानि म्वपत्रेण पा-
ठया । वार्त्तिकैः कटुरोहिण्याकौटजैर्भूर्व्यापिवा ॥ ११८ ॥

जो रोगी मट्टीको अत्यंत खाताहो और किसी प्रकार मट्टी खानेसे बन्द न हो तो
उसको मृत्तिकादोष नाशक द्रव्योंकी भावना दीहुई मट्टी, मट्टीमें अनिच्छा उत्पन्न
करनेके लिये उसको यथेच्छ खानेके लिये देवे । जिन द्रव्योंसे मट्टीको भावना
देना चाहिये वह यह हैं । अतीस, नीम, वायविडंग, इन्द्रयव, बंडी कटेली, कुटकी,
पाटला और मूर्वा ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

यथादोषं प्रकुर्वीत भैषज्यं पाण्डुरोगिणाम् ।

क्रियाविशेषेषोऽस्य मतो हेतुविशेषतः ॥ ११९ ॥

पाण्डुरोगियोंकी दोष विचारकर दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । क्योंकि कारण विशेषसे ही क्रियामें भी अन्तर (विशेष) होताहै ॥ ११९ ॥

तिलपिष्टनिभंयस्तुवर्चःसृजतिकामली ।

श्लेष्मणारुद्धमार्गतत्पित्तंकफहरैर्जयेत् ॥ १२० ॥

जो कामलावाला रोगी तिलोंकी पिष्टीके समान मलको त्यागताहै उसके कफ-द्वारा शरीरके मार्ग बन्द होजातेहैं । इसीलिये उसके पित्तको कफनाशक द्रव्योंके, संयोगसे जीतना चाहिये ॥ १२० ॥

शाखाश्रित पित्तके लक्षण ।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामैर्वेगानिग्रहैः । कफसंमूर्च्छितोवायुःस्थानात्पित्तंक्षिपेद्वली ॥ १२१ ॥ हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदानरः । भवेत्साटोपविष्टम्भोगुरुणाहृदयेनच ॥ १२२ ॥ दौर्बल्याल्पाग्निपार्श्वार्त्तिहिक्काश्वासारुचिज्वरैः । क्रमेणालपेनसज्येतपित्ते-शाखासमाश्रिते ॥ १२३ ॥

रूक्ष, शीतल, भारी, और मीठे पदार्थोंको सेवन करनेसे, व्यायाम न करनेसे, मलादि वेगोंको रोकलेनेसे वायु कफ संयुक्त होकर पित्तको पित्तके स्थानसे निकाल देतीहै । तब रोगीके नेत्र, मूत्र, त्वचा यह सब हल्दीके समान होजातेहैं । और मल सफेद वर्णका आने लगताहै । तथा अफारा, विष्टम्भ, हृदयमें भारीपन, दुर्बलता, मंदाग्नि, पार्श्वपीडा, हिचकी, श्वास, अरुचि और ज्वर यह उपद्रव जब पित्त शाखा-श्रित होताहै तो शीघ्र उत्पन्न होजातेहैं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

शाखाश्रितमें क्रम ।

वर्हितित्तिरिदक्षाणारूक्षाम्लैःकटुकैरसैः । शुष्कमूलककौलार्थैर्यूपैश्चाद्धानिभोजयेत् ॥ १२४ ॥ मातुलुङ्गरसंक्षौद्रंपिप्पलीमरिचान्वितम् । सनागरंपिवेत्पित्तं तथास्यैतिस्वमाशयम् ॥ १२५ ॥ वृक्षाम्लैः कटुरूक्षोष्णैर्लवणैश्चाप्युपक्रमः । आपित्तरोगाच्चकुतोवायोश्चाप्रशमाद्भवेत् ॥ १२६ ॥ स्वस्थानमागतेपित्तेपुरीषेपित्तरञ्जिते । निवृत्तोपद्रवस्यास्यपूर्वः कामलिकोविधिः ॥ १२७ ॥

मोर, तीतर, मुर्गेके मांसरसको रूक्ष, अम्ल और कटु द्रव्योंसे सिद्धकर अग्न्यासृती मूत्री और कुर्ल्यके यूपके साथ भोजन करनेसे शाखाश्रित पित्त फिर अपने

स्थानमें आजाताहै । विजौरेके रसमें शहद, पीपल, मिर्च और सोंठ मिलाकर पीनेसे शाखाश्रित पित्त अपने स्थानमें आजाताहै । जब तक शाखाश्रित पित्तमें पित्तकी अरुणता न आवे और पित्त मिश्रित वायुकी शान्ति न हो तबतक इमली, कटु, रूक्ष, उष्ण और लवण द्रव्योंसे चिकित्सा करे । ऐसा करनेसे शाखागत पित्त कफ और वायुके शान्त होनेसे अपने स्थानमें आजाताहै । पित्तके अपने स्थानमें आनेसे जब मलमें पित्तकी लाली आजातीहै तो संपूर्ण उपद्रव भी शान्त होजातेहैं । जब इस प्रकार शाखाश्रित दोष निवृत्त होजाय तब पहिले कही विधिसे कामलाकी चिकित्सा करे । यह संपूर्ण विधि कफ वात, दूषित पित्तके शाखाश्रित होनेपर पित्तको चिकित्सासाध्य करनेके लिये ही कीजातीहै । अन्य स्थानमें यह उपक्रम हानिकारक होताहै ॥ १२४-१२७ ॥

हलीमकके लक्षण ।

यदातुपाण्डोर्वर्णःस्याद्धरितश्यावपीतकः । बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा-
मन्दाग्निस्त्वमृदुज्वरः ॥ १२८ ॥ स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्चश्वासस्तृष्णा-
रुचिभ्रमः । हलीमकंतदातस्यविद्यादनिलपित्तः ॥ १२९ ॥

जब पाण्डुरोगीका वर्ण हरा, काला, अथवा पीला होजाताहै । बल और उत्साहका क्षय होजाय । तन्द्रा, मंदाग्नि, मंदज्वर, स्त्रीसंगमें अनिच्छा, अंगडाई, श्वास, तृषा, अरुचि और भ्रम यह लक्षण होतेहैं तब उस मनुष्यको वातपित्तके कोपसे हलीमक रोग उत्पन्न होगया ऐसा जानना चाहिये ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

हलीमककी चिकित्सा ।

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितंमाहिषंघृतम् । सपिवेत्रिवृतांस्त्रिगधरसे-
नामलकस्यतु ॥ १३० ॥ विरिक्तोमधुरप्रायंभजेत्पित्तानिलापहमा
द्राक्षालेहंचपूर्वोक्तंसर्पीपिमधुराणिच ॥ १३१ ॥ यापनान्क्षीरव-
स्तींश्चशीलयेत्सानुवासनान् । मर्द्दीकारिष्टयोगांश्चपिवेद्युक्त्याभिवृ-
द्धये ॥ १३२ ॥ कासिकञ्चाभयालेहंपिप्पलीमधुकंवलाम् । पयसा
चप्रयुञ्जीतयथादोषंयथाबलम् ॥ १३३ ॥

गिलोयका स्वरस, दूध और भैंसका घृत इन सबको समभाग लेकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर घतारकर छानले । इस घृतसे हलीमक रोगीको स्निग्धकर निशोयके चूर्णकी आँवलेके रसके साथ पिलावे जब अच्छी तरह विरेचन होचुके तो मधुरप्राय आहार और औषधका सेवन करे । तथा पूर्वोक्त द्राक्षावलेह और मधुर

द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और यापनवस्ति, क्षीरवस्ति, अनुशासनवस्ति इनका विधिवत् प्रयोग करे । और द्राक्षारिष्ट आदि हितकारक अरिष्टोंका विधिवत् जठराग्निकी वृद्धिके लिये पान करे । अथवा कासाधिकारमें कहेहुए अभयावलेह अथवा पीपल, मुलैठी और बलाको दोष बल विचार दूधके साथ प्रयोग करे तो हलीमक रोग शान्त होताहै ॥ १३०-१३३ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ ।

पाण्डोःपञ्चविधस्योक्तहेतुलक्षणभेषजम् । कामलाद्विविधाचैवसा-
ध्यासाध्यत्वमेवच ॥ १३४ ॥ तेषां विकल्पोयश्चान्योमहाव्याधिर्ह-
लीमकः । तस्यचोक्तसमासेनव्यञ्जनंसचिकित्सितम् ॥ १३५ ॥
इतिश्री चरक० चिकि० पाण्डु चिकित्सितं नामविंशोऽध्यायः ॥२०॥

अब अध्यायके उपसंहारमें यह दो श्लोक हैं । कि इस पाण्डुचिकित्सित अध्यायमें भगवान् आत्रेयजीने पाण्डुरोगके हेतु, लक्षण, औषधियों, दो प्रकारके कामला उनकी साध्य असाध्यता, वातादिभेदसे पाण्डुके विकल्प और औषधी कल्पना तथा अन्य हलीमकआदि महाव्याधिके संक्षेपसे लक्षण और चिकित्सा यह सब वर्णन कियाहै ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

इति श्रीच० चिकित्सा स्थाने प्र० भा० टी० पाण्डुचिकित्सितं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकाविंशोऽध्यायः ।

अथातो हिक्काचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

अब हम हिक्काकासचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

वेदलोकार्थतत्त्वज्ञमात्रेयमृपिमुत्तमम् । अपृच्छत्संशयंधीमानग्नि-
वेशःकृताञ्जलिः ॥ १ ॥ यद्भेदिविधाःप्रोक्तास्त्रिदोपास्त्रिप्रको-
पणाः । रोगानानात्मकास्तेषांकस्कोभवतिदुर्जयः ॥ २ ॥

लौकिक और वैदिक विषयोंके तत्त्वको जाननेवाले महर्षि आत्रेयजीसे बुद्धिमान् अग्निवेशजी हाथ जोडकर इस संशयको पृछनेलगे कि हे भगवन् ! निज और आगंतुज अथवा शारीरिक और मानसिक भेदसे संपूर्ण रोग दो प्रकारके कहेगयेहैं तथा तीन दोष और तीनों दोषोंके प्रकोपके कारण यह सब श्रीमान्ने कथन कर दियाहै ।

अब कृपया यह कहिये कि उन नानात्मक (अनेक) प्रकारके रोगोंमें जो जीतनेमें न आसकताहो ऐसा दुर्जय कौन २ सा रोग है ॥ १ ॥ २ ॥

अग्निवेशस्यतद्वाक्यंश्रुत्वामतिमतांवरः । उवाचपरमप्रीतःपरमार्थविनिश्चयम् ॥ ३ ॥ कामंप्राणहरारोगावहवोनतुतेतथा । यथाश्वासश्चहिक्काचप्राणानाशुनिकृन्ततः ॥ ४ ॥ अन्यैरप्युपसृष्टस्यरोगैर्जन्तोःपृथग्विधैः । अन्तेसञ्जायतेहिक्काश्वासोवातीत्रवेदनः ॥ ५ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके प्रश्नको सुनकर बुद्धिवानोंमें श्रेष्ठ आत्रेयजी प्रीतिपूर्वक इस प्रकार निश्चयात्मक वाक्य कहनेलगे कि हे सौम्य ! यद्यपि प्राणोंको हरनेवाले अनेक प्रकारके दुर्जय रोग हैं परंतु उनमें जैसे श्वास और हिचकी हठात् प्राणोंका नाश करतीहै इस प्रकार अन्य रोग नहीं करते । अन्य अनेक रोगोंसे पीड़ित मनुष्योंको भी अंत (मरणासन्न) समयमें हिचकी उत्पन्न होजातीहै अथवा तीव्र कष्टदायक श्वास होजाताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

कफवातात्मकावेतौपित्तस्थानसमुद्भवौ। हृदयस्यरसादीनांधातूनाश्चोपशोषणौ ॥ ६ ॥ तस्मात्साधारणावेतौमतौसमसुदुर्जयौ । मिथ्योपचरितौक्रुद्धौहतावाशीविषाविव ॥ ७ ॥ पृथक्पञ्चविधावेतौनिर्दिष्टौरोगसंग्रहे । तयोःशृणुसमुत्थानंलिङ्गञ्चसभिपग्जितम् ॥ ८ ॥

यह दोनों रोग कफ और वातात्मक हैं और पित्तस्थानसे उत्पन्न होतेहैं । यह दोनों हृदयस्य रसादि धातुओंको सुखानेवाले हैं इसलिये साधारण रूपसेही दुर्जय हैं । हिचकी और श्वास मिथ्या उपचार होनेसे अर्थात् आहार विहारका अनुचित योग होनेसे कुपित होकर आशीविषके समान शीघ्र प्राणोंको नष्ट करदेतेहैं । इन दोनोंके पांच २ भेद सूत्रस्थानमें कहचुकेहैं । अब इन दोनोंके कारण और लक्षणों और चिकित्साको श्रवण करो ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

हिक्का और श्वासके हेतु ।

रजसाधूमवाताभ्यांशीतस्थानाम्बुसेवनात्। व्यायामाद्वास्यधर्माध्वं रूक्षान्नविपमाशनात् ॥ ९ ॥ आमप्रदोपादानाहाद्रौक्ष्यादत्यपतर्पणात् । दौर्वल्यान्मर्मणोघाताद्द्वन्द्वान्छुद्धयतियोगतः ॥ १० ॥ अतीसारज्वरच्छर्दिप्रतिश्यायक्षतक्षयात् । रक्तपित्तादुदावर्त्ताद्वि-

पूच्यलसकादपि ॥ ११ ॥ पाण्डुरोगादिपाञ्चैवप्रवर्ततेगदाविमौ ।
 निष्पावमापिण्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ १२ ॥ पिष्टशालूकति-
 ष्टम्भिभिदाहिगुरुभोजनात् । जलजानूपापिशितदध्यामक्षीरसेव-
 नात् ॥ १३ ॥ अभिष्यन्द्युपचाराच्चइलेष्मलानाञ्चसेवनात् । कण्ठो-
 रसोःप्रतीघाताद्विबन्धैश्चपृथग्विधैः ॥ १४ ॥ मारुतःप्राणवाहीनि
 स्त्रोतांस्याविश्यकुप्यति । उरःस्थःकफमुद्ध्वयहिकाश्वासान्करो-
 तिसः ॥ १५ ॥ घोरान्प्राणोपरोधायप्राणिनांपञ्चपञ्च । उभयोः
 पूर्वरूपाणिशृणुवक्ष्याम्यतःपरम् ॥ १६ ॥

गर्दा, धूम्र और विकृत वायुके लगनेसे, शीतल स्थानमें रहनेसे, अत्यंत शीतल
 जल पीनेसे, अति व्यायाम, मैथुन, मार्गश्रम, रूक्ष अन्नका सेवन, विषम भोजन
 करनेसे और आमदोषके बढ़नेसे, अफारा, रूक्षता, अनशन, दुर्बलता और मर्मस्थानमें
 किसी प्रकार उपघात पहुंचनेसे, वमन, विरेचनके अतियोगसे अतिसार, ज्वर,
 वमन, प्रतिश्याय, क्षय, क्षत, रक्तपित्त, उदावर्त्त, विसृचिका, अलसक, पाण्डुरोग और
 विषविकार इनमेंसे किसी रोगके होनेसे हिचकी और श्वास यह दोनों रोग प्रवृत्त
 होतेहैं । तथा निष्पाव (सेम आदि) उडद, पिण्याक, तिल और तेलके अत्यंत
 सेवनसे, पिष्टअन्न, कमलकंद, विष्टम्भी पदार्थ, विदाही और भारी पदार्थोंका अत्यंत
 सेवन करनेसे तथा जलज और अनूपसंचारी जीवोंका मांस, दही और कच्चे दूधके
 अधिक सेवनसे, अभिष्यन्दी (क्लेदकारक) आहार विहारके करनेसे, कफकारी
 द्रव्योंके अधिक सेवनसे तथा कण्ठ और छातीमें किसी प्रकारका आघात पहुंचनेसे
 और किसी प्रकारके विबंधके होनेसे वायु प्राणवाही स्त्रोतोंमें प्राप्त होकर कुपित
 होजातीहै । तब वह वायु छातीमेंसे कफको उखाडकर मनुष्योंके प्राणोंको घोर कष्ट
 देनेके लिये अथवा रोक देनेके लिये पांच पांच प्रकारके घोर हिचकी और श्वासरो-
 गको उत्पन्न करताहै । अब इन दोनोंके पूर्वरूपोंको कथन करतेहैं, सो
 श्रवण करे ॥ १-१६ ॥

हिकाके पूर्वरूप ।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्चवदनस्यकपायता ।

हिकानांपूर्वरूपाणिकुक्षेराटोपएवच ॥ १७ ॥

कण्ठ और छातीमें भारीपन प्रतीत होना, मुखमें कसैलापन, दोनों कुक्षियोंका
 फूलना यह हिचकी रोगके पूर्वरूप हैं ॥ १७ ॥

श्वासके पूर्वरूप ।

आनाहःपार्श्वशूलश्चपीडनंहृदयस्यच ।

प्राणस्यचविलोमत्वंश्वासानांपूर्वलक्षणम् ॥ १८ ॥

अफारा, पार्श्वशूल, हृदयका पीडन होना, प्राणवायुका नीचेसे ऊपरकी उलट आना यह श्वासरोगके पूर्वरूप हैं ॥ १८ ॥

प्राणोदकान्नवाहीनिस्त्रोतांसिसकफोनिलः ।

हिक्काःकरोतिसंरुध्यतासालिङ्गंपृथक्शृणु ॥ १९ ॥

कफयुक्त वायु प्राणवाही और जलवाही तथा अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिक्का (हिचकी) को उत्पन्न करताहै । उस हिक्कारोगके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १९ ॥

महाहिक्काके लक्षण ।

क्षीणमांसवलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः। गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चै-

र्योपवतौभृशम् । करोतिसततंहिक्कामेकद्वित्रिगुणांतथा ॥ २० ॥

प्राणःस्त्रोतांसिमर्माणिसंरुध्योष्माणमेवच । संज्ञांमुष्णातिगात्रेच

स्तम्भंसञ्जनयत्यपि ॥ २१ ॥ मार्गश्चैवान्नपानानांरुणद्ध्यपहत-

स्मृतेः । साश्रुविप्लुतनेत्रस्यस्तब्धशंखच्युतश्रुवः ॥ २२ ॥ सक्त-

जल्पप्रलापस्यनिर्वृतिनाधिगच्छतः । महातेजामहावेगामहाश-

ब्दामहाबला । महाहिक्केतिसानृणांसद्यःप्राणहरामता ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यका किसी व्याधि आदिसे मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगयेहों उसके कण्ठको ग्रहण कर वायु और कफ सहसा ऊंचे शब्दवाली घोर हिचकीको उत्पन्न करताहै । वह हिचकी एक दो तीन बार घोर शब्दके साथ एकदम आतीहै । उससे रोगीके प्राणको बहन करनेवाले संपूर्ण छिद्र, मर्म, और ऊष्मा (जठराग्नि) तथा संज्ञाका अवरोध होताहै । और सब अंग गरम तथा स्तब्ध होजातेहै । एवं अन्नजलके मार्गका अवरोध, स्मृतिनाश, दोनों नेत्रोंका आँसुओंसे भरजाना, दोनों कनपटियोंका स्तब्ध होना, दोनों भौहोंका गिरसाजाना, बोलनेकी शक्ति बन्द होजाना और किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त न होना यह महावेगा, महातेजा, महाशब्द और महाबला महाहिक्का मनुष्योंके प्राणोंको जीव हरनेवाली है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

पूच्यलसकादपि ॥ ११ ॥ पाण्डुरोगाद्विपाचैवप्रवर्तेतेगदाविमौ ।
निष्पावमापिण्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ १२ ॥ पिष्टशालूकति-
ष्टम्भिविदाहिगुरुभोजनात् । जलजानूपपिशितदध्यामक्षीरसेव-
नात् ॥ १३ ॥ अभिष्यन्द्युपचाराच्चश्लेष्मलानाञ्चसेवनात् । कण्ठो-
रसोःप्रतीघाताद्विवन्धैश्चपृथग्विधैः ॥ १४ ॥ मारुतःप्राणवाहीनि
स्त्रांतांस्याविश्यकुप्यति । उरःस्थःकफमुद्धूयहिकाश्वासान्करो-
तिसः ॥ १५ ॥ घोरोन्प्राणोपरोधायप्राणिनांपञ्चपञ्च । उभयोः
पूर्वरूपाणिशृणुवक्ष्याम्यतःपरम् ॥ १६ ॥

गर्दा, धूम्र और विकृत वायुके लगनेसे, शीतल स्थानमें रहनेसे, अत्यंत शीतल जल पीनेसे, अति व्यायाम, मैथुन, मार्गश्रम, रूक्ष अन्नका सेवन, विषम भोजन करनेसे और आमदोषके बढ़नेसे, अफारा, रूक्षता, अनशन, दुर्बलता और मर्मस्थानमें किसी प्रकार उपघात पहुंचनेसे, वमन, विरेचनके अतियोगसे अतिसार, ज्वर, वमन, प्रतिश्याय, क्षय, क्षत, रक्तपित्त, उदावर्त, विमूचिका, अलसक, पाण्डुरोग और विपविकार इनमेंसे किसी रोगके होनेसे हिचकी और श्वास यह दोनों रोग प्रवृत्त होतेहैं । तथा निष्पाव (सेम आदि) उडद, पिण्याक, तिल और तेलके अत्यंत सेवनसे, पिष्टअन्न, कमलकंद, विष्टम्भी पदार्थ, विदाही और भारी पदार्थोंका अत्यंत सेवन करनेसे तथा जलज और अनूपसंचारी जीवोंका मांस, दही और कच्चे दूधके अधिक सेवनसे, अभिष्यन्दी (क्लेदकारक) आहार विहारके करनेसे, कफकारी द्रव्योंके अधिक सेवनसे तथा कण्ठ और छातीमें किसी प्रकारका आघात पहुंचनेसे और किसी प्रकारके विबंधके होनेसे वायु प्राणवाही स्रोतोंमें प्राप्त होकर कुपित होजातीहै । तब वह वायु छातीमेंसे कफको उखाडकर मनुष्योंके प्राणोंको घोर कष्ट देनेके लिये अथवा रोक देनेके लिये पांच पांच प्रकारके घोर हिचकी और श्वासरोगको उत्पन्न करताहै । अब इन दोनोंके पूर्वरूपोंको कथन करतेहैं, सो श्रवण करे ॥ ९-१६ ॥

हिकाके पूर्वरूप ।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्चवदनस्यकपायता ।

हिकानांपूर्वरूपाणिकुक्षेराटोपएवच ॥ १७ ॥

कण्ठ और छातीमें भारीपन प्रतीत होना, मुखमें कसैलापन, दोनों कुक्षियोंका शूलना यद हिचकी रोगके पूर्वरूप हैं ॥ १७ ॥

श्वासके पूर्वरूप ।

आनाहःपार्श्वशूलश्चपीडनंहृदयस्यच ।

प्राणस्यचविलोमत्वंश्वासानांपूर्वलक्षणम् ॥ १८ ॥

अफारा, पार्श्वशूल, हृदयका पीडन होना, प्राणवायुका नीचेसे ऊपरको उलट आना यह श्वासरोगके पूर्वरूप हैं ॥ १८ ॥

प्राणोदकान्नवाहीनिस्त्रोतांसिसकफोनिलः ।

हिक्काःकरोतिसंरुध्यतासालिङ्गंपृथक्शृणु ॥ १९ ॥

कफयुक्त वायु प्राणवाही और जलवाही तथा अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिक्का (हिचकी) को उत्पन्न करताहै । उस हिक्कारोगके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १९ ॥

महाहिक्काके लक्षण ।

क्षीणमांसबलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः। गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चै-

र्घोपवतौभृशम् । करोतिसततंहिक्कामेकद्वित्रिगुणांतथा ॥ २० ॥

प्राणःस्त्रोतांसिमर्माणिसंरुध्योष्माणमेवच । संज्ञांमुष्णातिगात्रेच

स्तम्भंसञ्जनयत्यपि ॥ २१ ॥ मार्गश्चैवान्नपानानांरुणद्धपहत-

स्मृतेः । साश्रुविप्लुतनेत्रस्यस्तब्धशंखच्युतध्रुवः ॥ २२ ॥ सक्त-

जल्पप्रलापस्यनिर्वृतिनाधिगच्छतः । महातेजामहावेगामहाश-

ब्दामहाबला । महाहिक्केतिसानृणांसद्यःप्राणहरामता ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यका किसी व्याधि आदिसे मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगयेहों उसके कण्ठको ग्रहण कर वायु और कफ सहसा ऊंचे शब्दवाली घोर हिचकीको उत्पन्न करताहै । वह हिचकी एक दो तीन बार घोर शब्दके साथ एकदम आतीहै । उससे रोगीके प्राणको बहन करनेवाले संपूर्ण छिद्र, मर्म, और ऊष्मा (जठराग्नि) तथा संज्ञाका अवरोध होताहै । और सब अंग गरम तथा स्तब्ध होजातेहैं । एवं अन्नजलके मार्गका अवरोध, स्मृतिनाश, दोनों नेत्रोंका आँसुओंसे भरजाना, दोनों कनपटियोंका स्तब्ध होना, दोनों भौहोंका गिरसाजाना, धोलनेकी शक्ति बन्द होजाना और किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त न होना यह महावेगा, महातेजा, महाशब्दा और महाबला महाहिक्का मनुष्योंके प्राणोंको जीघ

है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

गंभीराके लक्षण ।

हिक्रतेयःप्रवृद्धस्तुकृशोदीनमनानरः । जर्जरेणोरस्तकृच्छ्रंगम्भी-
रमनुनादयन् ॥ २४ ॥ संजृम्भन्संक्षिपंश्चैवतथाङ्गानिप्रसारयन् ।
पाद्वेचोभेसमायम्यकूजन्स्तम्भरुगदितः ॥ २५ ॥ नाभेःपक्वाश-
याद्वापिहिक्राचास्योपजायते । क्षोभयन्तीभृशं देहं नामयन्तीवता-
म्यतः ॥ २६ ॥ रुणद्धृच्छ्वासमार्गन्तुप्रनष्टवलचेतसः । गम्भी-
रनामासातस्यहिक्राप्राणान्तिकीमता ॥ २७ ॥

जिस हिचकीके आनेमें मारे हिचकीयोंके रोगी कृश और दीन होजाय, हृदयमें जर्जरता प्रतीतहो, हिचकीका गंभीर शब्द हो अथवा गंभीर स्थानसे आतीहो, अतिकण्ठसे बाहर निकलती हो, रोगी जंभाईके साथ हिचकी आंके कण्ठसे हाथपावोंको फैलाफैलाकर पटकताहो एक वार एक पमुली, दूसरी वार दूसरी पमुली, फूटकर तनतीहो, रोगी कण्ठसे शब्द करताहुआ स्तम्भित और हिचकीकी पीडासे व्याकुल हो, हिचकी नाभि पक्वागयसे आतीहो और रोगीके शरीरको अत्यन्त क्षोभित कर नवादेतीहै । रोगी उससे व्याकुल हो, श्वास लेनेके मार्गको हिचकी रोकदेवे । रोगीके बल और चैतन्यताको नष्ट करदेवे, उसको प्राणनाशक गंभीरानामक हिचकी कहतेहैं । यह गंभीरस्थानसे उत्पन्न होती है इसलिये इसको गंभीरा कहतेहैं वैसे तो महाहिक्राके समान ही प्राणनाशक है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

व्यपेताके लक्षण ।

व्यपेताजायतेहिक्रायान्नपानेचतुर्विधे । आहारपरिणामान्तेभूयश्च
लभतेबलम् ॥ २८ ॥ प्रलापवम्यतीसारतृष्णार्त्तस्यविचेतसः ।
सजृम्भस्यप्लुताक्षस्यशुष्कास्यस्यत्रिनामिनः ॥ २९ ॥ पर्या-
ध्मातस्यहिक्रायाजत्रुमूलादसन्तता । साव्यपेतेतिविज्ञेयाहिक्रा-
प्राणोपरोधनी ॥ ३० ॥

जो हिचकी भक्ष्य भोज्यादि चाण प्रकारके अन्नपान करनेके अनन्तर जब आहारके परिपाकका समय आवे उस समय अधिक बलकी प्राप्त हो उसमें प्रलाप, वमन, अतिसार, प्यास इनसे पीडित हुआ रोगी संज्ञाहीन होजाय और जंभाई, अध्रुत्ताव, मुसना सूजना, शरीरका नवजाना, पेटमें अत्यंत अफारा हो तथा हिचकी जघनस्थानके मूलमें उत्पन्न होतीहो उम प्राणोंको उपरोध करनेवाली हिचकीको व्यपेता अथवा यमिका कहतेहैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

क्षुद्रहिक्काके लक्षण ।

क्षुद्रवातोयदाकोष्ठाद्व्यायामपरिघटितः । कण्ठेप्रपद्यतेहिक्कांतदा-
क्षुद्रां करोतिसः ॥ ३१ ॥ अतिदुःखानसाचोरःशिरोमर्मप्रवाधिनी ।
नचोच्छ्वासान्नपानानांमार्गमावृत्यतिष्ठति ॥ ३२ ॥ वृद्धिमाय-
स्यतोयातिभक्तमात्रेचमार्दवम् । यतःप्रवर्ततेपूर्वततएवनिव-
र्तते ॥ ३३ ॥ हृदयंक्लोमकण्ठश्चतालुकश्चसमाश्रिता । मृद्धीसाक्षु-
द्रहिक्केतिनृणांसाध्याप्रकीर्तिता ॥ ३४ ॥

जब क्षुद्रवायु अत्यंत परिश्रमके करनेसे परिघटित होकर कण्ठमें प्राप्त होतीहै तब क्षुद्रानामक हिचकीको उत्पन्न करतीहै । यह हिचकी कष्टको देनेवाली नहीं होती । छाती, मस्तक और हृदयमें पीडाको करती है । श्वासके और अन्नपानके वहन करने-वाले मार्गको नहीं रोकती परिश्रमके करनेसे वृद्धिको प्राप्त होतीहै और भोजन करने-पर नरम पडजातीहै । जिस कारणसे पहिले उत्पन्न होतीहै उसीसे निवृत्त होतीहै । और यह हृदय, क्लोम, कण्ठ और तालुके आश्रित होतीहै । यह मृद्धी (हल्की) हिचकी क्षुद्रानामसे कहीजातीहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अन्नजाहिक्काके लक्षण ।

सहसात्यभ्यवहृतैःपानान्नैःपीडितोनिःलः । ऊर्ध्वंप्रपद्यतेकोष्ठान्मयै-
र्वातिमदप्रदैः ॥ ३५ ॥ तथानिरोपभाष्याध्वभारातिपरिवर्तनैः ।
वायुःकोष्ठगतोधावन्पानभोज्यप्रपीडितः ॥ ३६ ॥ उरःस्त्रोतःस-
माविश्यकुटुर्याद्धिक्कांततोऽन्नजाम् । तथाशनैरसम्बन्धंक्षुवंश्चापि
सहिक्कते ॥ ३७ ॥ नमर्मवाधाजननीनेन्द्रियाणांप्रवाधिनी ।
हिक्कापीतेतथाभुक्तेशमंयातिचसान्नजा ॥ ३८ ॥

महमा अन्नपानके करनेसे अथवा २ भोजन करनेसे अथवा अत्यंत मदको देनेवाली मद्यके पीनेसे पीडित हुआ कोष्ठ वायु ऊपरको गमनकर, अथवा क्रोधके समय वा बोलतेहुए अथवा भाग उठाकर या भागतेहुए अन्नपानको भक्षण करनेसे पीडित हुआ कोष्ठवायु छातीके मोतांमें प्राप्त होकर अन्नजा नामक हिचकीको उत्पन्न करताहै । यह हिचकी कभी तो भोजन करते ही आने लगतीहै, कभी छींकके साथ आतीहै और भोजनके समय नहीं आती । इस हिचकीमें हृदय आदि मर्म-

स्थानमें किसी प्रकारकी पीडा नहीं होती न इन्द्रियोंमें किसी प्रकारकी बाधा होती है । यह अन्नजा हिचकी भोजनकरने और पानी पीनेसे ही शान्त हाजाती है ॥ ३९ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

हिक्काकी साध्यासाध्यता ।

अतिसञ्चितदोषस्यभक्तच्छेदकृशस्यच । व्याधिभिःक्षीणदेहस्य
वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ ३९ ॥ आसांयासासमुत्पन्नाहिक्काहन्त्या-

शुजीवितम् । यमिकाचप्रलापात्तृष्णामोहसमन्विता ॥ ४० ॥

अक्षीणश्चाप्यदीनश्चस्थिरधात्विन्द्रियश्वयः । तस्यसाधयितुंशक्या
यमिकाहन्त्यतोन्वया ॥ ४१ ॥

जिस रोगीके शरीरमें संपूर्ण टोप अत्यंत बढे हो और अन्नमें अरुचि हो भोजन न करनेसे कृश होगयाहो, अथवा रोगोंसे अत्यंत क्षीण होगयाहो और वृद्ध अथवा अत्यंत मैथुनमें आसक्त हो ऐसे मनुष्यको महाहिक्का आदि कोई एक प्रकारकी हिचकी उत्पन्न होजाय तो शीघ्र प्राणोंको नष्ट करदेतीहै । और यमिका (व्यपेता) हिचकीमें यदि प्रलाप, शूल, प्यास और मोह हो तो वह भी असाध्य जानना । परन्तु जो रोगी क्षीण न हो और कृश न हुआ हो तथा चलवान् हो, संपूर्ण इन्द्रियों और धातु स्थिर हो तो यमिका हिचकी साध्य होसकती है अन्वया असाध्य है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

श्वासरोगकी संप्राप्ति ।

यदास्त्रोतांसिसंरुध्यमारुतःकफपूर्वकः ।

विष्वग्त्रजतिसंरुद्धस्तदाश्वासान्करोतिसः ॥ ४२ ॥

जब कफसे युक्तदुई वायु प्राणवाही स्रोतोंको रोकदेतीहै तो रुकजानेसे कोपकां प्राप्त होकर श्वासरोगको उत्पन्न करताहै ॥ ४२ ॥

महाश्वासके लक्षण ।

उद्ध्वयमानवातोयःशब्दबहुःखितोनरः । उच्चैःश्वसितिसंरुद्धोम-

र्त्तर्पभइवानिशम् ॥ ४३ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथाविभ्रान्तलो-

चनः । विकृताक्षाननोवृद्धमूत्रवर्चाविशीर्णवाक् ॥ ४४ ॥ दीनः

प्रश्वसितश्चास्यदूराद्विज्ञायतेभृशम् । महाश्वासोपसृष्टःसक्षिप्रमे-

वप्रपद्यते ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य ऊर्द्धगामी वायुके उद्भूयमान होनेसे कठिनतासे श्वास लेताहुआ मत-
वाले वैलके समान ऊंचे शब्दके साथ निरन्तर कष्टसे श्वास छोडताहै और संज्ञाहीन,
ज्ञानहीन, विभ्रान्त और विकृत नेत्र और विकृत मुख हो तथा उसका मल और
मूत्र रुकजाय, जवानसे कठिनतापूर्वक बिखरेहुए शब्द उच्चारण करे और अत्यंत
दीन हो उसको वैद्य महाश्वासग्रस्त जानकर दूरसे ही त्याग देवे । यह महाश्वास
रोगीको शीघ्र मारडालताहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

ऊर्द्धश्वासके लक्षण ।

दीर्घश्वासितियस्तूर्द्धनचप्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुखस्रोतःकु-
द्धगन्धवहादितः ॥ ४६ ॥ ऊर्द्धदृष्टिर्विपश्यंश्चविभ्रान्ताक्षइतस्ततः ।
प्रमुह्यन्वेदनार्क्षुष्कास्योतिनिपीडितः ॥ ४७ ॥ ऊर्द्धश्वासंप्रवृ-
त्तेचयश्चाधःश्वासरोधभाक् । मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्द्धश्वासस्तस्यैवह-
न्त्यसून् ॥ ४८ ॥

जिस रोगीका श्वास ऊर्द्धगति होजाय अर्थात् रोगी ऊपरको मुख करके बडे
जोरसे लंबा श्वास निकाले और श्वासको भीतरकी और न खींच सके, मुखस्रोत
कफसे आवृत होजाय, मुखसे दुर्गंध युक्त कुपित पवन निकले रोगीकी दृष्टि ऊपरको
चढ़जाय या रोगी उपरको देखताहुवा विभ्रान्तनेत्र हो व्याकुलतासे इधर उधर देखे,
पीडासे व्याकुल होकर बेहोश होजाय, मुख सूखजाय, रोगी अत्यंत कष्टको प्राप्त
हो, इस प्रकार ऊर्द्धश्वास चलतेहुए अधःश्वास (श्वासका भीतरको ग्रहण करना)
रुकजाय इससे रोगी मोहको प्राप्त हो अत्यंत कष्टसे व्याकुल हो उसको ऊर्द्धश्वास
कहेंतैहै । यह ऊर्द्धश्वास रोगीके प्राणोंको शीघ्र नष्ट कर देताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

छिन्नश्वासके लक्षण ।

यस्तुश्वासितिविच्छिन्नंसर्वप्राणेनपीडितः । नवाश्वासितिदुःखात्तो
मर्मच्छेदरुगार्दितः ॥ ४९ ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छात्तोदह्यमानेनवास्ति-
ना । विप्लुताक्षःपरिक्षीणःश्चसन्नक्तैकलोचनः ॥ ५० ॥ विचेताःपरी-
शुष्कास्योविपर्णःप्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेनसंछिन्नःसशीघ्रंप्रजहात्य-
सून् ॥ ५१ ॥

जो रोगी विच्छिन्न (दूटाहुआ) श्वास लेवे, श्वास लेते समय संपूर्ण प्राण पीडित
हों, भयवा मर्म (हृदय) के शूलसे दुःखित हुमा श्वास न लेसके या मारे कष्टके
वास्त रुक २ कर आवे और हृदयमें पीडा होनीहो, तथा अक्रान्त, पसीना, मूर्च्छा,

वस्तिमें अत्यंत दाह हो, नेत्र निकल आवे या पानीसे भरे रहें, श्वास क्षीण होजाय, एक नेत्र लाल होजाय, (अथवा दोनों नेत्र लाल हों) बेहोशी हो, मुख सूखजाय, वर्ण बिगडजाय, रोगी प्रलापकरे इन लक्षणोंयुक्तको छिन्नश्वास कहतेहैं छिन्नश्वासे संच्छिन्न हुआ रोगी शीघ्र प्राणोंको त्याग देताहै, ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

तमकश्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमंयदावायुःस्रोतांसिप्रतिपद्यते । त्रीवांशिरश्चसंगृह्यश्लेष्माणसमुदीर्यच ॥ ५२ ॥ करोतिपीनसंतेनरुद्धोघुर्घूरकंतथा । अतीवतीव्रवेगश्चश्वासंप्राणप्रपीडकम् ॥ ५३ ॥ प्रताम्यत्यतिवेगाच्चकासते सन्निरुध्यते । प्रमोहंकासमानश्चसगच्छतिमुहुर्मुहुः ॥ ५४ ॥ श्लेष्मण्यमुच्यमानेचमृशंभवतिदुःखितः । तस्यैवचविमोक्षान्तेमुहूर्त्तलभतेसुखम् ॥ ५५ ॥ अथास्योद्धंसतेकण्ठःकुच्छ्राच्छक्रोतिभाषितुम् । नचापिनिद्रांलभतेशयानःश्वासपीडितः ॥ ५६ ॥ पाश्वेत्स्यावगृह्णातिशयानस्यसमीरणः । आसीनोलभतेसौख्यमुष्णश्चैवाभिनन्दति ॥ ५७ ॥ उच्छ्रिताक्षोललाटेनस्विद्यताभृशमर्तिमान् । विशुष्कास्योमुहुःश्वासोमुहुश्चैवावधम्यते ॥ ५८ ॥ मेघान्द्युशीतप्राग्वातैःश्लेष्मलैश्चाभिवर्द्धते । सयाप्यस्तमकःश्वासःसाध्योवास्यान्नवोत्थितः ॥ ५९ ॥

जब वायु प्रतिलोम होकर प्राणवाही स्रोतोंमें प्रवेश करलेताहै तब त्रीवा और शिरको ग्रहण (प्रपीडित) करके कफको उदीर्ण (उखाड) कर प्रतिश्याय (जुकाम) को उत्पन्न करदेताहै और कफसे संरुद्ध होकर गलेमें घुर २ शब्दको करने लगताहै । तथा अत्यंत तीव्र वेगसे प्राणवायुको पीडन करताहुआ श्वास आता है । श्वासके वेगसे रोगी अत्यंत व्याकुल होजाय, खांसी वेगपूर्वक आवे और रुकजावे रोगी खांसते २ खांसीके रुक जानेसे बारबार मोहको प्राप्त हो, जब तक खांसीकी घल्गाम (कफ) न निकलजाय तब तक रोगीको अत्यंत दुःख ही, उस कफके निकल जानेसे थोड़ी देरके लिये शांति प्रतीत हो, जब यह कफ रोगीके कण्ठमें प्राप्त हो तो रोगी घंटे कष्टसे बोलसके और श्वासकी पीडासे व्याकुल हुआ लेटनेपर भी निद्राको प्राप्त न हो, यह जिस करवट लेटे उसी थोरसे वायु उठकर श्वासको उत्पन्न करे इसलिये रोगी किसी प्रकार लेट या सो नहीं मरना बैठनेसे इसको कुछ

आराम प्रतीत हो गरम पदार्थको खानेकी इच्छा करे, दोनों नेत्र बाहरको निकलेसे प्रतीतहों, मस्तकमें पसीना आवे, श्वासकी पीडासे निरंतर दुःखी रहे । मुख सूखजाय, बारवार श्वासका वेग उडे, किसी प्रकारकी शरीरमें हल चल होनेसे श्वासका वेग होजाय, बादल, शीतल जल, सरदी और पूर्वकी पवनसे कफकी वृद्धि होकर श्वासका वेग हो इन लक्षणोंसे युक्त श्वासरोगको तमक श्वास (दमा) कहते हैं यह याप्यसाध्य होताहै और नवीन उत्पन्न हुआ तो शीघ्र यत्न करनेसे साध्य होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

प्रतमक और सतमकश्वास ।

ज्वरमूर्च्छांपरीतस्यविद्यात्प्रतमकन्तुतम् । उदावर्त्तरजोऽजीर्णाक्लि-
न्नकायनिरोधजः ॥६०॥ तमसावर्द्धतेऽत्यर्थशीतैश्चाशुप्रशास्यति ।

मज्जातस्तमसीवास्यविद्यात्सन्तमकन्तुतत् ॥ ६१ ॥

तमक श्वासयुक्त रोगीको ज्वर और मूर्च्छा होय तो उसको 'प्रतमक श्वास' कहतेहैं उदारतसे मुखनासिकामें धूलके पडनेसे अजीर्णके क्लेदसे और जठराग्निके निरोधसे उत्पन्न हो और अंधकारमे श्वास बढे, शीतल क्रियासे शात होजाय, रोगी श्वासके समय अपनेको अंधकारमें डूबाहुआ प्रतीतकरे उनको संतमक श्वास कहतेहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

रूक्षायामोद्भवःकोष्ठेक्षुद्रवातउदीरयन् । क्षुद्रश्वासोनसोऽत्यर्थदुः-
खेनाङ्गप्रवाधकः ॥ ६२ ॥ निहन्तिनसगात्राणिनचदुःखीयथेतरे ।
नचभोजनपानानानिरुणद्धयुचितांगतिम् ॥ ६३ ॥ नेन्द्रियाणां व्य-
थांनापिकाश्चिदुत्पादयेद्रजम् ॥ ६४ ॥

रूक्ष अन्नपानके सेवन करनेसे और परिश्रमके करनेसे, अल्प कारणोंसे शुद्ध (अल्प) वायु उदीर्ण होकर शुद्धश्वासको उत्पन्न करतीहै । यह शुद्धश्वास न तो अत्यंत दुःख देताहै और न अत्यंत अंगोंमें पीडाको करताहै । ओर श्वासोंके समान यह श्वास मनुष्योंके प्राणोंको हरनेवाला नहीं होता और न अन्य श्वासोंके समान शरीरको ही कष्ट देताहै । तथा अन्नपानकी उचित गतिको नहीं रोकता । इन्द्रियोंमें भी किसी प्रकारकी व्यथा उत्पन्न नहीं करता और किसी प्रकारके अन्य उपद्रवोंको भी प्रकट नहीं करता ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

१ जो रोग योग्य चिकित्सा करनेपर कुछ फाटके लिये शांत होजाय परन्तु समूल नष्ट न हो हेतु पाकर फिर कोप करे उस रोगको याप्य कहतेहै ।

श्वासोकी साध्यासाध्यता ।

ससाध्यउक्तोवलिनःसर्वेचाव्यक्तलक्षणाः । इतिश्वासाःसमुद्दिष्टा
हिक्काश्चैवस्त्रलक्षणैः। एषांप्राणहरावर्ज्याघोरास्तेह्याशुकारिणः॥६५॥

इनमें क्षुद्रश्वास साध्य है और अन्य सब प्रकारके श्वास भी यदि बलवान् मनुष्यके शरीरमें प्रकट लक्षणवाले न हों तो साध्य होतेहैं । इस प्रकार श्वासरोगोंका तथा हिक्कारोगका उनके लक्षणों सहित वर्णन किया गयाहै । इनमें जो प्राणोंको हरनेवाले कहेंहैं उनको त्याग देना चाहिये । क्योंकि वह आशुकारी अर्थात् शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट करनेवाले होतेहैं ॥ ६५ ॥

भेषजैःसाध्ययाप्यास्तुक्षिप्रंभिषगुपाचरेत् । उपेक्षितादहेयुर्हिंशु-
ष्कंक्षमिवानलाः ॥ ६६ ॥ कारणस्थानमूलैक्यादेकमेवचिकि-
त्सितम् । द्वयोरपियथादृष्टमृपिभिस्तन्निबोधत ॥ ६७ ॥

इनमें जो साध्य अथवा याप्यसाध्य हों उनकी वैद्य शीघ्र चिकित्सा करे । क्योंकि शीघ्र चिकित्सा न करनेसे जिस प्रकार सूखे घासमें पडी अग्नि घासको शीघ्र नष्टकर देतीहै उसी प्रकार शीघ्र पत्न न करनेसे श्वासरोग भी मनुष्यकी देहको नष्ट कर देताहै हिचकी और श्वास इन दोनोंके कारण, स्थान और मूल एक ही हैं । इसलिये ऋषियोने इन दोनोंकी चिकित्सा भी एक ही कथन की है । तो तुम श्रवण करो ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

हिक्का और श्वासकी चिकित्सा ।

हिक्काश्वासादितंस्त्रिगधैरादोस्त्रैर्दरुपाचरेत् । आक्तंलवणतैलेनना-
डीप्रस्तरसङ्करैः ॥ ६८ ॥ तैरस्यग्रथितःश्लेष्मास्रोतःस्वभिविली-
यते । खानिमादर्वमायान्तिततोवातानुलोमता ॥ ६९ ॥ यथाद्रि-
कुञ्जेष्वर्कांशुतसंविष्यन्दतेहिमम् । स्थिरःश्लेष्माशरीरस्थःस्वेदैर्वि-
ष्यन्दतेतया ॥ ७० ॥ स्वित्त्रंज्ञात्वाततस्तूर्णभोजयेत्त्रिगधमोदन-
म् । मत्स्यानांसूकराणांवारसैर्द्व्युत्तरेणवा ॥ ७१ ॥ ततःश्लेष्म-
णिसंरुद्धेवमनंपाययेत्तुतम् । पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रैर्युक्तंवाताविरोधि-
यत् ॥ ७२ ॥ निहृतेसुखमाप्नोतिसकफेदुष्टविग्रहे । स्रोतःसुच
विशद्धेषुचरत्यनिहतोऽनिलः ॥ ७३ ॥

दिचकी और श्वासरोगवाले मनुष्यकी पहिले भिन्ध कर नमकयुक्त तेलकी

शरीरपर मालिश करे फिर नाडीस्वेद, प्रस्तग्स्वेद अथवा शंकरस्वेदसे स्वेदन करे । इस प्रकार करनेसे स्रोतोंमें जमाहुआ कफ पिघलकर विलीन होजाताहै उससे छिद्र नरम होकर वायुका अनुलोमन (यथोचित गति) होताहै । जैसे पर्वतकी रोहमें जमाहुआ वर्ष सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त होकर पिघल जाताहै । उसी प्रकार रोगीके छिद्रोंमें जमाहुआ कफ भी स्वेदन करनेसे पिघलकर विलीन होजाताहै । स्वेदन करनेके अनंतर रोगीको स्निग्ध भोजन करावे तथा मछली, सूअरका मांस, अथवा दही, इनके साथ स्निग्ध भात खिलवे ऐसा करनेसे उसकी कफ बढ़कर आमालशयमें आ इस आहागमें आनमिलेगी फिर उसको वमनकारक द्रव्य पिलावे । जो वमन करानेके लिये काय आदि पिलावे उसमें पीपल, संधानमक और ग्रहद मिला लेना चाहिये और जो वमनकारक द्रव्य हो वह वातनाशक होना चाहिये । इसप्रकार औषध पिलाकर वमन करा देनेसे दुष्ट कफ निकलकर रोगीको आराम प्रतीत होताहै और स्रोतोंके शुद्ध होनेसे वायु अप्रतिहत हुई स्वच्छ होकर संचार करती है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

धूमप्रयोग ।

लीनश्चेदोपशोपःस्याद्भूपैस्तनिर्हरेद्बुधः । हरिद्रापत्रमैरण्डमूलं
लाक्षांमनःशिलाम् ॥ ७४ ॥ मांसींसदेवदावेलांपिष्ट्वावत्तिप्रकल्प-
येत् । तांघृताक्तांपिधेद्भूमंयवैर्वाघृतसंयुतैः ॥ ७५ ॥

यदि इस प्रकार वमन करानेपर भी कुछ दोष शेष रहजाय तो बुद्धिमान् वैद्य उनको नीचे लिखे धूम प्रयोगों द्वारा शांत करे । जैसे-हलदी, तेजपात, एरंडकी जड़, लाख, मनमिल, जटाभांसी, देवदारु, इलायची, इन सबको पीसकर धूमवर्तीकी विधिसे बत्ती बनावे । उसको धीमें भिगोकर धूमपान करे अथवा यंत्रोंको पीसर घीके साथ मिला बत्ती बनाकर विधिवत् धूमपान करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

मधूच्छिष्टंसर्जरसंघृतंमल्लकसंपुटे । कृत्वाधूमंपिधेच्छृङ्खलांबा
स्त्रायुवागवाम् ॥७६॥ इयोनाकवर्द्धमानानानाडीशुष्कांकुशस्यवा ।
पद्मकंगुगुलंलोभंशङ्खकीवाघृताप्लुताम् ॥ ७७ ॥

अथवा मोम, शाल और घीको एकत्र पीसकर मल्लक मंष्ट (लम्बीचिह्न) में रखकर नाल लगाकर पीपे अथवा गोरुका सींग, पृष्ठ और स्नायुके चूर्णका इनी विधिसे धूमपान करे । सोनाषाठके पत्रकी टण्डी अथवा एरंडका नट घीमें भिगो धूमपान करे । अथवा सूती कुशाकी घीमें भिगो धूमपान करे । या पद्मकाष्ठ, गृगुल, लोथ, अथवा शल्पवृक्षकी छात्रके चूर्णको घृतमें भिगो बत्ती बना धूमपान करे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

धूमपानके अयोग्य ।

स्वरक्षीणातिसारासृत्रिपित्तदाहानुबन्धजान् ।

मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिक्कादवासानुपाचरेत् ॥ ७८ ॥

यदि हिका और श्वासरोगीका स्वर क्षीण होगयाहो तथा रक्तपित्त और दाहका संसर्ग हो तो उसको धूमपान न कराकर मधुर, स्निग्ध और शीतल आदि द्रव्योंसे चिकित्सा करे ॥ ७८ ॥

स्वेदनके अयोग्य रोगी ।

नस्वेद्याःपित्तदाहार्त्तारक्तस्वेदातिवर्त्तिनः ।

क्षीणधातुबलारूक्षागर्भिण्यश्चापिपित्तलाः ॥ ७९ ॥

जो रोगी पित्त, दाह, रक्त अथवा पत्तीनीसे व्याप्त हो, जो क्षीणधातु अथवा क्षीणबल या अत्यंत रूक्ष मनुष्य गर्भवती स्त्री और पित्तप्रधान धातुवाला रोगी हो उसको स्वेदन करना उचित नहीं ॥ ७९ ॥

कोष्णैःकाममुरःकण्ठस्नेहसैकैःसर्शकरैः । उत्कारिकोपनाहैश्चस्वेद-
येन्मृदुभिःक्षणम् ॥ ८० ॥ तिलोमामापगोधूमचूर्णैर्वातहरैःसह ।

स्नेहैश्चोत्कारिकासाम्लैःसर्शरैर्वाकृताहिता ॥ ८१ ॥

यदि इन उपरोक्त रोगियोंको श्वास और हिककी हो तथा उसमें स्वेदन कराना आवश्यक प्रतीत होताहो तो खांड मिलेहुए स्नेह द्रव्यों (हलवा आदि) से अथवा पूंडिये या रोटिये बनाकर उनसे कण्ठ और छातीपर सुहाता सुहाता उपनाह स्वेदन करे । अथवा तिल, अलसी, उडद और गेहूँका चूर्ण वातनाशक द्रव्योंमें मिला स्नेह-युक्त उत्कारिका बनाकर उनको कांजी अथवा दूधमें डुवाकर सुहाता २ कण्ठ आदिपर स्वेदन करे । अथवा उपरोक्त तिल आदि द्रव्योंको घृत वा कांजीमें पकाकर वातनाशक स्नेह मिला गोलासा बनाकर उससे स्वेदन करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥

नवज्वरामदोपेपुरुक्षस्वेदं विलङ्घनम् ।

समीक्ष्योच्छेखनंवापिकारयेच्छ्वणांस्त्रुना ॥ ८२ ॥

नवीन ज्वर और आमदोषयुक्त रोगीको रूक्ष स्वेदन और लंघन कराना चाहिये । यदि उस समय हानिकारक न हो तो विचारकर नमकका जल पिलाकर वमन करावे ॥ ८२ ॥

अतियोगोद्धतंवातं दृष्ट्वावातहरैर्भिषक् ।

रसाद्यैर्नातिशीतोष्णैरभ्यङ्गैश्चशमनयेत् ॥ ८३ ॥

यदि वमनका अतियोग होकर वायु उद्धत होजाय तो जो अति शीतल और अति गरम न हों ऐसे वातनाशक रस आदिकोंसे अथवा अभ्यंगोंसे उस बढी हुई वायुकी शान्ति करे ॥ ८३ ॥

उदावर्त्ततथाध्मानेमातुलुङ्गाम्लवेतसैः ।

हिङ्गुपीलुविडैश्चान्नयुक्तंस्यादनुलोमनम् ॥ ८४ ॥

उदावर्त्त, तथा अफाग युक्त श्वास, हिचकीरोगमें विजौरेका रस, अम्लवेत, हींग, पीलूफल और विडलवणके साथ भोजन करावे तो वायुका अनुलोमन होकर उदावर्त्त और अफारा शान्त होताहै ॥ ८४ ॥

हिक्काश्वासामयीह्येकोवलवान्दुर्वलोऽपरः । कफाधिकस्तथैवैको
रुक्षवह्निलोऽपरः ॥ ८५ ॥ कफाधिकेवलस्येचवमनंसविरेचनम् ।
कुर्यात्पथ्याशिनेधूमलेहादिशमनंततः ॥ ८६ ॥

हिचकी और श्वासवाले रोगी कोई बलवान्, कोई दुर्बल, कोई कफकी अधिकता-
वाले, कोई रुक्ष और कोई वायुकी अधिकतावाले होतेहैं । उनमें कफकी अधिकता-
वाला मनुष्य यदि बलवान् हो तो उसकी वमन, विरेचन करानेके अनन्तर पथ्य
भोजन और धूमपान तथा लेह (चटनी) आदि शमन द्रव्योंका सेवन करावे ८५।८६

वातिकान्दुर्वलान्वालान्बृद्धांश्चानिलसूदनैः ।

तर्पयेद्देवशमनैःस्नेहयूपरसादिभिः ॥ ८७ ॥

जो रोगी वातप्रधान, दुर्बल, बालक और वृद्ध हो तो उसको वातनाशक संशमन
स्नेह, यूप और रस आदिकोंसे तर्पित करे ॥ ८७ ॥

अनुक्लिष्टकफास्त्रिन्नदुर्वलानांविशोधनात् ।

वायुर्लब्धास्पदोमर्मसंशुष्याशुहरेदसून् ॥ ८८ ॥

जब तक कफका उत्त्वलेश होकर कफ बाहर निकलनेको गमनोन्मुख न हुई हो
तब तक वमन कराना उचित नहीं तथा दुर्बल रोगीको भी वमन नहीं कराना चाहिये
ऐसे समय वमन करानेसे वायु उद्धत पाकर मर्मस्थानमें प्राप्त हो मर्मोंको सुराकर
शीघ्र प्राणोंको नष्ट करदेतीहै ॥ ८८ ॥

दृढान्वहुकफांस्तस्माद्रसैरानूपवारिजैः ।

तृप्तान्विशोधयेत्स्वप्नान्वृंहयेदितरान्भिषक् ॥ ८९ ॥

जो रोगी बलवान् और बढी हुई कफसे युक्त हों उनको स्नेहन और स्पेदन करके

अनूपसंचारी और जलसंचारी जीवोंके मांसरससे वृत्त कर वमन कराना चाहिये । और जो दुर्बल या वातप्रधान वृद्ध आदि रोगी हों उनकी वृंहण औषधियोंद्वारा ही चिकित्सा करना चाहिये ॥ ८९ ॥

वर्हितित्तिरिदक्षाश्चजाङ्गलाश्चमृगद्विजाः ।

दशमूलीरसेसिद्धाःकौलत्थेवारसेहिताः ॥ ९० ॥

हिक्का और श्वास रोगियोंको कुलथीके क्वाथमें अथवा दशमूलके क्वाथमें सिद्ध किया हुआ मोर, तीतर, मुर्गा और अन्य जंगली जीवों अथवा पक्षियोंका मांसरस कृश रोगियोंको तर्पण करनेके लिये देवे ॥ ९० ॥

हिक्काश्वासमें यूप और अन्न ।

निदिग्धिकां विल्वमध्यंकर्कटाख्यांदुरालभाम् ।

त्रिकण्टकंगुडूचीञ्चकुलत्थांश्चसचित्रकान् ॥ ९१ ॥

जलेपक्कारसःपूतोपिप्पलीघृतभर्जितः ।

सनागरःसलवणःस्यायूपोभोजनेहितः ॥ ९२ ॥

कटेली, बेलगिरि, काकडासिंगी, जवासा, गोखरू, गिलोय, चित्रक इन द्रव्योंसे जलमें सिद्ध किया कुलथीका यूप छानकर सेंधानिमक सोंठ और पीपलका चूर्ण सुरका घीमें छौंक लेवे । यह यूप कास और श्वासरोगियोंके लिये हितकारक है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

रास्नां वलांपञ्चमूलंह्रस्वमुद्गान्सचित्रकान् ।

पक्काम्भसिरसेतस्मिन्यूपःसाध्यश्चपूर्ववत् ॥ ९३ ॥

रासना, बला, लघु पंचमूल और चित्रक इनका पूर्ववत् क्वाथ कर उसमें मूंगाका यूप बना सोंठ, पीपल लवण मिला घृतमें छोडकर भोजनमें सेवन करना हितकारक है ॥ ९३ ॥

पृष्ठवान्मातुलुङ्गस्यनिम्बस्यकुलकस्यच । पक्कामुद्गांश्चसव्योपा-
न्क्षारयूपान्विपाचयेत् ॥ ९४ ॥ दत्त्वासलवणंक्षारंशिश्रूणिमरिचा-
निच । युत्तयासंसाधितोयूपोहिक्काश्वासविकारनुत् ॥ ९५ ॥

विजैरेके पत्र, नीमके पत्र और पटोलके पत्रोंको पानीमें पकाकर पानीको छान लेवे फिर उसमें त्रिकुटा, जवासा, नमक, सोडांजनेकी फली और मूंग भिलाकर यूप बनावे । इस क्षारयूपके सेवन करनेसे हिक्की और श्वासरोग दूर होता है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

कासमर्दकपत्राणांयूपःशोभाजनस्यच ।

शुष्कमूलकयूपश्चहिक्काश्वासनिवारणः ॥ ९६ ॥

कसौदीके पत्तोंका यूप बना अथवा सोहांजनेके पत्रोंका यूप बना अथवा सूखी मूलीका क्वाथ बनाकर उसको छानलेवे फिर उसमें शूंगका यूप बनाकर पीपल और संधानमक युक्त कर घृतमें छोंकके सेवन करे तो हिचकी और श्वास दूर होताहै ॥ ९६ ॥

सदधिव्योपसर्पिष्कोयूपोवार्त्ताकजोहितः ।

शालिषष्टिकगोधूमयवान्नान्यनवानिच ॥ ९७ ॥

दही, त्रिकुटा और घृत मिलाकर बेंगनका यूप भी हिक्का और श्वासमें हितकारी है । हिक्का और श्वास रोगमें शालिचावल और सांठी चावल, गेहूं तथा यव यह अन्न हितकारी हैं ॥ ९७ ॥

हिक्काश्वासमें यवागू ।

हिंगुसौवर्चलाजाजीविडपौष्करचित्रकैः ।

सकर्कटाह्वयैःसिद्धायवागूःश्वासहिक्किनाम् ॥ ९८ ॥

हींग, संचरनमक, कालाजीरा, विडनमक, पोहकर मूल, चित्रक, काकडासिंगी इनसे सिद्ध कीहुई यवागू हिक्का और श्वास रोगके लिये हितकारी है ॥ ९८ ॥

दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीमलयौष्करैः । शृङ्गीतामलकीभांर्गीगु-

डूचीनागराम्बुभिः ॥ ९९ ॥ यवागूंविधिनासिद्धांकपायंवापिवेन्नरः।

कासहृद्ग्रहपाश्वार्त्तिहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ १०० ॥

दशमूल, कचूर, रासना, पीपलामूल, पोहकर मूल, काकडासिंगी, भूमिअंबला, भांर्गी, गिलोय और सांठके जलसे सिद्ध की हुई यवागूके सेवनसे अयशा इन्हीं द्रव्योंका क्वाथ बनाकर पीनेसे खांसी, हृद्रोग, पार्श्वशूल, हिचकी और श्वातरोग दूर होताहै ॥ ९९ ॥ १०० ॥

पुष्कराह्वशटीव्योपमातुलुङ्गाम्लवेतसैः ।

योजयेदन्नपानानिससर्पिर्विडहिंगुभिः ॥ १०१ ॥

पोहकरमूल, कचूर, त्रिकुटा, विज्रीरा और अमलवेतके क्वाथमें सिद्ध कियेहुए अन्नपान, घृत, विडनमक और भुनीहुई हींग मिलाकर सेवन करनेसे हिचकी और श्वास दूर होतेहैं ॥ १०१ ॥

दशमूलस्यवाक्काथमथवादेवदारुणः ।

तृषितोमदिरांवापिहिकाश्वासीपिवेन्नरः ॥ १०२ ॥

हिका और श्वासरोगीको प्यास लगे तो दशमूलका क्वाथ अथवा देवदारुका क्वाथ पिलावे । अथवा इन्हीं क्वाथोंमें या अन्य जलमें पुरानी मद्य मिलाकर पीवे ॥ १०२ ॥

पाठामधुरसारास्नांसरलंदेवदारुच । प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यसुरामण्डे
निधापयेत् ॥ १०३ ॥ तंमन्दलवणंकृत्वाभिषक्प्रसृतसम्मितम् ।
पाययेत्ततोहिकाश्वासश्चेवोपशाम्यति ॥ १०४ ॥

पाटला, मूर्वा, रासना, सरलकाष्ठ और देवदारुको कूटकर कपडेमें छान सुरामण्डमें पिलावे । फिर उसमें थोडासा नमक मिलाकर वैद्य २ पलकी मात्रासे पिलावे तो हिचकी और श्वास शान्त होजातेहैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

हिंगुसौवर्चलंकोलंसमङ्गापिप्पलीवलाम् । मातुलुंगरसेपिष्टमारना-
लेनवापिवेत् ॥ १०५ ॥ सौवर्चलनागरश्चभाङ्गीद्विशर्करायुतम् ।
उष्णाम्बुनापिवेदेतद्धिकाश्वासविकारनुत् ॥ १०६ ॥

हींग, संचरनमक, वेर, (समंगा) पीपल, घला, इन सबको विजौरेके रसमें पीसकर कांजीके साथ सेवन करे तो श्वास और हिकाकी शान्त करे । अथवा संचर निमक, सोंठ और भारंगी इनके चूर्णको दुगुनी खांड मिला फेंकी लेवे । उपरसे गरम जल पीवे तो हिचकी और श्वास दूर होतेहैं ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

भाङ्गीनागरयोःकल्कंमरिचक्षारयोस्तथा ।

पीतद्रुचित्रकास्पोतामूर्वाणांचाम्बुनापिवेत् ॥ १०७ ॥

भारंगी और सोंठका कल्क अथवा गोल मिर्च और जवाखार कल्क अथवा सरल काष्ठ, चित्रक, आसफोता और मूर्वा इनका कल्क करके गर्म जलके साथ पीवे तो हिका और श्वास रोग शान्त हो ॥ १०७ ॥

पित्तादिदोषानुबंधीश्वासोक् यत्न ।

मधूलिकातुगाक्षीरीनागरंपिप्पलीतथा ।

उत्कारिकाघृतेसिद्धाश्वासेपित्तानुबन्धजे ॥ १०८ ॥

मधूलिका (मूर्वा या गेहूँका मैदा) वंशलोचन, सोंठ और पीपल इनके घृतमें उत्कारिका बनाकर पित्तानुबंधी श्वासरोगमें देना हित है ॥ १०८ ॥

इत्राविधःशशमांसश्चशल्लकस्यचशोणितम् ।

पिप्पलीघृतसिद्धानिश्वासेवातानुबन्धजे ॥ १०९ ॥

हिक्का और श्वासमें वातका अनुबंध हो तो सेहका मांस अथवा शशोका मांस और सेहका रुधिर पीपलका चूर्ण मिला घृतमें सिद्धकर सेवन करावे ॥ १०९ ॥

सुवर्चलारसोदुग्धघृतंत्रिकटुकायुतम् ।

शाल्योदनस्यानुपानंवातपित्तानुगेहितम् ॥ ११० ॥

यदि श्वास हिक्कामें वात और पित्तका अनुबंध हो तो सूर्यमुखीका रस, दूध, घृत त्रिकुटाके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करावे और शालिचावलोंके भातका पथ्य देवे ॥ ११० ॥

शिरीषपुष्पस्वरसःसप्तपर्णस्थवापुनः ।

पिप्पलीमधुसंयुक्तःकफपित्तानुगेमतः ॥ १११ ॥

यदि हिक्का श्वासमें कफ और पित्तका अनुबंध हो तो सिरसके फूलोंका रस अथवा सप्तपर्णका रस पीपल और शहद मिला पिलावे ॥ १११ ॥

मधुकंपिप्पलीमूलंगुडोगोऽश्वशकृद्रसः ।

घृतंक्षौद्रंहिक्काकासश्वासाभिष्यन्दिनांशुभम् ॥ ११२ ॥

मुलैठी, पीपलामूल और गोबर तथा घोडेकी लीदका रस घी और शहद मिला चाटे । इससे हिचकी, खांसी, श्वास, और शरीरमें अभिष्यंद होना (क्लेदसे शरीरका लिप्त रहना) यह सब दूर होते हैं ॥ ११२ ॥

खराश्वोष्ट्वराहाणामेपस्यचगजस्यच । शकृद्रसंवहुकफेचैकैकं
मधुनापिवेत् ॥ ११३ ॥ क्षारञ्चाप्यश्वगन्धायालेहयेरक्षौद्रसर्पिषा ।

मयूरपादंनलंवाशकलंशल्लकस्यवा ॥ ११४ ॥

गवा, घोडा, ऊंट, सूअर, बकरी और हावीकी लीदका रस शहदमें मिलाकर चाटनेसे कफानुबंधी श्वास और हिचकी शान्त होतीहै अथवा असगंधका क्षार शहद और घृत मिलाकर चाटे या मोरके पेर और पत्तोंकी डण्डियें, सेहके काटे इन मयकी भस्म करके शहद घृत मिला चाटे तो कफानुबंधी श्वास और हिक्का दूर होतीहै ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

इत्राविजाण्डकचापाणारोमाणिकुररस्यवा । शृंग्येऋद्विशफानां

वाचर्मास्थीनिक्षुरास्तथा ॥ ११५ ॥ सर्वाण्येकैकशोवापिदग्ध्वा
क्षौद्रघतान्विताम् । चूर्णलीढ्वाजयेत्कासंहिकांश्वासश्चदारुणम् ११६

सेह, जाण्डक, चाक और कुरर पक्षीके पंखोंकी भस्मकर अथवा सींगवाले, एक
खुरवाले (गदहा आदि) दो खुरवाले (सूअर आदि) जानवरोंके चर्म, हड्डी और खुरोंकी
भस्मको शहद और घृतमें मिलाकर, अथवा सबकी भस्म मिलाकर या इनमेंसे किसी एक
की भस्म मिला चाटनेसे खांसी, हिचकी और दारुण श्वास दूर होता है ११५-११६ ॥

एतेहिकफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः ।

तस्मात्तन्मार्गशुद्धयर्थेसकालेहाननिष्कफे ॥ ११७ ॥

यह सब चूर्ण सेक और अवलेह जब कफसे प्राणवायुकी गति संरुद्ध होगई हो
तब प्राणवायुके मार्गकी शुद्धिके लिये सेवन कराने चाहिये । कफका संयोग न
होनेपर इन सेक और अवलेहोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ११७ ॥

कासिनेच्छर्दनंदद्यात्स्वरभंगेचबुद्धिमान् । वातश्लेष्महरैर्युक्तंतम-
केतुविरेचनम् ॥ ११८ ॥ उदीर्यतेभृशतरंमार्गरोधाद्बृहज्जलम् ।

यथातथानिलस्तस्यमार्गनित्यंविशोधयेत् ॥ ११९ ॥

हिचकी और श्वासमें खांसी और स्वरभेद हो तो वात और कफनाशक वमन
द्रव्योंसे वमन करावे । यदि तमकश्नासमें खांसी और स्वरभंग हो तो वात और
कफनाशक द्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये । जैसे बहतेहुए जलका मार्ग रोक देनेसे वह
जल ऊपरको बढता चला आताहै उसी प्रकार कफद्वारा वायुका मार्ग रुकजा-
नेसे हिक्का और श्वास बढता जाताहै इसलिये वायुके मार्गको शुद्ध कर देना
चाहिये ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

शटचादिचूर्ण ।

शटीचोरकजीवन्तीत्वङ्मुस्तंपुष्कराह्वयम् । सुरसंतामलक्येलापि-
प्पल्यगुरुनागरम् ॥ १२० ॥ बालकश्चसमंचूर्णकृत्वाष्टगुणशर्क-
रम् । सर्वथातमकेश्वासेहिकायाश्चप्रयोजयेत् ॥ १२१ ॥

कचूर, चोरक, जीवन्ती, दालचीनी, नागरमोगे, पोहकर मूल, सुरसा, तुलसी,
भूमिआंवला, इलायची, पीपल, अगर, सोंठ और सुगंधवाला इन सबका वारिक
चूर्ण कर चूर्णमें आठ गुनी खांड मिलावे । यह चूर्ण तमकश्नास और हिचकीको दूर
करताहै ॥ १२० ॥ १२१ ॥

मुक्तादिचूर्ण ।

मुक्ताप्रवालवैडूर्यशंखस्फटिकमञ्जनम् । ससारगन्धकाचार्कसू-
क्ष्मैलालवणद्वयम् ॥ १२२ ॥ ताम्रायोरजसीरूप्यंससौगन्धिकशे-
रुकम् । जातीफलशंणाद्बीजमपामार्गस्थतण्डुलाः ॥ १२३ ॥
एपांपाणितलंचूर्णतुल्यानांशौद्रसर्पिषा । हिकांश्वासश्चकासश्चली-
ढमाशुनियच्छति ॥ १२४ ॥

मोती, मूंगा, वैडूर्य, शंख, स्फटिक, अंजन, संसार, शुद्ध गंधक, आककी जड़, छोटी इलायची, संधानमक, संचरनमक, ताम्रभस्म, लोहभस्म, रौप्यभस्म, सौगन्धि-
क कमल, कसेरु, जायफल, सणके बीज और अपामार्गके बीज इन सबको समान
भाग लेकर विधिवत् वारीक चूर्ण करे । इस चूर्णमेंसे १ तोला अथवा उचित
मात्रासे शहद और घृत मिला चाटे तो हिचकी, श्वास और खांसी शीघ्र दूर
होती है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

अजनात्तिमिरंकाचं नीलिकं पुष्पकंतमः ।

पैल्यंकण्डुमभिष्यन्दमन्दश्चतत्प्रणाशयेत् ॥ १२५ ॥

यदि इसी मुक्तादि चूर्णका अंजन नेत्रोंमें लगायाजाय तो तिमिर, काच,
नीलिका, फोला, पैल, खाज, कलेद, मंददृष्टि यह सब नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १२५ ॥

अन्य योग ।

शटीपुष्करमूलानांचूर्णमामलकस्यच ।

मधुनासंयुतं लेह्यंचूर्णवाकाललोहजम् ॥ १२६ ॥

कचूर, पोहकरमूल और आँवलेका चूर्ण शहदमें मिलाकर अथवा कृष्ण लोह-
भस्मको शहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास और हिचकी दूर होती है ॥ १२६ ॥

सशर्करांतामलर्काद्राक्षांगोऽश्वशकृद्रसम् ।

तुल्यंगुडं नागरश्च प्राशयन्नावयेत्तथा ॥ १२७ ॥

खांड, भूमिआँवला, द्राक्षा, गोवरका रस और घोडेकी लीदका रस, गुड,
सोंठ इन सबको मिलाकर चटानेसे अथवा मुँवानेसे हिचकी और श्वास दूर
होती है ॥ १२७ ॥

हिचकीनाशक योग ।

लग्नस्यपलाण्डोर्वामूलंगृञ्जनकस्यवा ।

नावयेच्चन्दनं वापिनारीक्षीरेण संयुतम् ॥ १२८ ॥

लहसुन, अथवा प्याज या सलजमका रस अथवा लालचंदन स्त्रीके दूधमें मिलाकर नास लेनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १२८ ॥

सुखोष्णघृतमण्डंवासैन्धवेनावचूर्णितम् । नावयेन्मक्षिकाविष्टाः
मलक्तकरसेनवा ॥१२९॥ स्त्रियाःस्तन्येनसिद्धंवासर्पिर्मधुरकैरपि ।
पीतंनस्तोनिपिक्तंवासद्योहिकांनियच्छति ॥ १३० ॥ सकृदुष्णं
सकृच्छीतंव्यत्यासाद्धिकिनांपयः । पानेनस्तःक्रियायांवाशर्कराम-
मधुसंयुतम् ॥ १३१ ॥

संघे नमकको सुखोष्ण घृतमण्डमें मिला नस्य लेना अथवा मक्खीकी विष्टाको लाखके रसमें मिलाकर नस्य लेवे अथवा स्त्रीकी दूधका नस्य लेवे अथवा मधुरगण (जीवनीयगण) से सिद्ध किये घृतको पीवे या नस्य लेवे तो हिचकी दूर होती है । अथवा एक वार गर्म और एक वार शीतल दूध पीवे तो भी हिचकी शीघ्र नष्ट होजाती है, अथवा मिसरी और शहद दूधमें मिला नस्य लेवे तो हिचकी शान्त होजातीहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अधोभागेघृतंसिद्धंसद्योहिकांनियच्छति ।

पिप्पलीमधुयुक्तौवारसौधात्रीकपित्थयोः ॥ १३२ ॥

अथवा विरेचनकारक द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पीवे तो तत्काल हिचकी दूर होजातीहै । अथवा पीपल और शहदके सांय आंवलेका रस या कैयका रस पीनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १३२ ॥

लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्चशकृद्रसान् ।

लिह्यात्कोलंमधुद्राक्षापिप्पलीनागराणिवा ॥ १३३ ॥

लाजा (खील), लाख, शहद, द्राक्षा, पीपल, घांडेके लीदका रस इनको मिलाकर चाटे अथवा उन्नायका ठिलका, शहद, द्राक्षा, पीपल और सोंठको मिलाकर चाटे तो हिचकी दूर होती है ॥ १३३ ॥

हिचकीनाशक कर्म ।

शीताम्बुसेकःसहस्रात्रासोविस्मापनंभयम् ।

क्रोवहर्षप्रियोद्वेगाहिकाप्रचयवनामताः ॥ १३४ ॥

शकस्मात् शीतल जल शरीरपर गेरदेना या सहसा त्रास देना, मुलादेना, भय, क्रोध, हर्ष, प्यारी वस्तुका उद्वेग यह सब हिचकीको दूर करनेवाले हैं ॥ १३४ ॥

निदानवर्जन ।

हिक्काश्वासविकाराणांनिदानंयत्प्रकीर्तितम् ।

वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्धिक्काश्वासविकारीभिः ॥ १३५ ॥

हिक्का और श्वास रोगको उत्पन्न करनेवाले जो कारण कहे हैं उनको आरोग्यताकी इच्छावाला हिक्का और श्वास रोगी त्याग देवे ॥ १३५ ॥

हिक्काश्वासानुबन्धायेशुष्कोरःकण्ठतालुकाः ।

प्रकृत्यारूक्षदेहाश्चसर्पिर्भिस्तानुपाचरेत् ॥ १३६ ॥

हिचकी और श्वासके होनेसे छाती, कण्ठ और तालुका शोष हो तथा रोगी रूक्ष हो तो उसकी घृतों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३६ ॥

दशमूलादि घृत ।

दशमूलरसेसर्पिर्दधिमण्डेचसाधयेत् । कृष्णासौवर्चलक्षारवयः-

स्थाहिंगुचोरकैः । कायस्थयाचसंसिद्धंहिक्काश्वासौप्रणाशयेत् १३७ ॥

दशमूलका क्वाथ और दहीमण्ड यह दोनों घृतसे चौगुने ले, पीपल, संचरनमक, जवाखार, हरड, हींग, गठौना, आँवले इन सबका कल्क घृतसे चौथा भाग, इनसे सिद्ध किया घृत हिचकी और श्वासको दूर करताहै ॥ १३७ ॥

तेजोवत्यादि घृत ।

तेजोवत्यभयाकुष्ठंपिप्पलीकटुरोहिणी । भूतीकंपौष्करंमूलंपला-

शश्चित्रकःशटी ॥ १३८ ॥ सौवर्चलंतामलकीसैन्धवंविल्वपेशिका ।

तालीशपत्रंजीवन्तीवचातैरक्षसम्मितैः ॥ १३९ ॥ हिंगुपादैर्घृत-

प्रस्थंपचेत्तोयेचतुर्गुणे । एतद्यथावलंपीत्त्राहिक्काश्वासौजयेन्नरः ।

शोथानिलाशोम्रहणीहृत्पाइर्वरुजएववा ॥ १४० ॥

तेजोवती, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, पोहकामूल, पलाश, चित्रक, संचरनमक, भूमिआँवला, संधानमक, विल्वके कोमल पत्र या कच्चे फल, तालीश-पत्र, जीवन्ती और वच । यह सब एक एक कर्ष लेवे । हींग १ टंक लेवे, घृत १ प्रस्थ ले, पानी ४ प्रस्थ इन सबको मिलाकर घृत मिद्ध करे । इस घृतको यथावल पीवे तो हिचकी, श्वास, सृजन, वायुकी क्वासीर, ग्रहणी, दृशोग, और पार्श्व-पीडा यह सब दूर होतेहैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

लहसुन, अथवा प्याज या सलजमका रस अथवा लालचंदन स्त्रीके दूधमें मिलाकर नास लेनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १२८ ॥

सुखोष्णघृतमण्डंवासैन्धवेनावचूर्णितम् । नावयेन्मक्षिकाविष्टाः
मलक्तकरसेनवा ॥१२९॥ स्त्रियाःस्तन्येनसिद्धंवासर्पिर्मधुरकैरपि ।
पीतंनस्तोनिपित्तंवासद्योहिकानियच्छति ॥ १३० ॥ सकृदुष्णं
सकृच्छीतंव्यत्यासाद्धिकिनांपयः । पानेनस्तःक्रियायांवाशर्कराम-
मधुसंयुतम् ॥ १३१ ॥

संघे नमकको सुखोष्ण घृतमण्डमें मिला नस्य लेना अथवा मक्खीकी विष्टाको लाखके रसमें मिलाकर नस्य लेवे अथवा स्त्रीकी दूधका नस्य लेवे अथवा मधुरगण (जीवनीयगण) से सिद्ध किये घृतको पीवे या नस्य लेवे तो हिचकी दूर होती है । अथवा एक बार गर्म और एक बार शीतल दूध पीवे तो भी हिचकी शीघ्र नष्ट होजाती है, अथवा मिसरी और शहद दूधमें मिला नस्य लेवे तो हिचकी शान्त होजाती है ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अधोभागेघृतंसिद्धंसद्योहिकानियच्छति ।

पिप्पलीमधुयुक्तौवारसौधात्रीकपित्थयोः ॥ १३२ ॥

अथवा विरेचनकारक द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पीवे तो तरकाल हिचकी दूर होजाती है । अथवा पीपल और शहदके साथ आंवलेका रस या कैयका रस पीनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १३२ ॥

लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्वशकृद्रसान् ।

लिह्यात्कोलंमधुद्राक्षापिप्पलीनागराणिवा ॥ १३३ ॥

लाजा (खील), लाख, शहद, द्राक्षा, पीपल, घोंडेके लीदका रस इनको मिलाकर चाटे अथवा उन्नावका छिलका, शहद, द्राक्षा, पीपल और सोंठको मिलाकर चाटे तो हिचकी दूर होती है ॥ १३३ ॥

हिचकीनाशक कर्म ।

शीताभ्युसेकःसहस्रात्रासोविस्मापनंभयम् ।

क्रोवहर्षप्रियोद्वेगाहिकाप्रच्यवनामताः ॥ १३४ ॥

अस्मात् शीतल जल शरीरपर गेरदेना या सहस्रा त्रास देना, मुलादेना, भय, क्रोध, हर्ष, प्यारी वस्तुका उद्वेग यह सब हिचकीको दूर करनेवाले हैं ॥ १३४ ॥

निदानवर्जन ।

हिक्काश्वासविकाराणांनिदानंयत्प्रकीर्तितम् ।

वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्धिक्काश्वासविकारीभिः ॥ १३५ ॥

हिक्का और श्वास रोगको उत्पन्न करनेवाले जो कारण कहे हैं उनको आरोग्यताकी इच्छावाला हिक्का और श्वास रोगी त्याग देवे ॥ १३५ ॥

हिक्काश्वासानुबन्धायेशुष्कोरःकण्ठतालुकाः ।

प्रकृत्यारूक्षदेहाश्चसर्पिर्भिस्तानुपाचरेत् ॥ १३६ ॥

हिचकी और श्वासके होनेसे छाती, कण्ठ और तालुका शोष हो तथा रोगी रूक्ष हो तो उसकी घृतों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३६ ॥

दशमूलादि घृत ।

दशमूलरसेसर्पिर्दधिमण्डेचसाधयेत् । कृष्णासौवर्चलक्षारवयः-

स्थाहिंगुचोरकैः । कायस्थयाचसंसिद्धंहिक्काश्वासौप्रणाशयेत् १३७ ॥

दशमूलका क्वाथ और दहीमण्ड यह दोनो घृतसे चोगुने ले, पीपल, संचरनमक, जवाखार, हरड, हींग, गठौना, आँवले इन सबका कल्क घृतसे चौथा भाग, इनसे सिद्ध किया घृत हिचकी और श्वासको दूर करताहै ॥ १३७ ॥

तेजोवत्यादि घृत ।

तेजोवत्यभयाकुष्ठंपिप्पलीकटुरोहिणी । भूर्तीकंपौष्करंमूलंपला-

शश्चित्रकःशटी ॥ १३८ ॥ सौवर्चलंतामलकीसैन्धवंविल्वपेशिका ।

तालीशपत्रंजीवन्तीवचातैरक्षसन्मितैः ॥ १३९ ॥ हिंगुपादैर्घृत-

प्रस्थंपचेत्तोयेचतुर्गुणे । एतद्यथावलंपीत्वाहिक्काश्वासौजयेन्नरः ।

शोथानिलाशोभ्रहणीहृत्पाद्वरुजएववा ॥ १४० ॥

तेजोवती, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, पोहकरमूल, पलाश, चित्रक, संचरनमक, भूमिआँवला, संधानमक, विल्वके कोमल पत्र या कच्चे फल, तालीश-पत्र, जीवन्ती और वच । यह सब एक एक कर्प लेवे । हींग १ टंक लेवे, घृत १ प्रस्थ ले, पानी ४ प्रस्थ इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । इस घृतको यथावल पीवे तो हिचकी, श्वास, सूजन, वायुकी बवासीर, ग्रहणी, हृद्रोग, और पाशर्व-पीडा यह सब दूर होतेहैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

मनःशिलादि घृत ।

मनःशिलासर्जरसलाक्षारजनिपद्मकैः ।

मञ्जिष्टैलैश्चकर्पाशैःप्रस्थःसिद्धोघृताद्धितः ॥ १४१ ॥

मनसिल, राल, लाख, हल्दी, पद्मकाष्ठ, मजीठ और इलायची यह एक एक कर्प लेकर कल्क बनावे । इस कल्कसे सिद्ध किया घृत शीघ्र स्वास और हिचकीको दूर करताहै ॥ १४१ ॥

जीवनीयोपसिद्धंवासक्षौद्रंलेहयेद्धृतम् ।

द्रूपणंदार्विकंवापिपिवेद्वासाघृतंतथा ॥ १४२ ॥

अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध किया घृत शहतमें मिला चाटे या वासाघृत अथवा दार्वा घृत या त्रिकुटादिघृत गहदमें मिलाकर चाटे तो हिचकी और स्वास दूर होतेहैं १४२ ॥

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णंवातानुलोमनम् ।

भेषजंपानमद्यंवातद्धितंश्वासहिक्किने ॥ १४३ ॥

वात और कफनाशक तथा उष्ण और वायुके अनुलोमन करनेवाले जितने द्रव्य, औषध, अन्न पान आदि हैं वह सब हिचकी और स्वासमें हितकारक हैं ॥ १४३ ॥

विशेष ज्ञातव्य ।

वातकृद्वाकफहरंकफकृद्वातानिलापहम् ।

कार्थ्यनैकान्तिकंताभ्यांप्रायःश्रेयोऽनिलापहम् ॥ १४४ ॥

जो द्रव्य वायुको करनेवाला और कफको हरनेवाला हो अथवा कफको करनेवाला और वायुको हरनेवाला हो इन दोनोंमेंसे किसी एकका भी स्वास और हिक्कामें अकेला प्रयोग करना उचित नहीं । परन्तु इनमें वातनाशक द्रव्य प्रायः अच्छा माना जाताहै ॥ १४४ ॥

सर्वेषां वृंहणैर्हृत्पःशक्यश्चप्रायशोभवेत् । नात्यर्थंशमनोपायोभू-

शोऽशक्यश्चकर्शने ॥ १४५ ॥ तस्माच्छुद्धानशुद्धांश्चशमनैर्वृंहणै-

रपि । हिक्काश्वासार्दिताञ्जन्तून्प्रायशःसमुपाचरेत् ॥ १४६ ॥

स्वास और हिचकीमें वृंहण द्रव्योंमें उपचार करते यदि कुछ अपचार होजाय तो अति अल्प हानि होसकतीहै । और शमन द्रव्योंमें भी विशेष हानिकी संभावना नहीं । परन्तु कर्षण द्रव्योंमें अत्यंत हानिकी संभावना है । इसलिये हिक्का और स्वासमें रोगीको शोधन करके अथवा बिनाही शोधन किये वृंहण और शमन द्रव्योंमें ही चिकित्सा करना चाहिये ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

दुर्जयत्वेसमुत्पत्तौक्रियैकत्वेचकारणम् ।

लिंगंपथ्यञ्चहिकानांश्वासानाञ्चेहदर्शितम् ॥ १४७ ॥

इति-चरक० चिकि० हिक्काश्वास चिकित्सितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि हिक्का और श्वास की दुर्जयता, समान उत्पत्ति, हेतुओंकी एकता और समान चिकित्सा तथा लक्षण और पथ्य यह सब इस हिक्काश्वास चिकित्सित अध्यायमें वर्णन किया है ॥ १४७ ॥

इति श्रीच०चि०स्थाने प्र०भा०टी० हिक्काश्वासचिकित्सितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथातः कासचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

अब हम कासचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

तपसायशसाधृत्याधियाचपरयान्वितः ।

आत्रेयः कासशान्त्यर्थं सिद्धं प्राह चिकित्सितम् ॥ १ ॥

तपसे, यशसे, धारणासे और श्रीसे सर्वोत्कृष्टताको प्राप्त हुए आत्रेयजी काम (खांसी) की शांतिके लिये सिद्ध चिकित्साको कहने लगे ॥ १ ॥

खांसीके भेद ।

वातादिभ्यस्त्रयोचक्षतजः क्षयजस्तथा ।

स्युः पञ्चैते नृणां कासावर्द्धमानाः क्षयप्रदाः ॥ २ ॥

बहू खांसी वात, पित्त, कफ इनसे तीन प्रकारकी और एक क्षतसे तथा एक क्षयसे इस प्रकार सब खांसीएं पांच प्रकारकी होती हैं । खांसी वृद्धिको प्राप्त होनेसे क्षय रोगको उत्पन्न कर देती है ॥ २ ॥

कासके पृथक्प ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शुकपूर्णगलास्यता ।

कण्ठे कण्ठश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ३ ॥

गला और मुख शूकों (सूक्ष्मकांटों) से भराहुआसा प्रतीत हो, कंठमें खुजली हो; जो पदार्थ खाया पीया जाय वह कंठमें रुककर जाताहुआ प्रतीत हो, यह खांसीके पूर्वरूप हैं ॥ ३ ॥

कासकी संप्राप्ति ।

अधःप्रतिहतोवायुरूद्धोत्स्रोतःसमाश्रितः। उदानभावमापन्नःकण्ठे
सक्तस्तथोरसि ॥ ४ ॥ आविश्यशिरसःखानिसर्वाणिप्रतिपूरयन् ।
आभञ्जनाक्षिपन्देहंहनुमन्येतथाक्षिणी । नेत्रेपृष्ठमुरःपार्श्वेनिर्भुज्य
स्तम्भयंस्ततः ॥ ५ ॥

जब समान वायु नीचेसे प्रतिहत होकर ऊपरके स्रोतोंमें आश्रित होजाताहै तब उदानवायुसे मिलकर कंठ और छातीमें अटक जातीहै फिर शिरके संपूर्ण छिद्रोंको पूर्ण करके शरीरमें तोडन और विक्षेपण करतीहुई हनु, मन्या और दोनों नेत्रोंको, विकलसे कर देतीहै तथा नेत्र, पीठ, छाती और पार्श्वभागमें तोडनेकीसी व्यथा और स्तम्भको करती हुई खांसीको करतीहै अर्थात् खांसीके रूपसे उठतीहै ॥४॥ ५ ॥

कासशब्दकी निरुक्ति ।

शुष्कोवासकफोवापिकसनात्कासउच्यते ॥ ६ ॥

यह खांसी सूखी हो अथवा कफयुक्त हो, यह कसन करनेसे कास कही जातीहै अर्थात् खांसनेसे इसको खांसी कहतेहैं ॥ ६ ॥

प्रतिघातविशेषेणतस्यवायोःसरंहसः ।

वेदनाशब्दवैषम्यंकासानामुपजायते ॥ ७ ॥

खांसीमें वायुका वेग नीचेसे प्रतिहत होकर ऊर्द्धको जाताहै इसलिए खांसीमें पीडायुक्त विषम शब्द होताहै ॥ ७ ॥

वातजकासके हेतु ।

रूक्षशीतकपायाल्पप्रमितानशनंस्त्रियः ।

वेगधारणमाथासोवातकासप्रवर्त्तकाः ॥ ८ ॥

रूक्ष, शीतल, कपिले पदार्थोंके सेवनमे अल्प भोजन और मितभोजनके करनेसे, उपवास करनेसे, मैद्युन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और अति परिश्रम करनेमे वातज खांसी उत्पन्न होती है । अथवा यों कहिये यह सब वातज कासके मृष्ट करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

वातजकासके लक्षण ।

हृत्पाश्वोरःशिरःशूलस्वरभेदकरोभृशम् । शुष्कोरःकण्ठवक्रास्यर्ह-
ष्टलोन्नःप्रताम्यतः ॥ ९ ॥ निर्घोषदैन्यक्षामस्यदौर्वल्यक्षयमोह-
कृत् । शुष्ककासःकफंशुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतां व्रजेत् ॥ १० ॥ स्नि-
ग्धाम्ललवणोष्णैश्चभुक्तमात्रेप्रशाम्यति । उर्ध्ववातस्यजीर्णोऽन्नेवे-
गवान्मारुतोभवेत् ॥ ११ ॥

हृदय, पार्श्व, छाती, और शिरमें पीडा, स्वरका फटा हुआ सा होना, वक्षःस्थल (छाती), कंठ और मुखमें शोष होना, रोमांच होना, ग्लानि, खांसते २ अंध-
कारसा प्रतीत होने लगना, खांसीका प्रबलशब्द होना, रोगीका दीन होजाना तथा
कृशता, दुर्बलता और मोह होना, खांसी सूखी होना, सूखीहुईसी कफका कठिन-
तासे निकलना फिर कुछ कालके लिये हलकी होजाना । इस खांसीमें चिकने, नम-
कीव, खट्टे और गर्म पदार्थोंको खानेसे शांति होना तथा भोजनकरनेपर शांतिका
प्रतीत होना, अन्नके जीर्ण होनेपर फिर ऊर्ध्ववात (खांसी) का वेग बलपूर्वक
उठना यह वातज खांसीके लक्षण हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

पित्तजकासके हेतु ।

कटुकोष्णविदाह्यम्लक्षारणामतिसेवनम् ।

पित्तकासकरंक्रोधःसन्तापश्चाग्निसूर्य्यजः ॥ १२ ॥

कटु, उष्ण, विदाही, अम्ल और क्षार पदार्थोंका अधिक सेवन करनेसे, तथा
क्रोध, अग्निका संताप और धूपके अधिक सेवनसे पित्तकी खांसी उत्पन्न होतीहि ॥ १२ ॥

पित्तकासके लक्षण ।

पीतनिष्ठीवनाक्षत्वंतिकास्यत्वंस्वरामयः । उरोधूमायनंतृष्णादाहो
मोहोऽरुचिभ्रमः ॥ १३ ॥ प्रततंकासमानश्चज्योतींपीवचपश्यति ।
श्लेष्माणंपित्तसंसृष्टंनिष्ठीवतिचपैत्तिके ॥ १४ ॥

पीले वर्णका कफ थूकना, नेत्रोंका पीला होना, मुखमें कटुआहट, स्वरभंग,
छातीमें धूआंसा उठना, प्यास, दाह, मोह, अरुचि, भ्रम, अत्यंत खांसी होनेके समय
नेत्रोंके आगे तारेसे चमकना, पित्त मिलेहुए कफका निकलना यह कफकी खांसीके
लक्षण हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

कफकासके हेतु ।

गुर्वभिप्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनैः ।

वृद्धःश्लेष्मानिलंरुद्धाकफकासंकरोतिहि ॥ १५ ॥

भारी, अभिष्यंदी, मंठि और चिकने पदार्थोंके अधिक सेवनेसे, दिनमें सोनेसे, परिश्रम न करनेसे वृद्धिको प्राप्तहुआ कफ वायुको रोक कर कफकी खांसीको उत्पन्न करताहै ॥ १५ ॥

कफकासके लक्षण

मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसोत्केशगौरवैः । लोमहर्पास्यमाधुर्य-
क्लेदसंसदनैर्युतम् ॥ १६ ॥ बहुलंमधुरंस्निग्धंनिष्ठीवतिघनंकफम् ।

कासमानोऽतिरुग्बक्षःसम्पूर्णमिवमन्यते ॥ १७ ॥

मंदाग्नि, अरुचि, वमन, प्रतिश्याय, कफका उत्केश, शरीरका भारीपन, लोमहर्ष, मुखमें मधुरता, क्लेद, अंगोंका अवसाद, मीठा, चिकना, गाढा और बहुतसा कफ निकलना, खांसतेहुए छाती कफसे भरीहुई प्रतीत होना, यह कफकी खांसीके लक्षण हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

क्षतज कासके हेतु ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्चगजविग्रहैः ।

रूक्षस्योरःक्षतंवायुर्गृहीत्वाकासमावहेत् ॥ १८ ॥

अत्यंत मैथुन करनेसे, अधिक भार उठानेसे, अत्यंत मार्गके चलनेसे बलपूर्वक हाथी, घोडे आदिको रोकनेसे युद्ध करनेसे, रूक्ष मनुष्योंके छातीमें क्षत (घाव) होताहै । उससे वायुका पीडन होकर क्षतज खांसी उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥

क्षतजकासके लक्षण ।

सपूर्वकासतेशुष्कंततःष्ठीवेत्सशोणितम् । रुजमानेनकण्ठेनविरुग्णे
नैवचोरसा ॥ १९ ॥ सूचीभिरिवतीक्षणाभिस्तुद्यमानेनशूलिना ।

दुःखस्पर्शेनशूलेनभेदपीडाभितापिना ॥ २० ॥ पर्वभेदज्वरश्चा-
सतृष्णावैस्वर्यपीडितः । पारावतइवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भ-
वात् ॥ २१ ॥

इस क्षतज कासमें पहिले तो मनुष्यको सूखी खांसी होतीहै फिर रुधिर मिली कफ आने लगतीहै और कंठमें अत्यन्त पीडा तथा हृदयमें पीडा होतीहै तथा छातीमें सूई चुभानेकी सी पीडा प्रतीत होती है । मारे शूलके और भेदनकीसी पीडाके छातीका स्पर्श करना सहन नहीं होसकना तथा पर्वभेद, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरका भिगडना इनमें पीडा होती है । खांसते हुए क्यूतरके कुंजनेकामा शब्द होताहै । यह क्षतज कासके लक्षण हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

क्षयजकासके हेतु ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनांशोचतांन-
गांव्यापन्नेऽभौत्रयोमलाः ॥ २२ ॥ कुपितःक्षयजंकासंकुर्व्युर्देह-
क्षयप्रदम् ॥ २३ ॥

विषम और असात्म्य भोजनके अतिसेवनसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, किसी प्रकारके घृणा और शोकके अत्यंत होजानेसे मनुष्योंकी अग्नि व्यापन्न (खिन्न, मन्द) होजानेसे तीनों दोष कुपित होकर धातुओंका क्षय करके क्षयज खांसीको उत्पन्न करतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

क्षयजकासके लक्षण ।

दुर्गन्धंहरितंरक्तंघृतिवृष्योपमंकफम् । स्थानादुत्कासमानश्चहृदयंम-
न्यतेच्युतम् । अकस्मादुष्णशीतात्तौवद्वाशीदुर्बलःकृशः ॥ २४ ॥
स्निग्धाच्छमुखवर्णत्वक्श्रीमर्द्दर्शनलोचनेः । पाणिपादतलौश्ल-
क्ष्णौसततासूयकोघृणी ॥ २५ ॥ ज्वरोमिश्राकृतिस्तस्यपार्श्वरु-
क्पीनसोऽरुचिः । भिन्नसद्वातवर्च्चस्त्वंस्वरभेदोऽनिमित्ततः ॥ २६ ॥
इत्येपक्षयजःकासःक्षीणानादेहनाशनः ॥ २७ ॥

तव दुर्गन्धयुक्त हरित, लाल और राधके समान कफ खांसीमें आने लगताहै । खांसते समय ऐसा प्रतीत हो कि हृदय अपने स्थानसे गिरासा जाताहै । रोगीको अकस्मात् अत्यंत शीत या अत्यंत गर्मी प्रतीत हो, बहुतसा भोजन करनेपर भी शरीर दुर्बल और कृश होताजाय, मुख चिकना और स्वच्छ प्रतीत हो, त्वचा और नेत्र सुन्दर दिखाई पडें, हाथों और पांवोंके तडुवे नर्म, चिरुने होजाय, निरन्तर सवकी निन्दा करे और सबसे घृणा करने लगजाय रोगीका स्वर तीनों दोषोंकी मिली आकृतिवाला हो, तथा पार्श्वपीडा, प्रतिश्याय, अरुचि, मलका फटा हुआआना आना, अकस्मात् स्वरभंग होना यह क्षयज कासके लक्षण हैं । यह कास क्षीण पुरुषोंकी देहको नष्ट करनेवाला है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

खांसीकी साध्यासाध्यता ।

याप्योवलवतांवास्याद्याप्यन्वेवंक्षतोत्थितः । कदाचिदपिसिध्येता-
भेतौपादगुणान्वितौ । स्थविराणांजराकासःसर्वोयाप्यः प्रकीर्तितः
॥ २८ ॥ त्रीन्साध्यान्साधयेत्पूर्वान्पथ्यैर्याप्यांश्चयापयेत् । चिकि-
त्सामतउर्द्धन्तुशृणुकासनिर्वाहिणीम् ॥ २९ ॥

(१) 'त्रीन्दर्शनलोचनेः' कशं ऐसा पाये कि दांत और नेत्र चमकीले प्रकृत हो ।

बलवात् मनुष्योंकी क्षयज और क्षतज खांसी याप्यसाध्य होती है । चिकित्सके चारों पाद संपन्न होनेपर क्षयज और क्षतजकास साध्य भी हो जाती है । बुद्ध मनुष्योंकी बुढापेकी खांसी सब प्रकारकी ही याप्य होती है । वातज, पित्तज और कफज खांसी साध्य होती है । इनमें वातादि तीन प्रकारकी खांसियोंको औषध द्वारा शान्त करे और याप्यसाध्य खांसियोंमें पथ्य द्वारा अथवा सर्वगुणसंपन्न होनेपर पथ्य और औषध द्वारा यापन करता रहे । अब इसके उपरांत खांसीके दूर करनेवाली चिकित्साका श्रवण करो ॥ २८ ॥ २९ ॥

वात कासं (खांसी) की चिकित्सा ।

रूक्षस्यानिलजंकासमादौल्लेहैरुपाचरेत् । सर्पिर्भिर्वस्तिभिःपेयायू-
पक्षीररसादिभिः ॥ ३० ॥ वातघ्नसिद्धैःस्नेहाद्यैर्धूमैर्लेहैश्चयुक्तितः ।
अभ्यङ्गैःपरिपेकैश्चस्निग्धैःस्वेदैश्चबुद्धिमान् ॥ ३१ ॥

रूक्ष मनुष्योंकी वातज खांसीमें स्नेहों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये तथा घृत, स्निग्धवस्ति, पेया, क्षीर, यूप और रसादिकोंका प्रयोग करना चाहिये । और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृत तैलादिकोंसे तथा धूम लेहादिकोंसे युक्तिपूर्वक चिकित्सा करे और बुद्धिमान् वैद्य अभ्यंग, परिपेक, स्निग्धस्वेदका प्रयोग करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

वस्तिभिर्वद्धविड्वातंशुष्कोद्ध्वोद्ध्वभक्तिकैः ।

घृतैःसपित्तंसकफंजयेत्स्नेहविरचनैः ॥ ३२ ॥

यदि मल और जघोवायु बद्ध होगई हो तो वस्तिकर्म करे । ऊर्ध्वभागमें वायुके शुष्क होजानेसे उत्तरभक्तिक (भोजनोत्तर घृतपान) घृतपान करावे । यदि वातज खांसीमें पित्त और कफका भी अनुबंध हो तो स्निग्ध विरेचन करावे ॥ ३२ ॥

कण्टकारिघृत ।

कण्टंकारीगुडूचीभ्यांपृथक्त्रिशत्पलाद्रसे ।

प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातकासनुद्बहिदीपनः ॥ ३३ ॥

घटेली ३० पल, गिलोप ३० पल, इनका स्वाथ कर उत फाषमे १ प्रस्थ घृत सिद्ध करे । यह घृत वातज खांसीको नष्ट करनेवाला और अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ३३ ॥

पिप्पलीघृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरेः । धान्चपाठावचाराग्नय-

पृथाहक्षारहिंशुभिः ॥ ३४ ॥ कोलमात्रैर्घृतप्रस्थाद्दशमूलीरसाढके ।
सिद्धांचतुर्थिकांपीत्वापेयामण्डंपिवेदनु ॥ ३५ ॥ तच्छ्वासकास-
हृत्पार्श्वग्रहणीदोषगुल्मनुत् । पिप्पल्याद्यंघृतञ्चैतदात्रेयेणप्रकी-
र्तितम् ॥ ३६ ॥

पीपल, पीपलागूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, धनिया, पाठा, वच, रासना, मुलैठी,
जवाखार और हींग यह प्रत्येक एक एक कर्ष लेवे । घृत १ प्रस्थ, दशमूलका
क्वाथ १ आढक । इन सबको मिलाकर सिद्ध किया घृत नित्य ४ तोला प्रमाण
पीयाकरे । ऊपरसे पेयामण्डका अनुपान करे तो श्वास, खांसी, हृत्शूल, पार्श्वपीडा
और ग्रहणीदोष यह सब नष्ट होते हैं । यह पिप्पलादिघृत आत्रेयजीका - कथन
किया है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

श्लेषणादि घृत ।

श्लेषणं त्रिफलां द्राक्षां काशमर्याणिरूपकम् । द्वेषाठे देवदार्वृद्धिस्व-
गुतांचित्रकं शटीम् ॥ ३७ ॥ ब्राह्मींतामलकींमिदांकाकनासांशता-
वरीम् । त्रिकण्टकांविदारीञ्चपिष्ट्वाकर्षसमंघृतात् ॥ ३८ ॥ प्रस्थं
चतुर्गुणक्षीरंसिद्धंकासहरंपिवेत् । ज्वरगुल्मारुचिह्नीहशिरोहृत्पार्श्व-
शूलनुत् ॥ ३९ ॥ कामलाशोऽनिलाष्टीलाक्षतशोपक्षयापहम् ।
श्लेषणं नाम विख्यातमेतद्धृतमनुत्तमम् ॥ ४० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, द्राक्षा, कुम्भेर, फालसा, पाठा, सोनापाठा, देवदारु, ऋद्धि,
कौंचके धीज, चित्रक, कचूर, ब्राह्मी, भूमिआँवला, मेदा, काकनासा, शतावर,
गोखरु, विदारीकंद इन सबको एक एक कर्ष लेवे । इनमें त्रिफला और त्रिकुटा
तीन २ कर्ष लेना चाहिये । धी १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ, सबको मिलाकर घृत सिद्ध
करे । इस घृतके पान करनेसे खांसी नष्ट होतीहै तथा ज्वर, गुल्म, अरुचि,
प्लीह्रोग, शिर, हृदय और पार्श्वकी पीडा, कामला, अर्श, वातघ्नीला, क्षत, शोष
और अक्षयरोग यह सब नष्ट होतेहैं । यह परमोत्तम श्लेषण नामसे विख्यात घृत
है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

रास्नादि घृत ।

द्रोणेऽपांसाधयेद्रास्नांदशमूलींशतावरीम् । पलिकान्माणिकांशांस्तु
कुलत्थान्वरदान्यवान् ॥ ४१ ॥ तुलार्द्धञ्चाजमांसस्यपादशोषेणते-
नच । घृताढकंसमक्षीरंजीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ४२ ॥ सिद्धंतद-

शभिःकल्कैर्नस्थपानानुवासनैः । समीक्ष्यवातरोगेषुयथावस्थंप्रयो-
जयेत् ॥ ४३ ॥ पञ्चकासाञ्छिरःकम्पंशूलंवंक्षणयोनिजम् । सर्वाङ्गै-
काङ्गरोगांश्चसप्तीहोर्द्धानिलाञ्जयेत् ॥ ४४ ॥

रासना, दशमूलकी दश औषधियें और शतावर इन १२ द्रव्योंको एक एक पल लेवे । कुल्थी, येर और यव इनको एक एक पल लेवे । वकरेका मांस आधा तुला लेवे । इन सबको मिलाकर आठगुने जलमें पकावे । जब चौथा भाग रहे उतारकर छान लेवे । घी १ आढक, दूध १ आढक, जीवनीयगणकी दश औषधियें एक एक पल लेकर चूर्ण करे । फिर सबको एकत्र मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । यह घृत वातरोगोंमें बल अवस्था आदि विचारकर पीनेमें, नस्यादि कर्मोंमें प्रयुक्तकरे । इसके सेवनमें पांच प्रकारकी खांसी, शिरका कांपना, वैक्षणोंकी पीडा, योनिशूल, सर्वांगरोग, एकांगरोग और प्लीहरोग तथा ऊर्द्धजन्तुगत वायुकी शान्ति होतीहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

विडङ्गादि चूर्ण ।

विडङ्गनागररास्त्रांपिप्पलीहिङ्गुसैन्धवैः । भाङ्गीक्षारश्चतच्चूर्णपिवे-
द्वाघृतमात्रया ॥४५॥ सकफेऽनिलजेकासेऽवासहिक्काहताग्निषु॥४६॥

बायविडङ्ग, सोंठ, रासना, पीपल, हींग, सेंधानमक, भांरंगी और जवाखार इनका चूर्ण बनाकर ४ गुने घृतके साथ सेवनकरे तो कफमिश्रित वातजनित खांसी तथा श्वास, हिचकी और मंदाग्नि यह सब दूर होते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

द्विक्षारादि चूर्ण ।

द्वौक्षारौपञ्चकोलानिपञ्चैवलवणानिच । शटीनागरकोदीच्यकल्कं
चावस्त्रगालितम् । पाययेतघृतोन्मिश्रंवातकासनिवर्हणम् ॥ ४७ ॥

जवाखार, सजीखार, पंचकोल, पांचों नमक, कचूर, सोंठ और नेत्रवाला इन सबका वारीक कल्क कर बस्त्रमें छानलेवे । फिर घृतमें मिला पानकरे तो वातकी खांसी दूर होतीहै ॥ ४७ ॥

अन्य प्रयोग ।

दुरालभांशर्टाद्राक्षांश्चवेरंसितोपलाम् । लिह्यात्कर्कटशृङ्गीश्चका-
सेतैलेनवातजे ॥ ४८ ॥

जथासा, कचूर, द्राक्षा, अदरस और काकडसिंगी तथा मिसरी इन सबको वारीक पीसकर वातनाशक तेलमें मिला पानकरे तो वायुकी खांसी दूर होतीहै ॥४८॥

दुःस्पर्शापिप्पलीमुस्तंभार्गीकर्कटकींशटीम् । पुराणगुडतैलाभ्यां
चूर्णितवापिलेहयेत् ॥ ४९ ॥ विडङ्गसैन्धवंकुष्ठं व्योषं हिङ्गुमनःशिलाम् ।
मधुसर्पिर्युतंकासहिक्काश्वासंजयेल्लिहन् ॥ ५० ॥

जवासा, पीपल, नागरमोथा, भांगी, काकडासिंगी, कचूर इन सबके चूर्णको पुराने गुड और तेलमें मिलो चाटे । अथवा वायविडंग, सेंधानमक, कूठ, त्रिकुटा, हींग, मनसिल इन सबका चूर्ण बनाकर घृत और शहदमें मिला चाटे तो खांसी, हिचकी और श्वासको दूर करताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

चित्रकादि अवलेह ।

चित्रकंपिप्पलीमूलं व्योषं हिं गुरुदुरालभाम् । शटीं पुष्करमूलञ्च श्रेय-
सं सुरसां वचाम् ॥ ५१ ॥ भार्गीं छिन्नरुहां रास्तां शृङ्गीं द्राक्षाञ्च कार्पि-
कान् । कल्कानर्द्धतुला काथेनिदिग्ध्याः पञ्चविंशतिम् ॥ ५२ ॥
दत्त्वामत्स्याण्डिकायाश्च घृताच्च कुडवं पचेत् । सिद्धं शीतं प्रियक्षौद्रपि-
प्पलीकुडवान्वितम् ॥ ५३ ॥ चतुष्पलं तु गाक्षीर्य्याश्चूर्णितं तत्र दा-
पयेत् । लेहयेत्कासहृद्रोगश्वासगुल्मनिवारणम् ॥ ५४ ॥

चित्रक, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, जवासा, कचूर, पोहकरमूल, गजपीपल, तुलसी, वच, भारंगी, गिलोय, रासना, काकडासिंगी, मुनक्का इन सबको एक एक कर्प लेकर कल्क करे । कटेलीका क्वाथ आया तुला, भित्तरी २० पल, घी १ कुडव इन सबका पाक करे । जब पकते २ गाढा होजाय तो नीचे उतारकर ठण्डा करे । फिर इसमें १ कुडव शहद, १ कुडव पीपलका चूर्ण, और चार पल वंशलोचनका चूर्ण मिलावे । इसमेंसे एक एक तोला दोनों समय चाटनेसे खांसी, हृद्रोग, श्वास और गुल्म नष्ट होतेहैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अगस्त्यहरितकी ।

दशमूर्लीं स्वयंगुसां शंखपुष्पीं शटीं वलाम् । हस्तिपिप्पल्यपामार्गी-
पिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ५५ ॥ भार्गीपुष्करमूलञ्च द्विपलां शंयवा-
ढकम् । हरितकीशतञ्चैकं जलपश्चादकेपचेत् ॥ ५६ ॥ यवेस्विन्ने
कपायंतं पूतं तच्चाभयाशतम् । पचेद्गुडतुलां दत्त्वा कुडवश्च पृथग्
घृतात् ॥ ५७ ॥ तैलात्सपिप्पलीचूर्णां रितद्धशीते च माक्षिकात् ।
लिप्साद्देचाभयेनित्यमतः खादेद्रसायनात् ॥ ५८ ॥ तद्वलीपलितं

हन्तिवर्णायुर्वलवर्द्धनम् । पञ्चकासान्क्षयंश्वासंहिक्कांसविषमज्व-
राम् ॥ ५९ ॥ हन्यात्तथाशोप्रहणीहृद्रोगारुचिपीनसान् । अगस्त्य-
विहितंश्रेष्ठरसायनमिदंशुभम् ॥ ६० ॥

दशमूलकी दश औषधियें, कौंचके बीज, शंखपुष्पी, कचूर, बला, गजपीपल, अपामार्ग, पीपलामूल, चित्रक, भारंगी, पोहकरमूल यह सब दो दो पल लेवे । यव १ आढक, इन सबको ५ आढक जलमें पकावे । और इसमें उत्तम पकीहुई १०० हरडोंको पतलेसे वस्त्रमें ढीलासा बांधकर छोड देवे । जब पकते २ यव भलीप्रकार गलजाय और पानी चौथा भाग रहजाय तो उतारकर छानलेवे और उन हरडोंको अलग निकाल लेवे । इस क्वाथमें १ तुला गुड, १ कुडव घृत और १ कुडव तैल मिलाकर पकावे । उन १०० हरडोंको भी सूई आदिसे सर्वतः छेदकर उस गुडकी चासनीमें मिला देवे । और जब पकते २ गाढा होजाय तो इसको उतारकर शीतल करे । इसमें पीपलका चूर्ण १ कुडव और शहद १ कुडव मिलावे । फिर इसको उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे । इसमेंसे दो हरडे खाकर ऊपरसे अग्निबल विचारकर यह अवलेह चाटे । इस रसायनके नित्य सेवन करनेसे बलीपलित दूर हो वर्ण आयु और बलकी वृद्धि हो तथा पांच प्रकारकी खांसी, क्षय, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, ववासीर, ग्रहणी विकार, हृद्रोग, अरुचि और पीनस इन सबको नष्ट करतीहै । यह अगस्त्य-ऋषिकी कहीहुई अगस्त्यहरितकी नामक रसायन है ॥ ५९-६० ॥

अन्य योग ।

सैन्धवंपिप्पलींभाङ्गींशृङ्गवेरंदुरालभाम् । दाडिमास्लेनकोष्णेन
भाङ्गींनागरसम्बुना ॥६१॥पिवेत्खदिरसारं वामदिरादाधिमस्तुभिः।
अथवापिप्पलीकल्कंघृतभृष्टंसैन्धवम् ॥ ६२ ॥

संधानमक, पीपल, भारंगी, सोंठ और जवासेका चूर्ण दाडिमके रसके साथ पीवे अथवा भारंगी और सोंठके चूर्णको गर्मजलके साथ पीवे या खिरसारको मद्य अथवा दहीके जलके साथ पीवे या पीपलके कल्कको संधानमक मिला घीमें भूनकर सेवन करे तो वातज खांसी दूर होवे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

धूम्रप्रयोग ।

शिरसःसदनेस्त्रावेनासायाहृदिताम्यति । कासप्रतिश्यायवतांधूमं
वेद्यः प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥ दशांगुलोन्मितांनार्डीमथवाष्टांगुलोन्मि-
ताम् । शरावसंपुटच्छिद्रेकृत्वाजिह्वांविचक्षणः ॥ ६४ ॥ वैरेचनं

मुखेनैवकांसवान्धूममापिवेत् । तमुरःकेवलंप्राप्तंमुखेनैवोद्धमे-
त्पुनः ॥ ६५ ॥ सह्यस्यतैक्षण्याद्विक्षिप्यश्लेष्माणमुरसिस्थितम् ।
निष्कृष्यशमयेत्कासंवातश्लेष्मसमुद्भवम् ॥ ६६ ॥

यदि खांसी और प्रतिश्यायमें मस्तकपीडा, नासास्राव और हृदयकी पीडासे रोगी व्याकुल हो-तो वैद्य उसको धूमपान करावे । धूमपानका नल दश अंगुल लम्बा अथवा आठ अंगुल किंचित् टेढ़ा होना चाहिये । दो शरावोंके अन्दर औषधियें रखकर उन दोनों शरावोंका संपुट कर और शरावमें छिद्र कर उस छिद्रमें धूमपानकी नाल लगाना चाहिये । फिर उस नाल द्वारा शरावके अन्दरसे वातनाशक विरेचक द्रव्योंका धूआं खांसीवाला रोगी नालको मुख लगाकर पीवे । फिर उस धूपके मुखसे छाती तक पहुँचा मुखद्वारा ही निकालदे । इस प्रकार पीयाहुआ धूम छातीमें चिपटीहुई कफको निकालकर कफयुक्त वायुकी खांसीको दूर करदेताहै ॥ ६३-६६ ॥

मनःशिलासमधुकमांसीमुस्तेंगुदैःपिवेत् । धूमंतस्यानुचक्षीरंसुखो-
ष्णंसगुडंपिवेत् ॥ ६७ ॥ एषकासान्पृथग्दोषसन्निपातोद्भवाजयेत् ।
प्रसह्यापरिसंसिद्धानन्यैर्योगशतैरपि ॥ ६८ ॥

मनसिल, मुलैठी, जटामांसी, नागरमोथा, और गोंदनीके फूलका धूआं उपरोक्त विधिसे पीवे । धूमपानके अनन्तर गुड मिला सुखोष्ण दूध पीवे । यह योग वातादि पृथक् २ दोषोंसे उत्पन्न हुई खांसीको तथा सन्निपातसे उत्पन्नहुई खांसीको बलात्कारसे दूरकर देताहै । जो खांसी अन्य अनेक योगोंके सेवनसे भी शान्त न हुईहो वसको यह योग अपने बलसे दूर करदेताहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

प्रपौण्डरीकंमधुकंशार्ङ्गिष्टांसमनःशिलाम् । मरिचंपिप्पलींद्राक्षामेलां
सुरसमञ्जरीम् ॥ ६९ ॥ कृत्वावर्तिपिवेद्धूमंक्षौमचेलानुवर्तिताम् ।
घृताक्तामनुचक्षीरंगुडोदकमथापिवा ॥ ७० ॥

पंड्यारेकी छाल, मुलैठी, महाकरंज, मनसिल, मिर्च, पीपल, मुनक्का, छोटी इलायची, तुलसीकी मंजरी इन सबको बारीक पीसकर कौशेय बध्नमें लपेटकर बत्ती बनावे । इस बत्तीको घृतमें भिगो धूमपान करे । ऊपरमे दूध अथवा गरम किया गुडोदक पीवे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

मनःशिलैलामरिचक्षाराजनकुटन्नटेः । वंशलोचनशैवालक्षौमाल-
क्तकरोहिषैः ॥ ७१ ॥ पूर्वकल्पेनधूमोऽयंसानुपानोविधीयते । आलं

मनःशिलातद्रत्पिप्पलीनागरैःसह ॥ ७२ ॥ त्वगैङ्गुदीवृहत्पौद्वेताल-
मूलंमनःशिला । कार्पासास्थ्यश्वगन्धाचधूमःकासविनाशनः ॥ ७३ ॥

मनसिल, इलायची, मिर्च, जवाखार, अंजन, केवटीमोथा, वंशलोचन, पानीकी
काई, अलसी, लाख, रोहिपट्टण इन सबको बारीक पीसकर पूर्वोक्त विधिसे धूमपान
करे । फिर गरम दूध और गुडका पान करे । अथवा मनसिल, हरताल, पीपल, सोंठ
इन सबके चूर्णकी बत्ती बना धूमपान करे । अथवा गोंदनीकी छाल, कटेली, बडी
कटेली, गुसली, मनसिल, कपासके बीज और असगंध इन सबको बारीक कूटकर
उपरोक्त विधिसे धूमपान करे तो उपरोक्त गुण होतेहैं तथा वात और कफकी खांसी
दूर होतीहै ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

वातज खांसीमें पथ्य ।

ग्राम्यानुपौदकैःशालियवगोधमषष्टिकान् । रसैर्माषात्मगुप्तानांयूषै-
र्वादापयेद्धितान् ॥ ७४ ॥

बकरी आदि ग्राम्यजीव, अनूपसंचारी जीव और जलज जीवोंके मांसरसके साथ
शालिचावल, यवान्न, गोधूम और शार्ङ्गिके चावलोंका अन्न देवे । अथवा कौंचके
बीजोंसे सिद्ध किये यूपके साथ देवे ॥ ७४ ॥

कासनाशक पेया ।

यमानीपिप्पलीविल्वमध्यनागरचित्रकैः । रास्त्राजाजीपृथक्पर्णी-
पलाशशटिपौष्करैः ॥ ७५ ॥ क्षिग्धाम्ललवणांसिद्धांपेयामनिलजे-
पिवेत् । कटीहृत्पाश्वकोष्ठार्त्तिश्वासहिक्काप्रणाशनीम् ॥ ७६ ॥

अजवायन, पीपल, बेलंगिरी, सोंठ, चित्रक, जीरा, रासना, पृष्ठपर्णी, ढाकके
खगे, कचूर और पोहरमूल इन सबका क्वाथकर उस क्वाथमें अनारकी खटाई,
सेंधानमक और घृत मिला सिद्ध कीहुई पेया वातजनित खांसी, कमर, छाती
और पार्श्वकी पीडा, कोष्ठशूल, श्वास और हिचकीको नष्ट करतीहै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

दशमूलरसेतद्रत्पञ्चकोलगुडान्विताम् । सिद्धांसमतिलांदद्यात्क्षी-
रेवापिससैन्धवाम् ॥ ७७ ॥

दशमूलके क्वाथमें पंचकोल और गुड डालकर सिद्ध कीहुई पेया अथवा तिल
और सेंधानमकके साथ दूधमें सिद्ध कीहुई पेया सेवन करनेसे वातज खांसी दूर
होतीहै ॥ ७७ ॥

मत्स्यकुक्कुटवाराहैरामिपैर्वाघृतान्वितैः । सिद्धांससैन्धवापेयांवात-
कासीपिवेत्तरः ॥ ७८ ॥

मछली, मुर्गा और सूअरके मांसके साथ सिद्ध कीहुई पेया घृत और संधानमक युक्तकरके वातज खांसीवाला मनुष्य पीवे ॥ ७८ ॥

वातज खांसीमें शाकादि ।

वास्तुकंवायसीशाकंमूलकंसुनिपण्णकम् । स्नेहास्तैलादयोभक्ष्याः
क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ ७९ ॥ दध्धारनालाम्लफलप्रसन्नापानमे-
वच । शस्यतेवातकासेतुस्वाद्म्ललवणानिच ॥ ८० ॥

वायुका साग, मकोपका साग, मूली, चौपत्तिया साग, तैलादि स्नेह, दूध, ईखका रस और गुडके बने पदार्थ, दही, कांजी, विजीरा, अनार, प्रसन्ना, तथा मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थ यह वातकी खांसीमें हितकारक द्रव्य हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

पित्तजकासकी चिकित्सा ।

पैत्तिकेसकफेकासेवमनंसर्पिपाहितम् । तथामदनकाश्मर्य्यमधूक-
कथितैर्जलैः ॥ ८१ ॥ यष्टथाह्वफलकल्कैर्वाविदारीक्षुरसायुतैः ।
हृतदोपस्ततःशीतमधुरश्चक्रमंभजेत् ॥ ८२ ॥

पित्तजनित, खांसीमें जो कफ प्रबल हो तो घृतके योगसे वमन कराना चाहिये । तथा मैनफल, कुंभेरके फल और मुलैठीके कशयसे वमन कराना हितहै । या मुलैठीकी जडका कल्क विदारीकंदका रस और ईखका रस मिला पिलाकर वमन करावे । वमन द्वारा दोषोंके निकलजानेपर शीतल और मधुर द्रव्योंद्वारा चिकित्सा करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

पैत्तेतनुकफेकासेत्रिवृतामधुरैर्युताम् । दद्याद्धनकफेतिक्तैर्विरेकार्थे-
युतांभिपक् ॥ ८३ ॥ क्षिग्धशीतस्तनुकफेरुक्षशीतः कफेघने । क्रमः
कार्यःपरंभोज्यैःस्नेहैर्लेहैश्चशस्यते ॥ ८४ ॥

जिस पित्तकी खांसीमें कफका पतलापन होय तो मधुर द्रव्यके साथ निशोयका चूर्ण मिला पिलावे उससे विरेचन करावे । यदि पित्तज खांसी कफ गाढी हो तो निशोयके चूर्णको तित्त द्रव्योंके साथ भवन करावे । यदि कफ पतली और थोड़ी हो तो स्निग्ध और शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करे । यदि पित्तज खांसी कफ गाढी और अधिक हो तो रुक्ष, शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करे । इसी प्रकार अल्प कफ युक्त पित्तज खांसीमें स्निग्ध और शीतल लेहादिकोंका विरेचन करावे । यदि कफ अधिक और गाढा हो तो पित्तज खांसीमें रुक्ष और शीतल लेह आदि सेवन करावे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

शृङ्गाटकंपद्मवीजं नीलीसाराणि पिप्पली । पिप्पलीमुस्तयष्ट्याह्वद्रा-
क्षामूर्वामहौषधम् ॥ ८५ ॥ लाजा मृतफलाद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्प-
लीसिता । पिप्पलीपद्मकोद्राक्षावृहत्याश्च फलाद्रसः ॥ ८६ ॥ खजू-
रं पिप्पलीवांशीश्वदं प्रूचेति पञ्चते । घृतश्रौद्रयुतालेहाः श्लोकाञ्चैः
पित्तकासिनाम् ॥ ८७ ॥

१ सिधाडा, कमलगट्टा, नीलिनी, प्रसारिणी और पीपल । २ पीपल, नागरमोथा, मुलैठी, मुनक्का, मूर्वा और सोंठ । ३ लाजा, आमले, मुनक्का, वंशलोचन, पीपल और मिसरी । ४ पीपल, पद्माख, मुनक्का और बड़ी कटेलीके फलोंका रस । ५ खजूर, पीपल, वंशलोचन और गोखरू । यह पांच योग आवे २ श्लोकोमें कहे गये हैं । इनमेंसे किसी एकका चूर्ण शहत और घृत मिला चाटनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः । पैत्तेसमुस्तमारिचः सकफे
सघृतोऽनिले ॥ ८८ ॥

केवल, पित्तकी खांसीमें लालचंदन, द्राक्षा, आँवले और नीलकमलका चूर्ण करके खांड और शहत मिला चाटे । यदि पित्तकी खांसीमें कफका संबंध हो तो नागरमोथा और मिग्च इसी उपरोक्त चटनीमें मिला चाटे । यदि पित्तकी खांसीमें वातका अनुबंध हो तो इसी चटनीमें घी मिला चाटे ॥ ८८ ॥

मृद्धीकार्क्षशतं त्रिंशत्पिप्पलीशर्करापलम् ।

लेहयेन्मधुना गोर्वाक्षीरपस्यशकृद्रसम् ॥ ८९ ॥

उत्तम, काबुली द्राक्षा ५०, पीपल ३०, खांड १ पल इन सबका चूर्ण कर शहतमें मिला चाटे अथवा गोबरके रसमें या दूध पति बउडेके गोबरके रसमें उपरोक्त चूर्ण इसमें मिला पीवे ॥ ८९ ॥

त्वगेलाव्योपमृद्धीकापिप्पलीमूलपौष्करैः । लाजामुस्तशटीरास्त्रा
धात्रीफलविभीतकैः ॥ ९० ॥ शर्कराश्रौद्रसर्पिर्भिल्लैः कासविना-
शनः । श्वासंहिक्रांक्षयश्चैव हृद्रोगश्च प्रणाशयेत् ॥ ९१ ॥

दालचीनी, इलायची, त्रिकुट्टा, द्राक्षा, पीपलामूल, पोहकरमूल, धानभी सील, नागरमोथा, खजूर, रासना, आँवले और बहेडे इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णमें मिसरी, शहद और घृत मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, शिचकी, क्षय और हृद्रोग दूर होते हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥

पिप्पल्यामलकंद्राक्षांलाक्षांलान्सितोपलाम् ।

पिवेद्वामधुसंयुक्तंपित्तकासहरंपरम् ॥ ९२ ॥

पीपल, आँवले, मुनक्का, धुला लाखदाना, धानोंकी खील और मिसरी इन सबके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे ॥ ९२ ॥

विदारीक्षुमृणालानारसान्क्षीरंसितोपलम् ।

पिवेद्वामधुसंयुक्तंपित्तकासहरंपरम् ॥ ९३ ॥

विदारीकंदका रस, ईखका रस, कमलकी कंदका रस, दूध और मिसरी इनको शहद मिला पीनेसे पित्तकी खांसी दूर होतीहै ॥ ९३ ॥

पित्तजखांसीमें पथ्य ।

मधुरैर्जाङ्गलरसैःश्यामाक्यवकोद्रवाः। मुद्गादियूपैःशाकैश्चित्तकै-

र्मात्रयाहिताः ॥ ९४ ॥ घनश्लेष्मणिलेहास्तुतिक्तकामधुसंयुताः ।

शालयःस्युस्तनूकफेषाष्टिकाश्चरसादिभिः ॥ ९५ ॥ शर्कराम्भोजनुपा-

नार्थेद्राक्षेक्षूणारसान्पयः । सर्वश्चमधुरंशीतमविदाहिप्रशस्यते ॥९६॥

जांगलजीवोंका मधुर मांसरस, श्यामाक (झाँक्रे चावल) घव, कोद्रव, मृग आदिके यूप और तिक्त द्रव्योंके साथ मात्रानुसार सेवन करना पित्तकी खांसीमें हित है । पित्तकी खांसीमें यदि कफ अधिक और गाढी हो तो तिक्त और मधुर द्रव्योंसे युक्त रस, अबलेह अथवा तिक्त द्रव्योंके चूर्णको शहदमें मिला चाटे और मधुर रसोंके साथ शालिचावलके भातका पथ्य करे । यदि कफ अल्प होय अथवा पतली होय तो मधुर रसोंके साथ शाठीके चावलोंका पथ्य दे पीनेके लिये सांडका शरवत, दासका रस, ईखका रस, दूध और सब प्रकारके मधुर, शीतल, अविदाही, अनुपान हितकारक हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

काकोलीवृहतीमेदायुग्मैःसवृपनागरैः ।

पित्तकासेरसान्क्षीरंयूपांश्चाप्युपकल्पयेत् ॥ ९७ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, बडी कटेली, छोटी कटेली, मेदा, महा मेदा, अड्डसा और सांड डालकर सिद्ध किया यूप अथवा मांसरस पित्तकी खांसीमें हितकारी है ९७

शरादिपञ्चमूलस्यपिप्पलीद्राक्षयोस्तथा ।

कपायेणशृतंक्षीरंपिवेत्समधुशर्करम् ॥ ९८ ॥

अथवा शरादिपंचमूल, पीपल और दाखके साथ सिद्धकिया दूध शीतल होनेपर शहद और सांड मिलाकर पीना हितकारी है ॥ ९८ ॥

महिष्यजाविगोक्षीरधात्रीफलरसैःसमैः

सर्पिःसिद्धंपिवेद्युत्तयापित्तकासनिवर्हणम् ॥ १०५ ॥

भैंस, बकरी, भेड और गौ इन सबके दूध आँवलेका रस इन सबको बराबर लेवे । इनसे सिद्ध किया घृत युक्तिपूर्वक पीनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥- १०५ ॥

कफकासचिकित्सा ।

वलिनं वमनैरादौशोधयेत्कफकासिनम् । यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफ-
त्रैश्चाप्युपाचरेत् ॥ १०६ ॥ पिप्पलीक्षारिकैर्यूषैः कौलत्थैर्मूलकस्य च ।

लघून्यन्नानिभुञ्जीतरसैर्वाकटुकान्वितैः ॥ १०७ ॥ धान्ववैल्वर-
सैर्लेहैस्तिलसर्षपविल्वजैः । मध्वम्लोष्णाम्बुतक्रं वामद्यं वानिगदं
पिवेत् ॥ १०८ ॥

कफकी खांसीवाला रोगी यदि बलवान् हो तो पहिले वमन द्वारा कफका शोधन करे । फिर वमन द्वारा कफ निकलनेके अनन्तर भोजनके लिये कफनाशक कटु, रूक्ष और उष्ण द्रव्योंसे सिद्ध किया यवान्न देना चाहिये । अथवा पीपल और जवा-
खारके साथ सिद्ध किये कुल्थीके यूप और सूखी मूलीके यूपके साथ हलका अन्न भोजनके लिये देना चाहिये । अथवा धन्वज और विलेशय जीवोंके मांसारसको पीपल मिरच आदि कटु द्रव्योंसे सिद्ध कर उस रसके साथ हलका अन्न भोजन करावे । या तिल, सरसों और बेलके बीजोंके तेलसे स्निग्ध किये रसोंके साथ भोजन करावे । पीनेके लिये शहत और विजारेकी खटाई मिला जल, गरमजल, तक्र अथवा मद्य या निगद देना चाहिये ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

पौष्करारग्वधंमूलंपटोलान्तंनिशास्थितम् ।

जलंमधुयुतंपेयंकालेष्वन्नस्यवात्रिषु ॥ १०९ ॥

पोहकरमूल, अम्लतासकी शड़, पटोलकी जड़ इन सबको पानीमें भिंगोकर रात्रिभर धरा रहनेदे प्रातःकाल शहद मिला पीवे अथवा जब जब भोजन करे उस समय सेवन किया करे । (इसी जलको निगद कहतेहैं) ॥ १०९ ॥

कफकासनाशक अनेक योग ।

कट्फलंकचृणंभागींमुस्तंधान्वंचामया । शुण्ठीपर्पटकःशृङ्गी-
सुराद्धञ्चशृतंजले ॥ ११० ॥ मधुहिङ्गुयुतंपेयंकासेवातकफात्मके ।

कण्ठरोगेमुखेशूलेश्वासाहिकाज्वरेषु च ॥ १११ ॥

वृश्चिकपत्रिका, बडी कटेली, हरड, अजवायन, अनारका छिलका, ऋद्धि, मुनका, पुनर्नवा, चव्य, जवामा, अम्लवेतस, काकडासिंगी, भूमिआमला, भारंगी, रासना और गोखरू इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । इस कल्कको उपरोक्त काथ और धी मिलाकर पकावे । घृत मात्र शेष रहनेपर सेवन करे तो यह कण्टकारि घृत सब प्रकारकी खांसी, हिचकी, श्वास और कफके रोगोंको दूर करताहै ॥ १२३-१२६ ॥

कुलत्थादिघृत ।

कुलत्थरसयुक्तंवापञ्चकोलश्रृतंघृतम् ।

पाययेत्कफजेकासेहिकाश्वासेचशस्यते ॥ १२७ ॥

कुलथीके क्वाथ और पंचकोलसे सिद्धकिया घृत कफकी खांसी और हिचकी दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १२७ ॥

कफनाशक धूम ।

धूमांस्तानेवदद्याच्चयेप्रोक्तावातकासिनाम् ।

कोशातकीफलान्मध्यंपिवेद्वासमनःशिलम् ॥ १२८ ॥

कफकी खांसीको दूर करनेके लिये जो धूम वातकी खांसीमें कहे हैं उनका प्रयोग करना चाहिये । अथवा कोशातकी (काली तोरी) के मध्यके गुडामें मनसिल मिला धूमपानविधिसे धूमपान करे ॥ १२८ ॥

कफजकासमें अन्यअनुबन्धोंके घृत्न ।

तमकःकफकासेतुस्याच्चेत्पित्तानुबन्धजे ।

पित्तकासक्रियांतत्रयथावस्थंप्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

पित्तानुबन्धी कफकी खांसीमें यदि तमकश्वास होजाय तो पित्तकी खांसीमें कही- हुई क्रिया अवस्थानुसार करना चाहिये ॥ १२९ ॥

वातेकफानुबन्धेतुकुर्यात्कफहरींक्रियाम् ।

पित्तानुबन्धयोर्वातकफयोःपित्तनाशिनीम् ॥ १३० ॥

कफ प्रबल वातकी खांसीमें कफको नष्ट करनेवाली क्रिया करना चाहिये। तथा वात कास और कफकासमें यदि पित्त प्रबल हो तो पित्तको हरण करनेवाली क्रिया करना चाहिये ॥ १३० ॥

आर्द्रैर्विरुक्षणंशुष्केस्त्रिगंधवातकफात्मके ।

कासेऽन्नपानंकफजेसपित्तेतिक्तमंयतम् ॥ १३१ ॥

कफ और वातकी खांसीमें यदि कफ सूखी हो तो स्निग्ध औषध, अन्नपानका प्रयोग करना चाहिये । यदि कफ गीली हो तो रुक्ष अन्नपानका प्रयोग करना हित है । एवं कफकी खांसीमें पित्तका अनुबंध होनेसे तिक्तसयुक्त अन्नपानका सेवन कराना चाहिये ॥ १३१ ॥

क्षतजकासकी चिकित्सा ।

कासमात्ययिकंमत्वाक्षतजंत्वरयाजयेत् ।

मधुरैर्जीवनीयैश्चवलमांसविवर्द्धनैः ॥ १३२ ॥

क्षतज खांसीको आत्ययिक समझकर मधुर जीवनीय और वलमांसविवर्द्धक द्रव्योंसे शीघ्र चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३२ ॥

पिप्पल्याद्यवलेह ।

पिप्पलीमधुकंपिष्टंकार्षिकंससितोपलम् । प्रास्थिकंगव्यमाजन्तु-

क्षीरमिक्षुरसस्तथा ॥ १३३ ॥ यवगोधूममृद्धीकाचूर्णमामलकीरसः।

तैलञ्चप्रसृतांशानितत्सर्वमृदुनाग्निना ॥ १३४ ॥ पचेल्लेहंघृतक्षौद्र-

युक्तःसक्षतकासनुत् । श्वासहृद्रोगकासेपुहितोवृद्धाल्परेतसे ॥ १३५ ॥

पीपल, मुलैठी और मिसरी यह एक एक कर्प, गौका दूध १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ और ईखका रस १ प्रस्थ, यव, गेहूं और दाखका कल्क तथा आँवलेका रस और तेल यह सब एक एक प्रमृति (दो दो पल) इन सबको मिलाकर मंद मंद अग्निसे अवलेह बनाये । इसको घृत और शहत मिला सेवन करनेसे क्षतज खांसी, श्वास, हृद्रोग, खांसी दूर होतीहै तथा वृद्ध मनुष्यों और अल्प वीर्यवालेके लिये परम हितकारी है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

क्षतकासाभिभूतानांघृत्तिःस्यात्पित्तकासिकी ।

क्षीरस्पर्षिर्मधुप्रात्यासंसंसेतुविशेषणम् ॥ १३६ ॥

क्षतज कासवाले रोगीको पित्तकी खांसीमें कहेहुए पथ्योंका सेवन करना चाहिये । तथा दूध, घृत और शहतका अधिक सेवन करना हितकारी है ॥ १३६ ॥

वातपित्तार्दितेऽभ्यङ्गोगात्रभेदेघृतैर्हितः ।

तैलैर्मारुतरोगघ्नैःपीड्यमानेचवायुना ॥ १३७ ॥

यदि क्षतज कासमें वातपित्तकी पीडा, अंगोंमें भेद होय तो वायुकी प्रधानता होनेसे वातनाशक तैलोंकी मालिश करनी चाहिये और पित्तकी प्रधानता होनेसे पित्तनाशक घृतोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३७ ॥

कायफल, वीरणवृण (कांस), भारंगी, नागरमोथा, धनियां, वच, हरड, सोंठ, पित्तपापडां, काकडांसिगी, देवदारु, इनसे पकाये जलको शीतलकर हींग और शहद मिला पीनेसे वातयुक्त कफकी खांसी, कण्ठरोग, मुखरोग, शूल, श्वास, हिचकी और ज्वर दूर होतेहैं ॥ ११० ॥ १११ ॥

पाठांशुण्ठीशटींमूर्वांगवाक्षींमुस्तपिप्पलीम् ।

पिष्ट्वाघर्मांभुनाहिङ्गुसैन्धवाभ्यांयुतांपिबेत् ॥ ११२ ॥

पाठा, सोंठ, कचूर, मूर्वा, इन्द्रायणकी जड़, नागरमोथा और पीपल इनको पीसकर हींग और सेंधा नमक मिला गरम जलके साथ पीनेसे कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ ११२ ॥

नागरातिविषामुस्तशृङ्गीकर्कटकस्यच ।

हरीतकींशटीश्वैवतेनैवविधिनापिबेत् ॥ ११३ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, काकडांसिगी, हरड, कचूर, इन सबके बारीक चूर्णको हींग और सेंधे नमकसे युक्त कर गरम जलके साथ पीनेसे कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ ११३ ॥

तैलभृष्टश्चपिप्पल्याःकल्काक्षंससितोपलम् ।

पिबेद्वाश्लेष्मकासघ्नंकुलत्थरससंयुतम् ॥ ११४ ॥

पीपलके कल्कको तैलमें भूनकर मिसरी मिला १ तोला भर खाकर ऊपरसे कुल्यीका रस पीवे तो कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ ११४ ॥

कासमर्दाश्वविट्भृङ्गराजोवार्त्ताकजारसाः ।

सक्षौद्राःकफकासघ्नाःसुरसस्यासितस्यच ॥ ११५ ॥

कसौंदीका रस, घोडेकी लीदका रस, भृंगराजका रस और बडी कटेलीके फलोंका रस अथवा सुरसा तुलसी या काली तुलसीके पत्रोंका रस शहद मिला पीनेसे कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ ११५ ॥

देवदारुशटीरालाकर्कटारुह्यादुरालभा । पिप्पलीनागरंमुस्तंपथ्या धात्रीसितोपलाः ॥ ११६ ॥ मधुतैलयुतावेतौलेहोवातानुगेकफे ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली ॥ ११७ ॥ पथ्यातामल-

कीधात्रीभद्रमुस्तानिपिप्पली । देवदार्वभयासुस्तंपिप्पलीविश्व-

भेषजम् ॥ ११८ ॥ विशालापिप्पलीमुस्तंत्रिवृताचेतिलेहयेत् । चतु-

रोमधुनालेहान्कफकासहरान्भिषक् ॥ ११९ ॥

देवदारु, कजूर, रासना, काकडासिंगी और जवासेका चूर्ण शहद और तेलमें मिला चाटे अथवा पीपल, सोंठ, नागरमोथा, हरड, आँवला और मिसरी इनका चूर्ण शहद और तेलमें मिला चाटे तो वातानुबंधी कफकी खांसी दूर होती है । अथवा १ पीपल, पीपलामूल, चित्रक और गजपीपल । २ हरड, भूमिआँवला, भद्रमोथा और पीपल । ३ देवदारु, हरड, नागरमोथा, पीपल और सोंठ । ४ इन्द्रायणकी जड़, पीपल, नागरमोथा और निशोथ । इन आधे २ श्लोकोंमें कहेहुए चार योगोंमेंसे किसी एक योगका चूर्ण वैद्य रोगीको शहद मिला चटावे तो कफकी खांसी दूर होती है ॥ ११६-११९ ॥

सौवर्चलाभयाधात्रीपिप्पलीक्षारनागरम् ।

चूर्णितंसर्पिषावातकफकासहरंपिवेत् ॥ १२० ॥

संचरनमक, हरड, आँवले, पीपल, जवासार, सोंठ इन सबके चूर्णको घीमें मिला पीवे तो वातयुक्त कफकी खांसी दूर होती है ॥ १२० ॥

दशमूलादिघृत ।

दशमूलाढकेप्रस्थंघृतस्याक्षसमेपचेत् । पुष्कराद्दशटीविल्वसुरसै-
व्योपहिङ्गुभिः ॥ १२१ ॥ पेयंपेयानुपानंतत्कासेवातकफात्मके ।

श्रासरोगेपुसर्वेपुकफवातात्मकेषु च ॥ १२२ ॥

दशमूलका फाय १ आढक, घृत १ प्रस्थ, पोहकरमूल, कजूर, विल्व, सुरसा, तुलसी, सोंठ, मिरच, पीपल और हींग यह सब एक एक कर्प लेवे । इन सबसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेयाको पीवे तो वातयुक्त कफकी खांसी, श्रास तथा सब प्रकारके कफ और वातात्मक रोग दूर होते हैं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

कंटकारिघृत ।

समूलफलपत्रायाःकण्टकार्यारिसाढके । घृतप्रस्थंबलाव्योपविड-
ङ्गशटिचित्रकैः ॥ १२३ ॥ सौवर्चलयवक्षारपिप्पलीमूलपौष्करैः ।

वृश्चीकवृहतीपथ्यायमानीदाडिमर्द्धिभिः ॥ १२४ ॥ द्राक्षापुनर्नवा-
चव्यदुरालभाम्लवेतसैः । शृङ्गीतामलकीभार्गीरास्त्रागोक्षुरकैः

पचेत् ॥ १२५ ॥ कल्कैस्तत्सर्वकासेपुहिकाश्वासेपुशस्यते । कण्ट-
कारिघृतंघृतत्कफव्याधिनिपूदनम् ॥ १२६ ॥

फटेलीके पंचाङ्गका स्वाय १ आढक, घी १ प्रस्थ, बला, सोंठ, मिचं, पीपल, वाय-
विडंग, कजूर, चित्रक, संचरनमक, जवासार, पीपल, पीपलामूल, पोहकरमूल,

वृश्चिकपत्रिका, बडी कटेली, हरड, अजवायन, अनारका छिलका, ऋद्धि, मुनका, पुनर्नवा, चव्य, जवामा, अम्लवेतस, काकडासिंगी, भूमिआमला, भारंगी, रासना और गोखरू इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । इस कल्कको उपरोक्त काथ और घी मिलाकर पकावे । घृत मात्र शेष रहनेपर सेवन करे तो यह कण्टकारि घृत सब प्रकारकी खांसी, हिचकी, श्वास और कफके रोगोंको दूर करताहै ॥ १२३-१२६ ॥

कुलत्थादिघृत ।

कुलत्थरसयुक्तवापञ्चकोलशृतंघृतम् ।

पाययेत्कफजेकासेहिकाश्वासेचशस्यते ॥ १२७ ॥

कुल्युतिके क्वाय और पंचकोलसे सिद्धकिया घृत कफकी खांसी और हिचकी दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १२७ ॥

कफनाशक धूम ।

धूमांस्तानेवदद्याच्चयेप्रोक्तावातकासिनाम् ।

कोशातकीफलान्मध्यंपिवेद्वासमनःशिलम् ॥ १२८ ॥

कफकी खांसीको दूर करनेके लिये जो धूम वातकी खांसीमें कहे हैं उनका प्रयोग करना चाहिये । अथवा कोशातकी (काली तोरी) के मध्यके गुहामें मनसिल मिला धूमपानविधिसे धूमपान करे ॥ १२८ ॥

कफजकासमें अन्यअनुबन्धोंके यत्न ।

तमकःकफकासेतुस्याच्चेत्पित्तानुबन्धजे ।

पित्तकासक्रियांतत्रयथावस्थंप्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

पित्तानुबन्धी कफकी खांसीमें यदि तमकश्वास होजाय तो पित्तकी खांसीमें कड़ी-दुई क्रिया अवस्थानुसार करना चाहिये ॥ १२९ ॥

वातेकफानुबन्धेतुकुर्यात्कफहरींक्रियाम् ।

पित्तानुबन्धयोर्वातकफयोःपित्तनाशिनीम् ॥ १३० ॥

कफ प्रबल वातकी खांसीमें कफको नष्ट करनेवाली क्रिया करना चाहिये। तथा वात कास और कफकासमें यदि पित्त प्रबल हो तो पित्तको हरण करनेवाली क्रिया करना चाहिये ॥ १३० ॥

आर्द्रैर्विरुक्षणंशुष्केस्त्रिगंधवातकफात्मके ।

कासेऽन्नपानंकफजेसपित्तेतिक्तसंयुतम् ॥ १३१ ॥

कफ और वातकी खांसीमें यदि कफ सूखी हो तो स्निग्ध औषध, अन्नपानका प्रयोग करना चाहिये । यदि कफ गीली हो तो रुक्ष अन्नपानका प्रयोग करना हित है । एवं कफकी खांसीमें पित्तका अनुबंध होनेसे तित्तरसयुक्त अन्नपानका सेवन कराना चाहिये ॥ १३१ ॥

क्षतजकासकी चिकित्सा ।

कासमात्ययिकंमत्वाक्षतजंत्वरयाजयेत् ।

मधुरैर्जीवनीयैश्चवलमांसविवर्द्धनैः ॥ १३२ ॥

क्षतज खांसीको आत्ययिक समझकर मधुर जीवनीय और वलमांसविवर्द्धक द्रव्योंसे शीघ्र चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३२ ॥

पिप्पल्याद्यवलेह ।

पिप्पलीमधुकंपिष्टंकार्षिकंससितोपलम् । प्रास्थिकंगव्यमाजन्तु-

क्षीरमिश्रुरसस्तथा ॥ १३३ ॥ यवगोधूममृद्धीकाचूर्णमामलकीरसः।

तैलञ्चप्रसृतांशानितत्सर्वमृदुनाग्निना ॥ १३४ ॥ पचेल्लेहंघृतक्षौद्र-

युक्तःसक्षतकासनुत् । श्वासहृद्रोगकासेपुहितोवृद्धात्परतसे ॥ १३५ ॥

पीपल, मुलैठी और मिसरी यह एक एक कर्प, गौका दूध १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ और ईखका रस १ प्रस्थ, यव, गेहूं और दाखका कल्क तथा आँवलेका रस और तेल यह सब एक एक प्रसृति (दो दो पल) इन सबको मिलाकर मंद मंद अग्निसे अवलेह बनाये । इसको घृत और शहत मिला सेवन करनेसे क्षतज खांसी, श्वास, हृद्रोग, खांसी दूर होता है तथा वृद्ध मनुष्यों और अल्प वीर्यवालेके लिये परम हितकारी है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

क्षतकासाभिभूतानांघृत्तिःस्यात्पित्तकासिकी ।

क्षीरसर्पिर्मधुप्रायासंसर्गेतुविशेषणम् ॥ १३६ ॥

क्षतज कासवाले रोगीको पित्तकी खांसीमें कहेद्वेष पथ्योंका सेवन करना चाहिये । तथा दूध, घृत और शहतका अधिक सेवन करना हितकारी है ॥ १३६ ॥

वातपित्तार्दितेऽभ्यङ्गोगात्रभेदेघृतैर्हितः ।

तैलैर्मारुतरोग्नैःपीड्यमानेचवायुना ॥ १३७ ॥

यदि क्षतज कासमें वातपित्तकी पीडा, अंगोंमें भेद होय तो वायुकी प्रधानता होनेसे वातनाशक तैलोंकी मालिश करनी चाहिये और पित्तकी प्रधानता होनेसे पित्तनाशक घृतोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३७ ॥

हृत्पाश्वात्तिषुपानंस्याज्जीवनीयस्यसर्पिपः । सदाहंकासिनोरक्तंष्ठी-
वतःसवलेऽनले ॥ १३८ ॥ मांसोचितेभ्यःकासिभ्योलावादीनांर-
साहिताः । तृष्णात्तानांपयश्छागंशरमूलादिभिःशृतम् ॥ १३९ ॥
रक्तेस्रोतोभ्यआस्याद्वाप्यागतेक्षीरजंघृतम् । नस्यंपानंयवागूर्वा
श्रान्तेक्षामेहतानले ॥ १४० ॥

यदि हृदय और पार्श्वमें पीडा होती हो तो जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध किया घृत पिलाना चाहिये । यदि खांसीमें दाह हो और कफके साथमें रक्त निकलता हो और रोगीकी जठराग्नि बलवान् हो तो मांस, सात्म्य और क्षीण खांसी रोगवालोंको लवा आदि पक्षियोंका मांसस पिलाना हितकारी है । क्षतज खांसीमें प्यासकी अधिकता हो तो शरमूलादि पंचमूलसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलाना चाहिये । यदि नासिका आदि द्वारोंसे अथवा मुखसे रुधिर आवे तो शरादि पंचमूलसे सिद्धकिये दूधका मक्खन पिलाने और नस्य देनेमें प्रयो करना चाहिये यदि रोगी कृश और श्रान्त (थकित) होगया हो और जठराग्नि मंद पडजाय तो उसको वृंहण और दीपनीय यवागू पिलाना चाहिये ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

स्तम्भायासेपुमहतींमात्रांवासर्पिपःपिवेत् ।

कुर्याद्वावातरोगघ्नंपित्तरक्ताविरोधियत् ॥ १४१ ॥

क्षतज खांसीमें देहका स्तम्भ होजाय और रोगी थकित होजाय तो उसको घृतकी उत्तम मात्रा पिलाना चाहिये । अथवा वार्तनाशक और रक्तपित्तसे अविरोधी क्रिया करना चाहिये ॥ १४१ ॥

धूमप्रयोग ।

निवृत्तेक्षतदोषेतुकफेवृद्धउरःक्षते ।

दाल्यतेकासिनोयस्यसधूमान्नापिवेदिमान् ॥ १४२ ॥

उरःक्षतमें क्षतज दोषोंके निवृत्ति होकर यदि कफ बहुत बटजाय और कफके वेगसे छाती फटासी जातीहो तो उसको यह नीचे लिखे धूमपान करने चाहिये ॥ १४२ ॥

द्वेमेदेमधुकद्वेचवलेतैःक्षौमलक्तकैः ।

वर्त्तितैर्धूममापीयजीवनीयघृतंपिवेत् ॥ १४३ ॥

मेदा, महामेदा, मुँलैठी, बला, नागबला, इन सबको चूर्ण कर अलसीके वस्त्रमें

लाखके रसके योगसे लेपटकर बत्ती बनावे । इस बत्तीका धूमपान विधिसे धूमपान करे । ऊपरसे जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध घृत पान करे ॥ १४३ ॥

मनःशिलापलाशाजगन्धात्वक्क्षीरिनागरैः ।

भावयित्वापिवेक्षौमंशर्करेशुगुडोदकम् ॥ १४४ ॥

मनसिल, ढाकके बीज, अजवायन, वंशलोचन, सांठ इनसबको लाखके रसकी भावना देकर रेशमी या अलसीके कपड़ेमें लेपटकर धूमपान करे । धूमपानके पश्चात् खांडका शरवत वा ईखका रस अथवा गुडका शरवत पीवे ॥ १४४ ॥

पिष्ट्वामनःशिलांतुल्यामार्द्रयावटशुंगया ।

ससर्पिष्कंपिवेद्धूमंतित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४५ ॥

मनसिल और गोलि बडके अंकुर दोनोंको बराबर लेकर पीस लेवे । इनको घृतमें मिलाकर धूमवत्ती बना धूमपान करे । धूमपानके अनन्तर तीतरके मांसरसके साथ भोजन करे ॥ १४५ ॥

भावितंजीवनीयैर्वाकुलिगाण्डरसायुतः ।

क्षौमंधूमंपिवेक्षीरंशृतत्रायोगुडैरनु ॥ १४६ ॥

अथवा जीवनीय औषधियोंके फायसे या कुलिगके अण्डोंके रससे रेशमके कपड़ेको अथवा अलसीके कपड़ेको मिंगोकर धूमवत्ती बनावे । इस बत्तीका धूमपान करनेके पश्चात् गर्भकिया दूध अथवा लोहेके गोलिको गर्भकर उससे बुझा दूध या मण्डू-रसे बुझा दूध पानकरे । तो उरःक्षत रोगीकी बढीहुई कफ दूर होकर हृदयमें शान्ति आती है ॥ १४६ ॥

क्षयजचिकित्सा ।

सम्पूर्णरूपंक्षयजंदुर्बलस्यविवर्जयेत् । नवोत्थितंवलवतःप्रत्या-

ख्यायाचरोत्क्रियाम् ॥ १४७ ॥ तस्यैवंहणमेवादौकुच्यर्पादग्नेश्ववर्द्ध-

नम् । बहुदोषायसस्त्रेहंमृदुदद्याद्विरेचनम् ॥ १४८ ॥

जो क्षयज सांसीवाला रोगी क्षयके संपूर्ण लक्षणोंयुक्त हो और दुर्बल हो तो उसको वैद्य असाध्य जानकर त्यागदेवे । यदि रोगी बलवान् हो और रोग नवीन उत्पन्न हुआ हो तो उसको तुम्हारा रोग असाध्य है यह कहकर चिकित्सा करना चाहिये । उसको प्रथमही बल और मांसके बढ़ानेवाले तथा अग्निको चेतन्य करनेवाले योगोंसे साधन करे । यदि वह बड़ेदुष्ट दोषोंसे युक्त हो तो पहिले उसको स्नेहन करके मृदु विरेचन देवे ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

शम्पाकेनत्रिवृतंयामृद्धीकारसयुक्तया । तिल्वकस्यकपायेणविदारी-
स्वरसेनच ॥ १४९ ॥ सर्पिःसिद्धंपिवेद्युत्तयाक्षीणदेहोविशोधनम् ।
हितंतद्देहवलघोरस्यसंरक्षणंमतम् ॥ १५० ॥

अमलतास और निशोयका कल्क, द्राक्षाका रस, पठानी लोषका क्वाथ, विदारी-
कन्दका स्वरस इन सबसे सिद्ध किया घृत युक्तिपूर्वक क्षीणदेहवालोंको शोधन
करनेके लिये पिलाना चाहिये । यह घृत रोगीके देह और बलकी रक्षा करताहुआ
मृदु विरेचन करनेवाला है । इसलिये क्षयरोगियोंको हितकारक है ॥ १४९ ॥ १५० ॥

पित्तकफेचसंक्षीणेपरिक्षीणेपुधातुषु ।

घृतंकर्कटकीक्षीरद्विवलासाधितंपिवेत् ॥ १५१ ॥

पित्त और कफ क्षीण हो तथा अन्य सब धातुमें भी क्षीण हों तो काकडासिंगी,
बला, नागबला इनका कल्क बनाकर इनसे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना दूध
मिलाकर घृत सिद्ध करके इस घृतका प्रयोग करे ॥ १५१ ॥

विदारीभिःकदम्बैर्वातालशस्यैस्तथाशृतम् ।

घृतंपयश्चमूत्रस्यवैवर्ण्येकृच्छ्रनिर्गमे ॥ १५२ ॥

विदारीकंदका कल्क अथवा कदम्बका कल्क या ताडवृक्षके अंकुरोंका कल्क
कांके सिद्ध किया घृत अथवा दूध पीनेसे क्षीणरोगीके मूत्रकी विवर्णता और मूत्रका
कृच्छ्रतासे आना यह दूर होतैहै ॥ १५२ ॥

शूनेसद्येदनेमेद्रेपायौसश्रोणिवंक्षणे ।

घृतमण्डेनमधुनाऽनुवास्योमिश्रकेणवा ॥ १५३ ॥

क्षयरोगीको यदि लिंगेन्द्रिय, गुदा, श्रोणी और वंक्षणमें सूजन हो अथवा पीडा
हो तो उसको शहद मिला घृतमण्डके साथ अनुवासन वस्ति करे । अथवा घृत और
तेल इन दोनोंमें शहद मिला अनुवासन वस्ति करे ॥ १५३ ॥

जाङ्गलैःप्रतिभुक्तस्यवर्त्तकाद्याविलेशयाः । कमशःप्रसहाश्चैवप्रयो-

ज्याःपिशिताशिनः ॥ १५४ ॥ औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्चस्तोतोभ्य-

श्च्यावयन्तिते । कफैःशुद्धैश्चतैःपुष्टिकुर्यात्सम्यग्बहन्नसः ॥ १५५ ॥

फिर क्रमपूर्वक जांगल जीवोंका मांसरस अथवा घटेर और विलेशय आदिकोंका
मांसरस भोजनके साथ सेवन करावेअथवा मांससात्म्य मनुष्योंको क्रमपूर्वक प्रसहजी-
नोंका मांसरस सेवन करावे । क्योंकि यह रस उष्णतासे और प्रमाथीभावे सौर्तिके

मागोंसे कफको च्यवन करतेहैं । उससे कफके शुद्ध होनेपर शरीरमें उत्तम रीतिसे रसका संचार करतेहुए शरीरको पुष्ट करतेहैं ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

चविकादिघृत ।

चविकात्रिफलाभाङ्गीदशमूलैःसचित्रकैः । कुलत्थपिप्पलीमूलपाठा-
कोलयवैर्जले ॥ १५६ ॥ शृतैर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीशाटिपौष्करैः ।
कल्कैःकर्कटशृङ्ग्याचसमैःसर्पिर्विपाचयेत् ॥ १५७ ॥ सिद्धेऽस्मिञ्चू-
र्णितौक्षारौद्रौपञ्चलवणानिच । दत्त्वायुक्त्यापिवेन्मात्रांक्षयकास-
निपीडितः ॥ १५८ ॥

चव्य, हरड, बहेडे, आंवले भारंगी, दशमूलकी दश औषधियें, चित्रक, कुलथी, पीपलामूल, पाटला, कोल (उन्नाव), और यव इनका क्वाथ ८ सेर, सोंठ, जवासा, पीपल, कचूर, पोहकरमूल और काकडासिंगी इन सबका कल्क आधा सेर, घृत दो सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । सिद्ध होनेपर इसमें सजीखार, जवाखार और पांचों लवण इन सबका चूर्ण आठ तोला मिलावे । इस घृतको युक्तिपूर्वक सेवन करनेसे क्षयजनित खांसी दूर होतीहै ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

गुडूच्यादिघृत ।

गुडूचीपिप्पलीमूर्वाहारिद्रांश्रेयसीवचाम् । निदिग्धिकांकासमर्द
पाठांचित्रकनागरम् ॥ १५९ ॥ जलेचतुर्गुणेषक्त्वापादशेषेणतत्सम-
म् । सिद्धंसर्पिःपिवेद्गुल्मश्वासातिक्षयकासनुत् ॥ १६० ॥

गिलोय, त्रिफला, मूर्वा, इल्दी, गजपीपल, वच, कटेली, कसौंदी, पाटला, चित्र-
ककी छाल और सोंठ इन सबको चौगुने जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस क्वाथसे सिद्ध किया घृत गुल्म, श्वास और अत्यंत क्षयकी खांसीको दूर करताहै ॥ १५९ ॥ १६० ॥

कासमर्दादिघृत ।

कासमर्दाभयामुस्तपाठाकटुफलनागरैः । पिप्पल्याकटुकाद्राक्षा-
काशमर्यैःसुरसेनच ॥ १६१ ॥ अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थंक्षीरद्राक्षारसा-
ढके । पचेच्छोपज्वरह्नीहसर्वकासहरंशिवम् ॥ १६२ ॥

कसौंदी, हरड, नागरमोया, पाठा, कायकूट, सोंठ, पीपल, कुटकी, मुनका, कुंभेर और तुलसी इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । घृत १ मस्य, दूध

१ आडक, द्राक्षाका रस १ आडक, इन सबको मिला घृत सिद्ध करे । इस पवित्र घृतका पान करनेसे शोष, ज्वर, प्लीहगोग और सब प्रकारकी खांसी दूर होती है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

अन्य योग ।

धात्रीफलैःक्षीरसिद्धैःसर्पिर्वाप्यवचूर्णितम् । द्विगुणेदाडिमरसेविप-
क्वंयोषसंयुतम् ॥ १६३ ॥ पिवेदुपरिभक्तस्ययवक्षारघतंनरः । पिप्प-
लीगुडसिद्धंवाच्छागक्षीरयुतंघृतम् ॥ १६४ ॥ एतान्यत्रिविद्वृद्धयर्थं
सर्पापिक्षयकासिनाम् । स्युदोषबन्धकोष्ठोरःस्रोतसाञ्चविशुद्धये १६५ ॥

आँवलोंके फलोंको घीमें सिद्धकर उन आँवलोंकी गुठलियें निकाल कलक बनाकर घृतमें घोलकर पान करे । अथवा त्रिकुटेका चूर्ण घृतसे चौथा भाग, अनारकारस घृतसे दोगुना घृतमें मिला पानकरे । अथवा भातका भोजन कर ऊपरसे जवाखार मिला घृत पीवे । या पीपल और गुड तथा बकरीका दूध मिलाकर सिद्ध किया घृत पानकरे । यह सब घृत क्षयजनित खांसीवाले रोगियोंकी अग्निको बढ़ातेहैं और दोषोंसे विवद्धकोष्ठ तथा छातीके स्रोतोंको शुद्ध करतेहैं ॥ १६३ ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

हरीतकीअवलेह ।

हरीतकीर्यवकाथद्वयादकेविंशतिपचेत् । स्विन्नामृदित्वातास्तस्मि-
न्पुराणंगुडपट्पलम् ॥ १६६ ॥ दद्यान्मनःशिलाकर्पकपर्द्धिश्चरसा-
जनात् । कुडवाद्धश्चपिप्पल्याःसलेहःश्वासकासनुत् ॥ १६७ ॥

यवोंका क्वाथ २ आडक लेकर उसमें उत्तम निर्दोष बड़ी बीस २० हरडोंको पकावे । जब पकते २ हरडें नरम पड़जायें तो, हरडोंको निकालकर उनकी गुठलियोंको दूरकर हरडोंको पीसलेवे । उनमें पुराना गुड ६ पल मिलाकर उसी यवोंके क्वाथसे अवलेह पकावे । जब गाढ़ा होजाय तो १ तोला शुद्ध मनसिल १ तोला, रसांत, पीपलका चूर्ण ८ तोला यह सब मिलाकर अवलेह (चटनी) बनावे । इसके सेवनसे श्वास और खांसी दूर होतीहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

अन्य योग ।

श्वाविधःसूचयोदग्धाःसघृतक्षौद्रशर्कराः ।

श्वासकासहरावर्हिपादौवाक्षौद्रसर्पिषा ॥ १६८ ॥

सेहके कांटोंको जलाकर घी, और शहद और सांड मिलाकर चाटे । अथवा मोरके पैर जलाकर उसकी भस्म शहद मिलाकर चाटनेसे श्वास और खांसी दूर होतीहै ॥ १६८ ॥

एरण्डपत्रक्षारवाव्योपतैलगुडान्वितम् । लिह्यादेतेनविधिनासुर-
सैरण्डपत्रजम् ॥ १६९ ॥ द्राक्षापन्नकवार्त्ताकपिप्पलीः क्षौद्रस-
र्पिषा । लिह्यात्क्षूपणचूर्णवापुराणं गुडसर्पिषा ॥ १७० ॥ चित्रकं
त्रिफलाजाजीकर्कटाख्यंकटुत्रिकम् । द्राक्षाञ्चक्षौद्रसर्पिभ्यां लिह्या-
दद्याद्गुडेन वां ॥ १७१ ॥

एरण्डके पत्तोंका क्षार अथवा त्रिकुटा तेल और गुडमें मिला विधिवत् चाटे । या तुलसी और एरण्डके पत्रोंकी भस्म तेल और गुड मिला चाटे अथवा मुनक्का, पद्मकाष्ठ, बडी कटेलीके फल और पीपलके चूर्णको शहद और घृत मिलाकर चाटे । अथवा सोंठ, मिर्चे, पीपलके चूर्णको पुराने गुड और घृतमें मिला चाटे । या चित्रक त्रिफला, जीरा, काकडासिंगी त्रिकुटा, और द्राक्षा इन सबको बारीक पीस शहद और घृतके साथ सेवन करे अथवा गुडके साथ सेवन करे तो सब प्रकारकी खांती दूर हो ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥

पद्मकाष्ठबलेह ।

पद्मकं त्रिफलांव्योषं विडङ्गसुरदारु च । वलारास्त्राञ्चतुल्यानिसूक्ष्मं
चूर्णानि कारयेत् ॥ १७२ ॥ सर्वैरेभिः समं चूर्णपृथक्क्षौद्रघृतंसि-
ताम् । विमथ्यलेहयेलेहंसर्वकासहृंशिवम् ॥ १७३ ॥

पद्माख, हरड, बडेडे, आमले, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, देवदारु, बला, रासना इन सबको बराबर लेकर बारीक चूर्ण बनावे । इस चूर्णको शहद, घृत और मिसरीमें मिला चाटे तो यह अवलेह सब प्रकारकी खांसियोंको दूर करनेवाला और कल्याणप्रद है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

जीवन्त्याद्यबलेह ।

जीवन्तीमधुकंपाठांत्वक्क्षीरींत्रिफलांशटीम् । मुस्तैलेपद्मकंद्राक्षां
द्वेवृहत्स्यौवितुन्नकम् ॥ १७४ ॥ शारिवांपौष्करंमूलंकर्कटाख्यंरसाज-
नम् ॥ पुनर्नवालोहरजस्त्रायमाणायमानिकाम् ॥ १७५ ॥ भाङ्गीतामल-
कीमृद्धिंविडङ्गधन्वयासकम् । क्षारचित्रकचव्याम्लवेतसव्योपदारु
च ॥ १७६ ॥ चूर्णाकृत्यसमांशानिलेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा । चूर्णार्त्पा-
णितलंपञ्चकासानेपव्यपोहति ॥ १७७ ॥

जीवन्ती, मुलैठी, पाटला, वंशलोचन, हरड, चंहेडे, अँवले, कचूर, नागरमोथा, इलायची, पन्नाख, द्राक्षा, कटेली, बडी कटेली, धनियां, सारिवा, पोहकरमूल, काकडासिंगी, रसीत, पुनर्नवा, लोहभस्म, त्रायमाण, अजवायन, भारंगी, भूमिअँवला, ऋद्धि, वायविडंग, धनियां, जवाखार, चित्रक, चव्य, अमलप्लुतं, त्रिकुटा, देवदारु यह सब बराबर लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर १ तोला नित्य चाटनेसे पांच प्रकारकी खांसी दूर होतीहै ॥ १७४॥ १७५॥ १७६॥ १७७ ॥

लिष्टान्मारिचचूर्णवासघृतक्षौद्रशर्करम् । सर्वकासहरंश्रेष्ठंलेहंकासा-
दितोनरः ॥ १७८ ॥ बदरीपत्रकल्कंघृतभृष्टंससैन्धवम् । स्वरभे-
देचकासेचलेहमेतत्प्रयोजयेत् ॥ १७९ ॥

मिर्चका चूर्ण घृत, शहद और मिसरी मिलाकर चाटे तो सब प्रकारकी खांसी दूर हो अथवा बेगीके पत्तोंका कल्क संधानमक युक्तकर घृतमें भूनलेवे । इसको चाटनेसे स्वरभेद और रांसी दूर होतीहै ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

पत्रकल्कंघृतैर्भृष्टंतिन्वकस्थसशर्करम् ।

पेषाचोत्कारिकाच्छर्दिस्तृद्कासामातिसारनुत् ॥ १८० ॥

पठानी लोधके पत्तोंका कल्क मिमरी मिला घृतमें भूनलेवे । इसको पीनेसे अथवा इसका हलुआसा घना सेवन करनेसे वमन, वृषा, खांसी और आमातिसार नष्ट होतीहै ॥ १८० ॥

यथागृत्सर्पवादि ।

वातत्रौपधनिष्क्रांथक्षीरंयूपान्नसामपि ।

वैष्णिकप्रतुदादीनांदापयेत्क्षयकासिने ॥ १८४ ॥

वातनाशक औषधियोंके क्वाथ, दूध, यूप, अन्न, रस तथा वैष्णिक और प्रतुद
पक्षियोंके तथा विलेश्य जीवोंके मांसरसोंका सेवन करना क्षयकी खांसीमें
हितकारी है ॥ १८४ ॥

क्षतकासेचयेधूमाःसानुपानानिदर्शिताः । क्षयकासेऽपितानेवय-
थावस्थंप्रयोजयेत् ॥ १८५ ॥ दीपनंवृंहणश्चैवस्रोतसाश्चविशोध-
नम् । व्यत्यासात्क्षयकासिभ्योवलयंसर्वमितंहितम् ॥ १८६ ॥

क्षतज खांसीमें कहेहुए सब प्रकारके धूम और अनुपान क्षयजनित खांसीमें
अवस्था आदि विचारकर प्रयुक्त करने चाहिये तथा दीपन, वृंहण, छिद्रोंको शुद्ध
करनेवाली और बलकारक क्षयज दोषोंको शान्त करनेवाली औषधियें क्षयकी खांसीमें
हितकारी होतीहैं ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

सन्निपातभवोऽप्येपक्षयकासःसुदारुणः ।

सन्निपातहितं तस्मात्सदाकार्य्यभिपरिजितम् ॥ १८७ ॥

यह दारुण क्षयज खांसी सन्निपातसे उत्पन्न होतीहै इसलिये वैद्यको सब प्रकार
सन्निपातनाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥ १८७ ॥

दोपानुबलयोगाच्चहरेद्रोगवलावलम् ।

कासेप्त्रेपुगरीयांसंजानीयादुत्तरोत्तरम् ॥ १८८ ॥

दोष और दोषोंके अनुबलके योगसे ही रोगमें बलावृत्त होताहै । खांसीमें दोषोंका
बलावल उत्तरोत्तर बलवान् होता जाताहै । ऐसा विचारकर वैद्य क्रमपूर्वक दोषोंका
श्रण करे ॥ १८८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

भोज्यंपानानिसर्पांपिलेहाःपाचनकानिच । क्षीरंसर्पिर्गुडाधूमाः

कासभैषज्यसंग्रहः ॥ १८९ ॥ संस्थानिमित्तरूपाणिसाध्यसाध्यत्व-

मेवच । कासानांभेपजंप्रोक्तं गरीयस्त्वश्चकासिनः ॥ १९० ॥

इतिश्री चरक० चिकि० कासचिकित्सितं नामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस कासचिकित्साध्यायमें खांसीनाले

रोगियोंके लिये भोज्य, पान, घृत, अवलेह, पाचन द्रव्य, दूध, सर्पिं, गुड, धूमं, खांसीकी औषधियें, खांसीकी संख्या, हेतु, लक्षण, साध्यासाध्यता और खांसियोंकी चिकित्सा तथा खांसियोंकी उत्तरोत्तर गुरुता यह सब वर्णन किया है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

इति श्रीच० चिकित्सास्थाने सं० भा० टी० कासचिकित्सितं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथातश्छर्दिचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम छर्दिचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

यशस्विनं ब्रह्मतपोद्युतिभ्यां ज्वलन्तमग्न्यर्कसमप्रभावम् । पुनर्वसुं भूतहितेनिविष्टं प्रच्छशिष्योऽत्रिजमश्वेशः ॥ १ ॥ याश्छर्दयः पञ्चपुरात्वयोक्तारोगाधिकारेभिप्रजां वरिष्ठ । तासांचिकित्सांसनिदानलिङ्गां यथावदाचक्ष्वनृणां हितार्थम् ॥ २ ॥

यशस्वी, ब्रह्मज्ञान और तपोबलकी कांतिसे अधिके समान तेजस्वी तथा सूर्यके समान प्रकाशयुक्त संपूर्ण प्राणियोंके हित करनेवाले महर्षि आत्रेयजीसे उनके शिष्य अप्रिवेश पूछनेलगे कि हे वैद्योंमें श्रेष्ठ जो आपने पहिले सूत्रस्थानमें रोगसंग्रहाध्याय (अष्टोदरीय) में छर्दियोंका कथन कियाहै अब कृपाकरके उनकी चिकित्सा, निदान और लक्षणोंको मनुष्योंके हितके लिये यथावत् कहिये ॥ १ ॥ २ ॥

तदग्निवेशस्य वचोनिशम्यप्रीतोभिपक्वश्रेष्ठ इदं जगाद । याश्छर्दयः पञ्चपुरामयोक्तास्ताविस्तरेण नृवतो निबोध ॥ ३ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके वचनको सुनकर प्रसन्न हुए वैद्यशिरोमणि आत्रेयजी कहने लगे कि हमने पहिले जो पांच प्रकारकी छर्दियोंका कथन कियाहै अब उसको विस्तारपूर्वक श्रवण करो ॥ ३ ॥

वमनके भेद ।

दोषैः पृथक्त्रिप्रभवाश्चतस्रो द्विष्टार्थयोगादपि पञ्चमी स्यात् ।

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे छर्दि चार प्रकारकी होतीहै तथा पांचवर्षी द्वैष्टार्थ अर्थात् मनको विगाडनेवाले दुर्गन्ध आदिकोंके योगसे होतीहै ।

वमनकेपुर्वरूप ।

तासांहृदुल्लेशकफप्रसेकोद्वेषोऽग्नेचैवंहिपूर्वरूपम् ॥ ४ ॥

हृदयका उत्कलेश (जी मचलाकर छर्दी होनेके लिये ऊपरको आना), मुखसे कफ का गिरना या पानी भगकर आना और अन्नसे द्वेष होना यह वमनके पुर्वरूप हैं ॥४॥

छर्दिके हेतु, संप्राप्ति ।

व्यायामतीक्ष्णौषधशोकरोगभयोपवासाद्यतिकर्षितस्य । कुष्ठो-

महास्रोतसिमातारिश्वाद्योपान्समुत्किञ्चयतदूर्द्धमस्यन् ॥ ५ ॥

आमाशयोद्रेककृताश्रमर्मप्रपीडयञ्छर्दिमुदीरयेच्च ॥ ६ ॥

व्यायाम, तीक्ष्ण औषध, शोक, रोग, भय और उपवास आदि हेतुओंसे अति-कृश हुए मनुष्योंके महास्रोत (मुखसे गुदा तक आहार आदि जानेवाली मोटी धंतडी) में वायु कुपित होकर दोषोंको उत्कलेशित कर ऊपरको उठा मर्मस्थानको पीडन करताहुआ आमाशयसे उद्रेक करतीहुई वातजनित छर्दिको उत्पन्न करताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

वातजछर्दिके लक्षण ।

हृत्पाश्वर्षपीडामुखशोपमूर्च्छनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः । उद्गारशब्द-

प्रवलंसफेनविच्छिन्नकृष्णान्तनुकंकपायम् । कृच्छ्रेणचाल्पमहताच

वेगेनात्तोऽनिलाच्छर्दयतीहदुःखम् ॥ ७ ॥

हृदयमें पीडा, पार्श्वशूल, मुखका सूखना, नाभिके ऊपरकी ओर पीडा, खांसी, स्वरभेद, तोद, उचकायी आतेहुए प्रवल शब्दका होना अथवा प्रवल शब्दवाली डकार धाना और ज्ञागदार, फटीहुई, काले वर्णकी, थोडी कसैली छर्दि व्यर्थत कष्टके साथ आवे तथा छर्दिके महावेगसे रोगी दुःखिन हो यह वातजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

पित्तजवमनके हेतु और संप्राप्ति ।

अजीर्णकट्फलविदाह्यशीतेरामाशयेपित्तमुदीर्णवेगम् । रसायनी-

भिविसृतंप्रपीडयममूर्द्धमागम्यवमिकरोति ॥ ८ ॥

पित्तजनित अजीर्णमें तथा कटु, अमृत, विदाही आंग उष्ण पदार्थोंके अति सेवनमें, आमाशयमें पित्त घटकर और उदीर्ण होकर अपने वेगमें रसाही छिट्ठोंमें विस्तागको प्राप्त होतीहुई हृदयको पीडनकर ऊपरको आकर वमनको उत्पन्न करताहै ॥ ८ ॥

पित्तज छर्दिके लक्षण ।

मूर्च्छापिपासामुखशोपमूर्द्धतात्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्त्तः । पित्तभृ-
शोष्णंहरितंसतिक्तंधूम्रश्चपित्तेनवमेत्सदाहम् ॥ ९ ॥

मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक और दोनों नेत्रोंका तपायमान होना, नेत्रोंके आगे अंधकार प्रतीत होना, वमनका वर्ण पीला, हरा होना तथा अत्यंत गरम, तिक्त, धूम्रवर्ण और दाहयुक्त वमन होना यह पित्तजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

कफजछर्दिके हेतु, संप्राप्ति ।

स्निग्धातिगुर्वामविदाहिभोज्यैःस्वापादिभिश्चैवकफोऽतिवृद्धः । उरः-
शिरोमर्मरसायनीश्चसर्वाःसनावृत्यवमिं करोति ॥ १० ॥

चिकने, भारी, अविदाही भोजनोंका अत्यंत सेवन करनेसे और दिनमें सोने आदि कारणोंसे अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ छाती सिर, हृदय और रसवाही-छिद्रोंमें फैलकर वमनको उत्पन्न करताहै ॥ १० ॥

कफजछर्दिके लक्षण ।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोपनिद्रारुचिगौरवार्त्तः । स्निग्ध-
घनंस्वादुकफंविशुद्धंसलामहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ११ ॥

तन्द्रा, मुखमें मधुरता, मुखसे कफका गिरना, विना भोजन किये भी वृत्ति प्रतीत होना, निद्रा, अरुचि और शरीरमें भारीपन होना तथा छर्दि चिकनी, गाड़ी, मीठी, कफयुक्त और सफेद वर्णकी होना तथा वमनके समय रोमहर्ष और अल्प पीडा होना यह कफजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

सान्निपातिक वमनके हेतु ।

समश्नतःसर्वरसात्प्रसक्तमामप्रदोपत्तुविपर्ययैश्च । सर्वेप्रकोपंयुग-
पत्प्रपन्नाश्छर्दित्रिदोपांजनयन्तिदोषाः ॥ १२ ॥

सब प्रकारके रसोंका अत्यंत सेवन करनेसे, बड़ेदुष्ट आमदोषके होनेसे, ऋतु-
ओंकी विपरीततासे एकवार ही वातादि तीनों दोष कुपित होकर छर्दिको उत्पन्न करते हैं ॥ १२ ॥

सन्निपातिकी छर्दिके लक्षण ।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रवलाप्रसक्तम् । छर्दिस्त्रि-
दोषाह्वणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतांनृणां स्यात् ॥ १३ ॥

शूल, अविपाक. अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह, इन सबकी प्रवलता होना

तथा प्रचल वमनका होना और वह वमन तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त नमकीन, खट्टी, नीलवर्ण, सान्द्र, उष्ण, रक्तसहित अथवा रक्तवर्णकी हो यह सान्निपातिक छर्दिके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

प्राणनाशक छर्दिके लक्षण ।

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानिवायुःस्रोतांसिसंरुध्ययदोद्धमेति । उत्सन्न-
दोषस्यतदाचितंतंदोषंसमुद्धूयनरस्यकोष्ठात् ॥ १४ ॥ विण्मूत्रयो-
स्तत्समवर्णगन्धंतृट्श्वासहिक्कार्तियुतंप्रसक्तम् । प्रच्छर्दयेद्दुष्टमि-
हातिवेगाद्गर्घादितश्चाशुविनाशमेति ॥ १५ ॥

त्रिदोषमिश्रित वायु-विष्टा, स्वेद, मूत्र और जलवाही स्रोतोंको रोककर जब ऊपरको गमन करतीहै तथा उत्पन्न हुए कोष्ठाश्रित संचित दोषोंको कोष्ठसे उठाकर निकालतीहै । तब वमनकी गंध और वर्ण विष्टा और मूत्रके समान होतीहै । रोगी श्वास, प्यास, हिचकी, शूलसे व्याकुल होताहै । रोगी इस दुष्ट वमनके वेगसे व्याकुल और भयार्त्त हो । इन लक्षणोंवाली छर्दि मनुष्योंके प्राणको शीघ्र नष्ट करदेतीहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

द्विप्रार्थसंयोगज छर्दि ।

द्विष्टप्रतीपाशुचिपूत्यमेध्यवीभत्सगन्धाशनदर्शनैश्च । यच्छर्दयेत्तस-
मनामनोर्ध्वेद्विप्रार्थसंयोगभवासतासा ॥ १६ ॥

जिन पदार्थोंसे ढेप या ग्लानि हो तथा अपवित्र, दुर्गन्धित, अमेध्य और वीभत्स गंधवाले पदार्थ हों उनके भोजन करनेसे अथवा गंध लेनेसे या देखनेसे तथा अन्य जो मनके विगाडनेवाले पदार्थ हैं उनके संयोगसे जो मनमें घबराहट होकर छर्दि होजा-
तीहै उसको द्विप्रार्थसंयोगजनित छर्दि कहतेहैं ॥ १६ ॥

छर्दिकी साध्यासाध्यता ।

क्षीणस्यचाछर्दिरतिप्रवृद्धासोपद्रवाशोणितपूययुक्ता । सचन्द्रिकं
तांप्रवदन्त्यसाध्यांसाध्यांचिकित्सेदनुपद्रवाश्च ॥ १७ ॥

जो छर्दि क्षीण मनुष्यको अत्यंत वेग और उपद्रवोंसे युक्त हो अथवा रक्त, राध और मोरके पंखोंकीसी चमकयुक्त हो वह असाध्य जानना । जो छर्दि उपद्रवोंसे रहित हो और साध्य हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

छर्दिकी चिकित्सा ।

आमाशयोत्क्लेशभवाहिसर्वादिच्छर्योमतालंधनमेवतस्मात् । प्राक्का-
रयेन्मारुतजांविमुच्यसंशोधनंवाकफपित्तहारि ॥ १८ ॥

सब प्रकारकी छर्दिमें आमाशयमें उत्केश होनेसे ही उत्पन्न होतीहैं इसलिये छर्दि रोगमें प्रथम लंघन कराना चाहिये । लंघन करानेके अनन्तर कफ और पित्तनाशक वमन, विरेचन करावे । परन्तु वातजनित छर्दिमें लंघन और शोधन कराना उचित नहीं है किसीका मत है कि वातज छर्दिमें यदि वैद्य उचित समझे तो लंघन करावे पर वमन, विरेचन न करावे ॥ १८ ॥

चूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयानांहृद्यानिवायानिविरेचनानि । मद्यैः
पयोभिश्चयुतानियुक्त्यानयन्त्यधोदोपमुदीर्णमूर्द्धम् ॥ १९ ॥

पित्त तथा कफकी छर्दिमें हरडोंका चूर्ण शहदमें मिलाकर चाटे तथा अन्य हृद्य विरेचन आदि करावे । अथवा युक्तिपूर्वक मद्य या दूधके योगसे शोधन द्रव्योंका उपयोग कर ऊपरके ऊठेहुए दोषोंको वमन द्वारा निकाल दवे और नीचेके दोषोंका विरेचन द्वारा शोधन करे ॥ १९ ॥

वह्नीफलाद्यैर्वमनंपिबेद्वायोदुर्वलस्तंशमनैश्चिकित्सेत् । रसैर्मनो-
ज्ञैर्लघुभिर्विशुष्कैर्भक्ष्यैःसभोज्यैर्विविधैश्चपानैः ॥ २० ॥

अथवा कडवी तोरई आदि फलोंको पीकर वमन करे यदि रोगी दुर्वल हो तो हल्के म्रिय लगनेवाले सूखे अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पान और संशमन औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ २० ॥

वातजछर्दिकी चिकित्सा ।

सुसंस्कृतास्तित्तिरिर्वर्हिंलावरसाव्यपोहन्त्यनिलप्रवृत्ताम् । छर्दि -
तथाकोलकुलत्थधान्यविल्वादिमूलाम्लयवैश्चयूपः ॥ २१ ॥

वातसे उत्पन्न हुई छर्दिमें उत्तम रीतिसे संस्कार कियेहुए तीतर, मोर और लवाके मांत्तरोंको पिलावे । तथा वेर, कुल्थी, धनियां और विल्व आदि पंचमूल तथा यवोंसे सिद्ध कियाहुआ स्निग्ध और अम्ल यूप सेवन करावे ॥ २१ ॥

वातात्मकेहृद्दकासयुक्तोनरः पिबेत्सैन्धववदूतंतु । सिद्धंतथा
धान्यकनागराभ्यांदघ्नाचतोयेनचदाडिमस्य ॥ २२ ॥ व्योपेणयुक्तां
लवणैस्त्रिभिश्चघृतस्यमात्रामथवाविदध्यात् । स्निग्धानिहृद्यानि-
चभोजनानिरसैःसयूपैर्दाडिमांस्त्रैः ॥ २३ ॥

यदि वायुकी छर्दिमें हृदय फडकता हो और खांसी भी हो तो वह मनुष्य घृतमें संधानमक मिला सेवन करे । अथवा धनियां, सोंठ, इन दोनोंका चूर्ण बनाकर दही और घृतके साथ अथवा दाडिमके रसके साथ पिलावे या त्रिफला, संधानमक,

संचर नमक, विडनमक, इनसे सिद्ध किया घृत विधिवत् पानकरे । और चिकने तथा हृद्य भोजन मांसरसों और दही तथा दाडिमके रससे अम्ल किये यूषोंके साथ सेवन करावे ॥ २२ ॥ २३ ॥

पित्तकी छर्दिंकी चिकित्सा ।

पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थद्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात् । कफाशयस्थन्त्वतिमात्रवृद्धंपित्तंहरेत्स्वादुभिरूर्द्धमेव ॥ २४ ॥

पित्तकी छर्दिमें पित्तके वेगको अनुलोमन करनेके लिये द्राक्षाका रस, विदारी कंदका रस या ईखका रस निशोथके चूर्णके साथ पिलाकर विरेचन करावे । यदि पित्त कफाशयमें बढाहुआ हो तो मयुर द्रव्योंसे वमन करा, निकाल देना चाहिये ॥ २४ ॥

शुद्धायकालेमधुशर्कराभ्यांलाजैश्चमन्थंयदिवापिपेयाम् । प्रदापयेन्मुद्गरसेनवापिशाल्योदनंजाङ्गलजैरसैर्वा ॥ २५ ॥

जब रोगी वमन, विरेचन द्वारा शुद्ध होलेवे तो उसको शहद, मिसरी मिलाकर लाजामंथ पिलावे । अथवा पेया पिठावे या मूंगके यूपके साथ अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ शालिचावलोंका भात खिलावे ॥ २५ ॥

सितोपलामाक्षिकपिप्पलीभिःकुल्मांपलाजायवशक्तुगृञ्जान् । खर्जूरमांसान्यथनारिकेलंद्राक्षामथोवावदराणिलिह्यात् ॥ २६ ॥

अथवा कुल्माप, लाजा या यशोंके सत्तमें गाजर और पीपलका चूर्ण मिलाकर मिसरी शहतके साथ सेवन करावे । अथवा खजूका छिलका अथवा नारियल और द्राक्षा तथा बेरकी त्वचा इन सबको बारीक पीस मिसरी और शहद मिला चटावे ॥ २६ ॥

स्रोतोजलाजोत्पलकोलमज्जचूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयाञ्च । कोलास्थिमज्जाञ्जनमक्षिकाविट्पलाजासितामागधिकाकणावा ॥ २७ ॥

स्रोतोज (रसौत या स्रोतोञ्जन), धानकी खील, नीलकमल, बेरकी मींगी इन सबके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे । अथवा बेरकी मींगी (गुठलीके भीतरकी गिरि), रसौत, खील, मिसरी, इलायची और पीपल शहद मिलाकर चाटे ॥ २७ ॥

द्राक्षारसंवापिपिवेत्सुशीतंमृद्भृष्टलोष्टप्रभवंजलंवा । जम्ब्वाम्रयोः पल्लवजंकपायंपिवेत्सुशीतंमधुसंयुतंवा ॥ २८ ॥

पित्तज छर्दिमें दासका रस पीवे । अथवा आगमें भुनाहुआ मट्टीका डला जलमें

सब प्रकारकी छर्दियें आमाशयमें उत्केश होनेसे ही उत्पन्न होतीहैं इसलिये छर्दि रोगमें प्रथम लंघन कराना चाहिये । लंघन करानेके अनन्तर कफ और पित्तनाशक वमन, विरेचन करावे । परन्तु वातजनित छर्दिमें लंघन और शोधन कराना उचित नहीं है किसीका मत है कि वातज छर्दिमें यदि वैद्य उचित समझे तो लंघन करावे पर वमन, विरेचन न करावे ॥ १८ ॥

चूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयानांहद्यानिवायानिविरेचनानि । मद्यैः
पयोभिश्चयुतानियुक्तयानयन्त्यधोदोषमुदीर्णमूर्द्धम् ॥ १९ ॥

पित्त तथा कफकी छर्दिमें हरडोंका चूर्ण शहदमें भिलाकर चाटे तथा अन्य हृद्य विरेचन आदि करावे । अथवा युक्तिपूर्वक मद्य या दूधके योगसे शोधन द्रव्योंका उपयोग कर ऊपरके जठेहुए दोषोंको वमन द्वारा निकाल देवे और नीचेके दोषोंका विरेचन द्वारा शोधन करे ॥ १९ ॥

वह्नीफलाद्यैर्वमनंपिवेद्वायोदुर्वलस्तंशमनैश्चिकित्सेत् । रसैर्मनो-
ज्ञैर्लघुभिर्विशुष्कैर्भक्ष्यैःसभोज्यैर्विविधैश्चपानैः ॥ २० ॥

अथवा कडवी तोरई आदि फलोंको पीकर वमन करे यदि रोगी दुर्वल हो तो हल्के प्रिय लगनेवाले सूखे अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पान और संशमन औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ २० ॥

वातजछर्दिकी चिकित्सा ।

सुसंस्कृतास्तित्तिरिर्वहिलावरसाव्यपोहन्त्यनिलप्रवृत्ताम् । छर्दि -
तथाकोलकुलत्थधान्यविल्ववादिमूलाम्लयवैश्चयूपः ॥ २१ ॥

वातसे उत्पन्न हुई छर्दिमें उत्तम रीतिसे संस्कार कियेहुए तीतर, मोर और लवाके मांसरसोंको पिलावे । तथा वेर, कुल्थी, धनियां और विल्व आदि पंचमूल तथा यवोंसे सिद्ध कित्वाहुआ स्निग्ध और अम्ल यूप सेवन करावे ॥ २१ ॥

वातात्मकेहृद्दकासयुक्तोनरः पिवेत्सैन्धववदृतंतु । सिद्धंतथा
धान्यकनागराभ्यांद्धान्नाचतोयेनचदाडिमस्य ॥ २२ ॥ व्योपेणयुक्तां
लवणैस्त्रिभिश्चघृतस्यमात्रामथवाविदध्यात् । क्षिग्धानिह्यानि-
चभोजनानिरसैःसयूपैर्दाधिदाडिमांलैः ॥ २३ ॥

यदि वायुकी छर्दिमें हृद्य फडकता हो और खांसी भी हो तो वह मनुष्य घृतमें सेंधानमक मिला सेवन करे । अथवा धनियां, सोंठ, इन दोनोंका चूर्ण बनाकर दही और घृतके साथ अथवा दाडिमके रसके साथ पिलावे या त्रिकुटा, सेंधानमक,

संचर नमक, विडनमक, इनसे सिद्ध किया घृत विधिवत् पानकरे । और चिकने तथा हृद्य भोजन मांसरसों और दही तथा दाडिमके रससे अम्ल किये यूपोंके साथ सेवन करावे ॥ २२ ॥ २३ ॥

पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा ।

पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थद्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात् । कफा-
शयस्थन्त्वतिमात्रवृद्धंपित्तं हरेत्स्वादुभिरुद्धमेव ॥ २४ ॥

पित्तकी छर्दिमें पित्तके वेगको अनुलोमन करनेके लिये द्राक्षाका रस, विदारी कंदका रस या ईखका रस निशोथके चूर्णके साथ पिलाकर विरेचन करावे । यदि पित्त कफाशयमें बड़ाहुआ हो तो मधुर द्रव्योंसे वमन करा, निकाल देना चाहिये ॥ २४ ॥

शुद्धायकालेमधुशर्कराभ्यांलाजैश्चमन्थंयदिवापिपेयाम् । प्रदापये-
न्मुद्गरसेनवापिशाल्योदनंजाङ्गलजैरसैर्वा ॥ २५ ॥

जब रोगी वमन, विरेचन द्वारा शुद्ध होलेवे तो उसको शहद, मिसरी मिलाकर लाजामंथ पिलावे । अथवा पेया पिलावे या मूंगके यूपके साथ अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ शालिचावलोंका भात खिलावे ॥ २५ ॥

सितोपलामाक्षिकपिप्पलीभिःकुलमांपलाजायवशक्तुगृञ्जान् । खर्जू-
रमांसान्यथनारिकेलंद्राक्षामथोवावदराणिलिह्यात् ॥ २६ ॥

अथवा कुलमाप, लाजा या यवोंके सत्तमें गाजर और पीपलका चूर्ण मिलाकर मिसरी शहदके साथ सेवन करावे । अथवा खर्जूका छिलका अथवा नारियल और द्राक्षा तथा वेरकी त्वचा इन सबको वारीक पीस मिसरी और शहद मिला चटावे ॥ २६ ॥

स्रोतो जलाजोत्पलकोलमज्जचूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयाञ्च । कोला-
स्थिमज्जाअनमक्षिकाविट्ूलाजासितामागधिकाकणावा ॥ २७ ॥

स्रोतो ज (रसोत या स्रोतोअन), धानकी खील, नीलकमल, वेरकी मींगी इन सबके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे । अथवा वेरकी मींगी (गुठलीके भीतरकी गिरि), रसोत, खील, मिसरी, इलायची और पीपल शहद मिलाकर चाटे ॥ २७ ॥

द्राक्षारसंवापिपिवेत्सुशीतंमृद्दृष्टलोष्टप्रभवंजलंवा । जम्ब्वाम्रयोः
पल्लवजंकपायंपिवेत्सुशीतंमधुसंयुतंवा ॥ २८ ॥

पित्तज छर्दिमें दाखका रस पीवे । अथवा आगमें भुनाहुआ मटीका डला जलमें

बुझा फिर उस जलको शीतल कर पीवे । अथवा जामुन और आमके पत्तोंके
क्वाथको शीतलकर जल मिला पीवे ॥ २८ ॥

निशिस्थितवारिसमुद्रकृष्णसोशीरधान्यंचणकोदकंवा । गवेषुका-
मूलजलगुडूच्याजलंपिवेदिक्षुरसंपयोवा ॥ २९ ॥ सेव्यंपिवेत्काञ्च-
नगैरिकंवासवालकंतण्डुलंधावनेन । धात्रीरसेनोत्तमचन्दनंवा
तृष्णावमिघानिसमाक्षिकाणि ॥ ३० ॥ कल्कंतथाचन्दनचव्यमां-
सीद्राक्षोत्तमावालकगैरिकाणाम् । शीताम्बुनागैरिकशालिचूर्णं
मूर्वातथातण्डुलधावनेन ॥ ३१ ॥

या रात्रिको जलमें मूंग, पीपल, भिगोकर अथवा खस और धनियां भिगोकर खस
देवे । या चनोंके जलमें खस और धनियां भिगोवे फिर प्रातःकाल उस शीतल
जलको छानकर या इसी प्रकार गेहूं भिगोये जलको पीवे । अथवा गिलोयको
सायंकाल भिगोकर प्रातःकाल छानकर पीवे । या ईखका रस पीवे । अथवा खसको
भिगोकर उस जलको पीवे । अथवा सोनागेरू या गेरू और कमलके केसरका चूर्ण
कर तण्डुलजलके साथ पीवे । अथवा आँवलेके रसके साथ सफेद चंदन पिसकर
पीवे । इन उपरोक्त सब योगोंके जलोंमें शहद मिला पीना चाहिये । इनके पीनेसे
पित्तकी प्यास और वमन दूर होतीहै । अथवा चंदन, चव्य, जटामासी, द्राक्षा, दूधी,
सुगन्धाळा और गेरूका चूर्ण शीतल जलके साथ सेवन करे । अथवा गेरू और
शालिचावलका चूर्ण तथा मूर्वा चावलके धोवनके साथ पीवे ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कफकी छर्दिका यत्न ।

कफात्मिकायां वमनं प्रशस्तं सपिप्पली सर्पपनिम्बतोयैः । पिण्डी-
तकैः सैन्धवत्सम्प्रयुक्तैर्वम्यां रुफामाशयशोधनार्थम् ॥ ३२ ॥ गोधू-
मशालीन्सयवान्पुराणान्यूयैः पटोला मृतचित्रकाणाम् । व्योपस्य
निम्बस्य च तक्रसिद्धैर्यूपैः फलाम्लैः कटुभिस्तथाद्यात् ॥ ३३ ॥

कफकी छर्दिमें आमाशय और कफाशयको शोधन करनेके लिये सरसों, पीपल
और नीमके जलमें संधानमक तथा भैरफलका कल्क मिलाकर वमन करावे ।
फिर पुग्ने गेहूं शालिचावल और यवोंके अन्नको पटोल, गिठोय और चित्रकके
घूपके साथ सेवन करावे । अथवा त्रिकुटा, मीठी नीम और तरुके साथ सिद्ध
विषया घूप जनारके रसमें अम्लर पीपल और मिर्चका चूर्ण घुग्गाकर सेवन
करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

रसांश्शूल्यानि सजाङ्गलानानां सानिजीर्णान्मधुशीध्वरिष्ठान् ।
रागांस्तथापाडवपानकानिद्राक्षाकपित्थैः फलपूरकैश्च ॥ ३४ ॥

जंगली जीवोंके मांसरस, सांखचे, पुराना गहद, शीधु अरिष्ट, राग द्राक्षा, कपित्थ, और विजौरेके रसके साथ बनायेहुए खाण्डव और पानरुक्ता सेवन करावे ॥ ३४ ॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कलायान्भृष्टान्युतान्नागरमाक्षिकाभ्याम् लि-
ह्यात्तथैवत्रिफलाविडङ्गचूर्णविडङ्गप्लवयोरसंवा ॥ ३५ ॥ सजा-
म्बवंवावदरस्यचूर्णमुस्तायुतां कर्कटकस्यशृंगीम् । दुरालभां वामधु-
सम्प्रयुक्तां लिह्यात्कफच्छर्दिनिग्रहार्थम् ॥ ३६ ॥ मनःशिलायाः
फलपूरकस्यरसैः कपित्थस्यचपिप्लीनाम् । क्षौद्रेणचूर्णमारिचैश्च
युक्तं लिह्यजेच्छर्दिमुदीर्णवेगाम् ॥ ३७ ॥

अथवा भृंग, मसूर, चना और मटरके चूर्णोंको घृतमें भूनकर सोंठ और शहद मिला सेवन करे अथवा त्रिफला और विडंगके चूर्णोंको शहद मिला चाटे । या विडंग और केवटीमोथेके चूर्णोंको गहद मिठा चाटे । अथवा जामुन, आमकी गुठलीका चूर्ण या बेरकी गुठलीका चूर्ण या काकडासिंगी और नागरमोथेका चूर्ण शहद मिलाकर चाटे । अथवा जरासेका चूर्ण शहद मिलाकर चाटे तो कफकी छर्दि दूर होतीहै । अथवा शुद्ध मनसिलका चूर्ण आधी रसी प्रमाण लेकर विजौरेके रसके साथ और कैयके रसके साथ सेवन करे । या पीपल और मिर्चके चूर्णको शहदके साथ चाटे तो कफजनित बलवान् छर्दि भी दूर होतीहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

सन्निपातकी छर्दिकी चि० ।

यैपापृथक्त्वेन मया क्रियोक्ता तां सन्निपातेऽपि समीक्ष्य बुद्ध्या ।

दोषैर्तुरोगाग्निबलान्यवेक्ष्य प्रयोजयेच्छास्त्रविदप्रमत्तः ॥ ३८ ॥

जो यह धातादि दोषोंकी छर्दियोंमें दोषभेदसे पृथक् २ चिकित्सा हमने कथन की है । दोष, ऋतु, देह, अग्निबल, विचारकर शास्त्रको जाननेवाला अप्रमत्त वैद्य सन्निपातमें भी अपनी बुद्धिसे दोषोंका बलात्कल विचार उसी चिकित्साको मिला-जुला करे ॥ ३८ ॥

द्विष्टार्थजछर्दिका यत्न ।

मनोऽभिघाते तु मनोऽनुकूला वाचः समाश्वासनहर्षणानि । लोक-

प्रसिद्धाःश्रुतयोत्रयस्याःशृंगारिकाश्चैवहिताविहाराः॥ ३९ ॥ गन्धा
विचित्रामनसोऽनुकूलामृतपुष्पशुक्लाम्लफलादिकानाम् । शाकानि
भोज्यान्यथपानकानिसुसंस्कृताःपाडवरागलेहाः ॥ ४० ॥

मनमें ग्लानि उत्पन्न होकर जो छर्दि होती है उसमें मनके अनुकूल वाक्य, आश्वासन
और हर्षादि उत्पन्न करे तथा लोक प्रसिद्ध मनके लगानेवाली आख्यायिका सुनावे ।
और बराबरकी उमरवाले शृंगाररसमें चतुर मित्रोंकी मण्डलीमें विहार करे । तथा
विचित्र गंध आदिक मनको हरण करनेवाले सुंघावे । एवं मनोनुकूल मृत्तिका, पुष्प,
कागजी नींबू आदिक सुंघावे । और खाने पीनेके लिये उत्तम संस्कार किये
हुए शाक भोज्य पदार्थ और पानक, खाण्डव, राग तथा लेहादिकोंका सेवन
करावे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

यूपारसाकाम्बलिकाखडाश्चमांसानिधानाविविधाश्चभक्ष्याः ।

फलानिमूलानिचगन्धवर्णैरसैरूपेतानिवर्मिजयन्ति ॥ ४१ ॥

और यूप, रस, काम्बलिक यूप, खडयूप, मांस, धाना, अनेक प्रकारके भक्ष्य,
फल, मूल यह सब गंध, वर्ण और रससे संपन्न होने चाहिये । इनके सेवन करानेसे
भी वमन दूर होती है ॥ ४१ ॥

गन्धरसस्पर्शमथापिशब्दंरूपश्चयद्यत्प्रियमप्यसात्म्यम् । तदेव

कुर्व्यात्प्रशमायतस्यास्तज्जोहिरोगःसुखमेवजेतुम् ॥ ४२ ॥

वमनके रोगीको जो गंध, रस, स्पर्श, शब्द और रूप प्रिय मालूम होताहो और
जिस पदार्थकी वह इच्छा करताहो वह उसको असात्म्य होनेपर भी सेवन करानेसे
घृणा, ग्लानि आदिसे उत्पन्न हुई वमन दूर होती है ॥ ४२ ॥

वमनमें विशेषज्ञातव्य ।

छर्युत्थितानाश्चिकित्सितारस्वाच्चिकित्सितंकार्यमुपद्रवाणाम् ।

अतिप्रवृत्तासुविरेचनस्यकर्मातियोगैर्विहितंविधेयम् ॥ ४३ ॥

वमनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें जो चिकित्सा वमनको दूर करनेके लिये कही है
वह चिकित्सा वमनके दूर करनेके लिये भी करना चाहिये । यदि वमनका अतियोग
हीजाय अर्थात् वमनके वेग बहुत बढ़नेसे रोगी व्याकुल होजाय तो जो चिकित्सा
विरेचनके अतियोगमें कही है वही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४३ ॥

वमिप्रसंगात्पवनोऽप्यवश्यंधातुक्षयाद्द्विमुपैतितस्मात् । चिरप्रवृ-
त्तास्वनिलापहानिकार्यार्ण्युपस्तम्भनवृंहणानि ॥ ४४ ॥

वमनके अतिप्रसंगसे धातुओंका क्षय होताहै इसलिये वायुकी अवश्य वृद्धि होतीहै सो बहुत दिनसे उत्पन्नहुई वमनमें वातनाशक स्तम्भन और वृंहणक्रिया करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

सर्पिर्गुडाः क्षीरविधिर्घृतानिकल्याणकद्रूपणजीवनानि । वृष्यास्त-
थामांसरसाःसलेहाश्विरप्रसक्ताश्रवमिंजयन्ति इति ॥ ४५ ॥

घृत, गुड, खीरविधि, कल्याण घृत, द्रूपणघृत, जीवनीय घृत, वृष्ययोगं, मांसरस और अवलेह बहुत दिनकी वमनको दूर करतेहैं ॥ ४५ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

संख्याहेतुंलक्षणमुपद्रवान्साध्यताश्रयोगांश्च ।

छर्दानांप्रशमार्थंप्राहचिकित्सितंमुनिवर्य्यः ॥ ४६ ॥

इति चरक० चिकि० छर्दि चिकित्सितं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस छर्दिचिकित्सित अध्यायमें वमनरोगकी संख्या, हेतु, लक्षण, उपद्रव, साध्य, असाध्य और छर्दिनाशक योग इन सबको मुनियोंमें श्रेष्ठ पुनर्वसुजीने कथन कियाहै ॥ ४६ ॥

इति श्रीचर० चि० स्थाने प्र० आ० सं० छर्दिचिकित्सितनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातस्तृष्णाचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हंस्माह
भगवानात्रेयः ।

अब हम तृष्णाचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

ज्ञानप्रशमतपोभिःख्यातोऽत्रिसुतो जगद्धितेऽभिरतः ।

तृष्णानांप्रशमार्थंचिकित्सितंप्राहपञ्चानाम् ॥ १ ॥

ज्ञान, तप और शांतिमें विख्यात अत्रिसुत पुनर्वसुजी जगत्क हितमें तत्परहुए पांच प्रकारकी तृष्णा (प्यास) की शांतिके लिये चिकित्साका कथन करनेलगे ॥ १ ॥

प्यासके कारण और संप्राप्ति ।

क्षोभान्नयाच्छ्रमादपिशोकात्कोधाद्विलंबनान्मयात् । क्षारास्त-

लवणकटुकोष्णरूक्षशुष्कान्नसेवाभिः ॥ २ ॥ धातुक्षयगदकर्षण-
वमनाद्यतियोगसूर्यसन्तापैः । पित्तानिलौप्रवृद्धौसौम्यान्धातूँश्च
शोषयतः ॥ ३ ॥ रसवाहिनीश्चनाडीर्जिह्वामूलैर्गलतालुक्लोन्नः ।
संशोष्यनृणादिहेकुरुतस्तृष्णांमहाबलावेतौ ॥ ४ ॥ पीतंपीतंहिज-
लंशोषयतस्तमतोनयातिशमम् । घोरव्याधिकृशानांप्रभवत्युपस-
र्गभूतासा ॥ ५ ॥

क्षोभ, भय, श्रम, शोक, क्रोध और लंघनसे, मद्य पीनेसे, खारे, खट्टे, नमकीन
चरपरे, गरम, रूखे और सूखे अन्नोके सेवनसे तथा धातुक्षय होनेसे, रोगसे, कर्षणसे,
वमनादिकोंके अतियोगसे और सूर्यकी धूपसे पित्त और वायु बढकर सौम्यधातुओंकी
शोषण करते हुए जीभके मूलमें तथा गल, तालु और क्लोमकी शोषण करके
बलवान् वात पित्त मनुष्योंकी प्यासरोग करतेहैं। तब मनुष्य बारंबार भी जलपीता
रहे तब भी जिह्वा आदिको वात पित्त मुखाए ही जातेहैं इसी लिए प्यास शांत नहीं
होती। जो प्यास किसी घोर व्याधिते पीडित मनुष्यको होतीहै वह उस घोर रोगका
उपद्रव भूत होतीहै ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

पूर्वरूप और रूप ।

प्राग्रूपंमुखशोषंस्वलक्षणंसर्वदाम्बुकामित्वम् ।

तृष्णानांस्वासांलिङ्गानांलाघवमपायः ॥ ६ ॥

मुखका सूखना, तृष्णा (प्यास) का पूर्वरूप है और सर्वदा जलकी इच्छा
रहना तृष्णाका रूप है। सब प्रकारकी तृष्णाओंमें तृष्णाके लक्षणोंका लाघव होना
अपाय कहाजाताहै ॥ ६ ॥

तृष्णाके सामान्य लक्षण ।

मुखशोषस्वरभेदभ्रमसन्तापप्रलापसंस्तम्भान् । ताल्वोष्ठकण्ठजि-
ह्वाकर्कशतांचित्तनाशश्च ॥ ७ ॥ जिह्वानिर्गममरुचिवाधिर्यमर्म-
द्वयनंसादम् । तृष्णोद्भूताकुरुतेपश्चविधालिङ्गतःशृणुताम् ॥ ८ ॥

मुखका सूखना, स्वरभेद, भ्रम, संताप, बकवाद, संस्तम्भ, तालु, होठ, कण्ठ
और जीभमें रुक्षता, चित्तकी व्याकुलता अथवा मोह, जीभका चादर निकलना,
अरुचि, बहरापन, मरमोंका संताप, या हृदयका फडकना और सुन्नता होजाना
यह बलवान् तृष्णाके उपद्रव होतेहैं। अब पांच प्रकारकी तृष्णाके अलग २ लक्षण
श्रणकरो ॥ ७ ॥ ८ ॥

वातजट्टपाकी संप्राप्ति ।

अवधातुं देहं स्थंकुपितः पवनो च दाविशोपयति ।

तस्मिञ्छुष्के शुष्यत्ववल्स्तृष्यत्यथ विशुष्यन् ॥ ९ ॥

जब वायु अपने कारणोंसे कुपित होकर शरीरस्थ जलवातुको शोषण कर देती है तो उसके शोषण होनेसे दुर्बल हुआ मनुष्य शुष्कताको प्राप्त होकर प्यासयुक्त होजाता है ॥ ९ ॥

वातजट्टपाके लक्षण ।

निद्रानाशः शिरंसो भ्रमस्तथा शुष्कविरसमुखता च ।

स्रोतोऽवरोध ईति च स्याद्विद्वं वाततृष्णायाः ॥ १० ॥

निद्रानाश, मस्तरुका इधर उधर पटकना, भ्रम होना, मुखका विरस और सूखा होना, स्रोतोंका अवरोध होना यह वातजनित तृपाके लक्षण हैं ॥ १० ॥

पित्तजट्टपाकी संप्राप्ति ।

पित्तं मतंकुपितमाग्नेयंकुपितं तापयत्यपांधातुम् ।

सन्तप्तः सहिजनयेत्तृष्णां दाहो ल्वणानृणाम् ॥ ११ ॥

उत्तम आग्नेय पित्त कुपित होकर जलवातुको करता है फिर उससे उत्तम हुए मनुष्योंको दाहो ल्वण तथा उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥

पित्तजट्टपाका लक्षण ।

तिक्तास्यत्वं शिरसो दाहः शीताभिनन्दतामूर्च्छा ।

पीताक्षिमूत्रवर्चस्त्वमाकृतिः पित्ततृष्णायाः ॥ १२ ॥

सुरका कड़ुआ होना, मस्तरुमें दाह, शीतल वस्तुओंकी इच्छा, मूर्च्छा, नेत्र, मूत्र और मलका पीले रंगका होना यह पित्तजनित तृपाके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

आमदोषज तृपाके लक्षण ।

तृष्णायामभवासाप्याग्नेय्यामपित्तजनितत्वात् ।

लिङ्गं न स्यात्श्चारुचिराध्मानकफप्रसेकौ च ॥ १३ ॥

जो प्यास आमके प्रसङ्ग होती है वह आग्नेय तथा है क्योंकि वह तथा आममिश्रित पित्तसे ही उत्पन्न होती है । अश्रोत्र, अरुचा, मुखके ककका भिना यह आमजनित तृपाके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

तृषाका कारण ।

देहोरसजोऽम्बुभवोरसश्चतस्यक्षयाच्चतृष्येतु ।

दीनस्वरःप्रताम्यन्संशुष्कहृदयगलतालुः ॥ १४ ॥

संपूर्ण मनुष्योंका शरीर रससे उत्पन्न होता है । अर्थात् गर्भवती स्त्री जो आहार करती है उसके रससे शरीरकी उत्पत्ति है और वह रस जलसेही बनता है । इसलिये रसधातुके क्षय होनेसे मनुष्यको तृषारोग होता है । उससे स्वरकी क्षीणता, दीनता, ग्लानि, हृदय कष्ट और तालुका शोष होता है ॥ १४ ॥

कष्टसाध्य और असाध्य तृषा ।

भवतिखलुसोपसर्गात्तृष्णासाशोपिणीकष्टा । ज्वरमेहक्षयशोपश्वा-
सायुपसृष्टदेहानाम् ॥१५॥ सर्वास्त्रतिप्रसक्तारोगकृशानां वमिप्रस-

क्तानाम् । घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णामरणायविज्ञेयाः ॥ १६ ॥

इस शोषणकारी तृषामें ज्वर, प्रमेह, क्षय, शोष, श्वास, आदि उपद्रवोंके होनेसे मनुष्योंकी यह तृषा कष्टसाध्य होती है । अत्यंत प्रसक्त होनेसे सब प्रकारकी तृषा ही कष्टसाध्य होती है । तथा कृशरोगियोंकी और वमनयुक्त मनुष्योंकी तृषाभी कष्टसाध्य ही होती है । जिस तृषामें अत्यंत घोर उपद्रव हों वह तृषा मनुष्योंके प्राणोंको नष्ट करनेवाली होती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

नाग्निविनाहितर्पःपवनाद्वातौहिशोषणेहेतू ।

अब्धात्तोरतिवृद्धावपांक्षयेतृष्यतेनरोहि ॥ १७ ॥

सब प्रकारकी तृषाएँ अग्नि अथवा वायुके विना उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि अग्नि और वायु ही जलधातुके शोषण करनेवाले हैं । सो यह अग्नि और वायु अत्यंत बढ़कर जलका क्षय करते हैं । जलके क्षय होनेसे ही मनुष्योंको तृषा लगती है ॥ १७ ॥

अन्नजतृषाके लक्षण ।

गुर्वन्नपयःस्नेहैःसंमूर्च्छन्निर्विदाहकालेच ।

यस्तृष्येद्धृतमार्गेतत्राप्यनिलानलौहेतू ॥ १८ ॥

भारी अन्न, दूध और घृत आदिकोंके परिपाकके समय जो प्यास लगती है उसका भी अग्नि और वायु ही कारण है क्योंकि भारी अन्नादिकोंके संमूर्च्छन होकर परिपाकके समय वायु और अग्नि रुककर प्रवल होते हैं इसलिये तृषा लगती है ॥ १८ ॥

मद्यजतृषा ।

तीक्ष्णोष्णरूक्षभावान्मद्यं पित्तानिलौ प्रकोपयति । शोषयतोऽपांघा-

तुंतावेवमद्यशीलानाम् ॥ १९ ॥ ततास्त्रिवसिकतासुहितोयमाशु-
प्यतिक्षिप्तम् । तेषांसन्तसानांहिमजलपानान्द्रवतिशर्म ॥ २० ॥

मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष होनेसे पित्त और वायुका प्रकोप करतीहै फिर कुपित
हुए पित्त और वायु मद्य पीनेवाले मनुष्योंके जलधातुकी शोषणकर तृपाको उत्पन्न
करतेहैं । जैसे तपेहुए बालूमें जल छिडकनेसे वह जल शीघ्र सूखजाताहै उसीप्रकार
मद्यसे संतप्त मनुष्योंका शीतल जल पिया हुआ भी तत्काल सूखजाताहै ॥ १९।२० ॥

अकालस्नानज नृपा ।

शिशिरस्नातस्योष्मारुद्धःकोष्ठंप्रपद्यतर्षयति ।

तस्मान्नोष्णक्लान्तोभजेतसहसाजलंशीतम् ॥ २१ ॥

गर्मायाहुआ मनुष्य शीतल जलमें एकाएकी स्नान करे तो उसके शरीरकी गर्मां
रुककर कोष्ठमें प्राप्त हो तृपाको उत्पन्न करतेहैं । इसलिये गर्मांसे गर्मायाहुआ मनुष्य
और मार्गचलने आदिसे क्लान्त हुआ मनुष्य शीतल जलमें सहसा स्नान न करे ।
अर्थात् जबतक शरीरकी गर्मां न सूखजाय और शरीर ठण्डा न होजाय तब तक
स्नान नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

लिङ्गसर्वास्वेतास्वनिलक्षयात्पित्तजंभवत्यथतु । पृथगागमाच्चिकि-

त्सितमतःप्रवक्ष्यामितृष्णानाम् ॥ २२ ॥

भारी अन्न आदि तथा मद्यपान और गर्मांयेहुए स्नान करनेसे जो तृपा उत्पन्न
होतीहै उसमें वायुके क्षयसे पित्तके ही अधिक लक्षण होतेहैं । अब तृपारोगकी
अलग २ चिकित्साका वर्णन करतेहैं ॥ २२ ॥

नृपाकी चिकित्सा ।

अपांक्षयाद्धितृष्णासंशोष्यनरंप्रणाशयेदाशु ।

तस्मादैन्द्रंतोयंसमधुपिवेत्तद्वृण्वान्यत् ॥ २३ ॥

जलधातुके क्षय होनेसे ही तृपा मनुष्यको सुखाकर प्राणोंको शीघ्र नष्टकर
देतीहै । अतएव तृपाकी शान्तिके लिये आफ्लाशका जउ शहद मिला पिलाना
चाहिये अथवा उर्तीके समान गुग्गुला अन्य जल पिलाना दिन है ॥ २३ ॥

घात और पित्तकी नृपानाशक अनेक योग ।

किञ्चित्तुरानुत्संतत्रलघुशीतलसुगन्धिसुरसम् ।

अनभिष्यन्दिचयत्तक्षितिगतमप्येन्द्रवज्जेयम् ॥ २४ ॥

पृथ्वीके जलोंमें किंचित् कपायानुरस, हल्का, शीतल, सुगंधित, सुरस और अनभिष्यंदी जल आकाशके जलके समान गुणवाला है ॥ २४ ॥

शृतंशीतंससितोपलमथवाशरपूर्वपञ्चमूलेन ।

लाजासक्तून्सिताक्तान्मधुयुतमैन्द्रेणवामन्थम् ॥ २५ ॥

जलको पकाकर ठण्डा करके अथवा शरादि पंचमूलसे सिद्ध किया जल मिसरी मिला पिलावे या खीलोंके सत्तू, मिसरी, शहद और आकाशका जल मिला मन्य बनाकर पिलावे ॥ २५ ॥

वाद्यंवामयवानांशीतमधुशर्करायुतंदद्यात् । पेयांवाशालीनांदद्या-
द्वाकोरदूषाणाम् ॥ २६ ॥ पयसाशृतेनभोजनमथवामधुशर्करायुतं
भोज्यम् । पारावतादिकरसैर्घृतभृष्टैर्वाप्यलवणांलैः ॥ २७ ॥

अथवा मुनेदुए जवोंके मण्डको शीतल कर छानलेवे । उसमें शहद और मिसरी मिलाकर पिलावे । या शालीचावलोंकी पेया वा कोद्रवकी पेयांमें शहद मिसरी मिला पिलावे । अथवा औटाये हुए दूधमें शहद और मिसरी मिला उसके साथमें भोजन देवे । अथवा कबूतर आदि पक्षियोंके मांसरसको खटाई और नमकके बिना घृतमें छोंक करके पिलावे ॥ २६ ॥ २७ ॥

तृणपञ्चमूलमुञ्जातकैःपियालैश्चजाङ्गलाःसुकृताः ।

शस्तारसाःपर्योवातैःसिद्धंशर्करामधुमत् ॥ २८ ॥

अथवा तृणपंचमूल, मुंजातक और चिरींभीके जलके साथ सिद्ध किया जंगली जीवोंका मांसरस अथवा अन्य हितकारी रस या तृण पंचमूलादिसे सिद्ध किया दूध मिसरी और शहद मिलाकर पिलावे ॥ २८ ॥

शतधौतघृतेनाक्तःपयःपिवेच्छीततोयमवगाह्य ।

सुद्रमसूरचणकजारसास्तुभृष्टाघृतेदेयाः ॥ २९ ॥

अथवा १०० बार धुलाहुआ घृत संपूर्ण शरीरपर लेप करके शीतल जलमें बैठे और शीतल दूधको पीवे । या मूंग, मसूर और चनोंके यूपको घृतमें छोंककर पीवे ॥ २९ ॥

मधुरैःसंजीवनीयैःशीतैश्चसत्तिककैःशृतंक्षीरम् । पानाभ्यञ्जनसे-
केप्विष्टंमधुशर्करायुक्तम् ॥ ३० ॥ तज्जंवाघृतमिष्टंपानाभ्यङ्गेपुनं-
स्यमपिचस्यात् । नारीपयःसशर्करमुष्ट्याअपिनस्यमिक्षुरसः॥३१॥

अथवा मधुरगण और जीवनीयगण अथवा अन्य रस आदि शीतल रूप या

तिक्तकण्ठसे सिद्ध कियाहुआ दूध शहद और मिसरी मिला तृपारोगीको पिलाना और परिसेचन करना हितकारी है । अथवा इन्हीं गणोंसे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत पान, अभ्यंग और नस्यमें प्रयोग करनेसे तृपाकी शान्ति होतीहै । अथवा खीका दूध मिसरी मिला वा ऊंटनीका दूध ईखका रस मिलाकर नस्यकर्ममें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

क्षीरेक्षुरसगुडोदकसितोपलायैःक्षौद्रशीधुमाध्वीकैः ।

वृक्षाम्लमातुलुङ्गैर्गण्डूपास्तालुशोपन्नाः ॥ ३२ ॥

दूध, ईखका रस, गुडका शरवत, मिसरीका शरवत, शहदका शरवत, शीधु, माध्वीक, इमली और बिजौरेका बनाया शरवत मुखमें धारण कर कुल्ले करनेसे तालुशोप दूर होताहै ॥ ३२ ॥

जाम्बाम्नातकवदरीवेतसपञ्चपल्लवैश्चाम्लाः ।

हृन्मुखशिरःप्रलेपाःसघृतामूर्च्छाभ्रमतृष्णाघ्नाः ॥ ३३ ॥

जामुन, अंबाढा, घेर, वेतस और पंचपल्लवोंको खटाई मिलाकर घृतके साथ हृद्दय, मुख और शिरपर लेपकरे तो मूर्च्छा, भ्रम और तृषा नष्ट होतीहै ॥ ३३ ॥

दाडिमदधित्थलोध्रैःसविदारीवीजपूरकैःशिरसः ।

प्रलेपोगौरामलकैर्घृतारनालायुतैश्चहितः ॥ ३४ ॥

अनार, कैथ, लोध, विदारीकंद और बिजौरेका मसूकपर लेप करनेसे मूर्च्छा आदि तृपाके उपद्रव दूर होतेहैं । तथा सफेद सरसों, घृत, आँवले और कांजी मिलाकर मस्तकपर लेप करनेसे भी मूर्च्छा आदि दूर होतेहैं ॥ ३४ ॥

शैवलपङ्ककजलजैःसाम्लैःसघृतैश्चशक्तुभिलेपाः । मस्त्वारनालार्द्र-

वसनकमलमणिहारसंस्पर्शाः ॥ ३५ ॥ शिशिराम्बुचन्दनार्द्रस्त-

नतटपाणितलसंस्पर्शाः । क्षौमार्द्रवसनानां वराङ्गनानांप्रियाणाश्च

॥ ३६ ॥ हिमवदरीवनसरिस्सरोऽम्बुजपवननेन्दुपादशिशिराणाम् ।

रम्यशिशिरोदकानांस्मरणश्चकथाश्चतृष्णाघ्नाः ॥ ३७ ॥

तृपारोगमें मूर्च्छा आदि उपद्रवोंकी शान्तिके लिये पानीकी काई, फीच, कमल, अनार आदि खट्टे द्रव्य, घृत और सत्तू इनमेंसे किसी एकका लेप करना तथा मस्तू, शीतल कांजी, गीले बख, जलमें भिगोयेहुए कमल तथा शीतल मणिपों और हारोंका स्पर्श करना हितकारी है । और शीतल जलसे भिगोहुए चंदनसे आर्द्र स्त्रनोंको हाथसे

स्पर्श करना तृपाको शान्त करतीह । तथा रेशमी अथवा गीले वस्त्रोंको पहिनेहुई खुबसूरत स्त्रियोंका हाथसे स्पर्श करना अथवा अन्य मणि, कमल आदि प्यारी वस्तुओंका स्पर्श करना, हिमालयकी शीतल चोटियों या हिमसे शीतल हुए कंदरा, वनं, नदियों, सरोवर, कमल, पवन, चंद्रमाकी किरणें शिशिर और मनोरम शीतल जलका स्मरण और शीतल जलकी बातें तृपाको शान्त करनेवाली हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

वातघ्नमन्नपानंमृदुलघुशीतञ्चवाततृष्णायाः ।

क्षतकासनुदघृतक्षीरमूर्द्ध्वाततृष्णाघ्नम् ॥ ३८ ॥

वातनाशक, मृदु, हल्के और शीतल अन्नपानोंके सेवनसे भी तृपाकी शान्ति होतीहै । क्षतकी खाँसीको नष्ट करनेवाले जो घृत कह आये हैं वह घृत पीकर ऊपरसे दूध पीवे तो वायुकी तृपा शान्त होतीहै ॥ ३८ ॥

स्याजीवनीयसिद्धंक्षीरघृतंवातपित्तजेतयै ।

पैत्तेद्राक्षाचन्दनखजूरोशीरमधुयुतंतोयम् ॥ ३९ ॥

जीवनीयगणोंसे सिद्ध किया दूध और घृत वात, पित्तकी तृपाको शान्त करताहै । और दाख, चंदन, खजूर और खसका शीत कपाय शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकी तृपा शान्त होतीहै ॥ ३९ ॥

लोहितकशालितण्डुलखजूरपरूपकोत्पलद्राक्षाः ।

मधुपकलोष्टमेवचजलेशृतंशीतलंपेयम् ॥ ४० ॥

लालचंदन, शालिचावल, खजूर, फालसा, नील कमल, द्राक्षा इन सबको पकाकर अथवा इनके शीत कपायमें गरम किया मट्टीका ढेला बुझाकर उस जलको ठण्डा कर स्वच्छ नितरेहुए जलमें शहद मिला पीवे तो पित्तकी तृपा शान्त हो ॥ ४० ॥

लोहितशालितण्डुलप्रस्थःसलोध्रमधुकाञ्जनोत्पलः ।

पक्वामलोष्टमधुजलसमायुतोमृण्मयेपेयः ॥ ४१ ॥

अंजन, लाल शालिचावल १ प्रस्थ, लोध, मुलैठी, नीलकमल यह प्रत्येक एक एक पल इन सबको २ आठक जलमें औटावे । जब आधा जल रहे तो उतारकर छानले । अथवा इन उपरोक्त सब द्रव्योंको १ आठक जलमें भिगोदेवे । फिर प्रातः-काल उसमें गरम कियाहुआ लोहभिट्टका टुकड़ा बुझावे । शीतल होनेपर शहद मिलाकर मिट्टीके बरतनमें ढाउ पीवे ॥ ४१ ॥

वटमातुलङ्गवेतसपल्लवकुशकाशमूलयष्ट्याद्वैः ।

सिद्धेऽम्भस्यग्निनिभाःकृष्णमृदःकृष्णसिकतावा ॥ ४२ ॥

तप्तानिनरकपालान्यथवानिर्वाप्यपाययेताच्छम् ।

अल्पपक्वशर्करामृतवल्ल्युदकंवातृपंहन्ति ॥ ४३ ॥

वट, विजौरा और बेतकी कोंपल, कुशा और कांसकी जड़ें तथा मुलैठी इन सबसे सिद्ध किये जलमें काली मट्टीका ढेला या काले रेतको गरम करके बुझावे अथवा नवीन घड़ेके ठिकरेको गरमकर इस जलमें बुझावे । इस जलको शीतलकर नितार पीनेसे तृषा दूर होतीहै । अथवा गिलोयका जल थोड़ीसी खांड मिला पीनेसे पित्तकी तृषा शान्त होतीहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

क्षीरवतामधुराणांशीतानांशर्करामधुविमिश्राः ।

शीतकपायामृदुभृष्टसंयुताःपित्ततृष्णाघ्नाः ॥ ४४ ॥

वटादि क्षीरी वृक्षांका अथवा मधुरगणकी औषधियोंका शीत कपाय गरम मट्टीसे बुझाकर शीतल व शहदयुक्त कर पीवे तो पित्तकी तृषा शान्त होतीहै ॥ ४४ ॥

आमजतृषाका यत्न ।

व्योषवचाभल्लातकतिक्तकपायास्तथामतृष्णायाम् । यच्चोक्तंकफजा-
यांवम्यांतच्चैवकार्यंस्यात् ॥ ४५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, भिलावा और तिक्त द्रव्योंका काय आमजन्य तृषामें हितकारी है । तथा कफजनित वमननाशक योग भी आमजनित तृषाको दूर करतेहैं ॥ ४५ ॥

कफानुगत तृषाकी चिकित्सा ।

स्तम्भारुच्यविपाकालस्यच्छर्दिपुकफानुगांतृष्णाम् । ज्ञात्वादधि-
मधुतर्पणलवणोष्णजलैर्वमनमिष्टम् ॥ ४६ ॥ दाडिममदनफलं
वाप्यन्यतमकपायमथलेहम् । पेयमथवाहरिद्राम्बुशर्कराक्षौद्रसं-
युक्तम् ॥ ४७ ॥

यदि तृषामें स्तम्भ, अरुचि, अधिपाक, आलस्य और वमन भी हो तो उस तृषाको कफानुगत समझ, दही, शहद, तर्पण, लवण और उष्ण जल मिलाकर वमन कराना हितकारक है । कफानुगत तृषामें अनार और मैमफलका काय पिलाकर वमन कराना हितकारी है । अथवा अन्य वमनकारक काय अवलेह हल्दीका काय शहद और खांड मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

क्षयकासजतृषाकी चि० ।

क्षयकासेनतुतुल्याक्षयतृष्णायागरीयसीनृष्णाम् । क्षीणक्षतशोप-
हितैस्तस्मात्ताभेपजैःशमयेत् ॥ ४८ ॥

क्षयकी खांसीमें जो तृषा होतीहै वह तृषा क्षयके समान ही उत्कट होतीहै । क्षयकी खांसी और तृषाकी चिकित्सा भी तुल्य ही है । इसलिये क्षीण और क्षतज रोगीकी तृषा तथा शोपरोगीकी तृषामें उन उन रोगोंके लिये जो उपयोगी द्रव्य हैं उनसे चिकित्सा करना चाहिये ॥ ४८ ॥

मद्यपानजतृषाका यत्न ।

पानतृषार्त्तःपानन्त्वर्द्धोदकमम्ललवणगन्धाढ्यम् ।

मद्यपानसे उत्पन्न हुई तृषामें खटाई, लवण और सुगंध मिलाकर आधा जल मिली मद्यका ही पान कराना चाहिये ।

सहसा शीतजल स्नानजतृषाका यत्न ।

शशिरस्नातः पानंमद्याम्बुगुडांबुवातृषितः ॥ ४९ ॥

गर्माग्निहृष्ट शीघ्र शीतल जलमें स्नान करलेनेसे जो तृषा उत्पन्न हो उसमें जलमिश्रित मद्य अथवा गुडोदक पीना चाहिये ॥ ४९ ॥

क्षुधाजनित और गर्वन्नजतृषाका यत्न ।

भक्तोपरोधतृषितःस्नेहतृषार्थोथवातनुयवागूम् । प्रपिवेद्गुरुणातृषि-
तोभुक्तेनोद्धरेद्भुक्तम् ॥ ५० ॥ मद्याम्बुवाम्बुचोष्णंवलवांस्तृषितः
समुल्लिखेत्पीत्वा । मागधिकाविशदमुखःसशर्करंवापिवेन्म-
न्थम् ॥ ५१ ॥

भोजनके समय भोजन न करनेसे जो प्यास उत्पन्न हो अथवा जो प्यास स्नेहपान करनेसे उत्पन्न हो उसमें पतली यवागृका पीना तृषाको शान्त करताहै । और भारी अन्नके भोजन करनेसे जो तृषा उत्पन्न हो तो भोजन किये अन्नको वमन द्वारा निकाल देना चाहिये । यदि रोगी बलवान् हो तो मद्य और जल पिलाकर अथवा गरम जलः पिलाकर वमन करावे । वमनके अनन्तर पीपलको मुखमें चवावे । जिससे मुख स्वच्छ होजाय फिर शर्करायुक्त मद्य पिलावे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

तृषामें तालुशोषका यत्न ।

वलवांस्तुतालुशोषेपिवेद्भृतंघृष्यमनुमद्यम् । सर्पिर्भृष्टंक्षीरंमांसरसां-
श्चावलःस्निग्धान् ॥ ५२ ॥

यदि बलवान् रोगीका प्यासमें तालुशोष हो तो उसको घृष्यघृत पिलाकर ऊपरसे मद्य पिलावे । यदि दुर्बल मनुष्यका तालुशोष हो तो उसमें घृतयुक्त दूध पिलावे अथवा स्निग्ध मांसर्मांका पान करावे ॥ ५२ ॥

अतिरूक्षकी तृषाका यत्न ।

अतिरूक्षं दुर्बलानां तर्पणं शमयेन्नृणामिहाशुपयः । छागोवाघृतभृष्टः
शीतोमधुरोरसो हृद्यः ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य अतिरूक्ष और दुर्बल हो तो उसको दूध पिलाकर तृषाको शीघ्र शान्त करे अथवा बकरेके मांसका रस वा अन्य हृद्य, मधुर मांसरसोंको घृतमें छौंकर पिलावे ॥ ५३ ॥

स्निग्धेऽन्नेभुक्तेयातृष्णास्यात्तांगुडाम्बुनाशमयेत् ।

तर्पणमूर्च्छाभिहतस्य रक्तपित्तापहैर्हन्यात् ॥ ५४ ॥

स्निग्ध अन्नके भोजनसे जो तृषा उत्पन्न हो उसमें गुडका शरवत पीनेसे तृषा शान्त होती है । मूर्च्छायुक्त रोगीकी तृषामें रक्तपित्ताशक योगोंका प्रयोग करना चाहिये ५४ शीतमुष्णश्च जलं कुत्र देयं वर्जवाकुत्रेत्याह ।

तृषामें कहीं शीतल, और कहीं गरम जल देना चाहिये । जिस स्थानमें जैसा जल देना चाहिये अथवा न देना चाहिये सो आगे कहतेहैं ।

छर्द्यम्लदाहमूर्च्छातमः क्लममदात्ययास्त्रविपपित्ते ।

शस्तं स्वभावशीतं शृतशीतं सन्निपातेऽम्भः ॥ ५५ ॥

छर्दि, अम्लपित्त, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, मदात्यय, रक्तपित्त और विपवि-कारमें स्वाभाविक शीतल जल देना हितकारी है और सन्निपातमें जलको पकाकर शीतल कर देना चाहिये ॥ ५५ ॥

हिक्काश्वासनवज्वरपीनसघृतपीतपार्श्वगलरोगे ।

कफवातकृतेस्त्यानेसद्यः शुद्धेहितमुष्णम् ॥ ५६ ॥

हिचकी, श्वास, नवीन ज्वर, प्रतिश्याय रोगमें और घृतपानके अनन्तर प्यास लगे तो तथा पार्श्वशूल, गलरोग, कफ, वातके रोग, कफजनित अंगोंकी जकडन और वमन विरेचनादिसे सद्यः शुद्धहृद्य मनुष्यको गरम जल ही देना चाहिये ॥ ५६ ॥

जलका निषेध

पाण्डुरपीनसमेहगुल्ममन्दातिसारेषु ।

प्लीहचिंतोयंहितं कामशत्रयंपिवेदल्पम् ॥ ५७ ॥

पाण्डुरोग, उदररोग, पीनस, प्रमेह, गुल्म, मंदाभि, अतिसार और प्लीहरोगमें जलका पीना अहित है अर्थात् जल नहीं पीना चाहिये । यदि न रह सके तो बहुत थोड़ा पीना चाहिये ॥ ५७ ॥

जलकी आज्ञा ।

पूर्वामयातुरःसंदीनस्तृष्णादितोजलंकाङ्क्षन् ।
नलभेतसचेन्मरणमाश्वेषान्पुयाद्दीर्घरोगंवा ॥ ५८ ॥

तस्माद्धान्याम्बुपिवेत्तृष्यत्रोगीसशर्कराक्षौद्रम् ।

यद्वातस्यान्यत्स्यात्सात्स्थंरोगस्यतच्चेष्टम् ॥ ५९ ॥

यदि रोगसे व्याकुल हुए दीन रोगीको तृपासे पीड़ित होनेपर जलकी इच्छा करते हुए भी जल न दिया जायगा तो वह रोगी शीघ्र मृत्युको प्राप्त होजायगा । अथवा किसी महारोगको प्राप्त होगा । इसलिये रोगीको तृपाके समय धनियेका जल अथवा शहद और मिसरीका जल वा उसके रोगानुकूल जिस प्रकारके द्रव्योंसे सिद्ध किया जल हित हो सो जल देना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

तस्यांविनिवृत्तायांतज्जन्योपद्रवःसुखंजेतुम् ।

तस्मात्तृष्णांपूर्वजयेद्बहुभ्योऽपिरोगेभ्यः ॥ ६० ॥

तृपाकी निवृत्ति होनेपर तृपाजनित उपद्रव भी मुखपूर्वक शान्त हो सकते हैं । इसलिये बहुतसे उपद्रवोंमें पहिले तृपाको ही जीतना चाहिये ॥ ६० ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

हेतुर्यथाग्निपवनौकुरुतःसोपद्रवश्चपञ्चानाम् ।

तृष्णानांपृथगाकृतिरसाध्यतासाध्यसाधनञ्चोक्तम् ॥ ६१ ॥

इतिश्रीचर०चिकि०तृष्णाचिकित्सितंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक है कि इस तृष्णाचिकित्सित अध्यायमें तृष्णाके हेतु, जिस प्रकार अग्नि और पवन तृपाको उत्पन्न करतीहै । पांचों प्रकारकी तृपाओंके उपद्रवों सहित लक्षण, साध्य, असाध्यता और चिकित्सा यह सब वर्णन कियाहै ॥ ६१ ॥

इति श्रीच०चि०स्थाने प्र०भा०टी०तृष्णाचिकित्सितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथातो विपचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम विपचिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान्
वात्रेयजी कहनेलगे ।

प्रागुत्पत्तिगुणान्योनिवेगान्लिङ्गान्युपक्रमान् ।

विपस्यन्वतःसम्यग्भिवेशनिबोधमे ॥ १ ॥

हे अभिवेश ! विपकी प्राक् उत्पत्ति, विपोंके गुण, विपोंकी योनि, विपोंके
वेग, तथा पृथक् २ लक्षण और उपक्रम (चिकित्सा) को तुम मुझसे भल प्रकार
श्रवण करो ॥ १ ॥

विषोत्पत्ति ।

अमृतार्थसमुद्रेतुमध्यमानेसुरासुरैः । जज्ञेप्रागमृतोत्पत्तेःपुरुषोघोर-
दर्शनः ॥ २ ॥ दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रोहरित्केशोऽनलेक्षणः । जगद्वि-
षण्णंतदृष्ट्वातेनासौविपसंज्ञितः ॥ ३ ॥

जब देवता और राक्षसोंने अमृत निकालनेके लिये समुद्रका मयन कियाया
उस समय अमृत निकालनेके पहिले एक भयंकर रूपकी व्यक्ति निकली उसके चार
दाढ, हरे बाल, आगके समान नेत्र थे और वह तेजसे दीप्तिमान् थी उस व्यक्तिको
देखकर सब जगत् देव और राक्षस भी विषण्ण होगये इसलिये इसका विप नाम
पडा ॥ २ ॥ ३ ॥

विषकी द्विविध योनि ।

जङ्गमस्थावरायांतद्योनौब्रह्मान्ययोजयत् ।

तदम्बुसम्भवंतस्माद्विविधंपावकोपमम् ॥ ४ ॥

इस विपको ब्रह्माने स्थावर और जंगम इन दो योनियोंमें स्थापन किया इस लिये
समुद्रसे निकल आधिके समान यह विप दो प्रकारका हुआ ॥ ४ ॥

विपके वेगगुणादि ।

अष्टवेगं दशगुणंचतुर्विंशत्युपक्रमम् । तद्वर्षास्वम्बुयोनित्वात्सह्ये
दंगुडवद्गतम् ॥ ५ ॥ सर्पत्वम्बुधरापायेतदगस्त्योहिनस्तित्च । प्रया-
तिमन्दवीर्यत्वंविपंतस्माद्धनात्यये ॥ ६ ॥

विपके आठ वेग होतेहैं और दश गुण, तथा वीस प्रकारका उपक्रम (चिकित्सा)
है । वह विप अम्बुयोनि होनेसे वर्षा ऋतुमें उसका कलेद गुडकी समान पतला होकर
फैलताहै । फिर अगस्त्यके उदय होनेपर वह कलेद नष्ट होजाताहै इसीलिये शरद ऋतु,
आनेपर विपे मंदवीर्य होजाताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

जंगमविषकी योनि ।

सर्पाःकीटोन्दुरालूतावृश्चिकाग्रहगोधिकाः । जलौकामत्स्यमण्डूकाः
शलभाःसकृकण्टकाः ॥ ७ ॥ श्वसिंहव्याघ्रगोमायुतरक्षुनकुला-
दयः । दंष्ट्रिणोऽमीविपंतेषांदंष्ट्रोत्थंजङ्गमंमतम् ॥ ८ ॥

सांप, कीट, मूषक, मकड़ी, विच्छू, छिपकली या कृकलास, जोंक, मछली, मेंढक, कलभ (भूँड) कृकंटक, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, गीदड, तरख और नकुल आदि दांतसे काटनेवाले जानवरोंकी डाढ़ोंसे अर्थात् काटनेसे जो विष उत्पन्न होताहै उसको जंगम विष कहतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

मुस्तकंपौष्करंक्रौञ्चवत्सनाभंवल्लाहकम् । कर्कटंकालकूटेन्द्रकरवीर-
रकसंज्ञकम् ॥ ९ ॥ गालवेन्द्रायुधंतैलमेघकंकुशपुष्कम् । रोहिषं
पुण्डरीकाक्षलाङ्गलक्ष्यज्जनाभकम् ॥ १० ॥ सङ्कोचंमर्कटंशृङ्गीवि-
पंहालाहलंतथा । एवमादीनिचान्यानिमूलजानिस्थिराणिच ॥ ११ ॥

मुस्तक, पौष्कर, क्रौंच, वत्सनाभ, बलाहक, कर्कट, कालकूट, इन्द्रकरवीरक, गालव, इन्द्रायुध, तैलविप, मेघक, कुशपुष्पक, रोहिष, पुण्डरीकाक्ष, लांगली, अंजनाभ, संकोच, मर्कट, शृंगी (सिंगिया), हालाहल तथा और भी इसी प्रकारके जो विष हैं उनको मूलज और स्थिर कहते हैं । शंखिया, हरताल आदि धातुविष हैं । इसी प्रकार अन्य भी कोई पुष्पविष, कोई फलविष, कोई त्वचाविष, कोई क्षीरविष आदि विष हैं । इन सबको स्थावर विष कहतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

गरविष ।

गरसंयोगजश्चान्यद्वरसंज्ञगदप्रदम् ।

कालान्तरविपाकित्वान्नतदाशुहरत्यसून् ॥ १२ ॥

इनसे अलावा संयोगसे उत्पन्न हुआ और रोगोंको करनेवाला गरनामक विष होताहै । यह विष कालान्तरमें जाकर अपने विकारोंको करताहै, और विषोंके समान शीघ्र प्राणोंको नष्ट नहीं करता ॥ १२ ॥

जंगम विषके कार्य ।

निद्रांतन्द्राङ्गमंदाहंसपाकंलोमहर्षणम् ।

शोफंचैवातिसारश्चजनयेज्जङ्गमंविषम् ॥ १३ ॥

निद्रा, तन्द्रा, ङ्गम, दाह, पाक, रोमहर्ष, सूजन और अतिसार यह जंगमविषके कार्य हैं ॥ १३ ॥

स्थावरविपके कार्य ।

स्थावरंतुज्वरंहिकांदन्तहर्षगलग्रहम् ।

फेनवम्यरुचिश्वासमूर्च्छाश्चजनयेद्विपम् ॥ १४ ॥

ज्वर, हिचकी, दंतहर्ष, गलेका रुकजाना, मुखसे झाग गिरना, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा यह स्थावर विपके कार्य हैं अर्थात् इन उपद्रवोंको स्थावर विप करताहै ॥ १४ ॥

विपकी गति ।

जङ्गमंस्थादधोभागमूर्ध्वभागंतुमूलजम् ।

तस्मादंष्ट्रिविपंमौलंहन्तिमौलंचदंष्ट्रिजम् ॥ १५ ॥

जंगमविपकी गति नीचेको होतीहै और मूलजविपकी गात ऊपरको गमन करताहै दंष्ट्रिविप अर्थात् जंगमविप मूलविपको नष्ट करताहै और मूलजविप दंष्ट्रिविपको नष्ट कर देताहै ॥ १५ ॥

विपके ८ वेग ।

तृणमोहदन्तहर्षप्रसेकवमथुक्लुमाभवन्त्यादौ । वेगेरसप्रदोपादसृ-

क्वप्रदोपाद्वितीयेच ॥ १६ ॥ वैवर्ण्यभ्रमवेपथुमूर्च्छाजृम्भाङ्गचिमि-

चिमातमकाः । दुष्टपिशितातृतीयेमण्डलकण्डूश्वयथुकोठाः ॥

॥ १७ ॥ वातादिजाश्रुतुर्थेछर्दिदाहाङ्गशूलमूर्च्छाद्याः । नीलादी-

नांतमसश्चदर्शनपञ्चमेवेगे । पष्टे हिकाभङ्गःस्कन्धेस्यानुत्तमेऽ-

ष्टमेमरणम् ॥ १८ ॥ नृणां-

विपके प्रथम वेगमें मनुष्योंका रसधातु प्रदूषित होकर प्यास, मोह, दंतहर्ष, मुखसे लार गिरना, वमन और क्लम यह होतीहै । विपके द्वितीय वेगमें रुधिर दूषित होकर शरीरकी विवर्णता भ्रम, कंप, मूर्च्छा, जंभाई, अंगोंमें चिमचिमाहट और तमकशाम होताहै । विपके तृतीय वेगमें मांस दूषित होकर गीरपर मण्डल, रुजली, सूजन और चक्रेत्से उत्पन्न होताहै । विप चौथे वेगमें पत्रवागयमें पहुँच जाताहै । उससे पातादे दूषित होकर छर्दि, दाह, अंगशूल और मूर्च्छा आदिक उपद्रव होतीहै । विपके पांचवें वेगमें सन जगत् नीलवर्णका दिखाई देना और नेत्रोंके आगे धूपकार छाजाना यह लक्षण होतीहै । छठे वेगमें हिचकी उत्पन्न होतीहै । सातवें वेगमें दोनों स्कंधोंका खुलकर टूले पडजाना और आठवें वेगमें मनुष्यकी मृत्यु होताहै । यह आठ वेग स्थावर विपके कर्हे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

जंगमविपके वेग ।

चतुष्पदादेश्चतुर्थकेपक्षिणांत्रितये ॥ १९ ॥ सीदत्याद्येभ्रमति-
चचतुष्पदावेपतेततःशून्यः । मन्दाहारश्चततोम्रियतेश्वासेनहि-
चतुर्थे ॥ २० ॥

चतुष्पद आदि जीवोंके विपसे चौथे वेगमें मृत्यु होजातीहै । पक्षियोंके विपसे तीसरे वेगमें मृत्यु होतीहै । चतुष्पादोंके विपके प्रथम वेगमें अंग सुन्नसे होजातेहैं । द्वितीय वेगमें भ्रम और कंप उत्पन्न होजाताहै । तीसरे वेगमें सृजन और आहारमें रुकावट होतीहै चौथेमें श्वास उत्पन्न होकर मृत्यु होजातीहै ॥ १९ ॥ २० ॥

ध्यायतिविहगःप्रथमेवेगेप्रभ्राम्यतिद्वितीयेतु ।

स्वस्तांगश्चतृतीयेविपवेगेयातिपञ्चत्वम् ॥ २१ ॥

पक्षियोंके प्रथम विपके वेगसे ध्यान बंध जाताहै, दूसरे वेगमें भ्रम और अंगोंकी शिथिलता होजातीहै तथा तीसरे वेगमें मनुष्यकी मृत्यु होजातीहै ॥ २१ ॥

विपके दश गुण ।

लघुरूक्षमाशुविशदंब्यवायितीक्ष्णविकासिसूक्ष्मश्च ।

उष्णमनिर्द्वैश्यरसंदशगुणमुक्तंविपंतज्ज्ञैः ॥ २२ ॥

विपमें-लघु, रूक्ष, आशुकारी, विपद, व्यवायी, विकासी, सूक्ष्म, उष्ण तथा अनिर्द्वैश्य रस यह दश गुण होतेहैं ॥ २२ ॥

रौक्ष्याद्वातमशैत्यात्पित्तसौक्ष्म्यादसृक्प्रकोपयति । कफमव्यक्तर-

सत्त्वादन्नरसांश्चानुवर्त्तेशीघ्रम् ॥ २३ ॥ शीघ्रंब्यवायिभावादाशु

व्याप्नोतिकेवलंदेहम् । तीक्ष्णत्वान्मर्मघ्नंप्राणघ्नंतद्विकासित्वात् ॥

॥ २४ ॥ दुरुपक्रमंलघुत्वाद्वैश्यात्स्यादसक्तगतिदोषम् । दोष-

स्थानप्रकृतीःप्राप्यान्यतमं ह्युदीरयति ॥ २५ ॥

विप-रूक्षतासे वायुको, उष्णतासे पित्तको और सूक्ष्मतासे रक्तको कुपित कर-
ताहै । अव्यक्त रस होनेसे कफको कुपित करताहै तथा अन्यरसका शीघ्र अनुगामी
होजाताहै व्यवायी होनेसे संपूर्ण शरीरमें शीघ्र व्यापक होजाताहै । तीक्ष्ण होनेसे
मर्मस्थानोंको हनन करताहै । विकाशी होनेसे प्राणोंको नष्ट करदेताहै । इन सब
कारणोंसे दुरुपक्रम अर्थात् दुश्चिकित्स्य होताहै । लघु और विशद होनेसे अनि-
वार्यगति होताहै । वातादि दोषोंमें जिस दोषकी प्रकृतिवाला मनुष्य हो विप

उसी दोषके स्थान और प्रकृतिको प्राप्त होकर उसी दोषको उदीर्ण कर देताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

वातादिस्थानमें विषके लक्षण ।

स्याद्वातिकस्यवातस्थानेकफपित्तलिङ्गमीपत्तु ।

तृणमूर्च्छारुचिमोहगलग्रहच्छर्दिफेनादि ॥ २६ ॥

जैसे-विष वातप्रकृतिवाले मनुष्यके शरीरमें पहुंचकर अथवा वातके स्थानमें पहुंचकर वातजनित तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, मोह, गलेका रुकजाना, वमन और फेन आदिक उपद्रवोंको उत्पन्न करताहै तथा उस समय पित्त और कफके लक्षणोंको अल्प प्रकाशित करताहै ॥ २६ ॥

पित्ताशयस्थितंपैत्तिकस्यकफवातयोर्विषंतद्वत् ।

तृट्कासज्वरवमथुक्लमदाहतमोऽतिसारादि ॥ २७ ॥

पित्तप्रधान मनुष्यके शरीरमें विष पित्तस्थानमें पहुंचकर वात और कफके अन्य लक्षणोंको करताहै तथा प्यास, खांसी, ज्वर, वमन, क्लम, दाह, अंधकार और अतिसार आदिक पित्तके उपद्रवोंको करताहै ॥ २७ ॥

कफदेशगतश्चकफस्यदर्शयेद्वातपित्तयोश्चैतत् ।

लिङ्गंश्वासगलग्रहकण्डूलालावमथ्वग्निदि ॥ २८ ॥

इसी प्रकार कफस्थानमें प्राप्तहुआ विष वात और पित्तके अल्प लक्षणोंको दिखाताहै तथा श्वास, गलग्रह, खुजली, मुखसे लार गिरना और वमन आदि कफके लक्षणोंको उत्पन्न करताहै ॥ २८ ॥

दूषीविषके कर्म ।

दूषीविषंतुशोणितदुष्टकिटिभकोटादिरक्तलिङ्गश्च ।

विषमेकैकंदोषंसन्दूष्यहरत्यसूनेवम् ॥ २९ ॥

दूषीविष-हृषिको दुष्ट करके किटिभकोठ आदि रक्तविकारोंके लक्षणोंको करताहै । विष इसप्रकार एक एक दोषको विगाडकर प्राणोंको नष्ट कर देतेहैं ॥ २९ ॥

क्षरतिविषतेजसासृक्तत्त्वानिनिरुध्यमारयतिजन्तुम् । पीतंमृत-
स्यहृदितिष्ठतिदष्टविद्धयोर्दशदेशेऽस्यात् ॥ ३० ॥

विषके तेजसे रक्त क्षरण होने लगताहै विष, छिद्रोंको रोककर जीवको मार-
डालताहै । पीयाहुआ विष मरेहुए मनुष्यके भी हृदयमें टिका रहताहै । किसी जानव-
रके काटनेसे अथवा विषैले तीर आदिसे वेधन होनेसे विष विशेषरूपसे दशस्थानमें
रहताहै ॥ ३० ॥

विषसे मनुष्यकी मृत्युके लक्षण ।

नीलौष्ठदन्तशैथिल्यकेशपतनाङ्गभङ्गविक्षेपाः । शिशिरैर्नलोमह-
यौनाभिहतेदण्डराजीच ॥ ३१ ॥ क्षतजंक्षताच्चनायात्युक्तान्येता-
निमरणलिंगानि । एभ्योऽन्यथाचिकित्सातेषाञ्चोपक्रमाऽशृ-
णुमे ॥ ३२ ॥

होठोंका नीलवर्ण होना, दांतोंका शिथिल पडजाना, वालोंका गिरना, अंगोंकी
संधियोंका ढीला पडजाना, अंगका जिघर तिघर अपने २ स्थानमें शिथिलरूपसे
गिरजाना, बर्फ आदि शीतल पदार्थ डालनेपर भी रोमाञ्च न होना, तीक्ष्ण डण्ड
आदिसे चोट मारनेसे भी चोटका दाग न पडना, शस्त्रद्वारा काट देनेपर भी क्षतस्थानसे
रुधिर न निकलना इन लक्षणोंके होनेसे विषग्रस्त मनुष्यके मृत्युके लक्षण जानना ।
जिस मनुष्यके यह लक्षण न हों उसकी जिस प्रकार चिकित्सा करना चाहिये सो
श्रवणकरो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

विषके २४ उपक्रम ।

मन्त्रारिष्टोत्कर्त्तननिष्पीडनचूपणाग्निपारियेकाः । अवगाहनरक्त-
मोक्षणव्रमनविरेकोपधानानि ॥ ३३ ॥ हृदयावरणाञ्जननस्यधू-
मलेहौषधप्रशमनानि । प्रतिसारणंप्रतिविषंसंज्ञासंस्थापनंलेपः ॥
॥ ३४ ॥ मृतसंजीवनमेवचविंशतिरेतेचतुर्भिरभ्यधिकाः । स्युरुप-
क्रमायथायत्रयोज्याःशृणुतथातान् ॥ ३५ ॥

मंत्रद्वारा विष उतारना । दंशस्थानको दोनों ओरसे कसकर बांधदेना । जिस
स्थानमें डसाहो उसको काटना । दवाकर रुधिर निकालदेना । मुख द्वारा या सिंगी
आदिसे विषको चूसलेना । अग्निसे दागदेना । तथा परिसेचन, अवगाहन, रक्तमोक्षण,
षमन, विरेचन, उपधान, हृदयावरण, अंजन, नस्य, धूम, लेह, औषध, प्रशमन,
प्रतिसारण, प्रतिविष, संज्ञास्थापन, लेप तथा मृतसंजीवन यह चौबीस प्रकार विषोंकी
चिकित्साके हैं । इन चौबीसोंमेंसे जो चिकित्सा जिस जगह करनी चाहिये उसका
श्रवणकरो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

जंगमविषकी सामान्यचिकित्सा ।

दंशात्तुविषंदष्टस्यविसृतत्रैलिकांभिपक्वद्धा । निष्पीडयेन्मृशंदंश-
सुद्धरेन्मर्मत्रर्जवा ॥ ३६ ॥ तंदंशंवाचूपेन्मुखेनयवचूर्णपांशुपूर्णत ।
प्रच्छन्वेधजलोकःशृंगैःस्लाव्यंततोरक्तम् ॥ ३७ ॥ रक्तेविषप्रदुष्टेदु-

प्येत्प्रकृतिततस्त्यजेत्प्राणान् । तस्मात्प्रघर्षणैरसृग्वर्त्तमानंप्रव-
र्त्यस्यात् ॥ ३८ ॥

हाय पांव आदि जिस स्थानमें किसी विषधर जंतुने काटाहो उस स्थानमें जहांतक विष फैलाहो उसके ऊपर नीचेसे विषस्थान छोडकर इधर उधर कसकर बांधदेवे । जिससे वह विष अधिक दूरतक न फैलसके । फिर दंशस्थानको चारोंओरसे पीडन-कर शस्त्रद्वारा काटकर दंशको निकालदेवे । और पीडन करके उस स्थानका रुधिर भी निकाले । यदि हाय पांवके सिवाय किसी अन्य स्थानमें काटाहुआ हो तो उस स्थानको थोडा २ चारों ओरसे काटकर विष निकालदेना चाहिये । परन्तु मर्म-स्थानमें शस्त्रद्वारा काटकर दंश निकालना उचित नहीं क्योंकि मर्मस्थानमें शस्त्रद्वारा कर्त्तन करनेसे मनुष्यके शीघ्र प्राण नष्ट होजातेहैं । यदि दोनों ओरसे बंधन करनेमें और दंशस्थानको काटनेमें दंशका निकालना असम्भव प्रतीतहो वा उस स्थानमें शस्त्रका लगाना उचित नहीं तो मुखमें यवोंका चूर्ण अथवा बालू भरकर काटेहुए स्थानको मुखद्वारा चूसकर थूक देना चाहिये मुखसे काटेहुए स्थानके विषको चूसनेसे पंहिले चूसनेवाले मनुष्यके मुखमें घृत भरकर तमाम मुखमें फेर वह घृत पीलेना चाहिये । इसके अनन्तर काटेहुए स्थानको मुखद्वारा चूसे (यदि मुखमें कोई छाला, व्रण आदि हो तो उस मनुष्यके विषस्थानको चूसना उचित नहीं) विष चूसनेके अनन्तर पछने लगाकर जोंक और सिंगी आदिसें रक्तको निकाल देना चाहिये । क्योंकि विषसे दूषित हुआ रक्त मनुष्यकी प्रकृतिको विगाड प्राणोंको नष्ट करदेताहै । इसलिये उस प्राणनाशक विषैले रक्तको निकालही देना चाहिये । यदि इस प्रकार रक्त यथोचित रीतिपर न निकले तो नीचे लिखेहुए द्रव्योंके प्रघर्षण द्वारा रक्तको निकाले ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

त्रिकटुगृहधूमरजनीपञ्चलवणाःसवार्त्तिकाः ।

घर्षणमतिप्रवृत्तेवटादिभिःशीतलैर्लेपः ॥ ३९ ॥

सांठ, मिर्च, पीपल, गृहधूम, हल्दी, पांचों लवण, बैंगन इन सबका चूर्ण कर काटेहुए स्थानपर घर्षण करे तो रक्त निकलने लगताहै । यदि रक्त अत्यंत निकलने लगे और वह बन्द न हो तो वटादि पंचवर्गका शीतल लेप करना चाहिये ॥ ३९ ॥

रक्तंहिविपाधानंवायुरिवाग्नेःप्रदेहसेकैस्तत् ।

शीतैःस्कन्दतितस्मिन्स्कन्नेव्ययंयातिविषवेगः ॥ ४० ॥

जैसे-वायु अग्निको चैतन्य कर सब जगह फैला देताहै । उसी प्रकार रक्तमें जब विष मिलजाताहै तो उस विषको रक्त भी संपूर्ण शरीरमें पहुंचा देताहै । क्योंकि

रक्त ही विषका आधान है विषके स्थानको शीतल लेप और अत्यंत शीतल द्रव्योंके परिसेचन करनेसे रक्त शीघ्र न फैलकर विष काटहुए स्थानमें ही टिका रहताहै ॥४०॥

विषवेगान्मदमूर्च्छाविषादहृदयद्रवाःप्रवर्तन्ते ।

शीतैर्निवर्तयेत्तान्नवीजयेल्लोमहर्षःस्यात् ॥ ४१ ॥

विषके वेगसे मद, मूर्च्छा, विषाद, हृदयका फडकना, अथवा गिरसा जाना यह लक्षण होतेहैं, इन सब उपद्रवोंको शीतल लेपकी क्रिया आदिकोंसे शान्ति होतीहै । काटेहुए स्थानमें शीतल लेप ही करने चाहिये । किन्तु पंखेकी पवन नहीं करनी चाहिये । अथवा पंखेकी पवन करनेसे रोमाश्च खडे होकर विष नहीं ठहर सकता । इसलिये शीतल लेपोंका करना ही हित है ॥ ४१ ॥

तरुरिवमूलच्छेदादंशच्छेदान्नवृद्धिमुपयाति । आचूपणमानयनं
जलस्यसेतुर्यथातथारिष्टाः । त्वङ्मांसगतोदाहोदहतिविपंस्तं-
वणंहरतिरक्तात् ॥ ४२ ॥

जैसे-जड़के काटदेनेसे फिर वह वृक्ष वृद्धिको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार दृष्ट-स्थानको काटकर दंश निकाल देनेसे विष वृद्धिको प्राप्त नहीं होसकता । दंशस्थानको चूसनेसे विष जड़से निकल जाताहै । काटेहुए स्थानको दोनों ओरसे किसी डोरी द्वारा कसकर बाँधदेनेसे वह विष इस प्रकार रुकजाताहै जैसे बाँध लगादेनेसे जल रुकजाताहै । जब विष त्वचा, मांसमें पहुँच जाय तो उसमें दाहकर्म करना विषको फूँकदेताहै । रक्त निकालदेनेसे रक्तगत विष निकल जाताहै ॥ ४२ ॥

पीयेहुये विषकी चिकित्सा ।

पीतंवमनैः सद्यो हरोद्विरेकैर्द्वितीयेतु ॥ ४३ ॥ आदौ हृदयं
रक्ष्यंतस्यावरणंपिबेद्यथालाभम् । मज्जानं मधुघृतगैरिकमथगो-
मयरसंवा ॥ ४४ ॥ इक्षुंसुपकमथवाकाकंनिष्पीड्यतद्रसंवा-
लदम् । छागादीनांवासृक्भस्ममृदंवापिबेदाशु ॥ ४५ ॥

जो विष तत्काल पीया गया हो उसको शीघ्र वमन कराकर निकालदेवे । विषके द्वितीय वेगमें विरेचन द्वारा उसे निकाल देना चाहिये । जिस मनुष्यने विष खायाहो अर्थात् विषयुक्त मनुष्यके हृदयकी पहिले रक्षा करना चाहिये । जिस प्रकार हृदयावरण हो अर्थात् विषसे हृदय छिपसके ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये । हृदयको विषसे बचानेके लिये यथालाभ मज्जा, मधु, घृत, गेरू, गोवर, ईखका रस, पकेहुए गन्धे या मकोपका रस अथवा अन्य बलदायक द्रव्य या बकरे आदिका रक्त, भस्म

मट्टी जो कुछ मिलसके वह श्टपट खालेना चाहिये । ताकि खाया पीया विष उस भुक्त पदार्थमें मिलजावे और शीघ्र असर न करनेपावे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

क्षारोऽगदस्तृतीयेशोफहरैल्लेखनंसमध्वम्बु ।

गोमयरसश्चतुर्थेवेगेसकपित्थमधुसर्पिर्भिः ॥ ४६ ॥

विषका तीसरा वेग होनेसे क्षार अगद और शोपनाशक लेखनद्रव्य और शहद युक्त जल पिलाकर वमन करना चाहिये । विषके चौथे वेगमें कैथ, शहद और घृत मिलाकर गोबरका रस पिलाना चाहिये ॥ ४६ ॥

काकाण्डशिरीषाभ्यांस्वरसेनाश्च्योतनमञ्जनेनस्यम् । स्यात्पञ्चमेऽ-
थपष्टेसंज्ञायाःस्थापनंकार्यम् । गोपित्तयुतारजनीमञ्जिष्ठामरिच-
पिप्पलीपानम् ॥ ४७ ॥

विषके पांचवें वेगमें काकाण्ड (महानिम्ब, वकायन) और सिरसका स्वरस नेत्रोंमें टपकाना चाहिये । तथा इसी रसकी नस्य (सूंवनी) लेना चाहिये । विषके छठे वेगमें संज्ञास्थापन (होश हवासमें रखने) का उपाय करना चाहिये । हल्दी, मजीठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण गोररोचनमें मिलाकर पीना, अंजन करना और नस्य लेना संज्ञाको स्थापन करताहै ॥ ४७ ॥

विषपानंदष्टानांविषपीतेदंशनञ्चान्ते ॥ ४८ ॥

यदि किसी प्रकार उपाय करनेसे भी विषग्रस्त रोगीको शान्ति न होसके वा यदि रोगीने स्थावर विष खायाहो और उसको किसी प्रकार होश न आवे तो उसको विच्छू या सांप आदि विषैले जानवरसे कटावे । और यदि कोई किसी विषधर जानवरके काटनेसे मरणासन्न हो और उसको किसी प्रकार शान्ति होना असम्भव प्रतीत हो तो उसको स्थावर विष पिलाना चाहिये ॥ ४८ ॥

शिंखिपित्तार्द्धयुतंस्यात्पलाशबीजमगदोमृतेषुमतः ।

वार्त्ताकुफाणितागारधूमगोपित्तनिम्बंवा ॥ ४९ ॥

जब रोगी विषके आठवें वेगमें विल्कुल मृततुल्य होजाय तो उसको मोरका पित्त १ भाग और ढाकके बीज २ भाग मिलाकर पान, लेपन, अंजन आदिमें प्रयुक्त करे तो वह रोगी होशमें आसकताहै । अथवा छोटा वैंगन, फाणित, गृहधूम, गोपित्त अथवा गौका पुरानाघृत, निम्बके पत्र इन सबको मिलाकर धूनी देना, अंजन करना, नस्य देना, पिलाना और लेप करना हितकारी है ॥ ४९ ॥

गोपित्तयुतैर्गुलिकाःसुरसाग्रन्थिद्विरजनीमधुकुष्ठैः ।

शस्तामृतेनतुशिरीषपुष्पकाकाण्डकरसैर्वा ॥ ५० ॥

तुलसी, वच, हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, कूठ इन सबको गौके पुराने घृतमें अथवा गोपित्तमें धोलकर प्रयोग करना भी हितकारी है । अथवा सिरसके फूल और वकायनके रसमें उपरोक्त तुलसी आदि छः ओषधियोंको घोटकर पिलाना, अंजन करना नस्य देना और लेप करना विपके सांतवें वेगको दूर करताहै ॥ ५० ॥

काकाण्डसुरसगवाक्षीपुनर्नवावायसीशिरीषफलैः ।

उद्धृष्टविपजलसूतेलेपौपधनस्यपानानि ॥ ५१ ॥

जिस रोगीको विपके वेगमें जल छिडकनेसे और बंधन आदि करनेसे भी चैतन्य प्राप्त न हो ऐसे रोगीको वकायन, तुलसी, इन्द्रायनकी जड़, पुनर्नवा, काकमांची (मकोष) और सिरसके फलोंको चारीक पीसकर लेपन, अंजन, नस्य और पिलानेमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ५१ ॥

संजीवनअगद ।

पृक्काप्लवस्थौण्यकाकाक्षीशैलेयरोचनास्तगरम् । ध्यामककुंकुममां-
सीसुरसाग्रैलालकुष्ठघ्न्यः ॥ ५२ ॥ बृहतीशिरीषपुष्पंश्रीवेष्टकपद्म-
चारटिविशालाः । सुरदारुपद्मकेशरसावरकमनःशिलाकौन्त्यः ॥

॥ ५३ ॥ जात्यर्कपुष्परसरजनीद्वयहिङ्गुपिप्पलीलाक्षाः । जलमु-
द्गपर्णिचन्दनमधुकमदनसिन्धुवाराश्च ॥ ५४ ॥ शम्पाकलोध्रमयू-
रकगन्धफलीनाकुलीविडङ्गाश्च । पुष्येसंहृत्यसमंपिष्ट्वागुलिकावि-
धेयाःस्युः॥५५॥ सर्वविपन्नोजयकृद्विपमृतसञ्जीवनोज्वरनिहन्ता ।
ध्रैयविलेपनधारणधूमग्रहणैर्गृहस्थश्च ॥५६॥ भूतविपजन्त्वलक्ष्मी-
कार्मणमन्त्राग्न्यशन्यरीन्हन्यात् । दुःस्वप्नस्त्रीदोषानकालमरणा-
दुचौरभयम् ॥ ५७ ॥ धनधान्यकार्य्यसिद्धिः श्रीपुष्ट्यायुर्विवर्द्ध-
नोधन्यः । मृतसञ्जीवनएपप्रागमृताद्ब्रह्मणाविहितः ॥ ५८ ॥

असवर्ग, केवटी, मोया, थूनेर, फिटकरी, छारछवीला, गोरोचन, तगर, रोहिप-
त्तण, केसर, जटामांसी, तुलसीकी भंजरी, इलायची, कुष्ठ (चोख, या पनवाडके
बीज), वडी कटेडी, सिरसके फूल, श्रीवास, पद्मचारटी, इन्द्रायनकी जड़, देवदारु,
पद्मकेसर, लाव, मनसिल, रेणुका, चमेली और आकके फूलोंका रस, हल्दी, दारु-

हल्दी, हींग, पीपल, लाख, नेत्रवाला, मुद्रपर्णी, चन्दन, मैनफल, मुलैठी, सम्भालू, अमलतास, पठानी लोध, मयूरक (नीलाथोथा, या अपामार्ग), गंधप्रियंगु, लाकुलीकंद और वायविडंग, इन सबको पुष्य नक्षत्रमें लाकर इकट्ठे करे । सबको समभाग लेकर जलमें पीस, गोलियें बनावे । इन गोलियोंको पास रखनेसे, लेप करनेसे, जलमें विस-
कर पीनेसे, सूँघनेसे अथवा इनका धूम पीनेसे अथवा धूनी देनेसे सब प्रकारके विप-
नष्ट होकर रोगीको चैतन्यता प्राप्त होजाती है यह अगद विपसे मृतकप्राय मनुष्यों-
कोभी संजीवनेस्वरूप है । इन अगदको घरमें रखनेसे भूत, विपधरजीव, अलक्ष्मी,
अविचार, मंत्र, अग्नि, वज्र, शत्रु, दुःस्वप्न, स्त्रीदोष, अकाल मृत्यु, पानीका भय और
चोरभय, कोई भी असर नहीं करसकता । तथा धनधान्यकी वृद्धि, कार्यसिद्धि, लक्ष्मी,
पुष्टि, वर्षा और आयुकी वृद्धि होतीहै । इस घन्य मृतसंजीवन अगदको ब्रह्माजीने
अमृतकी उत्पत्तिसे पहिले निर्मित किया था ॥ ५२॥५३॥५४॥५५॥५६॥५७॥५८॥

विषके अन्य उपचार ।

मन्त्रैर्धमनीवन्धोऽपामार्जनंकार्यमात्मरक्षाच ।

दोषस्यविषयस्यस्थानेस्यात्तजयेत्पूर्वम् ॥ ५९ ॥

जिस स्थानमें विपधर जीवने काटाहो उस स्थानको छोडकर उसके इधर उधर
दोनों ओर कसकर बंध लगादेना चाहिये । बांधेनेसे वह विप धमनियों द्वारा संपूर्ण
शरीरमें नहीं फैलसकता बांधते समय विपनाशक मंत्रोंका उच्चारण करताहुआ बंध
लगावे और मंत्रोंके साथ जलद्वारा रोगीकी आत्मरक्षाके लिये मार्जन करे यह तो हुई
जंगमविपकी क्रिया और स्थावर विप जिस स्थानमें पहुंचा हो पहिले उस स्थानकी
जीतलेना चाहिये अर्थात् वातादि दोषोंमेंसे जिस दोषके स्थानमें विप पहुंचे पहिले उस
दोषके जीतनेका यत्न करना चाहिये ॥ ५९ ॥

वातस्थानेस्वेदोदधानतकुष्ठकल्कपानञ्च । घृतमधुपयोऽम्बुपानाव-
गाहसेकाश्चपित्तस्थे ॥ ६० ॥ क्षारागदःकफस्थानगतेस्वेदस्तथाशिं-
राव्यधनम् । दूषीविपेऽथरक्तस्थितेशिराकर्मपञ्चविधम् ॥ ६१ ॥
भेषजमेवंकल्प्यंभिषग्विदात्सर्वदालक्ष्यम् । स्थानंजयेच्चपूर्वस्था-
नस्थस्याविरुद्धञ्च ॥ ६२ ॥

यदि विप वातस्थान अर्थात् पक्वाशयगत हो तो पत्तीना देना तथा दहीके साथ
कूठ और तगरका कल्क सेवन कराना चाहिये । यदि विप पित्तस्थानमें हो तो घृत
शहद, दूध और जलका पान तथा अवगाहन और सेचन करना चाहिये । यदि विप
कफस्थानमें पहुंच गया हो तो क्षारागदका प्रयोग और स्वेदन तथा शिरावेधन करना

उचित है । यदि दूषीविष रक्तगत हो तो शिरावेधन और पांच प्रकारके शोधनादि-
कर्म करना चाहिये । इस प्रकार वैद्यकी संपूर्ण अवस्था विचारकर चिकित्साकी
कल्पना करना चाहिये । पहिले तो विषके स्थानको जीतलेना चाहिये । फिर जिसके
स्थानमें विष पहुंचा हो अथवा जिस स्थानके जीतनेसे विष नष्ट होताहो उसकी
चिकित्सा करे । परन्तु मर्मस्थानादिकों पर विरुद्ध असर नहीं होना चाहिये । अथवा
स्थान विरुद्ध चिकित्सा नहीं करना चाहिये ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

विषदूषितकफमार्गःस्रोतःसंरोधरुद्धवायुश्च । मृतइवइवसेन्मर्त्यः
स्यादसाध्यलिङ्गैर्विहीनश्च ॥ ६३ ॥ चर्मकपायाःकल्कंविल्वसमंमू-
र्धिकाकपदमस्य । कृत्वाकुर्यात्कटभीकटुकटूफलप्रधमनश्च ॥ ६४ ॥

विषसे कफके मार्ग दूषित होजाय स्रोतोंके रुकजानेसे वायु रुद्ध होकर मनुष्य मरे-
हुएके समान इवासीको त्यागदेवे । परन्तु उसमें और असाध्य लक्षण न हों तो उसके
मस्तकमें काकके पदके समान चिह्न बनाकर अर्थात् काकके पावोंके सदृश तीन रेखा
वाले शस्त्र द्वारा लेखनकर उसके ऊपर चर्मकपा (सातला) का कल बनाकर एक
विल्वके समान उस काकपदाकारके ऊपर लगावे । तथा कटभी, कटू और कायफलके
चूर्णका नसवार देवे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

छागगव्यमाहिपाविककौकुटाजमांसम् । दद्यात्काकपदोपरिमत्ते
विषेणैवसहसा ॥ ६५ ॥ घ्राणाक्षिकर्णजिह्वाकण्ठनिरोधेषुकर्मन-
स्तःस्यात् । वार्त्ताकुबीजपूरकज्योतिष्मत्यादिभिःपिष्टैः ॥ ६६ ॥

जो मनुष्य विषसे सदसा बेहोश होजाय तो उसके मस्तकपर काकपदाकार शस्त्र-
द्वारा लेखन कर ऊपर वकरी, भैंस, मेढा, मुर्गा और जलसंचारी जीवोंका मांस पतितकर
रखदेवे । अथवा गौके गोबरकी पिण्डी रखदे । यदि रोगीका कण्ठ रुकजाय तो नाक,
कान, नेत्र और जिह्वामें बडी कटेलीके फलोंका रस और :विजौरा, मालकांगुनी
आदिका रस निकालकर टपकावे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अञ्जनमक्ष्युपरोधेकर्त्तव्यं वस्तमूत्रपिष्टैस्तु ।

दारुव्योपहरिद्राकरवीरकरञ्जसुरसैस्तु ॥ ६७ ॥

यदि विषग्रस्त रोगीके नेत्र बंद होजाय तो दारुहल्दी, त्रिकुटा, हल्दी, कनेर,
करंज और तुलसी इन सबको वकरीके मूत्रमें पतितकर अञ्जन करे ॥ ६७ ॥

गंधनामकअगदहस्ती ।

श्वेतावचाश्वगन्धाहिंश्वामृताकुष्ठसैन्धवेलशुनम् । सर्पपकपित्थम-

ध्यटुपटुककरञ्जबीजानि ॥ ६८ ॥ व्योपंशिरीषपुष्पद्वेरजनीवंशलो-
चनञ्चसमम् । पिष्ट्वाह्यजस्यमूत्रेणगोऽश्वपित्तनसप्तकृत्वः ॥ ६९ ॥
व्यत्यासभावितोऽयंनिहन्तिशिरसिस्थितंविषंक्षिप्रम् । सर्वज्वरभू-
तग्रहविषूचिकाजीर्णमूर्च्छार्त्तिम् ॥ ७० ॥ उन्मादापस्मारौकाचप-
टलनीलिकाशिरोदोषान् । शुष्काक्षिपाकपिल्लार्धुदार्मकण्डूतमो-
दोषान् ॥ ७१ ॥ क्षयदौर्वल्यमदात्ययपाण्डुगदांश्चाञ्जनात्तथामो-
हान् । लेपाद्दिग्धक्षतलीढदष्टविषपीतविषघाती ॥ ७२ ॥ अर्शः
स्वारुद्धेषुचगुदलेपोयोनिलेपनंस्त्रीणाम् । मूढेगर्भेदुष्टेललाटलेपः
प्रतिश्याये ॥ ७३ ॥ दद्रूकण्डूकिटिभेकुष्ठेश्वित्रेषुचविचर्चिकादि-
पुलेपः । गजइवतरून्निगदान्निहन्त्यगदगन्धहस्त्येषः ॥ ७४ ॥

श्वेत अपराजिता और वच असर्गंध, हींग, गिलोय, कूठ, सेंधानमक, लहसुन, सफेद सरसों, कैयका गूदा, सोनापाठा, करंजके बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल, सिरसके फूल, हल्दी, दारुहल्दी और वंशलोचन । इन सबको समभाग लेकर गोमूत्र, वकरेके मूत्र और घोडेके पित्तमें सात सात बार भावना देवे । फिर इस औषधिकी शिरपर रखनेसे या मस्तकमें लेप करनेसे सब प्रकारके विष दूर होते हैं । तथा सब प्रकारके ज्वर, भूतवाधा, ग्रहदोष, विषूचिका, अजीर्ण, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार तथा नेत्रोंके काचरोग, पटलरोग और नीलिका, शिरके विंकार, नेत्रोंका सूखना, नेत्रपाक, पिल्लरोग, अर्बुद, अर्म, खुजली, तमोदोष, क्षय, दुर्बलता, मदात्यय और पाण्डुरोग तथा इसके अंजन करनेसे मोह (बेहोशी) । लेप करनेसे अग्निदग्धक्षत, लीढ और दंष्ट्र आदि विष दूर होतेहैं । इसके प्रयोगसे पीयेहुए विष भी असर नहीं करसकते । इसका गुदापर लेप करनेसे बवासीरके मस्ते योनिपर लेप करनेसे स्त्रियोंके योनिरोग और मूढगर्भ दूर होतेहैं मस्तकपर लेप करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय दूर होताहै तथा इसके लेप करनेसे, दाद, खुजली, किटिभ, कुष्ठ श्वेतकुष्ठ, और विचर्चिका यह सब दूर होतेहैं । जैसे उन्मत्त हस्ती वृक्षको जडसे उखाडदेताहै उसी प्रकार यह गंधनामक अगदहस्ती विषोको जडसे उखाड देताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

पत्रागुरुमुस्तैलानिर्यासःपञ्चचन्दनंतथापृक्का । त्वडूनलदोत्पल-
वालकहरेणुकोशिरव्याघ्रनखाः ॥ ७५ ॥ सुरदारुकनककुंकुमध्या-
मककुष्ठप्रियङ्गवस्तगरम् । पञ्चांगानिशिरीषाद्योपैलामनःशिला-

जाज्यः ॥ ७६ ॥ श्वेतकटभीकरञ्जौरक्षोष्णीसिन्धुवारिकारजनी ।
 सुरसरसाञ्जनगैरिकमञ्जिष्ठानिम्बनिर्यासाः ॥ ७७ ॥ वंशत्वगश्वग-
 न्धाहिङ्गुदधित्याम्बुवेतसंलाक्षा । मधुमधूकसोमराजीवचारुहा-
 रोचनातगरान् ॥ ७८ ॥ अगदोऽयं वैश्रवणाख्यातरुयस्वकेणष-
 ष्ठयङ्गः । अप्रतिहतप्रभावः ख्यातो महागन्धहस्तीति ॥ ७९ ॥
 पित्तेन गवांपेय्यागुलिकाः कार्थ्यास्तु पुण्ययोगेन । पानाञ्जनप्रलेपैः
 प्रसाधयेत्सर्वकर्माणि ॥ ८० ॥ पैल्यंकण्डूतिमिरंरात्र्यान्ध्यंकाचम-
 र्बुदंपटलम् । हन्ति सततं प्रयोगाद्भित्तमितपथ्याशिनांपुंसाम् ॥ ८१ ॥
 विषमज्वरानजीर्णान्दद्रुंसविपूचिकाश्च हन्ति नृणाम् । विषं मूषिक-
 लूतानां सर्वेषां पन्नगानाञ्च । आशुविषं नाशयति समूलजमथकन्द-
 जंसर्वम् ॥ ८२ ॥ एतेन लिप्तगात्रः सर्पान्गृह्णाति भक्षयेच्च विषम् ।
 कालपरीतोऽपि नरो जीवति नित्यं निरातङ्कः ॥ ८३ ॥ आनन्द्रे गुदले-
 पोयोनि लेपश्च मूढगर्भाणाम् । मृच्छार्तिपुत्रललाटे प्रलेपमाहुः
 प्रधानतमम् ॥ ८४ ॥ भेरीमृदङ्गपटहाश्छत्राण्यमुना तथा ध्वजप-
 ताकाः । लिप्ताहिविषनिरस्ते प्रध्वनयेद्दर्शयेन्मतिमान् ॥ ८५ ॥
 यत्र च सन्निहितो यं न तत्र बालग्रहानरक्षांसि । न च कर्मणवेताला
 वहन्ति नार्थवर्णामंत्राः ॥ ८६ ॥ सर्वग्रहानतत्र प्रभवन्ति न चा-
 ग्निशस्त्रनृपचौराः । लक्ष्मीश्च तत्र भजते यत्र सहा गन्धहस्त्यस्ति ॥
 ८७ ॥ पिप्यमाण इमञ्चात्र सिद्धं मे त्रमुदीरयेत् । "मम माता-
 जयानामविजयो नाम मे पिता ॥ ८८ ॥ सोऽहं जयोजयापुत्रो वि-
 जयोऽथ जयामि च । नमः पुरुषसिंहाय भिष्णवे विश्वकर्मणे ॥
 ८९ ॥ सनातनाय कृष्णाय भवाय विभवाय च । तेजोवृषाकपेः
 साक्षात्तेजो ब्रह्मेन्द्रयोर्यमे ॥ ९० ॥ यथाहं नाभिजानामि वासुदेवप-
 राजयम् । मातुश्च पाणिग्रहणं समुद्रस्य च शोषणम् ॥ ९१ ॥ अने-
 न सत्यवाक्येन सिध्यतामगदो ह्ययम् । हिलिमिलिसंस्पृष्टे रक्ष सर्व-
 भेषजे तु मे ॥ ९२ ॥"

तेजपत्र, अगर, नागरमोथा, इलायची, पंचनिर्यास, चंदन, पृष्ठा (असर्वग), दालचीनी, जटामांसी, नीलकमल, नेत्रवाला, रेणुका, खस, व्याघ्रनखी, देवदारु, धतूरा (अथवा नागकेशर) केशर, वीरणतृण, कूठ फूलप्रियंगु, तगर, सिरिसका पंचांग, सोंठ, मिर्च, पीपल, इलायची, मनसिल, जीरा, सफेद अपराजिता, कटभी, करंज, लताकरंज, सफेद सरसों, संभालू, हल्दी, तुलसी, रसौत, गेरू, मंजीठ, नीमका गोंद, वांसके ऊपरके छिलके, असगंध, हींग, कपित्थं, अमलवेत, लाख, मुलैठी, महुएके फूल, बावची, वच, रुहा (महासमंगा अथवा दूब), गोरोचन, तगर इन सबको समभाग लेवे इन ६० औषधियोंके अगदकी महादेवजीने कुबेरसे कथन किया था यह अगद अप्रतिहतप्रभाव और महागन्धहस्ती नामसे विख्यात है । इन साठ औषधियोंको पुष्पनक्षत्रमें संग्रहकर वारीक चूर्ण बना और पुष्पनक्षत्रमें गोपित्तमें खरलकर गोलिये बनालेवे । इस महागंधहस्ती नामके अगदको अंजन और लेपमें प्रयुक्त करनेसे कार्यकी सिद्धि होतीहै । अर्थात् सब प्रकारके विप आदि दूर होकर मनुष्य आरोग्य रहताहै । जो मनुष्य हित मित और पथ्य भोजन करताहुआ इस अगदकी नेत्रोंमें आजै तो पैल, खुजली, तिमिर, रतौंध, कांज, अर्बुद और पटोलरोग दूर होतेहैं तथा विपमज्वर, अजीर्ण, दाद, खुजली और विपूचिका यह सब दूर होतेहैं । तथा मौषिक विप वा अन्य प्रकारके विप लूता-विप, सब प्रकारके सांपोंके विप, मूलजविप, कंदविप, तथा अन्य विप इन सबको शीघ्रनष्ट करताहै । इस ओषधको शरीरमें लेपनकर मनुष्य सांपको पकडले अथवा विपको खांलेवे तो उसको किसी प्रकारका भी विप व्यापक नहीं होता । जिसके शरीरमें असर करगयाहो अथवा विपके कारण मृततुल्य होगयाहो इसके लेपन और अंजनसे वह भी शीघ्र निरोग होजाताहै । इस औषधका अफारेमें अथवा बवासरिमें गुदापर लेप करना चाहिये । मृदुगर्भ हो तो स्त्रीकी योनिमें लेप करना चाहिये । और मूर्च्छा रोगमें मनुष्यके मस्तकपर लेप करना चाहिये । इस अगदको भेरी (नकारा), मृदंग, पटह (डफरा) आदिपर लेपकर बजानेसे उसका शब्द सुननेसे विप दूर होजाताहै । इसको छत्र, ध्वजा और पाताका आदिमें लेप कर उस ध्वजा पताका आदिकी वायुके स्पर्शसे और देखनेसे विप दूर होताहै । इसलिये विपग्रस्तको लेपन, अंजन, शब्द, वायु दर्शन इन सब जगह अगदका प्रयोग करनेसे विप दूर होजाताहै । जिस स्थानमें यह अगद रहे उस स्थानमें वालग्रह, राक्षसभय, जादू, टोना आदि किसी प्रकारका भय नहीं करसकते तथा उस स्थानमें किसी अथर्ववेदोक्त मंत्र वैरीके प्रयुक्त किएहुए

१ राळ, गुगुळ, अफीम, शिलहक और लोहवान । २ सिरिसकी छाल, कूठ, पत्र, बीज और जड़ । ३ गोपित्तकी जगह १० वर्षका गोचूत मिलावे तो अधिक गुणकारी है ।

अपना बल नहीं करसकते तथा उस घरमें किसी प्रकारके ग्रह, अग्नि, शत्रु, राजा और चोर आदि कष्ट नहीं देसकते । जिस स्थानमें यह महागंधनामक, अगदहस्ती हो उस स्थानमें लक्ष्मीकी वृद्धि होती है । जिस समय इस औषधिको बनावे उस समय 'मम माता जया नाम' आदिक ९॥ श्लोकका मंत्र जो ऊपर मूलम लिखा है पढ़ताजाय ॥ ७५-९२ ॥

विषमें श्वासज्वरादिनाशक योग ।

ऋषभकजीवकभाङ्गीमधुकोत्पलधान्यकेशराजाज्यः । ससितगिरि-
कोलमध्याःपेयाःश्वासज्वरादिहराः ॥ ९३ ॥

ऋषभक, जीवक, भारंगी, मुलेठी, नीलकमल, धनियां, नागकेशर, जीरा, मिसरी, गेरू बेरकी गुठलीकी मींगी इन सबको घोटकर पीवे तो विषग्रस्त रोगीका श्वास और ज्वर दूर होताहै ॥ ९३ ॥

हिंशुकृष्णायुक्तंकपित्थरसमुद्रलवणञ्च ।

समधुसितौपातव्यौज्वरहिक्काश्वासकासघ्नौ ॥ ९४ ॥

हींग और पीपलका चूर्ण कैयके रसमें घोटकर उसमें समुद्रलवण तथा शहद और मिसरी मिला पीवे तो विषजनित ज्वर, हिचकी और श्वास तथा खांसी दूर होतेहैं ॥ ९४ ॥

लेहःकोलास्थ्यञ्जनलाजोत्पलमधुघृतैर्वन्ध्याम् ।

वृहतीद्रयाढकीपत्रधूमवर्त्तिस्तुहिक्कात्री ॥ ९५ ॥

बेरकी गुठली, अंजन, (स्रोतोअन या रसौत) खील और नीलकमल इनको घृतमें मिलाकर चाटनेसे विषजनित दमन दूर होताहै । और कटेली, बड़ी कटेली, अरहरके पत्र इनकी धूमवत्ती बनाकर धूमपान करनेसे विषजनित हिचकी दूर होती है ॥ ९५ ॥

शिखिवर्हिबलाकास्थीनिसर्पपाश्वन्दनंचघृतयुक्तम् ।

धूमोगृहशयनासनवस्त्रादिपुशस्यतेविषनुत् ॥ ९६ ॥

मोरपंख, बगुलेकी हड्डी, पीली सरसों और लालचंदन इनको वारीक पीस घीमें मिला धूनी देनेसे घर, शय्या, आसन, वस्त्र, आदिकोंका विष दूर होताहै ॥ ९६ ॥

घृतयुक्तेनतकुष्टेभुजगपतिशिरःशिरीषपुष्पञ्च ।

धूमागदःस्मृतोऽयंसर्वविषघ्नःश्वयथुहञ्च ॥ ९७ ॥

तगर, कूठ, नागका सिर, सिरसके फूल इन सबको वारीक पीस घीमें मिला धूनी देनेसे यह धूमागद सब प्रकारके विष और विषजनित सूजन दूर करताहै ॥ ९७ ॥

जतुसेव्यपत्रगुग्गुलुभल्लातकककुभपप्पसर्जरसाः ।

श्वेताधूमाउरगाखुकीटवस्त्रकृमिहरांस्युः ॥ ९८ ॥

लाख, खस, पत्रज, गूगल, भिलावे, अर्जुन वृक्षके फूल, सर्जरस (राल) और सफेद अपराजिता इन सबके चूर्णको पुराने घृतमें मिला धूनी देनेसे घरमेंसे सांप, विच्छू, कीट, मूसा और वस्त्रोंके कृमि दूर होतेहैं ॥ ९८ ॥

क्षारागद ।

तरुणपलाशक्षारस्रुतंपचेच्चूर्णितैःसहसमांशैः । लोहितमृद्रजनीद्र-
यशुकुसुरसमञ्जरीमधुकैः ॥ ९९ ॥ लाक्षासैन्धवमांसीहरेणुहिं-
गुद्विशारिवाकुष्ठैः । सव्योषैर्वाह्वीकैर्दर्वीलेपेनघट्टयेद्यावत् ॥ १०० ॥
सर्वविषशोथगुल्मत्वग्दोषार्शोभगन्दरप्लीहः । शोषापरमारकमि-
भूतस्वरभेदकण्डुपाण्डुगदान् ॥ १०१ ॥ मन्दाग्नित्वंकांसंसोन्मा-
दंनाशयेन्नृणामाशु । गुलिकाश्छायाशुष्ककोलसमास्ताःसमुप-
युक्ताः ॥ १०२ ॥

नए ढाकके स्वारको विधिवत् जुआलेवे फिर इसमें गेरू, हलदी, दारुहलदी, सफेद तुलसीकी मञ्जरी, मुलैठी, लाख, सेंधानमक, जटामांसी, रेणुका, हींग, सारिवा, कृष्णसारिवा, कूठ, पीपल, मिर्च, सोंठ, वाल्हीक (हींग) इन सबका चूर्णकर उप-
रोक्त क्षारसे चौथा भाग लेवे इस चूर्ण और क्षारको मिलाकर पकावे जब पकते २ करछीसे लिपटने लगे तो उतारकर बेरके समान (या एक २ तोलाकी) गोलिँ बना, छायामें सुखाले इन गोलियोंके प्रयोगसे सब प्रकारके विष, सूजन, गुल्म, त्वचाके दोष, अर्शरोग, भगंदर, प्लीहरोग, शोष, अपस्मार, कृमिरोग, भूतवाधा, स्वरभेद, खुजली, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, खँसी, उन्माद यह सब नष्ट होतेहैं १९-१०२

विषपीतदष्टविद्धेष्वेतद्दिग्धेचवाच्यमुद्दिष्टम् ।

सामान्यतःपृथक्त्राग्निदेशमतःशृणुयथावत् ॥ १०३ ॥

इसप्रकार पीयेहुए विषकी और विद्धविष तथा दष्ट विषकी, एवं दूषीविष चिकित्साका सामान्यतासे कथन किया गयाहै अब विषभेदसे अलग २ चिकित्साका श्रवण करो ॥ १०३ ॥

रिपयुक्तेभ्योनृभ्यःस्वेभ्यःस्त्रीभ्योथवाभयंनृपतेः ।

आहारविहारगतस्तस्मात्प्रेष्यान्परीक्षेत ॥ १०४ ॥

जो मनुष्य शत्रुओंसे मिलेहुए हों अथवा शत्रु या स्त्री आदि भोजनमें मिलाकर अथवा अन्य किसी प्रकार विष देसकतेहैं । इसलिये राजाको अपने आहारविहारकी परीक्षा करते रहना चाहिये ॥ १०४ ॥

विषदेनेवाले पुरुषके लक्षण ।

अत्यर्थशङ्कितःस्याद्बहुवागथवाल्पवाग्विगतलक्ष्मीः ।

प्रासःप्रकृतिविकारंविषप्रदातानरोज्ञेयः ॥ १०५ ॥

जो मनुष्य अन्न पान देताहुआ अत्यंत शंकितसा हो, अपने स्वभावसे विपरीत बनावटीसी अधिक वाते करताहो वा बहुत बोलनेवाले स्वभावका होकर भी बहुत कम बोले, मुखकी कांति भयभीत और विकृतसी प्रतीत हो, हतश्री प्रतीत हो तथा अन्य तिनकेसे पृथ्वीको खोदना आदि प्रकृतिसे लक्षण प्रतीत हों ऐसे मनुष्यके दिये हुए अन्नपानमें विषकी सम्भावना होतीहै । अर्थात् ऐसे लक्षण होनेसे मनुष्यको विषको देनेवाला समझना चाहिये ॥ १०५ ॥

विषयुक्त भोजनकी परीक्षा ।

दृष्ट्वैवंतुसहसाभोज्यंनस्येत्तदग्रमग्नौतु । सविपंहिप्राप्यान्नं वहून्वि-
कारान्भजत्यग्निः ॥ १०६ ॥ शिखिवर्हविचित्रार्चिस्तीक्ष्णाल्परूक्ष-
कुणपधूमश्च । स्फुटतिचसशब्दमशब्दमेकावर्त्तोविहितार्चिर्पि-
स्यात् ॥ १०७ ॥

यदि भोजनमें विषकी शंका हो तो उस भोजनको चिना अग्निके हवन किये सहसा खालेना उचित नहीं । यदि विषयुक्त अन्नको अग्निके हवन कियाजाय तो अग्नि बहुतसे विकारयुक्त होजातीहै । विषयुक्त अन्ना अग्निके डालनेसे अग्निके इस प्रकार वर्ण बदल जातेहैं । जैसे—अग्निकी लाट मोरके पंखके समान, हरी, नीली, चित्रितसी प्रतीत हो उसमें तीक्ष्णता, रूक्षता और सुर्दकीसी गंध आनेलगे, अथवा अन्य किसी विषकीसी गंध आवे, अनेक वर्णका धूम निकले उस अग्निके फटफट फटनेकासा शब्द प्रतात हो, धूँकेका एक आवर्त्त गोलासा निकले और शिखादार धूम न हो यह विषयुक्त अन्न होनेके लक्षण हैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

पात्रस्थअन्नमें विषकी पहिचान ।

पात्रस्थञ्चविवर्णंभोज्यंस्यान्मक्षिकांश्चमारयति ।

क्षामस्वरांश्चकाकान्कुट्याद्विरजेच्चकोराक्षि ॥ १०८ ॥

जो भोजन पात्रमें पडापडा हो विवर्ण होजाय और उसके ऊपर जो मक्खी बैठें ।

सो मरजाय, जिस भोजनको देखकर काक अपने कांकां शब्दको त्याग देवे और जिस भोजनको देखकर चकोर अपने नेत्रोंको फेरलेवे ऐसे भोजनको विपयुक्त जानना चाहिये ॥ १०८ ॥

जलादिपेय पदार्थमें विषकी परीक्षा ।

पानेनीलाराजीवैवर्ण्यस्वाश्वनेक्षतेच्छायाम् ।

विकृतामथवापश्यतिलवणाक्तेफेनमालास्यात् ॥ १०९ ॥

यदि जल आदि पेय पदार्थोंमें विष मिलाहुआ हो तो उसमें रेखासी, नीले र वर्णकी तारसी प्रतीत होने लगतीहैं, उसका वर्ण विगड जाताहै, उसमें मुख आदि शरीरका प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता अथवा विकृत दिखाई देताहै । यदि उसमें नमक डाल दियाजाय तो झागकी तरंगेंसी उठने लगतीहैं ॥ १०९ ॥

विपयुक्त अन्नपान सेवनका विकार ।

पानान्नयोःसविपयोःशिरसोगन्धेनरुग्हृदिच । मूर्च्छास्थपाणिशो-

थःसुप्त्यंगुलिदाहतोदनखभेदाः ॥ ११० ॥ मुखताल्वोष्ठचिमिचि-

माजिह्वाशूलवतीजडाविवर्णास्यात् । द्विजहर्षहनुस्तम्भास्यदाह-

लालागलविकाराः ॥ १११ ॥ आमाशयंप्रविष्टेवैवर्ण्यक्षोदसदनमु-

क्लेदः । दृष्टिर्हृदयोपरोधोविन्दुशतैश्चीयतेचाङ्गम् ॥ ११२ ॥

पक्वाशयन्तुयातेमूर्च्छामदमोहदाहवलनाशाः । तन्द्राकार्श्यञ्चविपे

पाण्डुत्वञ्चोदरस्थेस्यात् ॥ ११३ ॥

अन्नपानमें विष मिला होनेसे उसकी गंधसे मस्तकमें पीडा हृदयमें शूल, मूर्च्छा और हाथ लगानेसे हाथोंमें सूजन वा हाथका मुन्नसा होजाना, अंगुलियोंमें दाह, तोद, और नखोंका फटना सा प्रतीत होना यह लक्षण होतेहैं । विपयुक्त द्रव्यक रामेजानेसे मुख, तालु और फोतोंमें चिगचिमाहट, जिह्वामें पीडा, सूजन, जडता और विवर्णता हो, दौन कुन्द होजायें, ठोडी जकडजाय, मुखमेंजल न हो और मुखसे लार बहनेलगे, गलेमें विकार पैदा हों—यह विपयुक्त अन्न पान आमाशयमें पहुंच जानेसे शरीरकी विवर्णता, पसनि अंगोंका अवसाद जीमचलाना, दृष्टि और हृदय बधसे होजाना शरीरमें विन्दुके समान सैकड़ों फुन्तिसयें होंजाय ॥ यदि यह विष पन्थाशयमें पहुंचजाय तो मूर्च्छा, मद, मोह, दाह, बडका नाश यह लक्षण होतेहैं । विपयुक्त अन्नपान यदि उदरमें स्थित हों तो तन्द्रा, कृशता और पाण्डु यह उपद्रव होते हे ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

दंतौनमें और शिरोभ्यंगमें विषके लक्षण ।

दन्तपवनस्यकूर्चोविशीर्यतेदन्तोष्ठमांसशोफश्च ।

केशच्युतिःशिरोग्रन्थयश्चसविपेशिरोभ्यङ्गे ॥ ११४ ॥

यदि विष दांतनकी कूर्चीमें हो तो दांतोंका मांस विखरने लगे और सूजजाय, दांत उखडने लगे और दांतनकी कूर्ची विखरजाय यह लक्षण होतेहैं ॥ यदि तैल आदिकोंमें विष मिला हो तो उसको शिरमें लगानेसे केशोंका गिरना, शिरमें गांठेंसी होजाना यह लक्षण होतेहैं ॥ ११४ ॥

अंजनमें विषके लक्षण ।

दुष्टेऽजनेऽक्षिद्राहःस्त्रावाद्युपदेहशोथरागाश्च ।

आथैरादौकोष्ठःस्पृश्यैस्त्वग्दूष्यतेदुष्टैः ॥ ११५ ॥

यदि अंजनमें विष मिला हो तो आंखोंमें दाह, जलका स्राव, अत्यंत कलेदका होना, सूजन, लाली यह उपद्रव होतेहैं । जो विष खाये जातेहैं उनमें पहिले कोष्ठ दूषित होताहै । जो विष तैल आदि द्वारा या अन्य किसी प्रकार शरीरमें स्पर्श किये जाय तो उनसे पहिले त्वचा दूषित होतीहै ॥ ११५ ॥

स्नान अभ्यंगादिकोंमें विषके लक्षण ।

स्नानाभ्यङ्गोत्सादनवस्त्रालङ्कारकैर्दुष्टैः ।

कङ्घ्रात्तिलोमहर्षाःकोठपिडकचिमिचिमाःशोथाः ॥ ११६ ॥

यदि स्नान, मालिश, उबटन, वस्त्र, अलंकार आदि विषयुक्त हों तो उनसे खुजली, पीडा, रोमहर्ष, शरीर पर चकत्ते पिडिका चिमचिमाहट और सूजन ये लक्षण होतेहैं ॥ ११६ ॥

सवारी, शय्या, भूमि, पादुका आदिमें विषके ल० ।

एतेकरचरणदाहतोदक्लमाङ्गविपाकाश्च ।

भूपादुकाश्वगजचर्मकेतुशयनासनैर्दुष्टैः ॥ ११७ ॥

यदि चलने फिरनेकी पृथ्वी, जूता, खडांऊ, घोडेकी जीन, हाथीके ऊपर मृग-छाला, शय्या, वासन आदिमें विषका सम्पर्क हो तो हाथ पावोंमें दाह, सूई चुभने-कीसी पीडा, क्लम, अंगोंका पकना यह लक्षण होते हैं ॥ ११७ ॥

विषयुक्त माला और धूमके लक्षण ।

माल्यमगन्धंस्त्रायतिशिरसौरुजालोमहर्षकरम् ।

स्तरुभयतिखानिदर्शनमुपहन्तिचनासिकांधूमः ॥ ११८ ॥

यदि पुष्पमालामें विष लगाहुआ हो तो वह माला, गंधरहित, कुम्हिलाई, मस्तक-पीडा और रोमहर्षको करनेवाली होतीहै विषयुक्त धूमका स्पर्श हो तो वह धूम नाकमें जानेसे नाकके छिद्रोंको स्तब्ध करे नेत्रोंको और नाकको उपहनन करताहै ॥ ११८ ॥

कूप आदिमें विषके ल० ।

कूपतडागादिजलदुर्गन्धसकलुपविवर्णञ्च ।

पीतंश्वयथुंकोटान्पिडकांश्चकरोतिमरणञ्च ॥ ११९ ॥

कूप, तालाव आदिमें विष मिला हो तो जलमें दुर्गन्ध, कलुपता और विवर्णता होती है । उस जलके पीनेसे सूजन, शरीरपर चकत्ते, फुन्सिये अथवा मृत्यु होतीहै ॥ ११९ ॥

इन विषोंमें सामान्यचिकित्साक्रम ।

आदावामाशयगेवमनंत्वक्स्थेप्रदेहसेकादि ।

कुंय्यान्निपक्चिकित्सांदोषवलञ्चैवहिसमीक्ष्य ॥ १२० ॥

यदि विष खाये जानेसे आमाशयमें पहुंचा हो तो शीघ्र वमन कराकर निकालदेना चाहिये । यदि त्वचा आदिमें विषका स्पर्श हुआ हो तो प्रदेह और प्रसेकादि द्वारा वैद्य दोष, बल, आदि विचारकर चिकित्सा करे ॥ १२० ॥

इतिमूलविषविशेषाःप्रोक्ताःशृणुजङ्गमस्यातः ।

सविशेषचिकित्सितमेवादौतत्रोच्यतेतुसर्पाणाम् ॥ १२१ ॥

इस प्रकार मूलविष विशेषोंका (और स्थावर विषोंका) वर्णन कर चुके हैं । अब जंगमविषोंकी चिकित्साविशेषका कथन करते हैं उनमें प्रथम सर्पोंकी चिकित्साको कहतेहैं ॥ १२१ ॥

सर्पोंका और उनके विषोंका वर्णन ।

इहदर्वीकरःसर्पोंमण्डलीराजिमानिति ।

त्रयोयथाक्रमंवातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः ॥ १२२ ॥

दर्वीकर, मडली और राजिमान इन तीन प्रकारके सर्पोंके काटनेसे क्रमसे वात, पित्त, कफका प्रकोप होताहै । अर्थात् दर्वीकर सांपका विष वातप्रधान है । मंडली सर्पका विष पित्त प्रधान है और राजिमान सर्पका विष कफप्रधान होता है ॥ १२२ ॥

दर्वीकरःफंणीज्ञेयोमण्डलीमण्डलाःफणाः ।

विन्दुलेखोविचित्राङ्गःपन्नगःस्यात्तुराजिमान् ॥ १२३ ॥

कडलीके समान फनवाले सांप दर्वीकर कहेजातेहैं । (दर्वीकर सांपके सिरपर गौके खुरका आकारसा होताहै और मुस किंचित् लम्बा होताहै ।) मंडलीसर्पका फण मंडलके समान गोल होताहै । जिस सांपके शरीरपर चित्र विचित्र वूदें रेखा और लकीरसी होतीहैं उसको राजिमान् कहतेहैं ॥ १२३ ॥

विशेषाद्भ्रुकटुकमम्लोष्णंस्वादुशीतलम् ।

विपंयथाक्रमतेपांतस्माद्वातादिकोपनम् ॥ १२४ ॥

दर्वीकर सांपका विष विशेषतासे रूक्ष और कटु होताहै । मंडली सर्पोंका विष अम्ल और उष्ण होताहै । राजिमान् सांपोंका विष मधुर और शीतल होताहै । इसलिये यह यथा क्रम वातादि दोषोंको कुपित करनेवाले होतेहैं ॥ १२४ ॥

दर्वीकरके कटेहुएके ल० ।

दर्वीकरकृतोदंशःसूक्ष्मदंष्ट्रापदोशितः ।

निरुद्धरक्तःकूर्माभोवातव्याधिकरोमतः ॥ १२५ ॥

दर्वीकर सांपके कटेहुए स्थानमें दंशस्थान बहुत सूक्ष्म और काले वर्णका होताहै तथा रक्त नहीं निकलता वह स्थान कटुएकी समान फूलाहुआसा प्रतीत होताहै और संपूर्ण लक्षण तथा व्याधियें वातजनित होतीहैं ॥ १२५ ॥

मण्डली सांपके दंशके ल० ।

पृथ्वर्पितःसशोथश्चदंशोमण्डलिभिःकृतः ।

पीताभःपीतरक्तश्चसर्वपित्तविकारकृत् ॥ १२६ ॥

मंडली सांपका काटाहुआ स्थान-स्थूल, सूजनयुक्त और पीले वर्णका होताहै । पीले वर्णका और लालवर्णका रक्त निकलने लगताहै । संपूर्ण लक्षण और व्याधियें पित्तजनित होतीहैं ॥ १२६ ॥

राजिमान् सांपके दंशके लक्षण ।

कृतोराजिमतादंशःपिच्छिलःस्थिरशोफकृत् ।

स्निग्धःपाण्डुश्चसान्द्रासृक्श्लेष्मव्याधिसमीरणः ॥ १२७ ॥

राजिमान् सांपका काटाहुआ स्थान-पिच्छिल, स्थिर सूजनयुक्त चिकना और पाण्डुवर्णका होताहै । तथा गाढा और सान्द्र रक्त निकलताहै । लक्षण और व्याधि सब कफजनित होतीहैं ॥ १२७ ॥

सर्पोंके स्त्रीपुरुष जातिके दंशभेद ।

वृत्तभोगीमहाकायःश्वसन्मूर्च्छेक्षणःपुमान् । स्थूलमूर्च्छासमाङ्गश्च

स्त्रीत्वतःस्याद्विपर्ययात् ॥ १२८ ॥ क्लीवःस्रस्तस्त्वधोदृष्टिःस्वरहीनः
प्रकम्पते । स्त्रियादष्टोविपर्यस्तैरेतैःपुंसोनरोमतः ॥ १२९ ॥
व्यामिश्रलिंगैरेतैस्तुक्लीवदष्टनरंवदेत् । इत्येतदुक्तंसर्पाणांस्त्रीपुं-
क्लीवनिदर्शनम् ॥ १३० ॥

जिस सांपका फण गोल, सुंदर, बडा हो और शरीर भी बडा हो तथा जो ऊप-
रको नेत्रकर श्वास लेवे मस्तक बडा हो और सर्वांग सुडौल हो वह सांप पुरुषजातिका
होताहै । इससे विपरीत अर्थात् जिसका शिर बडा न हो फणा चौडी न हो तथा
शरीर भी बहुत बडा चमकीला और पुरुष जातिके सांपके समान नहो उसको
जातिकी स्त्री (सांपनी) जानना चाहिये । इन दोनोंके मिलेजुले लक्षणांवाला सांप
जातिका नपुंसक होताहै । जिस मनुष्यको स्त्रीजातिका सांप काटे उसके सब अंग
शिथिल होजाय दृष्टि नीची पडजाय, स्वर हीन होजाय और कांपने लगे । जिसको
पुरुष जातिके सांपने काटाहो उसकी दृष्टि ऊपरको हो सब अंग कठोर हों
तथा स्वर क्षीण और कंप न हो उसको पुरुषजातिके सांपने डसा (काटा) है
ऐसा जानना । दोनोंके मिले जुले लक्षण हों तो नपुंसक का काटा हुआ जानना
चाहिये । इस प्रकार सांपोंकी स्त्री, पुरुष, और क्लीव जातिका वर्णन किया
गया ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥

पाण्डुवक्रस्तुगर्भिण्याशूनोष्ठोऽप्यसितेक्षणः ।

जृम्भाक्रोधोपजिह्वार्त्तःसूतयारक्तमूत्रवान् ॥ १३१ ॥

गर्भवती सांपनके काटेहुए मनुष्यके होठों पर सूजन, मुख पर पाण्डुवर्णकी
सूजन, नेत्र काले वर्णके होना तथा जंभाई, क्रोध और उपजिह्विकासे पीडित होना
यह लक्षण होतेहैं । सूईहुई सर्पिणीके काटे हुए मनुष्यके मूत्र तथा मूत्र द्वारा रक्त
स्राव होताहै ॥ १३१ ॥

गोहके काटेहुएके लक्षण ।

सर्पोगौधेरकोनामगोधाख्यःस्याच्चतुष्पदः ।

कृष्णसर्पेणतुल्यःस्यान्नानाःस्युर्मिश्रजातयः ॥ १३२ ॥

गोधेरक नामक सांप चार पावोंवाला होताहै उसको गोधा (गोह) कहतेहैं । इसके
काटेहुए पुरुषके कृष्ण सांप (दर्वाकर) के काटेहुएके समान लक्षण होतेहैं । इनके
सिवाय बहुतसे वर्णसंकर जातिके सर्प होतेहैं ॥ १३२ ॥

भयानक दंश ।

गूढसम्पादितंवृत्तंपीडितंलम्बितार्पितम् ।

सर्पितञ्चभृशावाधदंशायेऽन्येनतेभृशाः ॥ १३३ ॥

जो दंश (सांपका काटाहुआ स्थान) ऊपरसे अधिक न होनेपर भी भीतरसे गहरा हो, तथा गोल ऊपरको उठाहुआ हो, गिलटीके समान पिडित सा हो लंबा-यमान उठाहुआ हो, और शीघ्र सब ओर फैलगया हो वह दंश अत्यंत भयानक होताहै ऐसे अन्य दंश भयानक नहीं होते ॥ १३३ ॥

सर्पोंमें अवस्थाभेदसे विषकी प्रधानता ।

तरुणाःकृष्णसर्पास्तुगोनसाःस्थविरास्तथा ।

राजिमन्तोवयोमध्येभवन्त्याशीविपोपमाः ॥ १३४ ॥

तरुण कालासांप, आशीविपसा (शीघ्रप्राणनाशक) होताहै । तथा वृद्ध मण्डलीसांप और मौढ राजिमान् सांप आशीविपसा होताहै ॥ १३४ ॥

सांपके चार दांतोंके वर्ण ।

सर्पदंष्ट्राश्चतस्रस्तुतासां वामाधराःसिताः ।

पीतावामोत्तरादंष्ट्रा रक्तश्यावाधरोत्तरा ॥ १३५ ॥

सांपके मुखमें चार दंष्ट्रा (दाढ) प्रधान होतीहैं । उनमें बाई ओरकी नीचेकी दाढ सफेद और ऊपरकी पीली होतीहै तथा दहनी ओरकी नीचेकी दाढ लाल और ऊपरकी काली होतीहै ॥ १३५ ॥

दांतोंमें विषकी प्रबलता ।

यन्मात्रःपततेविन्दुर्गोवालात्सलिलोद्धृतात् । वामाधरायादंष्ट्रायां-
तन्मात्रंस्यादहेर्विषम् ॥ १३६ ॥ एकाद्वित्रिचतुर्वृद्धिविषुभागोत्तरो-

त्तराः । सवर्णास्तत्कृतादंशावहूत्तरविषाभृशाः ॥ १३७ ॥

गोपुच्छके एक बालको पानीमें भिगोकर निकाले उस बालमेंसे जितनी पानीकी बूंद गिरतीहै सांपकी बाई ओर नीचेकी दाढमें उतना विष होताहै और बाई ओरकी ऊपरकी दाढमें उससे दुगुना विष होताहै । दहनी ओरकी नीचेकी दाढमें तिगुना और दहनी ऊपरकी दाढमें चौगुना विष होताहै । सांपका जो दांत मनुष्यके शरीरमें लगे उसी दांतके वर्णका दंशका भी वर्ण होताहै और बाई ओरके नीचेके दांतसे आरंभकर क्रमसे चारों दंशोंमें पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर विष भयानक भारी जानना ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

सांपोंके मलजनित कीटोंके विषके लक्षण ।

सर्पाणामेवविषमूत्रात्कीटाःस्युःकीटसंमताः ।

दूषीविषाःप्राणहराइतिसंक्षेपतोमताः ॥ १३८ ॥

सांपोंकी विषा और मूत्रसे जो कीड़े उत्पन्न होतेहैं उनको किट्टज कहंतहैं । उनके दूषीविष और प्राणहारी यह संक्षेपसे दो भेद हैं ॥ १३८ ॥

गात्ररक्तंसितंकृष्णंश्यावंवापिडकान्वितम् । सकण्डूदाहवीसर्पा-
किस्यात्कुथितंतथा ॥ १३९ ॥ कीटैर्दूषीविषैर्दष्टंलिंगंप्राणहरंशृणु ।

सर्पदष्टेतथाशोथेवर्द्धतेसोग्रगन्ध्यसृक् ॥ १४० ॥

दूषीविष कीटोंके दंशस्थान, लाल, श्वेत, कृष्ण, श्याव अथवा पीतवर्ण होतेहैं । तथा उनमें छोटी २ फुन्सियं, खुजली, दाह तथा विषके समान पाक और सडन होतीहै । और प्राणहर कीटोंके काटनेसे सांपके काटेहुएके समान दंशस्थानमें सूजन होती है और रक्तमें अत्यंत गंध आतीहै । तथा सांपके विषके समान ही सूजन आदिकी वृद्धि होती जातीहै ॥ १३९ ॥ १४० ॥

दूषीविषोंके काटनेके लक्षण ।

दंशोऽक्षिगौरवंमूर्च्छासरुगार्त्तःश्वसित्यपि ।

तृष्णारुचिपरीतश्चभवेद्दूषीविषादितः ॥ १४१ ॥

दूषीविष कीटोंके काटनेसे नेत्रोंमें भारीपन, मूर्च्छा और अत्यंत पीडा, श्वास, तृष्णा, अरुचि हो यह दूषीविषयुक्त मनुष्यके लक्षण होतेहैं ॥ १४१ ॥

दूषीविषलता (मकड़ी) के दंशके लक्षण ।

दंशस्यमध्येयत्कृष्णंश्यावंवाजालकावृतम् । दग्धाकृतिभृशंपाकि-
क्लेदशोथज्वरान्वितम् ॥ १४२ ॥ दूषीविषाभिर्लूताभिस्तंदष्टमिति
निर्दिशेत् । सर्वासामेवतासाञ्चदंशेलक्षणमुच्यते ॥ १४३ ॥

दूषीविष लूता (मकड़ी) के काटनेसे दंशस्थान बीचमेंसे काला, नीला और जालीसे युक्त दग्धहुएके समान आकारवाला, पाकयुक्त, क्लेद, सूजन हो और मनुष्य ज्वरयुक्त होताहै । लूता अनेक प्रकारकी होती हैं । अब उनके दंशोंके लक्षण कहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

लूतादष्ट मनुष्यके लक्षण ।

शोफाः श्वेताःसितारक्ताःपीतावापिडकाज्वरः ।

प्राणान्तिकोभवेच्छ्वासोदाहहिकाशिरोग्रहाः ॥ १४४ ॥

जिस मनुष्यको लूता काटे उसके दंशस्थानमें सूजन काले लाल, सफेद अथवा पीले वर्णकी छोटी २ फुन्सियें ज्वर, प्राणनाशक श्वास, दाह, दिचकी, मस्तकमें अत्यंत पीडा यह लक्षण होतेहैं ॥ १४४ ॥

मूषकके काटेहुएके लक्षण ।

आदंशाच्छोणितंपाण्डुमण्डलानिज्वरोऽरुचिः ।

लोमहर्षश्चदाहश्चाप्यासुदूषीविपार्दिते ॥ १४५ ॥

विषयुक्त चूहेके काटनेसे दंशमेंसे रक्तका निकलना, पीले वर्णके चकत्ते, ज्वर, अरुचि, रोमहर्ष और दाहसे व्याकुलता यह लक्षण होतेहैं ॥ १४५ ॥

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ष्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ।

शिरोगुरुत्वंलालासृग्छर्दिश्चासाध्यमूपिकैः ॥ १४६ ॥

चूहेके काटेहुए मनुष्यको यदि मूर्च्छा, अंगोंमें सूजन, विवर्णता, बलेद, कानोंसे न सुनना, ज्वर, शिरमें पीडा, मुखसे लार बहना, और रुधिरकी छर्दी, हो तो वह मूषकविष असाध्य होताहै ॥ १४६ ॥

कृकलासके विषके लक्षण ।

द्र्यावत्वमथकाण्यवानानावर्णत्वमेववा ।

मोहःपुरीषभेदोवादष्टेस्यात्कृकलासकैः ॥ १४७ ॥

गिरगट (किरला) के काटनेसे दंशस्थान काला, नीला वा अनेक वर्णका होताहै । गिरगटके काटेहुए मनुष्यको बेहोशी और दस्त होने लगतेहैं ॥ १४७ ॥

विच्छूके काटनेके लक्षण ।

दहत्यग्निरिवादौतुभिनत्तीवोद्ध्रमाशुच ।

वृश्चिकस्यविपंयातिदंशेष-
श्चात्तुतिष्ठति ॥ १४८ ॥ दष्टोऽसाध्यस्तुदृग्प्राणरसनोपहतोनरः ।

मांसैःपतद्भिरत्यर्थवेदनात्तोजहात्यसूनु ॥ १४९ ॥

विच्छूके काटेहुए मनुष्यके दंशस्थानमें अग्निके समान काटतेही जलन होने लगतीहै फिर वह अग्निकी सी पीडा जल्दी २ ऊपरको चढतीहुई प्रतीत होतीहै तथा अन्तमें दंशस्थानमें ही आकर स्थित होजातीहै । जिस विच्छूके काटेहुए मनुष्यकी दृष्टि, सूत्रनेकी शक्ति और स्वादशक्ति नष्ट होजाय, जिस स्थानमें विच्छूने काटा हो वह स्थान गल कर गिरने लगे अथवा दंशस्थान फटकर खिडजाय और अत्यन्त पीडाके मारे रोगी बेहोश हो जाय तो वह मनुष्य अपने प्राणोंको त्यागदेताहै ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

कणभकदंशके लक्षण ।

विसर्पःश्वयथुःशूलंज्वरश्छर्दिरथापिवा ।

लक्षणंकणभैर्दष्टेदंशश्चैवविशीर्यते ॥ १५० ॥

कणभ (भूँडविशेष) के काटनेसे मनुष्यके शरीरमें विसर्प, शोथ, पीडा, ज्वर, वमन तथा दंशस्थानका फटतेहुए प्रतीत होना अथवा दंशस्थानका गलकर गिरना यह लक्षण होतेहैं ॥ १५० ॥

उच्चिंटिगके दंशके लक्षण ।

हृष्टरोमोच्चिटिङ्गनस्तब्धलिङ्गोभृशार्त्तिमान् ।

दष्टःशीतोदकेनेवसिक्तान्यङ्गानिमन्यते ॥ १५१ ॥

उच्चिंटिगके काटेहुए मनुष्यके शरीरमें रोमांच, काटेहुए स्थानका टेढ़ासा होकर अकड जाना, अत्यंत पीडा, संपूर्ण शरीर शीतल जलसे भिगेहुएके समान प्रतीत-होना यह लक्षण होतेहैं ॥ १५१ ॥

विपैलमेंडकका काटा ।

एकदंष्ट्रार्दितःशूनःसरुक्स्यात्पीतकःसत्तृट् ।

छर्दिनिद्राचमण्टुकैःसविपैर्दष्टलक्षणम् ॥ १५२ ॥

विषयुक्त भेडक एक दांतसे काटे और उम दंशस्थानमें अत्यंत पीडा, सूजन, पीलावर्ण होना, प्यास, वमन और निद्रा यह लक्षण होतेहैं ॥ १५२ ॥

मछलीके दंशके ल० ।

मत्स्यास्तुसविपाःकुर्युर्दाहंशोफरुजंतथा ।

विषयुक्त मछलीके काटनेसे दाह, सूजन और पीडा होताहै ।

जोंकके विषके लक्षण ।

कण्डूंशोथंज्वरंमूर्च्छांसविपास्तुजलौकसः ॥ १५३ ॥

विषयुक्त जोंकके काटनेसे राज, सूजन, ज्वर और मूर्च्छा होताहै ॥ १५३ ॥

छिपकीकेदंशके लक्षण ।

दाहतोदस्वेदशोथकरीतुगलगोडिका ।

छिपकीके काटनेसे दाह मूर्च्छा, सुमानेकीसी पीडा, पसीना, और सूजन यह लक्षण होतेहैं ।

कनकशूरेके विषके लक्षण ।

दंशेस्वेदंरुजंदाहं करोतिचक्षनापरी ॥ १५४ ॥

शतपदी (कनसजृगके) काटनेसे पसीना और अत्यंत दाह तथा शूल होता है १५४

मच्छरके काटनेके लक्षण ।

कण्डूमान्मशकैरेतच्छोथःस्यान्मन्दवेदनः ।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ १५५ ॥

विषयुक्त मच्छरके काटेहुए स्थानमें सूजन, खुजली और मन्दमन्द पीडा होती है । असाध्य विषयुक्त मच्छरके काटनेमें असाध्य कीटके समान लक्षण होते हैं ॥ १५५ ॥

मन्त्रियोंके दंशके लक्षण ।

सद्यःप्रस्त्राविणीश्यावादाहमूर्च्छाज्वरान्विता ।

पीडकामक्षिकादंशेनासान्तुस्थगिकासुहृत् ॥ १५६ ॥

स्यगिका (विपेल अण्डगल) नामक मक्खीके सिवाय और मधुमक्षिका आदि मन्त्रियोंके काटनेसे दंशस्थानमें सद्यःस्त्राव होना, दंशस्थानका श्यामवर्ण, होना तथा दाह, मूर्च्छा और ज्वरका होजाना यह लक्षण होते हैं । परन्तु विषधर स्यगिकाके काटनेसे मनुष्यके प्राण नष्ट होजाते हैं ॥ १५६ ॥

सांपके काटनेसे असाध्यता ।

श्मशानचैत्यवल्मीकयज्ञाश्रमसुरालये । पक्षसन्धिपुमध्याह्नेसार्द्ध-

रात्रेऽष्टमीपुच ॥ १५७ ॥ नसिद्धयन्तिनरादष्टाःपाखण्डायतनेपु

च । दृष्टिश्वासमलस्पर्शविषैराशीविषैस्तथा ॥ १५८ ॥ विनश्य-

न्त्याशुसम्प्राप्तादष्टाःसर्वेषुमर्मसु । येनकेनापिसर्पेणसम्भवः सर्व-

एवच ॥ १५९ ॥

श्मशान, चैत्य, वल्मीक, यज्ञस्थान, देवालय और दोनों पक्षोंकी संधियोंमें, मध्याह्नमें, अर्द्धरात्रिमें, अष्टमीके दिन, पापस्थानमें यदि आकर सांप काटे तो वह काटाहुआ मनुष्य असाध्य होता है । तथा दृष्टिविष, श्वासविष, मलविष, स्पर्शविष और आशीविष सांपोंका काटाहुआ मनुष्य भी असाध्य होता है । तथा मर्मस्थानमें चाहे किसी प्रकारके सर्पका काटाहुवा हो वह मनुष्य शीघ्र प्राणोंको त्यागदेता है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

विषवृद्धिका समय ।

भीतमत्तावलोष्णक्षुत्तृपात्तैवर्द्धतेविषम् ।

विषंप्रकृतिकालौचतुल्यौप्राप्याल्पमद्गथा ॥ १६० ॥

भयातुरं, मत्त, दुर्बल, उष्णतासे पीडित, क्षुधासे व्याकुल और प्यासयुक्त मनुष्यके शरीरमें विष वृद्धिको प्राप्त होते हैं । तथा काल और प्रकृतिकी तुल्यता विषके साथ होनेसे विषका वेग बढ़ताहै अन्यथा अल्प होताहै ॥ १६० ॥

मंदविष सांप ।

वारिविप्रहताःक्षीणाभीतानकुलनिर्जिताः । वृद्धावालास्त्वचोमु-
क्ताःसर्पामन्दविषाःस्मृताः ॥ १६१ ॥ सर्वदेहाश्रितंक्रोधाद्विषं
सर्पोविमुञ्चति । तदेवाहारहेतोर्वाभयाद्वात्रं प्रमुञ्चति ॥ १६२ ॥

जलकी धारासे विशेषरूपसे हतहुआ, क्षीण, भयभीत, नेवलेसे हाराहुआ, वृद्ध बालक जिसके ऊपरसे उसी समय कांजुली उतरीहो ऐसे सांप मंदविष होतेहैं क्योंकि सांप अत्यन्त क्रोधातुर हो संपूर्ण देहके विषको छोड़ताहै । और भयभीत होनेसे उस संपूर्ण विषको नहीं छोड़ सकता और आहारके लिये भी विषको नहीं त्यागता ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

विषोंकी वातादिप्रकृति ।

वातोल्बणविषाःप्रायउच्चिटिङ्गाःसवृश्चिकाः ।

वातपित्तोल्बणाःकीटाःश्लैष्मिकाःकणभादयः ॥ १६३ ॥

उच्चिटिंग और विच्छुआंका विष प्रायः वातोल्बण होताहै । ओर कीटोंका विष वातपित्तोल्बण होताहै । तथा कणभादिकोंका विष कफोल्बण होताहै ॥ १६३ ॥

यस्ययस्यहिदोपस्यलिङ्गाधिक्र्यानिलक्षयेत् ।

तस्यंतस्यौषधैःकुर्याद्विपरीतगुणैःक्रियाम् ॥ १६४ ॥

विषोंमें जिस जिस द्रोपके अधिक लक्षण देखे उमी उसी द्रोपके विपरीत गुणवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ १६४ ॥

वातप्रधान विषके लक्षण ।

हृत्पीडोद्ध्वानिलस्तम्भःशिरायासोऽस्थिपर्वरुक् ।

घूर्णनोद्वेष्टनंगात्रश्यावतावातिकेविषे ॥ १६५ ॥

हृदयमें पीडा, ऊर्ध्ववात, स्तम्भ, नसोंका खिचना, अस्थियों और परोमें पीडा, नेत्रोंका घूमना, शरीरमें उद्वेष्टन, शरीरका काला होना यह वातोल्बण विषोंके लक्षण हैं ॥ १६५ ॥

पित्तप्रधान विषके लक्षण ।

संज्ञानाशोष्णनिश्वासोद्ध्वहःकटुकास्यता ।

दंशावदारणंशोथोरक्तपीनश्चपैत्तिके ॥ १६६ ॥

संज्ञानाश, गरमश्वासका छोडना, हृदयमें दाह, मुखका कडुआ होना, दंशस्थानमें फटनेकीसी पीटा होना अथवा दंशस्थानका गलना, लाल और पल्लिर्णकी सृजन होना यह पित्तप्रधान विपके लक्षण हैं ॥ १६६ ॥

कफप्रधान विपके लक्षण ।

वम्यरोचकहृत्तासप्रसेकोत्केशगौरवैः ।

सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकंविपम् ॥ १६७ ॥

वमन, अरुचि, हृत्तास, मुखसे लारका बहना, जी मचलाना, भारीपन, शरीरमें टंडक मुखमें मीठापन यह कफप्रधान विपके लक्षण हैं ॥ १६७ ॥

वातादिभेदसे विषोंविषोंमें चिकि० क्रम ।

खण्डेनचत्रणालेपस्तैलाभ्यङ्गश्चवातिके । स्वेद्योनाडीपुलाकाद्यैर्वृ-
हणश्चविधिर्हितः ॥ १६८ ॥ सुशीतैःस्तम्भयेत्सेकैःप्रदेहैश्चापिपे-
त्तिकम् । लेखनच्छेदनस्वेदवमनैःश्लैष्मिकंजयेत् ॥ १६९ ॥

वातप्रधान विषोंमें खांडके साथ दंशस्थानमें लेप करना तथा तेलकी मालिश, नाडीस्वेद, और पुलाक आदिके साथ स्वेदन करना तथा वृंहण कर्म करना हितकारी है पित्तप्रधान विषमें जीतल द्रव्योंका लेपन और सेचन, प्रदेह तथा स्तम्भनक्रिया करना चाहिये । और कफप्रधान विषोंमें लेखन, छेदन, स्वेदन और वमन कराना हितकारी है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

विषेष्वपिचसर्वेषुसर्वस्थानगतेषुच ।

अवृश्चिकोच्चिटिङ्गेपुप्रायःशीतोविधिर्हितः ॥ १७० ॥

संपूर्ण विषोंमें चाहे वह किमी स्थानमें गयेहुए हों प्रायः शीतल क्रिया हितकारी होतीहै । परन्तु उच्चिटिग और विच्छूके विषमें शीतल क्रिया करना हित नहीं है ॥ १७० ॥

विच्छूके विषमें क्रिया ।

वृश्चिकेस्वेदमभ्यङ्गघृतेनलवणेनच ।

सेकांश्चोष्णान्प्रयुञ्जीतभोज्यंपानञ्चसर्पिषः ॥ १७१ ॥

विच्छूके विषमें नमकयुक्त घृतसे स्वेदन और अभ्यंग करना हितकारक तथा गरम सेक और घृतका पीना तथा भोजनके साथ सेवन करना, हितकारक होताहै ॥ १७१ ॥

उच्चिटिकाके विषमें चिकित्साक्रम ।

एतदेवोच्चिटिङ्गेऽपिप्रतिलोमञ्चपांशुभिः । उद्वर्तनंसुखाम्बूष्णैस्त-

थावच्छादनंघनैः ॥ १७२ ॥ स्यात्रिदोषप्रकोपात्तुतथाधातुविपर्य-
यात् । शिरोऽभितापोलालास्राव्यधोवक्रस्तथाभवेत् ॥ १७३ ॥

उच्चिदिगके विषमें भी विच्छूके समान ही चिकित्सा करना चाहिये तथा बालू और मट्टी आदिसे ऊपरको उद्घर्त्तन करना अर्थात् चारों ओरसे दंशके स्थानकी ओरको मालिश करना, मुखोष्ण जलमें वस्त्रादि भिंगोकर दंशस्थानको पूर्णरूपसे ढकदेना चाहिये । उच्चिदिगके विषमें तीनों दोषोंका कोप होनेसे और सब धातुओंकी विपरीततासे, शिरमें पीडा छारका वहना और नीचेको मुख होजा-
ताहै ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

अन्येष्वेवंविधाव्यालाःकफवातप्रकोपणाः ।

हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृषामूर्च्छाकरामताः ॥ १७४ ॥

इसी प्रकारके अन्य भी जो सर्पादिक कफ, वातके कुपित करनेवाले हैं उनके काटनेसे हृदयमें शूल, ज्वर, स्तम्भ, तृषा और मूर्च्छा उत्पन्न होतीहै ॥ १७४ ॥

सविष और निर्विष शरीरके लक्षण ।

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुतिकेदोपशोषणम् । विदाहरागरुक्पाकाःशो-
फाग्रन्थिनिकृञ्चनम् ॥ १७५ ॥ दंशावदारणंस्फोटाःकर्णिकामण्ड-
लानिच । ज्वरञ्चसविषेलिङ्गविपरीतन्तुनिर्विषे ॥ १७६ ॥

खुजली, सूई चुभानेकीसी पीडा, विवर्णता, अंगोंका सुन्न होजाना, क्लेद, उपशोषण, अत्यंत दाह, रक्तवर्ण, शूल, पाक, सूजन, गांठसी होना, संकोच, दंशस्थानमें फटनेकीसी पीडा होनी, फोडे, कर्णिका, मण्डल, ज्वर यह सब विष-
युक्त शरीरके लक्षण हैं । इन सब लक्षणोंके न होनेसे मनुष्यका शरीर निर्विष
जानना ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

विषोंमें चिकित्सा ।

तत्रसर्वेयथावस्थंप्रयोज्याःस्युरूपक्रमाः ।

पूर्वोक्तंविधिमन्यञ्चयथावद्व्रुवतःशृणु ॥ १७७ ॥

विषयुक्त शरीरमें अवस्था आदि विचारकर विपनाशक क्रिया करना चाहिये ।
उनमें कुछ पहिले कहचुके हैं बाकी अब कथन करतेहैं सो श्रवण करो ॥ १७७ ॥

हृद्विदाहेप्रसेकेवाचिरेकवमनंभृशम् ।

यथावस्थंप्रयोक्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः ॥ १७८ ॥

यदि विषयुक्त मनुष्यके मुखसे लार बहे और हृदयमें दाह होता हो तो उसको अवस्थानुसार तीक्ष्ण वमन या विरेचन करावे। फिर शुद्ध शरीर होनेपर यथाक्रम पेयादिक प्रयोग करना चाहिये ॥ १७८ ॥

स्थानादि भेदसे विष नाशकयोग ।

शिरोगतेविषेनस्तःकुर्यान्मूलानिवुद्धिमान् ।

बन्धुजीवस्यभांग्र्याश्चसुरसस्यासितस्पच ॥ १७९ ॥

यदि विष शिरोगत हो तो बन्धुजीवक, भांगी और काली तुलसीकी जड़की नसवार देवे ॥ १७९ ॥

दक्षकाकमयूराणांमांसासृङ्मस्तकेक्षते ।

सूर्भिदेयमथोदष्टस्योद्धृदष्टस्यपादयोः ॥ १८० ॥

यदि मस्तकमें काटा हो तो दंशस्थानमें मुर्गा, कौआ और मोरका मांस तथा रक्त लगाना चाहिये। यदि पावोंके तलवोंमें काटा हो तो भी उपरोक्त द्रव्योंका मस्तकपर ही लेप करना चाहिये ॥ १८० ॥

पिप्पलीमारिचक्षारत्रचासैन्धवशिग्रुकाः ।

पिष्टारोहितपित्तेनघ्नन्त्यक्षिगतमज्जनात् ॥ १८१ ॥

पीपल, मिरच, जवासार, बच सेंधानगरु और साहजनेके बीज इन सबको रोही मछलीके पित्तमें पीस आंखोंमें अंजन करनेसे नेत्रगत विष नष्ट होताहै ॥ १८१ ॥

कपित्थमामंससितंक्षौद्रं कण्ठगतेविषे ।

लिह्यादामाशयगतेताभ्यांचूर्णपलंनतात् ॥ १८२ ॥

कैथका गुड़ा, खांड और शहद मिलाकर चाटनेसे कण्ठगत विष दूर होताहै। तगरका १ पल चूर्ण खांड और शहद मिला पीनेसे आमाशयगत विष दूर होताहै ॥ १८२ ॥

विषेपकाशयप्राप्तेपिप्पलीरजनीद्वयम् ।

संजिष्ठाचसमंपिष्ट्वागोपित्तेननरःपिवेत् ॥ १८३ ॥

पीपल, हल्दी, दारुहल्दी और मजीठ सबको समभाग लेकर गोपित्त अथवा गौके पुराने घीमें मिलाकर पीनेसे पकाशयमें प्राप्तहुआ विष शान्त होताहै ॥ १८३ ॥

मांसंरक्तंचगोधायाःशुष्कंचूर्णांकृतंहितम् ।

विषेरसगतेपानंकापित्थरससंयुतम् ॥ १८४ ॥

गोध्या (गोह) का मांस और रक्त सुखाकर चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको कैथके रसमें मिलाकर पीनेसे रसगत विष दूर होताहै ॥ १८४ ॥

शेलुसूलत्वग्ग्राणिवादरौदुस्वराणिच । कटभ्याश्चपिवेद्रक्तगतेमां-
सगतेपिवेत् ॥ १८५ ॥ सक्षौद्रंखदिरारिष्टंकौटजंमूलमम्भसा ।
सर्वेषुचवलेद्रेतुमधुकंमधुकंनतम् ॥ १८६ ॥

लसौंढेकी जडका छिलका बेरकी कोंपल, गूलर और अपराजिताकी कोंपलें जलमें घोटकर पीनेसे रक्तगत विष शान्त होताहै । शहद और खदिरारिष्ट मिलाकर पीनेसे अथवा कुडाकी जडकी छालको जलमें पीसकर पीनेसे मांसगत विष दूर होताहै । बला, अतिबला, महुआ और मुलैठी तथा तगरको जलमें मिलाकर पीनेसे सर्व घातुगत विष दूर होताहै ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

पिप्पलीनागरंक्षारंनवनीतेनमूर्च्छितम् ।

कफेभिपगुदीर्णेतुविदध्यात्प्रतिसारणम् ॥ १८७ ॥

पीपल, सोंठ और जवाखार मक्खनमें मिलाकर प्रतिसारण करनेसे विषमें कफका प्रकोप शान्त होताहै ॥ १८७ ॥

विषोंके शोथनाशक योग ।

मांसीकुंकुमपत्रत्वक्करजनीनतचन्दनैः । मनःशिलाव्याघ्रनखसुरसै-
रन्धुपेपितैः ॥ १८८ ॥ पाननस्याञ्जनालेपाःसर्वशोथविषापहाः ॥ १८९ ॥

जटामांसी, केशर, तेजपत्र, दालचीनी, हल्दी, तगर, चंदन, मनसिल, व्याघ्र-
नखी और तुलसी इन सबको जलमें पीसकर पीना, नस्य लेना, अंजन करना और
लेप करना सब प्रकारके विषोंकी सूजनको दूर करताहै ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

सर्वविषनाशक योग ।

चन्दनंतगरंकुष्ठहरिद्रेद्रेत्वगेवच । मनःशिलातमालश्चरसःकेशरएव
चे । शार्ङ्गलस्यनखश्चैवसुपिष्टंतण्डुलाम्बुना ॥ १९० ॥ हन्तिसर्व-
विषाप्येववज्रिवज्रमिवासुरान् ॥ १९१ ॥

लालचंदन, तगर, कूठ, हल्दी, दारूहल्दी और दालचीनी, मनसिल, तमाल-
पत्र, बोल, नागकेशर और व्याघ्रनखी इन सबको तण्डुलजलमें पीसकर पीनेसे सब
प्रकारके विष इस प्रकार नष्ट होजातेहैं जैसे इन्द्रके अमोघ वज्रसे देव्य नष्ट होजाते
हैं ॥ १९० ॥ १९१ ॥

सापके विपनाशक योग ।

रसेशिरीषपुष्पस्यसप्ताहंमरिचंसितम् । भावितंसर्पदष्टानानस्यपा-
नाञ्जनेहितम् । द्विपलंनतकुष्ठाभ्यांघृतक्षौद्रचतुष्पलम् । अपि-
तक्षकदाष्टानापानमेतत्सुखप्रदम् ॥ १९२ ॥

सिरसके फूलोंके रसमें सफेद मिर्चोंको घोटकर सात बार भावना देवे फिर इनका अंजन, नस्य और पानमें प्रयोग करनेसे सांपका विष दूर होताहै । अथवा तगर १ पल, कूठ १ पल, घी और शहद ४ पल इन सबको मिलाकर यदि तक्षकके काटेहुएकी पिलादे तो उसका भी विष दूर होजाताहै ॥ १९२ ॥

दर्वाकरसांपके काटेकी चिकित्सा ।

सिन्धुवारस्यमूलश्चश्रेताचगिरिकर्णिका ।

पानंदर्वाकरैर्दष्टैनस्यमधुसपाकलम् ॥ १९३ ॥

संभालूकी जडका छिलका और सफेद अपराजिताकी जड इन दोनोंको जलके संयोगसे पीसकर पीवे तथा कूठ और शहद मिलाकर अंजन करे तो दर्वाकर सांपका विष दूर होताहै ॥ १९३ ॥

मण्डलीसांपके काटेका यत्न ।

मंजिष्ठामधुयष्ट्याह्वांजीवकर्पभकौसिता ।

काशमर्य्यवटशुक्लानिपानंमण्डलिनांविषे ॥ १९४ ॥

मजीठ, मुलेठी, जीवक, ऋपभक, मिसरी, कुम्भेरका छिलका, बडका छिलका इन सबको पानीमें घोट शहद मिला पीनेसे मण्डली सांपका विष दूर होताहै ॥ १९४ ॥

राजिमानके काटेकी चिकित्सा ।

व्योपंसातिविपंकुष्ठंगृहधूमोहरेणुका ।

तगरंकटुकाक्षौद्रंहन्तिराजीमतांविषम् ॥ १९५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, अतीस, कूठ, गृहधूम, रेणुका, कुटकी और तगरको पीस शहद मिलापिनेसे राजिमान सर्पोंका विष दूर होताहै ॥ १९५ ॥

गृहधूमंहरिद्रेद्रेसमूलंतण्डुलीयकम् ।

अपिवासुकिनादष्टःपिवेदधिघृताप्लुतम् ॥ १९६ ॥

गृहधूम, हल्दी, दारुहल्दी, चौलाईकी जड इन सबको दही और घृतमें मिलाकर पीनेसे बासुकी नागका काटाहुआ मनुष्य भी विपरहित होजाताहै ॥ १९६ ॥

कीटादिकोंके विषकी चिकित्सा । -

क्षीरिवृक्षत्वगालेपः शुद्धेकीटविषापहः ।

मुक्तालपोवरःशोथदाहतोदज्वरापहः ॥ १९७ ॥

कीटादिकोंके काटेहुए मनुष्यको पहिले वमन विरेचन द्वारा शुद्ध करके दंशस्थानमें वड आदि क्षीरी वृक्षोंका लेप करनेसे कीटविष दूर होताहै । तथा मोतियोंको जलमें पीसकर लेप करनेसे कीटविषकी सूजन, दाह, तोद और ज्वर नष्ट होतेहै ॥ १९७ ॥

लूताविषनाशक योग ।

चन्दनंपद्मकोशीरंपाटलिःसिन्धुवारिका । क्षीरशुक्लानतंकुष्ठंशिरी-
षोदीच्यशारिवाः ॥ १९८ ॥ शोलुस्वरसपिट्टोऽयंलूतानांसार्वकार्मि-
कः । मधुकंमधुकंकुष्ठंशारिवोदीच्यपाटलैः ॥ सनिम्बशारिवाक्षौद्रं
पानंलूताविषापहम् ॥ १९९ ॥

लालचंदन, पद्मकाष्ठ, खस, पाठ, सिरसका छिलका संभालूकी जडका छिलका, क्षीरशुक्ला (विदारीकंद), तगर, कूठ, शारिवा, सुगंधवाला इन सबको लसोढेके रसमें पीस लेपन करनेसे तथा उद्धर्तन, सेचन आदिमें प्रयुक्त करनेसे लूता (मकड़ी) का विष दूर होताहै । अथवा महुएके फूल, मुलैठी, कूठ, शारिवा, नेत्रवाला, पाठ, नीम और कृष्ण शारिवा इन सबको शहद मिला पानेसे लूताका विष दूर होताहै ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

कुसुम्भपुष्पगोदन्तास्वर्णक्षीरीकपोतविट् ।

दन्तीत्रिवृत्सैन्धवैलाकर्णिकापातनंतयोः ॥ २०० ॥

कुसुम्भके फूल गोदन्ती हरताल (अयवा गोदंत), स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख) जंगली कवूतरकी बीट, दंती, निशोथ, संधानमक, इलायची, अपराजिता इन सबको वारीक पीसकर लेप करनेसे लूताविष और कीटविष दूर होताहै ॥ २०० ॥

कटभ्यर्जुनशैरीपशेलुक्षीरीद्रुमत्वचम् ।

कपायकल्कचूर्णाःस्युःकीटलूताव्रणापहाः ॥ २०१ ॥

कटभी, अर्जुन, सिरस, लसोढा और वड आदि क्षीरी वृक्षोंकी छालका क्वाय कल्क और चूर्ण कीट और लूताके विषजनित जखमोंको लेपन, सेचन, अवचूर्णन आदि करनेसे शीघ्र दूर करताहै ॥ २०१ ॥

चूहेके विपका यत्न ।

त्वचश्चनागरत्रैवसमांशंश्लक्षणेपेषितम् ।

पेयमुष्णाभ्युनासर्वमूपिकाणांविपापहम् ॥ २०२ ॥

दालचीनी, साँठ इन दोनोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको गरम जलके साथ पीनेसे सब प्रकारके मूषकोंका विष दूर होताहै ॥ २०२ ॥

विच्छू, कृकलास, मेडक, मछली आदिकोंके विपनाशक योग ।

कुटजस्यफलंपिष्टंतगरंजालमालिनी । तिक्तेक्ष्वाकुकयोगोऽयंपान-

प्रधमनादिभिः ॥ २०३ ॥ वृश्चिकोन्दुरलूतानांसर्पाणाञ्चविपाप-

हम् । समानंममृतेनेदंगराजीर्णश्चनाशयेत् ॥ २०४ ॥

इन्द्रयव, तगर, कडवी तोरी, वरुणवृक्षकी छाल, कडवी तुंबी, इन सबको बारीक पीसकर पीने और नस्य लेनेसे तथा लेप करनेसे विच्छू, दूता, मूषक और सर्पोंका भी विष दूर होताहै यह योग अमृतके समान, गुणकारी है । इससे सर्पकी गरल और अजीर्णका भी विष दूर होताहै ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

सर्वेऽगदायथादोषं प्रयोज्याः स्युन्निकण्टके ॥ २०५ ॥

सब प्रकार रोगीकी अवस्था आदि विचारकर ऊपर कही क्रिया अनुसार गिर-गिटके विपकी भी चिकित्सा करना चाहिये ॥ २०५ ॥

कपोतविट्मातुलुङ्गंशिरीषकुसुमाद्रसः । शंखिन्याकंपयःशुण्ठी-

करञ्जमधुवाश्चिके । शिरीषस्यफलंपिष्टंस्तुहीक्षीरेणदार्दुरे ॥ २०६ ॥

कबूतरकी बीट, विजौरका रस, सिरसके फूलोंका रस, शंखपुष्पी, आकका दूध, साँठ और करंजुएके फल इन सबको समान भाग ले गहद मिलाकर लेप करे तो विच्छूका विष दूर हो थोहरके दूधमें सिंगसके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे मेडकका विष दूर होताहै ॥ २०६ ॥

मूलानिश्चेतभण्डीनांव्योपसर्पिश्चमत्स्यजे ।

कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्याज्जलौकसाम् ॥ २०७ ॥

श्वेत अपराजिताकी जड, साँठ, मिर्च, पीपल, इन सबको घृत मिलाकर लेप करनेसे और पीनेसे मछलीका विष दूर होताहै । कीटाके दंशमें जो क्रिया कह आयेहैं वही जोंकके विष दूर करनेके लिये करना चाहिये ॥ २०७ ॥

वातपित्तहरीप्रायः क्रियाप्रायः प्रशस्यते ।

वाश्चिकस्योच्चिटिङ्गस्यकणभस्येन्दुरोऽगदः ॥ २०८ ॥

विच्छू, उच्चिदिंग, कणभ, मूपकके विपपर प्रायः वातपित्तनाशक क्रिया करना चाहिये ॥ २०८ ॥

कीटादिविपनाशक अगद ।

वचांवंशत्वचंपाठानंतं सुरसमञ्जरीम् । द्वेवलेनाकुलीकुण्डं शिरीषं रज-
नीद्वयम् ॥ २०९ ॥ गुहामतिगुहांश्चेतामजगन्धांशिलाजतु ।
कत्तृणंकटभीक्षारं गृहधूममनःशिलाम् ॥ २१० ॥ रोहीतकस्यपि-
त्तेनपिद्वातुपरमोऽगदः । नस्याञ्जनाव्यलेपेपुहितोविश्वम्भरादिपु २११

वच, वांसका छिलका, पाटला, तगर, तुलसीकी मंजरी, बला, नागबला, नाकुली-
कंद, कूठ, सिरसके बीज, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, श्वेत अपराजिता,
बजमोद, शिलाजीत, गंधतृण, कटभी, जवाखार, गृहधूम और मनशिल इन सबकी
समभाग लेकर मछलीके पित्तेमें खरल करे । यह परमोत्तम अगद, नस्य, अंजन और
लेपनमें प्रयुक्त करना चाहिये । इसके प्रयोगसे सब प्रकारके कीटादिकोंका विश्वम्भर
आदि कीटोंका विष दूर होताहै ॥ २०९ ॥ २१० ॥ २११ ॥

कनखजूरेके विषका यत्न ।

स्वर्जिकाजशकृत्क्षारः सुरसोऽथाक्षिपीडकः ।

मदिरामण्डसंयुक्तोहितः शतपदीविषे ॥ २१२ ॥

सर्जिखार, बकरीकी मंगनोंका खार, तुलसीके पत्र और शंखपुष्पी इनको
सुरामण्डमें पीसकर दशस्थानपर लेप करनेसे शतपदी (कनखजूरे) का विष नष्ट
होजाताहै ॥ २१२ ॥

छिपकलीविपनाशक योग ।

कपित्थमक्षिपीडोऽर्कबीजंत्रिकटुकंतथा ।

करञ्जोद्वेहरिद्रेचगलगोड्याविषं जयेत् ॥ २१३ ॥

कैथ, शंखिनी, आकके बीज, पीपल, मिरच, सांठ, लताकरंजके फल, हल्दी,
दारुहल्दी इन सबको पीसकर लेप करनेसे तथा अंजन करनेसे वापिनेसे छिपकलीका
विष दूर होताहै ॥ २१३ ॥

काकाण्डरससंयुक्तो विषाणांतण्डुलीयकः ।

सर्वेषां बहिपित्तेन तद्द्रव्यायसपीलुकः ॥ २१४ ॥

काली सेमका रस, कूठ और चौलाई इन सबको पीसकर पीना और लेपन
करना परम विपनाशक योग तथा काकजंवा और पीलू मोरके पित्तमें मिला प्रयोग
करना भी संपूर्ण विषोंको दूर करताहै ॥ २१४ ॥

पञ्चागरीपक अगद ।

शिरीषफलमूलत्वक्षुप्पपत्रैःसमैर्धृतैः ।

श्रेष्ठःपञ्चशिरीषोऽयंविषाणांप्रवरोवधे ॥ २१५ ॥

सिरसकी छाल, मूल, पत्र, फूल और फल, यह समान भाग लेकर घृतमें मिला, लेपन, और पान आदिमें प्रयोग करनेसे सब प्रकारके विष दूर होतेहैं ॥ २१५ ॥

चतुष्पदोंके विषकी चिकित्सा ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वानखदन्तक्षतन्तुयत् ।

शूयतेपच्यतेवापिस्रवतेज्वरयत्यपि ॥ २१६ ॥

चार पैरोंवाले और दो पैरोंवाले जीवोंके नख और दांतोंमें विष होताहै । सो नख और दांतोंके विषसे काटेहुए स्थानमें सूजन, पाक, स्राव होताहै तथा ज्वर भी होताहै ॥ २१६ ॥

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्चगोजिह्वाहंसपयपि ।

रजन्यौगैरिकंलेपोनखदन्तविषापहः ॥ २१७ ॥

सोमवल्कल (सफेद कतया या करंजुआ), अश्वकर्ण (शालविशेष), गोभी, हंसपदी, हल्दी, दासहल्दी और गेरू इन सबका लेप, नख और दांतके विषको दूर करताहै ॥ २१७ ॥

शंकाजनित अज्ञातविषका यत्न ।

दुरन्धकारेदृष्टस्यकेनचिद्विषशङ्कया । विषोद्वेगाज्ज्वरच्छर्दिर्मूर्च्छा-
दाहोऽपिवाभवेत् ॥ २१८ ॥ ग्लानिर्मोहोऽतिसारोवाप्येतच्छङ्कावि-

पमत्तम् । चिकित्सितमिदंतस्यकुर्व्यादाश्वासनंबुधः ॥ २१९ ॥

सितांविगन्धिकांद्राक्षांपयस्यांमधुकंमधु । पानंसमन्त्रपूताम्बुप्रो-
क्षणंसान्त्वहर्षणम् ॥ २२० ॥

कभी अंधकारमें किसी चींटी आदिके काटनेसे अथवा कोई चीज चुभजानेसे मनुष्यके चित्तमें सांपके काटनेकी शंका उत्पन्न होजातीहै उस शंकासे ही ज्वर, वमन, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह और अतिसार तक होजातेहैं । यह शंका ही एक प्रकारसे विषके रूपको धारण करलेतीहै ऐसे समय वैद्यको उचित है कि उस मनुष्यको धैर्य आदि देकर उसके चित्तके भयको दूर करदेवे । तथा खांड, हाउवेर, दाख, क्षीरकाकोली, सुलेठी और शहद मिलाकर पिलावे । मंत्रोंयुक्त जलके छींटे देवे । तथा धीरज आदि देकर उसके चित्तको प्रसन्न करे ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ २२० ॥

विषरोगमें पथ्य ।

शालयःपष्टिकाश्चैवकोरदूपाःप्रियंगवः । भोजनार्थेप्रशस्यन्तेलव-
णार्थेचसैन्धवम् ॥ २२१ ॥ तण्डुलीयकजीवन्तीवार्त्ताकुसुनिषण्ण-
काः । चुचुर्मण्डूकपर्णीचशाकञ्चकुलकंहितम् ॥ २२२ ॥ घात्री-
दाडिममम्लार्थेयूपामुद्गहरेणुभिः । रसाश्चैणाशिखिश्चाविलावतै-
त्तिरिपार्यताः ॥ २२३ ॥ विषघ्नौषधसंयुक्तरसायूपाश्चसंस्कृताः ।
अविदाहीनिचान्नानिविपार्त्तानांभिषग्जितम् ॥ २२४ ॥

सब प्रकारके विषविकारोंमें शालिचावल, शाठीचावल, कोद्रव, और कांगुनी भोजनके लिये और नमकीन बनानेके लिये सेंधानमक तथा शाकके लिये चौलाई, जीवन्ती, वैंगन, चौपतिया शाक अम्ललोनिया शाक, मण्डूकपर्णी, पटोल और नाडीशाक देने चाहिये । यूपके लिये मटर और मूंग हितकारी हैं, खटाईके लिये आँवले और अनार श्रेष्ठ हैं । तथा हिरन लवा, तीतर तथा पार्यत हिरनका मांस विषनाशक औषधियोंसे सिद्धकर मांसरस और यूपका प्रयोग करना चाहिये । और अविदाही अन्नपान देना विषरोगियोंके लिये हितकारक है ॥ २२१-२२४ ॥

विषरोगमें कुपथ्य ।

विरुद्धाध्यशनक्रोधक्षुब्धयायासमैथुनम् ।

वर्जयेद्विषमुक्तोऽपिदिवास्वप्नंविशेषतः ॥ २२५ ॥

विरुद्ध भोजन-भोजन क्रियेपर फिर भोजन कसना, क्रोध, भूखके वेगमें भोजन न करना, भय, परिश्रम, मैथुन और दिनमें सोना इन सबको विषरोगी विषसे मुक्त होनेपर भी त्यागदेवे ॥ २२५ ॥

चौपाये जीवोंके विषके लक्षण ।

मुहुर्मुहुःशिरोन्यासःशोथः स्वस्तौष्ठकर्णता । ज्वरस्तब्धाक्षिगात्र-
त्वंहनुकम्पोऽङ्गमर्दनम् ॥ २२६ ॥ रोमापगमनंग्लानिररतिर्वेपथु-
र्ग्रहः । चतुष्पदांभवत्येतद्वृष्टानामिहलक्षणम् ॥ २२७ ॥

चौपाये जीवोंके काटनेसे शिरका बार बार उठाना और फेंकना अथवा शिरका अवर-
रोध होजाना, सूजन, होठोंका और कानोंका ढीलासा पडजाना या सूजनयुक्त होना,
ज्वर, नेत्रोंका और अंगोंका टेढासा होजाना, अकडजाना, ठोडीका कांपना, अंग-
डाई, रोमोंका गिरना या रोमांच होना, ग्लानि, चित्तका स्थिर न होना शरीरका
काँपना और अकडसा जाना या कण्ठका रुकना यह लक्षण होतेहैं ॥२२६॥ २२७ ॥

उनकी चिकित्सा ।

देवदारुहरिद्रेद्वेसरलचन्दनागुरु । रास्तागोरोचनाजातीगुग्गुल्विक्षु-
रसानतम् ॥ २२८ ॥ चूर्णससैन्धवानन्तंगोपित्तमधुसंयुतम् । चतु-
ष्पदानांदष्टानामगदः सार्वकार्मिकः ॥ २२९ ॥

देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, तुलसी, लालचंदन, अगर, रासना, गोरोचन, चमे-
लीके फूल, गृगुल, ईखका रस, तगर, संधानमक, शारिवा, इनका चूर्ण गौके पुराने
घृत (या-गोपित्त) तथा शहदमें मिलाकर चाटनेसे तथा लेप आदि करनेसे
चतुष्पद जानवरोंके काटेहुएका विष दूर होताहै ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

गरविषके हेतु, लक्षण ।

सौभाग्यार्थस्त्रियःस्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्चग-
रान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ २३० ॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशोऽल्पाग्नि-
र्ज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रधमनाध्मानहस्तपच्छोथलक्षणाः ॥
॥ २३१ ॥ जठरंग्रहणीदोषंयक्ष्माणंश्वयथुंक्षयम् । एवंविधस्यचा-
न्यस्यव्याधेर्लिङ्गानिदर्शयेत् ॥ २३२ ॥

अपने वशमें करनेके लिये स्त्री आदि अपने स्वामीको पसीना वा मासिक रज
अथवा और अपने अंगोंसे उत्पन्नहुई मैलको खिलदेतीहै । अथवा किसी शत्रु
आदिका भोजनमें मिलाकर दियाहुआ कालान्तरमें हानि करनेवाला विष गरविष
कहाजाताहै । इस गरविषसे ग्रसित मनुष्यके शरीरमें पाण्डु, कृशता, मंदाग्नि, ज्वर,
हृदय आदि मर्मस्थानोंका फडकना हाथपावोंमें सूजन, ग्रहणीरोग, उदररोग,
यक्ष्मा और शोथरोग, क्षय तथा इसी प्रकारके अनेक लक्षणोंवाली व्याधियें उत्पन्न
होतीहैं ॥ २३० ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

स्वप्नेमार्जारगोमायुव्यालान्सनकुलान्कपीन् । प्रायः पश्यतिनद्या-
दीञ्शुष्कांश्चसवनस्पतीन् ॥ २३३ ॥ कालश्चगौरमात्मानंस्वप्नेगौ-
रश्चकालकम् । विकर्णनासिकंवापिपश्येत्तद्विहृतेन्द्रियः ॥ २३४ ॥

गररोगीको स्वप्नमें बिलाव, गीदड़, सांप, नकुल, बन्दर, सूखीहुई नदियें, सूखे
वृक्ष, वनस्पति आदि दिखाई देतेहैं तथा वह रोगी यदि गौरवर्णका हो तो अपनेको
स्वप्नमें काला देखे और काला हो तो स्वप्नमें गौर देखे तथा कानोंसे ही और
नासिकारहित अपना शरीर उसको स्वप्नमें दिखाईदेवे तथा अन्य इन्द्रियें भी हत
हुई दिखाई देवें अथवा इस गरविषके विकारसे ही उसकी इन्द्रियें हीन पड-
जाय ॥ २३३ ॥ २३४ ॥

गरविषकी चिकित्सा ।

तमवेक्ष्याभिषक्प्राज्ञःपृच्छेत्किंकैः कदासह । जग्धमित्यवगम्याशु
प्रदद्याद्गमनंभिषक् ॥ २३५ ॥ सूक्ष्मताम्ररजस्तस्मैसक्षौद्रंहृदि-
शोधनम् । शुद्धेहृदिततः शाणंहेमचूर्णस्यदापयेत् ॥ २३६ ॥
हेमसर्वविषाण्याशुगरांश्विनिचच्छति । हेमपस्यसजत्यङ्गेनहि
पद्मेऽम्बुवाद्धिपम् ॥ २३७ ॥

बुद्धिमान् वैद्य इस प्रकार गरदोपसे व्याकुल हुए मनुष्यको देखकर उस रोगीसे
पृछे कि तुमने कब, किमके साथ, कैसे, क्या खाया है इत्यादि विषय भली भांति अने-
क रीतिसे पूछकर रोगका यथोचित निश्चय करके जब जानलेवे कि इसने गरविष
खायाहै तो पहिले उसको तीक्ष्ण वमन करावे अथवा शहद और सूक्ष्म ताम्रचूर्ण (ताम्र
भस्म) खिलाकर वमन करावे वमन द्वारा हृदय शुद्ध होजानेपर उसको तीन माशें
सुवर्णका चूर्ण अथवा स्वर्णभस्म शहद और घृतमें मिलाकर चटावे सुवर्णके सेवन करने-
से मनुष्यके शरीरमें इस प्रकार विष नहीं ठहर सकता जिस प्रकार कमलके पत्तेपर जल
नहीं ठहरसकता, सुवर्ण सब प्रकारके गर विषोंको शीघ्र नष्ट करदेताहै ॥ २३५-२३७ ॥

नागदंतीआदिघृत ।

नागदन्तीत्रिवृद्धन्तीद्रवन्तीसुवृष्यःफलैः । साधितंमाहिषंसर्पिःस-
गोमूत्राढकंहितम् । सर्पकीटविषार्त्तानांगरार्त्तानाश्चशान्तये ॥ २३८ ॥

नागदन्ती (हस्तिशुंडी), निशोय, दंती, द्रवंती, योहरका दूध और मैतफल इन सबको
मिलाकर १ पाव लेवे भैसका घृत १ सेर और गोमूत्र ४ सेर इन सबको मिलाकर
सिद्ध किया घृत सांप, कीडे आदिकोंके विषसे पीडित मनुष्योंको तथा गरविषवाले
मनुष्योंको विषरीहत कर देताहै ॥ २३८ ॥

अमृत घृत ।

शिरीषत्वक्त्रिकटुकत्रिफलाचन्दनोत्पले । द्वेवलेशारिवास्फोतासु-
रभीनिम्बपाटलाः २३९ ॥ वन्धुजीवाढकीमूर्धवासासुरसवरस-
कान् । पाठाङ्गोष्ठाश्वगन्धार्कमूलयष्ट्याह्वपन्नकान् ॥ २४० ॥
विशालांवृहतीलाक्षांकोविदारंशतावरीम् । कटभीदन्त्यपामा-
र्गान्पृश्निपर्णीरिसाञ्जनम् ॥ २४१ ॥ श्वेतभण्डाश्वखुरकौकुष्ठदारुप्रि-
यङ्गुकान् । विदारीमधुकंसारंकरञ्जस्यफलंवचाम् ॥ २४२ ॥

रजन्यौलोध्रमक्षांशंपिष्ट्वासाध्यंघृताढकम् । तुल्याम्बुच्छागगोमूत्रा-
ढकेतनुविषापहम् ॥ २४३ ॥ अपस्मारक्षयोन्मादभूतग्रहगरो-
दरम् । पाण्डुरोगान्क्रिमीन्गुल्मान्प्लीहोरुस्तम्भकामलाः ॥ २४४ ॥
हनुस्कन्धग्रहादींश्चपानाभ्यञ्जननावनैः । हन्यात्सजीवयेच्चापिवि-
पोद्धन्धमृतान्नरान् । नास्त्रेदममृतंसर्वविषाणांस्याद्धृतोत्तमम् ॥ २४५ ॥

सिरसकी छाल,सोठ,मिर्च,पीपल, हरड,वहेडा,आँवला,लालचंदन,नील कमल, घला,
नागबला, शारिवा, श्वेत अपराजिता,सुरा, नीम,पाटला, वन्दुजीव (दुपहारिया),अरहर,
मूर्वा,वांसा,तुलसी, इन्द्रयव, पाढ,अंकोट,असगंध,आककी जड, मुलैठी,पद्मकाष्ठ, इन्द्रा-
यणकी जड, वडी कटेली, लाख, कोविदार (लाल कचनार), शतावर,कटभी, दंती,
अपामार्ग, पृष्ठपर्णी, रसौत, सफेद कोयल, नखनामक गंधद्रव्य,कूट, देवदारु, प्रियंगु,
विंदारीकंद, महुआ, विजैसार, लताकरंजके फल, वच, हल्दी, दारुहल्दी, लोघ इन
सबको एक एक तोला लेवे इनका कलकवनाकर घृत ४ सेर, जल ४ सेर वकरीका मूत्र
४ सेर, गोमूत्र ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर
छान लेवे यह घृत पीने नस्यलेने अंजन और अभ्यंग आदिमें प्रयुक्त करना चाहिये ।
इसके सेवनसे सब प्रकारके विषविकार, क्षय, उन्माद, भूतवाधा,ग्रहदोष, उदररोग,
पांडुरोग, कृमिरोग, गुल्म, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, कामला, हनुस्तम्भ और ग्रहादिविकार
यह सब नष्ट होते हैं,विषके वेगसे मृतप्राय मनुष्यको भी यह आरोग्य करनेवाला है यह
संपूर्ण विषोंको नष्ट करनेवाला अमृतनामक घृत है ॥ २३९-२४५ ॥

मनुष्यकी रक्षार्थ आचार ।

तत्र श्लोकाः ।

छत्रीझर्झरपाणिश्चचरेद्रात्रौतथा दिवा ।

तच्छायाशब्दत्रिभस्ताःप्रणश्यन्त्याशुपन्नगाः ॥ २४६ ॥

यहां पर यह श्लोक है कि मनुष्यको अपनी शारीरिक रक्षाके लिये रात्रि तथा दिन
छत्री जूता आदि धारण किये रहना चाहिये । तथा सन सनाइत शब्दयुक्त छडी
आदि हाथमें रखकर उससे खडका करतेहुए चलना चाहिये उस छाया और शब्द
आदिसे सांप आदि जानवर डरकर इधर उधर भागजाते हैं ॥ २४६ ॥

दष्टमात्रंदशेदाशुतंसर्पलोष्टमेववा ।

उपर्यरिष्टांघ्नीयादंशंछिन्त्याद्देत्तथा ॥ २४७ ॥

यदि मनुष्यको सांप काट लेवे तो उसी समय सांपको पकडकर अपने दांतोंसे

काट लेना चाहिये । यदि सर्प काटकर चला गया हो तो वह डसाडुआ मनुष्य मट्टीके डले आदि किसी पदार्थको झटपट काट लेवे और कटेहुए स्थानके ऊपर और नीचे कसकर बंध लगाके दंशस्थानको चक्कू, छूरी आदिसे छेदन कर दंशको निकालदेवे तथा अभि आदिसे जलादेवे ॥ २४७ ॥

वज्रंमरकतंसारंपिचुकीविपमूषिका । कर्कोटकमणिःसर्पाद्वैदूर्य-
गजमौक्तिकम् ॥२४८॥ धार्य्यगरमणिर्य्याश्वरौपधयोविषापहाः ।

खगाश्वशारिकाक्रौञ्चशिखिहंसशुकादयः ॥ २४९ ॥

हीरा, मरकत, सार, पिचुकी, विपमुष्टिका, कर्कोटक, सर्पमणि, वैदूर्य, गजमुक्ता आदि तथा इसी प्रकारके और भी उत्तम २ विषनाशक द्रव्योंको तथा विषनाशक अगदोंको धारण किये रहना चाहिये । तथा मैना, क्रौंच पक्षी, मोर, हंस, तोता आदि पक्षी अपने घरमें रखने चाहिये ॥ २४८ ॥ २४९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

इतीदमुक्तं द्विविधस्य विस्तरैर्वहु प्रकारं विपरोगभेषजम् ।

अंधीत्यविज्ञाय तथा प्रयोजयेद्रजे द्विषाणामविपह्यतांबुधः ॥ २५० ॥

इति श्रीचर० चिकि० विपचिकित्सितं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार स्थावर और जंगम विषोंका विस्तारपूर्वक वर्णन अनेक प्रकारकी विष-रोगनाशक औषधियें वैद्यको पढ़कर भले प्रकार जानकर प्रयुक्त करनी चाहिये । जो वैद्य इस प्रकार विधिवत् जानकर बुद्धिपूर्वक चिकित्सा करत है वह विषोंको जीतनेमें समर्थ होता है ॥ २५० ॥

इति श्रीच० चिकित्सास्थाने भा० टी० विपचिकित्सित नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

पट्टविंशोऽध्यायः ।

अथात्त्रिमर्मीयचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भग-
वानात्रेयः ।

अब हम त्रिमर्मीय चिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

सप्तोत्तरंमर्मशतंयदुक्तंशरीरसंख्यामधिकृत्यतेभ्यः । सर्माणिवस्ति
हृदयंशिरश्चप्रधानभूतानिवदन्तितज्ज्ञाः ॥ १ ॥ प्राणाशयान्ता-

न्परिपीडयन्तिवातादयोसूनपिपीडयन्ति । तत्संश्रितानामनुपाल-
नार्थमहागदानांशृणुसौम्यरक्षाम् ॥ २ ॥

शरीरस्थानमें १०७ एक सौ सात मर्मोका कथन कर आएहैं उन सब मर्मोंमें वस्ति हृदय, शिर यह तीन मर्मस्थान आयुर्वेदके जाननेवालोंने प्रधान माने हैं । वातादि दोष इन तीन प्राणाशयोंको पीडितकर प्राणोंतकको नष्ट कर देंतैं । सो हे सौम्य ! उनकी रक्षाके लिये उन मर्मोंमें होनेवाले महारोगोंके निदान और चिकित्साको सुनो १-२

उदावर्तकी संप्राप्ति, लक्षण और उपद्रव ।

कपायतिकोपणरूक्षभोज्यैःसन्धारणाभोजनमैथुनैश्च । पक्वाश-
येकुप्यतिचेदपानःस्रोतांस्यधोगानिवलीसरुद्धा । करोतिविषमारुत-
सूत्रसङ्गक्रमादुदावर्तमतःसुघोरम् ॥ ३ ॥

कपाय, तिक्त, चरपरे और रूक्ष पदार्थोंके अधिक सेवनसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, उपवास करनेसे, मैथुन करनेसे, जब अपानवायु पकाशयमें कुपित होतीहै तो यह बलवान् वायु अधोभागके स्रोतोंको रोकदेतीहै फिर क्रमसे मल, अधोवायु और मूत्रको रोककर घोर उदावर्तको उत्पन्न करदेतीहै ॥ ३ ॥

रुग्वस्तिहृत्कुक्ष्युदरेष्वभीक्षणंसपृष्टपार्श्वेष्वतिदारुणास्यात् ॥ ४ ॥

आध्मानहृल्लासविकर्त्तिकाश्चतोदोऽविपाकश्चसवस्तिशोथः । वर्चो-
ऽप्रवृत्तिर्जठरेचगण्डान्यूर्द्ध्वैश्चवायुर्विहतोगुदेस्यात् ॥ ५ ॥ कृच्छ्रे-

णशुक्रस्यत्रिरात्प्रवृत्तिः स्याद्वातनुःस्यात्खररूक्षशीता । ततश्चरो-

गाज्वरसूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषाः ॥ ६ ॥ वस्यान्ध्यवा-

धिर्यशिरोऽभितापवातोदराष्टीलमनोविकाराः । तृष्णास्त्रपित्सारु-

चिगुलमकासश्चासप्रतिश्यादितपार्श्वरोगाः ॥ ७ ॥ अन्येचरोगा

वहवोऽनिलोत्थाभवन्त्युदावर्तकृताःसुघोराः । चिकित्सितश्चास्यय-

थावदूर्द्ध्वप्रवक्ष्यतेतच्छृणुचाम्निवेश ॥ ८ ॥

उससे वस्ति हृदय, कुक्षि और उदरमें तथा पीठ और दोनों पाश्वोंमें निरन्तर दारुण पीडाका होना, अफारा, हृल्लास, कतरनेकीसी पीडा, तोद, अन्नका परिपाक न होना, वस्तिमें सूजन, विषा न आना, पेटमें गाँठेंसी चुभना, अधोवायुका बंद होकर ऊपरकी

१ अयोगमनशील वायुकी गति चकरखाकर ऊपरकी ओरको गमन करे उसको उदावर्त कहते हैं मल मूत्रादिको जानेवाली वायुका ऊर्ध्वगमन होनेसे यह मलादिमी अपने मार्गसे नहीं निकलसकते ।

और चलना, यदि मलत्याग करनेके लिये बड़ी देरतक जोर लगायाजाय तो कष्टके साथ वीर्य निकलने लगे परन्तु विष्टा न आवे, यदि विष्टा उतरे भी तो बहुत थोड़ी कठोर रूखी और शीतल हो इस प्रकार उदावर्तके होनेसे ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, हृद्रोग, ग्रहणीविकार, वमन, आंखोंके आगे अंधकार होना, वधिरता, शिरमें पीडा, वातोदर, वातघ्नीला, मनके विकार, प्यास, रक्तपित्त, अहचि, गुल्म, खांसी, श्वास, प्रतिश्याय, अर्दितरोग और पार्श्वरोग तथा इनके सिवाय अन्य बहुतसे वातजनित घोर रोग उदावर्तसे उत्पन्न होतेहैं । (उदावर्त प्रायः वेगोंको रोकनेके होनेवाले रोगका नाम है अर्थात् वेगोंके रोकनेसे वायुका प्रतिघात होकर वह अपने मार्गसे रुकजाय तथा उलटा होकर ऊपरको गमन करनेलगे उसको उदावर्त कहतेहैं । वह उदावर्त मल, मूत्र, वीर्य, वायु, छींक आदि जितने वेग हैं उन सबके रोकनेसे उन्हीं २ प्रकारके होते हैं ।) अब इसके उपरांत इस उदावर्त रोगकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं हे अभिवेश ! इसका यथावत् श्रवण करो ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

उदावर्तकी चिकित्सा ।

तैलशीतज्वरनाशनोक्तस्वेदैर्यथोक्तैः प्रविलीनदोषम् ।

उपाचरेद्वर्त्तिनिरूहवस्तिस्नेहैर्विरेकैरनुलोमनात्रैः ॥ ९ ॥

उदावर्त रोगमें पहिले शीतज्वरनाशक तेलोंकी मालिश कर यथोचित रीतिसे स्वेदन करना चाहिये । जब देखे कि दोष लीन होनेलगे तो घत्ती, निरूहणवस्ति, स्नेह और अनुलोमन अत्रोंद्वारा मलका अनुलोमन कर विरेचन करावे ॥ ९ ॥

उदावर्तनाशक वर्त्तिप्रयोग ।

श्यामात्रिवृन्मागधिकाग्निचूर्णगोमूत्रपिष्टं दशभागमापम् ।

सनीलिकांद्विर्लवणांगुडेन वर्त्तिकराङ्गुष्ठनिभांविदध्यात् ॥ १० ॥

काली निशोथ, पीपल, चित्रक और नीलिका, प्रत्येक दश दश माशे लेवे । संधानमक २० माशे इन सबको गोमूत्रके संयोगसे पीसकर गुड मिला अगुंठेके बराबर और लम्बी बत्ती बनावे । इस बत्तीको विरेचन घृतमें भिगोकर अथवा अण्डीके तेलमें भिगोकर गुदामें प्रवेश करना चाहिये ॥ १० ॥

पिण्याकसौवर्चलहिंगुभिर्वाससर्षपत्र्यूपणयावशूकैः ।

क्रिमिघ्नकम्पिलकशंखिनीभिः सुधार्कजक्षीरगुडैर्युताभिः ॥ ११ ॥

तिलोंका कल्क, संचरनमक, हांग, सफेद सरसों, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार इनकी बत्ती उपरोक्त विधिसे बनाकर प्रयुक्त करे । अथवा वायविडंग, कमीला,

शंखिनी, थोहरका दूध, आकका दूध और गुड मिलाकर बत्ती बनावे फिर उसे एरण्डके तेलमें भिगोकर गुदामें डाले, फिर थोड़ी देरके बाद निकालले ॥ ११ ॥

स्यात्पिप्पलीसर्पपराठवेदमधूमैःसगोमूत्रगुडैश्वर्त्तिः ॥ १२ ॥

पीपल, सफेद सरसों, गृहधूम, गोमूत्र और गुडसे उपरोक्त रीतिपर बत्ती बना प्रयोग करनेसे उदावर्त्त दूर होताहै ॥ १२ ॥

उदावर्त्तनाशकचूर्णप्रथमनयोग ।

श्यामाफलेक्ष्वाकुसुपिप्पलीकंनाडयाथवातप्रथमेत्तुचूर्णम् । रक्षो-
घ्नतुम्बीकरहाटकृष्णाचूर्णसजीमूतकसैन्धवंवा । स्निग्धेगुदेतान्य-
नुलोमयन्तिनरस्यवर्च्चोऽनिलमूत्रसङ्गम् ॥ १३ ॥

अथवा काली निशोय, भैरफल, कडुवे तुंबेका गुदा और पीपल इन सबका चूर्ण बना नलमें रखकर वह नल गुदामें डालकर बाहरसे धोंकनी द्वारा वा जोरसे फूंक मारकर नलके भीतरका चूर्ण गुदामें पहुंचाकर नलको निकाल लेवे । अथवा सरसों, कडवी तुंबी, भैरफल, पीपल, कडवी तोरी और संधानमक इन सबका बारीक चूर्ण कर इसी विधिसे गुदामें प्रथमन करे । परन्तु जब बत्ती अथवा चूर्णका प्रवेश करना हो तो पहिले गुदाको घृत अथवा एरण्डके तेलसे चुपडलेना चाहिये । पीछे बत्ती अथवा चूर्णका प्रयोग करना चाहिये । ऐसा करनेसे मल, वायु और मूत्रका बंध खुल-जाताहै ॥ १३ ॥

तेषांविघातेतुभिपग्विदध्यात्स्वभ्यक्तसुस्त्रिन्नतनोर्निरूहम् ।

ऊर्द्धानुलोमौपधमूत्रतैलक्षाराभ्लवातप्रयुतंसुतीक्ष्णम् ॥ १४ ॥

यदि बत्ती और चूर्णसे रोगीका बंध खुलकर मलादिकोंकी यथोचित प्रवृत्ति न हो तो वैद्य रोगीको अच्छी तरह स्निग्ध, अभ्यक्त और स्वेदन करके निरूहण वस्तिका प्रयोग करे । यह निरूहण वस्ति तीक्ष्ण, ऊर्द्धानुलोमनद्रव्य, गोमूत्र, तेल, जवाखार, खटाई और वातनाशक द्रव्योंसे प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १४ ॥

वातेऽधिकेऽभ्ललवणंसतैलक्षीरेणपित्ततुकफेसमूत्रम् ।

समूत्रवर्चोनिलसंगमाशुगुदंशिराश्वप्रगुणीकरोति ॥ १५ ॥

यदि उदावर्त्त वायुकी अधिकता प्रतीत हो तो अम्ल, लवण और तेलकी अधिकतायुक्त निरूहणवस्ति करना चाहिये । यदि पित्तकी प्रधानता हो तो दूध पिलाकर निरूहण करना चाहिये । और कफकी अधिकतामें गोमूत्र मिलाकर निरूहणकर्म करे । इस प्रकार निरूहण करनेसे गुदाकी विगुणता दूर होकर मल, मूत्र और

वायुका बंध शीघ्र दूर हो होजाताहै । तथा शिरा और मलद्वारा शुद्ध और विगुणतः रहित होजाताहै ॥ १५ ॥

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकं ग्राम्यौहकानूपरसैर्यवान्नम् ।

अन्यैश्चसृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्यात्प्रसन्नागुडशीधुपायी ॥ १६ ॥

निशोय और थोहके पत्ते और तिल आदिका शाक तथा ग्राम्य और जलज जीवोंका मांसरस और यवोंका अन्न तथा अन्य मलमूत्रके निकालनेवाले और वायुको स्वच्छ करनेवाले अन्न पान, प्रसन्ना और गुडकी शीधु पीना हितकारी होताहै ॥ १६ ॥

भूयोऽनुबन्धेतु भवेद्विरेच्यो मूत्रप्रसन्नादधिसण्डयुक्तैः ।

स्वस्थन्तुपश्चादनुवासयेत्तरोक्षयाद्विसंगोनिलवर्चसोश्चेत् ॥ १७ ॥

यदि इस प्रकार उपाय करनेसे एक बार आराम होकर दूसरीबार फिर बंध पडजावे तो गोमूत्र, प्रसन्ना और दंधिमण्डके योगसे विरेचनद्रव्य पिलाकर विरेचन करावे । फिर स्वास्थ्य होनेपर यदि रूक्षतासे वायु और मलका बंध प्रतीते हो तो अनुवासन करावे ॥ १७ ॥

उदावर्तनाशक चूर्ण ।

द्विरुत्तरं हिं गुवचाभिकुष्ठं सुवर्जिका चैव विडंगचूर्णम् ।

सुखाम्बुनानाहविसूचिकात्तिहृद्रोगगुल्मोर्द्धसमीरणम् ॥ १८ ॥

हींग, वच, चित्रक, कूठ, जवाखार और वायविडंग यह क्रमसे एक दूसरेसे दुगुने लेना चाहिये । जैसे हींग १ तोला, वच २ तोला, चित्रक ४ तोला, कूठ ८ तोला, जवाखार १६ तोला और वायविडंग ३२ तोला इन सबको वारीक पीसकर सुखोष्ण जलके साथ लेवे तो विमूचिकाकी पीडा, हृद्रोग, गुल्म और ऊर्द्धवातकी शान्ति होतीहै ॥ १८ ॥

वचाभयाचित्रकयावशूकान्सपिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान् ।

उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्पीत्वजयेदाशुरसौदनाशी ॥ १९ ॥

वच, हरड, चित्रक, जवाखार, पीपल, अतीश और कूठ इन सबको वारीक पीसकर गरम जलके साथ लेनेसे अफारा, विमूढवात (उदावर्त), यह दूर होते हैं । इस औषधके सेवन करतेहुए मांसरस और यवोंका ओदन (अथवा शालीचावलोंका भात) सेवन करना चाहिये ॥ १९ ॥

हिं गूय्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।

यथोत्तरं भागविवृद्धमेतत्स्त्रीहोदराजीर्णविसूचिकासु ॥ २० ॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, विडनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरड ६ भाग, पोहकारमूल ७ भाग, कूठ ८ भाग । इन सबका चूर्ण बना गरम जल अथवा प्रसन्नाके साथ सेवन करनेसे छीहरोग, उदररोग, अजीर्ण और विस्त्रिचिका दूर होतीहै ॥ २० ॥

उदावर्तनाशक घृत ।

स्थिरादिवर्गस्यपुनर्नवायाःश्यामाकपूतीकरञ्जयोश्च ।

सिद्धःकपांयेद्विपलांशिकानांप्रस्थोघृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवाते ॥ २१ ॥

शालपणयादि पंचमूल, पुनर्नवा, श्यामाक (सोंक) और पूतिकरंज इन सबको दो-दो पल लेकर क्वाथ बनावे । इनके क्वाथसे १ प्रस्थ घृत सिद्ध करे । इस घृतके सेवन करनेसे उदावर्त रोग दूर होताहै ॥ २१ ॥

उदावर्तनाशक क्षार ।

फलश्चमूलश्चवैरेचनोक्तंहिंग्वर्कमूलंदशमूलमग्न्यम् । स्तुकुचित्र-

कौचैवपुनर्नवाचतुल्यानिसर्वैर्लवणानिपञ्च ॥ २२ ॥ स्नेहैः समूत्रैः

सहजर्जराणिशरावसन्धौविपचेत्सुलिसे । पक्वंसुपिष्टंलवणंतदन्नैः

पानैस्तथानाहरुजाग्नमव्यात् ॥ २३ ॥

वैरेचनवर्गमें कहेहुए सब प्रकारके फल और मूल, हींग, आक, दशमूल, चित्ता, थोहर, पुनर्नवा इन सबको बगार लेकर चूर्ण करे । सबके समान पांचों नमकोंका चूर्ण मिलावे । फिर सब प्रकारके स्नेह और सब प्रकारके मूत्र मिलाकर उपरोक्त चूर्णको संपुटमें रख संपुटकी संधियोंकी भलेप्रकार बन्द करके कपडमट्टीकर गजपुटमें फूंक देवे । शीतल होनेपर निकालकर संपुटमेंके द्रव्यको पीस लेवे । इस लवणको (क्षार) अन्नपानके साथ सेवन करनेसे अफारा और पेटकी पीडा दूर होतीहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

वमनद्वारा जीतनेयोग्य रोग ।

हृत्स्तम्भमूर्च्छामयगौरवात्तेचोद्गारसंगेनसपीनसेन ।

आनाहमामप्रभवंजयेत्तुप्रच्छर्दनैर्लङ्घनपाचनैश्च ॥ २४ ॥

हृदयका स्तम्भन होना, मस्तकका भारीपन और मस्तकपीडा, डकार आते २ रुकजाना, पीनस तथा अफारा और आमसे उत्पन्नहुए रोगोंको वमन तथा लवणों द्वारा जीतना चाहिये ॥ २४ ॥

परंडतैलद्वारा विरेच्य रोग ।

गुल्मोदरव्रधार्शःश्लिहोदावर्तयोनिशुक्रगदे । मेदःकफसंसृष्टेमारु-

तरक्तेऽवगाढे च ॥ २५ ॥ गृध्रसिपक्षवधादिपुविरेचनाहर्हेषुवातरोगेषु । वातेविवद्धमार्गेभेदः कफपित्तरक्तेन ॥ २६ ॥ पयसामांसरसैर्वात्रिफलारसयूपमूत्रमदिराभिः । दोषानुबन्धयोगात्प्रशस्तमैरण्डजंतैलम् ॥ २७ ॥ तद्वातनुस्त्वभावात्संयोगवशाद्विरेचनाच्चजेत् । मेदोऽसृक्पित्तकफान्मिश्रानिलरोगजित्स्यात् ॥ २८ ॥

गुल्म, उदरोग, ब्रध्न (वध), ववासीर, प्लीहा, उदावर्त, योनिरोग, शुक्रविकार, भेद अथवा कफयुक्त वातरक्त, गंभीर वातरक्त, गृध्रसी, पक्षाघात आदि विरेचन योग्य वातरोगोंमें और भेद, कफ तथा पित्त रक्तद्वारा विवद्धवातमें दोषोंका अनुबंध विचारकर दूध अथवा मांसरस या त्रिफलेके क्वाथ अथवा अन्य रस और यूप वा गोमूत्रके साथ एरण्ड तैल मिलाकर पिलाना अर्थात् उपरोक्त दूध आदि अनुपानोंमें एरण्ड तैल पिलाकर विरेचन कराना हितकारक होताहै । क्योंकि एरण्ड तैल स्वभावसेही वातनाशक है वह संयोगवश विरेचन द्वारा भेद, रक्तपित्त और कफसे मिश्रित वातगोंको जीतलेता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

बलकोष्ठव्याधिवशादापञ्चपलाभवेन्मात्रा ।

मृदुकोष्ठवलानांसहभोज्यंतत्प्रयोज्यंस्यात् ॥ २९ ॥

शरीरबल, कोष्ठबल, व्याधि आदि विचारकर एरण्डतैलकी मात्रा ५ पलतक होसकतीहै । मृदुकोष्ठ और दुर्बल मनुष्योंको एरण्डतैल भोजनमें मिलाकर और अल्प मात्रासे देना चाहिये ॥ २९ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

मूत्रकृच्छ्रके हेतु ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात् । आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणिनृणामिहाष्टौ ॥ ३० ॥

अत्यंत व्यायाम करनेसे, तीक्ष्ण औषध, रूक्ष मद्य, अति स्त्रीसंग और नित्य अत्यंत वेगवाले घोडे आदिकी सवारी करना तथा आनूपजीवोंका और मछलीका मांस अधिक सेवन करना । फिर भोजन करना और अजीर्णसे मनुष्योंके शरीरमें ओंठ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होतेहैं ॥ ३० ॥

१ वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मलाभिघातज, अस्मरीजनित, शुक्राभिघातज और शर्कराजनित, यह ८ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होतेहैं ।

मूत्रकृच्छ्रकी संप्राप्ति ।

पृथङ्मलाःस्रैःकुपितानिदानैःसर्वेऽथवाकोपमुपेत्यवस्तौ ।

मूत्रस्यमार्गपरिपीडयन्तियदातदामूत्रयतीहकृच्छ्रात् ॥ ३१ ॥

अपने २ कारणोंसे कुपितहुए वातादि दोष पृथक् पृथक् अथवा सब मिलकर वस्तिमें प्राप्त हो जब मूत्रमार्गको पीडन करतेहैं तब मनुष्य अत्यन्त कष्टके साथ मूत्रताई ॥ ३१ ॥

तीव्राहिरुग्बद्ध्वाणवस्तिमेद्वैस्खल्पंमुहुर्मूत्रयतीहवातात् ।

पीतंसरकंसरुजंसदाहंकृच्छ्रान्मुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ॥ ३२ ॥

वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें-वंक्षण, वस्ति और लिंगमें तीव्र पीडा होकर थोडा २ मूत्र वार वार आताहै । पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें-पीला, लाल मूत्र अत्यंत पीडा और दाहके साथ कष्टसे वारवार थोडा २ आताहै ॥ ३२ ॥

वस्तेःसलिङ्गस्थगुरुत्वशोथौमूत्रंसपिच्छंकफमूत्रकृच्छ्रे ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपाताद्भवन्तितत्कृच्छ्रतमन्तुकृच्छ्रम् ॥ ३३ ॥

वस्ति और लिंगमें भारीपन तथा सूजन हो, मूत्र गाढा और सफेद, चिकना कठिनतासे उतरे यह कफजनित मूत्रकृच्छ्रके लक्षण है । तीनों दोषोंके संपूर्ण लक्षण-जिस मूत्रकृच्छ्रमें हो उसको सन्निपातका मूत्रकृच्छ्र जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

अश्मरीका निदान ।

विशोपयेद्द्वस्तिगतन्तुशुक्रंमूत्रंसपित्तंपवनःकफंवा ।

यदातदाश्मर्युपजायतेतुक्रमेणपित्तेष्विवरोचनागोः ॥ ३४ ॥

किसी कारणसे वस्तिमें प्राप्तहुए वीर्य और मूत्रको वायु सुखादे तो उस वीर्य और मूत्रसे पथरी उत्पन्न होजातीहै । फिर वह क्रमसे बढ़ने लगतीहै अथवा कफ-और पित्तको वस्तिस्थानमें वायु सुखादेवे तो भी पथरी उत्पन्न होजातीहै । यह पथरी गौरोचनके समान होतीहै ॥ ३४ ॥

अश्मरीजनित मूत्रकृच्छ्र ।

कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्याइलक्षणात्रिपुट्यप्यथवापिमृद्धी । मूत्रस्य

चेन्मार्गमुपैतिरुद्धामूत्रंरुजंतस्यकरोतिवस्तौ ॥ ३५ ॥ ससी-

वनीमेहनवस्तिशूलंविशीर्णधारश्चकरोतिमूत्रम् । मृद्नातिमेदुं

म्नवेदनात्तोमुहुः शकृन्मुश्चतिमेहतेच ॥ ३६ ॥ क्षोभात्क्षतेमू-

त्रयतीहसासृक्तस्याःसुखंमेहतिचव्यपायात् । एपाश्मरीमारुत
भिन्नमूर्तिः स्याच्छर्करामूत्रपथात्क्षरन्ती ॥ ३७ ॥

पथरी (अश्मरी) कदंबके फूलके समान अथवा पत्थरके समान या चिकनी
टी हुई अथवा तिकोनी या मृदु तथा अनेक प्रकारकी होतीहै । जब पथरी मूत्र-
मार्गके द्वारपर आजातीहै तो मूत्रको रोककर वस्तिमें अत्यंत पीडा करतीहै तथा
खून, लिंग और वस्तिमें विदीर्ण होनेके समान अत्यंत शूल होने लगताहै । मूत्रकी
तर दूट दूटकर आतीहै रोगी मारे पीडाके बारबार लिंगेन्द्रियकी दवाताहै और
बारबार मल और मूत्रका त्याग करताहै उस समय मूत्रके अत्यंत क्षोभ होनेसे पथरी
मार्ग जखम होकर मूत्रमें रक्त आने लगताहै, जब पथरी निकलजाय अथवा मूत्रमार्गसे
दवाय तो मूत्र सुखपूर्वक आने लगताहै । यह पथरी वायुसे भेदन होकर रेतके समान,
मूत्रद्वारसे खरने लगतीहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शुक्राभिघातज मूत्रकृच्छ्रं ।

रेतोऽभिघाताभिहतस्यपुंसःप्रवर्त्तयेत्तस्यतुमूत्रकृच्छ्रम् । स्याद्दे-
नावंक्षणवस्तिमेद्वेतस्यातिशूलेवृषणातिवृत्ते ॥३८॥ शुक्रेणसंरुद्ध-
गतिः प्रवाहोमूत्रंसकृच्छ्रेणविमुञ्चतीह । तमण्डयोःस्तब्धमिति
वृवन्तिरेतोऽभिघातेप्रवदन्तिकृच्छ्रम् ॥ ३९ ॥

शुक्रके अभिघातसे मूत्रकृच्छ्र केवल पुरुषोंको ही होताहै । बालक और स्त्रियोंको
यही होता । शुक्राभिघातजनित मूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण, वस्ति, लिंगेन्द्रिय और वृषणोंमें
अत्यंत शूल तथा पीडा होने लगतीहै और मूत्रका मार्ग शुक्रसे रुकाहुआ होनेसे
मूत्रका प्रवाह रुकरुककर और कष्टके साथ थोडा २ मूत्र उतरताहै, और
अण्डकोशोंको स्तब्ध कर देताहै उसको शुक्राभिघातजनित मूत्रकृच्छ्र कहते
हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

शुक्रंमलाश्चैवपृथक्पृथक्त्वामूत्राशयस्थाःप्रतिवारयन्ति । तद्व्याह-
तंमेहनवस्तिशलंमूत्रंसशुक्रंहिकरोतिवद्धम् । स्तब्धश्चशूनोभृश-
वेदनश्चतुद्येतवस्तिवृषणौचतस्य ॥ ४० ॥

जब वातादि द्रौप पृथक् २ अथवा सब मिलकर मूत्राशयमें स्थित होकर शुक्रको
रोक देतेहैं तो उसके रुकनेसे लिंगेन्द्रिय और वस्तिमें शूल उत्पन्नकर वीर्यके साथ ही
मूत्रको भी रोकदेतेहैं । उससे वस्ति और वृषणोंमें स्तब्धता, सूजन, अत्यंत पीडा सूई
चुभनेकासा तोद होने लगताहै ॥ ४० ॥

क्षतज मूत्रकृच्छ्र ।

क्षताभिघातात्क्षतजंक्षयाद्वाप्रकोपितं वस्तिगतं विवद्धम् ॥ ४१ ॥
तीव्रात्तिमूत्रेणसहाश्मरीत्वमायातितस्मिन्नतिसञ्चिते च । आध्मा-
ततांविन्दतिगौरवश्चवस्तेर्लघुत्वञ्चविनिःसृतेऽस्मिन् ॥ ४२ ॥

किसी प्रकारके क्षत (उपदंश आदि) से अथवा चोट आदि लगनेसे वा रस आदि धातुक्षय होनेसे क्षतज रक्तादि कुपित होकर वस्तिमें प्राप्त हो मद्ध होजातेहैं तब पयरीके समान कठोरपनको प्राप्त हो मूत्र आनेके समय मूत्रसे मिलकर भारी पीडाको करतेहैं । यदि क्षतज दोष अति संचित होजायँ तो वस्तिमें अफारा और भारीपनको करतेहैं । दोष (क्षतज दोषकी बनीहुई ग्रंथी) के निकल जानेसे वस्ति हल्की होजातीहै । यह क्षतज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

वातज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्नेहोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् । स्थिरादि-
भिर्वातहरैश्चसिद्धान्युञ्ज्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ ४३ ॥

वायुके मूत्रकृच्छ्रमें अभ्यंग, स्नेहवस्ति, निरूहणवस्ति, स्नेहयुक्त उपनाह, स्वेद, उत्तरवस्ति, वातनाशक क्वायोंका परिसेचन, शालपर्णी आदि वातनाशक सिद्ध किये मांसरसोंका प्रयोग करे ॥ ४३ ॥

पुनर्नैवेरण्डशतावरीभिःपत्तूरवृश्चीरवलाश्मभिन्द्रिः । द्विपञ्चमूलेन
कुलरथकोलयवैश्चतोयोत्ववथितेकपाये ॥ ४४ ॥ तैलं वराहर्क्षवसा-
घृतञ्चैतैरेवकल्कैर्लवणैश्चसाध्यम् । तन्मात्रयाशुप्रतिहन्तिपीतंशू-
लान्वितंमारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४५ ॥

पुनर्नैवा, एरण्डकी जडका छिलका, शतावर, शालिश्च शाक, सफेद पुनर्नैवा, बला, पापाण भेद, दशमूल, कुलथी बेर और यव इन सबके कल्क और क्वाथ तथा पांचों नमक मिलाकर सिद्ध किये तेल सूअरकी चर्बी, रीछकी चर्बी और घृतकी उचितमात्रा सेवनकरनेसे वातजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

एतानिचान्यानिवरौपधानिसर्वाणिशस्तान्यपिचोपनाहे ।

स्युर्लाभतस्तैलफलानिचैवस्नेहाम्लयुक्तानिसुखोष्णवन्ति ॥ ४६ ॥

यह उपरोक्त सिद्ध कियेहुए तेल चर्बी आदि तथा अन्यान्य वातनाशक उत्तम द्रव्योंसे उपनाह करना या तेल, फल, स्नेह, खटाईमें मिलाकर वातनाशक द्रव्योंको गमकर उससे उपनाह स्वेद करना वातजनित मूत्रकृच्छ्रको दूर करताहै ॥ ४६ ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

सेकावगाहाःशिशिराःप्रदेहाग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविरेकाः ।

द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्चकृच्छ्रेषुपित्तप्रभवेपुकार्याः ॥ ४७ ॥

पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें-शीतलद्रव्योंसे सेचन, शीतल लेपन, शीतल अवगाहन तथा श्रीष्मन्नुतुमें करनेयोग्य शीतलविधि, दूधयुक्त वस्तिकर्म, शीतल विरेचन अथवा दाख, विदारीकंद और ईखके रसमें घृत और दूध मिलाकर अथवा इन्हींसे सिद्ध किये घृत और दूध वस्ति और विरेचन कर्ममें प्रयोग करने चाहिये ॥ ४७ ॥

शातावरीकाशकुशाश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकशेरुकानाम् ।

काथंसुशीतमधुशर्कराभ्यांयुक्तंपिवेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्री ॥ ४८ ॥

शतावर, कांसकी जड, कुशाकी जड, गोखरू, विदारीकंद, शालीघान्यकी जड ईखकी जड और कसेरू इन सबका क्वाथ बना शीतलकर शहद और मिसरी मिला पीवे तो पित्तजनित मूत्रकृच्छ्र दूर हो ॥ ४८ ॥

पिवेत्कपायंकमलोत्पलानांशृङ्गाटकानामथवाविदार्याः ।

दण्डोत्पलानामथवापिमूलंपूर्वेणकल्पेनतथासुशीतम् ॥ ४९ ॥

नीलकमल, लालकमल अथवा सिंघाडे या विदारीकंद वा दण्डोत्पलकी जडका क्वाथ शीतलकर शहद और मिसरी मिला पिलावे अथवा इनका शीतकपाय बना पिलावे ॥ ४९ ॥

एर्वारुवीजंत्रपुपात्कुसुम्भारसकुंकुमःस्याद्वृषकश्चपेयः ।

द्राक्षारसेनाश्मरिशर्करासुसर्वेषुकृच्छ्रेषुप्रशस्तएयः ॥ ५० ॥

ककडीके बीज, खीरेके बीज, कुसुंभके बीज, केशर, (अथवा कुगुयूटी) औ वांसा इन सबका द्राक्षाके रसमें शर्बत बना मिसरी मिलाकर पीवे तो सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होतेहैं । और पित्तके मूत्रकृच्छ्रमें विशेष रूपसे हित हैं ॥ ५० ॥

एर्वारुवीजंमधुकंसदाविपैत्तेपिवेत्तण्डुलधावनेन ।

दावीतथैवामलंकीरसेनसमाक्षिकांपित्तकृत्तेतुकृच्छ्रे ॥ ५१ ॥

ककडीके बीज, मुलैठी और दारुहल्दीके कल्कको तण्डुलजलमें घोलकर पीवे तो पित्तका मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै । अथवा दारुहल्दी, आँवलेका रस और शहद मिलाकर पीवे तो पित्तका मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५१ ॥

कफजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानांस्वेदोपवात्रं वमनं निरूहाः ।

तक्रंसतिकौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५२ ॥

कफजनित मूत्रकृच्छ्रमें क्षार, उष्ण और तीक्ष्ण औषधी तथा उष्णतीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, यवात्र, वमन और निरूहण तथा तक्रप्रयोग एवं तित्त द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ तैल, अभ्यंग और पानमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ५२ ॥

व्योषंश्वदंष्ट्रात्रुटिसारसास्थिकोलप्रमाणंमधुमूत्रयुक्तम् ।

पिवेत्त्रुटिक्षौद्रयुतांकदल्यारसेनकैटर्यरसेनवापि ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टे इन सबका चूर्ण १ तोला लेकर शहदमें मिला पिलावे । अथवा छोटी इलायची, और केलेके जडका रस शहद मिला पिलावे या केवटीमोथेकी जडका स्वरस शहद और छोटी इलायची मिला पिलावे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५३ ॥

तक्रेणयुक्तंशितिसारकस्यवीजंपिवेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः ।

पिवेत्तथातण्डुलधावनेनप्रवालचूर्णंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५४ ॥

अथवा तेंदूके बीजोंको छांछके साथ पीवे वा तण्डुलजलके साथ प्रवालमरमका सेवन करे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५४ ॥

सप्तच्छदारग्वधकेतुकैलाधवंकरजंकुटजंगुडूचीम् ।

पक्त्वाजलेतेनपिवेद्यवागुंसिद्धंकपायंमधुसंयुतंवा ॥ ५५ ॥

अथवा सप्तपर्ण, अमलतासका गूदा, छोटी इलायची, केतुक (केतुआवृक्ष) धन, करंज, कुडाकी छाल और गिलोय इसके जलमें सिद्ध की हुई यवागू वा इनके स्वायको शहद मिला पीनेसे कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५५ ॥

सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

सर्वत्रिदोषप्रभवेतुवायोःस्थानानुपूर्व्याप्रसमीक्ष्यकार्यम् ।

त्रिभ्योधिकेप्राग् वमनंकफेस्यात्पित्तविरेकःपवनेतुवस्तिः ॥ ५६ ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें वायुका पूर्वापर विचार कर क्रमानुसार तीनों दोषोंकी मिलीजुली चिकित्सा करना चाहिये । यदि वातादि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तो प्रथम वमन कराना चाहिये और पित्तकी अधिकता हो तो प्रथम विरेचन कराना चाहिये और वायुकी अधिकतामें वस्तिरुम करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अश्मरी (पथरी) की चिकित्सा ।

क्रियाहितात्वश्मरिशर्कराभ्यांकृच्छ्रेयथैवेहकफानिलाभ्याम् ।

काय्याश्मरीभेदनपातनायविशेषयुक्तंशृणुकर्मसिद्धम् ॥ ५७ ॥

कफ और वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें जो चिकित्सा कही है अश्मरी (पथरी) और शर्करा रोगमें भी उसी चिकित्साका प्रयोग करना हितकारक है । पथरीको भेदन और पातन करनेकेलिये जिस विशेष कर्मका प्रयोग करना चाहिये उस अनुभूत कर्मको सुनो ॥ ५७ ॥

पथरी और शर्करानाशक योग ।

पाषाणभेदंवृषकंश्चदंप्रापाठाभयाव्योपशटीनिकुम्भाः ।

हिंस्त्राखराश्वासितिमारकाणामेर्वारुकाणांत्रपुपस्यवीजम् ॥ ५८ ॥

उत्कुञ्चिकाहिङ्गुसवेतसाम्लंस्याद्देवृहल्यौहवुषावचाच ।

चूर्णपिवेदश्मरिभेदपक्वंसर्पिश्वगोमूत्रचतुर्गुणतैः ॥ ५९ ॥

पाषाणभेद, अड्डसा, गोखरू, पाठा, हरड, सोंठ, मिर्च, पीपल, कचूर, दन्ती, हींसके बीज, अजमोद, शालिचशाकके बीज, ककडीके बीज, खीरेके बीज, उत्कुञ्चिका (कालाजीरा,) हींग, अम्लवेत, कटेली, बडी कटेली, हाऊवेर और वच, इन सबका चूर्ण कर गरम जल या दूधके साथ सेवन करे अथवा इनके कल्क और कायसे गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्धकरे । इस घृतके पीनेसे भी पथरीका भेद होकर पथरी और शर्करा दूर होतेहैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

मूलंश्चदंप्रेक्षुरकोरुवृकात्क्षीरेणपिष्टंवृहतीद्वयञ्च ।

आलोड्यदध्नामधुरेणपेयंदिनानिसप्ताश्मरिभेदनाय ॥ ६० ॥

गोखरू तालमखाना, एरण्डकी जड इनको दूधमें पीसकर सेवन करे अथवा छोटी और बडी कटेलीकी जडको बारीक पीसकर मीठे दहीमें मिला पीवे तो सात दिनमें अश्मरीका भेदन होताहै ॥ ६० ॥

पुनर्नवायोरजनीश्चदंप्राफल्गुप्रवालाश्चसदर्भपुष्पाः ।

क्षीराम्बुमद्येशुरसैःसुपिष्टंपेयंभवेदश्मरिशर्करासु ॥ ६१ ॥

पुनर्नवा, लोहमसम, हल्दी, गोखरू, गूलर, मूंगेकी भसम, दामके फूल इन सबको पीसकर दूध, जल, मद्य और ईखके रसमें मिलाकर पीवे तो पथरी और शर्करा दूर होतीहैं ॥ ६१ ॥

त्रटिसुराह्वलवणानिपश्चयवाग्रजंकुन्दुरुकाश्मभेदौ । कम्पिलकंगो-

कफजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानांस्वेदोयवान्नवमनंनिरूहाः ।

तंक्रंसतिक्तौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५२ ॥

कफजनित मूत्रकृच्छ्रमें क्षार, उष्ण और तीक्ष्ण औषधी तथा उष्णतीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, यवान्न, वमन और निरूहण तथा तक्रमयोग एवं तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ तैल, अभ्यंग और पानमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ५२ ॥

व्योपंश्वदंष्ट्रात्त्रुटिसारसास्थिकोलप्रमाणंमधुमूत्रयुक्तम् ।

पिवेत्त्रुटिक्षौद्रयुतांकदल्यारसेनकैटर्यरसेनवापि ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टे इन सबका चूर्ण १ तोला लेकर शहदमें मिला पिलावे । अथवा छोटी इलायची, और केलेके जडका रस शहद मिला पिलावे या केवटीमोथेकी जडका स्वरस शहद और छोटी इलायची मिला पिलावे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५३ ॥

तक्रेणयुक्तंशितिसारकस्यबीजंपिवेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः ।

पिवेत्तथातण्डुलधावनेनप्रवालचूर्णंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५४ ॥

अथवा तेंदूके बीजोंको छांछके साथ पीवे वा तण्डुलजलके साथ प्रवालभस्मका सेवन करे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५४ ॥

सप्तच्छदारग्वधकेवुकैलाधवंकरञ्जकुटजंगुडूचीम् ।

पक्त्वाजलेतेनपिवेद्यवागूंसिद्धंकपायंमधुसंयुतंवा ॥ ५५ ॥

अथवा सप्तपर्ण, अमलतासका गूदा, छोटी इलायची, केवुक (केवुआवृक्ष) धन, करंज, कुडाकी छाल और गिलोय इसके जलमें सिद्ध कीहुई यवागू वा इनके क्वाथको शहद मिला पीनेसे कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५५ ॥

सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

सर्वत्रिदोषप्रभवेतुवायोःस्थानानुपूर्व्याप्रसमीक्ष्यकार्यम् ।

त्रिभ्योधिकेप्राग्मनंकफेत्स्यात्पित्तेविरेकःपवनेतुवस्तिः ॥ ५६ ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें वायुका पूर्वापर विचार कर क्रमानुसार तीनों दोषोंकी मिलीजुली चिकित्सा करना चाहिये । यदि वातादि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तो प्रथम वमन कराना चाहिये और पित्तकी अधिकता हो तो प्रथम विरेचन कराना चाहिये और वायुकी अधिकतामें वस्तिरुम करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अश्मरी (पथरी) की चिकित्सा ।

क्रियाहितात्वश्मरिशर्कराभ्यांकृच्छ्रेयथैवेहकफानिलाभ्याम् ।

कार्य्याश्मरीभेदनपातनायविशेषयुक्तंशृणुकर्मसिद्धम् ॥ ५७ ॥

कफ और वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें जो चिकित्सा कही है अश्मरी (पथरी) और शर्करा रोगमें भी उसी चिकित्साका प्रयोग करना हितकारक है । पथरीको भेदन और पातन करनेकेलिये जिस विशेष कर्मका प्रयोग करना चाहिये उस अनुभूत कर्मको सुनो ॥ ५७ ॥

पथरी और शर्करानाशक योग ।

पापाणभेदंवृषकंश्वदंप्रापाठाभयाव्योपशटीनिकुम्भाः ।

हिंसाखराश्वासितिमारकाणामेर्वारुकाणांत्रपुपस्थवीजम् ॥ ५८ ॥

उत्कुञ्चिकाहिङ्गुसवेतसाम्लंस्याद्देवृहल्यौहवुपावचाच ।

चूर्णपिवेदश्मरिभेदपक्वंसर्पिश्चगोमूत्रचतुर्गुणतैः ॥ ५९ ॥

पापाणभेद, अट्टसा, गोखरू, पाठा, हरड, सोंठ, मिर्च, पीपल, कचूर, दन्ती, हींसके बीज, अजमोद, शालिचशाकके बीज, ककडोंके बीज, खीरेके बीज, उत्कुञ्चिका (कालाजीरा,) हींग, अम्लवेत, कटेली, बड़ी कटेली, हाऊवेर और बच, इन सबका चूर्ण कर गरम जल या दूधके साथ सेवन करे अथवा इनके कल्क और काथसे गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्धकरे । इस घृतके पीनेसे भी पथरीका भेद होकर पथरी और शर्करा दूर होते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

मूलंश्वदंप्रेक्षुरकोरुक्कात्क्षीरेणपिष्टंवृहतीद्वयश्च ।

आलोड्यदधामधुरेणपेयंदिनानिससाश्मरिभेदनाय ॥ ६० ॥

गोखरू तालमखाना, एरण्डकी जड़ इनको दूधमें पीसकर सेवन करे अथवा छोटी और बड़ी कटेलीकी जड़को बारीक पीसकर मीठे दहीमें मिला पीवे तो सात दिनमें अश्मरीका भेदन होता है ॥ ६० ॥

पुनर्नवायोरजनीश्वदंप्राफल्गुप्रवालाश्चसदर्भपुष्पाः ।

क्षीराम्बुमद्येक्षुरसैःसुपिष्टपेयंभवेदश्मरिशर्करासु ॥ ६१ ॥

पुनर्नवा, लोहमसम, हल्दी, गोखरू, गूलर, मूंगेकी भस्म, दामके फूल इन सबको पीसकर दूध, जल, मद्य और ईखके रसमें मिलाकर पीवे तो पथरी और शर्करा दूर होती है ॥ ६१ ॥

त्रटिसुराह्वलवणानिपथ्यवाग्रजंकुन्दुरुकाश्मभेदौ । कम्पिलकंगो-

क्षुरकस्यबीजमेवाल्बीजंत्रपुपस्यबीजम् ॥ ६२ ॥ चूर्णीकृतंचित्र-
कहिं गुमांसीयमानितुल्यंत्रिफलाद्भिभागम् । अम्लैःसशुकैरसम-
द्ययूयैःपेयंहिगुल्माश्मरिभेदनार्थम् ॥ ६३ ॥

छोटी इलायची, देवदारु, पांचों लवण, जवाखार, कुन्दरुगोंद, पापाणभेद,
कमीला, गोखरु, ककडीके बीज, खीरेके बीज, चित्रक, हींग, जटामांसी और
अजवायन इनको समभाग लेकर चूर्ण करे और हरड, बहंडे और आँवलेका चूर्ण
पहिले चूर्णसे दुगुना लेवे । सबको मिलाकर अम्लरस, सिरंका, मद्य, मांसरस
और यूपके साथ पीवे तो गुल्म और पथरीका भेदन होकर वह दूर होतेहैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

शिग्रोस्तुयूपोमृदुमूलकल्काद्विल्वप्रमाणोघृततैलमृष्टः ।

शीतोश्मभित्तस्याद्विधिमण्डयुक्तःपेयःप्रकामंलवणेनयुक्तः ॥ ६४ ॥

सुहांजनेकी नरम जडके दो तोला कल्कसे सिद्ध किया हुआ यूप घी और तेलमें
भूनकर शीतल होनेपर दधिमण्ड मिला नमकयुक्त करे । इसके पीनेसे पथरी दूर
होतीहै ॥ ६४ ॥

जलेनशोभाजनमूलकल्कःशीतोहितश्चाश्मरिशर्कराभ्याम् ।

सितोपलावासमयावशूकाःकृच्छ्रेपुसर्वेष्वपिभेषजंस्यात् ॥ ६५ ॥

सुहांजनेकी जडकी कल्कको जलमें घोलकर शीतल ही पीवे तो अश्मरी और
शर्करा दूर होतीहै अथवा मिसरी और जवाखार मिलाकर जलके साथ सेवन करनेसे
सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं ॥ ६५ ॥

पीत्वाचमयंनिगदंरथेनहयेनवाशीघ्रजवेनयायात् ।

तैःशर्कराप्रच्यवतेऽश्मरीतुशाम्येन्नचेच्छल्यविदुद्धरेत्ताम् ॥ ६६ ॥

निगद नामक मद्यको पीकर शीघ्र २ गमन करनेवाला रथ अथवा घोड़े आदिकी सवा-
रीपर चढ़कर नित्य घूमाकरे तो पथरीका भेदन होकर वह निकल जातीहै । यदि इन
सब उपायोंके करनेसे भी पथरी जान्त न हो तो शल्यतंत्रका जाननेवाला वैद्य युक्ति
पूर्वक पथरीको अस्त्रद्वारा निकाल देवे ॥ ६६ ॥

रेतोविघातप्रभवेतुकृच्छेसमीक्ष्यदोषंप्रतिकर्मकुर्यात् ॥ ६७ ॥

शुक्राभिघातसे उत्पन्नहुए मूत्रकृच्छ्रमें यथोचित दोषोंकी परीक्षा करके उनकी
शान्तिका उपाय करे ॥ ६७ ॥

वातादिमूत्रभेदसे मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

कार्पासमूलंघृपकाश्मभेदोवलास्थिरादीनिगवेधुकाच । वृश्चीरपेन्दी-

चपुनर्नवाचशतावरीमध्वशनाखुपपर्यौ । तत्काथसिद्धंपवनेनरस्य-
पित्तेऽधिकेक्षीरमथापिसर्पिः ॥ ६८ ॥ कफेचयूपादिकमन्नपानंसं-
सर्गजे सर्वहितःक्रमःस्यात् । एवंनचेच्छाम्यतितस्ययुञ्ज्यात्सुरां-
पुराणां मधुकासववा ॥ ६९ ॥

कपासकी जड, अड़सा, पापाणभेद, खैरेटी, शालिपर्णी आदि गणकी औषधियें, गवेधुका, सफेद पुनर्नवा, इन्द्रायणकी जड, लाल पुनर्नवा, शतावर, मुलैठी, विजैतार और मूषिकपर्णी इन सब द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ दूध सेवन करनेसे वातप्रधान मूत्र-कृच्छ्र दूर होताहै और इन्हीं सब द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पीनेसे पित्तप्रधान मूत्र-कृच्छ्र दूर होताहै । एवं कफकी अधिकतामें इन्ही द्रव्योंके कायसे सिद्ध किये यूष और अन्नपान आदिका सेवन करना चाहिये । सब दोषोंके संसर्गमें सब प्रकार मिली जुली क्रिया कानी चाहिये । यह सब प्रकारकी चिकित्सा करनेपर भी मूत्रकृच्छ्र शान्त न हो तो उसको पुरानी मद्य और मध्वासव सेवन करावे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

विहङ्गमांसानिचवृंहणायवस्तींश्चशुक्राशयशोधनार्थम् ।

शुद्धस्यतृप्तस्यचवृष्ययोगैःप्रियानुकूलाःप्रमदाविधेयाः ॥ ७० ॥

वृंहण करनेके लिये रोगीको पक्षियोंका मांसरस सेवन करावे और शुक्राशयकी शुद्धिके लिये वस्तिकर्मका (मूत्रमार्ग द्वारा नलीप्रवेश करना) प्रयोग करे । फिर शुद्ध हुए मनुष्यको वृष्य योगोंद्वारा तृप्त कर प्यारी और अनुकूल स्त्रियोंसे गमन करावे ॥ ७० ॥

रक्तोद्भवेतूत्पलनालतालकाशेक्षुवालेक्षुकशेरुकाणि ।

पिवेत्सिताक्षौद्रयुतानिखादेदिक्षुंविदारीत्रपुषाणिचैव ॥ ७१ ॥

यदि किसी उपदंशादिके दोषसे अथवा अन्य रक्तजनित विकारसे मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न हुआ हो तो कमलनाल, नालमूली (मुसली), कांसकी जड, ईखकी जड, तालमखाना और कसेरु इन सबको मिसरी और शहदमें मिलाकर पीवे अथवा ईखकी जड, विदारीकंद और खैरेके बीज इनके क्वाथमें शहद और मिसरी मिलाकर पीवे ॥ ७१ ॥

घृतंश्चदंष्ट्रास्वरसेनसिद्धंक्षीरेणचैवाष्टगुणेनपेयम् ।

स्थिरादिकानांकतकादिकानामेकैकशोवाधिधिनैवतेन ॥ ७२ ॥

अथवा गोरतरुका रस ८ सेर, दूध ८ सेर, घी १ सेर इन सबको पकाकर घृत-मात्र शेष रहनेपर उचित मात्रासे सेवन करे अथवा शालपर्णी आदि पंचमूलके

व्यायसे अथवा निर्मलीके, फलके रससे, पृर्वोक्त विधिसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करे ॥ ७२ ॥

क्षीरेणवस्तिर्मधुरौषधैःस्यात्तैलेनवास्वादुफलोत्थितेन ।

यन्मूत्रकृच्छ्रेविहितन्तुपैत्तेकार्यन्तुतच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे ॥ ७३ ॥

रक्तविकारजनित मूत्रकृच्छ्र (क्षतज) में दूध अथवा मधुरगणोंसे वा मीठे फलोंके तैलसे वस्तिकर्म करे और पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें कहेहुए सब प्रकारके योगोंका प्रयोग करे ॥ ७३ ॥

मूत्रकृच्छ्रमें कुपथ्य ।

व्यायामसन्धारणशुष्कभक्ष्यपिष्टान्नवातार्ककरव्यवायान् ।

खर्जूरशालूककपित्थजम्बूविषंकपायश्चरसंभजेन्ना ॥ ७४ ॥

मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोगमें व्यायाम आदि शारीरिक परिश्रम और मलमूत्रके वेगोंका रोकना, सूखे अन्नपानका सेवन करना, पिष्ट पदार्थोंका सेवन, पवन, धूप, खीसंग, खजूर, शालूक, कैथ, जामुन, विष और कपायरसका सेवन करे ॥ ७४ ॥

हृद्रोगके कारण ।

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकवस्तिचिन्ताभयत्रासमदातिचाराः ।

छर्द्यामसन्धारणकर्षणानिहृद्रोगकर्तृणितथाभिघातः ॥ ७५ ॥

व्यायाम, तीक्ष्ण विरेचन, तीक्ष्ण वस्ति, वमन, मलके वेगका रोकना, उपवास आदि, कर्षण, अभिघात, चिन्ता, भय, मद्यका अत्यंत सेवन या उन्मत्तता और अभिचार (टोना, शाप आदि) का होना यह सब हृद्रोगके उत्पत्तिके कारण होतेहैं ॥ ७५ ॥

हृद्रोगके उपद्रव ।

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्राश्वासास्यवैरस्यतृपाःप्रमोहाः ।

छर्दिःकफोक्लेशरुजोऽरुचिश्चहृद्रोगजाःस्युर्विधास्तथान्ये ॥ ७६ ॥

विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर, सांती, हिचकी, श्वास, मुसका स्वाद, निगडजाना, तृपा, प्रमेह, वमन, कफके उत्क्षेपमें वेदना, अरुचि तथा और भी इसी प्रकारके अन्य उपद्रव हृद्रोगसे उत्पन्न होतेहैं ॥ ७६ ॥

वातभेदजहृद्रोगके लक्षण ।

हृच्छून्यभावद्रवशोपभेदस्तम्भाःसमोहाःपवनाद्विशेषः ।

हृदयकी शून्यता, घृन्धरी, शोष, हृदयमें भेदनकीसी पीडा, स्तम्भता और मोह यह वातजनित हृद्रोगके लक्षण हैं ।

पित्तजहृद्रोगके लक्षण ।

पित्तात्तमोदूयनदाहमोहाःसन्त्रासतापज्वरपीतभावाः ॥ ७७ ॥

नेत्रोंके आगे अंधकार, ग्लानि, दाह, मोह, संत्रास, संताप, ज्वर और नेत्र आदिकोंका पीतवर्ण होना यह पित्तज हृद्रोगके लक्षण हैं ॥ ७७ ॥

कफजहृद्रोगके लक्षण ।

स्तब्धंगुरुस्यात्स्तिमितश्चर्ममकफात्प्रसेकज्वरकासतन्द्राः ।

हृदयकी स्तब्धता, भारीपन, स्तैमित्य, मर्मस्थानमें कफका लिपायमानसा प्रतीत होना, मुखसे लार बहना, ज्वर, खांसी और तन्द्रा यह कफजनित हृद्रोगके लक्षण हैं ।

सन्निपातज और कृमिज हृद्रोगके लक्षण ।

विद्यात्रिदोपन्त्वपिसर्वलिङ्गंतीव्रात्तितोदंकृमिजंसकण्डूम् ॥ ७८ ॥

सन्निपातके हृद्रोगमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं तथा तीव्र वेदना होतीहै । एवं कृमिज हृद्रोगमें सूई चुभनेकीसी पीडा और खुजली होतीहै ॥ ७८ ॥

वातज हृद्रोगकी चिकित्सा ।

तैलंससौवीरकमस्तुतक्रवातेप्रपेयंलवणंसुखोष्णम् ।

सूत्राम्बुसिद्धंलवणैश्चतैलमानाहगुल्मार्तिहृदामयघ्नम् ॥ ७९ ॥

वातज हृद्रोगमें-सौवीरक, दहीका जल और तक्रके साथ सिद्ध किया तैल पीना चाहिये । तथा संधानमक, गोमूत्र और जलके साथ सिद्ध करके शीतगरम रहनेपर सेवन करे । अथवा पंचलवणसे सिद्ध कियेतैलका सेवन करे तो वातज हृद्रोग, अफारा और गुल्मरोग दूर होताहै ॥ ७९ ॥

पुनर्नवांदारुसपश्वमूलेराक्षांयवान्बिल्वकुलत्थकोलम् ।

पक्रवाजलेतेनविपाच्यतैलमभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्दोऽप्यम् ॥ ८० ॥

पुनर्नवा, देवदारु, लघु पंचमूल, रासना, यव, कच्चे बेलकी गिरि, कुल्थी और वेर इनके कषायमें सिद्धकिये तैलके अभ्यंग और पान करनेसे वातजनित हृद्रोगको दूर करताहै ॥ ८० ॥

हंरीतकीनागरपुष्कराह्वैर्वयःकषस्थालवणैश्चकल्कैः ।

सहिङ्गुभिःसाधितमध्यसर्पिर्गुल्मेसहृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे ॥ ८१ ॥

हरड, सोंठ, पुहकरमूल, काकोली, छोटी इलायची, संधानमक और हींगके कल्कसे मिद्ध कियाहुआ घृत गुल्म, पार्श्वपीडा और वातजनित हृद्रोगको दूर करताहै ॥ ८१ ॥

सपुष्कराङ्गफलपूरमूलमहौषधंशव्यभयाचकल्काः ।

क्षाराम्बुसर्पिलवणैर्विमिश्राःस्युर्वातहृद्रोगविकर्त्तिकात्राः ॥ ८२ ॥

पुहकरमूल, विजौरेकी जड, साँठ, कचूर और हरडका कल्क, जवाखार तथा संधानमकके जलसे सिद्ध कियाहुआ घृत वातजनित हृद्रोग और विकर्त्तिकाको नष्ट करताहै ॥ ८२ ॥

क्वाथःकृतःपौष्करमातुलुङ्गपलाशभृतीशकर्त्तिसुराह्वैः ।

सशुण्ठ्यजार्जीद्विवचायमानीसक्षारउष्णोलवणश्चपेयः ॥ ८३ ॥

पोहकरमूल, विजौरेकी जड ढाककी फली, अजवायन, कचूर, देवदारुका क्वाथ, साँठ, जीरा, वच, सफेद वच, अजवायन, जवाखार और संधानमक मिला पीवे तो वातजनित हृद्रोग दूर होताहै ॥ ८३ ॥

पथ्याशटीपुष्करपञ्चकोलान्समातुलुङ्गायमकेनकल्कः ।

गुडप्रसन्नालवणैश्चभृष्टोहृत्पांश्वगुल्मोदरयोनिशूले ॥ ८४ ॥

हरड, कचूर, पोहकरमूल, पंचकोल और विजौरेकी जडका कल्क बना गुड प्रसन्ना ओर मद्य मिलाकर घृत और तेलमें भूनकर सेवन करे तो हृदयकी पीडा, पार्श्वपीडा, गुल्म, उदररोग और योनिशूल नष्ट होताहै ॥ ८४ ॥

त्र्युषणादि घृत ।

स्यात्त्र्युषणंद्वेत्रिफलेसपाठेनिदिग्धिकागोक्षुरकौवलद्वे । ऋद्धिस्तु-

टिस्तामलकीस्वगुत्तामेदेमधूकंमधुकंस्थिराच ॥ ८५ ॥ शतावरी-

जीवकपृश्निपण्यैर्द्रव्यैरिमैरक्षसमैःसुपिष्टैः । प्रस्थंघृतस्येहपचेद्वि-

धिज्ञःप्रस्थेनदध्रस्त्वथमाहिपस्य ॥ ८६ ॥ मात्रांपलश्चार्द्धपलंपिचुं-

वाप्रयोजयेन्माक्षिकसंप्रयुक्तम् । श्वासेसकासेत्वथपाण्डुरोगेहली-

मकेहृद्ग्रहणीप्रदोषे ॥ ८७ ॥

पीपल, मिरच, साँठ, हरड, बहेडा, आमला, द्राक्षा, कुम्भेरके फल, फालसा, कटेली, गोखरु, बला, नागबला, ऋद्धि, इलायची, बडी इलायची, भूमि ओबला, कौंचके बीज, मेदा, महामेदा, महुआ, सुलैठी, शालपर्णी, शतावर, जीवक, पृष्ठपर्णी इन सबको एक एक तोला लेकर वारीक पीसलेवे फिर इसको १ सेर घी, १ सेर दही और १ सेर भैंसका दूध तथा २ सेर जल मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उत्तारकर छानले । इस घृतको ४ तोला अथवा २ तोला या १ तोला शहदमें मिलां

कर नित्य सेवन कियाकरे तो श्वास, खाँसी, पाण्डुरोग, हलीमक, हृद्रोग और ग्रहणी रोग नष्ट होताहै ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

पित्तजहृद्रोगकी चिकित्सा ।

शीताःप्रदेहाःपरिपेचनञ्चतथाविरेकोहृदिपित्तदुष्टे ।

द्राक्षासिताक्षौद्रपरूपकैःस्याच्छुद्धेतुपित्तापहमन्नपानम् ॥ ८८ ॥

पित्तजनित हृद्रोगमें शीतल लेप परिपेचन और विरेचन देना हितकारक है । विरेचन द्वारा शुद्ध शरीर होनेके अनन्तर द्राक्षा, मिसरी, शहद और फालसेके रसके साथ अन्नपानका सेवन करना चाहिये ॥ ८८ ॥

यष्टयाह्विकातिक्तकरोहिणीभ्यांकल्कंपिवेच्चापिसिताजलेन ।

क्षतेपुसर्पौपिहितानिसर्पिर्गुंडाश्चयेतान्प्रसमीक्ष्यसम्यक् ॥ ८९ ॥

दद्याद्भिषक्धन्वरसांश्चगव्यक्षीराशिनांपित्तहृदामयेषु ।

तैरेवसर्वेप्रशमंप्रयान्तिपित्तामयाःशोणितसंश्रयाये ॥ ९० ॥

मुलैठी और कुटकीका कल्क करके मिसरीके शरवतके साथ सेवन करे तो पित्त-जनित हृद्रोग दूर होताहै । अथवा उरःक्षतरोगमें कहेदुष्ट घृत और सर्पिर्गुंडाको भले प्रकार विचारकर सेवन करावे और जंगली जीवोंके मांसरस तथा गौका दुग्ध पिलाना पित्तज हृद्रोगमें हितकारी होताहै और इन्हीं प्रयोगोंसे रक्ताश्रित सब प्रकारके पित्तरोग शान्त होतेहैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

द्राक्षावलाश्रेयसिशर्कराभिःखर्जूरवीरर्षभकोत्पलैश्च ।

काकोलिमेदायुगजीवकैश्चक्षीरेचसिद्धंमाहिषघृतंस्यात् ॥ ९१ ॥

द्राक्षा, वला, गजपीपल और मिसरी । अथवा खर्जूर, क्षीरकाकोली, ऋषभक और नीलोफर । या काकोली, मेदा, महामेदा और जीवक । इन तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगके कल्कके साथ अथवा सबको मिलाकर चौगुने दूधके साथ भैसेके घृतको सिद्ध करे । इस घृतके सेवन करनेसे पित्तजनित हृद्रोग दूर होताहै ॥ ९१ ॥

कशेरुकाशैवलशृङ्गवेरप्रपौण्डरीकंमधुकंसिसस्य ।

अन्विथश्चसर्पिःपयसापचेत्तैःक्षौद्रान्वितंपित्तहृदामयन्नम् ॥ ९२ ॥

कसेह, जलकी कायी, सोंठ, पंड्यारेका छिलका, मुलैठी और भिस इन सबका कल्क कर कल्कसे चारगुना घृत, घृतमे चारगुना दूध मिलाकर पकावे । घृतमात्र दोप रहनेपर उत्तारकर छानलेवे । इस घृतको शीतल होनेपर चौथाई भाग शहद मिलाकर नित्य ४ तोला चाटाकरे तो पित्तका हृद्रोग दूर होताहै ॥ ९२ ॥

स्थिरादिकल्कैःपयसाचसिद्धद्राक्षारसेनेक्षुरसेनवापि ।

सर्पिर्हितंस्वादुफलेक्षुजाश्वरसाःसुशीताहृदिपित्तदुष्टे ॥ ९३ ॥

शालपर्ण्यादि पंचमूलका कल्क बीस तोला, घृत, १ सेर, दूध अथवा ईखका रस या दाखका रस ४ सेर मिलाकर घृत सिद्धकरे । इस घृतके सेवन करनेसे पित्तजनित हृद्रोग दूर होताहै तथा द्राक्षा आदि मीठे फलोंका रस अथवा ईखका रस वा अन्य मधुर रस पित्तज हृद्रोगमें हितकारकें होतेहैं ॥ ९३ ॥

कफजनितहृद्रोगकी चिकित्सा ।

स्विन्नस्यवान्तस्यविलङ्घितस्यक्रियाकफघ्नीकफमर्मरोगे ।

कौलत्थधान्यैश्वरसैर्यवान्नैःपानानितीक्षणानिचर्कराणि ॥ ९४ ॥

कफके हृद्रोगमें स्वेदन, वमन और लंघन, करानेके अनन्तर कफलाशक द्रव्योंका प्रयोग तथा कफनाशक आहार विहारका सेवन करना चाहिये और कुल्थी तथा धनियेके क्वाथके साथ यवान्न सिद्धकर सेवन कराना और तीक्ष्ण अन्न पानोंका चर्कराके साथ प्रयोग कराना हितकारी होताहै ॥ ९४ ॥

मूत्रेशृताःकट्फलशृङ्गवेरपीतद्रुपथ्यातिविषाःप्रदेयाः ।

कृष्णाशटीपुष्करमूलरास्त्रावचाभयानागरचूर्णकञ्च ॥ ९५ ॥

कायफल, सोंठ, सरलवृक्षकी छाल, हरड और अतीश इन सबको गोमूत्रमें पकाकर पीना कफजनित हृद्रोगको दूर करताहै । अथवा पीपल, कचूर, पोहकरमूल, रासना, वच, हरड और सोंठ इन सबका चूर्ण कर गोमूत्र अथवा गरम जलके साथ सेवन करना कफजनित हृद्रोगको दूर करताहै ॥ ९५ ॥

उदुम्बराश्वत्थवटार्जुनाख्येपलाशरोहीतकखादिरेच ।

क्वाथेत्रिवृत्स्यूपणचूर्णसिद्धोलेहःकफघ्नोऽशिशिराम्बुयुक्तः ॥ ९६ ॥

गूलर, पीपल, वड, अर्जुन, ढाक इन सबके छिलके रोहितघासकी जड और खैरका छिलका इन सबके क्वाथमें निशोथ, सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण डालकर अवलेह बनावे । इस अवलेहको गग्म जलके साथ सेवन किया जाय तो कफजनित हृद्रोग दूर होताहै ॥ ९६ ॥

शिलाह्वयंवाभिपगप्रमत्तःप्रयोजयेत्कल्पविधानदृष्टम् ।

प्राश्यातथागस्त्यहरीतकीचरसायनंवाह्वयमथमिलक्याः ॥ ९७ ॥

बुद्धिमान् वैद्य शिलाजतु, रसायन अथवा अगस्त्यहरीतकी या ब्राह्मरसायन अथवा आमलकीपरमायन कल्पस्थानमें कहींहुई विधिके अनुसार वमन विरेच-

नादि द्वारा रोगीको शुद्धकाय कर फिर इन रसायनोंका प्रयोग करावे तो कफ-जनित हृद्रोग दूर होताहै ॥ ९७ ॥

सत्रिपातज हृद्रोगकी चिकित्सा ।

त्रिदोषजेलङ्घनमादितःस्यादन्नञ्चसर्वत्रहितंविधेयम् ।

हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्यचैवकार्यत्रयाणामपिकर्मशस्तम् ॥ ९८ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए हृद्रोगमें दोषोंकी हीनता, अधिकता और मध्यावस्था आदि विचारकर दोषानुसार लंघन आदि क्रिया और दोषानुसार हितकारक अन्न-पानका सेवन कराना चाहिये । एवं दोषोंकी हीनता और अधिकता विचारकर यथाक्रम चिकित्सा करे ॥ ९८ ॥

अवस्थाविशेषसे हृद्रोगकी चिकित्सा ।

भुक्तेऽधिकजीर्यतिशूलमल्पंजीर्णेस्थितंचेतसुरदारुकुष्ठम् ।

सतिल्वकंद्वेलवणेविडङ्गमुष्णास्त्रुनासातिविपंपिवेत्सः ॥ ९९ ॥

यदि त्रिदोषज हृद्रोगमें भोजन करते ही हृदयमें अधिक पीडा होनेलगे और भोजनके जीर्ण होते समय पीडा भी अल्प होजाय तथा भोजनके पाचन होजानेके अनन्तर पीडा भी बन्द होजाय तो ऐसी अवस्थामें देवदारू, कूठ, पठानी लोध, संधानमक, संचरनमक, वायविहंग और अतीशका चूर्ण कर गरमजलसे सेवन कराना चाहिये ॥ ९९ ॥

जीर्णेऽधिकेस्नेहविरचनंस्यात्फलैर्विरच्योयदिजीर्यमाणे ।

त्रिष्वेवकालेष्वधिकेतुशलंतीक्ष्णंहितंमूलविरचनंस्यात् ॥ १०० ॥

यदि भोजनके जीर्ण होजानेपर शूलकी अधिकता हो तो उस मनुष्यको स्नेह विरेचन कराना चाहिये और जो भोजनके परिपाक होते समय पीडाकी अधिकता हो तो हरीतकी आदि फलद्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये । एवं सब समयमें शूलकी साम्प्रावस्था रहतीहो तो इन्द्रायणकी जड आदि मूलद्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये ॥ १०० ॥

कृमिजन्य हृद्रोगकी चि० ।

प्रायोऽनिलोरुद्धगतिःप्रकुप्यत्यामाशयेशोधनमेवतस्मात् ।

कार्यं तथा लङ्घनपाचनञ्चसर्वक्रिमिघ्नं कृमिहृद्गदेच ॥ १०१ ॥

कृमियोंसे होनेवाले हृद्रोगमें प्रायः वायु रुद्धगति होकर आमाशयमें कोपको प्राप्त होतीहै । इसलिये कृमिजन्य हृद्रोगमें प्रथम शोधन कराना चाहिये तथा लंघन और पाचन प्रयोग करनेके अनन्तर कृमिनाशक क्रिया करना हितकारी है ॥ १०१ ॥

पीनसादिनासारोगनिदान ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्याक्रोधर्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः । प्रजा-
गरातिस्वपनाम्बुशीतैरवश्यया मैथुनवाष्पधूमैः । संस्त्यानदोषेशि-
रसिप्रवृद्धोवायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत् ॥ १०२ ॥

मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, अजीर्ण, धूल आदिका मुख नासिकामें पडना, अत्यंत जोरसे बोलना, क्रोध, ऋतुओंका बदलना, शिरकी पीडा, अत्यंत जागना, अधिक सोना, अधिक जल पीना, मैथुन, पृथ्वीकी भाफ और धूमका लगना आदि कारणोंसे मस्तकके दोष घनीभूत हो वायुको बढ़ाकर प्रतिश्यायको उत्पन्न करते हैं ॥ १०२ ॥

वातजप्रतिश्यायके लक्षण ।

घ्राणार्तितोदैःश्वयथुर्जलाभःस्त्रावोऽनिलात्सस्वरमूर्द्धरोगः ॥ १०३ ॥

नाकमें पीडा, सूई चुभनेकेसे चभके, सूजन, जलके समान नाक, मुख और आंखोंसे स्राव होना, स्वरभंग और मस्तकमें पीडा यह वातजनित प्रतिश्याय (जुलाम) के लक्षण हैं ॥ १०३ ॥

पित्तज प्रतिश्यायके लक्षण ।

नासाग्रपाकज्वरवक्रशोपतृष्णोष्णपीतस्त्रवणानिपित्तात् ।

नाकके अग्रभागका पकजाना, ज्वरसा प्रतीत होना, मुखका सूखना, प्यास, पीले वर्णका तथा उष्ण स्राव होना, पित्तजनित प्रतिश्यायके लक्षण हैं ।

कफज प्रतिश्यायके लक्षण ।

कासारुचिस्त्रावघनप्रसेकाःकफाद्गुरुःस्रोतसिचापिकण्डूः ॥ १०४ ॥

खांसी, अरुचि, नाकसे गाढा स्राव होना, मुखसे कफका निकलना, शरीर भारी होना और मस्तक आदिमें तथा नाकमें खुजली होना यह कफजनित प्रतिश्यायके लक्षण हैं ॥ १०४ ॥

सन्निपातज प्रतिश्यायके ल० ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात्स्युः पीनसेतीव्ररुजेऽतिदुःखे ।

संपूर्ण प्रतिश्यायोंके लक्षणोंवाला तीव्रवेदनायुक्त कष्टकारी सन्निपातज प्रतिश्याय होता है ।

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण ।

सर्वोऽतिवृद्धोऽहितभोजनात्तुदुष्टप्रतिश्यायउपेक्षितःस्यात् ॥ १०५ ॥

सब प्रकारके प्रतिश्याय ही अत्यंत बढ़जानेपर कुछथ्य सेवन करनेसे और चिकित्सा न करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय होजाते हैं ॥ १०५ ॥

ततश्चरोगाःक्ष्वथुः सनासाशोषः प्रतीनाहपरिस्त्रवौच । घ्राणस्यपू-
तित्वमपीनसश्चसपाकशोथार्बुदपूररक्ताः ॥ १०६ ॥ अरुंषिमूत्र-
श्रवणाक्षिरोगखालित्यहृद्यर्जुनलोमभावाः । तुट्श्वासकासज्व-
ररक्तपित्तवैस्वर्यशोपाश्चततोभवन्ति ॥ १०७ ॥

दुष्ट प्रतिश्यायसे छींक आना, नाकका सूखना, नाकका बन्द होजाना, मुख और नासिकासे अनेक प्रकारका स्राव होना तथा दुर्गंध आना, अपीनस, (गाढा, चर्वीके समान, पीला कफका स्राव होना) मुख, नाकका प्रकजाना, सूजन, अर्बुद, राध और रक्तका स्राव होना, अरुंषिकानामक फुंसियें होना, मूत्रस्राव, कर्णरोग, नेत्ररोग, खालित्य (गंजापन), रोमींका कपिल अथवा श्वेत होना, प्यास, श्वास, खांसी, ज्वर, रक्तपित्त, स्वरभंग, तथा शोपरोग उत्पन्न होताहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

रोधाभिघातस्त्रवशोपपाकैर्घ्राणंयुतंयश्चनवेत्तिगन्धम् ।

दुर्गन्धिचास्यंवहुशः प्रकोपिदुष्टप्रतिश्यायमुदाहरेत्तम् ॥ १०८ ॥

जिस प्रतिश्यायमें नाकका बन्द होजाना, नाकमें जखमसे प्रतीत होना तथा स्राव, नाकका सूखना, नासापाक और गंधज्ञानका नष्ट होना तथा मुखसे अत्यंत दुर्गंधका आना, प्रतिश्यायका दुष्ट वेग होना और वारंवार कोप होना यह सब दुष्ट प्रतिश्यायके लक्षण हैं ॥ १०८ ॥

छींक और नासाशोष ।

संस्पृश्यमर्माण्यनिलस्तुमूर्ध्निविष्वक्पथस्थः क्ष्वथुंकरोति ।

क्रुद्धःससंशोष्यकफन्तुनासाश्रुङ्गाटकाघ्राणविशोपणञ्च ॥ १०९ ॥

हृदय और मस्तकके संपूर्ण मार्गोंको स्पर्शकर मस्तकमें स्थित हुआ वायु मस्तकस्य मार्गमें स्थित हो क्ष्वथु (छींक) नामक रोगको उत्पन्न करताहै । वही वायु कफको सुखाकर नासिका और घ्राणमार्गमें शोषको उत्पन्न करताहै ॥ १०९ ॥

प्रतिनाह और परिस्त्राव ।

उच्छ्वासमार्गन्तुकफःसवातोरुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ।

घ्राणाद्धनःपीतसितस्तनुर्वादोपःस्त्रवेत्स्त्रावमुदाहरेत्तम् ॥ ११० ॥

कफ वायुके साथ मिलकर उच्छ्वास मार्गको रोक देवे उसको प्रतिनाह कहतेहैं । अर्थात् कफ वायु नाकके द्वारा श्वास प्रतिश्यामका बन्द होजाना प्रतिनाह कहाताहै । नाकके मार्गमें गाढा, पीला अथवा सफेद स्राव होनेको परिस्त्राव कहतेहैं ॥ ११० ॥

अपीनस और पूतिनांसा ।

योमस्तुलुङ्गाद्वनपीतपकःकफःस्त्रवेद्वाढमपीनसःसः ।

वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यमुपेक्षयातुस्यात्पूतिनस्यंश्वयथुर्भ्रमश्च ॥ १११ ॥

नाकद्वारा चिकना, भारी, मस्तुङ्ग समान पीला, पकाहुआ, गाढा, साव हो उसको अपीनस कहतेहैं । प्रतिश्यायका यत्न न करनेसे नाककी विवर्णता, दुर्गन्ध, सूजन और भ्रम होनेको पूतिनासा कहतेहैं ॥ १११ ॥

आनह्यतेयस्यविशुष्यतेचप्रक्लियतेधूप्यतियस्यनासा ।

नवेत्तियोगन्धरसांश्चजन्तुर्जुष्टंव्यवस्येत्तमपीनसेन ॥ ११२ ॥

जिसके नाकमें अनाह (नाकबन्द होजाना) शोष, क्लेद, धूआंसा निकलना तथा संताप हो और नाकसे किसी प्रकारकी गंधका ज्ञान न हो उसको अपीनस रोगसे ग्रसहुआ जानना चाहिये ॥ ११२ ॥

घ्राणपाक और नासाशोथ ।

सदाहरागःश्वयथुःसपाकःस्याद्घ्राणपाकोऽपिचरक्तपित्तात् ।

घ्राणाश्रितासूक्ष्मप्रभृतीन्प्रदूष्यकुर्वन्तिनासाश्वयथुंमलाश्च ॥११३ ॥

नाकमें दाह, अरुणता, सूजन और पाक ही उसको घ्राणपाक कहतेहैं यह घ्राणपाक रोग रक्तपित्तसे उत्पन्न होताहै । वातादि दोष घ्राणाश्रित रक्त आदिको दूषित कर नाकमें सूजनको उत्पन्न करतेहैं । ११३ ॥

नासारुद्ध और पूयरक्त ।

घ्राणेतथोच्छ्वासगतिंनिरुध्यमांसास्त्रदोषादपिचारुदानि ।

घ्राणात्स्त्रवेद्वाश्रवणान्मुखाद्वापित्ताक्तमस्त्रन्त्रपिपूयरक्तम् ॥११४ ॥

वातादि दोष रक्तको दूषितकर नाकमें श्वासकी गतिको रोकनेवाली गांठसी उत्पन्नकर दें उसको नासारुद्ध कहतेहैं । नाकसे अथवा कानोंसे या मुखसे पित्त मिले हुये रक्तका साव हो उसको पूयरक्त कहतेहैं ॥ ११४ ॥

अरुंपिका और नासादीप्त ।

कुर्यात्सपित्तःपवनस्त्वगादीन्संदूष्यचारुंपिसपाकवन्ति ।

नासाप्रदीप्तेवनरस्यस्यदीप्तंतुरोगमुदाहरन्ति ॥ ११५ ॥

पित्तयुक्त वायु त्वचा आदिको दूषितकर पाकयुक्त छोटी २ फुन्सियोंको उत्पन्न करे उसको अरुंपिका कहतेहैं । जिसका नाक गग्म अग्निके समान प्रज्वलित रहे उसको नासादीप्तरोग कहतेहैं ॥ ११५ ॥

वातजप्रतिश्याय (पीनस, जुकाम) की चिकित्सा ।

वातात्सकासवैस्वर्यसक्षारंपीनसेघृतम् ।

पिवेद्रसंपयश्चोष्णंलैहिकंधूममेववा ॥ ११६ ॥

वातजनित प्रतिश्यायमें खांसी और स्वरभेद हो तो जवारखार मिलाकर घृतपान करे तथा गर्म मांसरस और गर्मगर्म दूध एवं स्नैहिक धूमपान करना हितकारी है ॥ ११६ ॥

शताह्वात्वग्बलामूलंद्रयोणाकैरण्डवित्वजम् ।

सारग्वधांपिवेद्वर्त्तिमधूच्छिष्टवसाघृतैः ॥ ११७ ॥

सांठ, दालचीनी और खरैटीकी जड़ अथवा सोनापाठा, एरण्डकी जड़ और बेलकी जड़का छिलका अथवा अमलतासकी जड़ इन तीन योगोंमेंसे किसी एकको मोम, चर्बी और घृतके साथ बत्ती बनाकर धूमपान करे तो वातजनित प्रतिश्याय (जुकाम) दूर होता है ॥ ११७ ॥

अथवासघृतान्सक्तून्कृत्वामल्लकसम्पुटे ।

नवप्रतिश्यायवतांधूमवैद्यःप्रकल्पयेत् ॥ ११८ ॥

अथवा घृत मिलेहुए यवके सत्तुओंको मलीकै संपुटमें रख धूमपान करे तो नवीन प्रतिश्याय दूर होता है ॥ ११८ ॥

शंखमूर्च्छललाटात्तौपाणिस्वेदोपनाहनम् ।

स्वभ्यक्तैक्षवधुस्त्रावरोधादौसङ्करादयः ॥ ११९ ॥

यदि कनपटी, शिर और ललाटमें पीडा होतीहो तो हाथोंको अग्निपर सेककर, मस्तक और कनपटियोंको उन गर्म गर्म हाथोंसे स्वेदन करे तथा गर्म चिकने हलुवे आदिसे उपनाह स्वेद करे । यदि छोंक और स्त्रावका अवरोध होकर मस्तक आदिकोंमें पीडा हो तो तैलादिकोंकी मालिश कर शंकर आदि स्वेदका प्रयोग करे ॥ ११९ ॥

ध्रेयाश्चरौहिषाजाजीवचातर्कारिचोरकाः ।

त्वक्पत्रमरिचैलानांचूर्णैर्वासोपकुञ्चिकैः ॥ १२० ॥

रोहिपत्रण, कालाजीरा, वच, आणी, चोरक इन सबका चूर्ण बना नस्य लेवे । अथवा दालचीनी, तेजपत्र, कालीमिर्च, छोटी इलायची और काले जीरेका चूर्णकर सूंघे ॥ १२० ॥

अणुतैल ।

स्रोतःशृंगाटनासाक्षिशोपेतैलसनावनम् । प्रभाव्याजेतिलान्क्षीरे

१ दो शरागोके सम्पुटमें रख नाल लगाकर धूमपान करनेको मल्लकसपुट कहते है ।

तेनपिष्टांस्तदुष्मणा ॥ १२१ ॥ मन्दस्त्रिघ्नान्सयष्ट्याह्वचूर्णास्तेनै-
वपीडयेत् । दशमूलस्यनिष्काथेरास्त्रामधुककल्कवत् ॥ १२२ ॥
सिद्धंससैन्धवंतैलं दशकृत्वोऽणुतत्समृतम् । स्निग्धस्यास्थापनैर्दो-
पनिर्हरेद्वातपीनसे ॥ १२३ ॥

स्रोत, कण्ठ, काक और नासिका तथा नेत्रोंमें शोष प्रतीत हो तो नीचे लिखे तेल की नावन (नसवार) लेना चाहिये । काले तिलोंको बकरीके दूधमें भावना देकर दूधमें घोटेलेवे । फिर बकरीके दूधको हांडीमें चढाकर हाडीके मुखपर कपडा बांध उन तिलोंकी पीठीको उस कपडेपर रख देवे । फिर नीचेसे आग जलावे । जब दूधकी भाफसे वह तिलोंकी पीठी धीरे धीरे स्वेदित होजाय तो उस तिलोकी पीठीमें मुलैठीका चूर्ण मिलाकर उसमें बकरीके दूधका छिडका दे पीठीको जोरसे कपडेमें डालकर निचोडे । उस निचोडनेसे जो तेल निकले उस तेलसे चाग्गुना दशमूलका काथ मिलावे तथा तेलसे चौथा भाग रासना, मुलैठी और सेंवेनमकका कल्क मिला पकावे । जब पककर ठीक होजाय तो उसमें फिर दशमूलका काथ और बकरीका दूध तथा रासना, मुलैठी और सेंवे नमकका कल्क मिला पकावे इग प्रकार दशवार पकावे । इस तेलको अणुतेल कहते हैं ॥ इस तेलकी वातजनित प्रतिश्यायमें नस्य देना परम हितकारी है । तथा वातजप्रतिश्यायमें प्रथम गेगीको स्निग्धकर आस्थापनद्वारा दोषको हरण करना चाहिये ॥ १२१ । १२२ । १२३ ॥

स्निग्धाम्लोष्णैश्चलध्वन्नं ग्राम्यादीनां रसैर्हितम् । उष्णाम्बुनास्नान-
पानेनिवातोष्णप्रतिश्रयः ॥ १२४ ॥ चिन्ताव्यायामवाकूचेष्टाव्य-
वायविरतो भवेत् । वातजेपीनसेधीमानिच्छन्नेवात्मनोहितम् ॥ १२५ ॥

वातजनित प्रतिश्यायमें ग्राम्यादि जीवोंका मांसगुप्त स्निग्ध, अम्ल और उष्ण कल्क रल्के अन्नके साथ सेवन कराना हितकारक है । तथा स्नान और पानमें गर्मजलका प्रयोग एवं निर्वात और गर्मस्थानमें निवास करना हितकारी है । तथा वातज प्रतिश्यायमें चिन्ता, व्यायाम, अधिक बोलना, अधिक चेष्टा और मैथुनको अपने हितकी इच्छावाला बुद्धिमान् मनुष्य त्याग देवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायकी चिकित्सा ।

पैत्तेसर्पिःपिवेत्सिद्धंशृङ्गवेरशृतंपयः ।

पाचनार्थपिवेत्पक्केकार्यमूर्द्धविरचनम् ॥ १२६ ॥

पित्तजनित पीनसमें तिक्तक आदि घृत और मोंडमे मिद्धकिया दूध पीनसको

पकानेके लिये पीव और पीनसके पकजानेपर मूर्धविगंचन अर्थात् नस्यद्वारा मस्तकका दोप निकाल देना हितकारी है ॥ १२६ ॥

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।

दन्त्याचसाधितंतैलंनस्यंसम्पत्रपीनसे ॥ १२७ ॥

पाटला, हल्दी, द्रासुहल्दी, मूर्वा, पीपल, चमेलीके पत्ते और दंती इन सबके कलकसे तेलको सिद्ध करे । पकीहुई पीनसमें इस तेलकी नस्य लेना परम हितकारी है ॥ १२७ ॥

पूयास्त्ररक्तपित्तघ्नःकपायानावनानिच ।

पाकदाहाद्यरूक्षेषुशीतालेपाःससेचनाः ॥ १२८ ॥

पीव और लोडूमें रक्तपित्तनाशक क्वाथ और सुंघनी हितकारक हैं । नासिकाके दाह और पाकमें तथा रुक्षतामें शीतल लेप और सेचन करना हितकारी है ॥ १२८ ॥

स्नेहनस्योपचाराश्चकपायाःस्वादुशीतलाः ।

मन्दपित्तेप्रतिश्यायेस्निग्धैःकुट्याद्विरेचनम् ॥ १२९ ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायमें स्निग्ध नस्य तथा मीठे और शीतल क्वाथोंका प्रयोग करना हितकारी होता है । यदि पित्तकी अधिकता न हो तो स्निग्ध विरेचन करना चाहिये ॥ १२९ ॥

घृतंक्षीरंयवाःशालिगोधूमाजाङ्गलारसाः ।

शीताम्लास्तित्तशाकानियूषामुद्गादिभिर्हिताः ॥ १३० ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायमें घृत, दूध, शालीचावल, गेहूं तथा बकरेका मांसरस और जंगली जीवोंका मांसरस शीतल अम्ल और तित्त शाक तथा मूंग आदिके घृष हितकारक होते हैं ॥ १३० ॥

कफजनित प्रतिश्यायकी चिकित्सा ।

गौरवारोचकेष्वादौलंघनंकफपीनसे ।

स्वेदाःसेकाश्चपाकार्थलिसेशिरसिसर्पिषा ॥ १३१ ॥

कफजनित प्रतिश्यायमें भारीपन और अरुचि हो तो प्रथम लंघन कराना चाहिये । फिर मस्तकको घृतसे चिकना कर कफको पकानेके लिये स्वेदन करे १३१

लशुनंमुद्गचूर्णेनव्योपक्षारघृतैर्युतम् ।

देयंकफघ्नंमनमुत्क्लिष्टश्लेष्मणोहितम् ॥ १३२ ॥

यदि कफजनित प्रतिश्यायमें कफका उत्केश हो तो मूंगका चूर्ण, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और घृतके साथ लहसुनका प्रयोग करे तथा कफनाशक द्रव्योंसे वमन करावे ॥ १३२ ॥

अपीनसेपृथिनस्येघ्राणस्त्रावेसकण्डुके ।

धूमः शस्तोऽवपीडश्चकटुभिःकफपीनसे ॥ १३३ ॥

कफजनित पीनसमें अपीनस, पृथीनस, घ्राणस्त्राव और खुजली हो तो धूमपान और चरपरे द्रव्योंकी सूंघनी लेना चाहिये ॥ १३३ ॥

मनःशिलावचाव्योपंविडङ्गं हिङ्गुगुगुलुः ।

चूर्णेः प्रायः प्रथमनंकटुभिश्च फलेस्तथा ॥ १३४ ॥

मनशिल, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, हींग और गूगलको वारीक पीसकर नलकीमें डालकर नाकमें प्रथमन करे । अथवा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला इन सबको चूर्णकर नाकमें प्रथमन करे तो कफजनित प्रतिश्याय और अपीनस, पृथीनस्यादि विकार दूर होतेहैं ॥ १३४ ॥

भार्गीमदनतर्कारीसुरसादिविपाचितम् ।

तैलसर्पपजंवलयंकफपीनसशान्तये ॥ १३५ ॥

भारंगी, मैनफल, जयंती और सुरसादिगणमें सिद्ध कियाहुआ सरसोंका तेल कफ जनित प्रतिश्यायको शान्त करताहै और मस्तकको बल देताहै ॥ १३५ ॥

आर्त्तकालवचालंवाविडङ्गकुष्ठपिप्पली ।

कृत्वाकण्ठकंकरञ्जश्चतैलं तैःसार्पपंचेत् ।

पाकान्मुक्तेघनेनस्यमेतन्मेदोऽन्वितेकफे ॥ १३६ ॥
कूठ, काला अगर, वच, मैनशिल, वायविडंग, कूठ, पीपल और करंजुषके फलोंका कलककर सरसोंके तेलको सिद्ध करे । जब कफका प्रतिश्याय पकजाय तथा घन और मेदयुक्त दोष निकले तो इस तेलकी नस्य देना चाहिये ॥ १३६ ॥

स्निग्धस्यव्याहृतेवेगेच्छर्दनंकफपीनसे ।

वमनीयश्चतक्षीरतिलमापयवागुभिः ॥ १३७ ॥

यदि कफजनित प्रतिश्यायमें कफ बढ़ होकर रुकजाय तो गौगीको स्निग्धकर वमन करादेना चाहिये । वमनीयगणके साथ सिद्ध किया दूध, तिल, उडद और योंका कषाय आदि पिडाकर वमन कराना चाहिये ॥ १३७ ॥

वार्त्तककुलकव्योपकुलत्थाढकिमुद्गजाः ।

यूपाःकफप्रमन्नश्चशस्तमुष्णान्युसेचनम् ॥ १३८ ॥

कफके प्रतिश्यायमें वेंगन, पटोल, त्रिकुटा, कुल्यो, अरहर और मूंगका यूप तथा कफनाशक अन्न और गरमजलका सेचन हितकारी है ॥ १३८ ॥

सन्निपातज और दुष्टप्रतिश्यायादिनासारोंगोंकी चिकित्सा ।

सर्वजित्पीनसेदुष्टेकार्यशोफेचशोफजित् ।

क्षारोर्जुदाधिमांसेपुक्रियाःसर्वेष्ववेक्ष्यच ॥ १३९ ॥

सन्निपातज और दुष्ट प्रतिश्यायमें सर्वदोषनाशक क्रिया और सूजनमें शोथनाशक क्रिया तथा नासारुद्द और नासाधिमांसमें दोषोंकी न्यूनाधिकता विचारकर उचित रीतिसे चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३९ ॥

शिरोरोगका निदान ।

भृशार्त्तिशूलंस्फुरतीहवातात्पित्तात्सदाहार्त्तिकफाद्गुरुःस्यात् ।

सर्वेन्द्रियोपक्रिमिभिस्तुकण्डूर्दोर्गन्ध्यतोदार्तियुतंशिरःस्यात् १४० ॥

वातजनित शिरोरोग (मस्तकपीडा) में अत्यंत पीडा, शूल और मस्तकका फडकना यह लक्षण होतेहैं । पित्तजनित शिरोरोगमें दाह और पीडा होतीहै । कफके शिरोरोगमें मस्तक अत्यंत भारी होताहै । सन्निपातके शिरोरोगमें सब दोषोंके मिले जुले लक्षण होतेहैं । कृमिजन्य शिरोरोगमें मस्तकमें अत्यंत खाज, दुर्गंध, सूई चुभनेकीसी पीडा और शूल होताहै ॥ १४० ॥

वातज शिरोरोगकी चिकित्सा ।

वातिकेशिरसोरोगेस्नेहान्स्वेदान्सनावनान् ।

पानान्नमुपनाहांश्चकुर्याद्वातामयापहान् ॥ १४१ ॥

वातजनित शिरोरोगमें स्नेहन, स्वेदन, नस्यकर्म तथा वातनाशक अन्नपान और उपनाहस्वेदका प्रयोग करना चाहिये ॥ १४१ ॥

तैलभृष्टैरगुर्वाद्यैःसुखोष्णैश्चोपनाहनम् ।

जीवनीयैःसुमनसामत्स्थैर्मांसैश्चशस्यते ॥ १४२ ॥

उपरचिकित्साध्यायमें जो अगर आदि तैल कहाये हैं उन तेलोंके द्रव्योंका कल्क तेलमें भूनकर उस गरम गरम कल्कसे मस्तकको स्वेदन करे । तथा इसी प्रकार जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कको तेलमें भूनकर उससे मस्तकको उपनाहस्वेद करे । अथवा मालती आदि पुष्पोंके कल्कसे इसी प्रकार उपनाह करे । या मछलीके मांसको तेलमें भूनकर उससे मस्तकको स्वेदन करे ॥ १४२ ॥

रास्त्रास्थिरादिभिःसिद्धंसक्षीरंनरयमर्त्तिनुत् ।

तैलंरास्त्राद्विकाकोलीशर्कराभिरथापिवा ॥ १४३ ॥

रासना और लघुपर्चमूलके कल्कसे तथा दूधमें सिद्ध कियेहुए तेलकी नस्य लेना वातजनित मस्तक पीडाको दूर करता है । तथा रासना, काकोली, क्षीरकाकोली, शर्करा और दूध मिलाकर सिद्ध किया हुआ तेल वातजन्य मस्तक पीडाको दूर करता है ॥ १४३ ॥

बलादि तैल ।

बलामधुकयष्टथाहविदारीचन्दनोत्पलैः ।

जीवकर्मभकद्राक्षाशर्कराभिश्चसाधितः ॥ १४४ ॥

प्रस्थस्तैलस्यसक्षीरोजाङ्गलार्द्धतुलारसे ।

नस्यंसर्वोद्ध्वजत्रूथवातपित्तामयापहम् ॥ १४५ ॥

बाला, महुआ, मुलैठी, विदारी कंद, लालचन्दन, नीलोफर, जीवक, ऋषभक, द्राक्षा और शर्करा का कल्क १ पांव, तेल १ सेर, दूध २॥ सेर जंगली जीवोंका मांसारस २॥ सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध किया हुआ तेल नस्यकर्मोंमें प्रयुक्त करनेसे उद्ध्वजत्रुगत संपूर्ण वातपित्तके रोग नष्ट होतेहैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

मायूरघृत ।

दशमूलवलारास्त्रात्रिफलामधुकैःसह । मायूरंपक्षपित्तान्त्रशकृत्-

ण्डांघ्रिवर्जितम् ॥ १४६ ॥ जलेपक्त्वाघृतप्रस्थंतस्मिन्क्षीरसमंपचेत् ।

मधुरैःकार्पिकैःकल्कैःशिरोरोगार्दितापहम् ॥ १४७ ॥ कर्णाक्षिना-

सिकाजिह्वाताल्व्वास्यगलरोगनुत् । मायूरमिति विख्यातमृद्ध्वजत्रु-

गदापहम् ॥ १४८ ॥

दशमूल, बला, रासना, त्रिफला और मुलैठी इन १६ औषधियोंको १ सेर लेवे । और पंख, पित्त, आंत, मल और तण्डके विना मोरका मांस १ सेर १ लेवे । इन सबको ३२ सेर पानीमें पकाकर ४ सेर पानी शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस रसमें १ सेर घृत ४ सेर दूध और मधुरगणकी प्रत्येक औषधी एक एक तोला लेकर वारीक पीस मिलावे । सबको एकत्रकर पकावे । घृतमान शेष रहनेपर उतारकर छान ले । यह शिरोरोगको दूर करनेवाला है तथा कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, तालु और गलेके रोगको नष्ट करताहै । यह घृत उद्ध्वजत्रुओंके रोगोंको हरनेवाला मायूरघृतक नामसे प्रसिद्ध है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

महामायूर घृत ।

एतेनैवकपायेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् । चतुर्गुणेनदुग्धेनकल्कैरेभिश्च
कार्षिकैः ॥ १४९ ॥ जीवन्तीत्रिफलामेदामधुर्द्धिपरूपकैः । सम-
ङ्गाचविकाभार्गीकाश्मरीसुरदारुभिः ॥ १५० ॥ आत्मगुप्तामहा-
मेदातालखर्जूरमस्तकैः । मृणालविसशालूकशृंगीजीवकपद्मकैः
॥ १५१ ॥ शतावरीविदारीक्षुवृहतीशारिवायुगैः । मूर्वाश्वदंपूर्प-
भकशृंगाटककशेरुकैः ॥ १५२ ॥ रास्त्रास्थिरातामलकीसूक्ष्मैला-
शटिपुष्करैः । पुनर्नवातुगाक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः ॥ १५३ ॥
मधूकाक्षोटवाताममुञ्जाताभिपुकरपि । द्रव्यैरेभिर्यथालाभंपूर्व-
कल्केनसाधितम् ॥ १५४ ॥ तत्पक्वंनावनेऽभ्यंगेपानेवस्तौप्रयोज-
येत् । शिरोरोगेषुसर्वेषुकासेश्वासेचदारुणे ॥ १५५ ॥ मन्पापृष्टग्र-
हेशोषेस्वरभेदेतथादिते । योऽन्यसृक्शुक्रदोषेषुशस्तं वन्ध्यासुतप्रदम्
॥ १५६ ॥ ऋतुस्त्रातातथानारीपीत्वापुत्रंप्रसूयते । महामायूरमित्ये-
तद्धृतमात्रेयपूजितम् ॥ १५७ ॥

उपरोक्त दशमूल आदि औषधियोंका और मोरके मांसका काथ ४ सेर, दूध ४ सेर,
घृत १ सेर तथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, मुलैठी, ऋद्धि, फालसा, बाराहकांता, चव्य,
भारंगी, कुम्भेर, देवदारु, कौंचके बीज, महामेदा, ताडवृक्ष और खजूरकी कोपल,
कमलकी जड़, कमलकी डंडी, कमलका कन्द, काफडीसिंगी, जीवक, पञ्जाख, शता-
वर, विदारीकन्द, ईखकी जड़, बडी, कटेली, दोनों शारिवा, मूर्वा, गोखरू, ऋपभक,
सिंघाडे, कसेरू, रासना, शालपर्णी, भूमिआँवला, छोटी इलायची, कचूर, पोहकरमूल,
पुनर्नवा, बंशलोचन, काकोली, जवासा, महुएके फल, अखरोट, वादाम, मुंजातक और
अभिपुक इन सब द्रव्योंको अथवा इनमेंसे जितने मिलसके एक एक तोला लेकर कल्क
करे । इस कल्कको उपरोक्त काथ घृत, दूध आदिमें मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहे
तब उतारकर छान लेवे इस घृतको नस्य, अभ्यंग, पान और वस्तिमें प्रयुक्त करनेसे सब
प्रकारके शिरोरोग, खांसी, दारुण श्वास, मन्पास्तम्भ, पीठका जकडना, शोष, स्वरभंग,
आदित, योनिद्वीप, रक्तदोष और शुक्रदोष दूर होते हैं । तथा इसके सेवनसे बंध्यापन नष्ट

होता है एवं ऋतुस्नानसे शुद्ध हुई स्त्री इसके सेवन करनेसे गर्भवती होकर पुत्रको उत्पन्न करती है इस महामायूर घृतकी मर्दपि आत्रेयजीने अत्यंत प्रशंसा की है ॥ १४९-१५७ ॥

आखुभिःकुक्कुटैर्हंसैःशशैश्चापिहिवुद्धिमान् ।

कल्पेनानेनविपचेत्सर्पिरूर्द्ध्वगदापहम् ॥ १५८ ॥

अथवा उपरोक्त विधिसे मूषक, मुर्गा, हंस, शशा इनमेंसे किसी एकके मांसको लेकर उपरोक्त मायूर घृतके द्रव्योंके साथ घृत सिद्ध करे तो यह घृतभी ऊर्द्ध्वजन्तुगत रोगोंको दूर करते हैं ॥ १५८ ॥

पित्तजशिरोरोगकी चिकित्सा ।

पैत्तेघृतंपयःसेकाःशीतालेपाःसनावनाः ।

जीवनीयानिसर्पिंपिपानान्नञ्चापिपित्तनुत् ॥ १५९ ॥

पित्तजनित शिरोरोगमें घृत, दूध, शीतल द्रव्योंसे सेचन, शीतल लेप, नस्य, जीवनीय द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और पित्तनाशक अन्नपानोंका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १५९ ॥

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वलाव्याघ्रनखोत्पलैः ।

क्षीरपिष्टैःप्रदेहःस्याच्छृतैर्वापरिपेचनम् ॥ १६० ॥

चन्दन, खस, मुलैठी बला, व्याघ्रनखी और नीलोफरको दूधमें पीसकर मस्तकपर लेप करे अथवा इन्हीं द्रव्योंको दूध या जलमें पकाकर शीतल कर मस्तकपर धारा देवे ॥ १६० ॥

त्वक्पत्रशर्कराकल्कःसुपिष्टस्तण्डुलाम्बुना ।

काय्योऽत्रपीडसर्पिश्चनस्यंतत्स्यानुपैत्तिके ॥ १६१ ॥

दालचीनी, तेजपत्र और खांडको चावलोंके जलमें पीसकर पोटली बनावे । उस पोटलीका रस नाकमें टपकावे । उसके अनन्तर घृतकी नसवार देवे तो पित्तजनित शिरोरोग दूर होता है ॥ १६१ ॥

यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धंघृतंशुभम् ।

नावनंशर्कराद्राक्षामधुकैर्वापिपित्तजे ॥ १६२ ॥

मुलैठी, लालचंदन और शारिवाका कल्क १ पाव, घी १ सेर, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्धकरे इस घृतकी नस्य लेना पित्तज शिरोरोगको दूरकरता है । तथा शर्करा, दास और मुलैठीसे सिद्ध किये हुए घृतका भी नस्य पित्तज शिरोरोगको दूर करता है ॥ १६२ ॥

कफजशिरोरोगकी चिकित्सा ।

कफजेस्वेदितंधूमनस्यप्रधमनादिभिः ।

शुद्धंप्रलेपपानान्नैःकफघ्नैःसमुपाचरेत् ॥ १६३ ॥

कफजनित शिरोरोगमें प्रथम स्वेदन करके फिर धूम नस्य और प्रधमनादि द्वारा शिरोविरेचन करावे तथा कफनाशक प्रलेपन और अन्नपानका प्रयोग करावे ॥ १६३ ॥

अन्य शिरोरोगोंमें क्रिया ।

पुराणसर्पिपः पानैस्तीक्ष्णैर्वस्तिभिरेव च ।

कफानिलोत्थितेदाहःशोषयोरक्तमोक्षणम् ॥ १६४ ॥

पुराणे घृते पीनेसे और तीक्ष्ण वास्ति करनेसे कफ और वायुसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग दूर होता है । दाह देनाभी कफवातके शिरोरोगको दूर करताहै और सन्निपातज तथा कृमिजन्य शिरोरोगोंमें रक्तमोक्षण करना हितकारक है ॥ १६४ ॥

एरण्डनलदक्षौमगुग्गुल्वगुरुचन्दनैः ।

धूमवर्त्तिपिवेद्वन्धैःसकुष्ठतगरैस्तथा ॥ १६५ ॥

एरण्डकी जड़, खस, गुग्गुलु, अगर और लाउ चंदनका चूर्ण कर धूमवर्त्तिका प्रयोग को अथवा काली अगर, कूठ और तगरको पीसकर धूमवर्त्ती बनावे । इन दानों प्रकारकी धूमवर्त्तियोंके प्रयोग करनेसे कफजनित शिरोरोग दूर होता है ॥ १६५ ॥

सन्निपातभवेकार्यसन्निपातहिताक्रिया ।

क्रिमिजेचैवकर्त्तव्यंतीक्ष्णंमूर्च्छविरेचनम् ॥ १६६ ॥

सन्निपातके शिरोरोगमें सन्निपातनाशक क्रिया करना चाहिये । कृमिजन्य शिरोरोगमें तीक्ष्ण मूर्च्छविरेचन करना हितकारक है ॥ १६६ ॥

त्वग्दन्तीव्याघ्रकरजविडंगंनवमालिका । अपामार्गफलंवीजंनक्त-
मालशिरीषयोः । क्षवकोश्मन्तकोविल्वंहरिद्राहिंशुयूथिका ॥ १६७ ॥
फणिञ्जकश्चतैस्तैलमविमूत्रेचतुर्गुणे । सिद्धंस्यान्नावनंचूर्णत्रैपां
प्रधमनंहितम् ॥ १६८ ॥

दालचीनी, दंती, व्याघ्ररसी, घाघविडंग, नवमालिका (वनमालती) अपा-
मार्गके बीज, कंजुएके फल, शिरमके बीज, क्षवक (नकडिकनी या राई), अश्मं-
त्क, निम्बकी गिगी, हलदी, फलप्रियंगु, जही और फणिञ्जकतुलसी इन सब

द्रव्योंके कल्क और चारगुणे भेडके मूत्रसे सिद्धकिये हुए तेलके नस्य लेनेसे सन्नि-
पातज और कृमिजन्य शिरोरोगको दूर करताहै। अथवा इन्हीं द्रव्योंके वारीक चूर्णको
दोनों नथनोंमें प्रथमन करना (नली द्वारा फूंकना) भी कृमिजन्य मस्तकपीडाको
दूर करताहै ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

फलंशिमुकरजाभ्यांसव्योपश्चावपीडकम् । कपायःस्वरसःक्षार-
श्चूर्णकल्कोऽवपीडकः । शुक्तित्तकटुक्षौद्रकपायैःकवलग्रहः ॥ १६९ ॥

मुहांजनेके बीज और कंजके बीजोंके चूर्णको त्रिकुटेके चूर्णमें मिलाकर जलके
संयोगसे पोटली बना दोनों नथनोंमें टपकाना तथा इन्हीं द्रव्योंके काथ, स्वरस,
क्षार, चूर्ण, कल्क और अवपीडन करना शिरोरोगमें हितकारी है। एवं कटु तिक्त
द्रव्योंके काथमें शहद मिलाकर मुखमें धारणकर कुड़ा करना भी शिरोरोगको शान्त
करताहै ॥ १६९ ॥

वातज मुखरोगके लक्षण ।

मुखामयेमारुतजेतुशोपकार्कश्यरौक्ष्याणिचलारुजश्च ।

कृष्णारुणनिष्पतनंसशीतंप्रसंसनस्पन्दनतोदभेदाः ॥ १७० ॥

वातजनित मुखरोगमें मुखमें सूखापन, कठोरता, रूक्षता, चंचल पीडा, काला,
लाल और कुछ २ शीतल मुखसे साव होना, दांतोंका हिलजाना मुखमें फडकनसी
प्रतीत होना तोठ और भेद यह लक्षण होतेहैं ॥ १७० ॥

पित्तज मुखरोगके लक्षण ।

तृष्णाज्वरस्फोटकतालुदाहाघृमायनश्चाप्यवदीर्णताच ।

पित्तात्समूर्च्छाविविधारुजश्ववर्णाश्चशुक्लारुणवर्णवर्ज्याः ॥ १७१ ॥

पित्तजनित मुखरोगमें प्यास, ज्वर, मुखमें छाले वा पकनेवाले फोड़े, तालुमें
दाह, मुखमें धूमके समान उठना प्रतीत हो, मुखका अवदारण (दांतोंका निकलना
वा हिलना अथवा जखमोंका फटना), मूर्च्छा अनेक प्रकारकी पीडा तथा सफेद
और लालवर्णोंके सिवाय अन्य काले, पीले आदि अनेक प्रकारके वर्ण होना यह
लक्षण होतेहैं ॥ १७१ ॥

कफज मुखरोगके लक्षण ।

काण्डूर्गुरुत्वंसितविज्जलत्वंलेहोऽरुचिर्जाड्यकफप्रसेकौ ।

उल्लेशमन्दानलताचतन्द्रारुजश्चमन्दाः कफवक्त्ररोगे ॥ १७२ ॥

कफजनित मुखरोगमें खुजली, भारीपन, श्वेतवर्ण, गाढा और चिकना साव,

ध्रुचि, जडता, कफकां निकलना, कफका उत्कलेश, मंदाग्नि, तन्द्रा और मन्दमन्द पीडा यह लक्षण होतेहैं ॥ १७२ ॥

सन्निपातज मुखरोगके लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुवक्ररोगे भवन्तियस्मिन्सतुसर्वजः स्यात् ।

संस्थानदूष्याकृतिनामभेदाच्चैतेचतुःपाष्टिविधा भवन्ति ॥ १७३ ॥

सन्निपातज मुखरोगमें तीनों दोषोंके मिले जुले लक्षण होतेहैं । संस्थान दूष्य और आकृति तथा नामभेदसे मुखरोग चौंसठ प्रकारका होताहै ॥ १७३ ॥

शालाक्यतन्त्रे विहितानितेपांनिमित्तरूपाकृतिभेषजानि ।

यथाप्रदेशन्तुचतुर्विधस्यक्रियांप्रवक्ष्यामिमुखामयस्य ॥ १७४ ॥

इन मुखरोगोंके निदान और लक्षण आदिका शालाक्यतंत्र अर्थात् शस्त्रचिकित्सा में विशेषरूपसे वर्णन कियाहै । अब हम केवल वातादिभेदसे चार प्रकारके मुखरोगोंकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं ॥ १७४ ॥

मुखरोगचिकित्सा ।

धूमःप्रथमनंशुद्धिरधश्छर्दनलक्षणम् ।

भोज्यञ्चमुखरोगेषुयथास्वंदोषानुद्धितम् ॥ १७५ ॥

मुखरोगमें शिरका, तिक्त कसेले और मद्युग्मसौंसे कवल धारणकरना तथा धूमप्रयोग, प्रथमन, विरेचन द्वारा मलाशयकी शुद्धि, वमन, लंवन और दोषानुसार अन्नपानक्रम द्वारा उपचार करना चाहिये ॥ १७५ ॥

पिप्पल्यादि कवल ।

पिप्पल्यगुरुदार्वीत्वग्ग्यवक्षारोरसाञ्जनम् । पाठांतेजोवर्तीपिथ्यांसम-

भागंसुचूर्णितम् ॥ १७६ ॥ मुखरोगेषुसर्वेषुसक्षौद्रंतद्विधारयेत् ।

शीधुमाधवमाध्वीकैः श्रेष्ठोऽयंकवलग्रहः ॥ १७७ ॥

पीपल, अगर, दारुहलदी, टालचीनी, जवाखार, ग्मीत, पाटला, तेजवल, हरड इन सबको समभाग लेकर चूर्णकरे । इस चूर्णको शहद, शीधु, माध्वीक मद्य अथवा मध्वासवमें मिलाकर मुत्तमें कवल धारण करना सब प्रकारके मुखरोगोंको दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

तेजांवत्यादि चूर्ण ।

तेजोह्वासभयामेलांसमह्लांकटुकांधनम् । पाठांज्योतिष्मतीलोध्रंदा-

वींकुष्ठचूर्णयेत् ॥ १७८ ॥ दन्तानांघर्षणाद्रक्तस्त्रावकण्डूरुजाप-
हम् ॥ १७९ ॥

तेजोवती (तेजबल या चव्य), हरड, छोटी इलायची, मंजीठ, कुटकी, नागरमोथा, पाठा, मालकांगुनी, पाठानी लोध, दाहहल्दी और कूट इन सबको समान भाग ले चूर्ण करे इस चूर्णको दांतोंकी जड़ोंमें मलनेसे रक्तस्त्राव, खुजली और पीडा दूर होतीहै ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

पंचकोलादिगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः । पलाशमुष्ककक्षारयवक्षार-
राश्वचूर्णिताः । गुडेपुराणोद्विगुणेऽथथितेगुडिकाः कृताः ॥ १८० ॥
कर्कन्धुमात्राःसताहंस्थितामुष्ककभस्मनि । कण्ठरोगेषुसर्वेषुधा-
र्याःस्युरमृतोपमाः ॥ १८१ ॥

पंचकोल, तालीशपत्र, इलायची, मिर्च, दालचीनी, पलाशका क्षार, मोपावृक्षका क्षार, जवाखार इन सबका चूर्ण कर सबसे द्रुग्ने गुडमें पका बेरके समान गोलियें बनावे । इन गोलियोंको सात दिन तक मोपा (बंटापाढर) की भस्ममें दंडाकर रक्खे फिर १ गोली नित्य सुखमें रखनेसे सब प्रकारके मुखरोग और कण्ठरोगोंको दूर करनेमें अमृतके समान है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

कालकचूर्ण ।

गृहधूमोयवक्षारपाठाव्योपरसाञ्जनम् । तेजोह्वात्रिफलालोधांचित्र-
कश्चेत्तचूर्णितम् ॥ १८२ ॥ सक्षौद्रंधारयेदेतद्दलरोगविनाशनम् ।

कालकनामतचूर्णदन्तास्थगलरोगनुत् ॥ १८३ ॥

धरका धुआं, जवाखार, पाठला, सोंठ, मिर्च, शीपल, रसौल, तेजोवती, हरड, बहेडे, आँवले, लोध और चित्रकको बराबर लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको शहदमें मिलाकर मुखमें धारण करनेसे सब प्रकारके कुंठरोग दूर होतेहैं । यह-कालकनामका चूर्ण दंतरोग, मुखरोग और गलरोगको नष्ट करनेवाला है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

पीतकचूर्ण ।

मनःशिलायवक्षारोहरितालंससैन्धवम् । दार्वीत्वक्चेतितचूर्णं
माक्षिकेणसमाधुतम् ॥ १८४ ॥ मूर्च्छितंघृतमण्डेनकण्ठरोगेषुधार-
येत् । मुखरोगेषुचश्रेष्ठपीतकनामकीर्तितम् ॥ १८५ ॥

मनगिल, जवाखार, हरताल, संधानमक, दाहहल्दी, दालचीनी-इन सबके चूर्णको

शहद और घृतमण्डमें मिलाकर मुखमें धारण करे तो यह पीतक चूर्ण कण्ठोग और मुखरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

मृद्धीकादिचूर्ण ।

मृद्धीकाकटुकाव्योषंदावीत्वक्त्रिफलाघनम् ।

मूर्च्छितंघृतमण्डेनकण्ठरोगेषुधारयेत् ॥ १८६ ॥

मुनका, कुटकी, सोंठ, भिर्च, पीपल, दारुहल्दी, हरड, बहेडे, आँवले और नागर मोथेका चूर्ण कर घृतमण्डमें मिला मुखमें धारण करे तो मुखरोग दूर होताहै ॥ १८६ ॥

पाठारसाञ्जनंमूर्वातेजोहेतिचूर्णितम् । क्षौद्रयुक्तंविधातव्यंगल-

रोगेभिषग्जितम् । योगास्त्वेतेत्रयःप्रोक्तावातपित्तकफापहाः ॥ १८७ ॥

पाटला, रसौत, मूर्वा और तेजोवतीको समान भाग लेकर शहत और घृतमण्डमें मिला मुखमें धारण करे तो सब प्रकारके कण्ठरोग दूर होतेहैं । यह तीन योग अर्थात् कालकचूर्ण वातजनित मुखरोगको, पीतकचूर्ण पित्तजनित मुखरोगको और मृद्धीकादिचूर्ण कफजनित मुखरोगको दूर करताहै ॥ १८७ ॥

कटुकातिविषापाठादावीमुस्तकलिङ्गकाः ।

गोमूत्रकथिताःपेयाःकण्ठरोगविनाशनाः ॥ १८८ ॥

कुटकी, अतीश, पाटला, दारुहल्दी, मोथा और इन्द्रजौको गोमूत्रमें पिला काय कर पीवे तो कण्ठरोगको दूर करताहै ॥ १८८ ॥

स्वरसःक्वथितोदाव्याघनीभूतोरसक्रिया ।

सक्षौद्रमुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ १८९ ॥

दारुहल्दीका काय शहद मिला मुखमें धारण करनेसे मुखरोग, रक्तविकार और नाडीव्रण नष्ट होतेहैं ॥ १८९ ॥

तालुशोपेसतृष्णास्यसर्पिपोत्तरभक्तिकम् ।

नावनंमधुराःस्निग्धाःशीताश्चैवरसाहिताः ॥ १९० ॥

तालुके शोप और प्यासमें उत्तर भक्तिक घृतका सेवन करना हितकारी है । तथा मधुर, स्निग्ध और शीतल मांसरस भी गुणकारक होताहै ॥ १९० ॥

मुखपाकका यत्न ।

मुखपाकेशिराकर्म्मशिरःकायविरेचनम् ।

मूत्रतैलघतक्षौद्रक्षीरैश्चकवलग्रहः ॥ १९१ ॥

मुखपाकर्म शिरामोक्षणं, शिरोविरेचन, और काय विरेचन करना तथा गामूत्र, तेल, घृत शहद और दूधका कवल धारण करना हितकारी है ॥ १९१ ॥

सक्षौद्रास्त्रिफलापाठामृद्धीकाजातिप्लवाः ।

कपायतिक्तकाःशीताःक्वाथश्चमुखधावनाः ॥ १९२ ॥

त्रिफला, पाटला, मुनक्का, चमेलीके पत्ते इन सबके काथसे शहद मिलाकर कुछे करना तथा कसैले और कपायतिक्त और शीतल द्रव्योंके काथसे कुछे करना मुखपाकको दूर करता है ॥ १९२ ॥

खदिरादिगुटिका तथा तेल ।

तुलांखदिरसारस्यद्वितुलामरिमेदसः । प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यचतुर्द्रो-
णेऽम्भसःपचेत् ॥ १९३ ॥ द्रोणशेषंकपायंतंपक्त्वाभूयःपचेच्छनैः ।

ततस्तस्मिन्घनीभूतेचूर्णीकृत्याक्षभागिकम् ॥ १९४ ॥ चन्दनंपद्म-

कोशीरंमञ्जिष्ठाधातकीघनम् । प्रपौण्डरीकंयष्ट्याहृत्वगोलापद्मकेश-
रम् ॥ १९५ ॥ लाक्षारसाञ्जनंमांसीत्रिफलालोधवालकम् । रज-

न्यौफलिनीमैलांसमङ्गांकट्फलंवचाम् ॥ १९६ ॥ यवासागरुपत्तङ्ग-
गैरिकाञ्जनमावपेत् । लवङ्गलखककोलजातिकोशान्पलोन्मि-

तान् ॥ १९७ ॥ कर्पूरकुडवश्चापिपुनःशीतेऽवतारिते । ततस्तुगु-
लिकाःकार्याःशुष्काश्चास्येनधारयेत् ॥ १९८ ॥ तैलत्रानेनकल्के-

नकपायेणचसाधयेत् । दन्तानांचलनंभ्रंशंसौपिथ्यंक्रिमिरोगनु-
त् ॥ १९९ ॥ मुखपाकास्यदौर्गन्ध्यजाड्यारोचकनाशनम् । त्वावो-

पलेपपौच्छिल्यवैस्वर्य्यगलरोगनुत् । दन्तास्यगलरोगेपुसर्वेषांतत्प-
रायणम् ॥ २०० ॥

खैरसार ५ सेर, आरिमेद (विडखदिर), खैरका सार १०सेर इन दोनोंको धोकर ऊपरका गर्दा दूर कर ६४ सेर जलमें पकावे । जब १६ सेर बाकी रहे तो उतारकर छानले फिर इस छनेहुए पानीको मंदमंद अभिसे पकावे । जब पकने २ गाढा होजाय तो उसमें लालचन्दन, पन्नाख, खसत, मंजीठ, धावेंके फूल, नगरमोथे, पंडयारेके छिलके, मुलैठी, दालचीनी, इलायची, कूठ, नागकेशर, लाख, रसात, जटामांसी, हरड, बहेडे, आंवले, पठानी लोघ, नेत्रवाला, हल्दी, दारुहल्दी, मिषंगु बडी इलायची, मंजीठ, कायफल, वच जवासा, अगर, पतंग और गेरू तथा अंजन यह प्रत्येक एकएक तोला लेक

बारीक चूर्ण बना उपरोक्त खैरसारकी चासनीमें मिलावे फिर उतारकर शीतल होने-पर लौंग, नखीनामक गंधद्रव्य, कंकोल, जावित्री यह ४चारचार तोलाले बारीक चूर्णकर मिलावे तथा १पाव शुद्ध कपूर मिलावे फिर इसकी तीन तीन मासेकी-गोलियें बनाकर सुखालेवे । १ गौली नित्य मुखमें धारण करे । अथवा इन्हीं उपरोक्त द्रव्योंके कल्क और काथसे सिद्ध कियाहुआ तैल मुखमें धारणकरे तो दांतोंका हिलना, दांतोंका गिरना, दांतोंमें छिद्र होना, दंतकृमि, मुखपाक, मुखदुर्गंध, मुखकी जडता, अरुचि, मुखस्त्राव उपलेष, पिच्छिलता स्वरभंग और कण्ठरोग यह सब दूर होतेह । यह खदिरादि गुटिका, दांत, मुख और गलेके संपूर्ण रोगोंको दूर करनेमें परमोत्तम है ॥ १९३-२०० ॥

अरुचिके ५ भेद ।

वातादिभिःशोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनगन्धरूपैः ।

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे चार प्रकारकी अरुचि उत्पन्न होतीहै ।

वातज अरुचिके लक्षण ।

अरोचकाःस्युःपरिहृष्टदन्तकपायवक्रस्यमतोऽनिलेन ॥ २०१ ॥

और पांचवीं भय, शोक, अत्यंत लोभ, क्रोध, मनके धिगाडनेवाले भोजन, गंध और रूपसे उत्पन्न होतीहै । वातजनित अरुचिमें दंतहर्ष और मुखका स्वाद कसैला होताहै ॥ २०१ ॥

पित्तज अरुचि ।

कटुम्लमुष्णं विरसञ्चपूतिपित्तेन विद्याल्लवणञ्चवक्रम् ।

पित्तज अरुचिमें, मुखका स्वाद कटु, अम्ल, गरम और विरस दुर्गंधयुक्त तथा नमकीन होताहै ।

कफज अरुचिके लक्षण ।

माधुर्यपैच्छिल्यगुत्वशैत्यविवन्धसंवद्धयुतंकफेन ॥ २०२ ॥

कफजनित अरुचिमें मुख मीठा, लबावदार, भारी और शीतल होताहै, तथा मलका विबंध होताहै ॥ २०२ ॥

मनोविकार जन्य और त्रिदोषज अरुचि ।

अरोचकेशोकभयातिलोभक्रोधाद्यह्याशयगन्धजेस्यात् ।

स्वाभाविकश्चास्यरसोऽरुचिश्चत्रिदोषजनैकरसंभवेत्तु ॥ २०३ ॥

जो अरुचि-शोक, भय, अतिलोभ अथवा हृदयके धिगाडनेवाले अन्न, गंध तथा रूपसे उत्पन्न होतीहै उस अरुचिमें मुखका स्वाद स्वाभाविक रहताहै । और

सन्निपातकी अरुचिमें तीनों दोषोंके अनेक प्रकारके रसोंवाला मुखका स्वाद होताहै ॥ २०३ ॥

अरोचकचिकित्सा ।

अरुचौकवलग्राहाधूमाःसमुखधावनाः ।

मनोज्ञमन्नपानश्चहर्षणाश्वासनानिच ॥ २०४ ॥

अरुचिमें कवल धाग्ण, धूमपान, कुल्ले करना, मनोज्ञ अन्न पान हर्ष उत्पन्न करनेवाली और धीरज देनेवाली वार्तालाप करना हितकारक है ॥ २०४ ॥

अरुचिनाशक योग ।

कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचंविडम् । धात्र्येलापन्नकोशीरपिप्प-
ल्युत्पलचन्दनम् ॥ २०५ ॥ लोध्रंतेजोवतीपथ्याधूपणंसयवा-
प्रजम् । आर्द्रादाडिमनिर्यासाश्चाजाजीशर्करायुताः ॥ २०६ ॥

सतैलमाक्षिकास्त्वेतेचत्वारःकवलग्रहाः । चतुरोऽरोचकान्हन्यु-
र्वाताथेकजसर्वज्ञान् ॥ २०७ ॥

कुष्ठ, संचनमक, काला जीरा, खांड, मिर्च, और विडलवणका चूर्ण कर तेल और शहदके साथ मिलाकर मुखमें धाग्ण करनेसे वातजनित अरुचि दूर होतीहै । आँबले, इलायची, पञ्जारा, खस, पीपल, नील कमल और लालचंदनके तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे पित्तजनित अरुचि दूर होतीहै । पठानीलोध, तेजोवती, हृग्, त्रिकुटा और जवारारके चूर्णको उसी प्रकार तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे कफकी अरुचि दूर होतीहै । एवं अदरकका रस, अनारका रस, काला जीरा और खांडको तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे सन्निपा-
तकी अरुचि दूर होतीहै ॥ २०५-२०७ ॥

काग्वीमरिचाजाजीद्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् ।

सौवर्चलंगुडंक्षौद्रंसर्वारोचकनाशनम् ॥ २०८ ॥

रुलैजी, काठी मिर्च, काला जीरा, द्राक्षा, अम्लवेत, अनारदाना, संचनमक, गुड और शहद इन सबको मिलाकर मुखमें कवल धाग्ण करनेसे नव प्रकारकी अरुचि दूर होतीहै ॥ २०८ ॥

वस्तिःसमीरणेपित्तेविरेकं वमनं कफे ।

कुर्याद्द्वयानुकूलानिहर्षणश्चमनोन्नजे ॥ २०९ ॥

पायुकी अरुचिमें वमिनरुम, पित्तकी अरुचिमें विरेचन और कफकी अरु-

चिमें वमन कराना चाहिये । तथा मनके विकारसे उत्पन्न हुई अन्चिमें मनके अनुकूल और हृदयको प्रमत्त करनेवाली अन्नपान क्रिया आदि करना चाहिये ॥ २०९ ॥

वातजकर्णरोगके लक्षण ।

नादोऽतिरुक्कर्मलस्यशोपःस्त्रावस्तनुश्चाश्रवणश्रवातात् ।

वातजनित कर्णरोगमें—कानोंमें शब्द होना, कानोंमें तीव्र पीडा, कानके धैलका सूखजाना, पतला स्राव होना तथा सुनाई न देना यह लक्षण होतेहैं ।

पित्तजकर्णरोगके लक्षण ।

शोफःसरागोदरणंविदाहःसपीतपूतिश्रवणश्चपित्तात् ॥ २१० ॥

पित्तजनित कर्णरोगमें—सूजन, लालवर्ण, कानमें फटनेकीसी पीडा होना, दाह और दुर्गन्धयुक्त पीले वर्णका स्राव होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २१० ॥

कफजकर्णरोगके लक्षण ।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोफशुक्लस्निग्धास्रुतिःश्लेष्मभवेत्परुक्च ।

कफके कर्णरोगमें वैश्रुत्य अर्थात् कुछका कुछ सुनाई देना या न सुनना खुजली स्थिर सूजन, सफेद और चिकना स्राव होना तथा मंद मंद पीडा होना यह लक्षण होतेहैं ।

सन्निपातज कर्णरोग ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात्त्रावश्चतत्राधिकदोषवर्गः ॥ २११ ॥

जिस कर्णरोगमें तीनों दोषोंके लक्षण प्रतीत हैं उसको सन्निपातका कर्णरोग जानना । तथा सन्निपातके कर्णरोगमें जो स्राव होताहै वह जनेक प्रकारका और अधिक तथा नानावर्णवाला होताहै ॥ २११ ॥

कर्णरोगकी चिकित्सा ।

कर्णशूलेतुवातघ्नीहितापीनसवत्क्रिया ।

प्रदेहाःपूरणंनस्यंपाकस्रावेव्रणक्रियाः ॥ २१२ ॥

कानके शूलमें पीनसरोगके ममान वातनाशक क्रिया, प्रलेप, कर्णपूरण और नस्यक्रिया हिनकारक है । कानके पक्वनेपर और कर्णमावमें व्रणरोगके समान चिकित्सा करना चाहिये ॥ २१२ ॥

भोज्यानिचयथादोषंकुर्यात्स्नेहांश्चपूरणान् । हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभि-

स्तैलंचसार्पंपचेत् । एतद्धिपूरणंश्रेष्ठंकर्णशूलनिवारणम् ॥ २१३ ॥

कर्णरोगमें दोषानुसार भोजन और स्नेहों द्वारा कर्णपूरण करना चाहिये जैसे—

हींग, नेपाली धनियां और सांठके कल्कसे पकायाहुआ सरसोंको तेल कानमें भरनेसे कानका शूल दूर होताहै ॥ २१३ ॥

देवदारुवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः । तैलंसिद्धं वस्तमूत्रे कर्णशूलनिवारणम् ॥ २१४ ॥ वराटकान्समाहृत्य दहेन्मृद्भाजनैव । तद्भस्मच्योतयेत्तेन गन्धतैलं विपाचयेत् । रसाञ्जनस्य शुण्ठ्याश्च कल्काभ्यां कर्णशूलनुत् ॥ २१५ ॥

देवदारु, वच, सांठ, सौंफ, कूठ और सेंधे नमकके कल्कसे बकरीका मूत्र मिलाकर तेलको सिद्ध करे । इस तेलको कानमें डालनेसे कानकी पीडा नष्ट होतीहै पीली कौडियोंको इकट्ठी कर नवीन मट्टीके बरतनमें भर फूक देवे । फिर कौडियोंकी भस्म निकाल आठगुने जलमें घोलकर इकीस बार छान लेवे । इस जलसे और रसोत तथा सांठके कल्कसे तेलको पकावे । सिद्ध होनेपर इस तेलको कानमें टपकावे तो कानकी पीडा दूर होतीहै ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

क्षारतैल ।

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिं गुग्गुलुपथम् ॥ २१६ ॥ शतपुष्पावचा कुण्डदारुशिग्रुस्राञ्जनम् । सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम् ॥ २१७ ॥ भूर्जग्रन्थिविडं मुस्तं मधुशुक्लंचतुर्गुणम् । मातुलुङ्गसश्चैव कदल्यारसएवच ॥ २१८ ॥ सर्वैरेतैर्यथोद्भिष्टैः क्षारतैलं विपाचयेत् । चाधिर्य्यकर्णनादश्च पूयस्त्रावश्च दारुणः ॥ २१९ ॥ क्रिमयः कर्णशूलश्च पूरणादस्य नश्यति । मुखकर्णाक्षिरोगेषु यथोक्तं पीनसेविधिम् । कुर्याद्भिषक् समीक्ष्यादौषकालवलावलम् ॥ २२० ॥

सखी मूलीका क्षार, सांठका क्षार, हींग, सांठ, सौंफ, वच, कूठ, दारुहल्दी, सोहंजनेकी छाल, रसोत, संचर नमक, जवाखार, सजीखार, उद्भिदनमक, सेंधानमक, भोजपत्रकी गांठ, विडनमक और नागरमोथा कल्क करके पावभर शहदसे बना सिरका ४ सेर, विजैरिका रस, केलेका रस प्रत्येक ४ सेर, तेल १ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र श्रेय रहनेपर उतारकर छानले । इस तेलको कानमें टपकानेसे धिरता, कर्णनाद, कानसे राधका दारुणस्त्राव, कानके कृमि और कर्णशूल यह सब दूर होतेहैं । यह क्षारतैल दोष, बल और काल विचारकर पंच मुखरोग, कर्णरोग, अक्षिरोग और पीनसरागमें प्रयुक्त करे ॥ २१६-२२० ॥

नेत्ररोगनिदान ।

वातजनेत्ररोगके ल० ।

अल्पाश्रुरागाऽनुपदेहताचप्रस्पन्दतोदातिरुजश्चवातात् ।

वातजनित, नेत्ररोगमें अल्प अश्रुपात होना, नेत्र लाल होना, नेत्रोंका चिपकेहुए न होना, नेत्र फडकना, चीटीके काटनेकेसे चमके लगना और पीडा होना, यह लक्षण होतेहैं ॥

पित्तजनेत्ररोगकेलक्षण ।

पित्तात्तुद्राहार्तिरुजोऽतिरागाःपीतोपदेहःसुभृशोष्णमस्त्रम् ॥२२१॥

पित्तजनित नेत्ररोगमें दाह, पीडा, यातना, अत्यंत लाली, पीले वर्णकी चिपचिपाहट और गरम तथा पीतवर्ण अश्रुओंका स्राव होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २२१ ॥

कफजनेत्ररोगके लक्षण ।

शुक्लोपदेहोवहुपिच्छिलास्तुनेत्रस्यखेटाद्गुरुतासकण्डूः ।

कफजनित नेत्ररोगमें—सफेदवर्णका क्लेद, बहुत और गाढा कीच नेत्रोंमें भरा हुआ होना और गाढे क्लेदका स्राव होना, नेत्रोंमें भारीपन और खुजली यह लक्षण होतेहैं ॥

सन्निपातजनेत्ररोग ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातान्नेत्रामयाःपणवतिस्तुभेदात् ॥२२२॥

सन्निपातके नेत्ररोगमें तीनों दोषोंके मिलेजुले लक्षण होतेहैं । संपूर्ण नेत्ररोगोंके ९६ भेद हैं ॥ २२२ ॥

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टाशालावयतन्त्रेपुचिकित्सितञ्च । पराधिकारेतुनविस्तरोक्तिःशस्तेतितेनात्रननःप्रयासः ॥ २२३ ॥

उन सब प्रकारके नेत्ररोगोंका विशेष वर्णन और चिकित्सा शालाक्यतंत्रोंमें वर्णन की है अर्थात् शालाक्य शास्त्रके जाननेवालोंने विशेष वर्णन कियाहै परन्तु हमने अपने शास्त्रमें पराई युक्तिका विशेषकर वर्णन करना वृथा प्रयास समझाहै इसलिये वह क्रिया उन्हीं (सुश्रुत, वाग्भट) शास्त्रोंमें देखना चाहिये ॥ २२३ ॥

नेत्ररोगचिकित्सा ।

नेत्ररोगेसमुत्पन्नेतरुणेतुविडालकः ।

कार्योदाहोपदेहाश्रुशोफरागनिवारणः ॥ २२४ ॥

नेत्ररोगोंमें उत्पन्न होते ही विडालनामक लेपके करनेसे दाह, क्लेद, अश्रुपात, सूजन और लाली दूर होजातीहै ॥ २२४ ॥

वातजनेत्ररोगकी चिकित्सा ।

नागरसैन्धवंसर्पिर्मण्डेनचरसक्रिया । निघृष्टंवातिकेतद्वन्मुस्तसै-
न्धवगौरिकम् ॥ २२५ ॥ तथाशावरकंलोध्रंघृतभृष्टंविडाल-
कः । कार्याहरीतकीतद्वद्धृतभृष्टारुजापहा ॥ २२६ ॥

वातज नेत्ररोगमें सोंठ, और संधानमकको घृतमें मिलाकर अथवा संधानमक, गेरू और नागरमोयेको घृतमें मिला टिक्रियासी बना नेत्रोंपर रसनेमे वातजनित नेत्ररोग दूर होताहै । यह दोनों उत्तम विडालक योग है अथवा सफेद लोवके कल्कका घीमें सिद्धकर गरम २ टिक्रियासी नेत्रपर रक्खे या हरडके कल्कको घीमें भूनकर नेत्रोंपर लगावे तो यह रसक्रिया वातजनित नेत्ररोगको दूर करनेके लिये उत्तम योग है ॥ २२५ ॥ २२६ ॥

पित्तजनेत्ररोगकी चिकित्सा ।

पैत्तिकेचन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिर्विडालकः । कार्द्यःपद्मकयष्टथाह्-
मांसीकालीयकैस्तथा । गौरिकंसैन्धवंसुस्तंरोचनाचरसक्रिया ॥ २२७ ॥

पित्तके नेत्ररोगमें लाल चंदन, शारिवा और मंजीठके कल्कसे नेत्रोंपर विडालक अर्थात् बाहरी गाढालेप करे । अथवा पद्माख, मुलैठी, जटामांसी और काली अगर लेकर नेत्रोंपर गाढा लेप करे । पित्तजनित नेत्ररोगमें गेरू, संधानमक, नागरमोया और गोरोचनकी रसक्रिया करना हितकारक है ॥ २२७ ॥

कफजनित नेत्ररोगकी चिकित्सा ।

कफेकार्द्यस्तथाक्षौद्रप्रियंगुःसमनःशिलः ॥ २२८ ॥

कफजनित नेत्ररोगमें शहद, प्रियंगु और मनसिलका नेत्रोंपर विडालक नामका लेप करना चाहिये ॥ २२८ ॥

सन्निपातजनित नेत्ररोगकी चि० ।

सन्निपातेतुसर्वैःस्याद्दहिरुणोःप्रलेपनम् ।

पक्ष्मण्यस्पृश्यताकार्यसम्पाकेत्वञ्जनंश्रयात् ॥ २२९ ॥

सन्निपातके नेत्ररोगमें तीनों दोषोंके नाश करनेवाले बाहरी लेप करने चाहिये । संपूर्ण नेत्ररोगोंमें तीन दिन तक किसी, प्रकारका भी नेत्रोंके भीतर डालनेका अंजन प्रयुक्त नहीं करना चाहिये । तीन दिनके अनन्तर दोषोंके पकजाने पर नेत्रोंको धोकर नेत्रोंके भीतर अंजन डाले । परन्तु पलकोंपर न लगावे ॥ २२९ ॥

वातजनेत्ररोगमें आश्रोतन !

आश्च्योतनंमारुतजेकाथोविल्वादिभिःशुभः ।

कोष्णःसैरण्डतर्कारीवृहतीमधुशियुभिः ॥ २३० ॥

वातजनित नेत्ररोगमें विल्वादि पंचमूल, एरण्डकी जड़, अरणी, बड़ी कटेली, सुहांजनेके छिलके इन सबका क्वाथ बनाकर नेत्रों पर आश्रोतन (सेचन) करे ॥ २३० ॥

रक्तपित्तजनित नेत्रोपर सेचन ।

द्राक्षादार्वीसमञ्जिष्ठालाक्षाद्रिमधुकोत्पलैः ।

काथःसशर्करःशीतःपूरणंरक्तपित्तनुत् ॥ २३१ ॥

द्राक्षा, दारुहल्ली, मंजीठ, लाख, महुएके फूल, मुलैठी और नीलोफरका मिसरीयुक्त क्वाथ शीतल करके नेत्रोंपर सेचन करे तो रक्तपित्तजनित नेत्ररोग दूर होताहै ॥ २३१ ॥

कफज और सन्निपातजनेत्ररोगपर सेचन ।

नागरंत्रिफलामुस्तनिम्बवासारसःकफे ।

कोष्णमाश्च्योतनंमिश्रैरौषधैःसन्निपातके ॥ २३२ ॥

सोंठ, हरड, बहेडे, आँबले, नागरमोया, नीमकी छाल और अट्टसेभी छालका क्वाथ गरम गरम नेत्रोंपर सेचन करे तो कफजनित नेत्ररोग शान्त हो । सन्निपातके नेत्ररोगोंमें त्रिदोषनाशक योगोंके क्वाथसे सेचन करे ॥ २३२ ॥

वातजनेत्ररोगहर वर्ति ।

वृहत्येरण्डमूलत्वक्विशयोःपुष्पंससैन्धवम् ।

अजाक्षीरेणपिष्टंस्याद्वर्त्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ २३३ ॥

बड़ी कटेलीकी जड़का छिलका, एरण्डकी जड़का छिलका, सुहांजनेके फूल, संधानमक इन सबकी बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनावे । इस बत्तीको जलमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे वातजनित नेत्ररोग दूर होताहै ॥ २३३ ॥

पित्तजनेत्ररोगहर वर्ति ।

सुमनःक्षारकाःशंखात्रिफलामधुकंठला ।

पित्तरक्तापहावर्त्तिःपिष्टादिव्येनवारिणा ॥ २३४ ॥

मालतीके फूलोंकी भस्म, शंखभस्म, त्रिफला, मुलैठी और बलाकी जड़को आकाशके जलमें घोटकर बत्ती बनावे । यह बत्ती नेत्रोंमें आंजनेसे रक्तपित्तजनित नेत्ररोगको दूर करतीहै ॥ २३४ ॥

कफजनेत्ररोगहर वार्ति ।

सैन्धवंत्रिफलाव्योषंशंखनाभिःसमुद्रजः ।

फेनःशैलेयकंसर्जोवर्त्तिःश्लेष्माक्षिरोगनुत् ॥ २३५ ॥

सैन्धानमक, त्रिफला, त्रिकुटा, शंखकी नाभि, समुद्रफेन, शैलज और राल इन सबको पीसकर बत्ती बनावे । यह बत्ती कफजनित नेत्ररोगको दूर करती है ॥ २३५ ॥

दृष्टिप्रसादनी वार्ति ।

प्रपौण्डरीकंयष्ट्याहंदावींश्चाष्टपलांशिकाम् । जलेपक्कारसेपूतेपुनः
पक्वेरसेघने ॥ २३६ ॥ कर्पश्चश्वेतमरिचाद्रोणीपुष्पानवोत्पलम् ।

चूर्णक्षिप्त्वाकृतावर्त्तिःसर्वघ्नीदृक्प्रसादनी ॥ २३७ ॥

पंड्यारेकी छाल, मुलैठी और दारुहल्दीको आठ आठ पल लेकर १६ गुने जलमें पकावे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर इस क्वाथको पकावे । जब पकते २ गाढा होजाय तो इसमें मुहांजनेके बीजोंका चूर्ण १ कर्प दडगल (गुग्गुलु) के फूल १ कर्प, नवीन नीलकमलके फूल १ कर्प, इनको वारीक पीसकर उपरोक्त पाकमें मिलाकर बत्ती बनावे । यह बत्ती सब प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करनेवाली तथा नेत्रोंको प्रफुल्लित करनेवाली है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

दृष्टिप्रसादनी वार्ति ।

अमृतामधुकंनिम्बपटोलंछागलंशकृत् । वासाप्रपौण्डरीकश्चदावीं-
कालानुसारिणी ॥ २३८ ॥ एषामष्टपलान्भागान्सुधौताञ्जरी-
कृतान् । तोषेपक्त्वारसेपूतेभूयःपक्वेघनेरसे ॥ २३९ ॥ सिताम-
रिचयोःकर्पजातिपुष्पात्रवोत्पलम् । चूर्णकृत्वाकृतावर्त्तिःसर्वघ्नी
दृक्प्रसादनी ॥ २४० ॥

अमृता (हरड), मुलैठी, नीम, पटोलपत्र, बकरीकी मँगन, वांसा, पंड्यारेकी छाल, दारुहल्दी और तगर इनको आठ आठ पल लेकर जलसे धोडाले । फिर फूटकर १६ गुने जलमें पकावे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस छने-
दुप जलको फिर पकावे । जब गाढा होनेपर आवे तो मिसरी, सफेद मिर्च, चमेलीके फूल, नवीन नीलकमल यह सब एक एक कर्प लेकर वारीक पीस उपरोक्त पाकमें मिलावे । फिर इसकी बत्तियें बनाकर रखे । इस बत्तीको नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग दूर होतेहैं । धीरे दृष्टि प्रसन्न रहतीहै ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ २४० ॥

शंखनाभ्यादिवत्ति ।

शंखप्रवालवैडूर्यलौहताम्रप्लवास्थिभिः ।

स्रोतोऽजश्वेतमरिचैर्वर्त्तिःसर्वाक्षिरोगनुत् ॥ २४१ ॥

शंखकी नाभी, मृगेकी भस्म, वैडूर्यभस्म, लोहभस्म और ताम्रभस्म, मेढककी हड्डी, काला सुरमा, सफेद मिर्च इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनावे । इस बत्तीको नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग दूर होतेहैं ॥ २४१ ॥

चूर्ण अंजन ।

शाणार्द्धमरिचाद्वैचपिप्पल्यर्णवफेनयोः । शाणार्द्धसैन्धवाच्छाणं

नवसौवीरकाञ्जनात् ॥ २४२ ॥ पिष्टंसुसूक्ष्मंचित्रायांचूर्णाञ्जनमि-

दंशुभम् । कण्डूकाचकफार्त्तानामलानाश्चविशोधनम् ॥ २४३ ॥

सफेद मिर्च, पीपल, समुद्र ज्ञाग चार चार माशे सेंधानमक २ माशे, सफेद सुरमा ४ माशे इन सबको चित्रानक्षत्रमें पीसकर सिरसके रसमें भावना देकर अंजन बनावे । यह अंजन नेत्रोंमें आंजनेसे काच, खुजली, क्लेद, कफविकार और नेत्रोंके मलको दूर करताहै । यह परमोत्तम चूर्णांजन है । कितीके मतमें इसको सिरस के रसकी भावना दिये ही बिना चित्रानक्षत्रमें सूक्ष्म चूर्णकर लेना चाहिये २४२-२४३

एलांजन ।

वस्तमूत्रेऽयहंस्थाप्यमेलाचूर्णसुभावितम् ।

चूर्णाञ्जनञ्चतैमिर्यक्रिमिपैल्यमलापहम् ॥ २४४ ॥

बकरीके मूत्रमें इलायचीके चूर्णको तीन दिन भावना देवे । फिर सूक्ष्म चूर्ण कर नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिररोग, नेत्रकृमि और नेत्रोंका मल दूर होताहै ॥ २४४ ॥

चक्षुष्यअंजन ।

सौवीरमञ्जनंतुत्थंताप्योधातुर्मनःशिला ।

चक्षुष्यमधुकंलोहमणयःपौष्पमञ्जनम् ॥ २४५ ॥

सफेद सुरमा, नीला थोथा, सोनामक्खी, मेनशिल, मुलैठी, लोहभस्म, और मोती, वैडूर्य आदि मणियों और चमेलीके फूलोंको वारीक पीस अंजन करे तो नेत्ररोग दूर होतेहैं ॥ २४५ ॥

सैन्धवादि अंजन ।

सैन्धवंशौकरीदंप्राकतकश्चाञ्जनंशुभम् ।

तिमिरादिपुचूर्णवावर्त्तिर्वेयमनुत्तमा ॥ २४६ ॥

संधानमक, सूअरका दांत, निर्मलीके बीज इन तीनोंको पीसकर बत्ती बनावे यह बत्ती तिमिररोगको दूर करनेमें परमोत्तम है । अथवा इन्हीं तीनों द्रव्योंका सूक्ष्म चूर्ण बना नेत्रोंमें अंजन करे ॥ २४६ ॥

सुखावती वर्ति ।

कतकस्यफलंशंखःसैन्धवंज्यूषणंसिता । फेनोरसाञ्जनंक्षौद्रंविड-
ङ्गानिमनःशिला ॥ २४७ ॥ कुम्भकुटाण्डकपालञ्चवर्तिरेषाव्यपो-
हति । तिमिरंपटलंकाचंमलञ्चाशुसुखावती ॥ २४८ ॥

निर्मलीके फल, शंखकी नाभि, संधानमक, त्रिकुटा, मिसरी, समुद्रझाग, रसौत, शहद, वायविडंग मैनसिल मुर्गेके अण्डेका छिलका इन सबको वारीक पीसकर चूर्णाञ्जन अथवा बत्ती बनावे । इसको नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिररोग, पटलरोग, कांच और नेत्रोंका मल दूर होताहै । यह सुखावती बत्ती नेत्रोंको परम हितकारी है ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

दृष्टिप्रदा वर्ति ।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसोरजः । नीलोत्पलंविडङ्गानि-
फेनञ्चसरितांपतेः ॥ २४९ ॥ आजेनपयसापिष्ट्वाभावयेत्ताम्रभा-
जने । सत्तरात्रंस्थितंभूयःपिष्ट्वाक्षीरेणवर्तयेत् । एषादृष्टिप्रदाव-
र्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ॥ २५० ॥

हरड, बहेडे, आँवले, मुर्गेके अण्डोंका सफेद छिलका, कशीश, लोहरज (लोह-
भस्म), नीलकमल, वायविडंग, समुद्रझाग इन सबको तौबेकी खरलमें बकरीके
दूधमें घोट बकरीके दूधकी सात दिन तक भावना देतारहे । फिर सात दिनके
बाद बकरीके दूधसे ही बत्तियें बनावे । यह बत्ती नेत्रोंमें आंजनेसे अंधे और फूटी
आखोंवालोंको भी ज्योति देनेवाली है ॥ २४९ ॥ २५० ॥

तिमिररोगनाशक अंजन ।

वदनेकृष्णसर्पस्यनिहितंमासमञ्जनम् । ततस्तस्मात्समुद्धृत्यसशु-
ष्कंचूर्णयेद्दुधः ॥ २५१ ॥ सुमनःक्षारकैःशुष्कैरर्द्धांशैःसैन्धवेनच ।
एतन्नित्याञ्जनंकार्यंतिमिरघ्नमनुत्तमम् ॥ २५२ ॥

एक काले सांपको मारकर उसके मुखमें अंजनकी डली रख १ महीना रक्खा
रहनेदे । महीनेके बाद उस अंजनको निकालकर सुखालेवे और उसका वारीक चूर्ण
करे । यह अंजन १ तोला, चमेरीके फूलोंकी भस्म आधा तोला और संधानमक

आधा तोला मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे । इसको नित्य नेत्रोंमें आंजनेसे घोर
तिमिररोग भी दूर होता है ॥ २५१ ॥ २५२ ॥

रसायन अंजन ।

पिप्पल्यःकिंशुकरसोवसासर्पस्यसैन्धवम् ।

जीर्णघृतञ्चसर्वाक्षिरोगघ्नीस्यादुपक्रिया ॥ २५३ ॥

पीपलका चूर्ण, ढाकका रस, काले सांपकी चर्बी, संधानमक और पुराना घृत,
इन सबको मिलाकर वारीक पीसकर अंजन करे तो यह रसायन अंजन सब प्रकारके
नेत्ररोगोंको दूर करता है ॥ २५३ ॥

रसक्रिया ।

कृष्णसर्पवसाक्षौद्रंरसोधाऽयारसक्रिया ।

शस्तासर्वाक्षिरोगेषुकाचारुदुदमलेषुच ॥ २५४ ॥

काले सांपकी चर्बी, शहद और ऑमलेके रसको उत्तम रीतिसे मिलाकर
नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग, काच और नेत्रार्जुद तथा नेत्रोंका मल दूर
होता है ॥ २५४ ॥

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तुरसक्रिया ।

पित्तरक्ताक्षिरोगघ्नीतैमिर्यपटलापहा ॥ २५५ ॥

आंवलेका रस, रसौत, शहद और घृतको विधिवत् मिला नेत्रोंमें अंजन करे तो
पित्त और रक्तजनित नेत्ररोग, तिमिर और पटलरोग नष्ट होते हैं ॥ २५५ ॥

धात्रीसैन्धवपिप्पल्यःस्युरल्पमारिचाःसमाः ।

क्षौद्रयुक्तानिहन्त्यान्व्यंपटलञ्चरसक्रिया ॥ २५६ ॥

आंवले, संधानमक और पीपल एक एक तोला, सफेद मिरच तीन मासे इन
सबको वारीक पीस शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आंजे तो यह रसक्रिया अंधता और
पटलरोगको दूर करता है ॥ २५६ ॥

खालित्यरोगका निदान ।

तेजोऽनिलाद्यैःसहकेशभूमिदग्ध्वाशुकुर्यात्खलितंनरस्य ।

किञ्चित्तुदग्ध्वापलितानिकुर्याद्धरित्प्रभत्वञ्चशिरोरुहाणाम् २५७

तेज (पित्त) वायुके साथ मिलाकर केशभूमि (शिर) में प्राप्त होकर केशोंकी
जड़ोंको दग्धकर खालित्य (गंजापन) को उत्पन्न करता है । यदि केशभूमिको
वातयुक्त तेज संपूर्ण रूपसे दहन न करे तो सफेद अथवा पीले वर्णके केशोंको बना
देता है ॥ २५७ ॥

- खालित्यकी चिकित्सा ।

इत्स्यूर्द्धजत्रूथगदैकदेशःप्रोक्तश्चिकित्सान्तुपरानिवोध ।

विस्तारतःसंग्रहतश्चसम्यग्यथाक्रमंसौम्यमयोच्यमानाम् २५८-

हे सौम्य ! इस प्रकार उर्द्धजत्रुगत रोगोंको अर्थात् शिरोरोग, मुखरोग, कर्णरोग आदि रोगोंका एक एक देशसे संक्षेप और विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके हैं । अब यथाक्रम खालित्य और पलित आदि रोगोंकी चिकित्साको मुनो ॥ २५८ ॥

खालित्येपलितेवल्यांहारिलोमिचशोधितम् ।

नस्यैस्तैलैःशिरोवक्त्रप्रलेपैश्चाप्युपाचरेत् ॥ २५९ ॥

खालित्य (शिरके वाल उडजाना), पलित (वालोंका सफेद होजाना), बली (शरीरमें सलवट पडना) और वालोंके पीले होजानेमें रोगीको प्रथम शोधन करके फिर नस्य, तेल, गिर प्रलेप और मुखलेप आदि क्रिया करे ॥ २५९ ॥

सिद्धंविदारीगन्धार्थैर्जीवनीयैरथापिच । नस्यंस्यादणुतैलंवाखा-
लित्यपलितापहम् ॥ २६० ॥

शालपण्यादिगणसे और जीवनीयगणसे सिद्ध कियेहुए तैल अथवा पूर्वोक्त अणु-तैलकी नस्य लेना, वा जीवनीय आदि गणसे सिद्ध किये तैलकी मालिश करना खालित्य और पलित रोगोंको दूर करताहै ॥ २६० ॥

नस्यंस्याद्विपजासम्यग्योजितंपलितापहम् । क्षीरारसहचराशृङ्ग-
राजाञ्चसुरसाद्रसात् ॥ २६१ ॥ प्रस्थैस्तुकुडवस्तैलाद्यष्ट्याह्वपलक

लिकतः । सिद्धःशैलासनेभाण्डेमेपशृङ्गेचसांस्थितः ॥ २६२ ॥

दूध, सहचर, भांगरेका रस और तुलसीका रस एक एक सेर, तेल एक पाव, सुलैङ्गीका कल्क ४ तोला इन सबको मिलाकर एकाडे १ तेल सिद्ध होनेपर किसी पत्रे पत्थरके पात्रमें वा मेढके सींगमें भरकर रखे । इस तेलकी नस्य लेनेसे पलित रोग दूर होताहै ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

भिपजात्क्षीरपिष्टौवाटुग्धिकाकरवीरकौ ।

उत्पाद्यपलितंदेयौतावुभोपलितापहौ ॥ २६३ ॥

सफेद वालोंको उखाडकर उनकी जड़ोंके स्थानमें दूधको दूधमें पीसकर अथवा कनेरकी छालको दूधमें पीसकर लेप करे तो आगेको सफेद वाल नहीं होते ॥ २६३ ॥

मार्कवस्वरसात्क्षीराद्विप्रस्थंमधुकात्पलम् ।

तैःपचेत्कुडवंतैलात्तन्नस्यंपलितापहम् ॥ २६४ ॥

भांगरेका रस १ सेर, दूध १ सेर, मुलैठीका कल्क ४ तोला, तेल १ पाव इन सबको मिलाकर पकावे । तेल मात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस तैलकी नस्य लेनेसे पलितरोग दूर होता है ॥ २६४ ॥

आदित्यवल्ल्यामूलानिकृष्णशैरेयकस्यच । सुरसस्यचपत्राणिपत्रं-
कृष्णशणस्यच ॥ २६५ ॥ मार्कवंकाकमाचीचमधूकंदेवदारुच ।
पृथग्दशपलांशानिपिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् ॥ २६६ ॥ प्रपीण्डरीकं
मञ्जिष्ठालोम्रंकृष्णागुरूत्पलम् । आम्रास्थिकर्दमःकृष्णोमृणालीर-
क्तचन्दनम् ॥ २६७ ॥ नीलीभल्लातकास्थीनिकासीसमदयन्ति-
काः । सोमराज्यसनःशस्तंकृष्णापिण्डीतचित्रकम् ॥ २६८ ॥ पुष्कर-
रार्जुनकाश्मर्याण्याम्रजम्बूफलानिच । पृथक्पञ्चपलांशानितैःपि-
ष्टैराढकंपचेत् ॥ २६९ ॥ वैभीतकस्यतैलस्यधात्रीरसचतुर्गुणम् ।
कुट्यादादित्यपाकंवायात्रच्छुष्कोभवेद्रसः ॥ २७० ॥ लोहपात्रेततः
पूतंसंशुद्धमुपयोजयेत् । पानेनस्तःक्रियायाश्चंशिरोऽभ्यङ्गेतथैवच
॥ २७१ ॥ एतच्चक्षुष्यमायुष्यंशिरसः सर्वरोगनुत् । महानीलमिति
ख्यातंपलितघ्नमनुत्तमम् ॥ २७२ ॥

हुलहुल (आदित्यभक्तालता) की जड़ काले बसिकी जड़, काली तुलसीके पत्ते, काले फूलोंके सणके पत्ते, भांगरे, मकोय, मुलैठी और देवदारुके दश दश पल । पीपल, टरड, वहेडे, आँवले, रसीत, पंड्यारिका छिलका, मंजीठ, लोव, काली अगर, नील कमल, आमकी गुठली, काली मट्टीका कीच, कमलकी डण्डी, लाल चन्दन, नीलके पत्ते, भिलावेकी गुठली, कसीत, मल्लिका, बावची, विजैसार, लोहचूर्ण, मेनफल, चित्ते की डाल, पोहकामूल, अर्जुन वृक्षकी छाल, कुम्भरके फल, कच्चे आम, जामुन इन सब को पांच पांच पल लेवे । इन सब औषधियोंका कल्क बना वहेडेका तेल ४ सेर, जामलेका रस १६ सेर इन सबको मिलाकर लोहेके पात्रमें भर नित्य धूपमें रस दिया करे । जब संपूर्ण रस सूखकर तेलमात्र शेष रहे तो इस तेलको छानकर लोहपात्रमें भरकर रखे । फिर रोगीके वमन विरेचन और शिरोविरेचन करके शुद्ध देह होनेपर यह तेल पीने और नस्य कर्म तथा शिरमें मालिशके लिये प्रयुक्त करे तो नेत्रोंकी उपोत्तिको धोर भायुको उद्भावे तथा सब प्रकारके शिरोरोगको नष्ट करे । यह महानील तैल पलितरोग दूर करनेमें परमोत्तम कदा है ॥ २६५-२७२ ॥

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः । कार्पिकैस्तैलकुडवोद्विगु-
गामलकीरसः । सिद्धःसप्रतिमर्शःस्यात्सर्वमूर्च्छगदापहाः ॥२७३॥

पंड्यारकी छाल, मुलैठी, पीपल, लालचन्दन, नीलकमल यह सब एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । तेल १ कुडव आँवलेका रस २ कुडव सबको मिलाकर तेल सिद्ध करे । इस तेलकी नस्य और शिरपर मालिशसे सब प्रकारके शिरोरोग दूर होतेहैं २७३

क्षीरंपियालयष्ट्याह्वेजीवकाद्योगणस्तिलाः ।

कृष्णावक्रेप्रलेपःस्याद्धरिलोमनिवारणः ॥ २७४ ॥

दूध, चिरौंजी, मुलैठी, जीवनीयगणकी दश औषधि और काले तिलोंको पीसकर लेप करनेसे बालोंका हरापन और पीलापन दूर होताहै ॥ २७४ ॥

यष्ट्याह्वतिलकिञ्जल्कक्षौद्रमामलकानिच ।

वृंहयेद्रज्येच्चैतत्केशान्मूर्च्छप्रलेपनम् ॥ २७५ ॥

मुलैठी, काले तिल. कमलकी केसर, शहद आर आँवले इन सबको पीसकर केशों-
में लेप करनेसे केश बढ़ने तथा काले होते हैं ॥ २७५ ॥

पचेत्सैन्धवशुक्लाम्लैरयश्चूर्णसतण्डुलम् ॥ २७६ ॥ तेनालिसंशि-

रःशुद्धमस्निग्धमुपितंनिशि । तत्प्रातस्त्रिफलाधौतंस्यात्कृष्णमृदु-
मूर्च्छजम् । अतश्चूर्णोऽम्लपिष्टश्चरागःसत्रिफलोवरः ॥ २७७ ॥

संधानमरु, सिरका, कांजी, लोहचूर्ण और चाँवलोंको मिलाकर पकाये । पहिले शिरको स्वच्छ कर धो डाले परन्तु चिकनाई न लगावे फिर इस पकायेहुए द्रव्यका लेप करे । दूसरे दिन प्रातःकाल त्रिफलेके जलसे शिरको धो डाले तो शिरके बाल, काले और नर्म होजातेहैं । इसके उपरांत लोहचूर्ण और त्रिफलेको कांजीमें पीसकर शिरपर लेप क्रिया जावे तो केश उत्तम काले वर्णके होजाते हैं ॥ २७६ । २७७ ॥

अथ स्वरभेदचिकित्सा ।

वातजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

सर्पिण्युपरिभक्तानिस्वरभेदेऽनिलात्मके ।

तैलैश्चतुप्प्रयोगैश्चवलारास्नामृताह्वयैः ॥ २७८ ॥

वातजनित स्वरभंगमें भोजन करनेके अनन्तर घृतपान करना चाहिये और बला तेल अथवा रासना, तेल या गुडची आदि तेल अथवा बला, रासना और गिलोयका तले या बजलेद अथवा चूर्ण या घृतका प्रयोग करनेसे वातजनित स्वरभंग दूर होता है ॥ २७८ ॥

वर्हितित्तिरिदक्षाणांपञ्चमूलशृतान्नसान् ।

मायूरंक्षीरसर्पिर्वापिवेच्यूपणमेववा ॥ २७९ ॥

वातजनित स्वरभंगमें मोर तीतर और मुर्गेका मांसरस लघुपंचमूलके काथमें सिद्धकर पिलाना हितकारी है । तथा मायूरघृत वा क्षीरघृत तथा च्यूपणादिघृत पिलाना हितकारक है ॥ २७९ ॥

पित्तजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

पैत्तिकेतुविरेकःस्यात्पयश्चमधुरैःशृतम् ।

सर्पिर्गुंडाजीवनीयवासासिद्धंघृतंतथा ॥ २८० ॥

पित्तज स्वरभंगमें-विरेचन द्वाग शुद्धकर मधुरगणसे सिद्ध किया दूध पिलाना हितकारक है तथा सर्पिर्गुंड और जीवनीयगणसे सिद्ध किया घृत और वासा आदि घृतका प्रयोग करना भी पित्तजनित स्वरभंगको दूर करताहै ॥ २८० ॥

कफजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

कफजेस्वरभेदेतुतीक्ष्णंमूर्ध्वविरेचनम् ।

विरेकोवमनंधूसोयवान्नकटुसेवनम् ॥ २८१ ॥

कफके स्वरभंगमें तीक्ष्ण, मूर्ध्व विरेचन और कायविरेचन, वमन, धूमपान, यवात्र तथा पीपल आदि चरपरे द्रव्योंका सेवन हितकारक है ॥ २८१ ॥

चठ्यभाग्यभयाव्योपक्षारमाक्षिकचित्रकान् ।

लिह्याद्वापिप्पलीपथ्येतीक्ष्णंमद्यंपिवेच्यसः ॥ २८२ ॥

चठ्य, भांगी, हरड, सांठ, मिरच, पीपल, जवारवार और चित्रकके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे अथवा पीपल और हरडको शहदमें मिलाकर चाटे तथा तीक्ष्ण मदका सेवन करे तो कफजनित स्वरभंग दूर होताहै ॥ २८२ ॥

रक्तजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

रक्तजेस्वरभेदेतुसघृताजाङ्गलारसाः । द्राक्षाविदारीक्षुरसाःसघृत-

क्षौद्रशर्कराः ॥ २८३ ॥ यच्चोक्तंक्षयकासघ्नंतच्चसर्वचिकित्सितम् ।

पित्तजस्वरभेदघ्नंशिरावेधश्चरक्तजे ॥ २८४ ॥

रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें घृतके साथ जंगली जीवोंका मांसरस पिलाना चाहिये । तथा दासका रस विदारी कंदका रस या ईखका रस घी, शहद और खांड मिला पिलावे । और क्षयकी खांसीको नष्ट करनेवाली सब प्रकारकी चिकित्सा करे । तथा पित्तके स्वरभेदमें कहीहुई चिकित्साको करे । यदि रक्त दूषित हो तो फस खुलावे ॥ २८३ ॥ २८४ ॥

सन्निपातके स्वरभेदका यत्न ।

सन्निपातेहिताः सर्वाः क्रियानतुशिराविधिः ॥ २८५ ॥

सन्निपातके स्वरभेदमें सब प्रकारकी मिली जुली चिकित्सा करनी चाहिये । परन्तु शिरामोक्षण कराना हितकारी नहीं ॥ २८५ ॥

कैर्याच्छेपेपुरोगेपुक्रियांस्वांस्वांचिकित्सिताम् ।

शेषेष्वादाचनिर्दिष्टासिद्धौचान्याप्रवक्ष्यते ॥ २८६ ॥

ऊर्द्धजघुगत जो और रोग हैं उनमें दोषादि विचारकर बुद्धिपूर्वक चिकित्सा करना चाहिये । ऊर्द्धजघुगत रोगोंमेंसे कुछ पहिले कहनुकहें, बाकीको सिद्धिस्थानमें कहेंगे ॥ २८६ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

वातपित्तकफानणांस्तिहन्मृर्द्धसंश्रयाः ।

तस्मान्नुस्थानसामीप्याद्धर्तव्यावमनादिभिः ॥ २८७ ॥

मनुष्योंके शरीरमें वात, पित्त और कफका प्रधान आश्रय-रहित, हृदय और मस्तक होताहै । इसलिये स्थान, सामीप्य, आदि विचारकर उनके वमनादि द्वारा शुद्धकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २८७ ॥

अध्यात्मलोकेवाताद्यैर्लोकान्घोतरवीन्दुभिः ।

पीडयते धार्यते चैव विकृता विकृतैस्तथा ॥ २८८ ॥

जैसे-इस बाहरी जगत्में वायु, सूर्य और चन्द्रमाके विकृत होनेसे जगत् पीडित होताहै और अविकृत होनेसे सौम्यावस्थामें रहताहै । इसी प्रकार इस अध्यात्मलोक अर्थात् शरीरके भीतर भी वात, पित्त, कफ विकृत होनेसे शरीरको पीडित करतेहैं और सौम्यावस्थामें रहनेसे शरीरको धारण और पालन करतेहैं ॥ २८८ ॥

विरुद्धैरपिनत्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम् ।

दोषाः सहजसात्म्यत्वाद्दिपंधोरमहीनिव ॥ २८९ ॥

जैसे-सांपका विष दूसरे सांपको व्यापक होकर नष्ट नहीं कर सकता उसी प्रकार वातादि दोष विरुद्ध गुणवाले होतेहुए भी परस्परके सात्म्य होनेसे एक दूसरेको नष्ट नहीं करता ॥ २८९ ॥

त्रिमर्मजानारोगाणां निदानाकृतिभेजम् ।

विस्तरेण पृथग्दिष्टं त्रिमर्मीये चिकित्सिते ॥ २९० ॥

इति श्रीचरक० चिकित्सि० त्रिमर्मीयचिकित्सितं नामपट्टिंशोऽध्यायः २६

इस त्रिमूर्तीयचिकित्सा नामक अध्यायमें वस्ति हृद्य और मस्तक इन तीन प्रधान मर्मोंमें होनेवाले रोगोंके निदान, लक्षण, औषधि; पृथक् २ विस्तारपूर्वक वर्णन की गई हैं ॥ २९० ॥

इति श्रीच० आ० स० चिकित्सास्थाने प्र० भा० टी० त्रिमूर्तीयचिकित्सित नाम
पट्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथात ऊरुस्तम्भचिकित्सितंवाख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम ऊरुस्तम्भ चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ।

श्रियापरमयात्राहयापरयाचतपःश्रिया । अहीनंचन्द्रसूर्याभ्यां सु-
मेरुभिवपर्वतम् ॥ १ ॥ धीधृतिस्मृतिविज्ञानज्ञानकीर्त्तिक्षमालय-
म् । अग्निवेशोगुरुकाले संशयं परिपृष्टवान् ॥ २ ॥ भगवन् पञ्च
कर्माणिसमस्तानि पृथक् तथा । निर्दिष्टान्यामयानान्तु सर्वेषामेव भे-
पजम् ॥ ३ ॥ दोषजोऽस्त्यामयः कश्चिद्यस्यैतानि भिषग्वर । नस्युः
शक्तानि शमने साध्यस्य क्रियया ततः ॥ ४ ॥

जैसे प्रबल तेजयुक्त सूर्य और चन्द्रमासे सुमेरु पर्वत प्रबल कांतियुक्त होता है उसी प्रकार ब्रह्म तेज और तपके तेजसे परमकांतियुक्त बुद्धि, धारण, स्मृति, ज्ञान, विज्ञान, कीर्त्ति और क्षमाके घर भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश समय पाकर इस प्रकार अपने संशयको पूछने लगे कि हे भगवन् ! वपन, विरेचनादि पंचकर्म और उनसे रोगोंकी शान्ति तथा व्याधिनाशक चिकित्सा श्रीमान्ने विस्तारपूर्वक प्रथम वर्णन कर दी है । परन्तु हे भिषग्वर ! जो साध्य होनेपर पंचकर्मादि सब क्रियाओंके करनेमें भी साध्य न होसके ऐसा कौनसा रोग है ॥ १ । २ । ३ । ४ ॥

अस्त्यूरुस्तम्भइत्युक्ते गुरुणा तस्य कारणम् ।

सलिङ्गभेषजंभूयः पृष्टस्तेनात्र वीद्वरुः ॥ ५ ॥

यह सुनकर गुरु कहने लगे कि, ऐसा ऊरुस्तम्भ रोग है जो पंच कर्मोंद्वारा शान्त नहीं होसकता फिर इसके विषयमें प्रश्न करनेपर ऊरुस्तम्भ निदान, लक्षण और औषधिको भगवान् आत्रेयजी इस प्रकार वर्णन करने लगे ॥ ५ ॥

ऊरुस्तम्भके हेतु और संप्राप्ति ।

स्निग्धोष्णलघुशीतानिजीर्णाजीर्णैःसमश्रतः । द्रवशुष्कदधिकीरग्रा-
म्यानूपौदकामिषैः ॥ ६ ॥ पिष्टव्यापन्नमद्यातिदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
लङ्घनाध्यशनायासभयवेगविधारणैः ॥ ७ ॥ स्नेहाचामंचितंकोष्ठे
वातादीन्मेदसांसह । रुद्धाशुगौरवादूरूयात्यधोगैःशिरादिभिः ॥८॥
पूरयेत्सक्थिजङ्घोरुदोषोमेदोवलोत्कटः । अविधेयंपरिस्पन्दंजनय-
त्यल्पविक्रमम् ॥ ९ ॥ महासरसिगम्भीरेपूर्णंञ्चुस्तिमितंयथा ।
तिष्ठतिस्थिरमक्षोभ्यंतद्द्रुगुगतःकफः ॥ १० ॥

चिकने, गर्म, भारी और शीतल द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे विषम, भोजन, तथा भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, द्रव, शुष्क, दही, दूध तथा ग्राम्य, आनूप और जलसंचारी जीवोंके अत्यन्त सेवनसे, पिष्ट पदार्थके अत्यंत खानेसे, दूषित मद्यके पीनेसे दिनमें सोनेसे, रातको जागनेसे, अत्यंत लंघन करनेके अनन्तर एकदम अधिक भोजन करनेसे, अधिक परिश्रम, भय और वेगोंको रोकनेसे, और अत्यंत स्नेहपान करनेसे, कोष्ठमें आम संचित होकर मेहयुक्त हो वात, पित्त, कफके मार्गको रोकनेसे भारी होंजातीहै फिर वह मेदसंयुक्त आम नीचेको गमनकर अधोगत शिराओं द्वारा ऊरु अर्थात् जांघोंमें प्रवेश होकर मेदसे बलवान् हुए दोष घोररूपसे नितम्ब, जंघा और ऊरुओंमें स्थित होजातेहैं । फिर नितम्ब, जांघें और ऊरु, हिलने डुलनेसे रहित होकर क्रियाहीन और दुर्बल होजातीहैं जैसे महासरोवर परिपूर्ण होनेसे उसका जल स्थिरभावसे टिका रहताहै उसी प्रकार ऊरुगत कफ स्थिरभावसे परिपूर्ण होकर टिका रहताहै । ऊरुस्तम्भ आमदोष और भेदभिश्चित होनेसे प्रायः कफप्रधानही होताहै ॥ ६॥७॥८॥९॥१० ॥

गौरवायाससङ्कोचदाहरुक्सुप्तिकम्पनैः ।

भेदरफुरणतोदैश्वयुक्तोदेहंनिहन्त्यसून् ॥ ११ ॥

ऊरुस्तम्भमें शरीरका भारीपन, थकावट प्रतीत होना, जंघाका संकोच, दाह, ऊरुओंमें तीव्र पीडा, जांघोंका सुन्नता होना, कम्पन, भेदनकीसी पीडा, फडकन और तोड़ यह लक्षण होतेहैं । यह रोग बलवान् होनेसे प्राणोंको नष्ट करदेताहै॥११॥

ऊरुश्लेष्मासमेदस्कोदोषौद्वावभिभूयतु ।

स्तम्भयेत्थैर्यशैत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततस्तुसः ॥ १२ ॥

ऊरुस्तम्भ रोगमें कफ और मेदकी प्रचलता होनेसे वात और पित्त हीन होजाताहै। कफ और मेदकी स्थिरता और शीतलताके कारण ऊरुओंका स्तम्भ होजाताहै। इस लिये इस रोगको ऊरुस्तम्भ कहतेहैं ॥ १२ ॥

ऊरुस्तम्भके पूर्वरूप ।

प्रागरूपंध्याननिद्रातिस्रैमित्यारोचकज्वराः ।

लोमहर्षश्छर्दिश्चजङ्घोर्वोःसदनंतथा ॥ १३ ॥

ध्यान सा लगा रहना, निद्रा, स्रैमित्य, अरोचक, ज्वर, लोमहर्ष, छर्दी, जंघा और ऊरुओंका सुन्नसा होजाना यह ऊरुस्तम्भके पूर्वरूप हैं ॥ १३ ॥

वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्यस्यात्स्नेहनात्पुनः ।

पादयोःसदनंसुप्तिःकृच्छ्रादुद्धरणंतथा ॥ १४ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें वातव्याधि वा आमवातकी शंकासे अज्ञानवश मूर्खवैद्य वातनाशक स्नेहन द्रव्योंका प्रयोग करतेहैं जिससे कफकी वृद्धि होकर भी रोग चढजाताहै। तथा ऊरु और पांव सुन्नते होजातेहैं। रोगी अपने पांवों और जांघोंको बडे कष्टसे हिला सकताहै ॥ १४ ॥

ऊरुस्तम्भके लक्षण ।

जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थशश्चचादाहवेदना । पदञ्चव्यथतेन्यस्तंशीत-
स्पर्शनवेत्तिच ॥ १५ ॥ संस्थानेपीडनेगत्यांचलनेचाप्यनीश्वरः ।

अन्यनेयोहिसंभन्नावरूपादौचमन्यते ॥ १६ ॥

जंघा और ऊरुओंमें अत्यंत ग्लानि, सर्वदा दाह, पीडा, पैरके उठाने धरनेमें अत्यंत व्यथा प्रतीत होनी, शीतल स्पर्शका अनुभव न होना, रोगी पांवको स्थिर-
भावसे रख न सके और दवा न सके पांवोंकी गति स्थिर न रहे, रोगी चटनेमें असमर्थ हो ॥ १५ ॥ १६ ॥

ऊरुस्तम्भमें साध्याऽसाध्य ।

यदादाहात्तितोदात्तिवैपनःपुरुषोभवेत् ।

ऊरुस्तम्भस्तदाहन्यात्साधयेदन्यथानवम् ॥ १७ ॥

ऊरुस्तम्भ अधिक दिनका होनेसे बल पाकर दाह, पीडा, तोड़ और कम्पन आदि उपद्रवों सहित होनेसे रोगीकी मृत्यु कर्ताहै। अर्थात् ऊरुस्तम्भ असाध्य होजाताहै और उपद्रवसहित नवीन ऊरुस्तम्भ साध्य होताहै ॥ १७ ॥

ऊरुस्तम्भमें स्नेहनविरेचनादिकां निषेध ।

तस्यनस्नेहनकार्यंनवस्तिर्नविरेचनम् ।

नचैववसनंयस्मान्निबोधतकारणम् ॥ १८ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें स्नेहन, वस्तिकर्म, विरेचन और वमन कभी भी नहीं कराने चाहिये । जिन हेतुओंसे स्नेहन आदि नहीं कराने चाहिये उन कारणोंको सुनो १८ ॥

वृद्धयेश्लेष्मणोनित्यंस्नेहनंवस्तिकर्मच ।

तत्स्थस्योद्धरणेचैवनसमर्थविशोधनम् ॥ १९ ॥

स्नेहन और वस्तिकर्म करनेसे अवश्यही कफकी वृद्धि होतीहै, और वमन विरेचनके करनेसे ऊरुस्तम्भका दोष उखडकर निकल नहीं सकता । इसलिये विना आवश्यकता वमन विरेचन कराना बुरा होताहै ॥ १९ ॥

कफंकफस्थानगतंपित्तञ्चवमनात्सुखम् । हर्तुमामाशयस्थौचस्त्रंस-
नात्तावुभावपि ॥ २० ॥ पक्वाशयस्थाःसर्वेचवस्तिभिर्मूलनिर्ज-
यात् । शक्यानत्वाममेदोभ्यांस्तब्धाजंघोरुसंस्थिताः ॥ २१ ॥

यदि कफ अपने स्थान आमाशयमें हो और पित्त अपने स्थानमें हो तो यह वमन विरेचन द्वारा दोनों सुखपूर्वक निकल सकतेहैं । आमाशयमें स्थितदुष्ट कफ और पित्त संसेन द्वारा सुखपूर्वक निकल सकतेहैं और पक्वाशयमें स्थितदुष्ट वायु अथवा वातादि तीनों दोष वस्ति कर्मद्वारा सुखपूर्वक जडसे निकल जातेहैं । परन्तु ऊरुस्तम्भ रोगमें जंघा और ऊरु-आम और भेदसे स्तम्भित होनेसे उनमें स्थित वात, पित्त, कफ, इन वमन, विरेचन, स्नेहन और वस्ति आदि उपायोंसे निकल नहीं सकते । इसलिये ऊरुस्तम्भमें वमनादि शोधनक्रिया निष्फल होतीहैं । और स्नेहनक्रिया कफ-भेदवर्द्धक होनेसे हानिकारक होती हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

वातस्थानेहितेशैत्याह्वयोःस्तम्भाश्चतद्गताः ।

नशक्याःसुखमुद्धर्तुंजलंनिम्नादिवस्थलात् ॥ २२ ॥

ऊरु और जंघा वायुका स्थान है । वायुकी शीतलताके कारण ही ऊरु और जंघाओंका स्तम्भ होताहै । जैसे-नीचे गढेमेंसे विना परिश्रम जल नहीं निकाला जासकता, उसी प्रकार ऊरु और जंघा देहके नीचे भागमें हैं, उनमें स्थित दुष्ट दोष भी मज्ज ही नहीं निकाले जासकते ॥ २२ ॥

ऊरुस्तंभकी चिकित्साका निर्देश ।

तस्यसंशमनंनित्यंक्षपणंशोषणंतथा ।

युक्त्यपेक्षीभिपक्कुर्यादधिकत्वात्कफामयोः ॥ २३ ॥

ऊरुस्तम्भमें संशमन क्रिया करना ही हितकारक है इसमें जिस प्रकार दोषका क्षय और शोषण हो वही ऊरुस्तम्भमें संशमनीय चिकित्सा है। इसलिये वैद्यको युक्तिपूर्वक कफ और आमकी अधिकताको जीतना चाहिये ॥ २३ ॥

ऊरुस्तंभमें पथ्य ।

सदारूक्षोपचारायवश्यामाककोद्रवान् । शाकैरलवणैरद्याज्जलतै-

लोपसाधितैः ॥ २४ ॥ सुनिपण्णकनिम्बार्कवेत्रारग्वधपल्लवैः ।

वायसीवास्तुकैरन्यैस्तिक्तैश्चकुलकादिभिः ॥ २५ ॥ क्षारारिष्टप्र-

योगाच्चहरीतक्यास्तथैवच । मधूदकस्यपिप्पल्याऊरुस्तम्भविना-

शनाः ॥ २६ ॥

ऊरुस्तम्भमें सदा ही रूक्ष उपचार करना चाहिये । इसलिये रोगीको सबके सत्तू शौक (सांवा) के चावलोंका भात और कोद्रवका अन्न सेवन कराना चाहिये । और व्यंजनके लिये लवण रहित जल और तेलमें पकाये हुए शाक देना चाहिये । चौपत्तिया शाक, निम्बशाक, आकके पत्तोंका शाक तथा बेत, अमलतासके पत्र, मकोय, बथुवा, परवल और कडुवे शाक तथा क्षार, अरिष्ट, हरड, शहद मिश्रित जल, पीपल यह सब हितकारक और ऊरुस्तम्भनाशक होतेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

ऊरुस्तंभनाशक योग ।

समङ्गांशाल्मलीं विल्वं मधुना सह नापिवेत् । तथा श्रीवेष्टको दीच्य-

देवदारुनतान्यपि । चन्दनं धातकीं कुण्टालीशं नलदंतथा ॥ २७ ॥

वाराहकान्ता, सेमलकी छाल और विल्वकी छालके कायको शहदके साथ पीवे अथवा सरलका गोंद, नेत्रवाला, देवदारु और तगरका क्वाथ शहद मिलाकर पीवे । या लालचंदन, धावेके फूल, कुठ, तालीशपत्र और खसका क्वाथ शहद मिलाकर पीवे तो ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ २७ ॥

मुस्तं हरीतकीं लोभ्रं पद्मकं तिक्तरोहिणीम् । देवदारुहरिद्रे देवचांकटुकरो-

हिणीम् ॥ २८ ॥ पिप्पलापिप्पलीं मूलं सरलं देवदारुच । चव्यचित्र-

कमूलानि देवदारुहरीतकीम् ॥ २९ ॥ भल्लातकं समूलाश्च पिप्पलीं प-

ञ्चतान्पिवेत् । सक्षौद्रानर्द्धश्लोकोक्तान्कल्कानूरुग्रहापहान् ॥ ३० ॥

१ नागरमोथा, हरड, लोध, पद्मकाष्ठ और कुटकी । २ देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, वच और कुटकी । ३ पीपल, पीपलामूल, सरलकाष्ठ और देवदारु । ४ चव्य चित्रककी जड़, देवदारु और हरड । ५ भिलावा पीपलामूल और पीपल । इन आधे २ श्लोकोंमें कहे पांच योगोंमेंसे किसी एक योगके फलककी शहद मिलाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

शाङ्गुष्टामदनन्दन्तीवत्सकस्यफलवचाम् । मूर्वामारगवधांपाठांकर-
अंकुलकंतथा ॥ ३१ ॥ पिबेन्मधुयुतंतुल्यंचूर्णवावारिणाप्लुतम् ।
सक्षौद्रं दधिमण्डं वाप्यूरुस्तम्भविनाशनम् ॥ ३२ ॥

करंजके फल, मैनफल, दंती, इन्द्रयव और वच । मूर्वा, अमलतास, पाटल, करंजुएके फल और परवल । इन दोनों योगोंमेंसे किसी एक योगका व्वाय बना शहदमिला पीवे । अथवा इनका चूर्ण बना शहदयुक्त जलके साथ अथवा शहदयुक्त दधिमण्डके साथ पीवे तो ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मूर्वामतिविपांकुष्ठंचित्रकंकटुरोहिणीम् ।

पूर्ववद्वापिवेत्तोयेरात्रिस्थितमथापिवा ॥ ३३ ॥

मूर्वा, अतीश, कूठ, चित्रककी छाल और कुटकीका चूर्ण कर शहदमिले जलके साथ या इनका व्वाय बना शहदमिला पीवे । अथवा इन सन औषधियोंकी साय-काल जलमें भिगोदे और प्रातःकाल उस जलको छान शहद मिला पीवे ॥ ३३ ॥

स्वर्णक्षीरीमतिविपांसुस्तंतेजोवतीवचाम् । सुराहंचित्रकंकुष्ठंपाठां
कटुकरोहिणीम् ॥ ३४ ॥ लेहयेन्मधुनाचूर्णसक्षौद्रं वाजलान्वित-
म् । फलीव्याघ्रनखहेमपिवेद्वामधुसंयुतम् ॥ ३५ ॥ त्रिफलांपिप्प-
लींसुस्तंचव्यंकटुकरोहिणीम् । लिह्याद्वामधुनाचूर्णमूरुस्तम्भार्दि-
तो नरः ॥ ३६ ॥

स्वर्णक्षीरी, अतीश, नागरमोथा, चव्य, वच, देवदारु, चित्रक, कूठ, पाटला और कुटकीका चूर्ण शहद मिला चाटे अथवा शहदयुक्त जलके साथ पीवे या भिषंगु, व्याघ्रनखी और नागकेशरके चूर्णको शहद मिला पीवे । अथवा त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, चव्य और कुटकीका चूर्ण बना शहद मिला चाटे तो ऊरुस्तम्भ रोग दूर होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अपतर्पणजश्चेत्स्याद्दोषः सन्तर्पयेद्धितम् ।

यत्स्याजाह्वलजैर्मांसैः पराणैश्चैवशालिभिः ॥ ३७ ॥

ऊरुस्तम्भमें अपतर्पण करनेसे यदि रूक्षता उत्पन्न होजाय तो रोगीको संतर्पण करना चाहिये। जंगली जीवोंके मांसरसके साथ पुराने शालिचावलोंका भात सेवन करावे तो संतर्पण हो ॥ ३७ ॥

रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशात्तिपूर्वकः ।

स्नेहस्वेदक्रमस्तत्रकार्योवातामयापहः ॥ ३८ ॥

यदि रूक्षताके कारण ऊरुस्तम्भवाले रोगीकी निद्राका नाश होजाय और वायुका कोप होकर पीडा होने लगे तो स्नेह द्रव्योंसे वातनाशक स्वेदन करना चाहिये। अथवा वातनाशक स्नेहन और स्वेदन क्रिया करना चाहिये ॥ ३८ ॥

पिलुपर्णीपयस्याचरात्त्रागोक्षुरकोवचा। सरलागुरुपाठाश्चतैलमे-
भिर्विपाचयेत् । सक्षौद्रात्प्रसृतंतस्मादञ्जलिवापिनापिवेत् ॥ ३९ ॥

मूवा, क्षीरकाकोली रासना, गोखरू, वच, सरलकाष्ठ, अजर और पाठाके कल्कसे तेलको सिद्ध करे। इस तेलको शहद मिलाकर दो पल प्रमाण पीवे तो ऊरुस्तम्भ रोगीकी रूक्षता दूर हो और ऊरुस्तम्भ भी शान्त हो ॥ ३९ ॥

कुण्ठश्रीवेष्टकोदीच्यसरलंदारुकेशरम् । अजगन्धाश्चगन्धाचतैलतैः
सार्यपंचेत् ॥ ४० ॥ सक्षौद्रंमात्रयातच्चाप्यूरुस्तम्भादितःपिवेत् ।

रौक्षान्मुक्तऊरुस्तम्भात्ततश्चसविमुच्यते ॥ ४१ ॥

कूठ, श्रीवेष्टक, मुगंधवाला, देवदारु, नागकेशर, अजवायन, और अतगंध इन सबके कल्कसे सरसोंके तेलको सिद्धकर उस तेलमें शहद मिला उचित मात्रासे पीवे इसके पीनेसे ऊरुस्तम्भकी रूक्षता और ऊरुस्तम्भ दोनों दूर होतेहैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

सैन्धवादितैल ।

द्वेपलैसैन्धवात्पञ्चशुण्ठ्याग्रन्थिकचित्रकात् । द्वेद्वेभल्लातकास्थीनि
विंशतिर्द्वैतथाढके ॥ ४२ ॥ आरनालात्पचेत्प्रस्थंतैलस्यैतैरपत्यदम् ।
गृध्रस्यूग्रहाशोर्गर्त्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ ४३ ॥

सैधानमरू २ पल, सोंठ ५ पल, वच २ पल, चित्रक २ पल, भिलविकी गिरियां २०, कांजी २ आढक, तेल १ प्रस्थ, इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। यह तेल संतानकी देनेवाला तथा शृग्रही ऊरुस्तम्भ, वनाक्षीर और सब प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अष्टकड्वरैतेल ।

पलाभ्यांपिप्पलीमूलनागरादष्टकट्वरः ।

तैलप्रस्थःसमोदभागृध्रस्यूक्यहापहः ॥ ४४ ॥

पीपलामूल १ पल, सोंठ १ पल, मलाईयुक्त दहीका घोल ८ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, दही १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर तेल सिद्ध करे। इस तेलके पान करनेसे गृध्रपती और ऊरुस्तम्भ नष्ट होताहै ॥ ४४ ॥

इत्याभ्यन्तरमुदिष्टमूरुस्तम्भस्यभेषजम् ।

श्लेष्मणःक्षपणंत्वन्वद्वाह्यंशृणुंचिकित्सितम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार यह ऊरुस्तम्भरोगमें आभ्यन्तर अर्थात् खानेकी औषधियोंका वर्णन कियाजाचुका अब ऊरुस्तम्भके कफको नष्ट करनेवाले बाहरी स्वेद लेपादिको सुनो ॥ ४५ ॥

वल्मीकमृत्तिकामूलंकरञ्जस्यफलंत्वचम् । इष्टकानांततश्चूर्णेःकु-

कुर्यादुत्सादनंभृशम् ॥ ४६ ॥ मलैर्वाप्यश्वगन्धायामूलैर्कस्यवा-

भिपक् । पिचुमर्दस्यवामूलैरथवादेवदारुणः ॥ ४७ ॥ क्षौद्रसर्पप-

वल्मीकमृत्तिकामसंयुतैर्भिपक् । गाढमुत्सादनंकुर्याद्गूरुस्तम्भेप्रले-

पनम् ॥ ४८ ॥

सांपकी बम्बीकी मट्टी, करंजकी जड़ और फल तथा त्वचा, ईटका चूर्ण इन सबको पीसकर ऊरुस्तम्भमें जंघा और ऊरुओंपर खूब मालिश करे। अथवा अस-
गंधकी जड़का चूर्ण या पादकी जड़का चूर्ण अथवा देवदारुकी जड़का चूर्ण या नीमकी जड़का चूर्ण शहद, सफेद सरसों और सर्पकी बम्बीकी मिट्टी मिला मिट्टी खूब मले तथा लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्पपैश्चापिबुद्धिमान् । तर्कारीशिमुसुरसत्रिश्व-

वत्सकनिम्बजैः ॥ ४९ ॥ पत्रमूलफलैस्तोयंशृतमुष्णश्चसेचनम् ।

पिष्ट्वात्सर्पपंपूत्रेऽध्युपितंस्यात्प्रलेपनम् ॥ ५० ॥

दंती, द्रवंती, काली, तुलसी और सफेद सरसोंको पीसकर शहदमें मिला ऊरु-
स्तम्भमें मर्दन करे तथा लेप करे। अथवा अरणी, सोंठ, काली तुलसी, साहजनेके बीज, इन्द्रिय और नीमके पत्तोंका ऊरुस्तम्भमें जांघों और ऊरुओं पर लेप करे। अथवा इन्हीं द्रव्योंकी मूल, पत्र और फलों सहित लेकर बवाय करे। उस गरम

गरम क्वाथसे जंवाओं और ऊरुओंको सेचन करे । अथवा इन्हीं द्रव्योंके पत्र, मूल, फलोंको और सफेद सरसोंको गोमूत्रमें भिगोकर रात्रिभर रहने दे । प्रातःकाल उसी गोमूत्रमें घोटकर गर्म गर्म लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर हो ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वत्सकःसुरसंकुष्ठगन्धास्तुम्बुरुशिग्रुकौ । हिंसार्कमूलवल्मीकमृत्ति
काःसकुठेरुकाः ॥ ५१ ॥ दधिसैन्धवसंयुक्तंकार्यमेतैःप्रलेपनम् ।

ऊरुस्तम्भविनाशायभिषजाजानताक्रमम् ॥ ५२ ॥

इन्द्रयव, काली तुलसी, कूठ, असगंव, नेपाली धनियां, सुहांजनेके बीज, हींसकी जडका छिलका, आंककी जडका, छिलका सांपकी बम्बीकी मट्टी और वनतुलसी इन सबको सेवानमक युक्तकर दहीमें पीस क्रमपूर्वक लेप करे तो ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

श्योणाकंखदिरंबिल्वंवृहत्तयौसरलासनौ । शोभाजनकतर्कारीश्वदं-
ष्ट्रासुरसार्जकान् ॥ ५३ ॥ अग्निमन्थकरञ्चौचजलेनोत्क्वाथ्यसेच-
येत् । प्रलेपोमूत्रपिष्टैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः ॥ ५४ ॥

सोनापाठाकी छाल, खैरका छिलका, वेलकी जडका छिलका, बडी कटेलीकी छाल, सरल काष्ठ, विजैसार सुहांजनेकी छाल, अरणी, गोखरू, सुरसा तुलसी, अर्जक तुलसी, अग्निमन्थ, करंजुएके बीज इन सबका जलमे काथकर उस गर्म काथ द्वारा जांघोंका सेचन करे । अथवा इन्हीं द्रव्योंको गोमूत्रमें पीसकर गर्म गर्म लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

कफक्षयार्थसह्येपुष्यायामेष्वनुयोजयेत् । स्थलान्याक्रामयेत्कालंश-
र्कराःसिकतास्तथा ॥ ५५ ॥ प्रतारयेत्प्रतिस्त्रोतांनदींशीतजलां
शिवाम् । सरश्चविमलंशीतंस्थिरतोयंपुनःपुनः ॥ ५६ ॥

कफके क्षीण करनेके लिये और रोगी सहनशक्तिवाला हो इसलिये रोगीको इधर उधर फिरने तुरनेका यथासमय परिश्रम कराना चाहिये । अथवा रोगीको ऊंचे स्थान पर या कंकरोंके अथवा बालुके ढेर पर चढावे । यदि उचित हो तो बल काल आदि विचारकर निर्मल जलवाली नदीकी धाराके आगेको तैरावे अथवा निर्मल, शीतल स्थिर जलवाले तालावमें बाखार तैरावे तो जंवा खुलकर ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

तथाविशुष्केऽस्यकफेशान्तिमूरुग्रहोत्रजेत् ।

श्लेष्मणःक्षपणंयत्स्यान्नचमारुतमावहेत् ॥ ५७ ॥

तथा जिस प्रकार कफ शोषण होकर ऊरुस्तम्भकी शान्ती हो उस प्रकार चिकित्सा करना चाहिये । जिस क्रियासे कफका क्षय हो और वायु बढ़ने न पावे वही ऊरुस्तम्भरोगकी चिकित्सा है ॥ ५७ ॥

तत्सर्वसर्वदाकार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ।

शरीरं बलमग्निश्च कार्यैषारक्षता क्रिया ॥ ५८ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें सदा ही सब प्रकार कफनाशक और वातको शमन करनेवाली चिकित्सा शरीर, बल और अग्निकी रक्षा करतेहुए करना चाहिये ॥ ५८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकः ।

हेतुः प्राग्रूपलिङ्गानिकर्मायोग्यत्वमेव च ।

द्विविधं भेषजश्चोक्तमूरुस्तम्भचिकित्सिते ॥ ५९ ॥

इति श्रीचर० चिकि० ऊरु० चिकित्सितं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस ऊरुस्तम्भचिकित्सित अध्यायमें ऊरुस्तम्भके हेतु पूर्वरूप, लक्षण, पंचकर्मकी अयोग्यता तथा आभ्यंतर और बाह्य दोनों प्रकारकी चिकित्साका वर्णन किया है ॥ ५९ ॥

इति श्रीचर० चिकि० प्र० भा० टी० ऊरुस्तम्भचिकित्सित नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातो वातव्याधिचिकित्सितं नामाध्यायं व्याख्यास्याम इति
हस्माह भगवान्नात्रेयः ।

अब हम वातव्याधिचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

वायुकी उत्कृष्टता ।

वायुरायुर्वलं वायुर्वायुर्धाताशरीरिणाम् ।

वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्चकीर्तितः ॥ १ ॥

माणियोंके शरीरमें वायु ही आयु है । वायु ही बल और वायु ही संपूर्ण विश्व है, और वायु ही प्रभुनामसे उच्चारण किया जाता है ॥ १ ॥

अव्याहतगतिर्यस्यस्थानस्थःप्रकृतौस्थितः ।

वायुःस्यात्सोऽधिकंजीवेद्वीतरोगःसमाःशतम् ॥ २ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें अव्याहतगीत होकर अपने स्थानमें और प्रकृतिस्थ वायु रह-
जाहै वह मनुष्य रोगरहित और बलसंपन्न होकर १०० वर्षकी आयुको प्राप्त होताहै २
वायुके ५ भेद ।

प्राणोदानसमानाख्यव्यानापानैःसपञ्चधा ।

देहंतन्त्रयतेसम्यक्स्थानेष्वव्याहतश्चरन् ॥ ३ ॥

प्राण, उदान, समान, व्यान, और अपान इन भेदोंसे वायु पांच प्रकारका होताहै ।
यह पांच प्रकारके वायु ही अपने २ स्थानोंमें अव्याहतगतितसे रहतेदृष्ट देहका पालन,
पोषण और रचनाको करते हैं ॥ ३ ॥

प्राणवायुके स्थान और कर्म ।

स्थानंप्राणस्यशीर्षोरःकर्णजिह्वाक्षिनासिकाः ।

ष्ठीवनक्षत्रध्नुद्धारश्वासाहारादिकर्मच ॥ ४ ॥

प्राणवायु-शिर, छाती, कण्ठ, जिह्वा, मुख और नासिकामें रहताहै, थूकना, छींक,
उद्धार, श्वास और आहारका ग्रहण करना आदि प्राणवायुके कर्म है ॥ ४ ॥

उदानवायुके स्थान व कर्म ।

उदानस्यपुनःस्थानंनाभ्युरःकण्ठएवच ।

वाक्प्रवृत्तिःप्रयत्नौजोबलवर्णादिकर्मच ॥ ५ ॥

उदानवायु-नाभि, हृदय, और कण्ठमें निवास करताहै और बोलना, शरीरकी चेष्टा
आदि प्रयत्न तथा ओज, बल और वर्ण आदिकोंकी वृद्धिकरना इसका कर्म है ॥ ५ ॥

समानवायुके स्थान व कर्म ।

स्वेददोषाम्बुवाहानिस्रोतांसिसमधिष्ठितः ।

अन्तर्ग्रेश्चपार्श्वस्थःसमानोऽग्निबलप्रदः ॥ ६ ॥

स्वेदवाही दोषवाही और जलवाही स्रोत समानवायुके स्थान हैं । पांच प्रकारकी
अग्निके समीप रहकर अग्निके बलकी बढाना यह समानवायुके कर्म हैं ॥ ६ ॥

व्यानवायुका स्थान व कर्म ।

देहंव्याप्तिसर्वन्तुव्यानःशीघ्रगतिर्नृणाम् ।

गतिप्रसरणाक्षेपनिमेपादिक्रियासदा ॥ ७ ॥

देहमें व्याप्तिसर्वन्तुव्यानः शीघ्रगतिर्नृणाम् । गतिप्रसरणाक्षेपनिमेपादिक्रियासदा ॥ ७ ॥

व्यानवायु-संपूर्ण देहमें व्याप्त है और शीघ्रगमनशील है । इस वायुसे ही मनुष्योंकी गति, प्रसारण, आक्षेपण और निमेष आदि क्रिया होतीहैं ॥ ७ ॥

उदानवायुके स्थान व कर्म ।

वृषणौवस्तिमेद्रूश्चनाभ्यूरूवंक्षणौगुदम् ।

अपानस्थानयन्त्रस्थःशुक्रसूत्रशकृन्तिसः ॥ ८ ॥

सृजत्यार्त्तवगर्भौच्युक्ताःस्थानस्थिताश्चते ।

स्वकर्मकुर्वतेदेहोधार्यतेतैरनामयः ॥ ९ ॥

दोनों वृषण, वस्ति, मेद्रू (लिंग) नाभि, ऊरु, वंक्षण और गुदा यह अपानवायुके स्थान हैं । तथा मलाशयकी अंतडी अपानवायुका प्रधान स्थान है । वीर्य, मूत्र, मल और वायुका त्याग करना तथा मासिक ऋतु और गर्भका परित्याग करना इसका काम है यह पाँचों वायु अपने २ स्थानमें स्थित, और यथाप्रमाण रहतेदुष अपने २ कार्यको करते रहते हैं । यह वायु ही प्रकृतिस्थ रहनेसे शरीरको नीरोग और धारण करतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

विकृतवायुके कर्म ।

विमार्गस्थाह्युक्तावारोगैःस्वस्थानकर्मजैः ।

शरीरंपीडयन्त्येतेप्राणानाशुहरन्तिवा ॥ १० ॥

यह पाँचों वायु विमार्गगामी होने, अर्थात् अपने २ स्थानको छोडकर अन्यस्थानमें गमन करनेसे, अथवा विहतगति होनेसे अपने २ स्थानोंमें अपने २ कर्मों द्वारा अनेक रोगोंको उत्पन्न कर शरीरका पीडन करते हैं तथा शरीरका नाश करते हैं ॥ १० ॥

संख्यामप्यतिवृत्तानांतज्जानांहिप्रधानतः । अशीतिर्नखभेदाद्यारोगाःसूत्रेनिर्दिशिताः ॥ ११ ॥ तानुच्यमानान्पर्य्यायैःसहेतूपक्रमाञ्छृणु । केवलंवायुमुद्दिश्यस्थानभेदात्तथावृत्तम् ॥ १२ ॥

सूत्रस्थानमें वातजनित असंख्य रोगोंमें अस्ती प्रकारके प्रधान रोगोंका नख आदि भेदसे वर्णन कर आयेहैं । उन पर्यायक्रमसे उन वातव्याधियोंके हेतु और चिकित्साका वर्णन करतेहैं । केवल वायुका उद्देश कर स्थानभेदसे और आवृत्तवायुके विषयके जित प्रकार हम कहतेहैं उते सुनो ॥ ११ ॥ १२ ॥

वातव्याधियोंके हेतु ।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः । विषमादुपचाराच्चदोषाः

सृक्स्त्रवणादति ॥ १३ ॥ लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः।
धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ १४ ॥ दुःखशय्या-
सनात्क्रोधाद्दिवास्वप्नाद्भयादपि । वेगसन्धारणादामादभिघाता-
दभोजनात् । मर्माघाताद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानावतंसनात् ॥ १५ ॥
देहेस्रोतांसिरिक्तानिपूरयित्वाऽनिलोवली । करोतिविधिधानव्या-
धीन्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रितान् ॥ १६ ॥

रूक्ष, शीतल, अल्प और हलके अन्न पानके सेवनसे; मैथुन, रात्रिमें अधिक जागरण, वमनादि पांच कर्ममें विषम उपचार होना, अत्यंत मल, रक्तस्राव, अत्यंत लंघन, अत्यंत जलमें तैरना, अधिक भ्रमण, अधिक व्यायाम, अत्यंत शारीरिक चेष्टा, धातुओंका क्षय, चिन्ता, शोक, व्याधि आदिसे; अत्यंत कृश होना, वेगोंका धारण करना, अजीर्ण, अभिघात, भोजन न करना, मर्मस्थानमें चोट लगना, हाथी, ऊंट और घोडा आदि शीघ्र गमन करनेवाली सवारी पर चढना, या इन हाथी, घोडे आदिको रोकनेका यत्न करना अथवा इनके साथ भागना या इनके ऊपरसे गिरजाना आदि कारणोंसे देहके संपूर्ण स्रोत खाली होजातेहैं उस समय बढाहुआ वायु अवकाशको पाकर उन छिद्रोंमें प्रवेश कर सर्वांगसंक्षित रोग अथवा एकांगगत अनेक प्रकारकी व्याधियोंको उत्पन्न करताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

पूर्वरूप और अपाय ।

अव्यक्तलक्षणंतेषांपूर्वरूपमितिस्मृतम् ।

आत्मरूपन्तुतद्व्यक्तमपायोलघुतापुनः ॥ १७ ॥

वातव्याधियोंके अव्यक्त अर्थात् अप्रगट लक्षणोंको उनके पूर्वरूप कहतेहैं और व्यक्तलक्षण होनेसे वही रूप कहेजातेहैं । उनकी लघुताको अपाय कहते हैं अर्थात् कुपित वायुका अल्प होजाना ही रोगका नाश कहाजाताहै ॥ १७ ॥

कुपितवायुके कर्म ।

सङ्कोचःपर्वणांस्तम्भोभेदोऽस्थिपर्वणामपि । लोमहर्षःप्रलापश्च
पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ १८ ॥ खांज्यपाङ्कल्यकुब्जत्वंशोषोऽङ्गनाम-
निद्रता । गर्भशुक्ररजोनाशःस्पन्दनंगात्रसुसता ॥ १९ ॥ शिरो-
नासाक्षिजत्रूणांघ्रीवायाश्चापिहुंडनम् । भेदस्तोदार्त्तिराक्षेपोमोह-
श्चायासएवच ॥ २० ॥ एवंविधानिरूपाणिकरोतिकुपितोनिलः ।
हेतुस्थानविशेषाच्चभवेद्रोगविशेषकृत् ॥ २१ ॥

कुपित वायुके यह लक्षण होतेहैं । जैसे-संधियोंका संकोच, स्तम्भ, हडफूटन, पर्वभेद, रोमहर्ष, अण्टसण्ट वकना, पाणिग्रह, पीठका जकडजाना, शिरोग्रह, रंज, पंगुता, कुबडापन, अंगशोष, निद्रानाश, गर्भनाश, शुक्रनाश, रजोनाश, कडकना, अंगोंका सुन्न होजाना, मस्तकविकृति, नासा, नेत्र, ऊर्द्धजत्रु और गरदनका टेढा होजाना, भेद, तोद, शूल, आक्षेप, मोह, श्रम प्रतीत होना और इसी प्रकारके अन्यान्य उपद्रव होना यह कुपित वायुके कर्म हैं । हेतु और स्थानविशेषसे वात-व्याधिषोमें भिन्नता होताहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

कोष्ठाश्रितकुपितवातके कर्म ।

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहोमूत्रवर्चसोः ।

ब्रह्महृद्रोगगुल्मार्शपाश्वशूलञ्चमारुते ॥ २२ ॥

मूत्र और मलका विवध, ब्रध्नरोग, हृद्रोग, गुल्मरोग, ववासीर और पार्श्वपीडा यह कोष्ठाश्रित कुपित वायुके लक्षण हैं ॥ २२ ॥

सर्वांगगत कुपित वायु व लकवा ।

सर्वाङ्गकुपितेवातेगात्रस्फुरणभञ्जनम् ।

वेदनाभिःपरीतश्चस्फुटन्तीवास्यसन्धयः ॥ २३ ॥

सर्वांगस्थित वायु कुपित हो तो अंगोंमें स्फोटन, सब अंगोंका कडकना, भेदनकीसी पीडा, संपूर्ण संधियोंका वेदनासे फटनासा, प्रतीत होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २३ ॥

गुदस्थ कुपित वातके लक्षण ।

ग्रहोविण्मूत्रवातानांशूलाध्मानाश्मशर्कराः ।

जंघोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषागुदेस्थिते ॥ २४ ॥

गुदामें स्थित वायु कुपित होजाय तो मल, मूत्र तथा अवीवायुका विबंध, शूल, अफारा, पयरी, शर्करा और जंघा, ऊरु, त्रिकस्थान, पैर तथा पीठमें अत्यंत पीडा और शोष यह लक्षण होतेहैं ॥ २४ ॥

आमाशयस्थ कुपित वातके लक्षण ।

हृन्नाभिपार्श्वोदररुक्त्वृणोद्गारविपूचिकाः ।

कासःकण्ठास्यशोषश्चासश्चात्माशयस्थिते ॥ २५ ॥

आमाशयस्थ वायु कुपित होय तो हृदय, नाभि, पार्श्व और उदरमें पीडा, प्यास, उद्गार, विपूचिका, रांसी, कण्ठ और मुखका सूखना तथा श्वास यह लक्षण होतेहैं ॥ २५ ॥

पक्वाशयस्थ कुपितं वायुके लक्षण ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजंशूलाटोपौकरोतिच ।

कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहंत्रिकवेदनाम् ।

पक्वाशयगत वायु कुपित होय तो अंत्रकूजन, शूल, आटोप, मूत्रकृच्छ्र, मलकी कठोरता, अफारा और त्रिकस्यानमं पीडा यह लक्षण होतेहैं ।

श्रोत्रादिइन्द्रियगत कुपित वातके कर्म ।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधंकुर्याद्दुष्टसमीरणः ॥ २६ ॥

यादि श्रोत्रादि इन्द्रियगत वायु कुपित हो तो इन्द्रियोंका नाश करताहै ॥ २६ ॥

त्वचागत कुपित वातके लक्षण ।

त्वग्रूक्षास्फुटितासुप्ताकृशाकृष्णाचतुद्यते ।

आतन्यतेसरागाचपर्वरुक्त्वक्स्थितेऽनिले ॥ २७ ॥

त्वचागत वायु कुपित होय तो त्वचा रूक्ष, फटीहुईसी, सुन्न, कृश, काली, तीदयुक्त, तनीहुईसी या लालवर्णकी होतीहै । तथा पर्वमें पीडा होतीहै ॥ २७ ॥

मांसमेदगत कुपित वातके लक्षण ।

रुजस्तीनाःससन्तापवैवर्ण्यकृशताऽरुचिः ।

गात्रेचारूपिभुक्तस्यस्तम्भाश्वासृग्गतेनिले ॥ २८ ॥

रुधिरगत वायुके कुपित होनेसे-तीव्र पीडा, संताप, विवर्णता, कृशता, अरुचि, शरीरमें अरूपिकानामक छोटी २ फुल्लियोंका होना, भोजनके अनन्तर शरीरका स्तब्धता होजाना यह लक्षण होतेहै ॥ २८ ॥

मांसमेदगतके लक्षण ।

गुर्वङ्गंतुद्यतेऽत्यर्थदण्डमुष्टिहंतंयथा ।

सरुक्श्वासितमत्यर्थमांसमेदोगतेऽनिले ॥ २९ ॥

मांस और मेदगत कुपित वायुके होनेसे-अंगोंमें भारीपन, दण्डों और मुकोंके मारनेकी सी पीडा प्रतीत होना, अत्यंत शूल और अधिक थकावट प्रतीत होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २९ ॥

मज्जागत कुपित वातके लक्षण ।

भेदोऽस्थिपर्वणांसन्धिशूलंमांसवलक्षयः ।

अस्वप्नःसन्ततारुक्चमज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ ३० ॥

मज्जागत वायुके कुपित होनेसे अस्थि, पर्व और संधियोंमें शूल, मांस और बलकी क्षीणता, निद्रानाश, निरन्तर पीडा होतीहै । यही अस्थिगत कुपित वायुके भी लक्षण हैं ॥ ३० ॥

क्षिप्रमुञ्चतिवधातिशुक्रंगर्भमथापिवा ।

विकृतिजनयेच्चापिशुक्रस्थःकुपितोऽनिलः ॥ ३१ ॥

शुक्रगत कुपित वायु होनेसे वीर्य शीघ्र २ निकल जाताहै तथा गर्भ गिरजाताहै, अथवा विकृत गर्भ होताहै, या शुक्र और गर्भ रुकजातेहैं यह लक्षण होतेहैं ॥ ३१ ॥

स्तायुगत वातके लक्षण ।

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्चकुर्यात्स्तायुगतोऽनिलः ।

वाह्याभ्यन्तरमायामंखल्लिकुञ्जत्वमेवच ॥ ३२ ॥

स्तायुगत कुपित वायुसे सर्वाङ्गोंका जकडजाना अथवा पक्षाघात आदि एकाङ्ग-रोग होना, वाह्यायाम, या अन्तरायाम खल्ली और कुवडापन यह रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ ३२ ॥

शिरागत कुपित वातके लक्षण ।

शरीरमन्दरुक्शोफंशुष्यतिस्पन्दतेऽपिवा ।

सुतास्तन्व्योमहत्योवाशिरावातेशिरागते ॥ ३३ ॥

शिरागत वायुके कुपित होनेसे शरीरमें मंद मंद पीडा, सूजन, शरीरका सूख-जाना, फडकना और संपूर्ण शिराओंका मुन्न पतली अथवा मोटी होजाना यह लक्षण होतेहैं ॥ ३३ ॥

संधिगत वातके लक्षण ।

वातपूर्णवृत्तिस्पर्शःशोथःसन्धिगतेऽनिले ।

प्रसारणाकुञ्चनयोरप्रवृत्तिःसवेदना ॥ ३४ ॥

संधिगत कुपित वायुसे संपूर्ण संधिमें वायुसे पूर्ण मसकके समान स्पर्शमें प्रतीत हों और सूजीहुई हों तथा संधियोंका फैलना और संकोच वन्द होजाय तथा संधियोंमें अत्यन्त पीडा हो ॥ ३४ ॥

अर्द्धांगगत (अर्द्धित) वातके लक्षण ।

अतिवृद्धःशरीरार्द्धमेकंवायुःप्रपद्यते । यदातदोपशोष्यासूक्वाहुंपा-
दञ्चजानुच ॥ ३५ ॥ तस्मिन्सङ्कोचयत्यर्द्धंमुखंजिह्वंकरोतिच ।
वक्त्रीकरोतिनासाभ्रूललाटाक्षिहनूस्तथा ॥ ३६ ॥ ततोवक्रंजत्या-

स्पेभोजनं वक्रनासिकम् । स्तब्धनेत्रं कथयतः क्षवथुश्च निगृह्यते
 ॥ ३७ ॥ दीना जिह्वासमुत्क्षिप्त्वाऽवलासजातिचास्यवाक् । दन्ता-
 श्चलन्ति वाध्यन्तेश्रवणौ भिद्यते स्वरः ॥ ३८ ॥ पादहस्ताक्षिजङ्घोरुशं-
 खश्रवणगण्डरूक् । अर्द्धे तस्मिन्मुखाद्धे वाकेवले स्यात्तददितम् ॥ ३९ ॥

जब वायु अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो शरीरके वाम अथवा दक्षिण आधे अंगमें प्रवेश करती है तब उस आधे अंगका रक्त भुजा, पांव और घुटनेको संकुचित कर उसी ओरके आधे मुखको भी टेढ़ा कर देता है उससे नासा, ध्रू (भौहें) ललाट, नेत्र और ठोड़ी भी टेढ़ी होजाती है, जब वह मनुष्य भोजन करने लगता है तो मुखमें भोजन डालते समय उसका मुख और नाक विशेषरूपसे टेढ़ा प्रतीत होता है। बोलते समय नेत्र स्तब्ध होजाते हैं और यह मनुष्य छींक नहीं ले सकता। जीम दीन और बाहर निकलीसी प्रतीत होने लगती है। तथा इसकी वाणी दुर्बल अथवा बन्द होजाती है। दांत धपने आप चलायमान अर्थात् शब्द करने लगते हैं। कान सुननेसे बन्द होजाते हैं स्वर भिन्न होजाता और पांव, हाथ, नेत्र, जंवा, ऊरू कनपटी और गुह्य स्थानमें पीड़ा होने लगती है। यह रोग संपूर्ण शरीरके आधे भागमें अथवा केवल आधे मुखमें ही होता है इसको अर्द्धित रोग (लोकमें फालिज तथा लकवा) कहते हैं ॥ ३५-३९ ॥

मन्यास्तम्भ ।

मन्येसंश्रित्यवातोऽन्तर्यदानाडीः प्रपद्यते ।

मन्यास्तम्भं तदाकुर्यादन्तरायामसंज्ञितम् ॥ ४० ॥

मन्या (गलेके दोनों ओरके पार्श्वभाग) में कुपित हृद्वा वायु मन्याकी नाडियोंके भीतर प्राप्त हो मन्याको नीचे जकड़ देता है इसको अन्तरायाम मन्यास्तम्भ कहते हैं ॥ ४० ॥

अन्तरायाम और बहिरायामके लक्षण ।

अन्तरायस्य ते ग्रीवामन्याचस्तभ्यते भृशम् । दन्तानां दंशानं लालापृ-
 ष्ठाक्षेपः शिरोग्रहः ॥ ४१ ॥ जृम्भावदनसङ्गाश्चाप्यन्तरायामलक्ष-
 णम् । इत्युक्तस्त्वन्तरायामो बहिरायाम उच्यते ॥ ४२ ॥

गर्दन भीतरकी ओरको खिचकर स्तब्ध होजाय, ऊपरके दांत नीचेके दांतोंसे जुट जाय, लार गिरने लगे, पीठके भीतर फडकनसी प्रतीत हो, मस्तकका स्तम्भ होजाय, जँभाई और मुखका बन्द होजाना यह अन्तरायामके लक्षण हैं। अब बहिरायामके लक्षणको कहते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

धनुस्तम्भके लक्षण ।

पृष्ठमन्याश्रितावाह्याः शोषयित्वाशिरावलीः । श्रितःकुर्याद्धनुस्तम्भंवहिरायामसंज्ञकम् ॥ ४३ ॥ चापवन्नाम्यमानस्यपृष्ठतोनीयते शिरः । उरउत्क्षिप्यतेमन्यास्तब्धाग्नीवाचमृच्यते ॥ ४४ ॥ दन्तानां दंशनं जृम्भालालास्त्रावश्चवाग्रहः । जातवेगोनिहन्त्येषवैकल्यं वाप्रयच्छति ॥ ४५ ॥

पृष्ठाश्रित वायु मन्याश्रित वाहरकी गिराओंको सुस्ताकर वहिरायाम नामक धनुस्तम्भ रोगका प्रकट, करताहै । उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे-शरीर पीठकी ओरको धनुपके समान टेढ़ा होजाय, मस्तक पीठकी ओर झुकजाय, छाती ऊपरको उठआवे, दोनों ओरकी मन्या जकड़जावे, गर्दन मलीहुईके समान प्रतीत हो, दोनों ओरके दांत आपसमें मिलजाय जंभाई, लारका बहना, वाणीका रुकजाना, यह लक्षण होतेहैं । यह रोगविशेष बलवान् होनेसे रोगीको मारडालताहै, अथवा पूर्णबलवान् होनेसे अंगोको विकल करदेताहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

हनुस्तम्भ ।

हनुमूलेस्थितेवन्धात्स्वंसयत्यनिलोहनुम् । विवृतास्यत्वमथवाकुर्यात्संवृतमाननम् ॥ ४६ ॥ हनुग्रहश्चसंस्तभ्यहनुसंवृतवक्रताम् । हनुमूलेस्थितोवायुःकरोतिवहुकष्टदम् ॥ ४७ ॥

हनु (ढोडी)की जड़में प्राप्त हुआ कुपित वायु ढोडीके बंधनोंको गिथिल करके मुसंको खुला या बन्द ही रखकर हनुको स्तब्ध करदेताहै । ढोडी स्तब्ध होजाय, मुख भिचाहुआ बन्द रहजाय गलेकी नसें तनजाय तथा अत्यंत पीडा हो इत्यादि कष्टकारक लक्षण होतेहैं । इस रोगको हनुस्तम्भ अथवा हनुग्रह कहतेहैं ॥ ४६।४७॥

आक्षेपकके लक्षण ।

सहुराक्षिपतिक्रुद्धोगात्राण्याक्षेपकोऽनिलः ।

पाणिपादश्चसंशोष्यशिराःसस्त्रायुकण्डराः ॥ ४८ ॥

वायु संपूर्ण शरीरमें कुपित होकर अंगोको इधर उधर वारंवार फेंके या भीतरी कंपन सा प्रतीत हो हाथ, पांव, गिरा, स्नायु और कण्डरा सूखजावे । यह आक्षेप वायुके लक्षण है ॥ ४८ ॥

दण्डापतानकके लक्षण ।

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीःस्तभ्रातिमारुतः ।

दण्डवत्स्तब्धगात्रस्यदण्डकःसोऽनुपक्रमः ॥ ४९ ॥

कुपितहुआ वायु हाथ, पांव, मस्तक, पीठ और नितम्बोंको जकड़कर रोगीको डण्डेके समान तानकर जकड़ देवे । उसको दण्डापतानक अथवा दण्डक कहते हैं ४९
इसकी असाध्यता ।

स्वस्थःस्यादर्दिताद्यानामुहुर्वेगागमेगते ।

पीड्यतेपीडनैस्तैस्तैर्भिषगेतान्विवर्जयेत् ॥ ५० ॥

अर्दित आदि संपूर्ण वातव्याधियोंमें रोगीको वेग बारंबार बलपूर्वक आना और बारंबार शान्त होजाना, रोगका वेग चलेजानेपर संपूर्ण शरीर स्वस्थ (नीरोग) प्रतीत होना और फिर वेग आनेपर अत्यन्त पीडित होना इस प्रकार जिसरोगी पर बारंबार वातव्याधिका दौरा होता हो वैद्य उस रोगीको त्याग देवे ॥ ५० ॥

पक्षाघात, एकांग और सर्वांग वातव्याधिके लक्षण ।

हत्वैकमारुतःपक्षंदक्षिणं वाममेववा । कुर्याच्चैष्टानिवृत्तिं हिरुजंवां

वस्तम्भमेवच ॥ ५१ ॥ गृहीत्वावाशरीरार्द्धशिराःस्नायुं विशोष्यच ।

पादंसंकोचयत्येकंहस्तं वातोदशूलनुत् । एकाङ्गरोगंतं विद्यात्सर्वा-

ङ्गसर्वदेहजम् ॥ ५२ ॥

वायु कुपित होकर शरीरके दक्षिण अथवा वाम ओरके आधे भागको स्तम्भ अथवा निश्चेष्ट कर देवे जिससे उस आधे पक्षमें पीडा भी प्रतीत न हो तो इसको पक्षाघात कहते हैं । अथवा आधे शरीरकी शिरा और स्नायुओंको सुखाकर एक पांवको अथवा एक हाथको शूलरहित और सुन्न बनादेवे । अथवा सुखा देवे तो उसको एकांगरोग कहते हैं और संपूर्ण शरीरमें कुपित वायु सर्वांगोंको आहत करदेवे तो उसको सर्वांग रोग कहते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

गृध्रसीरोगके लक्षण ।

स्फिकपूर्वाकाटिपृष्ठोरुजानुजंघापदंक्रमात् ॥ ५३ ॥ गृध्रसीःस्तम्भ-

रुक्तोदैर्गृह्णातिस्पन्दतेमुहुः । वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचका-

न्विता ॥ ५४ ॥

वायु प्रथम दोनों नितम्बोंमें शूल, स्तम्भ और तोड़को उत्पन्न करे फिर क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जांव और पांवोंमें प्राप्त होकर स्तम्भ, गूलादि उत्पन्न करे उसको गृध्रसी रोग कहते हैं । गृध्रसी रोग वायुसे अथवा वात कफसे उत्पन्न होता है । इसमें तन्द्रा, भारीपन और अरुचि यह लक्षण होते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

खल्लीरोगके लक्षण ।

खल्लीतुपादजंघोरुकरमुलावमोटनी ।

स्थानानामनुरूपैश्चलिङ्गैःशेषान्विनिर्दिशेत् ॥ ५५ ॥

पांव, जंघा, ऊरु हांथों पहुंचोंमें तोडनेकीसी पीडा, अथवा मरोडसा उत्पन्नकर उसको खल्ली रोग कहतेहैं । इसी प्रकार अन्य २ स्थानोंमें भी जो वातव्याधि उत्पन्न हो उसको स्थान, लक्षण आदि विचारकर जिस अंगमें वह व्याधि हो उस अंगानुसार और व्याधिके लक्षणानुसार उसका नाम रखे ॥ ५५ ॥

सर्वेप्वेतेपुसंसर्गपित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ।

वायोर्धातुक्षयात्कोपोमार्गस्यावरणेनच ॥ ५६ ॥

इन संपूर्ण वातव्याधियोंमें वायु अत्यंत प्रबल होताहै और कफ पित्तका संसर्ग भी जानना चाहिये धातुओंके क्षय होनेके कारण अथवा मार्गोंके अवरोध होनेसे वायुका कोप होताहै ॥ ५६ ॥

वातपित्तकफादेहेसर्वस्रोतोऽनुसारिणः । वायुरेवहिसूक्ष्मत्वाद्द्वयोस्तत्राप्युदीरणः ॥ ५७ ॥ कुपितस्तौसमुद्भूयतत्रतत्राक्षिपन्गदान् । करोत्यावृतमार्गत्वाद्द्रसादींश्चोपशोपयन् ॥ ५८ ॥

शरीरके संपूर्ण स्रोतोंमें वात, पित्त, कफ यह तीनों दोष अनुसरण अर्थात् गमन करते हैं, परन्तु इनमें वायु सूक्ष्म होनेसे छिद्रोंके मध्यमें प्राप्त होताहुआ दिखाने नहीं देता । वायु कफ और पित्तको उदीर्ण करताहै । वायु ही कफ और पित्तको उठाकर, स्रोतोंमें प्राप्तकर छिद्रोंको रोकदेताहै । जत्र कफ और पित्त द्वारा छिद्रोंके रुकजानेसे वायुका अवरोध होताहै तो वह रसादिक धातुओंकी शोषण करताहुआ अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पित्तावृतवातके लक्षण ।

लिङ्गं पित्तावृतेदाहस्तृष्णाशूलं भ्रमः क्रमः ।

कट्वम्ललवणोष्णैश्चविदाहः शीतकामिता ॥ ५९ ॥

वायुका मार्ग पित्तके द्वारा रुकजानेसे दाह, शूल, भ्रम और क्लान्ति उत्पन्न होतीहै उस समय कटु, अम्ल, लवण और तृष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे विदाह तथा शीतल वस्तुओंकी इच्छा उत्पन्न होतीहै ॥ ५९ ॥

कफावृतवातके लक्षण ।

शीतगौरवशूलानिकट्वाद्युपशयोऽधिकम् ।

लघनायासरूक्षोष्णकामिताचकफावृते ॥ ६० ॥

यदि कफवाही स्रोतोंमें कफद्वारा वायुका मार्ग रुकजाय तो शीत लगना, भारीपन और शूल उत्पन्न हो, तथा चरपेरे आदि कफनाशक पदार्थोंके सेवनसे शान्ति प्रतातहो और लंघन, परिश्रम तथा रूक्ष और उष्ण द्रव्योंके सेवनकी इच्छा उत्पन्न होतीहै ॥ ६० ॥

रक्तावृतवात ।

रक्तावृतेसदाहार्त्तिस्त्वङ्मांसान्तरजोभृशम् ।

भवेत्सरागःश्वयथुर्जायन्तेमण्डलानिच ॥ ६१ ॥

रक्तवाही स्रोतोमें रक्तद्वारा वायुका मार्ग रुकजानेसे दाह, पीडा, त्वचा और मांसमें लाल रंगकी पीडायुक्त सूजन तथा मण्डल (गोल र चकत्ते) उत्पन्न होतेहैं ॥ ६१ ॥

मांसावृतवात ।

कठिनाश्चविवर्णाश्चपिडकाःश्वयथुस्तथा ।

हर्षःपिपीलिकानाश्चसञ्चारइवमांसगे ॥ ६२ ॥

मांसवाही स्रोतोंमें मांसद्वारा वायुके रुकजानेसे कठोर और विवर्ण, पिडिका (फुंसियां) सूजन, मांसमें सरसराहट और चींटियोंके चलनेकासा संचार प्रतीत होताहै ॥ ६२ ॥

मदावृतवातके ल० ।

चलःस्निग्धोमृदुःशीतःशोफोऽङ्गेष्वरुचिस्तथा ।

आढ्यवातइतिज्ञेयःसकृच्छ्रोमेदसावृतः ॥ ६३ ॥

मेदवाही स्रोतोमें मेदद्वारा वायुके रुकजानेसे अंगोंका चलायमान होना, अंगोंमें, चिकनी, नरम और शीतल सूजन तथा अरुचि होतीहै । यह आढ्यवात नामवाला कष्टसाध्य रोग होताहै ॥ ६३ ॥

अस्थिगत आवृतवात ।

स्पर्शमस्थ्यावृतेतूष्णपीडनञ्चाभिनन्दति ।

संभज्यतेसीदतिचसूचीभिरिवतुद्यते ॥ ६४ ॥

हड्डियोंमें—वायुके रुकजानेसे गरम स्पर्श और दवानेसे बाराम प्रतीतहो संपूर्ण शरीरमें भेदन करनेकीसी पीडा प्रतीतहो हड्डियें सुन्नसी होजाय और सूई चुभनेकासा तोद होताहै ॥ ६४ ॥

मज्जावृत वात ।

मज्जावृतेविनामःस्याज्जृम्भणंपरिवेष्टनम् ।

शूलन्तुपीडयमानेचपाणिभ्यांलभतेसुखम् ॥ ६५ ॥

मज्जास्थानमें-मज्जाद्वारा वायुके आवृत होनेसे शरीरका नमजाना, जंभाई, परिवेष्टन (लपेटनेकीसी पीडा) और शूल यह लक्षण होतेहैं । इसमें हाथोंद्वारा शरीरको दवानेसे सुख प्रतीत होताहै ॥ ६५ ॥

शुक्रावृत वात ।

शुक्रावेगोऽतिवेगोवानिष्फलत्वञ्चशुक्रगे ।

शुक्रवाही स्रोतोंमें शुक्रद्वारा वायुके अवरोध होनेसे वीर्यका अवरोध अथवा अति वेग और शुक्र निष्फल होताहै ॥

अन्नवृत वात ।

भुक्तेकुक्षौचरुग्जीर्णेशाम्यत्यन्नावृतेऽनिले ॥ ६६ ॥

अन्नवाही स्रोतोंमें अन्नद्वारा वायुके आवृत होनेसे कुक्षिमें शूल, उत्पन्न होताहै और अन्नके जीर्ण होजानेपर वह शूल भी शान्त होजाताहै ॥ ६६ ॥

मूत्रावृतवात ।

मूत्राप्रवृत्तिराध्मानंवस्तौमूत्रावृतेनिले ॥ ६७ ॥

मूत्रमार्गमें-मूत्रद्वारा वायुके आवृत होनेसे मूत्रका रुकजाना और वस्तिका फूलना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६७ ॥

मलावृतवात ।

वर्च्चोवृतेविवन्धोऽधःस्वेस्थानेपरिक्रन्तति । व्रजत्याशुजरांस्तेहोभु-
क्तेचानह्यतेनरः । चिरात्पीडितमन्येनदुःखंशुष्कंशकृत्सृजेत् ॥६८॥
श्रोणीवंक्षणपृष्ठेपुरुग्विलोमश्चमारुतः । अस्वस्थंहृदयञ्चैवसचव-
च्चोवृतेऽनिलः ॥ ६९ ॥

मलवाही स्रोतमें-मलद्वारा वायुके रुकजानेसे मलका विबंध, मलाशयमें कतरने-
कीसी पीडा उत्पन्न हो, स्नेहपदार्य तत्काल जीर्ण होजाय, भोजन करनेसे अफारा
उत्पन्न हो, दूतरा मनुष्य इस रोगीके पेटको दबावे तो कण्ठके साय सूखा थोडासा
मल आवे, नितम्ब, वंक्षण और पीठमें शूल हो, वायुकी गति उल्टी होजाय हृदय,
अस्वस्थ हो, यह लक्षण होतेहैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

इन रोगोंकी साध्याऽसाध्यता ।

सन्धिच्युतिर्हनुस्तम्भःकुञ्चनंकुञ्जतार्दितम् । पक्षाघातोऽङ्गसंशो-

पःपंगुत्वखुडवातता ॥ ७० ॥ स्तम्भनश्चाढ्यवातेश्वरोगामज्जा-
स्थिगाश्रये । एतेस्थानस्यगाम्भीर्याद्यत्नात्सिध्यन्तिवानवा ॥ ७१ ॥
नवान्वलवतान्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् । क्रियामतःसिद्धतमां
वातरोगापहांशृणु ॥ ७२ ॥

संधिभ्रंश (संधियोंका ढीला पडजाना), हनुस्तम्भ, आकुंचन, कुबडापन, अर्द्ध-
त्तवायु, पक्षाघात, अंगशोष, पंगुपन, खुडवात, स्तम्भन, आढ्यवात, मज्जागतवात,
यह सब रोग स्थानकी गंभीरता होनेसे विधिवत् यत्न कियाजाय तो साध्य होजाते
हैं । और इनके नहीं भी होते । संपूर्ण वातव्याधियें बलवान् मनुष्यके शरीरमें नवीन
और उपद्रवरहित हों तो साध्य हो सकते हैं । अन्यथा असाध्य होतेहैं । अब इन
वातव्याधियोंकी सिद्धचिकित्साको श्रवण करो ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

वातव्याधिमें सामान्य चिकित्सा ।

केवलंनिरुपस्तम्भमादौस्नेहेरुपाचरेत् ।

वायुंसर्पिर्वसातैलमज्जापानैर्नरंततः ॥ ७३ ॥

यदि वातजनित व्याधि कफ और पित्तसे आवृत न हो तो प्रथम स्नेहन द्वारा
चिकित्सा करे । वातव्याधिवाले रोगीको घृत, वसा, तेल और मज्जा पिलाके
वायुको जीते ॥ ७३ ॥

स्नेहेकृान्तंसमाश्वास्यपयोभिःस्नेहयेत्पुनः ।

यूपैर्प्राग्म्याम्बुजानूपैरसैर्वास्नेहसंयुतैः ॥ ७४ ॥

यदि रोगी स्नेहके अधिक सेवन करनेसे क्लान्त होजाय अर्थात् स्नेहपान न कर-
सके तो उसको दूधके योगसे स्निग्ध करना चाहिये । अथवा स्नेहयुक्त यूप, ग्राम्य,
जलज और अनूप देशज जीवोंका मांसरस स्नेह मिलाकर पानकरावे ॥ ७४ ॥

पायसैःकृसरैरम्ललवणैःसानुवासनैः ।

नावनैस्तर्पणैश्चान्नैःसुस्निग्धंस्वेदयेत्ततः ॥ ७५ ॥

तथा रोगीको खीर, खटाई और नमकके विना घृतयुक्त खिचडी मिला
खिलावे और तेलकी नस्य तथा तर्पण और अन्नोद्वारा वृत्त और स्निग्ध करके
स्वेदन करे ॥ ७५ ॥

स्नेहस्वेदनके गुण ।

स्वभ्यक्तस्नेहसंयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसंकरैः ।

तथान्यैर्विधैःस्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत् ॥ ७६ ॥

स्नेहार्द्रस्विन्नमङ्गन्तुवक्रंस्तब्धमथापिवा ।

शनैर्नमयितुंशक्यंयथेष्टंशुष्कदारुवत् ॥ ७७ ॥

भलीप्रकार तैल आदि शरीरपर मलकर स्नेहयुक्त नाडी स्वेद अथवा प्रस्तरस्वेद वा संकरस्वेद अथवा अन्य अनेक प्रकारके स्वेदोंद्वारा रोगीकी प्रकृति आदि विचार कर विधिवत् स्वेदन करे । स्नेहन और स्वेदन करनेसे नरम हुए अंग अथवा मुख इस प्रकार नम्र और ठीक हो सकतेहैं । जैसे सूखी लकड़ीको स्निग्ध और स्विन्न करके जिस प्रकार चाहे मनुष्य धीरे धीरे नवा सकताहै ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

हर्षतोदरुगायासशोथस्तम्भग्रहादयः ।

स्विन्नस्याशुप्रशाम्यन्तिमार्दवञ्चोपजायते ॥ ७८ ॥

वातव्याधिमें स्नेहनकिये रोगीको स्वेदन करनेसे उसके शरीरकी वातजनित सर-सराहट, तोड़, शूल, व्यायाम, सूजन स्तम्भ और जकडन आदि सब दूर होकर शरीर नम्र और हलका होजाताहै ॥ ७८ ॥

स्नेहश्चधातून्संशुष्कान्पुष्णाल्याशुप्रयोजितः । वलमग्निवलंपुष्टिप्रा-
णांश्चाप्यभिवर्द्धयेत् ॥ ७९ ॥ असकृत्तंपुनःस्नेहैःस्वेदैश्चाप्युपपा-
दयेत् । तथास्नेहमृदौकोष्ठेनतिष्ठन्त्यनिलामयाः ॥ ८० ॥

स्नेहका भली प्रकार प्रयोग कियाहुआ वायुसे सूखीहुई धातुओंको पुष्ट करताहै तथा जठरामिके बल, पुष्टि और प्राणोंकी वृद्धि करता है । इसलिये वातरोगीको वारंवार स्नेह और स्वेदोंद्वारा उपपन्न करना चाहिये । स्नेहपानसे नम्रहुए कोष्ठमें वातजनित रोग ठहर नहीं सकते ॥ ७९ ॥ ८० ॥

वातव्याधिमें विरेचनक्रम ।

यद्यनेनसदोषत्वात्कर्मणानप्रशाम्यति ।

मृदुभिःस्नेहसंयुक्तैरौषधैस्तंविशोधयेत् ॥ ८१ ॥

यदि दोषोंकी अधिकताके कारण वारंवार स्नेहन और स्वेदन करनेपर भी वात-व्याधिकी शान्ति न हो तो उस रोगीको स्नेहयुक्त मृदु विरेचन करावे, ॥ ८१ ॥

घृतंतिल्बकसिद्धंवासातलासिद्धमेववा ।

पयसैरण्डतैलंवापिवेदोपहरंशिवम् ॥ ८२ ॥

लोघ, अथवा सातलासे सिद्ध किये घृतद्वारा विरेचन करावे । अथवा गरम दूधमें परण्ड तैल मिला पिलाना भी वातव्याधिमें उत्तम योगहै ॥ ८२ ॥

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्हिमलश्रितः ।

स्रोतोवृद्धानिलं रुन्ध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ॥ ८३ ॥

स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्ण आदि पदार्थोंकी अधिक प्रमाणसे खावे तो संचित हुआ मल ऊपरसे स्रोतोंको रोककर वायुको भी रोकदेताहै इसलिये वह आहार वायुको अनुलोमन करनेवाला होताहै । अर्थात् स्निग्ध आदि आहार रूक्ष स्रोतोंमें फिरतेहुए वायुको रोककर अनुलोमनकर देताहै ॥ ८३ ॥

दुर्बलोयोविरेच्यः स्यात्तनिरूहैरूपाचरेत् ।

पाचनैर्दीपनीयैर्वाभोज्यैर्वातयुतं नरम् ॥ ८४ ॥

जो दुर्बल वात रोगी विरेचन करानेके योग्य न हो और उसका मल निकालनाही उस समय हितकारक हो तो उसको निरूहण वस्ति प्रयोग करे । तथा पाचन और दीपन द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करे ॥ ८४ ॥

शुद्धस्यचोत्थितेचाशौस्नेहस्वेदौपुनर्हितौ । स्वाद्म्ललवणस्निग्धै-
राहारैःसततंपुनः ॥ ८५ ॥ नावनैर्धूमपानैश्चसर्वानेवोपपादयेत् ।

इतिसामान्यतः प्रोक्तं वातरोगचिकित्सितम् ॥ ८६ ॥

विरेचन और वस्तिकर्मद्वारा शुद्ध देह होनेके अनन्तर जब अग्नि बलवान् होजाय तो फिर स्नेहन और स्वेदन करना चाहिये । सब प्रकारके वातरोगमें स्वाद्, अम्ल, नमकीन और स्निग्ध आहारोंका निरन्तर सेवन करना और स्निग्ध नस्य तथा स्निग्ध धूमपानोंका सेवन करना सदैव हितकारी है । इस प्रकार वातव्याधियोंकी सामान्य चिकित्सा कथन की गई है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

वातव्याधियोंकी विशेषचिकित्सा ।

विशेषतस्तुकोष्ठस्थेवातेक्षारंपिबेन्नरः । पाचनैर्दीपनीयैस्तैरम्लैर्वा-
पाचयेन्मलान् । गुदपक्वाशयस्थेतुकर्मोदावर्त्तनुद्धितम् ॥ ८७ ॥

अब वातव्याधिकी विशेष चिकित्साको कथन करतेहैं । यदि वायु कोष्ठमें आश्रित हो तो क्षार पिलाना तथा दीपन, पाचन और अम्लद्रव्यों द्वारा मलोंको पाचन करना चाहिये । यदि गुदा अथवा पक्वाशयमें वायु स्थित हो तो उदावर्त्तनाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ८७ ॥

आमाशयस्थेशुद्धस्ययथादोषहराः क्रियाः ।

सर्वाङ्गकुपितेऽभ्यङ्गोवस्तयः सानुवासनाः ॥ ८८ ॥

आमाशयमें स्थित वायु हो तो प्रथम स्निग्ध वमन, विरेचन करा फिर दोपोंके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये । यदि सर्वांगमेंही वायुका कोप हो तो वातनाशक तेलोंका अभ्यंग, निरूहणवस्ति और अनुवासन वस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥८८॥

स्वेदाभ्यङ्गानिवातानिहृद्यञ्चान्नंत्वगाश्रिते ।

शीताःप्रदेहारक्तस्थेविरेकोरक्तमोक्षणम् ॥ ८९ ॥

त्वचामें आश्रित वायु हो तो वातनाशक तेलोंका अभ्यंग, स्वेद, निर्वातस्थानमें निवास तथा हृद्य और स्निग्ध अन्नोंका सेवन करना चाहिये । रक्तमें स्थित वायु हो तो शीतललेप, विरेचन और रक्तमोक्षण कराना हितकारक है ॥ ८९ ॥

विरेकोमांसमेदःस्थेनिरूहाःशमनानिच ।

बाह्याभ्यन्तरतःस्नेहैरस्थिमज्जगतंजयेत् ॥ ९० ॥

मांस और मेदगतवायु हो तो विरेचन, निरूहण और शमन औषध प्रयोग करना चाहिये । अस्थि और मज्जागत वायु हो तो बाह्य और अभ्यंतर स्नेहोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ९० ॥

हर्षोऽन्नपानंशुक्रस्थेवलशुक्रकरंहितम् । विवृढमार्गदृष्ट्वावाशुक्रं
दद्याद्विरेचनम् । विरिक्तप्रतिभुक्तस्यपूर्वोक्तांकारयेत्क्रियाम् ॥९१॥

वीर्यगत वायु हो तो हर्षकारक, बल और वीर्यको उत्पन्न करनेवाले अन्नपानोंका प्रयोग करना चाहिये । यदि शुक्रका मार्ग रुकगया हो तो प्रथम विरेचन करावे तदनन्तर बल और शुक्रके बढ़नेवाले अन्नपानोंका सेवन करे ॥ ९१ ॥

गर्भेशुष्केतुवातेनवालानाश्चापिशुष्यताम् ।

सिताकाश्मर्यमधुकैर्हितमुत्थापनेपयः ॥ ९२ ॥

यदि वायुद्वारा गर्भ सूतजाय अथवा वायुसे चालकोंका शरीर सूतजाय तो उनके पुष्ट करनेके लिये मिसरी, कुंभेरके फल (कुंभेरके अभावमें द्राक्षा) और मुलैठीके कल्कसे सिद्ध किया दूध घृत मिला पिलाना चाहिये ॥ ९२ ॥

हृदिप्रकुपितेसिद्धमंशुमत्यापयोहितम् ।

मत्स्यान्नाभिप्रदेशस्थेसिद्धानविल्वशलाटुभिः ॥ ९३ ॥

हृदयस्थवायु कुपित होय तो शालपर्णीसे सिद्ध किया दूध पिजाना हितकारक है । नाभिस्थानमें कुपित वायु होय तो बेलकी गिरी और मठलीका मांस सिद्धकर खिलाने ॥ ९३ ॥

वायुनावेष्ट्यमानेतुगात्रेस्याटुपनाहनम् ॥ ९४ ॥

वायुसे सब अंग वेष्ट्यमान हों तो उपनाहस्वेद कराना हितकारी है ॥ ९४ ॥
तैलसंकुचितेऽभ्यङ्गोमापसैन्धवसाधितम् । बाहुशीर्षगतनस्यंपा-
नञ्चोत्तरभक्तिकम् । वस्तिकर्मत्वधोनाभेःशस्यतेचावपीडकः॥९५॥

यदि वातके कोपसे अंग संकुचित होजाय तो उडद और संधानमकसे सिद्ध किये-
हुए तैलसे मालिश करना चाहिये । बाहुगत और शिरोगत वायु कुपित हो तो नस्य
कर्म और उत्तर भक्तिक घृतपान - कराना हितकारक है । नाभिके अधोगत वायुका
कोप हो तो वस्तिकर्म तथा अवपीडन नस्य प्रयोग करना हितकारक है ॥ ९५ ॥

अर्दितेनावनंमूर्ध्नितैलंतर्पणमेवच ।

नाडीस्वेदोपनाहाश्चाप्यानूपपिशितैर्हिताः ॥ ९६ ॥

अर्दितरोगमें नस्य, मस्तकपर तैलका मलना, तर्पण, और आनूपसंचारी जीवोंके
मांससे नाडीस्वेद तथा उपनाहस्वेद करना हितकारी है ॥ ९६ ॥

स्वेदनंस्नेहसंयुक्तंपक्षाघातेविरेचनम् ।

अन्तराकण्डराङ्गुल्योःशिरावस्त्यग्निकर्मच ॥ ९७ ॥

पक्षाघातमें स्नेहन, स्वेदन तथा स्निग्ध विरेचन कराना हितकारक है । तथा
कण्डरा और अंगुलियोंके मध्यमें शिरावस्ति (नममें पिचकारी लगाना) और अग्नि-
कर्म करना हितकारक है ॥ ९७ ॥

गृध्रसीपुप्रयुञ्जीतखल्व्यान्तूष्णोपनाहनम् ।

पायसैःकृसरैश्चैवशस्तंतैलघृतान्वितैः ॥ ९८ ॥

गृध्रसी रोगमें भी कण्डरा और अंगुलियोंके मध्यभागमें शिरावस्ति तथा अग्नि-
कर्म करना हितकारक है । और खलीरोगमें तैल और घृतमिली खीर तथा खिच-
डीसे उपनाहस्वेद करना चाहिये ॥ ९८ ॥

व्यात्ताननेहनुंस्विन्नमङ्गुष्ठाभ्यांप्रीड्यच । प्रदेशिनीभ्याञ्चोन्नम्य
चिब्रुकोन्नमनंहितम् ॥ ९९ ॥ स्वस्तांसङ्गमयेत्स्थानंस्तब्धांस्विन्नां
विनामयेत् । प्रत्येकंस्थानद्वय्यादेकियावैशेष्यमाचरेत् ॥ १०० ॥

हनुस्तम्भरोगमें यदि मुख खुला रहगया हो तो ठोडीको आनूपसंचारी जीवोंके
मांससे स्वेदन करके अंगूठेसे दबाकर तर्जनीसे ठोडीको ऊपरकी ओर ढकेले जिससे
खुलाहुआ मुख बन्द होसके । यदि ठोडी पीछेको हटी हो तो उसको आगेको लाये,
सुस्त होगई हो तो ठीक स्थानपर पहुंचावे । कठोर होगई हो तो स्वेदनद्वारा हो नम्र

करे । इस प्रकार वातरोगोंमें स्थान दूष्य आदि विचारकर विशेष क्रियाको करना चाहिये ॥ १९ ॥ १०० ॥

वातव्याधिनाशक अनेक योग ।

सर्पिस्तैलवसामज्जसेकाभ्यञ्जनवस्तयः । खिग्धाःस्वेदानिवातश्च-
स्थानंप्रावरणानिच ॥ १०१ ॥ रसाःपयांसिभोज्यानिस्वाद्मल्लव-
णानिच । वृंहण्यञ्चतत्सर्वप्रशस्तंवातरोगिणाम् ॥ १०२ ॥

वातव्याधिमें घृत, तैल, वसा, मज्जा, सेक, अभ्यंग, वस्तिकर्म स्निग्ध स्वेद, वात-
रहित स्थानमें निवास, गर्भवस्त्रोंसे शरीरको लपेटना, मांसरस, दूध तथा मीठे, खट्टे
और नमकीन पदार्थोंका सेवन करना चाहिये । और जितने प्रकारके वृंहण द्रव्य हैं
वह सब वातरोगियोंके लिये हितकारक हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

वलायाःपञ्चमूलस्यदशमूलस्यवारसे । अजशीर्षाम्बुजानूपमांसाद-
पिशितैः पृथक् ॥ १०३ ॥ साधयित्त्वारसान्खिग्धान्दध्यम्लव्यो-
षसंस्कृतान् । भोजयेद्वातरोगार्त्तैर्व्यक्तलवणैर्नरम् ॥ १०४ ॥

वातरोगीको वृंहण करनेके लिये वला अथवा शालपर्ण्यादि पंचमूल या दशमूलके
कायमें बकरेका मस्तक अथवा जलज जीवोंका मांस वा आनूपसंचारी जीवोंका मांस
तथा मांसखानेवाले जीवोंका मांस पकाकर वह रस सेवन करावे । इन रसोंको घृतयुक्त
तथा दहीकी खटाई त्रिकुट्टेका चूर्ण और संधानमक मिला(संस्कार)कर पिलाना चाहि-
ये । अथवा इन्हीं मांसरसोंको लवणयुक्तकर भोजनके साथमें देना चाहिये ॥ १०४ ॥

एतैरेवोपनाहांश्चपिशितैःसंप्रकल्पयेत् ।

घृततैलयुतैःसाम्लैःक्षुण्णस्विन्नैरनस्थिभिः ॥ १०५ ॥

इन्हीं उपरोक्त मांसोंसे वात रोगियोंको उपनाह स्वेद करना चाहिये । परन्तु इन
मांसोंको अस्यि रहितकर घृत, तैल, खटाईयुक्तकर पकालेवे । फिर गर्म गर्मसे उपनाह
स्वेद करे ॥ १०५ ॥

पत्रोत्क्वाथःपयस्तैलद्रोण्यःस्युरवगाहने ।

स्वभ्यक्तानांप्रशस्यन्तेसेकाश्चानिलरोगिणाम् ॥ १०६ ॥

वातरोगियोंको प्रथम तैलाभ्यक्त करके फिर वातनाशक पत्रोंके कायमें अथवा
दोपानुसार दूध या तेलकी द्रोणोंमें विठावे । और दोपानुसार क्वाथ, दूध और
तेलों द्वारा परिसेचन करे ॥ १०६ ॥

आनूपौदकमांसानिदशमूलंशतावरीम् । कुलत्थान्वदरान्नापांस्ति-

लान्द्रास्त्रायवान्वलाम् । वसादध्यारनालाम्लैःसहकुम्भ्यांविपाच-
येत् ॥ १०७ ॥ नाडीस्वेदंप्रयुञ्जीतपिष्टैश्चैवोपनाहनम् । तैश्चसिद्धं-
घृतंतैलमभ्यङ्गःपानमेवच ॥ १०८ ॥

अनूपसंचारी जीवांका मांस, जलसंचारी जीवांका मांस, दशमूल, शतावर, कुल्थी,
बैर, उडद, तिल, रासना, यव, बला इन सब द्रव्योंको वसा, दही, कांजी और सिरका
मिलाकर कुंभी (घडामें) में पकावे । और उसके मुखपर नाल लगाकर चारों ओरसे
बन्दकर देवे । उस नालद्वारा जो भाफ निकले उससे वातरोगीको स्वेदन करे । अथवा
इन्हीं द्रव्योंको पीसकर उससे उपनाह स्वेद करे या इन्हीं द्रव्योंके साथ सिद्ध किया
हुआ घृत और तेल पीने तथा अभ्यंगमें प्रयुक्त करे तो वातव्याधि दूर होती है ॥ १०८ ॥

मुस्तांकिण्वंतिलाःकुष्ठंसुराह्वलवणनतम् ।

दधिक्शीरचतुःस्नेहैःसिद्धंस्यादुपनाहनम् ॥ १०९ ॥

नागरमोथा, सुराबीज, तिल, कूठ, देवदारु, संधानमक, तगर, दही, दूध, तेल, घृत,
वसा और मज्जा इन सबको मिलाकर पकावे । इससे उपनाह करे तो वातव्याधि
शान्त होती है ॥ १०९ ॥

उत्कारिकावेशवारक्षीरमापतिलौदनैः । एरण्डवीजगोधूमयवकोल-
स्थिरादिभिः ॥ ११० ॥ सस्नेहैःसरुजंगात्रमालिष्यवहुलंभिषक् ।

एरण्डपत्रैःप्रच्छाद्यरात्रौकल्पेविमोक्षयेत् ॥ १११ ॥ क्षीराम्बुनात-
तःसिक्तंपुनश्चैवोपनाहितम् । मुञ्चेद्रात्रौदिवावद्धंचर्मभिश्चसलो-
मभिः ॥ ११२ ॥

उत्कारिका (मांसकी वनाईहुई पृडियें) वेशवार (मसालेयुक्त पालर, कांजी
विशेष) दूध, उडद, तिल, भात, एरण्डके बीज, गेहूं, यव, बेर और शालपर्ण्यादि
पंचमूल इनमवकी वारीक पीस चतुःस्नेह मिलाकर बहुतासा ले जिस अंगपर वातव्याधि
हो गर्मगर्म लेप करे । ऊपरमे एरण्डके पत्तोंको लपेटकर रात्रिभर रहने देवे प्रातःकाल
लेपको उतार देवे । फिर उपरोक्त क्षीरादि अथवा शालपर्ण्यादि काय द्वारा परिसेचन
कर उपरोक्त उपनाहस्वेद करे । फिर रात्रिको वातनाशक तैलकी मालिश कर यही
लेप करे । लेपके ऊपर एरण्डके पत्र लपेट ऊपरसे रोमयुक्त चमडेकी पट्टी बाँधे । इस
प्रकार रात्रिके किये लेपको प्रातःकाल उतार देवे और प्रातःकालके किये लेपको
सापंकाल उतारे । इस प्रकार करनेमे आघृत और कफ पित्तादिते युक्त वातव्याधि
शान्त होती हैं ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

फलानां तैलयोनीनामम्लपिष्टानशीतलान् । प्रदेहानुपनाहांश्चग-
न्धैर्वातहरैरपि । पायसैः कृसरैश्चैव कारयेत्स्नेहसंयुतैः ॥ ११३ ॥

जिन फलोंमेंसे तेल निकलते हैं उन संपूर्ण फलोंको पीसकर इकट्ठे करके गर्मगर्म
लेप तथा उपनाहस्वेद करे । एवं वातनाशक गंध, खीर, खिचडी आदिको स्नेहयुक्त,
कर प्रदेह और उपनाह करे ११३ ॥

रूक्षशुद्धानिलार्त्तानामतः स्नेहान्प्रचक्षते ।

विविधाविविधव्याधिप्रशमायामृतोपमान् ॥ ११४ ॥

अब पित्त, कफादि रहित रूक्ष शुद्ध (केवल) वायुसे पीडित मनुष्योंके रोगकी
शान्तिके लिये अनेक प्रकारकी वातव्याधि नाशक अमृतके समान स्नेहोंका वर्णन
करते हैं ॥ ११४ ॥

वातव्याधिनाशक घृत ।

द्रोणेऽम्भसःपचेद्भागान्द्राशमूलाच्चतुष्पलान् । यवकोलकुलत्थानां
भागैःप्रस्थोन्मितैःसह ॥ ११५ ॥ पादशोषेरसेपिष्टैर्जीवनीयैःसश-
कैरैः । तथाखर्जूरकाशमर्द्यद्राक्षावदरफल्गुभिः ॥ ११६ ॥ सक्षीरैः
सर्पिपःप्रस्थःसिद्धः केवलवातनुत् । निरत्ययःप्रयोक्तव्यःपानाभ्य-
ञ्जनवस्तिषु ॥ ११७ ॥

दशमूलकी संपूर्ण औषधियें चार चार पल, यव, वेर, कुलथी, एकएक प्रस्थ इन
सबको १ द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग घेप रहे तो उतारकर छानले । फिर
जीवनीयगणकी दश औषधियें खांड, खजूर, कुंभेर, द्राक्षा, वेर और गुलर इन सबको
एक एक कर्प लेकर कलक बनावे । घृत १ सेर लेवे, दूध ४ सेर इनसबको मिलाकर
पकावे घृतमात्र घेप रहनेपर उतार छानले । इस घृतको पीने और मालिश करने तथा
वस्तिकर्ममें प्रयोग करनेमें वातविकार शान्त होतेहैं ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

चित्रकादिघृत ।

चित्रकं नागरं रास्नां पौष्करं पिप्पलीं शटीम् ।

पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरम्परम् ॥ ११८ ॥

चित्रक, सांठ, रासना, पोहकमूल, पीपल और कचूर इन सबके कल्कमें सिद्ध
किया घृत वातगोंके दूर करनेमें परमोत्तम कहा है ॥ ११८ ॥

उद्धगत् वातनाशक घृत ।

बलाविल्वशृतेक्षीरे घृतमण्डं विपाचयेत् ।

तस्यशुक्तिः प्रकुञ्चो वानस्यं मूर्द्धगतेऽनिले ॥ ११९ ॥

बला और बेलकी गिरीसे सिद्ध कियेहुए दूधमें पकायाहुआ घृतमण्ड २ तोला अथवा ४ तोला लेकर पीवे अथवा नाकद्वारा पीवे तो ऊर्ध्वजन्तुगत वायुके रोग दूर होतेहैं ॥ ११९ ॥

वातनाशक स्नेह ।

ग्राम्यांनूपौदकानान्तुभित्वास्थीनिपचेज्जले । तंस्नेहं दशमूलस्यक-
पायेणपुनःपचेत् ॥ १२० ॥ जीवकर्षभकास्फोताविदारीकपिकच्छु-
भिः । वातघ्नैर्जीवनीयैश्चकल्कैर्द्विक्षीरभागिकम् ॥ १२१ ॥ तत्सि-
द्धंनावनाभ्यङ्गान्तथापानानुवासनात् । शिरापर्वोस्थिकोष्ठस्थंप्रणुद-
त्याशुमारुतम् ॥ १२२ ॥ येस्युःप्रक्षीणमज्जानःक्षीणशुक्रौजसश्चये ।
बलपुष्टिकरंतेपामेतस्यादमृतोपमम् ॥ १२३ ॥

ग्राम्यसंचारी, जलज और अनूपसंचारी जीवोंकी हड्डियोंको कूटकर जलमें पकावे जब पकते २ उन हड्डियोंमेंसे चिकनाई निकलकर पानी पर तैरने लगे तो उस चिक-
नाईको उतारकर उसमें दुगना दूध चौगुना दशमूलका क्वाथ और उस स्नेहसे चौथा
भाग जीवक, ऋषभक, सारिवा, विदारीकन्द, कौंचके बीज अथवा अन्य वातनाशक
द्रव्य या जीवनीयगणका कल्क मिलाकर पकावे । स्नेहमात्र शेष रहनेपर उताकर
छानले । इस स्नेहके नस्य, अभ्यंग, पान और अनुवासनमें प्रयोग करनेसे शिरा
जोड, हड्डी और कौष्ठमें स्थितहुई वायु शीघ्र नष्ट होजाती है । जो मनुष्य क्षीणमज्जा
और क्षीणवीर्य तथा क्षीणओज हैं उनके लिये यह स्नेह बल और पुष्टिको करनेवाला
तथा अमृतके समान गुणकारी है ॥ १२०-१२३ ॥

तद्वत्सिद्धावसानक्रमस्यकूर्मचुलूकजाः ।

प्रत्यग्राविधिनानेननस्यपानेपुशस्यते ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार नक्र (मगर मच्छ) मछली, कच्छू और सूतकी हड्डियोंमेंसे पूर्वोक्त
विधि द्वारा स्नेह (मज्जा) निकालकर और उपरोक्त, द्रव्योंसे सिद्ध कर नस्य, पान
आदिमें प्रयोग करनेसे वातव्याधियें शान्त होती हैं ॥ १२४ ॥

महास्नेह ।

प्रस्थःस्यात्रिफलायास्तुकुलत्थकुडवद्वयम् । कृष्णगन्धात्वगाढ-
क्योःपृथक्पञ्चपलंभवेत् ॥ १२५ ॥ रात्राचित्रकयोर्द्वेदशमूलंपलो-
न्मितम् । जलद्रोणेपचेत्पादशेषेप्रस्थोन्मितंपृथक् ॥ १२६ ॥ सुरा-
रनालदध्यम्लसौवीरकतुपोदकम् । कोलदाडिमवृक्षाम्लरसंतैलं

वसाघृतम् ॥ १२७ ॥ मज्जानञ्चपयश्चैवजीवनीयपलानिपट् ।
कल्कंदत्वामहास्नेहंसम्यगेनविपाचयेत् ॥ १२८ ॥ शिरामज्जास्थि-
भेवातेसर्वाङ्गैकाङ्गरोगिषु । वेपनाक्षेपशूलपुतदभ्यङ्गेप्रयोजये-
त् ॥ १२९ ॥

त्रिफला १ प्रस्थ, कुल्थी २ कुडव, सुहांजनेकी छाल और अरहरकी जड़ पांच-
पांच पल, रासना और चित्रक दो दो पल, दशमूलकी औपधियें एक एक पल लेकर
सबको कूटलेवे और १ द्रोण जलमें पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर
उतारकर छानले । इस काथमें सुरा, कांजी, दही, दहीका जल, सौवीरक, तुषोदक,
वेरका रस, दाडिमका रस, इमलीका रस, तेल, वसा, घृत, मज्जा और दूध यह
सब एक एक प्रस्थ लेवे । जीवनीयगणकी प्रत्येक औपधी छः छः पल लेकर कल्क
बनावे इन सबको मिला पकावे जब स्नेहमात्र शेष रहे तो उतारकर छान लेवे ।
इस स्नेहको मालिश करनेसे शिरागतवात, मज्जागत, अस्थिगत, सर्वांगगत, एकांगगत
और कम्पनवात तथा आक्षेप और शूल यह सब वातधिकार नष्ट होतेहैं । इसको
महास्नेह कहतेहैं ॥ १२९-१२९ ॥

निर्गुण्डीतैल ।

निर्गुण्ड्यामूलपत्राभ्यांघृहीत्वास्वरसंततः । तेनसिद्धंसमंतैलंना-
डीकुष्ठानिलार्त्तिषु । हितंपामापचीनाञ्चपानाभ्यञ्जनपूरणम् ॥ १३० ॥

संभालूकी जड़ और पत्तोंका स्वरस निकालकर उसके बराबरका तैल मिला
पकावे । तैलमात्र शेष रहनेपर उतार लेवे । इस तैलकी मालिश करनेसे नाडीघ्नण,
कुष्ठ, वातव्याधि, पामा, (खुजली) और अपची रोग नष्ट होताहै । यह तैल-पान,
अभ्यंग और पूरणमें प्रयोग कियाजाताहै ॥ १३० ॥

कार्पासास्थिकुलरयानारसेसिद्धञ्चवातनुत् ॥ १३१ ॥

कपासके बीज और कुल्थीके रससे सिद्ध किया तैल वातरोगको दूर
करताहै ॥ १३१ ॥

मूलकादि तैल ।

मूलकस्वरसेक्षीरसमेस्थाप्यंयहंदधि । तस्याम्लस्यत्रिभिःप्रस्थै-
स्तैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ १३२ ॥ यष्ट्याहृशर्करारास्नालवणार्द्रकना-
गैरैः । सुपिष्टैःपलिकैःपानात्तदभ्यङ्गाञ्चवातनुत् ॥ १३३ ॥

शुलीका स्वरस और दूध इन दोनोंको एक समान लेकर उसमें थोडासा . दही

मिला तीन दिन रखवा रहनेदे जब जमकर दहीके समान होजाय और खटाई आजाय तो यह अम्ल द्रव्य तीन प्रस्थ और तेल १ प्रस्थ तथा मुलैठी, खांड, रासना, सेंधानमक, अदरख और सोंठ इन सबको एक एक पल लेकर कल्क बनावे । इन सबको मिलाकर तैल सिद्ध करे । इस तेलके पीने और मालिश करनेसे संपूर्ण वातरोग नष्ट होतेहैं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

पंचमूलादि तैल ।

पञ्चमूलकषायेणपिण्याकंवहुवार्षिकम् । पक्त्वातस्यरसंपूत्वातैल-
प्रस्थंविपाचयेत् ॥ १३४ ॥ पयसाष्टगुणेनैतत्सर्ववातविकारनुत् ।
संसृष्टेष्टेष्मणाचैतद्वातेशस्तंविशेषतः ॥ १३५ ॥

पंचमूलका काथ और बहुत पुरानी तिलोंकी खलको पकाकर उसके रसको छान लेवे । यह रस ४ प्रस्थ और पंचमूलका काथ ४ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । यह तैल सब प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करताहै । तथा कफके संसर्गवाले वातरोगमें विशेष हितकारक है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

शरीरकी शीततानाशक तेल ।

यमकोलकुलत्थानांश्रेयस्याःशुष्कमूलकात् । विल्वाच्चाञ्जलिमेकैकं
द्रवैरम्लैर्विपाचयेत् ॥ १३६ ॥ तेनतैलंकषायेणफलाम्लैःकटुभि-
स्तथा । पिष्टैःसिद्धमहावातैरार्त्तःशीतेप्रयोजयेत् ॥ १३७ ॥

यव, बेर, कुल्थी, रासना, कच्चे बेलकी गिरी यह प्रत्येक सोलह सोलह तोला, दहीका जल इन सबसे आठगुना मिलाकर पकावे । चौथाभाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । अनारका रस, विजैरिका रस, कांजी यह प्रत्येक एकएक प्रस्थ, सोंठ, मिर्च, पीपलका कल्क बीस तोला, तेल १ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उताकर छान लेवे । इस तेलकी महावातसे शीतलहुए शरीरपर मालिश करे तो यह तेल अत्यंत गुणको करताहै ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

सर्ववातविकाराणांतैलान्यन्यान्यतःशृणु । चतुष्प्रयोगाण्यायुष्य-
बलवर्णकराणिच ॥ १३८ ॥ रजःशुक्रप्रदोपघ्नान्यपत्यजननानिच ।

निरत्ययानिसिद्धानिसर्वदोषहराणिच ॥ १३९ ॥

अब हम सब प्रकारके वातविकारोंको जान्त करनेवाले तैलोंका वर्णन करतेहैं । जो नस्य, पान, अभ्यंग और वस्ति, इन चार प्रकारसे प्रयोग किये जा सकेहैं ।

इन तैलोंके प्रयोगसे आंघु, बल, वर्णकी वृद्धि, रज और वीर्यविकारोंकी शांति, होती है तथा यह तैल संतानके उत्पन्न करनेवाले संपूर्ण दोषोंको हरनेवाले और अनुभव कियेहुए सिद्ध हैं सो तुम श्रवण करो ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

सहाचरादितैल ।

सहाचरतुलायाश्चरसेतैलाढकंपचेत् । मूलकल्काद्दशपलंपक्त्वाक्षी-
रेचतुर्गुणम् ॥ १४० ॥ सिद्धेऽस्मिञ्शर्कराचूर्णादष्टादशपलंभिषक् ।

विनीयदारुणेत्तद्वातव्याधिपुयोजयेत् ॥ १४१ ॥

पीली कटसरईया (पीला बांसा) की जडका रस (काय) ५ सेर, तेल ४ सेर, दूध १६ सेर, पीलासैकी जडका कल्क ४० तोला इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उसमें १८ पल मिसरीका चूर्ण मिलावे । इस तैलको नस्य, पान आदिमें प्रयोग करनेसे दारुण वातव्याधियें भी दूर होती हैं ॥ १४० ॥ १४१ ॥

श्वदंष्ट्रादितैल ।*

श्वदंष्ट्रास्वरसप्रस्थौद्वौसमौपयसासह । पट्पलंशृङ्गवेरस्यगुडस्या-
ष्टपलंतथा ॥ १४२ ॥ तैलप्रस्थंविषक्वंतैर्दद्यात्सर्वानिलार्त्तिषु ।

जीर्णेतैलेचदुग्धेनपेयाकल्पःप्रशस्यते ॥ १४३ ॥

गोखरुका स्वरस २ प्रस्थ, दूध २ प्रस्थ, सांठका कल्क ६ पल, कपासके बीजोंका कल्क ८ पल, तेल १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर तैल सिद्ध करे । इस तैलको उचित मात्रासे पान आदिमें प्रयोग करे । तैलके जीर्ण होनेपर दूधसे बनाईहुई पेया पान करे तो वातव्याधि शान्त होती है और बल वर्णकी वृद्धि होती है ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

बलातैल ।

बलाशतंगुडूच्याश्चपादंरास्नाष्टभागिकम् । जलाढकशतेपक्त्वाद्दश
भागस्थितेरसे ॥ १४४ ॥ दधिमस्त्वक्षुनिर्यासशुक्तेस्तैलाढकंसमैः ॥
पचेत्साजपयोऽर्द्धांशैःकल्कैरेभिःपलोन्मितैः ॥ १४५ ॥ शटीसरलदा-
र्वेलामञ्जिष्ठागुरुचन्दनैः । पद्मकातिविषामुस्तसूप्यपर्णीहरेणुभिः
॥ १४६ ॥ यष्टयाद्दसुरसव्याघ्रनखर्पभैकजीवकः । पलाशरसकस्तूरी-
नलिकाजातिकोपकैः ॥ १४७ ॥ पृक्काकुंकुमशैलेयजातीकटुफला-
म्युभिः । त्वकुन्दुरुककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकैः ॥ १४८ ॥

लवङ्गनखककैलकुष्ठमांसीप्रियङ्गुभिः । स्थौण्यतगरध्यामवचा-
मदनपल्लवैः ॥ १४९ ॥ सनागकेशरैःसिद्धेक्षिपेच्चात्रावतारिते । प-
त्रकल्कंततःपूतंविधिनात्प्रयोजयेत् ॥ १५० ॥ श्वासंकासंज्वरं
हिक्रांछिर्दिगुल्मान्क्षतंक्षयम् । ग्रीहशोषावपस्मारमलक्ष्मीञ्चप्रणाश-
येत् ॥ १५१ ॥ वलातैलमिदंप्रेष्ठवातव्याधिविनाशनम् । अग्निवेशा-
यगुरुणाकृष्णात्रेयेणभाषितम् ॥ १५२ ॥

वला १०० पल, गिलोय २५ पल, राज्ञा १२॥ पल, इन सबको १०० आढक
(१० मन) जलमें पकावे । दशवां भाग शोष रहनेपर उतारकर छान लेवे । फिर
इस जलमें दही १ आढक, दहीका जल १ आढक, ईखका रस १ आढक, कांजी १
आढक, तेल ४ आढक, बकरीका दूध २ प्रस्थ और इन नीचे लिखे द्रव्यों के
एकएक पल लेकर कल्क करे । वह ये हैं—कचूर, सरलकाष्ठ, देवदारु, बड़ी इला-
यची, मंजीठ, अगर, चंदन, पद्मकाष्ठ, अतीश, नागरमोथा, मापपर्णी, मुग्धपर्णी,
रेणुका, मुलैठी, तुलसी, व्याघ्रनखी, ऋषभक, जीवक, ढाकका गोंद, कस्तूरी,
बैलिका, जावित्री, स्पृक्षा, केशर, छारछवीला, जायफल, कायफल, सुगंधवाला,
दालचीनी, कुन्दरु, कपूर, सिद्धक वृक्षका गोंद, सरल वृक्षका गोंद, लौंग, नख,
कंकौल, कूठ, जटामांसी, प्रियंगु, गठौना, तगर, ध्यामकवृण, वच, मदन (मौलसरीके
फूल अथवा मोम) केवटी, मोथा इन सबको एकएक पल लेकर कस्तूरी, केशर, कपूर
आदि सुगंध द्रव्योंके सिवाय सब द्रव्योंको पीसकर कल्क बनालेवे । यह कल्क और
उपरोक्त वलादि काथ आदि संपूर्ण द्रव्योंको मिलाकर पकावे । जब संपूर्ण द्रव्य जल
कर तैलमात्र शोष रह जावे तो इसमें कस्तूरी आदि गन्धद्रव्योंको भी पीसकर डालदेवे।
इस तैलको स्वच्छकर किसी उत्तम पात्रमें भरकर रखे । यह वला तैल—अभ्यंग,
नस्य और पान आदि कर्मोंमें प्रयुक्त करनेसे श्वात, खांसी, ज्वर, हिचकी, छर्दी,
गुल्म, क्षत, क्षय, प्लीहा, शोष, अपस्मार और अलक्ष्मीको दूर करताहै । यह वला-
तैल वातव्याधियोंको नष्ट करनेमें सर्वोत्तम माना है । इसको भगवान् कृष्णात्रेयजीने
अग्निवेशके प्रतिकथन कियाहै ॥ १४४-१५२ ॥

अमृतादितैल ।

तुलाःपञ्चगुडूच्यास्तुद्रोणेष्वष्टस्वपांपचेत् । पादशोषेसमंक्षीरंतैलस्य
द्व्याढकंपचेत् ॥ १५३ ॥ एलामांसीनतोशीरशारिवाकुष्ठचन्दनैः ।
वलातामलकीमेदाशतपुष्पाङ्घ्रिजीवकैः । १५४ ॥ काकोलीक्षीरका-

कोलीश्रावण्यतिवलानखैः । महाश्रावणिजीवन्तीविदारीकपिक-
 च्छुभिः ॥ १५५ ॥ शतावरीसहामेदाकर्कटाख्याहरेणुभिः । वचा-
 गोक्षुरकैरण्डरास्त्राकालासहाचरैः ॥ १५६ ॥ वीराशल्लकिमुस्तत्व-
 वपत्रर्षभकवालकैः।महैलाकुंकुमस्पृक्कात्रिदशाह्वैश्चकार्षिकैः ॥१५७॥
 मञ्जिष्टायास्त्रिकर्षेणमधुकाष्ठपलेनच । कल्कैस्तत्क्षीणवीर्याग्निव-
 लसंमूढचेतसः ॥ १५८ ॥ उन्मादारत्यपस्मारैरार्त्ताश्चप्रकृतिनयेत् ।
 वातव्याधिहरंश्रेष्ठतैलाय्यममृताह्वयम् । कृष्णात्रेयेणगुरुणाभा-
 पितंवैद्यपूजितम् ॥ १५९ ॥

गिलोय २० सेर लेकर १२८ सेर पानीमें पकावे । ३२ सेर जल शेष रहनेपर
 उतारकर छान ले । फिर इसमें ८ सेर दूध, ८ सेर तैल मिलावे । तथा इलायची,
 जटामांसी, तगर, खस, शारिवा, कूठ, लालचंदन, भूमिआमला, मेदा, सौंफ, ऋद्धि,
 जीवक, काकोली, क्षीरकाकोली, गोरखमुंडी, अतिवला, नखी, महामुण्डी, जीवन्ती,
 विदारीकंद, कौंचके बीज, शतावर, महामेदा, काकडासिंगी, रेणुका, वच, गोखरू,
 एरण्डकी जड़, रास्ना, असगंध, पीलेफूलकी कठसरइया, शालपर्णी, शल्यकीवृक्षका
 गोंद, नागरमोथा, दालचीनी, पत्रज, ऋषभक, नेत्रवाला, बडी इलायची, केसर,
 असवर्ग और देवदारु यह सब एकएक कर्प लेवे । मजीठ तीन कर्प, मुलैठी आठ पल
 इन सबका कल्क बनाकर उपरोक्त प्वाय तेल, दूध इन सबको मिलाकर पकावे ।
 तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इस तेलके प्रयोगसे क्षीणवीर्य, क्षीणवल,
 क्षीणाग्नि, उन्माद, चित्तका विगडना, अपस्मार यह सब विकार दूर होकर मनुष्य
 बल, वीर्य, अग्नि सम्पन्न होजाताहै । यह अमृतादिनामक तैल वातव्याधियोंको दूर
 करनेमें सर्वश्रेष्ठ मानाहुआ है और भगवान् कृष्णात्रेयजीने वेद्योंके पूजित इस तैलको
 कथन कियाहै ॥ १५३-१५९ ॥

रास्नादितैल ।

रास्नासहस्रनिर्यूहेतैलद्रोणंविपाचयेत् ।

गन्धैर्हमवतैःपिष्टैरेलाद्यैश्चानिलार्त्तिनुत् ॥ १६० ॥

रास्नाका काय १००० पल (६४ सेर) तैल १ द्रोण (१६ सेर) और
 उपरोक्त अमृतादि काथमें कहेहुए इलायची आदि संपूर्ण द्रव्योंका कल्क तथा
 दिग्मवान् पर्वतमें होनेवाले उत्तम गंधद्रव्य इन सबको मिलाकर पकावे । इस तेलके
 नस्य, अभ्यंग आदिके प्रयोगसे संपूर्ण वातरोग दूर होतेंहैं ॥ १६० ॥

बलादि चार प्रकारके तैल ।

एषकल्पस्तुवलयोःप्रसारण्यश्वगन्धयोः । कल्पोज्यमष्टगन्धायांप्र-
सारण्यांबलाद्वयोक्त्वाथकल्कपयोभिर्वाबलादीनांपचेत्पृथक् ॥१६१॥

इसी रासना तेलके समान बला, अतिबला, प्रसारिणी, असगंधका तेल बनाकर वातरोगोंमें प्रयोग कियाजाताहै । यहांपर बला अथवा नागबला, प्रसारिणी वा असगंधका क्वाथ रास्नाके समान लेना चाहिये । तथा कल्क और दूध आदिक भी पृथक् २ अमृता तेलके समान ही लेना चाहिये । यह बलातेल नागबला तेल, प्रसारिणी तेल और असगंधादि तेल अमृतातेलके समान गुण करनेवालेहैं ॥ १६१ ॥

मूलकादितैल ।

मूलकस्वरसंक्षीरंतैलंदध्यम्लकाञ्जिकम् । तुल्यंविपाचयेत्कल्कैर्व-
लाचित्रकसैन्धवैः ॥ १६२ ॥ पिप्पल्यतिविषारास्त्राचविकागुरुशि-
शुकैः । भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥ १६३ ॥ पुष्कराह्व-
शटीविल्वशताह्वानतदारुभिः । तत्सिद्धंपीतमत्युग्रान्हन्तिवाता-
त्मकान्गदान् ॥ ॥ १६४ ॥

मूलक (सलजम) का स्वरस, दूध, तेल, दहीका जल, कांजी इन सबको समान भाग लेवे और तेलसे चौथाई भाग नीचे लिखे द्रव्योंका कल्क मिलावे । जैसे बलाकी जड़, चित्रक, सेंधानमक, पीपल, अतीश, रास्ना, चव्य, क्षगर, सुहांजनेकी जड़, भिलावेकी गिरी, वच, कूठ, गोखरू, सोंठ, पोहकरमूल, कचूर, बेलकी गिरी, सौंफ, तगर और देवदारु इन सबको पीसकर कल्क बनावे । यह कल्क उपरोक्त रस, तेल आदिमें मिलाकर तैल सिद्ध करे । इस तैलको पीने और नस्य आदि कर्मोंमें प्रयोग करनेसे बड़ेदुष्ट वातरोग भी शान्त होतेहैं ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

वृषमूलादितैल ।

वृषमूलगुडूच्योश्चद्विशतस्यशतस्यच । अश्वगन्धाचित्रकयोःक्वाथे
तैलाढकंपचेत् ॥ १६५ ॥ सक्षीरंवायुनाभग्नेदध्याज्जर्जरितेतथा ।
प्राक्तैलाच्चापसिद्धश्चस्यादेतद्विगुणोत्तरम् ॥ १६६ ॥

बांसेकी जड़ २०० पल, गिलोय २०० पल, असगंध १०० पल, चित्रक १००पल इन सबको फूटकर आठगुने जलमें पकावे । चौथाई भाग शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इसमें १ आठक तेल तथा १ आठक दूध मिलाकर पकावे । यदि इसमें उपरोक्त अमृतातेलमें कहेदुष्ट द्रव्योंका कल्क भी मिलावे तो दोगुना गुणकारक होजाताहै ।

और कल्कके अभावमें ऐसेही सिद्ध किया तैल भी वातरोगोंको दूर कर ताहै ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

रास्नादितैल ।

रास्नाशिरिषयष्टचाह्वशुण्ठीसहचरामृताः । श्याणाकदारुसम्याका
हयगन्धात्रिकण्टकाः ॥ १६७ ॥ एषां दशपलान्भागान्कषायमुपक-
ल्पयेत् । ततस्तेन कषायेण सर्वगन्धैश्चकार्षिकैः ॥ १६८ ॥ दध्यार-
नालमाषाम्बुमूलकेक्षुरसैः शुभैः । पृथक्प्रस्थोन्मितैः सार्द्धतैलप्रस्थं
विपाचयेत् ॥ १६९ ॥ ग्रीहमूत्रग्रहश्वासकासमारुतरोगनुत् । एत-
न्मूलकतैलाद्यं वर्णायुर्वलवर्द्धनम् ॥ १७० ॥

रास्ना, सिरसकी छाल, मुलैठी, सोंठ, कालावांसा, गिलोय, सोनापाठा, देवदारु, अमलतास, असगंध, गोखरू यह सब दशदश पल लेवे । इनको आठगुने जलमें पकाय चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर दही, कांजी, उडदोंका काय, मूलीका रस, यह एकएक प्रस्थ लेवे । सर्व गंधद्रव्य एकएक कर्प लेवे, इन सबको एक प्रस्थ तैलमें मिलाकर पकावे । इस तैलके मलनेसे तथा अन्य प्रकारसे प्रयोग करनेसे या वस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे मूत्राघात, खांसी, श्वास और सब प्रकारके वायुके रोग नष्ट होतेहैं । यह तेल मूलकतेलसे भी श्रेष्ठ है तथा बल, वर्ण और आयुको बढ़ानेवाला है ॥ १६७-१७० ॥

यवकाथादितैल ।

यवकोलकुलत्थानांमत्स्यानांशिमुविल्वयोः । रसेनमूलकानाञ्चतै-
लंदधिपयोऽन्वितम् ॥ १७१ ॥ साधयित्वाभिपग्दद्यात्सर्ववातामया-
पहम् । लशुनस्वरसेसिद्धतैलमेभिश्चवातनुत् ॥ १७२ ॥

यव, वेर, कुल्थी, मछली, मुहांजना, बेलकी गिरी और मूली इन सबके कुलग २ काय एकएक सेर लेवे । दही १ सेर, दूध १ सेर और तेल १ सेर सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । यह तेल संपूर्ण वातरोगोंको दूर करताहै । इसी प्रकार लहसुनके स्वरससे सिद्ध कियाहुआ तेल भी वातरोगोंको नष्ट करताहै ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

इन तैलोंसे संतानकी उत्पत्ति ।

तैलान्येतान्यृतुस्नातामङ्गनांपाययेत्तच ।

पीत्वान्यतममेपांहिवन्ध्यापिजनयेत्सुतम् ॥ १७३ ॥

यदि ऋतुस्नाता स्त्री इन बला आदिक तैलोंमेंसे किसी एक तेलका पान करे तो
वैध्या भी पुत्रको उत्पन्न करनेवाली होजातीहै ॥ १७३ ॥

अन्यतैलोंका निर्देश ।

यच्चशीतज्वरेतैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम् ।

अनेकशतशस्तच्चसिद्धंस्याद्वातरोगनुत् ॥ १७४ ॥

शीतज्वरमें जो अगरू आदिक तैलोंका कथन कर आयेहैं वह अनेक वार पकाकर
प्रयोग करनेसे वातव्याधियोंको दूर करतेहैं । अथवा यों कहिये कि वह अगरू आदि
तेल जो शीतज्वरोंमें पहले कहेहैं उन्हें वातरोगोंको दूर करनेमें हमने सैकड़ों वार
आजमायाहै ॥ १७४ ॥

वक्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपि च ।

तानिचानिलशान्त्यर्थंसिद्धिकामःप्रयोजयेत् ॥ १७५ ॥

आगे जो वातरक्त रोगमें तैलोंका कथन करेंगे यशकी इच्छावाला वैद्य अथवा
आरोग्यताकी इच्छावाला रोगी वातरोगोंकी शान्तिके लिये उन तैलोंका प्रयोग
करे ॥ १७५ ॥

वातरोगोंमें तैलोंकी प्रधानता ।

नास्तितैलात्परंकिञ्चिदौषधंमारुतापहम् । व्यवाय्युष्णगुरुस्नेहात्सं-

स्काराह्वलवत्तरम् ॥ १७६ ॥ गणैर्वातहरैस्तस्माच्छतशोऽथसह-

स्रशः । सिद्धंक्षिप्रतरंहन्तिसूक्ष्ममार्गस्थितान्गदान् ॥ १७७ ॥

तेलके समान वातव्याधियोंको दूर करनेवाली और कोई औषधि नहीं है क्योंकि
तेल-व्यवायी, उष्ण, भारी और स्निग्ध होनेसे वायुके गुणोंसे विरोधी होताहै ।
इसलिये वायुको शान्त करताहै । यदि तैलको वातनाशक द्रव्योंद्वारा संस्कार
क्रियाजायं तो यह और भी विशेषरूपसे वातव्याधियोंको नष्ट करताहै इसलिये वात-
नाशक गणोंसे तैलोंको १०० वार अथवा १००० वार या सैकड़ों प्रकारसे सिद्ध
करके वातव्याधियोंमें प्रयोग करे । यह सूक्ष्म मार्गोंमें प्रवेश होजनेवाला होनेसे
सूक्ष्म मार्गोंके रोगोंको शीघ्र नष्ट करदेताहै ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

क्रियासाधारणीसर्वासंसृष्टेचापिशस्यते ।

वातपित्तादिभिःस्रोतःस्त्रावृतेषु विशेषतः ॥ १७८ ॥

यह साधारणी क्रिया जिस प्रकार केवल वातव्याधिमें दितकारक है वैसेही वायुके
साथ पित्त धौग कफका संसर्ग होनेपरभी है । अब पित्तादिसे आरुत वायुकी विशेष
रूपसे चिकित्साका कथन करतेहैं ॥ १७८ ॥

और कल्कके अभावमें ऐसेही सिद्ध किया तैल भी वातरोगोंको दूर करता है ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

राम्नादितैल ।

राम्नाशिरीषयष्ट्याह्वशुण्ठीसहचरामृताः । श्योणाकदारुसम्याका
हयगन्धात्रिकण्टकाः ॥ १६७ ॥ एषां दशपलान्भागान्कषायमुपक-
ल्पयेत् । ततस्तेन कषायेण सर्वगन्धैश्चकार्षिकैः ॥ १६८ ॥ दध्यार-
नालमाषाम्बुमूलकेक्षुरसैः शुभैः । पृथक्प्रस्थोन्मितैः सार्द्धं तैलप्रस्थं
विपाचयेत् ॥ १६९ ॥ ग्रीहमूत्रग्रहश्वसासकारुतरोगनुत् । एत-
न्मूलकतैलाग्र्यं वर्णायुर्वलवर्द्धनम् ॥ १७० ॥

राम्ना, सिरसकी छाल, मुलैठी, सोंठ, कालावांसा, गिलोय, सोनापाठा, देवदारु, अमलतास, असगंध, गोखरू यह सब दशदश पल लेवे । इनको आठगुने जलमें पकाय चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर दही, कांजी, उडदोंका काय, मूलीका रस, यह एकएक प्रस्थ लेवे । सर्व गंधद्रव्य एकएक कर्प लेवे, इन सबको एक प्रस्थ तैलमें मिलाकर पकावे । इस तैलके मलनेसे तथा अन्य प्रकारसे प्रयोग करनेसे या वस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे मूत्राघात, खांती, श्वास और सब प्रकारके वायुके रोग नष्ट होतेहैं । यह तेल मूलकतेलसे भी श्रेष्ठ है तथा बल, वर्ण और आयुको बढ़ानेवाला है ॥ १६७-१७० ॥

यवकायादितैल ।

यवकोलकुलरथानां मत्स्यानां शिशुविल्वयोः । रसेन मूलकानाञ्च तै-
लं दधिपयोऽन्वितम् ॥ १७१ ॥ साधयित्वाभिपग्दद्यात्सर्ववातामया-
पहम् । लशुनस्वरसेसिद्धं तैलमेभिश्चातनुत् ॥ १७२ ॥

यव, बेर, कुल्फी, मछली, सुहांजना, बेलकी गिरी और मूली इन सबके कुलग २ काय एकएक सेर लेवे । दही १ सेर, दूध १ सेर और तेल १ सेर सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । यह तेल संपूर्ण वातरोगोंको दूर करता है । इसी प्रकार लहसुनके स्वरसे सिद्ध कियाहुआ तेल भी वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

इन तैलोंसे संतानकी उत्पत्ति ।

तैलान्येतान्यृतुस्नातामङ्गनांपाययेत्तच्च ।

पीत्वान्यतममेपांहिवन्ध्यापि जनयेत्सुतम् ॥ १७३ ॥

यदि ऋतुस्नाता स्त्री इन बला आदिक तैलोंमेंसे किसी एक तेलका पान करे तो
वैध्या भी पुत्रको उत्पन्न करनेवाली होजातीहै ॥ १७३ ॥

अन्यतैलोंका निर्देश ।

यच्चशीतज्वरेतैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम् ।

अनेकशतशस्तच्चसिद्धस्याद्वातरोगनुत् ॥ १७४ ॥

शीतज्वरमें जो अगरू आदिक तैलोंका कथन कर आयेहैं वह अनेक बार पकाकर
प्रयोग करनेसे वातव्याधियोंको दूर करतेहैं । अथवा यों कहिये कि वह अगरू आदि
तेल जो शीतज्वरोंमें पहले कहेहैं उन्हें वातरोगोंको दूर करनेमें इमने सैकड़ों बार
आजमायाहै ॥ १७४ ॥

वक्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपिच ।

तानिचानिलशान्त्यर्थसिद्धिकामःप्रयोजयेत् ॥ १७५ ॥

आगे जो वातरक्त रोगमें तैलोंका कथन करेंगे यशकी इच्छावाला वैद्य अथवा
आरोग्यताकी इच्छावाला रोगी वातरोगोंकी शान्तिके लिये उन तैलोंका प्रयोग
करे ॥ १७५ ॥

वातरोगोंमें तैलोंकी प्रधानता ।

नास्तितैलात्परंकिञ्चिदौषधंमारुतापहम् । व्यवायुष्णगुरुस्नेहात्सं-

स्काराद्बलवत्तरम् ॥ १७६ ॥ गणैर्वातहरैस्तस्माच्छतशोऽथसह-

स्रशः । सिद्धंक्षिप्रतरंहन्तिसूक्ष्ममार्गस्थितान्गदान् ॥ १७७ ॥

तेलके समान वातव्याधियोंको दूर करनेवाली और कोई औषधि नहीं है क्योंकि
तेल-व्यवायी, उष्ण, भारी और स्निग्ध होनेसे वायुके गुणोंसे विरोधी होताहै ।
इसलिये वायुको शान्त करताहै । यदि तैलको वातनाशक द्रव्योंद्वारा संस्कार
क्रियाजायं तो यह और भी विशेषरूपसे वातव्याधियोंको नष्ट करताहै इसलिये वात-
नाशक गणोंसे तैलोंको १०० बार अथवा १००० बार या सैकड़ों प्रकारसे सिद्ध
करके वातव्याधियोंमें प्रयोग करे । यह सूक्ष्म मार्गोंमें प्रवेश होजानेवाला होनेसे
सूक्ष्म मार्गोंको रोगोंको शीघ्र नष्ट करतेहैं ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

क्रियासाधारणीसर्वासंसृष्टेचापिशस्यते ।

वातपित्तादिभिःस्त्रोतःस्वावृतेषु विशेषतः ॥ १७८ ॥

यह साधारणी क्रिया जिस प्रकार केवल वातव्याधिमें हितकारक है वैसेही वायुके
साथ पित्त और कफका संसर्ग होनेपरभी दे । अब पित्तादिसे आवृत वायुकी विशेष
रूपसे चिकित्साका कथन करतेहैं ॥ १७८ ॥

पित्तावृतवातकी चिकित्सा ।

पित्तावृतेविशेषेणशीतामुष्णांतथाक्रियाम् ।

व्यत्यासात्कारयेत्सर्पिर्जीवनीयञ्चशस्यते ॥ १७९ ॥

यदि पित्तद्वारा वायुका मार्ग आवृत होगया हो तो विपरीतक्रमसे शीतल और उष्णक्रिया करनी चाहिये तथा जीवनीयगणसे सिद्ध किए घृतका प्रयोग करना हितकारी है ॥ १७९ ॥

धन्वमांसंयवाःशालिर्यापनाःक्षीरवस्तयः ।

विरेकःक्षीरपानञ्चपञ्चमूलीबलाश्रितम् ॥ १८० ॥

मधुयष्टिवलातैलघृतक्षीरैश्चसेचनम् ।

पञ्चमूलकपायेणकुर्याद्वाशीतवारिणा ॥ १८१ ॥

पित्तावृत वायुमें जंगली-जीवोंका मांसरस, शालिचावल, यापन वस्ति, क्षीरवस्ति, विरेचन पंचमूल और बलासे सिद्ध किए दूधका पान करना तथा मुलेठीका क्वाय, बला तैल, वातनाशक घृत, वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये दूध पंचमूलका क्वाय अथवा शीतल जल इनसे सेचन करना हितकारक है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

कफावृतवातकी चिकित्सा ।

कफावृतेयवान्नाग्निजाङ्गलामृगपक्षिणः । स्वेदास्तीक्षणानिरूहाश्च

वमनंसविरेचनम् ॥ १८२ ॥ जीर्णसर्पिस्तथातैलंतिलसर्पपजंशु-

भम् । संसृष्टेकफपिताभ्यांपित्तमादौविनिर्जयेत् ॥ १८३ ॥

कफद्वारा वायुका अवरोध होनेसे यवान्न जंगली जीवोंका मांसरस, स्वेदन, तीक्ष्ण, निरूहण, वमन और विरेचन कराना हितकारक है । तथा पुराना घृत और सरसोंका तैलका प्रयोग करना भी हितकारक है । कफ और पित्तके संसर्गमें पहिले पित्तकी जीत लेना चाहिये ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

आमाशयगतंमत्वाकफंवमनमाचरेत् ।

पक्वाशयेविरेकन्तुपित्तेसर्वत्रगेतथा ॥ १८४ ॥

यदि कफ आमाशयमें हो तो वमन करादेना चाहिये और यदि कफका संसर्ग पक्वाशयमें हो तो विरेचन कराना चाहिये और पित्त चाहे किसी स्थानमें हो तो उसमें विरेचन करानाही हितकारक है । अथवा सर्व शरीरगत पित्तमें विरेचन करानाही हितकारक है ऐसा मानना चाहिये ॥ १८४ ॥

स्वेदैर्विष्यन्दितःश्लेष्मायदापक्वाशयाच्च्युतः ।

पित्तवादर्शयेल्लिङ्गं वस्तिभिस्तौ विनिर्हरेत् ॥ १८५ ॥

स्वेदप्रयोगोंसे यदि कफ इधर उवरसे पिवलकर अपने स्थानसे पतित होकर पकाशयमें पहुँचजाय और साथमें पित्तके भी चिह्न दिखाई पड़े तो उनको वस्ति-कर्मद्वारा निकाल डालना चाहिये ॥ १८५ ॥

श्लेष्मणाऽनुगतं वातमुष्णैर्गोमूत्रसंयुतैः । निरूहैः पित्तसंसृष्टं निर्हरे-
त्क्षीरसंयुतैः ॥ १८६ ॥ मधुरौषधसिद्धैश्च तैलैस्तमनुवासयेत् ।

शिरोगते तु सकफे धूमनस्यादिकारयेत् ॥ १८७ ॥

कफसंयुक्त वातमें उष्ण द्रव्योंमें गोमूत्र मिलाकर निरूहण वस्ति करना चाहिये । और पित्तसंयुक्त वातमें गोमूत्रके बदले दूध मिलाकर निरूहणवस्ति करना चाहिये । निरूहण वस्तिद्वारा दोषोंके निकलजानेपर मधुरगण (जीवनीयगण) से सिद्ध किये-हुए तैलद्वारा अनुवासन करे । यदि कफयुत वायु शिरोगत हो तो धूमप्रयोग और नस्य आदि प्रयोग करना चाहिये ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

उरस्थवातमें क्रिया ।

द्वतेपित्तेकफेयः स्यादुरःस्रोतोऽनुगोऽनिलः ।

सशेषः स्यात्क्रियात्त्रकार्यैकेवलवातिकी ॥ १८८ ॥

कफपित्तके निकलजानेपर भी यदि छातीके स्रोतोंमें वातका अनुबंध हो तो केवल वातनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १८८ ॥

रक्तादिधातुओंसे आवृतवातकी पृथक् २ चिकित्सा ।

शोणितेनावृते कुर्याद्वातशोणितकीं क्रियाम् ।

प्रमेहवातमेदोघ्नीमामवाते प्रयोजयेत् ॥ १८९ ॥

रक्तावृत वातमें वातरक्तनाशक क्रिया करनी चाहिये । आमसंयुक्त वातमें प्रमेह, वात और भेदनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १८९ ॥

स्वेदाभ्यङ्गारसाः क्षीरं स्नेहामांसावृते मत्ताः ।

महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थे पूर्ववद्रेतसावृते ॥ १९० ॥

मांसावृत वातमें स्वेद, अभ्यंग, मांसरस, दूध और स्नेह द्रव्योंका प्रयोग हितकारक होता है । अस्थि और मज्जागत वातमें पूर्वोक्त महास्नेहका प्रयोग करना हितकारक है । और शुक्रावृत वातमें शुक्रगत वायुकी जो चिकित्सा कही है तो करनी चाहिये ॥ १९० ॥

अन्नावृत्तेतुवमनंपाचनंदीपनंलघु ।

मूत्रलानितुमूत्रस्थेस्वेदाःसोत्तरवस्तयः ॥ १९१ ॥

अन्नावृत्त वातमें वमन कराना तथा पाचन और दीपन एवं हलके द्रव्योंका प्रयोग करना हितकारक है । मूत्रावृत्त वातमें मूत्रके लानेवाली औषधियों, स्वेद और उत्तर-वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १९१ ॥

एरण्डतैलंवर्चःस्थेस्निग्धोदावर्त्तवत्क्रिया ॥ १९२ ॥

मलावृत्त वातमें स्निग्ध और उदावर्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा एरण्ड-तैलका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १९२ ॥

स्वस्थानस्थोवलीदोषःप्रोक्तंस्वरौपधैर्जयेत् । वमनैर्वाविरेकैर्वाव-
स्तिभिःशमनेनवा । इत्युक्तमावृत्तेवातेपित्तादिभिर्यथायथम् १९३ ॥

यदि दोष अपने २ स्थानमेंही कुपित हों तो उन्हें, उन्हेंके अनुसार चिकित्सा और औषधियों द्वारा जीतना चाहिये । जैसे-अपने स्थानमें कफका कोप हो तो वमन कराना चाहिये । पित्तका कोप हो तो विरेचन और अपने स्थानमें वायुका कोप हो तो वस्तिकर्म कराना हित है । इस प्रकार पित्तादिकोंसे आवृत्त वायुकी यथोचित चिकित्साका वर्णन कियागया है ॥ १९३ ॥

पांचों वायुओंके परस्पर आवरण ।

मारुतानांहिपञ्चानामन्योन्यावरणेशृणु । लिङ्गं व्याससमासाभ्या-
मुच्यमानंमयाऽनघ । प्राणोवृणोत्यपानादीन्प्राणं वृण्वन्तितेऽपिच ।
उदानायास्तथान्योऽन्यंसर्वेष्वयथाक्रमम् ॥ १९४ ॥

पांचों वायु परस्पर जब मार्गको रोक लेतीहैं तो उनके जो लक्षण होतेहैं संक्षेप और विस्तारसे कहे जातेहुए उनको हे अनघ ! श्रवण करो । प्राणवायु जब अपान आदि वायुओंको रोक लेतीहै और वे अपानादि वायुमें प्राणवायुको रोक लेतीहैं तथा उदानादि वायुएँ भी आपसमें परस्पर जिस प्रकार १ दूसरेकी यथाक्रम आवृत्त करलेतीहैं उनकी यथाक्रम श्रवण करो ॥ १९४ ॥

वायुओंके परस्पर आवरणके २० भेद ।

त्रिंशतिर्वरणान्येतान्युत्वणानांपरस्परम् ।

मारुतानांहिपञ्चानांतानिसम्यक्प्रतर्कयेत् ॥ १९५ ॥

उत्पण इन पांचों वायुओंके परस्पर आवरणके जो बीस भेद होतेहैं उनको बुद्धि-मान्य भली प्रकार तर्कना करे अर्थात् जाने ॥ १९५ ॥

प्राणावृतव्यान वायुके लक्षण और चि० ।
सर्वेन्द्रियाणां शून्यत्वं ज्ञात्वा स्मृतिव लक्षयम् ।
व्याने प्राणावृते लिङ्गं कर्म तत्रोद्ध्वं जत्रुकम् ॥ १९६ ॥

जब व्यानवायुसे प्राणवायु आवृत होजाती है तो संपूर्ण इन्द्रियोंमें शून्यता तथा ज्ञान, स्मृति और बलका क्षय होता है । इसमें ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंकी जो चिकित्सा है सो करना हितकारक है ॥ १९६ ॥

व्यानावृत प्राणवात ।

स्वेदोऽत्यर्थलोमहर्षस्त्वग्दोषः सुप्तगात्रता ।

प्राणे व्यानावृते तत्र स्नेहयुक्तं विरेचनम् ॥ १९७ ॥

प्राणवायु व्यानवायुसे आवृत होय तो देहमें अत्यंत पसीने, रोमहर्ष, त्वचाके विकार, शरीरका सुन्नता होना यह लक्षण होते हैं । इसमें स्नेहयुक्त विरेचन करना हितकारक है ॥ १९७ ॥

प्राणावृत समानके ल० ।

प्राणावृते समाने स्युर्जडगद्गदमूकताः ।

चतुष्प्रयोगाः शस्यन्ते स्नेहास्तत्र सयापनाः ॥ १९८ ॥

समानवायु प्राणवायु द्वारा आवृत हो तो बोलनेमें जडता, गद्गद शब्द, मूकता यह लक्षण होते हैं । इसमें पान, अभ्यंग, अनुवासन और नस्य इन चार, प्रकारोंसे स्नेहका प्रयोग करना चाहिये । तथा यापनवस्ति करना भी हितकारक है ॥ १९८ ॥

समानावृत प्राणके लक्षण, चिकित्सा ।

समानेनावृतेऽप्राणे ग्रहणीपाश्ववेदना ।

शूले चामाशये तत्र दीपनं सर्पिरिष्यते ॥ १९९ ॥

समान वायुसे प्राणवायु आवृत होय तो ग्रहणी रोग, पाश्ववेदना, आमाशयमें शूल, यह लक्षण होते हैं । इसमें दीपन घृतोंका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १९९ ॥

प्राणावृत उदान० ।

शिरोग्रहः प्रतिश्यायोनिःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः । हृद्रोगो मुखशोष-

श्राप्युदाने प्राणसंवृतो ततोद्ध्वं भागिकं कर्म कार्प्यमाश्वसनं तथा २००

बलवान् प्राण वायुसे उदान वायु आवृत होजाय तो शिरोग्रह, प्रतिश्याय, निःश्वास और उच्छ्वासकी रुकावट, हृद्रोग, मुखशोष यह लक्षण होते हैं । इसमें उर्ध्वदेहिक चिकित्सा अर्थात् वमन, नस्य आदि शरीरके उपरले भागकी चिकित्सा और आश्वसन करना हितकारक है ॥ २०० ॥

उदानावृत प्राण० ।

कर्मेजोबलवर्णानानाशोमृत्युरथापिवा । उदानेनावृतेप्राणेतंशनैः
शीतवारिणा । सिञ्चेदाश्वासयेच्चैवसुखञ्चैवोपपादयेत् ॥ २०१ ॥

उदान वायुसे प्राण वायु रुकजाय तो कर्म, शक्ति, ओज और बल, वर्णका नाश होताहै अथवा मृत्यु ही होजातीहै । इसमें धीरे २ शीतल जलसे मुख आदि स्थानोंको सिंचन करे और आश्वासन देवे तथा अन्य उपकारी उपायोंको करे ॥ २०१ ॥

प्राणावृत अपान ।

ऊर्ध्वगेनावृतेऽपानेच्छर्दिश्वासादयोगदाः ।

स्युर्वातेतत्रवस्त्यादिभोज्यञ्चैवानुलोमनम् ॥ २०२ ॥

बलवान् प्राणवायुसे अपान वायु रुकजाय तो वमन और श्वास आदिक रोग उत्पन्न होतेहैं । इसमें वस्तिकर्म और अनुलोमनकर्त्ता भोजनोंका सेवन करना हित कारक है ॥ २०२ ॥

आपानावृत प्राणवा० ।

मोहोऽल्पोऽग्निरतीसारऊर्ध्वगेऽपानसंवृते ।

वातेस्याद्गमनंतत्रदीपनंग्राहिचाशनम् ॥ २०३ ॥

यदि बलवान् अपान वायुसे प्राण वायु आवृत होजाय तो मोह, अग्निकी मंदता और अतिसार होतेहैं । इसमें वमन कराना तथा दीपन और संग्राही आहारका सेवन कराना हित है ॥ २०३ ॥

व्यानावृत अपान० ।

चम्याध्मानमुदावर्त्तगुल्मार्त्तिपरिकर्त्तिकाः ।

लिङ्गं व्यानावृतेऽपानेतंस्निग्धैरनुलोमयेत् ॥ २०४ ॥

व्यानवायुसे अपानवायु आवृत होजाय तो वमन, अफारा, उदावर्त्त, गुल्म और कतनेकीसी पीडा होतीहै । इसमें स्निग्ध और अनुलोमन क्रिया हित-कारक है ॥ २०४ ॥

अपानावृतवा० ।

अपानेनावृतेव्यानेभवेद्विण्मूत्ररेतसाम् ।

अतिप्रवृत्तिस्तत्रापिसर्वसंग्रहणंमतम् ॥ २०५ ॥

बलवान् अपानवायुद्वारा व्यानवायु लपेटमें जाजाय तो विष्ठा, मूत्र और वीर्यकी अत्यंत प्रवृत्ति होने लगतीहै । इसमें भी संग्राही चिकित्सा करना हित कारक है ॥ २०५ ॥

समानावृत व्यान ।

मूर्च्छातन्द्राप्रलापोऽङ्गसादोऽन्योजोवलक्ष्यः ।

समानेनावृतेव्यानेव्यायामोलघुभोजनम् ॥ २०६ ॥

बलवान् समान वायुद्वारा व्यान वायु आवृत होजाय तो मूर्च्छा, तंद्रा, प्रलाप, अंगोंका सुन्नता होजाना तथा जठराग्नि, ओज और बलका क्षय होताहै । इसमें व्यायाम और हल्के भोजनका कराना हितकारक होताहै ॥ २०६ ॥

उदानावृत व्यान ।

स्तब्धताल्पाग्नितास्वेदश्चेष्टाहानिर्निमीलनम् ।

उदानेनावृतेव्यानेतत्रपथ्यमितंलघु ॥ २०७ ॥

उदानवायुसे व्यानवायु आवृत होजाय तो शरीरका जडकना अंग्रिकी अल्पता पसिनिका न आना, चेष्टाकी हानि और नेत्रोंका मिचासा जाना यह लक्षण होतेहैं । इसमें थोडा और हल्का भोजन करना हितकारी है ॥ २०७ ॥

इतरआवरणोंका उपसंहार ।

पञ्चान्योन्यावृतानिवंवातान्त्रुध्येतलक्षणैः । एपांस्वकर्मणांहानिवृ-

द्धिर्वावरणेमता ॥ २०८ ॥ यथास्थूलंसमुद्दिष्टमेतदावरणेपृथक् ।

सलिङ्गभेपजंसम्यक्शृणुत्वबुद्धिवृद्धये ॥ २०९ ॥

इन पांचों वायुओंके परस्पर आवृत होनेसे इस प्रकारके लक्षणोंको जानना चाहिये । इनके परस्पर आवृत होनेसे इनके अपनेअपने कर्मोंकी हानि अथवा वृद्धि होनाही आवरण कहाजाताहै । स्थूल रूपसे इन आठ प्रकारके आवरणोंका कथन कियाहै । वैद्यकी बुद्धिकी वृद्धिक लिये इन आठ प्रकारके आवरणोंके लक्षण और चिकित्साका निर्देश भी करदियाहै । सो वैद्योंको बुद्धिपूर्वक जानना चाहिये ॥ २०८ ॥ २०९ ॥

अन्य १२ आवरणोंका निर्देश ।

स्थानान्यवेक्ष्यवातानां वृद्धिहानिश्चकर्मणाम् । द्वादशावरणान्यन्या-

न्यभिलक्ष्यभिपग्जितम् ॥ २१० ॥ कुर्यादभ्यञ्जनस्नेहंपानवस्त्या-

दिसर्वशः । क्रममुष्णमनुष्णंवाव्यत्यासादवचारयेत् ॥ २११ ॥

वारह प्रकारके और वायुओंके आवरणको निर्देश करतेहैं, उनमें दोषोंके स्थान और उनके अपने २ कर्मोंकी वृद्धि और हानिके विचारसे वारह प्रकारके आवरणोंको जानकर उनमें अभ्यञ्जन, स्नेहन, नस्य और पान तथा वस्तिआदि क्रमको उनकी शांतिके लिये करना चाहिये । तथा विपरीत भावसे उष्ण और शीतल क्रियाको करना हितकारक होताहै ॥ २१० ॥ २११ ॥

उदानेयोजयेदूर्ध्वमपानश्चानुलोमयेत् ।

समानंशमयेच्चैवत्रिधाव्यानन्तुयोजयेत् ॥ २१२ ॥

उदान वायु आवृत होय तो वमन और नस्य आदि ऊर्ध्व क्रिया करना चाहिये । अपान वायु आवृत हो तो वस्तिकर्म विरेचन और अनुलोमन क्रिया करना चाहिये । समान वायु आवृत हो तो शमन क्रिया करना हितकारक है । व्यान वायु आवृत हो तो संशोधन अनुलोमन वस्ति और संशमन यह सब प्रकारकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१२ ॥

प्राणोरक्ष्यश्चतुर्भ्योऽपिस्थानेह्यस्यस्थितिर्ध्रुवा ।

स्वस्थानंगमयेदेवंवृतानेतान्विमार्गगान् ॥ २१३ ॥

प्राण वायुकी उदानादि अन्य चार वायुओंकी अपेक्षा प्रथम चिकित्सा करनी चाहिये । क्योंकि प्राण वायुका अपने स्थानमें स्थित रहना ही मनुष्यके जीवनके लिये अत्यावश्यक है और इन सब विमार्गगामी वायुओंको प्राण वायुकी स्थितिकी रक्षापूर्वक अपने २ स्थानमें पहुंचा देना चाहिये ॥ २१३ ॥

पित्तावृतप्राण ।

मूर्च्छादाहोभ्रमःशूलंविदाहःशीतकामिता ।

छर्दनञ्चविदग्धस्यप्राणेपित्तसमावृते ॥ २१४ ॥

यदि प्राण वायु पित्तसे आवेष्टित होजाय तो मूर्च्छा, दाह, भ्रम, शूल, विदाह, शीतल वस्तुओंकी इच्छा तथा विदग्ध अन्नका वमन यह लक्षण होतेहैं ॥ २१४ ॥

कफावृतप्राणवायुके लक्षण ।

धीवनंक्षवधूद्गारनिश्वासोच्छ्वाससंग्रहः ।

प्राणेकफावृतेरूपाण्यरुचिश्छर्दिरेवच ॥ २१५ ॥

यदि प्राण वायु कफसे आवृत होय तो मुखसे कफका गिरना, छींक, उकार, श्वास और प्रतिश्वासका रुकना, अरुचि और वमन यह लक्षण होतेहैं ॥ २१५ ॥

पित्तावृत उदानके लक्षण ।

मूर्च्छाद्यानिचरूपाणिदाहोनाभ्युरसोःकृमः ।

ओजोभ्रंशश्चसादश्चाप्युदानेपित्तसंवृते ॥ २१६ ॥

उदान वायु पित्तसे आवेष्टित हो तो मूर्च्छा, दाह, भ्रम, शूल, विदाह, शीतल पदार्थोंकी इच्छा, विदग्ध अन्नका वमन, नाभि और वक्षस्थलमें दाह, क्लान्ति, ओजका नाश तथा शरीरका सुन्नसा होजाना यह लक्षण होतेहैं ॥ २१६ ॥

कफावृत उदानके लक्षण ।

आवृतेऽलेष्मणोदानेवैवर्ण्यवाक्स्वरग्रहः ।

दौर्बल्यंगुरुगात्रत्वमरुचिश्चोपजायते ॥ २१७ ॥

उदान वायु कफसे आवृत हो तो विवर्णता, वाणी और स्वरका रुकना, दुर्बलता, अंगोंमें भारीपन, अरुचि यह लक्षण होतेहैं ॥ २१७ ॥

पित्तावृत समानके लक्षण ।

अतिस्वेदस्तृषादाहोमूर्च्छाचारुचिरेवच ।

पित्तावृतेरमानेस्यादुपघातस्तथोष्मणः ॥ २१८ ॥

समान वायु पित्तसे आवृत हो तो अत्यंत स्वेदका आना, प्यास, दाह, मूर्च्छा, अरुचि और अग्रिका भ्रंश यह लक्षण होतेहैं ॥ २१८ ॥

कफावृत समानके लक्षण ।

अस्वेदोवह्निमान्यञ्चलोमहर्षस्तथैवच ।

कफावृतेसमानेस्याद्गात्राणाञ्चातिशीतता ॥ २१९ ॥

समान वायु कफसे आवृत हो तो पक्षीनेका न आना, मंदाग्नि, रोमहर्ष, अंगोंका अत्यंत शीतल होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २१९ ॥

पित्तावृतव्यानके लक्षण ।

व्यानेपित्तावृतेतुस्याद्दाहःसर्वाङ्गःकृमः ।

गात्रविक्षेपसङ्गश्चसन्तापःसवेदनः ॥ २२० ॥

व्यान वायु पित्तसे आवृत हो तो सब अंगोंमें दाह, कृम, अंगोंका इधर उधर फेंकना, वाणीका रुकना, संताप और पीडा यह लक्षण होतेहैं ॥ २२० ॥

कफावृत व्यानके लक्षण ।

गुरुतासर्वगात्राणांसर्वसन्ध्यस्थिजारुजाः ।

व्यानेकफावृतेलिङ्गगतिसङ्गस्तथाधिकः ॥ २२१ ॥

व्यान वायु कफसे आवृत हो तो सब अंगोंमें भारीपन, संपूर्ण शरीरकी संधियोंमें और अस्थियोंमें पीडा और गतिका अवरोध यह लक्षण होतेहैं ॥ २२१ ॥

पित्तावृत अपानके लक्षण ।

हारिद्रमूत्रवर्चस्त्वक्तापश्चगुदमेदूयोः ।

लिङ्गपित्तावृतेऽपानेरजसःसंप्रवर्त्तनम् ॥ २२२ ॥

अपान वायु पित्तसे आवृत हो तो मल और मूत्र तथा त्वचा हल्दीके समान वर्ण-
वाले हों, गुदा और लिंगेन्द्रिय तपायमान हो यदि यह स्त्रियोंको होय तो अत्यंत
रजकी प्रवृत्ति होने लगती है ॥ २२२ ॥

कफावृत अपानके लक्षण ।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् ।

श्लेष्मणासंवृतेऽपानेकफमेहस्यचागमः ॥ २२३ ॥

अपान वायु कफसे आवृत हो तो फटाहुआ, कफमिश्रित, आममिश्रित और भारी
मल आने लगताहै तथा कफजनित प्रमेह होताहै ॥ २२३ ॥

पित्तकफमिश्रितावरण ।

लक्षणानान्तुमिश्रत्वंपित्तस्यचकफस्यच ।

उपलक्ष्यभिपग्निद्वान्मिश्रमावरणंवेदेत् ॥ २२४ ॥

कफ और पित्तके मिलेहुए लक्षण होंय तो विद्वान् वैद्य दोनोंसे मिश्रित आवरण
कहे ॥ २२४ ॥

यद्यस्यवायोर्निर्दिष्टस्थानंतत्रेतरौस्मृतौ ।

दोषौबहुविधान्व्याधीन्दर्शयेतांयथानिजान् ॥ २२५ ॥

वायुके जो २ स्थान कथन किये हैं उन उन स्थानोंमें पित्त और कफका आवरण
होय तो यह कफ और पित्त उस स्थानानुसार अपने लक्षणोंवाली व्याधियोंको उत्पन्न
करतेहैं ॥ २२५ ॥

प्राण और उदानकी गुरुता ।

आवृतंश्लेष्मपित्ताभ्यांप्राणञ्चोदानमेवचै । गरीयस्त्वेनपश्यन्ति

भिपजःशास्त्रचक्षुषः ॥ २२६ ॥ विशेषाज्जीवितंप्राणेउदानेसंश्रितं

बलम् । स्यात्तयोःपीडनाद्भानिरायुपश्चबलस्यच ॥ २२७ ॥

कफ और पित्तसे आवृत प्राण वायु तथा उदान वायुको शास्त्रके जाननेवाले वैद्य
गुरुतर कथन करतेहैं क्योंकि मनुष्योंका जीवन प्राण वायुके आश्रय और बल उदान
वायुके आश्रयसे होताहै । इसलिये प्राण और उदानके पीडन होनेसे आयु और
बलकी हानि होतीहै ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

आवृत वायुओंके यत्न न करनेसे हानि ।

सर्वेऽप्येतेपरिज्ञेयाःपरिसंवत्सरात्तथा ।

उपेक्षणादसाध्याःस्युरथवादुरुपक्रमाः ॥ २२८ ॥

संपूर्ण वायुओंके आवृत होनेसे सावधान रहना चाहिये क्योंकि इनका यत्न न करनेसे १ वर्षकी होजानेपर यह असाध्य होजातीहै अथवा दुश्चिकित्स्य होजातीहै ॥ २२८ ॥

हृद्रोगोविद्रधिःप्लीहागुल्मातीसारएवच । भवन्त्युपद्रवास्तेषामा-
वृतानामुपेक्षणात् ॥ २२९ ॥ तस्मादावरणवैद्यःपवनस्योपलक्ष-
येत् । पञ्चात्मकस्यवातेनपित्तेनश्लेष्मणापिवा ॥ २३० ॥ भिष-
गिजतैरतःसम्यगुपलक्ष्यसमाचरेत् । अनभिष्यन्दिभिःस्निग्धैः
स्रोतसांशुद्धिकारिभिः ॥ २३१ ॥

आवृत वायुकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् शीघ्र यत्न न करनेसे हृद्रोग, विद्रधि, प्लीहा, गुल्म और अतिसार उत्पन्न होजातेहैं । इसलिये वैद्यको पंचात्मक वायुके तथा कफ और पित्तके आवरणको जानकर अनभिष्यन्दी, स्निग्ध और स्रोतोंको शुद्ध करनेवाली क्रियाद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२९-२३१ ॥

सर्वस्थानगत आवृत वायुओंकी चिकित्सा ।

कफपित्ताविरुद्धयद्यच्चवातानुलोमनम् ।

सर्वस्थानावृतेऽप्याशुतत्कार्थमारुतेशुभम् ॥ २३२ ॥

यदि वायु सर्व स्थानोंमें आवृत हो तो कफ और पित्तके अविरुद्ध तथा वातको अनुलोमन करनेवाली शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये । अथवा सब स्थानोंमें आवृत वायुकी चिकित्सा अनुलोमन और कफ वातसे अविरोधी तथा शीघ्र करनी हितकारक है ॥ २३२ ॥

यापनावस्तयःप्रायोमधुराःसानुवासनाः । प्रसमीक्ष्यवलाधिव्रयंमृ-
दुवास्त्रंसनंहितम् ॥ २३३ ॥ रसायनानांसर्वेषामुपयोगःप्रशस्यते ।
शैलस्यजतुनोऽत्यर्थपयसागुग्गुलोस्तथा ॥ २३४ ॥ लेहंवाभार्ग-
वप्रोक्तमभ्यस्येत्क्षीरभुङ्करः । अभयामलकीयोक्तानेकादशमिता-
शनः ॥ २३५ ॥

सर्वस्थानगत आवृत वायुमें क्षीरवस्ति, मधुप्राय वस्ति, अनुवासन वस्ति और बलावल विचारकर मृदु विरेचन करना हितकारक है तथा सब प्रकारके रसायनोंका प्रयोग करना अथवा शिलाजीतका निरन्तर दूधके साथ सेवन करना या गृगुलके साथ सेवन करना हितकारक है । अथवा भार्गवके कथन कियेहुए चपवनप्रागका सेवन करे आर

केवल दूधका ही आहार करे या अपयामलकीय अध्यायमें कहीहुई ११ प्रकारकी रसायनोंमेंसे किसी एक रसायनका सेवन करे और मित भोजन किया करे ॥ २३३-२३५ ॥

अपानेनावृतेसर्वदीपनं ग्राहिभेषजम् ।

वातानुलोमनं यच्च पक्वाशयविशोधनम् ॥ २३६ ॥

यदि प्राणादि वायुएं अपान वायुसे आवृत हों तो सब प्रकारके दीपन और ग्राही तथा वातको अनुलोमन करनेवाले औषध अन्नपानका प्रयोग और पक्वाशयका शोधन करनेवाले द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २३६ ॥

इतिसंक्षेपतः प्रोक्तमावृतानां चिकित्सितम् । प्राणादीनां भिषक्कुर्याद्वितर्क्य स्वयमेव तत् ॥ २३७ ॥ पित्तावृते तु पित्तघ्नैर्मारुतस्याविरोधिभिः । कफावृते कफघ्नैस्तु मारुतस्यानुलोमनैः ॥ २३८ ॥

इस प्रकार प्राणादि आवृत वायुओंकी चिकित्साका संक्षेपसे वर्णन किया गया है इन्हें वैद्य अपनी बुद्धिसे ही विस्तार पूर्वक तर्कनाकर औषधियोंकी कल्पना करे । पित्तावृत वायुमें वायुसे अविरोधी और पित्तनाशक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करे तथा कफावृत वातमें वातसे अविरोधी कफनाशक अनुलोमन आदि औषधों द्वारा चिकित्सा करे ॥ २३७-२३८

लोके वाय्वर्कसोमानां दुर्विज्ञेया यथा गतिः । तथा शरीरे वातस्य पित्तस्य च कफस्य च ॥ २३९ ॥ क्षयं वृद्धिसमत्वञ्च तथैवावरणं भिषक् । विज्ञाय पवनादीनां प्रमुह्यति कर्मसु ॥ २४० ॥

जैसे जगत्में वायु, सूर्य और चन्द्रमाकी गति दुर्विज्ञेय है उसी प्रकार शरीरमें भी वात, पित्त, कफकी गति भी दुर्विज्ञेय है । जो वैद्य इन वातादि दोषोंकी क्षय वृद्धि समता और आवरणताको जान लेता है वह चिकित्साके समय इन वातादि दोषोंको जानकर इनकी चिकित्साके क्रममें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ २३९ ॥ २४० ॥

अध्यायका उपसंहार

तत्र श्लोकौ ।

पश्चात् मनःस्थानवशाच्छरीरे स्थानानि कर्माणि च देहधातोः । प्रकोपहेतुः कुपितश्च रोगान्स्थानेषु चान्येषु वृत्तोऽवृत्तश्च ॥ २४१ ॥ प्राणेश्वरः प्राणभृतां करोति क्रियाचतेषामखिलानिरुक्ता । तान्देशसात्म्यतुल्यलान्यवेक्ष्य प्रयोजयेच्छास्त्रमतानुसारी ॥ २४२ ॥

इति श्री चर० चिकि० वातचिकित्सितं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस वातचिकित्सितनामक अध्यायमें पंचात्मक वायुके स्थान स्थानवशसे शरीरमें वायुके स्थान और देहधातुके कर्म प्रकोप के कारण कुपित वायु जिस प्रकार अपने स्थानमें या अन्य स्थानमें रोगोंको उत्पन्न करती है तथा आवृत वायु और अनावृत वायु जिस प्रकार रोगोंको उत्पन्न करती है यह प्राणेश्वर वायु जिस प्रकार जिन २ स्थानोंमें मनुष्योंके शरीरमें क्रिया करती है उन सबका वर्णन किया गया है। वैद्यजन उन संपूर्ण क्रियाओंको देश, सात्स्य, ऋतु, और बल आदि विचारकर शास्त्रानुसारी चिकित्साको करे ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

इति श्रीच० सं० चिकि० प्र० भा० टी० वातचिकित्सित नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

जानत जो नर वातके, स्थान ज्ञान विधि भेद ॥

करहि चिकित्सा सिद्ध सो, वात व्याधि उच्छेद ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातोवातशोणितचिकित्सितं व्यख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः

अब हम वातशोणितचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकारः भगवान् अत्रेयजी कहनेलगे ।

हुताग्निहोत्रमासीनमृषिमध्येपुनर्वसुम् । पृष्टवान्गुरुमेकाग्रमग्नि-
वेशोऽग्निवर्चसम् ॥ १ ॥ अग्निमारुततुल्यस्यसंसर्गस्यानिलासृजोः ।

हेतुलक्षणभैषज्यान्यथास्मैगुरुरब्रवीत् ॥ २ ॥

अग्निहोत्र कर चुकनेके अनन्तर आनन्दसे ऋषिगणोंके मध्यमें एकाग्रचित्त बैठेहुए अग्निके समान प्रकाशमान अपने गुरु पुनर्वसुजीसे आग्निवेशने अग्नि और वायुके समान तीव्र स्वभाववाले वातरक्तके विषयमें प्रश्न किया और भगवान् पुनर्वसुजी इस प्रकार वातरक्तके हेतु, लक्षण और चिकित्साको कथन करने लगे ॥ १ ॥ २ ॥

वातरक्तके हेतु ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्काम्बुजानू-
पमांसपिण्याकमूलकैः ॥ ३ ॥ कुलत्थमापनिप्पावशाकादिपलले-
क्षभिः । दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ ४ ॥ विरुद्धाध्यशन-
क्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः । प्रायशःसुकुमाराणांमिथ्याहारविहारि-
णाम् ॥ ५ ॥ अचंक्रमणशीलानांकुप्यतेवातशोणितम् । अभिघाता-
दशुद्ध्याचप्रदुष्टेशोणितेनृणाम् ॥ ६ ॥ कपायकटुतिकाल्परूक्षा-

हारादभोजनात् । हयोष्ट्रखरयानाम्बुक्रीडाप्लवनलङ्घनात् ॥ ७ ॥

उष्णेचात्यध्वगमनाद्व्यवायाद्रेगनिग्रहात् । वायुर्विवृद्धोवृद्धेनरक्ते-
नावारितःपथि ॥ ८ ॥ कृत्स्नसंदूपयेद्रक्तंतज्ज्ञेयंवातशोणितम् ।

खुडंवातवलासाख्यमाख्यवातश्चनामभिः ॥ ९ ॥

नमकीन, खटे, चरपरे, खारे, स्निग्ध, गर्म और अजीर्णकर्ता द्रव्योंके अत्यंत सेवन-
से, क्लेदित, सूखे, जलसंचारी और अनूपसंचारी जीवोंके मांसोंका अत्यंत सेवन करनेसे
पिप्पलाक और मूलीका अत्यंत सेवन करनेसे कुल्फी, उडद, सेम, शाक, पल्ल और
ईखके अत्यंत सेवन करनेसे दही, कांजी, सौवीरक, सिरका, तक्र, सुरा और आसवोंको
अधिक प्रमाण अत्यंत सेवन करनेसे विरुद्ध भोजन और भोजनके ऊपर भोजन करनेसे
तथा क्रोध, दिनमें सोना, अत्यंत जागना और हरसमय निष्प्रयास बैठेही रहना आदि
मिथ्या आहार विहारके करनेसे मनुष्योंके शरीरमें और विशेषकर सुकुमार मनुष्योंके
शरीरमें वात रक्तका कोप होता है तथा चोट आदि लगनेसे और संचित मलोंको
शोधन न करनेसे, रक्तके दूषित होनेसे और उसमें कसैले, कटु, तिक्त, अल्प तथा
रूक्ष आहारोंके सेवन करनेसे अथवा निराहार रहनेसे, घोडा, ऊंट, आदि शीघ्र गमन
करनेवाले यानपर सवारी करनेसे, बलपूर्वक जलक्रीडा करनेसे, जलमें अत्यंत तैरनेसे
अथवा वेगयुक्त जलकी धाराक आगेको बलपूर्वक लंघन करनेसे गर्मऋतुमें अत्यंत
मार्ग चलनेसे अधिक मैथुन करनेसे, मूलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे बढीहुई वायु वृद्धिको
प्राप्तहुए रक्तसे मार्गमें अवरुद्ध होकर संपूर्ण रक्तको दूषित करदेतीहै इसीको वात-
रक्त रोग कहते हैं इसीको खुड्वात और वलास तथा आड्यवात भी कहते हैं ॥३-९॥

वातरक्तके स्थान ।

तस्यस्थानंकरौपादावङ्गुल्यःपर्वसन्धयः ।

कृत्वादौहस्तपादेपुमूलंदेहेविधावति ॥ १० ॥

हाय, पांव, अंगुलियों, पर्व और संधियों वातरक्तके स्थान हैं यह रोग पहिले हाय,
पावोंमें प्राप्त होकरही अपनी जडको बांधता है फिर संपूर्ण शरीरमें फैलजाताहै ॥१०॥

वातरक्तकी संप्रप्ति :

सौक्ष्म्यारसर्वसरत्वाच्चदेहंगच्छञ्शिरायणैः । पर्वस्वभिहतंक्षुब्धं-
कृत्वादवतिष्ठते ॥ ११ ॥ स्थितंपित्तादिसंसृष्टंतास्ताःसृजतिवे-

दनाः । करोतिदुःखंतेप्वेवतस्मात्प्रायेणसन्धिषु । भवन्तिवेदना-

स्तास्ताअत्यर्थदुःसहानृणाम् ॥ १२ ॥

वातरक्त वायुकी सूक्ष्मता और रुधिरकी सर्वगामिता होनेसे शिरामार्गद्वारा संपूर्ण देहमें गमन करता है परन्तु पर्वोंमें उपस्थित होनेसे पर्वोंको टेढ़ा करदेताहै । फिर उन पर्वोंसे अभिहत और क्षुब्ध होकर पर्वस्थानमेंही टिका रहताहै इस प्रकार स्थितहुआ वातरक्त पित्तादिसे मिलकर पित्तादि संसृष्ट अनेक प्रकारकी पीडाओंको उत्पन्न करता है वह पित्तादिसंसृष्ट वातरक्त संधियोंमें स्थित होनेसे प्रायः संधियोंमेंही अनेक प्रकारकी दुःसह पीडाओंको उत्पन्न करता है । यह पीडा मनुष्योंके लिये दुःसह होतीहै ॥ १२ ॥

वातरक्तके पूर्वरूप ।

खेदोऽत्यर्थनवाकाण्यस्पर्शज्ञतवंक्षतेऽतिरुक् । सन्धिशैथिल्यमा-
लस्यंसदनंपिडकोद्गमः ॥ १३ ॥ जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गस-
न्धिषु । निस्तोदःस्फुरणंभेदोगुरुत्वंसुतिरेवच ॥ १४ ॥ कण्डूःस-
न्धिपुरुग्भूत्वाभूत्वानश्यतिचासकृत् । वैवर्ण्यमण्डलोत्पत्तिर्वाता-
सृक्पूर्वलक्षणम् ॥ १५ ॥

अत्यंत पसीनोंका आना अथवा पसीनेका सर्वथा न आना, देहका वर्ण काला होना स्पर्शका ज्ञान न रहना, घावमें अत्यंत पीडा होना, जोड़ ढीलेसे पड़जाना, आलस्य, अंगोंका सुन्नसा होना, जानु, जंघा, ऊरु, कमर, हाथ, पांव और संधियोंमें फुंसियोंका होना तथा इन्ही अवयवोंमें सूई चुभनेकीसी पीडा, फडकन, भेदनकीसी पीडा, भारीपन और सुन्नसा होजाना तथा संधियोंमें खुजली और बार बार संधि-योंमें पीडा होना तथा शान्त होजाना, विवर्णता, शरीरमें चकत्से पड़जाना यह वातरक्तके पूर्वरूपमें होतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

उत्तान और गम्भीर वातरक्तके भेद ।

उत्तानमथगम्भीरंद्विविधंतत्प्रचक्षते ।

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरन्त्वन्तराश्रयम् ॥ १६ ॥

वह वातरक्त उत्तान और गंभीर भेदसे दो प्रकारका होताहै । त्वचा और मांसके आश्रित वातरक्तको उत्तानवातरक्त कहतेहैं । और आभ्यन्तर अर्थात् शिराओंमें आश्रित हुए वातरक्तको गंभीरवातरक्त कहतेहैं ॥ १६ ॥

उत्तानवातरक्तके लक्षण ।

कण्डूदाहरुगायासतोदस्फुरणकुञ्चनैः ।

अन्विताश्यावरक्तात्वग्वाद्येताघ्रातथेप्यते ॥ १७ ॥

खुजली, दाह, पीडा, श्रम, तोद, फडकन और कुंचन होना तथा त्वचाका रंग काला या ताम्रवर्णका होना यह उत्तान वातरक्तके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

गंभीरवातरक्तके ल० ।

गम्भीरेश्वयथुःस्तब्धःकठिनोऽन्तर्भृशार्तिमान् ।

श्यावस्ताम्रोऽथवादाहतोदम्फुरणपाकवान् ॥ १८ ॥

गंभीर वातरक्तमें सूजन, संधियोंका स्तम्भ, कठोरता, भीतर अत्यंत पीडा होना, श्याम और ताम्रवर्णकी सूजन होना तथा दाह, तोद, फडकन और पाक यह लक्षण होतेहैं ॥ १८ ॥

रुग्विदाहान्वितोऽभीक्ष्णंवायुःसन्ध्यस्थिमज्जसु । छिन्दन्निवचर-
त्यन्तर्वक्रीकुर्वंश्चवेगवान् ॥ १९ ॥ करोतिखञ्जंपंगुंवाशरीरेसर्वत-
श्चरन् । सर्वैर्लिङ्गैश्चविज्ञेयंवातासृगुभयाश्रयम् ॥ २० ॥

रक्तयुक्त वातशूल और दाह करतीहुई, सदैव संधि, अस्थि और मज्जामें छेदनकी-
सी पीडा करतीहुई विचरती है और वेगपूर्वक हाथोंकी अंगुलियोंकी संधियोंकी
अत्यंत टेढ़ी बना देती है । यदि यह वातरक्त संपूर्ण शरीरमें गमन करे तो सर्वत्र
विचरतीहुई खंजता और पंगुपनको उत्पन्न करती है । यदि इस वातरक्तमें उत्तान
और गंभीरके सब प्रकारके लक्षण हों तो इसको टभयाश्रित जानना ॥ १९ ॥ २० ॥

वातरक्तके वातादिभेद ।

तत्रवातेऽधिकेवास्याद्रक्तेपित्तेकफेऽपिवा ।

संसृष्टेषुसमरतेपुयञ्चतच्छृणुलक्षम् ॥ २१ ॥

दोनों प्रकारके वातरक्त, वाताधिक, रक्ताधिक, पित्ताधिक और कफाधिक तथा
द्विशोपाश्रित वा सर्वदोषाश्रित इन भेदोंसे सात प्रकारके होतेहैं । अब उनके पृथक्-
लक्षणोंको सुनो ॥ २१ ॥

वाताधिक वातरक्तके लक्षण ।

विशेषतःशिरायामशूलस्फुरणतोदनम् । शोथस्यकाष्ण्यरौक्ष्यञ्च
श्यावतावृद्धिहानयः ॥ २२ ॥ धमन्यंगुलिसन्धीनांसङ्कोचोऽङ्ग-
ग्रहोऽतिरुक् । कुञ्चनस्तम्भनेशीतप्रद्वेषश्चानिलेऽधिके ॥ २३ ॥

वाताधिक वातरक्तमें विशेषरूपसे नसोंका मोटापन अथवा संकोच, शूल, तोद-
स्फुरण, शरीरमें रूक्षता, कालापन अथवा श्यामवर्णयुक्त सूजन, कभी रोगकी वृद्धि,
कभी हीनता, धमनी और अंगुलियोंकी संधिका संकोच, अंगोंका जकडन,

अत्यंत शूल, नसांका मंजुचित्र होना, स्तम्भ, शीतसे अत्यन्त द्वेष, यह लक्षण होतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

रक्ताधिक वातरक्त० ।

श्वयथुर्भृशरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ।

स्निग्धरूक्षैःशमनैतिकण्डूक्लेदान्वितोऽसृजि ॥ २४ ॥

रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यंत पीडा और तोड़ होताहै तथा वह सूजन ताम्र-वर्णकी और चिमचिमाहटयुक्त होतीहै । स्निग्ध अथवा रूक्ष किसी प्रकारकी क्रिया करनेसे भी पीडाकी शांति न हो सूजनमें खुजली और पत्तीने अधिक आवें यह लक्षण होतेहैं ॥ २४ ॥

पित्ताधिक वातरक्त० ।

विदाहेवेदनामूर्च्छास्वेदस्तृष्णामदोभ्रमः ।

रागःपाकश्चभेदश्चशोकेचोक्तानिपैत्तिके ॥ २५ ॥

पित्ताधिक वातरक्तमें विदाह, वेदना, मूर्च्छा, पत्तीना, प्यास, मद, भ्रम, लाली, पाक, भेदनकीसी पीडायुक्त सूजन यह लक्षण होतेहैं ॥ २५ ॥

कफाधिक, द्वंद्वज, सन्निपातज वातरक्त० ।

स्तैमित्यंगौरवंस्नेहःसुप्तिर्मन्दाचरुक् कफे ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वन्निदोपजम् ॥ २६ ॥

कफाधिक वातरक्तमें-स्तैमित्य, भारीपन, चिकनाहट, शून्यता और मंद पीडा यह लक्षण होतेहैं । दो दोपोंके हेतु और लक्षण मिलनेसे द्वंद्वज और तीन दोपोंके हेतु लक्षण हों तो त्रिदोपज वातरक्त जानना ॥ २६ ॥

वातरक्तकी साध्याऽसाध्यता ।

एकदोपानुगंसाध्यंनवंयाप्यद्विदोपजम् ।

त्रिदोपजमसाध्यंस्यायस्यचस्युरुपद्रवाः ॥ २७ ॥

एकदोपानुयायी वातरक्त यदि नवीन हो तो साध्य होताहै । द्विदोपज वातरक्त-याप्य होताहै और त्रिदोपज असाध्य होताहै, तथा अन्यन्त उपद्रवोंसे युक्त वातरक्त-भी असाध्य जानना ॥ २७ ॥

अस्यन्नारोचकाश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः । मूर्च्छाचमदरुस्तृष्णा-
ज्वरमोहप्रवेपकाः ॥ २८ ॥ हिकापांगुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमरुमाः ।

अंगुलीवक्रतास्फोटादाहमर्मग्रहावुदाः ॥ २९ ॥ एतैरुपद्रवैर्वर्ज्य-
मोहेनैकेनवापियत् । संप्रस्त्राविविवर्णश्चस्तब्धमवुदकृच्चयत् ॥ ३० ॥

निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांसका, सडना, शिरोग्रह, मूर्च्छा, मत्तता, प्यास, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी, पंगुता, विसर्प, पाक, तोद, भ्रम, क्लम, अंगुलियोंका टंडापन, फोडे, दाह, मर्मोंका रुकना अथवा मर्मोंमें पीडा, अर्बुद इन सब उपद्रवों-युक्त वातरक्त त्याज्य अर्थात् असाध्य समझकर त्याग देने योग्य होताहै । अथवा वातरक्तमें अन्य उपद्रव न होनेपर भी वेहोशी होय तो असाध्य जानना । जिस वातरक्तमें स्राव, विवर्णता, अंगोंकी स्तब्धता, शरीरमें आर्बुदोंकी उत्पत्ति हो उसको भी असाध्य जानना ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

वर्जयेच्चैवसङ्कोचकरमिन्द्रियतापनम् ।

अकृत्स्नोपद्रवंयाप्यंसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम् ॥ ३१ ॥

तथा जिसमें संकोच, हाथ और इन्द्रियोंमें निरन्तर ताप रहे वह भी असाध्य होताहै । यदि उपरोक्त उपद्रव वातरक्तमें संपूर्ण रूपसे न हो तो वह वातरक्त याप्य, साध्य होताहै । और यदि वातरक्तमें उपद्रव विल्कुल हो ही नहीं तो उसको साध्य जानना ॥ ३१ ॥

रक्तमार्गनिहंत्याशुशाखासन्धिपुमारुतः ।

निवेद्यान्योन्यमावाध्यवेदनाभिर्हरेदसून् ॥ ३२ ॥

जब वायु वातरक्तमें शाखा संधियोंमें पहुंचकर रक्तके मार्गको हनन कर देतीहै अर्थात् हाथपावोंकी संधियोंमें पहुंचकर रक्तकी गतिको रोक देतीहै उस समय वायु और रक्त परस्पर वेदनाको उत्पन्न कर वातरोगीके प्राणोंको नष्ट कर देताहै ॥ ३२ ॥

वातरक्तके चिकित्साका क्रम ।

तत्रमुञ्चेदसृक्शृङ्गजलौकःसूच्यलावुभिः ।

प्रच्छन्नैर्वाशिराभिर्वायथादोपंयथावलम् ॥ ३३ ॥

वातरक्तमें यथादोष, सिंगी, जोंक, सूची, तुंथी, पडना अथवा फस्त द्वारा जिस समय जैसा उचित हो रक्त निकालना चाहिये ॥ ३३ ॥

रुग्दाहशूलतोदात्तादसृक्साव्यंजलौकसा । शृङ्गैस्तुवैहरेत्सुति-
कण्डूचिमिचिमायनान् । देशादेशंत्रजत्साव्यंशिराभिप्रच्छने-
नवा ॥ ३४ ॥

यदि वातरक्तमें वेदना, दाह, शूल और तोद हो तो जोंक द्वारा रक्त निकालना चाहिये । यदि वातरक्तमें सुप्ति, खाज और चिमचिमाहटयुक्त पीडा हो तो सिंगी द्वारा रक्त निकालना चाहिये । यदि वातरक्त एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गमन करे तो शिरावेधन और पछने द्वारा रक्त निकालना चाहिये ॥ ३४ ॥

रक्तप्रावके अयोग्य वातरक्त ।

अङ्गलानौनतुस्त्राव्यंरूक्षेवातोत्तरश्चयत् ॥ ३५ ॥ गम्भीरश्च-
यथुंस्तम्भंकम्पंस्नायुशिरामयान् । ग्लानिश्चापिससङ्कोचांकु-
र्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ ३६ ॥ खाञ्ज्यादीन्वातरोगांश्चमृत्युंवात्य-
पसेचनात् । कुर्यात्तस्मात्प्रमाणेनस्निग्धाद्रक्तंविनिर्हरेत् ॥ ३७ ॥

यदि वातरक्तमें अंगग्लानि हो और रूक्ष मनुष्यके शरीरमें वातोल्बण वातरक्त हो तो रक्तका निकालना उचित नहीं क्योंकि ऐसे वातरक्तमें रक्त निकालनेसे रक्तक्षयके कारण वायु गम्भीर सूजन, स्तम्भ, कम्प, स्नायुरोग, ग्लानि और संकोच तथा खंज आदि वातजनित रोगोंको उत्पन्न करताहै । बल्कि ऐसे रोगीका अधिक रक्त निकलजानेसे मृत्यु ही हांजातीहै । इसलिये पहिले वातरक्तके रोगीको स्निग्ध करके फिर प्रमाणसे रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

विरेच्यःस्नेहयित्वादौस्नेहयुक्तैर्विरेचनैः । रूक्षैर्वामृदुभिःशस्तम-
सकृद्दस्तिकर्मच ॥ ३८ ॥ सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्नस्नेहाःप्रायोऽविदा-
हिनः । वातरक्तेप्रशस्यन्तेविशेषन्तुनिवोधमे ॥ ३९ ॥

वातरक्तके रोगीको स्निग्ध करके फिर स्नेहयुक्त अथवा रूक्ष मृदु विरेचन करावे । और बारंबार वस्तिकर्मका प्रयोग करता रहे । तथा स्नेहपान, सेक, लेप और अविदाही श्लेष्मका प्रयोग करना चाहिये । अब इन सब कर्मोंको विशेषरूपसे वर्णन करतेहैं सो सुनो ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वातरक्तकी विशेष चिकित्सा ।

वाह्यमालेपनाभ्यङ्गपरिपेकोपनाहनैः ।

विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ ४० ॥

वाह्य (उतान) वातरक्तमें तेल, भ्यंग, परिपेक और उपनाह स्वेदका प्रयोग करना चाहिये । गम्भीर वातरक्तमें विरेचन, आस्थापन और स्नेहपान कराना हित-कारक है ॥ ४० ॥

वाताधिकं वातरक्तकी चिकित्सा ।

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ।

सुखोष्णैरुपनाहैश्चवातोत्तरमुपाचरेत् ॥ ४१ ॥

वातोल्वण वातरक्तमें घृत, तेल, वसा और मज्जा, पीने तथा अभ्यंग और वस्ति-
कर्ममें प्रयुक्त करने चाहिये । तथा सुखोष्ण उपनाहस्वेदोंका प्रयोग करना वाताधिक
वातरक्तको शान्त करताहै ॥ ४१ ॥

रक्तपित्तोत्तरः वातरक्तकी चि० ।

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैः सेकैः सवस्तिभिः ।

शीतैर्निर्वापनैश्चापिरक्तपित्तोत्तरं जयेत् ॥ ४२ ॥

रक्तपित्ताधिक वातरक्तमें विरेचन, घृत दूधका पान, सेचन तथा वस्तिकर्म
करना चाहिये । तथा शीतल और दाहनाशक द्रव्यों द्वारा रोगको जीते ॥ ४२ ॥

कफाधिक वातरक्तकी चि० ।

वमनं मृदुनाऽत्यर्थं स्नेहसेकादिलङ्घनम् ।

कोष्णलेपाश्चशस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥ ४३ ॥

कफाधिकं वातरक्तमें अत्यंत मृदु वमन, स्नेह, सेक और लंघन तथा किंचित् उष्ण
लेपोंका करना हितकारक होताहै ॥ ४३ ॥

कफवातोत्तरे शीतैः प्रलिते वातशोणिते । विदाहशोथरुक्कण्डूविवृद्धिः

स्तम्भनाद्भवेत् ॥ ४४ ॥ वातपित्तोत्तरे दाहः क्लेशोऽवदारणं भवेत् ।

उष्णैस्तस्माद्भिषग्दोषवलंबुद्ध्याचरेत्क्रियाम् ॥ ४५ ॥

कफवातोत्तर वातरक्तमें शीतल द्रव्योंका लेप करनेसे स्तम्भन होकर सूजन, विदाह,
पीडा और खुजलीकी वृद्धि होतीहै । वातपित्तोत्तर वातरक्तमें शीतल लेपके करनेसे
दाह, क्लेश और अवदारणकीसी पीडा होतीहै । इसलिये इनमें वैद्य दोष बल विचार
कर उष्ण लेपोंका ही प्रयोग करे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

वातरक्तमें त्याज्य वस्तु ।

दिवास्वप्नसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ।

कटुष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लञ्चवर्जयेत् ॥ ४६ ॥

वातरक्तके रोगीको दिनमें सोना, संताप, व्यायाम, मैथुन तथा कटु, उष्ण, भारी,
अभिष्यन्दी, नमकीन और अम्ल पदार्थोंका त्याग करदेना चाहिये ॥ ४६ ॥

वातरक्तमें पथ्य । •

पुराणयवगोधूमनीवाराःशालिषष्टिकाः । भोजनार्थे रसार्थे वा विष्कि-
रप्रतुदाहिताः ॥ ४७ ॥ आढक्यञ्चणकामुद्गामसूराःसमुकुष्ठकाः ।
यूपार्थे बहुसर्पिष्काःप्रशस्तावातशोणिते ॥ ४८ ॥ सुनिपण्णकवेत्रा-
प्रकाकमाचीशतावरीः । वास्तुकोपोदिकाशाकंशाकंसौवर्चलंत-
था ॥ ४९ ॥ घृतमांसरसेभृष्टंशाकसात्म्यायदापयेत् । व्यञ्जनार्थं
तथागव्यंमाहिषाजंपयोहितम् ॥ ५० ॥

वातरक्तमें-भोजनके लिये पुराने यव, गेहूं, नीवार, शालि और पष्टिक चावल देना चाहिये । रसके लिये विष्किर और प्रतुद पक्षियोंका मांसरस हितकारी है तथा यूपके लिये अरहर, चना, मूंग, मसूर और मोंठका, यूप बनाकर बहुत सा घृत मिला सेवन करावे । शाकके लिये चौपतिया, शाक, वेतकी कोंपल, मकोह, शतावर, बथुआ, पोई, हुलहुल इनका साग देना चाहिये । परन्तु यह संपूर्ण शाक अथवा मांसरस, बहुतसे धीमे भूनकर यथासाध्य देना चाहिये । पीनेके लिये गौ अथवा भैंसका दूध देना चाहिये ॥ ४७-५० ॥

इतिसंक्षेपतःप्रोक्तंवातरक्तचिकित्सितम् ।

एतदेवपुनःसर्वव्यासतःसंप्रवक्ष्यते ॥ ५१ ॥

इस प्रकार संक्षेपसे वातरक्तकी चिकित्साका वर्णन किया गया अब उसीको विस्तारपूर्वक सुनो ॥ ५१ ॥

श्रावण्यादिघृत ।

• श्रावणीक्षीरकाकोलीजीवकर्पभकैःसमैः ।

सिद्धंसमधुकैःसर्पिःसक्षीरंवातरक्तनुत् ॥ ५२ ॥

गोरखमुण्डी, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक और मुलैठीको समभाग लेकर कलक बनावे इस कलकसे चारगुना घृत और घृतसे चारगुना दूध लेवे, सबको मिलाकर पकावे, घृतमात्र शेष रहने पर उतारकर छानलेवे । इस घृतके सेवन करनेसे वातरक्त रोग दूर होताहै ॥ ५२ ॥

बलादिघृत ।

बलामतिबलांमेदामात्मगुसांशतावरीम् । काकोलींक्षीरकाकोलीं
राम्नामृद्धिञ्चपेपयेत् ॥ ५३ ॥ घृतंचतुर्गुणक्षीरंतैःसिद्धंवातरक्तनु-
त् । हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलाज्वरनाशनम् ॥ ५४ ॥

बला, अतिबला, मेदा, कौंचके वीज, शतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना, और ऋद्धिका कल्क कर उससे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना दूध मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहने पर उतारकर छानले । इस घृतके सेवन करनेसे वातरक्त, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और ज्वर नष्ट होतेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

भूम्यामलकीघृत ।

तामलत्रयाद्विकाकोल्याःपिप्पलीत्रायमाणयोः ।

कशेरुकाकषायेणकल्कैरेभिःपचेद्धृतम् ॥ ५५ ॥

भूमिआमलकी, काकोली, क्षीरकाकोली, पीपल, त्रायमाण और कशेरुके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत वातरक्तको शान्त करता है ॥ ५५ ॥

पारूपकघृत ।

दत्त्वापरूपकद्राक्षाकाश्मर्य्येश्वरसान्समान् । पृथग्विदार्य्याश्चरसं
तथाक्षीरंचतुर्गुणम् ॥ ५६ ॥ एतत्प्रयोगिकंसर्पिःपारूपकमितिस्मृ-
तम् । वातरक्तेक्षतेक्षीणेवीसर्पैपैत्तिकेज्वरे ॥ ५७ ॥

फालसेका रस, द्राक्षाका रस, कुम्भेरके फलोंका रस और ईसका रस एक एक सेर । विदारीकंदका रस ४ सेर, दूध ४ सेर, घृत एक सेर इन सबको मिलाकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे इस पारूपक घृतके सेवनसे वातरक्त, क्षत, क्षीण, वीसर्प और पित्तज्वर दूर होतेहैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

द्विपञ्चमूलीघृत ।

द्वेपञ्चमूलेवर्षाभूमेरण्डंसपुनर्नवम् । मुद्गपर्णीमहामेदांमापपर्णीश-
तावरीम् ॥ ५८ ॥ शङ्खुपुष्पीमवाक्पुष्पीरालामतिवलांबलाम् ।
पृथग्विद्वपलिकंकृत्वाजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ५९ ॥ पादशेषेसमंक्षीरं
धात्रीक्षुच्छागलान्नसान् । घृताढकेनसंयोज्यशनैर्मृद्वग्निनापचेत्६०
कल्कानावाप्यमेदेद्वेकाश्मर्य्यफलमुत्पलम् । त्वक्क्षीरीपिप्पलीद्रा-
क्षांपद्मवीजंपुनर्नवाम् ॥ ६१ ॥ नागरंक्षीरकाकोलींसमङ्गांवृहतीद्र-
यम् । वीरांशुङ्गाटकंभव्यसुरुवालंनिकोचकम् ॥ ६२ ॥ वदराक्षो-
टवाताममुजातामिपुकांस्तथा । एतैर्घृताढकेसिद्धेक्षौद्रंशीतेप्रदाप-
येत् ॥ ६३ ॥ सम्यक्सिद्धश्चविज्ञायसुगुप्तंस्त्रिधापयेत् । कृतरक्षा-
विधितच्चप्राशयेदक्षसंमितम् ॥ ६४ ॥ पाण्डुरोगंज्वरंहिकांस्वर-

भेदभगन्दरम् । पार्श्वशूलक्षयंकासंस्त्रीहानंवातशोणितम् ॥ ६५ ॥
क्षतशोषमपस्मारमश्मरींशर्करास्तथा । सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्चमूत्रस-
ङ्गश्चनाशयेत् ॥ ६६ ॥ बलवर्णकरंधन्यंवलीपलितनाशनम् । जीव-
नीयमिदं सर्पिवृष्यं बन्ध्यासुतप्रदम् । अभिवेशायगुरुणाकृष्णात्रेये-
णभापितम् ॥ ६७ ॥

लघु पंचमूल, बृहत्पंचमूल, श्वेत पुनर्नवा, एगण्डकी जड़, लाल पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, महा-
मेदा, मापपर्णी, शतावर, शंखपुष्पी, सौंफ, रास्ना, अतिबला और बलाको दो दो
पल लेकर कूटले फिर एक द्रोण जलमें पकावे चौथाई भाग शेष रहने पर उतारकर
छानले । फिर इस कायमें दूब, आँवलेका रस, ईश्वका रस, बकौके मांसका रस यह
सब एक एक आठक, घृत १ आठक और नीचे लिखेहुए कल्क द्रव्य १ प्रस्थ, जैसे
मेदा, महामेदा, कुंभेरके फल, नील कमल, बंशलोचन, पीपल, द्राक्षा, कमलगट्टा,
पुनर्नवा, सोंठ, क्षीरकाकोली, वाराहक्रान्ता, बडी कटेली, छोटी कटेली, काकोली, सिंचाडे
भव्यफल, उरुमाल (फांसके बीज), निचोक, वेर, अखरोट, वादाम, मुंजातक फल
और अभिपुक फलका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे । सिद्ध होनेपर उतारकर छानलेवे
फिर इस घृतमें घृतसे चौथाई भाग शहद मिलावे । फिर इसको किसी उत्तम पात्रमें
विधिवत् ढककर रक्खे । इसमेंसे नित्य १ तोला घृत सेवन करनेसे पाण्डुरोग, ज्वर,
हिचकी, स्वरभंग, भगन्दर, पार्श्वशूल, क्षय, खांसी, प्लीहा, वातरक्त, क्षत, शोष, अपस्मार
पयगी, शर्करा, सर्वांगवात, एकांगवात, मूत्रावात रोग नष्ट होतेहैं तथा बल और वर्ण-
की वृद्धि करनेवाला बली और पलितको नष्ट करनेवाला तथा धन्य जीवनदायक,
वीर्यवर्द्धक और बन्ध्या स्त्रीको संतान देनेवाला यह द्विपंचमूलादिघृत अभिवेशके प्रति
गुरुदेव कृष्णात्रेयजीने कहाहै ॥ ६८-६७ ॥

द्राक्षाघृत ।

द्राक्षामधुकतोयाभ्यांसिद्धं वाससितोपलम् ॥ ६८ ॥

द्राक्षा और मुलेठीके काय और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत मिसरी मिला सेवन
करनेसे वातरक्त दूर होताहै ॥ ६८ ॥

गुडूचीघृत ।

पिवेद्धृतं तथाक्षीरंगुडूचीस्वरसेशृतम् ॥ ६९ ॥

गिलोयके काय और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत अथवा दूध मिसरी मिला
सेवन करनेसे वातरक्त नष्ट होताहै ॥ ६९ ॥

जीवकादिस्नेह ।

जीवकर्पभकौमेदामृष्यप्रोक्तांशतावरीम् । मधुकमधुपर्णीश्रकाको-
लीद्वयमेवच ॥ ७० ॥ सुद्रमापाख्यपर्णिन्यौदशमूलंपुनर्नवाम् ।
बलामृताविदार्यश्चसाश्वगन्धाश्मभेदकाः ॥ ७१ ॥ एषांकपायक-
ल्काभ्यांसर्पिस्तैलश्चसाधयेत् । लाभतश्चवसामजाधन्वप्रतुदवैष्कि-
रान् ॥ ७२ ॥ चतुर्गुणेनपयसातत्सिद्धंवातशोणितम् । सर्वदेहा-
श्रितंहन्तिव्याधीन्घोरांश्चवातजान् ॥ ७३ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, कौंचके बीज, शतावर, मुलैठी, कुंभेरके फल, काकोली, क्षीरकाकोली, सुद्रपर्णी, मृषकपर्णी, दशमूलकी दश औषधियें, पुनर्नवा, बला, गिलोय, विदारीकन्द, असगंध और पापाणभेदके काथ और कल्क द्वारा घृतको सिद्ध करे । इस घृतमें पक्ते समय घृतसे चारगुना दूध और यदि मिल सके तो प्रतुद और विष्किर पक्षियोंकी चर्बी और मज्जा भी घृतके समान मिलवे । पक्ते २ जव संपूर्ण जल, दूध आदि द्रव्य जलकर स्नेहमात्र शेष रहे तो उतारकर छानले । इस स्नेहके सेवन करनेसे संपूर्ण प्रकारकी सर्व देहगत वातव्याधियें और वातरक्त दूर होतेहैं ॥ ७०-७३ ॥

स्थिरादिस्नेह मथ्य ।

स्थिराश्चदंष्ट्रावृहतीशारिवासशतावरी । काश्मर्याप्याश्मगुप्ताचवृ-
श्चिरंद्वेवलेतथा ॥ ७४ ॥ एषांकाथेचतुःक्षीरेपृथक्तैलंपृथग्घृतम् ।
मेदाशतावरीयष्टिजीवन्तीजीवकर्पभैः ॥ ७५ ॥ पक्वामात्राततः
क्षीरंत्रिगुणाह्यर्द्धशर्कराखजेनमथितापेयावातरक्तेत्रिदोषजे ॥ ७६ ॥

शालपर्णी, गोखरू, बडी कटेली, शारिवा, शतावर, कुंभेरके फल, कौंचके बीज सफेद पुनर्नवा, बला और अतिबलाका काय ८ सेर, दूध ८ सेर तथा मेदा, शतावर मुलैठी, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक इनका कल्क आधसेर, घृत अथवा तेल १ से दोनों मिलाकर या सबको मिलाकर सिद्ध करे । सिद्ध होजाने पर यह घृत अथवा तेल छानकर किसी उत्तम पात्रमें रखवे । इस स्नेहमें तीनगुना दूध, आधा भाग खांड मिलाकर मथनीसे खूब मथडाले । इसके सेवनसे तीनों दोषोंका वातरक्त दूर होताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

वातरक्ताशक दूध ।

तैलंपयःशर्कराश्चपाययेद्वासुमूर्च्छिताम् ।

सर्पिस्तैलसिताक्षौद्रैर्मिश्रंवापिपिवेतपयः ॥ ७७ ॥

सर्वदोषज वातरक्तमें तेल, दूध, मिसरीको मथकर पीवे अथवा घी, तेल, मिसरी, शहद और दूध मिलाकर मंथनकर पीवे तो सर्वदोषज वातरक्त शांत होताहै ॥ ७७ ॥

अंशुमत्याशृतःप्रस्थःपयसःससितोपलः ।

पानेप्रशस्यतेतद्विप्लीनागरेःशृतः ॥ ७८ ॥

शालपर्णीसे सिद्ध किये दूधको मिसरी मिलाकर पीवे । अथवा पीपल और सोंठसे सिद्ध कियेदुए दूधको मिसरी मिला पीवे तो वातरक्त शांत होताहै ॥ ७८ ॥

बलाशतावरीरास्नादशमूलैःसपीलुभिः ।

श्यामैरण्डस्थिराभिश्चवातार्त्तिघ्नंशृतंपयः ॥ ७९ ॥

बला, शतावर, राम्ना, दशमूल, पीलूफल, शारिवाकी जड़, एरण्डकी जड़ और शालपर्णीसे सिद्ध किया दूध वातरक्तकी पीडाको शांत करताहै ॥ ७९ ॥

पित्ताधिक वातरक्तकी चिकित्सा ।

धारोष्णंमूत्रयुक्तंवाक्षीरंदोषानुलोमनम् ।

पिवेद्वासत्रिवृच्चूर्णंपित्तरक्तावृतानिलः ॥ ८० ॥

धारोष्ण दूधको गोमूत्र मिलाकर पीवे तो वातरक्तमें दोषोंका अनुलोमन होताहै । यदि पित्तरक्तसे आवृत वायु हो तो धारोष्ण दूधके साथ निशोथका चूर्ण पीना चाहिये ॥ ८० ॥

क्षीरेणैरण्डतैलंवाप्रयोगेणपिवेन्नरः । बहुदोषोविरेकार्थंजीर्णक्षीरौ-
दनाशनः ॥ ८१ ॥ कपायमभयानांवाघृतभृष्टंपिवेन्नरः । क्षीरानु-
पानंत्रिवृताचूर्णद्राक्षारसेनवा ॥ ८२ ॥

बहुदोषयुक्त वातरक्तमें एरण्डतैल दूधमें मिलाकर पीना चाहिये । इससे विरेचन होनेके अनंतर क्षुधा लगने पर दूध भातका सेवन करे । अथवा हरडके काथको घीमें छोंककर पीवे और दूधका अनुपान करे । अथवा निशोथके चूर्णको द्राक्षाके रसके साथ पीवे तो विरेचन द्वारा दोषकी शांति होतीहै ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

काश्मर्यत्रिवृतांद्राक्षांचूर्णद्राक्षारसेनवा । काश्मर्यत्रिवृतांद्राक्षां
त्रिफलांसपरूपकाम् ॥ ८३ ॥ श्रृतांपिवेद्विरेकायलवणक्षौद्रसंयु-
ताम् । त्रिफलायाःकषायंवापिवेत्क्षौद्रेणसंयुतम् ॥ ८४ ॥

कुम्भेरके फल, निशोथ और द्राक्षाके चूर्णको द्राक्षाके रससे पीवे । अथवा कुम्भेरके फल, निशोथ, द्राक्षा, त्रिफला और फालसेका काथ संधानमक और शहद मिलाकर पीवे या त्रिफलाका काथ शहद मिला पीवे तो पित्तप्रधान वातरक्त अथवा पित्तरक्तावृत वात शांत होताहै ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

कफाधिक वातरक्तकी चि० ।

धात्रीहरिद्रमुस्तानांकपायंवाकफाधिके ॥ ८५ ॥

आँवले, हल्दी और नागरमोथेका काथ कफाधिक वातरक्तको शांत करताहै ॥ ८५ ॥

मलावृत वातरक्तकी चि० ।

योगैश्चकल्पविहितैरसकृत्तंविरेचयेत् । मृदुभिःस्नेहसंयुक्तैर्जात्वावा-
तंमलावृतम् । निर्हरेद्दामलंतस्यसघृतैः क्षीरवस्तिभिः । नहिवस्ति-
समंकिञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ ८६ ॥

मलावृत वातरक्तमें कल्पस्थानमें कहे योगानुसार धारवार मृदुविरेचन तथा स्नेह-
योग द्वारा विरेचन कराकर मल निकाले अथवा घृतयुक्त क्षीरवस्ति द्वारा मलको
निकाले । वातरक्तमें वस्तिकर्मके समान और कोई चिकित्सा नहीं है ॥ ८६ ॥

वस्तिबंधक्षणपाश्र्वांरुपर्वास्थिजठरार्त्तिपु ।

उदावर्त्तचशस्यन्तेनिरूहाःसानुवासनाः ॥ ८७ ॥

वस्ति, बंधक्षण, पार्श्व, ऊरु, पर्व, अस्थि और उदरमें पीडा होय अथवा उदावर्त्त
होय तो प्रथम निरूहणवस्ति करके फिर अनुवासनका प्रयोग करे ॥ ८७ ॥

नस्याभ्यञ्जनसेकेचदाहशूलोपशान्तये ।

दद्यात्तैलानिचेमानिवस्तिकर्मणिवृद्धिमान् ॥ ८८ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको नीचे लिखे तेलोंको वातरक्तके दाह तथा शूलकी शान्तिके लिये
वस्तिकर्ममें नस्यमें अभ्यंगमें और सेचनमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ८८ ॥

मधुयष्टी तैल ।

मधुयष्ट्यास्तुलायास्तुकपायेपादशेषिते ॥ ८९ ॥ तैलाढकंसमक्षी-

रंपचेत्कलकैःपलोन्मितैः । शतपुष्पावरीसूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः१०॥

स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः । काकोलीक्षीरकाकोली-

तामलत्रयृद्धिपद्मकैः । जीवकर्पभजीवन्तीत्वक्पत्रनखवालकैः११॥

प्रपौण्डरीकमजिष्ठासारिवैन्द्रीत्रितुन्नकैः । चतुःप्रयोगात्तद्धन्तितैलं

मारुतशोणितम् ॥ १२ ॥ सौपद्रवंसाङ्गशूलंसर्वगात्रानुगंतथा ।

वातासृक्पित्तदाहार्त्तिज्वरबंधवलवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

९ सेर मुलेठीको चालीस सेर जलमें पकावे दश सेर जल श्रेय रहनेपर उतारकर
छानले इम कायमें तेल ४ सेर, दूध ४ सेर और सौंफ, गतावर, मूर्वा पयस्या, अगुरु

चन्दन, शालपर्णी, हंसपादी, जटामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, भूमिआँवला, ऋद्धि, पद्माख, जीवक, ऋपभक, दालचीनी, पत्रज, नख, नेत्रवाला, पंड्यारकी छाल, मंजीठ, शारिषा, इन्द्रायणकी जड और धनियांको एक एक पल लेकर कल्क बनावे और उपरोक्त तैलादिकोंमें मिला पकावे। तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तैलके नस्य, अभ्यंग, वास्ति और पानमें उपयोग किये जानेसे संपूर्ण देहमें व्याप्त उपद्रवयुक्त वातरक्त, अंगशूल पित्तजनित दाह, पीडा, ज्वर यह सब दूर होतेहैं और बलकी वृद्धि होती है ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

सुकुमार तैल ।

मधुकस्यशतैद्राक्षाखर्जूरानिपरूपकम् । मधुकौदनपात्रयौचप्रस्थंमु-
जातकस्यच ॥ ९४ ॥ काश्मर्याढकमित्येतच्चतुर्द्रोणेषचेदपाम् ।
शेषेऽष्टभागेपूतेचतस्मिन्तैलाढकंपचेत् ॥ ९५ ॥ तथामलकाश्म-
र्याविदारीक्षुरसैःसमैः । चतुर्गुणेनपयसोकेलकंदत्वापलोन्मितम् ॥
॥ ९६ ॥ कदम्बामलकाक्षोटपद्मबीजकशेरुकम् । शृङ्गाटकंशृङ्गवे-
रंलवणं पिप्पलींसिताम् ॥ ९७ ॥ जीवनीयैश्चसंसिद्धंक्षौद्रप्रस्थेन
संसृजेत् । नस्याभ्यञ्जनपानेषुवस्तौचापिनियोजयेत् ॥ ९८ ॥ वा-
तव्याधिपुसर्वेषुमन्यास्तम्भेहनुग्रहे । सर्वाङ्गैकाङ्गवातेचक्षतक्षीणे
क्षतज्वरे ॥ ९९ ॥ सुकुमारकमित्येतद्वातास्त्रामयनाशनम् । स्थिर-
वर्णकरंतैलमारोग्यवलपुष्टिदम् ॥ १०० ॥

मुँलैठी १०० पल, द्राक्षा १ प्रस्थ, खजूर १ प्रस्थ, फालसे १ प्रस्थ, महएके फूल १ प्रस्थ, बला १ प्रस्थ, मुंजातक १ प्रस्थ, कुंभेरके फल १ आढक इन सबको ४ द्रोण जलमें पकावे। आठवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस छानेहुए क्वाथमें १ आढक तैल मिलावे। तथा भूमि आँवलेका रस कुंभेरके फलोंका क्वाथ विदारीकन्दका रस और ईखका रस यह सब एक एक आढक, दूध ४ आढक तथा कदंबकी छाल, आँवले, अखरोट, कमलगट्टे, कसेरू, सिंघाडे, साँठ, सेंधानमक, पीपल, मिसरी और जीवनीय-गणकी संपूर्ण औषधियें एक एक पल लेकर कल्क बनावे। यह कल्क और उपरोक्त, तैल, क्वाथ, रस और दूध सब मिलाकर पकाव। तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तैलका नस्य, पान, अभ्यंग और वास्ति कर्ममें प्रयोग करनेसे सब प्रकारके वातरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, सर्वाङ्गगत वातरोग, एकाङ्गगत वात रोग, क्षत, क्षीण, क्षतजनित ज्वर और संपूर्ण वातरक्तके विकारोंको नाश करता है तथा अवस्था-

स्थापक, वर्ण, बल, आरोग्यता और पुष्टिको बढ़ानेवाला है इसको सुकुमार लेप कहते हैं ॥ ९४-१०० ॥

अमृतादितैल ।

गुडूर्चामधुकंहस्वंपञ्चमूलंपुनर्नवाम् । रास्नामैरण्डमूलञ्चजीवनी-
यानिलाभतः ॥ १०१ ॥ पलानांशतकैर्भागैर्वलापञ्चशतंतथा ।
कोलविल्वंयवान्मापान्कुलत्थांश्चाढकोन्मितान् ॥ १०२ ॥ काश्म-
र्याणांसुशुष्काणांद्रोणंद्रोणशतेऽम्भसि । साधयज्जर्जरंधौतंचतु-
द्रोणैश्चशेषयेत् ॥ १०३ ॥ तैलद्रोणंपचेत्तेनदत्त्वापञ्चगुणंपयः ।
पिष्ट्वात्रिपलिकञ्चैवंचन्दनोशीरकेशरान् ॥ १०४ ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठा-
नितगरंमधुयष्टिकाम् । मञ्जिष्ठाष्टपलञ्चैवतैस्त्रिद्वंसार्वयौगिकम्
॥ १०५ ॥ वातरक्तेक्षतेक्षीणेभारार्त्तेक्षीणरेतसि । वेपनाक्षिप्तभ-
ज्ञानांसर्वाङ्गैकांतरोगिणाम् ॥ १०६ ॥ योनिदोषमपस्मारमुन्मादं
खञ्जपंगुताम् । हन्यात्पुंसवनंचैतत्तैलाध्यममृताह्वयम् ॥ १०७ ॥

गिलोय, मुलैठी, लघु पंचमूल, पुनर्नवा, एरण्डकी जड़, रास्ना और जीवनीयगणकी जो औषधियें मिलसकें यह प्रत्येक औषधी सौ सौ पल लेवे और बला ५०० पल लेवे तथा बेर, बेलकी गिरी, यव, उडद, कुल्यी यह प्रत्येक एक एक आठक लेवे कुंभेरके सूखे फल १ द्रोण लेवे । इन सबको स्वच्छ करकरके १०० द्रोण जलमें पकावे । ४ द्रोण जल रोप रहनेपर उतारकर कायको छानलेवे । फिर इसमें तेल १ द्रोण, दूध ५ द्रोण और लाल चन्दन, खस, नागकेशर, तेजपत्र, छोटी इलायची, अगर, कूठ, तगर, मुलैठी इन सबको तीन तीन पल और मंजीठ आठ पल लेकर कल्क बनावे । यह कल्क और उपरोक्त दूध, तेल, काय यह सब मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इस सार्वयौगिक तैलके चतुर्विध प्रयोग करनेसे वातरक्त, क्षत, क्षीण बोधैके उठानेसे उत्पन्न हुई पीडा, शुक्रकी क्षीणता, आक्षेप, कंप, चोट आदि लगनेसे उत्पन्न हुई पीडा, सर्वांग वात, एकांग वात, योनिदोष, अपस्मार, खंजता और पंगुपन इन सबको नाश करताहै तथा यह तेल बंध्यादोष निवृत्तकर संतान पैदा करनेमें परमोत्तम मानागयाहै । इसको अमृतातेल कहतेहैं ॥ १०१-१०७ ॥

महापद्म तैल ।

पद्मवेतसयष्ट्याह्वफेनिलापद्मकोत्पलैः । पृथक्पञ्चपलैर्दग्धलाच-
न्दनकिंशुकैः ॥ १०८ ॥ जलेशृतैःपचेत्तैलप्रस्थंसौवीरसम्मितम् ।

लोध्रकालीयकोशीरजीवकर्षभकैःसमैः ॥ १०९ ॥ मदयन्तीलता-
पत्रपद्मकेशरपद्मकैः । प्रपौण्डरीककाश्मर्य्यमांसीमेदाप्रियङ्गुभिः॥
॥ ११० ॥ कुंकुमस्यपलाद्धेनमञ्जिष्ठायाःपलेनच । महापद्ममिदंते-
लंवातासृग्ज्वरनाशनम् ॥ १११ ॥

कमल, वेतस, मुलैठी, वेर, पद्माख, नीलकमल यह सब पांचपांच पल लेवे । सबको कूटका अठगुने जलमें पकावे चौथाई भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले । फिर इस काथमें तेल १ प्रस्थ, सौवीरक (कांजी) १ प्रस्थ तथा लोध, अगर, खस, जीवक, ऋषभक, मालतीके पत्र, माधवीके पत्र, कमलकी केशर, पद्मकाष्ठ, पंड्या-रेका छिलका, कुंभेरके फल, जटामांसी, मेदा और भियंगु इन सबको एक एक कर्ष लेवे केशर आधा पल और मंजीठ एक पल, लेकर कल्क बनावे । यह कल्क और उपरोक्त क्वाथ, तैलादि मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उता-रकर छानले । इस महापद्मनामक तैलके प्रयोगसे वातरक्त और ज्वर दूर होताहै ॥ १०८-१११ ॥

महाखुट्टाक तैल ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीकवाथसाधितम् । स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जि-
ष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः ॥११२॥ खुट्टाकपद्ममिदंतैलंवातास्रदा-
हनुत् । आत्रेयेणान्निवेशायभाषितंहितकाम्यया ॥ ११३ ॥

पद्माक, खस, मुलैठी और हल्दीका क्वाथ ४ सेर, तेल १ सेर और राल, मंजीठ, काकोली, क्षीरकाकोली, चंदन यह सब एकएक पल लेकर कल्क करे । इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस खुट्टाकपद्म तैलके प्रयोगसे वातरक्त और दाह दूर होताहै । यह तैल जगत्के हित चाहनेवाले भगवान् आत्रेयजीने अग्निवेशसे कथन किया है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

मधुयष्टि तैल ।

शतेनयष्टिमधुकात्साध्यंदशगुणंपयः ।

तस्मिंस्तैलेचतुर्द्रोणेमधुकरस्यपलेनतु ।

सिद्धंमधुकरकाश्मर्य्यरसैर्वावातरक्तनुत् ॥ ११४ ॥

मुलैठी १०० पल लेकर ४ द्रोण जलमें पकावे । आठवां भाग शेष रहनेपर उता-रकर छान लेवे । इसमें २ प्रस्थ तेल और २० प्रस्थ दूध मिलावे तथा मधुगणके-संपूर्ण द्रव्योंको एक एक पल लेकर कल्क बनावे । फिर इसको तैलपाकविधिसे

पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । अथवा मुलेठीके क्वाथ और कुंभे-
रके काथसे इसी प्रकार तैलको सिद्धकरे । यह दोनों प्रकारके तेल वातरक्तको दूर
करतेहैं ॥ ११४ ॥

शतपाकमधुपर्णी तैल ।

मधुपर्ण्याःपलंपिष्ट्वातेलप्रस्थंचतुर्गुणे । क्षीरेसाध्यंशतकृत्वस्तदेव-
मधुकाच्छृतैः ॥११५॥ सिद्धंदेयंत्रिदोषेस्याद्वातास्त्रश्वासकासनुत् ।

हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥ ११६ ॥

मधुपर्णी (कुंभेरके फल या गिलोय) १ पल, लेकर पीस लेवे । तेल १ प्रस्थ
और दूध ४ प्रस्थ मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस तेलमें
फिर १ पल मधुपर्णीका कल्क और ४ प्रस्थ दूध मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष
रहनेपर उतारकर छानले । इसीप्रकार १०० बार एक एक पल मधुपर्णीके कल्कसे
पकाता रहे फिर इस तेलको छानकर प्रयोग करे तो तीनों दोषोंका वातरक्त, श्वास,
खाँसी, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाह नष्ट होतेहैं ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

सहस्रपाकी तैल ।

बलाकपायकल्काभ्यांतैलंक्षीरसमंतथा । सहस्रशतपाकंवावाता-
सृग्वातरोगनुत् ॥ ११७ ॥ रसायनंश्रेष्ठतममिन्द्रियाणांप्रसादनम् ।

जीवनंवृंहणंस्वयंशुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ ११८ ॥

बलाका क्वाथ ४ सेर, दूध ४ सेर, बलाका कल्क ४ तोला और तेल १ सेर
(८० तोला) इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान-
लेवे । इसी प्रकार १०० बार या सहस्रवार बला (खरेटी) से पकाया हुआ तेल
वातव्याधि और वातरक्तको नष्ट करताहै तथा यह तेल श्रेष्ठ रसायन इन्द्रियोंको प्रसन्न
करनेवाला जीवनदायक पुष्टिकारक और शुक्रविकारनाशक है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

अन्य तैल ।

गुडूचीरसदुग्धाभ्यांतैलंद्राक्षारसेनवा ।

सिद्धंमधुक्काश्मर्यरसैर्वावातरक्तनुत् ॥ ११९ ॥

गिलोयके क्वाथ और दूधसे सिद्ध कियाहुआ तैल अथवा द्राक्षाके रस और
दूधसे सिद्धकिया तैल अथवा मुलेठी और कुंभेरके रससे सिद्ध किया तैल वातरक्तको
दूर करताहै ॥ ११९ ॥

आरनाल तैल ।

आरनालाढकेतैलंपादंसर्जरसंघृतम् ।

प्रभूतेमथितंतोयेज्वरदाहार्त्तिनुत्परम् ॥ १२० ॥

कांजी १ आढक, तैल १ प्रस्थ, राल १ कुडव इन सबको मिलाकर एकत्र करावे । इस तैलको अधिकांश जलमें मथकर शरीरपर मालिश करनेसे वातरक्तका ज्वर, दाह और पीडा शान्त होतीहै ॥ १२० ॥

पिण्ड तैल ।

समधूच्छिष्टमाञ्जिष्टंसर्जरसशारिवम् ।

पिण्डतैलंतदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम् ॥ १२१ ॥

भोम, मंजीठ, राल, शारिवा इन सबके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ तैल मालिश करनेसे वातरक्तकी पीडा दूर होतीहै ॥ १२१ ॥

पित्ताधिक वातरक्तके यत्न ।

दशमूलशृतंक्षीरंसद्यःशूलनिवारणम् ।

परिपेकोऽनिलप्रायेतद्रत्कोष्णेनसर्पिपा ॥ १२२ ॥

दशमूलसे सिद्धकिये हुए दूधका परिसेचन करना अथवा दशमूलसे सिद्ध घृतका परिसेचन वातरक्तकी पीडाको शीघ्र दूर करदेताहै । परन्तु वह सेचन सुहाते २ गरम द्रव्यसे करना चाहिये ॥ १२२ ॥

स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वाचतुभिःपरिपेचयेत् ।

स्तम्भाक्षेपकशूलार्त्तकोष्णैर्दाहेतुशीतलैः ॥ १२३ ॥

घृत, तैल, वसा, मज्जा इन चार स्नेहोंको मधुरगणके द्रव्योंसे सिद्धकर वातरक्त रोगीके शरीरपर गरम गरम सेचन करे तो शरीरका स्तम्भ, आक्षेप, शूल और पीडा दूर होतीहै यदि शीतलकर सेचन करे तो वातरक्तकी दाह दूर होतीहै ॥ १२३ ॥

तद्रत्तव्यात्रिकच्छागैःक्षीरैस्तैलविमिश्रितैः ।

निःक्वाथैर्जीवनीयानांपञ्चमूलस्यवाभिपक् ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार गौ, भेड, बकरीके दूधसे सिद्ध किया तैल, जीवनीयगणके क्वाथके साथ मिलाकर अथवा पंचमूलके क्वाथके साथ मिलाकर सेचनकरे तो वातरक्तकी पीडा शान्त होतीहै ॥ १२४ ॥

दाहनाशक यत्न ।

द्राक्षेधुरसमद्यादिदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकम् । सेकार्थेतण्डुलक्षौद्र-

शर्कराम्बुचशस्यते ॥ १२५ ॥ कुमुदोत्पलपपद्माद्यैर्मणिहारैः सच-
न्दनैः । शीततोयानुगैर्दाहेप्रोक्षणंस्पर्शनंहितम् ॥ १२६ ॥ चन्द्र-
पादाम्बुसंसिक्तैश्चैवपद्मदलच्छदे । शयनेपुलिनस्पर्शशीतमारुत-
वीजिते ॥ १२७ ॥ चन्दनार्द्रस्तनकराःप्रियानार्य्यःप्रियंवदाः ।
स्पर्शशीताःसुखस्पर्शाघ्नन्तिदाहरुजङ्गमम् ॥ १२८ ॥

वातरक्तमें दाहशांतिके लिये द्राक्षाका रस, ईसका रस, मद्य, दही, दहीका जल, खट्टी कांजी, तण्डुलजल, शहद और खांड मिलाकर परिसेचन करना हितकारक है । तथा कुमुद, नील कमल, लाल कमल आदि शीतल फूलों और मणियोंका हार, चंदनका लेप, शीतल जलका स्पर्श और छींटे देना हितकारक है । एवं चन्द्रमाकी किरण और शीतल जलके फुआरोंसे शीतल स्थान, रेशमी वस्त्र और कमलके फूलोंसे तथा पत्रोंसे विछीहुई शीतल शय्या, नदीका किनारा, शीतल जलसे भिंगेहुए पंखेकी वायु, शीतल चंदनसे चांचित शीतलांगी स्त्रियोंका स्पर्श, मधुर २ वातोंका सुनना, शीतल और सुखदायक वस्त्रोंका स्पर्श पित्तप्रधान वातरक्तकी दाह, पीडा और क्लान्तिको नष्ट करताहै ॥ १२५-१२८ ॥

लाली, दाह, गूल, नाशक अन्य यत्न ।

सरागेसरुजेदाहेरक्तमुक्ताप्रलेपयेत् । मधुकाश्वत्थत्वञ्जांसीवीरोदु-
म्बरशाद्वलैः ॥ १२९ ॥ जलजैर्यवचूर्णैर्वासयष्ट्याह्वपयोधृतैः । स-
र्पिपाजीवनियैर्वापिष्टैर्लेपोऽस्तिदाहनुत् ॥ १३० ॥

यदि वातरक्तमें लाली, पीडा और दाह हो तो पहिले रक्त निकालकर फिर मुलैठी पीपलवृक्षकी छाल, जटामांसी, काकोली, गूलरकी छाल और शाद्वल नामक घास अथवा कमलके फूल और यव या मुलैठी, दूध और घृत अथवा जीवनीयगणका कल्क और घृत इनमेंसे किसी एकको वारीक पीसकर लेप करे तो पीडा और दाह शान्त होतीहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥

एलाःपियालंमधुकं विसंमूलश्चवेतसात् ।

आजेनपयसापिष्ट्वाप्रलेपोदाहरागनुत् ॥ १३१ ॥

इलायची, चिरौंजी, मुलैठी, कमलकी डण्डी, वेतसकी जड़ इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे तो वातरक्तकी दाह और लाली दूर होतीहै ॥ १३१ ॥

गणपौण्डरीकमञ्जिष्ठादावीमधुकचन्दनैः । सितोपलैरकासकुमसूरो-

शीरपद्मकैः ॥ १३२ ॥ लेपोरुग्दाहवीसर्पर्वशोफविनिवारणः ।
पित्तरक्तोत्तरेत्वेतेलेपान्वातोत्तरेशृणु ॥ १३३ ॥

पंड्यारेकी छाल, मंजीठ, दारूहल्दी, मुलैठी, लाल चंदन, मिसरी, सरपतेकी जड़, यवोंके सत्तू, मसूर, खस और पद्मकाष्ठ इन सबको वारीक पीसकर लेप करनेसे वातरक्तका शूल, दाह, विसर्प, लाली और सूजन नष्ट होतीहैं। यह जितने उपरोक्त लेप और सेचनादि हे, पित्ताधिक वातरक्तमें करने चाहिये। वाताधिक वातरक्तकी चिकित्सा आगे सुनो ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

वाताधिक वातरक्तके यत्न ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःसक्षीरमुद्गपायसैः । तिलसर्पपिण्डैर्वाप्यु-
पनाहरुजापहाः ॥ १३४ ॥ औदकप्रसहानूपवेशवाराःसुसंस्कृताः ।
जीवनीयौपधत्तेहयुक्ताःस्युरुपनाहने ॥ १३५ ॥ स्तम्भतोदरुगा-
यासशोथाङ्गग्रहनाशनाः । जीवनीयौपधैःस्नेहःसपयस्कोरसोऽपि
वा ॥ १३६ ॥

वाताधिक वातरक्तमें वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए चिकनाईयुक्त खीर, खिचडी, मूंग, तिल, सरसों आदिके पिण्डसे उपनाहस्वेद करे तो वायुकी पीडा शान्त होतीहै। अथवा जलज, प्रसह और आनूप जीवोंके मांसको हल्दी आदि मिलाकर तथा जीवनीयगणकी औषधियोंसे युक्तकर घृत, तेलकी चिकनाई मिला सिद्धकरे। फिर इस मांसपिण्डसे उपनाहस्वेद करे तो स्तम्भ, तोद, शूल, परिश्रम, सूजन और अंगोंका जकडना यह सब नष्ट होतेहैं। तथा जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ घी और दूध गर्म गर्म सेचन कियाजाय तो वह भी हितकारी है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

घृतंसहचरान्मूलंजीवन्तीच्छागलंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्द्रु-
ष्टाःपयसिनिर्वृताः ॥ १३७ ॥ क्षीरपिष्टमुमालेपमेरण्डस्यफलानि
च । कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थंशताह्वानिलेऽधिके ॥ १३८ ॥

घी, काले बांसेकी जड़, जीवन्ती और वकरीके दूधको मिलाकर गर्म कर लेप करना अथवा तिलोंके कल्कको घीमें भूनकर और दूधमें चोटकर गर्म कर लेप करे या अलसी अथवा एरण्डके बीजोंको दूधमें पीस गर्मकर लेप करे अथवा सोंफको दूधमें पीस गर्म गर्म लेप करे तो वाताधिक वातरक्तकी शूल दूर होतीहै ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

समूलाद्यच्छदैरण्डकाधेद्विप्रस्थिकंप्रथक । घतंतैलवसामजाचानपे

मृगपक्षिणाम् ॥ १३९ ॥ कल्कार्येजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजक-
म् । हरिद्रोत्पलकुष्ठैलाशताह्वाश्वहनच्छदान् ॥ १४० ॥ विल्व-
मात्रंपृथक्पुष्पंकाकुभश्चापित्ताधयेत् । मधुच्छिष्टपलान्यष्टौदद्या-
च्छीतेऽवतारिते ॥ १४१ ॥ शूलेनैवार्दिताङ्गानालेपःसन्धिगतोऽ-
निले । वातरक्तेऽसुतेभग्नेखञ्जेकुब्जेचशस्यते ॥ १४२ ॥

एरण्डकी जड़, कोंपल, पत्र इन सबका क्वाथ आठ प्रस्थ, घृत, तैल, अनूपसं-
चारी जीवोंका भेद और मज्जा एक एक प्रस्थ, गौका दूध ४ प्रस्थ, बकरीका दूध
४ प्रस्थ तथा जीवनीयगणकी संपूर्ण औषधियें हल्दी, नीलकमल, कूठ, इलायची,
सौंफ, कनेरके पत्ते और अर्जुन वृक्षकी छाल यह सब एक एक पल इन सबको
मिलाकर खेड़ सिद्धकरे । फिर उतारकर इसमें आठ पल मोम मिलावे । इस स्नेहका
लेपन और सेचन करनेसे शूलसे पीडित अंग, संधिगत वायु, वायुरक्त, भम, खंज,
कुयडापन, स्नायुक्त वातरक्त यह सब रोग दूर होतैंहैं ॥ १३९-१४२ ॥

कफाधिक वातरक्तमें चिकित्सा ।

शोफगौरवकण्ठाद्यैर्युक्तेत्वस्मिन्कफोत्तरे । सूत्रक्षारसुरापक्वघृत-
मभ्यञ्जनेहितम् ॥ १४३ ॥ पद्मकंत्वक्समधुकंशारिवाचेतितैर्घृ-
तम् । सिद्धंसमधुशुक्तंस्यात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे ॥ १४४ ॥

कफाधिक वातरक्तमें भारीपन, सूजन और खुजली होय तो गोमूत्र, क्षार और
मद्य मिलाकर पकायाहुआ घृत मालिश करना चाहिये । अथवा पद्मकाष्ठ, दाल-
चीनी, सुलैठी, शारिवा इन सबका कल्क और ईखके रसका सिरका मिलाकर सिद्ध
क्रिया घृत सेचन और लेपन करनेसे कफप्रधान वातरक्तकी खुजली और सूजन
आदि दूर होताहै । कोई इस घृतमें सिरकेके साथ शहदका डालना भी कहतै
हैं ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

क्षीरंतैलंगवांसूत्रंजलश्चकटुकैःशृतम् । परिपेकाःप्रशंस्यन्तेवातर-
क्तेकफोत्तरे ॥ १४५ ॥ लेपःसर्पपनिम्बार्कहिंस्वाक्षीरतिलैर्हितः ।

श्रेष्ठःसिद्धःकपित्थत्वग्घृतक्षीरैःससक्तुभिः ॥ १४६ ॥

दूध, तेल, गोमूत्र और जलको त्रिजुटेके चूर्णसे सिद्धकर कफाधिक वातरक्तमें सेचन
करना चाहिये । सफेद सरसों, नीमकी छाल, आककी जड़की छाल, हींसकी जड़की
छाल, दूध और तिल इन सबको मिलाकर लेप करना अथवा केयवा गृदा, दालचीनी,
पी और दूध मिलाकर लेप करना कफाधिक वातरक्तमें हितकारी है ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

वातकफाधिक वातरक्तका यत्न ।

द्वेहरिद्रेवचागौरधूमकुष्ठशताह्विकाः ।

प्रलेपःशूलनुद्वातरक्तेवातकफोत्तरे ॥ १४७ ॥

तगरंत्वक्शताह्विलांकुष्ठंमुस्तंहरेणुका ।

दारुव्याघ्रनखंचाम्लपिष्टंवातकफार्तिनुत् ॥ १४८ ॥

कफवाताधिक वातरक्तमें हल्दी, दारुहल्दी, वच, सफेद सरसों, घरका धूम, कूठ और सौंफको मिलाकर लेप करना हितकारी है । अथवा तगर, दालचीनी, सौंफ, इलायची, कूठ, नागरमोया, रेणुका, देवदारु और व्याघ्रनखीको कांजी अथवा सिर-केमें मिलाकर लेप करनेसे वातकफाधिक वातरक्तकी पीडा दूर होतीहै ॥ १४७-१४८ ॥

मधुशिग्रोर्हितंतद्वद्बीजंधान्याम्लसंयुतम् ।

सुहूर्त्तलिसमम्लैश्चसिञ्चेद्वातकफोत्तरे ॥ १४९ ॥

मीठे सुहांजनेके बीज, धानोंकी कांजीमें पीसकर लेपकरे दो घडीके अनन्तर गरम कांजीसे सेचन करे तो कफवाताधिक वातरक्तकी पीडा शान्त होतीहै ॥ १४९ ॥

त्रिदोषज वातरक्तमें यत्न ।

त्रिफलाव्योपपत्रैलास्त्वक्क्षीरंचित्रकंवचाम् । विडङ्गपिप्पलीमूलं

लोमशंवृषकत्वचम् ॥ १५० ॥ ऋद्धितामलकींचव्यंसमभागानि

पेपयेत् । कल्कंलिसमयस्पात्रेमध्याह्नेभक्षयेत्ततः ॥ १५१ ॥ वर्ज-

येद्वधिशुक्तानिक्षारंवैरोधकानिच । वातास्त्रेसर्वदोषेऽपिहितंशूला-

दितेपरम् ॥ १५२ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, पत्रज, इलायची, वंशलोचन, चित्रक, वायविडंग, वच, पीपला-मूल जटामांसी, अडूसा, दालचीनी, ऋद्धि, भूमि आँवला और चव्य इन सबको सम भाग लेकर वारीक पीसले । इस कल्कको जलके संयोगसे लोहेके पात्रमें लेप करे । लेप सुखनेपर मध्याह्नमें इस पात्रमेंसे उस औषधको निकालकर मात्रानुसार खावे तथा दही, सिरका, क्षार और विरुद्ध भोजनका त्याग रखे तो सर्वदोषजनित वातरक्तकी पीडा भी शान्त होती है ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

बुद्धास्थानविशेषांश्चदोषाणाञ्चवलावलम् ।

चिकित्सितमिदंकुर्याद्दूहापोहविकल्पवित् ॥ १५३ ॥

दोपोंके स्थानविशेष, बलाबल और विकल्पको तर्क वितर्क द्वारा निश्चय करके उनके अनुसार ही औषधियोंका घटाव बढ़ाव आदि करताहुआ बुद्धिमान् वैद्य चिकित्सा करे ॥ १५३ ॥

कुपितेमार्गसंरोधान्मेदसोवाकफस्यवा । अतिवृद्धयानिलेनादौश-
स्तंस्नेहनवृंहणम् ॥ १५४ ॥ व्यायामशोधनारिष्टमूत्रपागैर्विरेचनैः ।
तक्राभयाप्रयोगैश्चक्षपयेत्कफमेदसी ॥ १५५ ॥

यदि मेद अथवा कफद्वारा मार्ग रुकजानेसे वायु अत्यंत कुपित होकर बढजाय तो पहिले स्नेहन और वृंहण क्रिया करना हितकारी नहीं हसलिये ऐसे समय पहिले कफ और मेदको क्षीण करना हितकारक है । उस कफ और मेदके क्षय करनेके लिये व्यायाम, शोधन, अरिष्ट और गोमूत्रका प्रयोग करना तथा विरेचन कराना और तक्र तथा हरडका प्रयोग करना हितकारक होता है ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

वोधिवृक्षकषायन्तुपिवेत्तंमधुनासह ।

वातरक्तंजयत्याशुत्रिदोषमपिदारुणम् ॥ १५६ ॥

वोधिवृक्ष (पीपल) के छिलकेका काथ शहद मिलाकर पीनेसे त्रिदोषज दारुण वातरक्तकी शीघ्र शान्ति होती है ॥ १५६ ॥

पुराणयवगोधूममध्वरिष्टासवैस्तथा ।

शिलाजतुप्रयोगैश्चगुग्गुलोर्माक्षिकस्यच ॥ १५७ ॥

पुराने यव, गेहूं, शीघु, अरिष्ट, आसव तथा शिलाजीत, गुग्गुल और शहदका प्रयोग करनेसे कफ, मेदकी शान्ति होतीहै तथा त्रिदोषज वातरक्तभी शान्त होताहै ॥ १५७ ॥

पश्चाद्वातेक्रियांकुर्याद्वातरक्तप्रसादनीम् ।

गम्भीरैरक्तमाक्रान्तंस्याच्चेद्वातद्विर्वर्जयेत् ॥ १५८ ॥

जब कफ और मेद शान्त होजाय तो वातरक्तनाशक रत्नेहादिकी क्रिया करना हितकारक होताहै । गम्भीरवातरक्तमें यदि वायुद्राग रक्त अत्यंत आक्रान्त होजाय तो उस रोगीको त्याग देना चाहिये ॥ १५८ ॥

रक्तपित्तातिवृद्धयातुपाशुमानुनियच्छति । भिन्नंस्त्वतिवारक्तंवि-
दग्धंपूयमेववा ॥ १५९ ॥ तयोःक्रियाविधातव्याव्यधशोधनरोपणैः ।
कुर्यादुपद्रवाणाश्चक्रियांस्वात्स्वाच्चिकित्सितात् ॥ १६० ॥

रक्तपित्तकी अत्यंत वृद्धि होनेसे वातरक्त शीघ्र पाकको प्राप्त होजाताहै उस समय

त्वाचा फटकर विदग्ध रक्त तथा राध निकलने लगतीहि। ऐसे समय पाके और स्रावकी शान्तिके लिये द्यवन, गोवन और रोपण क्रिया करना हितकारी है। और वात-रक्तमें जो उपद्रव होतेहैं उनकी उपद्रवानुसार स्वतंत्र चिकित्सा करना चाहिये ॥ १६० ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

हेतुस्थानानिमूलञ्चयस्मात्प्रायश्चसन्धिषु । कुप्यतिप्राक्चतद्रूपं द्वि-
विधस्यचलक्षणम् ॥ १६१ ॥ पृथग्भिन्नस्यलिङ्गञ्चदोषाधिक्यमु-
पद्रवाः । साध्यंयाप्यमसाध्यञ्चक्रियासाध्यस्यचाखिला ॥ १६२ ॥
वातरक्तस्यनिर्दिष्टाःसमासव्यासतस्तथा । महर्षिणाग्निवेशायत-
थेवावस्थिकीक्रिया ॥ १६३ ॥

इतिश्रीचर०चिकि०वातर०चिकित्सितनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें श्लोक है कि इस वातरक्तचिकित्सित नामक अध्यायमें वातरक्तके हेतु, रयान, मूल, जिस लिये इसका कोप संघियोंमें होताहै, पूर्वरूप, उत्तान और गंभीर दो भेद, उनके लक्षण, विशेषरूपसे भिन्न २ लक्षण, दोषोंकी अधिकता के भेदसे उपद्रव, साध्य, याप्यसाध्य,असाध्य,क्रियासाध्य यह सब तथा समयानुसार अवस्थाभेदसे चिकित्सा महर्षि आत्रेयजीने संक्षेप और विस्तारसे अग्निवेशके प्रति वर्णन कियेहैं ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

इति श्रीचर० चिकि०साधने प्र० भा० टी० वातरक्तचिकित्सित नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो योनिव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह
भगवानात्रेयः ।

अब हम योनिव्यापत् चिकित्सितनामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

दिव्यौषधिजलस्त्रादुधातुचित्रशिलावनि । पुण्येहिमवतःपार्श्वसुर-
सिद्धनिपेविते ॥ १ ॥ विहरन्तंतपोयोगान्तत्त्वज्ञानार्थदर्शिनम् ।

कृष्णात्रेयंजितारमानमग्निवेशोऽथपृष्टवान् ॥ २ ॥

दिव्य औषधियाँसे, शीतल, मधुर जल, चित्र विचित्र धातु और शिलाओंसे शोभायमान तथा देवता, सिद्ध और ऋषियोंसे सेवन किये हुए पुण्यजनक हिमवान् पर्वतके पार्श्वमें तप, योगके बलसे, तत्त्वज्ञान और परमार्थदर्शी विहार करते हुए जितात्मा कृष्ण आत्रेयजीसे अभिवेश पृच्छने लगे ॥ १ ॥ २ ॥

भगवन् ! यदपत्यानांमूलंनार्यःपरंनृणाम् । तद्विघातो गदैश्चासां
क्रियते योनिमाश्रितैः ॥ ३ ॥ तस्मात्तेषांसमुत्पत्तिमुत्पन्नानाञ्च
लक्षणम् । औषधंश्रोतुमिच्छामि प्रजानुग्रहकाम्यया ॥ ४ ॥

कि हे भगवन् ! संपूर्ण मनुष्योंकी रति और संतानकी उत्पत्तिका मूलस्वरूप स्त्रियों ही हैं उन स्त्रियोंकी योनिमें रोगोंके उपस्थित होनेसे संतान आदि सुखका भी विघात होता है इसलिये उन योनियोंमें होनेवाली रोगोंकी उत्पत्ति और उत्पन्न हुए रोगोंके लक्षण और उनकी चिकित्सा प्रजागणके हितके लिये कृपाकर कथन कीजिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

इतिशिष्येणप्रष्टस्तुप्रोवाचर्षिवरोऽत्रिजः । विंशतिर्व्यापदोयोनेर्नि-
दिष्टारोगसंग्रहे ॥ ५ ॥ मिथ्याचारेणताःस्त्रीणांप्रदुष्टेनार्त्तवेनच ।
जायन्तेवीजदोषाच्चदैवाच्चशृणुताःपृथक् ॥ ६ ॥

शिष्यके इस प्रकार पृच्छनेपर महर्षि आत्रेयजी कहने लगे कि रोग संग्रह अर्थात् "सूत्रस्यानके अष्टोदरीय अध्यायमें" बीस प्रकारके योनिरोगोंका कथन कर आये हैं वह रोग स्त्रियोंके मिथ्या आहार विहारसे और मासिक ऋतुके दुष्ट होनेसे तथा बीजदोषसे और दैवसे उत्पन्न होते हैं । उन सबके पृथक् २ वर्णनको श्रवण करो ॥ ५ ॥ ६ ॥

वातदूषित योनिके लक्षण ।

वातलाहारचेष्टायावातलायाःसमीरणः । विवृद्धोयोनिमाश्रित्य
योनेस्तोदंसवेदनम् ॥ ७ ॥ स्तम्भंपिपीलिकासृत्तिमिवकर्क-
शतांतथा । करोतिसुतिमायासंवातजांश्चापरान्गदान् ॥ ८ ॥
सास्यात्सशब्दरुक्फेनतनुरूक्षार्त्तवानिलात् ॥ ९ ॥

वानप्रधान स्त्रीके वातकारक आहार और चेष्टादिकोंके सेवनसे वायु विकृत होकर योनिमें आश्रित हो पीडा, तोद, स्तम्भ, चींटियोंके चलनेकीसी सरसराहट, कर्कशता, सुप्ति (शून्यता) तथा थकावट और वातजनित रोगोंको करती है । उस वातयुक्त योनिवाली स्त्रीको ज्ञागदार, शूल और शब्दयुक्त रुक्ष तथा थोडा २ मासिक रज आता है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

दूषितापित्तयोनि के लक्षण ।

व्यापत्तथा म्ललवणक्षाराद्यैः पित्तजा भवते । दाहपाकज्वरोष्णात्तानी-
लपीतसितार्त्वा । भृशोष्णकुणपस्त्रावायोनिः स्यात्पित्तदूषिता ॥ १० ॥

उसी प्रकार पित्तप्रधान स्त्रीके खटाई, नमक और क्षार आदि उष्ण पदार्थोंके अत्यंत सेवनसे पित्तजनित योनिगोग उत्पन्न होता है । पित्तजनित योनिरोगमें—दाह, पाक, ज्वर, उष्णता, नील, पीत और असितवर्णका मासिकऋतु आता है तथा मासिक ऋतुकाल साव-गर्म और मुढ़ेकी सी गंधवाला होता है यह पित्तदूषित योनि के लक्षण हैं ॥ १० ॥

कफदूषितयोनि के लक्षण ।

कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धोयोनिश्चेदूपयेत्स्त्रियाः ॥

सशीतांपिच्छिलांकुर्यात्कण्डूग्रस्ताल्पवेदनाम् ॥

पाण्डुवर्णा तथा पाण्डुपिच्छिलार्त्वाहिनीम् ॥ ११ ॥

कफप्रधान स्त्रियोंके शरीरमें कफकारक और अभिष्यन्दी पदार्थोंके सेवनसे कफ अत्यंत बढ़कर योनि को अत्यंत दूषित कर देती है । फिर उससे योनि किञ्चित् शीतल पिच्छिल, खुजलीयुक्त होती है तथा मंदमंद पीडा और पाण्डुवर्णयुक्त होजाती है उस योनिसे पाण्डुवर्ण और पिच्छिल मासिकरज आता है ॥ ११ ॥

त्रिदोषदूषितयोनि के लक्षण ।

समश्रुत्यारसान्सर्वान्दूषयित्वात्रयोमलाः ॥ १२ ॥ योनिगर्भाश-

चस्थाः स्वैर्योनिषु जन्तिलक्षणैः । सा भवेद्दाहशूलार्त्वाश्चेत्पिच्छ-

लवाहिनी ॥ १३ ॥

स्त्रियोंके त्रिदोषकारक आहार विहारके सेवन करनेसे तीनों दोष दूषित होकर उनकी योनि और गर्भाशयमें प्राप्त हो अपने लक्षणोंयुक्त योनिगोगको उत्पन्न करने हैं जिससे योनि—दाह और शूलसे पीडित होजाती है तथा उसमेंसे सफेद और पिच्छिल स्राव होने लगता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

रक्तपित्तदूषितयोनि०

रक्तपित्तकरैर्नाय्यारक्तपित्तेन दूषितम् ।

अतिप्रवर्त्तते योन्यां लब्धे वीजेऽपिसाऽप्रजा ॥ १४ ॥

स्त्रियोंको रक्तपित्तकर्ता पदार्थोंके सेवन करनेसे रक्तपित्त दूषित योनिगोग होता है उससे योनिद्राग रक्तका अत्यंत स्राव होने लगता है रक्तपित्तदूषित योनिवाली स्त्री

यदि बीजको ग्रहणकर भी लेवे तो भी गर्भ नहीं रहसकता अर्थात् स्त्राव ही होजा-
ताहै कोई ऐसा माननेहै कि इस स्त्रीको गर्भ होजानेपर भी ऋतु स्त्राव बन्द
नहीं होता ॥ १४ ॥

अरजस्का योनि ।

योनिगर्भाशयस्थंचेत्पित्तसंदूपयेदसृक् ।

सारजस्कामताकार्थवैवर्ण्यजननीभृशम् ॥ १५ ॥

यदि योनि और गर्भाशयस्थ पित्त आर्तवको दूषित करे तो, उस योनिको अरज-
स्का कहतेहैं । क्योंकि इस योनिसे रजका स्त्राव नहीं होता । इस योनिवाली स्त्री
विवर्णतायुक्त और अत्यंत कृश होजातीहै ॥ १५ ॥

अचरणा योनि ।

योन्यामधावनात्कण्डूजाताःकुर्वन्तिजन्तवः ।

सास्यादचरणाकण्डूतयातिनरकाङ्क्षिणी ॥ १६ ॥

योनिको न धोनेसे योनिमें सूक्ष्म कीड़े उत्पन्न होकर खुजलीको करतेहैं । उस
अत्यंत खाजके होनेसे स्त्रीको हरसमय पुरुषके संभोग करनेकी अत्यंत पीडा
होतीहै ॥ १६ ॥

अतिचरणा योनि ।

पवनोऽतिव्यवायेनशोफसुप्तिरुजःस्त्रियाः ।

करोतिकुपित्तोयोनौसाचातिचरणामता ॥ १७ ॥

अत्यंत मधुनके करनेसे वायु कुपित होकर स्त्रीकी योनिमें सूजन मुप्ति और
पीडाको उत्पन्न करताहै उस योनिको अतिचरण कहतेहैं ॥ १७ ॥

प्राक्चरणा योनि ।

मैथुनादतिवालायाःपृष्ठजङ्घोस्वक्षणम् ।

रुजयन्दूपयेद्योनिंवायुःप्राक्चरणाहिसा ॥ १८ ॥

अति छोटी अवस्थामें स्त्री यदि मैथुन करे तो उसके वायु कुपित हो पीडा,
कमर, ऊरू, और वक्षणमें पीडा उत्पन्न कर योनिको दूषित कर देताहै । इसको
प्राक्चरणा योनि कहनेहैं ॥ १८ ॥

उपप्लुता योनि ।

गर्भिण्याःश्लेष्मलाभ्यासाच्छर्दिश्वासघनिग्रहात् । वायुःकुद्धःकफं

योनिमुपनीयप्रदूपयेत् ॥ १९ ॥ पाण्डुसतोद्गमास्त्रात्रंश्वेतस्त्रवतिवा-

कफम् । कफवातामयव्यासात्सास्याद्योनिरुपप्लुता ॥ २० ॥

यदि गर्भवती स्त्री अत्यंत कफकारी पदार्थोंका सेवन करे तथा वमन और श्वासके वेगको रोक लेवे तो उस वमन और श्वासके रोकनेसे कुपित हुआ वायु बड़े बड़े कफको योनिमें लेजाकर उसको दूषित करदेताहै उससे गर्भकी अवस्थामें ही पाण्डुवर्ण, तीदयुक्त, सफेद वर्णका स्राव योनिद्राग होने लगता है । अथवा केवल कफका ही स्राव होता है । इस प्रकार वात और कफकी पीडासे व्याकुल योनिको उपप्लुता कहतेहैं ॥ १९ ॥ २० ॥

परिप्लुता योनि ।

पित्तलायानृसंवासेक्षवथूद्धारधारणात् । पित्तसंमूर्च्छितोवायुर्योनिं
दूषयतिस्त्रियाः ॥ २१ ॥ शूनास्पर्शाश्रमासार्त्तिर्नीलपीतमसकृस्त्रवे-
त् । श्रोणिवंक्षणपृष्ठार्त्तिज्वरार्त्तायाःपीरुप्लुता ॥ २२ ॥

पित्तप्रधान प्रकृतिवाली स्त्री यदि मधुनके समय हिचकी और डकारके वेगको रोकलेवे तो उसके शरीरमें पित्तयुक्त वायु कुपित होकर योनिको दूषित कर देताहै, उससे योनिमें मूजन, स्पर्शका न सहना और पीडा यह लक्षण होतेहैं, तथा नीले और पीले वर्णका रक्तस्राव होताहै और उस स्त्रीके नितम्ब वंक्षण और पीठमें पीडा उत्पन्न होजातीहै और ज्वर भी होताहै । इन लक्षणोंवाली योनिको परिप्लुता योनि कहतेहैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

उदावृता योनि ।

वेगोदावर्त्तनाद्योनिमुदावर्त्तयतेऽनिलः । सारुगार्त्तारजःकृच्छ्रेणो-
दावृत्तांविमुञ्चति ॥ २३ ॥ आर्त्तवैसाविमुक्तेतुतक्ष्णंलभतेसुखम् ।
रजसोगमनादूर्द्ध्वज्ञेयोदावर्त्तिनीघुधैः ॥ २४ ॥

अधोवेगोंके रोक लेनेसे कुपित हुआ वायु योनिका वेग ऊपरकी ओर कर देता है वह योनि बड़े कष्टके साथ थोड़ेसे रुधिरको त्याग करतीहै और योनिमें अत्यंत शुल होताहै उसको उदावृता योनि कहतेहैं । उदावृता योनिसे मासिक ऋतुका रज निकल चुकनेपर उसको शान्ति प्राप्त होताहै । मासिक रजका वेग ऊपरकी ओर होनेसे उसको बुद्धिमान् उदावर्त्तनी योनि कहते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

कर्णिनी योनि ।

अकालेवाहमानायागर्भेणपिहितोऽनिलः । कर्णिकांजनयेद्योनों
श्लेष्मरक्तेनमूर्च्छितः । रक्तमार्गावरोधिन्त्यासातयाकर्णिनीमता २५
छोटी अवस्थामें अथवा वेगमय गर्भ धारण करनेसे गर्भद्राग पीडित हुआ वायु

योनिमें कर्णिका उत्पन्न कर देताहै । यह कर्णिका कफ और रक्तसे संसृष्ट होतीहै और रक्तके मार्गको रोकनेवाली होती है । इस योनिको कर्णिनी कहतेहैं ॥ २५ ॥

पुत्रघ्नी योनि ।

रौक्ष्याद्वायुर्यदागर्भजातंजातंविनाशयेत् ।

दुष्टशोणितजंनार्याःपुत्रघ्नीनामसामता ॥ २६ ॥

जिस स्त्रीके दूषित रजसे उत्पन्न हुए गर्भको रूक्षतासे कुपितहुआं वायु नष्ट करदे और जबजब गर्भ उत्पन्न हो तब तब ऐसे ही नष्ट कर दिया करे तो उस स्त्रीकी योनिको पुत्रघ्नी योनि कहतेहैं ॥ २६ ॥

अंतर्मुखीयोनिके ल० ।

व्यवायमत्तितृसायाभजन्त्यास्त्वत्रपीडितः । वायुर्मिथ्यास्थिताङ्ग-
यायोनिन्नोतसिसंस्थितः॥२७॥ वक्रयत्याननंयोन्याःसास्थिमांसा-
निलार्त्तिभिः॥२८॥ भृशार्त्तिमैथुनासक्तायोनिरन्तर्मुखीमता॥२९॥

अत्यंत भोजनके अनन्तर यदि मूर्खता पूर्वक विकृतरूपसे शयनकर मैथुन करावे तो योनिके बीचमें रहनेवाला वायु योनिके मुखको टेढ़ा कर देताहै । तब योनिके अस्थि और मांसमें वायुकी पीडा और योनिमें भी अत्यंत पीडा करताहै । फिर वह स्त्री मैथुन करनेमें असमर्थ होजातीहै । इस योनिको अंतर्मुखी योनि कहते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

सूचीमुखी ।

गर्भस्थायाःस्त्रियारौक्ष्याद्वायुर्योनिंप्रदूपयन् ।

मातृदोषादणुद्वारांकुर्यात्सूचीमुखीतुसा ॥ ३० ॥

माताके दोषसे रूक्ष वायु गर्भमें स्थित कन्याकी योनिको दूषित कर देताहै । उससे उस कन्याकी योनि बहुत सूक्ष्म छिद्रवाली होतीहै उस योनिको सूचीमुखी योनि कहतेहैं ॥ ३० ॥

शुष्का योनि ।

व्यवायकालेरुन्धन्त्यावेंगात्प्रकुपितोऽनिलः ।

कुर्याद्विषमृत्रसङ्गात्तिशोपंयोनिमुखंस्यच ॥ ३१ ॥

मथुनके समय जो स्त्री मलमूत्रोंके वेगोंको रोकलेतीहै उससे कुपित हुआ वायु योनिकी मखी बना देताहै । इस योनिको शुष्का योनि कहतेहैं ॥ ३१ ॥

वामिनी । -

पडहात्सतरात्राद्वाशुक्रं गर्भाशयंगतम् ।

सरुजं नीरुजं वापियास्त्रवेत्साचवामिनी ॥ ३२ ॥

जिस स्त्रीकी योनि गर्भाशयमें प्राप्तहुए वीर्यको पीडाके साथ अथवा बिना ही पीडासे छः या सात दिनके बाद निकाल डाले उसको वामिनी योनि कहतेहैं ॥ ३२ ॥

षण्डीके लक्षण ।

वीजदोषान्तु गर्भस्थामारुतोपहताशया ।

नृद्वेषिण्यस्तनीचैवपण्डीस्यादनुपक्रमा ॥ ३३ ॥

वीर्यके दोषके कारण वायु गर्भमें स्थितहुई कन्याके गर्भाशयको हनन कर देताहै । वह कन्या स्तन रहित और योनि रहित तथा पुरुषसे द्वेष करनेवाली होतीहै । इस स्त्रीको पण्डी कहतेहैं । यह असाध्य होतीहै अर्थात् उसकी कोई चिकित्सा नहीं ॥ ३३ ॥

महायोनिके ल० ।

विपमाहुःखशय्यायामैथुनाल्कुपितोऽनिलः ।

गर्भाशयस्ययोन्याश्चमुखंविष्टम्भयेत्त्रियाः ॥ ३४ ॥

असंवृतमुखीसार्त्तीरूक्षफेनास्त्रवाहिनी ।

सोत्सन्नामहायोनिःपर्ववंक्षणशूलिनी ॥ ३५ ॥

विकृत शय्या पर शयन करके मैथुन करनेसे वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनिके मुखको विष्टव्य कर देताहै जिससे योनि का मुख खुलासा रहजाताहै । इससे ज्ञागदार मासिक ऋतुका स्राव होताहै । और योनि का अन्तर्वर्ती मांस उन्नत रहताहै स्त्रीके संधि और पेटमें शूल रहताहै । इस योनिको महायोनि कहतेहैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

इत्येतैर्लक्षणैः प्रोक्ताविंशतियोनियागदाः । नशुक्रंधारयत्येभिर्दोषै-

र्योनिरुपद्रुता ॥ ३६ ॥ तस्माद्गर्भनष्टत्वात्स्त्रीगच्छत्यामयान्वहन् ।

गुल्मार्शःप्रदरादींश्चवाताद्यैश्चातिपीडनम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार इन लक्षणोंसे बीस प्रकारके योनिरोग होतेहैं । इन रोगोंसे निगडीहुई योनि वीर्यको धारण नहीं कर सकती । इसलिये इन बीस प्रकारके योनिरोगोंवाली स्त्रियें गर्भको धारण न करके गुल्म, घवासीर और प्रदग्नादिक तथा वातजनित बहुतसे रोगोंसे पीडित रहतीहैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

आसांपोडशयास्तासामाद्येद्वेपित्तदोषजे । परिप्लुतावामिनीचत्रात्-
पित्तात्मिके मते ॥३८॥ कर्णिन्युपप्लुतेवातकफाच्छेपास्तुवातजाः ।
देहंवातादयस्तासांतैर्लिङ्गैःपीडयन्तिहि ॥ ३९ ॥

इन बीस प्रकारके योनिरोगोंमें चार पहिलेके साधारण छोडकर बाकी सोलह योनिरोगोंमें रक्तपित्तज योनि और अरजस्का यह दो योनिरोग पित्तज होतेहैं । परिप्लुता और वामनी योनि वातपित्तात्मक होतीहै । कर्णिनी और उपप्लुता वातकफात्मक होतीहै । इनके सिवाय अचरणा, अतिचरणा, प्राकृचरणा, उदारवर्त्तिनी, पुत्रघ्नी, अंतर्मुखी, सूचीमुखी, शुष्का, पंडी और महायोनि यह सब वातात्मिका होतीहैं । इनमें वातादि दोष अपने २ लक्षणोंसे शरीरको पीडित करतेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वातज योनिरोगोंकी चिकित्सा ।

स्नेहनस्वेदवस्त्यादिवातलास्वनिलापहम् । कारयेद्रक्तपित्तघ्नशीतं
पित्तकृतासुच ॥ ४० ॥ श्लेष्मलासुचरूक्षोष्णं कर्मकुर्व्या-
द्विचक्षणः । सन्निपाते विमिश्रन्तु संसृष्टासुचकारयेत् ॥ ४१ ॥

वातजनित योनिरोगोंमें स्नेहन, स्वेदन, वस्तिकर्म आदि वातनाशक चिकित्सा करना चाहिये । और पित्तजनित योनिरोगोंमें रक्तपित्तनाशक शीतल क्रिया करना चाहिये और कफजनित योनिरोगमें रूक्ष और उष्ण क्रिया करना हितकारक है तथा चतुर्भेद्य त्रिदोषज और द्वन्द्वज योनिरोगोंमें दोषानुसार मिलीजुली चिकित्सा करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

स्निग्धस्विन्नांतथायोनिदुःस्थितांस्थापयेत्पुनः । पाणिना नामये-
ज्जिह्वांसंवृतां वृद्धयेत्पुनः ॥ ४२ ॥ प्रवेशयेन्निःसृताश्च विवृतां परिव-
र्त्तयेत् । योनिःस्थानापवृत्ता हिशल्यभूतास्त्रियामता ॥ ४३ ॥

वातज योनिरोगोंमें योनिको स्नेहन और स्वेदन करके यदि वह विपमस्थ हो तो उसको ठीक स्थानमें स्थापित करदेना चाहिये । टेढ़ी योनिको हाथसे नवाकर सीधी करदेना चाहिये । संकीर्ण योनिको यथोचित विवृत करदेवे । बाहर निकली हुई योनिको भीतम्की ओर करदेवे । विवृत योनिको यथोचित रीतिपर समवृत्त करदेना चाहिये । क्योंकि अपने स्थानसे पतित हुई योनि स्त्रियोंको शल्यकी समान दुःखदाई होतीहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

सर्वाव्यापन्नयोनिन्तुकर्मभिर्वमनादिभिः । मृदुभिः पञ्चभिर्नारींस्त्रिः-

ग्धस्त्रिन्नामुपाचरेत् ॥ ४४ ॥ सर्वतःसुविशुद्धायाःशेषंकर्मविधीय-
ते । वातव्याधिहरं कर्मवातात्तानांसदाहितम् ॥ ४५ ॥

सब प्रकार व्यापन्नयोनियोंमें प्रथम स्नेहन और स्वेदन करके वमनादि पंचक-
र्मोंको मृदुरीतिसे प्रयुक्त करे । जब स्त्री सब प्रकार शुद्ध होजाय तो बाकी रहे
कर्मको विधिवत् करना चाहिये । अर्थात् योनि विकृत हो तो उसको उचित रीति
पर ठीक करदेना चाहिये । यदि योनि वायुसे व्यापन्न हो तो वातनाशक क्रिया करना
चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

औदकानूपजैर्मांसैःक्षीरैःसतिलतण्डुलैः । सवातघ्नौषधैर्नाडीकुम्भी-
स्वेदैरुपाचरेत् ॥ ४६ ॥ युक्तांलवणतैलेनसामप्रस्तरसङ्करैः ।
स्त्रिन्नांकोष्णान्मुसित्ताङ्गींवातघ्नैर्भोजयेद्रसैः ॥ ४७ ॥

वातजनित योनिरोगमें जलज और आनूप जीवोंके मांस, दूध, तिल, चावल और
वातनाशक औषधियें इन सबको मिलाकर नाडीस्वेद और कुम्भीस्वेद करना
चाहिये । तथा ऐसी स्त्रीको नमक और तैलके योगसे अश्मवनस्वेद प्रस्तरस्वेद और
संकरस्वेदके प्रयोग द्वारा स्वेदन करे, फिर गर्म जलके साथ सेचन करे और गर्म जलसे
स्नान करा वातनाशक मांसरसोंके साथ भोजन करावे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

बलादितैल या घृत ।

बलाद्रोणद्वयक्वाथेघृततैलाढकंपचेत् । स्थिरापयस्याजीवन्तीवीर-
र्षभकजीवकैः ॥ ४८ ॥ श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुमापाख्यपर्णिभिः ।
शर्कराक्षीरकाकोलीकाकनासाभिरेवच ॥ ४९ ॥ पिष्टैश्चतुर्गुण-
क्षीरसिद्धंपेयंथावलम् । वातपित्तकृतात्रोगान्हत्वागर्भं दधाति
तत् ॥ ५० ॥

बलाका क्वाथ २ द्रोण लेकर इस क्वाथमें १ आठक घृत अथवा तैल मिलावे
और नीचे लिखीहुई शालपर्णादि औषधियोंका कलक मिलावे । जैसे शालपर्णा,
पयस्या (दुग्धिका वा क्षीरविदारी), जीवन्ती, काकोली, ऋषभक, जीवक, गोरख-
मुण्डी, पीपलामूल, पीलुपर्णा, मापपर्णा, खांड, क्षीरकाकोली और कारुनासा । यह
प्रत्येक एक२पल लेकर कलक बनावे । यह कलक और ४आठक दूध उपरोक्त घृत और
क्वाथमें मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर या तैल हो तो तैलमात्र शेष
रहनेपर उतारकर छानलेवे । यह घृत मात्रानुसार पीनेसे वात और पित्तजनित
योनिरोग दूर होकर स्त्री गर्भको धारण करतीहै । यदि उन्हीं औषधियोंसे तैल

सिद्ध कियाहो तो उसको वस्तिकर्म, अभ्यंग, नस्य और पीनेमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

काश्मर्यादि घृत ।

काश्मर्यात्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरूपकैः । पुनर्नवाहरिद्राभ्यांका-
कनासासहाचरैः ॥ ५१ ॥ शतावर्यागुडूच्याश्चप्रस्थमक्षसमैर्घृ-
तात् । साधितंयोनिवातघ्नं गर्भदंपरमंपिवेत् ॥ ५२ ॥

कुंभेर, त्रिफला, द्राक्षा, कसौंटीकी जडका छिलका, फालसे, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, काकनासा, काला बांसा, शतावर और गिलोय इन सबको एक एक तोला लेकर कल्क बनावे । घी १ सेर, दूध ४ सेर, पानी ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतको पीनेसे संपूर्ण वातजनित योनिरोग दूर होकर स्त्री गर्भको धारण करतीहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

पिप्पलादि कल्क ।

पिप्पल्यःकुञ्चिकाजाजीवृपकंसैन्धवंवचाम् । यवक्षाराजमोदेच
शर्करांचित्रकंतथा ॥ ५३ ॥ पिष्ट्वासर्पिपिभृष्टानिपाययेत्प्रसन्न-
या । योनिपार्श्वार्त्तिहृद्रोगगुल्माशोर्विनिवृत्तये ॥ ५४ ॥

पीपल, कलौंजी, कालाजीरा, बांसा, सेंधानमक, वच, जवाखार, अजमोद, खांड और चित्रक इन सबके कल्कको घीमें भूनकर प्रसन्नाके साथ पीवे तो योनिशूल, पार्श्वशूल, हृच्छूल, गुल्म और ववासीर यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

वृषकादि योग ।

वृषकंमातुलुङ्गस्यमूलानिमदयन्तिकाम् ।

पिवेत्सलवणैर्मथैःपिप्पलीकुञ्चिकेतथा ॥ ५५ ॥

अट्टसेकी जडका छिलका, विजौरीकी जड, मालतीके पत्र इन सबको पीसकर सेंधानमक और मद्यके साथ पीवे अथवा पीपल और कलौंजीके चूर्णको सेंधानमक और मद्यके साथ पीवे तो वातजनित योनिशूल दूर होताहै ॥ ५५ ॥

श्वदंष्ट्रावृषकरास्त्रापिवेच्छूलेपयःश्रुतम् ।

गुडूचीत्रिफलादन्तीकायैश्चपरिपेचयेत् ॥ ५६ ॥

गोरुखरू, वासेकी जड और रासनासे सिद्ध क्रियेहुए दूधको पीनेसे वातजनित योनिशूल दूर होताहै । तथा गिलोय, त्रिफला और दंतीके क्वाथमे योनिको मेचन करे तो योनिशूल दूर होताहै ॥ ५६ ॥

सैन्धवंतगरंकुष्ठंवृहतीदेवदारुच ।

समांशैःसाधितंकल्कैस्तैलंधार्य्यरुजापहम् ॥ ५७ ॥

संधानमक, तगर, कूठ, बडी कटेली और देवदारु इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे । इस कल्कसे सिद्ध कियेहुए तैलमें भिगोयाहुआ रुईका फाहा योनिमें रखे तो वातजनित योनिशूल दूर होताहै ॥ ५७ ॥

गुडूचीमालतीरास्तावलामधुकचित्रकैः । निदिग्धिकादेवदारुयू-
थिकाभिश्चकार्पिकैः ॥ ५८ ॥ तैलप्रस्थंगवांसूत्रेक्षीरेचद्विगुणेपचेत् ।

वातार्त्तानाश्चयोनीनांसेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ ५९ ॥

गिलोय, मालतीके पत्र, रासना, बला, मुलैठी, चित्रक, कटेली, देवदारु, जूहीके फूल इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । तेल १ प्रस्थ, गोमूत्र २ प्रस्थ और दूध दो प्रस्थ मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहने पर उतारकर छानलेवे । इस तेलमें भिगोयाहुआ फाहा योनिमें रखनेसे वातजनित योनिपीडा दूर होतीहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

वातार्त्तयाःपिचुंदद्याद्योनौचप्रणयेत्सदा ।

हिंसाकन्कन्तुवातार्त्ताकोष्णमभ्यज्यधारयेत् ॥ ६० ॥

हाँसकी जडके कल्कको घृतमें प्रीतकर गर्म करे फिर योनिको वातनाशक तैल-
द्वारा स्निग्ध कर उसमें हींसीकी जडके कल्कमें भिगोयाहुआ फाहा धारण करे तो वातजनित योनिपीडा दूर होतीहै ॥ ६० ॥

पित्तजयोनिरोगोंकी चिकित्सा ।

पञ्चवल्कस्यपित्तार्त्ताद्यामादीनांकफातुरा ।

पित्तलानान्तुयोनीनांसेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ ६१ ॥

पित्तज योनिरोगोंमें बड, पीपल, गूलर, पिलखन और वेतसके छिलकोंका कल्क और कफका संसर्ग हो तो शारिवाकी जड, आदिका कल्क योनिमें धारण करना चाहिये । पित्तजनित योनिरोगोंमें योनिका सेचन, अभ्यंग, और पिचु (फाहा) धारण करना हितकारक होताहै ॥ ६१ ॥

शीताःपित्तहराःकार्य्याःस्नेहनार्थघृतानिच ।

पित्तघ्नौषधसिद्धानिकाय्याणिभिपजातथा ॥ ६२ ॥

तथा शीतल; पित्तनाशक क्रिया करना चाहिये और स्नेहनके लिये पित्तनाशक
द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृतोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६२ ॥

वृहत् शतावरी घृत ।

शतावरीमूलहुलाश्रतस्रःसंप्रपीडयेत् । रसेनक्षीरतुल्येनपचेत्तेन
घृताढकम् ॥ ६३ ॥ जीवनीयैःशतावर्यामृद्धीकाभिःपरूपकैः ।
पियालंश्चाक्षकैःपिष्टैर्द्वियष्टिमधुकैःपचेत् ॥ ६४ ॥ सिद्धेशीतेचम-
धुनःपिप्पल्याश्रपलाष्टकम् । सितादशपलोन्मिश्राह्लिद्यात्पाणितलं
ततः । योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नंघृत्यंपुंसवनञ्चतत् ॥ ६५ ॥ क्षतंक्षयं
रक्तपित्तकासंश्वासंहलीमकम् । कामलांवातरक्तञ्चवीसर्पहृच्छिरो-
ग्रहम् । उन्मादायांससद्द्यासंवातपित्तात्मकंजयेत् ॥ ६६ ॥

अतापरकी २० सेर जडोंको कूटका उसका रस निचोड लेवे । यह रस और रस-
के समान दूध तथा ४ सेर घृत मिलाकर पकावे और इसमें नीचे लिखेहुए द्रव्योंका
कल्क मिलावे । जैसे जीवनीयगणकी दगऔपधिये, शतावर, मुनका,फालसे, चिरोंजी,
मुलेठी और जलज मुलेठी इन सबको एक एक कर्प लेकर कल्क करे । यह कल्क भी
उपरोक्त घृतमें मिलावे और पकावे । जब पकनेर घृतमात्र शेष रहे तो उतारकर छान-
ले जब वह घृत गीनल होजाय तो इसमें आठ पत्र शहद ८ पत्र पीपलका चूर्ण और
आठ पत्र भिमरी मिला किसी उत्तम पात्रमें भरकर रक्से । इसमेंसे दो तोला प्रमाण
नित्य साया करे तो योनि विकार, रक्तविकार, गुकविकार, दूर होते है यह घृत वीर्य-
वर्द्धक और सन्तानको देनेवाला है तथा क्षत, क्षय, रक्तपित्त, र्वांभी, श्वास, हलीमक,
कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, मस्नकपीडा, उन्माद, श्रम, मन्दास और वात-
पित्तात्मक रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

एवमेवक्षीरसर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् ।

गर्भदंपित्तलानाश्चयोनीनांस्याद्धिपगृजितम् ॥ ६७ ॥

इसी प्रकार जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ दूध और घृत अथवा
दूधसे निकाला हुआ घृत जीवनीयगणके साथ सिद्धकर पानसे पित्तजनित योनिरोग
दूर होकर स्त्री गर्भवती होजाती है ॥ ६७ ॥

कफजनित योनिरोगकी चिकित्सा ।

योन्वाःश्लेष्मप्रदुष्टायावर्त्तिःसंशोधनीहिता ।

वाराहेवहुशःपित्तेभाचितैर्नक्तकैःकृता ॥ ६८ ॥

कफजनित योनिरोगोंमें संशोधनी वर्तीका प्रयोग करना हितकारक है । तथा सूअर-के पित्तमें और कंजुके बीजोंके कल्कमें वारवा भिंगोईहुई वर्तीका प्रयोग करना हितकारक है ॥ ६८ ॥

भावितंपयसार्कस्यमापचूर्णससैन्धवम् ।

वर्तिःकृतामुहुर्धाद्य्याततःसेव्यासुखाम्बुना ॥ ६९ ॥

उडदोके चूर्णको संधानमकयुक्त कर आकके दूधमें भावना दे ओर वर्ती वनावे इस वर्तीको योनिमें वारवार धारण करे और वर्ती निकालनेके अनन्तर गर्मजलसे योनि-को सेचन कर धोता रहे तो कफदूषित योनि शुद्ध होती है ॥ ६९ ॥

पिप्पल्यासरिचैर्मापैःशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ।

वर्तिस्तुल्याप्रदेशिन्याधार्यायोनिविशोधनी ॥ ७० ॥

पीपल, मिर्च, उडद, सौफ, कूठ, संधानमक इन सबको समभाग लेकर छोटी अंगुलीके समान मोटी वर्ती वनावे । यह वर्ती योनिमें धारण करनेसे योनिको शोधन करती है ॥ ७० ॥

उदुम्बरशलाटूनांद्रोणमद्द्रोणसंयुतम् । सपञ्चवल्ककुलकनिम्ब-

मालतिपल्लवम् ॥ ७१ ॥ निशास्थायजलेतस्मिस्तैलप्रस्थं

विपाचयेत् । लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्यासैःशाल्मलेनच ॥ ७२ ॥

पिष्टैःसिद्धञ्चतैलंपिचुयोनौनिधापयेत् । सशर्करैःकषायैश्चशीतैः

कुर्वीतसेचनम् ॥ ७३ ॥ पिच्छलाविवृताकालदुष्टायोनिश्चदारुणा ।

सप्ताहाच्छुध्यतिक्षिप्रमपत्यश्चापिविन्दति ॥ ७४ ॥

गूलरके कच्चे फल और पंचवल्कल, पटोल, निम्ब और मालतीके पत्र यह सब मि-लाकर १ द्रोण लेये । इन सबको कूटकर १ द्रोण जलमें भिंगोवे । फिर प्रातःकाल मसलकर निचोड लेये । इस निचोडे हुए रसमें धन, खैर, ढाक और सैमलका गोंद तथा लाख मिलावे । और १ प्रस्थ तेल मिलाकर पकावे । जब सब पानी जलकर तेलमात्र शेष रहे तो उतारकर छान लेवे । इस तेलमें रुईका फाहा भिंगोकर योनिमें रखे और उपरोक्त गूलर आदि ९ द्रव्योंके कायमें खांड मिलाकर शीतल होनेपर योनिका सेचन करे । अर्थात् इस जलका योनिपर तरडा देवे तो पिच्छला योनि, विवृता योनि, कालदुष्टा योनि और दारुणायोनि सात दिनमें शुद्ध होजातीहैं और वह स्त्री उत्तम संतानको उत्पन्न करतीहै ॥ ७१-७४ ॥

उदुम्बरस्यदुग्धेनपट्कृत्वोभाविनांस्तिलान् ।

तैलत्रयाथेचतस्यैवसिद्धंधार्य्यश्चपूर्ववत् ॥ ७५ ॥

गूलरके दूधमें तिलोंकी ६ भावना देकर सुखालेवे । फिर इन तिलोंका तेल निकालकर इस तेलको गूलरके कल्क और कायसे सिद्ध करे । इसमें भिगोकर फाहा योनिमें रखनेसे उपरोक्त पिच्छिलादि विकार दूर होतेंहैं ॥ ७५ ॥

धातक्यामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः । जम्बवाग्रमध्यकासीस-
लोध्रकटूफलतिन्दुकैः ॥ ७६ ॥ सौराष्ट्रिकादाडिमत्वगुदुम्बरशला-
टुभिः । अक्षमात्रैरजामूत्रेक्षीरेचद्विगुणेपचेत् ॥ ७ ॥ तैलप्रस्थं
पिचुंतस्माद्योनौचप्रणयेत्ततः । कटीपृष्ठत्रिकाभ्यङ्गस्नेहवस्तिञ्च
दापयेत् ॥ ७८ ॥ पिच्छिलस्त्राविणीयोनिर्विप्लुतोप्लुतातथा । उत्ता-
नाचोन्नताशूनासिद्ध्येत्सस्फोटशूलिनी ॥ ७९ ॥

धावेके फूल, आँवले, पत्रज, स्रोतोज, काला मुरमा या शंखनाभि, मुँलठी, नील कमल, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, हीराकसीस, लोध, कायफल, तिन्दुक, सोरठ मिट्टी, अनारका छिलका, गूलरके कच्चे फल इन सबको एक एक कर्प लेकर कल्क करे । तेल १ प्रस्थ, वकरीका मूत्र दो प्रस्थ, वकरीका दूध २ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस तेलमें फोहा भिगोकर योनिमें रखे तथा कमर, पीठ और त्रिकस्थानमें इस तेलकी मालिश करे, उचित हो तो वस्तिकर्म भी करे इससे पिच्छिला, स्त्रावणी, विप्लुता, उपप्लुता, उत्ताना, उन्नता तथा सृजन, फोडे और शूल आदि युक्त योनिविकार शान्त होतेंहैं ॥ ७६-७९ ॥

करीरधवनिम्बार्कवैणुकोशाग्रजाम्बवैः । जिङ्गिनीवृषमूलानांक्वा-
थैर्माद्विकशीधुभिः ॥ ८० ॥ सशुक्तैर्धावनंमिश्रैर्योन्यास्त्रावविनाशनम् ।
कुर्यात्सतक्रगोमूत्रशुक्तैर्वात्रिफलारसैः ॥ ८१ ॥

करीर, धव, निम्ब, खैर, आँक, वांस, कोशाग्र, जामुन, जॉगन और अड्डसा इनकी जड़ोंको लेकर काथ करे इस क्वाथमें अंगूरोंकी मद्य शीधु और सिरका मिलाकर योनिमें धोवे तो योनिका स्त्राव बन्द होताहै अथवा छाछ, गोमूत्र और सिरका मिलाकर धाया केवल त्रिफलाके क्वाथसे ही धोवे तो योनिका स्त्राव दूर होताहै ॥ ८० ॥ ८१

पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगामधुनाहिताः ॥ ८२ ॥

धीपल, लोहभस्म और हरडका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटे तो योनिका दूर होताहै ॥ ८२ ॥

तीनो दोषोंमें क्रियाक्रम ।

श्लेष्मलायांकटुप्रायाःसमूत्रावस्तयोहिताः ।

पित्तसमधुरक्षीरावातेतैलाम्लसंयुताः ।

सन्निपातसमुत्थायाःकर्मसाधारणंमतम् ॥ ८३ ॥

कफकी योनिस्त्रावमें वटुद्रव्योंसे युक्तकर गोमूत्र द्वारा वस्तिकर्म करना हितकारक है, पित्तजनित योनिविकारमें मधुरद्रव्योंसे युक्त दूध द्वारा वस्तिकर्म करना चाहिये और वातजनित योनिविकारमें तेल और अम्लद्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है और सन्निपातजनित योनिविकारोंमें सब प्रकारकी मिली जुली चिकित्सा करना चाहिये ॥ ८३ ॥

प्रदरकी चिकित्सा ।

रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबन्धंसमीक्ष्यच ।

ततःकुर्व्याद्यथादोषंरक्तस्थापनमौषधम् ॥ ८४ ॥

जिस योनिमें बराबर रक्तका स्त्राव होतारहे उसमें रक्तके वर्णको देखकर जिस दोषका अनुबन्ध हो उस दोषकी चिकित्सा करे और दोषानुसार रक्तको स्थापन करनेवाली औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८४ ॥

वातप्रदरका यत्न ।

तिलचूर्णदधिघृतंफाणितंसौकरिवसा ।

क्षौद्रेणसंयुतंपेयंवातासृग्दरनाशनम् ॥ ८५ ॥

तिलोका चूर्ण, दही, घृत, फाणित और सूअरकी चर्बी, शहद मिलाकर पीनेसे वातजनित प्रदर (योनिसे रक्तस्त्राव) दूर होताहै ॥ ८५ ॥

बराहस्यरसोमेध्यःसकौलत्थोऽनिलाधिके ।

शर्करातैलयष्टथाह्नागैर्वायुतंदधि ॥ ८६ ॥

कुल्थीके क्वाथमें बराहके मांसका रस सिद्ध करके पीवे अथवा खांड, तेल, सुलैठी और सोंठ दहीमें मिला पीवे तो वातजनित प्रदर दूर होताहै ॥ ८६ ॥

पित्तजनित प्रदरकी चिकित्सा ।

पयस्योत्पलशालूकविसकालीयकाम्बुजान् ।

सपयःशर्करांक्षौद्रपैत्तिकेऽसृग्दरेपिवेत् ॥ ८७ ॥

क्षीरविदारी, नीलकमल, शालूक, मृणाल, अमर और लाल कमलको अथवा इनमेंसे किसी एकका कल्क कर दूध मिसरी और शहद मिला पीवे तो पित्तजनित प्रदर दूर होताहै ॥ ८७ ॥

पुण्यानुग चूर्ण ।

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्येशिलोद्भेदंरसाञ्जनम् । अम्ब्रथाशालमंलीवेष्टं
मङ्गावत्सकत्वचम् ॥ ८८ ॥ वाहीकातिविपेविल्वंमुस्तंलोधंसगै-
रिकम् । कदफलंमरिचंशुण्ठींमृद्गीकारक्तचन्दनम् ॥ ८९ ॥ कद्द-
वत्सकानन्तांघातकींमधुकार्जुनम् । पुष्येणोद्धृत्यतुल्यानिसूक्ष्म-
चूर्णानिकारयेत् ॥ ९० ॥ तानिक्षौद्रेणसंयोज्यपिवेत्नातण्डुलाम्बु-
ना । अर्शःसुचातिसारेपुरकंयच्चोपवेद्यते ॥ ९१ ॥ दोषागन्तुक-
तायेचवालानांतांश्रनाशयेत् । योनिदोषंरजोदोषंश्वेतनीलंसपीत-
कम् ॥ ९२ ॥ स्त्रीणांश्यावारुण्यच्चप्रसह्यविनिवर्त्तयेत् । चूर्णंपुण्यानु-
गंनामाहितमात्रेयपूजितम् ॥ ९३ ॥

पाटला, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, पापाणभेद, रसौत, पाठ, मोचरस, वाराहकांता, कुडाकी छाल, हींग, अतीश, वेलगिरी, नागरमोया, लोघ, गेरू, काय-फल, मिर्च, सोंठ, मुनका, लालचंदन, सोनापाठा, इन्द्रयव, शारिवा, धाधेके फूल, मुलैठी, अर्जुनवृक्षकी छाल समभाग ले पुष्यनक्षत्रमें इकट्ठा कर वारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चाबलोंके जलके साथ पीवे तो बवासीर और अतिसारका रक्त, पित्तातिसार, बालकोंको होनेवाले आगन्तुक दोष, योनिदोष, रजो-दोष, योनिसे सफेद, नीला, पीला, काला और लाल स्राव होना यह सब नष्ट होताहै । इस पुण्यानुग चूर्णको महर्षि आत्रेयजीने श्रेष्ठ माना है ॥ ८८-९३ ॥

तण्डुलीयकमूलश्चसक्षौद्रंतण्डुलाम्बुना ।

रसाञ्जनञ्चलाक्षाञ्चछागेनपयसापिवेत् ॥ ९४ ॥

चौराईकी जडका चूर्ण शहद और तण्डुलजलके साथ पीवे अथवा रसौत और लाखकी बकरीके दूधके साथ पीवे तो पित्तज प्रदरकी शांति होतीहै ॥ ९४ ॥

पत्रकलकौघृतेभृष्टौराजादनकपित्थयोः ।

पित्तानिलहरोपैत्तेसर्वथैवास्त्रपित्तजित् ॥ ९५ ॥

अमलतासके पत्रोंका और कैथके पत्रोंका कलक कर घीमें भून सेवन करे तो वातपित्तजनित प्रदर और रक्तपित्त दूर होताहै ॥ ९५ ॥

कफजनित प्रदरकी चिकित्सा ।

मधुकंत्रिफलांलोधंमुस्तंसौराष्ट्रिकामधु ।

मधेर्निम्बगुडूच्यौतुकफजेऽसृग्दरोपिवेत् ॥ ९६ ॥

' मुलैठी, त्रिफला, लोध, नागरमोया, फिटकिरी इन सबका काय कर शहद
मिला पीवे तो कफजनित प्रदर दूर होता है । अथवा नीमकी छाल और गिलोयको
मद्यके साथ सेवन करे तो कफजनित प्रदर दूर होता है ॥ ९६ ॥

पित्तज प्रदरपर योग ।

विरेचनंमहातिक्तंपित्तजेऽसृग्दरेपिवेत् ।

हितंगर्भपारिस्त्रावेयञ्चोक्तञ्चकारयेत् ॥ ९७ ॥

पित्तजनित प्रदरमें कुष्ठाधिकारमें कहाहुआ महातिक्तक घृत पिलाकर विरेचन
कराना चाहिये तथा जातिसूत्रीयाध्यायमें जो गर्भन्त्रावकी चिकित्सा कहआयेहैं
उसका प्रयोग करना भी पित्तजप्रदरको दूर करता है ॥ ९७ ॥

योनिरोगमें अन्य कर्म ।

काश्मर्य्यकुटजक्वाथेसिद्धमुत्तरवस्तिना ।

रक्तयोन्यरजस्कानांपुत्रघ्न्याश्चहितंघृतम् ॥ ९८ ॥

कुंभेरके फल और कुडाकी छालका क्वाथ लेकर उसमें सिद्ध कियाहुआ घृत
लेकर उससे रक्तयोनि, अरजस्का योनि और पुत्रघ्नी योनिमें उत्तरवस्ति करना
चाहिये ॥ ९८ ॥

नृगाजाविवराहासृग्दध्यन्लक्षौद्रसर्पिषा ।

अरजस्कापित्रेत्सिद्धंजीवनीयैःपयोऽपिवा ॥ ९९ ॥

हिरन, बकरी, भेड और बराहका रुधिर, दही, खटाई, शहद और घी मिला
पीवे । अथवा जीवनीय गणसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीवे तो अरजस्का योनि
विकार दूर होता है ॥ ९९ ॥

कर्णिन्यचरणाशुष्कयोनिप्राक्चरणसुच ।

कफवातेचदातव्यंतैलमुत्तरवस्तिना ॥ १०० ॥

कर्णिनी, अचरणा, शुष्का और प्राक्चरणा योनिमें तथा कफवातोंसे दूषित
योनिमें वातनाशक तैलोंसे उत्तरवस्ति करना हितकारक है ॥ १०० ॥

गोपित्तेमत्स्यपित्तेवाक्षौमंत्रिःसप्तभावितम् ।

मधुनाकिण्वचूर्णवादद्यादचरणापहम् ॥ १०१ ॥

रेशमी कपडेको गोपित्तमें अथवा मठलीके पित्तमें इषीस बार भावना देकर
योनिमें स्थापित करे । अथवा मुराबीजको शहदमें मिलाकर योनिमें स्थापन करे

तो अचरणा यौनिका विकार दूर होताहै । तथा स्रोतांका मोघन, खुजली, क्लेश और सूजनको दूर करताहै ॥ १०१ ॥

स्रोतसांशोधनंकण्डूक्लेशोफहरश्चतत् । वातघ्नैःशतपाकैस्तुतैलेः
प्रागतिचारणी ॥ १०२ ॥ आस्थाप्याचानुवास्याचस्वेवैश्रानिल-
सूदनैः । स्नेहद्रव्यैस्तथाहारैरुपनाहैश्चयुक्तितः ॥ १०३ ॥

वातनाशक द्रव्योंसे शतपाक किया तेल प्राकृचरणा और अतिचरणा योनिमें आस्थापन और अनुवासनके लिये प्रयोग करना चाहिये । तथा वातनाशक स्नेह-द्रव्योंसे स्वेदन करना और वातनाशक चिकने द्रव्योंका आहार तथा युक्तिपूर्वक उपनाह स्वेद कियाजाय तो प्राकृचरणा और अतिचरणा योनिके विकार दूर होतेहैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

शताह्वयवगोधूमकिण्वकुष्ठप्रियङ्गुभिः ।

वालाखुपर्णिकाश्वाह्वैःसंयावोधरणःस्मृतः ॥ १०४ ॥

वामिन्याप्लुतयोन्योश्चकर्तव्यःस्वेदनोऽपिवा ।

क्रमःकार्थ्यस्ततःस्नेहःपित्तुभिस्तर्पणंभवेत् ॥ १०५ ॥

सौंफ, यव, गेहूं, सुराबीज, कूठ, प्रियंगु, बला मूषकपर्णी और असर्गंधके कल्ककर घृतमें मिला गरम करे इसको वामनी योनि और उपप्लुता योनिमें धारण करे अर्थात् इस उपरोक्त कल्क द्वारा इन दो प्रकारके योनिविकारोंमें उपनाह स्वेद करे । फिर स्नेहमें भिगोयाहुआ फोहा योनिमें रखे । ऐसा करनेसे यौनिका संतर्पण होताहै ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

शलकीजिङ्गिनीजम्बूधवत्वक्पञ्चवल्कलैः ।

कपायैःसाधितःस्नेहःपित्तुःस्याद्विप्लुतापहः ॥ १०६ ॥

शलकी वृक्ष, जींगन, जामुन, धव इन संवकी छाल और बड आदि पांच वृक्षोंकी छाल इन सबके काथमें साधित किये हुए तेलका फोहा योनिमें धारण करनेसे विप्लुतायौनिका विकार शान्त होताहै ॥ १०६ ॥

कर्णिन्यावर्तिकाकुष्ठपिप्पल्यर्काम्रसैन्धवैः ।

वस्तमूत्रकृताधार्यासर्वश्चेष्टेष्मनुद्धितम् ॥ १०७ ॥

कूठ, पीपल, आककी कोंपल, संधानमक इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर पोटली बना योनिमें धारण करे तो कर्णिनी योनि और कफजनित योनिके विकार दूर होतेहैं ॥ १०७ ॥

त्रैवृतस्नेहनंस्वेदोग्राम्भ्यानूपौदकारसाः । दशमूलपयोवस्तिश्चोदा-
वर्त्तानिलार्त्तिषु ॥ १०८ ॥ त्रैवृतेनानुवास्याचवस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः।
तदेवचमहायोन्यांस्तस्तायाश्चविधीयते ॥ १०९ ॥

उदावृत योनिमें वातजनित पीडा हो तो निशोथके चूर्णको स्नेहमें मिलाकर योनिमें धारण करना. स्नेहन करना, स्वेदन करना अथवा निशोथके चूर्णसे विग्नेचन कराना तथा ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंका मांसरस और दशमूलसे सिद्ध किये दूध द्वारा वंस्तिकर्म करना हितकारक है, तथा निशोथके साथ सिद्ध कियेहुए स्नेहकी वस्ति और उत्तरवस्ति करना भी हितकारक है। और यही क्रिया सस्त अर्थात् मिथिल योनिमें और महायोनिमें हितकारक है ॥ १०८ ॥ १० ॥

वसाऋक्षवराहाणांघृतश्चमधुरःशृतम् ।

पूरयित्वामहायोनिं वधीयात्क्षौमलक्तकैः ॥ ११० ॥

रीऊ और वराहकी चर्बी तथा जीवनीयगणसे सिद्ध किया हुआ घृत महायोनिमें भरकर ऊपरसे रेशमी कपडा और लाखका रंगा कपडा बांधे ॥ ११० ॥

प्रसुप्तांसर्पिषाभ्यज्यक्षीरस्विन्नांप्रवेद्यच ।

वधीयाद्वेशवारस्यपिण्डेनामूत्रकालतः ॥ १११ ॥

यदि योनि सुन्न पडगई हो और बाहर निकल आई हो तो उसको घृतसे चिकना कर और दूधसे स्वेदनकर भीतरको प्रवेश करके उसके ऊपर हल्दीकी पिण्डी बांध देवे। मूत्र आनेपर पिण्डीको खोल देना चाहिये और फिर उसी प्रकार बांध देना चाहिये ॥ १११ ॥

यच्चवातविकारणांकर्मोक्तंचकारयेत् ।

सर्वव्यापत्सुमतिमान्महायोन्यांविशेषतः ॥ ११२ ॥

जो क्रिया वातविकारोंको शान्त करनेवाली है वह वातनाशक क्रिया सब प्रकारके योनिरोगोंमें प्रयुक्त कर्नी हितकारक है और महायोनिमें तो विशेषकर हित करनेवाली होतीहै ॥ ११२ ॥

नहिवातादृतेयोनिर्नारीणांसंप्रदुष्यति ।

शमयित्वातमन्यस्यकुर्यादोपस्यभेषजम् ॥ ११३ ॥

वायुके बिना स्त्रियोंकी योनि दूषित नहीं होती, इसलिये मिलेजुले दोषोंमें भी प्रथम वायुको शान्त करके फिर अन्य दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ ११३ ॥

पाण्डुरवर्ण प्रदरकी चिकित्सा ।

मूलकल्कन्तुरोहीतात्पाण्डुरेप्रदरेपिवेत् । जलेनामलकाद्वीजंकल्कं
वाससितामधुम् ॥ ११४ ॥ मधुनामलकाच्चूर्णंरसंवालेहयेच्चताम्रा
न्यग्रोधत्वक्कपायेणलोध्रकल्कंतथापिवेत् ॥ ११५ ॥ आस्त्रावेक्षौम-
पटंवाभावितंतेनधारयेत् । लक्षत्वक्चूर्णंपिंडंवाधारयेन्मधुनाकृ-
तम् ॥ ११६ ॥

पाण्डुवर्णका प्रदर होय तो रोहितवृणकी जड़को जलमें पीसकर पीवे अथवा ऑंव-
लेकी गुठलीको पीसकर शहद और मिसरी मिलाकर चाटे । अथवा शहदके साथ
ऑंवलेका चूर्ण या ऑंवलेका रस पीवे । अथवा वडके छिलकेके कायमें लोधका कल्क-
मिलाकर पीवे । अथवा रेशमके बखको बडकी छाल और लोधके कायमें भिगोकर
योनिमें रक्खे । अथवा पिलखनकी छालके चूर्णको शहदमें मिला एक बारीक बखमें
पोटली बना योनिमें धारण करे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

योन्यास्त्रेहाक्तयालोध्रप्रियंगुमधुकस्यच ।

धार्यामधुयुतावर्त्तिःकपायाणाञ्चसर्वशः ॥ ११७ ॥

पहिले योनिकी स्नेहसे चिकनी कर फिर बोध, फूलप्रियंगु और मुलैठीके चूर्णको
शहदमें मिलाकर बत्ती बना योनिमें धारण करे । और संपूर्णकपाय द्रव्योंके कायसे
योनिमें वस्ति करे तो योनिस्त्राव बन्द होताहै ॥ ११७ ॥

स्त्रावच्छेदार्थमभ्यक्तांधूपयेद्वाघृताप्लुतैः ।

सरलागुग्गुलुयवैःसतैलकटुमत्स्यकैः ॥ ११८ ॥

योनिस्त्राव बन्द करनेके लिये पहिले योनिकी चिकनी कर फिर सरलका गोंद,
गूगल, यव, तेल, कडू और मछलीकी चर्वा इन सबको पीसकर योनिकी
धूपित करे ॥ ११८ ॥

कासीसत्रिफलाकाक्षीसाम्राजम्बवस्थिधातकी ।

पैच्छिल्येक्षौद्रसंयुक्तश्चूर्णोवैशद्यकारकः ॥ ११९ ॥

कासीस, त्रिफला, सौराष्ट्रमृत्तिका, आम और जामुनकी गुठली, धावेके फूल इन
सबका चूर्ण कर शहद मिला योनिमें धारण करनेसे योनिकी पिच्छिलता दूर होकर
योनि स्वच्छ होजातीहै ॥ ११९ ॥

पलाशसर्जजम्बुत्वक्समङ्गामोचधातकीः ।

सपिच्छिलापरिक्रिन्नास्तस्मनःकल्कइष्यते ॥ १२० ॥

पलाशकी छाल, रात, जामुनकी छाल, वाराहीक्रान्ता, मोचरस और धावेके फूलोंको पीसकर कल्क बनावे । यह कल्क वारीक मलमलमें बांध योनिमें धारण करे तो योनिकी पिच्छिलता, क्लेद और स्राव दूर होताहै ॥ १२० ॥

स्तब्धानां कर्कशानाञ्च पिण्डो मादेव कारकः ।

धारयेद्वेशवारं वा पायसं कृत्स्नं तथा ॥ १२१ ॥

बेसवार (धनियां, सरमां और संधानमक भिलाकर पीसाहुआ,) अथवा खिचडी या खीरका पिण्ड बनाकर योनिमें रखनेसे योनिकी कठोरता और स्तब्धता दूर होतीहै ॥ १२१ ॥

दुर्गन्धानां कषायः स्यात्तौवरः कल्क एव वा ।

चूर्णं वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणम् ॥ १२२ ॥

योनिकी दुर्गंध दूर करनेके लिये सुगंधित द्रव्योंका क्वाथ, धनियेका कल्क और उत्तम सुगंधित तैल तथा सर्वगंधका चूर्ण धारण करना चाहिये ॥ १२२ ॥

एवं योनिषु शुद्धासु गर्भत्रिन्दन्ति योषितः ।

अदुष्टे प्राकृते बीजे जीवोपाक्रमणे सति ॥ १२३ ॥

इस प्रकार योनि शुद्ध होनेपर स्त्रियें विकाररहित वीर्यको ग्रहणकर गर्भको धारण करतीहैं । और रज, वीर्य शुद्ध होनेसे स्वाभाविक ही जीविका संचार होकर गर्भ रहजाताहै ॥ १२३ ॥

पुरुषचिकित्सानिर्देशः ।

पञ्चकर्मविशुद्धयपुरुषस्यापि चेन्द्रियम् ।

परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्गैरुपाचरेत् ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार यदि पुरुषका वीर्य दूषित हो तो उसको वमन, विरेचनादि पंच कर्म द्वारा शुद्ध कर फिर वीर्यके वर्णको देख उसीके दोषानुसार चिकित्सा करे ॥ १२४ ॥

योनिरोगोंका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

सलिङ्गाव्यापदो योनेः सनिदानचिकित्सिताः ।

उक्ताविस्तरशः सम्यङ्मुनिना तत्त्वदर्शिना ॥ १२५ ॥

यहां पर कहतेहैं कि तत्त्वदर्शी महर्षिं आश्रयजीने इस प्रकार योनिव्यापक भिन्न २

१ दाढचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, ककोळ, लौंग, अगर और छारछवीठा ।

व्यापत्ति, लक्षण, निदान और चिकित्साका उत्तम रीतिसे विस्तार पूर्वक वर्णन किया है ॥ १२५ ॥

इति योनिरोगचिकित्सितम् ॥

अग्निवेशका वीर्यदोषमें प्रश्न ।

पुनरेवाग्निवेशस्तुपप्रच्छभिपजांवरम् । आत्रेयमुपसङ्गम्यशुक्रदो-
षास्त्वयानघ ॥ १२६ ॥ रोगाध्यायेसमुद्दिष्टाह्यष्टौपुंसामशेषतः ।
तेपाहेतुंभिपत्रश्रेष्ठ ! दुष्टादुष्टस्यचाकृतिम् ॥ १२७ ॥ चिकित्सि-
तञ्चकात्सर्न्येनकैव्ययञ्चचतुर्विधम् । उपद्रवेपुयोनीनांप्रदरोयश्च
कीर्त्तितः ॥ १२८ ॥ तेषानिदानंलिङ्गञ्चचिकित्साञ्चैवतत्त्वतः ।
समासव्यासभेदेनप्रब्रूहिभिपजांवर ॥ १२९ ॥

इसके अनन्तर वेद्योंमें श्रेष्ठ महर्षि आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछने लगे कि हे निष्पाप वैद्यवर ! आपने सूत्रस्थानके अष्टौदरीय नामक रोगसंग्रहाध्यायमें वीर्यके आठ प्रकारके विकारोंका कथन कियाथा । हे भिपक्त्र श्रेष्ठ ! उन आठ प्रकारके वीर्यदोषोंके हेतु, दुष्ट और अदुष्ट-वीर्यके लक्षण, संपूर्ण रूपसे उनकी चिकित्सा और चार प्रकारकी नपुंसकता और योनिरोगोंमें जो प्रदर रोग कहाहै उसका विशेषरूपसे निदान और चिकित्सा इन सबको संक्षेप और विस्तारसे यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १२६-१२९ ॥

तस्मैशुश्रूपमाणायप्रोवाचमुनिपुङ्गवः । वीजंयस्माद्वयवायेपुहर्षयो-
निसमुत्थितम् । शुक्रंपौरुषमित्युक्तंतस्माद्वक्ष्यामितच्छृणु ॥१३०॥

मुनिकी इच्छावाले उस अग्निवेशसे आत्रेयजी कहने लगे कि हर्ष और योनिस्पर्शसे उठने वाला वीर्य ही पुरुषार्थका मूल है यह तो पहिले ही कहचुके । अब इस वीर्यमें होनेवाले विकारोंको मुनो ॥ १३० ॥

दूषितवीर्यको गर्भमें असमर्थता ।

यथाबीजमकालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् ।

नविरोहतिसन्दुष्टं तथाशुक्रंशरीरिणाम् ॥ १३१ ॥

जैसे अकालवृष्टि कृमि, कीट और अग्नि आदिसे, दूषितहुआ बीज पेदा नहीं होता वसी प्रकार दोषोंसे दूषित हुआ मनुष्योंका वीर्य भी गर्भको उत्पन्न नहीं करता ॥ १३१

वीर्य दूषित होनेके कारण ।

अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्स्यानाञ्चसेवनात् । अकालेवाप्ययो-

नौवासैथुनंनचगच्छतः ॥ १३२ ॥ रूक्षतिक्तकपायातिलवणा-
म्लोष्णसेवनात् । नारीणामरसज्ञानांस्त्रवणाज्जरयातथा ॥ १३३ ॥
चिन्ताशोकादविस्त्रम्भाच्छस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् । भयात्क्रोधादती-
सारद्वायाधिभिःकर्षितस्यच ॥ १३४ ॥ वेगाघातात्क्षताच्चापिधातूनां
संप्रदूषणात् । दोषाःपृथक्समस्तावाप्राप्यरेतोवहाःशिराः । शुक्रसं-
दूषयन्त्याशुतद्वक्ष्यामिविभागशः ॥ १३५ ॥

अत्यंत मैथुन करनेसे, अत्यंत व्यायाम करनेसे, असात्म्य आहार विहारके सेवनेसे, अकालमें मैथुन करनेसे, अयोनि मैथुन करनेसे, विल्कुल मैथुन न करनेसे तथा रूक्ष तिक्त और कपाय रसोंका अत्यंत सेवन करनेसे अकामा और अनभिज्ञ स्त्रीसे संगर्म करनेसे, प्रमेहसे, वृद्धावस्थासे, चिन्ता और शोकसे, अविश्रंभ अर्थात् मैथुनके समय किसी प्रकारका भय होनेसे, शस्त्र, क्षारकर्म और अग्निर्कर्मका मिथ्या प्रयोग होजानेसे, भयसे, क्रोधसे, अतिसारसे अथवा किसी अन्य व्याधिद्वारा शरीरके कर्षित होनेसे, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, क्षतसे और किसी प्रकार वीर्यवाही नसके बिगडजानेसे और धातुओंके दूषित होनेसे दोष कुपित होकर पृथक् २ अथवा सब मिलकर वीर्यवाही नसोंमें प्राप्त हो वीर्यको दूषित करदेतेहैं । उनको आगे पृथक् २ कहतेहैं ॥ १३२-१३५ ॥

दूषित शुक्रके आठ भेद ।

फेनिलंतनुरूक्षश्चविवर्णपूतिपिच्छलम् ।

अन्यधातूपसंसृष्टमवसादितथाष्टमम् ॥ १३६ ॥

ज्ञागदार, अत्यंत पतला, रूक्ष, विवर्ण, दुर्गंधयुक्त, पिच्छल मल, मूत्रादि वा रस रक्तादि धातुओंसे मिलाहुआ और अवसादि (गांठदार) यह आठप्रकारका शुक्र दूषित होताहै ॥ १३६ ॥

वातदूषित शुक्रके ल० ।

फेनिलंतनुरूक्षश्चकृच्छ्रेणाल्पश्चमारुतात् ।

भवत्युपहतंशुक्रंनतद्गर्भायकल्पते ॥ १३७ ॥

वातदूषित शुक्र ज्ञागदार, पतला, थोडा, रूक्ष तथा कष्टके साथ बहुत थोडा २ निकले । यह शुक्र वायुसे उपहत होनेके कारण गर्भकारक नहीं होसकता ॥ १३७ ॥

पित्तदूषित शुक्रके ल० ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णंपूतिगन्धिच ।

दहच्छिङ्गविनिर्यातिशुक्रंपित्तेनदूषितम् ॥ १३८ ॥

पित्तदूषित वीर्य-नीलवर्णयुक्त, पीला; अत्यंत गरम, दुर्गंधयुक्त होता है। यह निकलते समय लिंगेन्द्रियमें अभिके समान दाह करता हुआ निकलता है ॥ १३८ ॥

कफदूषित शुक्र० ।

श्लेष्मणावद्धमार्गन्तुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम् ॥ १३९ ॥

कफदूषित वीर्य-कफसे बद्धमार्ग होनेसे पिच्छिल (गाढा, गिलगिला) होता है ॥ १३९ ॥

अन्यधानूपसंसृष्ट ।

स्त्रीणामत्यर्थगमनादभिघातात्क्षतादपि ।

शुक्रं प्रवर्त्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम् ॥ १४० ॥

अत्यंत स्त्रीगमन करनेसे, अभिघातसे और क्षयके कारण वीर्य रुधिरसे मिला हुआ निकलता है इसेको अन्यधानुसंसृष्ट कहते हैं ॥ १४० ॥

अवसादि शुक्रके ल० ।

वेगसन्धारणाच्छुक्रं वायुनाविहतं पथि । कृच्छ्रेण याति ग्रथितमवसादितथाष्टमम् । इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौ सलक्षणाः १४१ ।

वीर्यके वेगको रोकलेनेसे वीर्यके मार्गमें वायु प्राप्त होकर वीर्यको ग्रथित कर देता है। फिर वह गांठदार वीर्य बड़ी कठिनतासे निकलता है। उसको अवसादित वीर्य कहते हैं। इस प्रकार वीर्यके आठ दोषोंको लक्षण सहित कहा है ॥ १४१ ॥

शुद्धशुक्रके ल० ।

स्निग्धघनं पिच्छिलञ्चमधुरञ्चाविदाहिच ।

रेतः शुद्धं विजानीयाच्छ्लेत्तं स्फटिकसन्निभम् ॥ १४२ ॥

जो वीर्य चिकना, घना, पिच्छिल, अविदाही और स्फटिकमणिके समान सफेद हो उसको शुद्धवीर्य जानना ॥ १४२ ॥

दूषितवीर्यकी सामान्यचिकित्सा ।

वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैः सुखैर्हितैः । रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापदिकैस्तथा । दुष्टं यथाभवेद्रेतस्ततस्तत्समुपाचरेत् ॥ १४३ ॥

दूषित शुक्रकी चिकित्सा वाजीकरणाध्यायमें कहे हुए सुखकारी योगोंसे रक्तपित्त नाशक योगोंसे और योनिदोषनाशक योगोंसे करना चाहिये ॥ १४३ ॥

घृतञ्च जीवनीयं च च्यवनप्राश एव च ।

गिरिजस्य प्रयोगश्च रेतोदोषानपोहति ॥ १४४ ॥

जीवनीयघृत, च्यवनप्राश और शिलाजीतका प्रयोग करनेसे वीर्यके दोष दूर होते हैं ॥ १४४ ॥

वातदूषित वीर्यकी चि० ।

वातान्वितेहिताःशुक्रनिरूहाःसानुवासनाः ॥ १४५ ॥

वातदूषित वीर्यमें निरूहण और अनुवासन वस्ति करना हितकारी है ॥ १४५ ॥

पित्तदूषित वीर्यकी चि० ।

अभयामलकीयञ्चपैत्तेशस्तरसायनम् ।

मागध्यमृतलोहानांत्रिफलारसायनम् ॥ १४६ ॥

पित्तदूषित वीर्यमें अभयामलकीयाध्यायमें कहेहुए रसायनोंका प्रयोग करना हितकारक है । तथा पिप्पली रसायन, अमृतलोह और त्रिफलारसायनोंका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १४६ ॥

कफदूषित वीर्यमें चि० ।

कफोत्थितंशुक्रदोषंहन्याद्भलातकस्यच ॥ १४७ ॥

कफदूषित वीर्यमें भलातक रसायनका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १४७ ॥

अन्यधातूपसृष्टवीर्यकी चि० ।

अन्यधातूपसंसृष्टशुक्रंवीक्ष्यभिपक्त्रियाम् ।

यथादोषंप्रयोज्यंस्याद्दोषधातुभिपगुजितम् ।

अन्यधातुसे सम्मिलित शुक्र हो तो वैद्य दोषानुसार उचित चिकित्सा करे । दूषित शुक्रोंमें दोष, धातु आदि विचारकर उनके अनुसार ही चिकित्सा करना चाहिये ॥

सर्पिःपयोरसाःशालिर्ववगोधूमषष्टिकाः । प्रशस्ताःशुक्रदोषेषुव-

स्तिकर्मविशेषतः । इत्यष्टशुक्रदोषाणांमुनिनोक्तंचिकित्सितम् १४८

सब प्रकारके शुक्रदोषोंमें घृत, दूध, मासरस, शालीचावल, जौ, गेहूं और शाडी चावल, हितकारक होतेहैं । विशेषकर वीर्य विकारोंमें वस्तिकर्मका प्रयोग श्रेष्ठ होताहै । इस प्रकार शुक्रदोषोंकी चिकित्साको आत्रेयजीने कहाहै ॥ १४८ ॥

क्लेशरोगका वर्णन ।

रेतोदोषोद्भवंक्लेशंयस्माच्छुद्धयैवासिद्धयति ।

ततोवक्ष्यामितेसम्यगभिवेश ! यथायथम् ॥ १४९ ॥

वीर्यके दोपसे ही मनुष्योंको नपुंसकता उत्पन्न होतीहै और वीर्यके शुद्ध होनेपर नपुंसकता भी दूर होजातीहै । हे अप्रिवेश ! अब क्लैब्य (नपुंसकता) का वर्णन करतेहैं सो तुम ययार्यरूपसे सुनो ॥ १४९ ॥

४ प्रकारसे नपुंसकताकी प्राप्ति ।

बीजध्वजोपघाताभ्यांजरयाशुक्रसंक्षयात् ।

क्लैब्यंसम्पद्यतेतस्यशृणुसामान्यलक्षणम् ॥ १५० ॥

नपुंसकता चार प्रकारके कारणोंसे होतीहै । जैसे बीजके उपघात होनेसे, लिंगेन्द्रियकी नसमें किसी प्रकारकी चोट लगजानेसे, बुद्धापेसे और वीर्यके क्षय होनेसे । अब नपुंसकताके लक्षणोंको सुनो ॥ १५० ॥

नपुंसकताके सामान्य लक्षण ।

सङ्कल्पप्रवणो नित्यं प्रियां वश्यामपि स्त्रियम् । नयातिलिङ्गशैथिल्यात्कदाचिद्यातिवायदि ॥ १५१ ॥ श्वासात्तःस्विन्नगात्रश्चमोघसंकल्पचेष्टितः । म्लानशिश्वश्चनिर्बीजः स्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम् । सामान्यलक्षणं ह्येतद्विस्तरेण प्रवक्ष्यते ॥ १५२ ॥

जो पुरुष स्त्री गमनकी इच्छा रखतेहुए भी अपनी प्यारी और वश्यस्त्रीसे भी लिंगकी शिथिलताके कारण मैथुन न करसके अथवा किसी प्रकार स्त्री गमनकरनेमें प्रयास भी करे तो श्वास चढ़जाय, अंगोंमें पसीने आजाय, संकल्प निष्फल होजाय और चेष्टाहीन होजाय, लिंगेन्द्रिय शिथिल, सिकड़ी हुई और निर्बीज हो यह नपुंसकताके सामान्य लक्षण हैं । अब विशेष लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

बीजोपघातक्लैब्यके हेतु, लक्षण ।

शीतरूक्षाल्पसंक्लिष्टविरुद्धाजीर्णभोजनात् । शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणाञ्चात्यर्थसेवनात् ॥ १५३ ॥ अभिचाराद्विस्वम्भाद्रसादीनाञ्चसंक्षयात् । वातादीनाञ्चवैषम्यात्तथैवानशनाच्छ्रमात् ॥ १५४ ॥ नारीणामरसज्ञत्वात्पञ्चकर्मापचारतः । बीजोपघाताद्भवतिपाण्डुवर्णःसुदुर्बलः ॥ १५५ ॥ अल्पप्राणोऽल्पहर्षश्चप्रमदासुभवेन्नरः । हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः ॥ १५६ ॥ छर्द्यतीसारशूलार्तः कासज्वरनिपीडितः । बीजोपघातजक्लैब्यं ध्वजभङ्गकृतं शृणु ॥ १५७ ॥

शीतल, रुक्ष, अल्पसंश्लिष्ट, विरुद्ध और अजीर्णमें भोजन करनेसे शोक, चिन्ता, भय और त्राससे, स्त्रियोंका शक्तिसे बढकर सेवन करनेसे, अविचार और अविश्रम्भसे रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, वातादि दोषोंकी विषमतासे, उपवास करनेसे, श्रमसे, अन्न और अवस्थाहीन स्त्रीसे गमन करनेसे और बीजमें किसी प्रकारका उपघात होनेसे मनुष्य पाण्डुवर्ण और अत्यंत दुर्बल होजाताहै । वह मनुष्य अल्पप्राण और अल्पहृद्बाला होनेसे यदि स्त्रीगमन करे तो उसको हृद्रोग (हृदयमें थडकन या पीडा) तमक-श्वास, कामला, व्यथा, थकावट, वमन, अतिसार, शूल, खांसी और ज्वरसे दुःख होताहै । यह बीजोपघात नपुंसकके लक्षण होते हैं अब ध्वजभंगके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १५३-१५७ ॥

ध्वजभंग नपुंसकताके हेतुलक्षण ।

अत्यस्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभोजनात् । अत्यम्बुपानाद्विपमा-
स्पिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ १५८ ॥ दधिकीरानूपमांससेवनाद्व्याधिक-
र्षणात् । कन्यानाञ्चैवगमनादयोनिगमनादपि ॥ १५९ ॥ दीर्घरो-
गांचिरोत्सृष्टांतथैवचरजस्वलाम् । दुर्गन्धादुष्टयोनिश्चतथैवचपरि-
स्रुताम् ॥ १६० ॥ ईदृशींप्रमदांमोहाद्योगच्छेत्कामहर्षितः । चतुष्प-
दाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः ॥ १६१ ॥ अधावनाद्दामेदूस्यश-
स्त्रदन्तनखक्षतात् । काष्ठप्रहारनिष्पेषाच्छूकानाश्चातिसेवनात् ।
रेतसश्चप्रतीघाताद्ध्वजभङ्गःप्रवर्तते ॥ १६२ ॥

अत्यंत रसटाई, नमक, क्षार पदार्थोंके सेवनसे, विरुद्ध भोजन तथा अजीर्णमें भोजन करनेसे अत्यंत जलपान, विषम भोजन, पिष्टान्न, भारी पदार्थ, दही, दूध और अनूप मांसका अत्यंत सेवन करनेसे, रोगद्वारा शरीरके कर्षित होनेसे, बारह वर्षसे कम अवस्थावाली कन्यासे गमन करनेसे, अयोनि मैथुन करनेसे, जिसस्त्रीकी योनिपर अत्यंत बडे २ बाल हों, बहुत देरमें स्वलित होतीहो, जो रजस्वला हो, जिसकी योनिसे दुर्गंध आतीहो, जिसकी योनिमें सदैव पानीका बहाव रहाकरे ऐसी स्त्रियोंमें कामसे हर्षितहो मोह-वशा गमन करनेसे, चौपायोंसे मैथुन करनेसे, इन्द्रियमें किसी प्रकार चोट आदि आघात लगनेसे, इन्द्रीको सदैव विना धोये रखनेसे, शस्त्र, दांत, नख, आदिका घाव होनेसे इन्द्रीमें काष्ठ आदिका प्रहार होनेसे, इन्द्रीके पिसजानेसे, इन्द्रीको अत्यंत स्थूलकारक प्रयोगोंके करनेसे और वीर्यके प्रतिघात होनेसे ध्वजभंगनामक नपुंसकता उत्पन्न होतीहै ॥ १५८-१६२ ॥

ध्वजभंगके लक्षण ।

भवन्तियानिरूपाणितस्यवक्ष्याम्यतःपरम् । श्वयथुर्वेदनामेदूराग-
 श्चैवोपलक्ष्यते । स्फोटाश्चतीव्राजायन्तेलिङ्गपाकोभवत्यपि ॥ १६३ ॥
 मांसदृद्धिर्भवेच्चास्यव्रणाःक्षिप्रंभवन्त्यपि । पुलाकोदकसङ्काशःस्त्रावः
 श्यावारुणप्रभः ॥ १६४ ॥ वलयीकुरुतेचापिकठिनश्चपरिग्रहः ।
 ज्वरस्तृष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छर्दिश्चास्योपजायते ॥ १६५ ॥ रक्त-
 कृष्णस्त्रवेच्चापिनीलमाविललोहितम् । अग्निनेवचदग्धस्यतीव्रो-
 दाहःसवेदनः ॥ १६६ ॥ वस्तौवृषणयोर्वापिसीवन्यावंक्षणेपुच ।
 कदाचित्पिच्छिलोवापिपाण्डुस्त्रावश्चजायते ॥ १६७ ॥ श्वयथुश्च
 भवेन्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्त्रवः । चिराच्चपाकंत्रजतिशीघ्रंवाथ
 प्रमुच्यते ॥ १६८ ॥ जायन्तेक्लिमयश्चापिक्लियतेपूतिगन्धिच ।
 विशीर्यन्तेमणिश्चास्यमेदूमुष्कावथापिच ॥ १६९ ॥ ध्वजभङ्गकृ-
 तंक्लैवमित्येतत्समुदाहृतम् । एवंपञ्चविधंकेचिद्ध्वजभङ्गवद-
 न्त्यपि ॥ १७० ॥

ध्वजभंग नपुंसकताके जो लक्षण होते हैं अब उनका कथन करते हैं । जैसे लिंगे-
 न्द्रियमें सूजन, पीडा लालवर्ण होना, तीव्र फोड़ोंका होना, लिंगका पकजाना, लिंग-
 का मांस बढजाना और लिंगमें झटपट घावोंका होजाना लिंगमेंसे चावलोंके मांडके
 समान स्राव होना, स्राव काला अथवा लालवर्णका होना, लिंगमें बल पडजाना, लिंग
 के ऊपरका मांस कठोरसा होजाना तथा उस मनुष्यको उजर, प्यास भ्रम मूर्च्छा और
 छर्दी हो यदि इसमें पित्तकी अधिकता हो, लाल, काला, नीला, आविलरूप (गदला)
 और ताम्रवर्णका स्राव हो, वस्ति दोनों वृषणों और सीवन तथा वंक्षणमें अमिदग्धके
 समान तीव्र दाह और पीडा हो । यदि इसमें कफकी अधिकता हो तो पिच्छिल अथवा
 पाण्डुवर्णका स्राव होना, सूजन, मंदमंद पीडायुक्त गिलागिलाहंटदार थोडासा स्राव होना
 देरमें पकना कभी शीघ्रतासे चिकित्सा करनेपर आराम प्रतीत हो और इसके व्रणोंमें
 कृमि, क्लेद, दुर्गंधि उत्पन्न होजाती है । यदि इसका उपाय शीघ्र न कियाजाय तो
 इन्द्रियकी सुपारी और अण्डकोश गलगलकर सिरने लगते हैं । यह ध्वजभंग नपुंसकके
 लक्षण हैं । कोई इस ध्वजभंगको पांच प्रकारका मानते हैं । चरकमें फिंरंग और उप-
 दंश ध्वजभंगके अन्तर्गत ही माना है ॥ १६३-१७० ॥

जरासंभव नपुंसकताके कारण और लक्षण ।

क्लैव्यंजरासम्भवंहिप्रवक्ष्याम्यथतच्छृणु । जघन्यमध्यप्रवरंवयस्त्रि-
विधमुच्यते ॥ १७१ ॥ अथप्रवयसांशुक्रंप्रायशःक्षीयतेनृणाम् ।
रसादीनांसंक्षयाच्चतथैवावृष्यसेवनात् ॥ १७२ ॥ बलवीर्य्येन्द्रि-
याणाञ्चक्रमेणैवपरिक्षयात् । परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमा-
त्कृमात् ॥ १७३ ॥ जरासम्भवजंक्लैव्यमित्येतैर्हेतुभिर्नृणाम् ।
जायतेतेनसोऽत्यर्थक्षीणधातुःसुदुर्बलः ॥ १७४ ॥ विवर्णोविह्वलो
दीनःक्षिप्रंव्याधिमथाश्नुते । एतज्जरासम्भवंहिचतुर्थेक्षयजं
शृणु ॥ १७५ ॥

अब हम जरासंभव नपुंसकोंके लक्षणोंको कहतेहैं सो श्रवणकरो । मनुष्यकी बाल्य, " मध्य और वृद्ध यह तीन प्रकारकी अवस्था होतीहैं । वृद्धअवस्थामें स्वभावसे ही मनुष्योंका वीर्य क्षीण होजाताहै । रसादि धातुओंके क्षय होनेसे और वृष्य पदार्थोंका सेवन न करनेसे बल, वीर्य और इन्द्रियोंका क्रमपूर्वक क्षय होता जाताहै । तथा बल वीर्य आदिकोंके क्षय होनेसे आयुका क्षय, आहारमें अशक्ति, श्रम और क्लम यह सब वृद्धावस्थामें मनुष्योंके वीर्यक्षय, तथा जरासंभव नपुंसकताके कारण होतेहैं । इन कारणोंसे क्षीणधातु और दुर्बलहृआ मनुष्य विवर्ण, विह्वल, दीन और शीघ्र व्याधियोंसे पीडित होजाता है । इसको जरासंभव नपुंसक कहते हैं । अब क्षयज, क्लैव्य (नपुंसकता) के लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १७१-१७५ ॥

क्षयजक्लीबताके हेतु लक्षण ।

अतिप्रचिन्तनाच्चैवशोकात्क्रोधाद्भयादपि । ईर्ष्योत्कण्ठादथोद्वेगा-
न्सदाविशतियोनरः ॥ १७६ ॥ कृशोवासेवतेरूक्षमन्नपानमथौष-
धम् । दुर्बलप्रकृतिश्चैवनिराहारोभवेद्यदि ॥ १७७ ॥ असात्म्यभो-
जनाच्चापिहृदयेयोव्यवस्थितः । रसःप्रधानधातुर्हिक्षीयेताशुनर-
स्ततः ॥ १७८ ॥ रक्तादयश्चक्षीयन्तेधातवस्तस्यदेहिनः । शुक्रा-
वसानास्तेभ्योहिशुक्रंधामपरंमतम् ॥ १७९ ॥ चेतसोवातिहर्षेण
व्यवायंसेवतेतुयः । शुक्रन्तुक्षीयतेतस्यततःप्राप्नोतिसक्षयम् ।
घोरंव्याधिमवाप्नोतिमरणंवासगच्छति ॥ १८० ॥

जो अत्यन्त चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, ईर्ष्या और उत्कंठा अथवा उद्वेगके कारण सदा ध्यानपरायणता रहताहै और जो मनुष्य कृशशरीर होनेहुए भी रूक्ष अन्नपान और रूक्ष औषधका सेवन करताहै, जो स्वभावसे ही दुर्बल मनुष्य अत्यन्त उपवास करताहै वा असात्म्य भोजन करे । उसका हृदयस्थ प्रधान रसधातु क्षीण होजाताहै । उस रसधातुके क्षीण होनेसे मनुष्यकी रक्तसे वीर्यपर्यन्त संपूर्ण धातुएं क्षीण होजातीहैं । क्योंकि संपूर्ण धातुओंका परमधाम अर्थात् तेज वीर्य ही होताहै । जो मनुष्य अति हर्षपूर्वक अत्यंत मैथुन करताहै उसका वीर्य भी अत्यन्त क्षीण होजाताहै । इन कारणोंसे मनुष्यका वीर्य और शारीरिक धातुएं क्षीण होजातीहैं तथा उसको क्षय-जनित नपुंसकता उत्पन्न होतीहै उससे मनुष्यको क्षय होजाता तथा उसके शरीरमें अनेक प्रकारकी घोर व्याधियें उत्पन्न होतीहैं अथवा इस प्रकार धातुओंके क्षय होनेसे मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १७६-१८० ॥

शुक्रतस्माद्विशेषेणरक्ष्यमारोग्यमिच्छता ।

एतन्निदानलिङ्गाभ्यामुक्तंकुर्व्यंचतुर्विधम् ॥ १८१ ॥

इसलिये आरोग्यताकी इच्छावाले मनुष्यको विशेषतापूर्वक शुक्रकी रक्षामें साधन रहना चाहिये । इस प्रकार चार प्रकारकी क्लैब्यताके निदान और लक्षणोंको कहाहै ॥ १८१ ॥

केचित्क्लैब्येत्वसाध्येद्वेध्वभजङ्गक्षयोद्भवे ।

वदन्तिशेषसञ्छेदाद्रूपणोत्पाटनेनवा ॥ १८२ ॥

कोई इनमें ध्वजभंग और क्षयज इन दो प्रकारकी म्लीवताको असाध्य मानतेहैं और लिंगके गिरजानेसे अथवा लिंगकी नसके कटजानेसे तथा फोतोंके फटक-सरजानेसे जो नपुंसकता होतीहै वह भी असाध्य होतीहै ॥ १८२ ॥

मातृपितृदोषज नपुंसकता ।

मातापित्रोर्वीजदोषादशुभैश्चाकृतारमनः । गर्भस्थस्ययदादोषाः

प्राप्यरेतोवहाःशिराः । शोपयन्त्याशुतन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते ॥

॥ १८३ ॥ तत्रसम्पूर्णसर्वाङ्गःसभवत्यपुमान्पुमान् । एतेत्वसाध्या

व्याख्याताःसन्निपातसमुच्छ्रयात् ॥ १८४ ॥

मातापिताके वीर्यदोषसे और पूर्वजन्मके कियेहुए अशुभकर्मोंसे गर्भस्थ मनुष्यकी वीर्यवाही नसोंमें वातादि दोष प्राप्त होकर उनको सुरादेतेहैं । वीर्यवाही नसोंके मृत-नेसे वीर्य भी नष्ट होजाताहै । इसलिये वह मनुष्य सर्वांगसंपूर्ण होतेहुए भी पुरुषत्व-हीन होताहै अर्थात् नपुंसक होताहै । यह लिंगभेदजनित नपुंसक और वृषणोत्पादन तथा मातृपितृदोषज नपुंसक सन्निपातसमुच्छ्रित होनेसे असाध्य होतेहैं ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

क्लेश्य (नपुंसकता) रोगकी चिकित्सा ।

चिकित्सितमतस्तूर्द्धसमासव्यासतःशृणु । शुक्रदोषेषुनिर्दिष्टंभेष-
जंयन्मयानघ । क्लेश्योपशान्तयेकुर्यात्क्षीणक्षतहितञ्चयत् ॥१८५॥
वस्तयःक्षीरसर्पौषिवृष्ययोगाश्चयेमताः । रसायनप्रयोगाश्चसर्वा-
नेतान्प्रयोजयेत् । समीक्ष्यदेहदोषाग्नीन्बलभेषजकालवित् ॥१८६॥

अब साध्य नपुंसकोंकी संक्षेप और विस्तारसे चिकित्साको कहतेहैं सो सुनो ।
हे अनघ ! शुक्रदोषकी शांतिके लिये जिन औषधियोंका हम वर्णन करआयेहैं ।
क्लेश्यदोषकी शांतिके लिये भी उन्हीं औषधोंका प्रयोग करना चाहिये । तथा
क्षतक्षीण रोगमें जो चिकित्सा औषधि आदि कहीहै उसका प्रयोग करना भी हितकारक
है तथा वैद्य रोगीका देह, दोष, अग्निबल विचार और औषधकालकी परीक्षा करके
वस्तिकर्म, औषधियोंसे सिद्ध किये वृत्त तथा वृष्य योग और रसायन प्रयोगोंका
सेवन करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

व्यवायहेतुजंक्लेश्यंयत्स्याद्धेतुविपर्ययात् । दैवव्यपाश्रयैश्चैवभे-
षजैश्चाभिचारजम् । समासेनैतदुद्दिष्टंभेषजंक्लेश्यशान्तये ॥१८७॥

जो अत्यन्त मैथु. करनेसे नपुंसक हुआहो उसको मैथुनका परित्याग करा वृष्य-
योगोंका सेवन करावे । अभिचार अर्थात् किसी मंत्रतंत्रादिसे उत्पन्नहुई क्लीवतामें
दैवव्यपाश्रय अर्थात् अभिमंत्रित औषधियोंका प्रयोग करे । संक्षेपसे नपुंसकताकी
शांतिके लिये औषध चिकित्साका कथन करदियाहै ॥ १८७ ॥

बीजोपघातज क्लेश्यकी चिकित्सा ।

विस्तरेणप्रवक्ष्यामिक्लेश्यानांभेषजंपुनः । सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्य
स्नेह्युक्तंविरेचनम् । अनुवासनंततःकुर्यादथवास्थापनंपुनः१८८॥
प्रदद्यान्मतिमान्वैद्यस्ततस्तमनुवासयेत् । पलाशौरण्डसुस्तायैः
पश्चादास्थापयेत्ततः ॥ १८९ ॥

अब विशेषतासे क्लेश्यरोगसे पीडित मनुष्योंकी चिकित्साको कहतेहैं । प्रथम
क्लेश्यरोगी, स्वेदन और स्नेहन करके स्नेह्युक्त विरेचन देवे । फिर बुद्धिमान् वैद्य
उस रोगीको अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे । पीठे ढाकका छिलका एरंडकी जडका
छिलका और नागरमोथा आदि द्रव्योंके काथसे आस्थापनवस्ति करे ॥१८८॥१८९॥

वाजीकरणयोगाश्चपूर्वयेसमुदाहताः ।

भिपजातेप्रयोज्याःस्युःक्लैव्येवीजोपघातजे ॥ १९० ॥

इस प्रकार वस्तिकर्म आदि करनेके अनन्तर वाजीकरणाध्यायमें कहेहुए वाजीकरण योगोंका वैद्य विधिवत् प्रयोग करे तो बीजोपघातजनित नपुंसकता दूर होतीहै ॥ १९० ॥

ध्वजभंगकी चिकित्सा ।

ध्वजभङ्गकृतंक्लैव्यंज्ञात्वातस्याचरेत्क्रियाम् । प्रदेहान्परिपेकांश्च
कुर्व्याद्धारक्तमोक्षणम् । स्नेहपानश्चकुर्वीतस्नेहंवाविरेचनम् १९१ ॥
अनुवासंततःकुर्व्यादथवास्थापनंपुनः । व्रणवच्चक्रियाः सर्वास्तत्र
कुर्व्याद्विचक्षणः ॥ १९२ ॥

ध्वजभंगजनित नपुंसकतामें—प्रलेप, परिपेक और दुष्ट रुधिरका निकालना हितकारक है । तथा स्नेहपान और श्लेहयुक्त विरेचन कराना फिर अनुवासन, उसके अनन्तर आस्थापन क्रिया करना हितकारक है । ध्वजभंगके घावोंमें चतुर वैद्य संपूर्ण क्रिया व्रणरोगके समान करे ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

जरासंभव और क्षयज क्लैव्यकी चि० ।

जरासम्भवजेक्लैव्येक्षयजेचैवकारयेत् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्यत्स्नेहं
शोधनंहितम् ॥ १९३ ॥ क्षीरसर्पिर्वृष्ययोगावस्तयश्चैवयापनाः ।
रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेजमुच्यते ॥ १९४ ॥

जरासंभव और क्षयज नपुंसकतामें स्नेहन और स्वेदन कारके उचित रीतिपर मृदु, क्षिग्ध, शोधन क्रिया करना चाहिये । तथा इन दोनों प्रकारके क्लैव्योंमें वृष्ययोगोंसे सिद्ध किये हुए घृत और दूध, वृष्ययोग, क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग करना चाहिये ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

विस्तरेणैतदुद्दिष्टंक्लैव्यानांभेजमया ॥ १९५ ॥

इस प्रकार विस्तारपूर्वक हमने नपुंसकोंके लिये औषध चिकित्साका कथन कियाहै ॥ १९५ ॥

प्रदररोगके सामान्य हेतु और संप्राप्ति ।

यःपूर्वमुक्तःप्रदरःशृणुहेत्वादिभिस्तुतम् । यात्यर्थसेवतेनारीलव-
णाम्लगुरूणिच । कटून्यथविदाहीनिस्त्रिगधानिपिशितानिच ॥ १९६ ॥

ग्राम्यौदकानिमेघ्यानिक्लृसरंपायसंदधि । शुक्तमस्तुसुरादीनिभ-
जन्त्याःकुपितोऽनिलः ॥ १९७॥ रक्तंप्रमाणमुत्क्रम्यगर्भाशयगताः
शिराः । रजोवहाःसमाश्रित्यरक्तमादायतद्रजः । यस्माद्विवर्द्धय-
त्याशुरक्तपित्तंसमारुहम् ॥ १९८ ॥ तस्मादसृग्दरंप्राहुरेतत्तन्त्र-
विशारदाः । रजःप्रदीर्यतेयस्मात्प्रदरस्तेनसस्मृतः ॥ १९९ ॥

पहिले प्रदररोगको कह आयेहैं अब उसके हेतु, लक्षण और चिकित्साको सुनो ।
जो स्त्री अत्यंत नमक, खटाई, भारी पदार्थ, चरपरे पदार्थ, विडाही अन्नपान, त्रिग्व
द्रव्य, मांस, ग्राम्य और जलजजीवोंके मांस, अभिष्यन्दी पदार्थ, खिचडी, खीर,
दही, सिरका, दधिमण्ड और सुरा आदिका निरन्तर और अत्यंत सेवन करतीहैं
उनके शरीरमें वायुका कोप होताहै और रक्त अत्यन्त बढजाताहै उस समय कुपित
दुआ वायु रक्तमें मिलकर गर्भस्थ मासिक रजवाहिनी शिराओंमें आश्रित होकर
रजकी वृद्धि करता है वैद्यक शास्त्रके जाननेवाले इस वायुयुक्त रक्तपित्तको रक्तप्रदर
कहते हैं । क्योंकि इस रोगमें स्त्रीके रजका प्रदग्ण (सवण) होताहै इसलिये इम
रोगको प्रदर कहते हैं ॥ १९६-१९९ ॥

प्रदररोगके चार भेद ।

रामान्यतःसमुद्दिष्टंकारणालिङ्गमेवच ।

चतुर्विधंघ्न्यासतस्तुवाताद्यैःसन्निपाततः ।

अतःपरंप्रवक्ष्यामिहेत्वाकृतिभिपग्जितम् ॥ २०० ॥

संक्षेपसे प्रदररोगके कारण और लक्षणोंको कथन कर दियाहै और विशेषतासे
प्रदररोग चार प्रकारका होताहै । जैसे पातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज । अब
इन चार प्रकारके प्रदग्गोंके हेतु, लक्षण और चिकित्साको कथन करतेहैं ॥ २०० ॥

वानजप्रदरके हेतु, लक्षण ।

रुक्षादिभिर्मारुतस्तुरक्तमादायपूर्ववत् । कुपितःप्रदरंकुर्याद्विद्वंत-
स्यचमेशृणु ॥ २०१ ॥ फेनिलंतनुरुक्षश्चश्यावमारुणमेवच । किं-
शुकोदकसङ्गशंसरुजंवाथनीरुजम् ॥ २०२ ॥ कटीवंक्षणहृत्पार्श्व-
पृष्ठश्रोणिपुमारुतः । कुरुतेवेदनांतीवामेतद्वातात्मकंविदुः ॥ २०३ ॥

रुक्ष आदि वातकारक पदार्थोंके सेवनसे वायु कुपित होकर रक्तमें प्राप्त हो रक्तकी
प्रवृत्ति कर देताहै अर्थात् वानजनित प्रदररोगको उत्पन्न करताहै उसके ये लक्षण होते

वाजीकरणयोगाश्चपूर्वयेसमुदाहृताः ।

भिषजातेप्रयोज्याःस्युःक्लैव्येवीजोपघातजे ॥ १९० ॥

इस प्रकार वस्तिकर्म आदि करनेके अनन्तर वाजीकरणाध्यायमें कहेहुए वाजीकरण योगोंका वैद्य विधिवत् प्रयोग करे तो बीजोपघातजनित नपुंसकता दूर होतीहै ॥ १९० ॥

ध्वजभंगकी चिकित्सा ।

ध्वजभङ्गकृतंक्लैव्यंज्ञात्वात्स्याचरेत्क्रियाम् । प्रदेहान्परिपेकांश्च
कुर्याद्धारक्तमोक्षणम् । स्नेहपानश्चकुर्वीतसस्नेहंवाविरेचनम् १९१ ॥
अनुवासंततःकुर्यादथवास्थापनंपुनः । व्रणवच्चक्रियाः सर्वास्तत्र
कुर्याद्विचक्षणः ॥ १९२ ॥

ध्वजभंगजनित नपुंसकतामें—प्रलेप, परिपेक और दुष्ट रुधिरका निकालना हितकारक है । तथा स्नेहपान और स्नेहयुक्त विरेचन कराना फिर अनुवासन, उसके अनन्तर आस्थापन क्रिया करना हितकारक है । ध्वजभंगके घावोंमें चतुर वैद्य संपूर्ण क्रिया व्रणरोगके समान करे ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

जरासंभव और क्षयज क्लैव्यकी चि० ।

जरासंभवजेक्लैव्येक्षयजेचैवकारयेत् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्यत्सस्नेहं
शोधनंहितम् ॥ १९३ ॥ क्षीरसर्पिर्वृष्ययोगावस्तयश्चैवयापनाः ।
रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेषजमुच्यते ॥ १९४ ॥

जरासंभव और क्षयज नपुंसकतामें स्नेहन और स्वेदन करके उचित रीतिपर मृदु, स्निग्ध, शोधन क्रिया करना चाहिये । तथा इन दोनों प्रकारके क्लैव्योंमें वृष्ययोगोंसे सिद्ध किये हुए घृत और दूध, वृष्ययोग, क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग करना चाहिये ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

विस्तरेणैतदुद्दिष्टंक्लैव्यानांभेषजंमया ॥ १९५ ॥

इस प्रकार विस्तारपूर्वक हमने नपुंसकोंके लिये औषध चिकित्साका कथन कियाहै ॥ १९५ ॥

प्रदररोगके सामान्य हेतु और संप्राप्ति ।

यःपूर्वमुक्तःप्रदरःशृणुहेत्वादिभिस्तुतम् । यात्यर्थसेवतेनारीलव-
णाम्लगुरुणिच । कटून्यथविदाहीनिस्त्रिगधानिपिशितानिच ॥ १९६ ॥

आन्यौदकानिमेध्यानिक्लृप्तसंपायसंदधि । शुक्तमस्तुसुरादीनिभ-
जन्त्याःकुपितोऽनिलः ॥ १९७ ॥ रक्तंप्रमाणमुत्कन्धगर्भाशयगताः
शिराः । रजोवहाःसमाश्रित्यरक्तमादीयतद्रजः । यस्माद्विवर्द्धय-
त्याशुरक्तपित्तंसमारुहम् ॥ १९८ ॥ तस्मादसृग्दरंप्राहुरेतत्तन्त्र-
विशारदाः । रजःप्रदीर्यतेयस्मात्प्रदरस्तेनसस्मृतः ॥ १९९ ॥

पहिले प्रदररोगको कह आयेहैं अब उसके हेतु, लक्षण और चिकित्साको सुनो ।
जो स्त्री अत्यंत नमक, खटाई, भारी पदार्थ, चरपरे पदार्थ, विदाही अन्नपान, त्रिग्व
द्रव्य, मांस, ग्राम्प और जलजजीवोंके मांस, अभिष्यन्दी पदार्थ, खिचडी, खीर,
दही, सिरका, दधिमण्ड और सुरा आदिका निरन्तर और अत्यंत सेवन करतीहैं
उनके शरीरमें वायुका कोप होताहै और रक्त अत्यन्त बढजाताहै उस समय कुपित
दुआ वायु रक्तमें मिलकर गर्भस्थ मासिक रजवाहिनी शिगाममें आश्रित होकर
रजकी वृद्धि करती है वैद्यक शास्त्रके जाननेवाले इस वायुयुक्त रक्तपित्तको रक्तप्रदर
कहते हैं । क्योंकि इस रोगमें स्त्रीके रजका प्रदग्ण (स्रवण) होताहै इसलिये इम
रोगको प्रदर कहने हैं ॥ १९६-१९९ ॥

प्रदररोगके चार भेद ।

सामान्यतःसमुद्दिष्टंकारणंलिङ्गमेवच ।

चतुर्विधंव्यासतस्तुवातायैःसन्निपाततः ।

अतःपरंप्रवक्ष्यामिहेत्वाकृतिभिर्गजितम् ॥ २०० ॥

संक्षेपसे प्रदररोगके कारण और लक्षणोंको कथन कर दियाहै और विशेषतासे
प्रदररोग चार प्रकारका होताहै । जैसे वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज । अब
इन चार प्रकारके प्रदरोंके हेतु, लक्षण और चिकित्साको कथन करतेहैं ॥ २०० ॥

वातजप्रदरके हेतु, लक्षण ।

रुक्षादिभिर्मरुतस्तुरक्तमादायपूर्ववत् । कुपितःप्रदरंकुर्व्यालिङ्गंत-
स्यचमेशृणु ॥ २०१ ॥ फेनिलंतनुरूक्षश्चड्यावमारुणमेवच । किं-
शुकोदकसङ्गतशंसरुजंवाथनीरुजम् ॥ २०२ ॥ कटीवंक्षणहृत्पार्श्व-
पृष्ठश्रोणिपुमारुतः । कुरुतेवेदनांतीवामेतद्वातात्मकंविदुः ॥ २०३ ॥

रुख आदि वातकारक पदार्थोंके सेवनसे वायु कुपित होकर रक्तमें प्राप्त हो रक्तकी
प्रवृत्ति का देनाहै अर्थात् वातजनिन प्रदररोगको उत्पन्न करताहै उसके ये लक्षण होते

हैं । वातजनित प्रदरका रक्त श्लागदार, पतला, रूक्ष, इषाम, अरुण और केसुओंके जलके समान होताहै । वह पीडाके साथ अथवा विनाही पीडासे भी खवताहै । और उस स्त्रीके कमर, वक्षण (पेट) इदमः पार्श्व, पीठ और नितम्बोंमें वातजनित तीव्र पीडा उत्पन्न होती है । इन लक्षणोंवाला वायुका प्रदर जानना ॥ २०१-२०३ ॥

पित्तज प्रदरके हेतु, लक्षण ।

अम्लोष्णलवणक्षारैःपित्तंप्रकुपितंयदा । पूर्ववत्प्रदरंकुर्यात्पैत्तिकंलिङ्गतःशृणु ॥ २०४ ॥ सनीलमथवापीतमत्युष्णमसितंतथा । नितान्तरक्तंस्त्रवतिमुहुर्मुहुरथात्तिमत् ॥२०५॥ विदाहरागतृणमो-हज्वरभ्रमसमायुतम्। असृग्दरं पैत्तिकंतु श्लैष्मिकंतु प्रवक्ष्यते ॥२०६॥

खट्टे, गर्भ, नमकीन और सारे पदार्थोंके अत्यंत सेवन करनेसे कुपितहुआं पित्त मासिक रजवाहनी गिराओंमें प्राप्त होकर रक्तकी वृद्धिकर पित्तज प्रदरको उत्पन्न करताहै उसके लक्षणोंको श्रवण करो । पित्तजनित प्रदरमें रक्तका वर्ण नीला, पीला और काले वर्णका होताहै तथा यह रक्त अत्यंत गरम और वारंवार पीडाके साथ निरन्तर स्राव होता रहताहै । इसमें विदाह, राग, प्यास, ज्वर और भ्रम यह लक्षण होतेहैं । इसको पित्तजनित प्रदर कहतेहैं । अब कफजनित प्रदरके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ २०४ ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

कफज प्रदरके हेतु ल० ।

गुर्वादिभिर्हेतुभिश्चपूर्ववत्कुपितःकफः। प्रदरंकुरुतेतस्यलक्षणंतत्त्व-तःशृणु ॥ २०७ ॥ पिच्छिलंपाण्डुवर्णञ्चगुरुस्निग्धञ्चशीतलम् । स्वत्यसृक्श्लेष्मलञ्चतथामन्दरुजाकरम् । छर्द्यरोचकहृल्लासश्चा-सकासतमन्वितम् ॥ २०८ ॥

भारी पदार्थोंके खानेसे तथा कफके उपकारक आहारविहारके सेवनसे कुपित हुआ कफ पूर्वके समान रजवाही नसोंमें प्रवेश हो कफजनित प्रदरको दूर करताहै । उसके यह लक्षण होतेहैं । कफजनित प्रदरका रक्त पिच्छिल, पाण्डुवर्ण, भारी, चिकना, शीतल और कफयुक्त रुधिरका स्राव होताहै । इसमें मंद पीडा, वमन, अरुचि, हृल्लास, इवास और खांसी यह लक्षण होतेहैं ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

त्रिदोषज प्रदर हेतु, लक्षण ।

वक्ष्यतेक्षीरदोषाणांसामान्यमिहकारणम् ।

यत्तदेवत्रिदोषस्यकारणंप्रदरस्यतु ॥ २०९ ॥

इसके आगे स्तन्यदोषोंके जो सामान्य कारण कहेंगे वही त्रिदोषजनित प्रदरके कारण जानना चाहिये । त्रिदोषज लक्षणोंमें युक्त प्रदर एक व्यवस्थावाला नहीं होता । उसमें त्रिदोषजनित अनेकरूप होतेहैं ॥ २०९ ॥

त्रिलिङ्गसंयुतंविद्यान्नैकावस्थमसृग्दरम् । नारीत्वतिपरिक्लिष्टाय-
दाप्रक्षीणशोणिता । सर्वहेतुसमाचारादतिवृद्धस्तदानिलः॥२१०॥
रक्तमार्गेणसृजतिप्रत्यनीककरंकफम् । दुर्गन्धंपिच्छिलंपीतंविद-
ग्धंपित्ततेजसा ॥ २११ ॥ वसामेदश्चयावद्धिसमुपादायवेगवान् ।
सृजत्यपत्यमार्गेणसर्पिर्मज्जावसोपमम् ॥ २१२ ॥ शश्वत्स्त्रवत्यथा-
स्त्रावंतृष्णादाहज्वरान्विताम् । क्षीणरक्तादुर्वलाश्चतामसाध्या-
विवर्जयेत् ॥ २१३ ॥

रक्तभाव होनेसे स्त्री क्रमपूर्वक अत्यंत परिक्लिष्ट और क्षीणरक्त होतीहै । उस समय संपूर्ण दोषोंको कुपित करनेवाले हेतुओंके आचरण करनेसे वृद्धिको प्राप्तहुए वात, पित्त, कफ कोषको प्राप्त हो रक्तमार्गमें रजवाहिनी नसोंमें प्राप्त होकर योनि-द्वारा रक्तको साध्य असाध्य कफको निकालतेहैं । उस त्रिदोषजनित प्रदरका रक्त पित्तके तेजसे दुर्गन्धित पिच्छिल और विदग्ध होताहै । वेगवान् वायु शरीरकी चर्बी और मेदको लेकर घृत, मज्जा और वसाके समान वर्णवाला स्त्राव योनिमार्गसे निरन्तर कराताहै । इस प्रकार त्रिदोषजनित प्रदरमें स्त्रीको प्यास, दाह और ज्वर होताहै इस क्षीणरक्ता दुर्वला स्त्रीको असाध्य जानकर त्यागदेना चाहिये ॥ २१०-२१३ ॥

शुद्ध रजके लक्षण ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्त्तिपश्चरात्रानुवन्धिच । नैवातिबहुलात्यल्प-
मार्त्तवंशुद्धमादिशेत् ॥ २१४ ॥ गुञ्जाफलसवर्णश्चपद्मालक्तकस-
न्निभम् । इन्द्रगोपकसङ्काशमार्त्तवंशुद्धमेवतत् ॥ २१५ ॥

जिस स्त्रीका महीने२ ऋतुधर्मवती होकर पांचरात्रिपर्यन्त पिच्छिलता और दाहरहित तथा पीटारहित न बहुत ज्यादा न बहुत कम ठीक समयानुसार मासिक ऋतुका रुधिर गिरे उसको शुद्ध रज जानना । यह रक्त गुंजाफलके समान लालवर्णका, लाल कमलके समान धयरा लासके रसके समान या वीरवहूटीके समान लालवर्णका होताहै उसको शुद्ध रज जानना चाहिये ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

प्रदररोगकी चिकित्साका निर्देश ।

योनीनांवांतलाढ्यानांयदुक्तमिहभेषजम् ।

चतुर्णांप्रदराणाञ्चतत्सर्वकारयेद्भिषक् ॥ २१६ ॥

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज योनिरोगोंमें जो चिकित्साका कथन कियाहै वही चिकित्सा चार प्रकारके प्रदररोगमें भी वैद्य करे ॥ २१६ ॥

रक्तातिसारिणांयच्चतथाशोणितपित्तिनाम् ।

रक्तार्शसाञ्चयत्प्रोक्तंभेषजंतच्चकारयेत् ॥ २१७ ॥

रक्तातिसार और रक्तपित्तमें तथा रुधिरकी ववासीरमें जो औषधि प्रयोग कथन कियेहै वही प्रदररोगको दूर करनेके लिये सेवन कराने चाहिये ॥ २१७ ॥

अथ स्तन्यदोषचिकित्सा ।

धात्रीस्तनस्तन्यसम्पदुक्ताविस्तरतः पुरा । स्तन्यसञ्जननञ्चैवस्त-

न्यस्यचविशोधनम् ॥ २१८ ॥ वातादिदुष्टेलिंगञ्चक्षीणस्यचचि-

कित्सितम् । तत्सर्वमुक्तंयेत्वष्टौक्षीरदोषाःप्रकीर्त्तिताः ॥ २१९ ॥

वातादिष्वेवतान्विद्याच्छास्त्रचक्षुर्भिषक्तमः । त्रिविधास्तुयतःशि-

ष्यास्ततोवक्ष्यामि विस्तरम् ॥ २२० ॥

पहिले धाईके स्तन्य अर्थात् स्त्रीके स्तनोंके दूधका वर्णन जातिसूत्रीयाध्यायमें विशेष रूपसे कहचुकेहैं तथा उसी अध्यायमें दूधके बढानेवाली और दूधके दोषोंको शोधन करनेकी चिकित्सा भी कहचुकेहैं । और वातादिदोषोंसे दूषितहुए स्तनोंके दूधके लक्षण और चिकित्सा भी कही जा चुकीहै तथा अष्टोदरीय अध्यायमें आठ प्रकारके क्षीरदोषोंका वर्णन भी किया जा चुकाहै । शास्त्रको जाननेवाला बुद्धिमान वैद्य वातादि दोषोंके लक्षण देखकर जैसा विकार हो वैसी चिकित्सा करे । परन्तु मध्यम और हीन बुद्धिके वैद्य उस प्रकार वर्णन कियेहुए निदान, चिकित्सा द्वारा यथोचित लाभ नहीं उठा सकते । उनके लिये अब फिर स्थूलरूपमें वर्णन करतेहैं क्योंकि शिष्य उत्तम, मध्यम और निःकृष्ट भेदोंसे तीन प्रकारके होतेहैं २१८-२००

स्तन्यदोषोंके हेतु ।

अजीर्णासात्म्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात् । लवणाम्लकटुक्षार-

प्रविलन्नानाञ्चसेवनात् ॥ २२१ ॥ मनःशरीरसन्तापादस्वप्नाग्नि-

गिचिन्तनात् । प्रासवेगप्रतीघातादप्राप्तोदीरणेनच ॥ २२२ ॥

परमात्रंगुडकृतंकृशरंदधिमत्स्यकम् । अभिष्यन्दीनिमांसानिग्रा-
म्यानूपौदकानिच ॥ २२३ ॥ भुक्त्वाभुक्त्वादिवास्वप्नान्मद्यस्याति-
नियेवणात् । अनायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्शनैः ॥ २२४ ॥
दोषाःक्षीरवहाःप्राप्यशिराःस्तन्यंप्रदूष्यच । कुर्युरष्टविधंभूयो
दोषास्तान्मेनिबोधत ॥ २२५ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे, अथवा अजीर्णसे असात्म्य, विषम, विरुद्ध और अत्यंत भोजनके करनेसे, नमकीन, खट्टे, चरपरे, खारे और क्लेदकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे, मानसिक संताप और शारीरिक संतापसे, रात्रिमें न सोनेसे, अत्यंत चिन्ता होनेसे, आयेदुए मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, वेग विना ही मलमूत्रादिके त्याग करनेका यत्न करनेसे, गुडसे बनेहुए पकान्न, खिचडी, दही, मछली, अभिष्यंदी, ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंका मांस अधिक सेवन करनेसे, नित्यप्रति भोजन करतेही दिनमें सोजानेसे अथवा विना भोजन कियेही दिनमें सोजानेसे, अत्यन्त मद्यके पीनेसे किसी प्रकारका प्रयास न कर आलसी बैठे रहनेसे किसी प्रकारकी चोट लगनेसे, क्रोधसे और रोगद्वारा शरीरके कृश होजानेसे वातादि दोष कुपित होकर क्षीरवाही शिराओंमें प्राप्त हो स्तनोंके दूधको दूषित कर आठ प्रकारके स्तन्य-दोषोंको करतेहैं । उनको मुझसे श्रवण करो ॥ २२१-२२५ ॥

वातादिभेदसे उनके लक्षण ।

वैरस्यंफेनसंघातरौक्ष्यञ्चेत्यनिलात्मके । पित्ताद्वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्ने-
हपैच्छिद्यगौरवम् । कफाद्भवतिरूक्षाद्यैरनिलःस्वैःप्रकोपनैः ॥

॥ २२६ ॥ क्रुद्धःक्षीराशयंप्राप्यरसंस्तन्यस्यदूषयेत् । विरसंवात-
संसृष्टंक्रुद्धीभवतितत्पिबन् । तच्चास्यस्वदतेक्षीरंक्रुद्धेणचवि-
वर्द्धते ॥ २२७ ॥

वातदूषित स्तन्यके स्तनोंका दूध विरस, सागदार और रूक्ष होताहै । पित्तदूषित, स्तन्य विवर्ण और दुर्गन्धित होताहै । कफदूषित स्तन्य स्निग्ध, पिच्छल और भारी होताहै । वायु अपने रूक्ष आदि कारणोंसे कोषको प्राप्त हो दुग्वाशयमें प्राप्त होजाताहै । तब स्तन्य रसको दूषित करदेताहै । उस वातसंसृष्ट विरस दूधके पीनेसे बालक कृश होजाताहै । और दूध पीनेमें बालककी रुचि नहीं रहती, यह बालक बडी कठिनतासे कुछ कुछ वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

वातदूषित स्तन्यके दोष ।

तथैववायुःकुपितःस्तन्यमन्तर्विलोडयन् । करोतिफेनसंघातंतत्तु-
कृच्छ्रात्प्रवर्तते ॥ २२८ ॥ तेनक्षामस्वरोवालोवद्धविण्मूत्र-
मारुतः । वातिकंशीर्षरोगंवापीनसंवाधिगच्छति ॥ २२९ ॥ पूर्वव-
त्कुपितःस्तन्येस्नेहंशोषयतेऽनिलः । रूक्षंतत्पिवतोरौक्ष्याद्बलहास-
श्चजायते ॥ २३० ॥

जब वही वायु कुपित होकर स्तनोंके भीतर प्राप्त हो दूधको मन्थन करताहै उससे दूध सागदार और थोडा २ निकलताहै । उसके पीनेसे बालकको स्वरभंग, मलमू-
त्रका विबंध, वातजनित शिरोरोग और प्रतिश्याय होताहै । वही वायु कुपित होकर
स्तन्यके स्नेहभागको शोषण करडाले तो उससे दूध रूक्ष होजाताहै । उस रूक्ष दूधको
पीनेसे रूक्षताके कारण बालकके बलका हास होताहै ॥ २२८-२३० ॥

पित्तदूषित स्तन्यके लक्षण ।

पित्तमुष्णादिभिःक्रुद्धंस्तन्याशयमभिप्लुतम् । करोतिस्तन्यवैवर्ण्य-
नीलपीतासितादिकम् ॥ २३१ ॥ विवर्णगात्रःखिन्नःस्यात्तृष्णालु-
र्भिन्नविट्शिशुः । नित्यमुष्णशरीरश्चनाभिनन्दतितस्तनम् ॥ २३२ ॥
पूर्ववत्कुपितेपित्तेदौर्गन्ध्यंक्षीरमृच्छति । पाण्ड्यामयस्तत्पिवतःका-
मलाचभवेच्छिशोः ॥ २३३ ॥

उष्ण आदि पित्तकारक हेतुओंसे कुपितहुआ पित्त स्तनोंमें प्राप्त होकर दूधके रस-
को विगाड देताहै । जिससे दूध विवर्ण, नीला, पीला और काला आदि वर्णोंवाला
होजाताहै । इस पित्तदूषित दूधके पीनेसे बालक विवर्ण, सदैव स्वेदयुक्त और तृषातुर
रहताहै तथा इस बालकको पतले दस्त लगते हैं शरीर गर्म रहताहै और यह दूध
पीनेकी इच्छा नहीं करता । जब वह पित्त उसी प्रकार कुपित हो दूधको विगाडताहै
तब दूधमेंसे दूर्गन्ध आने लगतीहै । इस दूधके पीनेसे बालकको पाण्डुरोग और काम-
लारोग उत्पन्न होताहै २३१-२३३ ॥

कफदूषित स्तन्यके लक्षण ।

क्रुद्धोगुर्वादिभिःश्लेष्माक्षीराशयगतःस्त्रियाः । स्नेहान्वितत्वात्त-
त्क्षीरमत्तिलिग्धंकरोतितु ॥ २३४ ॥ छर्दनःकुन्थनस्तेनलालालु-
र्जायतेशिशुः । नित्योपदिग्धैःस्नातोभिर्निद्राक्लमसमन्वितः । श्वा-

सकासपरीतस्तुप्रसेकतमकान्वितः ॥ २३५ ॥ अभिभूयकफःस्त-
न्यंपिच्छिलंकुरुतेयदा । लालालुःशूनवक्राक्षिर्जडःस्यात्तुपिबञ्छि-
शुः ॥ २३६ ॥ कफःक्षीराशयगतोगुरुत्वात्क्षीरगौरवम् । अतिस्ने-
हान्वितंपीत्वावालोहद्रोगमृच्छति । अन्यांश्चविविधान्नोगान्कुर्या-
त्क्षीरसमाश्रितान् ॥ २३७ ॥

भारी पदार्थोंके सेवन अदि कारणोंसे कुपितहुआ कफ स्तन्याशयमें भास होकर
दूधको चिकनाईयुक्त अथवा अत्यंत चिकना बना देताहै । इस दूधके पीनेसे बालक-
को वमन, कुन्यन, लारका बहना तथा कफद्वारा बालकके स्रोत लिहसजानेसे उसको
अत्यंत निद्रा, आलस्य, श्वास, खांसी, लारका बहना और तमकस्वात उत्पन्न होता
है जब वह कफ दूधको विगाडकर पिच्छिल बना देताहै तो उसके पीनेसे बालकके मुख-
से लार बहे, मुख और नेत्र सूजनयुक्त हों तथा शरीरमें जडता होतीहै । कफ दुग्धा-
शयमें प्रवेश कर दूधमें भारीपन उत्पन्न कर देताहै । उससे दूध भारी और अत्यंत
चिकना होताहै । उसके पीनेसे बालकको हृद्रोग तथा दूधसम्बन्धी कफजनित अनेक
रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ २३४-२३७ ॥

त्रिदोषदूषित स्तन्य ।

क्षीरेवातादिभिर्दुष्टेसम्भवन्तितदात्मकाः ।

सन्निपातदूषित दूधमें अनेक प्रकारके वातादिजनित मिले जुले लक्षण होतेहैं ।
दूषित स्तन्यकी चिकित्सा ।

तत्रादौस्तन्यशुद्धयर्थंधात्रीस्नेहोपपादिताम् ।

संस्वेद्यविधिवद्वैद्योवमनेनोपपादयेत् ॥ २३८ ॥

स्तन्यदोषमें दूधकी शुद्धिके लिये प्रथम धायको स्नेहन करे । फिर भले प्रकार
स्वेदन करके वैद्य विधिपूर्वक वमन करावे ॥ २३८ ॥

वचाप्रियङ्गुयष्ट्याह्वफलवत्सकसर्पपैः । कल्कैर्निम्बपटोलानांका-
थैः सलवणैर्वमेत् ॥ २३९ ॥ सम्यग्वान्तांयथान्यायंकृतसंसर्जनां
ततः । दोषकालवलापेक्षीस्नेहयित्वाविरेचयेत् ॥ २४० ॥

वच, फूलप्रियंगु, मुँलेठी, मेनफल, इन्द्रयव और सफेद सरसों इन सबका कल्क
कर सेंयानमक मिला गर्म जलसे पीवे अथवा नीमकी छाल और पटोलकी
जडका काथ नमक मिलाकर गर्मगर्म पीवे । इससे वमन होतीहै । जब देखे कि

भली प्रकार वमन होगईहै तो फिर विधिवत् पेयादि सेवन करावे । फिर उचित रीतिसे स्नेहन और स्वेदन कर दोष, काल और बल आदि विचारकर विरेचन करावे ॥ २३९ ॥ २४० ॥

त्रिवृतामभयांवापित्रिफलारससंयुताम् ।

पाययेन्मधुसंयुक्तामभयाश्चापिकेवलाम् ।

पाययेन्मूत्रसंयुक्तांविरेकार्थञ्चशास्त्रवित् ॥ २४१ ॥

निगोय अथवा हरडका कल्क त्रिफलेके कायके साथ अथवा केवल त्रिफलेका काय शब्द मिला गोमूत्रके साथ शास्त्रको जाननेवाला वैद्य विरेचनके लिये पिलावे ॥ २४१ ॥

अथसम्यग्विरेक्ताश्चकृतसंसर्जनांपुनः ।

ततोदोषावशेषैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ २४२ ॥

जब इस धायको यथोचित विरेचन होजाय तो पेयादि क्रमसे उसकी रक्षा करे । और बाकी रहे दोषको दोषनाशक अन्नपानोंद्वारा हरण करे ॥ २४२ ॥

शालयोयष्टिकावास्युःश्यामाकाभोजनेहिताः ।

प्रियङ्गवःकोरदूपायवात्रेणुयवास्तथा ॥ २४३ ॥

तथा शालीचाबल, साठीचाबल, श्यामाकचाबल, कांगुनी, कोद्रव, यव, वेणुयव यह सब भोजनके लिये हितकारी हैं ॥ २४३ ॥

वंशवेत्रकलायाश्चसस्नेहायूपसंस्कृताः ।

मुद्गान्मसूरान्यूपार्थेकुलत्थांश्चप्रकल्पयेत् ॥ २४४ ॥

वोंस और बेतकी कांपल, मटर, मूंग, मसूर और कुलथी इन सबका स्नेहयुक्त यूप (दाल) बनाकर यूपके लिये कल्पना करे ॥ २४४ ॥

निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताकामलकैःशृतान् ।

सव्योपसैन्धवान्यूपान्दापयेत्स्तन्यशोधनान् ॥ २४५ ॥

नीमके पत्र, बेतकी कांपल, पटोल, बेंगन और आमलेके साथ सिद्ध किये यूप, त्रिकुटेका चूर्ण और संधानमक मिलाकर सेवन करे तो स्तन्यदोषकी शुद्धि होतीहै ॥ २४५ ॥

शशान्कपिञ्जलानेणान्संस्कृतांश्चप्रकल्पयेत् ।

शाङ्गष्टाससर्णत्वगंश्वगन्धाशृतंजलम् ॥ २४६ ॥

पाययेताथवास्तन्यशुद्धयेकदुरोहिणीम् । अमृतासप्तपर्णत्वक्का-
थञ्चैवसनागरम् ॥ २४७ ॥ किराततिक्तकक्वाथंश्लोकपादेरितान्पि-
वेत् । त्रीनेतान्स्तन्यशुद्धयर्थमितिसामान्यभेषजम् । कीर्तितंस्त-
न्यदोषाणांपृथगन्यंनिबोधत ॥ २४८ ॥

ख(गोश, सफेद तीतर और एणका मांसरस, विधिवत् संस्कार करके सेवन करावे तथा करंज, सतवनकी छाल और असगंधसे सिद्ध किया जल पिलावे । या कुटकीका काथ पिलावे । अथवा गिलोय और सप्तवर्णकी छालका काथ सांठका चूर्ण मिला पिलावे तो स्तन्यदोष दूर होकर दूध शुद्ध होजाताहै । अथवा चिरायतेके काथको स्तन्यदोषकी शुद्धिके लिये पीवे । यह आधे २ श्लोकमें कहे तीन प्रकारके काथ स्तन्यदोषको शुद्ध करतेहैं । सामान्यरूपसे स्तन्यदोषोंकी चिकित्साको कथन करदियाहै । अब विशेषरूपसे श्रवण करो ॥ २४६ ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

स्तन्यदोषोंकी विशेष चिकित्सा ।

पाययेद्धिरसक्षीराद्राक्षामधुकशारिवाः । श्लक्ष्णपिष्टांपयस्याञ्चस-
मालोढ्यसुखाम्बुना ॥ २४९ ॥ पञ्चकोलकुलथ्यैश्चपिष्टैरालेपयेत्स्त-
नौ । शुष्कौप्रक्षाल्यानिर्दुह्यात्तथास्तन्यंविशुध्यति ॥ २५० ॥

धापका दूध यदि विरस हो तो उसको मुनका, मुलैठी और शारिवा तथा क्षीर-
विदारी या क्षीरकाकोली इन सबको बारीक पीस सुखोष्ण जलमें घोलकर पिलावे
पंचकोल और कुलथीको बारीक पीसकर स्तनोंपर लेप करे जब सूखजाय तो
उत्तारकर धोयदेय । इस प्रकार बारबार लेप करनेसे भी स्तन्यदोषकी शुद्धि
होतीहै ॥ २४९ ॥ २५० ॥

फेनसद्गतवत्क्षीरंयस्यास्तांपाययेत्तच्च ।

पाठानागरशाङ्गैष्टामूर्वाःपिष्ट्वासुखाम्बुना ॥ २५१ ॥

जिम धयायका दूध अत्यन्त झागदाग हो उसको पाठ, सांठ, करंजकी छाल और
मूर्वाके कल्कको सुखोष्ण जलमें घोलकर पिलावे ॥ २५१ ॥

अञ्जनंतगरंदारुविल्वमूलंप्रियङ्गवः ।

स्तनयोःपूर्ववत्कार्यलेपनंक्षीरशोधनम् ॥ २५२ ॥

रसांजन, तगर, देवदारु, बेलगिरी और फूलप्रिपंगु इन सबको पीसकर स्तनों-
पर लेपन करे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होताहै ॥ २५२ ॥

किराततिक्तकंशुण्ठीसामृतावत्राथयेद्भिपक् ।

तंकाथंपाययेद्वात्रीस्तन्यदोपनिवर्हणम् ॥ २५३ ॥

चिरयता, सोंठ और गिलोयका क्वाथकर वैद्य धापको पिलावे तो दूधके दोष दूर होते हैं ॥ २५३ ॥

स्तनौचालेपयेत्पिष्टैर्यवगोधूमसर्पपैः । पङ्क्तिरेकाश्रित्तीयोक्तैरौष-
धैःस्तन्यशोधनैः ॥ २५४ ॥ रूक्षक्षीरापिवेत्क्षीरं तैर्वासिद्धं घृतं पि-

वेत् । पूर्ववज्जीवकाद्यञ्चपञ्चमूलंप्रलेपनम् । स्तनयोःसंविधातव्यं
सुखोष्णंस्तन्यशोधनम् ॥ २५५ ॥

यव, गेहूं और सफेद मगसोंका कल्ककर स्तनोंपर लेप करे अथवा पाङ्क्तिरेचन शनाश्रुतीय अध्यायमें कही हुई स्तन्यशोधक औषधियोंसे सिद्ध किये हुए दूध और घृतको रूक्ष दूधवाली स्त्री पान करे । अथवा जविक आदिगणवा लघुपंचमूलके कल्क-
को मुखोष्ण कर दोनों स्तनोंपर लेप करे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होजाताहै और
रूक्षता दूर होतीहै ॥ २५४ ॥ २५५ ॥

याष्टिमधुकमृद्धीकापयस्यासिन्धुवारिकाः । शीताम्बुनापिवेत्कल्कं
क्षीरवैवर्ष्यनाशनम् ॥ २५६ ॥ द्राक्षामधुककल्केनस्तनौवास्याः
प्रलेपयेत् । प्रक्षाल्यवारिणाचैवनिर्दुह्यात्तौपुनःपुनः ॥ २५७ ॥

मुलैठी, मुनक्का, क्षीरकाकोली और संभालूकी जडका ठिलका शीतलजलमें घोट-
कर पीवे तो स्तनोंके दूधकी विवर्णता दूर होतीहै तथा मुनक्का और मुलैठीके कल्कको
स्तनोंपर लेप करे । लेपके सूखजानेपर जलके साथ घोड़ेवे । इस प्रकार बारबार लेप
करे तो स्तनोंके दूधकी विवर्णता दूर होतीहै ॥ २५६ ॥ २५७ ॥

विपाणिकाजशृङ्गौचत्रिफलारंजनीवचाम् ।

पिवेत्क्षीराम्बुनापिष्ट्वाक्षीरदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ २५८ ॥

काकडासिंगी, सिंगी, हरड, बहेडे, आमले, हल्दी और वच इन सबको दूधमें
पकाकर अथवा दूधके साथ पीमकर पीनेसे स्तनोंके दूधकी दुर्गन्ध दूर होतीहै ॥ २५८ ॥

लिह्याद्राप्यभयाचूर्णसव्योपमाक्षिकप्लुतम् ।

क्षीरदौर्गन्ध्यनाशार्थधात्रीपध्याशिनीतथा ॥ २५९ ॥

हरड और त्रिकुटेके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे और पथ्य भोजनका सेवन
करती रहे तो धापके दूधकी दुर्गन्ध दूर होतीहै ॥ २५९ ॥

शारिवोशीरमञ्जिष्ठाश्लेष्मातकसचन्दनैः ।

पत्राम्बुचन्दनोशीरैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥ २६० ॥

शारिवा, खस, मंजीठ, लसोढेकी जडका छिलका और चंदन अथवा पत्रज, नेत्रवाला, लालचन्दन और खस इनको वारीक पीसकर स्तनोंपर लेप करनेसे दूधकी दुर्गंध दूर होतीहै ॥ २६० ॥

स्निग्धक्षीरादारुमुस्तपाठाःपिद्धासुखाम्बुना ।

पीत्वाससैन्धवाःक्षिप्रंक्षीरशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ २६१ ॥

देवदारु, नागरमोथा, पाटला और सेंधा नमक इन सबको वारीक पीसकर सुखोष्ण जलके साथ पीवे तो स्तनोंके दूधकी स्निग्धता (कफजनित दोष) दूर होकर स्तनोंका दूध शीघ्र शुद्ध होजाताहै ॥ २६१ ॥

पाययेत्पिच्छिलक्षीरांशाङ्गप्रामभयांचाम् ।

मुस्तनागरपाठाश्चपीताःस्तन्यविशोधनाः ॥ २६२ ॥

यदि स्तनोंका दूध पिच्छिल हो तो महाकरंजका छिलका या हरड अथवा वच या नागरमोथा, सोंठ और पाठ इनका क्वाय कर पीवे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होताहै ॥ २६२ ॥

तक्रारिष्टमपिपिवेदर्शसांयन्निदर्शितम् ।

विदारीविल्वमधुकैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥ २६३ ॥

वर्शरोगचिकित्सिताध्यायमें जो तक्रारिष्ट कथनकर आयेहैं उसके पीनेसे कफजनित स्तन्यदोष दूर होजातहै । तथा विदारीकंद, विल्वकी जडका छिलका और मुलेठी इनको पीसकर स्तनोंपर लेप करनेसे स्तनोंके दूधकी पिच्छिलता दूर होतीहै ॥ २६३ ॥

त्रायमाणाभृतानिम्बपटोलत्रिफलाशृतम् । गुरुक्षीरापिवेदेतस्तन्य-
दोषविशुद्धये । पिवेद्वापिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ॥ २६४ ॥

त्रायमाण, गिलोय, निम्ब, पटोलपत्र और त्रिफलेका क्वाय पीनेसे स्तनोंके दूधका भारीपन दूर होताहै । अथवा पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठका क्वाय बनाकर पीवे तो स्तनोंके दूधका भारीपन दूर होताहै ॥ २६४ ॥

वलानागरशाङ्गप्रामूर्वाभिलेपयेत्स्तनौ ।

पृश्निपर्णापयस्याभ्यांस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥ २६५ ॥

बला, सोंठ, महाकरंजकी छाल और मूर्वाका कटक कर स्तनोंपर लेप करे अथवा

पृष्ठपर्णों और क्षीरकाकोलीके कल्कका स्तनोंपर लेप करे तो स्तनोंके दूधकी गुरुता दूर होतीहै ॥ २६५ ॥

अष्टात्रैतेक्षीरदोषाहेतुलक्षणभेपजैः ।

निर्दिष्टाःक्षीरदोषोत्थास्तथोक्ताःकेचिदामयाः ॥ २६६ ॥

इस प्रकार आठ प्रकारके स्तन्यदोषोंके हेतु लक्षण और औषधोंका कथन करदियाहै । अब दूधके दोषसे होनेवाले बालकोंके सम्पूर्ण रोगोंको कथन करतेहैं ॥ २६६ ॥

क्षीरदोषज बालरोगोंकी चिकित्सा ।

दोषदूष्यमलाश्रैवमहतांव्याधयश्चये ।

तएवसर्वेवालानांमात्रात्वल्पतरामता ॥ २६७ ॥

बालकोंके शरीरमें दोष, दूष्य, मल और व्याधि यह सम्पूर्ण युवा मनुष्योंके समानही होतेहैं । परन्तु बालकोंके लिये औषधिकी मात्रा अत्यन्त अल्प होतीहै ॥ २६७ ॥

निवृत्तिर्वमनादीनामृदुत्वंपरतन्त्रता । वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यवीक्ष्य

वालेपुशास्त्रवित् । भेपजञ्चाल्पमात्रन्तुयथाव्याधिप्रयोजयेत् २६८ ॥

सधुराणिकपायाणिक्षीरवन्तिमृदूनिच । प्रयोजयेद्भिषग्वालेमति-

सानप्रमादतः ॥ २६९ ॥

बुद्धिमान् वैद्य बालकोंको वमन, विरेचनादि न करावे । क्योंकि बालक एक तो स्वभावसेही कोमल होतेहैं दूसरे पराधीन होतेहैं और बोलचालकर अथवा अन्य चेष्टासे भी अपने कष्टको समझानेमें असमर्थ होतेहैं इसलिये बालकोंको उनकी व्याधि आदि विचारकर अल्पमात्रसे औषधि देनी चाहिये और मीठे कषाय अथवा दूधके साथ मिलाकर आसानीसे पीजानेवाली औषधि अथवा मीठी औषधि वा मीठेमें मिलाकर उनके रोगानुसार अप्रमत्त अर्थात् सावधान होकर देनाचाहिये ॥ २६८ ॥ २६९ ॥

अत्यर्थस्निग्धरूक्षोष्णमम्लंकटुविपाकिच ।

गुरुचौपधपानान्नमेतद्वालेपुगर्हितम् ॥ २७० ॥

अत्यन्त चिकनी, अत्यन्त रूक्ष, अति गर्म तथा खट्टी, कटुपाकी और भारी औषधि तथा अन्नपान बालकोंको देना अहितकारक होताहै ॥ २७० ॥

समासात्सर्वरोगाणामेतद्वालेपुभेपजम् ।

निर्दिष्टंशास्त्रविद्वैद्यःप्रविविच्यप्रयोजयेत् ॥ २७१ ॥

संक्षेपसे वालकोके संपूर्ण रोगोंकी चिकित्साका वर्णन करदियाहै । शास्त्रको जाननेवाला वैद्य बुद्धिपूर्वक वालरोगोंकी मीमांसा कर तदनुसार औषधि प्रयोग करे ॥ २७१ ॥

सलिङ्गव्यापदोयोनेःसनिदानचिकित्सिताः ।

उक्ताविस्तरशःसम्यङ्मुनिनातत्त्वदर्शना ॥ २७२ ॥

इस प्रकार संपूर्ण योनिरोगोंका निदान और चिकित्सा विस्तारपूर्वक तत्त्वदर्शी महात्मा आत्रेयजीने वर्णन कियाहै ॥ २७२ ॥

स्थानका उपसंहार ।

इतिसर्वविकाराणामुक्तमेतच्चिकित्सितम् । स्थानमेतद्धितन्त्रस्य
रहस्यंसारमुत्तमम् ॥ २७३ ॥ अस्मिन्सप्तदशाध्यायाःकल्पासि-
द्धयएवच । नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्यतन्त्रेचरकसंस्कृते ॥ २७४ ॥
तानेतान्कापिलवलःशेषान्दृढवलोऽकरोत् । तन्त्रस्यास्यमहार्थ-
स्यपूर्णार्थयथातथम् ॥ २७५ ॥

अब इस चिकित्सास्थानका उपसंहार करतेहैं कि, इसप्रकार संपूर्ण रोगोंकी चिकित्साको भलेप्रकार इस स्थानमे वर्णन करदिया है । इस आयुर्वेदीय संहिताका रहस्य और उत्तम सार यह चिकित्सास्थानही है । इस चरकतंत्रमे चिकित्सास्थानके अंतिम १७ अध्याय तथा कल्प और सिद्धिस्थान अग्निवेशके संग्रह कियेहुए नहीं मिलते । परन्तु अग्निवेशके मूलतंत्रमें इनका संग्रह है फिर चिकित्साके १७ अध्यायोंको कापिल चलने इस चरकतंत्रमें जोड़दिया और सिद्धि तथा कल्पस्थानके चारह चारह अध्यायोंको दृढवलने इस ग्रंथको पूर्ण करनेके लिये यथा तथा संग्रह कर इस चरकतंत्रमें मिलादियाहै ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ २७५ ॥

उक्तानुत्तरोगोंमें चिकित्साका निर्देश ।

रोगायेऽप्यत्रनोद्दिष्टावहुत्वान्नामरूपतः ।

तेषामप्येतदेवस्याहोपादीन्वीक्ष्यभेषजम् ॥ २७६ ॥

इस चिकित्सास्थानमें जिन रोगोंका नामरूपसे विशेष वर्णन नहीं कियागया उन संपूर्ण रोगोंको वैद्यजन वात, पित्त और कफके लक्षणोंद्वारा उन रोगोंकी कल्पना कर उनके अनुसार औषधि कल्पना करे ॥ २७६ ॥

दोषदूष्यनिदानानांविपरीतंहितंभ्रुवम् ।

उक्तानुक्तान्गदान्सर्वान्सम्यग्गुक्तंनिश्च्यति ॥ २७७ ॥

इस स्थानमें कहेहुए अथवा विना कहे संपूर्ण रोगोंमें दोष, दृश्य और रोगोत्पादक कारणोंसे विपरीत चिकित्सा करना चाहिये । ऐसा करनेसेही सम्पूर्ण रोगोंकी शांति होतीहै ॥ २७७ ॥

देशकालप्रमाणानांसात्म्यासात्म्यस्यचैवहि ।

सम्यग्योगोऽन्यथान्येषांपथ्यमप्यन्यथाभवेत् ॥ २७८ ॥

देश, काल, प्रमाण, सात्म्य और असात्म्यका विचार करके जो हितकारक अन्नपानका प्रयोग कियाजाताहै उसको पथ्य कहतेहैं । इससे विपरीत अन्नपानका सेवन कुपथ्य होताहै ॥ २७८ ॥

आस्यादामाशयस्थांन्हिरोगान्नस्तःशिरोगतान् ।

गुदात्पकाशयस्थांश्चहन्त्याशुतरमौषधम् ॥ २७९ ॥

जो रोग मुखसे लेकर आमाशय पर्यन्त और नाकसे लेकर मस्तकपर्यन्त, तथा गुदासे लेकर पक्वाशयपर्यन्त आश्रित होतेहैं उन संपूर्ण रोगोंमें आभ्यन्तर औषधियोंका प्रयोग करनेसे वह रोग शीघ्र शान्त होजातेहैं ॥ २७९ ॥

शरीरावयवोत्थेषुवीसर्पपिडकादिषु ।

यथादेशंप्रदेहादिशमनंस्याद्विशेषतः ॥ २८० ॥

शरीरके बाहरी भागमें होनेवाले संपूर्ण विसर्प पिडिका आदि रोगोंमें स्थानादि विचारकर प्रायः लेपोंद्वारा चिकित्सा करनेसे वह रोग शान्त होतेहैं ॥ २८० ॥

अनेकविध चिकित्सासंबंधी विचार ।

दिनातुरौपधव्याधिजीर्णलिङ्गत्ववेक्षणम् । कालंविद्यादिनापेक्षः

पूर्णाह्वेमनंतथा ॥ २८१ ॥ रोग्यवेक्ष्ययथाप्रातर्निर्न्नोबलवान्पि-

वेत् । भेषजंलघुपथ्यान्नैर्युक्तमद्यात्तुदुर्वलः ॥ २८२ ॥

दिन, रोगी, औषध, व्याधि, जीर्ण, लक्षण, ऋतु और काल विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये । इनमें दिनविचार उसको कहतेहैं जैसे वमनकारक औषध दिनके पूर्वभागमें पीना चाहिये । रोगविचार उसको कहतेहैं जैसे रोगकी अवस्था देखकर बलवान् रोगीको प्रातःकाल खालीपेट औषध सेवन कराना चाहिये और हल्का तथा पथ्य भोजनके साथ दुर्वल रोगीको औषध सेवन कराना चाहिये यह रोगी विचार है ॥ २८१ ॥ २८२ ॥

भैषज्यकालोभक्तादौमध्येषश्चान्मुहुर्मुहुः ।

सामुद्रंभक्तसंयुक्तंघ्रासघ्रासान्तरेद्दश ॥ २८३ ॥

अव औषधविचारको कहते हैं जैसे औषधसेवनके दश काल हैं १' भोजनके प्रथम । २ भोजनके मध्यमें । ३ भोजनके अन्तमें । ४ वारंवार । ५ यूपमें मिलाकर । ६ भातमें मिलाकर । ७ ग्रासमें मिलाकर । ८ ग्रास ग्रासके अनन्तर । ९ प्रातःकाल । १० सायंकाल यह औषधके दश काल हैं ॥ २८३ ॥

अपानेविगुणेपूर्वसमानेमध्यभोजनम् । व्यानेतुप्रातरशितमुदाने भोजनोत्तरम् ॥ २८४ ॥ वायौप्राणेप्रदुष्टेतुग्रासेग्रासान्तरिष्यते । श्वासकासपिपासासुत्ववचार्यमुहुर्मुहुः ॥ २८५ ॥ सामुद्गंहिकि-
नेदेयंलघुनाग्नेनसंयुतम् । सम्भोज्यन्त्वौषधंभोज्यैर्विचित्रैररुचौ हितम् ॥ २८६ ॥

अपानवायु विगुण हो तो भोजनके प्रथम औषधका सेवन करना चाहिये । समान वायु दूषित हो तो भोजनके मध्यमें औषध सेवन करना चाहिये । व्यानवायु दूषित हो तो प्रातःकाल औषध सेवन करना चाहिये । उदानवायु दूषित हो तो भोजनके अन्तमें और प्राणवायु दूषित हो तो ग्रास ग्रासके अन्तमें अथवा ग्रासमें मिलाकर औषध सेवन करना हितकारक है। स्वास खांसी और प्यासमें बारवार औषध सेवन कराना हितकारक है । हिचकी रोगमें हल्के अन्नके साथ मूंगके यूपमें मिली औषधका सेवन करना चाहिये अरुचिमें भोजनके साथ मिलाकर औषध सेवन करना चाहिये ॥ २८४-२८६ ॥

ज्वरेपेयाःकपायाश्चक्षीरसर्पिर्विरेचनम् ।

पडहेपडहेदेयंकालवीक्ष्यामयस्यतु ॥ २८७ ॥

अव व्याधिविचारको कहते हैं जैसे ज्वरमें छःठः दिनके बाद समयका विचार कर पेया, कपाय, दूध और घृतका प्रयोग किया जाता है अर्थात् प्रथम छेदिन, लघन करनेके अनन्तर पटोल आदि यूप पेयाका सेवन करावे फिर क्वाथ ज्वरके जीर्ण होनेपर दूध इस प्रकार समयको देखकर व्याधिकालानुसार औषधका सेवन करना कहा जाता है ॥ २८७ ॥

क्षुद्रेगमोक्षौलघुताविशुद्धिर्जीर्णलक्षणम् ।

तदाभेपजमादेयंस्याद्धिदोषवदन्यथा ॥ २८८ ॥

अत्यंत क्षुधाका बढना मलमूत्रादि वेगोंका स्वच्छ रीतिसे त्याग होना शरीरमें हल्कापन, शुद्ध उकार आना अथवा जिह्वा आदि लक्षणोंका शुद्ध होना यह जीर्णके लक्षण हैं । जीर्ण कालमें औषधका सेवन कराना चाहिये अन्यथा दोषकारक होता है । यह जीर्ण लक्षणका विचार कहा गया ॥ २८८ ॥

चयादयश्चदोषाणां वर्ज्यसेव्यश्चयत्रयत् ।

ऋतावपेक्ष्यं यत्कर्मपूर्वसर्वसुदाहृतम् ॥ २८९ ॥

अब ऋतुविचारको कहते हैं । जैसे वर्षादिकालमें दोषोंका संचय, अपचय आदि होना जैसे कि सूत्रस्थानमें कह आये हैं । तथा जिस ऋतुमें जो पदार्थ वर्जनीय है जैसे वसन्त ऋतुमें कफकारक पदार्थोंका सेवन नहीं करना इत्यादि तस्याशितिय अध्यायमें पहिले वर्णन कर आये हैं ऐसा विचारकर औषध अन्न विहारका सेवन करना ऋतु विचार कहाजाता है ॥ २८९ ॥

उपक्रमाणांकरणंप्रतिपेधेचकारणम् । व्याख्यातमवलानांसविकल्पानामवेक्षणे ॥ २९० ॥ सुहृर्मुहुश्चरोगाणामवस्थाआतुरस्यच ।

अवेक्षमाणस्तुभिपक्चिकित्सायांनमुह्यति ॥ २९१ ॥ इत्येवंपड्विधंकालमनपेक्ष्याभिपग्जितम् । प्रयुक्तमहितायस्याच्छस्यस्याकालवर्षवत् ॥ २९२ ॥

ऐसे समय चिकित्सा करना चाहिये । ऐसे कालमें चिकित्सा करनेसे यह हानि होती है । दुर्बल रोगियोंकी अवस्था काल विचारकर चिकित्सा करना चाहिये । इस प्रकार चिकित्सकको चिकित्साकालका विचार करना चाहिये । बारंबार रोगोंकी और अवस्था काल, निचारकर जो वैद्य चिकित्सा करताहै वह चिकित्सामें मोहको प्राप्त नहीं होता इस प्रकार पद्धिकालकी विना अपेक्षा किये जो वैद्य चिकित्सा करताहै वह खेतोंमें विना समय पडीहुई वर्षाके समान हानिकारक होतीहै इसको काल विचार कहते हैं ॥ २९० ॥ २९१ ॥ २९२ ॥

व्याधीनामृत्वहोरात्रवयसांभोजनस्यतु ।

विशेषोभिद्यतेयस्तुकालापेक्षःसउच्यते ॥ २९३ ॥

व्याधियोंमें ऋतु, दिन, रात्रि, अवस्था और भोजनकी उपेक्षा करके जो विशेष समयका भेद दिखानेवाला समयविशेष है उसीको कालविचार कहते हैं ॥ २९३ ॥ वसन्तेश्लेष्मजारोगाःशरत्कालेतुपित्तजाः । वर्षासुवातजाश्चैवप्रायःप्रादुर्भवन्तिहि । निशान्तेदिवसान्तेचवयोन्तेवातजागदाः२९४ प्रातःक्षपादाकफजास्तयोर्मध्येतुपित्तजाः । जीर्णान्तेवातजारोगा जीर्यमाणेतुपित्तजाः । श्लेष्मजाभुक्तमात्रेतुलभन्तेप्रायशोवलम् ॥ २९५ ॥

वसन्तऋतुमें कफजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । शरदऋतुमें प्रायः पित्तजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । वर्षाऋतुमें प्रायः वातजनित रोग उत्पन्न होतेहैं तथा रात्रिके अन्तमें दिनके अन्तमें और अवस्थाके अन्तमें वातजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । प्रातःकाल, रात्रिके प्रथम भागमें और अवस्थाके प्रथम भागमें कफके रोग उत्पन्न होतेहैं दिनके मध्यभागमें रात्रिके मध्यभागमें और अवस्थाके मध्यभागमें प्रायः पित्तजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । इसीप्रकार भोजन जीर्ण होनेके अनन्तर वातजनित रोग भोजन जीर्ण होनेके समय अर्थात् परिपाककालमें पित्तजनित रोग और भोजन करतेही कफजनित रोग प्रायः बलको प्राप्त होते हैं ॥ २९४ ॥ २९५ ॥

नाल्पंहन्त्यौषधंव्याधिं यथापोऽल्पामहानलम् ।

दोषवच्चातिमात्रं स्याच्छस्यस्यात्युदकं यथा ॥ २९६ ॥

सम्प्रधार्यवलंतस्मादामयस्यौषधस्य च ।

नैवातिबहुलात्यल्पभैषज्यमवचारयेत् ॥ २९७ ॥

प्रबल व्याधिमें अल्प औषधि इस प्रकार गुण नहीं करसकती जैसे-प्रचण्ड अग्निमें थोड़ेसे जलका छींटा उसके बुझानेके लिये काम नहीं आसकता और अल्प व्याधिमें अधिक मात्रासे औषधि देना इस प्रकार हानि करताहै जैसे अल्प अंकुरित खेतीमें अत्यंत वेगयुक्त वृष्टि खेतीको समूल नष्ट कर देतीहै । इसलिये रोग, औषध और गौरीका बलाबल विचार न बहुत अल्प, न बहुत अधिक मात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥ २९६ ॥ २९७ ॥

औचित्याद्यस्य यत्सात्म्यं देशस्य पुरुषस्य च ।

अपथ्यमपिनैकान्तात्तत्त्यजल्लभते सुखम् ॥ २९८ ॥

जिस देशमें जो द्रव्य उचित हो अर्थात् जो द्रव्य जिस देशके मनुष्योंको सात्म्य, ही और वह उस देशमें प्रचलित है तथा उन लोगोंको प्रकृतिके अनुसार उपयोगी है वह यदि शास्त्रानुसार कुपथ्य भी प्रतीत हो तो एकाएकी छुड़ादेना हानिकारक होताहै इसलिये यदि वह छुड़ानाही उचित हो तो धीरे २ घटाते २ युक्तिपूर्वक छुड़ानेसे स्वास्थ्य नहीं बिगाडता ॥ २९८ ॥

चाहीकाः पहवाश्चिनाः शूलीकायवनाः शकाः । मांसगोधूममाध्वी-
कशस्त्रवैश्वानरोचिताः ॥ २९९ ॥ क्षीरसात्म्यास्तथाप्राच्यामत्स्य-
सात्म्याश्चसैन्धवाः । अश्मकावन्तिकानान्तुतैलाज्यं सात्म्यमुच्य-
ते ॥ ३०० ॥

वारहीकदेश (बलस बुखारा) पद्मदेश (काबुल आदिदेश) चीन, शूलिक (तिब्बत) यवन, और शक (तुर्कस्थान) देश आदि देशोंमें मांस, गेहूं, माध्वीक, शख और अग्नि यह सब सात्म्य होतेहैं अर्थात् इनके प्रकृतिके अनुकूल होतेहैं । पूरवके रहनेवाले मनुष्योंको दूध पीना सात्म्य है । और सिन्धुनदी आदि दरयावके किनारे रहनेवालोंको मछली सात्म्य है । अश्मकदेश अर्थात् पत्थरवाले देशमें और अवनती देश (मालवा प्रान्त) के मनुष्योंको तेल और घृत सेवन करना सात्म्य है ॥ २९९ ॥ ३०० ॥

कन्दमूलफलसात्म्यंविद्यान्मलयवासिनाम् ।

सात्म्यंदक्षिणतःपेयामन्यश्चोत्तरपश्चिमे ॥ ३०१ ॥

मलयाचल आदि पहाडी मनुष्योंको कन्द, मूल, फल सात्म्य होतेहैं । दक्षिण देशवालोंको पेयाका सेवन करना सात्म्य होताहै । उत्तर और पश्चिमके लोगोंको मन्य सात्म्य होताहै ॥ ३०१ ॥

मध्यदेशेभवेत्सात्म्यंयवगोधूमगोरसाः । तेषांतत्सात्म्ययुक्तानिभै-
पजान्यवचारयेत् ॥ ३०२ ॥ सात्म्यं ह्याशुचलंधत्तेनातिदोषञ्चद्वपि ।
योगैरेवंचिकित्सन्निहदेशाद्यज्ञोऽपराध्यति ॥ ३०३ ॥

मध्य देशके मनुष्योंको यव और गेहूंसे बने पदार्थ, दूध, दही, मखन यह सात्म्य होतेहैं । इस प्रकार इन सब देशके मनुष्योंका सात्म्य आदि विचार पथ्य और औषधका सेवन कराना चाहिये । क्योंकि सात्म्य भोजन, अत्यंत सेवन किया जानेपर भी अधिक दोष नहीं करता और उचित रीतिपर सेवन किया जानेसे शीघ्र बलको देनेवाला होताहै । जो वैद्य-देश, काल, सात्म्य आदि विचार किये विनाही किताबोंमें लिखे योगोंसे चिकित्सा करने लगताहै वह मूर्ख अपराधका भागी होताहै ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥

वयोबलशरीरादिभेदाहिवहवोमताः । तथान्तःसंधिमागार्गाणांदो-
षाणांगूढचारिणाम् ॥ ३०४ ॥ भवेत्कदाचित्कार्य्यापिविरुद्धा-
भिमतक्रिया । अन्तर्गतंगूढपित्तंस्वेदसेकोपनाहनैः ॥ ३०५ ॥
नीयन्तेवहिरुष्णैर्हितथोष्मंशमयन्तितम् । बाह्यैश्चशीतैःसेकाद्यैरु-
ष्मान्तर्यातिपीडितः । सोऽन्तर्गूढकफंहन्तिशीतंशीतैस्तथा-
जयेत् ॥ ३०६ ॥

रोगियोंकी अवस्था, बल और शरीर आदि भेद अनेक प्रकारके होतेहैं तथा उसी प्रकार संधिगत, मार्गगत और गृहसंचारी दोषोंके भी अनेक प्रकारके भेद होतेहैं । इसलिये कभी २ विरुद्ध क्रिया भी हितकारक होजातीहै । जैसे पित्तमें उष्ण क्रियाका करना हानिकारक होताहै । परन्तु फोडे आदिमें गृहरूपसे दाहादि लक्षण-वाले पित्त होते हुए भी स्वेदन, सेक और उपनाह आदि उष्ण क्रिया करनेसे फोडेके अन्दरका छिपाहुआ पित्त बाहर निकलजानेसे दाह आदिकी शान्ति होतीहै । यहांपर पित्तरोगमें उष्णक्रिया भी हितकारक होतीहै यदि ऐसे स्थानमें शीतल लेप और शीतल सेचन आदि पित्तनाशक क्रिया कीजाय तो पित्त फोडेके भीतर रहकर पीडाकी वृद्धिको करताहै । तथा जब व्रणमें राघ आदि लक्षणयुक्त कफ व्रणके भीतर हो तो उसमें घृत आदिका शीतल लेप करना भी कफ को नष्टकर व्रणको सुखा देताहै । यहांपर शीतल क्रिया भी शीतस्वभाव कफको नष्ट करदेतीहै ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥

श्लक्ष्णपिष्टोघनोलेपश्चन्दनस्यापिदाहकृत् ॥ ३०७ ॥ त्वग्गतस्यो-
पमणोरोधाच्छीतकृच्चान्यथागुरोः । छर्दिघ्नामक्षिकाविष्टामक्षिकैव-
तुवामयेत् ॥ ३०८ ॥ द्रव्येषुस्विन्नदग्धेषुचैवतेष्वेवविक्रिया ।
तस्मादौषोपधादीनिपरीक्ष्यदशतत्त्वतः । कुर्याच्चिकित्सितंप्राज्ञो
न योगैरेवकेवलैः ॥ ३०९ ॥

इसीप्रकार चन्दन शीतलस्वभाव होतेहुए भी उसको उत्तम रीतिसे रगडकर बहुत गाढा लेप कर दियाजाय तो वह त्वचाकी गर्माईको भीतरही रोककर दाहके करने-वाला होजाता है और यदि अगरको घिसकर पनलासा लेप किया जाय तो यह गर्म स्वभाववाला होनेपरभी पित्तजनित दाहकी शान्ति करताहै । इसी प्रकार मक्खीके रानेसे छर्दि उत्पन्न होतीहै परन्तु मक्खीकीही विष्टा छर्दिको नष्ट करताहै । इसप्रकार संपूर्ण द्रव्य स्विन्न अथवा दग्ध किये जानेपर उनमें अलग २ विरुद्ध अथवा अन्य प्रकारके गुण उत्पन्न होजाते हैं । इसलिये वैद्य दोष और औषध आदिकोंकी पूर्वोक्त-रीतिसे दश विधि परीक्षणीय विषयका विचारकरके चिकित्साकरे और केरल ग्रंथमें लिखीहुई किसी एक औषधिके गुणोंको देखकर बिना विचारेही उस औषधिका प्रयोग करने न लगजाय ॥ ३०७ ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिःस्वल्पेनायातिहेतुना । क्षीणेमार्गाकृतेदेहेशे-
पःसुक्ष्मइवानलः । तस्मात्तमनुवर्त्नीयात्प्रयोगेणानपायिना ॥३१०॥

रोग निवृत्त होनेपरभी उसका सूक्ष्म अंश रहाहुआ अल्पकारणसे ही वह व्याधिको फिर उत्पन्न करदेताहै । जैसे सूक्ष्म अग्नि शेष रहनेपर थोड़ेसे ईंधनको पाकर भी बलवान् होजातीहै उसीप्रकार रोग निवृत्त होनेपरभी क्षीण शरीरमें अल्प हेतुसे फिर व्याधि उत्पन्न होजाती है । इसलिये रोग निवृत्त होनेपर भी कुछ कालतक रोगनाशक औषधका सेवन कराते रहना चाहिये ॥ ३१० ॥

सिद्धयर्थप्राक्प्रयुक्तस्यसिद्धस्याप्यौषधस्यतु ॥ ३११ ॥ काठिन्या-
दूनभावाद्वादोषोऽन्तःकुपितोमहान् । पथ्यैर्मृद्वल्पतांनीतोमृदुदो-
पकरोभवेत् ॥ ३१२ ॥ पथ्यमप्यश्रतस्तस्माद्योव्याधिरुपजायते ।
ज्ञात्वैवंवृद्धिमभ्यासमथवान्यस्यकारयेत् ॥ ३१३ ॥

किसी मनुष्यके आभ्यन्तर दोष अत्यन्त कुपित हो और उनमें उनकी शान्तिके लिये किसी सिद्ध औषधिका प्रयोग करनेसे वह व्याधि शान्त होजायायदि उस समय औषधकी कठोरतासे अथवा औषधकी अल्पतासे रोगका अनुबंध रहजाय उस समय रोगी हितकारक पथ्यका सेवन करता रहे तो रोगहीन होकर रहताहुआ अधिक विकारको नहीं करता अर्थात् पथ्यसेवन करनेसे धीरे २ शान्त होजाताहै । यदि पथ्य सेवन करतेहुएभी रोगकी वृद्धि होय तो अन्य प्रकारसे पथ्यका अभ्यास करना चाहिये ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥

सातत्यात्स्वाद्वभावाद्वापथ्यद्वेष्यत्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तै-
स्तैःप्रियत्वंगमयेत्पुनः ॥ ३१४ ॥ मनसोऽर्थानुकूल्याद्धितुष्टिरो-
जोरुचिर्वलम् । सुखोपभोगताचस्याद्दद्याधेश्चातोवलक्षयः ॥ ३१५ ॥

यदि निरन्तर एकही प्रकारका पथ्य सेवन करनेसे अथवा पथ्य स्वादु न होनेसे रोगीको पथ्यमें अरुचि होजाय तो उसको अन्य प्रकारसे जिस प्रकार रोगीको वह पथ्य प्रिय प्रतीत होनेलगे उस प्रकार बनाकर सेवन करावे । क्योंकि मनके अनुकूल अर्थात् मनोभिलषित पथ्यके सेवन करनेसेही तुष्टि, ओज, मुखकी रुचि, बल बढतेहैं । तथा सुखपूर्वक औषधका सेवन किया जासकताहै इसलिये व्याधिका बलभी क्षीण होजाताहै ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥

लौल्याहोपक्षयाद्दद्याधैर्वैधर्म्याच्चापियारुचिः ।

तासुपथ्योपचारःस्याद्योगेनाद्यं विकल्पयेत् ॥ ३१६ ॥

जीभकी लोलुपतासे अर्थात् दोषोंके क्षय होनेसे अथवा व्याधिके वैधर्म्यसे जो अरुचि उत्पन्न होतीहै उसमेंभी पहिलेके समान मनोभिलषित पथ्यद्वारा शान्त करे ।

अथवा जिस प्रकारके भोजनोंसे अरुचि उत्पन्न हुई हो उससे अन्य प्रकार अन्नपानकी कल्पना कर पथ्यका सेवन करावे ॥ ३१६ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निदानंलिङ्गमेवच । चिकित्साचापिनिर्दिष्टा
शिष्याणांहितकाम्यया ॥ ३१७ ॥ शुक्रदोषास्तथाचाष्टौनिदाना-
कृतिभेपजैः । क्लैव्यान्युक्तानिचत्वारिचत्वारःप्रदरास्तथा ॥ ३१८ ॥
तेषांनिदानलिङ्गञ्चभैषज्यञ्चैवकीर्तितम् । क्षीरदोषास्तथाचाष्टौहे-
तुलिङ्गभिपगूजितैः ॥ ३१९ ॥ तेषांचिकित्सानिर्दिष्टासमासव्यास-
तोमया । रेतसोरजसश्चैवकीर्तितंशुद्धिलक्षणम् ॥ ३२० ॥ उक्ता-
नुक्तचिकित्साचसम्यग्योगस्तथैवच । देशादिगुणशंसाचकालः
षड्विधएवच ॥ ३२१ ॥ देशेदेशेचयत्सात्म्यंयथावैद्योऽपराध्यति ।
चिकित्साचापिनिर्दिष्टादोषाणांगूढचारिणाम् ॥ ३२२ ॥

अब इस अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस योनिव्याधि चिकित्सितीयाध्या-
यमें बीस प्रकारके योनिरोग, उनके निदान, लक्षण और चिकित्साका वर्णन किया
गयाहै । आठ प्रकारके वीर्यदोष, उनके निदान लक्षण और चिकित्साका वर्णन
कियाहै । चार प्रकारके क्लैब्यरोग तथा चार प्रकारके प्रदर और उनके निदान,
लक्षण तथा चिकित्साका कथन कियाहै । आठ प्रकारके क्षीरदोष उनके हेतु,
लक्षण और चिकित्सा यह सब संक्षेप और विस्तारसे वर्णन कियाहै । वीर्य और
रजकी चिकित्सा उनकी शुद्धिके लक्षण कथन कियेहैं । उक्त रोगोंकी और अनुक्त
रोगोंकी चिकित्साकाक्रम औषध योगोंके प्रयोगका विधान, देश आदिकोके गुण,छः
प्रकारके काल, जिस २ देशमें जो २ द्रव्य सात्म्य है जिस प्रकार चिकित्सा
करनेसे वैद्य अपराधी होताहै । गूढचारी दोषोंकी चिकित्सा यह सब वर्णन
कियाहै ॥ ३१७-३२२ ॥

योहिसम्यङ्नजानातिशास्त्रंशास्त्रार्थमेवच ।

नकुर्यात्सक्रियांचित्रमचक्षुरिवचित्रकृत् ॥ ३२३ ॥

इतिश्रीचर०चिकि०योनिचिकित्सितंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जो वैद्य शास्त्र और शास्त्रके निपयको विधिवत् नहीं जानता वह अन्ये चित्रकारके
समान संपूर्ण चिकित्साक्रियामें हानिकारक होताहै ॥ ३२३ ॥

अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते ।

चिकित्सितमिदंस्थानंपष्टंपारिसमापितम् ॥ १ ॥

इस अग्निवेशके रचेहुए और चरकके प्रतिसंस्कार कियेहुए इस चरक संहिता-
नामक ग्रंथमें चिकित्सास्थाननामक उठा स्थान समाप्त हुआ ॥ १ ॥

दोहा ।

यद्यपि आयुर्वेदको, कियो समयने हास ।

तदपि चिकित्सित चरकमें, है पृगण परकाश ॥ १ ॥

अगणित व्याधिनके विषय, स्थूल सूक्ष्म दरशाय ।

भरे चिकित्सित स्थानमें, विलखो बुद्धि लगाय ॥ २ ॥

यथा भगन्दर शोथमें, ध्वजभंगे उपदेश ।

अल्मपित्त ग्रहणीविषे, कह्यो सूक्ष्म सरवंश ॥ ३ ॥

चरकरचित यह तंत्रको, इहि विधि जाने भेद ।

भिषकु शिरोमणि सिद्ध सो, हरहि जगतको खेद ॥ ४ ॥

नाना रोग विवेकसो, कल्प सकहि सत भाय ।

रामप्रसाद प्रसादनी, जे पढिहैं मनलाय ॥ ५ ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदसंहिताया चिकित्सास्थाने पट्टिपालराज्यान्तर्गतटकसालनिवासी-

रामप्रसादचैद्योपाध्यायविरचितप्रसादनीभाषाटीकाया योनिव्यापचिकित्सितं

नाम त्रिंशोऽध्याय ॥ ३० ॥



इति चिकित्सास्थानं समाप्तम् ॥ ६ ॥

कल्पस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोमदनकल्पं व्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम मदनकल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

अथखलुवमनविरेचनार्थमदनफलादित्रिवृतादीनांवमनविरेचनद्रव्याणांसुखोपभोग्यतमैः सहान्यैर्द्रव्यैर्विविधैस्तद्योगानाञ्चक्रियाविधेःसुखोपायस्यसम्यगुपकल्पनार्थंकल्पस्थानमुपदेक्ष्यामोऽग्निवेश ! ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! अब हम वमन विरेचनके लिये भेनफल और निशोध आदि वमन विरेचन द्रव्योंकी इस प्रकार कल्पना करतेहैं । जिससे वह संपूर्ण द्रव्य सुखोपभोग्य द्रव्योंके साथ मिलापे जाकर सुखपूर्वक वमन विरेचनादि क्रियायें भले प्रकार कर सकें । इस प्रकार कल्पनाके लियेही इस कल्पस्थानका कथन करतेहैं ॥ १ ॥

वमन विरेचनकी निरुक्ति ।

तत्रदोषहरणमूर्द्धभागंवमनसंज्ञकमधोभागंविरेचनसंज्ञकमुभयंबा शरीरमलविरेचनाद्विरेचनशब्दंलभते ॥ २ ॥

उनमें सुखद्राग जो दोष निकाले उसको वमन कहतेहैं और अधोमार्गसे दोषोंका निकालना विरेचन कहाजाताहै । अथवा शरीरके मलको रचन करनेसे उर्द्ध विरेचन और अधोविरेचन इस प्रकार दोनोंको ही विरेचन कहना चाहिये ॥ २ ॥

वामकरेचकद्रव्योंका कर्म ।

तत्रोष्णतीक्ष्णसूक्ष्मव्यवायिविकाशीनिऔषधानिस्ववीर्येणहृदयमुपेत्यधमनीरनुसृत्यसम्यग्युक्त्यास्थूलानुस्रोतोभ्यःकेवलंशरीरगतंदोषसदातमाग्नेयत्वाद्द्विप्यन्दयन्तितैक्ष्ण्यादिच्छिदन्ति ॥ ३ ॥

यह दोनों प्रकारके विरेचन द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी और विकाशी गुणोंवाले होनेसे अपने वीर्यके प्रभावसे हृदयमें प्राप्त हो फिर धमनियोंका वाश्रय लेकर भली प्रकार योगके क्रिये जानेसे मृन्म और सूक्ष्म छोटोंमेंमे आग्नेय स्वभाववाले

होनेके कारण केवल शरीरगत दोषोंको पतले बनाकर चलायमान करदेतेहैं . और तीक्ष्ण स्वभाववाले होनेसे उनको अपने २ स्थानसे छुडा देतेहैं ॥ ३ ॥

सविच्छिन्नःपारिलुवःस्नेहभावितेकायेस्नेहाक्तभाजनस्थमिवक्षौद्रम-
सज्जन्प्रवणभावादामाशयमांगत्यउदानप्रणुन्नोऽग्निवाय्वात्मकत्वा-
दूर्द्धभागप्रभावादौपधस्यउर्द्धमुद्भिद्यते । सलिलपृथिव्यात्मक-
त्वादधोभागप्रभावाच्चऔपधस्यअधःप्रवर्त्तते, उभयतश्चउभयगुण-
त्वादितिलक्षणोद्देशः ॥ ४ ॥

यदि वमन, विरेचनसे प्रथम मनुष्यके शरीरको म्लिग्धकर लिया हो तो वह वमन अथवा विरेचन द्रव्यसे छुडाये हुए दोष शरीरमें इस प्रकार नहीं चिपट सकते जैसे चिकने पात्रमें शहद नहीं चिपटता । वह दोष चलायमान होकर आमाशयमें ढलकर आजातेहैं । फिर विरेचन द्रव्यके अग्निवायुआत्मक होनेसे वह द्रव्य अपने प्रभावसे दोषोंको मुखद्वारा बाहर निकाल देताहै और जलात्मक तथा पृथिव्यात्मक गुणसे वह विरेचक द्रव्य दोषोंको विरेचन द्वारा अधोमार्गसे निकाल देतेहैं । जिन द्रव्योंमें उभयात्मक गुणहैं अर्थात् जो द्रव्य वामक और रेचक दोनों गुणोंवाले हैं वह मलोंको उखाडकर उर्द्धभाग और अधोभाग इन दोनों मार्गोंसे निकाल देतेहैं । इस प्रकार वमन, विरेचन द्रव्योंके लक्षणोंका कथन कियाहै ॥ ४ ॥

वामक और विरेचकद्रव्य ।

तत्रफलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनानां, श्यामात्रिवृच्च-
तुरङ्गुलतिल्वक-महावृक्षसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रवन्तीनाश्च, नाना-
विध-देशकाल-सम्भव-स्वादुरसवीर्यविषाकंप्रभावग्रहणानां, दे-
हदोषप्रकृतिवयोवलाग्निभुक्तिसात्म्यरोगावस्थादीनानानात्मकत्वा-
च्च, विचित्रगन्धवर्णरसस्पर्शानामुपयोगसुखार्थमसंख्येसंयोगाना-
मपिचसतांद्रव्याणां, विकल्पमार्गोपदर्शनार्थपद्द्विरेचनयोगश-
तानिव्याख्यास्यामः ॥ ५ ॥

इनमें मैनफल, जीमूतक (देवदाली लता), इक्ष्वाकु (कडवी तुंबी), धामार्गव (बडी कडवी तोरी), कुडाके बीज और कृतवेधन (छोटी कडवी तोरी) यह छः द्रव्य वमनकारक होतेहैं । काली निशोथ, अमलतास, तिल्वक (लोह अथवा गुलाचीन), महावृक्ष (थोहर), सातला, शंखिनी, दंती और द्रवन्ती ये नौ द्रव्य विरेचनमें

प्रधान हैं । यह दोनों प्रकारके वमन, विरेचन द्रव्य भारतके सब देशोंमें समयपर मिलतेहैं अथवा सब समय मिल सकतेहैं । इनको मीठे रसवाले द्रव्यमें मिला सेवन करनेसे इनके वीर्य, त्रिपाक और प्रभावमें किसी प्रकारका फर्क नहीं पडता । इन द्रव्योंसे असंख्य योग वामक और विरेचक बनतेहैं । क्योंकि मनुष्योंके देह, दोष, प्रकृति, अवस्था, अग्नि, बल, भोजन, सात्म्य, रोग और रोगकी अवस्था आदि भेदसे मनुष्य भी अनेक प्रकारके होतेहैं । तथा इन वमन, विरेचन द्रव्योंकी योग कल्पना, विचित्र गंध, वर्ण, रस और स्पर्श आदिमें सुखपूर्वक प्रयोग कियाजाय इस प्रकारकी असंख्य कल्पनायें होतेहुए भी उनमेंसे निदर्शनके लिये छःमौ प्रकारके योगोंका वर्णन करतेहैं ॥ ५ ॥

तानितुद्रव्याणिदेशकालगुणभाजनसम्पद्दीर्य्यवलाधानात्क्रियास-
मर्थतमानिभवन्ति ॥ ६ ॥

इन द्रव्योंको देश, काल, गुण और आधारकी संपदा अर्थात् उत्तमता होनेसे यह वीर्यबलसम्पन्न होतेहैं । इसलिये क्रिया करनेमें भी उत्तम रीतिसे अर्थात् विशेषरूपसे समर्थ होतेहैं ॥ ६ ॥

जांगलदेशके लक्षण ।

त्रिविधःखलुदशोजाङ्गलोऽनूपःसाधारणश्चेति । तत्रजाङ्गलःपर्या-
काशभूयिष्ठः । तरुभिरपिकदरखदिरासनाश्वकर्णधवतिनिशशल-
कीसालसोमबल्क-वदरीतिन्दुकाश्वथवटामलकविनगहनः, अने-
कशमीककुभर्शिशापाप्रायःस्थिरशुष्कपवनबलाविधूयमानप्रनृत्यत्त-
रुणाविटपः, प्रततमृगतृष्णाकूपोपगूढस्तनुखरपरुपसिकताशर्क-
रावहुलः, लावतिस्तिरिचकोरानुप्रचितभूमिभागोवातपित्तबहुलः ।
स्थिरकाठिनमनुष्यप्रायोजाङ्गलोज्ञेयः ॥ ७ ॥

देश तीन प्रकारके होंतेहैं । जैसे जांगलदेश, आनूपदेश और साधारणदेश । इनमें जांगलदेशके ऊपर सुविस्तृत आकाश रहताहै और उस देशमें खैरके वृक्ष, सफेद खैरके वृक्ष, विजंसार, अश्वकर्ण, धव, तिनिग, शलकी, शाल, सोमबल्कल, बर, तन्दू, पीपल, बड और आमला इन वृक्षोंके घनघोर वन होतेहैं तथा अनेक शमी (जांड) के वृक्ष, कजुम (अर्जुनवृक्ष) और शीशोके वृक्ष अधिक होतेहैं । वृक्षांकी शाखा, स्थिर, सूती, पवनके वेगसे विधूयमान होकर मानो तरुण वृक्ष नाच रहे हैं ऐसा प्रतीत होताहै । और किसी विस्तृत भूमि जलकी समान पृथ्वीकी रेती चमकती

प्रतीत होती है । जगह २ छिपे हुए कूएँ होते हैं तथा थोड़ा, खर्रा, कठोर, अधिक चमकीली, ककरीली रेती होती है । इस भूमिमें लवा, तीतर, चकोर अधिक होते हैं यह आंगल देशके लक्षण हैं । आंगल देश वातपित्त प्रधान होता है । इस देशके रहनेवाले मनुष्य दृढ और कठोर प्रायः होते हैं ॥ ७ ॥

अपनूदेशके लक्षण ।

अथानूपोहिन्तालतमालनारिकेलकदलीवनगहनः, सरित्समुद्रपर्यन्तप्रायःशिशिरपवनबहुलोज्ज्वलवानीरोपशोभिततीराभिःसरिन्द्रिरुपगतभूमिभागः, अक्षितिधरनिकुञ्जोपशोभितोमन्दपवनानुवीजितःक्षितिरुहगहनोऽनेकवनराजीपुष्पितवनगहनोभूमिभागःस्निग्धतरुप्रतानोपगूढहंसचक्रवाकबलाकानन्दीमुखपुण्डरीककादम्बमङ्गभृङ्गराजशतपत्रमत्तकोकिलमुदिततरुणविटपः, सुकुमारपुरुपःपवनकफप्रायोक्षेयः ॥ ८ ॥

अनूपदेशमें हिताल (ताडवृक्ष), तमाल, नारियल और केलाके बहुत सवन वन होते हैं । इस देशके चारों ओर प्रायः नदी, समुद्र होते हैं और शीतल पवन अधिक आता है । तथा वेत और वानीरके वनोंसे सुशोभित नदियोंके किनारे अथवा समुद्रके किनारे वा पृथ्वीके भाग दिखाई देते हैं । इस देशमें पर्वत और पर्वतोंके निकुञ्जोंसे शोभायमान पृथ्वी नहीं होती परन्तु मन्दमन्द पवनसे हिलाये हुए और जीवन प्राप्त वृक्षोंका गहन वन तथा अनेक पुष्प आदिकोंसे सुशोभित वर्गीचोंसे पृथ्वीके भाग शोभायमान होते हैं । इस देशमें चिकने वृक्ष और प्रतानोंमें छिपे हुए हंस, चक्रवा, बगुला, नन्दीमुरार, पुण्डरीक, कादम्ब, मद्गु, भृङ्गराज और शनपत्र आदिकोंसे शोभायमान जलाशय होते हैं तथा मतवाली कोकिलाओंके मनोहर गवर्षोंसे तरुण वृक्ष शोभायमान दिखाई देते हैं । इस देशके मनुष्योंका शरीर कोमल और सुकुमार होता है यह देश वातकफ प्रधान होता है । इस देशको अनूपदेश कहते हैं ॥ ८ ॥

साधारण देश ।

अनयोरेवद्वयोर्देशयोर्वीरुद्रनस्पतिवानस्पत्यशकुनिभृगगणयु-
तस्थिरसुकुमारवर्णसंहननौपपन्नसाधारणगुणयुक्तपुरुषःसाधा-
रणोक्षेयः ॥ ९ ॥

जिन देशमें आंगलदेश और अनूपदेशके मिलेजुले लक्षण हों उसको साधारण देश कहते हैं । इस देशमें वनस्पति, वीरुध और आम्र, वट आदि अनेक प्रकारके वान-

स्पत्य होतेहैं तथा दोनों देशोंमें होनेवाले पक्षी और मृगगण इस देशमें होतेहैं । इस देशके पुरुषोंका शरीर दृढ, सुकुमार, बलयुक्त और हृष्टपुष्टांग होताहै तथा इन मनुष्योंकी प्रकृति साधारण होतीहै इसलिये इस देशको साधारण अथवा धन्वदेश भी कहतेहैं ॥ ९ ॥

औषधिग्रहणयोग्य उत्तम भूमि ।

तत्रदेशेजाङ्गलेसाधारणेवायथाकालंशिशिरातपपवनसलिलसेवि-
तेसमेशुचौप्रदक्षिणेश्मशानचैत्यदेवयजनागारश्वभारामवल्मी-
कोपरविरहितेकुशरोहिपास्तीर्णेस्निग्धकृष्णसुवर्णवर्णमधुरमृत्ति-
केमृदावफालकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्वलवत्तरैर्द्रुमैरौषधयोजाताःप्रशस्य-
न्ते ॥ १० ॥

इनमें जांगल और साधारण देशकी औषधियें गुणमें उत्तम होती हैं इसलिये यथा-
समय इन देशोंमेंसे औषधियोंको ग्रहण करना चाहिये । जिस स्थानमें भूमि समतल,
पवित्र और उत्तम हो तथा उसमें श्मशान, मंदिर, पूज्यवृक्ष, देवमंदिर, यज्ञस्थान,
गढा, बगीचा, सांघकी बम्बी और ऊपरमट्टी यह न हों । जिस स्थानमें कुशा,
रोहिपत्तण धाच्छादित हों और मट्टी चिकनी, काली, सुवर्णके समान अथवा पीले-
रंगकी मीठी और मृदु हो तथा वह पृथ्वी हलसे जोती न जाती हो, कीड़े आदिकोंसे
उपहत न हो, बलवान् वृक्षोंसे दबीहुई न हो उस पृथ्वीमें यथासमय सर्दी, धूप, पवन,
जल आदिका संचार होता हो ऐसी भूमिसे जांगल अथवा साधारण देशमें औष-
धीको ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकारकी भूमिमेंसे ग्रहण की हुई औषधी
श्रेष्ठ होती है ॥ १० ॥

औषधग्रहणप्रकार ।

तत्रयानिकालजातानिउपगतसम्पूर्णप्रमाणरसवीर्यगन्धानिका-
लातपात्रिसलिलपवनजन्तुभिरनुपहतगन्धवर्णरसस्पर्शप्रभावा-
णिप्रत्यग्राणिउदीच्यांदिशिस्थितानितेपांशाखापलाशमचिरप्ररू-
ढवर्षावसन्तयोर्ग्राह्यं ग्रीष्मेमूलानिशिशिरेवाशीर्णप्ररूढपर्णानांशर-
दित्वक्कन्दक्षीराणिहेमन्तेसाराणिपुष्पफलमितिमङ्गलाचारःक-
ल्याणवृत्तःशुचिःशुक्लवासाःसंपूज्यदेवतामश्विनौगोत्राहणांश्चकृ-
त्तोपवासःप्राङ्मुखउदङ्मुखोवाय्क्लीयात् ॥ ११ ॥

ऐसी भूमिमें उत्पन्न हुई औषधी जो अपने ठीक ऋतुमें उत्पन्न हुई हो तथा संपूर्ण रूपसे प्रमाणयुक्त रस वीर्य संपन्न, गंधादियुक्त, काल, धूप, अग्नि, जल, वायु और कीड़े आदिसे जिस औषधका गंध, वर्ण, रस, स्पर्श और प्रभाव विकृत न हुआ हो जो संपूर्ण औषधोंमें श्रेष्ठ, उत्तम अग्रभागयुक्त, सर्वाङ्गसंपन्न और उत्तर दिशामें स्थित हो उस औषधको ग्रहण करना चाहिये । जब मनुष्य औषधी ग्रहण करनेके लिये जाय तो शुद्ध होकर मंगलाचरण कर पवित्र और श्वेतवस्त्रोंको धारण करे, तथा देवता अश्विनीकुमार और ब्राह्मणोंका पूजनकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुखकरके औषधीको ग्रहण करना चाहिये । जिस औषधीके डाली और पत्ते ग्रहण करने हों तो वर्षा और वसन्त ऋतुमें ग्रहण करना चाहिये क्योंकि उस समय शाखा और पत्र सुन्दर सर्वगुण संपन्न होते हैं ग्रीष्म और शीतकालमें औषधियोंके मूल अर्थात् जड़ लेनी चाहिये उस समय पत्रोंके झड़जानेसे जड़में विशेषगुण रहता है । शरद ऋतुमें वृक्षोंके छिलके, कन्द और दूध लेना चाहिये हेमन्त ऋतुमें वृक्षोंका गोंद, फूल और फल ग्रहण करना चाहिये इस प्रकार ग्रहण किये यह सब द्रव्य अपने २ गुणोंसे संपन्न होतेहैं ॥ ११ ॥

औषधरक्षणविधि ।

ग्रहीत्वा चानुरूपगुणवद्भाजनेसंस्थाप्यागारेषु प्रागुदग्द्वारेषुनिवा-
तप्रवातैकदेशेषु नित्यपुष्पोपहारवलिकर्मवत्सु अग्निसलिलोपस्वेद-
धूमरजोमूषिकचतुष्पदामनभिगमनीयानि स्ववच्छन्नानि शिष्ये
चासज्यस्थापयेत् । तत्तानिचयथादोषंप्रयुञ्जीत ॥ १२ ॥

इस प्रकार औषधियोंको लेकर उनके अनुकूल पात्रमें रखकर जिस घरका पूर्व अथवा उत्तरकी ओर दरवाजा हो जिसमें अधिक वायु न आती हो जो स्थान वायुसे रहित भी न हो, ऐसे स्थानमें उस औषधीको टांग देना चाहिये । और नित्य फूल, हार, वलिकर्म आदिसे सुपूजित घरमें उस औषधीको रखना चाहिये । तथा उस औषधको भली प्रकार छोटे २ टुकड़ेकर विधिवत ऐसे स्थानमें रखे जिसमें अग्नि, जल, धूप, धूआं, धूल, मूषक आदि जानवर अथवा चौपाये जानवर न जा सकें ऐसे स्थानमें औषधीको रखना चाहिये । फिर जब आवश्यकता हो तो दोषानुसार इन औषधियोंका प्रयोग करे ॥ १२ ॥

वातरोगोंमें अनुपान ।

सुरासौवीरकतुपोदकमैरेयमेदकधान्याम्बुकलाम्बुदध्यम्बुलादिभि-
र्चति ॥ १३ ॥

वातजनित रोगोंमें औषधी सुरा, सौवीरक, तुषोदक, मेरेय, भेदक, धान्याम्ल, फला-
मूत्र और दहीके जलके साथ प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

पित्तजरोगोंमें अनुपान ।

मृद्धीकामलकमधुकपरूपकफलफाणितक्षीरादिभिश्चपित्ते ॥ १४ ॥

पित्तजनित रोगोंमें मुनक्का, आमले, मुलैठी, फालसा, बसतर, फाणित और दूध
आदिकोंके साथ औषध प्रयोग करना चाहिये ॥ १४ ॥

कफजरोगोंमें अनुपान ।

श्लेष्मणितुमधुमूत्रकपायादिभिर्भावितानिआलोडितानिचइति

उद्देशः ॥ १५ ॥

कफजनित रोगोंमें शहत, गोमूत्र तथा कपाय, तिक्त और कटुरसोंके साथ मिला-
कर सेवन कराना चाहिये ॥ १५ ॥

तंविस्तरेणद्रव्यदेहदोषसात्म्यादीनिप्रविभज्यव्याख्यास्यामः ॥१६॥

इस प्रकार औषध प्रयोगका कथन कर अब इन्हीं द्रव्योंके प्रयोगको द्रव्य, देह,
दोष और सात्म्य आदि भेदोंसे विभागकर विस्तारसे कथन करतेहैं ॥ १६ ॥

वमनद्रव्योंमें भैरफलको श्रेष्ठता और उनके ग्रहणका क्रम ।

वमनद्रव्याणामदनफलानिश्रेष्ठतमानिआचक्षतेअनपायित्वात्ता-

निवसन्तग्रीष्मयोरन्तरेपुष्याश्रयुग्भ्यामृगशिरसावागृह्णीयान्मै-

त्रेसुहृत्तेकरणेच । यानिपकानिहरितानिपाण्डूनिअक्रिमीणिअकृ-

शानिअह्रस्वानिअजग्धानितानिप्रमृज्यकुशपुटेवद्ध्रगोमयेनालि-

प्ययवतुपमापशालिकुलत्थमुद्गपर्णीनामन्यतमेनिदध्यादष्टरात्रमे-

तऊर्द्धमृदुभूतानितानिमध्विष्टगन्धानिउद्धृत्यशोषयेत् । सुशु-

ष्काणांफलानांपिप्पलीरुद्धरेत्तासांघृतदधिमधुपललविमृदितानां

पुनःशुष्काणांतासांनवकलशंसुप्रमृष्टवालुकमरजस्कमाकण्ठपूर-

यित्वास्त्रवच्छत्रंस्वनुगुप्तंशिक्येआसज्यस्थापयेत् ॥ १७ ॥

वमन द्रव्योंमें भैरफल सबसे उत्तम होताहै । क्योंकि यह किसी प्रकारका अवगुण
नहीं करता । भैरफलके फलोंको वसन्तरक्तुके अंतमें और ग्रीष्मके आदिमें ग्रहण
करना चाहिये तथा पुष्प, अश्विनी, मृगशिर, इन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रमें, और
मैत्र मुहूर्तमें-जो फल उत्तम पकेहुए, हरे, पीले, कृमि आदि दोष रहित, पुष्ट, स्थूल-

और किसी जीवके खाए कुतरे हुए न हों उनको प्रातःकाल जाकर तोड़ लें। फिर कुशामें लपेटकर ऊपरसे गोबरका लेप करे एक बड़ा गोलासा बना जवोंकी राशिमें अथवा तुषोंमें वा उडद, शालीचावल, कुलथी और मुद्गपर्णी इनमें किसी एकके ढेरमें अथवा अन्य किसी ऐसेही पदार्थके ढेरमें दवाकर रखे फिर आठ दिनके बाद जब वह मृदु और सुगंधित होजाय निकालकर सुखा लें। जब वह सूख जाय तो उनकी गिरी (बीजों) को निकाल ले इन बीजोंको घी, दही, शहत और तिलक-ल्कमें मिलाकर आच्छीतरह मसल ले फिर उन मैनफलके बीजोंको स्वच्छ करके सुखावे। सूखनेपर बालूसे मांजे हुए स्वच्छ नवीन कलशमें कंठपर्यन्त भरकर भली प्रकार ढककर उत्तम एकांत स्थानमें छीकेपर विधिवत् रखदेवे ॥ १७ ॥

वमनकरानेका क्रम ।

अथच्छर्दनीयमातुरंद्वयहंयहंवास्त्रेहस्वेदोपपन्नश्छर्दयेदिति ॥१८॥

इसके अनन्तर जब किसी रोगीको वमन कराना हो तो पहिले उसको दो तीन स्नेहन और स्वेदन कराके फिर वमन करावे ॥ १८ ॥

९ वामक योग ।

ग्राम्यान्पौदकमांसरसक्षीरदधिमापतिलशाकादिभिःसमुत्केशि-
तश्लेष्माणंव्युपितंजीर्णाहारंपूर्वाह्निकृतवलिहोममंगलप्रायश्चित्तं
निरन्नमनतिलिग्धंयवाग्वाघृतमात्रांचपीतवन्तं,तासांफलपिप्प-
लीनामन्तर्नखेमुष्टियावद्वासाधुमन्येतजर्जरीकृत्ययष्टिमधुकपाये-
णकोविदारकर्बुदारनीपंविदुलविम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्षपु-
ष्पीकपायाणामन्यतमेनवारात्रिमुपितंविमृद्यपूतंमधुसैन्धवयुक्तंसु-
शोभनंकृत्वापूर्णशरावंमन्त्रेणानेनाभिसन्त्रयेत् ॥ १९ ॥

जब रोगीको वमन कराना हो तो उससे पहिले दिन ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंके मांसरस, दूध, दही, उडद, तिल और शाक आदि भरपेट खिलाकर उसके कफको उत्कलेशित करे फिर दूसरे दिन प्रातःकाल प्रथम दिनका जाहार जीर्ण होनेपर वलि, होम, मंगलाचरण और प्रायश्चित्त करा भोजन बिना खिलाये घीयुक्त यवागूको पूर्ण मात्रासे पिलावे। और इस वमनके दिनसे पहिले दिन दो तोला अथवा जितना उचित हो उतना उपरोक्त मैनफलके बीजोंको लेकर वारीक पीसकर चालीस तोला मुलैठीके कायमें अथवा लाल कचनार, सफेद कचनार, नीप, काल-वेतस, बिवाफल, शणपुष्पी, सदापुष्पी और धपामार्ग इनमेंसे किसी एकके आधसेर

कायमें मिलाकर रखदेवे । फिर वमनके दिन धृतयुक्त यवागू पीनेके अनन्तर मैन फलके बीजोंके कल्क और इस कायको उत्तम रीतिसे घोलकर छान लेवे । इसमें शहद और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण गरम करके उम संपूर्ण आधसेर कायको इस नीचे लिखे मंत्रसे अभिमंत्रित करे ॥ १९ ॥

मंत्र ।

ओम्ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः । ऋषयःसौषधि-
ग्रामाभूतसंघाश्चपान्तुते ॥ २० ॥ रसायनमिवर्षीणांदेवानाममृ-
तंयथा । सुधेवोत्तमनागानांभैषज्यमिदमस्तुते ॥ २१ ॥

ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, भूमि, चंद्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि, ऋषि, औष-
धियोंके समूह और भूतोंके समूह तेरी रक्षा करें । जैसे ऋषियोंको रसायन, देवता-
ओंको अमृत, उत्तम नागोंको सुधा गुणकारी होतेहैं उसी प्रकार तुमको यह औषध
गुणकारी हो ॥ २० ॥ २१ ॥

इत्येवमभिमन्व्योदङ्मुखमातुरंपाययेत् । श्लेष्मज्वरगुल्मप्रतिश्या-
यवन्तंविशेषेणपुनरापित्तागमनात्तेनसाधुवमति ॥ २२ ॥

इस प्रकार इस मंत्रसे अभिमंत्रितकर उत्तराभिमुख रोगीको बिठाकर यह संपूर्ण
औषधी पिलादेवे । विशेषकर कफज्वर, गुल्म और प्रतिश्यायमें वमन कराना हितका-
रक होताहै । जब देखे कि वमनमें पित्त निकलने लगे हैं तो वमन उत्तमरूपसे होगया
ऐसा जानना ॥ २२ ॥

हीनवेगमें क्रिया ।

हीनवेगन्तुपिप्लव्यामलकसर्पकल्कलवणोदकैःपुनःपुनः प्रवर्त्तये-
दापित्तदर्शनादित्यंस्तर्वच्छर्दनयोगविधिः ॥ २३ ॥

यादि वमनका वेग मंद होजाय तो उस रोगीको मैनफलके प्रयोगके अनन्तर
आमले और सरसोंका कल्क बना सेंधानमकयुक्तकर गर्मजलके साथ बार २ पिलाने
तो वमनका वेग ठीक प्रवृत्त होजाता है । तब प्रकारके वमनयोगोंमेंही वमनके बन्द
होनेपर यह आमला आदि कल्क गर्मजलके साथ बार २ पिलानेसे वमनका वेग यथो-
चित प्रवृत्त होजाताहै ॥ २३ ॥

वमनमें उष्णद्रव्योंमें मधुदेनेकी आज्ञा ।

सर्वेषुतुमधुसैन्धवंकफविलायनच्छेदार्थंवमनेषुविदध्यात् ।

नचोष्णविरोधोमधुनश्छर्दनयोगयुक्तस्याविषकप्रत्यागमनादो-
पहरणाच्च ॥ २४ ॥

सब प्रकारके वमनयोगोंमें कफको निकालने और छेदन करनेके लिये शहद और
सैंधानमक मिला औषध पिलाना चाहिये । वामक द्रव्योंमें गर्भ पदार्थोंके साथ शहद
मिलाकर पिलानेका निषेध नहीं है क्योंकि वमन द्रव्योंके साथ पियाहुआ शहद
परिपाक होनेसे पहिलेही दोषोंको निकालताहुआ स्वयं भी निकलजाताहै ॥ २४ ॥

८ वामकयोग ।

फलपिप्पलीनांद्वौद्रौभागौकोविदारादिकपायेणत्रिःसप्तकृत्वःभाव-
येत्तेनरसेनतृतीयंभागंपिष्ट्वाहरीतकीभिर्विभीतकैरामलकैर्वातुल्यं
वर्त्तयेत् । तासामेकाद्देवापूर्वोक्तानांकपायाणामन्यतमस्याञ्जलिमा-
त्रेणविमृद्यवलवच्छ्लेषमप्रसेकग्रन्थिज्वरोदरारुचिपुपाययेदितिस-
मानपूर्वेण ॥ २५ ॥

२ पल भैनफलके बीजोंको लेकर कचनार आदि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एक
द्रव्यके कायकी इक्कीस भावना देवे फिर और १ पल भैनफलके बीज लेकर कचनार
आदि किसी द्रव्यके कायके साथ पीसकर उन इक्कीस भावना दियेहुए बीजोंके चूर्णमें
मिलादेवे । फिर इनको पीसकर हरड अथवा बहेडा आमलेके समान
गोलियें बनावे इनमेंसे एक या दो गोली कचनार आदि द्रव्योंमेंसे किसी एकके
२० तोला क्वाथमें घोलकर पीजावे । इससे वमन होकर बलवान् कफका प्रसेक
ग्रंथी ज्वर उदररोग और अरुचि यह सब नष्ट होजाते हैं । इसमें अन्य सब क्रिया
पहिलेके समान जानना ॥ २५ ॥

४ वामकयोग ।

फलपिप्पलीक्षीरंतेनवाक्षीरयवागूमधोभागेरक्तापित्तेहृद्वाहेचतृपि-
तस्यवादघ्नउत्तरकंकफच्छर्दिस्तमकप्रसेकेपुतस्यैवपयसः । शीतस्य
सन्तानिकाञ्जलिंपित्तेप्रकुपितेउरःकण्डहृदयेचतनुकफोपादिग्धेति
समानपूर्वेण ॥ २६ ॥

उपरोक्त भैनफलके बीजोंसे सिद्ध किया दूध पिलाकर अथोगत रक्तापित्तमें वमन
कराना चाहिये । भैनफलके बीजोंसे सिद्ध किये दूधसे बनाईहुई यवागू पिलाकर
हृदयके दाहमें वमन कराना चाहिये और बहुतसे भैनफलके बीजोंको पीसकर
दूधमें पकावे । इस दूधको जमाकर दहीकी मलाई उतारले इस मलाईसे कफजनित

रोगोंमें, तमकश्वासमें और कफके गिरनेमें वमन कराना चाहिये । तथा मैनफलके बीजोंसे सिद्धक्रिये दूधको शीतलकर इसकी २० तोला मलाई खिलाकर कुपितहुए पित्तमें वमन करावे । और वक्षःस्थल, कण्ठ तथा हृदय पतले कफसे लिपेहुए हों तौ भी इस दूधकी मलाई खिलाकरही वमन कराना चाहिये । अन्य संपूर्ण क्रिया पहिलेके समान करना चाहिये ॥ २६ ॥

एक वामकयोग ।

फलपिप्पलीशृतक्षीरान्नवनीतमुत्पन्नंफलादिकल्ककपायसिद्धं कफा-
भिभूताग्निविशुक्कदेहश्चमात्रयापाययेदितिसमानंपूर्वेण ॥ २७ ॥

मैनफलके बीजोंको दूधमें पकाकर उस दूधकी दही जमावे । इस दहीमेंसे मथकर मक्खन निकाले यह मक्खन १ भाग, मैनफल, मुलैठी और कचनार आदि द्रव्योंका कल्क यह सब मक्खनसे चौथा भाग लेवे और इन मैनफल आदि द्रव्योंका क्वाथ चार भाग लेवे । सबको मिलाकर पकावे । घृणमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतको उचित मात्राके साथ मुलैठीके क्वाथमें मिलाकर पिलावे तो वमन होकर कफसे व्याप्तहुई अग्नि शुद्ध होकर सम्पूर्ण देह शुद्ध होजाताहै । और सम्पूर्ण विधि पहिलेके समान ही जाननी ॥ २७ ॥

एक वामकयोग ।

फलपिप्पलीनांफलादिकपायेणत्रिःसप्तकृत्वःपरिभावितेनपुष्परजः-
प्रकाशेनचूर्णेनसरासिवृहत्सरोरुहंसायाह्नेऽवचूर्णयेत् । तद्रात्रिव्यु-
पितंप्रभातेपुनरवचूर्णितमुद्गत्यहरिद्राकृसरक्षीरयवागूनामन्यतमं
सैन्धवगुडफाणितयुक्तमाकण्ठपीतवन्तमाघ्रापयेत्सुकुमारमुक्लिष्ट-
पित्तकफमौषधद्वेषिणामितिसमानंपूर्वेण ॥ २८ ॥

मैनफलके बीज, मुलैठी और कचनार आदि द्रव्योंके क्वाथमें मैनफलके बीजोंके चूर्णकी इफास भावना देवे । फिर बहुत वारीक सूक्ष्म, चूर्ण करे । यह चूर्ण १ बड़े तालाव पुष्करिणी आदिमें जाकर जो उसमें बहुत बडा कमलका फूल हो उस फूल-पर यह चूर्ण लगाकर चला आवे । दूसरे रोज प्रातः काल फिर मैनफलका चूर्ण बुरका-कर उस फूलको युक्तिपूर्वक तोड़ लावे । फिर रोगीको हल्दी, खिचड़ी, दूध, यवागू, संधानमक, गुड, फाणित आदि द्रव्य यहांतक भरपेट पिलावे कि रोगी कण्ठपर्यन्त पूर्ण होजाय । फिर रोगीको वह कमलका फूल सुंघावे । इससे सुकुमारमरुति मनु-ष्यके शरीरमें उरुहेशिन हुई कफ और पित्त निकल जाती है तथा जो रोगी सुकु-

मार स्वभाव होनेसे औषध पीनेमें द्वेष रसते हैं उनको यह सुवानेवाला प्रयाग करा वमन कराना चाहिये । अन्य सम्पूर्ण क्रिया पहिलेके समान करना ॥ २८ ॥

एक वामकयोग ।

फलपिप्पलीनांभल्लातकविधिपरिस्तुतंस्वरसंपक्त्वाफाणितेनातन्तु-
लीभावाल्लेहयेत् ॥ २९ ॥

मैनफलके बीजोंका भिलावेकी विधिके समान स्वरस निकालकर पकावे । जब गाढा होजाय तो फाणितके साथ मिलाकर चाटे तो इससे आमामशयगत दोष वमन-
द्वाग निकलजातेहैं अन्य सब क्रिया पूर्ववत् जानना ॥ २९ ॥

एकवामकयोग ।

तापशुष्कंवाचूर्णीकृतंजीमूतादिकपायेणपित्तैकफस्थानगतपायये-
दितिसमानंपूर्वेण ॥ ३० ॥

मैनफलके बीजोंके स्वरसको धूपमें सुराकर चूर्ण कर लेवे फिर इस चूर्णको जी-
मूत आदि क्वाथके साथ मिलाकर कफस्थानगत पित्तमें वमन करावे । अन्य सब
क्रिया पूर्ववत् करे ॥ ३० ॥

६ वामकयोग ।

फलपिप्पलीचूर्णानिपूर्ववत्कोविदारादीनांपण्णामन्यतमकपायस्तु-
तानिवात्तिक्रियाःकोविदारादिकपायोपसर्जनाःपेयाइतिसमानंपूर्वे-
ण ॥ ३१ ॥

मैनफलके बीजोंके चूर्णको कचनार आदि सब द्रव्योंके स्वरसमें अथवा कचनार
आदि द्रव्योंमेंसे किसी एकके स्वरसमें घोटकर गोलियें बनावे । यह गोली कचनार
आदि किसी द्रव्यके क्वाथमें घोलकर पीने तो वमन होकर आमामशयगत दोष दूर होता
है । अन्य सब क्रिया पहिलेके समान करना ॥ ३१ ॥

२० वामकयोग ।

फलपिप्पलीपुआरग्वधकुटजस्वाटुकण्टकपाठापाटलिशाङ्गैःसू-
र्वासप्तपर्णनक्तमालपिचुमर्द्रपटोलसुपवीगुडूचीसोमवलकदीपि-
कानांपिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेराणांचअन्य-
तमकपायेणसिद्धोलेहइतिसमानंपूर्वेण ॥ ३२ ॥

अमलतास, कुडा, विककत, पाद, सोनापाठा, महाकरंज, मूर्वा, सप्तपर्ण, लताकरंज,

नीम, पटोलकी जड़, सुखवी, गिलोय, सामवलकल, अजवायन, पीपल, पिपलामूल, गजपीपल, चित्रक और सॉठ इन २० द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें मैनफलके बीजोंका अवलेह बनावे । इस अवलेहको शहद आदि मिलाकर चाटे तो आमाशयगत संपूर्ण दोष वमनद्वारा निकलजाते हैं । अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ॥ ३२ ॥

बीस २ मोदक और उत्कारिकावामक योग ।

फलपिप्पलीषुएलाहरेणुकाशतपुष्पाकुस्तुम्बुरुतगरकुष्ठत्वक्चोरक-
मरुचकगुग्गुलु-वालुकश्रीवेष्टकपरिपेलक-मांसीशैलेयकस्थौण्यक-
सरलपारावतपद्यशोकरोहिणीनांविंशतेरन्यतमस्यकपायेणसाधि-
तोत्कारिकाकल्पेनयथामोदकोवामोदककल्पेनयथादोपरोगविभ-
क्तिप्रयोज्याइतिसमानंपूर्वेण ॥ ३३ ॥

इलायची, रेणुका, सौंफ, धनियां, तगर, कूठ, तज, चोरक, महुवा, गुगल, सुगन्ध-
वाला, श्रीवास, नागरमोथा, जटामांसी, शैलेय, धुनेरा, सरलकाष्ठ, हंसपदी, अशोक और
कुटकी इन २० द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें मैनफलके बीजोंका चूर्ण सानकर उत्कारि-
का अथवा मोदक बनावे । यह मोदक, उत्कारिका घृत मितगी आदि मिलाकर विधिवत्
चनाने चाहिये । इनमेंसे उत्कारिका अथवा मोदक दोपानुसार खिलावे । अन्य क्रिया
संपूर्ण पहिलेके समान जाननी ॥ ३३ ॥

एक २ शङ्कुली अपृषयोग ।

फलपिप्पलीस्वरसकपायपरिभावितानितिलशालितण्डुलपिष्टानि
तत्कपायोपसर्जनानिशङ्कुलीकल्पेनवापूपाइतिसमानंपूर्वेण ॥ ३४ ॥

मैनफलके स्वरस और मैनफलके बीजोंके क्वाथमें तिल और शालीचाबलोंकी
भावना देकर बारीक पीस चूर्ण करे । इस चूर्णमें मैनफलका क्वाथ मिला उसन लेवे ।
फिर इसकी शङ्कुली अथवा पृडा बनाकर विधिवत् प्रयोग करे । अन्य सब क्रिया
पहिलेके समान जानना ॥ ३४ ॥

पंद्रह २ अपृषशङ्कुली योग ।

एतेनैवचकल्पेनसुमुखसुरसकुटेरकगण्डरि कालमालकपर्णासक-
क्षत्रकफाणिज्जकशृङ्खेरेरगृजनभूस्तृणककासमर्दभृङ्गराजानामिक्षु-
वालिकेक्षुकाण्डेक्षुणाञ्चान्यतमस्यकपायेणकारयेत् ॥ ३५ ॥

इमी प्रकार मुखस तुलसी, सुग्म तुलसी, कुट्टक तुलसी, गण्डीर तुलसी, काल-

मालक तुलसी, पर्णास तुलसी, फणिज्जक तुलसी, अदरक, गाजर, भृत्तण, कसौंदी, भांगरा, इक्षुवालिका, ईख और कांडेक्षु इन १५ औषध द्रव्योंमेंसे किसी एकके कायमें मैनफलके बीजोंका चूर्ण उसनकर शङ्कुली अथवा पूडा बनावे । अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ॥ ३५ ॥

वमनके १० योग ।

यथावदरषाडवरागलेहमोदकोत्कारिकातर्पणपानकमांसरसयूपम-
द्यानिमदनफलपाचितानितेनोपसंसृज्ययथादोषरोगविभक्तिदद्या-
त्तैःसाधुवमतीति ॥ ३६ ॥

तथा वदर, पांडव, राग, लेह, मोदक, पूडी, तर्पण, पानक, मांसरस, यूप और मद्य इनमेंसे किसी एकको मैनफलके साथ पाककर । अथवा मैनफलका काय मिलाकर वा मैनफलका कल्क मिला दोपानुसार कल्पनाकर पिलावे तो उत्तम वमन होती है ॥ ३६ ॥

मैनफलके प्रयोग ।

मदनःकरहाटश्चराटःपिण्डीतकःफलम् ।

श्वसनश्चेतिपर्य्यायैरुच्यतेतस्यकल्पना ॥ ३७ ॥

मदन, करहाटक, राट, (राडा) पिण्डीतक फल और स्वसन यह सब मैनफलके पर्याय वाचक शब्द हैं ॥ ३७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकाः ।

नवयोगाःकपायेषुवर्तिष्वष्टौपयोमुखे । पञ्चफाणितचूर्णैर्द्वौत्रेयेव-
र्तिक्रियासुपट् ॥ ३८ ॥ विंशतिर्विंशतिलेहमोदकोत्कारिकासुचा
शङ्कुलीपूपयोश्चोक्तायोगाःषोडशषोडश ॥ ३९ ॥ दशान्येषाडवा-
येषुत्रयस्त्रिंशदिदंशतम् । योगानांविधिवद्दृष्टंफलंकल्पेमहर्षिणा४०॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थाने मदनकल्पोनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि मदनकल्पनामक अध्यायमें ९ प्रकारके पचास योग, आठ प्रकारके वृत्त (गोली) योग, पांच प्रकारके दूध, मक्खन आदि योग, एक प्रकारका फाणित, १ प्रकारका चूर्ण, १ प्रकारकी सुंघनी, छः प्रकारकी वृत्त, २० प्रकारके अवलेह २० प्रकारके मोदक २० प्रकारकी उत्कारिका

(सुहाली), २० प्रकारकी शङ्कुली (पृडी), अन्य १६ प्रकारकी शङ्कुली १६ प्रकारके पृडे, दश प्रकारके खाण्डव आदि वामकयोग कहे हैं । यह सब मिलाकर १३३ प्रकारके मैनफलके कल्पोंको महर्षि आत्रेयजीने कथन किया है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां कल्पस्थाने रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित प्रसादनी-
भापाटीकायां मदनकल्यो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो जीमूतकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम जीमूतकल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।
जीमूतके नाम ।

कल्पं जीमूतकस्ये मंफलपुष्पाश्रयं शृणु ।

खरागरीचवेणीच तथा स्याद्देवताडकः ॥ १ ॥

अब जीमूतकल्पको श्रवण करो । जीमूतके फल और फूल वमन करनेमें लिये जाते हैं जीमूत-खरागरी, वेणी देवताडक (घोशलता, देवदाली), यह जीमूतके पर्याय वाचक शब्द हैं ॥ १ ॥

५ योग ।

जीमूतकं त्रिदोषघ्नं यथास्वोपधकल्पितम् । प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासहि-
क्काकोष्ठामयेषु च ॥ २ ॥ यथोक्तगुणयुक्तानां देशजानां यथाविधि ।

पयःपुष्पे पुनिर्वृत्तं फलेपेयाश्रुतां पयः ॥ ३ ॥ लोमनेक्षीरसन्तानं द-
ध्युत्तरमलोमने । श्रुतेपयसि दध्यम्लं जातं हरितपाण्डुके ॥ ४ ॥

जीमूत उचित द्रव्योंके साथ कल्पना किया हुआ त्रिदोषको नष्ट करता है । इसका प्रयोग, ज्वर, श्वास और हिचकी आदि रोगोंमें करना चाहिये । जीमूतको प्रथम कल्पमें कहे अनुसार उत्तम भूमिसे विधिपूर्वक लावे । १ इसके फूल, डालकर सिद्ध किया दूध पीवे । २ अथवा फल मिलाकर पकाया हुआ दूध पीवे । ३ दोषोंका अनुलोमन करनेके लिये जीमूतसे सिद्ध किये दूधकी मलाई खावे । ४ और दोषोंके प्रतिलोम होनेपर जीमूतसे सिद्ध किया दूध पीकर ऊपरसे दही पीवे । ५ पाण्डु और नेत्रोंके दूरे होनेपर जीमूतसे सिद्ध किये दूधका रसटा दही पीवे ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

१ देवशाली, फडगी तोरीकी जाति, किमीके मनने घन्दाउटोडा ।

१ योग ।

जीर्णानाञ्चसुशुष्काणान्यस्तानांभाजनेशुचौ ।

चूर्णस्यपयसाशुक्तिंवातपित्तार्दितःपिवेत् ॥ ५ ॥

जीमूतके फल जब पककर सूखजावें तो उनको उत्तम पवित्र पात्रमें डालकर रखें फिर जब आवश्यकता हो तो इन फलोंका चूर्णकर दो तोला चूर्ण लेकर अथवा जितनी मात्रा समयानुकूल उचित हो वातपित्त रोगसे पीडित रोगीको दूधके साथ मिलाकर पिलावे ॥ ५ ॥

१ सुरामण्ड योग ।

आसुत्यचसुरामण्डेमृदित्वाप्रसृतंपिवेत् ।

कफजेऽरोचकेकासेपाण्डुरोगेसयक्ष्मणि ॥ ६ ॥

जीमूतके फलको सुरामण्डमें भिगोकर रखें फिर १५ दिनके बाद इस फलको सुरामें खुब मसलकर सुराको छान लेंवे । इसको पीकर वमन करानेसे कफकी अरुचि, खांसी, पाण्डुरोग और यक्ष्माकी शान्ति होतीहै ॥ ६ ॥

१२ योग ।

द्वैवापोथ्याथवात्रीणिगुडूच्यामलकस्यवा । कोविदारादिकानांवा-

निम्बस्यकुटजस्यवा । कपायेष्वासुतंपूत्वातेनैवविधिनापिवेत् ॥ ७ ॥

जीमूतके दो अथवा तीन फलोंको कूटकर कोविदार आदि ८ द्रव्य, नीम, इन्द्रयव, गिलोय और आमले इन १२ द्रव्यमेंसे किसी एकके क्वाथमें भिगोकर बन्द करके रख देंवे । जब आसवके समान उनका रस, क्वाथमें आजाय तो मसलकर छान लेंवे । इसको पीकर वमन करे । और मदनकल्पवाली विधिका अनुसरण करे ॥ ७ ॥

७ योग ।

अथचारग्वधादीनांसप्तानांपूर्ववत्पिवेत् ।

एकैकशःकपायेणपित्तश्लेष्मज्वरार्दितः ॥ ८ ॥

अमलतास, कुडा, विकंकत, सोनापाठा, पाटला, महाकरञ्ज और मूर्वा इन सात द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें जीमूतके फलोंको कूटकर भिगोवे । आसवके समान रसमीर उठनेपर मसलकर छान लेंवे । पित्त और कफ ज्वरसे पीडित रोगीको पिलाकर वमन करावें । सब विधि पहिलेके समान जानना ॥ ८ ॥

१ आटकचनार, सफेदकचनार, नीप, फाल्गुनेस, बंदूरी, शगुपुष्पी, सदापुष्पी और अपागार्गी ।

८ योग ।

वर्त्तयःफलवत्योऽष्टौकोलमात्रास्तुतामताः । जीमूतकस्यवाकल्कं
चूर्णवाशिशिराम्बुना । ज्वरेपित्तभवेवातदुष्टेऽश्लेष्मणिचानुगे ॥ ९ ॥

मैनफलके समानही कचनार आदिं द्रव्योंके क्वाथसे जीमूतके फलोंकी आठ प्रकार
वर्त्ती (वत्ती या वटिका) कल्पना करे और कोविदार आदि द्रव्योंके क्वाथमें
घोलकर पीवे अथवा जीमूतके कल्क वा चूर्णको शीतलजलके साथ पीकर पित्तप्रधान
वातमध्य, कफानुग ज्वरमें वमन करावे ॥ ९ ॥

४ योग ।

जीवकर्षभकेक्षूणांशतावर्य्यारसेनवा ।

पित्तश्लेष्मज्वरेदद्याद्वातपित्तज्वरेऽथवा ॥ १० ॥

जीवक, ऋषभक, ईख अथवा सतावरके रसके साथ जीमूतका कल्क पिलाकर
पित्तकफज्वरमें अथवा वातपित्तज्वरमें वमन करावे ॥ १० ॥

तथाजीमूतकक्षीरात्समुत्पन्नंपचेद्धृतम् ।

फलादीनांकपायेणश्रेष्ठतद्वमनंमतम् ॥ ११ ॥

जीमूतके साथ सिद्ध कियेहुए दूधमेंसे घृत निकालकर इस घृतमें चौडुना. मदन-
फलादि द्रव्योंका क्वाथ मिलाकर घृत सिद्ध करे । अथवा इस घृतको मदन फल आदि
दश द्रव्योंके क्वाथमें मिलाकर पीवे तो उत्तम वमन होताहै ॥ ११ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

पदक्षीरेमदिरामण्डेणकोद्वादशचापरे । सप्तचारग्वधादीनांकपायेऽ-
ष्टौचवर्त्तिपु ॥ १२ ॥ जीवकादिपुचत्वारोघृतत्रैकंप्रकीर्त्तितम् ।

कल्पेजीमूतकानाश्चयोगास्त्रिशन्नवाधिकाः ॥ १३ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थानेजीमूतकल्पनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस जीमूतकल्पनामक अध्यायमें दूध
आदि ६ योग, सुरामण्डका १ योग, संधानके १२ योग, अमलतास आदि ७ योग,
वत्तीके ८ योग, जीवकादि ४ योग और घृतका १ योग । सब मिलाकर ३९ योगोंका
वर्णन कियाहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

इति श्रीच० कल्पस्थाने प्र० भाषाटीकाया जीमूतकल्पनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथात इक्ष्वाकुकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम इक्ष्वाकु कल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

इक्ष्वाकुकल्पः ।

सिद्धं वक्ष्याम्यथेक्ष्वाकुकल्पं येवांप्रशस्यते ।

पञ्चचत्वारिंशदुक्तायोगाअस्मिन्महर्षिणा ॥ १ ॥

इक्ष्वाकु कल्प सिद्ध फलके देनेवाला है जिसके लिये इसका प्रयोग करना श्रेष्ठ है उसको वर्णन करते हैं । इसमें इक्ष्वाकु (कडवी तुंबी) के ४५ योग महर्षि आत्रेयजीने वर्णन कियेहैं ॥ १ ॥

कडवे तुम्बेके नाम और गुण ।

लम्बाथकटुकालाबुस्तुम्बीपिण्डफला तथा । इक्ष्वाकुफलिनीचैव-
प्रोच्यतेतस्यकल्पना ॥ २ ॥ कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्त्तकफक-
र्शिते । प्रताम्यतिनरेचैववमनार्थतदिष्यते ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकु लम्बा, कटुक अलाबु, कडवी तुंबी, पिण्डफला, फलिनी यह इक्ष्वाकुके पर्यायवाचक शब्द हैं । खांसी, श्वास, विष, वमन, ज्वर, कफ और पित्तजनित बेहो-
शीमें इक्ष्वाकु द्वारा वमन कराना श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ ३ ॥

दूध आदि ८ योग ।

अपुष्पस्यप्रवालानांमुष्टिंप्रादेशसंमिताम् ।

क्षीरप्रस्थेशृतंदद्यात्पित्तोद्विक्तेकफज्वरे ॥ ४ ॥

पुष्परहित कडवे तुंबेकी उत्तम बेल १ बालिस्त, नई कोंपल शाखा १ पल इनको कूटकर १ सेर दूध और १ सेर पानीमें मिलाकर पकावे । जब दूर्धमात्र शेष रहजाय तो उतारकर छान लेवे । इसके पीनेसे वमन होकर पित्तोत्थण पित्तकफज्वर नष्ट होताहै ॥ ४ ॥

पुष्पादिपुचचत्वारःक्षीरेजीमूतकेयथा ।

योगाहरितपाण्डूनांसुरामण्डेनपञ्चमः ॥ ५ ॥

जैसे फूल आदिकोंके साथ सिद्ध कियेहुए चार प्रकारके योग जीमूतके कंठहैं उसी प्रकार कडवे तुंबेके भी चार प्रकारके योग कल्पना किये जाते हैं । यह चारयोग

हरित पांडुरोगमें प्रयोग करने चाहिये । और जिस प्रकार सुरामण्डमें जीमूतफलका संधानकर प्रयोग किया जाताहै । ऐसेही कडवीतुंबीके फलको भिगोकर सुरामण्डका प्रयोग किया जाताहै ॥ ५ ॥

फलस्वरसभागश्चत्रिगुणक्षीरसाधितम् ।

उरःस्थितेकफेदद्यात्स्वरभेदेसपीनसे ॥ ६ ॥

कडवीतुंबीका स्वरस १ भाग, दूध ३ भाग, मिलाकर पकावे । दूधमात्र शेष रहने पर पिलाकर कफजनित छातीके रोग, स्वरभंग और प्रतिश्यायमें वमन करावे ॥ ६ ॥

हृतमध्येफलेजीर्णेस्थितंक्षीरंयदादधि ।

जातंस्यात्कफजेकासेश्वासेवम्याश्चतांपिवेत् ॥ ७ ॥

पकीहुई कडवीतुंबीके बीचमें छेदकर उसमें दूध भरकर जमा देवे । जब दही जमजाय तो उस दहीको मथकर कफकी खांसी, कफजनित श्वास और कफजनित वमनमें पिलाकर वमन करावे ॥ ७ ॥

मस्तुका १ योग तक्र का १ योग ।

मस्तुनावाफलान्मध्यपाण्डुकुष्ठविपार्दितः ।

तेनतक्रंविपकंवासक्षौद्रलवणंपिवेत् ॥ ८ ॥

कडवीतुंबीके गुदेको श्वास, पाण्डुरोग, कुष्ठ और विपरोगमें दहीके जलमें पकाकर पिलावे । अथवा कडवीतुंबीके गुदेको छाछमें पकाकर शहद और संधानमक मिला पिलावे ॥ ८ ॥

वकरीके दूधका १ योग ।

अजाक्षीरेणवीजानिभावयेत्पाययेत्तच्च ।

विपगुल्मोदरग्रन्थिगण्डेषुश्लीपदेषुच ॥ ९ ॥

इक्ष्वाकुके बीजोंके चूर्णको वकरीके दूधकी भावना देकर विपरोग, गुल्मरोग, उदररोग ग्रंथीरोग, गण्डमाला और श्लीपदरोगमें पिला वमन कराना चाहिये ॥ ९ ॥

१ गंधयोग ।

तुम्ब्याःफलरसैःशुष्कैःसपुष्पैरवचूर्णितम् ।

छादयेन्माल्यमाघ्रायगन्धसम्पत्सुखोचितः ॥ १० ॥

कडवीतुंबीके फूलोंका चूर्णकर कडवीतुंबीके फलोंके रसमें भावना देवे । फिर सुप्ताकर बारीक चूर्ण करे इस चूर्णको सुगंधिन फूलमालामें लगा सुरुमार प्रकृति मनुष्योंको सुंघावे तो सुखपूर्वक वमन होजाताहै ॥ १० ॥

गुडादि ४ योग ।

भक्षयेत्फलमध्यवागुडेनपललेनच ।

इक्ष्वाकुफलतैलवासिद्धंवापूर्ववद्धृतम् ॥ ११ ॥

कडवीतुंबीके गूदेको गुड अथवा तिलकल्कके साथ मिलाकर खावे अथवा कडवी तुंबीके कल्कके साथ सिद्ध किया तेल अथवा जीभूतके समान बनायाहुआ कडवी तुंबीका घृत पीवे तो उत्तम रीतिसे बमन होजातीहै ॥ ११ ॥

वर्धमान ३ योग ।

पञ्चाशद्विंशत्युद्धानिफलादीनांयथोत्तरम् ।

पिवेद्विमृद्यबीजानिकपायेष्वासुतंपृथक् ॥ १२ ॥

कडवी तुंबीके दश बीज, मैनफल आदि द्रव्योंके काथके साथ संधानकर पीमके पीवे । फिर क्रमसे दश दश बीज बढ़ाता हुआ ५ दिनमें ५० बीजों तक बढ़ावे । इससे बमन द्वारा शरीरके संपूर्ण दोष दूर होतेहै ॥ १२ ॥

काथक ९ योग । वत्तीके ८ योग ।

यष्ट्याह्मकोविदारायैर्मुष्टिमन्तर्नखंपिवेत् ।

कपायैःकोविदारायैर्मात्राश्चफलवत्स्मृताः ॥ १३ ॥

मुलैठी और कोविदार आदि आठ द्रव्योंके काथमे २ तोला कडवी तुंबीके बीजोंको पीसकर बत्तियें बनावे और दोषानुसार उनका प्रयोग कर बमन करावे । मैनफलमें कहीहुई विधिकेअनुसार इसकी ८ प्रकारकी वर्तियोंकी कल्पना करे ॥ १३ ॥

अत्रलेहके ५ योग ।

विल्वमूलकपायेणतुम्बीबीजाञ्जलिंपिवेत् । पृतस्यास्यत्रयोभागा-
श्चतुर्थःफाणितस्यतु ॥ १४ ॥ सघृतंबीजभागश्चपिष्टमर्द्धाशिकां-

स्तथा । महाजालिनिजीमूतकृतवेधनवत्सकान् ॥ १५ ॥ तंलेहं

साधयेद्द्व्याघट्टयेन्मृदुनाग्निना । यावत्स्यात्तन्तुमत्तोयेपतितश्च
नशीर्यते । तंलिह्यान्मात्रयालेहंमन्थश्चापिपिवेदनु । कल्पणोऽ-

ग्निमन्थादौचतुष्केपृथगुच्यते ॥ १६ ॥

बेलकी जडके काथमें ४पल कडवी तुंबीके बीजोंको पकावे । फिर छानकर यह काथ ३ भाग, फाणित एक भाग, घृत १ भाग, कडवी तुंबीका चूर्ण आधाभाग, देवदालीका चूर्ण आधाभाग, कडवी तोरीका चूर्ण आधाभाग, इन्द्रयव आधाभाग इन सबको

मिलाकर मन्द आंचपर पकावे । जब यह पक्ते २ कडलीमें लगने लगे और तारसा बंधजाय तथा पानीमें डालनेसे पानीमें न घुले तो इसको उतारकर रखे । इसमेंसे उचित मात्रानुसार चाटकर ऊपरसे मंय पीवे । इसमें फाणित शब्दसे कोई टीकाकार त्रिकुटा लेतेहैं । इसी प्रकार अग्निमंय, सोनापाठा, कुंभेर और पाटलाकी जडके ववायके साथ पृथक् २ यह अवलेह बनाया जाताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

मंथसे १ योग ।

सक्तुभिर्वापिवेन्मन्थंतुम्बीस्वरसभावितैः ।

कफजेऽथज्वरेकासेकण्ठरोगेष्वरोचके ॥ १७ ॥

अथवा कडवी तुंबीके रसमें भावना दिये यवके सक्तुआंका मंय पीवे । इससे वमन होकर कफज्वर, श्वास, खांसी, कण्ठरोग और अरुचि यह सब दूर होतेहैं ॥ १७ ॥

मांसरसका १ योग ।

गुल्मेमेहेप्रसेकेचकल्पमांसरसैःपिवेत् ।

नरःसाधुवमत्येवंनचदौर्वल्यमश्नुते ॥ १८ ॥

गुल्मरोगमें, प्रमेहमें और कफके गिरनेमें कडवी तुंबीसे सिद्ध किया मांसरस पीवे । इन योगोंसे उत्तम प्रकार वमन होकर शरीर दुर्बल नहीं होता ॥ १८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकाः ।

पयस्यष्टौसुरामण्डमस्तुतक्रेषुचत्रयः । घ्रेयंसपललंतैलंवर्द्धमाना-

सवेपुपद् ॥ १९ ॥ घृतमेकंकपायेपुनवान्येमधुकादिषु । अष्टौवर्त्ति-

क्रियालेहाःपञ्चमन्थोरसस्तथा ॥ २० ॥ योगाइक्ष्वाकुकल्पेतेच-

त्वारिंशच्चपञ्च । उक्तामहर्षिणासम्यक्प्रजानांहितकाम्यया ॥ २१ ॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थान इक्ष्वाकुकल्पो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इम इक्ष्वाकुकल्पमें दूधके साथ ८ योग, सुरामण्डके साथ १ योग, दहीके जल और तक्रके साथ ३ योग, सूंवेका १ योग, गुड, तिल, कल्क, तेल और वर्द्धमान प्रणालीसे तथा संधानक्रमसे ६ योग, घृतसे १ योग, सुलैठी आदि ववायोंसे ९ योग, षटिका विधानसे ८ योग, अवलेह विधिसे ५ योग, मंयसे १ योग, मांसरसके साथ १ योग इसप्रकार सब मिलाकर प्रजागणके हितके लिये महर्षिने ४५ योगोंको कथन कियाहै ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

इति श्रीचर० आ० सं० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० इक्ष्वाकुकल्पोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो धामार्गवकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

अब हम धामार्गव कल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

धामार्गवके नाम ।

कर्कोटकीकटुफलामहाजालिनिरेवच ।

धामार्गवस्यपर्यार्याराजकोशातकीतथा ॥ १ ॥

धामार्गव, कर्कोटकी, कटुफला, महाजालनी और राजकोशातकी यह कडवी तोरीके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ १ ॥

धामार्गवके गुण ।

गरुगुल्मोदरेकासेवातश्लेष्मामयेस्थिते । कफेचकण्ठवक्रस्थेकफ-
सञ्चयजेपुच । रोगेष्वेपुप्रयोज्याःस्युःस्थिराश्चगुरवश्चये ॥ २ ॥

गरदोष, गुल्म, उदररोग, खांसी, बद्धमूल, वात और कफके रोग, कण्ठ और मुखमें हुए कफके विकार, सब प्रकारके कफके संचय तथा अन्यभी जो भारी और शिरांगत रोग हैं उनमें धामार्गवका वमन करना हितकारक होता है ॥ २ ॥

धामार्गवके ६० योग ।

फलंपुष्पंप्रवालञ्चविधिनातस्यसंहरेत् । प्रवालस्वरसंशुष्कंकृताश्च

गुलिकाःपृथक् । कोविदारादिभिःपेयाःकपाथैर्मधुकस्यच ॥ ३ ॥

धामार्गवके फल, फूल, प्रवाल, आदि विधिपूर्वक उचित समयमें ग्रहणकरके रक्ते । धामार्गवके प्रवालका स्वरस, धूपमें सुखाकर चूर्ण अथवा गोली बना लेवे । अथवा इस स्वरसको अभिपर पकाकर गोली बनावे । इस गोलीको सुलैठीके बवायसे अथवा कोविदार आदि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके बवायमें मिलाकर पीवे तो उत्तम रीतिसे वमन हो ॥ ३ ॥

पुष्पादिपुपयोयोगाश्चत्वारःपञ्चमीसुरा ।

पूर्ववज्जीर्णशुष्काणामतः कल्पःप्रवक्ष्यते ॥ ४ ॥

कडवी तोरीके फूल, फल और पल्लवोंके योगमें दूध आदि सिद्धकर ४ प्रकारकी जीभूतके समान कल्पना करे । तथा इसके फलोंको सुरामण्डमें भिगोकर आसवके समान ५ वीं कल्पना करे । जीभूतके समान इसके सूखे फलोंके अन्य कल्प कथन करते हैं ॥ ४ ॥

मधुकस्यकपायेणबीजंकण्टोद्धृतफलम् ।

सगुडंव्युपितंरात्रिकोविदारादिभिस्तथा ॥ ५ ॥

दद्याद्गुल्मोदरार्त्तेभ्योयेचाप्यन्येकफामयाः ।

दद्यादन्नेनवायुक्तच्छर्दिहृद्रोगशान्तये ॥ ६ ॥

धामार्गवके बीजोंका छिलका दूरकर सुलैठीके क्वाथमें अथवा कचनार आदि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें कूटकर रात्रिको भिगो देवे । प्रातःकाल उसमें गुड मिलाकर कफगुल्म, कफके उदररोग तथा अन्य कफके विकारमें पिलाकर वमन करावे । और हृद्रोगमें तथा छर्दिमें अन्नके साथ मिलाकर देवे । किसी पुस्तकमें अन्नकी जगह अम्ल पाठ है । अर्थात् छर्दि और हृद्रोगमें कांजीमें मिलाकर पिलावे तो वमन होकर दोषकी शांति होतीहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

चूर्णेर्वाप्युत्पलादीनिभावितानिप्रभूतशः ।

रसक्षीरयवाग्वादितृप्तोघ्रात्वावमेत्सुखम् ॥ ७ ॥

धामार्गवके बीजोंका चूर्णकर नीलकमल आदि फूलोंपर पूर्वोक्त क्रमसे बुरकावे । फिर रोगीको मांसरस दूध, यवागू आदि अत्यन्त भरपेट खिलाकर वह चूर्णयुक्त कमल सुंवावे । उसके सुंवनेसे सुकुमार प्रकृति मनुष्योंको सुखपूर्वक वमन होजातीहै ॥ ७ ॥

चूर्णीकृतस्यवर्त्तिवाकृत्वावदरसम्भिताम् ।

विनीयाञ्जलिमात्रेतुपिवेद्दोशकृतोरसे ॥ ८ ॥

कडवी तोरीके बीजोंके चूर्णको चारीक पीसकर बेरके समान गोलियां बनावे । १ गोली २० तोला गौके गोबरके रसमें मिलाकर पीवे तो उत्तम रीतिसे वमन होकर विष विकार आदि दूर होतेहैं ॥ ८ ॥

पृपतर्क्षकुरङ्गाश्वगजोष्ट्राश्वतरस्यच ।

श्वदंप्रखरखद्धानाश्चैवंपयाशकृद्रसे ॥ ९ ॥

इसी प्रकार पृपतमृग, रीछ, हिरण, घोडा, हाथी, ऊंट, खच्चर, बवेरा, गधा और गंडेकी विष्टाके रसमें भी धामार्गवके चूर्णको पीकर वमन किया जाताहै ॥ ९ ॥

जीवकर्पभकौवीरामात्मगुसांशतावरीम् । काकोर्लीश्रावर्णामेदांम-

हामेदां मधूलिकाम् ॥ १० ॥ एकैकशोऽभिसंचूर्ण्यसहधामार्गवेण

तु । शर्करामधुसंयुक्तालेंद्याहृदाहकासिनाम् ॥ ११ ॥

जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, कौंचके बीज, शतावर, काकोली, गोरखमुण्डी, मेदा, महामेदा, और मुलैठी इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एकके चूर्णमें धामार्गवके बीजोंका चूर्ण और खांड तथा शहद मिला अवलेह बनावे । यह अवलेह हृदयकी दाह और खांसीवालेको चटाना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥

सुखोदकानुपानाःस्युःपित्तोष्मसहितेकफे ।

धान्यतुम्बुरुयूपेणकल्कस्तस्यविषापहः ॥ १२ ॥

पित्तकी उष्णतायुक्त कफमें धामार्गवके चूर्णको गर्मजलके साथ पिलावे । और धनियां तथा नेपाली धनियेंके क्वाथ और मूंगके यूपके साथ धामार्गवका कल्क पानेसे वमन होकर विषविकार दूर होताहै ॥ १२ ॥

जात्याः सौमनसायिन्यारजन्याश्चोरकस्यवा । वृश्चिकस्यमहा-
क्षुद्रसहाहैमवतस्यच । विम्ब्याःपुनर्नवायावाकासमर्द्दस्यवापृ-
थक् ॥ १३ ॥ एकंधामार्गवद्वेवाकपायेपरिमृद्यतु । तच्छृतक्षीरजं-
र्पिःसाधितंवाफलादिभिः । घृतंमनोत्रिकारेपुपिवेदमनसुत्तमम् ॥ १४ ॥

मालतीके फूल, हल्दी, वृश्चिक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, वच, कन्दूरी, पुनर्नवा और कसौंदी इनके कायमें एक अथवा दो कडवी तोरीका कल्क मिलाकर दूधको सिद्ध करे । इस दूधका घी निकालकर मदनपलादि कल्कके साथ पानेसे वमन होकर मनो-विकार दूर होतेहैं । यह वमनकारक उत्तम योग है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अध्यायकारुपसंहारः ।

तत्रश्लोकौ ।

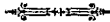
पल्लवेनचचत्वारःक्षीरएकःसुरासवे । कपायैर्विंशतिःकल्कैर्दशद्वौच
शकृद्रसे ॥ १५ ॥ अन्नएकस्तथाघ्रेयेदशलेहास्तथाघृते । कल्पेधा
मार्गवस्योक्ताःपाष्टिर्योगामहर्षिणा ॥ १६ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थाने धामार्गवकल्पोनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस धामार्गव कल्पनामक अध्यायमें धामार्गवके पल्लवोंसे ४ योग दूधसे १ योग, सुरासवसे १ योग, कपाय और कल्कसे २० योग, गोवरआदि रससे दश योग, अन्नसे १ योग, संवनेसे १ योग, अवलेहमे दश योग, और घृतसे दशयोग कल्पना किये हैं । इस प्रकार सब मिलाकर कडवी तोरीके ६० योग महर्षिने कथन कियेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीचर० प्र० भा० टी० कल्पस्थाने धामार्गवकल्पो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।



अथातो वत्सककल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम वत्सककल्पकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे.

अथवत्सकनामानिभेदंस्त्रीपुंसयोस्तथा ।

कल्पञ्चास्यप्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथातथम् ॥ १ ॥

अब वत्सकके नाम, स्त्री पुरुष भेद और वत्सक (कुडा) के कल्पोंको विस्तार-पूर्वक वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

कुटजके नाम ।

-वत्सकःकुटजःशक्रोवृक्षकोगिरिमल्लिका ।

वीजानीन्द्रयवास्तस्यतथोच्यन्तेकलिङ्गकाः ॥ २ ॥

वत्सक, कुटज, शक्र, वृक्षक, गिरिमल्लिका, यह कुडाके नाम हैं । इसके बीजोंको इन्द्रयव और कलिंग कहतेहैं ॥ २ ॥

स्त्रीपुरुषभेद ।

वृहत्फलःश्वेतपुष्पःस्निग्धपत्रःपुमान्भवेत् ।

श्यामाचारुणपुष्पीस्त्रीफलवृन्तैस्तथाणुभिः ॥ ३ ॥

जिस कुटज वृक्षमें बड़ी २ लंबी फलियाँ हों और फूल सफेद हों तथा पत्र चिकने हों उसे पुरुष जातिका कुटज (कुडा) वृक्ष जानना । और जिसमें फूल काले या लाल वर्णके हों, फली और डंडी छोटी हों उसको स्त्री जातिकी कुडा जानना ॥ ३ ॥

कुटजके गुण ।

रक्तपित्तकफघ्नस्तुसुकुमारेष्वनल्ययः ।

हृद्रोगज्वरवातासृग्विसर्पादिपुशस्यते ॥ ४ ॥

कुटज-रक्तपित्त और कफको नष्ट करताहै और यह सुकुमार मनुष्योंको भी किसी प्रकारकी हानि नहीं करता । तथा हृद्रोग, ज्वर, वातरक्त और बिसर्पादि रोगोंमें इसका प्रयोग करना श्रेष्ठ माना है ॥ ४ ॥

कुटजके १८ योग ।

कालेफलानिसंगृह्यतयोःशुष्काणिसंक्षिपेत् । तेषामन्तर्नखंसुष्टिज-

जरीकृत्यतापयेत् । मधुकस्यकपायेणकोविदारादिभिस्तथा ॥ ५ ॥
निशिस्थितंविमृद्यैतलवणक्षौद्रसंयुतम् । पित्ततद्भ्रमनंश्रेष्ठंपित्तश्ले-
ष्मनिवर्हणम् ॥ ६ ॥

उचित समयमें कुडाकी फलियोंको तोड़कर मुसाले । फिर इन फलियोंमेंसे जो इन्द्रजौ निकलें उनको एक मुट्टी लेकर (दोसे पांच तोला तक) कूटकर मुलैठीके अथवा कोविदारादिं आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें पकाकर सायंकाल रख दें प्रातःकाल मसलकर छानले इसमें सेंधानमक और शहद मिला पीकर वमन करे यह वमन पित्तमें कराना श्रेष्ठ है । और कफपित्तको दूर करतीहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

अष्टाहंपयसार्केणतेपांचूर्णानिभावयेत् । जीवकस्यकपायेणततः
पाणितलंपिवेत् ॥ ७ ॥ फलजीमूतकैश्चाकुजीवन्तीनांपृथक्कृतथा ।
सर्पपाणांमधूकानांलवणस्याथवाम्बुना । कृसरेणाथवायुक्तंविद-
ध्याद्भ्रमनंभिषक् ॥ ८ ॥

कुडाके बीजोंके चूर्णको आकके दूधमें आठ दिन तक भावना देवे फिर मुखाकर चूर्ण करले । इस चूर्णको एक कर्प लेकर जीवकके क्वाथके साथ पीवे । अथवा इस आकके दूधसे भावना दियेहुए चूर्णको देवदाली (वंदाल), कडवी दूधी, भैरफल, जीवन्ती इनमेंसे किसी एकके क्वाथके साथ पीवे । अथवा सर्पोंके क्वाथ, वा मधूक (महुआ या मुलैठी) के क्वाथके साथ अथवा नमकयुक्त गर्म जलके साथ पीवे अथवा वैद्य सिचडीमें मिलाकर खवावे तो उत्तम वमन होतीहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

उपसंहार ।

तत्रदलोकः ॥

कपायैर्नवचूर्णैश्चपञ्चोक्ताःसलिलैस्त्रयः ।

एकश्चकृसरयास्याद्योगास्तेऽष्टादशस्मृताः ॥ ९ ॥

इतिश्रीचरकल्पस्थानेवत्सकल्पनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यहां उपसंहारमें कहतेहैं कि इस वत्सक कल्पमें क्वाथोंके योगते ९ नो, चूर्णोंके योगते ५ पांच, जलके योगते ३ तीन और सिचडीके योगते १ एक । इस प्रकार सब मिलाकर १८ योग कुडाके कोईहैं ॥ ९ ॥

इति श्रीच० प्रगीत० सं० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० पुट्टकस्यो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःकृतवेधनकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम कृतवेधन (जंगली कड़वी काली तोरी) के कल्पकी व्याख्या करतेहैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

कृतवेधनके नाम ।

कृतवेधननामानिकल्पश्चास्यनिबोधत ।

क्ष्वेडःकोशातकीचोक्तंमृदङ्गफलमेवच ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! कृतवेधनके नाम और कल्पोंको श्रवण करो । क्ष्वेड, कोशातकी और मृदंगफल यह कृतवेधनके नाम हैं ॥ १ ॥

कृतवेधनके गुण ।

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णंगाढेष्विष्टंगदेपुच ।

कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥ २ ॥

कृतवेधन अत्यन्त कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होताहै । इसका गंभीर रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये तथा कुष्ठ, पांडु, प्लीहा, सूजन, गुल्म और गरदोष आदि विकारोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

६०योगोंकी कल्पना ।

क्षीरादिकुसुमादीनिसुराचैतेपुपूर्ववत् । सुशुष्काणान्तुबीजानासेकं
द्वौवायथावलम् । कपायैर्मधुकादीनांनवभिःफलवत्पिवेत् ॥ ३ ॥

कृतवेधनके फूल, फल, पत्र अथवा डंडीसे पकाये दूधके चार प्रकारके प्रयोगोंमेंसे किसी एक योगके पीनेसे उत्तम वमन होताहै इसका क्रम यह है कि इसके फूलोंको दूध और जड़ मिलाकर पकावे, दूध मात्र शेष रहनेपर छानकर पीवे तो वमन हो यही क्रम फलादिकोंमें भी जानना । कृतवेधनके फूल, फल, पत्र, डंडी सुरामें भिगोकर ८ दिन रखे फिर इस सुराको पीनेसे उत्तम वमन होताहै । कृतवेधनके सूते हुए एक अथवा दो बीज वा जितने बलानुसार उचित समझे उतने बीज पीसकर मैनफलके समान मुलैठीके काथ अथवा कोविंदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके काथके साथ पीकर वमन करे ॥ ३ ॥

काथयित्वाफलंतस्यपूत्रालेहंनिधापयेत् । कृतवेधनकल्कांशंफला-
द्यद्दशसंयुतम् । पृथक्चावधादीनांत्रयोदशभिरासुतम् ॥ ४ ॥

१ यहाँ पर बीज, किसीके मतमें फल है ।

कृतवेधनके फलोंका क्वाथकर उसे छानलेवे फिर उस क्वाथका पाक कर अवलेह बनावे। इस अवलेहको वमन करानेमें प्रयुक्त करे। अथवा कृतवेधनका कल्क १ तोला, मैनफल, मुलैठी और कोविदार आदि आठ द्रव्य इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एकका कल्क ६ माशे इन दोनोंको मिलाकर गर्मपानीमें घोलकर पीवे तो उत्तम वमन हो जाताहै। इसी प्रकार अमलताश आदि १३ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें कृतवेधनके फलोंको कूटकर आसवकी भांति साडकर छान लेवे फिर उसको पीकर वमन करे ॥ ४ ॥

शाल्मलीमूलवृन्तानांपिच्छाभिर्दशाभिस्तथा ।

वर्त्तयःफलवत्पद्सुफलादीनांघृतंतथा ॥ ५ ॥

सेमलकी मुसली और सेमलके फूलोंकी टोपियें और कृतवेधनके बीजोंका कल्क मैनफल मुलैठी और कोविदार आदि ८ द्रव्य इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें मिलाकर पेया बनावे। यह दश प्रकारकी पेया उत्तम वमन करानेवाली हैं। तथा कोविदार आदि ६ द्रव्योंके क्वाथमें कृतवेधनके बीजोंका चूर्ण घोटकर छः प्रकारकी वमनकारक वस्तियें बनाई जाती हैं। और मैनफल आदि १० द्रव्योंका क्वाथ और कृतवेधनके फलोंका कल्क मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत भी उत्तम वमनकारक होताहै ॥ ५ ॥

कोशातकानिपश्चाशत्कोविदाररसैःपचेत् । तं कपायंफलादीनांक-
लकैर्लेहंपुनःपचेत् ॥ ६ ॥ क्ष्वेडस्यतत्रभागःस्याच्छेपाण्यर्द्धाशिका-
कानिच । कपायैःकोविदाराद्यैरेवंपक्त्वापचेत्पृथक् ॥ ७ ॥

कृतवेधनके ५० फलोंको कचनारके क्वाथमें पकावे। फिर इस क्वाथको छानकर मैनफल आदि द्रव्योंका कल्क मिलाकर अवलेह बनावे। इस अवलेहमें मैनफल आदि द्रव्योंका कल्क एक एक कर्प और इसमें कृतवेधनका कल्क दोभाग मिलावे। अवलेह सिद्ध होनेपर वमनके लिये प्रयोग करे। इसी प्रकार कोविदार आदि ८ द्रव्योंसे ही अलग २ अवलेह सिद्ध कियेजाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

कपायेपुफलादीनामानूपंपिशितंपृथक् ।

कोशातकीफलंपक्त्वातद्रसंलवणैःपिवेत् ॥ ८ ॥

मैनफलादिगणके द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें कृतवेधनके फल और उसके समान अग्नपसंचारी जीवोंका मांस मिलाकर पकावे। सिद्ध होनेपर इस रसको छान ले। इस रसमें संधानमक मिला पीवे तो उत्तम वमन होताहै ॥ ८ ॥

१ मैनसुठ आदि गग अपामार्गी तण्डुलीयाध्यायमें सूत्रस्थानमें कहाहै ।

फलादिपिप्पलीतुल्यंतद्रक्ष्वेडरसंपिवेत् ।

क्ष्वेडंकाथेपिवेत्सिद्धंमिश्रमिक्षुरसेनच ॥ ९ ॥

अनूपसंचारी जीवोंका मांस और कृतवेधन दोनोंको समभाग लेकर पकावे । सिद्ध होनेपर रसको छानले । इस रसमें बराबरका मैनफल, मुलैठी, नीम, जीमूत, कृतवेधन अथवा पीपल इनमेंसे किसी एकका काथ मिलाकर पीवे । अथवा इन छः द्रव्योंके काथमें कृतवेधनके फलोंको पकाकर सिद्ध करे । फिर इस क्वाथको छानकर ईखका रस मिला पिलावे तो उत्तम प्रकारसे वमन होजाताहै ॥ ९ ॥

उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

क्षीरेद्वौद्वौसुराचैकाक्वाथाद्वाविंशतिस्तथा । दशपिच्छाघृतश्चैकंप-
द्वचवर्तिक्रियाःशुभाः ॥ १० ॥ लेहेऽष्टौसप्तमांसेचयोगइक्षुरसेऽ-
परः । कृतवेधनकल्पेऽस्मिन्पष्टियोंगाःप्रकीर्त्तिताः ॥ ११ ॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थाने कृतवेधनकल्पो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस कृतवेधन कल्पके उपसंहारमें कहतेहैं कि दूधसे चार योग, क्वाथसे २२ योग, पेयासे दश योग, घृतसे १ योग, वत्तियोंसे उत्तम ६ योग, अवलेहसे ८ योग, मांससे सात योग और ईखके रससे १ योग इस प्रकार सब मिलाकर कडवी तोरीके ६० योग कहेहैं ॥ १० ॥ ११ ॥

॥ इति वमन कल्पः ॥

इति श्रीच० भा० स० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० कृतवेधनकल्पो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः श्यामातिवृत्कल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवा-
नात्रेयः ।

अब हम श्यामा त्रिवृत् कल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

विरेचनेत्रिवृन्मूलंश्रेष्ठमाहुर्मनीपिणः ।

तस्याःसंज्ञागुणाःकर्मभेदकल्पश्चवक्ष्यते ॥ १ ॥

विरेचन अर्थात् जुलाब कग्नेके लिये काली निशोयकी जड़ बुद्धिमानोंने

सबसे उत्तम मानी है । अब उसके नाम, गुण, क्रियाभेद और कल्पोंका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

निशोथके नाम ।

त्रिभण्डीत्रिवृतांचैवश्यामाकूटरुणातथा ।

सर्वानुभूतिःसुवहाशब्दैःपर्यायवाचकैः ॥ २ ॥

त्रिभंडी, त्रिवृता, श्यामा, कूटरुणा, सर्वानुभूति और सुवहा यह निशोथके पर्यायवाचक शब्द हैं अर्थात् निशोथके नाम हैं ॥ २ ॥

निशोथके गुण ।

कपायामधुरारूक्षाविपाकेकट्टकाचसा ।

कफपित्तप्रशमनीरौक्ष्याच्चानिलकोपनी ॥ ३ ॥

निशोथ—कसैली, मीठी, रूक्ष, विपाकमें कट्ट, कफपित्तनाशक और रूक्ष होनेसे वायुका कोप करती है ॥ ३ ॥

सेदानीमौषधैर्युक्तावातपित्तकफापहैः ।

कल्पेवैशिष्यमासाद्यसर्वरोगहराभवेत् ॥ ४ ॥

यह निशोथका—वात, पित्त और कफनाशक द्रव्योंके साथ मिलाकर प्रयोग करनेसे अनेक प्रकारके विशेष गुण होते हैं और यह संपूर्ण रोगोंको हरनेवाली होती है ॥ ४ ॥

निशोथके दो भेद ।

मूलन्तुद्विविधंतस्याःश्यामश्चारुणमेवच । तयोर्मुख्यतरंविद्धिमू-

लंयदरुणप्रभम् । सुकुमारेशिशौवृद्धेमृदुकोष्ठेचतच्छुभम् ॥ ५ ॥

निशोथकी जड़ दो प्रकारकी होती है । १ काली और २ लाली । उनमें जो लालवर्णकी निशोथ है वह अति उत्तम मानी जाती है । सुकुमार मनुष्योंको, बालकोंको, वृद्धोंको और मृदुकोष्ठ मनुष्योंको लाल निशोथका प्रयोग करना ही श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

मोहयेदाशुकारित्वाच्छ्यामाकण्ठक्षिणोत्पि । तैक्षण्यात्कर्षतिह-

त्कण्ठमाशुदोषहरत्यपि । शस्यतेवहुदोषाणांक्रूरकोष्ठाश्वयेनराः ॥ ६ ॥

कालीनिशोथ शीघ्रकारी होनेसे मोह और कण्ठकी क्षीणताको उत्पन्न करती है । अपने तीक्ष्णभावसे हृदय और कण्ठको कर्षण करती है । परन्तु दोषोंको शीघ्र निकाल देती है । बहुत दोषवाले मनुष्योंको और क्रूर कोष्ठवालोंको काली निशोथका प्रयोग करना ही श्रेष्ठ होता है ॥ ६ ॥

निशोथलानेका क्रम ।

गुणवत्यांतयोर्भूमौजातंमूलंसमुद्धरेत् । उपोष्यप्रयतःशुक्लेशुक्ल-
वासाःसमाहितः ॥ ७ ॥ गम्भीरानुगतंश्लक्ष्णंनतिर्यग्निवसृत-
ञ्चयत् । गृहीत्वाविसृजेत्काष्ठंत्वचंशुष्कांनिधापयेत् ॥ ८ ॥

दोनों प्रकारकी निशोथकी जड़ोंको उत्तम गुणवाली भूमिमेंसे शुक्लपक्षमें श्वेत बखोंको धारणकर सूर्याभिमुख हो विधिवत् प्रातःकाल उखाडकर लावे निशोथकी जो जड़ पृथ्वीमें गहरी पहुंची हुई हो तथा कोमल, सीधी और मुडौल हो उसके बीचका काष्ठभाग त्यागकर केवल ऊपरकी मोटी त्वचा ग्रहण करे । फिर उस त्वचाको सुखाकर उत्तम पात्रमें भरकर रखे ॥ ७ ॥ ८ ॥

निशोथकी मात्रा ।

स्निग्धस्विन्नोविरेच्यस्तुपेयामात्राशितःसुखम् ।

अक्षमात्रंतयोःपिण्डंविनीयाम्लेननापिवेत् ॥ ९ ॥

पहिले रोगीको स्नेहन, स्वेदन कर फिर निशोथके एक कर्ष कल्कको कांजीके साथ पिलावे । विरेचन होलेनेके अनन्तर पेयादि क्रमका पालन करे ॥ ९ ॥

निशोथसे अनेकविध विरेचक योग ।

गोऽव्यजामाहियामूत्रसौवीरकतुषोदकैः ।

प्रसन्नयात्रिफलयाश्रुतयाचपृथक्पिवेत् ॥ १० ॥

*१ कर्ष निशोथको गोमूत्र अथवा भैंस बकरी वा भेडके मूत्रमें वा सौवीरक अथवा तुषोदक वा प्रसन्ना अथवा त्रिफलेके क्वाथके साथ पीवे ॥ १० ॥

एकैकसैन्धवादीनांद्वादशानांसनागरम् ।

त्रिवृत्त्रिगुणसंयुक्तंचूर्णमुष्णाम्बुनापिवेत् ॥ ११ ॥

अथवा सैन्धवादि १२ द्रव्योंमेंसे किसी एकके साथ १ भाग सोंठ, ३ भाग निशोथका कल्क मिलकर पीवे और ऊपरसे गर्मजल पीना चाहिये अथवा ऐसा समाहित्ये कि सैन्धवादि १२ द्रव्योंमेंसे कोई एक द्रव्य १ भाग, सोंठयुक्त निशोथका कल्क ३ भाग मिलाकर गर्मजलसे पीवे ॥ ११ ॥

१ कोई सैधानमक तथा सचरक, विड, औद्विद और सामुद्रिक यह पांच नमक, ढाफका क्षार, मूलीका क्षार, सजीखार, जवाखार, तिलोंका क्षार, पुटखडेका क्षार और मुहाजनेका क्षार इन १२ द्रव्योंको सैन्धवादि १२ द्रव्य मानते हैं । कोई सचरनमके बिना सैन्धवादि ४ नमक और ८ प्रकारके मूत्रोंको सैन्धवादि १२ द्रव्य मानते हैं ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंमारिचंगजपिप्पली । सरलःकिलिमंहिंगुभां-
गीतेजोवतीतथा ॥ १२ ॥ मुस्तंहैमवतीपथ्याचित्रकोरजनीवचा ।
स्वर्णक्षीर्यजमोदाचशृङ्गवेरञ्चतैःपृथक् । एकैकाद्द्वीशसंयुक्तंपि-
वेद्गोमूत्रसंयुतम् ॥ १३ ॥

पीपल, पिपलामूल, मिर्च, गजपीपल, सरल, देवदारु, हिंग, भाडंगी, चव्य, नागर-
मोथा सफेद, वच, हरड, चित्रक, हल्दी, वच, चोख, अजमोद और सोंठ इन १८
द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यका आधा भाग और निशोयका कल्क १ भाग इनको मिलां-
कर गोमूत्रके साथ पीवे ॥ १२ ॥ १३ ॥

मधूकाद्द्वीशसंयुक्तंशर्कराम्बुयुतंपिवेत् । जीवकर्षभकौमेदांश्रावणीं
कर्कटाह्वयम् ॥ १४ ॥ मुद्गमापाख्यपण्यौचमहतींश्रावणींतथा ।
काकोलींक्षीरकाकोलींक्षुद्रांछिन्नरुहांतिया ॥ १५ ॥ क्षीरशुक्रापय-
स्याञ्चयपृथाहंविधिनापिवेत् । वातपित्तहितान्येतान्यन्यानि तु क-
फानिले ॥ १६ ॥

मुलैठीका कल्क १ भाग, निशोयका कल्क २ भाग इन दोनोंको मिलाकर खांड-
के शर्वतके साथ पीवे अथवा जीवक, ऋपभक, मेदा, गोरखमुण्डी, काकडा-
सिंगी, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, महामुण्डी (बड़ी गोरखमुण्डी), काकोली, क्षीर-
काकोली, कटेली, गिलोय, क्षीरविदारी, विदारीकंद और मुलैठी इनमेंसे
किसी एकका कल्क १ भाग, निशोयका चूर्ण १ भाग, मिलाकर जलके साथ
अथवा खांडके शर्वतके साथ पीवे । यह जीवकादि १५ योग और १ मुलैठीका
योग यह १६ योग वातपित्तमें विरेचन करानेके लिये हितकारक हैं । इनके
सिवाय उपरोक्त संपूर्ण योग वातकफके विकारोंमें विरेचनके लिये हितकर्ता
हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

क्षीरमांसेक्षुकाश्मर्यद्राक्षापीलुरसैःपृथक् ।

सर्पियावातयोश्चूर्णमभयाद्द्वीशिकंपिवेत् ॥ १७ ॥

निशोयका चूर्ण-दूध, मांसरस, ईखका रस, कुंभेरके फलोंका रस, पीलूके फलोंका
रस और घी इनमेंसे किसी एकके साथ काली अथवा लाल निशोयका चूर्ण पीवे ।
अथवा आधा भाग हरडका चूर्ण मिला निशोयका चूर्ण पीवे तो उत्तम विरेचन
होता है ॥ १७ ॥

लिह्याद्वामधुसर्पिर्भ्यांसंयुक्तंससितोपलम् । अजगन्धातुगाक्षीरी
विदारीशर्करात्रिवृत् ॥ १८ ॥ चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यालीद्वासातुवि-
रिच्यते । सन्निपातज्वरस्तम्भदाहतृष्णादितोनरः ॥ १९ ॥

अथवा निशोथका चूर्ण, शहत, घृत और मिसरीके साथ चाटे । अथवा बजवायन, बंशलोचन, विदारीकंद, मिसरी और निशोथका चूर्ण शहद तथा घीमें मिला चाटे तो उत्तम विरेचन होताहै सन्निपातजनितज्वर, स्तम्भ, दाह और प्याससे पीडित मनुष्यके लिये यह उत्तम विरेचन है ॥ १८ ॥ १९ ॥

इयामात्रिवृत्कपायेणकल्केनचसशर्करम् ।

साधयेद्विधिवल्लेहंलिह्यात्पाणितलंततः ॥ २० ॥

काली निशोथका क्वाथ और मिसरी मिलाकर सिद्ध किया अवलेह । अथवा मिसरीके चासनीमें निशोथका कल्क मिलाकर बनाया हुआ अवलेह २ तोला प्रमाण चाटे तो उत्तम विरेचन हो ॥ २० ॥

सक्षौद्रांशर्करांपक्काकुर्व्यान्मृद्भाजनेनवे । क्षिपेच्छीतेत्रिवृच्चूर्णं
त्वक्पत्रमरिचैःसह । मात्रयालेहयेदेतदीश्वराणांविरेचनम् ॥ २१ ॥

खांडकी चांसनी बनाकर अवलेहके समान गाढी होनेपर नीचे उतार ले । इसमें दालचीनी, तेजपत्र और मिर्चका चूर्ण १ भाग, निशोथका चूर्ण ३ भाग और शहद ४॥ भाग मिलाकर अवलेह बनावे । इस अवलेहको उत्तम नवीन मट्टीके पात्रमें भरकर रखे । इस अवलेहको मात्रानुसार खिलाकर राजा अथवा धनाढ्य पुरुषोंको विरेचन करावे । कोई इसको शहद और मिसरी दोनोंको एकत्र पाककर चासनी बना अवलेह सिद्ध करना मानतेहैं ॥ २१ ॥

कुडवांशात्रसानिक्षुद्राक्षापीलुपरूषकान् । सितोपलात्पलंक्षौद्रा-
त्कुडवार्द्धञ्चसाधयेत् ॥ २२ ॥ तंलेहंयोजयेच्छीतंत्रिवृच्चूर्णेनशा-
स्त्रवित् । एतदुत्सन्नपित्तानामीश्वराणांविरेचनम् ॥ २३ ॥

ईसका रस, दाखका रस, पीलूके फलोंका रस और फालसेका रस एकएक कुडव, मिसरी १ पल मिलाकर अवलेह बनावे । गाढा होनेपर नीचे उतार आधा कुडव शहद मिलावे । इस अवलेहमें निशोथका चूर्ण मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य उचित मात्रासे बडेदृष्ट पित्तवाले धनाढ्य पुरुषोंको विरेचन करावे ॥ २२ ॥ २३ ॥

शर्करामोदकान्वर्त्तिर्गुलिकामांसपूपकान् ।

अनेनविधिनाकुर्व्यात्पैत्तिकानांविरेचनम् ॥ २४ ॥

इसी प्रकार निशोथका खांडके योगसे मोदक, वत्ती, गुटिका और मांस-पूपालिका आदि बनाकर पित्तप्रधानं रोगियोंको विरेचन करावे ॥ २४ ॥

पिप्पलीनागरंक्षारंश्यामात्रिवृतयासह ।

लेहयेन्मधुनासार्द्धश्लेष्मलानांविरेचनम् ॥ २५ ॥

पीपल, सोंठ, जवाखार और काली निशोथ, शहद मिला चाटे तो कफविकार-युक्त रोगीको उत्तम विरेचन होताहै ॥ २५ ॥

तैलभृष्टावलेह ।

मातुलुङ्गाभयाधात्रीश्रीपर्णीकोलदाडिमात् ।

सुमृष्टान्स्वरसांस्तैलेसाधयेत्तत्रचावपेत् ॥ २६ ॥

विजीरा, हरड, आमले, कुंभेर, बेर और अनार इन सबका रस मिसरी मिलाकर पकावे । जब अवलेहकी भांति गाढा होजाय तो इसको तेलमें भूनकर निशोथका चूर्ण मिलावे । इस अवलेहसे कफविकारवाले रोगियोंको विरेचन कराना चाहिये ॥ २६ ॥

सहकारादि अवलेह ।

सहकारात्कपित्थाञ्जसाध्यमम्लञ्चयत्फलम् । पूर्ववद्दहलीभूतेत्रि-
वृच्चूर्णञ्चसाधयेत् ॥ २७ ॥ त्वक्पत्रकेशरैलानांचूर्णञ्चमधुमा-
त्रया । लेहोऽयंकफपूर्णानामीश्वराणांविरेचनम् ॥ २८ ॥

आम, कैय, बेर और इमली आदि खट्टे फलोंका रस, मिसरी मिलाकर अवलेह बनावे । इस अवलेहको तेलमें भून निशोथका चूर्ण मिलावे । तथा दालचीनी, पत्रज, नागकेशर और इलायचीका चूर्ण मिलावे । फिर शहद युक्तकर यह अवलेह कफविकारयुक्त धनाढ्य पुरुषोंको विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ २७ ॥ २८ ॥

पानकादि ५ योग ।

पानकानिरसान्यूपान्मोदकात्रागपाण्डवान् ।

अनेनविधिनाकुर्याद्विरेकार्येकफाधिके ॥ २९ ॥

इसी विधिसे पानक, मांसरस, यूप, मोदक और रागराण्डव बनाकर कफविकार-युक्त रोगियोंको विरेचन करावे ॥ २९ ॥

विरेचकतर्पण ।

त्वगेलाभ्यांसमंतीतं तैस्त्रिवृत्तैश्चशर्करा । घूर्णफलरसक्षौद्रसक्तुभि-

स्तर्पणंपिबेत् ॥ ३० ॥ वातपित्तकफोत्थेपुरोगेष्वल्पानलेषुच । न-
रेषुसुकुमारेषुनिरपायंविरेचनम् ॥ ३१ ॥

दालचीनी, बडी इलायची इन दोनोंके चूर्णके समान निशोथका चूर्ण मिलावे ।
इस संपूर्ण चूर्णके बराबर खांड मिलावे । फिर इसको खट्टे फलोंके रस, शहद और
जौके सत्तुओंमें मिला तर्पण बना पीवे । यह तर्पण वात, पित्त और कफसे उत्पन्न
हुए रोगोंमें और मंदाग्रिमें सुकुमार मनुष्योंको विरेचनके लिये पिलावे । इससे किसी
प्रकारका उपद्रव न होकर सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

रेचक मोदक ।

शर्करात्रिफलाश्यामात्रिवृन्मागधिकामधु ।

मोदकःसन्निपातोर्द्धरक्तपित्तज्वरापहः ॥ ३२ ॥

त्रिफला, निशोथ और पीपल इन सबका समान भाग चूर्ण लेकर खांड और शह-
दके योगसे लड्डू बनावे । यह मोदक सन्निपात, ऊर्द्धगत रक्तपित्त और ज्वरको
नष्ट करते हैं ॥ ३२ ॥ शोधन गुडक ।

त्रिवृच्चूर्णाभृतास्तिस्त्रस्तिस्त्रश्चत्रिफलात्वचः । विडङ्गपिप्पलीक्षारं
समास्तिस्त्रश्चूर्णिताः ॥ ३३ ॥ लिह्यात्सर्पिर्मधुभ्याश्चमोदकंवागु-
डेनच । भक्षयेन्निष्परीहारमेतच्छोधनमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ गुल्मं
प्लीहोदरंश्वासंहलीमकमरोचकम् । कफवातकृतांश्चान्यान्यान्व्याधी-
नेतद्वयपोहति ॥ ३५ ॥

निशोथका चूर्ण ९ मासे, गिलोय ९ मासे, त्रिफला ९ मासे, वायविडंग, ३
मासे, पीपल ३ मासे, जवाखार ३ मासे । इन सबका चूर्णकर घी और शहदके
साथ मिलाकर चाटे अथवा गुडमें मिलाकर मोदक बनावे । इनके सेवनमें आहार
विहारका विशेष परहेज नहीं । यह उत्तम विरेचक योग है । इनके सेवनसे गुल्म,
प्लीहा, उदररोग, श्वास, हलीमक, अरुचि और कफवातजनित अन्य संपूर्ण रोग दूर
होतेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

कल्याणगुडक ।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्याचित्रकान् । मरिचेन्द्रयवाजां-
जीपिप्पलीहास्तिपिप्पलीः ॥ ३६ ॥ लवणान्यजमोदाचचूर्णितंका-
पिकंपृथक् । तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौचाष्टपलोन्मितौ ॥ ३७ ॥

धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीन्गुडार्द्धतुलांतथा॥पक्वामृद्धमिनाखादेद्वदरो-
दुस्वरोपमान् ॥ ३८ ॥ गुडान्कृत्वानचास्यस्याद्विहाराहारयन्त्र-
णा । कुष्ठार्शःकामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥३९॥ ग्रहणीपाण्डु-
रोगांश्चहन्युःपुंसवनाश्रते । कल्याणकाइतिख्याताःसर्वेवृतुपुयौ-
गिकाः ॥ ४० ॥

वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला, धनियां, चित्रक, मिर्च, इन्द्रयव, जीरा, पीपल,
गजपीपल, संधानमक और अजमोद । इन सबका चूर्ण एकएक कर्ष लेवे । तिलोंका
तेल और निशोयका चूर्ण आठ २ पल, आंवलेका रस ३ प्रस्थ, गुड आधा तुला
(२॥ सेर) प्रथम आंवलेका रस और गुड मिलाकर मंद अग्निसे पकावे । जब अंवलेहके
समान गाढा होजाय तो इसमें वायविडंग आदि संपूर्णद्रव्योंका चूर्ण मिला देवे और
तेलको मूर्च्छितकर चूर्ण डालनेसे पहिलेही मिला देवे । फिर सबको मिलाकर बेर
अथवा गूलरके समान गोलिये बनाकर रखे । इनके खातेहुए विरेचनके समान विशेष
आहार विहारका परहेज नहीं । इनसे नित्य एक दो दस्त होजातेहैं । इनके सेवनसे
कुष्ठ, बवासीर, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदरोग, भगन्दर, ग्रहणी और पाण्डुरोग यह
सब नष्ट होतेहैं और सब प्रकारके रज, वीर्य विकार दूर होकर संतान उत्पन्न
होतीहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

व्योषादियोग ।

व्योपत्वक्पत्रमुस्तैलाविडङ्गामलकाभयाः । समभागाभिपग्दद्या-
द्विगुणञ्चमुकूलकम् ॥ ४१ ॥ त्रिवृतोऽष्टगुणंभागंशर्करायाश्चषड्-
गुणम् । चूर्णितंगुडिकान्कृत्वाक्षौद्रेणपलसम्मितान् ॥ ४२ ॥
भक्षयेत्कल्यमुत्थायशीतञ्चानुपिवेज्जलम् । मूत्रकृच्छ्रेज्वरेवम्यांका-
सेश्वासेभ्रमेक्षये ॥४३॥ तापेपाण्ड्वामयेऽल्पेऽग्नौशस्तानिर्यन्त्रिताशि-
नः । योगःसर्वविपाणाञ्चमतःश्रेष्ठोविरेचने ॥ ४४ ॥

त्रिकुटा, तज, पत्रज, नागरमोथा, इलायची, वायविडंग, आमले और हरड इन
सबको एकएक कर्ष लेवे । दंती २ कर्ष, निशोयका चूर्ण ८ कर्ष खांड ६ कर्ष इन
सबका चूर्णकर शहदमें मिलावे । इसमेंसे १ पल अथवा जितना उचित उतना
खाकर ऊपरसे शीतल जल पीवे । इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, वमन, खांसी,
आम, भ्रम, क्षय, ताप, पाण्डुरोग और सब प्रकारके विपयोग दूर होतेहैं यह योग
विरेचनके लिये परमश्रेष्ठ है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

त्रिवृत्पलंद्विप्रसृतंपथ्याधान्योरुवूकयोः ।

दशैतान्मोदकान्कुट्यादीश्वराणांविरेचनम् ॥ ४५ ॥

निशोथका चूर्ण एक पल, हरड, धनियां और एरण्डकी जड़ यह सब ४ पल । इन सबका चूर्णकर शहद अथवा गुडमें मिला दश गोलियों बनावे । इनमेंसे १ गोली धनाढ्य पुरुषोंको विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ ४५ ॥

शुभा गुडिका ।

त्रिवृद्धैमवतीश्यामानीलिनीहस्तिपिप्पली । समूलापिप्पलीमुस्त-
मजमोदादुरालभा ॥ ४६ ॥ कार्षिकं नागरपलंगुडस्यपलविंशति-
म् । चूर्णितंमोदकान्कुट्यादुदुम्बरफलोपमान् ॥ ४७ ॥ हिङ्गुसौ-
वर्चलव्योपयमानीविडजीरकैः । वचाजगन्धात्रिफलाचव्यचित्र-
कधान्यकैः ॥ ४८ ॥ मोदकान्वेष्टयेच्चूर्णेस्तान्सतुम्बुरुदाडिमैः ।
त्रिकवक्षणाहृद्वस्तिकोष्ठार्शःप्लीहशूलिनाम् । हिककासासुरुचिश्वास-
कफोदावर्तिनांशुभाः ॥ ४९ ॥

लाल निशोथ, सफेद वच, काली निशोथ, नीलिनी, गजपीपल, पिपलामूल, पीपल, नागरमोथा, अजमोद और जवासा । इन सबको एकएक कर्ष लेवे । सोंठका चूर्ण एक पल, गुड बीस पल । इन सबको मिलाकर गूलरके फलके समान गोलियों बनावे । फिर हींग, कालानमक, त्रिकुटा, अजवायन, वायविडंग, जीरा, वच, त्रिफला, अजमोद, चव्य, चित्रक, धनियां, नेपाली धनियां और अनारदाना इन सबका बारीक चूर्णकर उस चूर्णमें उपरोक्त गोलियोंको लपेटकर रखे । १५ दिनके बाद इन गोलियोंका सेवन करे तो यह त्रिकशूल, वक्षण, हृदय, वस्ति और कोष्ठकी पीडा, अर्शरोग, तिल्ली, हिचकी, खांसी, अरुचि, श्वास, कफ, उदर-रोग इन सबको दूर करताहै ॥ ४६-४९ ॥

वर्षाऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृतांकाँटजंजीजंपिप्पलीविश्वभेषजम् ।

क्षौद्रंद्राक्षारसोपेतंवर्षास्वेतद्विरेचनम् ॥ ५० ॥

निशोथ, इन्द्रयव, पीपल और सोंठ इनको शहद और दाखके रसमें मिलाकर वर्षाऋतुमें विरेचन करावे ॥ ५० ॥

शरदऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृदुरालभामुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम् ।

द्राक्षाम्बुनासयष्टधाह्वशीतलंजलदात्यये ॥ ५१ ॥

निशोथ, जवासा, नागरमोथा, खांड, नेत्रशाला, लालचंदन ओर मुलैठी इनको दाखके रसके साथ अथवा दाखके शीत कपायके साथ शरदऋतुमें विरेचनके लिये देवे ॥ ५१ ॥

हेमंतमें विरेचनयोग ।

त्रिवृतांचित्रकंपाठामजार्जीसरलंवचाम् ।

स्वर्णदुग्धीश्वहेमन्तेपिष्ट्वातूष्णाम्बुनापिवेत् ॥ ५२ ॥

निशोथ, चित्रक, पाटला, जीरा, सरलकाष्ठ, वच और चोक इन सबको वारीक पीस गरमजलके साथ पिलाकर हेमन्तऋतुमें विरेचन करावे ॥ ५२ ॥

ग्रीष्ममें विरेचन ।

शर्करात्रिवृतातुल्याग्रीष्मकालेविरेचनम् ॥ ५३ ॥

ग्रीष्मऋतुमें यदि विरेचन कराना हो तो मिसरी और निशोथको शीतलजलके साथ पीवे ॥ ५३ ॥

सर्वऋतुओंमें विरेचन ।

त्रिवृत्रायन्तिहपुपांसातलांकटुरोहिणीम् ।

स्वर्णक्षीरीश्वसंचूर्ण्यगोमूत्रेभावयेत्हम् ।

एषसर्वर्तुकोयोगःस्निग्धानांमलदोषहृत् ॥ ५४ ॥

निशोथ, जवासा, हाउबेर, सातला, कुटकी और चोक इन सबका चूर्ण गरम मूत्रमें ३ दिन भावना देवे । फिर चूर्णकर स्नेहन और स्वेदन किये रोगीको सब ऋतुमें विरेचनके लिये देना चाहिये । यह संपूर्ण मलविकारको निकाल देताहै ॥ ५४ ॥

रूक्ष मनुष्योंको विरेचन ।

दुरालभात्रिदृच्छयामावरसकंहस्तिपिप्पली । नीलिनीत्रिफलामु-

स्तंकटुकाचसुचूर्णिता ॥ ५५ ॥ सर्पिर्मांसरसोष्णाम्बुयुक्तंपाणित-

लंततः । पिवेत्सुखतमं ह्येतद्रूक्षाणामपिशस्यते ॥ ५६ ॥

जवासा, निशोथ, सारिवा, इन्द्रयव, गजपीपल, नीलिनी, त्रिकला, नागरमोथा, इन सबका चूर्ण घीमें मिलाकर मांसरसके साथ अथवा गरम जलके साथ पीवे तो रूक्ष मनुष्योंको उत्तम विरेचन हो इसकी मात्रा १ से ५ तोले तक है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

सिद्धचूर्ण ।

त्र्युपणात्रिफलाहिहृकार्पिकं त्रिवृतापलम् । सौवर्चलार्द्धकर्मथ्रपला-

ईश्वाम्लवेतसात् ॥ ५७ ॥ तच्चूर्णशर्करातुल्यमध्येनाम्लेनवापि-
वेत् । गुल्मपाश्वार्त्तिनुत्सिद्धंजीर्णचाद्याद्रसौदनम् ॥ ५८ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला और हींग यह ७ द्रव्य एकएक तोला, निशोथ ४ तोला, संच-
रनमक ६ मासे, अम्लवेत २ तोला इन सबका वारीक चूर्णकर चूर्णके बराबर
मिसरी मिलावे । फिर यह चूर्ण मद्य अथवा कांजीके साथ पीवे तो गुल्म और
पार्श्वपीडाको दूर करताहै । इस औषधके जीर्ण होनेपर मांसरस और पुराने चांव-
लोंका भोजन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

सप्तलादिचूर्ण ।

सप्तलांत्रिफलांदन्तीत्रिवृतांव्योपसैन्धवम् । कृत्वाचूर्णन्तुसप्ताहं
भौव्यमामलकीरसे । तद्योज्यंतर्पणेषूपेपिशितैरागयुक्तिषु ॥ ५९ ॥

सातला, त्रिफला, त्रिकुटा, दंती, निशोथ और संधानमक इन सब द्रव्योंको
समान भाग लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको आमलेके रसमें ७ दिनतक भावना देकर
सुखा लेवे । फिर इसको तर्पण, यूप, मांसरस और रागके साथमें खिलावे तो यह
संपूर्ण उदररोगोंको और गुल्म आदिकोंको दूर करताहै । सब जगह त्रिफला और
त्रिकुटा तीनतीन गुना लेना चाहिये ॥ ५९ ॥

गुल्मनाशक घृत ।

तुल्याम्लंत्रिवृताकल्कसिद्धंगुल्महरंघृतम् । मूलंश्यामात्रिवृतयोः

पचेदामलकैःसह । जलेतेनकषायेणपक्त्वासर्पिःपिवेन्नरः ॥ ६० ॥

कांजी १ सेर, निशोथका कल्क १ पाव, घृत १ सेर इन सबको मिलाकर पकावे ।
घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । यह घृत गुल्मरोगको दूर करताहै । काली-
निशोथ, लालनिशोथ इन दोनोंके चूर्णको आमले और ८ गुना जल मिलाकर
पकावे । चौथाभाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस घीके पीनेसे सुखपूर्वक
विरेचन निवृत्त होताहै ॥ ६० ॥

निर्यूहेणतयोर्युक्त्यासिद्धसर्पिःपिवेत्तथा ।

साधितंवापयस्ताभ्यांमुखंतेनाविरिच्यते ॥ ६१ ॥

काली निशोथ और लालनिशोथके कषायमें सिद्ध किया घृत अथवा दूध पीनेसे
सुखपूर्वक विरेचन होताहै ॥ ६१ ॥

त्रिवृतारिष्ट ।

त्रिवृन्मुष्टीस्तुसनखानष्टौद्रोणेजलेपचेत् । पादशेषंरुपायंतंशीतंगु-

डतुलायुतम् ॥ ६२ ॥ स्निग्धस्थाप्यंघटेक्षौद्रपिप्पलीफलचित्रकैः ।
प्रलिप्तेविधिनामासंजातं तन्मात्रयापिवेत् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नगु-
ल्मश्वयथुनाशनम् ॥ ६३ ॥

८० तोला निशोथको १ द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाभाग शेषरहे तो उतारकर छानले । फिर इस कायमें ५ सेर गुड मिलाकर किसी एक चिकने घडेमें प्रथम पीपल-
मैनफल और चित्रकका चूर्ण शहदमें मिला लेप करे । फिर उस घडेमें यह गुड
मिला काय डालकर ऊपरसे बन्दकर देवे । एक महीनेके बाद निकालकर इस
त्रिवृत्त अरिष्टको पीवे तो ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, गुल्मरोग और सूजन यह सब नष्ट
होतेहैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

सुरांवात्रिवृतापादकल्कांतत्क्वाथसंयुताम् ॥ ६४ ॥

अथवा निशोथका काय और मद्य दोनों बराबर लेकर उसमें चौथा भाग निशो-
थका कल्क मिलाकर १ महीनेपर्यन्त रखे । फिर छानकर उचित मात्रासे पीवे तो
गुल्म आदि अनेक रोग दूर होतेहैं और इससे उत्तम विरेचन होताहै ॥ ६४ ॥

सौवीरक ।

यवैःश्यामात्रिवृत्क्वाथस्त्रैःकुल्मापमम्भसा ।

आसुतंपडहंपर्णेजातंसौवीरकंपिवेत् ॥ ६५ ॥

कालीनिशोय और लालनिशोथको लेकर काय करे । इस कायमें यव डालकर
पकावे । जब यव पकजाय तो इसको उतारकर छानलेवे । इसमें कुल्मापजल अर्थात्
कांजी मिलाकर किसी पात्रमें डालदेवे । और यवके पत्रोंमें व्यवा अन्य घासमें
दवाकर रखे । छः दिनके बाद इसको निकाल लेवे । यह उत्तम सौवीरक पीनेसे
सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ६५ ॥

तुषोदक, आसव ।

भृष्टान्मासतुपाञ्छुद्धान्यवांस्तच्चूर्णतंयुतान् ।

आसुतान्मम्भसातद्रत्पिवेजातंतुषोदकम् ॥ ६६ ॥

उत्तम छडेदुप यवांको भूनलेवे यह भूनेदुप यव और यवांके तुष तथा निशो
थका चूर्ण मिला गर्म जलमें डाल किसी पात्रमें बन्दकर दे । २१ दिनके बाद निकाल-
कर छानले इसके पीनेसे उत्तम विरेचन होताहै ॥ ६६ ॥

तथामदनकल्पोक्तान्पांडवादीन्पृथग्दश ।

त्रिवृच्चूर्णेनसंयोज्यविरेकार्थंप्रयोजयेत् ॥ ६७ ॥

इसी प्रकार भेनफलके कल्पमें कहेहुए १० प्रकारके खाण्डव आदि निशोयके चूर्ण-
से भी दश प्रकारके अलग २ बनाये जाते हैं । अर्थात् निशोयके चूर्णसे खाण्डव, राग,
लेह, मोदक, घूडी, तर्पण, पानक, मांसरस, यूष और मद्य इन दशविध योगोंको
बनाकर इनमेंसे किसी एकका विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ ६७ ॥

त्वक्केशराभ्रातकदाडिमैलासितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः ।

मथैस्तथान्यैश्चमनोऽनुकूलैर्युक्तानिदेयानिविरेचनानि ॥ ६८ ॥

तज, नागकेशर, अंबाडा, अनार, इलायची, मिसरी, शहद और मद्य तथा
मनोभिलपित द्रव्योंके साथ मिलाकर निशोयके चूर्णका विरेचन दिया जा-
सकताहै ॥ ६८ ॥

शीताम्बुनापीतवतश्चतस्यसिञ्चन्मुखच्छर्दिविधातहेतोः ।

हृद्यांश्चमृतपुष्पफलप्रवालादम्लञ्चदद्यादुपजिघ्रणार्थम् ॥ ६९ ॥

विरेचन कर्त्ता द्रव्यको पीकर रोगीको छर्दी न होजाय उसके मुखपर बारबार
शीतलजलके छींटे देता रहे और हृदयको प्रसन्न करनेवाले सुगंधित द्रव्य, पानीमें
भिंंगोई हुई सुगंधित मट्टी, फूल, फल, कोमल पत्र, केशर आदि और नींबूको सूखावे ६९

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकाः ।

एकोऽम्लादिभिरष्टौचदशद्वौसैन्धवादिभिः । मूत्रेऽष्टादशयष्ट्यौ

द्वौजीरकादौचतुर्दश ॥ ७० ॥ क्षीरादौसतलेहेऽष्टौचत्वारःसितया

पिच । पानकादिपुष्पैवपट्टतौपञ्चमोदकाः ॥ ७१ ॥ चत्वारश्च

घृतक्षीरेद्वौचूर्णेत्तर्पणे तथा । द्वौमथेकाञ्जिकेद्वौचदशान्येषाडवादिपु

॥ ७२ ॥ श्यामायास्त्रिवृतायाश्चकल्पेऽस्मिन्समुदाहृतम् । शतं द-

शोत्तरंसिद्धयोगानांपरमर्षिणा ॥ ७३ ॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थानेश्यामात्रिवृतकल्पोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस श्यामात्रिवृत कल्पमें अम्ल आदिसे
नौ योग, सैन्धवआदिसे १२ योग, गोमूत्रसे १८ योग, मुलेठीसे २ योग, जीरक आदिसे
१४ योग, दुग्ध आदिकोंसे ७ योग, लेहसे ८ योग, मिसरीसे ४ योग, पानक आदिसे
५ योग, ऋतु भेदसे ६ योग, मोदकोंके ५ योग, दूध और घृतसे ४ योग, तर्पणके दो

योग, मद्यसे २ योग, कांजीते दो योग, खाण्डव आदिकोंसे १० योग । इसप्रकार सब मिलाकर महर्षि आत्रेयजीने निशोथके ११० योगोंका वर्णन किया है ॥ ७०-७३ ॥
इति श्री० च० प्र० बा० सं० फल्यस्थाने प्र० भा० टी० । श्यामत्रिवृतकल्पोनामसमाप्तोऽध्यायः ॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातश्चतुरंगुलकल्पं व्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम चतुरंगुल कल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

अमलतासके नाम ।

आरग्वधोराजवृक्षःसम्पाकश्चतुरंगुलः ।

प्रग्रहःकृतमालश्चकर्णिकारोऽवघातकः ॥ १ ॥

आरग्वध, राजवृक्ष, संपाक, चतुरंगुल, प्रग्रह, कृतमाल, कर्णिकार और अवघातक यह सब अमलतासके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ १ ॥

अमलताशके गुण ।

ज्वरहृद्रोगवातासृग्दावर्त्तादिरोगिषु ।

राजवृक्षोऽधिकंपथ्योमृदुर्मधुरशीतलः ॥ २ ॥

अमलतासका विरेचन ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त और उदावर्त्त आदि रोगोंमें अत्यंत हितकारक है यह विरेचन मृदु और मधुर होनेसे शीतल और अत्यंत पथ्य है ॥ २ ॥

वालेवृद्धेक्षते क्षीणेषुकुमारचमानवे ।

योज्यामृदनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरंगुलः ॥ ३ ॥

अमलतासका विरेचन निर्विकार होनेसे और मृदु होनेसे बालक, वृद्ध और सुकुमारोंके लिये अत्यंत हितकारी है ॥ ३ ॥

अमलतासके ग्रहणकरनेकी विधि ।

फलकालेफलंतस्यग्राह्यंपरिणतश्चयत् । तेषांगुणवतांभारंसिकता-

सुनिधापयेत् ॥ ४ ॥ सप्तरात्रात्समुद्धृत्यशोषयेदातपेभिपक् । ततो

मज्जानमुद्धृत्यशुचौभाण्डेनिधापयेत् ॥ ५ ॥

जिस समय अमलतासके फल पके हुए हों उनको तोड़कर ले आवे । इन उत्तम २ भारी सुन्दर अमलतासकी फलियोंको बालूके ढेरमें दबादेवे । ७ दिनके बाद

निकालकर धूपमें सुखाले ठीक सुखजानेपर इन फलियोंका गुदा निकालले । इस गुदेको किसी स्वच्छ पात्रमें ढककर रख देवे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अमलतासके १२ वैरेचनिक योग ।

द्राक्षारसयुतोदेयोदाहोदावर्त्तपीडिते ।

चतुर्वर्षमुखेवालेयावद्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥

दाह और उदावर्त्तरोगमें अमलतासका गूदा द्राक्षाके रसमें धोलकर पिलाना चाहिये । ४ वर्षसे लेकर १२ वर्षकी अवस्थातक बालकके लिये अमलतासका विरेचन सुखकारी होताहै ॥ ६ ॥

चतुरंगुलमज्जस्तुप्रसृतंवाथवाञ्जलिम् । सुरामण्डेनसंयुक्तमथवा
कोलसीधुना ॥ ७ ॥ दधिमण्डेनवायुंकरंसेनामलकस्यवा ।
कृत्वाशीतकपायंतंपिवेत्सौवीरकेणवा ॥ ८ ॥

अमलतासका गूदा २ पल प्रमाण लेकर अथवा ४ पल लेकर सुरामण्डमें अथवा वेरसे बनाईहुई शीधुमें भिगोकर १ दिन रहनेदे । फिर मसलकर मात्रानुसार पीवे तो उत्तम विरेचन सुखपूर्वक होजाताहै । अथवा इसी प्रकार दधिमण्ड वा आमलेके रसके साथ अथवा शीतलजलमें १ दिन भिगोकर वा सौवीरकमें भिगोकर दूसरे दिन मसलकर पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

त्रिवृतोवाकपायेणमज्जकल्कंतथापिवेत् ।

तथाधिल्वकपायेणलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥ ९ ॥

अथवा निशोयके कायमें अमलतासका गूदा धोलकर वा बेलके क्वायमें धोलकर सेंवानमक और शहद मिलाकर पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ९ ॥

कपायेणाथवातस्यत्रिवृच्चूर्णगुडान्वितम् ।

साधयित्वाशनैल्लहंलेहयेन्मात्रयानरम् ॥ १० ॥

अथवा अमलतासके क्वायके साथ निशोयका चूर्ण और गुड मिलाकर मंदमंद अमिसे अवलेह सिद्धकरे । यह अवलेह मात्रानुसार मनुष्यको चटावे तो उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ १० ॥

चतुरंगुलसिद्धाद्वाक्षीराद्यदुदियाद्धृतम् ।

मज्जःकल्केनधात्रीणांरसेतत्साधितंपिवेत् ॥ ११ ॥

अमलतासका गूदा आधसेर, दूध ४ सेर, जल ८ सेर इन सबको मिलाकर

पकावे । दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । फिर इस दूधमें १ सेर घृत और १ पाव अमलतासके गूदेका कल्क तथा ४ सेर आमलेका रस मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घीके पीनेसे भी उत्तम विरेचन होताहै ॥ ११ ॥

तदेवदशमूलस्यकुलत्थानांयवस्यच ।

कषायेसाधितंकल्कैःसर्पिःश्यामादिभिःपिवेत् ॥ १२ ॥

अमलतासके गूदेसे सिद्ध किया दूध ४ सेर, घी १ सेर, दशमूल, कुल्थी और यवोंका क्वाथ ४ सेर तथा निशोय, त्रिफला, दंती, नीलिनी, सातला, कमीला, वच, इन्द्रायणकी जड़, दूधली, करंजके बीज, पीलू, अमलतास, दाख, द्रवंती और निचुल-इन सबको एकएक कर्ष लेकर कल्क बनावे । इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतके पीनेसे सुखपूर्वक उत्तम विरेचन होताहै ॥ १२ ॥

दन्तीकाथेऽञ्जलिमज्जःशम्पाकस्यगुडस्यच । दत्वामासार्द्धमास-
स्थमरिष्टंपाययेत्तच ॥ १३ ॥ यस्ययत्पानमन्नञ्चहृद्यंस्वाद्वपिवाकटु ।

लवणंवाभवेत्तेनयुक्तंदयाद्विरेचनम् ॥ १४ ॥

दंतीका क्वाथ ४ सेर, अमलतासका गूदाआधसेर, गुड १ सेर इन सबको किसी चिकने पात्रमें भरकर विधिवत् बन्दकर १५ दिन अथवा १-महीना धरा रहने दे । फिर इस धारिष्टको छानकर रोगीको पिलावे । जिस रोगीको जो पीनेकी वस्तु और अन्न, हृदयको प्यारा लगे । अथवा मिठाई चरपरे द्रव्य, नमकीन अथवा खट्टे जैसे द्रव्य उसको प्रिय हों उन्हींके साथमें यह धारिष्ट भी पिलाया जाय तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

द्राक्षारसेसुरासीध्वोर्दधिचामलकीरसे । सौवीरककषायाभ्यांघिल्व-
शम्पाकयोस्तथा ॥ १५ ॥ लेहोऽरिष्टोघृतेद्वेचयोगाद्वादशकीर्त्तिताः ।

चतुरंगुलकल्पेऽस्मिन्सुकुमाराःप्रकीर्त्तितोः ॥ १६ ॥

इतिश्रीचरककल्पस्थानेचतुरंगुलकल्पोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस चतुरंगुल कल्पके उपसंहारमें कहते हैं कि इस चतुरंगुल कल्पमें द्राक्षारस, मध, बेरकी सीघ्र, दधिमण्ड, अमलेका रस, सौवीरक, निशोयक, क्वाथ, घिल्व

और अमलतासका क्वाथ, अवलेह, अरिष्ट और दोषकारके घृत इन सबको मिलाकर बारह प्रकारके मृदुसुखकारी विरेचनयोग कहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥
इ० श्री० च० आयु० सं० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० चतुरंगुलकलो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातस्तिल्वककल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम तिल्वक (लोध) के कल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

लोधके नाम ।

तिल्वकस्तुमतोलोध्रोवृहत्पत्रस्तिरीटकः ॥ १ ॥

तिल्वक, लोध्र, वृहत्पत्र और तिरीटक यह लोधके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ १ ॥

लोधके १६ योग ।

तस्यमूलत्वचंशुष्कामन्तर्वल्कलवर्जिताम् । चूर्णयेत्तुत्रिधाकृत्वा
द्वौभागौकाथयेत्ततः । लोध्रस्यैवकपायेणतृतीयंतेनभावयेत् ॥२॥

भागंतं दशमूलस्यपुनःकाथेनभावयेत् । शुष्कंचूर्णपुनःकृत्वातत ऊर्द्ध्वप्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ दधितक्रसुरामण्डमूत्रैर्वदरसीधुना । रसेनामलकानांवाततःपाणितलंपिवेत् ॥ ४ ॥

लोधकी जड़के काष्ठभागको त्यागकर ऊपरका मोटा छिलका ले सुखालेने । इस सुखेदुष्ट लोधका चूर्णकर अलग २ तीन भाग करे । २ भाग चूर्णका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे तीसरे भाग चूर्णकी भावना देवे । फिर दशमूलके क्वाथकी भावना देवे । तदनंतर सुखाकर चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णको दही, तक्र, सुरा, मण्ड, गोमूत्र, बेरसे धनीहुई सीधु और आमलेका रस इनमेंसे किसी एकके साथ १ तोला पिवे तो उत्तम विरेचन होता है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

सुरालोध्रकपायेणजातांपक्षस्थितांपिवेत् ॥ ५ ॥

लोधका क्वाथ और मद्य इन दोनोंको समभाग ले किसी पाश्र्वं भर १५ दिन रखे फिर इसके पीनेसे भी सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ५ ॥

मेपशृङ्गभयाकृष्णाचित्रकैःसलिलेशृते । तत्तुलांसुनुयात्तच्चजातं
सौवीरकंयदा । भवेदञ्जलिनातस्यलोध्रकल्कंपिवेत्तदा ॥ ६ ॥

मेंढासिंगी, हरड, पीपल, चित्रक इन सबको आध २ सेर लेकर आठगुने जलमें डाल क्वाथ करे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानले । फिर इसमें ५ सेर गुड मिलावे और यवासे बनाईहुई कांजी २ सेर इसमें डाले १५ दिन पर्यन्त बन्दकर रक्ते फिर यह उत्तम सौवीरक बनजाताहै । इसमेंसे १ पाव सौवीरक लेकर उसमें लोधका कल्क मिला पीनेसे उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ ६ ॥

दन्तीचित्रकयोद्रांणोसलिलस्याढकंपृथक् । संक्वाथ्यचगुडस्यैकां
तुलांलोधस्यचाञ्जलिम् । आवपेत्तत्परंपक्षान्मद्यपानाद्विरेचनम् ॥ ७ ॥

४ सेर दन्तीको १६ सेर जलमें पकावे और ४ सेर चित्रकको १६ सेर जलमें पकावे । जब चौथा २ भाग शेष रहे तो इन दोनोंको अलग २ उतारकर छान लेवे । फिर इन दोनों क्वाथोंको मिलाकर इनमें ५ सेर गुड और २० तोला लोधका चूर्ण मिलाकर किसी चिकने पात्रमें डाल बन्दकर देवे । १५ दिनके अनन्तर निकालकर छानले । इस अरिष्टके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ७ ॥

तिल्वकस्यकपायेणदशकृत्वःसुभाविताम् ॥ ८ ॥ मात्रांकम्पि-

ह्यकस्यैवकपायेणपुनःपिचेत् । चगुरंगुलकल्पेनलेहोऽन्यःकार्यैष्व
च ॥ ९ ॥ त्रिफलायाःकपायेणससर्पिर्मधुफाणितः । लोधचूर्णयु-
तःसिद्धोलेहःश्रेष्ठोविरेचने ॥ १० ॥

लोधके क्वाथसे लोधके चूर्णको दशवार भावना देवे । फिर इस चूर्णको कमीलेके क्वाथकी दशवार भावना देकर चूर्ण बना लेवे । इस चूर्णको कमीलेके कायके साथ अथवा उपरोक्त किसी अरिष्टके साथ पीनेसे विरेचन होजाताहै अमलतासके अवलेहके समान लोधका भी अवलेह बनावे अर्थात् लोधका क्वाथ, निशोयका चूर्ण और गुड मिलाकर अवलेह सिद्धकरे । यह अवलेह भी विरेचन करनेके लिये प्रयोग किया जाताहै त्रिफलेका क्वाथ, घृत, गुड और लोधका चूर्ण मिलाकर अवलेह सिद्धकरे । इस अवलेहमें शहद मिला चाटनेसे उत्तम विरेचन होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

तिल्वकस्यकपायेणकल्केनचसशर्करः ।

सघृतःसाधितोलेहःसचश्रेष्ठोविरेचने ॥ ११ ॥

लोधके कपायके साथ, लोधका कल्क, खांड और धी मिलाकर अवलेह सिद्ध करे । इस अवलेहके खानेसे भी श्रेष्ठ विरेचन होजाताहै ॥ ११ ॥

अष्टाष्टौत्रिवृतादीनामुष्टींश्चसनखान्पृथक् ।

द्राणेऽपांसाधयेत्पादशेषेप्रस्थंघृतात्पचेत् ॥ १२ ॥

पिष्टैस्तैरेवविल्वांशैःसमूत्रलवणैरथ ।

ततोमात्रापिवेत्कालेश्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ १३ ॥

निशोथ, त्रिफला, दंती, नीलिनी, सातला, वच, कमीला, इन्द्रायणकी जड, दूधी, करंजुपकी, गिरी पीलूफल, अमलतास, दाख, द्रवंती और निजुल । इन सबको आठआठ तोला लेकर १ द्रोण जलमे पकावे । जब चौथा भाग शेष रहे तो उतारकर छानलेवे । इस काथमें १ प्रस्थ घृत और इन उपरोक्त निशोथ आदि द्रव्योंका दो दो तोला कल्क, सेधानमक २ तोला और गोमूत्र ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतको मात्रानुसार पीनेसे परमश्रेष्ठ विरेचन होताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

लोध्रकल्केनमूत्राम्ललवणैश्चपचेद्धृतम् ।

चतुरंगुलकल्पेनसर्पिपीद्वैचसाधयेदिति ॥ १४ ॥

लोधका कल्क, गोमूत्र, सेधानमक और कांजी मिलाकर सिद्ध किया घृत । अथवा लोधका काथ, गोमूत्र, कांजी और लवण मिला सिद्ध किया घृत विरेचन करानेमें श्रेष्ठ होताहै । इन दोनों प्रकारके घृतोंमें अमलतासका काथ और उपरोक्त निशोथ आदि द्रव्योंका कल्क तथा दशमूल, कुल्यी और यवोंका काथ भी मिलाना चाहिये । संपूर्ण काथघृतसे चौगुने और सब द्रव्योंका कल्क घीसे चौथा भाग मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारले । फिर इन दोनों घृतोंमसे किसी एकको पीवे तो उत्तम विरेचन हो ॥ १४ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

पञ्चदध्यादिभिस्त्वेकःसुरासौवीरकेणच । एकोऽरिष्टस्तथायोग
एकःकम्पिल्लकेनच ॥ १५ ॥ लेहास्त्रयोघृतेनापिचत्वारःसम्प्रद-
र्शिताः । योगास्तेलोध्रमूलानांकल्पेपोडशदर्शिताः ॥ १६ ॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थाने तिल्वककल्पो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहा अध्यायके उपसंहारमे कहतेहैं कि इस तिल्वककल्पमें दही व्वादि द्रव्योंसे ५ योग, मद्यसे १ योग, सौवीरकसे १ योग, अरिष्टसे १ योग, कमीलेसे १ योग, अवलेहके ३ योग और घृतके ४ योग इस प्रकार सब मिलाकर लोधके १६ योगोंका वर्णन कियाहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्री० च० आ० स० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० तिल्वककल्पो नाम नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः।

अथातः सुधाकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अथ हम सुधाकल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।
सुधाको तीक्ष्णत्व ।

विरेचनानांसर्वेषांसुधातीक्ष्णतमामता । संघातन्तुभिनत्याशुदो-
षाणांकष्टविभ्रमात् ॥ १ ॥ तस्मान्निषामृदौकोष्ठेप्रयोक्तव्याकदा-
चन । नदोषनिचयेचाल्पेसतिवान्यपरिक्रमे ॥ २ ॥

संपूर्ण विरेचनोंमें सुधा (थोहर, सेडुंड) का विरेचन अत्यन्त तीक्ष्ण मानाजाताहै ।
यह दोषोंके संघातको एकदम तोडकर मनुष्योंको कष्टकारी विभ्रम उत्पन्न करदेताहै ।
इसलिये इसका विरेचन मृदुकोष्ठवाले मनुष्योंको कभी नहीं देना चाहिये । और
अल्पदोषमें तथा जो दोष अन्य विरेचन द्वारा निकल सकतेहों उनमें भी थोहरका
विरेचन देना नहीं चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

पाण्डुरोगोदरेगुल्मेकुष्ठेदूषीविषादिते । श्वयथोमधुमेहेचदोषविभ्रा-
न्तचेतसि ॥ ३ ॥ रोगैरेवंविधैर्यस्तंज्ञात्वासप्राणमातुरम् । प्रयो-
जयेन्महावृक्षंसम्यक्सह्यवचारितः ॥ ४ ॥ सद्योहरतिदोषाणाम-
हान्तमपिसञ्चयम् ॥ ५ ॥

पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्मरोग, कुष्ठ, दूषीविष, सूजन, मधुमेह, उन्माद तथा
किसी प्रकारके जो अन्य बलवान् रोग हैं उन रोगोंमें यदि रोगी बलवान् हो तो
थोहरके विरेचनका विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिये । थोहर विधिवत् प्रयोग
कियेजानेपर दोषोंके महान् संचयको भी शीघ्र हरलेताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

थोहरके भेद और नाम ।

द्विविधःसमतोयैश्ववहुभिश्चैवकण्टकैः । सुतीक्ष्णैःकण्टकैरल्पैःप्रव-
रोवहुकण्टकः । सनाम्नातुगुडानन्दीसुधानिखिशपत्रकः ॥ ६ ॥

थोहर दो प्रकारका होताहै । एक बहुतसे और तीक्ष्ण कांटोंवाला और दूसरा
अल्पकांटोंवाला इन दोनोंमें बहुत कांटोंवाला थोहर श्रेष्ठ होताहै । इसके स्तुक, गुडा,
नन्दी, सुधा और निखिशपत्र यह पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ ६ ॥

थोहरके २०योग ।

तंविपाट्याहरेत्क्षीरंशस्त्रेणमतिमान्भिषक् । द्विपर्षावात्रिपर्षावाशि-

शिरान्तेविशेषतः ॥ ७ ॥ बिल्वादीनांबृहत्यावाकण्टकार्यापिचै-
कशः । कपायंतंसमांशेनकृत्वाङ्गरेषुशोषयेत् ॥ ८ ॥ ततःकोलस-
मांमात्रांपिवेत्सौवीरकेणवा । तुषोदकेनकोलानारसेनामलकस्य
वा ॥ ९ ॥ सुरयादधिमण्डेनमातुलुङ्गरसेनवा ॥ १० ॥

शिशिर ऋतुके अन्तमें और वसन्तके आदिमें दो तीन वर्षके थोहरवृक्षकी जड़को
शखसे छेदनकर उसका दूध निकाललेवे । उस दूधको प्रथम बिल्वादि पंचमूलके काय-
में फिर बडी कटेलीके कायमें पीछे कटेलीके क्वाथमें डालकर अंगारोंकी अंग्रिपर
पकावे । इसका यह क्रम है कि प्रथम थोहरके दूधमें बिल्वादिपंचमूलका क्वाथ डालकर
पकावे । जब वह जलजाय तो कटेलीका काय डाले । कटेलीके कायके जलजाने पर
जब थोहरका दूध भी गाढा होजाय तो उसकी जंगली बेरके समान गोलियें बनालेवे ।
इन गोलियोंमेंसे १ गोली सौवीरके साथ अथवा तुषोदकके साथ वा बेरसे बनी शीधुके
साथ अथवा आवँलेके रसके साथ वा मद्यके साथ अथवा दधिमण्डके साथ वा विजौ-
रेके रसके साथ पीवे तो तीक्ष्ण विरेचन होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

सातलांकाञ्चनक्षीरींश्यामादीनिकटुत्रिकम् । यथोपपत्तिसप्ताहं
सुधाक्षीरेणभावयेत् ॥ ११ ॥ कोलमात्रघृतेनातःपिवेन्मांसरसेन
वा ॥ १२ ॥

सातला, स्वर्णक्षीरी, निशोयंआदिगण, त्रिकुटा इन सबमेंसे जो मिलसके उन
सबका चूर्ण कर उस चूर्णको सात दिन तक थोहरके दूधमें भावना देकर थोढ़ता
जाय फिर बेरके समान गोलियां बना एक गोली खाकर ऊपरसे घृत अथवा मांसरस
पीवे तो उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

व्यूषणांत्रिफलांदन्तींचित्रकंत्रिवृतांतथा ।

श्लुक्षीरभावितंसम्यग्विदध्याद्गुडपानके ॥ १३ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, चित्रक और निशोय इन सबका चूर्ण थोहरके दूधकी
भावना देकर गोलियें बनावे एक गोली गुडके शर्वतके साथ खावे तो उत्तम विरेचन
होताहै ॥ १३ ॥

त्रिवृतारग्वधंदन्तींशंखिनींससलांसमाम्।निशिस्थितंगवांमूत्रेशोप-

(१) अपामार्गतण्डुलीयाप्यायमें कहाहै और तिल्यरुकल्पमें भी १२ । १३ श्लोककी टीकामें
कहाहै ।

येदातपेततः । सप्ताहंभावयित्वैवंस्नुक्क्षीरेणापरंपुनः ॥१४॥ सप्ताहंभावयेच्छुष्कंततस्तेनापिभाविताम् । गन्धमाल्यंतदाघ्रायप्रावृत्यपटमेवच ॥ १५ ॥ सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः ॥ १६ ॥

निशोथ, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें रात्रिके समय भिगो देवे फिर सबेरे सुखावे । फिर चूर्णकर रात्रिको गोमूत्रमें भिगोवे इस प्रकार इस चूर्णको सात भावना देवे । फिर इसी प्रकार थोहरके दूधमें सात बार भावना देवे फिर इस चूर्णको सुखाकर बहुत वारीक पीसले इस सूक्ष्म चूर्णको सुगंधित फूल माला आदिमें लगाकर सुंधा कर रोगीको सर्वतः वस्त्रसे ढककर रखवे तो इससे तो मृदुकोष्ठ मनुष्योंको राजाआदि सुकुमार मनुष्योंको सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

श्यामात्रिवृत्कषायेणस्नुक्क्षीरघृतफाणितैः ।

लेहंपक्वाविरिकार्थलेहयेन्मात्रयानरम् ॥ १७ ॥

कालीनिशोथके काथ और थोहरके दूधसे घृत और फाणित मिलाकर पकावे अवलेह सिद्ध होनेपर उतारले इस अवलेहको उचितमात्रासे रोगीको खिलावे तो तीक्ष्ण विरेचन होजाताहै ॥ १७ ॥

पाययेत्सुधाक्षीरंयूषैर्मांसरसेर्घृतैः ।

भाविताञ्शुष्कमत्स्यान्वामांसंवाभक्षयेन्नरः ॥ १८ ॥

थोहरके दूधको यूप, मांसरस, अथवा घृतमें मिलाकर पिलावे अथवा थोहरके दूधमें भावना देकर सुखाई हुई मछली वा थोहरके दूधसे भावित मांसके खानेसे भी उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ १८ ॥

क्षीरेणामलकैःसर्पिश्चतुरङ्गुलवत्पचेत् ।

सुरांवाकारयेत्क्षीरंघृतंवापूर्ववत्पचेदिति ॥ १९ ॥

थोहरके दूधसे सिद्ध किये हुए दूधको जमाकर उसमेंसे घी निकाले इस घीमें चार गुणा आंवलेका रस, घीसे चतुर्थांश थोहरका दूध मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहने पर उतार कर छानले । अथवा इस प्रकार निकालाहुआ घृत १ सेर निशोथ आदि द्रव्योंका कल्क १ पाव दशमूल, कुलथी और जवांका वनाथ ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे यह दोनों घृतभी उत्तम विरेचन करतैं । अथवा थोहरका दूध मद्यमें मिलाकर १५ दिन धरा रहनेदे फिर इस मद्यको छानकर पीवे तो उत्तम विरेचन हो ॥ १९ ॥

उपसंहार ।
तत्र श्लोकौ ।

सौवीरकादिभिःसप्तसर्पिषाचरसेनच । पानकंघ्रेयलेहौचयोगायू-
षादिभिस्त्रयः ॥ २० ॥ द्वौशुष्कमत्स्यमांसाभ्यांसुरैकाद्वेचसर्पिणी ।

सुधाकल्पस्ययोगास्तेविंशतिःसमुदाहृताः ॥ २१ ॥

इतिश्रीचरककल्पस्थाने सुधाकल्पोनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस सुधा कल्पमें सौवीरकादिसे ७ योग,
घृतके साथ १ योग, पानकसे १ योग, सुंवनेसे १ योग, अवलेहका १ योग, यूषादि
३ योग, सुखी मछली और मांससे २ योग, सुरासे १ योग, और घृतसे २ योग
इसप्रकार सब मिलकर २० योग कहेंहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

इति श्री० च० भा० सं० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० सुधाकल्पोनाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातः सप्तलाशंखिनीकल्पंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवान्नात्रेयः ।

अब हम सप्तला और शंखिनी के कल्पोंकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भग-
वान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

सप्तलाशंखिनीके नाम ।

सप्तलाचर्मसाहाचवहुफेनरसाचसा ।

शंखिनीतिक्तलाचैवयवतिक्ताक्षिपीडकः ॥ १ ॥

सप्तला, चर्मसाहा, बहुफेनरसा ये सातलाके नाम हैं । और शंखिनी, तिक्ताला,
यवतिक्ता तथा आक्षिपीडक यह शंखिनीके नाम हैं ॥ १ ॥

सप्तलाशंखिनीके गुण ।

तेगुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफीदरादिषु । विकासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्यो-
ज्येष्ठेष्माधिकेषु ॥ २ ॥

शंखिनी और सप्तला गुल्मरोग, विषविकार, हृद्रोग, कुष्ठरोग, सूजन, गरदोष और

१ सप्तला कोई थोहरका भेद सातला मानते हैं कोई नीडिनीकोही सप्तला कहते हैं ।

२ शंखिनीसे यवतिक्ताका ग्रहण करते हैं ।

उदररोग आदिमें प्रयोग कीजातीहै । तथा विकाशी, तीक्ष्ण और रूक्ष होनेसे कफ जनित व्याधियोंमें भी इसका प्रयोधा किया जाताहै ॥ २ ॥

नातिशुष्कंफलंमाह्यंशंखिन्यानिस्तुपीकृतम् ।

सप्तलायाश्चमूलानिगृहीत्वाभाजनेक्षिपेत् ॥ ३ ॥

शंखिनीके पकेहुए जो अत्यंत सूखे न हों ऐसे तुपराहित फल लेने चाहिये । और सातलाकी जड़ ग्रहण करना चाहिये । इन दोनोंको उत्तम पात्रमें डालकर युक्तिपूर्वक रख देना चाहिये ॥ ३ ॥

सप्तलाशंखिनीके प्रयोग ।

अक्षमात्रंसयोःपिण्डंप्रसन्नालवणायुतम् । हृद्रोगेकफवातार्थेगुल्मे

चैत्रप्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ पियालपीलुकर्कन्धुकोलाम्रातकदाडिमैः ।

द्राक्षापनसखर्जूरवदराम्लपरूपकैः ॥ ५ ॥ भैरैयदधिमण्डेऽम्लेसौ-

वीरकतुपोदके । शीधौचाप्येपकल्पःस्यात्सुखंशीघ्रविरेचने ॥ ६ ॥

फिर इन दोनों द्रव्योंको पीसकर इनका १ तोलेका गोला बना प्रसन्ना और संधे-नमकके साथ हृद्रोग और कफवातजनित गुल्मरोगमें प्रयुक्त करे । अथवा चिरौंजी, पट्टि, बेर जंगली बेर अंबाडा और अनार इनसबका क्वाथ या रस लेकर उसके साथ अक्षमात्र शंखिनी सप्तलाकी गोली खावे । अथवा द्राक्षा, पनस, खजूर, बेरका रस और फालसेका रस इनसे उस गोलीको सेवन करे । वा भैरैय दधिमण्ड, कांजी, सौवीरक, तुपोदक और शीधु इनमेंसे किसीके साथ गोली खावे तो विरेचन होकर हृद्रोग और कफवात गुल्म दूर होता है । तथा इसके योगसे सुखपूर्वक शीघ्र विरेचन होजाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

तैलंविदारिगन्धाद्यैःपयसिक्वथिते पचेत् । सप्तलाशंखिनीकल्के

त्रिवृच्छ्यामार्द्धभागिकोदधिमण्डेनसन्धायसिद्धंतत्पाययेत्चा॥७॥

तेल १ सेर, शालपर्णी आदि गणसे सिद्ध किया दूध ४ सेर, सप्तला और शंखिनीका कल्क २० तोला, लाल और काली निशोयका कल्क आधा पाव दहीका मण्ड ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इस तेलको दहीके मण्डमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ ७ ॥

शंखिनीचूर्णभागौद्वौनीलीचूर्णस्यचापरः ॥ ८ ॥ हरीतकीकपाये-

प्रतैलंतत्पीडितंपिबेत् । अतसीसर्पपैरण्डकरज्वेषसंविधिः ॥९॥

शंखिनीका घूर्ण २ भाग, नीलनीका चूर्ण १ भाग, यह दोनों तिलोमें मिलाकर

उन तिलोंको कोल्हूमें पीड़ितकर तेल निकलवा लेवे । इस तेलमें हरडोंका क्वाथ मिलाकर पीवे । इसी प्रकार तिलोंके बदलेमें अलसी, सरसों परण्डके बीज और करंजके बीजोंकी गिरी इन चारोंमेंसे किसी एकमें शंखिनी और नीलनीका चूर्ण उपरोक्त विधिसे मिलाकर तेल निकाले । इस तेलको हरडाके क्वाथमें मिलाकर पीनेसे उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

शंखिनीसप्तलासिद्धात्क्षीराद्यदुदियाद्दृतम् । कल्कभागंतयोरेवत्रि-
वृच्छयामार्द्धसंयुतम् । क्षीरेणालोढ्यसम्पकंपिबेत्तच्चविरेचनम् ॥१०॥

सातला और शंखिनीसे सिद्ध किये हुए दूधको जमाकर उसका घृत निकाल लेवे । यह घी १ सेर सप्तला और शंखिनीका कल्क १० तोला, काली और लाल निशोयका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इस घृतको उचित मात्रासे दूधमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन हो जाताहै ॥ १० ॥

तथादन्तीद्रवन्त्योःस्यादजशृङ्गयजगन्धयोः ॥ ११ ॥ क्षीरिण्या-
नीलिकायाश्चतथैवचकरञ्जयोः । मसूरविदलायाश्चप्रत्यक्ष्रेण्या-
स्तथैवच ॥ १२ ॥

इसी प्रकार दंती और द्रवन्तीके साथ सिद्ध किये हुए दूधको जमाकर उसका घृत निकाल लेवे । इस १ सेर घृतमें सातला और शंखिनीका कल्क १० तोला, दोनों प्रकारके निशोयका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर मिलाकर घृत सिद्ध करे । अथवा मेंढासिंगी और अजवायनसे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत शंखिनी, सप्तलाके कल्क द्वारा पूर्वोक्त रीतिसे सिद्धकरे । अथवा क्षीरिणी और नीलिकासे सिद्ध कियाहुआ घृत लेकर वा वच और करंजसे सिद्ध किये दूधका घृत लेकर उस घृतमें सातला, शंखिनी और दोनों प्रकारके निशोयका कल्क मिलाकर उपरोक्त विधिसे घृत सिद्ध करे । अथवा शंखिनी और सप्तलाके दूधसे निकालाहुआ घृत १ सेर उसमें शंखिनी सप्तलाका कल्क १० तोला, मसूरकी दाल और दंतीका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर मिलाकर घृत सिद्धकरे । यह सब घृत उत्तम विरेचन करनेवाले हैं । इनमेंसे किसी १ घृतको ४ तोला लेकर पावभर दूधमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

विडङ्गाद्धाशकल्केनतद्वत्साध्यंघृतंपुनः ।

शंखिनीसप्तलाधात्रीकपायेसाधयेद्घृतम् ॥ १३ ॥

शंखिनी और सप्तलासे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत १ सेर वायविडंगका क्वाथ

आय पाव । शंखिनी सप्तलाका कल्क आय पाव और दूध ४ सेर । इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । अथवा शंखिनी, सातला और आँवलेके कायसे उसी प्रकार घृत सिद्ध करे । यह संपूर्ण घृत दूधमें मिला पीनेसे उत्तम विरेचन करते हैं ॥ १३ ॥

त्रिवृत्कल्पेनसर्पिश्चत्रयोलेहाश्चपूर्ववत् ।

सुराकम्पिह्योर्योगःकार्योलोध्रवदेवच ॥ १४ ॥

शंखिनी और सप्तलाके त्रिवृत् कल्पाध्यायमें कहेहुए विधानसे घृतपाक और तीन प्रकारके अवलेह सिद्धकर विरेचनके लिये प्रयोग करे । तिल्वककल्प अर्थात् इसी कल्पके नवमें अध्यायमें सुरा और कमीलेके योगसे लोधके जो दो प्रकारके विरेचन योग बनतेहैं उसी प्रकार शंखिनी और सप्तलाके भी सुरा और कमीलेके योगसे दो प्रकारके योग बनाना चाहिये ॥ १४ ॥

दन्तीद्रवन्त्योःकल्पेनसौवीरकतुषोदके ।

अजगन्धाजशृङ्गयोश्चतद्वत्स्यातांविरेचने ॥ १५ ॥

आगे दंती और द्रवंतीके कल्पमें जिस प्रकार सौवीरक और तुषोदक, अजवायन, और भेंडासिंगीके योगसे बनतेहैं उसी प्रकार शंखिनी और सप्तलाके भी सौवीरक और तुषोदक बनावे । यह सौवीरक और तुषोदक भी उत्तम विरेचनकर्ता योग है ॥ १५ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

कपायादशपद्चैवपद्तैलेऽष्टौचसर्पिपि । पञ्चमद्येत्रयोलेहायोगाः

काम्पिह्यकेतथा ॥ १६ ॥ सप्तलाशंखिनीभ्यांतेत्रिंशदुक्तामवाधि-

काः । योगाःसिद्धाःसमस्ताभ्यामेकशोऽपिचतेहिताः ॥ १७ ॥

इतिश्रीचरककल्पस्थानेसप्तलाशंखिनी कल्पो नामैकादशोऽध्यायः ११॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कइतेहैं कि इस शंखिनीसप्तलाकल्पमें क्वायके योगसे १६ योग, तैलसे ६ योग, घीके ८ योग, मद्यके ५ योग, लेहके ३ योग, कमीलाका १ योग । इस प्रकार सब मिलकर ३९ योग कहेंहैं । यह ३९ योग अकेली शंखिनी और अकेली सातलासे अलग २ भी होसकतेहैं और दोनोंको मिलाकर भी यह उपयोग विरेचनके लिये उत्तम हितकर्ता है । दोनोंको अलग २ करनेसे यह ७८ योग होजातेहैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

इति श्रीच० प्र० आ० से०कल्पस्थाने प्र०भा०टी०शंखिनीसप्तलाकल्पोनामैकादशोऽध्यायः॥११॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातोदन्तीद्रवन्तीकल्पंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम दंती और द्रवंतीके कल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

‡ दंतीद्रवंतीके नाम ।

दन्त्युदुम्बरपर्णीस्यान्निकुम्भोथमुकूलकः ।

द्रवन्तीनामतश्चित्रान्यग्रोधीमूपिकाह्वया ॥ १ ॥

दंती, उदुम्बरपर्णी और मुकूलक यह दंती (छोटे जमालगोटेकी जड) के नाम हैं । तथा द्रवंती, चित्रा, न्यग्रोगी और मूपिकाह्वया यह द्रवंतीके नाम हैं ॥ १ ॥

इनके ग्रहण और शोधनक्रम ।

तयोर्मूलानिसंगृह्यस्थिराणिवहलानिच । हन्तिदन्तप्रकाराणि
श्यावताम्राणिवुद्धिमान् ॥ २ ॥ पिप्पलीमधुलितानिस्वेदयेन्मृत्कु-
शान्तरे । शोपयेदातपेऽर्काभौहताह्येषांविकारिता ॥ ३ ॥

दंती, द्रवंतीका मूल जो स्थिर, पुष्ट, हाथीके दांतके समान चमकीले तथा श्यामतायुक्त ताम्रवर्ण हों उनको बुद्धिमान् वैद्य उखाड कर उचित समयमें ले आवे । फिर इन जड़ोंपर पीपलका चूर्ण लगाकर कुशासे लपेट देवे । ऊपरसे मट्टीका लेप कर दे । फिर इनको अग्निमें किंचित् स्वेदित करे । फिर मट्टी आदि दूरकर गरमपानीसे धोडाले और धूपमें सुखा लेवे । ऐसा करनेसे इनका विकार नष्ट होजाताहै और यह शुद्ध होजाती हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

दंती और द्रवंतीके गुण ।

तीक्ष्णोष्णान्याशुकारीणिविकाशीनिगुरूणिच ।

विलापयन्तिदोषौद्रौमारुतंकोपयन्तिच ॥ ४ ॥

दंती और द्रवंती यह दोनों तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी, विकाशी और भारी हैं तथा कफ और पित्तको नष्ट करतीहैं एवं अत्यंत विरेचन होनेपर वायुको प्रकृषित करतीहैं ॥ ४ ॥

दंतीद्रवंतीके प्रयोग ।

दधितक्रसुरामण्डैःपिण्डमक्षसंतयोः । पियालकोलवदरपीलु-

शीघ्रुभिरेवच ॥ ५ ॥ पिवेद्गुल्मोदरीदोषैरभिखिन्नश्चयोनरः ।

गोमृगाजरसैःपाण्डुःकृमिकुष्ठीभगन्दरी ॥ ६ ॥

दंती और द्रवंती इन दोनोंका १ तोला कल्क, दही, छाछ, सुरामण्ड, बेरका क्वाथ, पीलूका क्वाथ और शीघ्रु इनमेंसे किसी एकके साथ पीवे तो यह विरेचन मनुष्योंके गुल्मरोग, उदररोग और अभिष्यदंता इन सबमें हितकारक है अथवा गौके दूध वा हिरनके मांसरसके अथवा बकरेके मांसरसके साथ कृमिरोग, पाण्डुरोग, कुष्ठरोग और भगन्दररोगवाले मनुष्योंको पिलाना हितकारी है ॥ ५ ॥ ६ ॥

तयोःकल्केकपायेचदशमूलरसायुते ।

कक्ष्यालजीविसर्पेषुदाहेचविपचेद्दृतम् ॥ ७ ॥

दंती और द्रवंतीके कल्क और क्वाथ तथा दशमूलका क्वाथ मिलाकर सिद्ध किया घृत कघराली (बगलमें होनेवाली गिल्टी) विसर्प और दाहमें विरेचनके लिये प्रयोग करना हितकारक है ॥ ७ ॥

तैलंमेहेचगुल्मेचसोदावर्त्तकफानिले ।

चतुःश्लेहंशकृच्छ्रकृवातसङ्गानिलार्त्तिपु ॥ ८ ॥

इसी प्रकार दंती, द्रवंतीके कल्क, क्वाथ और दशमूलके क्वाथसे सिद्ध किया तैल, प्रमेह, गुल्म, उदावर्त्त और कफवात व्याधिमें पिलाना हितकारक है । और इसी प्रकार दंती, द्रवंतीके कल्क, क्वाथ और दशमूलके क्वाथसे सिद्ध किया चतुःश्लेह मलके विबंध, वीर्यके विबंध और वायुके विबंधको दूर करताहै तथा वातजनित व्याधियोंको दूर करताहै ॥ ८ ॥

रसेदन्त्यजशृङ्गथोश्चगुडक्षौद्रघृतान्वितः ।

लेहःसिद्धोविरेकार्थेदाहसन्तापमेहनुत् ॥ ९ ॥

दंती और मेंढासिंगीके क्वाथमें गुड और घी मिलाकर अवलेह सिद्धकरे । इस अवलेहमें शहद मिलाकर चाटनेसे विरेचन होकर संताप, दाह और प्रमेह नष्ट होजाताहै ॥ ९ ॥

वाततर्पेज्वरैपैत्तेस्यात्सएवाजगन्धया ॥ १० ॥

अजवायन और दंतीके क्वाथमें चतुर्थांश गुड और घी मिलाकर अवलेह बनावे । इस अवलेहको शहद मिलाकर चाटे तो विरेचन होकर वायुकी तृषा और पित्तज्वर नष्ट होतेहैं ॥ १० ॥

मूलदन्तीद्रवन्त्योश्चपचेदामलकीरसे । त्रींस्तुतस्यकपायस्यभागौ-
द्रौफाणितस्यच । तसेसर्पिपितैलेवाभर्जयेत्तत्रचायपेत् ॥ ११ ॥
कल्कंदन्तीद्रवन्त्योश्चश्यामादीनाञ्चभागशः । तत्सिद्धंप्राशयेत्त्रैहं
सुखंतेनविरिच्यते ॥ १२ ॥

दंती, द्रवंतीकी जडका कल्क और आमलेका रस मिलाकर पकावे । जब चौथा-
भाग शेष रहे तो उतारकर छानलेवे । यह क्वाथ तीन भाग और फाणित (रात्र)
दो भाग घृत और तेल आठवां भाग मिलाकर पकावे । जब गाढा होनेपर आवे तो
इसमें दंती, द्रवंती और निशोथ आदि गणकी औषधियोंका चूर्ण मिलाकर अवलेह
सिद्ध करे । इस अवलेहके चाटनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

रसेचदशमूलस्यतथावैभीतकरसे ।

हरीतकीरसेचैवलेहानेवंपचेत्पृथक् ॥ १३ ॥

दशमूल, घड़े और हरड इन तीनोंमेंसे किसी एकके क्वाथमें दंती, द्रवंतीको
पकावे । चौथाईभाग शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस रसमें पूर्वोक्त द्रव्य मिला-
कर अवलेह सिद्ध करे । यह तीनों प्रकारके अवलेह विरेचन करानेमें उत्तम
योग हैं ॥ १३ ॥

तयोर्विल्वसमंचूर्णतद्रसेनैवभावितम् ।

असृष्टविपिवातोत्थेगुल्मेचाम्बुयुतंशुभम् ॥ १४ ॥

दंती, द्रवंतीके १ पल चूर्णको दंती द्रवंतीके रसमें भावना देकर चूर्ण करले ।
यह चूर्ण मलके विबंधमें और वातगुलममें कांजीके साय पिलावे तो परम
हितकारी हो ॥ १४ ॥

पाटयित्वेक्षुकाण्डंवाकल्केनालिप्यचान्तरा ।

स्वेदयित्वाततःखादेत्सुखंतेनविरिच्यते ॥ १५ ॥

एक मोटे पौंडा (गन्ना) को बीचमेंसे चीरकर उसमें दंती और द्रवंतीका कल्क
भरे । फिर उस पौंडिको उसी प्रकार जोड़कर बांध देवे । इसको अग्निमें भूनकर
फिर इसका रस निकाल लेवे । इस रसके र्णनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ।
अथवा दंती, द्रवंतीके कल्कको ईसके रसमें घोलकर र्णनेसे सुखपूर्वक विरेचन
होजाताहै ॥ १५ ॥

मूलदन्तीद्रवन्त्योश्चसहसुद्धेर्विपाचयेत् ।

लावतित्तिरिकाणाथने साःस्युर्विरेचने ॥ १६ ॥

दंती द्रवन्तीको डालकर सिद्ध किया मूंगका चूप अथवा लवा या तीतरका मांस-
रस पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होताहै ॥ १६ ॥

तयोर्वापिकपायेणयवागूंजाङ्गलंरसम् । माषयूपांश्चसंस्कृत्यदद्यात्ते-
नविरिच्यते ॥१७॥ तत्कपायात्रयोभागाद्द्वीसितायास्तथैवच । ए-
कोगोधूमचूर्णानांकार्य्याचोत्कारिकाशुभा ॥ १८ ॥ मोदकोवास्य-
कल्केनकार्य्यस्तत्रविरेचने । तयोर्वापिकपायेणमद्यमस्योपकल्पये-
त् ॥ १९ ॥

दंती द्रवन्तीके क्वायमें सिद्ध कीहुई यवागू अथवा जंगली जीवोंका मांसरस वा
उडदोंका चूप, घृतमें भूनकर पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै । दंती, द्रवन्तीका
क्वाय तीनभाग, मिसरी २ भाग, गेहूंका चूर्ण १ भाग इन सबको मिलाकर घूडिये
वनवे । इन घूडियोंके खानेसे उत्तम विरेचन होताहै अथवा दंती, द्रवन्तीके कल्क-
को मिसरी और गेहूंके योगसे हलवा या लड्डू बनावे तो उत्तम विरेचन होताहै ।
अथवा दंती, द्रवन्तीका क्वाय और बराबरकी मद्य मिलाकर आठ दिनतक धर रखवे
फिर इसके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होताहै ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

दन्तीकाथेनचालोडयदन्तीतैलेनसाधितम् ।

गुडलावणिकान्भक्ष्यान्विधिधान्भक्षयेन्नरः ॥ २० ॥

गुड और सेंधानमक युक्त जितने प्रकारके भक्ष्य पदार्थ हैं अर्थात् पृडां, पृडी,
पकौडी आदि बनाना चाहै तो उनको दंतीके क्वायमें घोलकर दंतीसे सिद्ध किये
तैलमें पकावे । इनके खानेसे भी उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ २० ॥

द्रवन्तीमारिचंदन्तीयमानीसुपकुञ्चिकाम् । नागरंहेमदुग्धीश्चचि-
त्रकश्चेतिचूर्णितम् ॥ २१ ॥ सप्ताहंभावयेन्मूत्रेगवांपाणितलंततः ।
पिबेद्धृतेनचूर्णन्तुविरिक्तश्चापितर्पणम् ॥ २२ ॥ सर्वरोगहरंमुख्यं
सर्वेष्वृतुपुशोभनम् । चूर्णतदनपायित्वाद्दालवृद्धेपुपूजितम् ॥ २३ ॥
दुर्भक्ताजीर्णपाश्वर्तिगुल्मह्रीहोदरेपुच । गण्डमालासुत्रातेचपाण्डु-
रोगेचशस्यते ॥ २४ ॥

द्रवन्ती, मिर्च, दंती, अजवायन, फालाजीरा, सोंठ, चोक, चित्रक इन सबका
चूर्णकर गोमूत्रमें ७ दिन भावना देवे । इस चूर्णको १ तोला खाकर ऊपरसे घी पीवे
और विरेचन होनेके अनन्तर खांडका शर्बत पीवे । अथवा यवके सजू, मिसरी और

जल मिलाकर पतलासा तर्पण बना पीवे । यह चूर्ण संपूर्ण रोगोंके दूरकरनेमें मुख्य है । और विकार रहित होनेसे संपूर्ण ऋतुओंमें तथा बालक, वृद्ध आदि सुकुमार प्रकृतियोंको इस चूर्णका विरेचन अत्यन्त हितकारी है । यह चूर्ण भोजनके अजीर्ण, पार्श्वपीडा, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, गण्डमाला, वातव्याधि और पाण्डुरोगको दूर करताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

पलंचित्रकदन्त्योश्चहरीतक्याश्चविंशतिः । पिप्पलीत्रिवृताक्षौद्रगुडस्याष्टपलेनतत् ॥ २५ ॥ विनीयमोदकान्कुट्याद्दशैकंभक्षयेत्ततः । उष्णाम्बुचपिवेच्चानुदशमेदशमेऽह्निच ॥ २६ ॥ एतेनिष्पारिहाराःस्थुःसर्वरोगनिवर्हणाः । ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकण्डूकोठानिलापहाः ॥ २७ ॥

चित्रक १ पल, दंती १ पल, हरड २० नग, पीपल १ पल, निशोय १ पल, शहद १ पल, गुड ८ पल । इन सबको मिलाकर १० लड्डू बनावे । इनमेंसे दस २ दिनका अन्तर देकर एक लड्डू गर्मजलके साथ सेवन करे । (अथवा एक एकके मोदककी दस दस गोलियें बना एक गोली नित्य गर्मजलके साथ सेवन करे ।) इनके सेवनमें विशेषरूपसे किसी आहार विहारका परहेज नहीं । इनके सेवनसे सब प्रकारके रोग नष्ट होतेंहैं तथा संग्रहणी, पाण्डु, चवामीर, खुजली, कोढ़ और वातरोग यह सब नष्ट होतेंहैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

दन्तीद्विपलंनिर्युहोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः ।

शोधनंपित्तकासेचपाण्डुरोगेचशस्यते ॥ २८ ॥

२ पल दंतीका क्वाथकर उस क्वाथमें आधसेर द्राक्षाका रस मिलावे । इनको मिलाकर पकावे । जब पकते २ अवलेह बनजाय तो यह अवलेह पित्तकी खांसी और पाण्डुरोगमें शोधनके लिये देवे । कोई दंतीके क्वाथ और द्राक्षाके क्वाथको मिलाकर पिलाना श्रेष्ठ मानते हैं ॥ २८ ॥

दन्तीकल्कंसमगुंडंशीतवारियुतंपिवेत् ।

विरेचनंमुख्यतमंकामलाहरमुत्तमम् ॥ २९ ॥

दंतीके कल्कको चराचरके गुडमें मिलाकर शीतल जत्रके साथ खाय तो उत्तम विरेचन हो यह विरेचन कामलारोगको दूर करताहै ॥ २९ ॥

शुण्ठीमारिचपिप्पल्याःकार्पिकास्युःपृथक्पृथक् । द्विगुणेशर्करैलेच्

शंखिनीस्याच्चतुर्गुणा ॥ ३० ॥ नीलिनीमष्टगुणितांद्विरष्टगुणितां-
 था । दन्तीद्रवन्तीत्वक्शाणमेकञ्चात्रप्रदापयेत् ॥ ३१ ॥ तस्मादर्द्ध-
 पलंचूर्णाह्निह्यान्माध्वीकसंयुतम् । शीतोदकानुपानन्तुनिरपायंवि-
 रेचनम् ॥ ३२ ॥

साँठ, मिर्च, पीपल इन सबको एक एक तोला लेवे । खांड और इलायची दो दो तोला, शंखिनी ४ तोला, नीलिनी ८ तोला, दंती, द्रवन्ती, सोलई सोलह तोला तथा दालचीनी ४ माशा इन सबको मिलाकर चूर्ण करे । इसमेंसे २ तोला चूर्ण अथवा जितना उचित हो शहद मिलाकर चाटे । ऊपरमे शीतल जल पीवे तो मुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

श्यामादन्तीरसेगौडःपिप्पलीफलचित्रकैः ।

लितेऽरिष्टोऽनिलकफप्लीहाहपांडूदरापहः ॥ ३३ ॥

एक उत्तम मट्टाके घडेमें पीपल, मैनफल और चित्रकके कल्कका लेप करके सुखालेवे फिर इस घडेमें काली निशोय और दंतीका क्वाथ तथा गुड मिलाकर भरदेवे । विधिवत् बन्दकर किसी धान्य आदिकी राशिमें गाढदेवे । २१ दिनके बाद निकालकर इस अरिष्टको पीवे तो वात, कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग और उदररोग दूर होताहै ॥ ३३ ॥

तथादन्तीद्रवन्त्योश्चकपायेणाजगन्धयोः ।

गौडःकाथ्योऽजशृङ्गयावारसैःसुखविरेचनः ॥ ३४ ॥

दंती द्रवन्ती और अजवायन इन सबके क्वाथमें गुड मिलाकर उपरोक्त रीतिसे अरिष्ट बनावे अथवा मेढासिंगी और द्रवन्तीके क्वाथमें गुड मिला अरिष्ट बनावे । इन अरिष्टोंके पीनेसे मुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ३४ ॥

तच्चूर्णकाथमापाम्बुकिण्वतोयसमुद्भवा ।

मदिराकफगुल्माल्पवेह्निपार्श्वकटिग्रहे ॥ ३५ ॥

दंती, द्रवन्तीका चूर्ण और क्वाथ, उटदोंका क्वाथ सुरावीज और जल । इन सबको मिलाकर इनसे बनाई मद्य कफ, गुल्म, मंदाग्नि, पार्श्वपीडा और कमरकी पीडाको दूर करतीहै ॥ ३५ ॥

अजगन्धाकपायेणत्तोवीरकतुषोदके ।

सुरात्र म्पिलकेयोगालोधवच्चतयोःरमृताः ॥ ३६ ॥

अजवायनके काथमें, दंती और द्रवंतीका कल्क तथा तुपरहित जवोंका काथ तथा अजवायनके काथके बराबर कांजी इन सबको मिलाकर १ चिकने घडेमें बन्दकर रखे । ६ दिनके अनन्तर ग्रह सौवीरक तय्या होजायगा और इसी प्रकार तुपोंसहित यवसे बनायाहुआ तुपोदक कहाता है । यह दंतीद्रवंतीका बनाहुआ सौवीरक और तुपोदक पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है । अथवा दंती, द्रवंतीका काथ और सुरा इन दोनोंको मिलाकर आठ दिन रखे । इसके पीनेसे भी सुखपूर्वक विरेचन होजाता है अथवा दंती, द्रवंतीके चूर्णको दंती दद्रवंतीके काथमें दस भावना देवे, फिर कर्मलिके काथमें इसी चूर्णको दस भावना देवे। यह लोध्रके समान दंती द्रवंतीका भी काम्पिल्य योग तक्र अथवा जलके साथ १ तोला पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ३६ ॥

दंती द्रवंतीके योगोंका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

दध्यादिपुत्रयः पञ्चपियालाद्यैस्त्रयोरसे । स्नेहेपुवैत्रयोलेहाः पट्चू-

र्णत्वेकएवच ॥ ३७ ॥ इक्षावेकस्तथामुद्गमांसानाञ्चरसास्त्रयः ।

यवाग्वादौत्रयश्चैव उक्तउत्कारिकाविधौ ॥ ३८ ॥ एकश्चमोदकेमध्ये

चैकंतत्प्रवाथतेलके । चूर्णमेकंपुनश्चैकोमोदकः पञ्चचासवे ॥ ३९ ॥

एकः सौवीरकेऽथैकयोगः स्यात्तुतुपोदके । एकासुराकाम्पिल्लकेचैकः

पञ्चघृतेस्मृताः ॥ ४० ॥ दन्तीद्रवन्तीकल्पेऽस्मिन्प्रोक्ताः षोडशका-

स्त्रयः । नानाविधानांयोगानांभुक्तिदोषामयान्प्रति ॥ ४१ ॥

अब इस दंती द्रवंतीकल्पके उपसंहारमें कहते हैं कि दही आदि ३ योग, चिरोंजी आदिसे ५ योग, क्वाथोंसे तीन योग स्नेहसे ३ योग, अवलेहसे ६ योग, चूर्णसे १ योग, गन्धमें १ योग, मूंगके यूप और मांसरस ३ योग, यवागू आदिसे ३ योग, पृडियोंका १ योग, मोदकका १ योग, मद्यका १ योग, काथ और तेलका १ योग, चूर्णका १ योग, फिर मोदकका १ योग, आसवके ५ योग, सौवीरकका १ योग, तुपोदकका १ योग, सुराका १ योग, कर्मलिका १ योग और घृतके ५ योग इस प्रकार सब मिलाकर दंती द्रवंतीके ४८ योगोंका वर्णन किया है । यह अनेक प्रकारके योग भोजनमें उत्पन्न हुए अजीर्ण आदि नानाविध उदररोगोंको दूर करते हैं । ३७-४१ ॥

वमन विरेचन योगोंकी संख्या ।

त्रिंशत्पञ्चपञ्चाशद्योगानां वमनेस्मृतम् । द्वेदशतेनवकाः पञ्चयोगाना-

न्तुविरेचने ॥ ४२ ॥ ऊर्ध्वानुलोमभागानामित्युक्तानिशातानिपट् ।

प्राधान्यतःसमाश्रित्यद्रव्याणिदशपञ्चच ॥ ४३ ॥

इस कल्पस्थानमें वमनके ३५५ योग कहे हैं और विरेचनके ३४५ योग हैं । इस प्रकार दोनोंको मिलाकर ऊर्ध्व विरेचन और अधोविरेचनके ६०० योगोंका कथन किया है । इन योगोंमें निशोथ आदि १५ द्रव्योंको प्रधान माना है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ योगोंमें द्रव्यकी प्रधानता ।

यद्धियेनप्रधानेनद्रव्यंसमनुसृज्यते । तत्संज्ञकःससंयोगोभवतीति
विनिश्चितम् ॥ ४४ ॥ फलादीनांप्रधानानांगुणभूताःसुरादयः । ते
हितान्यनुवर्तन्तेमनुजेन्द्रभिवेतरे ॥ ४५ ॥ विरुद्धवीर्यमप्येषां
प्रधानानामबाधकम् । समानवीर्यन्त्वधिकंक्रियासामान्यमिष्य-
ते ॥ ४६ ॥

जो प्रधान द्रव्य जिस अन्य द्रव्यके साथ मिलाया जाता है वह उस प्रधान द्रव्यकी गुणकी प्रधानतासे उस द्रव्यका संयोग होता है जैसे मैनफल आदि प्रधान द्रव्योंको सुरा आदि अन्य द्रव्योंमें मिला देनेसे वह सुरा आदि द्रव्य भी मैनफल आदिके वामकादि गुणको ग्रहण कर लेते हैं और जैसे-अन्य मनुष्य राजाके अनुगामी होकर सब कार्य करते हैं उसी प्रकार सुरा आदिकभी मैनफल आदि प्रधान द्रव्यके अनुगामी होकर उनके अनुसारही क्रिया करते हैं । इन प्रधान द्रव्योंके गुणोंको विरुद्ध वीर्यद्रव्य भी विगाड नहीं सकते और समाग वीर्य द्रव्य प्रधान द्रव्यके साथमें मिला दिये जाय तो प्रधान द्रव्य औरभी विशेषरूपसे क्रियाके करनेवाले होते हैं ॥ ४४-४६ ॥

विरुद्धवीर्य द्रव्योंके मिलानेका हेतु ।

इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धार्थप्रतिचामयम् । अतोविरुद्धवीर्याणांप्रयोग-
इतिनिश्चितम् ॥ ४७ ॥

जो विरुद्धवीर्य द्रव्य मनके अनुकूल सुन्दरवर्ण, रस, स्पर्श और गंधवाला होता है मनोभिलपित करनेके लिये उसी विरुद्धवीर्य द्रव्यका वमन, विरेचनादिकोंमें संयोग कियाजाता है । और जो मनोनुकूल गंध, वर्णादियुक्त न हो तथा रोगविशेषमेंभी किसी प्रकार लाभदायक न हो और उससे वमन विरेचनादि क्रियामेंभी कुछ गुण न पहुंचता हो तो उस विरुद्धवीर्य द्रव्यको प्रधान द्रव्यके योगमें मिलाना नहीं चाहिये । वह इस प्रकार गुणकारी विरुद्धवीर्य द्रव्यका प्रयोग कियाजाता है । जैसे किसी विरेचनद्रव्यमें वातकोपकारक, रुक्षगुण हो तो उसको घृतआदि वातनाशक

स्निग्ध द्रव्यमें मिलाकर दे देनेसे विरेचनक्रियाभी उत्तम होजातीहै और रूक्षता आदि हानिकारक दोषभी नहीं रहता । इस प्रकार प्रथम द्रव्यका विरुद्ध वीर्यद्रव्यसे संयोग कियाजाताहै ॥ ४७ ॥

भावना देनेका गुण ।

भूयश्चैपांचलाधानंकार्यस्वरसभावनैः । सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्या-
द्वहुकर्मकृत् । स्वरसैस्तुल्यवीर्यैर्वा तस्माद्द्रव्याणि भावयेत् ॥ ४८ ॥

प्रधानद्रव्यको उसीके स्वरसकी भावना देनेसे वह द्रव्य विशेष बलवान् होजाता-
है । इस प्रकार भावना दियेनेसे अल्प द्रव्यभी विशेष कर्मको करनेवाला होजाता-
है । इसलिये द्रव्यके चूर्णको उसीके स्वरससे वा अन्य समानवीर्यद्रव्यसे भावना देनी
चाहिये ॥ ४८ ॥

इनके संस्कारादि विषयमें ज्ञातव्य ।

अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्याल्पकर्मताम् ।

कुर्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥ ४९ ॥

संयोग, वियोग, काल, संस्कार और युक्तिके बलसे अल्प द्रव्य भी महान् अर्थको
करनेवाला और महान् द्रव्यभी अल्प अर्थको करनेवाला होजाताहै ॥ ४९ ॥

प्रदेशमात्रमेतावद्द्रव्यमिह पट्शतम् ।

स्वबुद्धयैव सहस्राणिकोटीर्वापि प्रकल्पयेत् ॥ ५० ॥

इसप्रकार इन ६०० वमन, विरेचनके योगोंका निदर्शनमात्र कथन कियाहै बुद्धि-
मान् षेद्य दोष, काल, द्रव्य, संस्कार युक्तिविशेषसे ऐसी हजारों और करोड़ों
योगोंकी कल्पना कर सकतेहैं ॥ ५० ॥

योगोंक ३ भेद ।

बहुद्रव्यविकल्पत्वाद्योगसंख्यानविद्यते ।

तीक्ष्णमध्यमृदूनान्तुतेषां शृणुत लक्षणम् ॥ ५१ ॥

द्रव्योंके विकल्पभेदसे तथा रोगविकल्पसे द्रव्योंके योगोंकी गणना नहीं हो
सकती इसलिये इन सत्र वमन, विरेचनकारक द्रव्योंके तीक्ष्ण, मध्य और मृदु यह
३ विभाग कियेहैं । अब इनके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ ५१ ॥

तीक्ष्णयोगके लक्षण ।

सुखं क्षिप्रं महावेगमसक्तं यत्प्रवर्तते । नातिग्लानिकरं पायौ हृदये न च

रुक्मरम् ॥ ५२ ॥ अत्राशयमनुक्षिणवन्कृत्स्नदोपनिरस्यति । विरे-
चनंनिरूहोवाततीक्ष्णामितिनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥

जिस प्रयोगके करनेसे शीघ्र मलका समुदाय ढीला होकर महावेगके साथ निकलने लगे और उस महावेगके कारण किंचित् ग्लानि, गुदा और हृदयमें किंचित् व्यथा उत्पन्न करे तथा आमाशय आदिकोंको क्षीण करके संपूर्ण दोष निकालडाले । इस प्रकारके विरेचन अथवा निरूहणको तीक्ष्ण प्रयोग कहतेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

द्रव्यमें तीक्ष्णताका कारण ।

जलाम्बिकीटैरस्पृष्टदेशकालगुणान्वितम् ।

ईपन्मात्राधिकैर्युक्तंतुल्यवीर्यैःसुभावितम् ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्यतीक्ष्णत्वंयातिभेषजम् ॥ ५४ ॥

जो द्रव्य अग्नि, जल और कीड़े आदिसे दूषित न हुआहो तथा देश, काल, गुण संपन्न हो और तुल्यवीर्य द्रव्यसे भावित कियागया हो उस द्रव्यका स्नेहन, स्वेदन करनेके अनन्तर अधिकमात्रासे प्रयोग कियाजाय तो वह तीक्ष्ण वेगको धारणकर लेताहै ॥ ८४ ॥

मध्यमयोगके लक्षण ।

किञ्चिदेभिर्गुणैर्हीनंपूर्वोक्तैर्मात्रयातथा ।

स्निग्धस्विन्नस्यवासम्यङ्गध्यंभवतिभेषजम् ॥ ५५ ॥

जो द्रव्य इन ऊपर कहे गुणोंसे किंचित् हीन हो और हीनमात्रासे प्रयोग किया गया हो वह स्निग्ध और स्वेदन कियेहुए रोगीको भली प्रकार प्रयोग किया गया हो तो वह द्रव्य मध्यवेगको धारण करता है ॥ ५५ ॥

हीनयोगके लक्षण ।

मन्दवीर्यविरुक्षस्यहीनमात्रन्तुभेषजम् ।

अतुल्यवीर्यैःसंयुक्तंमृदुस्यान्मन्दवेगवत् ॥ ५६ ॥

अकृत्स्नदोषहरणादशुद्धंतद्वलीयसाम् ।

मध्यावरवलानान्तुप्रयोज्योसिद्धिमिच्छता ॥ ५७ ॥

जो द्रव्य मंदवीर्य हो और रुक्ष शरीर रोगीको दियाजाय तथा विरुद्धवीर्य द्रव्योंसे भावना दिया हो वह द्रव्य मृदु और मंदवेगवाला होताहै । मंदवेगवाला द्रव्य अर्थात् हीनयोग उत्तम रीतिमें दोषोंको निकाल नहीं सकता । बल्कि बलवान् मनुष्यके

शरीरमें हीनयोग अशुद्धिको पैदाकर देता है । इस लिये सिद्धिकी इच्छावाले वैद्यको निर्वल रोगियोंको और मध्यवल रोगियोंको यह मंदवेग, मृदु विरेचनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

तीनप्रकारकी व्याधि आदि विचार ।

तीक्ष्णोमध्योमृदुव्याधिःसर्वमध्याल्पलक्षणः ।

तीक्ष्णादीनिवलापेक्षीभेषजान्येपुयोजयेत् ॥ ५८ ॥

संपूर्ण लक्षणोंवाली व्याधि तीक्ष्ण कही जाती है और मध्यम लक्षणवाली व्याधि-को मध्यम कहते हैं । अल्पलक्षणवाली व्याधिको मृदुव्याधि कहते हैं । इसी प्रकार तीन प्रकारकी व्याधि और बलभेदसे तीन प्रकारके रोगी तथा तीक्ष्णादि भेदसे तीनप्रकारकी औषध विचारकर विधिवत् प्रयोग करना चाहिये ॥ ५८ ॥

वमनमें विशेषकर्तव्य ।

देयन्त्वनिर्हतेपूर्वपीतेपश्चात्पुनःपुनः । भेषजं वमनार्थाय प्रायः आपि-
त्तदर्शनात् ॥ ५९ ॥ चलत्रैविध्यमालक्ष्यदोषाणामातुरस्य च ।

पुनःप्रदद्यान्नैपज्यंसर्वशोवाविचर्जयेत् ॥ ६० ॥

जिस मनुष्यको वमनकारक औषधके पीजानेसे यद्योचित दोष न निकले उसको बारबार वमनकारक द्रव्य पिलाते रहना चाहिये । जब पित्त निकलने लगे तब वमन उत्तम होगया ऐसा जानना चाहिये । रोगीके उत्तम, मध्य और हीनबलको विचार तथा इसीप्रकार दोषोंके बलको विचारकर बारबार औषधका प्रयोगकर दोषोंको निकाले । जब दोष निकलजाय अथवा काल आदि विचारले तब शोधक औषधीका सर्वथा प्रयोग बन्द कर देना चाहिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥

निर्हतेवापि जीर्णवा दोषनिर्हरणेषुधः ।

भेषजेऽन्यत्प्रयुञ्जीतप्रार्थयन्सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ६१ ॥

यदि वमनकारक औषध निकल गई हो अथवा पचजाय या वमनका वेग न हो तो शुद्धिमान् वैद्य उत्तम सिद्धिकी इच्छा करताहुआ उन रोगीको फिर वमन करानेके लिये औषधी पिलावे ॥ ६१ ॥

अपक्वं वमनं दोषात्पच्यमानां विरेचनम् ।

निर्हरेद्दमनस्यातःपाकं प्रतिपालयेत् ॥ ६२ ॥

वमनकारी औषध, परिपाक होनेसे पहिलेही दोषोंको लेकर निकलजाती है और विरेचनकारक औषधी पाचन होकर दोषोंको निकलती है । इसलिये वमनकारक

औषधीके परिपाकके समयकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये अर्थात् औषधी पीनेके थोड़ी देर बादतक वमन हो तो उस वमनके लानेका यत्न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

विरेचनमें कर्तव्य ।

पीतेप्रसंसनेदोषान्ननिर्हृत्यजरांगते ।

वमितेचौषधेधीरःपाचयेदातुरंपुनः ॥ ६३ ॥

विरेचन औषधी पीनेके बादमें जब वह औषध पाचन होजाय तो उस औषधकी मददके लिये अन्य विरेचनकर्त्ता औषधी देवे । परन्तु विरेचन औषधी खिलानेके बादही झटपट और विरेचनकारक औषधी नहीं देना चाहिये । सौंफका अर्क आदि गर्भकरके अथवा अन्य उपयोगी द्रव्य देते रहना चाहिये । यदि विरेचनकी औषधी वमन होकर निकलजाय तो उसको और विरेचनकारक औषधी पिलाना चाहिये । यदि जीर्ण होजाय तो विरेचन करानेवाली अन्य मददगार औषधी पिलाकर विरेचन करावे ॥ ६३ ॥

दीप्तान्निवहुदोषश्चदृढस्तेहगुणनरम् ।

दुःशोध्यंतदहर्भुक्तंश्वोभूयःपाचयेत्पुनः ॥ ६४ ॥

जिस मनुष्यकी अग्नि अत्यन्त बलवान् हो अथवा बहुदोषयुक्त हो वा अत्यन्त स्नेहसे स्निग्धकाय हो उसका प्रायः साधारण औषधीके प्रयोगसे शोधन नहीं हो संकता । क्योंकि अग्नि, दीप्त होनेसे औषध पचजाती है । बहुदोष होनेसे अल्पबल औषध क्रिया नहीं करसकती । स्निग्ध शरीरमें रूक्ष औषध अपना काम नहीं कर सकंती ऐसे समय उस रोगीको उसदिन और शोधन औषध न देकर भोजन करावे । फिर दूसरे दिन शोधन औषध पिलाकर शोधन कराना चाहिये ॥ ६४ ॥

दुर्बलोवहुदोषश्चदोषपाकेनयोनरः ।

विरिच्यतेरसैर्भोज्यैर्भूयस्तमनुसारयेत् ॥ ६५ ॥

जो दुर्बल रोगी बहुदोषयुक्त हो उसके दोष यदि विरेचनके दिन न निकलसकें और उसको विरेचनकी औषधी पचजाय और दोषोंके पाचन होनेके अनन्तर मल निकलने लगे तो उस रोगीको दूसरे दिन विरेचनकारक औषधी न पिलाकर विरेचनका रस, यूप, तथा वाहारद्रव्योंका भोजन कराकर मल निकालना चाहिये ॥ ६५ ॥

वमनैश्चविरेकैश्चविशुद्धस्याप्रमाणतः ॥

भोजनान्तरपानाभ्यांदोषशेषंशमनयेत् ॥ ६६ ॥

जो रोगी वमन विरेचन होजाने परभी यथोचित शुद्ध न होतो उसके शेष दोषोंको सारक द्रव्योंसे संस्कार किये भोजन और पानकादि पदार्थोंका सेवन कराके निकाल डाले-॥ ६६ ॥

दुर्बलशोधितपूर्वमल्पदोषश्चमानवम् । अपारिज्ञातकोष्ठश्चपाययेदौ-
पधंमृदु ॥६७॥ श्रेयोमृदूसकृत्पीतमल्पवाधंनिरत्ययम् । नचाति-
तीक्ष्णंयत्क्षिप्रंजनयेत्प्राणसंशयम् ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य दुर्बल हो अथवा अल्प दोषयुक्त हो वा उसके कोष्ठकी मृदुता झूटताका परिचय न हो उसको प्रथम मृदुविरेचन देनाही श्रेष्ठ होताहै । क्योंकि मृदुद्रव्य-वार २ देनेसे भी कुछ हानि नहीं होती । परन्तु अतितीक्ष्ण योगका प्रयोग करना अच्छा नहीं तीक्ष्ण योगसे ऐसे मनुष्योंके प्राणतक नाश होनेका भयहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

दुर्वलोऽपिमहादोषोविरेच्योवहुशोऽल्पशः ।

मृदुभिर्भेषजैर्दोषाहन्युर्ह्येनमनिर्हताः ॥ ६९ ॥

दुर्बल रोगीके शरीरमें यदि दोष बलवान् हों तो उसको मृदु थोड़ी २ औषध कईवार पिलाकर दोषोंको निकाल देना चाहिये । क्योंकि निर्वल रोगीको एकवार पिलाई हुई बलवान् औषध यदि पचजाय तो उसके प्राणोंको नष्ट करदेतीहै ॥ ६९ ॥

यस्योद्ध्वं कफसंसृष्टं पीतं यात्यनुलोभिकम् ।

वमितं कवलैः शुद्धं लङ्घितं पाययेत्तु तम् ॥ ७० ॥

जिस रोगीको पिलाई हुई वमनकारक औषध ऊपरके भागसे कफावृत होकर उद्ध्वगतिको प्राप्त न हो और अनुलोमन होकर अधोभागसे निकलजाय उसको कवल धारण करा कुल्ले करावे । जब मुख शुद्ध होजाय तो लंघन कराके कफसे क्षीण होनेपर फिर वमन करावे ॥ ७० ॥

विवन्धेऽल्पेचिरादोषैस्तवत्युष्णपिवेज्जलम् ।

तेनाध्मानंसत्तृच्छर्दिर्विवन्धश्चैवशाम्यति ॥ ७१ ॥

यदि वमन, विरेचन द्रव्य पीनेके अनन्तर दोष थोड़े २ और विलंबसे निकले तो बारबार गरमजल पिलावे । जिससे अफारा, प्यास, वमन और दोषोंका विबंध खुलजाय । अथवा सौंफ, और गुलकन्द ३ तोला खिलाकर ऊपरसे बारबार सौंफ-और गुलाबका अर्क गरमकर पिलाता जाय ॥ ७१ ॥

भेषजंदोषरुद्धश्चेन्नोद्ध्वं नाधः प्रवर्त्तते ।

सोद्धारंसाङ्गशूलं वास्वेदं तत्रावचारयेत् ॥ ७२ ॥

यदि शोधन द्रव्य पीयाजानेके अनन्तर दोषोंद्वारा वह ऐसा रुकजाय कि, न तो वमन द्वाराही निकले और न विरेचन हो तथा डकारें आनेलगेँ और अंगोंमें शूल हो तो उसको स्वेदन कर नम्र करनेसे दोषोंका अवरोध खुलजाता है ॥ ७२ ॥

सुविरिक्तस्तुसोद्धारमाश्रैवौषधसुहृत्सुखेत् ।

अतिप्रवर्त्तनंजीर्णैःसुशीतैःस्तम्भयेद्भिषक् ॥ ७३ ॥

यदि भलीप्रकार विरेचन हो लेनेके अनन्तर भी रोगीको डकारें आतीरहेँ और उन डकारोंमें उस औषधीकी गंध आवे तो उसके आम्राशयमें ठहरीहुई उस औषधको वमन द्वारा निकाल देवे । यदि विरेचनका अत्यंत योग होनेलगे अर्थात् दस्तोंकी अत्यंत प्रवृत्ति होजाय तो उसको शीतल क्रिया द्वारा शान्त करना चाहिये ॥ ७३ ॥

कदाचिच्छ्लेष्मणारुद्धंतिष्ठत्युरसिभेषजम् ।

क्षीणेश्लेष्मणिसायाहेरात्रौवातप्रवर्त्तते ॥ ७४ ॥

कभी कभी ऐसा भी होताहै कि कफद्वारा मार्ग रुककर शोधन औषध छातीमें ही रुकी रहती है । जब सायंकाल कफ क्षीण होजाता है अथवा रात्रिको विरेचन द्वारा निकल जाताहै अर्थात् कफद्वारा रुकनेसे शोधन द्रव्यका वेग रुका रहताहै । फिर रातको विरेचन होने लगता है ॥ ७४ ॥

रूक्षानाहारयोर्जीर्णैर्विष्टम्भोर्द्धगतेऽपिवा ।

वायुनाभेषजेत्वन्यत्सस्त्रेहलवणंपिवेत् ॥ ७५ ॥

यदि रूक्षताके कारण अथवा उपवासके कारण औषधी पचजाय । अथवा विष्टम्भ होकर वायुसे ऊपरको चलीआवे तो उस रोगीको वही औषध चिकनाई और नमक मिलाकर फिर पिलावे ॥ ७५ ॥

तृणमोहभ्रममूर्च्छाद्याःस्युश्चेज्जीर्यतिभेषजे ।

पित्तघ्नंस्वादुशीतञ्चभेषजंतत्रशस्यते ॥ ७६ ॥

शोधन औषधके जीर्ण होजानेपर यदि प्यास, वेहोशी, भ्रम और मूर्च्छा आदि उत्पन्न होजाय अथवा विरेचन होलेनेके अनन्तर प्यास, मोह, मूर्च्छादि उपद्रव होनेलगेँ तो उनको मधुर, शीतल और पित्तनाशक द्रव्योंद्वारा शान्त करे ॥ ७६ ॥

लालाद्वल्लासविष्टम्भलोमहर्षाःकफावृते ।

भेषजंतत्रतीक्ष्णोष्णंकट्टादिकफनुद्धितम् ॥ ७७ ॥

यदि शोधन द्रव्य अर्थात् वमन या विरेचनकारक द्रव्य कफसे आवृत होकर

रोगीको लार गिरना, हल्लास, विष्टम्भ और रोमांच होनेलगे तो उसको उष्ण, तीक्ष्ण और चरपरे तथा कफनाशक औषध प्रयोग करना हितकारक है ॥ ७७ ॥

लंघनयोग्य मनुष्य ।

सुस्निग्धं क्रूरकोष्ठञ्चलद्वयेदविरेचितम् ।

तेनास्यस्नेहजःश्लेष्मासङ्गश्चैवोपशाम्यति ॥ ७८ ॥

जो रोगी अत्यंत स्निग्ध होगया हो और उसका कोठा अत्यंत कठोर हो तो उस रोगीको विरेचन करानेसे पहिले लंघन कराने चाहिये । लंघन करानेसे स्नेहजनित कफका संघात (विबंध) निवृत्त होजाताहै (तदनन्तर विरेचन द्रव्यका प्रयोग करना हितकारक है) ॥ ७८ ॥

वस्तियोग्य रोगी ।

रूक्षवद्विनिलक्रूरकोष्ठव्यायामशूलिनाम् । दीप्ताग्नीनाञ्चभैषज्य-

मविरिच्यैवजीर्यति ॥ ७९ ॥ तेभ्योवस्तिपुरादच्चापश्चाद्द्या-

द्विरेचनम् । वस्तिप्रवर्त्तितंदोषं हरेच्छ्रीघ्रं विरेचनम् ॥ ८० ॥

जिन मनुष्योंका रूक्षता और अधिक वायुके कारण कोष्ठ अत्यंत क्रूर होता है अथवा अत्यंत व्यायाम, परिश्रम आदिके कारण दोष क्षीण होकर जठराग्नि तीक्ष्ण होतीहै वा जिनके वातजनित शूल उपस्थित हुआ हो ऐसे मनुष्योंको दी हुई विरेचक औषधी दस्त होनेके विनाही पचजाती है इसलिये ऐसे रोगियोंके पहिले वस्तिकर्म करके दोषोंको शान्त करे । जब दोष अनुलोमन होकर निकलनेलगे फिर विरेचन द्रव्य देवे । वस्तिद्वारा चलेहुए दोष विरेचनसे शीघ्र निकल जातेहैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

शोधनके अयोग्य मनुष्य ।

रूक्षाशनाः कर्मनित्यायेनरादीप्तपावकाः । तेषांदोषाः क्षयंयान्ति

कर्मवातातपाग्निभिः ॥ ८१ ॥ विरुद्धाध्यशनाजीर्णान्दोषानपि ज-

यन्ति ते । स्नेह्यास्तेमारुताद्रक्षयानाव्याधौतान्विशोधयेत् ॥ ८२ ॥

जो मनुष्य रूक्ष पदार्थोंका सेवन करते हैं तथा नित्य प्रति धूप, परिश्रम आदि सहन करते हैं उनकी इन कारणोंसे जठराग्नि अत्यंत दीप्त होती है । और वायु, धूप, आग्नि और अत्यंत परिश्रम आदि करनेसे दोष क्षीण होजाते हैं । तथा विरुद्ध भोजन, भोजनपर भोजन अजीर्णमें भोजनसे उत्पन्न हुए दोष भी शान्त होजाते हैं । ऐसे मनुष्योंको स्नेहन करना चाहिये । और उनके शरीरमें वायुका हांप न हो इस प्रकार रूक्षा करना चाहिये । ऐसे मनुष्योंको वातका कोप और रूक्षाके सिवाय अन्य कोई

व्याधी प्रायः नहीं होसकती । इसलिये इनको वमन विरेचन द्वारा शोधन करना उचित नहीं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम् ।

स्नेहोत्कृष्टशरीरायरूक्षंदद्याद्विरेचनम् ॥ ८३ ॥

जो मनुष्य-वत्यंत स्निग्ध हैं उनको स्नेह विरेचन कदापि देना नहीं चाहिये । स्नेहसे उत्कृष्ट शरीरवालोंको रूक्ष विरेचन देना चाहिए ॥ ८३ ॥

एवंज्ञात्वाविधिधीरोदेशकालप्रमाणवित् ।

विरेचनंविरेच्येभ्यःप्रयच्छन्नापराध्यति ॥ ८४ ॥

इस प्रकार देश, काल प्रमाण और विधिको जानकर विरेचनयोग्य मनुष्योंको विरेचन करानेवाला वैद्य अपराधका भागी नहीं होता । अन्यथा अर्थात् देश कालादि विना विचारे शोधन करानेवाला वैद्य अपराधी होताहै ॥ ८४ ॥

विभ्रंशोविषवद्यस्यसम्यग्योगोयथामृतम् ।

कालेष्ववशंपेयञ्चतस्माद्यत्नात्प्रयोजयेत् ॥ ८५ ॥

जिस शोधन योगका अयोग्य रीतिपर प्रयोग किया जाता है वह विषके समान हानिकारक होता है और भली प्रकार विधियुक्त प्रयोग करनेसे अमृतके समान गुणकारी होता है । इसलिये उचित रीतिपर समय आदिका विचार रखते हुए देश, काल आदि तथा दौष बलादि अनेक विधि तर्कना कर युक्तिपूर्वक औषध प्रयोग करना चाहिये ॥ ८५ ॥

द्रव्यप्रमाणन्तुयदुक्तमस्मिन्मध्येपुतत्कोष्ठवयोवलेषु । तन्मूलमालम्ब्यभवेद्विकल्प्यंतेषां विकल्पोभ्यधिकोनभावः ॥ ८६ ॥

वमन, विरेचन द्रव्योंमें जिस द्रव्यका जिस प्रकार प्रमाण कहा है उसको कोष्ठ, अवस्था और बल आदि विचारकर उनके अनुसार मात्राकी कल्पना करना चाहिये, अर्थात् कोष्ठ, अवस्था, बल आदि विचारकर औषधिकी मात्रामें न्यूनता और अधिकता करना चाहिए ॥ ८६ ॥

मानपरिभाषा ।

पङ्चदशस्तुमरीचिःस्थात्पणमरीच्यस्तुसर्पपः । अष्टौतेसर्पपारत्तिस्तण्डुलश्चापित्त्रयम् ॥ ८७ ॥ धान्यमाषोभवेदेकोधान्यमाषद्वयंयवः । अण्डकास्त्रेतुचत्वारस्ताश्चतस्रस्तुमापकः ॥ ८८ ॥

हेमश्चधानकश्चोक्तोभवेच्छाणन्तुतेत्रयः । शाणौद्रौद्रह्णंविद्यात्को-
लंबदरमेवच ॥ ८९ ॥ विद्याद्वौद्रक्षणौकर्षसुवर्णश्चाक्षमेवच ।
विडालपदकंतच्चपिचुपाणितलंतथा ॥ ९० ॥ तिन्दुकश्चवि-
जानीयात्कवलग्रहमेवच । द्वेसुवर्णेपलार्द्धस्याच्छुक्तिरष्टमिका
तथा ॥ ९१ ॥ द्वेपलार्द्धेपलमुष्टिः प्रकुञ्चोऽथचतुर्थिका । विल्वं
षोडशिकश्चात्रद्वेपलेप्रसृतंविदुः ॥ ९२ ॥ अष्टमानन्तुविज्ञेयंकुड-
वौद्रौतुमानिका । पलंचतुर्गुणंविद्यादञ्जलिकुडवंतथा ॥ ९३ ॥ च-
त्वारःकुडवाःप्रस्थश्चतुःप्रस्थमथाढकम्पात्रंतदेवविज्ञेयंकंसःप्रस्था-
ष्टकंतथा ॥ ९४ ॥ कंसश्चतुर्गुणोद्रोणश्चार्मणंलव्वनश्चतत् । सप्-
वंकलशःख्यातोघटमुन्मानमेवच ॥ ९५ ॥ घटन्तुद्विगुणंशूर्पोविज्ञे-
यःकुम्भएवच । गोणींशूर्पद्वयंविद्यात्खारींभारींतथैवच ॥ ९६ ॥
द्वात्रिंशच्चैवजानीयाद्वाहंशूर्पाणिवुद्धिमान् । तुलांशतपलंविद्यात्पं-
रिमाणविशारदः ॥ ९७ ॥

झरोखे द्वारा मकानके अन्दर सूर्यकी किरण पडनेसे जो अति सूक्ष्म उडते हुए कणसे दिखाई पडते हैं उनको बंशी कहते हैं उन ६ बंसियोंकी १ मरीची होती है । ५ मरीचियोंकी १ सरसों । ८ सरसोंकी १ रत्ती अथवा तण्डुल होता है । २ तण्डुलों का १ धन्यमाप अथवा उडद होताहै । २ धन्यमापोंका १ यव । ४ यवोंका १ अण्डका । ४ अण्डकोंका १ मापक (मासा) होताहै इसको हेम और धानक भी कहते हैं ३ धानकोंका १ साण, (टंक) होताहै । २ साणोंका १ द्रंक्षण होताहै, इसको कोल और चदर (आधुनिक व्यवहारमें ६ मासा) होताहै । २ द्रंक्षणोंका १ कर्ष (१ तोला) होताहै, इसको अक्ष विडालपदक सुवर्ण, पिचू, पाणीतल, तिन्दुक और कवलग्रह भी कहते हैं । २ कर्षोंका १ पलार्द्ध होता है इसको शुक्ति और अष्टमिका भी कहतेहैं । २ पलार्द्धका १ पल होता है, इसको मुष्टि, प्रकुंच, चतुर्थिका, विल्व, षोडशिका और आम्र भी कहते हैं । २ पलका १ प्रसृत होता है । २ प्रसृतका १ कुडव होता है, इसको अष्टमान भी कहते हैं । २ कुडवकी १ मानिका होतीहै । अथवा ऐसा समाक्षिये कि ४ पलकी १ अंजली होतीहै इसको कुडव कहते हैं । ४ कुडवका १ प्रस्थ होता है । ४ प्रस्थका १ आढक होताहै इसीको पात्र, भाजन और कंस भी कहते हैं । दो कंसोंका १ प्रस्थाष्टक होताहै । ४ कंसोंका १ द्रोण होताहै इसको अर्मण, लव्वण, कलश, घट

और उन्मान भी कहते हैं । दो घटोंका १ सर्प होताहै, इसको कुम्भ भी कहते हैं । दो सूर्पोंकी १ द्रोणी (गोणी) होतीहै, इसको खारी और भारी भी कहते हैं । ३२ सूर्पका १ वाह होताहै । और १०० पलकी १ तुला होती है । बुद्धिमानोंको इस प्रकार परिमाण जानना चाहिये ॥ ८७-९७ ॥

अनेकविध विचार ।

शुष्कद्रव्येष्विदंमानमेवमादिप्रकीर्तितम् । द्विगुणंतद्वेष्विष्टं तथा-
सद्योद्धृतेषुच ॥ ९८ ॥ यद्धिमानंतुलाप्रोक्तापलंवातत्प्रयोजयेत् ।

अनुक्तेपरिमाणेतुतुल्यंमानंप्रकीर्तितम् ॥ ९९ ॥

यह उपरोक्त संपूर्ण प्रमाण सूत्रे द्रव्योंकाही कहा है । तथा गीले और तुरन्तके लाये हुए द्रव्योंका और पतले द्रव्योंका प्रयोगमें दो गुना प्रमाण जानना । अर्थात् हरएक योगमें सब द्रव्य जिस प्रमाणसे डालेजाय उसमें यदि कोई द्रव्य गीला अथवा तत्काल उखाडकर डालना हो तो दुगुना लेना चाहिये । परन्तु तुला और पल यह सब जगह एकसाही प्रयोग करना चाहिये । अर्थात् दुगुना नहीं लेना । जिस योगमें औषधियोंका तोल न कहा हो उसमें सब बराबर लेना चाहिये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

द्रवकार्येषुपिचानुक्तेसर्वत्रसलिलंस्मृतम् ।

यतश्चपादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्चसः ॥ १०० ॥

जिस जगह पतले द्रव्योंका कथन न किया हो उस जगह पनला करनेके लिये अथवा पीनेके लिये वा अन्य द्रव कार्यके लिये जल लेना चाहिये । जिस स्थानमें पाद कहा हो उस जगह पादशब्दसे चौथाभाग लेना चाहिये ॥ १०० ॥

जलस्नेहौषधानान्तुप्रमाणंयत्रनेरितम् ।

तत्रस्यादौषधात्स्नेहःस्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ॥ १०१ ॥

जिस जगह जल, स्नेह और औषधियोंका प्रमाण न कथन किया हो उसस्थानमें औषधियोंके कल्कमे ४ गुना स्नेह और स्नेहसे ४ गुना जल लेना चाहिये ॥ १०१ ॥

३ प्रकारके स्नेहपाक ।

स्नेहपाकस्त्रिधाज्ञेयोमृदुर्मध्यःखरस्तथा । तुल्येकल्केननिर्य्यात्सेभेप-
जानांमृदुःस्मृतः ॥१०२॥ शम्पाकइवनिर्य्यासेमध्योदर्वीविमुञ्च-

ति । शीर्यमाणेतुनिर्यासेवर्त्तमानेखरस्तथा ॥ १०३ ॥

स्नेहपाक ३ प्रकारका कहा है । जेते मृदु, मध्य और खर । जहां तैलादि स्नेह

सिद्ध किया जानेपर नीचेकी गोंद पिच्छलसी नर्म रहजाय और कडछीआदिसे न लगे उसको मृदु स्नेहपाक कहते हैं । अथवा ऐसे कहिये कि तैलादि सिद्ध करनेपर गोंद कल्कके समान पतली रहजाय उसको मृदुस्नेहपाक कहते हैं । और जो अमलतासके गुद्देके समान लेईसी बनकर कडछीसे लगकर न छूटे इस प्रकार स्नेहकी गोंद होनेपर उसको स्नेहका मध्यपाक कहते हैं । तथा स्नेहपाकमें कल्कद्रव्यका सब गीलापन जलकर वह द्रव्य कडछीसे वालूके समान अलग गिरने लगे उसको खर पाक कहते हैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

उनके प्रयोग ।

खरोऽभ्यङ्गेस्मृतःपाकोमृदुर्नस्तःक्रियासुच ।

मध्यपाकान्तुपानार्थेवस्तौचविनियोजयेत् ॥ १०४ ॥

यह जो तीन प्रकारका स्नेहपाक कहा है इनमे खरपाक मालिशमें प्रयोग करना चाहिये । मृदुपाक नस्य क्रियामें प्रयोग किया जाताहै और मध्यपाक पीने तथा वस्तिकर्ममें प्रयोग करना चाहिये ॥ १०४ ॥

मानश्चद्विविधंप्राहुःकालिङ्गमागधंतथा ।

कालिङ्गान्मागधंश्रेष्ठमेवंमानविदोविदुः ॥ १०५ ॥

मानविवेक (तोल) के जाननेवालोंने कालिंगमान और मागधमान यह दो प्रकारके मान कहे हैं । इन दोनों मानोंमें मागधमान श्रेष्ठ है । (यहांपर मागधमानही कहा है) ॥ १०५ ॥

कल्पका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

कल्पार्थःशोधनंसंज्ञापृथग्धेतुःप्रवर्तते । देशादीनांफलादीनांगुणा

योगाःशतानिषट् ॥ १०६ ॥ विकल्पहेतुर्नामानितीक्षणमध्याल्प-

लक्षणम् । विधिश्चावस्थिकोमानंस्नेहपाकश्चदर्शितः ॥ १०७ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थानेसप्तलाशंखिनीकल्पो नामैकादशोऽध्यायः ११॥

यहां कल्पके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस कल्पस्थानमें कल्पका विषय, शोधनकी संज्ञा, शोधनके हीन और अधिक प्रवृत्तिके कारण तथा देशोंके गुण और मैनफल आदि द्रव्योंके गुण और ६०० प्रकारके शोधनयोग, उनके विकल्प, हेतु, नाम तथा तीक्षण, मध्य और अल्पके लक्षण, अनेक प्रकारकी अवस्था विशेषसे क्रिया, मान, परिभाषा और स्नेहपाक इन सबका वर्णन किया है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

दोहा ।

वमन विरेचन कल्पना, औषधभेद प्रकार ॥

योग ज्ञान अरु मानविध, द्वादश, कल्पमज्ञार ॥ १ ॥

देश काल रुज हेतु बल, शोधन त्रिविध प्रयोग ॥

विधिवत् जानहिं जे भिषक, हरहिं जगत्के रोग ॥ २ ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां कल्पस्थाने षट्षालाराज्यातर्गतकसालनित्रास्यायुर्वेदो-

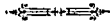
द्धारकवैद्यपञ्चानन पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायनिरचितप्रसादनीभाषाटीकायां दती

द्रवन्तीकल्पवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥



इति कल्पस्थानं समाप्तम् ।

सिद्धिस्थानम् ।



प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः कल्पनासिद्धिव्याख्यास्यामइतिहस्माह भगवानात्रेयः ।
अब हम कल्पना सिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे-
काकल्पनापञ्चसुकर्मसूक्ताक्रमश्चकःकिञ्चकृताकृतेषु । लिङ्गंतथैवा-
तिकृतेषुसंख्याकार्किगुणाःकेषुचकाचवस्तिः ॥ १ ॥ किंवर्जनीयंप्र-
तिकर्मकालेकृतेकियान्वापरिहारकालः । प्रणीयमानश्चनयातिव-
स्तिःकेनैतिशीघ्रंसुचिराच्चकेन । साध्यागदाःस्वैःशमनैश्चकेचित्क-
स्मात्प्रयुक्तैर्नशमंत्रजन्ति ॥ २ ॥

भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश पृच्छने लगे कि हे भगवन् ! १ स्नेहन, स्वेदन, वमन,
विरेचन, नस्य और वस्ति इन पंचकर्मोंकी कल्पना अर्थात् पंचकर्मोंकी क्रिया क्या
है । २ पंचकर्मोंमें किस प्रकार क्या करना चाहिये । ३ इन पंचकर्मोंके भले
प्रकार होजाने और मिथ्यायोगके क्या लक्षण हैं । ४ इनकी संख्या क्या है ।
५ पंचकर्मोंमें किसके क्या गुण हैं । ६ वस्ति क्या है । ७ अतियोगादिकोंमें
चिकित्साके समय क्या क्या वस्तुयें वर्जनीय हैं । ८ पंचकर्मद्वारा शुद्ध शरीर होने-
पर स्वाभाविक आहारविहारका कितने रोजतक त्याग करना चाहिये । ९ वस्ति
किस कारण प्रवेश नहीं कर सकती । १० की हुई वस्ति किस कारणसे शीघ्र
निकलजातीहै । ११ वस्तिके विलम्बमें प्रत्यागमन होनका कारण क्या है ।
१२ कोई २ साध्यरोग भी अपने शमनकरनेवाली औषधियोंके प्रयोगसे क्यों
शांत नहीं होते ? ॥ १ ॥ २ ॥

प्रचोदितःशिष्यवरेणसम्यगित्यग्निवेशेनभिपग्वारिष्ठः। पुनर्वसुस्त-
न्त्रविदाहतरस्मैसर्वप्रजानांहितकाम्ययेदम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार शिष्यश्रेष्ठ अग्निवेशके प्रश्न करनेपर वैद्योंमें श्रेष्ठ, आयुर्वेदतंत्रके
जाननेवाले पुनर्वसुजीने प्रजाके हितके लिये इस प्रकार कहना आरंभ किया ॥ ३ ॥

स्नेहनकी अवधि ।

व्यहवारंसप्तदिनंपरन्तुस्निग्धोनरःस्वेदयितव्यइष्टः । नातःपरंस्नेह-
नमादिशन्तिसात्मीभवेत्सप्तदिनात्परन्तु ॥ ४ ॥

मृदुकोष्ठवाले मनुष्योंको ३ दिन स्नेहपान करावे । मध्यकोष्ठवालेको ५ दिन और क्रूर कोष्ठवालेको ७ दिन स्नेहपान कराना चाहिये । ७ दिनके उपरांत शास्त्रके ज्ञाता स्नेहपान करानेको अच्छा नहीं मानते । क्योंकि ७ दिनके उपरांत स्नेह सात्म्य होकर साधारण आहारके समान होजाताहै । इसलिये ३ दिनसे कम और ७ दिनसे अधिक स्नेहपान करानेकी विधि नहीं है । स्नेहपान करानेके अनन्तर स्वेदन कराना चाहिये । (स्नेहन और स्वेदनके क्रमको सूत्रस्थानमें कह आये हैं) ॥ ४ ॥

स्नेहनस्वेदनके गुण ।

स्नेहोऽनिलंहन्तिमृदुं करोति देहं मलानां विनिहन्ति सङ्गम् । स्निग्ध-
स्य सूक्ष्मेष्वयने पुनीलं स्वेदस्तु दोषं नयति द्रवत्वम् ॥ ५ ॥

स्नेहन वायुको नष्ट करताहै, देहको नर्म करताहै और मलकी रुकावटको खोल देता है । स्नेहनके अनन्तर स्वेदन करनेसे सूक्ष्म छिद्रोंमें लीनहुए दोष पिघलकर पतले होकर निकल जाते हैं ॥ ५ ॥

शोधनके पूर्व सेवनीय द्रव्य ।

ग्राम्यौदकानूपरसैः समांसैरुत्कृशनीयः पयसा च वम्यः ।

रसैस्तथा जाङ्गलजैः सयूपैः स्निग्धः कफावृद्धिकरैर्विरेच्यः ॥ ६ ॥

वमन करानेसे पहिले मनुष्यको ग्राम्य, जलज और अनूपसंचारी जीवोंका मांस-रस तथा दूध अधिक २ मात्रासे पिलाकर उसके कफको उत्कृशित (वमनाभिमुख) करलेना चाहिये । इसी प्रकार जिस मनुष्यको विरेचन देना हो उसको पहिले जंगली जीवोंका मांसरस तथा यूप जो कफके बढानेवाले न हों उनके द्वारा स्निग्धहुए मनुष्यके दोषोंको शिथिल करलेना चाहिये ॥ ६ ॥

श्लेष्मोत्तरश्छर्दयति ह्यदुःखं विरेच्यते मन्दकफस्तु सम्यक् ।

अधः कफोऽल्पे वमनं हि गच्छेद्विरेचनं वृद्धकफे तथोर्द्धम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार कफकी अधिकता होनेपर वमन सुखपूर्वक होजाताहै और कफके मंद होनेसे विरेचन सुखपूर्वक होजाताहै । यदि मनुष्यके शरीरमें कफकी अल्पता हो तो पीयाहुआ वमन द्रव्य भी अधोमार्गसे (दस्तद्वारा) निकल जाताहै । और अधिक कफवालेका विरेचनकर्त्ता द्रव्यभी ऊर्ध्वमार्गसे (वमनद्वारा) निकलजाता है ॥ ७ ॥

स्निग्धाय देयं वमनं यथोक्तं वान्तस्य पेयादिरनुक्रमश्च ।

स्निग्धस्य सुस्विन्नतनोर्यथावद्विरेचनं योग्यतमं प्रयोज्यम् ॥ ८ ॥

स्नेहद्वारा स्निग्धदुष्ट रोगीको यथोक्तविधिसे वमन करावे और वमन होनेके अनन्तर पेयादि क्रमका पालन करे । तथा विरेचन करानेके लिये भी रोगीको पहिले विधिवत् स्नेहन और स्वेदन करके फिर उचित रीतिपर विरेचन कराना चाहिये ॥८॥

शोधनान्तमें सेवनीय द्रव्य ।

पेयां विलेपीमकृतंकृतश्चयूपंरसंत्रिद्विरथैकशश्च । क्रमेणसेवेतवि-
शुद्धकायःप्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ ९ ॥ यथाणुरग्निस्तृणगो-
मयाद्यैःसन्धुक्ष्यमाणोभवतिक्रमेण । महान्स्थिरःसर्वसहस्तथैव
शुद्धस्यपेयादिभिरन्तरग्निः ॥ १० ॥

शोधन प्रधान, मध्य और अधम इन तीन प्रकारका होता है । इन तीनोंही प्रकारके शोधनोंमें किसी प्रकारके शोधनसे शुद्धहुआ मनुष्य पहिले पेया फिर क्रमसे विलेपी आदि संस्कार करके अथवा बिनाही संस्कारकिये यूप और मांसरस थोडा २ एक, दो अथवा तीनवार करके पीवे । जैसे बहुत सूक्ष्म अग्निमें थोडासा घास और गोबरका चूर्ण आदि धीरे धीरे डालकर जैसे २ अग्नि प्रज्वलित होतीजाती है । वैसे २ उसमें लकड़ी आदि लगाते जाते हैं उससे वह अग्नि महान् होजाती है । उसी प्रकार वमन विरेचनसे शुद्ध होनेके अनन्तर प्रथमःरूक्षयूप, फिर पेया, फिर विलेपी, फिर पलासा भात इस प्रकार क्रमसे देतेदुष्ट शुद्धकाय मनुष्यकी जठराग्नि भी धीरे २ स्थिर चल-वान् और सब प्रकारके आहारको सहन करनेवाली होजाती है ॥ ९ ॥ १० ॥

शोधनके हीनमध्य और उत्तम वेग ।

जघन्यमध्यप्रवरेषुवेगाश्चत्वारइष्टावमनेपडष्टौ ।

दशैवतेद्वित्रिगुणाविरेकेप्रस्थस्तथाद्वित्रिचतुर्गुणश्च ॥ ११ ॥

वमनके उत्तम, मध्यम और निकृष्ट इन भेदोंसे तीन प्रकारके वेग होते हैं । उनमें वमनके ८ वेग होना अर्थात् वमनकारक औषधके पीनेसे भली प्रकार आठ वमन होजाना उत्तम वेग कहाता है । और ६ वमनका होना मध्यम वेग होताहै तथा ४ वमनका होना निकृष्ट वेग कहा जाताहै । इसी प्रकार विरेचक द्रव्यके पीनेसे ३० दस्तोंका होना विरेचनका उत्तम वेग होताहै । २० वेगका होना मध्यम और दशका होना निकृष्ट गिना जाताहै । वमन द्वारा वान्तद्रव्य (छर्दहुआ मल) तैलमें ६४ तोला हो तो उत्तम वेग, ४८ हो तो मध्यम वेग और ३२ तोला हो तो कनिष्ठ वेग जानना । इसी प्रकार विरेचनमें ४ प्रस्थ मल निकलना उत्तम परिमाण कहा जाताहै । तीन प्रस्थ मध्यम और २ प्रस्थ निकृष्ट प्रमाण होता है ॥ ११ ॥

उत्तम शोधनकी परीक्षा ।

पित्तान्तमिष्टं वमनं तथोर्द्ध्वमधःकफान्तश्च विरेकमाहुः ।

द्वित्रीनसविट्कानपनीयवेगान्मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥ १२ ॥

जब तक वमनमें पित्त न निकले तब तक वमन ठीक नहीं हुआ ऐसा जानना । इसी प्रकार विरेचनके अन्तमें कफ (आंव) न निकले तो विरेचन ठीक नहीं हुआ ऐसा जानना । जब वमनमें पित्त निकल लेवे तो वमन ठीक होगया जानना और विरेचनमें आंव निकलनेसे विरेचन ठीक हुआ जानना । विरेचनमें विरेचकद्रव्य पीनेके अनन्तर जो एक दो बार मल आता है उसको विरेचनके योगोंकी संख्यामें गणना नहीं करना । इसी प्रकार वमनमें पीहुई औषधि जो पहिलेही वेगमें निकलती है वह वमनके वेगोंमें नहीं गणना की जाती ॥ १२ ॥

उत्तम वान्तके लक्षण ।

क्रमात्कफः पित्तमथानिलश्च यस्येतिसम्यग्वमितः सङ्घृष्टः ।

हृत्पार्श्वसूर्द्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ तथा लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥ १३ ॥

जिस वमनमें प्रथम कफ निकले और फिर पित्त तदनन्तर वायु निकले अर्थात् कफ और पित्त निकलकर फिर शुद्ध डकार आने लगे तो वमनको शुद्ध हुआ जानना वमनसे उत्तम रीतिपर शुद्ध हुए मनुष्यके यह लक्षण होते हैं । जैसे-हृदय, पार्श्व, मस्तक, इन्द्रिये और देहके संपूर्ण छिद्र शुद्ध और निर्मल होजाय तथा शरीरमें स्वच्छता और हलकापन प्रतीत हो मन और इन्द्रिय आदि सब प्रसन्न हों यह उत्तम वमन होजानेके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

वमनके अयोग और अतियोगके लक्षण ।

दुःखदित्तेस्फोटककोठकण्डूहृत्त्वाविशुद्धिर्गुरुगात्रताच ।

तृणमोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रावलातिहानिर्वमनेऽतिचस्यात् ॥ १४ ॥

वमनकारक द्रव्यके पीनेसे यदि ठीक वमन न हो तो शरीरमें फोडे, चकत्ते, खुजली, हृदय और इन्द्रियोंकी ग्लानि तथा शरीरका भारीपन यह लक्षण होते हैं । और वमनका अतियोग होनेसे अर्थात् अत्यंत अधिक वमन होजानेसे प्यास, मोह, मूर्च्छा, वायुका कोप, निद्रानाश और बलकी हानि यह लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥

सम्यक्विरिक्तके लक्षण ।

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसंप्रसादोलघुत्वमूर्जोन्निरनामयत्वम् ।

प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां सम्यग्विरिक्तस्य भवेत्क्रमेण ॥ १५ ॥

उत्तम विरेचन होनेसे संपूर्ण स्रोतोंमें शुद्धता, इन्द्रियोंमें प्रसन्नता, शरीरमें हल्कापन, ओजकी वृद्धि, जठराग्निका बलवान् होना, शरीरका निरोग होना तथा मल, पित्त, कफ और वायु इन सबका यथोचित निकलना यह लक्षण होते हैं ॥ १५ ॥

दुर्विरिक्तके लक्षण ।

स्याच्छ्लेष्मपित्तानिलसंप्रकोपःसादस्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिश्या ।

तन्द्रातथाछर्दिरोचकश्चवातानुलोम्भ्यंनचदुर्विरिक्ते ॥ १६ ॥

विरेचक द्रव्यके पीनेसे यदि यथोचित विरेचन हों तो कफ, पित्त और वायुका कोप होना, अग्निका मंद पडजाना, शरीरमें भारीपन, प्रतिश्याय, तंद्रा, वमन अरुचि, और यथोचित अधोवायुका न निकलना यह लक्षण होते हैं ॥ १६ ॥

अतिविरिक्तके लक्षण ।

कफास्रपित्तक्षयजानिलोत्थाःसुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः ।

निद्रावलाभावतमःप्रवेशःसोन्मादहिक्काचविरेचितेऽति ॥ १७ ॥

अत्यंत विरेचन होनेसे अर्थात् विरेचनका अतियोग होजानेसे कफ, रक्तपित्त, क्षय और वातके रोग, उत्पन्न होना तथा अंगोंका सुन्नता होना, अंगडाई, क्लम, कंप, निद्रानाश, बलका हीन होजाना, अंधकारमें प्रवेश होना, उन्माद और हिचकी यह सब उपद्रव उत्पन्न होतेहैं ॥ १७ ॥

शोधनके अंतमें कर्तव्य ।

संसृष्टभक्तंनवमेऽहिसर्पिस्तंपाययेताप्यनुवासयेद्वा ।

दद्याद्भ्रयहान्नानिवुंभुक्षितायतैलाक्तगात्रायततोनिरूहम् ॥ १८ ॥

उत्तम रीतिपर वमन विरेचन द्वारा शुद्धकाय होजानेके अनन्तर पेयादि क्रमसे ९ दिन पर्यन्त अर्थात् प्रथम पेया, फिर विलेपी, तदनन्तर घृतरहित हल्के चावल, भूंगका घृष आदि ९ दिन पर्यन्त भात या पतलीसी खिचडीका पथ्य सेवन करता रहे । फिर नवम दिन घीका सेवन करावे तथा अनुवासन कर्म करे ॥ १८ ॥

निरूहणका समय ।

प्रत्यागतेमांसरसेनभोज्यःसमीक्ष्यवादोपबलयथार्हम् ।

नरस्ततोनिश्चयानुवासनाहोर्नित्याशितःस्यादनुवासनीयः ॥ १९ ॥

फिर ३ दिन के अनन्तर शरीरपर भली प्रकार तेल लगाकर निरूहणवस्ति करे । परन्तु निरूहण वस्ति करनेसे प्रथम उसको थोडासा भोजन करादेवे अथवा जिस

समय उसको अधिक भूख न हो उस समय निरूहण वस्ति करे । जब निरूहणका प्रत्यागमन होजाय विरेचन द्वारा सब निकलजाय फिर दोष, बल आदि विचारकर हिरन आदि जीवोंके मांसरससे भोजन करावे । यदि वह मनुष्य अनुवासनके योग्य हो तो उसीदिन रात्रिको हल्कासा भोजन करनेके अनन्तर अनुवासन कर्म करे ॥ १९ ॥

ऋतुभेदसे अनुवासनका समय ।

शीतेवसन्तेचदिवानुवास्योरात्रौशरदृग्ग्रीष्मघनागमेषु ।

तानेवदोषान्परिरक्षतायेस्त्रेहस्यपानेपरिकीर्त्तिताःप्राक् ॥ २० ॥

शीतकालमें और वसन्तऋतुमें दिनमें अनुवासन करना चाहिए । और शरद, ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें रात्रिके समय अनुवासन कर्म करना चाहिए । सूत्रस्थानके स्नेहाध्यायमें स्नेहपानके जो दोष कहे हैं अनुवासनके समय भी उन सब दोषोंको त्याग देना चाहिए ॥ २० ॥

अनुवासनमें अन्यक्रम ।

प्रत्यागतेचाप्यनुवासनीयेदिवाप्रदेयंव्युषितायभोज्यम् ।

सायश्चभोज्यंपरतरुयहेवाज्यहेऽनुवास्योऽहनिपञ्चमेवा ॥ २१ ॥

अनुवासनका तैल निकलजानेपर रात्रिको निराहार रखकर प्रातःकाल भोजन करना चाहिए । यदि अनुवासन वस्ति द्वारा दिया हुआ तैल दिनमें निकले तो उसको दिनमें भाजन न देकर रात्रिमें भोजन करावे । फिर तीन २ दिन व्यतीत होनेपर इसी क्रमसे अनुवासन करे अथवा पांचवें दिन अनुवासन करे ॥ २१ ॥

त्र्यहेद्व्यहेवाप्यथपञ्चमेवादद्यान्निरूहादनुवासनञ्च ।

एकंतथात्रीन्कफजेविकारेपित्तात्मकेपञ्चतुसप्तवापि ॥ २२ ॥

वातेनचैकादशवापुनर्वावस्तीनयुग्मान्कुशलोविदध्यात् ॥ २३ ॥

निरूहणके अनन्तर इस प्रकार दोषादि विचारकर दो अथवा तीन दिनके बाद या पांचवें दिन अनुवासन वस्ति प्रयोग करना चाहिए । कफजनित विकारोंमें एक अथवा तीन वस्ति प्रयोग करे । पित्तजनित विकारोंमें पांच अथवा सात वस्ति करे और वातजनित विकारोंमें नव अथवा ग्यारह वस्तियोंका प्रयोग करे । इस प्रकार कुशल वैद्य वस्तिका अयुग्मरीतिपर अर्थात् १, ३, ५, ७ आदि रीतिसे प्रयोग करे और युग्म २, ४, ६, आदि क्रमसे प्रयोग न करे ॥ २२ ॥ २३ ॥

निरूहणका अकाल ।

नरोविरिक्तस्तुनिरूहदानंविबर्जयेत्सप्तदिनान्यवश्यम् ।

शुद्धोविरेकेणनिरूहदानंतद्द्वयस्यशून्यंविकृपेच्छरीरम् ॥ २४ ॥

विरेचन करानेके अनन्तर उस मनुष्यको ७ दिनतक निरूहण वस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिए । क्योंकि विरेचन द्वारा शुद्ध शरीर होनेसे मलरहित शून्य शरीरमें प्रयोग किया हुआ निरूहण शून्य शरीरको आकर्षण करता है । इसलिये विरेचनके अनन्तर ७ दिनतक निरूहण नहीं करना चाहिए ॥ २४ ॥

निरूहणवस्तिके गुण ।

वस्तिर्वयःस्थापयितासुखायुर्वलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च । सर्वार्थकारीशिशुवृद्धयूनानिरत्ययःसर्वगदापहश्च । विट्श्लेष्मसूत्रानिलपित्तकर्षीस्थिरत्वकृच्छ्रकवलप्रदश्च ॥ २५ ॥

वस्ति अवस्थाको स्थिर करती है तथा सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा, स्वर, और वर्णको बढ़ातीहै । वास्तिकर्म बालक, वृद्ध और युवा मनुष्योंके संपूर्ण शारीरिक हितके करनेवाली तथा अनपायी, (किसी प्रकारका उपद्रव न करनेवाली) पूंसर्ण रोगनाशक, तथा विष्टा, कफ, मूत्र, वायु और पित्तको कर्षण कर-निकाल देनेवाली, शरीरको दृढ तथा वीर्यसंपन्न करनेवाली और बलके देनेवाली होती है ॥ २५ ॥

विश्वक्स्थितंदोषचयनिरस्यसर्वान्विकाराञ्छमयेन्निरूहः ।

देहेनिरूहेणविशुद्धमार्गसंस्नेहनवर्णवलप्रदश्च ॥ २६ ॥

निरूहण वस्ति संपूर्ण देहके दोषोंको निकालकर संपूर्ण व्याधियोंको शान्त करदेती है । निरूहण वस्ति द्वारा शरीर शुद्ध होनेपर यदि स्नेह प्रयोग कियाजाय तो वर्ण और बलकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥

अनुवासनके गुण ।

नतैलदानात्परमस्तिक्विद्ध्रव्यंविशेषेणसमीरणार्त्तं । स्नेहाद्धिरौक्ष्यंलघुतांगुरुत्वादौष्ण्याच्चशैत्यंपवनस्यहत्वा ॥ २७ ॥ तैलं दधत्याशुमनःप्रसादंवीर्यवलं वर्णमथाग्निपुष्टिम् । मूलेनिपित्तेहियथाद्रुमःस्यात्रीलच्छदःकोमलपल्लवाग्रः ॥ २८ ॥ कालेमहान्पुष्पफलप्रदश्चतथानरःस्यादनुवासनेन । अपत्यसन्तानविवृद्धकारी कालेयशस्वीवहुकीर्त्तिमांश्च ॥ २९ ॥

अनुपासन द्वारा तैलका प्रयोग करनेके समान और कोई भी द्रव्य वायुको नष्ट करनेवाला नहीं है । तेल अपने स्नेहभावसे रूक्षताको और गुरुतासे वायुके हल्केपनको तथा उष्णभावसे शीतताको हरकर मनको शीघ्र प्रसन्नता करनेवाला है एवं वीर्य, बल,

वर्ण और जठराग्निको पुष्ट करनेवाला है । जैसे वृक्षकी जड़में जल सींचनेसे वृक्ष हरे कोमल पत्रों और शाखाओंसे युक्त होकर समयपर महान् और पुष्प फलोंसे संपन्न होजाता है । उसी प्रकार अनुवासन द्वारा विधिवत् तैलका प्रयोग करनेसे मनुष्य भी संतान आदि युक्त बलवान् और यशस्वी तथा कीर्तिमान् होजाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

स्तब्धाश्चयेसंकुचिताश्चयेऽपियेपङ्गवोयेऽपिचरुगणभग्नाः । येषाञ्च शाखासुचरन्तिवाताःशस्तोविशेषेणहितेषुवस्तिः ॥ ३० ॥

जो मनुष्य वायुसे स्तब्ध, संकुचित, पंगु, रुग्ण और भग्न होगये हैं, तथा जिनके शरीरमें संपूर्ण शाखाओंमें वायु संचार करती है, उन मनुष्योंको निरूहण वस्तिका प्रयोग विशेषरूपसे हितकारी है ॥ ३० ॥

आध्मापनेविग्रथितेपुरीषेशूलेचभक्तानभिनन्दनेच । एवंप्रकाराश्चभवन्तिकुक्षौयेचामयास्तेपुचवस्तिरिष्टः ॥ ३१ ॥

जिन मनुष्योंको अफारा और मलका गांठदार होना, शूल, वातजनित बल्लमें अरुचि तथा इसी प्रकारके अनेक रोग कुक्षीमें हों तो ऐसे मनुष्योंको वस्तिप्रयोग करना हितकारक है ॥ ३१ ॥

याश्चस्त्रियोवातकृतोपसर्गाद्भर्भनगृह्णन्तिनृभिःसमेताः । क्षीणेन्द्रिया येचनराःकृशाश्चतेपाश्चवस्तिःपरमःप्रदिष्टः ॥ ३२ ॥

जो स्त्रियें वायुके क्रियेद्वए उपसर्गसे यथोचित रीतिपर पुरुष संग करनेपर गर्भको धारण नहीं करतीं तथा जो मनुष्य क्षीण इन्द्रिय और कृश हैं उनको भी वस्तिकर्म अत्यंत हितकारक कहा है ॥ ३२ ॥

उष्णाभिभूतेषुवदन्तिशीताञ्छीताभिभूतेषुतथासुखोष्णान् । तत्प्रत्यनीकौषधसंप्रयुक्तान्सर्वत्रवस्तीन्प्रविभज्ययुञ्ज्यात् ॥ ३३ ॥

शीतप्रधान रोगोंमें सुखोष्ण द्रव्योंसे वस्ति प्रयोग करना चाहिये । और उष्ण रोगोंमें शीतवीर्य द्रव्योंसे वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है । इस प्रकार सुखोष्णवीर्य द्रव्योंसे संपूर्ण शीतरोगोंमें और शीतप्रधान द्रव्योंसे संपूर्ण पित्तजनित रोगोंमें वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ३३ ॥

शोधनीय रोगोंमें वृंहणका निषेध ।

नवृंहणीतान्विदधीतवस्तीन्विशोधनीयेषुगदेषुवैद्युः ।

कुष्ठप्रमेहादिषुमेदुरेषुनरेषुयेचापिविशोधनीयाः ॥ ३४ ॥

कुष्ठ प्रमेह आदि रोगोंमें तथा भेदसंश्लिष्ट रोगोंमें एवं अन्य भी जो संशोधन

करनेके योग्य हैं उन शोधनीय रोगोंमें वैद्य वृंहण वस्तिका प्रयोग न करे ।
सबमें शोधन करनाही हित होताहै । शोधनयोग्य रोगोंमें वृंहणका प्रयोग कर
अनेक प्रकारसे रोगोंकी वृद्धि होती है ॥ ३४ ॥

संशोधनके अयोग्य रोगी ।

क्षीणक्षतानानंविशोधनीयान्नशोषिणानोभृशदुर्वलानाम् ।

नमूर्च्छितानाञ्चनशोधितानायेपाञ्चदोषेपुनिवद्धवायुः ॥ ३५ ॥

क्षीण, क्षत और शोषरोगसे पीडित मनुष्यको मूर्च्छासे पीडित मनुष्यको अ
जिन रोगियोंको शोधन करचुके हैं तथा जिसके दोषोंमें वायुका प्रबल संबंध न
है ऐसे मनुष्योंको संशोधनवस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥

वातजरोगोंमें वस्तिकर्मकी श्रेष्ठता ।

शाखागताःकोष्ठगताश्चरोगाममोर्द्धसर्वावयवाङ्गजाश्च । येसान्तिते-
पान्तुकाश्चिदन्योवायोःपरंजन्मनिहेतुरस्ति ॥ ३६ ॥ विण्मूत्रपित्ता-
दिमलाशयानांविक्षेपसंहारकरःसयस्मात् । तस्यातिवृद्धस्यशमाय
नान्यद्वस्तेर्विनाभेपजमस्तिकिञ्चित् । तस्माच्चिकित्साद्धमितिबुव-
न्तिसर्वाचिकित्सामपिवास्तिमेके ॥ ३७ ॥

जो रोग शाखागत, कोष्ठगत, मर्मस्थानगत, उर्द्धजत्रगत सर्वांग तथा शरीरके कित
एक अवयवमें होते हैं । इन सबकी उत्पत्तिका कारण वायुही होता है । तथा विष्ट
मूत्र और पित्तादि दोषोंका संचय, विक्षेप और संहार करनेवाली भी वायुही होती
उस बड़ीहुई वायुकी शान्तिके लिये वस्तिकर्मसे बढकर और कोई औपधि नहीं है
इसलिये वस्तिकर्मको चिकित्साका आधा भाग कहते हैं । कोईः वस्तिकर्मको
संपूर्णरूपसे एकमात्र चिकित्सा मानते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

उत्तम वस्तियोग ।

नाभिप्रदेशश्चकटिश्चगत्वाकुक्षिसमालोड्यपुनश्चपार्श्वम् ॥ ३८ ॥

संस्नेह्यकायांशीथिलांश्चकृत्वादोपान्पुरीपंमथितंविमथ्य । संसक्तवे-
गःसपुरीपदोपःप्रत्यागतोवस्तिरितिप्रशस्तः ॥ ३९ ॥

जो वस्तिका प्रयोग क्रियाहुआ नाभि, कमर, पसली और कुरममें पहुंचकर तथा
दोनों पार्श्वभागोंमें आन्दोलन करके शरीरको स्निग्ध कर दोषोंको शिथिल कर-
डाले और दोषोंके संचयको तथा बंधेहुए मलको मथन करके अच्युत अर्थात्

सरल रीतिसे मलको और दोपोंका लेकर निकलजाये उस वस्तिके प्रयोगको श्रेष्ठ जानना चाहिए ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वरुच्यन्निवृद्ध्याशयलाघवानि । रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च बलञ्च तस्यात्सुनिरूढलिङ्गम् ॥ ४० ॥

निरूहण वस्तिके ठीक प्रयोग होजानेसे मल, मूत्र और अधोवायुका शुद्धरीतिपर परित्याग होता है। अन्नपर रुचि और जठराग्निकी वृद्धि होती है तथा आमाशय, ग्रहणी पकाशय और वस्ति स्थानमें हल्कापन प्रतीत हो, रोगकी शान्ति हो, शरीरके संपूर्ण स्वभाव प्रकृतिस्थ हों तथा बलकी वृद्धि हो यह लक्षण होते हैं ॥ ४० ॥

निरूहणके असम्यक्प्रयोगके लक्षण ।

स्याद्गुक्षिरोहद्गुदकुक्षिलिङ्गेशोफः प्रतिश्यायविकर्तिकेच ।

हृल्लासिकामारुतमूत्रसङ्गः श्वासोनसम्यक्चनिरूहिते स्यात् ॥ ४१ ॥

निरूहण वस्तिका ठीक प्रयोग न होनेसे मस्तक, हृदय, गुदा, कुक्षी और लिंगमें पीडा हो सूजन, प्रतिश्याय और पेटमें कतरनेकीसी पीडा, हृल्लास, वात और मूत्रका विबंध तथा श्वास यह लक्षण होते हैं ॥ ४१ ॥

लिङ्गयदेवातिविरेचितस्य भवेत्तदेवातिनिरूहितस्य ॥ ४२ ॥

जो लक्षण अत्यंत विरेचन होनेसे अर्थात् विरेचनके अतियोगसे होते हैं सोई निरूहणके अतियोगके लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥

अनुवासनके सुयोगके लक्षण ।

प्रत्येत्यसक्तंसशकृच्चतैलं रक्तादिवृद्धीन्द्रियसंप्रसादः ।

स्वप्नानुवृत्तिर्लघुता बलञ्च सृष्टाश्च वेगाः स्वनुवासिते स्युः ४३ ॥

अनुवासनका सम्यक् प्रयोग होनेसे तेल विना किसी रुकावटके सुखपूर्वक विष्टाफे साथ निकल आवे, रक्तादि धातुयें बुद्धि, इन्द्रिय, मन यह सब प्रसन्न हों, सुखपूर्वक नींद आवे, शरीरमें हल्कापन, बल और मूत्रादि वेगोंकी सुखपूर्वक ठीक प्रवृत्ति हो यह सम्यक् अनुवासनके लक्षण हैं ॥ ४३ ॥

अनुवासनके अयोगके ल० ।

अधःशरीरोदरवाहुपृष्ठपार्श्वेषु रूग्णरूक्षखरञ्च गात्रम् ।

ग्रहश्च विण्मूत्रसमीरणानामसम्यगेतान्यनुवासिते स्युः ॥

अनुवासनका ठीक प्रयोग न होनेसे शरीरके अधोभाग, उदर, वाहु, पीठ और पार्श्वोंमें शूल हो, शरीर रूग्ण और कठोर हो, मल, मूत्र और वायुका बंधता होजाय यह असम्यक् अनुवासनके लक्षण हैं ।

अनुवासनके अतियोगके लक्षण ।

हृल्लासमोहक्लमसादमूर्च्छाविकर्तिकाचाप्यनुवासितेस्युः ॥ ४४ ॥

हृल्लास, मोह, क्लम, अंगोंका सुन्नता होजाना, मूर्च्छा, कतरनेकीसी पीडा यह अनुवासनके अति योगके लक्षण हैं ॥ ४४ ॥

अनुवासनके ठहरनेका समय ।

यस्येहयामाननुवर्त्ततेत्रीन्स्नेहान्नरःस्यात्सविशुद्धदेहः ।

आश्वागतेऽन्यस्तुपुनर्विधेयःस्नेहोनसंस्नेहयतिह्यतिष्ठन् ॥ ४५ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें अनुवासनका स्नेह ३ प्रहर ठहरकर फिर निकले वह विशुद्धदेह होता है । अर्थात् अनुवासनका स्नेह शरीरमें ३ प्रहर ठहरनेसे देहको शुद्ध बनादेता है । और यदि अनुवासनका तेल शीघ्र लौटआवे तो उसको फिर अनुवासन वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि वस्तिका स्नेह शरीरमें न ठहरनेसे शरीरको चिकना नहीं कर सकता ॥ ४५ ॥

वस्तियोंकी संख्या और उनके प्रयोग ।

त्रिंशत्सृताःकर्मसुवस्तयोहिकालस्ततोऽर्द्धेनततश्चयोगः ।

सान्वासनाद्वादशवैगिरूहाःप्राक्स्नेहएकःपरतश्चपञ्च ॥ ४६ ॥

कर्म वस्तिमें ३० वस्तियोंका प्रयोग कहा है । कालवस्तिमें १५ वस्तियोंका प्रयोग होता है । एवं योगवस्तिमें आठ वस्तियोंका प्रयोग होता है । इन वस्तियोंके प्रयोगका यह क्रम है—स्नेहन और स्वेदनके पश्चात् एक स्नेहवस्तिका प्रयोग करना चाहिये । फिर वमन करावे । वमनके पीछे फिर १ स्नेहवस्ति करे । फिर विरेचन देवे । विरेचनके अनन्तर समयपर फिर स्नेहवस्ति प्रयोग करे । तदनन्तर एकवार निरूहणवस्ति फिर उसके अनन्तर समयपर स्नेहवस्तिका प्रयोग करे । इस प्रकार १२ निरूहण और १२ अनुवासन वस्तियें करे । दोनों मिलाकर २४ हुई । इसके अनन्तर ५ स्नेहवस्ति करे । १ स्नेहवस्ति सबसे प्रथम प्रयोग करना चाहिए इस प्रकार सब मिलाकर ३० वस्तियोंको कर्मवस्ति कहते हैं । परन्तु इन ३० वस्तियोंका प्रयोग पेयादि क्रम पालनकर यथोचित समय समयमें किया जाता है लगातार एकहीवार नहीं किया जाता ॥ ४६ ॥

कालेत्रयोऽन्तःपुरतस्तथैकःस्नेहानिरूहान्तरिताश्चपद्सु ।

योगेनिरूहास्त्रयएवदेयाःस्नेहाश्चपञ्चैवपरादिमध्याः ॥ ४७ ॥

कालवस्ति वर्षाआदि कालमें वातादि निवृत्त करनेके लिये प्रयुक्त करना चाहिये । कालवस्तिका यह क्रम है कि प्रथम १ स्नेहवस्ति करे । फिर समयानुसार निरूहण

वस्ति करे । फिर उचित समयपर स्नेहवस्ति करे । इस प्रकार ६ निरूहण और ६ अनुवासन, दोनों मिलकर १२ और इसके उपरांत तीन स्नेहवस्तियोंका प्रयोग करना । यह सब मिलाकर १५ हुए । इन १५ वस्तियोंके प्रयोगको कालवस्ति कहतेहैं । योगवस्तिमें प्रथम १ स्नेहन, फिर १ निरूहण इसप्रकार ३ निरूहण और ३ स्नेहन, वस्ति प्रयुक्त करे । तथा १ प्रथम और १ सबके पीछे यह दो स्नेहन मिलाकर ८ वस्तिका प्रयोग योगवस्ति कहाजाताहै । योगवस्ति प्रायः वाजीकरणके लिये प्रयोग की जातीहै ॥ ४७ ॥

त्रीन्पञ्चवाहुश्चतुरोऽथपड्वावाताधिकेभ्यस्त्वनुवासनीयान् ।

स्नेहान्प्रदायाशुभिपग्विदध्यात्स्रोतोविशुद्धयर्थमतोनिरूहान् ४८ ॥
वायुकी अधिकतामें ३, ४, ५, अथवा ६ स्नेहवस्ति देकर स्रोतोंकी शुद्धिके लिये निरूहण वस्तियोंका प्रयोग करे ॥ ४८ ॥

शिरोविरेचनक्रम ।

विशुद्धकायस्यततःक्रमेणस्निग्धन्तुतैःस्वेदितमुत्तमाङ्गम् ।

विरेचयेत्त्रिद्विरथैकशोवावलंसमीक्ष्यत्रिविधंमलानाम् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार वमन, विरेचन और वस्तिकर्मसे देह शुद्ध होनेपर ७ दिन बीचमें डालकर पेयादि क्रमका पालन करता हुआ समयपर मस्तकको स्निग्ध और स्वेदन करके फिर दोपोंका त्रिविध बल विचारकर तथा रोगीकी अवस्था विचारकर तीन वार अथवा दोवार या एकवार शिरोविरेचनका प्रयोग करे । शिरोविरेचन नस्यको तीनवार प्रयोग करना उत्तम मात्रा कहीजातीहै । दोवार मध्यम और एकवार अधम मात्रा मानी जातीहै ॥ ४९ ॥

शिरोविरेचनके योग, अयोग, अतियोग ।

उरःशिरोलाघवमिन्द्रियाणांस्रोतोविशुद्धिश्चभवेद्विशुद्धे ।

गलोपलेपःशिरसोगुरुत्वंनिष्ठीवनञ्चाप्यथदुर्विरिक्ते ॥ ५० ॥

छातीमें, सिरमें तथा इन्द्रियोंमें हल्कापन और शुद्धता तथा मुख, नासिका आदि छिद्रोंका विशुद्ध होना यह शिरोविरेचनके उत्तम प्रयोग होनेके लक्षण हैं । और जलका भारी और लिपासा होना, शिरमें भारीपन, वारंवार मुखसे थूक आना यह शिरोविरेचनके ठीक प्रयोग न होनेके लक्षण हैं ॥ ५० ॥

शिरोऽक्षिशंखश्रवणार्त्तितोदश्चात्यर्थशुद्धेस्तिमिरञ्चपश्येत् ।

स्यात्तर्पणंतत्रमृदुद्रवञ्चस्निग्धस्यतीक्ष्णन्तुपुनर्नयोगे ॥ ५१ ॥

शिर, नेत्र, कनपटी और कानोंमें पीडा, तोद, आंखोंके आगे अंधकार आना यह शिरोविरेचनके अतियोगके लक्षण हैं। शिरोविरेचनके अतियोग होनेसे उपद्रवोंकी शांतिके लिये तर्पण तथा मृदु, द्रव और स्निग्ध तर्पणोंका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु ऐसे समय तर्पणादियोगमें किसी प्रकारके तीक्ष्ण द्रव्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ५१ ॥

पंचकर्मके गुण आर परहेजका समय।

इत्यातुरस्वस्थविधिःप्रयोगेवलायुषोर्वृद्धिकृदामयघ्नः।

कालस्तुवसंत्यादिपुयातियावांस्तावान्भवेद्विःपरिहारकालः॥ ५२ ॥

इस प्रकार रोगी अथवा स्वस्थ मनुष्योंको पंचकर्मका प्रयोग करनेसे बल और आयुकी वृद्धि होतीहै तथा संपूर्ण रोगोंका नाश होताहै। इन वमन, विरेचन आदि पंचकर्ममें जितना समय लगे उससे दुगुने दिनोंतक पेयादिक्रमसे पथ्यपूर्वक रहना चाहिये ॥ ५२ ॥

पंचकर्मके अनन्तर त्याज्य।

अत्याशनस्थानवचांसियानंस्वप्नंदिवाभैथुनवेगरोधान्।

शीतोपचारातपशोकरोपांस्त्यजेदकालाहितभोजनञ्च ॥ ५३ ॥

पंचकर्मके अनन्तर अत्यन्त भोजन करना, बहुत बैठे रहना, अधिक बोलना अधिक घूमना वा सवारीपर चढ़ना, दिनमें सोना, मैथुन करना, वेगोंका रोकना, शीतल उपचार, धूप, शोक, क्रोध, बेसमय भोजन करना और अहित भोजन इन सब वस्तुओंको त्याग-देना चाहिये ॥ ५३ ॥

वस्तिके सुखपूर्वक प्रवेश न होनेके कारण।

वद्धेप्रणीतेविपमेचनेत्रेमार्गेतथार्शःकफविड्विवन्धे।

नयातिवस्तिनसुखंनिरैतिदोपावृतोऽल्पोयदिवाल्पवीर्यः॥ ५४ ॥

वस्तिका मुख बंद होनेसे अथवा वस्ति (पिचकारी) विपमभावसे प्रवेश करनेसे बवासीरके गस्सों द्वारा गुदाकी बली रुकीहुई होनेसे अथवा कफ, विष्टा आदिके बंधसे गुदामार्ग रुकाहुआ होनेसे वस्ति सुखपूर्वक प्रवेश नहीं होसकती और सुखपूर्वक बाहर नहीं निकल सकती तथा दोषों द्वारा वस्तिका मार्ग बन्द होजानेसे अथवा वस्ति-द्रव्य अल्प और निर्वाय होनेसे भी वस्ति सुखपूर्वक कार्य नहीं कर सकती ॥ ५४ ॥

वस्तिके द्रव्यके लौट आनेका कारण।

प्राप्तेतुवर्च्चोऽनिलमूत्रवेगेवातेविवृद्धेऽल्पबलेगुदेवा।

अत्युष्णतीक्ष्णश्चमृदौप्रकोष्ठेप्रणीतमात्रःपुनरैतिवस्तिः ॥ ५५ ॥

मल, मूत्र और अयोवायुका वेग उपस्थित होनेसे, वायुकी अत्यंत वृद्धि होनेसे गुदाकी वली निर्बल और शिथिल होनेसे, कोठेके अत्यंत नरम होनेसे तथा वस्ति द्रव्य अत्यंत गरम और तीक्ष्ण होनेसे प्रयोग कियाहुआ वस्तिद्रव्य तत्काल बाहर निकल आताहै ॥ ५५ ॥

अपनी २ औषधोंसे भी रोगोंके शांत न होनेका कारण ।

मेदःकफाभ्यामनिलोनिरुद्धःशूलाङ्गसुप्तिश्वयथूनकरोति ।

स्नेहन्तुयुञ्जन्नुधस्तुतस्मैसंबर्द्धयत्येवहितान्विकारान् ॥ ५६ ॥

जब वायु बढेहुए मेद और कफसे रुकजाताहै उस समय शूल, अंगोंका सोना, और सूजन होतीहै । ऐसे समय मूर्ख वैद्य वातविकार समझकर, जो स्नेह वस्तिका प्रयोग करताहै तो यह शूल आदि विकार अत्यंत वृद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ ५६ ॥

रोगास्तथान्येऽप्यवितर्क्यमाणाःपरस्परैणावगृहीतमार्गाः ।

सन्दूषिताधातुभिरेवचान्यैःस्वैर्भेषजैर्नोपशमं व्रजन्ति ॥ ५७ ॥

इस प्रकार एक दोषका मार्ग अन्य दोषसे रुकजानेपर और भी इसी प्रकारके अनेक रोग उत्पन्न होजातेहैं । उन सब रोगोंका ययार्थ निश्चय करना कठिन होताहै । ऐसे समय दोष धातुओंके द्वारा रुद्धमार्ग होनेसे अथवा परस्पर संरुद्ध मार्ग होनेसे अपनी २ औषध करनेपर भी शांत नहीं होते ॥ ५७ ॥

सर्वश्वरोगप्रशमायकर्महीनातिमात्रंविपरीतकालम् ।

मिथ्योपचाराच्चनतं विकारंशान्तिनयेत्पथ्यमपिप्रयुक्तम् ॥ ५८ ॥

यदि रोगकी औषधका यथोचित प्रयोग न कियाजाय अथवा हीनयोग, अति-योग, वा मिथ्यायोग अथवा विपरीत भावसे, वा विपरीत कालमें प्रयोग कियाजाय तो पथ्य सेवन करनेपर भी रोगकी शान्ति नहीं होती ॥ ५८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकः ।

प्रश्नानिमान्द्वादशपञ्चकर्ममाण्युद्दिश्यसिद्धाविहकल्पनायाम् ।

प्रजाहितार्थंभगवान्महार्थान्सम्यग्जगादपिर्वरोऽत्रिपुत्रः ॥५९॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थाने कल्पनासिद्धिर्नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अब यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस कल्पनासिद्धि नामक, अध्यायमें ऋषियोंमें श्रेष्ठ आत्रेय भगवानने पंचकर्म विषयक इन १२ प्रश्नोंके महान् अर्थवाले उत्तरोंको प्रजाके हितके लिये भली प्रकार वर्णन कियाहै ॥ ५९ ॥

इति श्री०च०प्र०भा०स०सिद्धिस्थाने टकसाळनिवासि पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित

प्रसादनीभाषा टीकायां कल्पनासिद्धिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।



अथातः पञ्चकर्मीयसिद्धिव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम पंचकर्मीयसिद्धिनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

येपांयस्माच्चकर्माण्यश्रिवेश ! नकारयेत् ।

येषाञ्चकारयेद्यानितत्सर्वसंप्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

हे अश्रिवेश ! जिन मनुष्योंको पंचकर्म कराना नहीं चाहिये और जिनको पंचकर्म कराना उचित है अब उन सबका कथन करतेहैं ॥ १ ॥

पंचकर्मके अयोग्य मनुष्य ।

चण्डःसाहसिकोभीरुःकृतघ्नोव्यग्रएवच । सदैद्यनृपतिद्वेषातद्विष्टः
शोकपीडितः ॥ २ ॥ यादृच्छिकोमुमूर्षुश्चविहीनःकरणैश्चयः । वैरी
वैद्याभिमानीचश्रद्धाहीनःसशङ्कितः ॥ ३ ॥ भिषजामविधेयश्चनो-
पक्रम्योभिषग्विदा । एतानुपचरन्वैद्योवहून्दोषानवाप्नुयात् ॥४॥

क्रोधी, खोटा, साहस करनेवाला, भीरु, कृतघ्न, व्यग्र, सदैयसे वैर रखनेवाला, राजद्रोही अथवा राजा जिससे विरोध रखता हो वा वैद्यसे जिसका द्वेष हो, शोक-पीडित मनमानी बातोंको करनेवाला, मरनेकी इच्छा रखनेवाला, इन्द्रियोंसे हीन, वैरी, अपने आपको वैद्य माननेवाला, श्रद्धाहीन, वैद्य हरएक कर्ममें शंका करनेवाला ऐसे मनुष्योंकी वैद्यको चिकित्सा करना योग्य नहीं । ऐसे मनुष्योंकी चिकित्सा करनेसे वैद्यको अनेक दोष प्राप्त होतेहैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

एभ्योऽन्येसमुपक्रम्यानराःसर्वरूपक्रमैः ।

अवस्थांप्रविभज्यैपांवर्ज्यकार्यंचवक्ष्यते ॥ ५ ॥

इनके सिवाय और मनुष्य सब प्रकार चिकित्सा करनेके योग्य होते हैं । अब वमन, विरेचनादि अवस्थाभेदसे जो त्याज्य रोगी हैं उनका वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

वमनके अयोग्य मनुष्य ।

अच्छर्दनीयास्तावत्क्षतक्षीणातिस्थूलकृशवालवृद्धदुर्बलश्रान्तपि-
पासितक्षुधितकर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ता-

प्रसक्तक्षामगर्भिणीसुकुमारसंवृतकोष्ठदुश्छर्दनोर्द्धरक्तपित्तप्रसक्त-
च्छर्द्यूर्द्धवातास्थापितानुवासितहृद्रोगोदावर्त्तमूत्राघातप्लीहगुल्मो-
दराष्टीलास्वरोपघाततिमिरशिरःशंखकर्णाक्षिपार्श्वशूलार्त्ताः ॥ ६ ॥

क्षत, क्षीण, अतिस्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, थकाहुआ, प्यासा
अथवा क्षुधासे पीडित, अत्यंत कामके करनेसे, भारके उठानेसे थका हुआ, उपवास
कियाहुआ, मैथुन, अध्ययन, व्यायाम और चिन्ता इनसे व्याकुल, दुर्बल, गर्भवती,
सुकुमार, जिसका कोठा वमन करनेमें अति कठिनतासे प्रवृत्त होसके जिसको कष्टसे
वमन होसकतीहो । ऊर्ध्वगत रक्तपित्तवाला, जिसको वमनका रोग हो, ऊर्ध्ववातप्रस्त,
आस्थापन कियाहुआ अनुवासित, हृद्रोगयुक्त तथा उदावर्त्त, मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म,
उदररोग, वातष्टीला, स्वरभंग, तिमिररोग, शिरोरोग, कनपटीके रोग, कर्णरोग, नेत्र-
रोग, पसलीके रोग और शूलरोग इन रोगोंसे युक्त मनुष्यको वमन नहीं कराना
चाहिये । यह उपरोक्त संपूर्ण मनुष्य वमन करानेके योग्य नहीं हैं ॥ ६ ॥

इनको वमनकरानेके दोष ।

तत्रक्षतस्यचभूयःक्षणनाद्रक्तातिप्रवृत्तिःस्यात् । क्षीणातिस्थूलकृश-
वालवृद्धदुर्बलानामौषधैर्वलासहत्वात्प्राणोपरोधः । श्रान्तपिपासित-
क्षुधितानाञ्चतद्वत् । कर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायाम-
चिन्ताप्रसक्तक्षामाणारौक्ष्याद्वातरक्तच्छेदक्षतभयंस्यात् । गर्भिण्या
गर्भव्यायामादामगर्भभ्रंशाच्चदारुणारोगप्राप्तिः । सुकुमारस्यहृदय-
स्यविकर्षणादूर्द्धमधोवारुधिरातिप्रवृत्तिः । संवृतकोष्ठदुश्छर्दनयोर-
तिमात्रप्रवाहनादोषाःसमुक्त्विष्ट्राह्यन्तःकोष्ठेजनयन्त्यन्तर्वीसर्पस्त-
म्भजाढ्यं वैचित्र्यं मरणं वा । ऊर्द्धरक्तपित्तस्य उदानमुत्क्षिप्यप्राणा-
न्हरेद्रक्तञ्चातिप्रवर्त्तयेत् । प्रसक्तच्छर्देस्तुतदूर्द्धवातास्थापितानु-
वासितानामूर्द्धवातातिप्रवृत्तिहृद्रोगिणोहृदयोपरोधः । उदावर्त्तिनो
घोरतरउदावर्त्तःस्याच्छीघ्रतरहन्ता । मूत्राघातादिभिरार्त्तानांतीव्र-
तरःशूलप्रादुर्भावः । तिमिराणांतिमिरातिवृद्धिःशिरःशूलादिपुशू-
लातिवृद्धिः । तस्मादेतेनवाभ्याः ७ ॥

इनमें उरःक्षत रोगीको वमन करानेसे उरक्षतरोग अर्थात् छातीके घाव अधिक चढते हैं । और घावोंके खुलनेसे मुखद्वारा रक्तकी प्रवृत्ति होने लगतीहै । क्षीण, अतिस्थूल, कृश, बालक, वृद्ध और दुर्बल मनुष्य वमनके वेगको सम्हार नहीं सकते इसलिये वमन इन मनुष्योंके प्राणोंका सहसा उपरोध करता है । श्रान्त, प्यासयुक्त और क्षुधायुक्तोंको भी वमन करानेसे यही दोष होतेहैं । काम करनेसे, भारके उठानेसे, रास्ता चलनेसे, उपवास करनेसे, मैथुनसे, अध्ययन करनेसे, व्यायाम करनेसे, चिन्तासे, चिन्तित होनेसे जो मनुष्य व्याकुल हैं अथवा इन उपरोक्त कर्मोंसे युक्त हैं तथा दुर्बल हैं इनको वमन कराया जावे तो रूक्षताके कारण वायु और रक्तका कोप तथा कण्ठ आदि स्थानोंमें छेद वा क्षत होनेका भय होताहै । गर्भिणीको वमन करानेसे गर्भव्यापी रोग अथवा कच्चे गर्भका गिरजाना वा ऐसेही अन्य दारुणरोग उत्पन्न होतेहैं । सुकुमार मनुष्योंको वमन करानेसे, उनका हृदय खिचजानेसे, उर्द्धभागसे और अधोभागसे रक्तकी प्रवृत्ति होने लगतीहै । जिनका कोष्ठ सहजही उत्क्षेपित नहीं होसकता जिनको कष्टसे वमन होताहै उनको वमन करानेसे आमाशयका अति-प्राय खिचावसा होकर वमन तो नहीं होता परन्तु आमाशयमें दोष उत्क्षेपित होकर विसर्प, स्तम्भ, जडतां, चित्तका विगडना तथा मृत्युतक कार देतेहैं । उर्ध्वगत रक्त-पित्तमें वमन करानेसे उदान वायु उत्क्षेपित होकर रक्तकी अधिक प्रवृत्ति और प्राणनाश होताहै । प्रसक्त वमी रोगीको वमन करानेसे इसी प्रकार उदान वायुका कोप होताहै । उर्द्धवातप्रस्त आस्थापन कियाहुआ और अनुवासन किधेहुए रोगीको वमन करानेसे उर्द्धवातकी अधिक प्रवृत्ति होतीहै । हृद्रोगमें वमन करानेसे हृदयका उपरोध होताहै । उदावर्तमें वमन करानेसे घोरतर उदावर्त होकर शीघ्र प्राणोंका नाश होताहै । मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अघ्नीला और स्वरभंगमें वमन करानेसे अत्यन्त शूलकी उत्पत्ति होतीहै । तिमिर आदि रोगमें वमन करानेसे तिमिर रोगकी वृद्धि होतीहै । मस्तक शूल तथा कनपटी, कान, नेत्र अथवा पार्श्वशूलमें वमन कराया जाय तो शूलकी अत्यन्त वृद्धि होतीहै । इसलिये इन रोगोंमें वमन नहीं कराना चाहिये ॥ ७ ॥

इनमेंभी वमनफी आज्ञा ।

सर्वेष्वपिखलुपतेष्वपिधिपगरविरुद्धाभ्यवहारामकृतेषुअप्रतिपि-
द्धंशीघ्रकारित्वाद्दोषाणामिति ॥ ८ ॥

जिन २ रोगोंमें वमन कराना नहीं चाहिये यदि उनको विपन्नित, गरजन्नित, विरुद्ध भोजनन्नित अथवा भांजनित विकार उपस्थित हो और उनका वमनके

सिवाय और शीघ्र उपाय न होसकता हो तो ऐसे समय अवम्य मनुष्योंको भी वमन करानेका निषेध नहीं है । क्योंकि यह विष आदि विकार आशुकारी होनेसे शीघ्र प्राणोको नष्ट कर देतेहैं ॥ ८ ॥

वमनकरानेके योग्य रोगी ।

शेषास्तुवाम्याः। पीनसकुष्ठनवज्वरराजयक्ष्मकासश्वासगलग्रहग-
लगण्ड-श्लीपद-मेह-मन्दाग्निविरुद्धाजीर्णान्नविषूचिकालसकवि-
पगरपीतदृष्टदिग्धविद्धाधःशोणितपित्तकफप्रसेकदुर्नामहृल्लासारो-
चकाविपाकापच्यपस्मारोन्मादातिसारशोपपाण्डुरोगमुखपाकदुष्ट-
स्तन्यादयःश्लेष्मव्याधयोविशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्चतेपुहिवमनप्र-
धानतममित्युक्तंकेदारसेतुभेदेशाल्यादिशोपदोपविनाशवत् ॥ ९ ॥

उपरोक्त अवम्य अर्थात् जिनको वमन करानेका निषेध है उनके सिवाय और मनुष्य वमन करानेके योग्य होते हैं तथा पीनस, कुष्ठ, नवज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलग्रह, गलगण्ड, श्लीपद, प्रमेह, मन्दाग्नि, विरुद्धभोजन, अजीर्णान्न, विषू-
चिका, अलसक, विषपान, गरयुक्त, विषयुक्त जानवरका काटा हुआ, विषयुक्त गन्धसे लिदाहुआ, अयोगत रक्तपित्त, मुखसे कफका गिरना, अर्शरोग, हृल्लास, अरुचि, अविपाक, अपची, मृगी, उन्माद, अतिसार, सूजन, पाण्डुरोग, मुखपाक, दुष्टस्तन्य आदि धायके रोग, कफके रोग और विशेषकर सूत्रस्थानके महारोगाध्यायमें कहेहुए कफजनित २० रोग इन सबमें विशेषरूपसे वमनका करनाही हितकारक है । जैसे खेत-
का बाँध टूट जानेसे खेतके संपूर्ण जलके निकलनेपर धान आदि संपूर्ण खेती नष्ट हो जाती है उसी प्रकार वमन द्वारा संपूर्ण दोष निकल जातेहैं ॥ ९ ॥

विरेचनके अयोग्य मनुष्य ।

अविरेच्यास्तुसुभगक्षतगुदमुक्तनालाधोभागरक्तपित्तविलङ्घित-
दुर्वलेन्द्रियाल्पाग्निनिरूढकामादिव्यग्राजीर्णनवज्वरमदात्ययिता-
ध्मातशल्यादिताभिहृतातिस्निग्धरूक्षदारुणकोष्ठाःक्षतादयश्चग-
भिष्यन्ताः ॥ १० ॥

सुकुमार, जिनकी गुदामें धाव हो जिनका मलद्वार शिथिल हो वा काँच निकलती हो, अधोगत रक्तपित्त, उपवाससे कर्षित दुर्बल इन्द्रिय, बहुत अल्प अग्निवाला जिसको निरूहण किया हो, कामादिकांसे व्यग्रचित्त, अजीर्णयुक्त तथा नवीनज्वर, मदात्यय,

अफारा, शल्यपीडित, आहत, अतिस्निग्ध, अतिरूक्ष, दारुणकोष्ठ, तथा क्षत, क्षीण, अति-
स्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, भ्रान्तचित्त, प्यासयुक्त, क्षुधायुक्त, कर्म, भार
और मार्गसे थका हुआ, उपवाससे दुर्बल, मैथुन, अध्ययन और व्यायामसे थका हुआ,
चिन्तायुक्त, क्षाम और गर्भवती स्त्री इन सबको विरेचन नहीं कराना चाहिये ॥१०॥

इनको विरेचन करानेके दोष ।

तत्रसुभगस्यसुकुमारोक्तोवमनदोषः स्यात् । क्षतगुदस्यक्षतेगुदेवा-
युः प्राणोपरोधकरिवरारुजंजनयेत् । मुक्तनालमतिप्रवृत्त्याहन्यात् ।
अधोभागरक्तपित्तिनाश्वतद्रदेवविलंघितदुर्बलेन्द्रियाल्पाग्निनिरूढ-
औषधवेगंनत्तेसहेरन् । कामादिव्यग्रमनसोनप्रवर्त्ततेकृच्छ्रेणवाप्रव-
र्त्तमानमधोगदोषान्कुर्यादजीर्णिनआमदोषः स्यात् । नवज्वरस्य-
अधिपक्वान्दोषान्निर्हरेद्वातमेवचकोपयेत् । मदात्ययितस्यम-
र्द्यक्षीणेदेहेवायुः प्राणोपरोधंकुर्यात् । आध्मातस्यआध्मायमानस्य-
वापुरीषकोष्ठनिचितोवायुर्विसर्पन्सहसाआनाहंतीव्रतरंमरणंवाज-
नयेत् । शल्यादिताभिहतयोःक्षतेवायुराश्रितोजीवितंहिस्याद-
तिस्निग्धस्यअतियोगभयंभवेत् । रूक्षस्यवायुरङ्गग्रहंकुर्यात् ।
दारुणकोष्ठस्यविरेचनोद्धतादोषाहृच्छूलपर्वभेदानाहाङ्गमर्दच्छर्दि-
सूच्छाक्लमाञ्जनयित्वाप्राणान्हन्युः । क्षतादीनांगर्भिण्यन्तानां
छर्दनोक्तोदोषः स्यात् । तस्मादेतेनविरेच्याः ॥ ११ ॥

सुकुमार मनुष्यको विरेचन करानेसे हृदयका कर्षण होताहै । गुदामें घाववालेको
विरेचन करानेसे प्राणोंको उपरोध करनेवाली अत्यंत पीडा होतीहै । शिथिल गुदावा-
लोंको प्राणोंकी हानि होती है । अधोगामी रक्तपित्तमें विरेचन देनेसे रक्तकी अधिक
प्रवृत्ति होतीहै । उपवाससे कृश दुर्बलेन्द्रिय, अल्पाग्नि और निरूढकरणेके अनन्तर
विरेचन देनेसे मनुष्य औषधके वेगको सहन नहीं कर सकता । कामादिसे विभ्रान्त
चित्तवालेको अधोवेगकी प्रवृत्ति नहीं होती यदि हो भी तो दोषोंका अधोमार्गमें
कोप होजाता है । अजीर्णमें दस्त देनेसे आंवदोषकी उत्पत्ति होती है । नवीन ज्वरमें
विरेचन देनेसे दोष कचे होनेके कारण नहीं निकलते और वायुका कोप होताहै ।

मदात्यय रोगोंमें मद्यसे क्षीणदेह होनेसे, विरेचन करानेसे वायु प्राणोंका अवरोध करता है । अफारेयुक्त और आध्मायमान मनुष्यको विरेचन देनेसे मलाशयमें स्थित हुआ वायु विसर्पित होकर शीघ्र तीव्र अफारा और मृत्युतकको करता है । तीर आदि लगनेसे और आहत मनुष्यके धावोंमें वायु आश्रित होताहै विरेचन करानेसे वह वायु कुपित होकर ज्विनको नष्ट करताहै । अत्यंत स्निग्धको विरेचन करानेसे विरेचनका आतेयोग होजाताहै । रूक्ष मनुष्यको विरेचन करानेसे वायु किसी अंगको ग्रहण कर पीडाको उत्पन्न करतीहै क्रूर कोष्ठवालेको विरेचन करानेसे उद्धतहुए दीप हृत्शूल, पर्व-भेद, अफारा, अंगमर्द, उर्दी, मूर्च्छा और क्लमको उत्पन्न करते हैं तथा प्राणोंको भी नष्ट कर देते हैं । क्षतसे लेकर गर्भिणी पर्यंत जो पहिले कह आये हैं उनको विरेचन करानेसे छर्दीमें कहेहुए दीप उत्पन्न होतेहैं इसलिये इन संपूर्ण मनुष्योंको विरेचन नहीं कराना चाहिये ॥ ११ ॥

विरेचनयोग्य मनुष्य ।

शेषास्तुविरेच्यः । कुष्ठज्वरमेहोद्धरक्तपित्तभगन्दरोदराशोत्रध-
 स्त्रिहगुल्मार्जुदगलगण्डग्रन्थिष्विषूचिकालसकमूत्राघातक्रिमिकोष्ठ-
 वीसर्पपाण्डुरोगशिरःपार्श्वशूलोदावर्त्तनेत्रास्यदाहहृद्रोगव्यङ्गनी-
 लीकनेत्रनासिकास्यश्रवणरोगहलीमकश्चासकासकामलापस्मा-
 रोन्मादवातरक्तयोनिरेतोदोषतैमिर्यारोचकाविपाकच्छर्दिश्वयथू-
 दरविस्फोटकादयःपित्तव्याधयोविशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्च एतेपु-
 हिर्विरेचनप्रधानंतममित्युक्तमग्न्युपशमेऽग्निगृहवत् ॥ १२ ॥

इनके सिवाय अन्य मनुष्योंको विरेचन कराना चाहिये । तथा कुष्ठ, ज्वर, प्रमेह, उद्धत रक्तापित्त, भगन्दर, उदररोग, बवासीर, बदरोग, प्लीहरोग, गुल्मरोग, अर्जुद, गलगण्ड, ग्रन्थिरोग, विषूचिका, अलसक, मूत्राघात, कोष्ठकृमि, विसर्प, पाण्डुरोग, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, उदावर्त्त, नेत्रपीडा, मुखपीडा, हृद्रोग, व्यंग, नीलिका और नेत्रोंके रोग, नासिकारोग, मुखरोग, कानोंके रोग, हलीमक, चास, खांसी, कामला, अपस्मार रोग, उन्माद, वातरक्त, योनिरोग, शुक्रदोष, तिमिररोग, अरोचक, अवि-पाक, छर्दी, सूजन, उदररोग, विस्फोटक आदि रक्ताश्रित रोग तथा सूत्रस्यानके महा-रोगाऽध्यायमें कहेहुए पित्तजानित ४० रोग इन सबमें विशेष कर विरेचन देना हितका-री है । जैसे आंग्रिके शान्त होनेपर अग्निगृह भी स्वयं शान्त होजाताहै उसी प्रकार विरेचन द्वारा दोषोंके निकालनेसे शरीरके रोग शान्त होजाते हैं ॥ १२ ॥

आस्थापनके अयोग्य ।

अनास्थाप्यास्तुअजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहोत्क्लिष्टदोषाल्पाग्नि-
यान्कान्तातिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तातिकृशभुक्तभक्तपीतोदकवमि-
तविरिक्तक्षतकृतनस्तःकर्मक्रुद्धभीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तच्छर्दिनि-
ष्टीविकाश्वासकासहिक्कावद्धच्छिद्रोदकोदराध्मातालसकविपूचि-
कामप्रजातिसारमधुमेहकुष्ठार्त्ताः ॥ १३ ॥

बजीर्ण रोगी, अतिस्निग्ध, स्नेह पीयाहुआ, दोषोंके उत्क्लिष्ट होनेपर, अल्पाग्निवाला, षोडा आदि सवारीसे थकाहुआ, अति दुर्बल, भूखा, प्यासा, थकाहुआ, अतिकृश, भात खानेके अनन्तर जल पीकर वमन और विरेचनके अनन्तर, क्षतयुक्त नस्य कर्मके अनन्तर, क्रोधी, भयातुर, उन्मत्त, मूर्च्छित, वमनरोगयुक्त, जिसके मुंहसे बारबार कफ गिरता हो, श्वास रोगी, खांसीयुक्त, हिचकीयुक्त, बद्धोदरवाला, छिद्रोदर, जलोदरयुक्त, अलसकरोग, विपूचिका, आमगर्भा अर्थात् ८ महीनेसे प्रथम गर्भवती-
को, अतिसारवालेको तथा मधुमेह और कुष्ठवाले रोगियोंको आस्थापनका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

इनमें आस्थापनके दोष ।

तत्रअजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहानांदूष्योदरंमूर्च्छांश्चयथुर्वास्यात्
उत्क्लिष्टदोषमन्दाग्न्योररोचकस्तीव्रः । यान्कान्तस्यक्षोभव्या-
पन्नोवस्तिराशुदेहंशोपयेत् । अतिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तानांपूर्वोक्तो
दोषःस्यात् । अतिकृशस्यकार्यंपुनर्जनयेत् । पीतोदकभुक्तभक्तयो-
रुत्क्लिष्टयोर्द्धमधोवावायुर्वस्तिमुत्क्षिप्यक्षिप्रंवस्तौघोरान्विकाराञ्ज-
नयेत् । वमितविरिक्तयोस्तुरुक्षशरीरंनिरूहःक्षतंक्षारइवदहेत् ।
कृतनस्तःकर्मणोविभ्रंशंभृशसंरुद्धस्रोतसःकुर्यात् । क्रुद्धभीत-
योर्वस्तिरूर्द्धमुपप्लवेत् । मत्तमूर्च्छितयोर्भृशंविचलितायांसंज्ञायां
चित्तोपघातव्यापत्स्यात् । प्रसक्तच्छर्दिनिष्टीविकाश्वासकासहिक्का-
र्त्तानामूर्द्धीभूतोवायुरुर्द्धवस्तिनयेत् । वद्धच्छिद्रोदकोदराध्माता-
नांभृशतरमाध्माप्यवस्तिःप्राणान्हिंस्यात् । अलसकविपूचिका-
मप्रजातामातिसारिणामकृतदोषःस्यात् । मधुमेहकुष्ठिनोर्व्याधेः
पुनर्वृद्धिस्तस्मादेतेनास्थाप्याः ॥ १४ ॥

अजीर्णरोगी और अति स्निग्ध तथा स्नेह पीयेहुएको आस्थापन देनेसे उदररोग, मूर्च्छा अथवा सूजन उत्पन्न होजाती है । दोषोंके उत्केशित होनेपर और मंदाग्निमें आस्थापन करनेसे तीव्र अरुचि उत्पन्न होती है । सवारी आदिसे थकेहुएको आस्थापन वस्ति देनेसे वस्ति क्षोभको प्राप्त होकर उसके शरीरको सुखा देती है । अति-दुर्बल, क्षुधा, तृषा और श्रम आदिकोंसे कर्षित हुए मनुष्योंको आस्थापन देनेसे भी देहमें वस्ति शरीरको शोषण करती है । जल पीनेके अनन्तर और भोजन किया रहनेपर भी आस्थापनका प्रयोग करनेसे उर्द्धभाग अथवा अधोभागमें वायु कुपित होकर वस्तिस्थानमें घोर विकारोंको उत्पन्न करती है । वमन और विरेचनके अनन्तर, शरीर पहिलेही रूक्ष होताहै उस समय निरूहणका, प्रयोग करनेसे जैसे घावपर क्षार लगा देनेसे दाह हर्तीहै वैसेही दाह उत्पन्न होजातीहै । नस्य कर्मके अनन्तर स्थापन वस्ति करनेसे संपूर्ण स्रोत रुककर नस्यकर्मका गुण नष्ट होजाताहै । क्रोधी और भयभीतको आस्थापन देनेसे वस्तिका उर्द्धगमन होताहै । उन्मत्त और मूर्च्छामें आस्थापन वस्तिका प्रयोग करनेसे चित्तका उपघात होकर मृगी आदि रोग उत्पन्न होजातेहैं । वमन, निष्ठीवन, श्वास, खांसी और हिचकीमें आस्थापनवस्तिका प्रयोग करनेसे वायु ऊर्ध्वगमन करताहुआ वस्तिको भी ऊपरकी और आकर्षण करता है । वद्धोदर, उद्भोदर जलोदर और अफारेमें वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्ति अत्यंत आध्मापित होकर अथवा अफारेको अत्यंत बढाकर प्राणोंको नष्टकर देतीहै । अलसक, विषूचिका रोगमें और आमालिसारमें आस्थापन वस्ति देनेसे आमदोषकी वृद्धि होतीहै ।

८ मरीनेसे पहिले गर्भवतीको आस्थापन वस्तिके प्रयोग करनेसे कच्चागर्भ गिरजाता है । मधुमेह और कुष्ठमें आस्थापन देनेसे रोगकी वृद्धि होतीहै । इसलिये इन सबको आस्थापन नहीं देना चाहिये ॥ १४ ॥

अस्थापनके योग्य मनुष्य ।

शोपास्त्वास्थाप्याः । सर्वाङ्गकाङ्गकुक्षिरोगवातवच्चोमूत्रशुक्रसङ्गवलवर्णमांसरेतःक्षयघोपाध्मानाङ्गसुप्तिक्रिमिकोष्ठोदावर्त्तातिसारपर्वाभितापष्ठीहगुल्महृद्रोगभगन्दरोन्मादज्वरब्रध्नाशिरःकर्णशूलहृदयपार्श्वप्रष्ठकटिग्रहवेपनाक्षेपकगौरवातिलाघवरजःक्षयात्तविप-
माग्निस्फिग्जानुजङ्घोरुगुल्फपार्ष्णिप्रपदयोनिवाह्याङ्गुलिस्तनाङ्गद-
न्तनखपर्वास्थिशूलशोपस्तम्भान्त्रकूजनपारिकर्तिकादयःवातव्या-
धयोविशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्चएतेपुआस्थापनप्रधानतमामित्युक्तं-
वनस्पतिमूलच्छेदवत् ॥ १५ ॥

इनके सिवाय अन्य रोगोंमें आस्थापन देना चाहिये । तथा सर्वांगवात, एकांग-
वात, कुक्षिशूल, वात, मल, मूत्र और शुक्रका विबंध, बलक्षय, मांसक्षय, वीर्यक्षय,
अफारा, अंगसाद (अंगोंका सोना) कृमिकोष्ठ, उदावर्त्त, पक्वांतिसार, पवार्म
शूल, प्लीहरोग, गुल्मरोग, हृद्रोग, भगन्दर, उन्माद, ज्वर, ब्रध्नरोग, शिरोशूल,
कर्णशूल, हृत्छूल, पार्श्वशूल, कमरकी पीडा, पीठकी पीडा, कंप, आक्षेपकवायु,
अंगोंका भारीपन, वातजनित अत्यंत हल्कापन, रजक्षय, रजकाविबंध, विषमाग्नि,
नितम्बोंकी पीडा, जानुशूल, जंघाशूल, ऊरुशूल, गुल्फशूल, पार्श्वीपीडा, पादाग्रपीडा,
योनिशूल, बाहुशूल, अंगुलियोंकी पीडा, दानों स्तनोंके मध्यकी पीडा, दंतपीडा,
नखपीडा, पर्वोंकी पीडा, अस्थिशूल, शोष, स्तम्भ, अंत्रकृजन और परिकर्तिका
आदि रोगोंमें तथा सूत्रस्थानके महारोगाध्यायमें कहेहुए अस्ती प्रकारके वातरोग
इन सबमें विशेषकर आस्थापन वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है । इन संपूर्ण
रोगोंकी प्रधान चिकित्सा आस्थापन करनाही है । जैसे-वृक्षको जड़से उखाड देनेसे
वा जड़के काट देनेसे संपूर्ण वृक्ष एकबारही नष्ट होजाताहै उसी प्रकार आस्थापन
वस्तिके करनेसे यह संपूर्ण रोग भी समूल नष्ट होताते हैं ॥ १५ ॥

अनुवासनके अयोग्य ।

यएवानास्थाप्याःतएवअनुवास्याःस्युः । विशेषतस्त्वभुक्तभक्त-
नवज्वरपाण्डुरोगकामलाप्रमेहार्शःप्रतिश्यायारोचकमन्दाग्निदुर्ब-
लप्लीहकफोदरोरुस्तम्भवच्चोभेदविषगरपीतकफाभिष्यन्दगुरुकोष्ठ-
श्लीपदगलगण्डापचीकृमिकोष्ठिनः ॥ १६ ॥

जो मनुष्य आस्थापन वस्तिके अयोग्य हैं अर्थात् जिनको आस्थापन वस्तिका
प्रयोग नहीं करना उन्हीं मनुष्योंको अनुवासन वस्ति भी नहीं करना चाहिए और
विशेषकर भोजनके बिना किये, नवीनज्वर, पाण्डुरोग, कामला, प्रमेह, अर्श,
प्रतिश्याय, अरुचि, मंदाग्नि, दुर्बलता, प्लीहरोग, कफोदर, ऊरुस्तम्भ, मलभेद,
विषरोग, गरविकार, कफका अभिष्यंद, कोष्ठकी गुरुता, श्लीपद, गलगण्ड, अपची
और कृमिकोष्ठ इनको विशेष अनुवासन देनेका निषेध है ॥ १६ ॥

इनमें अनुवासनके दोष ।

तत्राभुक्तभक्तस्थानावृत्तमार्गत्वाद्दूर्ध्वमतिवर्त्ततेस्नेहः । नवज्वर
पाण्डुरोगकामलाप्रमेहिणांदोपानुत्क्षेयोदरंजनयेदर्शस्यअर्शा-
स्यभिष्यन्धाध्मानंकुर्यात् । अरोचकार्त्तस्यअन्नगृह्णिपुनःहन्यात् ।

मन्दाग्निदुर्बलयोर्मन्दतरमग्निं कुर्यात् । प्रतिश्यायप्लीहादिमतां
भ्रशञ्चोत्क्लिष्टदोषाणां भूय एव दोषं वर्द्धयेत्तस्मादेते नानुवास्याः ॥ १७ ॥

विना भोजन किये अनुवासनके करनेसे मार्ग खुला रहनेसे वस्तिका स्नेह ऊपरको चढजाता है । नवीनज्वर, पाण्डुरोग, कामला और प्रमेहमें अनुवासन वस्ति करनेसे दोष उत्कलेशित होकर उदररोगको उत्पन्न करते हैं । ववासीरमें अनुवासन करनेसे स्नेह अर्शको अभिष्यंदित करके अफारेको उत्पन्न करता है । अरुचिमें अनुवासन करनेसे अन्नमें इच्छा नहीं रहती । मंदाग्नि और दुर्बलतामें अनुवासन करनेसे अग्नि अत्यंत मंद होजाती है । प्रतिश्याय और प्लीहा आदि रोगोंमें अनुवासन करनेसे संपूर्ण दोष उत्कलेशित होकर और भी रोगोंकी वृद्धि होती है इसलिये इनमें अनुवासन नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

अनुवासनयोग्यमनुष्य ।

यएवास्थाप्यास्तएवानुवास्याः । विशेषतस्तुरूक्षतीक्ष्णाग्रयःकेवलवातरोगार्त्ताश्च । एतेषु ह्यनुवासनं प्रधानतममित्युक्तं वनस्पतिमूलच्छेदनवन्मूलेद्रुमसेकवच्च ॥ १८ ॥

जिन मनुष्योंको आस्थापन करना लिखा है उन्हीको अनुवासनका प्रयोग करना चाहिये और विशेषकर रूक्ष, तीक्ष्णाग्नि और केवल वातरोगसे पीडित मनुष्योंको अवश्यही अनुवासन करना चाहिये । इन रोगोंकी विशेष चिकित्सा अनुवासन करनाही है । जैसे—जडके काट देनेसे वनस्पति नष्ट होजाती है उसी प्रकार अनुवासनके करनेसे रूक्षतादि और संपूर्ण वातजनित रोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ १८ ॥

शिरोविरेचनके अयोग्य मनुष्य ।

अशिरोविरेचनार्हाअजीर्णिभुक्तभक्तपीतस्नेहमद्यतोयपातुकामाः
स्नातशिराः स्नातुकामःक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तमत्तमूर्च्छितशस्त्रदण्डाह-
तव्यवांयव्यायामपानक्लान्तनवज्वरशोकाभितसविरिक्तानुवासि-
तगर्भिणीनवप्रतिश्यायार्त्ताअनृतुदुर्दिनेचेति ॥ १९ ॥

यह आगे कहेहुए मनुष्य शिरोविरेचनके अयोग्य होते हैं । जैसे—अजीर्णयुक्त भोजन कियाहुआ, स्नेहपानकर, जिसको जल व्यथा मद्य पीनेकी इच्छा है, जिसने उसी समय शिर धोया हो स्नान करनेकी इच्छावाला, भूखा, प्यासा, थकित, उन्मत्त, मूर्च्छित, शस्त्रसे भग्नहुआ, दण्डसे आहत, मैथुनसे थकाहुआ व्यायाम करके थकाहुआ, मद्यसे क्लान्त, तरुणज्वरवाला, शोकसे अभितप्त, जिसने विरेचन लिया हो,

अनुवासन क्रियाहुआ, गर्भवती और नवीन प्रतिश्यायसे पीडित मनुष्योंको शिरो-
विरेचन नहीं कराना चाहिये तथा वर्षाकालमें और दुर्दिन अर्थात् आंधी आदिसे
खराब दिनमें शिरोविरेचन (नस्यकर्म) करना उचित नहीं ॥ १९ ॥

इनमें नस्यकर्मके दुर्गुण ।

तत्राजीर्णिभुक्तभक्तयोर्दोषऊर्ध्ववहानिस्त्रोतांस्यावृत्यकासश्वासछ-
र्दिप्रतिश्यायाञ्जनयेत् । पीतस्नेहमद्यतोयपातुकामानां कृतेचपिव-
तांमुखनासास्त्रावाक्ष्युपदेहतिमिरशिरोरोगाञ्जनयेत् । स्नातशिर-
सःकृतेचस्नानेशिरसः प्रतिश्यायंक्षुधार्त्तस्यवातप्रकोपतृष्णार्त्तस्य
पुनस्तृष्णाभिवृद्धिमुखशोषश्च । श्रमार्त्तमत्तमूर्च्छितानामास्थाप-
नोक्तोदोषःस्यात् । शस्त्रदण्डहतयोस्तीव्रतरारुजंजनयेत् । व्यवा-
यव्यायामक्लान्तानांशिरःस्कन्धनेत्रोरःपीडनम् । नवज्वरशोकाभि-
ततयोरूष्मानेत्रनाडीभिरनुसृत्यतिमिरंज्वरवृद्धिश्चकुच्यार्त् । विरि-
क्तस्यवायुरिन्द्रियोपघातंकुच्यार्त् । अनुवासितस्यकफःशिरोगुरुत्व-
श्चकण्डूकिमिदोपाञ्जनयेत् । अन्तर्वर्त्नीगर्भस्तम्भयेत्सकाणःकुणिः
पक्षहतःपीठसर्पावास्यात् । नवप्रतिश्यायार्त्तस्यस्त्रोतांसिव्यापाद-
दयेत् । अनृतुदुर्दिनेशीतंपूतिनासिकाशिरोरोगश्चस्यात् । तस्मादे-
तेनशिरोविरेचनार्हाः ॥ २० ॥

अजीर्णमें और भोजन करनेके अनन्तर शिरोविरेचन देनेसे दोष ऊर्ध्ववाही स्त्रोतोंको
रोककर खांसी, श्वास, वमन और प्रतिश्यायको उत्पन्न करतेहैं । स्नेहपानके अनन्तर
और जल, पीनेकी अथवा मद्य पीनेकी इच्छावालेको शिरोविरेचन दियाजाय तो मुख
और नासिकासे स्राव, आंखोंमें क्लेदका लिपाहुआसा होना, तिमिररोग और
शिरोरोग उत्पन्न होता है । शिर धोनेके अनन्तर अथवा शिर सहित स्नान करनेके
अनन्तर तत्काल स्नान करनेसे प्रतिश्याय उत्पन्न होता है । क्षुवासे पीडितको शिरो-
विरेचनसे वातका कोप होता है । तृषार्त्तको तृषाकी वृद्धि और मुखशोष होता है ।
परिश्रान्त, उन्मत्त और मूर्च्छितको शिरो विरेचन देनेसे अँपस्मार आदि रोग उत्पन्न
होते हैं । शस्त्रहत और डण्डे आदिसे आहत मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे तीव्र
पीडा उत्पन्न होती है । मैथुन अथवा व्यायामसे थकेहुएका शिरोविरेचन देनेसे
मस्तक, कंधे, नेत्र और छातीमें पीडा उत्पन्न होती है । तरुणज्वरमें शिरोविरेचन

देनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है । शोकसे तपायमान मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे नेत्रनाडीमें शिरोविरेचनी नस्यकी गर्मी पहुंचकर तिमिररोगको उत्पन्न करती है । विरेचन दियेहुए मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे वायु कुपित होकर इन्द्रियोंको नष्ट करताहै । अनुवासित मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे कफ शिरमें भारीपन, खुजली और कृमिरोग उत्पन्न करताहै । गर्भवती स्त्रीको शिरोविरेचन देनेसे गर्भ स्तब्ध होजाताहै तथा काना, कुनखी, शरीरका आधा अंग माराडुआ अथवा पिंखला गर्भ होजाताहै । नवीन प्रतिश्यायमें शिरोविरेचन देनेसे दुष्टप्रतिश्याय होजाताहै । वेस-मय और दुर्दिनमें शिरोविरेचन देनेसे शीत, नाकसे दुर्गंधीका आना और शिरोरोग उत्पन्न होतेहैं । इसलिये इन सबको शिरोविरेचनी नस्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

शिरोविरेचन योग्य मनुष्य ।

शेषास्त्वर्हाः । शिरोदन्तमन्याहनुग्रहपीनसगलशुण्डिकाशालूक-
शुक्रतिमिरवर्त्मरोगव्यङ्गोपजिह्विकार्द्धावभेदकग्रीवास्कन्धास्यना-
सिकाकर्णाक्षिमूर्च्छकपालशिरोरोगार्दितापतन्त्रकापतानकगलग-
ण्डदन्तशूलहर्षचालाक्षिरोगार्धुदस्वरपरिपक्वाश्चैतेपुशिरोविरेचनं
प्रधानतममित्युक्तम् । तद्ध्युत्तमाङ्गमनुप्रविश्यमज्जपेशीकासक्तं
दोषविकारकरमपर्कपति ॥ २१ ॥

इनके सिवाय अन्य मनुष्योंको उचित समयमें शिरोविरेचन कराना चाहिये । तथा शिरोरोग, दंतरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, पक्व पीनस, गलशुण्डिका, शालूक, शुक्र (नेत्ररोग) तिमिर, वर्त्मरोग, व्यंग, उपजिह्वा, अर्द्धावभेदक, गर्दनके रोग, स्कन्धपीडा, मुखपीडा, नासिकाके रोग, कर्णशूल, नेत्रपीडा, मस्तकपीडा, कपालके रोग, अर्दित, अपतंत्रका, अपतानक, गलगण्ड, दंतपीडा, दंतहर्ष, दांतोंका चलायमान होना, नेत्ररोग, अर्बुद, स्वरभंग, वाणीका रुकना, गदगद (अकलापन) आदि रोगोंमें तथा ऊर्ध्वजन्तुगत रोगोंमें और वातादिसे उत्पन्न हुए परिपक्व रोगोंमें शिरोविरेचन कराना परम हितकारक है । क्योंकि शिरोविरेचन मस्तक आदिमें पहुंचकर मज्जा और पेशियोंमें चिपटेहुए दोषोंको आकर्षणकर निकाल देताहै ॥ २१ ॥

प्रावृद्दशरद्वसन्तेष्वितरेषुआत्ययिकेषुरोगेषुनावनंकुर्व्याद्वीप्मेपूर्वा-
ह्वेशीतेमध्याह्नेवर्षास्वदुर्दिनेचेति ॥ २२ ॥

प्रावृट्, शरद और वसन्तऋतुमें जिसदिन वारिस और बादल आदि न हो उसदिन शिरोविरेचन करना अर्थात् नस्यकर्म कराना हितकारक है । यदि कोई शीघ्र नष्ट करनेवाला आत्ययिक रोग उत्पन्न होजाय तो ग्रीष्म ऋतुमें प्रातःकाल और शिशिर-ऋतुमें दुपहरके समय और वर्षाऋतुमें जिसदिन बादल आदि न हों उस दिन नस्यकर्म कराना चाहिये ॥ २२ ॥

अध्याय काउपसंहार ।

तत्रश्लोकाः ।

इतिपञ्चविधं कर्मविस्तरेण निदर्शितम् । येभ्योयच्चवहितं यस्मात्कर्मयेभ्यश्च यद्धितम् ॥ २३ ॥ नचैकान्तेन निर्दिष्टे तत्राभिनिवेशदु-
धः । स्वयमप्यत्र वैधेन तव र्यबुद्धिमता भवेत् ॥ २४ ॥ उत्पद्येताहि सावस्थादेशकालवलंप्रति । यस्यांकार्यमकार्यस्यात्कर्मकार्यश्च वर्जयेत् ॥ २५ ॥ छर्दिहृद्रोगगुल्मात्तैवमनस्वेचिकित्सिते । अवस्थांप्राप्य निर्दिष्टां कुष्ठिनां वस्तिकर्मच ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्यपि निर्दिष्टे कुर्याद्दूह्यं स्वयंधिया । विनातर्केण यासिद्धिर्यदृच्छासिद्धिरेवसा ॥ २७ ॥

इति श्रीचर० सिद्धिस्थाने पञ्चकर्मियासिद्धिर्नामा द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस पंचकर्मियानामक अध्यायमें विस्तारपूर्वक पंचकर्मकी विधि कही गई है । जिसको जो कर्म जिसप्रकार हानिकारक है तथा जिसको जो हितकारक है वह भी यथोचित रीतिपर कहदिये गयेहैं । परन्तु जिन संपूर्ण नियमोंको यथां पर लिखा गयाहै बुद्धिमान् वैद्य केवल इन्दीके आश्रय न रहकर जिस समय जो उचित हो उसकी उसी प्रकार अपनी बुद्धिते तर्कनाकर युक्तिपूर्वक क्रिया करनी चाहिये । देश, काल, और बलके भेदसे कभी ऐसी व्यवस्था उपस्थित होजातीहै कि जिन कर्मोंका जिस रोगमें निषेध है वह भी करने पडतेहैं । और जो कर्तव्य कर्म है उनको भी त्याग दिया जाताहै । जैसे—छर्दी हृद्रोग और गुल्मरोगमें वमन करानेका निषेध है परन्तु अवस्थानुसार वमन कराना पडताहै । कुष्ठरोगमें वस्तिकर्मका निषेध होनेपर भी अवस्थाविशेषसे वस्तिकर्म कियाभी जाताहै । इसलिये जो विषय जिस स्थानमें नहीं भी कहागया उसको भी बुद्धिमान् वैद्य देश, काल आदि विचार अपनी बुद्धिते तर्कना करके प्रयोग करे । विना

इसप्रकार बुद्धिकी तर्कना किये जो सिद्धि प्राप्त होजाय उसको यहच्छाप्ता अर्थात् भागसे प्राप्त सिद्धि जानना । इसलिये सब कर्मोंमें बुद्धिमान् वैद्य समयानुसार तर्कनाकर क्रियाका प्रयोग करे ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

इ० श्री०च० प्र०आ०सं०सि०स्थाने प्र०भा०टी० पचकर्मायसिद्धिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातोवस्तिसूत्रीयसिद्धिव्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम वस्ति सूत्रीयसिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

कृतक्षणशैलवरस्यरम्येस्थितंधनेशायतनस्यपार्श्वे । महर्षिसंघैर्द्वै-
तमग्निवेशःपुनर्वसुंप्राञ्जलिरन्वपृच्छत् ॥ १ ॥ वस्तिर्नरेभ्यःकिम-
पेक्ष्यदत्तःस्यात्सिद्धिमान्किम्मयमस्यनेत्रम्।कीदृक्प्रमाणाकृतिर्कि-
गुणश्चकेपाञ्चर्कियोनिगुणश्चवस्तिः ॥ २ ॥ निरूहकल्पःप्राणिधा-
नमात्राः स्नेहस्यवाकाःशमनेविधिःकः । केवस्तयःकेपुमताइतीदं-
श्रुत्वोत्तरंप्राहवचोमहर्षिः ॥ ३ ॥

पर्वतोंके राजा हिमालयके अंगभूत कैलासनामक रमणीय पर्वतके एक निकु-
क्षमें कुबेरके स्थानके पार्श्वभागमें ऋषिगणोंसे सर्वतः सुशोभित पुनर्वसुजीसे अग्निवेश
हाथ जोडकर पूछने लगे कि भगवन् ! किस अवस्थामें किस प्रकार वस्तिका प्रयोग
करनेसे मनुष्योंको फलदायक होतीहै । वस्तिका नेत्र किस द्रव्यसे बनाया जाताहै ।
वस्तिका नेत्र (मुखनली) कैसा और किस प्रमाणसे किस आकारका बनाना
चाहिये उसका गुण क्या है । किसको किस द्रव्यसे वस्ति प्रयोग कियाहुआ क्या
गुण करताहै । निरूहकी भिन्न कल्पना किस प्रकार है । अनुवासनकी मात्राका
क्या प्रमाण है । पीडा आदि शांतिके लिये विधि क्या है । किस मनुष्यके लिये
किस प्रकारकी वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है । इस प्रकार अग्निवेशके कियेहुए
प्रश्नोंको सुनकर महर्षि पुनर्वसुजी इस प्रकार उत्तर देनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

समीक्ष्यदोषौषधदेशकालसात्म्याग्निस्त्वदिवयोवलानि । वस्तिः
प्रयुक्तो नियतंगुणायस्युःसर्वकर्माणिचासिद्धिमन्ति ॥ ४ ॥

दोष, औषध, देश, काल, सात्म्य, अग्नि और सत्वआदि तथा अवस्था और

बल विचारकर वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्ति गुणदायक होतीहै । तथा सब कर्मोंमें सिद्धिके देनेवाली होतीहै ॥ ४ ॥

वस्तिनेत्रका प्रमाण ।

सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यास्थिशस्त्रद्रुमवेणुदन्तैः । नलैर्विषा-
णैर्मणिभिश्चतैस्तैःकार्य्याग्निनेत्राणित्रिकर्णिकानि ॥ ५ ॥

सुवर्ण, चांदी, शीशा, तांबा, पीतल, कांसे, हड्डी, लोहा, लकड़ी, बांस, हाथी-
दांत, नरसल, साँग और मणी इनमेंसे किसी वस्तुका वस्तिकी नेत्र (मुंहनाल)
और कर्णिका यह बनाना चाहिये ॥ ५ ॥

षड्द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानिषाड्द्विंशतिर्द्वादशवर्षजानाम् । स्युर्मु-
द्गर्कन्धुसतीनवाहिच्छिद्राणिवर्त्यापिहितानिचापि ॥ ६ ॥

छः, बारह और बीस वर्षकी अवस्थावाले मनुष्यके लिये वस्तिक नल लम्बावमें
क्रमसे ६, ८, और बारह अंगुलका होना चाहिये । और उस वस्तिके मुखका छिद्र
छः अंगुल लंबी हो तो मूंगके बराबर मोटा और ८ अंगुल लम्बी हो तो मटरके
बराबर तथा १२ अंगुल लंबी हो तो छोटे झाड़ी बरके समान मोटा छिद्र होना
चाहिये । उस छिद्रद्वारा कोई जीव वस्तिमें छिपकर न बैठजाय इस लिये उस
छिद्रके मुखपर कुठ बत्ती आदि लगाये रखना चाहिये ॥ ६ ॥

वस्तिकी परिधि ।

यथावयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यांमूलाग्रयोःस्युःपरिणाहवन्ति ।

ऋजूनिगोपुच्छसमाकृतीनिश्लक्ष्णानिचस्युर्गुलिकामुखानि७॥

रोगीकी जो अवस्था हो उसी अवस्थानुसार मनुष्यके अंगूठके बराबर मोटाई
पीठेकी ओरसे और कनिष्ठिका अंगुलीके बराबर मोटाई वस्तिके मुखनालकी
मुखकी ओरसे होनी चाहिये । वस्तिका नल नम्र और गोपूच्छके समान ऊपरसे
मोटा तथा मुखकी ओरसे पतला और चिकना सुडौल, तथा गोल होना
चाहिये ॥ ७ ॥

१ गुदा द्वारा जो पिचकारी लगाई जातीहै उसको वस्तिकर्म कहतेहै यद्यपि शिरोवस्ति
आदि (नसमें लगानेकी पिचकारी) अनेक प्रकारकी पिचकारियें प्रयोगमें आतीहैं परन्तु इस
स्थानमें गुदामेंही लगानेकी पिचकारीकाही फयन है उस पिचकारी मुखके ओरकी यह नली जो
गुदामें प्रवेश की जातीहै उसको वस्तिकानेत्र कहतेहैं ।

वस्तिकर्णिकाव वस्तिपुटक ।

स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागेमूलाश्रितेवस्तिनिबन्धनेद्वे ।

जरद्भवोमाहिपहारिणोवास्याच्छौकरोवस्तिरजस्यवापि ॥ ८ ॥

दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धःकपायरक्तःसुमृदुःसुशुद्धः ।

नृणांवयोवीक्ष्ययथानुरूपंनेत्रेपुयोज्यस्तुसुबद्धसूत्रः ॥ ९ ॥

उस नलीका जो भाग गुदामें प्रवेश किया जाताहै उस ओर नेत्रनलीके चौथे भागमें मुखकी ओर एककर्णिका और नीचेकी ओर दो कर्णिका वस्ति बंधनके लिये होनी चाहिये । किसी बूढ़े वैल अथवा भैंसा, हरिण, सूअर या बकरा इनमेंसे जिसका आसानीसे मिल सके उसकी सूत्रवस्तिकी धैली निकालकर उसका वस्ति-पुटक अर्थात् वस्तिका पेटा घनावे । यह पेटा दुर्गंधरहित तथा नस रहित और हरड, नासपाल आदिके कायसे रंग देकर सुखाया हुआ और नम्र बनायाहुआ होना चाहिये । तथा रोगीकी अवस्थानुसार इस वस्तिके पेटेका लम्बाव, चौड़ाव, छोटा, बड़ा होना चाहिये । फिर इस नम्र वस्तिपुटकमें रोगीकी अवस्थानुसार पूर्वोक्त सुवर्ण आदि किसी द्रव्यकी बनी नेत्रनली लगाकर सूत्रके ढोरेसे विधिवत्वांध देना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

वस्तेरभावेऽप्यजोगलोवास्यादङ्गपादःसुघनःपटोवा ।

नेत्रस्यचालाभंतएवनाडीहितास्थिजावंशभवानलोवा ॥ १० ॥

वैल आदिकी वस्ति (सूत्राशय) न मिलनेपर मंडक आदिके चमडेसे वस्ति बनाना चाहिये । अथवा चौपायें जानवरोंके भीतरी नर्म चमडेकी वस्ति घनावे । यदि इन सबका मिलना कठिन हो तो किसी सघन वस्त्र जिसमें पानी न छन सके उसका वस्तिपुटक घनावे । सुवर्ण आदि किसी वस्तुका वस्तिनेत्रः (वस्तिकी मुंहनाल) न मिलनेपर हित हड्डीकी पोली नलीसे कामले अथवा वांसकी नली वा नरसलकी नली लेकर पूर्वोक्त प्रमाणसे वस्तिका नेत्र बन वस्तिपुटकमें लगा विधिवत् वस्तिकर्म करे ॥ १० ॥

वस्तिकर्मविधि ।

आस्थापनार्हंपुरुषंविधिज्ञःसमीक्ष्यपुण्येऽहनिशुक्लपक्षे ।

प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्त्तयोगेजीर्णान्नमेकाग्रमुपक्रमेत ॥ ११ ॥

१ नेत्रके मुखपर छिद्रवाली एक छोटीसी जगहको कर्णिका कहतेहैं । कर्णिकायुक्त नेत्र, खड या चमडेकी पिचनारीके मुखकी ओर लगा रहताहै । वर्तमान समयमें सब प्रकारकी वस्तियें डाक्टरों रीतिसे बनाई हुई मिलती हैं उन्हींसे काम लेना चाहिये ।

आस्थापनके योग्य रोगीको वैद्य शुभदिन, शुक्लपक्ष, शुभनक्षत्र और उत्तम सुहृत्
 या शुभयोगमें भोजन पचजानेके अनन्तर सावधानीसे आस्थापनवस्ति करे ॥ ११ ॥
 वलांगुडूर्वात्रिफलांसरास्नाद्वेपश्चमूलेचपलोन्मितानि । अष्टौपला-
 न्यर्द्धतुलाञ्चमांसाच्छागात्पचेदप्सुचतुर्थशेषम् ॥ १२ ॥ पूतंयवा-
 नीफलविल्वकुष्ठवचाशताद्वाघनपिप्पलीनाम् । कल्कैर्गुडक्षौद्रघृ-
 तैःसतैलैर्युतंसुखोष्णैस्तुपिचुप्रमाणैः ॥ १३ ॥ गुडात्पलद्विप्रसृता-
 न्तुमात्रांस्नेहस्ययुक्तयामधुसैन्धवादि । स्नेहंसुनिर्मथ्यततोऽनुक-
 ल्पंप्रक्षिप्यवस्तौमथितंखजेन ॥ १४ ॥ वस्तिंततःसव्यकरेनिधा-
 यसुवद्धमुच्छ्वास्यचनिर्व्यलीकम् । अङ्गुष्ठमध्येनसुखंपिधायनेत्रा-
 ग्रसंस्थामपनीयवर्त्तिम् ॥ १५ ॥

बला, गिलोय, त्रिफला, राम्ना, लघु पंचमूल और बृहत् पंचमूल यह सब द्रव्य
 एकएक पल लेवे । बकरेका मांस, ८ पल, और आधा तुला (३ सेर) लेकर इन
 सबको आठगुने जलमें पकावे चौथाभाग रहजानेपर उतारकर छानले । इस क्वाथमें
 अजवायन, भैरफल, बेलगिरि, कूठ, बच, सौंफ, नागरमोथा और पीपल इन सबका
 एकएक तोला कल्क मिलावे । तथा गुड २ पल, तेल २ पल, घृत २ पल, शहद और
 सिंधानमक इन सबको युक्तिपूर्वक मिला देवे । फिर सबको एकत्र मथकर सुखोष्ण
 करले । यह सुखोष्ण किया हुआ कल्क, स्नेहयुक्त काय वस्तिमें भरकर खूब हिला
 लेवे । फिर इस वस्तिको बायें हाथमें लेकर विधिवत् वस्तिको फुलाकर वस्तिके
 नेत्रके ध्रमभागको स्वच्छकर उसके आगेकी वर्त्ती आदि जो लगीहो उसे निकाल
 डाले और इसके मुखको अंगूठेके मध्यभागसे बन्दकर रखे ॥ १२-१५ ॥

तैलाक्तगात्रंकृतमूत्रविट्कंनानातिक्षुधात्तंशयनेमनुप्यम् । समेऽथ-
 वेपन्नतशैरसेवानात्युच्छ्रितेस्वास्तरणोपपन्ने ॥ १६ ॥ सव्येनपाश्वे-
 नसुखंशयानंकृत्वर्जुदेहंस्वभुजोपधानम् । निकुच्यसव्येतरदस्य-
 सविथवामंप्रसार्य्यप्रणयेत्ततस्तम् ॥ १७ ॥ स्निग्धेगुदेनेत्रचतुर्थ-
 भागंस्निग्धंशनैर्मृद्घृजुष्टवंशम् । अकम्पनावेपनलाघवादी-
 न्पाण्योर्गुणांश्चापिहिदर्शयंस्तम् ॥ १८ ॥ प्रपीडयचैकग्रहणेनद-
 त्तनेत्रंशनैरेवततोऽपकर्षयेत् ॥ १९ ॥

फिर रोगीको मलमूत्रादि त्याग करानेके अनन्तर तेलकी मालिश करा तथा रोगीको अधिक क्षुधा न लगीहो ऐसी अवस्थामें उत्तम सीधी समान भूमिमें अथवा मस्तककी ओर कुछ नीची भूमिमें सुन्दर शय्या जो बहुत ऊंची, बहुत नीची और ढीली न हो तथा कोमल और स्वच्छहो उसके ऊपर रोगी वाई करवट लेटे और वाई बांहका अपने सिरके नीचे सिरहाना देवे । फिर उसकी दहिनी टांगको पेटकी ओरको सिकोडे और वाई टांगको सीधी फैलावे । फिर गुदाको चिकनीकर और वस्तिके मुखको चिकनाकर वस्तिका चौथा भाग, धीरे २ गुदामें विधिवत् प्रयोग करे । गुदामें वस्तिके नलको ठीक सीधा पीठकी बांसकी ओर रखे और वह वस्तिका नेत्र गुदामें प्रवेश करतेहुए अपने हाथोंको कंपावे नहीं तथा स्थिर और हल्का हाथ रखे । इस प्रकार वस्तिके नलको गुदामें प्रवेश कर बायें हाथसे नलका पकड रखे और दहिने हाथसे वस्ति (पिचकारी) को दवाता जावे । जिससे वस्तिका द्रव्य गुदामें पहुंच जाय । फिर धीरेसे वस्तिकी नलीको गुदामेंसे निकाल लेवे । परन्तु वस्तिको इतने जोरसे न दवावे कि जिससे संपूर्ण औषधी एकवार बलपूर्वक पहुंचकर हानि पहुंचावे और ऐसा धीरे २ भी न दवावे । जिससे वस्तिकर्ममें अधिक देर लगे । तथा खाली वस्तिको भी न दवावे जिससे गुदामें वस्तिकी पवन पहुंचे । इस प्रकार वस्ति द्रव्यको सावधानीसे गुदामें पहुंचाकर वस्तिके नलको धीरेसे निकाल लेवे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

वस्तिकेविधानमें असावधानीके दोष ।

तिर्य्यकूप्रणीतेतुनयातिधारागुदेव्रणःस्याच्चलितेचनेत्रे । दत्तःशने-
र्नाशयमेतिवस्तिःकण्ठप्रधावत्यतिपीडितश्च । शीतस्त्वतिस्तम्भ-
करोविदाहंमूर्च्छाश्चकुर्यादतिमात्रमुष्णः ॥ २० ॥ स्निग्धोऽतिजाड्यं
पवनश्चरूक्षस्तन्बलपमात्रालवणस्त्वयोगम् । करोतिमात्राभ्यधि-
कोऽतियोगंक्षामन्तुसान्द्रःसुचिरेणचैति ॥ २१ ॥ दाहातिसारोल-
वणोऽतिकुर्यात्तस्मात्प्रयुक्तंसममेवदद्यात् ॥ २२ ॥

वस्तिका मुख यदि गुदामें तिरछा प्रवेश किया जाय तो औषधीकी धारा ठीक सीधी नहीं पहुंच सकती । यदि वस्तिका मुख गुदामें हिलता डुलता रहे तो गुदामें घाव होनेका भय है । यदि वस्तिको बहुत देरमें धीरे २ प्रथमन कियाजाय तो वह पकाशयमें वा उचित स्थानमें नहीं पहुंच सकती । यदि वस्तिको अत्यन्त जोरसे दवादिया जाय तो वस्तिके द्रव्य कण्ठकी ओर चला जाताहै । अत्यन्त शीतल द्रव्यसे वस्ति कीजाय तो स्तम्भको करतीहै । अत्यन्त गर्म वस्ति विदाह और मूर्च्छाको कर-
नेवाली होतीहै । अत्यन्त स्निग्धवस्ति जडताको उत्पन्न करती है । रूक्षवस्ति वायुको

कुपित करती है । वस्तिमें नमककी अल्पमात्रा होनेसे वस्तिका ठीक योग नहीं होता । अधिक मात्रासे वस्तिका अतियोग होता है । अल्पमात्रा वा अत्यन्त गाढी वस्ति, विलंबसे निकलती है । अत्यन्त लवणयुक्त वस्ति अतिसार और दाहको उत्पन्न करती है । इसलिये वस्तिको योग्य रीतिपर युक्तिपूर्वक ठीक योगसे प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

पूर्वाहियोज्यमधुसैन्धवाभ्यांस्नेहंविनिर्मथ्यंततोऽनुकल्कम् ।

विमथ्यसंयोज्यपुनर्द्रवैस्तद्वस्तौनिदध्यान्मथितंखजेन ॥ २३ ॥

पहिले स्नेह, लवण और शहदको विधिवत् मन्थनकर एककर लेवे जिससे लवण शहद और घृत तैलादि एक बनजावे फिर इसमें कल्क मिला मन्थनकरे जब कल्क मिलजाय तब क्वाथद्रव्य वा अन्य जो पतले पदार्थ मिलाने हों वह मिलाकर मथनीसे खूब मथ डाले । फिर इसको वस्तिमें भरकर वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ २३ ॥

वास्तिमें लेटनेका विधान ।

आमाश्रयोऽग्निर्ग्रहणीगुदञ्चतत्पाद्वसंस्थस्यसुखोपलब्धिः ।

लीयन्तएवंवलयश्चतस्मात्सव्यंशयानोऽर्हतिवास्तिदानम् ।

विड्वातवेगोयदि चार्द्धदत्तेनिष्कृष्यमुक्तेप्रणयेदशेषम् ॥ २४ ॥

आमाशय, जठराग्नि, ग्रहणी, मलाशयमेंकी स्थूल अंतडी यह मनुष्यके बायें पार्श्वकी ओर हैं तथा गुदाकी तीनों वलियें भी बाईं ओरको ही लीन होगई हैं । इसलिये बाईं करवट लेटाकर वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । बाईं करवट लेटाकर वस्तिकर्म किया हुआ वस्तिद्रव्य सुखपूर्वक वेगसे यथास्थान पहुंच जाता है । यदि वस्तिके करते समय आधा द्रव्य प्रवेश होनेपर मल या वायुका वेग आवे तो वस्तिके नलको निकालकर विष्टा या बातके त्याग होलेनेके अनन्तर फिर वस्तिकर्मकर संपूर्ण द्रव्य भीतर पहुंचावे ॥ २४ ॥

उत्तानदेहश्चकृतोपधानः स्याद्वीर्यमाप्नोति तथास्य देहम् ।

एकोऽपकर्षत्यनिलंस्वमार्गात्पित्तं द्वितीयस्तुकफंतृतीयः ॥ २५ ॥

वस्तिकर्म कर लेनेके अनन्तर रोगी तकियेपर सिर रखके आरामसे चित्त लेटजावे । ऐसा करनेसे औषधका वीर्य रोगीके शरीरमें यथोचित संचार करता है । एक वस्ति वायुको, दूसरी वस्ति पित्तको और तीसरी कफको अपने मार्गसे कर्षणकर निकाल देती है ॥ २५ ॥

वास्तिके अनंतरकर्म ।

प्रत्यागतेकोष्णजलावसिक्तःशाल्यन्नमद्यात्तनुनारसेन ।

जीर्णेतुसायंलघुचाल्पमात्रंभुवतेऽनुवास्यःपरिवृंहणार्थम् ॥ २६ ॥

जब वस्ति द्रव्य मलको लेकर बाहर निकल चुके तो सुखोष्ण जलसे शरीरको सेचन कर फिर पतलेसे मांसरस अथवा किसी उचित यूपके साथ शालीचावलोंका भोजन करावे । सायंकालको भूख लगनेपर हल्का और अल्पमात्रसे भोजन करावे । फिर वृंहणके लिये अनुवासन करावे ॥ २६ ॥

अनुवासन विधि ।

निरूहपादांशसमेनतैलेनाम्लानिलध्वौपधत्ताधितेन ।

दत्त्वास्फिचोपाणितलेनहन्यात्स्नेहस्यशीघ्रागमरक्षणार्थम् ॥ २७ ॥

अनुवासनका तेल निरूहणवस्तिकी मात्रासे चौथा भाग लेना चाहिये। यह तेल हल्के द्रव्योंसे और कांजीसे सिद्ध कियाहुआ होना चाहिये । फिर उसके दोनों नितम्बोंको दोनों हाथोंसे इस प्रकार दबाये जिससे वह तेल शीघ्र निकलने न पावे ॥ २७ ॥

ईषत्पदाङ्गुष्ठयुगञ्चकर्पेदुत्तानदेहस्यतनौप्रमृज्यात् । स्नेहेनपाण्य-
ङ्गुलिपिण्डिकाश्चयेचास्यगात्रावयवारुगार्त्ताः ॥ २८ ॥ तांश्चावमृ-

ज्यात्ससुखंततश्चनिद्रामुपासीतकृतोपधानः ॥ २९ ॥

दोनों पांवाँके अंगुठोंको थोडा २ खीचे तथा उसको सीधा लेटाकर पांवाँके तल्लुवाँको धीरे धीरे मसले, एडी, उंगुली, दोनों पिण्डली और जिस २ अंगमें पीडा प्रतीत होतीहो उन सबको तेलसे मसले, जिस प्रकार सब अंगोंको धीरे २ मसलतेहुए उसको निद्रा आजाय इस प्रकार उसकी सेवा करे । निद्रा आनेपर धीरेसे उसके ऊपर ब्रह्म दे देवे ॥ २८ ॥ २९ ॥

निरूहणमें स्नेहकी मात्रा ।

भागाःकपायस्यतुपञ्चपित्तेस्नेहस्यपष्ठःप्रकृतौस्थितेच ।

वातेविवृद्धेतुचतुर्थभागोमात्रानिरूहेपुकफेऽष्टभागः ॥ ३० ॥

पित्तजनित रोगमें यदि वायु प्रकृतिस्य हो तो ५ भाग काय और ६ ठां भाग स्नेह लेना चाहिये । यदि वायुकी वृद्धि हो तो कायसे चौथा भाग स्नेह लेना चाहिये और कफकी अधिकतामें ७ भाग काय और आठवां भाग स्नेह लेना चाहिये । यह निरूहणमें स्नेहका प्रमाण है ॥ ३० ॥

निरूहणकी मात्रा ।

निरूहमात्राप्रसृतार्द्धमाद्येवर्षेततोऽर्द्धप्रसृताभिवृद्धिः । आद्वादशा-
त्स्यात्प्रसृताभिवृद्धिरष्टादशाद्वादशतःपरंस्युः । आसप्ततेरुक्तमिदं
प्रमाणमतः परंपोडशवद्विधेयम् । निरूहमात्राप्रसृतप्रमाणावाले
चवृद्धेचमृदुर्विशेषः ॥ ३१ ॥

१ वर्षके बालकको निरूहणमें १ पल द्रव्यका प्रमाण है । इसके अनन्तर प्रतिवर्ष
एकएक पल मात्रा बढ़ाता जाय ! १२ वर्षसे लेकर १८ वर्ष पर्यन्त एकएक वर्षमें दो
दो पलकी मात्रा बढ़ावे । १८ वर्षसे ७० वर्ष तक यही मात्रा रहने देवे । फिर ७०
से उपरांत १६ वर्षकी मात्रा (२० पल) रहने दे बालकको एक प्रसृति (२ पल)
और वृद्धावस्थामें प्रायः मृदुमात्रका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१ ॥

शयनक्रम ।

नात्युच्छ्रितं नाप्यतिनीचपादंसपादपीठं शयनं प्रशस्तम् ।

प्रधानमृद्वास्तरणोपपन्नंप्राक्शीर्षिकंशुक्लपटोत्तरीयम् ॥ ३२ ॥

जिस मनुष्यको वास्तिका प्रयोग किया जाय उसको ऐसी शय्यापर लेटाना
चाहिये जो न तो अत्यंत ऊंची और न उसके पाये अति नीचेहो शय्यापर चढते
समय या शय्यासे उतरनेके समय भी शय्याके समीप पांव रखनेके लिये कोई गद्दी
आदि ऐसी होनी चाहिये जिसपर पांव रखकर उतरते चढते समय किसी प्रकार
हलचल न पड़े । शय्याके ऊपर ठीक लम्बा चौड़ा और नर्म बिछौना होना चाहिये
तथा शिरकी ओर और पांवीकी ओर बहुत सुन्दर नर्म तकिये रहना चाहिये और
धोढनेके वस्त्र आदिक हाथ पांव पोछनेके रुमाल यह सब उत्तम सफेद होने चाहिये ।
शय्याका सिरहना पूर्वकी ओर करके इस विधिसे शय्याको विछावे ॥ ३२ ॥

भोजनादिक्रम ।

भोज्यंपुनर्व्याधिभवेक्ष्यसम्यक्प्रकल्पयेद्यूपयोरसाद्यैः ॥ ३३ ॥

सर्वेषुविद्याद्विधिमेतदाद्यं वक्ष्यामि वस्तीनत उत्तरीयान् ।

सम्यक्प्रणीताःखलुवस्तयोयेवातामयघ्नाश्चवलप्रदाश्च ॥ ३४ ॥

वास्तिकर्म करनेके अनन्तर व्याधिके दोष बल आदि विचारकर उसको यूप, दूध
अथवा मांसरस आदि उसके भोजनके लिये कल्पना करे सब प्रकारकी वास्तियोंमें
प्रथम यही विधि की जाती है । उसके उपरांत अन्य वास्तियोंको वर्णन करतेहैं । जिन
वास्तियोंका सम्यक् प्रयोग किया जानेपर वातजनित व्याधियें नष्ट होतीहैं और शरीर-
में बल प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वातनाशक वस्तियोंके योग ।

द्विपञ्चमूलस्य रसोम्लयुक्तः सच्छागमांसस्य सपूर्वशेषः ।

त्रिस्नेहयुक्तःप्रवरोनिरूहःसर्वानिलव्याधिहरःप्रदिष्टः ॥ ३५ ॥

दोनों पंचमूल और बकरेके मांसको आठगुने जलमें पकावे, चौथाभाग शेष रहने पर उतारकर छानलेवे फिर यह काय तीनभाग और तेल चौथाभाग, कांजी कायका सोलहवां भाग इन सबको मिलाकर निरूहण वस्तिका प्रयोग करे तो संपूर्ण वातव्याधियें नष्ट होतीहैं । किसीके मतमें ३ भाग तेल और ४ भाग काय मिलाना ऐसा लिखाहै ॥ ३५ ॥

स्थिरादिवर्गस्थवलापटोलत्रायन्तिकैरण्डयवैर्युतस्य । प्रस्थोरस-

श्छागरसार्द्धयुक्तःसाध्यःपरःप्रस्थरसश्चयावत् ॥ ३६ ॥ प्रियङ्गु-

कृष्णोघनकल्कयुक्तःसतैलसर्पिर्मधूसैन्धवश्च । स्याद्दीपनोमांसव-

ल्लप्रदश्चक्षुर्वलञ्चापिददातिसयः ॥ ३७ ॥

शालपर्णी आदिगण, वला, पटोलकी जड़, त्रायमाण, एरण्डकी जड़ और यव इन सबको मिलाकर आध सेर लेवे । कूटकर ४ सेर जलमें पकावे । १ सेर जल शेष रहनेपर उतारकर छान ले । यह काय १ सेर, बकरेका मांसरस आध सेर इन दोनोंको मिला फिर पकावे । १ सेर (८० तोला) रहनेपर उतारकर छानले । फिर इसमें फूलप्रियंगु, पीपल और नागरमोथा इनका ३ पल कल्क कायसे चौथाभाग तेल आठवां भाग घी तथा ५ तोला शहद और ६ मांसे संधानमक मिलाकर खूब मथडाले । इस द्रव्यसे निरूहणवस्ति कीहुई अग्निको दीपन करतीहै मांस और बलको बढ़ाती है तथा नेत्रोंमें शीघ्र बलके देनेवाली है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

एरण्डमूलात्रिपलंपलानिह्रस्वानिमूलानिचयानिपञ्च । रास्नाश्वग-

न्धातिवलागुडूचीपुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥ ३८ ॥ भागापलांशामदना-

ष्टयुक्ताजलद्विकंसेकाथितेऽष्टशेषे । पेप्याशताह्वाहवुषाप्रियङ्गुसपि-

प्पलीकंमधुकंवाच ॥ ३९ ॥ रसाज्जन्वत्सकवीजमुस्तंभागाक्ष-

मात्रंलवणांशयुक्तम् । समाक्षिकस्तैलयुतःसमूत्रोवस्तिर्नृणांदी-

पनलेखनीयः ॥ ४० ॥

एरण्डकी जड़का छिलका ३ पल, लघुपंचमूलकी पांचो औषधी एकएक पल तथा रास्ना, असगंध, धातिवला, गिलोय, पुनर्नवा, अमलतासका गूदा देवदारु यह सब एक

एक पल और मैनफल ८ पल इन सबको ८ सेर जलमें पकावे आठवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर, इसमें सौंफ हाउबेर, फूलप्रियंगु, मुलैठी, वच, रसौत, इन्द्रयव और नागरमोथा यह एकएक तोला और नमक ३ मासे । इन सबको बहुत बारीक पीसकर उस क्वाथमें मिलावे । फिर तेल, गोमूत्र और शहद मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति मनुष्योंकी जठराग्निको दीपन करती और मलको उखाडकर निकाल देती है ॥ ३८-४० ॥

एरण्डतेलकी वस्तिके गुण ।

जहोरुपादात्रिकपृष्टशूलंकफावृतंमारुतनिग्रहश्च । विण्मूत्रवातग्रहणंसशूलमाध्मानतामश्मरिशर्करश्च ॥ ४१ ॥ आनाहमशौग्रहणीप्रदोपानेरण्डवस्तिःशमयेत्प्रयुक्तः । वैद्येनसम्यक्कुशलेनचैपुनर्वसूक्तःकृपयानराणाम् ॥ ४२ ॥

एरण्डके तेलसे वैद्य विधिवत् वस्तिप्रयोग करे तो जंघा, ऊरु, पांव, त्रिक और पीठकी जकडन तथा पीडा दूर होजातीहैं और कफावृत वायु नष्ट होतीहै तथा विष्ठा और मूत्रका बंध और अधोवायुका रुकना तथा शूल, अफारा, पथरी, शर्करा यह दूर होतीहैं। एवं अनाह, अर्श और ग्रहणीके विकार यह सब दूर होते हैं । यह वस्तिप्रयोग भगवान् पुनर्वसुजीने मनुष्योंके ऊपर कृपाकरके कथन किया है । एरण्ड तैलकी वस्ति केवल एरण्डके तेलसेही नहीं दीजाती किन्तु उपरोक्त दशमूल वा शालपण्यादि काथमें अन्य तेलके बदलेमें एरण्डतेल मिलाकर वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

चतुष्पलेतैलघृतस्यभृष्टश्छागाच्छतार्द्धादधिदाडिमाम्लः ।

रसः सपेप्योवलवर्णमांसरेतोऽग्निदश्चान्ध्यशिरोरुजाघ्नः ॥ ४३ ॥

२० पल बकरेके मांसको आठगुने जलमें पकावे छठां भाग शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इस मांसरसमें दही, अनारका रस और थोडासा सेंधानमक मिलाकर २ पल तेल और २ पल घीमें भून ले । इसमें मैनफल मिलाकर निरूहण करनेसे बल, वर्ण, मांस, शुक्र और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै तथा मस्तकपीडा दूर होतीहै ॥ ४३ ॥

जलदिकंसेऽष्टपलंपलाशात्पक्कारसोऽर्द्धाढकमात्रशेषः । कल्कैर्बला-मागाधिकापलाभ्यांयुक्तःशताह्वाद्रिपलेनचापि ॥ ४४ ॥ ससैन्धवः क्षौद्रयुतःसतैलोदेयोनिरूहोवलवर्णकारी । आनाहपार्श्वाभ्यामयो-निदोपान्गुल्मानुदावर्त्तरुजश्चहन्यात् ॥ ४५ ॥

आठपल ढाककी छालको २ आठक जलमें पकावे । जब आधा आठक शेष रहे तो उतारकर छानले फिर इसमें बला और पीपल, एक एक पल सौंफ २ पल, इनका वारीक कल्ककर तेल, शहद और थोडासा सेंधानमक मिला खूब मयडाले फिर इससे वस्ति करे तो इससे बल, वर्णकी वृद्धि होती है तथा अफारा, पार्श्वपीडा, योनि-दोष, गुल्म, उदावर्त्त यह सब दूर होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

यष्टयाह्नमूलाष्टपलेन सिद्धं पयः शताह्वाफलापिप्पलीभिः ।

युक्तंससर्पिर्मधुवातरक्तवैस्वर्यवीसर्पाहितो निरूहः ॥ ४६ ॥

मुलैठी ८ पल लेकर २ सेर दूध और ४ सेर पानी मिलाकर पकावे । दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । फिर इसमें सौंफ, मैनफल, पीपल, घृत, शहद मिलाकर निरूहण वस्ति करना वातरक्त, स्वरभंग और विसर्परोगमें हितकारी है ॥ ४६ ॥

पित्तनाशक वस्ति ।

यष्टयाह्नलोधाभयचन्दनैश्चशृतंपयोऽय्यंकमलोत्पलैश्च ।

सशर्करंक्षौद्रयुतंसुशीतंपित्तामयान्हन्ति सजीवनीयम् ॥ ४७ ॥

मुलैठी, लोध, हरड, लालचन्दन, कमल और नलिकमल इनसे सिद्ध किया दूध, शीतल होनेपर खांड, शहद और जीवनीयगणका काय तथा कल्क मिलाकर वस्ति-प्रयोग करे तो पित्तजनित संपूर्ण व्याधियें शान्त होती हैं ॥ ४७ ॥

द्विकार्पिकांश्चन्दनपद्मकर्द्धियष्टयाह्नरास्नावृषशारिवाश्च । सलोध्र-

मञ्जिष्ठमथाप्यनन्तावलास्थिराद्यंतृणपञ्चमूलम् ॥ ४८ ॥ निःकाथ्य

तोयेनरसेनतेनशृतंपयोऽर्द्धाढकमम्बुहीनम् । जीवन्तिमेदृद्धिश-

तावरीभिर्वीरादिकाकोलिकशेरुकाभिः ॥ ४९ ॥ सितोपलाजीवक

पद्मरेणुप्रपौण्डरीकैःकमलोत्पलैश्च । लोधात्मगुप्तामधुकैर्विदारीमु-

जातकैःकेशरचन्दनैश्च ॥ ५० ॥ पिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहंससैन्धवं

शीतलमेवदद्यात् । प्रत्यागतेधन्वरसेनशालीन्क्षीरेणवाद्यात्पारीवि-

क्तगात्रः ॥ ५१ ॥ दाहातिसारौप्रदरास्तपित्तहृत्पाण्डुरोगान्विप-

मज्वरांश्च । सगुल्ममूत्रग्रहकामलादन्ति सर्वाभयान्पित्तकृत्तान्निहि-

न्ति ॥ ५२ ॥

लालचन्दन, पद्माख, ऋद्धि, मुलैठी, रास्ता, वांसा, शारिवा, लोध, मंजीठ, नीलदूर्वा, बलाकी जड, शालपण्यादि पंचमूलकी पांचों औषधियें और तृणपंचमूलकी पांचों

औषधियें इन सबको दो दो कर्प लेकर अठगुने जलमें पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। फिर इस क्वाथमें २ सेर दूध मिलाकर पकावे। जब पानी जलकर दूधमात्र शेष रहे तो इस दूधमें जीवन्ती, मेदा, ऋद्धि, सतावर, कुंभेर, काकोली, क्षीर काकोली, कसेरु, मिसरी, जीवक, कमलकी केसर, पंड्यारा, कमल, नीलकमल, लोध, कौंचके बीज, मुलैठी, विदारीकन्द, मुंजातक, नागकेशर और लालचन्दन यह प्रत्येक छः छः मासा लेकर बहुत वारीक कर उस दूधमें मिलावे। तथा घी शहद और सेंधानमक मिलाकर मथडाले। इस शीतल दूधसे निरूहणवीस्तका प्रयोग करे। जब वस्तिद्रव्यका प्रत्यागमन होजाय अर्थात् दस्तद्वारा संपूर्णद्रव्य निकलजाय, तो मुखोष्ण जलसे देह शुद्ध करे। फिर जंगली जीवोंके मांसरस अथवा दूधके साथ शालीचावलोंका भात खिलावे। इस वस्तिके प्रयोगसे पित्तजनित दाह, अतिसार, मदर, रक्तपित्त, हृदोग, पाण्डुरोग, विपमज्वर, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और कामला आदि पित्तजनित संपूर्ण रोग दूर होते हैं ॥ ४८-५२ ॥

द्राक्षादिकाश्मर्यमधूकसेव्यैःसशारिवाचन्दनशीतपाक्यैः । पयःश्रुतंश्रावणिमुद्गपर्णीतुगात्मगुप्तामधुयाष्टिकलकैः ॥ ५३ ॥ गोधूमचूर्णेश्रुतंथाक्षमात्रैः सक्षौद्रसर्पिर्मधुयाष्टितैलैः । पथ्याविदारीक्षुरसैर्गुडेनवस्तिंयुतंपित्तहरंविदध्यात् ॥ ५४ ॥ हृन्नाभिपाश्वोदरदेहदाहेदाहेऽन्तरस्थेचसकृच्छ्रमूत्रे । क्षणिक्षेतेरेतसिचापिनष्टैपैत्तेऽतिसारेचनृणांप्रशस्तः ॥ ५५ ॥

द्राक्षा आदि फल (मुनक्का, कुंभेरफल, फालसा, हरड, वहेडा, आमला, उन्नाभ वडा बेर, जंगलीबेर और पीलू), कुंभेरके फल, महुआ, खस, सारिवा, लालचंदन और खरैटी इन सबके कल्कसे दूधको सिद्धकरे। इस दूधमें गोरखमुण्डी, मुग्धपर्णी, कौंचके बीज और मुलैठीका कल्क तथा गेहूका चूर्ण यह एकएक तोला मिलावे। फिर इसमें शहद, घृत, मुलैठीसे सिद्ध कियाहुआ तैल, हरड, विदारीकंदका रस, ईखका रस और गुड मिलाकर वस्तिकर्म करे तो संपूर्ण पित्तविकार दूर होतेहैं तथा हृदय, नाभि, पार्श्व और उदरकी दाह, अंतर्दाह, मूत्रकृच्छ्र, क्षत, क्षीण, वीर्यकी क्षीणता और पित्त जनितअतिसार इन सब रोगोंमें मनुष्योंकोइसे द्राक्षादि वस्तिकरना अत्यंत श्रेष्ठ मानाहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

कफरोगनाशक वस्ति ।

कौशातकारग्वधदेवदारुमूर्वाश्वदंप्राकुटजार्कपाठाः । पक्काकुल-
थान्वृहतीञ्चतोयेरसस्यतस्यप्रसृतादशस्युः ॥ ५६ ॥ तांसर्पपैला-

मदनैःसकुष्ठैरक्षप्रमाणैःप्रसृतैश्चयुक्तान् । फलाह्वतैलस्यसमाक्षि-
कस्यक्षारस्यतैलस्यचसार्पस्य ॥ ५७ ॥ दद्यान्निरूहंकफरोगिणे
शोमन्दाग्नेयेचाप्यशनद्विपेच । पटोलपथ्यामरदारुभिर्वासपिप्प-
लीकैःकथितैर्जलाख्यैः ॥ ५८ ॥

कडवी तोरी, अमलतास, देवदारु, गूर्वा, गोखरू, कुटकी, अर्जक तुलसी, पाटला कुल्यी और बडी कटेली इन सबको एकएक पल लेकर ८० पल जलमें पकावे । २० पल शेष रहनेपर उतारकर छान ले । फिर इसमें सरसों, इलायची, मैनफल और कूठ यह एकएक कर्प मिलावे । मैनफलका तेल २ पल, शहद २ पल, सरसोंका तेल २ पल और जवाखारका जल २ पल इन सबको मिलाकर कफरोग, मंदाग्नि और अरुचिवालोंको वस्तिकर्म करावे । अथवा पटोलकी जड, इरड, देवदारु और पीपलामूलके काथसे उपरोक्त रीतिपर निरूहणकरे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

द्विपथ्वमूलेत्रिफलांसविल्वांफलानिगोमूत्रयुतःकषायः । कलिङ्ग-
पाठाफलमुस्तकल्कःससैन्धवःक्षारयुतः सतैलः ॥ ५९ ॥ निरू-
हमुख्यःकफजान्विकारान्सपाण्डुरोगालसकामदोषान् । हन्यात्त-
थामारुतमूत्रसङ्गं वस्तेस्तथाटोपमथापिघोरम् ॥ ६० ॥

दशमूल, त्रिफला, बेलगिरि और मैनफल, इनसब द्रव्योंके कांयमें गोमूत्र तथा इन्द्रधनु, पाठा, मैनफल और नागरमोथा इन सबका कल्क तथा सेंधानमक, जव-
खार और सरसोंका तेल मिलाकर निरूहण वस्ति करे तो कफजनित विकार, पाण्डु-
रोग, अलसक, आमदोष यह सब नष्ट होतेहैं । तथा वातजनित मूत्रका विबंध और
वस्तिका अफारा यह सब दूर होतेहैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥

रात्नामृतैरण्डविडङ्गदारुसक्तच्छदोशीरसुराह्वनिम्बैः । श्यामाक-
भूनिम्बपटोलपाठात्तिकाखुपर्णीदशमूलसुरतैः ॥ ६१ ॥ त्राय-
न्तिकाशिग्रुफलत्रिकैश्वक्रवाथःसपिण्डीतकतोयमूत्रः । यष्टथाह्वकृ-
ष्णाफलिनीशताहारसाञ्जनश्चेतवचाविडङ्गैः ॥ ६२ ॥ कलिङ्गपा-
ठाम्बुदसैन्धवैश्चकल्कैःससर्पिर्मधुतैलमिश्रः । अयंनिरूहःक्रिमि-
कुष्ठमेहब्रध्नोदराजीर्णकफातुरेभ्यः ॥ ६३ ॥ रूक्षौषधैरत्यपंतर्पिते-
भ्यएतेपुरोगेष्वपिसत्सुदत्तः । निहत्यवातंज्वलनंप्रदीप्यविजित्य
रोगांश्चवलंकरोति ॥ ६४ ॥

रास्त्रा, गिलोय, एरण्डकी जड़, वायविडंग, देवदारु, सप्तपर्णकी छाल, खस, देवदारु, निम्बकी छाल, श्यामाक, चिरायता, पटोलपत्र, पाठा, कुटकी, देती, दंशमूल, नागरमोथा, त्रापमाण, सोंहजना और त्रिफला इन सब द्रव्योंको आठगुने जलमें पकाकर चौथाभाग शेष रहनेपर उतारले । इस काथमें मैनफलका क्वाथ, गोमूत्र तथा मुलैठी, पीपल, त्रियंगु, सौंफ, रसौत, सफेद वच, वायविडंग, इन्द्रयव, पाठा, नागरमोथा और सेंधानमक इन सबका बारीक कल्क, घृत, शहद तथा तेल मिलाकर निरूहण वस्ति करे । यह निरूहणवस्ति कृमी, कुष्ठ, प्रमेह, वद, उदरोग, अजीर्ण और कफविकारको नष्ट करतीहै । जो मनुष्य, रूक्ष औषधोंसे अपतर्पित हैं उनके भी इन उपरोक्त रोगोंमें विधिवत् प्रयोग किये जानेसे यह रोग नष्ट होतेहैं । तथा यह वस्ति वायुका नाशकरती, अग्निको प्रज्वलित करतीहै तथा रोगोंको जीततीहै और बलको बढ़ातीहै ॥ ६१-६४ ॥

पुनर्नवैरण्डवृषाश्मभेदवृश्चैरभूतीकवलापलाशाः । द्विपञ्चमूलानि पलांशिकानिक्षुण्णानिधौतानिपलानिचाष्टौ ॥ ६५ ॥ विल्वंयवान्कोलकुलत्थधान्यफलानिचैकप्रसृतोन्मितानि । पयोजलार्द्धाढकयोःशृतंतत्क्षीरावशेषंसितवस्त्रपूतम् ॥ ६६ ॥ वचाशताह्वामरदारुकुष्ठयष्टयाह्वसिद्धार्थकपिप्पलीनाम् । कल्कैर्यवान्यामदनैश्चयुक्तं नात्युष्णशीतंगुडसैन्धवाक्तम् ॥ ६७ ॥ क्षौद्रस्यतैलस्यचसर्पिषश्चतथैवयुक्तंप्रसृतंत्रयेण । दद्यान्निरूहंविधिनाविधिज्ञस्तंसर्वसंसर्गकृतामयघ्नम् ॥ ६८ ॥

पुनर्नवा, एरण्डकी जड़, वांता, पापाणभेद, सफेद पुनर्नवा, अजवायन, बला, ढाक और दशमूलकी दश औषधियें इन सबको एकएक पल ले बेलगिरि ८ पल, यव, बेर, कुल्यी, धनियां और मैनफल यह दोदो पल ले । इन सबको २ सेर दूध और ४ सेर जल मिलाकर पकावे । दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस दूधमें वच, सौंफ, देवदारु, कुठ, मुलैठी, सरसों, पीपल, अजवायन और मैनफल इन सबको एकएक कर्प लेकर बारीक कल्क बना मिलावे । तथा गुड, और सेंधानमक, मिलावे । और शहद, तेल और घृत यह तीनों दोदो पल मिलावे । सबको मयकर न बहुत शीतल, न बहुत गर्म रहनेपर विधिपूर्वक वस्तिप्रयोग करे । इस वस्तिसे सब प्रकारकी द्विदोषज व्याधियें नष्ट होतीहैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

वातादिभेदसे निरूहणक्रम ।

स्निग्धोष्णएकःपवनेनिरूहोद्वैस्वादुशीतौपयसाचपित्ते । त्रयःसमु-
त्राःकटुकोष्णतीक्ष्णाःकफेनिरूहानपरंविधेयाः ॥ ६९ ॥

वातव्याधिमें एक समय एक स्निग्ध और उष्ण निरूहण वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । पित्तविकारमें मधुर, शीतल और दूधयुक्त एक समय दो निरूहण वस्तियें करना चाहिये । कफजनित व्याधिमें कटु, उष्ण, तीक्ष्ण द्रव्योंसे और गोमूत्रके साथ एककालमें ३ निरूहण वस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये । इससे ज्यादा एक समय वस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ६९ ॥

वातादिभेदसे निरूहणके अनंतर पथ्य ।

रसेनवातेप्रतिभोजनंस्यात्क्षीरेणपित्तेतुकफेचयूषैः । तथानुवास्ये-
पुचविल्वतैलंस्याज्जीवनीयंफलसाधितञ्च ॥ ७० ॥

वातजनित रोगोंमें निरूहणके पश्चात् गांतरसका पथ्य, पित्तव्याधिमें दूधका पथ्य और कफजनित व्याधिमें कुल्हयीअगदिका यूप देना चाहिये । इसी प्रकार यदि वात-व्याधिमें निरूहणके अनन्तर अनुवासन करना पड़े तो विल्वादि दशमूलसे सिद्ध किया तैल, पित्तव्याधिमें जीवनीयगणसे सिद्ध किया तैल और कफव्याधिमें मैन-फलआदि गणसे सिद्ध किये तैलका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७० ॥

अध्यायका उपसंहार ।

इतीदमुक्तंनिखिलंयथावद्वस्तिप्रदानस्यविधानमध्यम् । योऽधी-
त्यविद्वानिहवस्तिकर्मकरोतिलोकेलभतेससिद्धिम् ॥ ७१ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेवस्तिसूत्रीयसिद्धिर्नामतृतीयोऽध्यायः ॥३॥

इस प्रकार वस्तिके विधानको तथा वस्तिके प्रधान २ योगोंको यथार्थरूपसे कथन कर दियाहै । जो विद्वान् इसको पढकर विधिवत् वस्तिकर्मका प्रयोग करता है सो संसारमें सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

इति श्रीचरकप्रणीत० स० सिद्धिस्थाने प्र० भा० टी० वस्तिसूत्रीयसिद्धिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

आधातःस्नेहव्यापादिकांसिद्धिव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवा-
नात्रेयः ।

अब हम स्नेहव्यापादिका सिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवाण् आत्रे-
यजी कहने लगे ॥

स्नेहवस्तीन्निवोधेमान्वातपित्तकफापहान् ।

मिथ्याप्रणिहितानाञ्चव्यापदःसचिकित्सिताः ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! अब वात, पित्त और कफको शांत करनेवाली स्नेहवस्तियोंकी विधिको श्रवण करो, और इन वस्तियोंके मिथ्यायोग होनेसे जो उपद्रव होतेहैं उनको तथा उनकी चिकित्साको भी सुनो ॥ १ ॥

वातघ्न अनुवासन योग ।

दशमूलंबलारास्नामश्वगन्धांपुनर्नवाम् । गुडूच्येरण्डभूतीकभार्गी-
वृषकरोहिषाम् ॥ २ ॥ शतावरींसहचरंकाकनासांपलांशिकाम् ।

यवमापातसीकोलकुलत्थान्प्रसृतोन्मितान् ॥३॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसः
पक्काद्रोणशेषेणतेनच । तैलाढकंसमक्षीरंजीवनीयैःपलोन्मितैः ।

अनुवासनमेतद्धिसर्ववातविकारनुत् ॥ ४ ॥

दशमूल, बला, रास्ना, असगंध, पुनर्नवा, गिलोय, एरण्डकी जडका छिलका, अजवायन, भौंरंगी, अडूसा, रोहिपट्टण, शतावर, कालावांसा और काकनासा यह सब एकएक पल लेवे । जौ उडद, अलसी, वेर और कुलथी यह प्रत्येक दो दो पल लेवे । इन सबको मिलाकर ४ द्रोण जलमें पकावे । एकद्रोण शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस १ द्रोण क्वाथमें १ आढक तैल, १ आढक दूध, जीवनीयगणकी संपूर्ण औषधियोंका एकएक पल कल्क लेवे । फिर सबको मिलाकर पकावे । तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस तैलसे अनुवासनवास्त करे तो सब प्रकारके वातविकार नष्ट होते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

आनुपानांवासातद्रजीवनीयोपसाधिता ॥ ५ ॥

इसी प्रकार अनुपसंचारी जीवोंकी चर्बीको उपरोक्त द्रव्योंके क्वाथ और जीवनी-यगणके कल्कसे तैलके समान सिद्धकरे । फिर इससे अनुवासनकरे तो संपूर्ण वात-विकार दूर होते हैं ॥ ५ ॥

शताह्वयवाविल्वाम्लैःसिद्धतैलंसमीरणे ।

सैन्धवेनाश्रिवर्णेनतसञ्चानिलनुद्धृतम् ॥ ६ ॥

सौंफ, जौ और बेलकी गिरिका कल्क, तथा कांजी मिलाकर सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करे । इस तैलके अनुवासन करनेसे वातव्याधियें दूर होतीहैं । अथवा सैंधानमकको आगमें तपाकर लाल होनेपर घृतमें बुझावे इस प्रकार

कईबार बुझाकर सुहाते सुहाते उस घृतसे अनुवासन वस्ति करे तो संपूर्ण वातरोग शान्त होते हैं ॥ ६ ॥

जीवन्त्यादि युग्मकस्त्रेह ।

जीवन्तीमदनमेदांश्रावणीमधुकंवलाम् । शताह्वर्षभकौकृष्णांका-
कनासांशतावरीम् ॥ ७ ॥ स्वगुसांक्षीरकाकोलींर्कटारव्यांशर्टीव-
चाम् । पिष्ट्वातैलघृतंक्षीरेसाधयेत्तत्रतुर्गुणे ॥ ८ ॥ बृंहणंवातपित्त-
घ्नंवलशुक्राग्निवर्द्धनम् । मूत्ररेतोरजोदोषान्हरेत्तदनुवासनात् ॥ ९ ॥

जीवन्ती, मैनफल, मेदा, गोरखमुण्डी, मुलैठी, बला, सौंफ, ऋषभक, पीपल, काकनासा, शतावर, कौंचके बीज, क्षीरकाकोली, काकडासिंगी, कचूर और वच इन कवका कल्क आधसेर, तेल १ सेर, घी १ सेर, दूध ८ सेर । इन सबको मिलाकर पकावे । स्नेहमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस स्नेहसे कियाहुआ अनुवासन, बृंहण, वातपित्तनाशक, बलको बढ़ानेवाला, वीर्यवर्द्धक, जठरअग्निका बल बढ़ाने वाला तथा मूत्र, वीर्य और रजके दोषोंको हरनेवाला होताहै ॥ ७-९ ॥

पित्तनाशक अनुवासनयोग ।

लाभतश्चन्दनाद्यैश्चपिष्टैःक्षीरचतुर्गुणम् ।

तैलपादंघृतंसिद्धंपित्तघ्नमनुवासनम् ॥ १० ॥

ज्वरकी चिकित्सामें जो चन्दनादि तैलके द्रव्य कहे हैं उन सबको अथवा उनमेंसे जितने मिलसकें लेकर कल्क बनावे । यह कल्क १ पाव, तैल १ पाव, घृत १ सेर, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । स्नेहमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस स्नेहसे अनुवासन करे तो पित्तविकार दूर होते हैं ॥ १० ॥

वातकफजनित रोगनाशक अनुवासन ।

सैन्धवंमदनंकुष्ठंशताह्वानिचुलंवलाम् । हीवेरंमधुकंभागींदेवदारु
सकटफलम् ॥ ११ ॥ नागरंपुष्करंमेदांचविकांचित्रकंशटिम् । वि-
डङ्गातिविपेक्ष्यामांहरेणुनीलिनींस्थिराम् ॥ १२ ॥ विल्वाजमोदे
कृष्णाश्चदन्तींरास्नाश्चपेपयेत् । साध्यमेरण्डतैलंवातैलंवाकफरो-
गनुत् ॥ १३ ॥ ब्रधोदावर्त्तगुल्मार्शःश्लीहमेहाढ्यमारुतान् ।
आनाहमश्मरीश्चैवहन्यात्तदनुवासनात् ॥ १४ ॥

संधानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, निचुल (हिंजुल), बला, मुलैठी, भारंगी, देवदारु, कायफल, सौंठ, पोहकरमूल, भेदा, चव्प, चित्रक, कचूर, वायविडंग, अतीस, कालीनिशोथ, रेणुका, नीलिनी, शालपर्णी, बेलगिरि, अजमोद, पीपल, दंती और रास्ना इन सबको एकएक कर्प लेकर कल्क बनावे । इस कल्कसे एरण्डतैल अथवा तिलोंके तैलको सिद्ध करे । इस तैलसे अनुवासनवस्ति करनेसे कफ वातके रोग नष्ट होते हैं तथा वद, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह, वातरक्त, अफारा और पथरी यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

कफनाशक तैलयोग ।

मदनैर्वांम्लसंयुक्तैर्विल्वाद्येनगणेनवा ।

तैलंकफहरैर्वापिकफघ्नकल्पयेद्भिषक् ॥ १५ ॥

मैनफलका कल्क और कांजी अथवा बिल्वादि पंचमूलके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया तैल अथवा कफनाशक पिप्पल्यादिगणके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया तैल अनुवासन करनेसे कफ विकारोंको नष्ट करताहै ॥ १५ ॥

विडङ्गैरण्डरजनीपटोलत्रिफलामृता । जातिप्रवालनिर्गुण्डीदश-
मूलाखुपर्णिकाः ॥ १६ ॥ निम्बपाठासहचरशम्पाककरवीरकम् ।

एषांकाथेनविपचेत्तैलमेभिश्चकल्कितैः ॥ १७ ॥

वायविडंग, एरण्डकी जडकी छाल, हल्दी, पटोलपत्र, त्रिफला, गिलोय, चमेलीके पत्ते, संभालू, दशमूल, दंती, नीमकी छाल, पाठा, कालाबांसा, अमलतास, और केनरकी छाल इन सबके कल्क और काथसे सिद्ध किया तैल अनुवासनमें प्रयोग करनेसे कफरोग दूर होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

फलविल्वत्रिवृत्कृष्णारास्नाभूनिम्बदारुभिः । सप्तपर्णवचोशरिदा-
र्वीकुष्ठकलिङ्गकैः ॥ १८ ॥ लतायष्टिशताह्वाग्निशटीचोरकपौष्करैः । त-
त्कुष्ठानिक्रिमीन्मेहानशांसिग्रहणीगदम् ॥ १९ ॥ क्लीवत्वंविपमाश्रित्वं
मलंदोषत्रयंतथा । प्रयुक्तंप्रणुदत्याशुपानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ २० ॥

मैनफल, बेलकी गिरि, निशोथ, पीपल, रास्ना, चिरायता, देवदारु, सप्तपर्णकी छाल, वच, खस, दारुहल्दी, कूठ, इन्द्रयव, फूल प्रियंगु, मुलैठी, सौंफ, चित्रक, कचूर, चोरक, पोहकरमूल इन सबके कल्क और क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ तैल पान, अभ्यंग और अनुवासनमें प्रयोग करनेसे कुष्ठ, कृमि, प्रमेह, घवासीर, ग्रहणी, नपुंसकता, विपमाग्नि, मल और त्रिदोषको नष्ट करताहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

स्नेहवस्तिके गुण ।

व्याधिव्यायामकर्माध्वक्षीणावलनिरौजसाम् । क्षीणशुक्रस्यचा-
तीवस्नेहवस्तिवलप्रदः ॥ २१ ॥ पादजंघोरुपृष्ठस्यकटयाश्चास्थिरतां
पराम् । जनयेदप्रजानाञ्चप्रजांस्त्रीणांतथानृणाम् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य व्याधि, व्यायाम, अन्य श्रमकारक कर्म और मार्ग चलनेसे क्षीण हो गये हैं वा अन्य किसी मैथुनादि कारणसे क्षीण हो गये हैं, जो मनुष्य निर्बल ओजरहित और क्षीणवीर्यवाले हैं उनको स्नेहवस्तिका प्रयोग कराना अत्यंतही बलको देनेवाला है । तथा पांव, जंघा, ऊरु, पीठ और कमरको यह स्नेहवस्ति अत्यंत दृढ बना देती है । जिन स्त्रीपुरुषोंको सन्तान नहीं होती उनको यह स्नेहवस्ति सन्तानको देनेवाली है । अर्थात् विधिवत् स्नेहवस्ति करनेसे क्षीणता और रजवीर्यके विकार दूर होकर सन्तान होने लगती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

स्नेहवस्तिमें ६ व्यापद ।

वातपित्तकफान्यन्नपुरीषैरावृतस्थच ।

अभुक्तेचप्रणीतस्यस्नेहवस्तेःषडापदः ॥ २३ ॥

स्नेहवस्तिके प्रयोगमें मिथ्या योग होनेसे छः प्रकारकी आपद अर्थात् विघ्न होताहै जैसे वस्तिका वातसे आवृत होना, पित्तसे आवृत होना, कफसे आवृत होना, अन्नसे आवृत होना और पुरीषसे आवृत होना तथा विना भोजन किये वास्तिका प्रयोग करनेसे उस द्रव्यकी खाली पेटमें कण्ठकी ओर आकर्षित होना यह छः आपत्तियें स्नेहवस्तिमें होसकतीहैं ॥ २३ ॥

इन ६ आपदोंके कारण ।

शीतोऽल्पोवाधिकेवातेपित्तेऽत्युष्णःकफेऽमृदुः ।

अतिभुक्तेगुरुर्वर्चःसञ्जयेऽल्पवलस्तथा ॥ २४ ॥

दत्तस्तैरावृतःस्नेहोनयात्यभिभवादधः ।

अभुक्तेनावृतत्वाच्चयात्यूर्ध्वतस्यलक्षणम् ॥ २५ ॥

बहुत बढीहुई वायुमें शीतल वा अल्प वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य वायुसे आवृत होकर प्रत्यागमन अर्थात् बाहर नहीं निकलता । इसी प्रकार बडेहुए पित्तमें अतिउष्ण वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य पित्तसे आवृत होकर रुकजाताहै । एवं कफकी अधिकतामें मृदुवस्तिका प्रयोग करनेसे वह द्रव्य कफसे आवृत होकर बाहर नहीं निकलनेपाता । बहुत भोजनकरनेके अनन्तर गुरुवस्तिका प्रयोग करनेसे

वह अनावृत होजाती है और भारी मलके संचयमें अल्प बल वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्तिद्रव्य मलावृत होजाता है । अत्यंत भूखमें वस्तिकर्म करनेसे वह खाली पेटमें ऊपरकी ओर चढजाताहै । इस प्रकार इन छः व्यापदोंमें वस्ति द्रव्य बाहरको नहीं लौटता ॥ २४ ॥ २५ ॥

वातावृतवस्तिका लक्षण ।

अङ्गमर्दज्वराध्मानशीतस्तम्भोरुपीडनैः ।

पार्श्वरुग्वेष्टनैर्विद्यात्स्नेहंवातावृतांभिपक् ॥ २६ ॥

अंगडाई, ज्वर, अफारा, शीत, स्तम्भता, दोनों ऊरुस्थलोंमें पीडा, पार्श्वपीडा, पिण्डालियोंमें वेष्टन कीसी पीडा यह सब लक्षण वातावृत स्नेहवस्तिके हैं । अर्थात् वस्ति द्रव्य वायुसे आवृत होजाय तो स्नेहवस्ति करनेके उपरांत यह अंगडाई आदि लक्षण होजाते हैं ॥ २६ ॥

वातावृतवस्तिकी चिकित्सा ।

स्निग्धाम्ललवणोष्णैस्तरास्नापीतद्वृत्तिल्वकैः ।

सौवीरकसुराकोलकुलरथरससाधितैः ॥ २७ ॥

निरूहैर्निर्हरेत्सम्यक्समूत्रैःपञ्चमूलिकैः ।

ताभ्यामेवचतैलाभ्यांसायंभुक्तेऽनुवासयेत् ॥ २८ ॥

वातावृत वस्तिमें वस्तिद्रव्यको बाहर निकालनेके लिये रास्ता, सरलकाष्ठ और लौघ्रका कल्क, सौवीरक, सुरा, बेर और कुर्लीका काथ इन सबको मिलाकर एण्डतैलसे स्निग्धकर कांजी और सेंधानमक मिला मर्मगर्म निरूहण करे । अथवा गोमूत्र और पंचमूलके काथसे निरूहणवस्ति करे । और इन्ही दो प्रकारके निरूहण द्रव्योंके काथ, कल्कसे सिद्ध किये तैलोंसे भोजन करनेके अनन्तर अनुवासनवस्ति करे ॥ २७ ॥ २८ ॥

पित्तावृतस्नेहके लक्षण और चिकि० ।

दाहरागत्पामोहतमकज्वरदूपणैः ।

वियात्पित्तावृतंस्वादुतिकैस्तंवास्तिभिर्हरेत् ॥ २९ ॥

शरीरमें दाह, लालवर्ण, प्यास, मोह, तमकश्वास और ज्वर यह लक्षण स्नेहवस्ति करनेके अनन्तर होजाय तो पित्तावृत स्नेह जानना । इसमें मधुर और पित्तद्रव्योंसे निरूहणकर स्नेहको निकालना चाहिये ॥ २९ ॥

कफावृत्तस्नेहके लक्षण, चिकित्सा ।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेकारुचिगौरवैः ।

संमूर्च्छाग्लानिभिर्विद्याच्छ्लेष्मणास्नेहमावृतम् ॥ ३० ॥

तन्द्रा, शीत, ज्वर, आलस्य, मुखसे लारका गिरना, अरुचि, भारीपन, मूर्च्छा और ग्लानि यह लक्षण स्नेहवस्तिके अनन्तर होजाय तो कफावृतस्नेह जानना ॥ ३० ॥

कपायकटुतीक्ष्णोष्णैःसुरामूत्रोपसाधितैः ।

फलतैलयुतैःसाम्लैर्वस्तिभिस्तंविनिर्हरेत् ॥ ३१ ॥

कफावृत स्नेहमें चरपरे, कडुवे, कसैले और उष्ण द्रव्योंका कल्क, सुरा और गोमूत्रमें मिलाकर उसमें मैनफलका कल्क, तेल और कांजी मिला निरूहणवस्ति करके स्नेहको निकाले ॥ ३१ ॥

अन्नावृत्तस्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

छर्दिमूर्च्छारुचिग्लानिज्वरशूलाङ्गमर्दनैः ।

आमलिंगैःसदाहैस्तंविद्यादत्यशनावृतम् ॥ ३२ ॥

छर्दी, मूर्च्छा, अरुचि, ग्लानि, ज्वर, शूल, अंगडाई, वामके लक्षण और दाह यह सब लक्षण हों तो अन्नावृत स्नेह जानना ॥ ३२ ॥

कटूनांलवणानाञ्चक्वाथैश्चूर्णैश्चपाचनम् ।

विरेकोमृदुरत्रामविहिताचक्रियाहिता ॥ ३३ ॥

अन्नावृत स्नेहमें कटु और लवण द्रव्यके क्वाथ और चूर्णसे आमदोषको पाचन करना चाहिये । तथा मृदुविरेचन और आमनाशक क्रिया करना हितकारक है ॥ ३३ ॥

मलावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

विण्मूत्रानिलसङ्गर्त्तिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः । स्नेहंविडावृतंज्ञात्वा

स्नेहस्वेदैःसवर्त्तिभिः ॥ ३४ ॥ श्यामाविल्वादिसिद्धैश्चनिरूहैःसा-

नुवासनैः । निर्हरेद्विधिनासम्यगुदावर्त्तहरेणच ॥ ३५ ॥

यदि स्नेहवस्ति ग्रहण करनेके अनन्तर विष्ठा, मूत्र और अघोवायुका विबंध हो तथा भारीपन, अफारा और हृदयमें पीडा होय तो विष्ठासे आवृत हुआ स्नेह जानना मलावृत स्नेहमें उसके निकालनेके लिये स्नेहन, स्वेदन और वर्त्तिप्रयोग करना चाहिये । तथा काली निशोयका कल्क और विल्वाद्री पंचमूलका क्वाथ मिलाकर

निरूहणवस्ति करे और इसी कल्क और क्वाथसे सिद्धकिये तैलका अनुवासन करे । तथा मलावृत स्नेहवस्तिमें उदावर्तनाशक संपूर्ण क्रिया करना हितकारक है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

ऊर्द्धगतस्नेहवस्तिके लक्षण और चिकित्सा ।

अभुक्तेशून्यपायौवावेगात्स्नेहोऽतिपीडितः ।

धावत्यूर्द्धगततःकण्ठादूर्द्धेभ्यःखेभ्यएत्यपि ॥ ३६ ॥

विना भोजन किये खाली पेट स्नेहवस्ति करनेसे वह स्नेह शून्यगुदासे पीडित होकर वेगसे ऊपरको गमन करताहै । फिर कण्ठसे ऊपर अर्थात् मुख और नासिका द्वारा निकलने लगताहै ॥ ३६ ॥

मूत्रश्यामात्रिवृत्तिद्धोयवकोलकुलत्थकान् ।

तत्सिद्धतैलइष्टोऽत्रनिरूहःसानुवासनः ॥ ३७ ॥

वस्तिका स्नेह ऊर्द्धगत होनेपर गोमूत्र,दोनों प्रकारके निशोथका कल्क तथा यव, वेर और कुल्यीका क्वाथ इन सबको मिलाकर निरूहण करे और इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासनकर्म करे ॥ ३७ ॥

कण्ठादागच्छतःस्तम्भःकण्ठग्रहविरचनैः ।

छर्दिघ्नीभिःक्रियाभिश्चतस्यकार्यनिवर्तनम् ॥ ३८ ॥

यदि उर्द्धगत स्नेह कण्ठद्वारा निकलने लगे तो कण्ठको भीतरकी ओर धूँट आकर्षण करनेके समान दवाकर स्नेहको रोके तथा वमननाशक और विरेचनकारक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ३८ ॥

उपेक्षणीय स्नेह ।

यस्यनोपद्रवंकुर्यात्स्नेहवस्तिरनिःसृतः ।

सर्वोऽल्पोवावृतोरौक्ष्यादुपेक्ष्यःसविजानता ॥ ३९ ॥

जिस मनुष्यके रूक्ष शरीरमें अनुवासन वस्तिद्वारा प्राप्त किया स्नेह रूक्षताके कारण बाहर न निकले तथा कोई उपद्रव भी न करे तो उस मनुष्यके शरीरमें संपूर्ण स्नेह अथवा स्नेहका थोडा भाग हो तो उपेक्षा करना चाहिये अर्थात् उसको निकालनेका यत्न न करे ॥ ३९ ॥

स्नेह मुक्तहोनेपर कर्म ।

मुक्तस्नेहंद्रवोष्णञ्चलघुपथ्योपसेवनम् ।

भुक्तवान्मात्रयायोज्यमनुवास्यज्यहात्स्वहात् ॥ ४० ॥

इस प्रकार आवृत स्नेह निकलजानेके अनन्तर उस मनुष्यको मात्रानुसार हलका सुखोष्ण पथ्य सेवन कराना चाहिये फिर तीन तीन दिनके अनन्तर मात्रानुसार अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे ॥ ४० ॥

वस्तिकर्ममें जल ।

धान्यनागरसिद्धंहितोयंदद्याद्विचक्षणः ।

व्युषितायनिशाःकल्यमुष्णंवाकेवलंजलम् ॥ ४१ ॥

इस मनुष्यको धनियां और सोंठसे सिद्ध किया जल पीनेको देवे अथवा रात्रिमें धनियां और सोंठको जलमें भिगोकर वह जल पीनेको देवे । अथवा केवल गर्मजल पिलावे ॥ ४१ ॥

गर्मजलके गुण ।

स्नेहाजीर्णजरयतिश्लेष्माणंतद्भिन्नत्तिच । मारुतस्यानुलोम्यश्चकु-
र्यादुष्णोदकंनृणाम् ॥ ४२ ॥ वमनेवाविरेकेचनिरूहेसानुवास-
ने । तस्मादुष्णोदकंदेयंवातश्लेष्मप्रशान्तये ॥ ४३ ॥

गर्मजल स्नेहके अजीर्णको पचाता है । कफको भेदन करता और वायुको अनुलोमन करता है । इसलिये वमन, विरेचन, निरूहण और अनुवासनमें कफवातकी शांतिके लिये गर्मजल पिलानाही श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

स्नेहपाचनका काल ।

रूक्षनित्यस्तुदीप्ताग्निर्व्यायामीमारुताशयी । वंक्षणश्रोण्युदावर्त्त-
वातार्त्ताश्चदिनेदिने ॥ ४४ ॥ एपाश्चाशुजरांस्नेहोयात्यम्बुसि-
कतास्त्रिव । अतोऽन्येषांन्यहात्प्रायःस्नेहंपचतिपावकः ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य नित्य रूक्ष द्रव्योंका सेवन करनेवाले हैं, जिनकी अग्नि दीप्त है, जो नित्य व्यायाम करते हैं, जिनके कोष्ठमें वायुका बल है । जिनके वंक्षण और श्रोणी वातग्रस्त हैं तथा जिनको उदावर्त्त है और जो नित्य वातग्रस्त रहते हैं इन सबको दिया हुआ स्नेह इस प्रकार शीघ्र जीर्ण होजाता है जैसे बालू (रेत) में डालाहुआ जल शीघ्र शोषण होजाता है । इनके सिवाय और मनुष्योंकी जठराग्नि स्नेहको प्रायः तीन दिनमें पाचन कर सकती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अनुवासनीय स्नेह विधान ।

नत्वामंप्रणयेत्स्नेहंसह्यभिष्यन्दयेद्भूदम् ।

सावशेषश्चकुर्वीतवायुःशोपेहितिष्ठति ॥ ४६ ॥

अनुवासन वस्तिमें विना सिद्ध किया हुआ अर्थात् कच्चा स्नेह कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिये । क्योंकि कच्चे स्नेहसे गुदा अभिष्यंदित अर्थात् क्लेदित होजाती है । और वस्तिका संपूर्ण स्नेहही मलाशयमें प्रवेश कर देना नहीं चाहिये, उसमें थोडासा स्नेह पिचकारीमें वाकी रहनेदेना उचित है । क्योंकि वस्तिका संपूर्ण स्नेह भीतर चलेजानेपर साथही वायु प्रवेशकर जातो है इसलिये अनुवासन करते समय थोडा स्नेह वस्तिमें बचालेना चाहिये ॥ ४६ ॥

उभयस्नेहप्रयोगका निषेध ।

नचैवगुदकण्ठाभ्यांदद्यात्स्नेहमनन्तरम् ।

उभयस्मात्समंगच्छन्वोयवग्नीन्द्रूपयेत्समम् ॥ ४७ ॥

एकही समय गुदा द्वारा अनुवासन स्नेह और मुखद्वारा स्नेहपान इन दोनों स्नेहोंका प्रयोग करना उचित नहीं । दोनों स्नेहोंका एक समय प्रयोग करनेसे जठराग्नि दूषित होजाती है ॥ ४७ ॥

केवल एकप्रकारकी वस्तिके निरंतरसेवनका निषेध ।

स्नेहवस्तिनिरूहंवानैकमेवातिशीलयेत् । उत्केशाग्निवधौस्नेहान्नि-
रूहात्पवनाद्भयम् ॥ ४८ ॥ तस्मान्निरूह्यःस्नेह्यःस्यान्निरूढश्चानु-
वासितः । स्नेहशोधनयुक्त्यैववस्तिकर्मत्रिदोपनुत् ॥ ४९ ॥

स्नेहवस्ति अथवा निरूहणवस्ति इन दोनोंमेंसे किसी एक वस्तिका निरन्तर अकेले ही प्रयोग करना उचित नहीं । क्योंकि केवल स्नेहवस्तिकाही निरन्तर प्रयोग करते रहनेसे स्नेहद्वारा उत्केशित होकर अग्निका नाश होजाताहै । और केवल निरूह वस्तिकाही प्रयोग करते रहनेसे वायुके घटजानेका भय है । इसलिये जिसको निरूहण वस्तिका प्रयोग करना हो उसको प्रथम अनुवासनवस्ति द्वारा सिग्ध करना चाहिये और निरूहण वस्तिके अनन्तर फिर अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे । इस प्रकार स्नेहवस्ति (अनुवासनवस्ति) और शोधनवस्ति (निरूहणवस्ति) का क्रमानुसार प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकार युक्तिसे प्रयुक्त की हुई वस्ति तीनों दोषोंको नष्ट करती है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मात्रावस्तिका प्रयोग ।

कर्मव्यायामभाराध्वपानस्त्रीकर्षितेषु च । दुर्बलेवातभग्नेचमात्राव-
स्तिःसदामतः ॥ ५० ॥ ह्रस्वायाःस्नेहमात्रायामात्रावस्तिःसमो-
भवेत् । अथेष्टाहारचेष्टस्यसर्वकालंनिरत्ययः ॥ ५१ ॥ बल्यंसुखोपचर्य-
श्चसुखंसृष्टपुरीषकृत् । स्नेहमात्राविधानं हि बृंहणं वातरोगनुत् ॥ ५२ ॥

जो मनुष्य श्रमकारी कर्म, व्यायाम, भार, मार्गचलनेकी थकावट सवारी और स्त्री संग आदि कारणोंसे कर्षित हैं तथा जो दुर्बल और भग्न वातरोगी हैं उनको मात्रावस्तिका प्रयोग करना चाहिये । मात्रावस्ति स्नेहकी लघुमात्राके समान होती है । मात्रावस्तिके अनन्तर यथेष्ट अहारका सेवन करे । मात्रावस्ति किसी कालमें भी किसीप्रकारका उपद्रव नहीं करती तथा बलकारक, सुखसाध्य, सुखकारक, सुखपूर्वक मलको निकालनेवाली होती है । मात्रानुसार स्नेह प्रयोग करनेसे शरीरमें बल आता है और संपूर्ण वातरोग नष्ट होतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकैः ।

वातादीनांशमायोक्ताःप्रवराःस्नेहवस्तयः । तेपाश्चाज्ञप्रयुक्तानां
व्यापदःसचिकित्सिताः ॥ ५३ ॥ प्राग्भोज्यंस्नेहवस्तेर्यद्भुवंयेऽर्हा-
रुयहाश्चये । स्नेहवस्तिविधिश्चोक्तोमात्रावस्तिविधिस्तथा ॥ ५४ ॥
इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेस्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नामचतुर्थोऽध्यायः॥४॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस स्नेहन व्यापादिका सिद्धि नामक अध्यायमें वातादि दोषोंकी शान्तिके लिये उत्तम २ स्नेह वस्तियोंका वर्णन उनके अयोग्य रीतिपर प्रयोग करनेसे उत्पन्न होनेवाले विकार उनकी चिकित्सा तथा वस्ति प्रयोगसे प्रथम जिस प्रकारका आहार करना चाहिये जो स्नेहवस्ति प्रयोग करनेके योग्य हैं जिनको तीन दिनमें स्नेहकी मात्रा पचती है तथा स्नेहवस्तिकी विधि और मात्रावस्तिकी विधि यह संपूर्ण वर्णन किया गया है ॥ ५३ ५४

इतिश्री० च० आ० सिद्धिस्थाने प्र० भा० टी० स्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो नेत्रवस्तिपादिकासिद्धिं व्याख्यास्याम इति हस्माह
भगवानात्रेयः ।

अब हम नेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवानात्रेयजी कहने लगे ॥

अथनेत्राणिवस्तींश्चशृणुवर्ज्यानिर्मसु ।

नेत्रस्याज्ञप्रणीतस्यव्यापदःसचिकित्सिताः ॥ १ ॥

जिस प्रकारकी वस्तिनेत्र (वस्तिकी मुखनाल), और वस्तिपं, वस्तिकर्ममें वर्जनीय हैं । उनका श्रवण करो और अज्ञानी वैद्यके हाथसे उनके प्रयोग करनेसे जो जो विगाड होते हैं उनको तथा उनकी चिकित्साको श्रवण करो ॥ १ ॥

त्याज्य वस्तिनेत्र ।

ह्रस्वदीर्घतनुस्थूलजीर्णशिथिलबन्धनम् ।

पार्श्वच्छिद्रंतथावक्रमष्टौनेत्राणिवर्जयेत् ॥ २ ॥

प्रमाणसे छोटा, प्रमाणसे बड़ा, पतला, मोटा, पुराना, शिथिलबंधन, जिसके किनारोंमें छिद्र हों और टेढा यह आठप्रकारके वस्तिनेत्र (वस्तिनलके अग्रभाग) त्याज्य होते हैं अर्थात् वस्तिकर्ममें ग्रहणकरने योग्य नहीं ॥ २ ॥

उनके उपद्रव ।

अप्राप्त्यतिगतिक्षोभकर्षणक्षणनस्रवाः ।

गुदपीडागतिर्जिह्वातेपांदोषायथाक्रमम् ॥ ३ ॥

यदि वस्तिनल छोटा हो तो यथास्थान पहुंच नहीं सकता । लंबा होनेसे अपने योग्य स्थानसे आगे बढ़कर हानि करताहै । बहुत पतला वस्तिनेत्र होनेसे यथोचित कार्य नहीं कर सकता । मोटा होनेसे उसके मुखद्वारा मल आकर्षित होने लगताहै । जीर्ण नल गुदामें ही टूट जाताहै । शिथिलबंधन होनेसे नल वस्तिसे खुलजाताहै या वस्ति द्रव्य गिरने लगताहै । छिद्रयुक्त वस्तिनल होनेसे गुदामें पीडा होती है । और टेढे नलसे वस्तिकी गति भी टेढी होजातीहै । इस लिये इन आठ प्रकारके वस्तिके मुखनलोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

त्याज्य वस्ति ।

मांसलच्छिद्रविषमस्थूलजालकवातलाः ।

छिन्नःक्लिन्नश्चतानष्टौवस्तीन्कर्मसुवर्जयेत् ॥ ४ ॥

मांसल, छिद्रयुक्त, विषम, स्थूल, जालक, वातल, (वायु भराहुआ), छिन्न और क्लेदयुक्त यह आठ प्रकारके वस्तिपुटक ग्रहण नहीं करने चाहिये ॥ ४ ॥

विषमादि वस्तिर्योके विकार ।

गतिवैषम्यविस्त्रत्वस्त्रावदौर्गन्ध्यविदूस्त्रवाः ।

फेनिलच्युतधार्यत्वंवस्तेःस्याद्वस्तिदोषतः ॥ ५ ॥

वस्तिपुट विषम हो तो वस्तिकी गति विषम होती है । मांसल होनेसे विस्त्र (दुर्गंध) युक्त होताहै । छिद्रयुक्त होनेसे स्त्राव होताहै । स्थूल होनेसे यथोचित हाथसे पकडकर

प्रथमन नहीं हो सकता जालक होनेसे खवताहै । वातल होनेसे वस्तिद्रव्यमें झाग होजातीहै । छिन्न होनेसे वस्तिद्रव्य बाहिर गिर पडताहै । और छिन्न होनेसे वस्तिद्रव्य यथोचित निकलता नहीं वस्तिमें रहजाताहै । इसलिये इन आठ प्रकारकी वस्तिके पुटक त्याज्य होते हैं ॥ ५ ॥

वस्तिके प्रणेताके दोष ।

सवातातिद्रुतोक्षिप्ततिर्य्यगुक्षितकम्पिताः ।

अतिवाह्यगमन्दातिवेगदोषाःप्रणेतृतः ॥ ६ ॥

वस्ति प्रयोग करनेवाले वैद्यकी अज्ञतासे वस्तिकर्ममें यह उपद्रव होते हैं । जैसे वस्तिद्रव्यके साथ वस्तिमेंसे वायुका प्रवेश होना, अत्यन्त जल्दी वस्ति करना, ऊपरको उठाकर वस्तिका प्रयोग करना, तिरछी वस्तिका प्रवेश करना, वस्तिकर्म करते समय हाथसे वस्तिको कंपादेना, वस्तिको मंदगतिसे और मंदवेगसे प्रवेश करना, वस्तिका अति शीघ्र वेग प्रचलित करना यह वस्तिकर्म करनेवाले वैद्यके दोष हैं ॥ ६ ॥

इनके लक्षण और उपाय ।

अनुच्छ्वासानुवन्धेवादत्तेनिःशेषएववा । प्रविश्यकुपितोवायुःशूलतोदकरोभवेत् । तत्राभ्यङ्गोगुदेस्वेदोवातघ्नान्यशनानिच ॥७॥

वस्तिकर्म करनेसे पहिले वस्तिको दबाकर उसके भीतरकी संपूर्ण वायुको निकाल देना चाहिये । और वस्तिकर्म करनेके अनन्तर किंचित् वस्तिद्रव्य वस्तिमें रहजानेपर उसका प्रयोग बन्दकर देना चाहिये ऐसा न करनेसे वस्तिकी वायु पेटमें भरकर शूल और चमकेको उत्पन्न करती है ऐसा होनेपर तैलाभ्यंग मलद्वारमें स्वेदन तथा वातनाशक अन्नपानोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

द्रुतंप्रणीतेनिष्कृष्टेसहस्रोक्षिप्तएववा ॥ ८ ॥

स्यात्कटीगुदजङ्घात्तिवस्तिस्तम्भोरुभेदनम् ।

भोजनंतत्रवातघ्नस्नेहाःस्वेदाःसवस्तयः ॥ ९ ॥

वस्तिका अतिशीघ्र प्रयोग करनेसे अथवा शीघ्रता पूर्वक खींचलेनेसे वा सहसा वस्ति द्रव्यको शीघ्र वेगसे उत्क्षेपित करनेसे कमर, गुदा और जंघामें पीडा उत्पन्न होजाती है तथा वस्तिका स्तम्भ और ऊरुओंमें भेदनकीसी पीडा होती है । ऐसा होनेपर वातनाशक द्रव्योंका भोजन तथा वातनाशक स्नेह, स्वेद और वातनाशक वस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

तिर्य्यग्वन्धावृतद्वारेवद्धेवापिनगच्छति ।

नेत्रंतद्वृद्धनिष्कृष्यसंशोध्यचपुनर्नयेत् ॥ १० ॥

वस्तिके तिरछां बन्धन होनेसे वा वस्तिको तिरछा प्रवेश करनेसे वस्तिकी नलीका द्वार बंद होकर वस्तिकद्रव्य गमन नहीं करता । ऐसा होनेपर अथवा अन्य किसी प्रकार वस्ति द्रव्य गमन करनेसे रुकजाय तो वस्तिकी नालको गुदासे निकालकर नलकीको स्वच्छ, शुद्धकर लेवे । जब उसमेंसे यथोचित वस्तिकद्रव्य चलने लगे तो फिर विधिवत् वस्तिप्रयोग करे ॥ १० ॥

पीडयमानेऽन्तरामुक्तेगुदेप्रतिहतोऽनिलः। उरःशिरोरुजंसादमूर्ध्वोश्च
जनयेद्वली । वस्तिःस्यात्तत्रविल्वादिफलश्यामानिमूत्रवान् ॥११॥

यदि वस्तिकर्म करते २ वस्ति क्रिया समाप्त होनेसे पहिलेही अधवीचमें वस्ति निकाल ली जाय तो गुदामें प्रतिहत होकर छाती और शिरमें पीडा जायों और ऊरुस्थलोंका सो सा जाना इन उपद्रवोंको वह कुपित हुआ बलवान् वायु उत्पन्न करता है । ऐसा होनेपर विल्वादि पंचमूल, मैनफल, निशोथ और गोमूत्रके साथ निरूहण वस्ति करे ॥ ११ ॥

स्याद्वाहोदवधुःशोफःकम्पनाभिहतेगुदे ।

कपायमधुराःशीताःसेकास्तत्रसवस्तयः ॥ १२ ॥

वस्तिप्रयोग करते समय वस्तिको कंपादेनेसे गुदामें चोट लगजाती है । उससे सूजन, दाह और संताप उत्पन्न हो जाताहै । ऐसा होनेपर कर्तले, मधुर और शीतल द्रव्योंसे परिसेचन, अनुवासन और निरूहण करना हितकारक है ॥ १२ ॥

अतिमात्रप्रणीतेननेत्रेणक्षणनाद्वलेः ॥ १३ ॥ स्याच्छर्दिदाहनि-
स्तोदगुदवर्चःप्रवर्त्तनम् । तत्रसर्पिःपिचुःक्षीरंपिच्छावस्तिश्चश-
स्यते ॥ १४ ॥

वस्तिके मुखनाल अत्यंत जोरसे प्रवेश करनेसे गुदाकी बलियोंको छिल देती है । जिससे पीडा, दाह और सूई चुभनेकीसी पीडाके साथ मल निकलने लगताहै । ऐसा होनेपर औषधियोंसे सिद्ध किये घृत, प्रणनाशक घृत या तेलोंमें भिगोया हुआ फोहा, दूध धीर अतिसारमें कर्दी हुई पिच्छावस्तिका प्रयोग हितकारी होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

नवावहतिमन्दस्तुवाह्यस्त्वाशुनिवर्त्तते ।

लोहस्तत्रपुनःसम्यक्प्रणेषःसिद्धिमिच्छता ॥ १५ ॥

वस्ति बहुत धीरे २ प्रथमन करनेसे भीतरको नहीं जाती, वस्तिनलके निकालनेके अनन्तर शीघ्रही बाहर लौट आती है । ऐसा होनेपर सिद्धिकी इच्छावाला वैद्य फिर दूसरीबार विधिवत् स्नेहवस्तिका प्रयोग करे ॥ १५ ॥

अतिप्रपीडितःकोष्ठेतिष्ठत्यायातिवागलम् ।

तत्रवस्तिर्विरेकश्चगलंपीडादिकर्मच ॥ १६ ॥

वस्तिको अत्यंत जोरसे एकहीबार दवांकर वस्तिकर्म करनेसे वस्तिद्रव्य आमाशयमें जाकर उपस्थित होजाताहै अथवा कण्ठकी ओर गमन करताहै । ऐसा होनेपर शोधन वस्ति, विरेचन और गळकी ओरसे श्वास द्वारा वेगको नीचेकी ओर दवाना चाहिये ॥ १६ ॥

उपसंहार ।

तत्र श्लोकः ।

नेत्रवस्तिप्रणेतणांदोषानेतान्सभेषजान् ।

विद्वांस्तत्त्वेनमतिमान्त्वस्तिकर्माणिकारयेत् ॥ १७ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थाने नेत्रवस्ति० सिद्धिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

इस नेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिनामक अध्यायमें नेत्रके दोष और वस्तिके दोष, वस्तिके प्रणेतके दोष, वस्तिकर्ममें इन उपरोक्त दोषोंकी चिकित्सा वर्णन कीगई है बुद्धिमान् वैद्य इन सबको यथोचित रीतिपर समझकर वस्तिका प्रयोग करे ॥ १७ ॥

इतिश्री०च०प्र०भा०टी०नेत्रवस्तिव्यापादिका०नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम वमन, विरेचन, व्यापत्सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

अथशोधनयोःसम्यग्बिधिमूर्च्छानुलोमयोः ।

असम्यक्कृतयोश्चैवदोषान्वक्ष्यामिसौपधान् ॥ १ ॥

अब वमन और विरेचनके भले प्रकार प्रयोगकी विधि और मिथ्या योगके दोष तथा उनकी चिकित्साको वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

शोधनका समय ।

अत्युष्णवर्षशीताहिग्रीष्मवर्षाहिमागमाः । तदन्तरेप्रावृडाद्यास्ते-
षांसाधारणस्त्रयः ॥ २ ॥ प्रावृट्शुचिनभौल्लेयोशरदूर्जसहोपुनः ।
तपस्यश्चमधुश्चैववसन्तःशोधनंप्रति । एतानृतून्त्रिचिन्त्यैवदद्या-
त्संशोधनंनृणाम् ॥ ३ ॥

ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर इन तीन ऋतुओंमें क्रमसे अत्यंत गर्मी, अत्यन्त वर्षा और अत्यंत शीत होती है । इन तीन ऋतुओंकी संधिमें प्रावृट्, शरद, और वसन्त इन तीन ऋतुओंमें वर्षा, शीत और उष्णतामें प्रायः सम होतीहैं । इनमें आपाठ और श्रावण इन दो महीनोंको प्रावृट् कहते हैं । कार्तिक और मार्गशीर्ष शरदऋतु कहातेहैं फाल्गुन और चैत्र यह वसन्तऋतु है ये तीन ऋतुएं शोधनके लिये हितकारी कही गई हैं, परन्तु इन ऋतुओंमें भी सर्दी, गर्मी विचारकर, देश, काल आदिभेदसे मनुष्योंकी प्रकृति देखकर वमन कराना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

स्वस्थवृत्तिमभिप्रेत्यव्याधौव्याधिवशेनतु ।

कर्मणां वमनादीनामन्तरेष्वन्तरेषुच ॥ ४ ॥

स्वस्थ मनुष्यको ऋतु आदि विचारकर वमन, विरेचन कराना चाहिये । परन्तु रोगी मनुष्यको यदि किसी व्याधिवश वमन, विरेचन कराना पडे तो संपूर्णही ऋतु-
ओंमें कर सकते है ॥ ४ ॥

स्नेहनस्वेदनादि कर्म ।

स्नेहस्वेदौप्रयुजीतस्नेहाद्यन्तेप्रयोजयेत् । विसर्पपिडकाशोफका-
मलापाण्डुरोगिणः । अभिघातविपार्त्ताश्चनातिस्निग्धान्विरेच-
येत् ॥ ५ ॥

वमन विरेचन करानेसे पहिले स्नेहन और स्वेदन करे । और स्नेहन स्वेदनके अनन्तर वमनादिकर्म कराना चाहिये । परन्तु विसर्प, पिडिका, सूजन, कामला, पाण्डु, अभिघात और विपार्त्त मनुष्योको विनाही अतिस्निग्ध किये वमन विरेचन देना चाहिये ॥ ५ ॥

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम् ।

स्नेहोक्लिष्टशरीरायरूक्षंदद्याद्विरेचनम् ॥ ६ ॥

अत्यंत स्निग्ध शरीरवाले मनुष्यको स्नेह विरेचन देना उचित नहीं । स्नेहसे उत्क्लेशित मनुष्यको रूक्ष विरेचन देना चाहिये ॥ ६ ॥

शोधनद्रव्यपानका समय ।

स्नेहस्वेदोपपन्नेनजीर्णेमात्रावदौषधम् ।

एकाग्रमनसापीतंसम्यग्गोगायकल्पते ॥ ७ ॥

स्नेहन और स्वेदनसे उपपन्न हुआ मनुष्य प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होनेपर प्रातःकाल एकाग्रचित्त हो मात्रानुसार शोधन औषधिको पीवे तो वह औषधि वमन विरेचनके उत्तम प्रयोगको करनेवाली होती है ॥ ७ ॥

स्नेहन, स्वेदन और शोधनमें दृष्टान्त ।

स्निग्धात्पात्राद्यथातोयमयत्नेनप्रणुद्यते ।

कफादयःप्रणुद्यन्तेस्निग्धाद्देहात्तथोषधैः ॥ ८ ॥

जिस प्रकार चिकने पात्रमेंसे बिना किसी विशेष यत्नके जल छूटजाताहै उसी प्रकार स्निग्धदेह मनुष्यको शोधन औषध प्रयोग करनेसे कफादिक शीघ्र छूटजातेहैं ॥ ८ ॥

आर्द्रकाष्ठंयथावह्निर्विष्यन्दयति सर्वतः ।

तथास्निग्धस्यवैदोषान्स्वेदोविष्यन्दयेत्स्थिरान् ॥ ९ ॥

जैसे गीली लकड़ीको आगमें डालनेसे अभिके तेजसे वह सब जगहसे विष्यंदित (गीले स्रावयुक्त) हो जाती है उसीप्रकार स्निग्ध मनुष्यके स्थिर हुए दोषोंको स्वेदन करना चलायमान कर देताहै ॥ ९ ॥

क्लिष्टंवासायथोत्क्लेश्यमलैःसंशोध्यतेऽम्भसा ।

स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लेश्यशोध्यतेशोधनैर्मलः ॥ १० ॥

सजी आदि क्षारसे उत्क्लेशितहुआ मूत्र साधारण, जलके साथ धोनेसे निकलजाताहै उसी प्रकार स्नेहन और स्वेदनसे उत्क्लेशित हुआ मल वमन, विरेचन द्वारा शरीरसे अलग हो जाताहै अर्थात् निकलजाताहै ॥ १० ॥

अजीर्णमें शोधनपीनेके दोष ।

अजीर्णैवर्द्धतेग्लानिर्विवन्धश्चैवजायते ।

पीतंसंशोधनञ्चैवविपरीतंप्रवर्त्तते ॥ ११ ॥

अजीर्णमें वमन, विरेचनकारक द्रव्यके पीनेसे ग्लानिकी वृद्धि होतीहै और विबंध उत्पन्न हो जाताहै तथा उस पिये हुए शोधन द्रव्यकी विपरीत गति होती है । अर्थात् वमनकारक द्रव्य अधोगामी हो जाताहै और विरेचनकारक द्रव्य उर्ध्वगामी हो

जाता है । इसलिये प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होजानेपर शोधनकर्ता द्रव्य पीना चाहिये ॥ ११ ॥

मात्रावत् औषध ।

अल्पमात्रमहावेगंवहुदोषहरंसुखम् । लघुपाकंसुखास्वादंप्रीणनं
व्याधिनाशनम् ॥१२॥ अविकाराविपन्नञ्चनातिग्लानिकरञ्चतत् ।
गन्धवर्णरसोपेतंविद्यान्मात्रावदौषधम् ॥ १३ ॥

जो औषध अल्पमात्रा होनेपर भी महावेगवाली हो तथा सुखपूर्वक बहुदोषोंको हरनेवाली, लघुपाकी, सुखपूर्वक खायी जानेवाली, प्रीतिकारक, व्याधिनाशक, विकाररहित, उपद्रवोंको न करनेवाली, अधिक ग्लानिको न करनेवाली, गंध, वर्ण, और रस संपन्न हो उसको मात्रावत् औषध कहतेहैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

आषधपानक्रम ।

विधूयमानसान्दोषान्कामक्रोधभयादिकान् ।

एकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते ॥ १४ ॥

औषध पीनेके समय काम, क्रोध, भय, आदिक मनके दोषोंको त्यागकर एकाग्रचित्त हो औषध पीना चाहिये । इस प्रकार औषध पीनेसे औषधका सम्यक् योग होताहै ॥ १४ ॥

शोधनपीनेसे प्रथमदिनमें आहार ।

नरःश्वोवमनंपाताभुञ्जीतकफवर्द्धनम् । सुजरंद्रवभूयिष्ठंलघुशीतं-
विरेचनम् । उक्लिष्टाल्पकफत्वेनक्षिप्रंदोषाःस्त्वन्तिहि ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यको दूसरे दिन प्रातःकाल वमन कराना हो उसको प्रथम दिन कफवर्द्धक आहार सेवन कराना चाहिये । और जिस मनुष्यको दूसरे दिन विरेचन कराना हो उसको जल्दी पचनेवाला अधिक पतला, हल्का और शीतल आहार कराना चाहिये । इस प्रकार क्रम पालन करनेसे कफका उत्क्लेश होकर वमन द्वारा शीघ्र दोष निकल जातेहैं और कफ क्षीण होकर विरेचन द्वारा निकलजाते हैं ॥ १५ ॥

शुद्धिके लक्षण ।

पीतौषधस्यतुभिषक्शुद्धिलिङ्गानिलक्षयेत् । ऊर्द्धकफानुगेपित्तेवि-
दपित्तेऽनुकफेत्वधः ॥ १६ ॥

वमन, विरेचनकारक औषध पीनेके अनन्तर वैद्य शुद्धिके लक्षणोंकी परीक्षा करे । जैसे वमनकारक औषध पीनेके अनन्तर प्रथम कफ उदीर्ण होकर निकलजाय फिर वमनके अंतमें पित्त निकले तो शुद्ध वमन होगई ऐसा जानना । और विरेचन द्रव्य पीनेके अनन्तर पहिले मल फिर पित्त और अन्तमें कफ अर्थात् आंव निकलजाय, तो विरेचनसे रोगीका देह शुद्ध होगया ऐसा जानना ॥ १६ ॥

वमनमें ज्ञातव्य ।

हतदोषंवदेत्कार्श्यदौर्बल्यंचेत्सलाघवम् । वामयेत्तुततःशेषमौषधं
नत्वलाघवे ॥ १७ ॥ स्तैमित्येऽनिलसङ्केचनिरुद्धारेऽपिवामयेत् ।
आलाघवादणुत्वाच्चकफस्याग्निकरंभवेत् । वमितेवर्द्धतेवह्निःशमं
दोषात्रजन्तिहि ॥ १८ ॥

यदि वमन करानेसे रोगीका शरीर, कृश, दुर्बल और हल्का होजाय तो फिर और वमन करानेकी आवश्यकता नहीं है । उस समय उसके आमाशयमें बाकी रही हुई जो औषध है उसको वमन द्वारा निकलजाने देवे । यदि रोगीके शरीरमें भारीपन रहे और आमाशय दोषसे भराहुआ प्रतीत हो तो उसको और वमन कराना चाहिये । यदि शरीरमें स्तैमित्य, अधोवायु और डकारका रुकना लक्षण हो तो भी उसको वमन कराना चाहिये । जब तक शरीरमें हल्कापन न आये और कफका थोडा अंश भी बाकी रहे तबतक वमन करतीही रहना चाहिये शुद्ध वमन होजानेके अनन्तर जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । वमन करानेसे अग्निकी वृद्धि होकर दोष शान्त होजातेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

वमितंलङ्घयेत्सम्यग्जीर्णलिङ्गान्यलक्षयन् । तानिदृष्ट्वातुपेयादि-
क्रमंकुर्व्यान्निलङ्घनम् ॥ १९ ॥

यदि वमन करानेपर भी कफके जीर्ण होनेके लक्षण दिखाई न दें तो बाकी रहे दोषको पाचन करनेके लिये रोगीको लंघन कराना चाहिये । जब लंघनद्वारा कफका परिपाक होकर कफनष्ट होजाय तो उसको लंघन बन्द करके पेयादि क्रमका पालन कराना चाहिये ॥ १९ ॥

शोधनके अंतमें क्रम ।

संशोधनाभ्यांशुद्धस्यहृतदोषस्यदेहिनः ।

यात्यग्निर्मन्दतां तस्मात्क्रमंपेयादिमाचरेत् ॥ २० ॥

वमन विरेचन द्वारा शुद्ध देह और दोषरहित होनेपर मनुष्यकी अग्नि मंद होजातीहै

अर्थात् शुद्धदेह होनेसे जठराग्निभी अल्प रहजातीहै उस समय शुद्ध मनुष्यको पेयादि-
क्रमका पालन कराना चाहिये ॥ २० ॥

कफपित्तेविशुद्धेऽल्पमद्यपेवातपैत्तिकैः ।

तर्पणादिक्रमंकुर्यात्पेयाभिष्यन्दयेद्धितान् ॥ २१ ॥

मद्य पीनेवाले, वातपित्त प्रकृतिवाले मनुष्योंको कफपित्तके अल्प शुद्ध होनेपर
पेयादि क्रमके विनाही अल्पमात्रासे तर्पण आदि क्रमसे उपचार करे क्योंकि ऐसे
मनुष्योंको पेया पिलाना उनके शरीरको अभिष्यन्दित करताहै ॥ २१ ॥

औषधजीर्णके लक्षण ।

अनुलोमोऽनिलःस्वास्थ्यंक्षुत्तृष्णोर्जोमनस्विता ।

लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णोपधाकृतिः ॥ २२ ॥

वायुका अनुलोमन होना, स्वस्थता, क्षुधा, प्यास, पराक्रम, मनकी प्रसन्नता,
इन्द्रियोंमें हल्कापन, डकारका शुद्ध होजाना । यह औषधी जीर्ण होनेके
लक्षण हैं ॥ २२ ॥

अजीर्ण औषधके लक्षण ।

कुमोदाहोऽङ्गमर्दश्चभ्रममूर्च्छाशिरोरुजा ।

अरतिर्वलहानिश्चसावशेषौषधाकृतिः ॥ २३ ॥

ह्रान्ति, दाह, अंगडाई, भ्रम, मूर्च्छा, शिरमें पीडा, अरति और बलकी हानि
यह जीर्णविशेष (विना जीर्ण हुई) औषधके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

अकालेऽल्पातिमात्रञ्चपुराणंनचभाषितम् ।

असम्यक्संस्कृतञ्चैवव्यापयेत्तौषधंध्रुवम् ॥ २४ ॥

जो औषध अकालमें (बेसमयमें) पीजाय अथवा अधिक मात्रा वा अल्पमात्रासे
पीजाय तथा पुरानी, विना भावना दीहुई अथवा यथोचित संस्कार की हुई न हो वह
औषध अवश्य उपद्रवको करतीहै ॥ २४ ॥

अयोग और अतियोगके १० उपद्रव ।

आध्मानंपरिकर्त्तित्तिश्चस्त्रावोहृद्गात्रयोर्ग्रहः । जीवादानंसविभ्रंशस्त-

म्भःसोपद्रवःक्लमः।अयोगादतियोगाच्चदशैताव्यापदोमताः ॥२५॥

अफारा, परिकर्त्तिका, मुखसे-लार बहना, हृदय और अंगोंमें जकडन, जीवादान
(जीवसंज्ञक रक्तका निकलना अथवा जीवनशक्तिका क्षीण होना), गुदाका विभ्रंश,

स्तम्भ, उपद्रव (विरेचनका ऊर्द्धगमनादिहोना) और क्लान्ति यह दश उपद्रव शोधनके अयोग और अतियोगसे उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥

परिचारिकादिदोष ।

प्रेष्यभैषज्यवैद्यानां वैगुण्यादांतुरस्य च ।

शुद्धोत्क्रिष्टेन दुर्गन्धमहद्यमतिवाध्यते ॥ २६ ॥

परिचारक, औषध, वैद्य और रोगीकी विगुणता (दुष्टता) के कारण शुद्ध दोष भी उत्कलेशित होकर दीर्गध्य और हृदयकी अप्रियताको उत्पन्नकर कष्टके देनेवाले होजाते हैं ॥ २६ ॥

योगातियोगायोग ।

योगः सम्यक्प्रवृत्तिः स्यादतियोगोऽतिवर्त्तनम् ।

अयोगः प्रातिलोम्येन न चाल्पं वा प्रवर्त्तनम् ॥ २७ ॥

औषधका यथोचित योग होनेसे दोष भले प्रकार निकलजाते हैं । और अतियोग होनेसे दोष अत्यंत निकलते हैं । तथा अयोग होनेसे दोष प्रतिलोभी होकर या तो बिल्कुल नहीं निकलते या निकले भी तो बहुत थोड़े निकलते हैं ॥ २७ ॥

अजीर्णविरेचनका दोष ।

श्लेष्मोत्क्रिष्टेन दुर्गन्धमहद्यं नातिवावहु ।

विरेचनमजीर्णे च पीतमूर्च्छं प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥

पहिले दिनका अजीर्ण होनेपर यदि विरेचन कारक औषधि पान कीजाय तो वह वमन द्वारा निकलने लगती है और कफके उत्कलेश होनेसे अल्प अथवा अधिक दुर्गन्धता और हृदयग्लानि होती है ॥ २८ ॥

वमनका अयोग ।

क्षुधार्त्तमृदुकोष्ठाभ्यां स्वल्पोत्क्रिष्टकफेनवा । तीक्ष्णं पीतं स्थितं क्षु-

ब्धं वमनं स्याद्विरेचनम् । अयोगे तत्र कर्त्तव्यं समासेनाभिधीयते ॥ २९ ॥

प्रातिलोम्येन दोषाणां हरणात्तेष्वकृच्छ्रतः । अयोगसंज्ञेकृच्छ्रेण न-

चागच्छति चाल्पशः ॥ ३० ॥

जिस मनुष्यको अति भूख लगी हो, जिसका कोठा बहुत नर्म हो, जिसका कफ, यथोचित उत्कलेशित न हुआ हो, उसको वमनकारक तीक्ष्ण औषधि पिलाई हुई उदीर्ण न होकर और क्षुभित होकर विरेचनद्वारा निकलने लगती है । ऐसा होनेपर

यद्यपि वामक औषध विरेचन द्वारा भी निकल जाता है तौ भी वह वमनका अयोगही कहा जाता है । क्योंकि ऐसे समय दोष कष्टसे निकलें या अल्प निकलते हैं अथवा वमनके मार्गसे नहीं निकलते इस लिये उनको वमनका अयोगही कहना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

पीतौषधोनशुद्धश्रेणीतस्मिन्पुनःपिवेत् ।

औषधंनत्वजीर्णेऽन्यद्भयंस्यादतियोगतः ॥ ३१ ॥

प्रथम पान कीहुई औषधसे रोगी शुद्ध न हुआ हो तो उस औषधके जीर्ण होनेपर फिर उसको दुबारा औषधि पिलाना चाहिये । यदि प्रथम औषधके बिना जीर्णहुए फिर दुबारा औषधि पिला दी जाय तो उससे विरेचनके अतियोग होनेका भय है ॥ ३१ ॥

कोष्ठस्यगुरुतांज्ञात्वालघुत्वंवलमेवच ।

अयोगेऽमृदुवादद्यादौषधंतीक्ष्णमेववा ॥ ३२ ॥

यदि शोथनका अयोग हुआ हो तो उसमें कोष्ठकी गुरुता, लघुता और बलावल विचारकर फिर मृदु अथवा तीक्ष्ण औषधका प्रयोग करे ॥ ३२ ॥

वमनंनतुदुश्छयादुष्कोष्ठंनविरेचनम् ।

पाययेतौषधंभूयोहन्यात्पीतपुनर्हितौ ॥ ३३ ॥

जिस मनुष्यको वमन अति कष्टतासे होतीहो उसको वमन नहीं कराना चाहिये । और जिसका अत्यंत कठोर कोठा हो उसको बिना नम्रकोष्ठ किये विरेचन नहीं देना चाहिये । इनको वमन, विरेचनकी औषध पिलानेसे वमन, विरेचन नहीं होते । उनके अयोगमें फिर शोधक औषध देनेसे शोथन तो नहीं होता परन्तु इनके प्राणोंके नाश होनेका भय होता है ॥ ३३ ॥

विरेचनका प्रयोग ।

अस्निग्धास्विन्नदेहस्यरूक्षस्यानवमौषधम् । दोषानुक्लिश्यनिर्हंतु-
मशक्तंजनयेद्भदान् ॥ ३४ ॥ विभ्रंशंश्वयथुंहिकांतमसोदर्शनभृशम् ।

पिण्डकोद्वेष्टनंकण्डूमूर्वोःसादंबिवर्णताम् ॥ ३५ ॥

जो स्निग्ध और स्वेदित न कियागया हो तथा रूक्ष शरीरवाला हो, उसको पुरानी औषध शोधनके लिये दीजाय तो वह औषध केवल दोषोंको तो उत्क्लेशितकर देती है परन्तु हीनवीर्य होनेसे दोषोंको यथोचित निकाल नहीं सकती । फिर दोषोंके

उत्कलेशित होनेसे वह विना निकले दोष रोगोंको उत्पन्न करतेहैं । जैसे-विभ्रंश, सूजन, हिचकी, बंधकार दिखाई देना, पिण्डलियोंका उद्वेगन, खुजली, ऊरुओंका सुन्नसा होजाना और विवर्णता इन रोगोंको उत्पन्न करतेहैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

स्निग्धास्विन्नस्यचात्यल्पदीप्ताग्नेर्जीर्णमौषधम् । शीतैर्वास्तम्भये-
त्सामेदोपानुक्लिश्यनाहरेत् ॥ ३६ ॥ तानेवजनयेद्रोगान्नयोगःसर्व-
एवसः । विज्ञायमतिमांस्तत्रयथोक्तांकारयेत्क्रियाम् ॥ ३७ ॥

रोगीको स्नेहन और स्वेदन करनेपर भी यदि अल्पमात्रा दी जाय अथवा दीप्त-
अग्नि होनेके कारण औषध जीर्ण होजाय या शीतल उपचार करनेसे अथवा बर्दाहुई
आमद्वारा वह औषध स्तंभित होजाय तो वह दोषोंको उत्कलेशित तो करदेती है ।
परन्तु निकाल नहीं सकती तथा उपरोक्त विभ्रंश आदि रोगोंको उत्पन्न करतीहै ।
और शोधनका संपूर्ण रूपसे अयोग होताहै । इस प्रकार अयोगोंको बुद्धिमान वैद्य
यथोचित समझकर निम्नलिखित क्रिया करे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शोधनके अयोगमें कर्तव्य ।

तंतैलवणाभ्यक्तंस्विन्नंप्रस्तरसङ्करैः । पाययेत्पुनर्जीर्णंसमूत्रैर्वा
निरूहयेत् ॥ ३८ ॥ निरूढश्चरसैर्धन्वैर्भोजयित्वाऽनुवासयेत् । फल-
मागधिकादारुसिद्धतैलेनमात्रयास्निग्धंवातहरैःस्नेहैःपुनस्तीक्ष्णेन
शोधयेत् ॥ ३९ ॥

शोधनका अयोग होनेपर नमकयुक्त तैलकी मालिशकर प्रस्तरस्वेद और संकर-
स्वेद द्वारा स्वेदित करे । जब पहिली औषधि जीर्ण होचुके तो फिर औषधि पिलवै
अथवा गोमूत्रयुक्त द्रव्योंसे निरूहण वस्ति करे । निरूहणवस्तिके अनन्तर शुद्ध होने-
पर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करावे । फिर अनुवासन वस्ति देवे ।
अनुवासनके तैल, मैनफल, पीपल और द्रव्य तथा कायसे उचित रीतिपर सिद्ध
क्रिये होने चाहिये । तथा वातनाशक तैलोंको स्निग्धकर फिर तीक्ष्ण शोधन कराके
दोष और औषधको हरण करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अतियोगके दोष, चिकित्सा ।

नचातितीक्ष्णेनततोह्यतियोगस्तुजायते । अतितीक्ष्णंशुधात्तस्य
मृदुकोष्ठस्यभेषजम् ॥ ४० ॥ हत्वाशुषिट्पित्तकफान्धातून्विस्त्वाव-
येद्भवान् । बलस्वरक्षयंदाहंकण्ठशोषंक्लमंतृपाम् । कुर्याच्चमधुरै-
स्तत्रशेषमौषधमुल्लिखेत् ॥ ४१ ॥

क्षुधासे व्याकुल अथवा मृदुकोष्ठवाले मनुष्यको तीक्ष्ण शोधन नहीं देना चाहिये क्योंकि ऐसे मनुष्योंको तीक्ष्ण शोधन देनेसे शोधनका अतियोग हो जाता है । अतियोग होनेसे वह औषध प्रथम विष्ठा, पित्त और कफको निकालकर फिर पतली धातुओंको निकालने लगती है । उससे बल और स्वरका क्षय, दाह, कण्ठका सूखना, क्लम, प्यास यह उपद्रव होते हैं । ऐसे समय मधुर, पदार्थोंसे अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध कियेहुए क्वाथोंसे वमन कराकर शेष औषधको निकाल देवे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

वमनेतुविरेकःस्याद्विरेकेवमनंमृदु । परिपेकावगाहाद्यैःसुशीतैस्त-
म्भयेच्चतम् ॥ ४२ ॥ कपायमधुरैःशीतैरन्नपानौषधैस्तथा । रक्तपि-
त्तातिसारघ्नैर्दाहज्वरहरैरपि ॥ ४३ ॥

वमनके अतियोगमें विरेचन देकर औषधको निकाले और विरेचनके अतियोगमें वमन द्वारा शेष औषधको निकालडाले तथा शीतल परिसेचन और अवगाहन आदि द्वारा अतियोगका स्तम्भन करे । एवं कसैले, मीठे और शीतल अन्न, पान, औषधों द्वारा तथा रक्तपित्त नाशक और दाहज्वरनाशक द्रव्यों द्वारा शोधनके अतियोगको स्तम्भन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

विरेचनका अतियोगनाशक योग ।

अञ्जनंचन्दनोशीरमज्जासृक्शर्करोदकम् ।

लाजचूर्णैःपिवेन्मन्थमतियोगहरंपरम् ॥ ४४ ॥

रसौत, लालचंदन, खस इन सबको पीसकर बकरीके रक्त और खांडके शरबतमें मिलाकर उसमें खीलोंका चूर्ण मिला मंथ बनावे । इस मंथके पीनेसे विरेचनका अतियोग दूर होता है ॥ ४४ ॥

शुद्धाभिर्वावटादीनांसिद्धांपेयांसमाक्षिकाम् ।

वर्च्चःसंग्राहिकैःसिद्धक्षीरंभोज्यञ्चदापयेत् ॥ ४५ ॥

वटआदि वृक्षोंके गुणोंसे सिद्ध कीहुई पेया शीतलकर शहद मिला पीनेसे विरेचनका अतियोग दूर होता है । तथा संग्राही द्रव्योंसे सिद्धकिये दूधको शीतलकर उसमें शहद मिलावे अथवा उससे शालीचावलोंका भात कराए तो विरेचनका अतियोग शान्त होता है ॥ ४५ ॥

जाङ्गलैर्वारसैर्भोज्यंपिच्छावस्तिचदापयेत् ।

मधुरैरनुवास्यश्चसिद्धेनक्षीरसर्पिपा ॥ ४६ ॥

विरेचनके अतियोग होनेके अनन्तर जंगलीजीवोंके मांसरसके साथ भोजन और अतिसार रोगमें कहींहुई पिच्छावस्ति तथा जीवनी आदि मधुर द्रव्योंसे सिद्धकियेहुए दूधके घृतसे अनुवासनवस्ति करना हितकारक है ॥ ४६ ॥

वमनके अतियोगमें क्रिया ।

वमनस्यातियोगेतुशीताम्बुपरिपेचितम् ।

पिवेत्फलरसैर्मन्थंसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ ४७ ॥

वमनके अतियोगमें शीतलजलसे परिसेचन करना, शीतलजलके मुखपर छंटे देना और अनार आदि फलोंके रससे मंथ बना उसमें घृत, शहद और मिसरी मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ४७ ॥

सोद्वारायांभृशंवम्यांमूर्च्छायांधान्यमुस्तयोः ।

समधूकाअनंचूर्णलेहयेन्मधुसंयुतम् ॥ ४८ ॥

यदि वमनके अतियोगमें डकारके साथ अत्यन्त वमन आती हो और मूर्च्छा भी होनेलगे तो धनिया, नागरमोथे, महुआ और रसौतके चूर्णको शहदमें मिलाकर चटावे ॥ ४८ ॥

अंतर्गतजिह्वाका यत्न ।

वमतोऽन्तःप्रविष्टायांजिह्वायांकवलग्रहाः । स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यै-
र्धूषक्षीररसैर्हिताः । फलान्वम्लानिखादेयुस्तस्यचान्येऽयतो नराः ४९ ॥

यदि वमन करते २ जिह्वा भीतरको चलीजाय तो उसको चिकने, अम्लरसयुक्त, नमकीन और हृदयको प्रिय यूषोंसे अथवा दूधसे वा मांसरससे कवल धारण कराना हितकारक है । अथवा जिस रोगीकी जिह्वा वमनके अतियोगमें भीतरको चलीगई हो उसके सामने बैठकर दूसरे मनुष्य अनार, निम्बू आदि खट्टे फलोंको खावें अथवा अनारके रस वा निंबूके रससे कवल कराना भी हितकारक है ॥ ४९ ॥

निसृताजिह्वाका यत्न ।

निःसृतान्तुतिलद्राक्षाकल्कलितांप्रवेशयेत् ॥ ५० ॥

जिस मनुष्यकी जिह्वा वमन करते २ बाहरको निकल आवे तो उसकी जीभपर तिल और द्राक्षाका कल्क लेप करके भीतरको प्रवेश करे ॥ ५० ॥

वाग्ग्रह ।

वाग्ग्रहानिलरोगेषुघृतमांसोपसाधिताम् ।

यवागूतनुकांदद्यात्स्नेहस्वेदौचबुद्धिमान् ॥ ५१ ॥

यदि वमनके अतियोगमें वाणी रुकजाय अर्थात् बोलना बंद होजाय और वायुका कोप हो तो घृत और मांसरसके साथ सिद्ध कीहुई पतली यवागृ पिलावे तथा बुद्धिमान् वैद्य स्नेहन और स्वेदन करे ॥ ५१ ॥

वमितश्चविरिक्तश्चमन्दाग्निश्चविलङ्घितः ।

अग्निप्राणविवृद्धयर्थंक्रमेपेयादिकंभजेत् ॥ ५२ ॥

वमन, विरेचन द्वारा संशुद्ध होनेसे अल्पअग्निवाले मनुष्यको तथा लंघन क्रिये मनुष्यको अग्निबल बढ़ानेके लिये पेयादि क्रमका पालन करना चाहिये ॥ ५२ ॥

विरेचनके अयोगमें अफारा ।

बहुदोषस्यरूक्षस्यहीनाग्नेरल्पमौषधम् । सोदावर्त्तस्यचोत्क्लिश्यदो-
पान्मार्गाग्निरुध्यच ॥ ५३ ॥ भृशमाध्मापयेन्नाभिपृष्ठपार्श्वशिरोरु-
जाम् ॥ श्वासविण्मूत्रवातानांसङ्कुर्व्याच्चदारुणम् ॥ ५४ ॥ अभ्य-
ङ्गस्वेदवर्त्त्यादिसनिरूहानुवासनम् । उदावर्त्तहरंसर्वकर्माध्मात-
स्यशस्यते ॥ ५५ ॥

बहुदोषोंसे युक्त, रूक्ष और हीन अग्निवाले मनुष्यको अथवा उदावर्त्त रोगी-
को अल्पमात्रावाला विरेचन देनेसे दोष उतकेशित होजाते हैं । वह उतकेशित
दोष न निकलेसे उनका मार्ग रुककर नाभिके चारों ओर आफारा उत्पन्न
होजाता है तथा पीठ पार्श्वभाग और शिरमें पीडा होने लगती है श्वास, मल मूत्र और
अधोवायुका दारुणरूपसे विबन्ध होजाता है ऐसा होनेपर तैलमर्दन, स्वेदन वर्त्ति-
प्रयोग, निरूहण और अनुवासन तथा उदावर्त्तनाशक संपूर्ण क्रिया करनी हितकारक
है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

परिकर्तिकाके हेतु और चिकित्सा ।

स्निग्धेनगुरुकोष्ठेनसामेवलवदौषधम् । क्षामेणमृदुकोष्ठेनश्रान्तेना-
ल्पवलेनवा ॥ ५६ ॥ पीतंगत्वागुदंसाममाशुदोषानिरस्यच । तीव्र-
शूलांसपिच्छास्त्रां करोतिपरिकर्तिकाम् ॥ ५७ ॥ लंघनंपाचनं
सामेरूक्षोष्णलघुभोजनम् । वृहंणीयोविधिःसर्वःक्षामस्यम-
धुरस्तथा ॥ ५८ ॥

स्निग्ध मनुष्यको अथवा गुरुकोष्ठवालेको वा आमदोषवालेको अथवा क्षीण वा
मृदुकोष्ठ वा श्रान्त अथवा अल्प बलवालेको विरेचनकी बलवान् औषध देनेसे उसके

आमसहित दोष उदीर्ण होकर गुदामार्गसे शीघ्र निकलने लगते हैं । उस समय पेटमें तीव्र शूल, पिच्छा और रुधिरयुक्त परिकर्तिका होने लगती है । ऐसे समय यदि आमदोषयुक्त मनुष्य हो तो उसको लवण, पाचन, रुक्ष, उष्ण और हल्का भोजन करना चाहिये । यदि क्षीण मनुष्यको ऐसा उपद्रव होय तो वृंहणीय विविका सेवन करना चाहिये तथा जीवनीय मधुर द्रव्योंसे उपचार करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

आमाजीर्णकी चिकित्सा ।

आमाजीर्णेतुवन्धश्चेत्क्षाराम्लंलघुशस्यते । पुष्पकासीसमिश्रंवा
क्षारेणलवणेनच ॥ ५९ ॥ सदाडिमरसंसर्पिःपिवेद्वातेऽधिकेसति ।
दध्यम्लंभोजनेपानेसंयुक्तंदाडिमत्वचा ॥ ६० ॥

आमके अजीर्णसे यदि विषन्ध होजाय तो क्षार और अम्लयुक्त हल्का भोजन करना हितकारक है और वायुकी आविकतामें पुष्पकासीस वा क्षार और लवण मिलाकर अनारका रसयुक्त कर घृत पिलाना चाहिये । अथवा भोजन और पानमें खट्टा दही और अनारके फलका छिलका मिलाकर पीवे तो वातायिक आमका पाचन होकर आमाजीर्ण दूर होता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

देवदारुतिलानांवाकल्कमुष्णाम्बुनापिवेत् । अश्वत्थोटुम्बरप्लक्ष-
कदम्बैर्वाशृतंपयः ॥ ६१ ॥ कपायमधुरं वस्तिं पिच्छावस्तिमथापि
वा । यष्टीमधुकासिद्धंवास्त्रेहवस्तिप्रदापयेत् ॥ ६२ ॥

अथवा देवदारु और तिलका कल्क गर्म जलके साथ पीवे । वा पीपल, गूलर, पिलखन और कदम्बकी छालसे सिद्धि किया दूध पीवे या कसैले और मधुर द्रव्योंकी वस्ति अथवा अतिसारमें कही हुई पिच्छावस्ति वा मुलैठीसे सिद्ध की हुई स्त्रेहवस्ति करे तो आमाजीर्ण अर्थात् आंवका कच्ची अवस्था में गिरना वा उससे विषन्ध होना यह दूर होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अधिकद्रोषोंमें अल्पशोधनके दोष चिकित्सा ।

अल्पन्तुवहुदोषस्यदोषमुत्क्लिश्यभेषजम् । अल्पालंपस्त्रावयेत्कण्डूं
शोफकुष्ठानिगौरवम् ॥ ६३ ॥ कुर्याच्चान्निवधोक्लेशस्तैमित्यारुचि-
पाण्डुताम् । परिस्त्रावगतंदोषंशमयेद्द्वामयेदपि ॥ ६४ ॥ स्नेहितं
वापुनस्तीक्ष्णंपाययेच्चविरेचनम् । शुद्धेचूर्णासवारिष्टान्संस्कृतांश्च
प्रदापयेत् ॥ ६५ ॥

अधिक दोषवाले मनुष्यको अल्प विरेचन देनेसे उसके दोष उदीर्ण होकर थोड़े थोड़े निकलते हैं । आर खुजली, सूजन, कुष्ठ, भारीपन, अग्निकी मंदता, उत्केश, स्तैमित्य, अरुचि, पाण्डुता और परिस्त्राव यह लक्षण होते हैं । ऐसा होनेसे दोषोंको शमन करे अथवा वमन करना चाहिये । वमन करनेसे भी यदि दोष शान्त न हों तो उस मनुष्यको स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण विरेचन देवे । जब शुद्ध होजाय तो उसको चूर्ण, आसव और अरिष्ट अथवा संस्कार कियेहुए यूप आदि देने चाहिये ॥ ६३-६५ ॥

रेचक औषध पीकर वेगोंके रोकनेके उपद्रव और चिकित्सा ।

पीतौषधस्यवेगानानिग्रहान्मारुतादयः । कुपिताहृदयंगत्वाघोरं
कुर्वन्तिहृद्ग्रहम् ॥ ६६ ॥ सहिक्काश्वासपार्श्वार्त्तिदैन्यलालाक्षि
विभ्रमैः । जिह्वांखादतिनिःसंज्ञोदन्तान्किटिकिटापयन् ॥ ६७ ॥
नगच्छेद्विभ्रमंतत्रवामयेदाशुतंभिपक् । मधुरैःपित्तमूर्च्छार्त्तिकटुभिः
कफमूर्च्छितम् ॥ ६८ ॥ पाचनीयैस्ततश्चास्यदोषशेषंविपाचयेत् ।
कायाग्निञ्चवलश्चास्यक्रमेणाभिविचर्चयेत् ॥ ६९ ॥

औषध पीकर वेगोंको रोक देनेसे वातादि दोष कुपित होकर हृदयको प्राप्त हो घोर हृद्ग्रह रोगको करते हैं तथा हिचकी, खांसी, पार्श्वपीडा, दीनता लारका बहना, नेत्रोंका विभ्रम, जिह्वाका काटना, बेहोशी और दांतोंका कटकटाना इन उपद्रवोंको उत्पन्न करते हैं । ऐसे समय वैद्य उद्भ्रान्त न होकर उस रोगीको शीघ्र वमन करावे । यदि उसमें पित्तकी मूर्च्छा हो तो मधुर द्रव्योंसे और कफकी मूर्च्छा हो तो चरपरे द्रव्योंसे वमन कराना चाहिये । यदि इस प्रकार वमन करानेसे भी दोष संपूर्ण रूपसे शान्त न हों तो उनको पाचन द्रव्योंके योगसे शान्त करे और क्रमपूर्वक इसके अग्निबलको बढ़ावे ॥ ६६-६९ ॥

वमनके अतियोगमें हृद्ग्रह ।

पवनेनातिवमतोहृदयंस्यपीडयते ।

तस्मैस्निग्धाम्ललवणंदद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ॥ ७० ॥

वमनके अधिक होनेसे जिम्के हृदयको वायु पीडन करे उसको स्निग्ध, अम्ल और नमकीन मांसरस आदि पलाकर अथवा अन्य स्निग्ध, अम्ल आदि द्रव्य देकर वायुको शान्त करे और यदि कफकी अधिकता हो तो स्निग्ध, अम्ल औषध न देकर रूक्ष तिक्त आदि उपचार करे ॥ ७० ॥

वामक औषके वेग रोकनेके दोष व चिकित्सा ।

पीतौषधस्यवेगानानिग्रहेणकफेनवा । रुद्धोऽतिचाविशुद्धस्यगृह्णा-
त्यङ्गानिमारुतः ॥ ७१ ॥ स्तम्भवेपथुनिस्तोदसादोद्वेष्टार्त्तिमूर्च्छि-
तैः । तत्रवातहरंसर्वस्नेहस्वेदादिकारयेत् ॥ ७२ ॥

यदि वमनकारक औषध पीकर वमनके आयेहुए वेगको रोकलेवे तो कफ कुपित होकर वायुको रोकलेता है । वह कफद्वारा रुकाहुआ वायु अविशुद्ध मनुष्यके अंगोंको ग्रहणकर स्तंभ, तोड़, उद्वेष्टन और घोर मूर्च्छाको उत्पन्न करता है । ऐसा होनेपर वात-नाशक क्रिया और स्नेहन, स्वेदन आदि करना चाहिये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

अल्प दोषमें तीक्ष्ण ।

अतितीक्ष्णंमृदौकोष्ठेलघुदोषस्यभेषजम् ।

दोषान्दृत्वाविनिर्मथ्यजीवहरतिशोणितम् ॥ ७३ ॥

अल्पदोषवाले मनुष्यके मृदुकोष्ठमें अति तीक्ष्ण औषध पहुंचकर प्रथम संपूर्ण दोषोंको दूरकर फिर द्रव्य घातुओंको मन्यनकर जीवसंज्ञक रक्तको निकालतीहै ॥ ७३ ॥

जीवसंज्ञक रक्तकी परीक्षा शोधनके दोष ।

तेनान्निमिश्रितंदद्याद्वायसायशुनेऽपिवा । भुंक्तेतच्चेद्ददेजीवंनभुंक्ते
पित्तमादिशेत् ॥ ७४ ॥ शुक्लंवाभावितंवस्त्रमाधानंकोष्णवारिणा ।

प्रक्षालितंविवर्णंचेत्पित्तंशुद्धन्तुशोणितम् ॥ ७५ ॥

जीवसंज्ञक रक्तकी यह परीक्षा है कि उस रक्तको अन्नमें मिलाकर काग वा कुत्ते-आगे रखे । यदि उसको काग, कुत्ता आदि खाजाय तो वह जीवसंज्ञक (शुद्ध रक्त) जानना । यदि न खांथ तो रक्तपित्तका रक्त जानना । क्योंकि रक्तपित्तके रक्तको काग आदि नहीं खाते । दूसरी यह परीक्षा है कि उस रक्तमें श्वेत वस्त्रको डुबोकर गर्मजलसे धोदेवे । यदि कपडेका दाग दूर न हो और विवर्ण होजाय तो रक्तपित्तका विकार जानना । यदि शुद्ध होजाय तो जीवनसंज्ञक रक्त जागना ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

जीवसंज्ञक रक्त निकालनेकी चिकित्सा ।

तृषामूर्च्छामदार्त्तस्यकुर्यादास्रणात्क्रियाम् ।

तस्यपित्तहरींसर्वात्मतियोगेचयाहिता ॥ ७६ ॥

विरचनके अतियोगमें प्यास, मूर्च्छा और मत्तता होजाय तो उस रोगीकी मरणपर्यन्त भी पित्तनाशकही संपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये । तथा विरेचनके अतियोगको दूर करनेवाली जो शीतल क्रिया कही है वह करना हितकारक है ॥ ७६ ॥

मृगगोमहिषाजानांसद्यस्कंजीवतामसृक् । पिवेज्जीवाभिसन्धानं
जीवंतद्धयाशुगच्छति । तदेवदर्भमृदितंरक्तंवस्तिप्रदापयेत् ॥ ७७ ॥

यदि शोधनके अतियोगमें जीवसंज्ञक शुद्ध रक्त निकलजाय तो उस रोगीको मृग, हरिण, भैस, बकरी आदिका तत्काल निकालाहुआ रक्त पिलाना चाहिये । उससे जीवसंज्ञक रक्तके अति निकालनेका दोष दूर होकर शीघ्र जीवत्वकी वृद्धि होती है । अथवा इन्ही मृगादिकोंके रुधिर और कुशाकी जड़ोंके कल्कको मर्दन कर उससे वस्तिप्रयोग करे ॥ ७७ ॥

श्यामाकाशमर्यवदरीदूर्वावीरैःशृतंजलम् ॥ ७८ ॥ घृतमण्डाञ्ज-
नयुतंवस्तिशीतंप्रदापयेत् । पिच्छावस्तिं सुशीतंवाघृतमण्डानुवा-
सनम् ॥ ७९ ॥

सारिवॉ कुंभेरके फल, बेर, हरीदूब और क्षीरकाकोली इनके क्वाथमें घृतमण्ड और रसौन मिलाकर शीतल वस्तिका प्रयोग करे । अथवा शीतल पिच्छावस्तिका प्रयोग करके फिर घृतमण्डसे अनुवासन करे तो विरेचनके अतियोगसे जीवसंज्ञक रक्तका निकलना और उससे उत्पन्नहुई क्षीणता दूर होती है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

विरेचनके अतियोगसे गुदभ्रंश आदि उपद्रवोंकी चिकित्सा ।

गुदभ्रंशंकषायैश्चस्तम्भयित्वाप्रवेशयेत् ।

सामगन्धर्वशब्दांश्चसंज्ञानाशेऽस्यकारयेत् ॥ ८० ॥

यदि विरेचनके अतियोगसे गुदाभ्रंश होजाय अर्थात् कांच निकलने लगे तो वड आदि क्षीरी वृक्षोंके क्वाथसे सेचन कर- गुदाको रोककर भीतरकी प्रवेश करे । यदि विरेचनके अतियोगमें संज्ञानाश होजाय अर्थात् वेहोशी होजाय तो उसके कानके समीप उत्तम स्वरसहित गायन वा वेदका गायन करे ॥ ८० ॥

शोधन चिन्त्रंशः ।

यदाविरेचनंपीतंविडन्तरवतिष्ठते । वमनंभेषजान्तंवादोपानुत्क्रे-
द्यनावहेत् ॥ ८१ ॥ तदाकुर्वतिकड्वादीन्दोपाःप्रकुपितागदान् ।
सविभ्रंशोमतस्तत्रस्याद्यथाव्याधिभेषजम् ॥ ८२ ॥

यदि केवल एक दो बार मल निकलकर विरेचन क्रिया बन्द होजाय और पित्त, कफ न निकले और इसी प्रकार वमनक्रियामें पीहुई केवल औषध निकलकर वमन होना बन्द होजाय और कफ, पित्त न निकले ऐसा होनेसे उसके दोष उत्कलेशित मात्र होजातेंहैं परन्तु शोधन नहीं होता । ऐसा होनेसे उस मनुष्यके शरीरमें खुजली

आदि उत्पन्न होतेहैं इसको वमन, विरेचनका विभ्रंश कहतेहैं । ऐसा होनेमें दोषानु-
सार अथवा उत्क्लेशित दोषोंसे उत्पन्नहुए रोगानुसार चिकित्सा करनी चाहिये ।
वा फिर उचित रीतिपर शोधन कराना भी हितकारी है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अतिस्निग्धको स्नेह विरेचनके दोष ।

पीतस्निग्धेनसस्त्रेहंतदोषैर्माद्वान्मृत्तम् । न्वाहयतिदोषांस्तुस्वस्था-
नात्स्तम्भयेच्चतान् ॥ ८३ ॥ वातसङ्गुदस्तम्भशूलैःक्षरतिचा-
ल्पशः । तीक्ष्णवस्तिविरेकंवाद्यल्लंघनपाचनम् ॥ ८४ ॥

जो अति स्निग्ध मनुष्य स्नेह विरेचन पानकरे तो मृदुताके कारण दोष
चलायमान नहीं होते, अपने स्थानसे चलेहुए भी वहींपर स्तंभित होजातेहैं और
विरेचन नहीं होता । ऐसा होनेसे अथवायुका विबंध, गुदस्तम्भ, गुदामें शूलका
होना और थोड़े २ मलका निकलना यह उपद्रव होतेहैं । ऐसा होय तो तीक्ष्णवस्ति
वा रुक्ष विरेचन अथवा लंघन और पाचनद्रव्योंका प्रयोग करना हितकारी
है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

रुक्षतामें रुक्षविरेचनके दोष, चि० ।

रुक्षंविरेचनंपीतरुक्षेणाल्पवलेनवा । मारुतंकोपयित्वाशुकुर्याद्धो-
रानुपद्रवान् ॥ ८५ ॥ स्तम्भशूलानिघोराणिसर्वगात्रेषुमारुतः ।
स्नेहस्वेदादिकस्तत्रकार्योवातहरोविधिः ॥ ८६ ॥

रुक्ष और अल्पबल मनुष्यको रुक्षविरेचन देनेसे वह वायुको कुपित करके घोर
उपद्रवोंको उत्पन्न करताहै तथा वह कुपित वायु संपूर्ण शरीरमें घोर स्तम्भ और
शूल तथा मोहको उत्पन्न करताहै । ऐसा होनेपर स्नेह, स्वेदादि वातनाशक क्रिया
करनी चाहिये ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

गुरुकोष्ठको मृदुशोधनके दोष और चि० ।

स्निग्धस्यगुरुकोष्ठस्यमृदूत्क्लेश्यौषधंकफम् । पित्तंवातञ्चसंरुध्यस-
तन्द्रागौरवंक्लमम् ॥ ८७ ॥ दौर्बल्यञ्चाङ्गसादञ्चकुर्यादाशुतदृष्टि-
खेतु । लंघनपाचनञ्चात्रस्निग्धेतीक्ष्णञ्चशोधनम् ॥ ८८ ॥

स्निग्ध शरीर और भारी कोष्ठवाले मनुष्यको यदि मृदु औषध पिलावे तो वह
औषध उसके कफको उत्क्लेशितकर पित्त और वातको रोकदेतीहै तब तन्द्रा भारी-
पन, कटान्ति, दुर्बलता और अंगोंका सोजाना यह उपद्रव उत्पन्न होतेहैं । ऐसा

होनेपर शीघ्र वमन कराना चाहिये । तथा लंबन और पाचनद्वारा कोष्ठकी, स्निग्धता और गुरुताको शान्तकर फिर स्नेहन स्वेदन, करके तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ ।

इत्येताव्यापदःप्रोक्ताःसर्वाहिसचिकित्सिताः । वमनस्यविरेक-
स्यकृतस्याकुशलैर्नृणाम् ॥ ८९ ॥ एतान्विज्ञायमतिमानवस्थाश्रै-
वतत्त्वतः । कुर्यात्संशोधनंसम्यगारोग्यार्थीनृणांसदा ॥ ९० ॥

इतिश्रीच० सिद्धि० वमनविरे० व्यापत्तिसिद्धिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस अध्यायमें इस प्रकार वमन, विरेच-
नकी संपूर्ण व्यापत्तियें उनके उपद्रव और मूर्ख वैद्यके दिधेदुष् वमन, विरोचनोसे
डंकार इन सबको चिकित्सासहित कथन कियाहै । बुद्धिमान् वैद्य इन विषयोंको
यथोचित समझकर और यथार्थरूपसे, अवस्था आदि विचारकर मनुष्योंकी आरो-
ग्यताके लिये शोधन (वमन, विरेचन) का प्रयोग करे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

इति श्री० च० प्र० आ० सं० सि० स्थाने प्र० भा० टी० वमनविरेचनव्यापत्तिसिद्धिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो वस्तिव्यापत्तिसिद्धिं व्याख्यास्याम इति हस्माह भग-
वानात्रेयः ।

अब हम वस्तिव्यापत्तिसिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी
कथन करने लगे ॥

धीधैर्यौदार्यगाम्भीर्यक्षमादमतपोनिधिम् । पुनर्वसुंशिष्यगणः
पप्रच्छविनयान्वितः ॥ १ ॥ काः कतिव्यापदोवस्तेः किंसमुत्था-
नलक्षणाः । काश्चिकित्साइतिप्रश्नाञ्छ्रुत्वातानत्रवीहुरुः ॥ २ ॥

बुद्धि, धैर्य, उदारता, गांभीर्य, क्षमा, दम और तपस्पाके कोपरूप महर्षि पुनर्वसु-
जीसे शिष्यगण विनयपूर्वक पूछनेलगे कि हे भगवन् ! वस्तिकी व्यापत्तियें कितनी
हैं और कौनसी हैं । उनके कारण क्या हैं और लक्षण क्या हैं तथा चिकित्सा क्या
है इस प्रकार शिष्योंके प्रश्नको सुनकर गुरु कहनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥

वस्तिकी व्यापत्तियें (विकार) ।

नातियोगौक्लुभाध्मातौहिकाद्वत्प्राप्तिरूर्ध्वता । प्रवाहिकाशिरोऽङ्गा-
र्त्तिःपरिकर्त्तःपरिस्रवः ॥ ३ ॥ द्वादशव्यापदोवस्तेरसम्यग्योगस-
म्भवाः । आसामेकैकशोरूपंचिकित्साश्चानिवोधत ॥ ४ ॥

अयोग, अतियोग, यलान्ति, आध्मान, हिचकी, हृत्प्राप्ति, उद्धंगमन, प्रवाहिका
शिरोवेदना, अंगशूल, परिकर्त्तिका और परिस्राव यह चारह प्रकारके विकार वस्तिके
मिथ्यायोगसे उत्पन्न होतेहैं । अब इनके पृथक् लक्षण और चिकित्साको
श्रवण करो ॥ ३ ॥ ४ ॥

अयोग ।

गुरुकोष्ठेऽनिलप्रायेरुक्षेवातोन्वणेऽपिवा । शीतोऽल्पलवणस्नेहद्रव-
मात्रोघनोऽपिवा ॥ ५ ॥ वस्तिःसंक्षोभ्यतंदोपंदुर्वलत्वादनिर्हरन् ।
करोतिगुरुकोष्ठत्वंवातमृत्रशकृद्द्रहम् ॥ ६ ॥ नाभिवस्तिरुजंदाहं,
हृष्टेपंश्वयथुंगुदे । कण्डूगण्डानिवैवर्ष्यमरुचिबहिर्मादवम् ॥ ७ ॥

वातप्रधान, गुरुकोष्ठ, रूक्ष और वाताधिक्य मनुष्यको यदि शीतल थोड़े नमक-
वाली थोड़े स्नेहवाली, अत्यंत पतली वा अत्यंत गाढी वस्तिका प्रयोग कियाजाय
तो वह वस्ति दोषोंको संक्षोभित तो कर देतीहै परन्तु निर्बल होनेसे निकाल नहीं
सकती तथा कोष्ठमें भारीपन, अधोवायु, मल और मूत्रकी रुकावट, नाभि और
वस्तिस्थानमें पीडा, दाह, हृदयका उपलेप, गुदामें सूजन, खुगली, ग्रंथियें, विवर्णता
अरुचि, अग्निकी मंदता इन उपद्रवोंको उत्पन्न करती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

अयोगकी चिकित्सा ।

तत्रोष्णायाःप्रमथ्यायाःपानंस्वेदाःपृथग्विधाः । फलवर्त्त्योऽथवा-
कालंज्ञात्वाशस्तंविरेचनम् ॥ ८ ॥ विल्वमूलत्रिवृद्दारुयवकोलकुल
त्थवान् ॥ सुरादिमूत्रवान्वस्तिःसप्राक्प्रेषितमानयेत् ॥ ९ ॥

ऐसा होनेसे गर्मगर्म प्रमथ्याओंको पीये तथा अनेक प्रकारके स्वेदन, फलवर्त्ती अथवा
काल ध्यादि विचारकर विरेचन करना हितकारक है ॥ ८ ॥ अथवा वेलकी जड,
निशोथ, देवदारु, यव, बेर और कुल्यीके कल्क और सुरा आदि द्रव्य तथा गोमूत्र
मिलाकर निरूहण वस्ति द्वारा पाहिले दीईई वस्तिकी निकालडाले ॥ ९ ॥

१ हरडके कषाथको गर्म गर्म पीये । कोई कहते हैं कि ८ तोअ चायणोंको कूटकर ६४
तोअ पानीमें पकाये १६ तोअ बाकी रहनेपर उताकर गर्म गर्म पान करे ।

अतियोगके लक्षण और यत्न ।

स्निग्धस्विन्नेऽतितीक्ष्णोष्णोमृदुकोष्ठेऽतियुज्यते ।

तस्यलिङ्गंचिकित्साञ्चशोधनाभ्यांसमाचरेत् ॥ १० ॥

अत्यन्त स्नेहन और स्वेदनके अनन्तर मृदुकोष्ठवाले मनुष्यको अति तीक्ष्ण वस्ति प्रयोग करनेसे अतियोग होता है । अतियोगके संपूर्ण लक्षण और चिकित्सा वमन विरेचनके अतियोगके समान जानना ॥ १० ॥

पृश्निपर्णीस्थिरापञ्चकाश्मर्यमधुकंवलाम् । पिष्ट्वाद्राक्षांमधुकञ्च
क्षीरेतण्डुलधावने ॥ ११ ॥ द्राक्षायाःपक्वलोष्टस्यप्रसादोमधुकस्य
च । विनीयसघृतं वस्तिदद्याद्वाहेऽतियोगजे ॥ १२ ॥

पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, पद्मकाष्ठ, कुंभेर, मुलहठी और बला इनमेंसे किसी एकका कल्क अथवा सबका मिलाहुआ कल्क वा द्रक्षा और महुएका कल्क करे फिर दूध मिले चावलके धोवनमें मुनक्का अथवा महुएका कल्क वा आगमें तपाईहुई मट्टीका ढेला बुझाकर रखदे । उसमेंसे स्वच्छ नितरेहुए धोवनमें उपरोक्त कल्क और घृत मिला वस्तिप्रयोग करे तो वस्तिके अतियोगसे उत्पन्नहुई दाह आदिक नष्ट होजाती है ॥ ११ ॥ १२ ॥

क्लमके लक्षण व चिकित्सा ।

आमदोपेनिरूहेणमृदुनादोपईरितः । रुणद्धिमार्गंवातस्यहन्त्यग्निं
मूर्च्छयत्यपि ॥ १३ ॥ क्लमंविदाहं हृच्छूलंमोहवेष्टनगौरवम् । कु-
र्यात्स्वेदैर्विरूक्षैस्तंपाचनैश्चाप्युपाचरेत् ॥ १४ ॥

आमदोपयुक्त मनुष्यको मृदु निरूहण देनेसे दोप उत्कलेशित होकर वायुके मार्गको रोकलेते हैं तथा अग्निको नष्ट वा मूर्च्छित करदेतेहैं उससे क्लान्ति, विदाह, हृदयमें पीडा, मोह वेष्टनकीसी पीडा और भारीपन यह लक्षण होते हैं । ऐसा होनेपर रूक्ष स्वेदन और पाचनद्रव्योंद्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

पिप्पलीकतृणोशीरदारुमूर्वाशृतंजलम् ।

पिवेत्सौवर्चलोन्मिश्रं दीपनंहृद्विशोधनम् ॥ १५ ॥

पीपल, रोहिपतृण, खस, देवदारु और मूर्वा इनके काथमें संचरनमक मिलाकर पीवे तो दीपन और हृदयकी शुद्धि होती है ॥ १५ ॥

वचानागरसर्जैलादधिमण्डेनमूर्च्छिताः। पेयाःप्रसन्नायावास्युरारिष्टे-
नासवेनवा ॥ १६ ॥ दारुत्रिकटुकंपथ्यांपलाशंचित्रकंशटीम् । पि-
द्वाकुष्ठश्चमूत्रेणपिवेत्क्षारांश्चदीपनान् ॥ १७ ॥

वच, सोंठ, सजीखार, और इलायचीके चूर्णको दहीके मण्डमें मिलाकर बनाई
हुई पेया अथवा इसी चूर्णको प्रसन्ना, अरिष्ट अथवा आसवमें मिलाकर पीवे तो
अग्निदीपन और हृदयकी शुद्धि होकर क्लम दूर होताहै । अथवा देवदारु, सोंठ,
मिर्च, पीपल, हरड, पलाशके बीज, चित्रक, कचूर और कूठ इनको गोमूत्रमें मिला
कर पीवे वा दीपन क्षारोंको पीवे तो क्लमके विकार दूर होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

वस्तिमस्यविदध्याच्चसमूत्रंदाशमूलिकम् ।

समूत्रमथवाव्यक्तलवणंमधुतैलिकम् ॥ १८ ॥

अथवा दशमूलके काथमें गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति करे । वा गोमूत्रमें अल्प
लवण मिलाकर शहद और तैलयुक्तकर वस्तिकरे तो वस्ति कर्मके मिथ्यायोग जनित
क्लम, व्यापत्ति दूर होतीहै ॥ १८ ॥

आध्मानके हेतु लक्षण चिकित्सा ।

अल्पवीर्योमहादोषेरुक्षेक्रुराशयेकृतः । वस्तिर्दोषावृतोरुद्धमार्गो
रुन्ध्यात्समीरणम् ॥ १९ ॥ सर्विमार्गोऽनिलःकुट्यर्थादाध्मानंमर्म-
पीडनम् । विदाहंगुरुकोष्ठस्यमुष्कत्रङ्गणवेदनाम् । रुणद्धिहृदयंशू-
लैरितश्चेतश्चधावति ॥ २० ॥

क्रूरकोष्ठवाले और बड़ेदुए दोषोयुक्त मनुष्यको अल्पवीर्य और रुक्षवस्तिका
प्रयोग करनेसे वस्तिके दोषसे आवृत हुआ वायु ऊपर और नीचेके सब स्रोतोंको
रोककर विमार्गगामी हो मर्मोंको पीडन करताहुआ अफारेको उत्पन्न करताहै । उससे
विदाह कोष्ठमें भारीपन, फोते आदिकोंमें और वक्षणमें पीडा, हृदयका उपरोध, यह लक्षण
होते हैं तथा यह रोगी शूलसे पीडित हुआ इधर उधर गमन करताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

फलश्यामादिभिःकुष्ठकृष्णालवणसर्पपैः । धूममापवचाकिण्वक्षा-
रचूर्णैर्गुडैःकृताम् ॥ २१ ॥ कराङ्गुष्ठनिभांवातियवमध्यानिधापयेत् ।
स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्यतैलाक्तांस्नेहितेगुदे ॥ २२ ॥ अथवालवणागा-
रधूमसिद्धार्थकैःकृताम् ॥ २३ ॥ विल्वादिनानिरूहःस्यात्पीलुसर्प-
पमूत्रवान् । सरलामरदारुभ्यांसिद्धश्चैवानुवासनम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार उपद्रवयुक्त अफारा होनेपर अपामार्गतण्डुलीयाध्यायमें कहेहुए मैनफल आदि गण और निशोथ आदि गणकी औषधियें कूठ, पीपल, सेंवानमक, सरसों, गृहधूम, उडद, वच, सुरावीज और जवाखार इन सबको बारीक पीस गुड मिला अंगूठेके समान मोटी बनि बनाने । और इस बर्तिकाके भीतर यवोंका चूर्ण भरे फिर इसको तैलमे भिगोकर स्निग्धकीहुई गुदामें प्रवेश करे अथवा लवण, गृहधूम और सफेद सरसोंसे पूर्वोक्त रीतिपर बनाई हुई बर्तिका विधिवत् प्रयोगकरे । वा विल्वादि पंचमूलके काथमें पीलू और सफेद सरसोंका कलक मिला गोमूत्र युक्तकर निरूहण वस्तिका प्रयोग करे ऐसा करनेसे वस्तिके मिथ्यायोगजनित आध्रान रोग दूर होताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

हिचकीव्यापलक्षण और चिकित्सा ।

मृदुकोष्ठेऽवलेत्रस्तिरतितीक्ष्णोऽतिनिर्हरन् । कुर्याद्विक्रादिकंतत्र
हिक्राध्वं वृंहणश्चयत् ॥ २५ ॥ बलास्थिरादिकाश्मर्यत्रिफलागुडसै-
न्धवैः । सप्रसन्नारगालाम्लैस्तैलंपक्वानुवासयेत् ॥ २६ ॥

मृदुकोष्ठवाले दुर्बल मनुष्यको अतितीक्ष्ण वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्ति उसके दोषोंको अत्यन्त हरण करके हिचकीको उत्पन्न करती है ऐसा होनेपर हिचकीनाशक और वृंहणचिकित्सा करना चाहिये । तथा बला, शालपर्ण्यादि पंचमूल, कुंभेर, त्रिफला, गुड, सेंधानमक इनका कलक और प्रसन्ना तथा कांजी मिलाकर सिद्ध किये तैलद्वारा अनुवासनवस्तिका प्रयोग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

कृष्णालवणयोरक्षंपिवेदुष्णाम्बुनायुतम् ।

धूमलेहरसक्षीरस्वेदाश्चान्नश्वातनुत् ॥ २७ ॥

अथवा पीपल और सेंवानमकका १ तोला चूर्ण गर्मजलके साथ पीवे तो हिचकी दूर होती है तथा इस हिचकीमें धूमपान, अवलेह, मातरस, दूध, स्वेदन और वातनाशक अन्नपान हितकारक होते है ॥ २७ ॥

हृद्वापतके लक्षण और यत्न ।

अतितीक्ष्णःसवातोवानवासम्यक्प्रपीडितः । घट्टयेद्धृदयं वस्तिस्त-
त्रकासक्ष्णोत्कटैः ॥ २८ ॥ स्यात्साम्ललवणस्कन्धकीरीरवदरीफ-
लैः । शृतैर्वास्तिर्हितःसिद्धंवातघ्नैश्चानुवासनम् ॥ २९ ॥

वस्तिके अतितीक्ष्ण होनेसे अथवा पवनयुक्त वस्तिके प्रयोग करनेसे वा एकवार वेगपूर्वक वस्तिको पीडन करनेसे वह वस्ति हृदयको घट्टन (धकधकी) करती है ।

ऐसा होनेपर कांस, कुशा और ईखकी जड़का क्वाथ और अम्लवर्ग, संधानमक, वांसके कोमल अंकुर और बेरके फलके कल्कसे तथा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध-किये तैलद्वारा अनुवासनवस्ति करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

ऊर्ध्वगमनव्यापत्ति ।

वातमूत्रपुरीषाणांदत्तवेगान्निगूहृतः । अतिवापीडितोवस्तिर्मुखेना-
यातिवेगवान् ॥ ३० ॥ मूर्च्छाविकारंतस्यादौटट्टाशीताम्बुनामुख-
म् । सिञ्चेत्पाश्वोदरश्चाधःप्रमृज्याद्बीजयेच्चतम् ॥ ३१ ॥

अधोवायु, मूत्र और मलके उपस्थित वेगमें वेगोंको रोककर वस्ति ग्रहणकरे अथवा अत्यंतवेगसे वस्तिको दबाया जाय तो वस्ति द्रव्यमुखकी ओर गमन करता-है उससे मूर्च्छा अथवा मूर्च्छाके समान अन्य विकार होने लगते हैं । ऐसा होनेपर शीतल जलसे मुखपर छीटे देना और उसके पसवाडों और उदरको हाथसे धीरे धीरे नीचेकी ओरको मसलताजाय और पंखेकी पवन करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

केशेष्वालम्ब्यन्नाकाशेधनुपात्रासयेच्चतम् । गोखराश्वगजैः सिंहै-
राजप्रेष्यैस्तथोरगैः ३२ ॥ उल्काभिरेवमन्यैश्चवस्तिमस्यन्यसेद-
धः । वस्त्रपाणिग्रहैःकण्ठोरुन्ध्यान्नम्रियतेयथा ॥ ३३ ॥ प्राणोदा-
ननिरोधाद्धिप्रसिद्धतरमार्गगः । अपानःपवनोवस्तितमाश्वेवाप-
र्षति ॥ ३४ ॥

तथा उसके केशोंको खींचकर मस्तककी ओर लावे जिससे उसको कष्ट प्रतीत हो वा उसको धनुषका भय दिखलावे । अथवा गौ, गधा, घोडा, हाथी, सिंह, राजाके चपरासी, सांप, उल्का और निच्छू आदिकोंसे डरावे । ऐसा करनेसे उस वस्तिका वेग नीचेकी ओर उतर जाताहै । अथवा जिस प्रकार रोगी मर न जावे । ऐसी रीतिसे वस्त्र अथवा हाथों द्वारा उसके कण्ठको दबावे । इस प्रकार गला घोटनेसे प्राण और उदान वायुका निरोध होकर अपानवायु रुककर अपने मार्गसे नीचेको गमन करती हुई वस्तिद्रव्यको भी नीचे ले जाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

ततःक्रमुककल्काक्षंपापयेताम्लसंयुतम् ।

औष्ण्यात्तैक्षण्यात्सरावाच्चवस्तिश्चास्यानुलोमयेत् ॥ ३५ ॥

इसके अनन्तर १ तोला सुपारीके कल्कको कांजीके साथ पिलावे । यह कांजीयुक्त कल्क, उष्णता, तीक्ष्णता और सरत्वगुणसे वस्तिको अनुलोमनकर नीचेकी ओर निकाल देताहै ॥ ३५ ॥

पक्वाशयस्थितेस्विन्नेनिरूहोदशमूलिकः । यवकोलकुलतथैश्ववि-
धेयोमूत्रसाधितः ॥ ३६ ॥ विल्वादिपञ्चमूलेनसिद्धोवस्तिरुरःस्थि-
ते । शिरःस्थेनावनंधूमःप्रच्छाद्यंसर्षपैःशिरः ॥ ३७ ॥

जब पक्वाशयमें वस्तिद्रव्य स्थित हो तो उसको निकालनेके लिये स्वेदन करके दशमूलका क्वाथ, यव, वेर और कुल्याका क्वाथ, गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्तिका प्रयोग करे । यदि वस्तिद्रव्य वक्षस्थलमें अटकाहुआ हो तो विल्वादि पंचमूलके क्वाथसे निरूहण करे । यदि वस्तिद्रव्य तालुस्थानमें पहुंचगया हो तो नस्य और धूमपानका प्रयोग तथा शिरके ऊपर सरसोंका लेप करना श्रेष्ठ होताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

प्रवाहिकाव्यापत्तिके लक्षण और चिकित्सा ।

त्रिग्धस्विन्नेमहादोषेवस्तिर्मृद्वल्पभेषजः । उक्लेश्याल्पहरेदोपंजन-
येच्चप्रवाहिकाम् ॥ ३८ ॥ सवस्तिःपायुशोफायजहोरुसदनायच ।
निरुद्धमारुतोजन्तुरभीक्षणंसंप्रवाहते ॥ ३९ ॥

महादोषवाले त्रिग्ध और स्वेदित रोगीको यदि मृदु और अल्पबल द्रव्यसे वस्तिप्रयोग कियाजाय तो वह वस्ति दोषोंको उत्केशित करके अल्पमात्र दोषोंको हरणकर प्रवाहिका (निवाही या पेचिश) को उत्पन्न करती है । उससे गुदामें सूजन, जंघा और ऊरुओंका सुन्नसा होना और वायुकी रुकावट होकर वह रोगी एकसाय बारबार थोड़े २ मलको तथा अल्प २ आंवदोषको पीडाके सहित प्रवाहण करता रहताहै । अर्थात् त्यागता रहताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

स्वेदाभ्यङ्गान्निरूहांश्वशोधनीयानुलोमिकान् । विदध्याल्लङ्घयित्वा
तुवृत्तिकुर्याद्विरिक्तवत् ॥ ४० ॥

ऐसा होनेपर रोगीको स्वेदन और अभ्यंग करके शोधनीय और अनुलोमनीय निरूहणवस्तिका प्रयोग करे । तथा रोगीको लंघन कराके दोष पाचन होनेके अनंतर विरिक्त मनुष्यके समान पेयादिक्रमका पालन करावे ॥ ४० ॥

शिरःशूलव्यापत्ति ।

दुर्वलेतीव्रदोषेचदुष्कोष्ठेचतनुर्मृदुः । शीतोऽल्पश्चावृतोदोषैर्वस्ति-
स्तद्विहतोऽनिलः ॥ ४१ ॥ मार्गैर्गात्राणिसन्धावनूर्द्धमूर्द्धन्युपाहि-
तम् । ग्रीवांसन्धेचष्टह्लातिशिरःकण्ठंभिनत्तिच । वाधिर्द्यकण्ठना-
दश्चपीनसंनेत्रविभ्रमम् ॥ ४२ ॥

दुर्बल, तीव्रदोषयुक्त नर्मकोठेवाले मनुष्यको पतला, मृदु, शीतल और अल्प निरूहणवस्तिके प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य दोषों द्वारा आवृत हो जाता है । उससे विहतहुआ वायु ऊपरके मार्गोंसे गमन करताहुआ ग्रीवा और मन्याको जकड देता है, तथा शिर और कण्ठमें भेदनकीसी पीडाको करता है और बहरापन, कर्णनाद, प्रतिश्याय तथा नेत्रोंका विभ्रम इन उपद्रवोंको करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

कुट्यादिभ्यञ्जनतैललवणेनयथाविधि । युञ्ज्यात्प्रधमनैर्नस्यै-
धूमैरास्यंविरेचयेत् । तीक्ष्णानुलोमिकेनाथस्त्रिंभुक्तेऽनुवास-
येत् ॥ ४३ ॥

ऐसा होनेपर तेल और सेंधेनमकसे विधिपूर्वक मालिश करे तथा प्रधमन, नस्य, धूमपान, शिरोविरेचन आदि प्रयोग करे तथा स्वेदित करके तीक्ष्ण निरूहणका प्रयोग करे । फिर भोजन करनेके अनन्तर अनुलोमन करता अनुवासनवस्तिका प्रयोग करे ॥ ४३ ॥

अंगशूलव्यापत्ति ।

सुस्विन्नस्निग्धदेहस्ययस्यवस्तिर्विधीयते । अतितीक्ष्णोर्गुरुश्चैवसो-
ऽतिमात्रं प्रवर्त्तयेत् ॥ ४४ ॥ स्रुतेपुतस्यदोषेषुनिरूढस्यातिमा-
त्रशः । स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यवायुःसंप्रतिहन्यते ॥ ४५ ॥ विलो-
मेनसमुद्भूतोरुजत्वङ्गानिदेहिनः । गात्रवेष्टननिस्तोदभेदस्फुरणजृ-
म्भणैः ॥ ४६ ॥ तैललवणाभ्यक्तंसेचयेदुष्णवारिणा । एरण्डप-
त्रनिष्कार्थैःप्रस्तरैश्चोपपादयेत् ॥ ४७ ॥

रोगीको उचित रीतिपर स्निग्ध और स्वेदन करके अधिकमात्रासे अतितीक्ष्ण वस्ति प्रयोग करनेसे वह अधिकमात्रासे प्रवृत्त होती है अर्थात् अत्यंत वेगपूर्वक दोष अधिक मात्रा शीघ्र निकलजाते हैं । फिर संपूर्ण दोषोंके अतिमात्रा निकलजानेसे वायु प्रतिहत होकर उस रोगीके कोठेमें उदावर्त्त और स्तम्भको उत्पन्न करता है । वह ऊपरको गमन करताहुआ वायु स्रोतोंको रोककर अंगोंमें प्राप्त हो अंगशूल, वेष्टन,

१ स्नेहस्वेदैरनापाद्यगुरुतीक्ष्णातिमात्रया । यस्यवस्तिःप्रयुज्येतनातिमात्रंप्रयुज्यते । स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यरुद्धःस्रोतः सुमारुतः । प्रपन्नोऽङ्गुरुजकुर्व्यास्तैललवणान्वितम् ॥ १ ॥ उष्णाम्बुप्रस्तरकार्थैस्वेदैस्तमुपादयेत् । सत्रिल्वतैललवणानिरूहस्तस्यशस्यते । तैलवगाहरिवनस्यकारयेदनुनासनम् ॥ २ ॥ प्रयुज्यविधिनासम्पक्त्स्निग्धंकायततःपूरम् । विरेचनैर्निरूहैश्चवस्तिभिश्चानुलोमिकैः ॥ ३ ॥ एतच्छ्लोकचतुष्टयकार्त्स्न्याश्चिपुस्तकेधिकमुपलभ्यतेपरन्वभिर्मपयचतुष्टयेनगतार्थैस्वानमूलेनिवेशितम् ॥ ४ ॥

तोद, भेद, स्फुरण और जृम्भणको उत्पन्न करता है। ऐसा होनेपर लवणयुक्त तैलसे मालिशकर गर्मजलका सेककरे अथवा एरण्डके पत्रोंके कायसे प्रस्तरस्वेद करे वा अन्य कायोंसे नाडीस्वेद आदि स्वेदोंद्वारा शूलकी शान्ति करे ॥ ४४-४७ ॥

यवान्कलत्थान्कोलानिपञ्चमूलेतथोभये । जलाढकद्वयेपक्कापाद-
शेषेणतेनच । कुर्यात्सविल्वतैलोष्णलवणेननिरूहणम् ॥ ४८ ॥

यव, कुल्थी, बेर और दशमूलके दश द्रव्योंको एकसेर लेकर ८ सेर जलमें पकावे । २ सेर रहनेपर उतारकर छानले । फिर इसमें विन्वतैल और लवण मिलाकर सुखोष्ण रहते हुए निरूहणका प्रयोग करे । तथा तैलकी द्रोणीमें बिठाकर फिर स्वेदन करे । तदनन्तर अल्प भोजन कराके मुलैठी और विल्वतैलसे अनुवासनका प्रयोग करे ॥ ४८ ॥

निरूहणेसमाश्वस्तद्रोण्यांसमवगाहयेत् । ततोभुक्तवतस्तस्यका-
रयेदनुवासनम् ॥ यष्टीमधुकतैलेनविल्वतैलेनवाभिपक् ॥ ४९ ॥

फिर विधिवत् हित भोजनका पालन कराके यथासमय स्नेहन स्वेदन, करावे । और फिर स्निग्ध विरेचन निरूहण और अनुलोमन कर्त्ता अनुवासन वस्तिक प्रयोग करावे ॥ ४९ ॥

परिकर्त्तिका व्यापत्ति ।

मृदुकोष्ठाल्पदोषस्यरूक्षतीक्ष्णोऽतिमात्रवान् । वस्तिदोषान्निरस्या-
शुजनयेत्परिकर्त्तिकाम् ॥ ५० ॥ त्रिकवक्ष्णवस्तीनांतोदनाभेरधो
रुजम् । विवन्धाल्पाल्पमुत्थानंगुदनिर्लेखनंभवेत् ॥ ५१ ॥

मृदुकोष्ठ और अल्पदोषवालेको रूक्ष, तीक्ष्ण और अधिक मात्रासे वस्तिप्रयोग किया जाय तो वह वस्ति दोषोंको निकालकर परिकर्त्तिका अर्थात् कतरनेकीसी पीडा उत्पन्न कर देती है तथा त्रिक वक्ष्ण और वस्तिस्थानमें सूई चुभने कीसी पीडा, नाभिके नीचे शूल, विवन्ध और अल्प २ मल निकले गुदामें विदारणकीसी पीडा हो (अत्यंत कतरनेकीसी पीडायुक्त प्रवाहिकाके समानही परिकर्त्तिका होती है) ॥ ५० ॥

स्वादुशीतौषधैस्तत्रपयइक्ष्वादिभिःशृतम् ।

यष्ट्याहृतिलकल्काभ्यांवस्तिःस्यात्क्षीरभोजिनः ॥ ५२ ॥

परिकर्त्तिका व्यापत्तिमें मधुरगण और शीतल औषधियोंसे अथवा ईखके रस आदिसे सिद्धि किये दूधमें मुलैठी और तिलकल्क मिला वस्तिकर्म करे और भोजनके लिये रोगीको केवल दूधही देवे ॥ ५३ ॥

ससर्जरसयष्ट्याह्वजिङ्घिनीकर्दमाञ्जनम् ।

विनीयदुग्धेवस्तिःस्यात्तित्ताम्लमृदुभोजिनः ॥ ५३ ॥

यदि वायुका भी संसर्ग हो और रक्तभी आनेलगे तो राल मुलैठी जीगनका छिलका चिकने तालावकी पपडी , और रसांत इनसे पकायेहुए दूधकी वस्ति करना हितकारक है । तथा ऐसे समय तित्त और अम्लरसके साथ चावलका नर्मसा भोजन करावे ॥ ५३ ॥

परिस्त्राव व्यापत्ति ।

पित्तरक्तेऽम्लउष्णोवातीक्ष्णोवालवणोऽथवा ॥ वस्तिर्लिखातिपायु-
न्तुतीक्ष्णोऽतिविदहत्यपि ॥ ५४ ॥ सविदग्धःस्त्रवत्यस्त्रपितश्चाने-
कवर्णवत् । साय्यतेवहुवेगेनमोहंगच्छतिचासकृत् ॥ ५५ ॥

यदि मनुष्यको रक्तपित्त वा रक्तकी बवासरिमं अम्ल, उष्ण, तीक्ष्ण और लवणयुक्त वस्तिका प्रयोग करे तो वह वस्ति गुदाको विदीर्ण कर तीक्ष्ण होनेसे विदाहको उत्पन्न करती है । और विदग्ध होनेसे अनेक वर्णके पित्तके स्रावको उत्पन्न करती है उस स्रावके अति वेगसे रोगीको एकाएकी बेहोशी होनेलगतीहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

आर्द्रशाल्मलिघृन्तैस्तुक्षुण्णैराजंपयःशृतम् । सर्पिपायोजितंशीतं-
वस्तिमस्मैप्रदापयेत् ॥ ५६ ॥ वटादिपल्लवेष्वेपकल्पोयवतिलेषुच ।

सुवर्चलोपोदिकयोःकर्जुदारेचशस्यते ॥ ५७ ॥ गुदेसेकाःप्रदेहाश्च
शीताःस्युर्मधुराश्चये । रक्तपित्तातिसारधीक्रियाचात्रप्रशस्यते ॥ ५८ ॥

इत रोगमें सेंवलके गीले घृन्तोंको कूटकर उनसे बकरीके दूधको सिद्ध करे उस दूधको घीमें मिलाकर शीतलही वस्तिका प्रयोग करे अथवा वटादि क्षीरी घृत्तोंके कोमलपत्र, यव, तिल, हुलहुल, पोईके पत्र, लालकचनार इनके फायसे और कल्कसे गुदापर सेचन और लेपन करे । अथवा इनसे सिद्ध किये दूधमें घृत मिलाकर उससे शीतलही वस्तिका प्रयोग करे तथा अन्य शीतल और मधुर द्रव्योंसे गुदापर सेचन और लेपन करे । तथा रक्तपित्तातिसारनाशक क्रिया करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अध्यायका उपसंहार । -

तत्रश्लोकाः ।

इत्येताव्यापदःप्रोक्तावस्तेःसाकृतिभेषजाः ।

बुद्धाकास्त्वेनतान्वस्तीन्नियुञ्जन्नापराध्यति ॥ ५८ ॥

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक हैं कि इस वास्तिव्यापत्तिस्त्रिनामक अध्यायमें वास्तिके मिथ्यायोगसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके लक्षण और औषधि क्रम कथन कर दिया है इसको संपूर्ण रूपसे समझकर वास्तिके प्रयोग करनेवाला वैद्य अपराधका भागी नहीं होता ॥ ५९ ॥

तीक्ष्णत्वमूत्रविल्वादिलवणक्षारसर्वपैः ।

प्राप्तकालंविधातव्यंक्षीराद्यैर्मादिवंतथा ॥ ६० ॥

समय आदि विचारकर वास्तिको तीक्ष्ण अथवा मृदु किया जा सकता है । यदि वास्तिको तीक्ष्ण करना हो तो उक्षमें गोमूत्र, विल्वफल, मैनफल आदि, लवण, क्षार और सरसोंका कल्क मिलाना चाहिये और यदि वास्तिको मृदु करना हो तो उसमें दूध, घृत आदि मधुर द्रव्योंका प्रयोग करे ॥ ६० ॥

आपादतलमूर्च्छस्थान्दोषान्पक्काशयेस्थितः ।

वीर्येणवस्तिरादत्तेखस्थोऽर्कोभूरसानिव ॥ ६१ ॥

जैसे आकाशमें स्थितहुआ सूर्य पृथ्वीके संपूर्ण रसोंको आकर्षण कर देता है उसी प्रकार विधिवत् वास्तिका प्रयोग करनेसे पक्काशयमें स्थितहुई वास्त भी पाँवोंसे शिरतकके दोषोंको आकर्षण करलेती है ॥ ६१ ॥

यद्वत्कुसुम्भसंमिश्रात्तोयाद्रागंहरेत्पटः ।

तद्वद्द्वीकृतात्कायान्निरूहोनिर्हरेन्मलान् ॥ ६२ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थाने वास्तिव्यापत्तिस्त्रिनाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥

जैसे जलमें मिलेहुए कसुम्बेके फूत्रोंके रंगको स्वच्छ वस्त्र अपनेमें खेंच लेता है उसी प्रकार संपूर्ण शरीरमें मिलेहुए दोषोंको वास्तभी द्रवीभूत करके आकर्षण करलेती है ॥ ६२ ॥

इति श्री० च० प्र० आ० स० सिद्धिस्थाने प्र० भा० टी० वास्तिव्यापत्तिस्त्रिनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

आथातः प्रासृतयोगिकासिद्धिव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवान्नात्रेयः ।

अब हम प्रासृतयोगिका सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

अथेमान्सुकुमाराणांनिरूहान्स्नेहनान्मृदून् ।

कर्मणाविष्णुतानाञ्चवक्ष्यामिप्रसृतैःपृथक् ॥ १ ॥

अब सुकुमार और अधिक कामकाजसे थके हुए मनुष्योंके लिये मृदु निरूहण और स्नेह प्रयोगोंका प्रसूत (२ पल) आदि प्रमाणसे पृथक् २ मृदुवास्तियोंका कथन करतेहैं ॥ १ ॥

पंचप्रासृतिकवस्ति ।

क्षीराद्वौप्रसृतौकाय्यौमधुतैलघृतात्रयः ।

खजेनमथितोवस्तिर्वातघ्नोवलवर्णकृत् ॥ २ ॥

दूध २ प्रसूत (४ पल) शहद, तेल और घी यह तीनों एक एक प्रसूत (दो दो पल) इन सबको मथानीसे मथकर वस्तिप्रयोग करे यह वस्ति वातनाशक और बल, वर्णको बढानेवाली है ॥ २ ॥

अष्टप्रासृतिकवस्ति ।

एकैकःप्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषः ।

विल्वादिमूलकवाथाद्वौकौलत्थाद्वौसवातनुत् ॥ ३ ॥

तेल प्रसन्ना शहद और घृत यह एक एक प्रसूत विल्वादि पंचमूलका क्वाथ २ प्रसूत और कुल्यीका काथ २ प्रसूत इनको मथानीसे मथकर वस्ति प्रयोग करे । यह वस्ति वायुको नष्ट करनेवाली है ॥ ३ ॥

नवप्रासृतिकवस्ति ।

पञ्चमूलरसात्पञ्चद्वौतैलात्क्षौद्रसर्पिषोः ।

एकैकःप्रसृतोवस्तिःस्नेहनीयोऽनिलापहः ॥ ४ ॥

विल्वादि पंचमूलका काथ ५ प्रसूत, तेल २ प्रसूत, शहद १ प्रसूत, घृत एक प्रसूत इन सबको मिलाकर वस्तिकर्म करे यह वस्ति स्नेहन और वायुको नष्ट करनेवाली है ॥ ४ ॥

शुक्रवर्द्धकवस्ति ।

सैन्धवाद्धाक्षएकैकःक्षौद्रतैलपयोघृतात् ।

प्रसृतौहर्षुपाख्याञ्चनिरूहःशुक्रकृत्परः ॥ ५ ॥

सैन्धानमक ६ मासे और शहद, तेल, दूध, घृत, यह सब एक एक प्रसूत, नेत्रवाला का काथ १ प्रसूत इन सबको मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे वीर्यकी अत्यंत वृद्धि होतीहै ॥ ५ ॥

पंचतित्तकवस्ति ।

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भसः । चत्वारःप्रसृताएको
घृतात्सर्षपकल्कतः ॥ निरूहःपञ्चतित्तोऽयंमोहाभिष्यन्दकुष्ठनुत् ॥ ६ ॥

पटोलपत्र, नीमकी छाल, चिरायता, रास्ना और सप्तपर्णकी छाल इन सबका काथ ४ प्रसृत, घृत १ प्रसृत, सरसोंका कल्क १ तोला इन सबको मिलाकर वस्ति-
कर्म करे तो यह वस्ति, मोह, अभिष्यंद और कुष्ठको नष्ट करती है ॥ ६ ॥

कृमिनाशकवस्ति ।

विडङ्गत्रिफलाशिशूफलमुस्ताखुपर्णिकात् ॥ ७ ॥ कवायात्प्रसृताः
पञ्चतैलादेकोविमथ्यतान् । विडङ्गपिप्पलीकल्कान्निरूहःकृमिना-
शनः ॥ ८ ॥

वायविडंग, त्रिफला, साहजनेके बीज, नागरमोथे और दन्ती इन सबका काथ ५
प्रसृति, तेल १ प्रसृति, वायविडंग और पीपलका कल्क २ तोला इन सबको
मिलाकर निरूहणवस्ति करे तो इससे मलाशयमें होनेवाले सब प्रकारके कृमि दूर
होते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

वृष्यवस्ति ।

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिवः ।

एकैकःप्रसृतोवस्तिःकृष्णाकल्कोवृष्यत्वकृत् ॥ ९ ॥

क्षीरकाकोली, शालपर्णी और रास्नाका काथ, ईखका रस, विदारीकंदका रस,
शहद और घृत यह सब एक एक प्रसृति तथा पीपलका कल्क मिला सबको मथन
करे । इस वस्तिके प्रयोग करनेसे वृष्यता (वीर्यकी वृद्धि) होती है ॥ ९ ॥

अन्य अनेकरोगोंमें वस्तियोग ।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाञ्जिकात् ।

प्रसताःसर्षपैःपिष्टैर्विदूसङ्गानाहभेदनः ॥ १० ॥

तेल, गोमूत्र, दधिमण्ड और खट्टी कांजी यह सब ४ प्रसृति, इसमें सरसोंका
कल्क मिलाकर वस्तिकर्म करे तो यह वस्ति अफारा और मलके विबन्धको भेदन-
कर दूर करदेती है ॥ १० ॥

श्वदंष्ट्राश्वभिदेरण्डरसात्तैलात्सुरासवात् । प्रसृताःपञ्चयष्ट्याह्वा-
त्कौन्तीमागधिकासिता ॥ कल्कोवस्तिस्तुसानाहिसूत्रकृच्छ्रेपरोम-
तः ॥ ११ ॥

गोखरू, पाप्पणभेद, एरण्डकी जड इन सबका काथ ३ प्रसृति, तेल १ प्रसृति, मद्य १ प्रसृति और इसमें रेणुका, पीपल, तथा मिसरीका २॥ तोला कल्क मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति अफारा और मूत्रकृच्छ्रको दूर करतीहै ॥ ११ ॥

एतेसलवणाःकोष्णानिरूहाःप्रसृतानव ॥ १२ ॥

यह जो ऊपर ९ प्रकारके वस्तियोग कहेहैं इनमें संधानमक मिलाकर और इनको किंचित् गर्म करके प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

वस्तिविषयक अन्य विवेचना ।

• मृदुवस्तीजडीभूतेतीक्ष्णोऽन्योवस्तिरिष्यते ।

• तीक्ष्णैर्विकर्षितैःस्वादुप्रत्यास्थापनमिष्यते ॥ १३ ॥

यदि मृदुवस्ति रुकजाय तो तीक्ष्णवस्तिका प्रयोग करना चाहिये और यदि तीक्ष्णवस्तिसे रोगी विशेष कर्षित होजाय अर्थात् तीक्ष्णवस्तिके अतियोगसे व्याकुल रोगी होजाय तो उसको मृदु और आस्थापनवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

वातोपसृष्टस्योष्णैःस्युर्गुददाहादयोयदि । द्राक्षाभ्रुनात्रिवृत्कल्कं-
दद्याद्वापोपानुलोमनम् । तद्धिपित्तशकृद्रातान्हृत्वादाहादिकाजये-
त् ॥ १४ ॥

वातपीडित मनुष्यको उष्णवस्तिका प्रयोग करनेसे यदि उसकी गुदामें दाह आदिक उपद्रव होजाय तो उसको द्राक्षाके रसके साथ निशोथका कल्क पिलावे । उसके पीनेसे दोषका अनुलोमन होताहै । और यह पित्त और मलको निकालकर दाहादिकोंकी शांति करताहै ॥ १४ ॥

शुद्धश्चापिपिवेच्छीतांयवागूंशर्करायुताम् ॥ १५ ॥

शुद्ध होनेके अनन्तर मिसरी मिलाकर शीतल यवागूकी पीवे ॥ १५ ॥

अथवातिविरिक्तःस्यात्क्षीणविट्कःसभक्षयेत् ।

मापयूपेणकुलमापान्पिवेद्ध्यथवासुराम् ॥ १६ ॥

अत्यंत विरेचन होनेसे जिस मनुष्यका मल क्षीण होगयाहो उसको उडदोंके यूपके साथ भोजन करावे तथा कुलमाप (उवालाहुआ गेहूँ) अथवा दही या सुराका सेवन करावे ॥ १६ ॥

सामंचेदतिसार्येतशूलारोचकवान्नरः ।

सतदाहपुपाकुष्ठनतरुवचाःपिवेत् ॥ १७ ॥

वस्तिकर्मके अनन्तर मनुष्यको शूल, अरुचि और आमोतिसार होजाय तो उसको, हाउवेर कूठ, तगर, देवदारु और वचका चूर्ण पिलावे ॥ १७ ॥

६ मलोंके अतिसार ।

शकृद्वातमसृक्पित्तकफवायोऽतिसार्यते ।

पक्वस्तत्रस्ववर्गीयैर्वस्तिःश्रेष्ठंभिपग्जितम् ॥ १८ ॥

मल, अधो वायु, रक्तापित्त वा कफका अतिसार हो तो उसके पक्व होनेपर रोगीको उस रोगकी ही औषधियोंद्वारा शान्न करना चाहिये । तथा उस रोगके नाश करनेवाले द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना भी श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

इन ६ के ३० भेद ।

पण्णामेपांद्विसंसर्गात्रिंशद्भेदाभवन्तिते । केवलैःसहचेत्त्रिंशद्वि-
ध्यात्सोपद्रवानपि ॥ १९ ॥ शूलप्रवाहिकाध्मानपरिकर्त्तारुचिज्व-
रान् । सत्पण्णादाहमूर्च्छान्तांश्रैपांविद्यादुपद्रवान् ॥ २० ॥

आर्मा, विष्ठा, वायु, रक्त पित्त और कफ इन छः प्रकारके मलोंके दो दो भेदोंकी मिलावट करनेसे ३० प्रकारके भेद होजाते हैं । जैसे आमविष्ठा, आमवायु, आम-रक्त, आमपित्त, आमकफ, विष्ठावायु, विष्ठारक्त, विष्ठापित्त, विष्ठाकफ, वायुरक्त, वायुपित्त, वायुकफ, रक्तापित्त, रक्तकफ और पित्तकफ । यह १५ औ ६ प्रकारके उप-रोक्त मल मिलानेसे इकीस भेद हुए । इन इकीसोंमें नीचे लिखे ९ उपद्रव मिश्रवे जैसे शूल, प्रवाहिका, अफारा, परिकर्त्तिका, अरुचि, ज्वर, प्यास, दाह और मूर्च्छा यह ९ उप-द्रव अतिसारके होतेहैं इनके मिला देनेसे ३० भेद होजाते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

इनकी चिकित्सा ।

तत्रामेवमनंकार्यव्योपाम्ललवणैर्युतम् ।

पाचनंशस्यतेवस्तिरामेहिप्रतिपिध्यते ॥ २१ ॥

आमातिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण और कांजी नमकके साथ पिलाकर वमन करान हितकारक है । और इन्हीं द्रव्योंसे पाचनवस्ति देनेसे भी आमातिसार नष्ट होताहै ॥ २१ ॥

वातघ्नग्राहिवर्गीयैर्वस्तिःशकृतिशस्यते ।

स्वाद्वम्ललवणैःशस्तःस्नेहवस्तिःसमीरणे ॥ २२ ॥

मलातिसारमें वातनाशक, तथा संग्राही द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है । वातातिसारमें मधुर, अम्ल और लवण द्रव्योंसे स्नेहयुक्त वस्तिकर्म करना हित-कारक है ॥ २२ ॥

रक्तेरक्तेनपित्तन्तुकपायस्वादुतिक्तकैः ।

सार्यमाणेकफेवस्तिःकपायकटुतिक्तकैः ॥ २३ ॥

रक्तातिसारमें वकरके रक्तसे वा लालचन्दनसे अथवा रक्तातिसारनाशक द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये । पित्तातिसारमें मधुर, तिक्त और कसैले, द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये । कफातिसारमें कसैले, चरपरे और कडुवे द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है ॥ २३ ॥

शकृतावायुनाचामेतेनवर्चस्यथानिले ।

संसृष्टेऽन्तरपानंस्याद्दोषाम्ललवणैर्युतम् ॥ २४ ॥

आमविष्टाके अतिसारमें अथवा आम और वायुसे मिलेहुए अतिसारमें वा आम, विष्टा और वायु इन तीनोंके संघातयुक्त अतिसारमें वस्तिके अनन्तर कांजी और सेंधेनमकके साथ त्रिकुटेका चूर्ण पिलाना चाहिये ॥ २४ ॥

पित्तेनामेऽसृजावापितयोरामेनवापुनः ।

संसृष्टयोर्भवेत्पानंसव्योपकटुतिक्तकम् ॥ २५ ॥

पित्त और आमके अतिसारमें अथवा आम और रक्तके अतिसारमें वा पित्त, रक्त और आम इन तीनोंके संघातयुक्त अतिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण, स्वादु और तिक्त द्रव्योंके साथ पिलाना चाहिये ॥ २५ ॥

तथामेकफसंसृष्टेकपायव्योपतिक्तकम् ।

आमेतनुकफेव्योपकपायलवणैर्युतम् ॥ २६ ॥

आम और कफके अतिसारमें त्रिकुटेके चूर्णको कसैले और कडुवे द्रव्योंसे पीना चाहिये । यदि आमके साथ कफका अल्पभाग हो तो त्रिकुटेके चूर्णको कसैले और नमकीन काथके साथ पीवे ॥ २६ ॥

वातेनविपिपित्तेवाविट्पित्तेचतथानिले ।

मधुराम्लकपायःस्यात्संसृष्टेवस्तिरुत्तमः ॥ २७ ॥

वात और विष्टाके अतिसारमें अथवा वात, विष्टा और पित्त इन तीनोंके मिलेहुए अतिसारमें मधुर, अम्ल और कसैले द्रव्योंका पाचन देना हितकारक है । अथवा इन्ही द्रव्योंसे सान्निपातिक अतिसारमें वस्ति करना ही श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

शकृच्छोणितयोःपित्तशकृतोरक्तपित्तयोः ।

वस्तिरन्योन्यसंसर्गेकपायस्वादुतिक्तकैः ॥ २८ ॥

रक्त और विष्टाके अतिसारमें अथवा पित्त और विष्टाके अतिसारमें वा रक्त और पित्तके अतिसारमें कसैले, मधुर और तिक्तद्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हित कारक है ॥ २८ ॥

कफेनविषिपित्तेवाकफेवित्पित्तशोणितैः ।

व्योपत्तिककपायःस्यात्संसृष्टेवस्तिरुत्तमः ॥ २९ ॥

कफ और विषाके संसर्गमें अथवा कफ और पित्तके अतिसारमें वा विषा और पित्तके अतिसारमें अथवा कफ, विषा, पित्त और रक्तके सांघातिक अतिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण, कसैले और तिक्त द्रव्योंके साथ सेवन कराना हितकारक है। तथा इन्ही द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना भी श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

स्याद्वस्तिव्योपत्तिकाम्लःसंसृष्टेवायुनाकफे ।

मधुरव्योपत्तिकस्तुरक्तेकफविमिश्रिते ॥ ३० ॥

अल्पवायुयुक्त कफके अतिसारमें त्रिकुटेका कल्क, कडुवे और खट्टे रसोंमें मिलाकर वस्तिकर्म करे। रक्त और कफसे मिश्रित अतिसारमें त्रिकुटेके कल्कको मधुर और तिक्तद्रव्योंके साथमें मिलाकर वस्तिकर्म करे ॥ ३० ॥

मारुतेकफसंसृष्टेव्योपाम्ललवणोभवेत् ।

वस्तिर्वातेनरक्तेतुकार्यःश्वाद्म्लत्तिककः ॥ ३१ ॥

अल्पकफयुक्त वायुके अतिसारमें त्रिकुटेका कल्क नमकयुक्त खट्टे रसोंमें मिलाकर वस्तिकर्म करे। वायु और रक्त मिले अतिसारमें मधुर, अम्ल और तिक्त द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ३१ ॥

त्रिचतुःपञ्चपड्योगानेवमेवविकल्पयेत् ।

युक्तिश्चैपातिसारोक्तासर्वरोगेष्वपिस्मृता ॥ ३२ ॥

इस प्रकार आम, विषा, वात, पित्त, रुधिर और कफ इन छः प्रकारके मलोंके तीन, चार, पांच अथवा छः योगोंकी कल्पना करे। जैसे इन छः मलोंके आपसमें तीनोंके मिलान कियेजानेसे यह दश प्रकारके होजातेहैं। जैसे १ आम, विषा, वात। २ आम, विषा, पित्त। ३ आम, विषा, रक्त। ४ आम, विषा, कफ। ५ विषा, वात, रक्त। ६ विषा, वात, पित्त। ७ विषा, वात, कफ। ८ वात, रक्त-पित्त। ९ वात, रुधिर, कफ। १० रुधिर, पित्त, कफ। और इसी प्रकार चारोंके संसर्गसे कल्पना करे तो ६ भेद होतेहैं। तथा पांचोंके संसर्गसे कल्पना कीजाय तो तीन भेद होतेहैं। छः का संसर्ग करनेसे एक भेद होताहै। इन सबको मिलानेसे बीस भेद होतेहैं। यह अतिसारमें कहीहुई कल्पनायुक्ति अन्य ज्वरादि संपूर्ण रोगोंमें भी कल्पना करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

युगपत्पडूसंपण्णांसंसर्गेपाचनंभवेत् ।

निरामाणाञ्चपञ्चानांवस्तिःपाडूरसिकोमतः ॥ ३३ ॥

इन छः मलोंके संसर्गमें मधुर, अम्ल, लवण, कषाय, तिक्त और कटु इन छः रसोंको एक साथ प्रयोग किये जानेसे इन छःओंका पाचन होताहै और इनमें आमके सिवाय और पांच प्रकारके मलोंमें छः रसोंकी वस्ति कल्पना कर प्रयोग करना हितकारक है । परन्तु आममें तो पाचन देना ही हितकारक है ॥ ३३ ॥

उपरोक्त अतिसारनाशक घृत ।

उदुम्बरशलाट्टनिजम्बुवाम्रोदुम्बरत्वचः । शंखंसर्जरसंप्लाक्षीकंद-
मञ्चपलांशिकम् ॥ ३४ ॥ पिष्ट्वातैःसर्पिषःप्रस्यंधीरद्विगुणितंप-
चेत् । अतीसारेपुसर्वेषुपेयमेतद्यथावलम् ॥ ३५ ॥

गूलरके कच्चे फल और जामुनकी छाल, आमकी छाल, गूलरकी छाल, शंखका चूर्ण, राल, लाख और जलस्थानका कीच इन सबको एक एक पल लेंवे । इन सबका कल्क बनाकर १ प्रस्थ वी और दो प्रस्थ दूध इन सबको मिलाकर पकावे । यह घृत उपरोक्त सब प्रकारके अतिसारोंमें बलानुसार पिलाना अतिहितकारी है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

यवागू ।

केच्छूराधातकीविल्वसमङ्गारक्तशालिभिः ।

मसूराश्वत्थशुङ्गैश्चयवागूःस्याज्जलोश्रितैः ॥ ३६ ॥

कोंचके बीज, धावेके फूल, वेलकी गिरि, वाराहक्रान्ता, लाल चावल, मसूर, पीपलके शुंग (कलिये या अंकुर) इन सबके काथमें सिद्ध कीहुई यवागू उपरोक्त अतिसारोंमें हितकारक है ॥ ३६ ॥

वालोदुम्बरकट्वङ्गसमङ्गाप्लक्षपल्लवैः ।

मसूरधातकीपुष्पवलाभिश्चतथाभवेत् ॥ ३७ ॥

सुगंधवाला, गूलरके कच्चे फल, सोनापाठा, वाराहीकंद, पिलखनके पत्र, मसूर, धावेके फूल और खैरटी इन सबके काथमें सिद्ध कीहुई यवागू भी उपरोक्त संपूर्ण अतिसारोंको दूर करतीहै ॥ ३७ ॥

स्थिरादीनां वलादीनामिक्ष्वादीनामथापिवा ।

क्वाथेषुसमसूराणांयवाग्वःस्युःपृथक्पृथक् ॥ ३८ ॥

शालपर्णादिपंचमूल अथवा बला आदि वातनाशक गण वां ईख आदि तण अथवा मसूरके काथमें पृथक् २ यवागुओंको सिद्धकर पिलानेसे भी उपरोक्त अतिसार दूर होता है ॥ ३८ ॥

कच्छुरामूलशाल्यादितण्डुलैर्वापिसाधिताः । दधितर्करनालाम्ल-
क्षारेण्विक्षुरसेऽपिवा ॥ ३९ ॥ शीताःसशर्कराःक्षौद्राःसर्वातीसार-
नाशनाः । ससर्पिर्मरिचाजामीमधुरालवणाःशिवाः ॥ ४० ॥

कौंचकी जड़ और कौंचके बीजोंके काथमें शालि आदि चावलोंकी यवागु सिद्धकर अथवा दही, तरु, कांजी, जवाखार और ईखका रस इनमेंसे किरी एकके साथ सिद्ध कीहुई यवागुको शीतलकर मिसरी और शहद मिलाकर पीवे तो सब प्रकारके अतिसार दूर होते हैं । इन उपरोक्त यवागुओंमें दोपानुसार घृत, मिर्च, जीरा, शहद और लवण इनमेंसे जो जिस दोपानुसार हितकारी हो सो मिलाना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

वातादिभेदसे रसमें कल्पना ।

भवन्ति चात्र ।

स्निग्धाम्ललवणमधुरंपानं वस्तिश्चमारुतेकोष्णः ।

शीतंतिक्तकपायंमधुरंपित्तेचरक्तेच ॥ ४१ ॥

यहांपर कहते हैं कि वायुमें स्निग्ध, अम्ल, लवण और मधुर औषधको किंचित गर्म करके पीना या वस्तिकर्म करना हितकारक है । पित्तमें और रक्तमें शीतल, तिक्त, कपाय और मधुर द्रव्यको शीतलही पीना और शीतलही वस्तिमें प्रयोग करना हितकारक है ॥ ४१ ॥

तिक्तोष्णकपायकटुश्लेष्मणिसंग्राहिवातनुच्छकृति ।

पाचनमाग्नेपानंपिच्छासृग्वस्तयोरक्ते ॥ ४२ ॥

कफमें तिक्त, उष्ण, कपाय और कटुद्रव्योका प्रयोग करना हितकारी है । मलके भेदन होनेसे संग्राही और वातनाशक द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये । आमदोषमें पाचन द्रव्यका सेवन करना चाहिये । रक्तमें पिच्छावस्ति और रक्तवस्ति करना हितकारक है ॥ ४२ ॥

अतिसारंप्रत्युक्तंभिश्चंद्रन्द्वामयोगजेष्वपिच ।

तत्रोद्रेकविशेषाद्दोषेषूपक्रमःकार्यः ॥ ४३ ॥

इसप्रकार सन्निपातज, द्वंद्वज और आमज अतिसारोंका कथन किया गयाहै। इनमें दोषोंकी न्यूनाधिकता विचारकर दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये ॥४३॥

अध्यायका उपसंहार ।

प्रासृतिकासव्यापत्क्रियानिरूहास्तथातिसारहिताः । रसकल्पघृत-
यवाग्वश्चोक्तागुरुणाप्रसृतसिद्धौ ॥ ४४ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेप्रासृतयोगिकासिद्धिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस प्रासृतयोगिकासिद्धिनामक अध्यायमें प्रासृतयोग, भिन्न २ व्यापत्तियों और उनकी चिकित्सा, अतिसारनाशक अनेक प्रकारके निरूहरसोंकी कल्पना, यवाग, घृत यह सब भगवान् आत्रेयजीने कथन किये हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीच० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० प्रासृतयोगिकासिद्धिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

आथातत्रिमर्मायांसिद्धिर्व्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम त्रिमर्माया सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

सप्तोत्तरंमर्मशतमस्मिञ्शरीरेस्कन्धशाखाश्रितमश्रिवेश । तेषाम-
न्यतमपीडायांसमधिकापीडाभवतिचेतनानिवद्धवैशेष्यात् ॥ १ ॥

हे अश्रिवेश ! इस शरीरमें १०७ मर्मस्थान हैं वह सब स्कन्ध (मस्तक, गर्दन और मध्य शरीर) और शाखा (हाथपांव) के आश्रित हैं। इन १०७ मर्मोंमें अन्य शरीरसे अधिक पीडा होती है क्योंकि मर्मोंमें चेतना शक्ति विशेषरूपसे निवद्ध है अर्थात् स्थित रहती है ॥ १ ॥

मर्मोंका गुरुत्व ।

तत्रशाखाश्रितेभ्योमर्मभ्यःस्कन्धाश्रितानिगरीयांसिशाखानांतदा-
श्रितत्वात् । स्कन्धाश्रितेभ्योऽपिहृद्द्विस्तिशिरांसितन्मूलत्वाच्छरी-
रस्य ॥ २ ॥

शाखाश्रित मर्मोंकी अपेक्षा स्कन्धस्थित मर्म भारी होतेहैं क्योंकि शाखा भी स्कन्धाश्रितही होतीहै।स्कन्धाश्रित मर्मोंमें भी अन्य मर्मोंसे हृदय वस्ति और शिर अत्यन्त गुरु होते हैं। क्योंकि यही शरीरके मूल हैं और इन्हींके आश्रय शरीरका जीवनहै॥२॥

तत्रहृदिदशचधमन्यःप्राणोदानमनोबुद्धिचेतनामहाभूतानिचना-
भ्यामराइवप्रतिष्ठितानि ॥ ३ ॥

जैसे नाभिसे अमरा नाडी लगीरहती है उसी प्रकार हृदयसे १० धमनीसंज्ञक नाडियें लगीहुई हैं और प्राण, उदान, मन, बुद्धि तथा चेतना यह सब हृदयमेंही रहते हैं । हृदय शरीरके और सब अंगोंकी अपेक्षा पांच भूतोंका मुख्य स्थान है ॥ ३ ॥
शिरसिइन्द्रियाणिइन्द्रियप्राणवहानिचस्रोतांसिसूर्यमिवगभस्त-
यःसंश्रितानि ॥ ४ ॥

जैसे प्रकाशकारक किरणें सूर्यमें आश्रित रहती हैं उसी प्रकार शिर (दिमाग) में संपूर्ण इन्द्रियें और इन्द्रियोंके प्राणवाही स्रोत स्थित रहते हैं ॥ ४ ॥

वस्तिस्तुस्थूलगुदमुष्कसेवनीशुक्रमूत्रवाहिनीनांनाडीनांमध्येमूत्रा-
धारोऽम्बुवहानांसर्वस्रोतसामुदधिरिवापगानांप्रतिष्ठितोभवति ।
बहुभिश्चतन्मूलैर्मर्मसंज्ञकैःस्रोतोभिर्गगनमिवदिनकरकरैर्व्याप्तमि-
दंशरीरम् ॥ ५ ॥

स्थूल अंतडी, अण्डकोश, सीवन, वरियवाही और मूत्रवाही नाडियोंके मध्यस्थानमें वस्ति होती है । जैसे संपूर्ण नदियोंका केन्द्रस्थान समुद्र है उसी प्रकार संपूर्ण जलवा-
ही स्रोतोंका केन्द्रस्थान वस्ति (मूत्राशय) है । जैसे-सूर्यकी किरणोंसे आकाश व्याप्त होताहै उसी प्रकार इन तीन मूल मर्मोंके आश्रित अन्य मर्मोंके जालसे व्याप्त यह शरीर है ॥ ५ ॥

तेपांत्रयाणामन्यतमस्यापिभेदादाश्वेवशरीरभेदःस्यादाश्रयनाशा-
दाश्रितस्यनाशः । तदुपघातात्तुघोरव्याधिप्रादुर्भावःतस्मादेतानि
विशेषेणरक्षयाणि । बाह्याभिघाताद्वातादिदोषेभ्यश्च ॥ ६ ॥

इन तीन मर्मोंमें किसी मर्मका भेदन होनेसे शरीरका भी तत्काल भेदन होजाता-
है । क्योंकि आश्रयका नाश होनेसे आश्रितका स्वयम् नश होजाता है । इन तीन मर्मोंमें चोट आदि किसी प्रकारका उपघात होनेसे विशेष घोर व्याधियें उत्पन्न होजाती-
हैं । इसलिये इन तीनों मर्मोंकी विशेषरूपसे बाह्य चोट आदि अभिघातसे और भीतरी वातादि दोषोंसे विशेष ध्यान पूर्वक रक्षा करते रहना चाहिये ॥ ६ ॥

हृदयमें अभिघातसे उपद्रव ।

तत्रहृदयेअभिहतेकासश्वासवलक्षयकण्ठशोषहोमापकर्षणजि-
ह्वानिर्गममुखतालुशोपापस्मारोन्मादप्रलापचित्तनाशादयःस्युः ॥७॥

हृदयमें चोट लगनेसे, खांसी, श्वास, वलक्षय, कण्ठका सूखना, क्लोमका अपकर्षण, जीभका बाहर निकल आना, मुखका सूखना, तालशोष, अपस्मार, उन्माद, मलापचिक्त्तका विगडना यह उपद्रव होते हैं ॥ ७ ॥

क्षीरमें अभिघातके उपद्रव ।

शिरसिअभिहतेमन्यास्तम्भार्दितचक्षुर्विभ्रममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहमूकगद्गदत्वाक्षिनिमीलनगण्डस्यन्दनजृम्भणलालास्त्रावस्त्रहानिवदनजिह्मत्वादीनि ॥ ८ ॥

शिरमें अभिघात पहुँचनेसे मन्यास्तम्भ, आर्दितरोग, नेत्रोंका विभ्रम, मोह, वेष्टनकीसी पीडा, चेष्टानाश, खांसी, श्वास, हनुग्रह, मूकता, हकलापन, नेत्रोंका मिचना, गण्डस्थलोंका फडकना, जंभाई, मुखसे लारका वहना और मुखका टेढा होजाना आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

वस्तिमें चोटलगनेके उपद्रव ।

वस्तौतुवातमूत्रवर्चोनिग्रहवंक्षणमेहनवस्तिशूलकुण्डलोदावर्त्तगुल्मव्रध्नानिलाष्ठीलोपस्तम्भनाभिकुक्षिगुदश्रोणिग्रहादयः ॥ ९ ॥

वस्ति (मूत्राशय) में चोट लगनेसे अधोवायु, मूत्र और मलका विबंध, वंक्षणमें शूल, लिंगशूल, वस्तिशूल, वातकुण्डलिका (मूत्रको चक्कर देकर रोकनेवाली वातजनित व्याधि) उदावर्त्त, गुल्म, वातष्ठीला, उपस्तम्भ, नाभि, कुक्षी, गुदा और श्रोणीमें जकडन तथा ऐसेही अन्य अनेक उपद्रव उत्पन्न होतेहैं ॥ ९ ॥

मर्मोंकी चिकित्सा ।

वाताद्यपसृष्टानांतुएपांलिङ्गानिचिकित्सितेसक्रियादिविधीनिउक्तानि । किन्तुएतानिविशेषतोऽनिलाद्रक्ष्याणिअनिलौहिपित्तकफसमुदीरणहेतुः । प्राणमूलश्चमर्मतच्चवस्तिकर्मसाध्यतमम् । तस्मान्नवस्तिसमांकिश्चित्कर्ममर्मपारंपालनमस्ति ॥ १० ॥

इन तीनों मर्मोंमें होनेवाले वातादिजनित रोगोंके लक्षण और चिकित्साको चिकित्सास्थानके त्रिमर्मीय अध्यायमें कथन करआये हैं । इन तीनों मर्मोंको विशेषकर वायुसे रक्षित रखना चाहिये । क्योंकि वायुही पित्तकफको भी उत्तेजित करनेका हेतुभूत है । यह मर्म प्राणोंके मूलभूत हैं । इनमें वायु आदि दोषोंकी अन्य प्रकार चिकित्साकी अपेक्षा वस्तिकर्म करना अत्यन्त श्रेष्ठ है अथवा मर्मोंकी अन्य चिकित्साओंमें वस्तिकर्म सर्वोत्तम है । इसलिये वस्तिकर्मके समान मर्मोंकी रक्षा करनेवाला और कोई भी उपाय नहीं है ॥ १० ॥

तत्रपडास्थापनस्कन्धान्विमानेद्रौचानुवासनस्कन्धौहचविहिता-
न्वस्तीन्वुद्धयाविचार्यमहामर्मपरिपालनार्थप्रयोजयेद्वातव्याधि-
चिकित्साञ्च ॥ ११ ॥

इस लिये जो विमानस्थानमें छः स्थापन स्कंध कहेआये हैं और सिद्धिस्थानमें दो प्रकारके अनुवासन स्कन्ध कहेहैं उन सबको बुद्धिसे विचारकर इन तीन महा-
मर्मोंकी पालनाके लिये प्रयोग करना चाहिये । इन मर्मोंमें किसी प्रकारकी वात-
जनित पीडा उपस्थित होनेपर वातव्याधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये॥ ११॥

वातोपसृष्टहृदयकी चिकित्सा ।

भूयश्चहृदिउपसृष्टेवातेनहिङ्गुचूर्णलवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तांपे-
यांमातुलुङ्गस्थरसेनवान्येनवास्लेनहृद्येनवापाययेत् । स्थिरादिपञ्च-
मूलीरसःसशर्करःपानार्थविल्वादिपञ्चमूलरससिद्धाचयवागूःहृद्रो-
गविहितञ्चकर्म ॥ १२ ॥

यदि वायु हृदयको पीडित करे तो हिम्वादि चूर्ण वा और कोई लवणभास्कर
आदि चूर्ण, बिजौरै नींबूके रससे अथवा अन्य खटाईसे युक्तकर पीवे । अथवा हृदय-
मिय द्रव्योसे वा इन्हीं खटाई आदि द्रव्योसे बनाईहुई पेया पीवे । अथवा शालप-
र्ण्यादि पंचमूलके क्वाथमे खाड मिलाकर पीवे वा विल्वादि पंचमूलके क्वाथसे सिद्ध
कीहुई यवागू पीवे तथा हृद्रोगकी शातिके लिये जो चिकित्सा कहे आयेहैं उसका
उपयोग करना भी हितकारक है ॥ १२ ॥

वातोपसृष्टशिरकी चिकित्सा ।

मूर्ध्निवातोपसृष्टेअभ्यङ्गस्वेदनोपनाहनस्नेहपाननस्तःकर्मावपीड-
नधूमादीनि ॥ १३ ॥

यदि मस्तक वायुसे पीडित हो तो तेलका अभ्यंग, स्वेदन, उपनाह, स्नेहपान,
नस्यकर्म, अवपीडन और धूमपानादि कर्म हितकारक है ॥ १३ ॥

वातोपसृष्टवस्तिकी चिकित्सा ।

वस्तौतुकुम्भीस्वेदोवत्तर्यश्च । श्यामादिभिर्गोमूत्रसिद्धोनिरूहः ।
विल्वादिस्वरससिद्धःशरकाशेक्षुदर्भगोक्षुरकमूलशृतक्षीरैश्च । त्र-
पुपैर्वाखुराशवावीजयवऋपभककल्कितोनिरूहः । क्षारयवतिल्व-
कभृष्टकल्कितोवानिरूहः । पीतदारुकसिद्धतैलानुवासनम् । तैल्व-
कञ्चसर्पिर्विरेकार्थम् ॥ १४ ॥

यदि मूत्राशय वातसे दूषित हो तो कुंभीस्वेद और वृत्तिविधान तथा निशोथ आदि गणमें गोमूत्र मिलाकर निरूहण वस्ति करे । अथवा विल्वादि पंचमूलके क्वाथसे वा शरकंडेकी जड, कांसकी जड, ईखकी जड, कुशाकी जड और गोखरुकी जडसे सिद्ध कियेहुए दूधसे वस्तिका प्रयोग करे । अथवा खीरेके बीज, ककडीके बीज और अजमोदके क्वाथमें ऋषभकका कल्क मिलाकर निरूहण वस्ति करे । तथा सरल काष्ठके साथ सिद्ध किये तैलका अनुवासन करना हितैहै । और तिल्वक कल्पमें कहेहुए विरेचनकर्ता घृत पिलाकर विरेचन कराना श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

औत्तरवस्तिक तैल ।

शतावरीगोक्षुरकवृहतीकण्टकारिकागुडूचीपुनर्नवोशीरमधुकाद्वि-
शारिवालोध्रश्रेयसीकुशकाशमूलकपायक्षीरचतुर्गुणंवलावृषर्षभक-
खराहोपकुञ्चिकावत्सकत्रपुषैर्वारुबीजशितिमारकमधुकवचाशतपु-
ष्पाश्मभेदवर्षाभूमदनफलकल्कसिद्धतैलमुत्तरवस्तिनिहहः शुद्ध-
स्निग्धस्विन्नस्यवस्तिशूलमूत्रविकारहर इति ॥ १५ ॥

शतावर, गोखरु, बडी कटेली, छोटी कटेली, गिलोय, पुनर्नवा, खस, मुलैठी और दोनों प्रकारकी शारिवा, लोध, गोरखमुण्डी, कुशा और कांसकी जड इन सबका क्वाथ ४ सेर, दूध ४ सेर, तेल १ सेर और बला, अट्टसा, ऋषभक, अजमोद, कलौंजी, इन्द्रयव, खीरेके बीज, ककडीके बीज, शालिच शाक, मुलैठी, वच, सौंफ, पापाणभेद, सफेद पुनर्नवा और मैनफल इन सबका कल्क १ पाव इन सब द्रव्योंको मिलाकर तैल सिद्ध करे । प्रथम रोगीको निरूहण करके शुद्ध होनेपर फिर स्निग्ध और स्वेदन-
कर इस तैलद्वारा उत्तरवस्ति करे तो वस्तिका शूल और मूत्रविकार दूर होतेहैं ॥ १५ ॥

भवन्तिचात्र ।

हृदिमूर्ध्निचवस्तौचनृणांप्राणाःप्रतिष्ठिताः। तस्मात्तेपांसदायत्नात्कुं-
र्वीतपरिपालनम् ॥१६॥ आघातवर्जनंनित्यंस्वस्थवृत्तानुवर्तनम् ।

उत्पन्नार्त्तिविघातश्चमर्मणांपरिपालनम् ॥ १७ ॥

अब यहां कहते हैं कि हृदय, मूर्धा और वस्तिस्थानमें मनुष्योंके प्राणोंका निवासस्थान है । इसलिये इन तीनों मर्मस्थानोंकी यत्नपूर्वक सदैव पालना करते रहना चाहिये तथा सब प्रकारकी चोट आदिसे नित्य बचाकर रखे और आरोग्य मनुष्योंके जो जीवनवर्द्धक नियम हैं उनका सेवन करतारहे तथा उत्पन्नहुई व्याधिकी शांतिका यत्न करे और सदा मर्मोंकी रक्षा करतारहे ॥ १६ ॥ १७ ॥

अतउद्ध्विकारायेत्रिमर्मायेचिकित्सते ।

नप्रोक्तामर्मजास्तेपांकांश्चिद्वक्ष्यामिसौपधान् ॥ १८ ॥

जो जो मर्मोंमें होनेवाले रोग अथवा मर्मस्थानोंसे संबंध रखनेवाले रोग चिकित्सा स्थानके त्रिमर्मायाध्यायमें नहीं कहें, तो अब उनके लक्षण और चिकित्साको कथन करते हैं ॥ १८ ॥

अपातंत्रकके लक्षण ।

क्रुद्धःस्वैःकोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वप्रपद्यते । पीडयन्हृदयंगत्वाशिरः शंखौचपीडयन् ॥ १९ ॥ धनुर्वन्नमयेद्वात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा ।

कृच्छ्रेणचाप्युच्छ्वसितिस्तब्धाक्षोऽथनिमीलकः ॥ २० ॥ कपोत-
इवकूजेच्चनिःसंज्ञःसोऽपतन्त्रकः ॥ २१ ॥

अपने कोपकारक कारणोंसे कुपितहुआ वायु निज स्थानको छोड़ ऊपरको गमन करताहै । तथा हृदयमें प्रवेशकर हृदयको पीडित करताहै और मस्तक तथा कनपटीमें पहुंचकर मस्तक और कनपटीमें पीडा उत्पन्न करताहै । तथा अंगोंको धनुषके समान झुकाकर आक्षिप्त करताहै और मोहको उत्पन्न करताहै उस समय रोगी कठिनतासे श्वास लेताहै । आखें स्तब्ध अथवा बंद होजातीहैं । कबूतरके समान कण्ठ कूजन होने लगताहै और संज्ञा जातीरहतीहै । इसको अपतंत्रक रोग कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

अपतानकके लक्षण ।

दृष्टिसंस्तभ्यसंज्ञाश्चहृत्वाकण्ठेनकूजति । हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंया-
तिमोहंभृतेपुनः । वायुनादारुणंप्राहुरेकेतदपतानकम् ॥ २२ ॥

वायुके कोपसे दृष्टिका स्तम्भित होना, संज्ञानाश, कण्ठकूजन होना और हृदयसे वायु मुक्त होजानेपर व्यायोग्यता प्रतीत होना हृदय वायुसे आवृत होनेपर फिर बेहोशी होजाना इस प्रकार लक्षणों युक्त वातजनित दारुण रोगको कोई अपतानक कहते हैं ॥ २२ ॥

इनकी चिकित्सा ।

श्वसनंकफवाताभ्यांरुद्धंतस्यविमोचयेत् ।

तीक्ष्णैःप्रधमनैःसंज्ञांतासुमुक्तासुविन्दति ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यका श्वास वायु और कफसे रुका हुआ हो उसको तीक्ष्ण प्रथमन (विरेचनीय नस्य) देकर श्वासको खोल देना चाहिये । तीक्ष्ण नस्य द्वारा संज्ञावाहक छिद्रोंके खुलजानेसे बेहोशी दूर होकर होश भी आजाती है ॥ २३ ॥

मारिचंशिमुवीजानिविडङ्गश्चफणिज्झकम् ।

एतानिसूक्ष्मचूर्णानिदद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ २४ ॥

मिर्च सुहांजनेके बीज, वायविडंग, फणिज्झक तुलसी इन सबको वारीक पीसकर नस्य देनेसे शिरोविरेचन होकर संपूर्ण छिद्र खुलजाते हैं और बहोशी दूर होतीहै ॥ २४ ॥

हिंगुतुम्बुरुपथ्याचपौष्करंलवणत्रयम् ।

यवकाथाम्बुनापेयंहृत्पाश्र्वात्पतन्त्रके ॥ २५ ॥

हींग, नैपाली धनियां, हरड, पोहकर मूल, संधानमक, संचरनमक और विडलवण इन सबका चूर्णकर यवोंके काथ अथवा गर्म जलके साथ पीवे तो हृदयकी पीडा, पार्श्वपीडा और अपतंत्रक रोग दूर होता है ॥ २५ ॥

हिङ्गवम्लवेतसंशुण्ठीससौवर्चलदाडिमम् ।

पिवेद्वातकफघ्नश्च

कर्महृद्रोगनुद्धितम् ॥ २६ ॥ शोधनावस्तयस्तीक्ष्णाहितास्तस्य

चकृत्क्षशः । सौवर्चलाभयाव्योषैःसिद्धन्तुस्याद्घृतंहितम् ॥ २७ ॥

हींग, षमलवेत, सोंठ, संचरनमक, नासपाल इनके चूर्णको गर्मजलके साथ पीवे, तो अपतंत्रक, अपतानक, वातकफके विकार और हृद्रोग दूर होते हैं । रोगोंमें वातकफनाशक और हृद्रोगनाशक क्रिया करना भी उपकारक है । तथा शोधन तीक्ष्ण वस्तिका प्रयोग करना भी हितकारी है । और संचरनमक, हरड तथा त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर सिद्ध किया घृत भी सब प्रकार हित करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

तंद्रारोगके हेतु, लक्षण ।

मधुरस्निग्धगुर्वम्लसेवनाच्चिन्तनाद्भयात् ।

शोकाद्व्याध्यनुपद्नाच्च

वायुनोदीरितःकफः ॥ २८ ॥ यदासौसमवस्कन्धहृदयंहृदयाश्र-

यान् । समावृणोतिज्ञानार्दीस्तदातन्द्रोपजायते ॥ २९ ॥ हृदये

व्याकुलीभावोवाक्चेष्टेन्द्रियगौरवम् । मनोबुद्ध्यप्रसादश्चतंद्रा-

यालक्षणंमतम् ॥ ३० ॥

मधुर, स्निग्ध, भारी और अम्लरसोंका सेवन करनेसे चिन्ता, भय और शोकेसे तथा ज्वरादि रोगोंके अनुपंगसे वायु कफको उदीर्णकर हृदयको व्याच्छादित करदेता है तथा हृदयाश्रित ज्ञानादिकोंको आवृत करके तंद्रानामक रोगको उत्पन्न करता है । उसमें हृदयका व्याकुल होना वाणी, चेष्टा और इन्द्रियोंमें भारीपन, र्न और बुद्धिकी अपसन्नता यह तंद्राके लक्षण कहे हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

तंद्राकी चिकित्सा ।

कफघ्नतत्रकर्तव्यशोधनंशमनानिच ।

व्यायामोरक्तमोक्षश्चभोज्यश्चकटुतिक्तकम् ॥ ३१ ॥

तंद्रारोगमें कफनाशक चिकित्सा करना तथा शोधन संशमन, आदि क्रिया करना हितकारक है तथा व्यायाम रक्तमोक्षण कटु और तिक्त द्रव्योंका भोजन करना हितकारक है परन्तु ज्वरमें उत्पन्न हुई तंद्राकी यह चिकित्सा नहीं ॥ ३१ ॥

वस्तिरोग व मूत्राघातके १३ भेद ।

मूत्रैकसादंजठरंकृच्छ्रंसोत्सङ्गसङ्क्षयौ । मूत्रातीतोऽनिलाष्टीला-
वातवस्त्युष्णमारुतौ ॥ ३२ ॥ वातकुण्डलिकाग्रन्थिविड्घातो
वस्तिकुण्डलम् । त्रयोदशैतेमूत्रस्यदोपास्तांल्लिंगतःशृणु ॥ ३३ ॥

मूत्रैकसाद, मूत्रजठर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रोत्संग, मूत्रक्षय, मूत्रातीत, वातष्टीला, वातवस्ति, उष्णवात, वातकुण्डलिका मूत्रग्रंथी विड्घात और वस्तिकुण्डल यह तेरह प्रकारके मूत्रदोष मूत्राशयके विकार होते हैं । अब इनके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवणकरो ३२-३३

मूत्रैकसादके लक्षण चिकित्सा ।

पित्तं कफोद्वयं वापि वस्तौ संहन्यते यदा । मारुतेन तदा मूत्रं रक्तपीतं
घनं सृजेत् ॥ ३४ ॥ सदाहं श्वेतसान्द्रं वासवैर्वा लक्षणैर्युतम् । मूत्रै-
कसादं तं विद्यात्पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ॥ ३५ ॥

पित्त अथवा कफ वा पित्त और कफ दोनों जब वायुसे प्रेरित होकर मूत्राशयमें इकट्ठे होजाते हैं तब लाल, पीला, और गाढा मूत्र आने लगता है । अथवा दाहयुक्त सफेद और सान्द्र आने लगता है । वा इन दोनों प्रकारके संपूर्ण लक्षणोंसे युक्त होकर मूत्र आता है इस रोगको मूत्रैकसाद जानना । इसको पित्त और कफनाशक चिकित्साद्वारा जीतना चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

मूत्र जठरके हेतु, लक्षण, चिकित्सा ।

विधारणात्प्रतिहतं वातोदावर्त्तितं यदा । पूरयत्युदरं मूत्रं तदा तदनि-
मित्तरक्तम् ॥ ३६ ॥ अपक्तिमूत्रविदूंसंगैस्तन्मूत्रजठरं वदेत् । मूत्र-
वैरेचनीतत्रचिकित्सांसंप्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥ हिं गुद्विरुत्तरंचूर्णत्रि-
मर्मीयेप्रकीर्त्तितम् । हन्यान्मूत्रादिसंघातं व्याधिश्च गुदमेदूयोः ॥ ३८ ॥

मूत्रके आयेहुए वेगकी रोकनेसे मूत्र वायुद्वारा प्रतिहत होकर ऊपरकी उलटजाता

है तब उदरको पूर्णकर विना किसी निमित्तके उदरमें पीडा उत्पन्न करताहै । फिर अन्नका न पचना, मूत्र और विष्ठाका रुकजाना यह लक्षण होते हैं । इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं । इसमें मूत्रका विरेचन करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये । तथा पीछे त्रिमर्मीयचिकित्सामें कहेहुए द्विरुत्तर हिंवादिचूर्णका प्रयोग करनेसे मूत्रादिकोंका संघात तथा गुदा और भेदूकी व्याधियें नष्ट होतीहैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

मूत्रितस्यव्यवायात्तुरेतोवातोद्धृतंच्युतम् ।

पूर्वमूत्रस्यपश्चाद्वास्त्रवेत्तकृच्छ्रमुच्यते ॥ ३९ ॥

मूत्रका वेग आयाहुआ हो उससमय मूत्रको रोककर स्त्रीसंग करे तो वीर्य वायुसे विवटित होकर मूत्रमार्गमें स्थित होजाताहै फिर मूत्रसे प्रथम अथवा मूत्रसे पीछे बड़े कष्टके साथ वीर्यकी बूंद गिरती है । इस रोगको मूत्रकृच्छ्र कहतेहैं ॥ ३९ ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण ।

स्त्रवैगुण्यानिलाक्षैःकिञ्चिन्मूत्रञ्चतिष्ठति । मणिसन्धौस्त्रवेत्पश्चा-

त्तदरुग्वाथवातिरुक् । मूत्रोत्संगःसविच्छिन्नस्तच्छेषोगुरुशेषसः ४०

मूत्रमार्गके विगडजानेसे अथवा वायुके आक्षेपसे मूत्र त्यागते समय लिंगकी सुपारीसे ऊपरकी तरफ मूत्र अटकजाय और अटक २ कर थोड़ी देरके बाद विना पीडासे अथवा अत्यंत पीडाके साथ मूत्र आवे और विच्छिन्न शेष रहीहुई मूत्रकी बूंद इन्दीमें भारीपनको करे तो इस रोगको मूत्रोत्संग कहतेहैं ॥ ४० ॥

मूत्रक्षयके लक्षण ।

वाताकृतिर्भवेद्वातान्मूत्रेशुष्यतिसंक्षयः ।

वायुके कोपसे वातप्रकृति मनुष्यका मूत्र सूखजाता है इसको मूत्रक्षय रोग कहते हैं इसमें सब लक्षण कुपिन वायुके होतेहैं ॥

मूत्रातीतके लक्षण ।

चिरंधारयतोमूत्रंत्वरयान्प्रवर्त्तते ।

मेहमानस्यमन्दंवामूत्रातीतःसउच्यते ॥ ४१ ॥

मूत्र आनेपर जो मनुष्य रोकलेता है उसका रुकाहुआ मूत्र अत्यंत धीरे २ और थोडा २ आने लगता है इसको मूत्रातीत कहते हैं ॥ ४१ ॥

१ इसी प्रकार मूत्रके वेगको रोककर स्त्रीसंग करनेसे मूत्रके साथ पीछे अथवा आगे सफेद बूंद विना पीडासे गिरे तो इसको मूत्रशुक्र कहतेहैं ।

वातघ्नीलाके ल० ।

आध्मापयन्वस्तिगुदंरुद्धावायुश्चलोनताम् ।

कुर्यात्तीव्रार्त्तिमघ्नीलामूत्रविणमार्गरोधिनीम् ॥ ४२ ॥

कोपको प्राप्तहुआ वायु वस्ति और गुदाको अफारायुक्तकर और रोक करके पेंडूके नीचेकी ओर तीव्र पीडायुक्त चंचल और ऊंची वायुकी गांठको उत्पन्न करता है इसको वातघ्नीला कहतेहैं इससे मल और मूत्रका अवरोध होजाताहै ॥ ४२ ॥

बालवस्तिके लक्षण ।

मूत्रंधारयतोवस्तौवायुःक्रुद्धोविधारयेत् ।

मूत्ररोधार्त्तिकण्डूभिर्वातवस्तिःसउच्यते ॥ ४३ ॥

: मूत्रके वेगको रोकनेसे कोपको प्राप्तहुआ वायु वस्तिमें प्राप्त होकर मूत्रका अवरोध, पीडा और खुजलीको उत्पन्न करे उसको वातवस्ति कहतेहैं ॥ ४३ ॥

उष्णवातके ल० ।

ऊष्मणासोष्मकंमूत्रंशोषयत्रक्तपीतकम् ।

उष्णवातःसृजेत्क्रुच्छ्राद्वस्त्युपस्थार्त्तिदाहवान् ॥ ४४ ॥

पित्तकी गर्म जब मूत्रको सुखादेतीहै तब मूत्र पीलेवर्णका थोडा २ गर्म और लालवर्णका बडे कष्टके साथ आता है तथा वस्ति और लिंगेन्द्रियमें पीडा और दाह होतीहै इस रोगको उष्णवात कहतेहैं ॥ ४४ ॥

वातकुण्डलिकाके ल० ।

गतिसंगादुदावृत्तःसमूत्रस्थानमार्गयोः । मूत्रस्यविगुणोवायुर्भ्रम-

व्याविद्धकुण्डली । मूत्रंविहन्तिसंस्तम्भभ्रमगौरववेष्टनैः । तीव्र-

रुद्धमूत्रविट्संगैर्वातकुण्डलिकेतिसा ॥ ४५ ॥

वायु विकृत होकर मूत्रस्थान और मूत्रकी गतिको रोककर ऊपरको उल्टा गमन करताहै तब वह वायु भेदनकीसी पीडायुक्त मूत्रको व्याहृतकरके मूत्राशयमें कुण्डलाकार चक्कर देने लगता है उससे मूत्रकी गति रुककर मूत्राशयका स्तम्भ, भेदनकीसी पीडा, भारीपन, उद्वेष्टन, तीव्र पीडा, मूत्रका विबंध और मलका विबंध यह लक्षण होतेहैं । इस रोगको वातकुण्डलिका कहतेहैं ॥ ४५ ॥

मूत्रग्रंथिके ल० ।

रक्तंवातकफाद्दुष्टंवस्तिद्वारेसुदारुणम् । ग्रन्थिकुर्यात्सकृच्छ्रेणसू-

जन्मूत्रंतदावृतम् । अश्मरीसमशूलंतंमूत्रग्रन्थिप्रचक्षते ॥ ४६ ॥

वायु और कफके कुपित होनेसे वस्तिके द्वारमें रक्त दूषित होकर दारुण ग्रंथिको उत्पन्न करताहै उस ग्रंथिसे वस्तिका द्वार रुककर मूत्र बड़े कष्टसे आताहै और वस्तिद्वारमें पयरीके समान शूल होने लगता है । इस रोगको मूत्रग्रंथि कहते हैं ॥ ४६ ॥

विड्विघातके लक्षण ।

रूक्षदुर्वलयोर्वातेनोदावृत्तंशकृद्यदा । मूत्रस्रोतःप्रपद्येतविट्संसृ-
ष्टंतदानरः । विड्गन्धंमूत्रयेत्क्वच्छ्राद्विड्विघातंविनिर्दिशेत् ॥ ४७ ॥

रूक्ष वा दुर्वल मनुष्यके शरीरमें कुपित हुई वायुसे विघ्ना विपरीत मार्गगामी होकर मूत्रवाही छिद्रोंमें प्राप्त होकर विघ्ना मिश्रित मूत्र अथवा विघ्नाकी दुर्गंधयुक्त मूत्र बड़े कष्टसे आने लगताहै इस रोगको विड्विघात कहते हैं ॥ ४७ ॥

वस्तिकुण्डलके लक्षण ।

द्रुताध्वलङ्गनायासादभिघातात्प्रपीडनात् । स्वस्थानाद्वस्तिरुद्धृत्तः
स्थूलस्तिष्ठतिगर्भवत् ॥ ४८ ॥ शूलस्पन्दनदाहान्तोविन्दुंविन्दुंस-
वत्यपि । पीडितस्तुखवेद्धारांस्तम्भनोद्वेष्टनार्त्तिमान् ॥ ४९ ॥
वस्तिकुण्डलमाहुस्तंघोरशस्त्रविपोपमम् । पवनप्रबलंप्रायोदुर्नि-
वारमवुद्धिभिः ॥ ५० ॥ तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलमूत्रविवर्ण-
ता । श्लेष्मणागौरवंशोफःस्निग्धंमूत्रंघनंसितम् ॥ ५१ ॥ श्लेष्म-
रुद्धविलोवस्तिःपित्तोदीर्णानसिध्यति । अविभ्रान्ताविलःसाध्यो
नतुयःकुण्डलीकृतः । स्याद्वस्तौकुण्डलीभूतेतृणमोहोच्छ्वास-
एवच ॥ ५२ ॥

जल्दी २ चलना, उपवास करना, अधिक परिश्रम करना, चोट लगना और दबजाना आदि कारणोंसे वस्ति (मूत्राशय) अपने स्थानसे उठकर गर्भकी समान स्थूल होकर स्थितहो और उसमें शूल, फडकना और दाह हो तथा मूत्र बहुत थोडा २ बूंद २ उतरे, ऊपरसे दवादेनेसे अर्थात् उस फूली हुई वस्तिको पीडन करनेसे मूत्रकी धारा निकलने लगे । उस समय स्तम्भ, उद्वेष्टन और पीडा यह लक्षण होनेलगे । इस घोर शस्त्र और विपके समान व्याधिको वस्ति-कुण्डल कहतेहैं । यह रोग प्रायः वातप्रबल होताहै । यह अल्पबुद्धिवाले वैद्योंके लिये दुर्निवार है । यदि इसमें वायु पित्तको लेकर बढीहुई हो तो दाह, शूल और मूत्रकी विवर्णता भी होतीहै । यदि कफका संसर्ग हो तो वस्तिमें भारीपन, सूजन,

मूत्र चिकना, गाढा और सफेदवर्णका होता है । इस रोगमें यदि मूत्राशय कफसे रुद्धमुख और पित्त कोपयुक्त हो तो इसको असाध्य जानना । यदि वस्ति कुण्डली-कृत न हो और अविश्रान्त फडकनरहित, पीडा आदि उपद्रवोंसे रहित हो तो साध्य होती है । परन्तु कुण्डलीकृत वस्ति कफसे रुद्ध न होनेपर भी असाध्य होती है ॥
प्यास लगना, मोह, ऊर्द्धश्वास यह लक्षण वस्तिकुण्डल रोगमें हों तो समझना वस्ति कुण्डलीभूत हो गई है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इनकी चिकित्सा ।

दोषाधिक्यमवेक्ष्यैतान्मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।

वस्तिमुत्तरवस्तिश्चसर्वेषामेवयोजयेत् ॥ ५३ ॥

इन सब प्रकारके मूत्राघातोंमें दोषोंकी न्यूनाधिकता देखकर उचित रीतिपर मूत्र-कृच्छ्रनाशक चिकित्सा द्वारा शान्ति करे । तथा वस्तिकर्म वा उत्तरवस्ति इन सब प्रकारके मूत्राघातोंकी शान्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये ॥ ५३ ॥

उत्तरवस्तिविधान ।

पुष्पनेत्रश्चहैमंस्यात्सूक्ष्ममौत्तरवस्तिकम् । जातीपुष्पस्यवृन्तेन

समंगोपुच्छसंस्थितम् । रौप्यंवासर्षपच्छिद्रंद्रिकर्णद्वादशाङ्गुलम् ॥

॥ ५४ ॥ तेनाजवस्ति युक्तेनस्नेहस्यार्द्धपलंनयेत् । यथावयोविशेषे-
णस्नेहमात्रां विकल्प्यवा ॥ ५५ ॥

उत्तरवस्तिकी नली (मूत्रमार्गसे मूत्राशयतक पहुंचानेकी नली) सुवर्णकी और चमेलीके फूलकी डण्डीके समान मोटी होनी चाहिये और गोपुच्छके समान क्रम-पूर्वक आगेसे पतला और पीछेसे किंचित् मोटा उसका मुख होना चाहिये । सुवर्णके अभावमें यह नली चांदीकी बनाई जा सकती है सरसोंके दानेके समान इसके भीतर छिद्र अथवा पोलापन रहताहै और इसमें दो कार्णिका (सूक्ष्म छिद्र) होती हैं । यह लम्बावमें १२ अंगुलकी सलाईसी होती है । इसकी वस्ति बकरेकी वस्तिसे बनानी चाहिये । इस वस्ति द्वारा २ तोला स्नेह पहुंचाया जाना चाहिये । अथवा रोगीकी अवस्था आदि विचारकर २ तोलासे कम या जितना उचित हो प्रयोग करना चाहिये । ५४ ॥ ५५ ॥

स्नातस्यभुक्तंभक्तस्यरसेनपयसापिवा । सृष्टविण्मूत्रवेगेनपीठेजा-
नुसमेष्टुदौ ॥ ५६ ॥ ऋजोःसुखोपविष्टस्यहृष्टेमेद्रेष्टुतान्विते । श-

लाक्यान्विष्यगतिंयद्यप्रतिहताव्रजेत् ॥ ५७ ॥ ततःशोफःप्रमाणे-
नपुष्पनेत्रंप्रवेशयेत् । गुदवन्मूलमार्गेणप्रणयेदनुसेवनीम् ॥ ५८ ॥

उत्तर वस्ति करनेसे प्रथम रोगीको स्नान करा मांसरस अथवा दूधके साथ भात-
का भोजन करावे । फिर समयपर मल मूत्र त्याग करनेके अनन्तर एक हाथ ऊंचे
कोमल आसनके ऊपर सुखपूर्वक बिठावे अथवा शिरके नीचे कुछ तकिया आदि रख-
कर शिरको ऊंचाकर सीधा लिटावे । फिर इस प्रकार सुखपूर्वक बैठेहुए वा लेटेहुए
रोगीके लिंगको दृष्ट और घृतसं चिकना करे । फिर एपणी शलाका (मूत्रमार्गसे
वस्तितक पहुंचनेवाली भीतरसे पोली चांदीकी सलाई) को उत्तम औषधीसे सिद्ध
घृत लगाकर लिंगके छिद्रद्वारा भीतरको प्रवेश करे । यदि वह सलाई रास्तेमें किसी
जगह नहीं अटके और सीधी मूत्राशयतक पहुंचजाय तो उसको निकालकर लिंगके
वरावर दूसरी वस्तिनली प्रवेश करे । जिस प्रकार गुदामें पिचकारी करते समय साव-
धानीसे हाथ आदि न हिलाकर वस्तिकर्म कियाजाताहै उससे भी अधिक सावधानी
रखताहुआ मूत्रमार्गद्वारा मूत्रनलीको प्रवेशकरना चाहिये क्यों कि विना सावधानीसे
उत्तरवस्तिकी नली प्रवेश कीजाय तो मूत्रनलीमें अनेक घोर उपद्रव होसकतेहै ।
इस नलीका मुख सीवनकी ओर रहना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

हिंस्याद्द्वस्तिगतं वस्तिमूले स्नेहो न गच्छति ।

सुखंप्रपीडयनिष्कंपनिष्कर्षेन्नमेव च ॥ ५९ ॥

यदि उत्तरवस्ति अधिक वेगसे प्रवेश कीजाय तो वह वस्ति मूत्राशयमें आघात
करतीहै और उससे महान् अनर्थ होसकताहै । यदि अत्यन्त धीरेसे वस्तिमें स्नेह
छोड़ाजाय तो वह स्नेह वस्तिस्थानतक नहीं पहुंचसकता इसलिये हाथको विना
कंपाये युक्तिपूर्वक समभावसे वस्तिका स्नेह मूत्रवस्तिमें पहुंचावे और फिर धीरेसे
हाथको विना कंपाये वस्तिकी नलीको निकाललेवे ॥ ५९ ॥

वस्तिके स्नेह न निकलनेपर वर्तिप्रयोग ।

प्रत्यागतेद्वितीयन्तु तृतीयञ्च प्रदापयेत् । अनागच्छन्नुपेक्ष्यस्तुरज-
नीव्युपितस्य च ॥ ६० ॥ पिप्पलीलवणागारधूमापामार्गसर्षपैः ।

वार्त्ताकुरसनिर्गुण्डीशम्याकैःससहाचरैः ॥ ६१ ॥ सूत्राम्लपिष्टैः

१ आज कल प्रायः खडकी नलियें (कैथिटर) काममें लाईजातीहैं । एपणीशलाका
बीचमेसे पोली नहीं होतीहै और वस्तिनली बीचमेसे पोली होताहै यह चांदीसे बनीहुईभी बडी
अप्रेजी दुकानोंपर विक्रतीहै ।

सगुडैर्वर्तिं कृत्वा प्रवेशयेत् । अग्रे तु सर्वपाकारं पश्चाद् द्वौ मापसम्मिताम् ॥ ६२ ॥ नेत्रदीर्घाघृताभ्यक्तांसुकुमारामभङ्गुराम् । नेत्रवन्मूत्रना-
डधान्तुपायौ वाङ्गुष्ठसम्मिताम् ॥ ६३ ॥

जब वस्तिद्रव्य प्रत्यागत होजाय अर्थात् वस्तिस्नेह और मूत्र निकलजाय तो दूसरीवार फिर उसी प्रकार स्नेहवस्ति करे । दूसरी वस्तिका स्नेह निकलनेपर तीसरी वार फिर वस्तिकर्म करना चाहिये । यदि वस्तिका स्नेह न निकले तो एक रात्रि-पर्यन्त उस स्नेहके निकालनेकी उपेक्षा करे । फिर दूसरे दिन उसके निकालनेके लिये पीपल, सेंधानमक, गृहधूम, क्षपामार्गके बीज, सरसों, वैगनका रस, संभालू, अमलतासका गूदा और पीपाघांसा इन सब द्रव्योंको गोमूत्र, कांजी और गुडके साथ बारीक पीसकर बत्ती बनावे । यह बत्ती आगेसे सरसोंके दानेके समान मोटी और पीछेसे दोउडदोंके बराबर मोटी होनी चाहिये । इस बत्तीको विधिवत् मूत्र-मार्गमें प्रवेश करे । यह बत्ती मूत्रवस्तिके नेत्रके समान लंबी, घृतमें भिंगोईहुई, साफ और कोमल होनी चाहिये । जो बत्ती मूत्रमार्गसे प्रवेश कीजातीहै उसका आकार पुष्पनेत्र मूत्रद्वारा प्रवेश करनेकी सलाईके समान होताहै । और जो बत्ती गुदाद्वारा प्रवेश कीजाती है वह अंगूठेके समान मोटी चाहिये ॥ ६०-६३ ॥

स्नेहेप्रत्यागतेताभ्यां सानुवासनिकोविधिः ।

परिहारस्य सव्यापत्सम्यग्दत्तस्य लक्षणम् ॥ ६४ ॥

उत्तरवस्तिका स्नेह प्रत्यागत होजानेके अनन्तर उस रोगीका अनुवासनवस्तिके समान आहार विहारसे पालन करना चाहिये और उत्तरवस्तिमें किसी प्रकारकी व्यापत्ति (उपद्रव) होजानेपर भी अनुवासनमें कहीहुई व्यापत्तियोंके समान चिकित्सा करनी चाहिये । अनुवासन वस्तिके भलेप्रकार होजानेसे जो लक्षण होतेहैं उत्तरवस्तिके भले प्रकार होनेसे भी उसीके समान लक्षण जानना ॥ ६४ ॥

स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका समय ।

स्त्रीणाश्चात्तवकालेतुप्रतिकर्मतदाचरेत् । गर्भासनासुखं स्नेहंतदा-
दत्तेक्ष्णपावृता । गर्भयोनिस्तदाशीघ्रंजितेगृह्णातिमारुते ॥ ६५ ॥

यदि स्त्रियोंको उत्तरवस्ति करना हो तो जिस समय मामिक ऋतु आया हो उस समय उत्तरवस्तिका प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि उस समय गर्भाशयका मुख खुला होनेसे मुरतपूर्वक स्नेहको योनिग्रहण करलेतीहै । उस समय वह स्नेह गर्भाशयकी वायुको जीतलेतीहै इसलिये वह स्त्री शीघ्र मुरतपूर्वक गर्भको धारण करलेतीहै ॥ ६५ ॥

उत्तरवस्तियोग्य रोग ।

वस्तिजेपुविकारेपुयोनिविभ्रंशजेपुच । योनिशूलेपुतीव्रेपुयोनि-
व्यापत्स्वसृग्दरे ॥ ६६ ॥ अप्रस्रवतिमूत्रेचविन्दुंविन्दुंस्त्रवत्यपि ।
विदध्यादुत्तरं वस्ति यथास्त्रौपधसंस्कृतम् ॥ ६७ ॥

स्त्रियोंके सब प्रकारके वस्ति (मूत्राशय) के विकारोंमें, योनिविभ्रंश जनित विकारोंमें, तीव्र योनिशूलमें, योनिव्यापत्तियोंमें, रक्तप्रदरमें, मासिक ऋतुके विबंधमें और मूत्रकी बूंद २ आनेमें रोगानुसार औषधियोंसे सिद्ध किये स्नेहोंद्वारा स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

स्त्रियोंके लिये वस्तिनलका प्रमाण ।

पुष्पनेत्रप्रमाणन्तुप्रमदानां दशाङ्गुलम् ।

मूत्रस्रोतःपरीणाहंमूत्रस्रोतोनुवाहिच ॥ ६८ ॥

स्त्रियोंको जो उत्तरवस्ति दीजाती है तो उनका वस्तिनल दश अंगुल लंबा बनाना चाहिये । और स्त्रीके मूत्र छिद्रके समान मोटाईमें होना चाहिये जो मूत्र-छिद्रमें सुखपूर्वक प्रवेश होसके ॥ ६८ ॥

गर्भमार्गेतुनारीणां विधेयंचतुरङ्गुलम् ।

द्वयङ्गुलंमूत्रमार्गेतुवालायास्त्वेकमङ्गुलम् ॥ ६९ ॥

स्त्रियोंके गर्भमार्गमें उत्तरवस्ति करनेके लिये ४ अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये और मूत्रमार्गमें उत्तरवस्ति देना हो तो २ अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये । वाला (लडकियों) के लिये १ अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये ॥ ६९ ॥

स्त्रियोंके वस्तिप्रवेशविधि ।

उत्तानायाःशयानायाःसम्यक्सङ्कोच्यसविथनी । अथास्याःप्रणये-
न्नेत्रमनुवंशगतंसुखम् ॥ ७० ॥ द्विस्त्रिश्चतुर्वातांस्नेहानहोरात्रेणयो-
जयेत् । वस्तिवस्तौप्रणीतेचवस्तिश्चानन्तरोभवेत् ॥ ७१ ॥

जब स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका प्रयोग कराना हो तो स्त्रीको चित्त लेटाकर उसकी दोनों जांघोंको पीछेको हटाकर सिकोडकर फिर वस्तिनलका मूत्रमार्गसे प्रवेश करे । उस नलका मुख पीठकी बांमकी ओर रखना चाहिये और धीरेसे सुखपूर्वक प्रवेश करे । दिनरात्रिमें दो तीनवार अथवा चारवार इसी प्रकार उत्तर वस्ति द्वारा स्नेहका प्रयोग करे । जब पहिली दीहुई वस्तिका स्नेह लौटआवे फिर दूसरी वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । इसी प्रकार क्रमानुसार दो तीन बार वस्तिका प्रयोग करे ॥ ७० ॥ ७१ ॥

त्रिरात्रकर्मकुवीतस्नेहमात्रांविवर्द्धयन् ।

अनेनैवविधानेनकर्मकुर्यात्पुनरुपहात् ॥ ७२ ॥

इस विधिसे तीन दिन उत्तरवस्ति क्रिया करे । पहिले दिनसे दूसरे दिन स्नेहकी मात्रा किंचित् अधिक लेना चाहिये फिर दूसरे दिनसे तीसरे दिन कुछ अधिक ले । इस प्रकार स्नेहकी मात्रा बढ़ाता रहे । तीन दिनके अनन्तर वस्तिक्रिया बन्द कर-दे और तीन दिन बीत जानेबाद फिर इसी प्रकार स्नेहवस्ति करे ॥ ७२ ॥

शंखकके लक्षण और चिकित्सा ।

अतःशिरोविकाराणांकश्चिद्भेदःप्रवक्ष्यते । रक्तपित्तानिलादुष्टाःशं-
खदेशेविमूर्च्छिताः । तीव्ररुग्दाहरागंहिशोफंकुर्वन्तिदारुणम् ॥७३॥

सशिरोविषवद्वेगीनिरुध्याशुगलंतथा । त्रिरात्राज्जीवितंहन्तिशंख-
कोनामनामतः ॥ ७४ ॥ जीवेद्यहंचेद्भैषज्यंप्रत्याख्यायास्यकार-
येत् । शिरोविरेकसेकादिसर्ववीसर्पनुच्चयत् ॥ ७५ ॥

अब हम शिरोविकारोंके कुछक भेदोंका कथन करते हैं । रक्त, पित्त और वायु कुपित होकर शंख (कनपटी) स्थानमें प्राप्त होकर तीव्र पीडा, दाह, लाली और दारुण सूजनको उत्पन्न करते हैं । यह रोग विषके समान शीघ्र वेगवाला है । शीघ्र गलको रोक देताहै और तीन दिनमें जीवनको भी नष्ट करता है । इस रोगको शंखक रोग कहते हैं । यदि रोगी तीन दिन पर्यन्त जीता रहसके तो वैद्य यह कहकर कि यह असाध्य रोगी है फिर चिकित्सा करे । इसमें शिरोविरेचन, सेक आदि तथा विसर्परोगनाशक संपूर्ण रोगकी चिकित्सा करना हितकारकहै ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अर्द्धावभेदकके लक्षण और चिकित्सा ।

रूक्षात्यध्यशनात्पूर्ववासावश्यायमैथुनैः । वेगसन्धारणायासव्या-
यामैःकुपितोऽनिलः ॥ ७६ ॥ केवलःसकफोवार्द्धगृहीत्वाशिरसो-
ऽनिलः । मन्याश्शूशंखकर्णाक्षिललाटाद्धेचवेदनाम् । शस्त्राशनिनि-
भांकुर्यात्तीव्रांसोऽर्द्धावभेदकः ॥ ७७ ॥ नयनंवाथवाश्रोत्रमतिवृ-
द्धोविनाशयेत् । चतुःस्नेहोत्तमांमात्रांशिरःकायविरेचनम् । नाडी-
स्वेदोघृतंजीर्णवस्तिकर्मानुवासनम् ॥ ७८ ॥ उपनाहःशिरोवस्ति-
र्दहनंवात्रशस्यते । प्रतिश्यायेशिरोरोगेयच्चोद्दिष्टंचिकित्सितम् ॥७९॥

रूक्ष पदार्थोंका सेवन, भोजन कियेपर फिर भोजन करना, अतिभोजन, पुरवकी

पवन, ओस, अथवा शिशिरऋतु, मैथुन, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, परिश्रम और कसरत आदि कारणोंसे कुपितहुआ वायु अकेलाही अथवा फफुको साथमें लेकर मस्तकके आधे भागमें स्थित होकर एकभोरके मन्या, भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र और आधे मस्तकमें अस्त्रसे काटने अथवा वज्रसे भेदन करनेके समान तीव्र पीडाको उत्पन्न करताहै इसको अर्धावभेदक रोग कहते हैं । यदि यह अत्यंत बढजाय तो नेत्र अथवा कानको नष्ट करता है । इस अर्धावभेदक रोगमें चतुःस्नेहकी उत्तम मात्रा पान करना चाहिये तथा शिरोविरेचन, कायविरेचन, नाडीस्वेद, जीर्णघृतका प्रदेह, वस्तिकर्म, अनुवासन वस्ति, उपनाहस्वेद, शिरोवस्ति अथवा दाह पर्यन्त क्रिया करे अर्थात् आवश्यकता हो तो दाग भी देवे और प्रतिश्याय तथा शिरोरोगमें कहीहुई चिकित्साका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७६-७९ ॥

सूर्यावर्तके लक्षण और चिकित्सा ।

सन्धारणादजीर्णाद्यैर्मस्तिष्कंरक्तमारुतौ । दुष्टौदूपयतस्तच्चदुष्टं
ताभ्यांविमूर्च्छितम् ॥ ८० ॥ सूर्योदयांशुसन्तापाहुःखंविप्यन्दते
शनैः । ततोदिनेशिरःशूलंदिनवृद्धयाचवर्द्धते ॥ ८१ ॥ दिनक्षये
ततःस्त्यानेमस्तिष्केसंप्रशाम्यति । सूर्यावर्तःसप्तवस्यात्सर्पिरौत्त-
रभक्तिकम् ॥ ८२ ॥ शिरःकायविरेकौचमूर्धाच्छेहधारणम् । जा-
ङ्गलैरुपनाहश्चघृतक्षीरैश्चसेचनम् ॥ ८३ ॥

मल, मूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे तथा अजीर्ण आदि कारणोंसे दूषित हुए रक्त और वायु मस्तकको दूषित कर देते हैं इस प्रकार मस्तकमें प्राप्त हुआ रक्त और वायु दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपायमान होकर जैसे २ सूर्यकी गर्मी बढती जाती है वैसे २ गर्मीसे पिघलतेहुए वह वातयुक्त रक्त मूर्च्छित होकर अत्यंत कष्ट देताहै । ज्यों २ सूर्यकी गर्मी कम होतीजातीहै त्यों २ यह पीडा भी शान्त होती जाती है । इस प्रकार सूर्यकी गर्मीसे बढनेवाली और घटनेवाली पीडाको सूर्यावर्त कहते हैं । इस सूर्यावर्त रोगमें भोजन करनेके अनन्तर घृतपान करना चाहिये । तथा शिरोविरेचन, कायविरेचन, मस्तकपर तैल धारण करना जंगली जीवोंके मांससे उपनाह स्वेद करना और क्षारयुक्त घृतका सेचन करना हितकारी है ॥ ८०-८३ ॥

चार्हितित्तिरिलावादिशृतंक्षीरोत्थितघृतम् ।

नावनंजीवनीयाष्टगुणक्षीरोपसाधितम् ॥ ८४ ॥

मोर, तीतर और लवा आदि किसी जंगली जीवके मांसके कायसे सिद्ध कियेहुए दूधसे निकला हुआ घृत, जीवनीयगणका कल्क और मोर आदि जीवोंके मांसका

रस तथा घीसे अठगुना दूध इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत नस्य देनेसे सूर्यावर्त्त रोगको दूर करता है ॥ ८४ ॥

अनन्तवातके लक्षण और चि० ।

उपवासातिशोकातिरूक्षशीताल्पभोजनैः । दुष्टादोषास्त्रयोमन्यांप-
श्चाद्धाटेतुवेदनाम् ॥ ८५ ॥ तीव्रांकुर्वन्तिनामाक्षिभ्रूशंखेष्वावतिष्ठ-
ते । स्पन्दनंगण्डपार्श्वस्यनेत्ररोगंहनुग्रहम् । सोऽनन्तवातस्तंह-
न्याच्छिरोऽर्कावर्त्तनाशनः ॥ ८६ ॥

उपवास और अत्यंत शोक करनेसे तथा अत्यंत रूक्ष, शीतल और अल्प भोजनके करनेसे तीनों दोष कुपित होकर मन्याके पिछले भागमें अत्यंत तीव्र पीडाको उत्पन्न करते हैं । वह पीडा आँख, भ्रुकुटी, कनपटीमें स्थित होकर गण्डस्थलके पार्श्वमें स्पन्दन-को उत्पन्न करती है तथा नेत्ररोग और हनुग्रहको उत्पन्न करतीहै इसको अनन्त वात कहते हैं । सूर्यावर्त्त नाशक किया द्वारा इसकी शान्ति करनी चाहिये ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

शिरकंपके लक्षण ।

वातोरूक्षादिभिः क्रुद्धः शिरःकम्पमुदीरयेत् ॥ ८७ ॥

रूक्षादि कारणोंसे कुपित हुआ वायु शिरकी नसोंमें प्राप्त होकर शिरःकंपनामक रोगको उत्पन्न करता है ॥ ८७ ॥

इनकी चिकित्सा ।

तत्रामृतावलारास्त्रामहाश्वेताश्वगन्धकैः ।

स्नेहस्वेदादिवातघ्नंशस्तंनस्यञ्चतर्पणम् ॥ ८८ ॥

शिरःकंपमें अमृता, बला, रास्ना और श्वेत अपराजिताके कल्क द्वारा स्निग्ध स्वेदन और इनके कल्कसे सिद्ध किये घृतों द्वारा स्नेहन करना, स्वेदन करना और वातना-शक नस्य तथा तर्पण करना हितकारक है ॥ ८८ ॥

नस्यके गुण ।

नस्तः कर्मचकुर्वीतशिरोरोगेषुसृक्ष्मवित् ।

द्वारंहिशिरसोनासातेन तद्व्याप्यहन्तिताम् ॥ ८९ ॥

शिरके रोगोंमें नस्यकर्म करना सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि शिरका द्वार नासिका है और नस्य नासिका द्वारा शिरमें पहुंचकर शिरके रोगोंको नष्ट कर देतीहै ॥ ८९ ॥

नस्यके ५ भेद ।

नावनश्चावपीडश्चध्मापनंधूमएवच ।

प्रतिमर्पश्चविज्ञेयोनस्तःकर्मतुपञ्चधा ॥ ९० ॥

नावन, अवपीडन, ध्मापन, धूम और प्रतिमर्प यह नस्यके पांच भेद हैं ॥ ९० ॥ स्नेहनः शोधनश्चैवद्विविधंनावनंस्मृतम् । शोधनःस्तम्भनश्चस्यादवपीडोद्विधामतः ॥ ९१ ॥ चूर्णस्याद्ध्मापननामदेहस्रोतोविशोधनम् । विज्ञेयस्त्रिविधोधूमःप्रागुक्तःशमनादिकः ॥ ९२ ॥ प्रतिमर्पोभवेत्स्नेहोनिर्दोषउभपार्थकृत् । एवंतद्रेचनंकर्मतर्पणंशमनंत्रिधा ॥ ९३ ॥

स्नेहन और शोधन भेदसे नावन नस्य दो प्रकारका होता है । शोधन और स्तम्भन भेदसे अवपीडननस्य दो प्रकारका होता है दोमुखी नलकी द्वारा नस्यचूर्णको देहस्रोतोंकी शुद्धिके लिये नासिकामें फूंकनेको ध्मापन नस्य कहते हैं । धूमनस्य शमनादि भेदसे तीन प्रकारी होती है यह पहिले कह आये हैं । प्रतिमर्पमें स्नेहका प्रयोग किया जाता है यह संशमन और संशोधन इन दोनों गुणोंको करता है तथा निर्दोष होता है । इस प्रकार रेचन, तर्पण और शमन यह नस्यके तीन प्रकारके कर्म हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

नस्यभेदसे साध्य रोग ।

स्तम्भसुप्तिगुरुत्वाद्याःश्लैष्मिकायेशिरोगदाः ।

शिरसोरेचनंतेपुनस्तःकर्मप्रदास्यते ॥ ९४ ॥

मस्तककी स्तम्भता, सुप्ति, मस्तकका भारीपन और कफजन्य शिरोरोगोंमें रेचनी नस्यका प्रयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ९४ ॥

येचवातात्मकारोगाःशिरःकम्पार्दितादयः ॥

शिरसस्तर्पणंतेपुनस्तःकर्मप्रवक्ष्यते ॥ ९५ ॥

शिरःकंप, अर्दित आदि वातजनिक रोगोंमें तर्पण, नस्य अर्थात् स्नेहद्वारा मस्तकको वृत्त करना श्रेष्ठ है ॥ ९५ ॥

रक्तपित्तादिरोगेषुशमनंनस्यमिष्यते ।

रक्तपित्तादि रोगोंमें शमन नस्यका प्रयोग करना चाहिये ॥

ध्मापनंधूमपानञ्चयथायोग्येषुशस्यते ।

दोषादिकंसमीक्ष्यैवभिवक्सम्यक्चकारयेत् ॥ ९६ ॥

दोष भेद आदि विचारकर वैद्य विधिवत् ध्मापन और धूमनस्यका ध्मापन और धूमनस्यका योग्य रोगोंमें प्रयोग करे ॥ ९६ ॥

विरेचन नस्य ।

फलादिभेषजंप्रोक्तशिरसोयद्विरेचनम् ।

तच्चूर्णकल्पयेत्तेनपचेत्स्नेहंविरेचनम् ॥ ९७ ॥

जो फलमूल आदि शिरोविरेचन द्रव्योंको कथन कर आये हैं उनका बारीक चूर्ण कर अथवा उनके कल्क द्वारा स्नेह सिद्धकर शिरोविरेचन करना चाहिये ॥ ९७ ॥

तर्पण नस्य ।

यदुक्तंमधुरस्कन्धेभेषजंतेनतर्पणम् ।

साधयित्वाभिषक्त्वेहंनस्तःकुर्व्याद्विधानवित् ॥ ९८ ॥

विमानस्थानमें मधुरस्कंधमें जिन द्रव्योंका कथन कर आये हैं उन द्रव्योंसे सिद्ध किये स्नेहसे विधिको जाननेवाला वैद्य तर्पण नस्यका प्रयोग करे ॥ ९८ ॥

नस्यकर्मविधि ।

प्राक्सूय्यैर्मध्यसूय्यैर्वाकुर्व्यात्तर्पणमेवच । उत्तानस्यशयानस्यशय-
नेस्वास्तृतेसुखम् ॥ ९९ ॥ प्रलम्बशिरसःकिञ्चित्किञ्चित्पादोन्न-
तस्यच । दद्यान्नासापुटेस्नेहंतर्पणंबुद्धिमान्भिषक् ॥ १०० ॥

तर्पण औषधी सूर्योदयसे पहिले अथवा मध्याह्नमें प्रयोग करनी चाहिये । रोगीको सीधा लेटाकर शिरको जरा पीछेकी ओर नीचाकर मुखपूर्वक लिटा दोनों पांव किंचित् ऊपरको रखेफिर बुद्धिमान् वैद्य उसके दोनों नासापुटोंमें तर्पण स्नेहका प्रयोग करे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अनवाक्शिरसो नस्यं नशिरःप्रतिपद्यते । अत्यवाक्शिरसो नस्यं म-
स्तुलुक्तेचतिष्ठते ॥ १०१ ॥ अतएवशयानस्यशुद्ध्यर्थस्वेदयेच्छिरः।
संस्वेद्यनासामुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा ॥ १०२ ॥ हस्तेनदक्षिणे-
नाथदद्यादुभयतःसमम् । प्रणाड्यापिचुनावापिनस्तःस्नेहंयथावि-
धि ॥ १०३ ॥ कृतेचस्वेदयेद्भ्रूयथाकर्पेचपुनःपुनः । तस्नेहंश्लेष्मणा
सार्द्धतथास्नेहोनातिष्ठति ॥ १०४ ॥

शिरको पीछेकी ओर बिना झुकाये जो तर्पणनस्य प्रयोग किया जाता है वह शिरमें न पहुंचकर बाहर निकल आता है जो शिरको अत्यंत नीचा झुका दिया जाय तो वह स्नेह मस्तकके भेजेमें पहुंच जाता है । इसलिये मस्तकशुद्धिके लिये प्रथम रोगीके मस्तकको स्वेदन करे । फिर बायें अंगुठेके पोरवेसे नासिकाको जरा उठाकर दाहिने हाथसे नाकके छिद्रोंमें नलीके साथ अथवा रुईका फोहा स्नेहमें भिगोकर विधिपूर्वक दोनों नासिकाओंमें स्नेह टपकावे । इस प्रकार नस्यकर्म करके फिर स्वेदन करे । स्वेदन करनेसे वह संपूर्ण स्नेह कफको लेकर बाहर निकल आता है । और मस्तकमें नहीं ठहर सकता ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

स्वेदेनोत्क्लेशितःश्लेष्मानस्तःकर्मण्युपस्थितः । भूयःस्नेहस्यशैत्येन
शिरसिस्त्यायतेततःश्रोत्रमन्यागलाद्येपुविकारायसकलरते ॥ १०५ ॥

स्वेदन द्वारा उत्क्लेशित हुआ कफ मस्तकसे चलायमान हो जाता है वह स्नेहकी शीततासे गाढा होकर कान गर्दन और गल आदिमें विकारोंको उत्पन्न करता है ऐसा होनेपर फिर स्वेदन करना चाहिये ॥ १०५ ॥

नस्यके अनन्तरकर्म ।

ततो नस्तःकृते धूमं पिवेत्कफविनाशनम् । हितान्नं भुङ्क्विवातोष्णसे-
वीस्यान्नियतेन्द्रियः ॥ १०६ ॥

नस्यकर्मके अनन्तर कफनाशक धूमका प्रयोग करना हितकारी है तथा हितकारक अन्नका सेवन करना और निर्वात स्थानमें रहना और उष्णपदार्थोंको सेवन तथा जितेन्द्रिय रहना चाहिये ॥ १०६ ॥

अवपीडन और प्रध्मापन ।

विधिरेषोऽवपीडस्यकार्यः प्रध्मापनस्य च ।

पडङ्गुल्याथवानाड्याधमेच्चूर्णमुखेन वा ॥ १०७ ॥

यही विधि अवपीडन (गीली औषधीका रस नाकमें टपकाना) नस्यमें करनी चाहिये और प्रध्मापन नस्यके चूर्णको छः अंगुलकी नलीके रस मुखद्वारा नासा-
पुटमें फूंक मारकर पहुंचा देना चाहिये ॥ १०७ ॥

शिरोविरेचनके अनन्तरकर्म ।

विरिक्तशिरसन्तूर्णपाययित्वा म्बुभोजयेत् ।

लघुत्रिष्वविरुद्धश्चनिवातस्थमतन्द्रितः ॥ १०८ ॥

शिरोविरेचनके अनन्तर रोगीको गर्मजल पिलाकर हल्का और त्रिदोषके अवि-

रार्धी अथवा तीनों प्रकारके नस्यके अविरधी भोजन करावे और निर्वातस्थानमें सावधानीसे रखे तथा दिनमें सोने न देवे ॥ १०८ ॥

विरेकशुद्धौदोषस्यकोपनंयस्यसेवते । सदोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वा-
न्गदान्वहून् । यथास्वविहितंतेपुक्रियांकुचर्याद्विचक्षणः ॥ १०९ ॥

अकालकृतजातानारोगाणामनुरूपतः ॥ ११० ॥

गिरोविरचनसे शुद्ध होजानेपर जिस दोषके कुपित करनेवाले हेतुओंका सेवन कियाजाय वही दोष विचरण करताहुआ अपने गुणवाले अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै । उन रोगोंमें यथा दोषानुसार चिकित्साकर बुद्धिमान् उन रोगोंको शान्त करे । बिना समय नस्य प्रयोग करनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनकी भी उन रोगोंके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०९ ॥ ११० ॥

नस्यकर्मका अकाल और उनमें हुए रोगोंके यत्न ।

अजीर्णंभोजनेभुक्तेतोयपीतेऽथदुर्दिने । प्रतिश्यायेनवेस्नानेस्नेहपा-
नेऽनुवासने । नावनंस्नेहनंरोगान्करोतिश्लेष्मिकान्वहून् । तत्रश्ले-
ष्महरःसर्वस्तीक्ष्णोष्णादिविधिर्हितः ॥ १११ ॥

अजीर्णमं, भोजनके अनन्तर, जल पीनेके अनन्तर वर्षा आदिसे दूषित दिनमें, प्रतिश्यायमें, स्नानके अनन्तर, स्त्रेक्षणके अनन्तर, अनुवायनके अनन्तर, जो नस्यकर्म किया जाताहै वह अकालकृत नस्यकर्म है अर्थात् इन समयोंमें नस्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये । अर्थात् ऐसे समयोंमें नस्यकर्म करनेसे अनेक प्रकारके कफजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । इन रोगोंमें प्रायः कफनाशक और तीक्ष्ण उष्णादि विधिका सेवन करना हितकारक है ॥ १११ ॥

क्षामेविरचनेगर्भेव्यायामाभिहतेष्वपि ॥ ११२ ॥ वातोरुक्षेणन-
स्येनकुच्छस्ताजनयेद्गदान् । तत्रवातहरःसर्वोविधिःस्नेहनघृंह-
णः ॥ ११३ ॥ स्वेदादिःस्याद्दृत्क्षीरंगर्भिण्यास्तुविशेषतः ॥ ११४ ॥

क्षीण मनुष्य, विरेचनके अनन्तर, गर्भवती स्त्री, और व्यायामसे थकेहुए मनु-
ष्योंको यदि रुक्ष नस्यका प्रयोग किया जाय तो वायु कुपित होकर वातजनित रोगोंको उत्पन्न करती है । ऐसा होनेपर वातनाशक संपूर्ण किया और स्नेहन, घृंहण स्वेद आदि क्रिया हितकारी है तथा स्नेहन, घृंहण, घृत और दूधका प्रयोग भी हितकारी है । और गर्भिणी स्त्रियोंके लिये तो विशेषकर स्नेहन, घृंहण, घृत, दूधका प्रयोग करना हितकारक है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

ज्वरशोकाभित्तानांतिमिरंमद्यपस्यच । रुक्षैः सेकाअनैर्लेपैःपुट-
पाकैश्चशोधयेत् । तेनज्वरादयस्तत्रप्रशमंयान्तितस्यतु ॥ ११५ ॥

ज्वरसे पीडित और शोकसे संतप्त तथा मद्य पीनेवाले मनुष्यको तिमिर प्रतीत होने लगे तो उसको रुक्ष, सेक, अंजन, लेप पुटपाकों द्वारा शोधन करे । ऐसा करनेसे उसके ज्वरादि शान्त हो जाते हैं ॥ ११५ ॥

प्रतिमर्प नस्यकेगुण ।

स्नेहनंशोधनञ्चैवद्विविधंनस्यमुच्यते ।

प्रतिमर्पश्चनस्यार्थकरोतिनचदोषवान् ॥ ११६ ॥

स्नेहन और स्वेदन भेदसे नस्य दो प्रकारका होताहै । प्रतिमर्प नस्य इन स्नेहन और शोधन दोनों गुणोंको करताहै और किसी प्रकारका अत्रगुण नहीं करता॥११६॥

नस्तःस्नेहाहुलिदद्यात्प्रातर्निशिचसर्वदा ।

नचोत्सिहेदरोगाणांप्रतिमर्शःसदादर्यकृत् ॥ ११७ ॥

नित्य प्रति स्नेहमें अंगुली भिगोकर रात्रिके समय और प्रातःकालमें नाकके छिद्रोंमें लगावे और निश्वास द्वारा बलपूर्वक अंगुलीके स्नेहको आकर्षण करे अर्थात् सूंघे । इसको प्रतिमर्प, शमन नस्य कहतेहैं । यह शमन प्रतिमर्प नस्य आरोग्य मनुष्योंको भी दृढता संपादन करनेवाला है ॥ ११७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ ।

त्रीण्यस्मात्प्रधानानिमर्माण्यभिहतेषुच । तेषुलिङ्गंचिकित्साश्च

रोगभेदाश्चसौषधाः ॥ ११८ ॥ विधिरुत्तरवस्तेश्चनस्तः कर्मविधि-

स्तथा । पद्भ्यापद्भ्यजंसिद्धौमर्माध्यायेप्रकीर्तितम् ॥ ११९ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेत्रिमर्मीयसिद्धिर्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि, इस त्रिमर्मीय सिद्धिनामक अध्यायमें हृदय आदि तीन प्रधान मर्मोंमें किसी प्रकारका आघात लगनेसे जो उपद्रव होतेहैं उन सबके लक्षण चिकित्सा और इन तीनों मर्मोंके भिन्न भिन्न रोग, उनके भेद, चिकित्साविधि, उत्तरवस्तिकी विधि, नस्यकर्म विधि, छः प्रकारकी व्यापत्तियें और उनकी चिकित्सा यह सब वर्णन कियाहै ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

इति श्री०च०प्र०आ०सं०सिद्धिस्थाने प्र०भा०टी०त्रिमर्मीयसिद्धिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातो वस्तिसिद्धिं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवान्नात्रेयः ।

अब हम वस्तिसिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् वात्रेयजी कहने लगे ॥

सिद्धानां वस्तीनां शस्तानां तेषु तेषु पुरोगेषु ।

शृण्वन्निवेशगदतः सिद्धिसिद्धिप्रदां भिषजाम् ॥ १ ॥

जो जो प्रत्यक्ष फलको देनेवाली वस्तियें जिन २ रोगोंमें उपयोग की जाती हैं, और वह सिद्ध वस्तियें वैद्योंको सदैव सिद्धिको देनेवाली हैं हे अग्निवेश ! अब उनको सुनो ॥ १ ॥

बलदोषकालरोगप्रकृतीः प्रविभज्ययोजितः सम्यक् ।

स्त्रैः स्त्रैरौषधवर्गैः स्वान्स्वान्नोगान्नियच्छति ॥ २ ॥

बल, दोष, काल और प्रकृतिको विचारकर संपूर्ण वातादि-रोगोंमें उन रोगोंको नाश करनेवाली औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए वस्तियोग भले प्रकार प्रयोग करनेसे उन संपूर्ण रोगोंको दूर करतीहैं ॥ २ ॥

कर्मान्यद्दस्ति समं न विद्यते शीघ्रसुखविशोधित्वात् ।

आश्र्वपतर्पणयोगात्सर्वेषां निरत्ययत्वाच्च ॥ ३ ॥

वस्तिके बराबर और कोई क्रिया शीघ्रही सुखपूर्वक शोधन करनेवाली नहीं है । यह शीघ्र दोषोंको निकाल देतीहै और कोई उपद्रव भी नहीं करतीहै ॥ ३ ॥

सत्यपि दोषहरत्वे कटुतीक्ष्णोष्णादिभेषजादीनाम् ।

सदुःखोद्द्वारा हृद्यत्वकोष्ठावाधा विरेकेस्युः ॥ ४ ॥

यद्यपि दोषोंको हरण करनेके लिये कटु, तीक्ष्ण और उष्ण आदि औषधियें हैं परन्तु वह दुःखसे खायीजातीहैं और अहृद्य अर्थात् हृदयको विगाडती हैं और चुरी डकारें आने लगती हैं । तथा विरेचन होनेमें कोष्ठमें अनेक प्रकारकी बाधा होतीहै ॥ ४ ॥

आस्थापन योग्य मनुष्य ।

अविरेच्योऽशिशुवृद्धौ हितावदप्राप्तहीनधातुवलो । आस्थापनमेव तयोः सर्वार्थकृत्तमं कर्म । बलवर्णहर्षमार्दवगात्रस्नेहान्नृणां ददत्याशु ॥ ५ ॥

बालक और वृद्ध विरेचन करानेके योग्य नहीं होते क्योंकि बालक तो अप्राप्त

धातुबल होताहै और वृद्ध क्षीणधातु तथा हीनबल होताहै । इसलिये बालक और वृद्धोंको आस्थापन वस्तिका प्रयोग करनाही सब प्रकार गुणकारी और उत्तम चिकित्सा है । आस्थापन वस्ति इनके बल, वर्ण, हर्ष, शरीरकी मृदुता और अंगोंमें चिकनाई इन सब गुणोंको शीघ्र करनेवाली है ॥ ९ ॥

त्रिविध वस्ति ।

अनुवासननिरुहश्चोत्तरवस्तिश्चसत्रिविधः ॥ ६ ॥

वस्ति—अनुवासन, निरुहण और उत्तर वस्ति इन भेदोंसे तीन प्रकारकी होतीहै ॥ ६ ॥

वस्तिके गुण ।

शाखावातार्त्तानांसङ्कुचितस्तब्धभग्नसन्धीनाम् ।

विदसद्गन्धानारुचिपरिकर्त्तुरुगादिपुचशस्तः ॥ ७ ॥

वस्ति प्रयोग करनेसे शाखागत वात, अंगसंकोच, स्तम्भ, संधियोंका ढीला पडना अथवा टूटना, विष्ठाका अवरोध, अरुचि, परिकर्त्तिका आदि पीडाओंकी शान्तिके लिये अति श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

उष्णार्त्तानांशीताञ्शीतार्त्तानांतथासुखोष्णांश्च ।

तद्योगौपधयुक्तान्वस्तीन्सर्वत्रविनियुञ्ज्यात् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य उष्णतासे पीडित हैं उनको शीतलवस्तिका प्रयोग करना चाहिये और जो शीतसे पीडित हैं उनको सुखोष्ण वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । जिस रोगमें वस्तिका प्रयोग करना हो उस रोगको शान्त करनेवाली औषधियोंसे सिद्धकर सब रोगोंमें वस्ति प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥

शोधनीयरोगोंमें वृंहणका निषेध ।

वस्तीन्नवृंहणीयान्दद्याद्भ्याधिपुविशोधनीयेषु ।

मेदस्विनोविशोध्यायेचनराःकुष्ठमेहार्त्ताः ॥ ९ ॥

शोधनके योग्य रोगोंमें वृंहणवस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये । और मेदस्वी वमन, विरेचन द्वारा शोधन योग्य, कुष्ठ रोगी और मधुमेहवालेके कभी भी आस्थापन (वृंहण) वस्ति नहीं देना चाहिये ॥ ९ ॥

वृंहणीयोंमें शोधनका निषेध ।

नक्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कमेहानाम् ।

युञ्ज्याद्विशोधनीयान्दोषनिवह्नायुषोयेच ॥ १० ॥

क्षत, क्षीण, दुर्बल, मूर्च्छित, कृश और सूखी हुई देहवाले मनुष्योंको संशोधन वस्ति नहीं देना चाहिये । और जो मनुष्य जन्मसे ही रोगग्रस्त रहतेहैं अथवा जिनकी आयुसे दोष बंधेहुए हैं उनको भी संशोधन वस्ति नहीं देना चाहिये ॥ १० ॥

रोगविशेषसे वस्तिविशेष ।

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्चमधुघृतपयोयुताःसर्वे ।

शस्ताःसतैलमूत्रारनाललवणाश्चकफवाते ॥ ११ ॥

क्षय आदि वाजीकरण योग्य रोगोंमें और रक्तपित्तमें शहद, घृत और दूध मिलाकर वस्तिप्रयोग करना चाहिये । और कफवातमें तेल, गोमूत्र, कांजी और नमक मिलाकर वस्ति प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥

वस्तिमें प्रयोगकियेजानेके द्रव्य ।

युञ्ज्याद्द्रव्याणिवस्तिष्वम्लंमूत्रंपयःसुराकाथान् ।

अविरोधाद्घातूनारसयोनित्राञ्चजलमुष्णम् ॥ १२ ॥

कांजी, गोमूत्र, दूध, सुरा और काथ आदि जो द्रव्य वस्तिमें प्रयोग करें उनमें जो रोगीकी धातुका विरोधी हो वह नहीं मिलाना चाहिये । जल सब धातुओंका अविरोधी है और रसोंका योनि है इसलिये किंचित् उष्ण जल वस्तिमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

सुरदारुशताह्वैलाकुष्ठंमधुकापिप्पलीमधुस्नेहाः । ऊर्ध्वानुलोमभागाः

ससर्षपाःशर्करालवणम् ॥ १३ ॥ आवापोवस्तीनामतःप्रयोज्यानि

येषुयानिस्युः । युक्तानिसहकषायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यामि ॥ १४ ॥

देवदारु, सौंफ, इलायची, कूठ, मुलैठी, पीपल, शहद, स्नेह, और मैमफल आदि वमन-कारक द्रव्य, निशोथ आदि विरेचनकारक द्रव्य और सरसों, खांड, सेंधानमक, यह सब कल्क बनाकर वस्तिमें मिलाने योग्य हैं । इनमेंसे जिस समय जो द्रव्य वस्तिमें प्रयोग करना उचित हो उसका प्रयोग करे । अब वस्तिमें प्रयोग करनेके क्वाथ द्रव्योंको कथन करतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

चिरजातकठिनवलिपुण्याधिपुंतीक्ष्णाविपर्ययेमृदवः ।

सप्रतिवापकषायैर्योज्यास्त्वनुवासननिरूहाः ॥ १५ ॥

बहुत पुराने, कठिन और बलवान् रोगोंमें तीक्ष्ण द्रव्योंके फल्क, क्वाथोंसे सिद्ध कीहुई निरूहण और अनुवासन वस्तिकी प्रयोग करना चाहिये । जो रोग शोडे

दिनसे उत्पन्न हुए हैं और जो व्याधि दुर्बल हैं उनमें मृदुवीर्य द्रव्योंके कल्क, कायोसे निरूहण और अनुवासन करना चाहिये ॥ १५ ॥

अर्द्धश्लोकैरतःसिद्धान्नानाव्याधिपुवर्गशः ।

वस्तीन्वीर्यसमैर्भागेर्यथार्हानिहताञ्शृणु ॥ १६ ॥

अब अनेक रोगोंकी शांतिके लिये आवे २ श्लोकमें यथावीर्य और भांगानुसार जिन रोगनाशक योगोंका वर्णन करतेहैं उन हितयोगोंको मुनो ॥ १६ ॥

वातनाशक योग ।

विल्वाग्निमन्थद्वयोणाकाःकाद्रमर्यःपाटलिस्तथा । शालपर्णीपृ-
श्निपर्णीवृहत्स्यैवर्द्धमानकः ॥ १७ ॥ यवाःकुलत्थाःकोलास्थिस्थि-
राचेतित्रयोऽनिले । शस्यन्तेसचतुःक्षेहापिशितस्वरसान्विताः ॥ १८ ॥

१ बेलकी गिरी, अरणी, सोनापाठा, कुंभेर और पाद ॥ २ शालपर्णी, पृश्नि-
पर्णी और कटेली दोनों एरण्डकी जड़ । ३ कुल्यी, यव, बेरकी गुठली और शाल-
पर्णी । यह तीन योग वातनाशक हैं । इनके पृथक् २ क्वाथोंमें चतुःश्लेह और मांस-
रस मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे वातरोग शान्त होजातेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

पित्तनाशक योग ।

नलवज्जलवानीरशतपत्राणिशैबलम् । मञ्जिष्ठाशारिवानन्ताप-
यस्यामधुयष्टिका ॥ १९ ॥ चन्दनंपद्मकोशीरंतुङ्गश्चपैत्तिकेत्रयः ।
सशर्कराघृतक्षौद्राःसक्षीरावस्तयोहिताः ॥ २० ॥

१ नरसलकी जड़, बंजुल (पानीमें होनेवाली लताविशेष), वैत, कमल और
पानीकी काई । २ मंजीठ, शारिवा, कृष्णशारिवा, क्षीरकाकोली और मुल्लैठी ।
३ लालचंदन, पद्मकाष्ठ, खस और तुंगकी छाल । इन तीन योगोंमेंसे किसी एकके
स्वायमें खांड, शहद, घृत और दूध मिलाकर वस्ति करनेसे पित्तरोग शान्त
होतेहैं ॥ १९ ॥ २० ॥

कफनाशक वस्तियोग ।

अर्कस्तथैवचालर्कएकाष्टीलापुनर्नवा । हरिद्रात्रिफलामुस्तंपीतदा-
रुकुटन्नटम् ॥ २१ ॥ पिप्पल्यश्चित्रकश्चेतित्रयस्तेऽश्लेष्मरोगि-
णाम् । सक्षारक्षौद्रगोमूत्रानातिक्षेहान्विताहिताः ॥ २२ ॥

१ सफेद आक और लाल आककी जड़की छाल, अगस्तिया वृक्षकी छाल और
पुनर्नवा । २ हल्दी, त्रिफला, नागरमोथा, दारुहल्दी और केवटी मोथा । ३ पीपल

और चित्रककी जड़की छाल । इन तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगके फायमें जवा-
खार, शहद गोमूत्र और किंचित् कडुवा तेल मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे कफके
रोग दूर होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

पक्वाशयशोधक योग ।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकवत्सकाः । श्यामाचत्रिफलाचैव
स्थिरादन्तीद्रवन्त्यपि ॥ २३ ॥ प्रकीर्याचोदकीर्याचनीलिनी
क्षीरिणीतथा । सप्तलाशंखिनीलोध्रंफलंकाम्पिल्लकस्यच ॥ २४ ॥
चत्वारोमूत्रसिद्धास्तेपक्वाशयविशोधनाः । व्यस्तैरपिसमस्तैश्च-
तुर्योगाउदाहृताः ॥ २५ ॥

१ मैनफल, जीमूतक, इक्ष्वाकु, धामार्ग व और कुडा । २ श्यामा, निशोथ, त्रिफला,
शालपर्णी, दंती और द्रवती । ३ करंज, उताकरंज, नीलिनी और क्षीरणी । ४ सात-
ला, शंखिनी, लोध, मैनफल और कमीला इन ४ योगोंमेंसे किसी एक योगका
कलक और क्वाथ गोमूत्रमें मिलाकर वस्ति करनेसे पक्वाशयकी शुद्धि होती है । यह
पक्वाशयशोधक चार योग कहे हैं । इनका पृथक् २ अथवा मिलाकर प्रयोग करने-
से पक्वाशय शुद्ध होजाता है ॥ २३-२५ ॥

वीर्यवर्द्धक योग ।

काकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीशतावरी । विदारीमधुयष्ट्याह्वाश्रु-
ङ्गाटककशेरुके ॥२६॥ आत्मगुप्ताफलंमापाःसगोधूमायवास्तथा ।
जाङ्गलानूपजंमांसमित्येतेशुक्रवर्द्धनाः ॥ २७ ॥

१ काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी और शतावर । २ विदारीकंद, मुलेठी, तिंवा-
डे और कसेरू । ३ कौंचके बीज, उडद, गेहूँ और मव । ४ जंगली और अनूप
संचारी जीवोंके मांस । यह चार योग वीर्यवर्द्धक हैं । इनमेंसे किसी एकका
क्वाथ अथवा सबका क्वाथ, कलक मिलाकर वस्ति करनेसे वीर्यकी वृद्धि होती है २६-२७

संप्राप्ति योग ।

जीवन्तीचाशिमन्थश्चधातकीपुष्पवत्सकौ । प्रग्रहःखदिरःकुष्ठंश-
मीपिण्डीतकोयवाः ॥ २८ ॥ प्रियङ्गुरक्तमूलीचतरुणीस्वर्णयूथि-
का । वटाद्याःकिंशुकंलोध्रमितिसांप्राहिकामताः ॥ २९ ॥

१ जीवन्ती, अरणी, धोषके फूल और कुडा । २ प्रमद (कर्णिकार), खिर, कूड,

शमीवृक्ष, पिण्डीतक और यव । ३ पुष्प प्रियंगु, रक्त मूली (लाजवंती) धीकुंवार-
और स्वर्णयुथिका । ४ वड आदि क्षीरी वृक्ष, ढाक और लोघ । यह चार योग
संग्राही हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

परिस्रावनाशक योग ।

परिस्रवेश्रुतक्षीरसवृश्चीरपुनर्नवम् ।

आखुपर्णिकयावापितण्डुलीयकयुक्तया ॥ ३० ॥

सफेद पुनर्नवा और लालपुनर्नवासे सिद्ध किया दूध । अथवा आखुपर्णी और
चवलाईकी जड़से सिद्ध किया दूध वस्ति द्वारा प्रयोग करनेसे परिस्रावको दूर
करता है ॥ ३० ॥

दाहनाशक योग ।

कोलकतककाण्डेक्षुदर्भकालेक्षुशालिभिः ।

दाहघ्नःसघृतक्षीरोद्वितीयश्चोत्पलादिभिः ॥ ३१ ॥

बेरके पत्र, वा बेरकी मींगी, निर्मलीफल, कांडेक्षु, कुशाकी जड़, ईखकी जड़
और शालीधान्यकी जड़के कल्कसे सिद्ध किये दूध और घृत द्वारा वस्ति करनेसे दाह-
की शान्ति होती है । तथा उत्पलादि, गणके साथ सिद्ध कियाहुआ दूध, घृत भी
दाहको दूर करताहै ॥ ३१ ॥

कर्बुदाराढकीनीपविदुलैःक्षीरसाधितैः ।

वस्तिःप्रदेयोभिपजाशीतःसमधुशर्करः ॥ ३२ ॥

सफेद कचनार, अरहरकी जड़, कदम्बकी छाल और बेतसकी छालसे किया दूध
टंडा होनेपर उसमें शहद और मिसरी मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे भी
दाह शान्त होताहै ॥ ३२ ॥

परिकर्तिका व प्रवाहिका नाशक योग ।

परिकर्तैस्तथावृन्तैःश्रीपर्णीकोविदारजैः । देयोवस्तिःसुवैद्यैस्तुय-

थावद्विदितक्रियैः ॥ ३३ ॥ मुष्टिःशाल्मलिवृन्तानांक्षीरसिद्धोघृता-

न्वितः । हितःप्रवाहणेत्तद्दृन्तैःशाल्मलिकस्थच ॥ ३४ ॥

कुंभेर और लाल कचनारके फूलोंकी डण्डियोंके कल्कसे सिद्ध किया दूध घृत
मिलाकर वस्ति करनेसे परिकर्तिका दूर होती है । अथवा सेंमलके फूलोंके ऊपरकी
टोपीयुक्त डण्डीका एक पल कल्क लेकर उससे सिद्ध किया दूध घृत युक्तकर वस्ति
करनेसे परिकर्तिका दूर होतीहै । और इसीप्रकार सेंमलके फूलोंकी डण्डियोंसे सिद्ध
किये दूधसे वस्ति कीजानेपर प्रवाहिका होतीहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अतियोग नाशक योग ।

अश्रावरोहिकाःकाकनासाराजकशेरुकैः । सिद्धाःक्षीरेऽतियोगेस्युः
क्षौद्राञ्जनघृतैर्युताः ॥ ३५ ॥ न्यग्रोधाद्यैश्चतुर्भिश्चतेनैवविधिना-
परः । वस्तिःप्रवाहणेदेयोभिषजाकल्पितोधिया ॥ ३६ ॥

असगंध, काकनासा और भद्रमोयेके कल्कसे सिद्ध किया दूध ठंडा करके उसमें शहद, अंजन (काला सुरमा या रसीत) और घृत मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे विरेचनका अतियोग दूर होताहै । इसीप्रकार बड, गूलर, पीपल, पिलखन और वेततके छिलकोंसे सिद्ध कियाहुआ दूध पूर्वोक्त विधिसे शीतलकर शहद आदि मिलाकर विधिवत् वस्ति प्रयोग करे तो विरेचनका अतियोग दूर होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

बृहतीक्षीरकाकोलीपृश्निपर्णीशतावरी । काश्मरीबदरीदूर्वातथो-
शीरप्रियङ्गवः ॥ ३७ ॥ जीवनीयैःश्रुतौक्षीरौद्रौघृताञ्जनसंयुतौ ।
वस्तीप्रदेयोभिषजाशीतौसमधुशर्करौ ॥ ३८ ॥

१ बडी, कटेली, क्षीरकाकोली, पृश्निपर्णी और शतावर । कुंमेरके फल, बेरके पत्ते, दुब, खस और प्रियंगु इन दोनोंमेंसे किसी एकके क्वाथ वा कल्कसे सिद्ध किये दूधमें जीवनीयगणका कल्क, घृत, अंजन, शहद और खांड मिलाकर वस्ति-प्रयोग करनेसे विरेचन आदिका अतियोग दूर होताहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

गोऽन्यजामहिषीक्षीरैर्जीवनीययुतैस्तथा ।

तेनैवविधिनावस्तिर्देयःसक्षौद्रशर्करः ॥ ३९ ॥

इसीप्रकार गौ, भैंस, भेड, बकरी इन सबके दूध और जीवनीयगणके कल्क, घृत, शहद, और खांड मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे अतियोगका विकार शान्त होताहै ॥ ३९ ॥

अतियोगमें रक्तक्षय होनेपर योग ।

शशैणदक्षमार्जारमहिषाव्यजशोणितैः ।

सद्यस्केर्मृदुभिर्वस्तिर्जीवादानेप्रशस्यते ॥ ४० ॥

अतियोगमें शुद्ध रक्तके निकलजानेपर शशा, काला हिरण, मुर्गा, चिल्ला, भैंसा, मेंढा और बकरी इनमेंसे किसी एकका तत्कालमें निकालाहुआ रक्त वस्तिद्वारा प्रयोग करना चाहिये ॥ ४० ॥

मधुकमधुकद्राक्षादूर्वाकाश्मर्य्यचन्दनैः ।

शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः ॥ ४१ ॥

अथवा महुएके फूल, मुलैठी, दाख, दूर्वा, कुंभेरके फल और लालचंदन । वाखांड, लालचंदन, दाख, मुलैठी, आमले और नीलकमल इनके कल्क और दूध, घृत, मिलाकर वस्तिप्रयोग करना अतियोग द्वारा रक्त निकलजानेमें हितकारक है ॥ ४१ ॥

रक्तपित्तप्रमेहेतुकपायःसोमवल्कजः ।

वस्तिर्देयोविधिज्ञेनभिपजायुक्तिकल्पितः ॥ ४२ ॥

रक्तपित्त और प्रमेहमें सफेद खैरके क्वाथकी वस्तिविधिको जाननेवाला वैद्य युक्तिपूर्वक प्रयोग करे ॥ ४२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

त्रिकास्त्रयोऽनिलादीनांचतुष्काश्चापरेत्रयः । पक्वाशयविंशुद्धयर्थ

वृष्याःसांग्राहिकास्तथा ॥ ४३ ॥ परिस्त्रावेतथादाहेपरिकर्त्तप्रवाह-

णे । अतियोगेमतःपंचजीवादानेतथात्रयः ॥ ४४ ॥ रक्तपित्तेद्रयं

मेहएकत्रिंशच्चपञ्चच । सुलभाश्चौपधक्केशावस्तयोगुणवत्तमाः

॥ ४५ ॥ गल्मातिसारोदावर्त्तस्तम्भसंकुचितादिपु । सर्वाङ्गैकाङ्ग-

रोगेपुरोगेष्वेवंविधेषुच ॥ ४६ ॥ यथास्वमौपधैःसिद्धान्वस्तीन्दद्या-

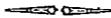
द्विचक्षणः । पूर्वोक्तेनविधानेनकुर्याद्रोगान्पृथग्विधान् ॥ ४७ ॥

इतिश्रीच० सिद्धिस्थाने वस्तिसिद्धिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि, इस वस्तिसिद्धिनामक अध्यायमें वातनाशक तीन योग, पित्तनाशक तीन योग, कफनाशक तीन योग, पक्वाशयकी शोधनकरनेवाले चार योग, वीर्यवर्द्धक तीन योग संग्राही तीन योग, परिस्त्रावनाशक तीन योग, दाहनाशक दो योग, परिकर्त्तिकानाशक दो योग, प्रवाहिकानाशक एक योग, अतियोगमें पांच योग, रक्तक्षयमें तीन योग, रक्तपित्त और प्रमेहमें एक योग । इसप्रकार ३६ योग मुलभ और सिद्ध वस्तियोंके वर्णन कियेहैं । तथा शुल्म, अतिसार, उदावर्त्त, स्तम्भ, संकोच सर्वांगवात, एकांगवात तथा और इसीप्रकारके रोगोंमें उन रोगोंके नाश करनेवाली औषधियोंसे रोगानुसार पृथक् २ वस्तियोंका वर्णन कियाहै उनको बुद्धिमान् वैद्य रोगानुसार पूर्वोक्त विधिसे प्रयोग करे ॥४३-४७ ॥

श्री० च० प्र० आ०सं० सिद्धिस्थाने प्र०भा०टी० वस्तिसिद्धिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।



अथातःफलमात्रासिद्धिव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम फलमात्रासिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

भगवन्तमुदारसत्त्वधीश्रुतिविज्ञानसमृद्धमत्रिजम् । फलवस्तिव-
रत्वनिश्चयेसविवादासुनयोष्युपागमन् ॥ १ ॥ भृगुकौशिकका-
प्यशौनकाःसपुलस्त्यासितगौतमादयः । कतमत्प्रवरंफलादिपुस्मृ-
तमास्थापनयोजनास्विति ॥ २ ॥

श्रुति, विज्ञान, समृद्धि संपन्न, उदारसत्त्व, उदारबुद्धि भगवान् आत्रेयजीके समीप पहुंचकर भृगु, कौशिक, काप्य, शौनक, पुलस्त्य, असित, गौतम तथा और ऋषि भी आपसमें विवाद करतेहुए इसप्रकार जाननेकी इच्छा करनेलगे कि, आस्थापनमें प्रयोग करनेके लिये फलोंमें सबसे उत्तम कौन फल है ॥ १ ॥ २ ॥

आस्थापनविषयकफलोंमें ऋषियोंका विवाद ।

कफपित्तहरंपरंफलेष्वथजीमूतकमाहशौनकः । मृदुवीर्यतयाऽभि-
नत्तितदितिचोवाचनृपोऽथवामकः ॥ ३ ॥ कटुतुस्वीफलमुत्तमं
मतंवमनेदोषसमीरणञ्चतत् । तदयोग्यमशैत्यतीक्ष्णताकटुरौक्ष्या-
दितिगौतमोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥ कफपित्तनिवर्हणंपरंसचधामार्गवमि-
त्यमन्यत । तदमन्यतवातलंपुनर्वडिशोऽग्लानिकारं वलापहम् ॥ ५ ॥
कुटजंप्रशंसंचोत्तमंनवलप्लं कफपित्तहारिच । अतिविज्जलमृद्ध-
भागिकंपवनक्षोभिचकाप्यआहतत् ॥ ६ ॥ कृतवेधनमाहवात-
लंकफपित्तंप्रवलंहरेदिति । तदसाध्वितिभद्रशौनकःकटकश्चापिव-
लप्लमित्यपि ॥ ७ ॥

उनमें शौनक कहनेलगे कि, कफपित्तका नाशक होनेसे सब फलोंमें जीमूत (देवदालीका फल) श्रेष्ठ है । राजर्षि वामक कहनेलगे कि, जीमूतफल मृदुवीर्य होनेसे मलको यथोचित भेदन नहीं करताहै और कटुवी तुंडीका फल वमन करानेमें श्रेष्ठ है यह शीघ्र दोषोंको उखाडकर निकालदेताहै । गौतम कहनेलगे कि, कडवी तुंडी गर्म, तीक्ष्ण, कटु और रूक्ष होनेसे अयोग्य है इसलिये धामार्गव कफपित्तको दूर

करनेमें परम श्रेष्ठ है । वाडिश ऋषि कहने लगे कि धामार्गव वातल, ग्लनिकारक और बलको हरनेवाला है इसलिये कुडाके बीज (इन्द्रयव) सब प्रकारके फलोंमें उत्तम हैं क्योंकि यह बलको भी नहीं हरते और कफपित्तको हरण करनेवाले हैं काप्यऋषि कहने कि, इन्द्रयव अत्यंत पिच्छिल, ऊर्द्धगामी और वायुको क्षोभ करनेवाले होते हैं । परन्तु कृतवेधन वातकारक होनेपर भी प्रबल कफपित्तको नष्ट करता है इसलिये श्रेष्ठ है । भद्रशूनक कहने लगे कि, कृतवेधन श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि वह कटु और बलको नष्ट करनेवाला है ॥ ३-७ ॥

आत्रेयजीका समाधान ।

इतितद्रचनानिहेतुभिः सुविचित्राणि निशम्य बुद्धिमान् । प्रशंश-
सफलेषु निश्चयं परमं चात्रिसुतोऽन्नवीदिदम् ॥ ८ ॥ फलदोषगु-
णान्सरस्वतीप्रतिसर्वरपिसम्यगीरिता । नतुकिञ्चिददोषनिर्गुणं
गुणभूयस्त्वमतो विञ्चिन्त्यते ॥ ९ ॥

इस प्रकार ऋषियोंके विचित्र वाक्य और हेतुवादको मुनकर बुद्धिमान् आत्रेयजी ऋषियोंकी प्रशंसाकर फलोंके विषयमें परम निश्चयात्मक वाक्यको इस प्रकार कहने लगे कि, आप सबने इन फलोंके गुण और दोषोंको बहुत उत्तम रीतिसे वर्णन किया है परन्तु कोई भी फल निर्दोष और निर्गुण नहीं होता इसलिये विशेषरूपसे उनके गुणोंकी अधिकताका विचार करना चाहिये कि, किस समय किस रोगके लिये किस द्रव्यका प्रयोग अधिक गुणकारक होसकता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

इह कुष्ठहितागरागरीहितमिक्ष्वाकुतुमेहिनेमतम् । कुटजस्य फलं-
हृदामये प्रवरंकोठफलञ्च पाण्डुषु ॥ १० ॥ उदरे कृतवेधनं हितं मद-
नं सर्वगदाविरोधितु । मधुकंसकपायतिक्तकंतदरुक्षंकटुकञ्च विज्ज-
लम् ॥ ११ ॥ कफपित्तहृदाशुकारिचाप्यनपायंपवनानुलोमिच ।
फलनामविशेषतस्त्वतोलभतेऽन्येषु फलेषु सत्स्वपि ॥ १२ ॥

जीमूतफल कुष्ठरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ है । इक्ष्वाकुफल प्रमेहमें श्रेष्ठ है । कुटज फल हृद्रोगमें श्रेष्ठ है । कूठफल (कटुतुवी) पाण्डुरोगमें श्रेष्ठ है । कृतवेधन उदररोगमें श्रेष्ठ है । और मैनफल सब रोगोंमें अविरोधी होनेसे सर्वश्रेष्ठ है । मैनफल-मधुर किंचित् कसेला, तिक्त, अरुक्ष, कटु, पिच्छिल, कफपित्तको हरनेवाला, शीघ्र कार्यकर्ता, अनपायी और वायुको अनुलोमन करनेवाला है इसलिये सब फलोंमें मैनफलही उत्तम है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

शिष्योंका प्रश्न ।

गुरुणाचवचस्युदाहृतेमुनिसङ्घैरितिपूजितेततः । प्रणिपत्यमुदा-
समन्वितःसहितःशिष्यगणोऽनुपृष्टवान् ॥ १३ ॥ सर्वकर्मगुणकृ-
द्गुरुणोक्तोवस्तिरुद्धमतमर्थवेदिना । नाभ्यधोगुदगतश्चशरीरात्स-
र्वतःकथमपोहतिदोषान् ॥ १४ ॥

इसप्रकार गुरु आत्रेयजीके वचनको सुनकर मुनियोका समूह प्रसन्न हुआ और आत्रेयजीकी प्रशंसा करने लगा ऐसी अवस्था देखकर अग्निवेश आदि शिष्य प्रसन्न हो प्रणामपूर्वक पूछने लगे कि, हे गुरो ! आपने प्रथम कथन किया है कि, वस्ति सद्य कामोंकी करनेवाली और सर्वगुणकर्ता है वह वस्ति गुदाद्वारा नाभिसे नीचे शरीरके अधोभागमें पहुंचकर संपूर्ण शरीरमेंसे दोषोंको किसप्रकार आकर्षण करलेती है अर्थात् निकाल देतीहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

आत्रेयजीका उत्तर ।

तद्गुरुम्रवीदिदंशरीरंतन्त्रयतेऽनिलःसङ्गविधातात् । केवलएवदो-
पसहितःसहिवायुःप्रकोपमुपयाति ॥ १५ ॥ तंपवनंसपित्तकफवि-
ट्कंशुद्धिकरोनुलोमयतिवस्तिः । सर्वशरीरगश्चगदसद्घातप्रकाश-
नात्प्रशान्तिमुपयाति ॥ १६ ॥

यह सुनकर आत्रेयजी कहने लगे कि, वायु शरीरके संपूर्ण द्रव्योंको एकत्र तंत्रित करनेवाला है और यही शरीरको धारण करता है । जब यह कुपित होताहै तो एकाएकी अन्य दोषो और मलोंको भी कुपित कर देताहै । और पकाशयमें प्राप्त होकर वायुको पित्त कफ और मलके साथ अनुलोमन करके शुद्ध कर देता है वह विशुद्ध हुआ वायु संपूर्ण शरीरमें गमन करताहुआ रोगोसहित शान्तताको प्राप्त होजाता है । क्योंकि वायु शरीरके संपूर्ण धातुओं और मलोंसे संबंध रखताहै । मला-
शय वायुका प्रधान स्थान है । वस्तिद्रव्य मलाशयमें प्राप्त होकर वायुको संपूर्णरूपसे शुद्ध बना देताहै । पकाशय और वायुके शुद्ध होनेसे संपूर्ण दोषादि शुद्ध होकर रोग भी स्वयं शान्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

हस्तिआदिके विषयमें प्रश्नोत्तर ।

अथाभिगम्यार्थमखण्डितंधियागजोष्ट्रगोऽश्वाव्यजवस्तिकर्म ।

अपृच्छदेनंसचवस्तिमत्रवीद्विधिश्चतस्याहपुनःप्रचोदितः ॥ १७ ॥

इमके अनन्तर अखण्डित बुद्धिसे शिष्यगण पूछनेलगे कि, हाथी, ऊँट, गौ, घोडा,

करनेमें परम श्रेष्ठ है । वाडिश ऋषि कहने लगे कि धामार्गव वातल, ग्लनिकारक और बलको हरनेवाला है इसलिये कुडाके बीज (इन्द्रयव) सब प्रकारके फलोंमें उत्तम हैं क्योंकि यह बलको भी नहीं हरते और कफपित्तको हरण करनेवाले हैं काप्यऋषि कहने कि, इन्द्रयव अत्यंत पिच्छिल, ऊर्द्धगामी और वायुको क्षोभ करनेवाले होते हैं । परन्तु कृतवेधन वातकारक होनेपर भी प्रबल कफपित्तको नष्ट करता है इसलिये श्रेष्ठ है । भद्रशौनक कहने लगे कि, कृतवेधन श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि वह कटु और बलको नष्ट करनेवाला है ॥ ३-७ ॥

आत्रेयजीका समाधान ।

इतितद्रचनानिहेतुभिः सुविचित्राणिनिशम्यबुद्धिमान् । प्रशशंसफलेपुनिश्चयंपरमंचात्रिसुतोऽब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥ फलदोषगुणान्सरस्वतीप्रतिसेर्वरपिसम्यगीरता । नतुकिञ्चिददोषनिर्गुणं गुणभूयस्त्वमतोविञ्चिन्त्यते ॥ ९ ॥

इस प्रकार ऋषियोंके विचित्र वाक्य और हेतुवादको मुनिकर बुद्धिमान् आत्रेयजी ऋषियोंकी प्रशंसाकर फलोंके विषयमें परम निश्चयात्मक वाक्यको इस प्रकार कहने लगे कि, आप सबने इन फलोंके गुण और दोषोंको बहुत उत्तम रीतिसे वर्णन किया है परन्तु कोई भी फल निर्दोष और निर्गुण नहीं होता इसलिये विशेषरूपसे उनके गुणोंकी अधिकताका विचार करना चाहिये कि, किस समय किस रोगके लिये किस द्रव्यका प्रयोग अधिक गुणकारक होसकता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

इहकुष्ठहितागरागरीहितमिक्ष्वाकुतुमेहिनेमतम् । कुटजस्यफलंहृदामयेप्रवरंकोठफलञ्चपाण्डुपु ॥ १० ॥ उदरेकृतवेधनंहितंमदनंसर्वगदाविरोधितु । मधुकंसकपायतिक्तकंतदरूक्षंकटुकञ्चविज्जलम् ॥ ११ ॥ कफपित्तहृदाशुकारिचाप्यनपायंपवनानुलोमिच । फलनामविशेषतस्त्वतालभतेऽन्येषुफलेषुसत्स्वपि ॥ १२ ॥

जीमूतफल कुष्ठरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ है । इक्ष्वाकुफल प्रमेहमें श्रेष्ठ है । कुटज फल हृद्रोगमें श्रेष्ठ है । कूठफल (कटुतुबी) पाण्डुरोगमें श्रेष्ठ है । कृतवेधन उदररोगमें श्रेष्ठ है । और भैरवफल सब रोगोंमें अविरोधी होनेसे सर्वश्रेष्ठ है । भैरवफल-मधुर किंचित् कसैला, तिक्त, अरूक्ष, कटु, पिच्छिल, कफपित्तको हरनेवाला, शीघ्र कार्यकर्ता, अनपायी और वायुको अनुलोमन करनेवाला है इसलिये सब फलोंमें भैरवफली उत्तम है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

गजेऽधिकोऽश्वत्थवटाश्वकर्णजाःसखादिराःप्रग्रहशालतालजाः ।

तथाचउष्ट्रेधवशिमुपाटलीमधूकसाराःसनिकम्भचित्रकाः ॥ २२ ॥

हाथीको विशेषकर पीपल, बड और अश्वकर्णनामक शाल तथा खैर, अमलतास, शाल और ताडके काथ कल्कसे निरुहण करना चाहिये । और ऊंटको धव, मुहां-जना, पाद, महुएका गोंद, दंती और चित्रकका निरुहण करना चाहिये ॥ २२ ॥

पलाशभूतीकसुराह्वरोहिणीकपायउक्तस्त्वधिकोगवांहितः ।

पलाशदन्तीसुरदारुकतृणद्रवन्त्यउक्तास्तुरगस्यचाधिकाः ॥ २३ ॥

गौके लिये पलाश, अजवायन, देवदारु और कुटकीके काथका अधिक भाग मिलाकर निरुहण करना चाहिये । घोडेके लिये पलाश, देवदारु, दंती, रोहिण तृण और द्रवन्तीका निरुहण हितकारी है ॥ २३ ॥

खरोष्ट्रयोःपीलुकरीरखादिराःशम्पाकविल्वदिगणस्यचच्छदाः ।

अजाविकानांत्रिफलापरूपकंपित्थकर्कन्धुसविल्वकोलजम् ॥ २४ ॥

गवे और ऊंटके लिये पीलू, करीळ और खैर वा अमलताम और विल्वदिगणके पत्रोंका निरुहण करना चाहिये । भेड, बरूरीके लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैथ, झाडीवेर, विल्वफल और बेरके काथसे निरुहण करना चाहिये ॥ २४ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

अथाग्निवेशःसततोऽन्तरान्तराहितश्चपप्रच्छगुरुस्तदाहच ।

सदातुराःश्रोत्रियराजसेवकास्तथैववेश्याःसहपण्यजीविभिः ॥ २५ ॥

राजसेवकआदिकोंके रोगग्रस्तरहनेका कारण ।

द्विजोहिशिष्याध्ययनव्रताह्निकक्रियादिभिर्देहहितंनचेष्टते ।

नृपोपसेवीनृपचित्तरक्षणात्परानुरोधाद्दुचिन्तनाद्भयात् ॥ २६ ॥

नृचित्तवर्त्तिन्युपचारतत्परामृजाभिभूपानिरतापराङ्मना ।

सदासनादत्यनुवद्भविक्रयक्रयादिलोभादपिपण्यजीविनः ॥ २७ ॥

फिर अग्निवेश पृष्ठने लगे कि, श्रोत्रिय, राजसेवक, वेश्यायें और दुकानदार प्रायः क्यों सदैव रोगग्रस्त रहा करतेहैं । यह सुनकर आत्रेयजी कहने लगे कि, श्रोत्रिय ब्राह्मण सदैव शिष्योंको पढानेमें, चातुर्मासादि व्रत पालन करनेमें और आदिक-कृत्यमें फंसे रहनेके कारण शरीरकी हितचेशामें ध्यान नहीं देसकते । और राजाके

मेंढा और बकरी आदिको किसप्रकार वस्तिका प्रयोग किया जाता है । इसप्रकार पृष्ठनेपर वस्तिके विषयमें आत्रेयजी कहनेलगे ॥ १७ ॥

अजाविकेसौम्यगजोष्ट्रयोर्वागवाश्वयोर्वस्तिमुशन्तिमाहिषम् ।

अजाविकादन्तसुवस्तिमुत्तरंवदन्तिवस्तिविपरीतरूपम् ॥ १८ ॥

बकरी, मेंढा, हाथी, ऊंट, गौ और घोड़ोंको यदि वस्तिप्रयोग करना हो तो हे सौम्य ! भैंसेके मूत्राशयका वस्तिपुट बनाना चाहिये । बकरी, मेंढा आदि जानवरोंकी वस्तिको सुवस्ति और उत्तरवस्तिको उत्तरसुवस्ति कहते हैं ॥ १८ ॥

हाथीआदिकोंकी वस्तिका प्रमाण ।

सुवस्तिमष्टादशषोडशाङ्गुलंतथैवनेत्रंचदशाङ्गुलंक्रमात् । गजोष्ट्र-

गोऽश्वोव्यजवस्तिसन्धौचतुर्थभागेचसकर्णिकंवदेत् ॥ १९ ॥

सुवस्तिकी सुखनाल अर्थात् नेत्रनली हाथी और ऊंटके लिये १८ अंगुल और गौ घोड़ेके लिये १६ अंगुल, भेड, बकरीके लिये १० अंगुल होनी चाहिये । जिसप्रकार मनुष्योंको प्रयोग करनेकी वस्तिमें जोड और चौथे भागमें कर्णिका होती है उसीप्रकार सुवस्तिकी कल्पना भी करना चाहिये ॥ १९ ॥

गौ, घोडा, हाथी, बकरी, आदिको निरूह और अनुवासनकी मात्रा ।

प्रस्थस्त्वजाव्योर्हिनिरूहमात्रागवादिपुद्भिर्त्रिगुणोयथाबलम् । नि-

रूहउष्ट्रस्यतथाढकद्वयंगजस्यवृद्धिस्त्वनुवासनेऽष्टमः ॥ २० ॥

बकरी और भेडको निरूहणकी मात्रा १ प्रस्थ, गौ और घोड़ेके लिये बल और अवस्थानुसार निरूहकी मात्रा २ या ३ प्रस्थ ऊंटके लिये निरूहकी मात्रा २ आढक तक होसकती है । हाथीके लिये अवस्था और बलके अनुसार ऊंटकी अपेक्षा दुगनी या जितनी उचित हो उतनी मात्रा कल्पना करना चाहिये । इसीप्रकार अनुवासनके लिये निरूहस आठवां भाग मात्राकी कल्पना करना चाहिये ॥ २० ॥

हस्तिआदिको निरूहण योग ।

कलिङ्गकुष्ठेमधुकंसपिप्पलीवचाशताह्वामदनरसाञ्जनम् ।

हितानिसर्वेषुगुडःससेन्धवोद्विपश्चमूलंसविकल्पनात्त्रियम् ॥ २१ ॥

इन्द्रयव, कूट, मुलेठी, पीपल, वच, सौंफ और भैरुफल इन सबके कायमें रसौत, गुड और संधानमक मिलकर हाथी, घोडा, गौ, भैंस आदिको मात्रानुसार निरूहण वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । इन्द्रयवादि कायके बदले दशमूलका काय भी निरूहणमें प्रयोग किया जाता है ॥ २१ ॥

गजेऽधिकोऽश्वत्थवटाश्वकर्णजाःसखादिराःप्रग्रहशालतालजाः ।

तथाचउष्ट्रेधवशिष्टुपाटलीमधूकसाराःसनिकम्भचित्रकाः ॥ २२ ॥

हाथीको विशेषकर पीपल, बड और अश्वकर्णनामक शाल तथा खैर, अमलतास, शाल और ताडके काथ कल्कसे निरुहण करना चाहिये । और ऊंटको धव, सुहां-जना, पाढ, महुएका गोंद, दंती और चित्रकका निरुहण करना चाहिये ॥ २२ ॥

पलाशभूतीकसुराह्वरोहिणीकपायउक्तस्त्वधिकोगवांहितः ।

पलाशदन्तीसुरदारुकनृणद्रवन्त्यउक्तास्तुरगस्यचाधिकाः ॥ २३ ॥

गौके लिये पलाश, अजवायन, देवदारु और कुटकीके काथका अधिक भाग मिलाकर निरुहण करना चाहिये । घोडेके लिये पलाश, देवदारु, दंती, रोहिप लृण और द्रवंतीका निरुहण हितकारी है ॥ २३ ॥

खरोष्ट्रयोःपीलुकरीरखादिराःशम्पाकविल्वादिगणस्यचच्छदाः ।

अजाविकानान्त्रिफलापहूपकंकपित्थककन्धुसविल्वकोलजम् ॥२४॥

गवे और ऊंटके लिये पीलू, करीरु और खैर वा अमलतास और विल्वादि गणके पत्रोंका निरुहण करना चाहिये । भेड, बकरीके लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैंथ, झाडीवेर, विल्वफल और वेरके काथसे निरुहण करना चाहिये ॥२४॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

अथाग्निवेशःसततोऽन्तरान्तराहितश्चप्रच्छगुरुस्तदाहच ।

सदातुराःश्रोत्रियराजसेवकास्तथैववेद्याःसहपण्यजीविभिः ॥२५॥

राजसेवकआदिकोंके रोगग्रस्तरहनेका कारण ।

द्विजोहिशिष्याध्ययनव्रताह्निकक्रियादिभिर्देहहितंनचेष्टते ।

नृपोपसेवीनृपचित्तरक्षणात्परानुरोधाद्बहुचिन्तनाद्भयात् ॥ २६ ॥

नृचित्तवर्त्तिन्युपचारतत्परामृजाभिभूयानिरतापराङ्मना ।

सदासनादत्यनुबद्धविक्रयक्रयादिलोभादपिपण्यजीविनः ॥ २७ ॥

फिर अग्निवेश पृष्ठने लगे कि, श्रोत्रिय, राजसेवक, वेश्यायें और दुकानदार प्रायः क्यों सदैव रोगग्रस्त रहा करतेहैं । यह सुनकर आश्रयजी कहने लगे कि, श्रोत्रिय ब्राह्मण सदैव शिष्योंको पढ़ानेमें, चातुर्मासादि व्रत पालन करनेमें और आह्निक-कृत्यमें फंसे रहनेके कारण शरीरकी हितचेष्टामें ध्यान नहीं देसकते । और राजाके

सेवक राजाकी सेवामें राजाकी इच्छानुसार उसके मनकी रक्षामें दूसरेके वशमें रहनेसे अत्यन्त चिन्तायुक्त और भयभीत रहतेहैं इसलिये शरीरकी रक्षा नहीं करसकते । वेदया परचिन्तकी अनुवर्तिनी, परसेवामें तत्पर, पराये मनको हरना और अंगशोभासे विभूषित आदिमें लगीरहतीहै इसलिये अपने शरीरकी यथोचित रक्षा नहीं करसकती । दुकानदारको सदा वैठेही रहना पडताहै, अपने लेनदेनके कार्यमें लगा रहताहै और लोभके कारण अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनेका अवकाश नहीं पासकता ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

सदैवतेह्यागतवेगनिग्रहंसमाचरन्तेनचकालभोजनम् ।

अकालनिर्हारविहारसेविनोभवन्तियेऽन्येपिसदातुराश्चते ॥ २८ ॥

यह पूर्वोक्त मनुष्य आयेहुए मलमूत्रादिके वेगोंको रोकलेतेहैं । यथासमय भोजन नहीं करते । वेसमय मलमूत्रादिका त्याग और भ्रमण आदि कर्मोंको करतेहैं । इसलिये यह सदैव रोगग्रस्त रहाकरतेहैं । इनके सिवाय और जो मनुष्य भी इसप्रकारका आचरण रखतेहैं वह भी सदैव प्रायः रोगग्रस्त रहतेहैं ॥ २८ ॥

इनकी चिकित्सा ।

समीरणवेगविधारणोद्धतंविचद्धसर्वाङ्गरुजाकरंभिषक् । समीक्ष्य

तेषांफलवर्त्तिमादितःसुकलिपतांस्नेहवर्त्तीप्रयोजयेत् ॥ २९ ॥

निरूहितंधन्वरसेनभोजितंनिकुम्भतैलेनततोऽनुवासयेत् ॥ ३० ॥

इसप्रकार वेगविधारणसे वायुको कोप होताहै । वायुके कोपसे विबंध और सर्वांगपीडा आदि व्याधियें उत्पन्न होतीहैं । ऐसे मनुष्योंको प्रथम उत्तम कल्पना कीहुई खलवर्त्तीको स्नेहसे युक्तकर प्रयोग करना चाहिये । फिर निरूहणकरके जंगली जीवोंके मांसरससे भोजन करावे । तदनन्तर दंतीसे सिद्ध किये तैलके द्वारा अनुवासन प्रयोग करना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

वलाश्वगन्धासहविल्वचित्रकानूद्विपञ्चमूलेकृतमालकोत्पले ।

यवान्कुलरथांश्चपचेज्जलाढकेरसःसपेप्यस्तुकलिङ्गकादिभिः ।

सतैलसर्पिर्गुडसैन्धवोहितः सदानराणांवलवर्द्धनःपरः ॥ ३१ ॥

यला, असगन्ध, बेलकी गिरी, चित्रककी छाल, दशमूल, अमलतास, नीलकमल, मव, कुल्थी इन सबको दो दो तोला लेकर १ आडक जलमें पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर उताकर छानले । इस क्वाथमें कुटज आदि द्रव्योंका कल्क, तैल, घृत, गुड और सैन्धानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे श्रोत्रिय आदि पूर्वोक्त

मनुष्योंके रोग दूर होकर बलकी वृद्धि होती है इन्हीं पूर्वोक्त संपूर्ण द्रव्योंसे सिद्ध किया सेह अनुवासन वस्तिमें प्रयोग करनेसे बलकी वृद्धि होती है ॥ ३१ ॥

पुनर्नवैरण्डनिकुम्भचित्रकान्सदेवदारुत्रिवृतानिदिग्धकाम् ।

महान्तिमूलानिचपञ्चतद्भवान्त्रिपाच्यमूत्रेदधिमस्तुसंयुते ॥ ३२ ॥

सतैलसर्पिलवणैश्चपञ्चभिर्विर्मूर्च्छितं वस्तिमथप्रयोजयेत् ।

तथैवशस्तंमधुकेनसाधितंफलेनविल्वेनशताह्वयाथवा ॥ ३३ ॥

पुनर्नवा, एरण्डकी जड़, दंती, चित्रककी छार, देवदारु, निशोथ, कटेली और चूहत्पंचमूलका कल्क और काथ, दही, मस्तु, तेल, घृत और पांचों नमक मिला सिद्धकर उचित प्रमाणसे वस्तिप्रयोग करे। इसीप्रकार मुलैठी अथवा विल्वफल या सौंफके साथ घृत, तेल आदि मिलाकर वस्तिप्रयोग करे वा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तेलसे अनुवासन करना भी हितकारक है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

बालकोंको अनुवासन निरूहण ।

सजीवनीयस्तुरसेऽनुवासनेनिरूहणेचालवणेशिशोर्हितः ।

नचान्यदाश्वङ्गवलाभिवर्द्धनंनिरूहवस्तेःशिशुवृद्धयोःपरम् ॥ ३४ ॥

जीवनीयगणके कल्क और मांसरससे सिद्ध कियेहुए तैलसे अनुवासन और इन्हीं द्रव्योंके कल्क, स्वाथसे निरूहण करना बालकोंके लिये हितकारी है बालक और वृद्धोंके लिये जीवनी आदि द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई निरूहणवस्तिसे बढ़कर और कोई शीघ्र अंगवल्बर्धक प्रयोग नहीं है ॥ ३४ ॥

उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

फलकर्मवस्तिवरतत्त्वनिश्चयोवाज्यादीनाम् ।

सततातुराश्वहृष्टाःफलमात्रायांहितत्रैयाम् ॥ ३५ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेफलमात्रासिद्धिर्नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

यहां कहते हैं कि इस फलमात्रासिद्धि नामक आध्यायमें वमनकारक फलोंमें वा वस्ति कर्ममें भ्रमनफलको श्रेष्ठता घोडे आदिकोंके लिये वस्तिप्रमाण, राजसेवक आदि मनुष्योंके सदैव रोगग्रस्त रहनेका कारण और उनके लिये हितकारक योग यह सब वर्णन किया है ॥ ३५ ॥

इति श्री०च०प्र०आ०सं० सिद्धिस्थाने प्र०भा०टी० फलमात्रासिद्धिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

आथातउत्तरवस्तिसिद्धिव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम उत्तरवस्ति सिद्धिनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

शोधनोत्तर क्रिया ।

अथखल्वानुरं वैद्यः संशुद्धं वमनादिभिः । दुर्बलं कृशमल्पाग्निमुक्त-
सन्धानवन्धनम् ॥ १ ॥ निर्हृतानिलविण्मूत्रकफपित्तं कृशाशयम्
शून्यदेहं प्रतीकारासहिष्णुं परिपालयेत् ॥ २ ॥ यथैवतरुणं पूर्णतै-
लपात्रं तथैव च । गोपाल इव दण्डीगाः सर्वस्मादपचारतः ॥ ३ ॥

वमन आदि संशोधनके अनन्तर अर्थात् वमनादिद्वारा रोगीके संपूर्ण दोष निक-
लकर जो रोगी शुद्धकाय होनेसे दुर्बल, कृश, अल्पाग्नि होगयाहो और संधियें
शिथिल अर्थात् दुर्बलसी होगई हों । वमन और विरेचनके द्वारा वायु, विष्टा, मूत्र,
कफ और पित्तके निकलजानेसे आशय कृश होगया हो, मलादिकोंसे देह शून्य
होकर वह रोगी औषधको सहन न करसकता हो तो ऐसे रोगीको औषधका प्रयोग
न करके केवल सावधानीसे हित पेया, आहार, मांसरस आदिके द्वारा रोगीका सब
प्रकार पालन करतारहे । जैसे तेलसे भरेहुए नये घड़ेकी यत्नपूर्वक रक्षा कीजातीहै और
जैसे गोपाल गौओंके पीछे रहकर उनकी सब प्रकार रक्षा करताहै । उसीप्रकार
ऐसे रोगीकी विधिवत् रक्षा करतेहुए पालना करते रहना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अग्निसन्दीपनादि क्रम ।

अग्निसन्धुक्षणार्थन्तु पूर्वपेयादिभिर्भिषक् । रसोत्तरेणैव चरेत्क्रमे-
ण क्रमकोविदः ॥ ४ ॥

इसप्रकार रोगीकी रक्षा रखनेहुए उसके जठराग्निकी वृद्धिके लिये वैद्य प्रथम
पेयादिक्रम पालन कराकर फिर मांसरस आदि दीपन और बृंहण द्रव्योंका विधि-
वत् प्रयोग करे ॥ ४ ॥

स्निग्धाम्लस्वादुहृद्यानिततोऽम्ललवणौरसौ ।

स्वादुतिक्तौ ततोभूयः कपायकटुकौ ततः ॥ ५ ॥

इसप्रकार रोगीको पहिले चिकने, अम्ल, मधुर और हृद्यको प्रिय रस सेवन

करावे । फिर अम्ल और लवणरस सेवन करावे । फिर स्वादु और तिक्त, उसके अनन्तर कषाय और कटुरसका क्रमपूर्वक धीरे २ सेवन करावे ॥ ५ ॥

अन्योऽन्यप्रत्यनीकानारसानांस्निग्धरूक्षयोः । व्यत्यासादुपयोगे-
नप्रकृतिगमयेद्भिषक् ॥ ६ ॥ सर्वक्षमोनिरासङ्गोरतियुक्तःस्थिरे-
न्द्रियः । बलवान्सत्त्वसम्पन्नोविज्ञेयःप्रकृतिगतः ॥ ७ ॥

इस विधिसे परस्पर विपरीत क्रमसे रोगीको रसांका सेवन कराना चाहिये । किसी दिन स्निग्ध, किसी दिन रूक्ष, इलके द्रव्यका सेवन करावे । ऐसे युक्तिपूर्वक धीरे धीरे सावधानीसे रोगीका पालन करते २ क्रमसे वैद्य रोगीको उसकी असली प्रकृतिपर पहुंचा दे जिससे वह सब प्रकारके आहार विहारको सहन करनेलगे और उसकी किसी प्रकारसे अस्थिरता न हो उसको रतियुक्त स्थिर इन्द्रिय बलवान् सत्त्व तथा प्रसन्न मनसे युक्त और शक्तिसंपन्न होनेसे प्रकृतिस्य जानना चाहिये ॥ ६।७ ॥

एतांप्रकृतिमप्राप्तःसर्ववर्ज्यानिवर्जयेत् ।

महादोषकराप्यष्टाविमानितुविशेषतः ॥ ८ ॥

जबतक वह शोधन किया मनुष्य इस विधिसे अपनी असली प्रकृतिपर न पहुंचे तबतक वर्जनीय संपूर्ण आहार विहारोंको त्याग देवे विशेषकर यह आगे कहेहुए आठ व्यापार महादोषको करनेवाले हैं इसलिये इनको अवश्य ही त्यागदेना चाहिये ॥ ८ ॥

वर्जनीय ८ व्यापार ।

उच्चैर्भाष्यंरथंक्षोभमतिचक्रमणासने ।

अजीर्णाहितभोज्येचदिवास्वप्नसमैथुनम् ॥ ९ ॥

बहुत ऊंचा बोलना, रथ आदि हिलनेचुलने वाली सवारीपर चढना, अधिक भ्रमण करना, बहुत बैठाही रहना, अजीर्णमें भोजन, अहित भोजन, दिनमें सोन और मैथुन करना । यह आठ व्यापार निर्बल रोगीको अवश्य त्याग देन चाहिये ॥ ९ ॥

इनके दोष ।

तज्जादेहोर्द्धसर्वाधोमध्यपीडामदोषजाः ।

श्लेष्मजाःक्षयजाश्चैवव्याधयःस्युर्यथाक्रमम् ॥ १० ॥

बहुत ऊंचा बोलनेसे दहके उपरके भागमें व्याधियें प्रगट होती हैं रथ आदि

सवारियोंकी हलचल लगनेसे संपूर्ण शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं बहुत भ्रमण करनेसे शरीरके अधोभागमें रोग उत्पन्न होतेहैं । अधिक वैठारहनेसे देहके मध्यभागमें रोग होतेहैं । अजीर्णमें भोजन करनेसे आंवसे पैदा होनेवाले रोग उत्पन्न होतेहैं । आहित भोजन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहैं । दिन में सोनेसे कफजनित रोग होतेहैं । और मैथुन करनेसे ॥ १० ॥

तेषांविस्तरतोलिङ्गमेकैकस्यसभेषजम् ।

यथावत्संप्रवक्ष्यामिसिद्धान्वस्तींश्चयापनान् ॥ ११ ॥

अब इन सब व्याधियोंके विस्तारपूर्वक पृथक् २ लक्षण और चिकित्सा तथा प्रसंगवश सिद्धफलदायक यापनवस्तियोंका वर्णन करतेहैं ॥ ११ ॥

उच्चभाषणजनित रोग ।

तत्रोच्चैर्भाष्यातिभाषाभ्यांशिरस्तापकर्णशंखनिस्तोदस्रोतोऽवरोध-
मुखतालुकण्ठशोपतैमिर्यपिपासाज्वरतमकहनुमन्याग्रहनिष्ठीव-
नारःपार्श्वशूलस्वरभेदहिक्काश्वासादयःस्थुः ॥ १२ ॥

शुद्धकाय मनुष्यके उच्च भाषण और अतिभाषण करनेसे शिरमें संताप कान और कनपटीमें सूई चुभनेकीसी पीडा ऊर्ध्वस्रोतोंका रुकना मुख, तालु और कण्ठमें शोष होना, तिमिर, प्यास, ज्वर, तमकश्वास, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, वारंवार थूकका आना, छातीमें शूल, पार्श्वपीडा, स्वरभंग, हिचकी और श्वास आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १२ ॥

क्षोभजनित रोग ।

रथक्षोभात्सन्धिपर्वशैथिल्यहनुनासाकर्णशिरःशूलतोदवह्निविक्षो-
भाटोपान्त्रकूजनाध्मापनहृदयेन्द्रियोपरोधस्फिक्त्रपार्श्ववक्षणावृषण-
कटीपृष्ठवेदनासन्धिस्कन्धग्रीवादौर्वल्याङ्गाभितापपादशोफप्रस्वा-
पहर्षणादयः ॥ १३ ॥

रथ आदि सवारियोंकी हलचलसे संधि और पवोंमें शिथिलता, ठोडी, नासिका, कान, और शिरमें पीडा, और तोद, मंदाभि, आटोप, आंतोंका कूजना, अफारा, हृदय और इन्द्रियोंका उपरोध, नितम्ब, पार्श्व, वक्षणा, वृषणा, कमर और पीठमें पीडा, संघी, कंघे, गर्दन इनमें दुर्बलता, अंगोंका अभिताप, पावोंमें सूजन, अंगोंका सोना और महर्षण आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १३ ॥

अतिभ्रमणजनित रोग ।

अतिचंक्रमणात्पादजङ्घोरुजानुबंधनश्रोणीपृष्ठशूलसक्थिसादनि-
स्तोदपिण्डीकोद्वेष्टनाङ्गमर्दासाभितापशिराधमनीहर्षश्वासकासा-
दयःस्युः ॥ १४ ॥

अधिक भ्रमण करनेसे पांव, जंघा, ऊरु, जानु, बंधन, श्रोणी और पीठमें पीडा,
नितम्बोंका सुन्नता होजाना, सूई चुभनेकीसी पीडा, पिण्डलियोंका उद्वेष्टन, अंगोंका
टूटना, दोनों अंसोंका तपना, शिरा और धमनियोंका हर्षित होना, श्वास और खांसी
आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १४ ॥

अतिवैठनेसे रोग ।

अत्यासनाद्रथक्षोभजाःस्फिक्रूपाश्वबंधनवृषणकटीपृष्ठवेदनादयः
स्युः ॥ १५ ॥

जो रोग रथ आदिके हलचलसे उत्पन्न होतेहैं वही रोग अधिक बैठे रहनेसे होतेहैं
तथा नितम्ब, पार्श्व, बंधन (पेडू), वृषण (फोते), कमर और पीठमें पीडा आदि
रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १५ ॥

अजीर्णमें भोजनसे रोग ।

अजीर्णाध्यशनाभ्यान्तुमुखशोषाध्मानशूलनिस्तोदपिपासागात्र-
सादच्छर्द्यतीसारमूर्च्छाज्वरप्रवाहणामविषादयःस्युः ॥ १६ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे और भोजनपर भोजन करनेसे मुखशोष, अफारा, शूल,
सूई चुभनेकीसी पीडा, प्यास, अंगमेंका सोना, छर्दि, अतिसार, मूर्च्छा, ज्वर, प्रवा-
हिका और आमविष आदि दारुण रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १६ ॥

अहितभोजनके दोष ।

विषमाहिताशनाभ्यामनन्नाभिलापदौर्वल्यवैवर्ण्यकण्डूपामागात्रा-
वसादवातादिप्रकोपजाश्वग्रहण्यशौविकारादयः ॥ १७ ॥

विषम और अहित भोजनके करनेसे अन्नमें अरुचि, दुर्बलता, विवर्णता, खुजली
पामा, देहका सोना, वातादि दोषोंके कोपसे उत्पन्न हुए रोग, ग्रहणीरोग और बवासी-
आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १७ ॥

दिनमें सोनेके दोष ।

दिवास्वप्नादरोचकाविपाकाग्निनाशस्तैमित्यपाण्डुकण्डूपामादाह-

च्छर्द्यङ्गमर्दहस्तम्भजाडयतन्द्रानिद्राप्रसङ्गग्रन्थिजन्मदौर्वलयरक्त-
मूत्राक्षितातालुलेपाःपिपासाच ॥ १८ ॥

दिनमें सोनेसे अरोचक, अन्नका परिपाक न होना, मंदाग्नि, शरीरका गिलगिलासा होना, पाण्डु, खुजली, पामा, दाह, छर्दि, अंगमर्द, हृदयका स्तंभ, जडता, तंद्रा, निद्रा, शरीरमें गांठोंका पैदा होना, दुर्बलता, पेशाबका लाल वर्ण होना, नेत्रोंका लालवर्ण होना, तालुमें कफका लेपसा होना और प्यास आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १८ ॥

मैथुनके दोष ।

व्यवायादाशुबलसादोरुसादवस्तिशिरोगुदमेढ्रवक्षणोरुजानुजङ्घा-
पादशूलहृदयस्पन्दननेत्रपीडाङ्गशैथिल्यशुक्रमार्मशोणितागमन-
कासश्वासशोणितष्ठीवितस्वरावसादकटीदौर्वलयैकाङ्गसर्वाङ्गरोग-
मुष्कश्वयथुवातवच्चोमूत्रसङ्गशुक्रविसर्गजाडयत्रेपथुवाधिर्यविपा-
दादयःस्युः उत्पाद्यतेइवगुदस्ताड्यतइवमेढ्रमवसीदतीवमनोवेप-
तेहृदयपीडयन्तेसन्धयःतमःप्रविशतिइवच ॥ १९ ॥

शोधित शरीरवाले निर्बल मनुष्यके मैथुन करनेसे बलका क्षय, ऊर्ध्वोंका सुन्नता होजाना, वस्ति (मूत्राशय), शिर, गुदा, लिंग, वक्षण, ऊरु, जानु, जंघा और दोनों पावोंमें पीडाका होना, हृदयका फडकना, नेत्रोंमें पीडा, अंगोंमें क्षियलता, वीर्यके मार्गसे रुधिरका निकलना, खांसी, श्वास, रुधिरका थूकना, स्वरका बैठजाना, कमरमें दुर्बलता, एकांग अथवा सर्वांगगत वातजनित रेश्मोंका होना, लिंग और फोतोंमें सूजन होना, अधोवात, विष्टा और मूत्रका विबंध, वीर्यका हरसमय गिरना, जडता, कंप, बधिरता और विपाद (चित्तमें खेद होना) आदि रोग उत्पन्न होतेहैं । तथा गुदामें उत्पाटन कीसी पीडा लिंगमें चोट लगनेकीसी पीडा, मनकी अप्रसन्नता हृदयका कांपना, संधियोंमें पीडा, नेत्रोंके आगे अंधकारसा प्रतीत होना यह उपद्रव होतेहैं ॥ १९ ॥

इत्येवमेभीरभिचारैरेतेप्रादुर्भवन्तिउपद्रवाः ॥ २० ॥

इसप्रकार इन आठ प्रकारके अभिचारोंसे शोधनसे दुर्बल हुए मनुष्यके शरीरमें यह प्रवृत्त उपद्रव उत्पन्न होतेहैं ॥ २० ॥

उनकी चिकित्सा ।

तेपांसिद्धिःउच्चैर्भाष्यातिभाष्यजानामभ्यङ्गस्वेदोपनाहधूमनस्यो-
परिभक्तस्नेहपानरसक्षिरादिभिर्वातहरःसर्वोविधिर्मौनञ्च ॥ २१ ॥

ऊंचे बोलनेसे और अधिक बोलनेसे जो रोग उत्पन्न होतेहैं उनमें अभ्यंग, स्वेद, उपनाह, धूम, नस्य और भोजनके अनन्तर घृतादि स्नेहोंका पानका करना, वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये मांसरस और दूध पीना, संपूर्ण वातनाशक विधियोंका सेवन करना और मौन (जुप) रहना हितकारी है ॥ २१ ॥

रथक्षोभातिचक्रमणात्यासनजानांस्नेहस्वेदादिवातहरं कर्मसर्वनि-
दानवर्जम् ॥ २२ ॥

रथ आदि सवारियोंकी हलचलसे और अत्यंत भ्रमणसे वा अधिक बैठे रहनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें स्नेहन और स्वेदन आदि संपूर्ण वातनाशक कर्म करना और रोगोत्पादक हेतुओंको त्याग देना हितकारक है ॥ २२ ॥

अजीर्णाध्यशनजानांनिरवशेषतश्छर्दनंरूक्षस्वेदधूमपानलङ्घनीय-
पाचनीयदीपनीयौषधावचारणञ्च ॥ २३ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे और भोजन कियेपर भोजन करनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें निःशेष वमन कराना, रूक्ष स्वेद, धूमपान लंघन, पाचन और दीपन औषधियोंका सेवन करना हितकारक है ॥ २३ ॥

विषमाहिताशनजानांयथास्वंदोषक्रियाः ॥ २४ ॥

विषम भोजन और अहित भोजनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें उन रोगोंको दूर करनेवाली दोषानुसार चिकित्सा करना चाहिये ॥ २४ ॥

द्विवास्त्रमज्जानांधूमपानलङ्घनवमनशिरोविरेचनव्यायामरूक्षाश्ना-
नादिदीपनीयौषधोपयोगः । प्रकर्षणोन्मर्दनपरिपेचनादिश्चश्लेष्म-
हरःसर्वोविधिः ॥ २५ ॥

दिनमें सोनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें धूमपान, लंघन, वमन, शिरोविरेचन, व्यायाम, रूक्ष भोजन आदि सेवन करना तथा दीपनीय औषधियोंका प्रयोग हितकारी है । और लंघन, उद्धर्तन, परिपेचन आदि कफनाशक संपूर्ण विधियोंका सेवन करना चाहिये ॥ २५ ॥

मैथुनजानांजीवनीयसिद्धयोःक्षीरसर्पिषोरुपयोगः । तथावातहराः

स्वेदाभ्यङ्गोपनाहावृष्याश्चाहाराःस्नेहास्नेहविधयोयापनावस्तयोऽनु-
वासनञ्च । मूत्रवैकृतवस्तिशूलेपुचउत्तरवस्तिः । विदारीगन्धादि-
गणजीवनीयगणक्षीरसंसिद्धतैलस्वाद्यापनाश्रवस्तयःसर्वकालंदे-
यास्तानुपदेक्ष्यामः ॥ २६ ॥

मैथुनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें जीवनीय द्रव्योंसे सिद्धकिये दूध और घृतका प्रयोग करना तथा घातनाशक स्वेद, अभ्यंग और उपनाह प्रयोग करना, वृष्य (वीर्यवर्द्धक) व्याहारका सेवन करना, स्नेहपान करना, स्नेहविधिका सेवन करना, यापन और अनुवासनवस्तिका प्रयोग करना हितकारक है । यदि मैथुनसे मूत्रमें विकृति और वस्तिशूल आदि विकार हों तो उत्तरवस्तिका प्रयोग करे । शालपर्ण्यादिगण और जीवनीयगण तथा दूधके साथ सिद्धकिये तैल और यापनवस्तिका सब काममें प्रयोग करना हितकारक है । अब आगे उन यापनवस्तिर्योंका वर्णन करतेहैं ॥ २६ ॥

यापनवस्तिके योग ।

मुस्तोशीरवलारग्वधराल्नामजिष्ठाकटुरोहिणीत्रायमाणापुनर्नवावि-
भीतकगुडूचीस्थिरादिपञ्चमूलानिपलिकानिखण्डशःकृतानिअष्टौ
चमदनफलानिप्रक्षाल्यजलाढकेपारिकाथ्यपादशेषेरसः क्षीरद्विप्र-
स्थसंयुक्तः पुनः शृतः क्षीरावशोपस्तुष्योजाङ्गलरसमधुघृतः शत-
कुसुममधुककुटजफलरसाञ्जनप्रियङ्गुकल्कीकृतः ससैन्धवः सुखो-
ष्णवस्तिःशुक्रमांसवलजननःक्षतक्षीणकासगुल्मशूलविषमज्वरत्र-
धकुण्डलोदावर्त्तकुक्षिशूलमूत्रकृच्छ्रासृग्जोविसर्पप्रवाहिकाशिरोरु-
जाजानूरुजङ्घावस्तिग्रहाश्मर्युन्मादार्शःप्रमेहाध्मानरक्तपित्तश्ले-
ष्मव्याधिहरःसद्योबलजननोरसायनश्चेति ॥ २७ ॥

नागरमोथा, खस, अमलतास, रास्ना, मंजीठ, कुटकी, त्रायमाण, पुनर्नवा, बहेडा, गिलोय और शालपर्णी आदि पंचमूलकी पांच औषधि यह सब अलग २ एकएक पल लेवे । मैनफल ८ पल । इन सबकेछोटे २ टुकड़े करके जलसे धोडाळे फिर एक आढक जलमें पकावे । जब चौथा भाग शेष रहे तब उतारकर छानले फिर इसमें २ प्रस्थ दूध मिलाकर पकावे । जब दूध मात्र शेष रहे तब उतारकर उसमें दूधके बराबर जंगली जीवीका मांसरस मिलावे तथा शहद, घृत मिलावे ।

और इसमें सोंफ, मुलेठी, इन्द्रयव, रसौत, फूलमियंगू और सेंधेनमकका कल्क मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए वस्तिप्रयोग करे । इस वस्तिके प्रयोगसे वीर्य, मांस और बलकी वृद्धि होतीहै तथा यह वस्तिप्रयोग क्षतक्षीण, खांसी, गुल्म, शूल, विषमज्वर, ब्रध्न (वध) वातकुण्डल, उदावर्त्त, कुक्षिशूल, मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रदर, विसर्प, प्रवाहिका, मस्तकपीडा, जानु, जंघा, ऊरु और वस्तिकी पीडा, पथरी, उन्माद, बवासीर, प्रमेह, अफारा, रक्तपित्त और कफकी व्याधियोंको हरनेवाली है तथा शीघ्र बलको देनेवाली और रसायन है ॥ २७ ॥

एरण्डमूलपलाशात्पट्टपलंशालपर्णीपृश्निपर्णीवृहतीकण्टकारिका-
गोधुरकाराम्नाश्र्वगन्धागुडूचीवर्पाभूरारग्वधदेवदार्वितिपालिका-
निखण्डशःकृतानिफलानिचाष्टौप्रक्षाल्यजलाढकेशीरपादेपचेत् ।
पादशेषं कपायंपूतंशतकुसुमादिकुष्ठमुस्तापिप्पलीहपुपाविल्ववचा-
वत्सकफलरसाजनप्रियङ्गुयमानिसंक्षेपकल्कितंमधुघृततैलसैन्धव-
युक्तंसुखोष्णंनिरूहमेकद्वौत्रीन्वादद्यात् । सर्वेषांप्रशस्तोविशेषतो
ललितसुकुमारक्षतक्षीणस्थविरचिरार्शसामपत्यकामानाञ्च ॥२८॥

एरण्डकी जड ६ पल, ढाककी कच्ची फालियें ६ पल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू, रास्ना, असगंध, गिलोय, सफेद पुनर्नवा, अमल-
तास और देवदारु यह प्रत्येक एकएक पल लेवे । मैनफल ८ पल लेवे इन सबके छोटे २ टुकडेकर गरमजलसे धोलेवे । फिर इनको थोडा २ कूटकर ४ सर पानी और १ सेर दूध मिलाकर पकावे । जब सवासेर बाकी रहे तो उतारकर छानलेवे । फिर इसमें सोंफ, कुठ, नागरमोथा, पीपल, हाउवेर, बेलकी गिरी, वच, इन्द्रयव, रसौत, मैनफल, फूलमियंगू और अजवायन यह प्रत्येक नौ नौ मासे लेकर कल्क बनावे । यह कल्क शहद, घृत, तेल और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए निरूहणवस्ति करे । इसके निरूहण प्रयोग एक अथवा दो वा तीन बार भी किये जातेहैं । यह वस्ति सब प्रकारके मनुष्योंके लिये श्रेष्ठ है । और विशेषकर सुकुमार, ललित, क्षतक्षीण, वृद्ध और पुगाने बवासीरवाले रोगीको हितकारी है तथा संतानकी इच्छावाले मनुष्यको विशेषकर हितकारी है ॥ २८ ॥

सहचरबलामूर्वामूलशारिवासिद्धेनपयसातथावृहतीकण्टकारीश-
तावरीच्छिन्नरुहाश्रृतेनपयसामधुकमदनपिप्पलीकल्ककृतेनपूर्वव-
द्दस्तिः ॥ २९ ॥

काला वांसा, बला, मूर्वा और शारिवांकी जडसे सिद्धकिये दूधमें अथवा बडी कटेली, छोटी कटेली, शतावर और गिलोयसे सिद्धकिये दूधमें मुलैठी, मैनफल और पीपलका कल्क तथा शहद, तेल, घृत और सेंधानमक मिला पूर्वोक्त रीतिसे वस्त्रप्रयोग करे ॥ २९ ॥

तथाबलातिबलाविदारीशालपर्णीपृश्निपर्णीवृहतीकण्टकारिकादर्भ-
मूलयवकाश्मर्यविल्वमदनफलसिद्धेनपयसामधुकमदनकल्कीकृ-
तेनमधुघृतसौवर्चलयुक्तेनकासज्वरगुल्मप्लीहादिंतन्त्रीमद्यक्लिष्टानां
सद्योबलजननोरसायनश्च ॥ ३० ॥

बला, नागबला, विदारीकंद, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली, डामकी जड, यव, कुंभेरके फल, बेलकी गिरी और मैनफलसे सिद्धकिया दूध मुलैठी और मैनफलका कल्क मिलाकर तथा शहद, घृत और संचरनमक मिलाकर यापन-
वस्ति करे । यह वस्ति ज्वर, खांसी, गुल्म, प्लीहा, अर्दितरोग, स्त्रीसंगसे क्षीणहुए मनुष्योंको, स्त्रियोंको, मद्यसे थकेहुए मनुष्यको शीघ्र बलको देनेवाली और रसायन है ॥ ३० ॥

तथाबलातिबलारास्त्रारग्वधमदनविल्वगुडूचीपुनर्नवैरण्डाश्वगन्धा-
सहचरपलाशदेवदारुद्विपञ्चमूलानिपलिकानियवकोलकुलरथद्विप्र-
सृतंशुष्कमूलकानाश्चजलद्रोणासिद्धंनिरूहप्रमाणंशेषंकापयंपूतंम-
धुकमदनशतपुष्पाकुष्ठपिप्पलीवचावत्सकफलरसाञ्जनप्रियंगुयमा-
नीकल्कीकृतंगुडघृततैलक्षौद्रक्षीरमांसरसाम्लकाञ्जिकसैन्धवयुक्तं
सुखोष्णंवास्तिदद्यात् । शुक्रमूत्रवर्चःसङ्गेऽनिलजेगुल्महृद्रोगाध्मा-
नत्रघ्नपार्श्वपृष्ठकटीग्रहसंज्ञानाशबलक्षयेपुच ॥ ३१ ॥

बला, अतिबला, रास्ना, अमलतास, मैनफल, बेलकी गिरी, गिलोय, पुनर्नवा, एरण्डकी जड, अतसंगंध, पीयावांसा, पलाशकी फलियें, देवदारु, दशमूलकी दश औषधियें यह सब एकएक पल लेंवे । जी, घेर और कुल्थी यह चारचार पल लेंवे । सूखी मूली चार पल लेंवे । इनसबको १६ सेर जलमें पकावे । दो सेर जल शेष रहनेपर अथवा जितना निरूहणके लिये प्रयोग करना हो उतना बाकी रहनेपर उतार-
कर छानलेंवे । फिर इसमें मुलैठी, मैनफल, सांफ, कुठ, पीपल, यव, इन्द्रयव, रसीव, कूटपिपंगू और अजयापन इन सबको नीनी मामे लेकर कल्क बनावे । यह कल्क

तथा गुड, घृत, तेल, शहद, दूध, मांसरस, खट्टी कांजी और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति शुक्र, मूत्र और मलके विबंधको दूर करतीहै तथा वातजनित गुल्म, हृद्रोग, अफारा, बध्न (बध), पार्श्वपीडा, पीट और कमरकी जकडन, संज्ञानाश और बलक्षय इन सबमें हितकारी है ॥ ३१ ॥

हपुपार्द्धकुडवद्विगुणार्द्धक्षुण्णयवःक्षीरोदकसिद्धःक्षीरशेषोमधुघृत-
तैललवणयुक्तःसर्वाङ्गविसृतवातरक्तसक्तविष्णमूत्रस्त्रीखेदितहितो-
वातहरोचुद्धिमेधाग्निबलजननश्च ॥ ३२ ॥

हाउबेर दो पल, अधकुटे यव ४ पल इन दोनोंको २ सेर दूध और ६ सेर जल मिलाकर पकावे । दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर इस दूधमें शहद, घृत, तेल और लवण मिलाकर वस्तिप्रयोग करे तो सर्वांगमें फैलाहुआ वातरक्त, विष्ण और मूत्रका विबंध तथा स्त्रीसंगसे उत्पन्नहुई क्षीणता दूर होतीहै । यह वस्ति वायुको हरनेवाली तथा बुद्धि, मेधा, अग्नि और बलको बढ़ानेवाली है ॥ ३२ ॥

ह्रस्वपञ्चमूलकपायःक्षीरोदकसिद्धःपिप्पलीमधुकमदनकल्कीकृतः
सगुडघृततैललवणःक्षीणविषमज्वरकर्पितस्यवस्तिः ॥ ३३ ॥

दूध २ सेर, जल ४ सेर, लघु पंचमूलकी औषधियें १० पल इन सबको मिलाकर पकावे । दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । फिर इस दूधमें पीपल, मुलैठी और मैनफलका कल्क मिला तथा गुड, घृत, तेल और लवण मिलाकर वस्ति प्रयोग करे यह वस्ति क्षीणता और विषमज्वरसे कृशहुए मनुष्योंके लिये हित-कारक है ॥ ३३ ॥

बलातिबलापामार्गात्मगुसाष्टपलार्द्धक्षुण्णयवाञ्जलिकपायःपूर्ववद्व-
स्तिःस्थविरदुर्बलक्षीणशुक्राणांपथ्यतमः ॥ ३४ ॥

बला, अतिबला, पुठखण्डके बीज, कौंचके बीज यह प्रत्येक दो दो पल, अधकुटे यव ४ पल । इन सबको लेकर पूर्वोक्त रीतिसे दूध सिद्ध करे और उस दूधमें पीपल आदिका कल्क और गुड, घृत आदि सब पूर्व कहेहुए द्रव्योंको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति वृद्ध, दुर्बल और क्षीणवीर्य मनुष्योंके लिये अत्यंत पथ्य अर्थात् हितकारी है ॥ ३४ ॥

बलामधुकविदारीदर्भमूलमृद्धीकायवैःकपायमाजेनपयसापक्काम-
धुकलितंसमधुघृतसैन्धवंज्वरार्त्तैर्भ्योवस्तिदद्यात् ॥ ३५ ॥

बला, मुलैठी, विदारीकंद, कुशाकी जड़ और यव इनको दूध और जलके साथ सिद्धकिये कायमें मुलैठीका कल्क, शहद, घृत और सेंधानमक मिला ज्वरसे कृशहृए मनुष्यको वस्तिप्रयोग करना चाहिये ॥ ३५ ॥

शालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकमूलकाद्रमर्य्यपरूपकखर्जूफलमधुकपु-
ष्पैरजाक्षीरजलप्रस्थाभ्यांसिद्धःकपायःपिप्पलीमधुकोत्पलकल्कितः
सघृतसैन्धवःक्षीणेन्द्रियविपमज्वरकर्षितस्यवस्तिशस्तः ॥ ३६ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, गोखरूकी जड़, कुंभेरके फल, फालसे, खजूर, मैनफल, महुएके फूल इन सबको एकएक पल लेकर २ सेर बकरीका दूध और ६ सेर जल मिलाकर पकावे । २ सेर शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस दूधमें पीपल, मुलैठी और नीलकमलका कल्क, घृत और सेंधानमक मिलाकर क्षीणेन्द्रिय और विपम ज्वरसे कृशहृए मनुष्यको वस्ति देना हितकारी है ॥ ३६ ॥

स्थिरादिपञ्चमूलीपञ्चपलेनशालिपष्टिकयवगोधूममापकपायपञ्च-
प्रसूतेनछागपयःशृतंपादशेषंकुक्रुटाण्डरससममधुघृतशर्करासैन्ध-
वसौवर्चलयुक्तोवस्तिर्घृष्यतमौवलवर्णजननश्च ॥ ३७ ॥

स्थिरादि पांचमूलकी पांचों औषधियें पांचपल, शालीचावल, साठीचावल, यव और गेहू इन सबका काय २ सेर बकरीका दूध १ सेर, जल २ सेर इसमें पूर्वोक्त स्थिरादि पंचमूलकी पांच पल औषधियोंको पकावे, दूध मात्र शेष रहनेपर उतार कर छान ले । फिर इसमें मुर्गेके षण्डोंका रस, शहद, घृत, खांड, सेंधानमक और संचरनमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति अत्यंत वृष्य अर्थात् वीर्यवर्द्धक और बलको बढ़ानेवाली है ॥ ३७ ॥

कल्पश्चैपांशिखिगोनर्दहंसाण्डरसेस्यात् ॥ ३८ ॥

शालपर्णी आदि वस्तियोगोंमें मुर्गेके अण्डेके बदलेमें मोर, हंस और सारसके अण्डोंकी कल्पना करनेसे भी अत्यंत वृष्यता और वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ३८ ॥

सतित्तिरिःसमयूरोराजहंसपञ्चमूलीपयःसिद्धंशतकुसुममधुकरास्त्रा-
कुटजफलपिप्पलीकल्कःघृततैलगुडसैन्धवयुक्तोवस्तिर्वलवर्णशुक्र-
जननोरसायनश्च ॥ ३९ ॥

शालपर्णी आदि पंचमूलको दूध और जलमें पकाकर क्वाय करे । दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस दूधमें तीतर, मोर और राजहंस इनमेंसे किसी

एकका मांसरस तथा सौंफ, मुलैठी, राज्ञा, इन्द्रयव और पीपलका कल्क, घी, तैल, गुड और संधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे बल, वर्ण और वीर्यकी वृद्धि होती है तथा आयु बढ़ती है ॥ ३९ ॥

द्विपञ्चमूलीकुक्कुटरससिद्धंपयःपादशोपंपिप्पलीमधुकरालामदनमधुकल्कशर्करामधुघृतयुक्तंस्त्रीष्वतिकामानांवलजननोवस्तिः॥४०॥

दोनों पंचमूल और मुँगेके मांसरससे सिद्धकिये दूधमें पीपल महुएके फूल, राज्ञा, मैनफल और मुलैठीका कल्क, खांड, शहद और घृत मिलाकर वस्ति करनेसे स्त्रीसंगकी अत्यंत इच्छा रखनेवाले मनुष्यके शरीरमें बलकी वृद्धि होती है ॥ ४० ॥

मयूरमहुपित्तपक्षपादास्यान्त्रंत्यक्कास्थिरादिभिःपलिकैःसहजलेपयसिपक्काक्षीरशोपंमदनविदारीशतकुसुममधुककल्कीकृतंमधुघृतसैन्धवयुक्तंवस्तिदद्यात्स्त्रीष्वतिप्रसक्तक्षीणेन्द्रियेभ्योहितोवलवर्णकरः ॥ ४१ ॥

मोर व महुका पित्ता, पांव, नेत्र और आंत आदिको त्यागकर केवल मांस और हड्डी आदि लेवे । यह मांस और शालपण्यादि पंचमूलकी औषधियोंके फल, दूध १सेर, जल ३ सेर इनको पकाकर दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर उस दूधमें मैनफल, विदारीकंद, सौंफ और मुलैठीका कल्क तथा शहद, घृत और संधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे यह वस्तियोंमें अत्यंत प्रसक्त और क्षीणेन्द्रिय मनुष्यको अत्यंत हितकारी तथा बल और वर्णको बढ़ानेवाली है ॥ ४१ ॥

कल्पश्रौषविक्रिप्रतुदप्रसहाम्बुचरेपुस्यादक्षीरोरोहितादिपुचमरस्येषुच ॥ ४२ ॥

इसी प्रकार मोरके बदलेमें विक्रिप्रक्षी, प्रतुदपक्षी, गृध्र आदि प्रसहपक्षी और जलचर जीवोंके मांसरससे प्रयोग किया जाता है (परन्तु रोहू मछलीका मांस डालकर यदि यापनवस्ति सिद्ध कीजाय तो उसमें दूध न डालकर केवल मांसरससे ही पूर्वोक्त रीतिसे वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि रोहू आदि मछलियोंका मांस और दूध मिलनेसे रक्त दूषित होकर कुष्ठादि रोग उत्पन्न होते हैं) ॥ ४२ ॥

गोधानकुलमार्जारभूपिकशल्लकमांसानां दशपलान्भागान्सपञ्चमूलान्पयसिपक्कातत्पयःपिप्पलीफलकल्कसैन्धवसौवर्चलशर्करामधुघृततैलयुक्तोवस्तिर्वलयोरसायनःक्षीणक्षतस्यसन्धानकरोमथि-

तोरस्करथगजहयभग्नवातवलासकप्रभृत्युदावर्त्तवातसक्तमूत्रवर्चः-
शुक्राणांहिततमश्च ॥ ४३ ॥

गोह, नकुल, विलाव, मूसा और सेह इन सबका मांस दश पल, शालपर्णी
आदि पंचमूल दश पल, दूध २ सेर, जल ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । दूध
मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । फिर इसमें पीपल और मैनफलका कल्क,
सैधानमक, संचरनमक, खांड, शहद, घृत और तेल मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह
वस्ति बलवर्द्धक और रसायन (आयुर्वर्द्धक) है तथा क्षीण और क्षत रोगीके छातीके
घावोंको भर देनेवाली यक्ष्मा आदि रोगोंसे जिनकी छाती मथित होगई है अथवा
रथ, हाथी, घोड़े आदिकी सवारीसे जिनका देह भग्न होगयाहै, जिनको वातबलाशक्त
प्रभृति वातकफके रोग हैं तथा उदावर्त वायुसे मल, मूत्र और वीर्यकी विबंधता
हो उनके लिये यह वस्ति अत्यंत हितकारक है ॥ ४३ ॥

कूर्मादीनामन्यतमपिशितसिद्धंपयोगोवृषणागहयनकहंसकुक्कुटा-
ण्डरसमधुघृतशर्करासैन्धवेक्षुरकात्मगुप्तफलकल्कसंसृष्टोवस्तिवृ-
द्धानामपिवलजननः ॥ ४४ ॥

कच्छू आदि जलचर जीवोंके मांससे सिद्ध किया दूध और हाथी, घोड़े आदिका
मांसरस तथा मगर मच्छ, हंस और मुर्गेके अण्डोंका शोरुवा शहद, घृत, खांड,
सैधानमक ईखका रस और कौंचके बीजोंका कल्क मिलाकर वस्ति करनेसे वृद्ध
मनुष्योंमें भी युवा पुरुषके समान बल आजाताहै ॥ ४४ ॥

गोवृषवस्तवराहवृषणकर्कटचटकसिद्धंक्षीरमुच्चटकेक्षुरकात्मगुप्ता-
मधुघृतयुतंकिञ्चिद्वणिंतंवस्तिः ॥ ४५ ॥

गौका दूध और बल, बकरा तथा बराहके फोते, कर्कट और चिडेका मांस और
जल मिलाकर सिद्धकिया हुआ दूध, उदंगनके बीज तालमराने कौंचके बीज, शहद,
घृत और किंचित् नमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करना अत्यंत बाजीकरण आर्यात
वीर्यवर्द्धक और कामोत्पादक होता है ॥ ४५ ॥

कर्कटकरसश्चटकाण्डरसयुक्तःसमधुघृतशर्करोवस्तिरित्येतेवस्तयः
परमवृष्याः ॥ ४६ ॥

कर्कट (समुद्रमें होनेवाला केंकड़ा) का मांसरस और चिडियोंके अण्डोंका
रस, शहद, घृत और खांड मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे अत्यंत वीर्यकी वृद्धि
होतीहै ॥ ४६ ॥

उच्चटकेधुरकात्मगुसाशृतक्षीरप्रतिभोजनानुपानात्त्रिंशतगामिनं
नरंकुट्युः ॥ ४७ ॥

उटंगनके बीज, तालमखाने और कौंचके बीज इन सबको मिलाकर सिद्धकिया
दूध पीनेसे अथवा भोजनके अनन्तर अनुपान करनेसे पुरुषोंको सौ स्त्रियोंसे गमन
करनेकी शक्ति उत्पन्न होजातीहै ॥ ४७ ॥

दशमूलमयूरहंसकुक्कुटकाथात्पञ्चप्रसृतंतैलघृतवसामज्जचतुष्प्रसृत-
युक्तंशतपुष्पामुस्तहपुपाकल्कीकृतःसलवणोवस्तिःपादगुल्फोरुजा-
नुजङ्घात्रिकवंक्षणवस्तिवृषणानिलहरः ॥ ४८ ॥

दशमूल और मोरका मांस अथवा मोरके मांसके बदलेमें हंस या सुर्गेका मांस
इन सबको मिलाकर क्वाथ करे । यह क्वाथ दश पल लेकर उसमें तेल, घी, चर्बी
और मज्जा इन चारोंको दोदो पल मिलावे । फिर इसमें सोंफ, मोथा और हाउवे-
रका कल्क तथा सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे पांव, गुल्फ, ऊरु, जानु,
जंवा, त्रिकस्थान, वंक्षण, मूत्राशय और फोतोमें स्थितहुआ वायु अथवा वातजनित
रोग दूर होकर शरीरमें बल और वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ ४८ ॥

मृगविष्किरानूपविलेशयानामेतेनैवकल्पेनवस्तयोदेयाः ॥ ४९ ॥

इसीप्रकार हिरण, विष्किरपक्षी, अनूपसंचारी जीव और विलेशय जीवोंके मांस-
रससे वस्तियोंकी कल्पनाकर प्रयोग करनेसे बल, वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ४९ ॥

मधुघृतद्विप्रसृतंतुल्योष्णोदकंशतपुष्पार्द्धपलंसैन्धवार्द्धाक्षयुक्तोव-
स्तिर्दीपनोवृंहणोवलवर्णकरोनिरुपद्रवोवृष्यतमोरसायनः । क्रिमि-
कुष्ठोदावर्त्तगुल्माशोत्रप्रप्लीहमेहहरः ॥ ५० ॥

शहद और घृत २ प्रसृत (४ पल), गर्मजल २ प्रसृत, सोंफका कल्क आधा पल,
सेंधानमक ६ माशे इन सबको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति दीपन, वृंहण,
वलवर्णकारक, उपद्रवरहित, वीर्यवर्द्धक और आयुको बढ़ानेवाली है तथा कृमि, कुष्ठ,
उदावर्त्त, गुल्म, थवासीर, बद्ध, प्लीहा और प्रमेहको दूर करनेवाली है ॥ ५० ॥

तद्वत्समधुघृताभ्यांपयस्तुल्योवस्तिःपूर्वकल्केनवलवर्णकरोवृष्यत-
मोनिरुपद्रवोवस्तिमेद्रूपाकपारिकर्त्तिकासूत्रकृच्छ्रपित्तव्याधिहरोर-
सायनश्च ॥ ५१ ॥

इसी प्रकार शहद और घृत ४ पल, दूध ४ पल, मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति बल और वर्णकरता, अत्यन्त वृष्य, उपद्रवरहित तथा वस्ति, दाह, मेढू (लिंग) का पकना, परिकर्तिका, मूत्रकृच्छ्र और पित्तजनित व्याधिको हरनेवाली और आयुवर्द्धक है ॥ ५१ ॥

मधुघृताभ्यांमांसरसतुल्योमुस्ताक्षयुक्तःपूर्ववद्वस्तिर्वलासपादहर्ष-
गुल्मजानूरुनिकुञ्चनवस्तिवृषणमेढूपृष्ठशूलहरः ॥ ५२ ॥

शहद और घृत ४ पल, मांसरस ४ पल, मोथेका कल्क १ तोला इन सबको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति कफ, पादहर्ष, गुल्म, जानु और ऊरुओंका सिकुडना तथा मूत्राशय, फोते, लिंग और पीठकी पीडाको दूर करतीहै ॥ ५२ ॥

सुरासौवीरककुलथमांसरसमधुघृततैलसप्तप्रसृतंमुस्तशताह्लाक-
लिकतंसलवणोवस्तिःसर्ववातरोगहरः ॥ ५३ ॥

सुरा, सौवीरक, कुलथी, मांसरस, शहद, घृत, तैल इन सातोंको मिलाकर १४ पल लेवे फिर इसमें मोथा और सौंफका कल्क तथा सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति संपूर्ण वातजनित रोगोंको दूर करतीहै ॥ ५३ ॥

तथाद्विपञ्चमूलत्रिफलाविल्वमदनफलकपायोगोमूत्रसिद्धःकुटजः
मदनफलमुस्तपाठाकलिकतः सैन्धवयावशूकक्षौद्रतैलयुक्तोवस्तिः
श्लेष्मव्याधिवस्त्याटोपवातशुक्रसङ्गपाण्डुरोगाजीर्णविपूचिकाल-
सकेपुदेयइति ॥ ५४ ॥

दशमूलकी दश औषधियें, हरड, बहेडे, अँवले, बेलगिरी और मैनफलको गोमूत्रमें पकाकर क्वाथ बनावे । फिर इसमें इन्द्रियक, मैनफल, नागरमोथा और पाठका कल्क तथा सेंधानमक, जवाखार, शहद और तैल मिलाकर वस्तिप्रयोग करे तो यह वस्ति कफजनित व्याधि मूत्राशयका अफारा अवोवायु और वीर्यका विबंध, पाण्डुरोग, अजीर्ण, विपूचिका और अलसक आदि रोगोंको दूर करतीहै ॥ ५४ ॥

अतिवृष्य स्नेहयोग ।

अतऊर्द्धवृष्यतमान्हेहान्वक्ष्यामः ॥ ५५ ॥

अब हम अत्यन्त वीर्यवर्द्धक अनुवासनीय स्नेहोंका वर्णन करतेहैं ॥ ५५ ॥
शतावरीगुडूचीक्षुविदार्यामिलकद्राक्षाखर्जूरानांयन्त्रपीडितानांर-
सप्रस्थमेकैकतद्घृततैलगोमहिष्यजाक्षीराणांद्वाद्वौदद्यात् । जीव-

कर्पभकमेदामहामेदात्वक्षीराशृङ्गाटकमधूलिकामधुकोच्चटकपि-
प्यलीपुष्करबीजनीलोत्पलकदम्बपुष्पपुण्डरीककेशरकल्कान्पृषत-
तरक्षुमांसकुक्कुटचटकचकोरमत्ताक्षवर्हिजीवजीवककालिङ्गहंसानां
रसंवसामज्जादेश्वप्रस्थंदच्चासाधयेत् । ब्रह्मघोषशङ्खपटहभेरी-
निनादैःसिद्धंसितच्छत्रकृतच्छायंगजस्कन्धमारोपयेद्भगवन्तंवृष-
ध्वजमभिपूज्यतंस्त्रेहंत्रिभागमाक्षिकमङ्गलाशीःस्तुतिदेवतार्चनैर्व-
स्तिगमयेत् । नृणांस्त्रीविहारिणांनष्टरेतसांक्षतक्षीणविषमज्वरा-
र्त्तानांव्यापन्नयोनीनांवन्ध्यानांरक्तगुल्मिनीनांमृतापत्यानामना-
र्त्तवानाञ्चस्त्रीणांक्षीणमांसरुधिराणांपथ्यतमरसायनमुत्तमंवलीप-
लितनाशनंविद्यात् ॥ ५६ ॥

शतावरका रस, गिलोयका रस, ईखका रस, विदारीकंदका रस, आँवलेका रस,
दाखका रस, और खजूरका रस यह प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेवे । घृत १ प्रस्थ, तेल
१ प्रस्थ, गौका दूध २ प्रस्थ, भैंसका दूध २ प्रस्थ, बकरीका दूध २ प्रस्थ लेवे ।
तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, मद्यामेदा, वंशलोचन, सिंहाडे, मधूलिका, मुलैठी,
उदंगणके बीज, पीपल, कमलगट्टे, नीलकमल, कदंबके फूल, प्रपींडरीक और नागकेशर
यह सब दो दो कर्प लेवे । पृषतमृग, तरफ, मुर्गा, चिडा, चकोर, मत्ताक्ष, मोर, जीवन-
जीवक, कुलिंग और हंसके मांसका रस, चर्वी, मज्जा आदिक सब एक एक प्रस्थ लेवे
फिर उपरोक्त सब द्रव्योंको एकत्रित कर पकावे । जब पकतेरस्नेह सिद्ध होनेपर आवे
तो वेदपाठ, शंखध्वनि, पटह और भेरियोंका शब्द करे जब स्नेह सिद्ध होजाय तब
उसको उत्तम वस्त्रमें छानकर उत्तम पात्रमें राजाओंके योग्य श्वेत छत्र उस स्नेहके
ऊपर धारणकर हार्थके ऊपर स्नेहको लेकर चढे फिर भगवान् शिवका पूजन करके
उत्तम स्थानमें इस स्नेहसे तीसरा भाग शहद मिलावे फिर इसका वास्तप्रयोग कर-
नेसे स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति होतीहै, तथा यह स्नेह वस्ति नष्टवीर्य, क्षतक्षीण,
और विषमज्वरवालोंके लिये अत्यन्त हितकारी है । तथा योनिरोगवाली स्त्री, वंघ्या
स्त्री, रक्तगुल्मवाली स्त्री, मृतपत्ता, जिन स्त्रियोंको यथोचित मासिक रज नहीं
होता तथा जो मनुष्य क्षीणमांस और क्षीणरक्त हैं । उन सबके लिये यह स्नेहवास्ति
अत्यन्त हितकारी रसायन, वलीपलिननाशक और पुष्टकारक है ॥ ५६ ॥

चलादि घृष्यस्त्रेह ।

चलागोक्षुरकरास्त्राश्वगन्धाशतावरीसहचराणांशतंशतमायोज्यज-

लद्रोणशतेप्रसाध्यंतस्मिञ्जलद्रोणावशेषेरसेवत्त्रपूतेविदार्यामलक-
स्वरसयोर्वस्तमहिपवराहवृषकुक्रुटवर्हिहंसकारण्डवसारसानांघृत-
तैलयोश्चैकंपृथक्प्रस्थमष्टौप्रस्थान्क्षीरस्यदत्त्वाचन्दनमधुकमधूलि-
कात्वक्क्षीरीविसमृणालोत्पलपटोलफलात्मगुप्तात्रपाकितालमज्ज-
कखर्जूरमृद्धीकातामलकीकण्टकारीजीवकर्पभक्षुद्रसहामहासहा-
शतावरीमेदापिप्पलीहीवैरत्वक्पत्रकल्कांश्चदत्त्वासाधयेत् । ब्रह्म-
घोषादिनाविधिनातत्सिद्धं वस्तिमादद्यात् । तेनस्त्रीशतंगच्छेन्नचा-
त्रास्तेविहारयन्त्रणाकचिद् । एष वृष्योवर्ण्योवृंहणआयुष्योवली-
पलितनुत् । क्षतक्षीणनष्टशुक्रविषमज्वरार्त्तानां व्यापन्नयोनीनाञ्च
पथ्यतमः ॥ ५७ ॥

बला, गोखरू, रासना, असगंध, शतावर और पीयानांसा इन सबको सौ सौ पल लेकर सौ द्रोण जलमें पकावे । जय १ द्रोण बांकी रहे उतारकर छानले फिर इसमें विदारीकंदका रस १ प्रस्थ, ऑंवलेका रस १ प्रस्थ तथा बकरा, भैसा, वराह, वृष, सुर्गा, मोर, हंस, चकवा और सारसके मांसका रस एक एक प्रस्थ लेवे । घृत १ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ लेवे । तथा लालचंदन, मुलेठी, मधूलिका, वंश-लोचन, भिस, कमलकी डण्डी, नीलकमल, पटोलपत्र, मैनफल, कौचके बीज, अन्न-पाकी तालकी मज्जा, खजूर, दाख, कटेली, जीवरू, ऋषभक, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, शतावर, मेदा, पीपल, नेत्रवाला, दालचीनी और तेजपत्र इन सबके कल्क १ कुडव मिलाकर स्नेह सिद्धकरे । इस स्नेहमें भी पूर्वके समान वेदध्वनि आदि करना चाहिये । फिर स्नेहसे तीसरा भाग शहद मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । इस वस्तिके प्रयोगसे मनुष्य सौ स्त्रियोंमें गमन करसकताहै और इसमें किसी प्रकारके आहार विहारका भी विशेष नियम नहीं रखना पडता । यह स्नेहन, वीर्यवर्द्धक, वर्णकारक, शरीरको पुष्ट करनेवाला, आयुवर्द्धक, सल्वट और सफेद धारोंको दूर करनेवाला है । तथा क्षत, क्षीण, नष्टवीर्य और विषमज्वरसे पीडित मनुष्योंको तथा योनिरोगवाली स्त्रियोंको अत्यन्त पथ्य है ॥ ५७ ॥

सहचरादिरसायन स्नेह ।

सहचरपलशतमुदकद्रोणचतुष्टयेपवत्त्वाद्रोणशेषेरसेसुपूतेविदारीक्षु-
रसप्रस्थाभ्यामष्टगुणक्षीरंघृततैलप्रस्थंबलामधुकमधुकचन्दनमधु-

लिकाशरिवाभेदामहामेदाकाकोलीक्षीरकाकोलीपयस्यागुरुमञ्जि-
ष्ठाव्याघ्रनखीशटीसहचरसहस्रवीर्यावराङ्गलोघ्राणामक्षमात्रैर्द्विगु-
णशर्करैःकल्कैःसाधयेद्ब्रह्मघोषादिनाविधिना । तत्सिद्धं वस्तिदद्या-
देपसर्वरोगहरोरसायनोललितानांश्रेष्ठोऽन्तःपुरचारिणीनांक्षतक्ष-
यवातपित्तवेदनाश्वासकासहरस्त्रिभागमाक्षिकोवलीपलितनुद्वर्ण-
रूपधलमांसशुक्रवर्द्धनः ॥ ५८ ॥

पीयावांसिका पंचांग १०० पल लेकर उसको जौकुट कर चार द्रोण जलमें पकावे ।
१ द्रोण शेष रहनेपर उतारकर छानले । फिर उसमें विदारीकंदका रस १ प्रस्थ,
ईखका रस १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, तथा बला,
मुलैठी, महुएके फूल, लालचंदन, मधूलिका (कणकुनामक गेहूं), शारिवा, भेदा,
महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, क्षीरविदारी, अगर, मंजीठ, व्याघ्रनखी, कचूर,
पीयावांसा, हरी दृव, दालचीनी इन सबका एक एक तोला कल्क और मिसरी दो
तोला । इन सबको मिलाकर पकावे । सिद्ध होनेपर पूर्वोक्त रीतिसे वेदध्वनि आदिं करं
इस सिद्धवस्तिका प्रयोग करे । यह स्नेहवस्ति संपूर्ण रोगोंको हरनेवाली और रसायन
है । नो मनुष्य अत्यन्त सुकुमार और लाडले हैं और जो अन्तःपुरमें रहनेवाली
सुकुमार स्त्रियें आदि हैं उनके लिये अत्यन्त उपयोगी है । तथा क्षत, क्षय, वात-
पित्तजनित व्याधि, श्वास और खांसीको दूर करतीहै । यदि इस स्नेहमें तीसरा
भाग शहद भी मिला दिया जाय तो वलीपलित दूर हो और बल, वर्ण, रूप, मांस
और वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ५८ ॥

इत्येतैरसायनाःस्नेहवस्तयःसतिविभवेशतपाकासहस्रपाकावाका-
र्य्यावीर्य्यबलाधानार्थमिति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार यह रसायन स्नेहवस्तियें जो मनुष्य धनवान् और सब प्रकार विभव-
संपन्न हो तो इन्हीं स्नेहोंको उपरोक्त विधिसे १०० बार अथवा सहस्रवार सिद्धकर
प्रयोग करें तो यह अत्यंत वीर्यसंपन्न होनेसे बहुत विशेष गुणके करनेवाले होजाते
हैं (सौवार और सहस्रवार पाक करनेके लिये कल्क द्रव्य स्नेहसे सोलहवाँ भाग
और द्रवपदार्य दोगुना लेना ही यथेष्ट है) ॥ ५९ ॥

इन स्नेहवस्तियोंके विशेष गुण ।

भवन्ति चात्र ।

इत्येतावस्तयःस्नेहाश्चोक्ताप्राणिपुसद्धिताः । सुस्थानामातुराणाञ्च

वृद्धानाञ्चाविरोधिनः ॥ ६० ॥ अतिव्यवायशीलानांशुक्रमांसव-
लप्रदाः । सर्वरोगप्रशमनाःसर्वेष्वृतुषुयौगिकाः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार संपूर्ण मनुष्योंके लिये हितकारक इन स्नेहवस्तीयोंका कथन किया गया है यह स्नेह स्वस्थ मनुष्योंके लिये और रोगियोंके लिये तथा वृद्ध मनुष्योंके लिये अविरोधी हैं अर्थात् सबके ही लिये हितकारक हैं अत्यंत मैथुन करनेवालोंके लिये वीर्य मांस और बलके देनेवाले हैं । संपूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाले और सब ऋतुओंमें प्रयोग करने योग्य हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

नारीणामप्रजातानानराणाञ्चाप्यपत्यदाः ।

उभयार्थकरादृष्टाःस्नेहवस्तिनिरूहयोः ॥ ६२ ॥

जिन स्त्री पुरुषोंको संतान नहीं होती उनको संतानके देनेवाले और यह स्नेह, अनुवासन और निरूहणमें प्रयोग किये जानेसे दोनों प्रकारके गुण करनेवाले हैं ॥ ६२ ॥

इनमें त्याज्य कर्म ।

तत्रश्लोकाः ।

व्यायामामैथुनमद्यमधुनिशिशिराम्बुच ।

सम्भोजनंरथक्षोभेवस्तिष्वेतेपुगर्हितम् ॥ ६३ ॥

व्यायाम करना, स्त्रीसंग, मद्य, मधुर पक्क पदार्थ, शीतल जल, अत्यंत भोजन, रथ-
यादि क्षोभकारक सवारीमें बैठना इन सबको वस्तिकर्ममें प्रकृतिस्थ होनेपर्यन्त त्याग
दना चाहिये । इनके न त्यागनेसे अनेक प्रकारके रोग होनेका भय है ॥ ६३ ॥

वस्तियोगोंका उपसंहार ।

शिखिगोनर्दहंसाण्डैर्दक्षवद्वस्तयस्त्रयः । विंशतिर्विंशिकरैस्त्रिंशत्प्र-

तुदैःप्रसहैर्नव ॥ ६४ ॥ विंशतिश्चतथासप्तविंशतिश्चाम्बुचारिभिः ।

नवमत्स्यादिभिश्चैवाशिखिकल्पेनवस्तयः ॥ ६५ ॥ दशकर्कटकाद्यै-

श्चकूर्मकल्पेनवस्तयः । मृगैःसप्तदशैकोनविंशतिर्विंशिकरैर्दश ॥ ६६ ॥

आनूपैर्दक्षशिखिवद्भूशयैश्चचतुर्दश । एकोनविंशदित्येतेसहस्नेहैः

समासतः ॥ ६७ ॥

मुंगके अण्डके योगसे १ मोर सारस और हंसके अण्डोंसे ३ विंशतिपक्षियोंमें २०
प्रतुद पक्षियोंसे १० प्रसदोंके मांसकेसते ९ जलचरोंके मांससे २७ मठली आदि-

कोंसे ९ मोरके मांसके समान वस्तियोंके प्रयोग किये जातेहैं । कछुआ और केंकड़ा आदिसे १० मृगोंसे १७ विष्करोंसे १९ अनूपसंचारी जीवोंसे १० भूशयजीवोंके मांससे १४ प्रकारकी वस्तियोंकी कल्पना कहीगईहै इनसबको संक्षेपसे उनतीस स्नेह योगोंके भीतर वर्णन किये गये हैं यह सब योग विस्तारसे पृथक् २ कल्पना करनेपर २१६ होतेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

प्रोक्ताविस्तरशोभिन्नाद्विशतेषोडशोत्तरे । एतेमाक्षिकसंयुक्ताःकुर्वन्त्यतिवृषंनरम् । नातियोगंनवायोगस्तम्भितास्तेचकुर्वते ॥ ६८ ॥

इन स्नेहयोगोंमें शहद मिलाकर प्रयोग करनेसे यह अत्यंत वाजीकरण होजाते हैं और मनुष्यको कामबल संपन्न करदेतेहैं । इन वस्तियोंके विधिवत् प्रयोग कियेजानेसे अतियोग और व्ययोग भी नहीं होता इसलिये यह स्तम्भित भी नहीं होती, अर्थात् भीतरही विबंधको प्राप्त होकर रुकती भी नहीं है ॥ ६८ ॥

इनमें अन्यक्रम ।

मृदुत्वान्ननिवर्त्तेरन्वस्तयश्चेन्निरूहणे ।

समूत्रैर्वस्तिभिस्त्वेकैरास्थाप्यःक्षिप्रमेवच ॥ ६९ ॥

यदि यह वस्तियें मृदुताके कारण रुकजांय तो गोमूत्रयुक्त तीक्ष्ण आस्थापन वस्ति का शीघ्र प्रयोग करना चाहिये ॥ ६९ ॥

निरंतर यापनवस्तिके दोष ।

शोफामिनाशपाण्डुत्वशूलार्शःपरिकर्त्तिकाः । स्युर्ज्वरश्चातिसारश्चयापनात्यर्थसेवया ॥ ७० ॥ अरिष्टक्षीरशीध्वाद्यातत्रेष्टादीपनी क्रिया । युक्तयातस्मान्निषेवेतयापनान्नप्रसङ्गतः ॥ ७१ ॥

यापनवस्ति निरन्तर अत्यंत सेवित की जाय तो सूजन, जठरामिका नाश, पांडुता, शूल, ववासीर, परिकर्त्तिका, ज्वर और अतिसार यह उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं । ऐसा होनेपर अरिष्ट, दूध, शीघु आदि अनेक प्रकारकी दीपन क्रिया करनी चाहिये । उपद्रवोंके भयसे यापनवस्तियोंको अपसंग क्रमसे सेवन न करे ॥ ७० ॥ ७१ ॥

इत्युच्चैर्भाष्यपूर्वाणां व्यापदःसचिकित्सिताः ।

विस्तरेणपृथक्प्रोक्तास्तेभ्योरक्षेत्रंरंसदा ॥ ७२ ॥

इस प्रकार उच्चभाषण आदि अनुचित व्यापारोंसे उत्पन्न हुए उपद्रवोंके लक्षण और चिकित्सा विस्तारपूर्वक पृथक् २ कथन करदी गई है । वैद्यको चाहिये कि इन आपत्तियोंसे रोगीकी रक्षा करतारहे ॥ ७२ ॥

सिद्धिस्थानकी निरुक्ति ।

कर्मणां वमनादीनामसम्यक्करणापदाम् ।

यत्रोक्तं साधनं स्थाने सिद्धिस्थानं तदुच्यते ॥ ७३ ॥

वमनादि कर्मोंमें मिथ्यायोग होनेसे जो आपत्तियों उत्पन्न होती हैं उन आपत्तियों-का साधन जिस स्थानमें कहाजाय उसको सिद्धिस्थान कहते हैं ॥ ७३ ॥

इत्यध्यायशतं विंशमात्रेयमुनिवाङ्मयम् ।

हितार्थप्राणिनां प्रोक्तमग्निवेशेन धीमता ॥ ७४ ॥

इस प्रकार महात्मा अग्निवेशजीने महर्षि आत्रेयजीके वाणीमय अर्थात् महर्षि आत्रेयजीके कथन किये हुए १२० अध्यायोंमें मनुष्योंके कल्याणके लिये इस ग्रन्थको कथन किया है ॥ ७४ ॥

इस ग्रन्थके पठनेका फल ।

दीर्घमायुर्यशःप्रज्ञामारोग्यञ्चापि पुष्कलम् ।

सिद्धिञ्चानुत्तमां लोके प्राप्नोति विधिना पठन् ॥ ७५ ॥

जो मनुष्य इस ग्रंथको पठन करेगा वह दीर्घायु, यश, बुद्धि सब प्रकार परम आरा-ग्यता इस लोकमें अनुपम सिद्धिको प्राप्त होगा ॥ ७५ ॥

विस्तारयतिलेशोक्तं संक्षिपत्यतिविस्तरम् । संस्कर्त्ता कुरुते तन्त्रपु-
राणश्च पुनर्नवम् ॥ ७६ ॥ अतस्तन्त्रोत्तरमिदं चरकेणातिबुद्धिना ।

संस्कृतं तत्तु संसृष्टं विभागेनोपलक्ष्यते ॥ ७७ ॥

जो ग्रंथ पहिले संक्षेपसे कहाहुआ हो उसको विस्तारपूर्वक कर देना जो अतिवि-स्तारसे कहा हो उसको सुन्दरतासे संक्षेपमें करना । इस प्रकार संक्षेप विस्तारको उत्तम रीतिसे ग्रंथको सुगम, वनादेना अर्थात् पुराने ग्रन्थको सुन्दर रीतिसे नवीन और दोषरहित सरल बनानेवालेको संस्कारकर्त्ता कहते हैं । सो इस ग्रन्थको प्रथम महात्मा अग्निवेशजीने निर्माण किया और महात्मा चरकऋषिने अपनी बुद्धिसे इस ग्रन्थको उत्तम रीतिसे संस्कारकर एक प्रकारसे नवीन बनादिया ऐसा इसके विभा-गोंसे ही जानाजाता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

इदमन्यूनशब्दार्थं तन्त्रं दोषविवर्जितम् । अखण्डार्थं दृढबलोजातः
पञ्चनदेपुरे ॥ ७८ ॥ कृत्वा बहुभ्यस्तन्त्रेभ्यो विशेषाच्च वलोच्चयम् ।

सप्तदशौपधाध्यायसिद्धिकल्पैरपूरयत् ॥ ७९ ॥

यह ग्रन्थ कहीं पर भी शब्द और अर्थमें अपूर्ण नहीं है तथा दोपरहित, अखण्डितार्थ है। इस ग्रंथमें जो चिकित्सास्थानके १७ अध्याय और सिद्धिस्थान तथा कल्पस्थान अग्निवेशके बनाये हुए नहीं थे उनको पंचनदिवासी महात्मा दृढबलने अग्निवेश, भेड, जटु, कर्ण आदि ऋषियोंकी बनाई संहिताओंसे विशेष विचारपूर्वक संकलनकर ये १७ अध्याय चिकित्साके तथा सिद्धिस्थान और कल्पस्थान अति उत्तमरीतिसे बना इस ग्रन्थमें लगाकर ग्रंथको अखण्डरूपसे पूर्ण किया ॥७८॥७९॥

३५ युक्तियोंका संग्रह।

पञ्चत्रिंशद्विचित्राभिभूषितं तन्त्रयुक्तिभिः । तत्राधिकरणयोगो हेत्वर्थोऽर्थः पदस्य च ॥ ८० ॥ प्रदेशोद्देशनिर्देशवाक्यशेषाः प्रयोजनम् । उपदेशापदेशातिदेशार्थापत्तिनिर्णयाः ॥ ८१ ॥ प्रसङ्गैकान्तनेकान्ताः सापवर्गो विपर्ययः । पूर्वपक्षविधानानुमतव्याख्यानसंशयाः ॥ ८२ ॥ अतीतानागतापेक्षास्वसंज्ञाह्यसमुच्चयाः । निदर्शननिर्वचनसंज्ञियोगो विकल्पनम् ॥ ८३ ॥ प्रत्युच्चारस्तथोद्धारः सम्भवस्तन्त्रयुक्तयः । तन्त्रे व्याससमासाभ्यां भवन्त्येतानि कृत्स्नशः ॥ ८४ ॥ तन्त्रे समासव्यासोक्ता भवन्त्येता हि कृत्स्नशः । एकदेशेन दृश्यन्ते समासाभिहितास्तुताः ॥ ८५ ॥ यथाम्बुजवनस्यार्कः प्रदीपो वेद्मनो यथा । प्रबोधनप्रकाशार्कस्तथा तन्त्रस्य युक्तयः ॥ ८६ ॥

यह ग्रंथ अधिकरण, योग, हेत्वर्थ, पदार्थ, प्रदेश, उद्देश, निर्देश, वाक्यशेष, प्रयोजन, उपदेश, अपदेश, अतिदेश, अर्थापत्ति, निर्णय, प्रसंग, एकान्त, अनेकान्त, अपवर्ग, विपर्यय, पूर्वपक्ष, विधान, अनुमत, व्याख्या, संशय, अतीत, अनागतापेक्षा, स्वसंज्ञा, असमुच्चय, निदर्शन, निर्वचन, संज्ञियोग, विकल्पन, अत्युच्चार, उद्धार और संभव इन ३५ विचित्र युक्तियोंसे विभूषित है। यह संपूर्ण युक्तियें इस तंत्रमें संक्षेप और विस्तारसे सूत्रस्थान और विमानस्थान आदिकोंमें कथन की गई हैं। क्योंकि यह संपूर्ण इस तंत्रमें संक्षेप और विस्तारसे पृथक् २ कहीं २ कथन की गई हैं। उन सबके ज्ञान निर्देशके लिये यहांपर संग्रहकरके लिख दी गई। जैसे-कमलोंका वन रहते हुए भी सूर्यके प्रकाश बिना कमलोंके वनमें फूल नहीं दिखाई देते, जैसे घरमें संपूर्ण वस्तुएं रहते हुए भी बिना दीपकसे दिखाई नहीं देता उसी प्रकार इस तंत्रमें वह संपूर्ण युक्तियें छिपी हुई रहनेसे सहज ही जाननेमें कठिन पड़ती। इसलिये उनको सुगमतासे जाननेके लिये यहां पर संग्रहकर दिखा दी हैं ॥ ८०-८६ ॥

एकस्मिन्नापियस्येहशास्त्रेलब्धास्पदामतिः । सशास्त्रमन्यदप्याशु
युक्तिज्ञत्वात्प्रबुध्यते ॥ ८७ ॥ अधीयानोऽपिशास्त्राणितन्त्रयुक्त्या
विचक्षणः । नाधिगच्छतिशास्त्रार्थानर्थान्भाग्यक्षयेयथा ॥ ८८ ॥

इस एक ही शास्त्रमें जिसकी बुद्धि यथोचित प्रवेश कर गई है अर्थात् जिसको यह चरकतंत्र एक ही ग्रन्थ संपूर्ण रूपसे आता है वह इसकी युक्तियोंको जाननेसे अन्य शास्त्रोंको भी शीघ्र जान सकता है । जो वैद्य अनेक शास्त्र भी पढा हो परन्तु उन शास्त्रोंके पढनेपर भी उनके भाव और युक्तियोंको न जानता हो वह मूर्ख शास्त्रके विषयोंको इस प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता जैसे भाग्यहीन मनुष्य अर्थ प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

दुर्गृहीतंक्षिणोत्थेवशास्त्रंशस्त्रमिवाबुधम् । सुगृहीतं तदेवज्ञंशास्त्रंश-
स्त्रं चरक्षति ॥ ८९ ॥ तस्मादेताः प्रवक्ष्यन्ते विस्तरेणोत्तरेपुनः । तत्त्व-
ज्ञानार्थमस्यैव तन्त्रस्य गुणदोषतः ॥ ९० ॥

जैसे अबोध मनुष्य शस्त्रको अज्ञानवश उल्टी रीतिसे उठाकर उससे अनेक प्रकारसे अपने शरीरकी हानि करलेता है वा अपने इष्टमित्रोंकी हानि करता है उसी प्रकार मूर्ख वैद्य बिना युक्तियोंके जाने शास्त्रसे हानिको प्राप्त होता है । जैसे बुद्धिमान्, शूरीवीर, शस्त्रसे आत्मरक्षा आदि हितसाधन करसकता है । उसी प्रकार बुद्धिमान् वैद्य शास्त्रसे आत्मरक्षा और संपूर्ण प्राणियोंका हितसाधन करसकता है इसलिये इस ग्रंथके गुणदोष और तत्त्वज्ञानके लिये इन युक्तियोंको ग्रंथके अंतमें फिर वर्णन कर दिया है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

ग्रंथका फल ।

इदमखिलमधीत्यसम्यगर्थान्विमृशातियोविमलः प्रयोगनित्यः । स
मनुजसुखजीवितप्रदानाद्भवति धृतिस्मृतिबुद्धिधर्मवृद्धः ॥ ९१ ॥

जिस वैद्यने यह संपूर्ण ग्रंथ यथार्थरूपसे पढ़कर अर्थबोध कर लिया है तथा जो इस विमल शास्त्रका नित्य प्रयोग करता है वह मनुष्य सुख और जीवनको देनेवाला होनेसे धारणा, स्मृति, बुद्धि और धर्ममें सर्व श्रेष्ठताको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

यस्य द्वादशसाहस्रीहृदितिष्ठतिसंहिता । सोऽर्थज्ञः सविचारज्ञश्चिकि-
त्साकुशलश्चसः । रोगांस्तेपांचिकित्साञ्चसकिमर्थं न्बुध्यते ॥ ९२ ॥

जिस मनुष्यके हृदयमें यह १२००० श्लोकात्मक संहिता स्थित रहती है वह

अर्थका जाननेवाला विचारज्ञ और चिकित्साकुशल होता है । ऐसे कौन रोग और उनकी चिकित्सा हैं जिनको इस-तंत्रका जाननेवाला न जान सकता हो अर्थात् सब-कोही यथार्थ रूपसे जान सकता है ॥ ९२ ॥

चिकित्सावह्निवेशस्यसुस्थानुरहितंप्रति ।

यदिहास्ति तदन्यत्रयज्ञेहास्तिनतत्त्वचित् ॥ ९३ ॥

इस अग्निवेशके रचेदुए तंत्रमें स्वस्थ और रोगी मनुष्योंके हितके लिये जो कुछ चिकित्सा कथन की है वह और तंत्रोंमें भी मिल सकती है परन्तु जो इसमें नहीं है सो कहीं भी नहीं है ॥ ९३ ॥

अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते । सिद्धिस्थानेऽष्टमेप्राप्तेतस्मि-
न्दृढबलेनतु । सिद्धिस्थानंस्वसिद्धयर्थं समासेन समापितम् ॥ ९४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थान

उत्तरवस्तिसिद्धिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समाप्तमिदं चरकतन्त्रम् ।

इस अग्निवेशके रचेदुए तथा चरकके संस्कार कियेदुए तंत्रमें इस आठवें सिद्धि-
स्थानकी प्राप्तिमें दृढबलेन अपनी सिद्धिके लिये सिद्धिस्थानको समाप्त किया ॥ ९४ ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदसंहिताया सिद्धिस्थाने पटियाळाराज्यान्तर्गतकसाळनिवासि

पं० द्वारकादासात्मजरामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादनीभाषाटीकाया

सिद्धिस्थान उत्तरवस्तिसिद्धिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ श्लोक ॥

वह्निवेशकृतं तंत्रं चरकप्रतिसंस्कृतम् ।

वेद्यरामप्रसादेन प्रसादिन्या विभूषितम् ॥ १ ॥

वसु-मृदत्वङ्गचंद्रेऽब्दे आश्विने बुधवासरे ।

कृष्णपक्षे च पञ्चम्यां टीका पूर्तिगमादियम् ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

अग्निवेशकृतं तंत्रं यह, चरक सुशोभित कीन्ह ॥

रामप्रसाद प्रसादनी, भाषायुत करदीन्ह ॥ १ ॥

उन्निससौ अठसठविषे, कृष्णाश्विन बुधवार ॥

हिन्दीभाषायुत कियो, पन्नगतिथी मझार ॥ २ ॥

समाप्ता चैवं चरकसंहिता सभाषाटीका ।

(१९१६)

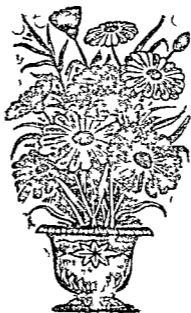
चरकसंहिता-समाप्ति ।

सब प्रकारकी वनौषधी, कंद, घृत, तैल, रस, लक्ष्मणा, शिवलिंगी आदि इस पतेसे मिल सकती हैं ।

पं० रामप्रसाद मुरारीलाल उपाध्याय

पो० टकसाल (रियासत पटियाला)

पंजाब.



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम्-प्रेस मुम्बई.

जाहिरात ।

विक्रय्यपुस्तकै-वैद्यकग्रन्थः ।

नाम-

कीमत.

- अश्रुतसंहिता-सान्वयसटिप्पण सपरिशिष्ट भापाटीका समेत-सूत्रस्थान, निदानशारीरस्थान, चिकित्सकस्थान, कल्पस्थान, उत्तरतंत्र, संपूर्ण पंडित राजवैद्य मुरलीधरजीकृत भापाटीका सहित जितमें संपूर्णरोगोंका निदान लक्षण और औषधोंके प्रकार वा प्रत्येक रोगपर क्वाथ, चूर्ण, रस, घी आदिसे अच्छीप्रकारसे चिकित्सा वर्णित है इसग्रंथकी योग्यता संपूर्ण भारतवर्षमें प्रतिद्ध है १२)
- ” तथा उपरोक्त अलंकारो समेत सूत्रस्थान प्रथमभाग ३)
- ” ” ” निदान शारीरस्थान द्वितीयभाग २॥)
- ” ” ” चिकित्सा व कल्पस्थानं तृतीयभाग ३॥)
- ” ” ” उत्तरतंत्र चतुर्थभाग ३॥)
- ” ” ” केवलशारीरस्थान १)
- नेतसंहिता-पंडित रविदत्तकृत भापाटीका सहित और राजवैद्य पं. मुरलीधरकृत संशोधित इसकेलःस्थानोंमें संपूर्ण पय धान्यादिवर्ग और औषधियोंका गुणदोष और रोगोंकी उत्पत्ति संप्राप्ति लक्षण निदान चिकित्सादिका वर्णन है ३)
- रमकाश-मूल और लालाशालिग्रामकृत भापाटीका तीनखंडोंमें भावमिश्रकृत संगृहीत, कर्पूरादिवर्ग गुडूच्यादिवर्ग पुष्पवर्ग घटादिवर्ग आम्रादि फलवर्ग शाकवर्ग मांसवर्ग जातिभेदसे पशु पक्षियोंके मांसके गुण, कृतालवर्ग, वीरवर्ग, दुग्धवर्ग, नवनीतवर्ग, घृतवर्ग, सूत्रवर्ग, तैलवर्ग, सन्धानवर्ग, मधुवर्ग, इक्षुवर्ग, अनेकार्यनामवर्ग, धातुनाम, शोधनमारण विधि, पुटप्रकार, रत्नोंकी शोधनमारणविधि, विष और उपविषोंकी शोधनविधि इत्यादि संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति संप्राप्ति निदान चिकित्सा इत्यादि वर्णित हैं ७)
- चंतरी-वैद्यक-लालाशालिग्राम वैश्यकृत भापाटीका समेत जितमें समस्त रोगोंका निदान कारण लक्षण और चिकित्सक औषधि संग्रहकर लिखा है ... ५)

(१९१६)

चरकसंहिता-समाप्ति ।

सब प्रकारकी वनौपधी, कंद, घृत, तैल, रस, लक्ष्मणा, शिवलिंगी आदि बूटिमें
इस पतेसे मिल सकती हैं ।

पं० रामप्रसाद सुरारीलाल उपाध्याय

पो० टकसाल (रियासत पटियाला)

पंजाब.



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम्-प्रेस मुम्बई.

जाहिरात ।

विक्रय्यपुस्तकें-वैद्यकग्रन्थः ।

नाम.

कीमत.

सुश्रुतसंहिता-सान्ध्यसटिप्पण सपरिशिष्ट भापाटीका समेत-सूत्रस्थान, निदानशारीरस्थान, चिकित्सकस्थान, कल्पस्थान, उत्तरतंत्र, संपूर्ण पंडित राजवैद्य मुरलीधरजीकृत भापाटीका सहित जितमें संपूर्णरोगोंका निदान लक्षण और औषधोंके प्रकार वा प्रत्येक रोगपर क्वाथ, चूर्ण, रस, घी आदिसे अच्छीप्रकारसे चिकित्सा वर्णित है इसग्रंथकी योग्यता संपूर्ण भारतवर्षमें प्रसिद्ध है १२)
" तथा उपरोक्त अलंकारो समेत सूत्रस्थान प्रथमभाग ३)
" " " निदान शारीरस्थान द्वितीयभाग २॥)
" " " चिकित्सा व कल्पस्थानं तृतीयभाग ३॥)
" " " उत्तरतंत्र चतुर्थभाग ३॥)
" " " केवलशारीरस्थान १)

हारीतसंहिता-पंडित रविदत्तकृत भापाटीका सहित और राजवैद्य पं. मुरलीधरकृत संशोधित इसकोष्ठःस्थानोंमें संपूर्ण पय घान्यादिवर्ग और औषधियोंका गुणदोष और रोगोंकी उत्पत्ति संप्राप्ति लक्षण निदान चिकित्सादिका वर्णन है

भावप्रकाश-मूल और लालाशालिग्रामकृत भापाटीका तीनखंडोंमें भावमिश्रकृत संगृहीत, कर्पूरादिवर्ग गुडूच्यादिवर्ग पुष्पवर्ग बटादिवर्ग आम्रादि फलवर्ग शाकवर्ग मांसवर्ग जातिभेदसे पशु पक्षियोंके मांसके गुण, कृतान्नवर्ग, वारिवर्ग, दुग्धवर्ग, नवनीतवर्ग, घृतवर्ग, मूत्रवर्ग, तैलवर्ग, सन्धानवर्ग, मधुवर्ग, इक्षुवर्ग, अनेकार्थनामवर्ग, घातुनाम, शोधनमारण विधि, पुटप्रकार, रत्नोंकी शोधनमारणविधि, विष और उपविषोंकी शोधनविधि इत्यादि संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति संप्राप्ति निदान चिकित्सा इत्यादि वर्णित है

न्वन्तरी-वैद्यक-लालाशालिग्राम वैश्यकृत भापाटीका समेत जितमें सप्रस्त रोगोंका निदान कारण लक्षण और चिकित्सक औषधि संयोजक लिखा है

५)

नाम

- अष्टांगहृदय-(वाग्भट) वाग्भटविरचित-पं० रविदत्तकृत भापाटीकासहित और पंडितज्वालाप्रसाद मिश्र संशोधित । जिसमें सूत्रस्थान, शारीर-स्थान, निदानस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, उत्तरस्थान इत्यादिमें संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति निदान लक्षण और काथ चूर्ण रस घी तैल आदिसे अच्छीप्रकार चिकित्सा वर्णित है
- अष्टांगहृदयवाग्भट-मूल मोटा अक्षर....
- शार्ङ्गधरसंहिता-मूल और पं० दत्तरामचौबेकृत भापाटीका समेत चरक वाग्भट सुश्रुतादिसे संगृहीत-इस ग्रंथमें रोगोंकी उत्पत्ति लक्षण प्रतीकार सबप्रकारकी धातुओंका मारणशोधन आदि प्रयोग बहुत अजमाये हुए लिखेहैं और रसादिके सेवनकी विधि भी संयुक्त है ग्लेज
- “ ” तथा रफ ...
- वैद्यरहस्य-मूल और पंडित दत्तराम चौबे कृत भापाटीका समेत संपूर्ण रोगोंकी चिकित्सा भलीप्रकार वर्णितहै “
- बृहन्निघण्टुरत्नाकर-मूल पंडित दत्तराम चौबेकृत संकलित और भापाटीकासहित जिसमें शारीराध्याय यंत्राध्याय शब्दविचारणाध्याय योग्य सूत्राध्याय अष्टविधशस्त्रकर्माध्याय तथा दूसराभाग क्षारपाक विधि अग्निकर्म दोषधातुबलवृद्धि दोषवर्णन ऋतुचर्या दिनचर्या रात्रिचर्या नाडीदर्पणादि वर्णन, प्रथम भाग ...
- “ ” तथा द्वितीयभाग
- “ ” तथा तृतीयभाग (विविधरोगोंकी चिकित्सा संग्रह)
- “ ” तथा चौथाभाग (चिकित्साखंड)
- “ ” तथा पंचमभाग (रोगोंका कर्मविपाक)
- “ ” तथा षष्ठभाग (रोगाणां चिकित्साभागः)
- “ ” तथा सप्तम अष्टमभाग लाला शालग्रामसंकलित अर्थात् “ शालग्रामनिघंटुभूषण ” अनेकदेशदेशांतरीय संस्कृत हिन्दी बंगला, मराठी, गोजरी, द्राविडी, तैलंगी, ओत्कूडी, इंग्लिश, लैटिन, फारसी, धरवी भाषाओंमें नव औषधोंके नाम और गुणोंका वर्णन औषधियोंके चित्रोंसमेत
- “ ” तथा उपरोक्त अलंकार समेत आठों भाग संपूर्ण
- बृहन्निघंटुरत्नाकरांतर्गत-चिकित्साखंड भापाटीकासहित पंडित दत्तराम-प्रणीत संपूर्ण रोगोंकी औषधिका अपूर्व संग्रह

नाम

कीमत.

- योगचिन्तामणि-भापाटीकासहित दत्तरामचौबे कृत इममें पाक तैल
चूर्ण गुटिका घृत इत्यादि अनुभव सिद्ध प्रयोग लिखेगयेहैं ग्लेज १॥)
- " " तथा रफ़्तगतगज १।)
- बालतंत्र-कल्याण वैद्यविरचित और नंदकुमारकृत भापाटीका इसमें पोडश-
बंध्या साधारण बंध्या औषध पुरुष वीर्यवृद्धि गर्भाधान ऋतुस्नान
मास गृहीत बालरक्षा वर्षगृहीतबालरक्षा-दिनमासवर्षगृहीत बालरक्षा
साधारण बालग्रहरक्षा ज्वरहरणोपाय साधारण रोग चिकित्सा नाना-
रोगोंके अनुभवी प्रयोग इत्यादि वर्णित हैं १)
- यंगसेन-लालाशास्त्रिग्रामकृत भापाटीकासहित-वैद्यक (चिकित्सावंगसेनस्य)
और समस्त विषयोंके सिवाय यह ग्रन्थ चिकित्सामें प्रधानहै इससे
बढकर दूसरा ग्रंथ नहींहै इस एकही ग्रंथसे वैद्यराज हो सकता है ८)
- रसरत्नसमुच्चय-गुर्जरभापाटीकासमेत इसमें पारद, धातु, उपधातुओंके
शोधनविधि, नानाप्रकारके रस, भस्म, औषधोंके सिद्धयोग इत्यादि
वर्णितहैं. यह रसभस्म आदिकी सिद्धिका अद्वितीय ग्रन्थ ... ४)
- आयुर्वेदसुषेणसंहिता-भापाटीका इसमें सामान्य औषधीवर्ग धान्यवर्ग
पषवर्ग इत्यादिकोंके गुणदोष वर्णितहैं ॥१०)
- वैद्यकपरिभाषाप्रदीप-भापाटीकासहित (वैद्योपयोगी औषधियोंकी योज-
नामें तैल माप और बदला अर्थात् प्रतिनिधि तथा वर्ग चूर्ण आदि-
कोंकी योजनाका वर्णन) ॥१०)
- वैद्यरत्न-१० ज्वालामत्साद मिश्रकृत भापाटीकासमेत सर्वरोगोंकी चिकित्सा
उत्तम प्रकारसे वर्णन की गई है ॥१०)
- लोलिम्बराजकृत-वैद्यजीवन संस्कृत और भापाटीकासहित शृंगाररस
प्राधान्य रोगोंकी चिकित्सा अत्यन्तउपयोगी वैद्यकका ग्रंथहै ॥१०)
- कामरत्न-योगेश्वर नित्यनाथ प्रणीत और पंडित ज्वालामत्साद मिश्रकृत
भापाटीकासहित इस ग्रंथमें कामशास्त्रादि विषय और रोगोंकी औषधि
तथा वाजीकरण औषधि अनुभूत हैं और वशीकरणादि प्रयोग भी हैं. १॥१)
- अर्कप्रकाश-" रावणकृत " भापाटीका इसमें नानाप्रकारके वंत्रोंसे औषधि-
योंका अर्कवर्षाचना और गुण वर्णन किया गया है ?)
- रसेन्द्रभास्कर-१० श्रीलक्ष्मीनारायणात्मज १० दिवसमात्साद शर्मकृत प्रभानाम
भा० टी० समेत १)

नाम

कीम

- माधवनिदान—मूल और पं. दत्तरामचौबेकृत भापाटीकासहित इसमें संपूर्ण रोगोंका कारण उत्पत्ति लक्षण संप्राप्ति इत्यादि वर्णनहै कागज ग्लेज....
- ” ” ” ” तथा, रफ्
- हंसराजनिहान—भापाटीकासहित इसमें रोगोंकी पहिचान नाडीपरीक्षा साध्यअसाध्यका ज्ञान इत्यादि अनेक विषय वर्णित है....
- अनुपानदर्पण—भा० टी० इसमें रस धातु बनानेकी क्रिया और अनुपानदेना और रोगोंपर औषधोंमें क्या २ अनुपान देना यह सब वर्णित है
- कालज्ञान—भापाटीका यह ग्रंथ संपूर्ण अभ्यास करनेसे भूत भविष्य वर्तमानका ज्ञान होताहै
- पथ्यापथ्य—भापाटीका सहित पं० केशवप्रसादमिश्र संगृहीत जिसमें संपूर्ण रोगोंपर पथ्यापथ्यकरना और अपथ्यादिकका निषेध इत्यादि वर्णितहैं भिषग् गणोंको अवश्य लेना उचित है....
- रसरत्नाकर—सिद्धनाथ प्रणीत—समस्त रसग्रंथोंमें शिरोभूषण—लाला शालिग्रामकृत भापाटीका सहित—इस ग्रंथमें पाग गंधक हरताल तांबा रूपा हीरा वैक्रांत सफेद अश्रक मनशील खपरिया नीलाथोथा शिलाजीतादि रसोंकी शोधनविधि तथा उनके गुण और प्रत्येक रोगोंकी चिकित्साका वर्णनहै ग्रन्थ बहुतही उत्तम वैद्योपयोगी है ...
- संपूर्ण—पुस्तकोंका “बडा सूचीपत्र” अलग है—आध आनेका टिकट भेजकर मंगा लीजिये ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना—मुम्बई